कल्हण कृत

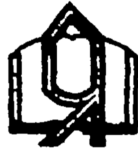
राजतरंगिणी



भाष्यकार

रघुनाथ सिंह





हिन्दी प्रचारक संस्थान

(व्यवस्था : कृष्णचन्द्र बेरी एण्ड सन्स)

सितम्बर '६९]   पो. बॉक्स नं. १०६, सी २१/३०, पिशाचमोचन : वाराणसी–१   [मूल्य : ७५.००

◆
प्रथम आवृत्ति
सितम्बर '६६
◆

प्रकाशक
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो बॉक्स न १०६, सी २१/३०, पिशाचमोचन, वाराणसी-१

मूल्य
७५.००

मुद्रक
विक्रम पचांग प्रेस, भदैनी, वाराणसी-१

प्रथम तरङ्ग के राजा

पृष्ठ	राजा	पृष्ठ	गोनन्द वंश	लौकिक	वर्ष-मास-दिन
९९	गोनन्द प्रथम[1]	२५२	गोनन्द तृतीय	१८९४	३५
१०५	दामोदर प्रथम	२५५	विभीषण प्रथम	१९२९	५३ ६
११०	यशोवती	२५६	इन्द्रजीत	१९८२=६	३५
११३	गोनन्द द्वितीय	२५६	रावण	२०१७=६	३०=६
११७	पैंतीस लुप्त राजा	२५७	विभीषण द्वितीय	२०४८	३५=६
१२१	लव	२५७	नर प्रथम (किन्नर)	२०८३=६	४०=९
१२३	कुश	२८४	सिद्ध	२१२४=३	६०
१२४	खगेन्द्र	२९०	उत्पलाक्ष	२१८४=३	३०=६
१२५	सुरेन्द्र	२९०	हिरण्याक्ष	२२१४=९	३७=७
१२९	गोधर	२९१	हिरण्य कुल	२२५२=४	६०
१३०	सुवर्ण	२९१	वसुकुल	२३१२=४	६०
१३१	जनक	२९२	मिहिर कुल	२३७२=४	७०
१३१	शचीनर	३३३	वक	२४४२=४	६३=१३ दिन
१३२	अशोक	३२८	क्षितिनन्द	२५०५=४=१३	३०
१५८	जलौक	३३८	वसुनन्द	२५३५=४=१३	५२=२
२११	दामोदर द्वितीय	३३९	नर द्वितीय	२५८७=६=१३	६०
२२४	हुष्क	३३९	अक्ष	२६४७=६=१३	६०
२२४	जुष्क	३४१	गोपादित्य	२७०७=६=१३	६०=०=६
२२४	कनिष्क	३४९	गोकर्ण	२७६७-६-१९	५७-११
२४०	अभिमन्यु प्रथम[2]	३५०	खिङ्खिल-(नरेन्द्रादित्य)	२८२५-५-१९	३६ ३·१०
	राज्यकाल १२६६ वर्ष	३५२	युधिष्ठिर	२८६१-८-२९	३४ ३. १
					१००२ वर्ष

उक्त काल गणना श्री स्तीन के अनुसार दी गयी हैं। अन्य विद्वानो के मतो का उल्लेख यथास्थान किया गया है।

१ राज्याभिषेक काल कलिसम्वत् ६५३ लौकिक सम्वत् ६२८ है।

२ इस समय का पूर्ण राज्य काल १२६६ वर्ष लौकिक सम्वत् ६२८ से १८९४ होता है।

विषय-सूची

प्राक्कथन

भारत विभाजन के पश्चात् भारत एवं पाकिस्तान के बीच काश्मीर विवाद का विषय बन गया। ।श्मी ्का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय जगत तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में चर्चा का विषय हो गया। काश्मीर विधान- । तथा भारतीय संसद मे भी विभिन्न दलों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता रहा है। अतएव उसका व्यापक ।यन अनिवार्य हो गया था। मुसलमानो के कादयान सम्प्रदाय ने कश्मीर का सम्बन्ध हजरत मूसा, ुले। , ईशा आदि बाइबिल एवं कुरान वर्णित धार्मिक महात्माओ से जोड कर काश्मीर को भारतीय ंुति, सभ्यता, धर्म एवं इतिहास से अलग करने का प्रयास आरम्भ किया। काश्मीर का नाम बदल कर 'बाग-ए-सुलेमान' रख दिया गया। पाकिस्तानी लेखको ने यह प्रतिपादित करने के लिए पुस्तक ही लिख डाली कि वास्तव मे नाम 'कशीर' है न कि 'काश्मीर'। काश्मीर शब्द का पुराण, महाभारत तथा अन्य प्राचीन प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थो मे उल्लेख है, अतएव पुरातन परम्परा से काश्मीर को अलग करने का अथक परिश्रम किया जाने लगा। इस विषय पर पुस्तकें तथा पैम्फलेट लिखे गये। शंकराचार्य पर्वत का नाम 'तख्तए-सुलेमान' तथा अनन्त नाग का नाम 'इसलामाबाद' रख दिया गया। इसी प्रकार पुराने स्थानो के नाम बदल कर उनके स्थान पर जियारत शरीफ, मजार, पीर आदि रख दिये गये।

काश्मीर के काग्रेस संसदोय दल ने काश्मीर प्रश्न का अध्ययन करने के लिये दल के संसद सदस्यो का एक स्टडी ग्रूप बनाया। मै इस स्टडी ग्रूप का दस वर्षो तक संयोजक रहा। इस काल मे काश्मीर में अनेक बार जाने का अवसर मिला। सुरक्षा विभाग के क्षेत्रों मे जो स्थान पड गये थे वहाँ सुरक्षा विभाग की सहायता से पहुँच कर उनका अध्ययन किया। संसद में भाषणो, चर्चाओं तथा बाहर काश्मीर इतिहास सम्बन्धी विवादो का उत्तर-प्रत्युत्तर तथा वास्तविकता पर प्रकाश डालने के लिए हमें वक्तव्य देना पडा है।

संसद तथा बाहर आक्षेपो एवं विवादो का उत्तर देने के लिये काश्मीर के प्राचीन इतिहास एवं भू-परिचय का ज्ञा ा आवश्यक हो गया। काश्मीर की यात्रा प्रतिवर्ष अध्ययन तथा जानकारी प्राप्त करने के लिये आवश्यक हो गयो ो। इस काल मे पाँच बार संसदीय सदस्यो के शिष्टमण्डल के नेता के रूप मे काश्मीर जाना पडा। किन्तु काश्मीर का बडा भूभाग अनधिकृत रूप से पाकिस्तान के पास है। काश्मीर की उत्तरीय एवं पश्चिमीय सीमा पर भारतीय सेनाएँ पडी हैं। उन स्थानो का हमने प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है। सैनिक छावनी तथा सैनिक प्रभाव क्षेत्र में जाने की सुविधा हमें मिल गयी थी। अतएव हमने उस क्षेत्र के स्थानो तथा जातियो का वर्णन किया है। तरंगिणी काश्मीर का भूगोल उपस्थित करती है। उसमे वर्णित स्थानो तथा जातियो के क्षेत्र मे गया हूँ। उनमे जिनका वर्णन नही है उन्हे भी देखा है। काश्मीर के पुराने लोगो तथा विद्वानो से सम्पर्क स्थापित कर सन्देहास्पद प्रश्नो के हल करने का प्रयास किया है।

श्री स्तीन के समय और आज के समय में बहुत अन्तर पड गया है। स्थानो का रूप बदल गया है। उन्हें पहचानना भी कठिन है। पुराने स्थानो पर नवीन निर्माण हो गये हैं। मैं प्रत्येक वर्णित स्थानो पर गया हूँ। उनमें श्री स्तीन काल से अब तक जो परिवर्तन हो गया है उनका उल्लेख किया है ताकि उनके पहचानने मे कठिनता उत्पन्न न हो सके।

ध्वंशावशेषो के शिला एवं प्रस्तर खण्ड उठाकर नवीन निर्माणो मे लगा दिये गये है। कितने ही तोड़कर गिट्टी बनाने के काम में लाये गये है। परिहासपुर, कल्हण की जन्मभूमि का ध्वंशावशेष इसका

ज्वलन्त उदाहरण है। साम्प्रदायिक उत्तेजना में कितनी ही मूर्तिया हटा दी गयी है। कितने ही स्थानो पर कब्जा कर उनके अस्तित्व का लोप कर दिया गया है। डोगरा राज्य काल में पुराने स्थानो के सरक्षण में जो प्रगति हुई थी उसका आज़ादी के पश्चात् लोप हो गया। कुछ स्थानो को पुरातत्व विभाग के आधीन कर उनकी रक्षा का प्रबन्ध निस्सन्देह किया गया है। अनेक स्थानो से शिला खण्ड तथा प्राचीन ईंटें निकाल ली गयी है। श्री स्तीन वर्णित परिचय में और वस्तुस्थिति में अन्तर मिलने का यही कारण है। तथापि हमने स्थानो पर जाकर अध्ययन कर वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डाला है। स्थानो के निवासी वृद्धो के द्वारा कुछ बातें मालूम हो सकी हैं। उन्हें यथास्थान लिख दिया है।

दशवर्ष के सयोजकत्व काल तथा लम्बे काल तक काग्रेस ससदीय दल के मन्त्री होने के कारण काश्मीर की दैनिक घटनाओ तथा अनुसन्धानो से सम्पर्क रखना पडा है। पाश्चात्य लेखको ने काश्मीर के भूपरिचय तथा स्थानो के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जिस समय उन्होने लिखा था उस समय साधन कम थे। उनमे तथा प्रस्तुत वर्णन में क्या अन्तर है, तथा वास्तविक स्थिति क्या है, उस पर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर हमने प्रकाश डाला है। कई स्थलो पर हमने नवीन स्थानो को खोज एव निष्कर्षों का प्रमाण भी उपस्थित किया है।

पाद-टिप्पणियो में स्थानो का परिचय उनका मूल तथा विकृत दोनो रूप दिया है। यह कार्य बिना स्थानों का प्रत्यक्ष दर्शन किये सम्भव नही था। जिस समय का इतिहास है उस समय काश्मीर की सम्पूर्ण जनता हिन्दू थी। उनके धार्मिक एव दैनिक जीवन से स्थानो का सम्बन्ध था। स्थानो का इतिहास वहाँ के निवासियो के वशीय इतिहास से मिल गया था। आज काश्मीर की ९० प्रतिशत जनता मुसलिम है। जो हिन्दू हैं वे प्राय नगरो के निवासी हैं। वे स्वय काश्मीर के अनेक स्थानो का इतिहास एव नाम भूल गये है। गुफायें, मन्दिर, मठ, शाला, जनाश्रय, विहार आदि ज़ियारत, मसजिद, मजार तथा अन्य स्थानो में प्राय परिणत कर लिये गये हैं। वे कभी हिन्दू स्थान थे, यह विचार वहाँ के लोगो को पसन्द नही आते। इसका मैंने पद-पद पर अनुभव किया है। वहाँ की मुसलिम जनता की प्रतिक्रिया अच्छी नही होती। प्राचीन गाथाओ के स्थान पर नवीन गाथायें उनके साथ जोडकर, उनके पुराने रूप को बदलकर, उन्हें नवीन जामा पहना दिया गया है। उनके मूल रूप का पता सस्कृत-साहित्य से ही मिलता है। इस समय रहन-सहन, समाज एव रुचि इतनी शीघ्रता से बदलती जा रही है कि लोग कुछ दिनो में बहुत कुछ भूल जायँगे, अतएव उन्हें लिपिबद्ध कर देना ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से परम आवश्यक है।

काश्मीर की सीमा पर, रामायण, महाभारत, पुराण, नीलमत तथा राजतरगिणी में वर्णित अनेक जातियाँ रहती थी। उन्हें कालान्तर में लोकोत्तर जातियाँ किंवा व्यक्ति मान लिया गया। यहाँ हमने प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर उनका स्थान निर्णय तथा परिचय दिया है। उनका उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है। वे जिन क्षेत्रो में रहते थे वहाँ मैं गया हूँ। उनमें समय व्यतीत किया है। परन्तु धर्म परिवर्तन के साथ अपना इतिहास भूल गया है। अभी तक प्रचलित कुछ रीति-रिवाजो के आधार पर हमने उनकी जानकारी प्राप्त की है। पाकिस्तान अधिकृत भू-भाग का प्रत्यक्ष ज्ञान नही हो सका है। उनका वर्णन ग्रन्थो के आधार पर किया गया है। वह ज्ञान अप्रत्यक्ष है।

मुझे प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के औचित्य के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नही है। स्तीन ने भौगोलिक नामो एव ऐतिहासिक उल्लेखो को स्पष्ट करने का प्रयास किया था किन्तु सास्कृतिक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन को भी समुचित महत्व तथा अवसर न दे सके। आश्चर्य है कि स्तीन के बाद भी किसी ने

राजतरंगिणी की सास्कृतिक सामग्री के भडार का समुचित शोधपूर्वक अध्ययन नही किया । इस प्रकार सभी दृष्टिकोणो को लेकर एक समग्र अध्ययन की आवश्यकता थी । इसीलिये मैंने यह ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव तुलनात्मक अध्ययन किया है ।

कल्हण की पूर्ण जीवनी नही मिलती । 'कल्हण' शीर्षक विवरण मे हमने कल्हण की जीवनी उपस्थित करने का प्रयास किया है । इसी सन्दर्भ मे हमने कल्हण के कवि और इतिहासकार दोनो रूपो का विवेचन भी किया है । इन दोनो रूपो मे ही किन पुराकालीन प्रभावों की छाप उन पर पडी, कल्हण का आदर्श एवं लक्ष्य क्या था और उन्हे इन क्षेत्रो में कितनी सफलता मिली आदि प्रश्नो का भी विचार हुआ है । प्राचीन भारत मे ऐतिहासिक साहित्य को परम्परा मे राजतरंगिणी का स्थान और महत्व निर्धारित करने का भी प्रयास हुआ है । राजतरंगिणी के तरंग प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय जिसे गाथा कालीन काल कहते है उनका यहाँ समावेश किया गया है । रामायण, महाभारत, पुराण, तथा तत्कालीन ग्रन्थो के आधार पर राजतरंगिणी के वर्णित इतिहास को क्रमबद्ध करने का प्रयास किया है । कल्हण का प्राचीन कालीन वर्णन रामायण, महाभारत, पुराण एव अन्य प्राप्य ग्रन्थो से कहाँ तक मेल खाता है और कहाँ तक प्रामाणिक है इसका विवेचन पाद-टिप्पणी मे किया गया है। सास्कृतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो से सम्बन्धित सामग्री और ऐतिहासिक एवं भौगोलिक सूचनाओ की अद्भुत रत्नराशि राजतरंगिणी मे मिलती है । पाद-टिप्पणी में इनका यथास्थान विशद विवेचन किया गया है । भूमिका रूप वाले इस अंश मे हमने इस अमूल्य सामग्री को विषय-क्रम से एकत्रित किया है जिससे कि इस अमूल्य ज्ञान-भण्डार का कुछ आभास हो सके और राजतरंगिणी के ऐतिहासिक महत्व को प्रस्तुत किया जा सके ।

रत्नाकर पुराण की कपोल-कल्पना जो हसन की तारीख तथा लुप्त राजाओं की तालिका का आधार है, उसे तर्क की तुला पर तौल कर उसकी अप्रामाणिकता सिद्ध की है । काश्मीर के इतिहास के सम्बन्ध में हिन्दू राज्य की समाप्ति से अब तक जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न की गयी है, और इतिहास को एक नया रंग क्यो दिया गया है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए वास्तविकता को प्रकट किया है ।

कल्हण द्वारा वर्णित घटनाक्रमो के साथ धार्मिक विकास, ह्रास, क्रान्ति, विप्लवों आदि का सक्षिप्त वर्णन कर, यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि घटनायें तत्कालीन जनता की मानसिक स्थिति को प्रकट करती है तथा जनता की मन स्थिति के कारण किस प्रकार घटनाये घटती है ।

भावानुवाद, छायानुवाद, सारानुवाद, शब्दानुवाद, अर्थानुवाद, भाषान्तर, रूपान्तर, अनुकरण, पुर्नसर्जन आदि अनेक अनुवाद की शैलियाँ प्रचलित है । हिन्दी में प्रथम अनुवाद 'प्रबोध चन्द्रोदय' (सन् १५४४) मल्ह कवि का मिलता है । यह सारकथन एवं आख्यान शैली का अनुवाद है । मध्ययुग के परवर्ती अनुवाद भाषान्तर है । आधुनिक काल में कतिपय अनुवादो मे मूल रचना का रूपान्तर किया गया है । स्व० श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कर्पूर मंजरी' (सन् १८७६ ई०) का साधारण रूपान्तर किया है । पराश्रयी रचनायें भी हिन्दी में की गयी है । यथा हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' (सन् १६२३ ई०) तथा बदरीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (सन् १९१२ ई०) है ।

यूरोप में मध्ययुग मे शब्दानुवाद शैली प्रचलित थी । बाइबिल का अनुवाद इसका एक उदाहरण है । अंग्रेजी के कवि श्री जान ड्राइडन ने शब्दानुवाद, भावानुवाद तथा अनुकरण (इमिटेशन) अनुवादो का वर्गीकणर किया है । महा कवि गेटे ने अनुवादों को परिचयात्मक (लूथर कृत बाइबिल) रूपान्तर (एडाप्टेशन) तथा पुन. सर्जन तीन वर्गो मे विभाजित किया है । समीक्षक बेनेडेट्टे क्रोचे का कहना है कि कामिनी के

समान यदि अनुवाद सुन्दर है तो सच्चा नही हो सकता और सच्चा है तो सुन्दर नही हो सकता। उसने उत्तम अनुवाद को मौलिक रचना के समान माना है। यह मौलिकता फिट्जेराल्ड के रुबाइयात उमर खय्याम में परिलक्षित होती है। इसी प्रकार स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित राखाल दास वन्द्योपाध्याय के 'करुणा' में मौलिकता का दर्शन होता है। श्री रामचन्द्र वर्मा का अनुवाद हिन्दू राजतन्त्र' श्री जायसवाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' का अनुवाद है। श्री जायसवाल ने स्वय स्वीकार किया था कि अनुवाद उनकी मूल पुस्तक से भी उत्तम है। क्रोचे कहता है कि अनुवाद मूल का पुन सर्जन नही है, किन्तु मूल की अभिव्यक्ति के सदृश अभिव्यक्ति का सृजन हो सकता है। विश्व मे सबसे अधिक अनूदित पुस्तक वाइविल है। उसका अनुवाद दूसरी शताब्दी ईसवी से अब तक विश्व की अनेक भाषाओ में होता चला जा रहा है। बाइविल की शैली धार्मिक ग्रन्थो मे अपनायी जा सकती है। परन्तु राजतरगिणी महाकाव्य है, ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसके अनुवाद की शैली काव्यमय एव ऐतिहासिक होनी चाहिये।

स्वर्गीय सर्वश्री योगेशचन्द्र दत्त, स्तीन तथा रणजीत सीताराम पण्डित का अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। श्री योगेश दत्त का अनुवाद सारानुवाद है। सर्वश्री स्तीन तथा पण्डित ने प्रत्येक श्लोक का अलग-अलग अनुवाद किया है। कही-कही अनुवाद को स्पष्ट करने के लिये तीन-चार श्लोको का अनुवाद एक साथ कर दिया है। श्री स्तीन का अनुवाद शब्दानुवाद तथा अर्थानुवाद के साथ बोधगम्य है। श्री पण्डित का अनुवाद साहित्यिक है। उसमें भाषा का प्रवाह है। कल्हण के अलकारो, उपमा एव रसो को अंग्रेजी भाषा मे व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अनुवाद शैली मे प्रत्येक पद जिसमें क्रिया मिल गयी है उसका अनुवाद एक ही पद में किया गया है। यदि क्रिया दूसरे पद में मिली है तो पद तोडकर अनुवाद किया गया है। जहाँ कल्हण ने युग्मम्, तिलकम् एव कुलकम् लिखा है वहाँ दो, तीन तथा चार श्लोको का भाव, अर्थ एव अनुवाद एक साथ रखने का प्रयास किया गया है। उसमे भी प्राय प्रत्येक श्लोक का अनुवाद अलग ही रखने का प्रयास किया गया है। श्लोक सख्या ९३ तक भावानुवाद, शब्दानुवाद तथा अर्थानुवाद का मिश्रण मिलेगा। उसके पश्चात् अनुवाद की शैली वदल दी गयी है। शब्दो के क्रिया, वचन एव लिंग का मूल रूप ही अनुवाद मे रखा गया है। प्रत्येक शब्द का अर्थ भाव के साथ किया गया है। अनेक सस्कृत शब्द जिनका हिन्दी में अनुवाद सम्भव नही था उन्हें यथावत रखकर उसका अर्थ पाद-टिप्पणी मे स्पष्ट किया गया है।

भारतीय भाषाओ की जननी सस्कृत है। कितने ही सस्कृत शब्द अप्रचलित हो गये हैं। कितनो का अर्थ आज वह नही है जो पूर्व काल में था। कितने ही अप्रचलित शब्दो का प्रयोग कल्हण ने किया है। शब्दो का अर्थ जो कल्हण के रचना काल मे था उन्हें रखने का प्रयास किया है। किसी भी मौलिक ग्रन्थ के अनुवाद के लिये लेखक के वातावरण, निवास स्थान, समाज, तत्कालीन भूपरिचय, इतिहास, कुल, विचार तथा कथा-प्रसग का ज्ञान होना आवश्यक है। इनका अध्ययन करने पर ही लेखक के मूल भाव की झलक मिल सकती है, उसकी आत्मा का दर्शन हो सकता है। कल्हण के निवास स्थान एव जिन स्थानो का उसने वर्णन किया है उन्हें हमने स्वय देखा है। वहाँ का अध्ययन किया है। अतएव अनुवाद करते समय सरलता का बोध हुआ है।

जिन स्थलो पर सर्वश्री स्तीन तथा पण्डित के अनुवादो से अनुवाद भिन्न किया है अथवा शब्दो का अर्थ भिन्न किया है, उनका उल्लेख पाद टिप्पणी में कर दिया है। इस प्रकार यह अनुवाद अर्थानुवाद, भावानुवाद तथा शब्दानुवाद के साथ वाक्यार्थ प्रधान हो गया है। अनुवाद की रोचकता बढ़ाने के लिये अपनी

ओर से कुछ जोडने का प्रयास नही किया है। अर्थ खोलने के लिये जहाँ शब्दो की आवश्यकता पडी है वहाँ उन्हें कोष्ठ में दे दिया है। रचनासौष्ठव अक्षुण्ण रखने के लिये कल्हण की रचना-शैली का अनुकरण किया है। प्रसाद गुण को यथावत रखने का प्रयास किया है। प्रसाद गुण का अनुवाद मे महत्वपूर्ण स्थान है। दुरूह स्थल तथा जहाँ भाव एव अर्थ समझने में कठिनाई हुई है अथवा जिस पद के दो अनुवाद हो सकते थे, उन्हे भी पाद टिप्पणी मे दिया है। मै स्वय संस्कृत का अधिकारी विद्वान नही हूँ। कठिनता का वोध होने पर संस्कृत के विद्वानो से सहायता ली है। अनुवाद तथा मूल सस्कृत श्री विश्वबन्धु के सम्पादकत्व में हुये राजतरगिणी के होशियारपुर संस्करण (स० १९६० ई०) पर आधारित है। पाठभेद भी उसी सस्करण से लिये गये हैं।

संक्षेप में, पाद टिप्पणी मे हमने पाठ भेद देने के बाद ऐतिहासिक एव सास्कृतिक महत्त्व की सभी सामग्रियो का विवेचन किया है। प्रयुक्त शब्द का अर्थ, उसकी उत्पत्ति एवं अन्य ग्रन्थो मे उसके उपयोग के विवरण देने के बाद हमने उनके वर्तमान रूप तक का इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस संबंध में हमने पुरातत्व की सामग्री, स्थानीय परंपराओ एवं अन्य प्रामाणिक ग्रन्थो का विधिवत उपयोग किया है। इन विवरणो में हमने सदैव ही ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण को अपनाने का प्रयत्न किया है। जिन विपयो के विवेचन मे विस्तार की अपेक्षा थी उन्हे सुविधा की दृष्टि से हमने परिशिष्ट मे रख दिया है।

आभार प्रकाश

इस शोध प्रबन्ध के लिये अनेक महानुभावो और पुस्तकालयो की सहायता प्राप्त हुई है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश आवश्यक है। ससदीय पुस्तकालय, नयी दिल्ली ने काश्मीर सम्बन्धी पुस्तको का संग्रह किया है। कितनी ही अप्राप्य पुस्तकें हमारे सुझाव पर विदेशो से मँगायी गयी है। काग्रेस ससदीय दल के पुस्तकालय में प्राय. सभी आधुनिक पुस्तकें खरीदी गयी है। उनसे विशेष सहायता मिली है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा संस्कृत विश्व विद्यालय, काशी में पुरानी तथा हस्तलिखित पुस्तको को देखने तथा अध्ययन करने का अवसर मिला है। मै सप्ताह मे दो दिन कलकत्ता रहता था। उस समय वग परिषद् पुस्तकालय में राजतरंगिणी के बंगला मूल तथा अनुवादो के साथ ही पुराणो के भी मूल तथा अनुवाद देखने तथा अध्ययन करने का अवसर मिला है। 'बम्बई सेन्ट्रल लाइब्रेरी' मे राजतरंगिणी की मराठी अनुवाद के साथ काश्मीर सम्बन्धी कुछ पुस्तकें मिली। वहाँ मास में एक बार नेशनल शिपिंग वोर्ड तथा मझगाँव डाक के सम्बन्ध में जाने का अवसर मिलता था। इस अवसर को मैंने उक्त पुस्तकालय में लगाया है।

नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी मे बंगला, अंग्रेजी तथा हिन्दी मे काश्मीर सम्बन्धी पुस्तको का अध्ययन किया है। उक्त स्थानो के अतिरिक्त श्री काशी विद्यापीठ पुस्तकालय मे कुछ दुर्लभ पुस्तकें प्राप्त हुईं। अडयार लाइब्रेरी अडयार, मदरास मे भी कुछ पुस्तकें देखने को मिली है। उदयपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय मे भी, जहाँ हिन्दुस्तान जिंक का चेयरमैन होने के कारण जाना पडता था, पुस्तको का अध्ययन किया है। रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय मे काश्मीर सम्बन्धी हस्तलिखित ग्रन्थो का उत्तम संग्रह है। वहाँ से तथा श्रीनगर राजकीय रिसर्च विभाग के संग्रह से भी सहायता ली है। काश्मीर सम्बन्धी ग्रन्थो का वहाँ उत्तम संग्रह है। प्रताप सिंह संग्रहालय, श्रीनगर में काश्मीर में उत्खनन कार्य में प्राप्त मूर्तियो का अच्छा सग्रह है। वहाँ की मूर्तियो के अध्ययन से काश्मीर की मूर्तिकला पर प्रकाश पड़ता है। श्री टी. एन. खजाची, पुरातत्व विभाग श्रीनगर का सहयोग प्राप्त होता रहा है।

उनसे दिल्ली तथा श्रीनगर दोनो स्थानो पर काश्मीर के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध मे चर्चा होती रही है। मेरे अन्वेषण कार्य के समय सर्वदा उन्होने मेरे साथ अपने विभाग के सहयोगियो को कर दिया था। उनके कारण काश्मीर के उन स्थानो को खोजने मे सहायता मिली जिन्हे सम्भवत अकेला मैं सरलता पूर्वक न खोज सकता था। श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद उन दिनो काश्मीर के मुख्य मन्त्री थे। उन्होने हमारी प्रत्येक यात्रा के समय कार, या जीप जैसी आवश्यकता होती थी दे देते थे। साथ ही साथ काम के अनुसार जानकार लोगो को स्थानो पर जाने के लिये साथ भेजते थे। जिन स्थानो पर जाता था वहाँ भी सरकार की तरफ से ठहरने आदि की व्यवस्था हो जाती थी। उनके सहयोग के कारण किसी भी गाँव अथवा अति दूर, कठिन स्थानो मे भी मुझे असुविधा नही हुई। मै उनका तथा जम्मू काश्मीर सरकार का अत्यन्त आभारी हूँ। 'सर्व भारतीय काशीराज न्यास' रामनगर दुर्ग काशी में पुराणो का अच्छा सग्रह है। शिवाला कार्यालय काशी में उनके मन्त्री रमेश चन्द्र दे के पास पुराणो के बगला तथा अग्रेजी अनुवादो का उत्तम सग्रह है। वहाँ से मुझे अपने अध्ययन के लिये सामग्री सर्वदा मिलती रही है। काशी के 'बग साहित्य' समाज में पुरातन पुस्तको का सग्रह है। वहाँ से मुझे श्री हीरालाल शास्त्री का बँगला अनुवाद मिल गया था। यह अनुवाद इस समय कलकत्ता आदि स्थानो में भी प्राप्त नही था।

काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० अमर चन्द्र जोशी जी तथा प्राचीन भारतीय इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर अवध किशोर नारायण का आभारी हूँ उनके कारण सर्वदा प्रेरणा तथा उत्साह हमे मिलता रहा है। विभाग के डॉ० लल्लन जी गोपाल का अत्यन्त आभारी हूँ जिनके निर्देशन मे मैंने यह कार्य सम्पन्न किया है। उनके सरल स्वभाव से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। उनके निवासस्थान पर कितने ही दिन बैठकर राजतरगिणी पर विषद् चर्चा हुई है। उनके महा प्रयास के कारण यह ग्रन्थ प्रस्तुत रूप प्राप्त कर सका है। वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। जाने अनजाने जिन महानुभावो से मुझे समय-समय पर सहायता मिली है उन्हे अंजलि-बद्ध प्रणाम करता हूँ।

सस्कृत मूल तथा अनुवाद विक्रम पचाग प्रेस, काशी तथा शेष परिशिष्ट आदि महावीर प्रेस वाराणसी, में मुद्रित हुआ है। विक्रम पचाग प्रेस के व्यवस्थापक श्री श्याम मूर्ति उपाध्याय तथा महावीर प्रेस के स्वामी श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल को उनके अथक परिश्रम के लिये धन्यवाद देता हूँ। श्री महादेव चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य तथा कृष्णदत्त द्विवेदी शास्त्री ने प्रूफ सशोधन जैसे कठिन कार्य को किया है। उन्हें धन्यवाद देता हूँ, बिना उनके सशोधन के यह कार्य सम्भव नही था। मैं प्राय प्रवास मे ही रहा हूँ अतएव स्वय प्रूफ आदि नही देख सका हूँ। अनेक सशोधन की त्रुटियाँ रह गयी हैं उनके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

—लेखक

संकेत-सूची

अ० = अध्याय
अ० = वेद, अथ० = अथर्ववेद
अनु० = अनुशासन पर्व (महाभारत)
अग्नि = अग्निपुराण
अर० = अरण्य काण्ड (रामायण)
अलवीरूनी = अलवेरूनीज इण्डिया,
आ० = आदि पर्व (महाभारत)
आश्व० = आश्वमेधिक पर्व (महाभारत)
उ० = उद्योग पर्व (महाभारत)
ऋ० = ऋग्वेद
क० = कर्ण पर्व (महाभारत)
कनिघम = कनिघमकृत एन्शेण्ट ज्योग्रेफी
कि० = किष्किन्ध्या काण्ड (रामायण)
कोल्स० = कौलकृत इलस्ट्रेशन आफ एन्शेन्ट विल्डिग आॅफ काश्मीर
कोवो० = नोट्स आॅन— टेम्पुल्स आॅफ काश्मीर
गणेश० = गणेश पुराण
गो० गृ० = गोभिल गृह्य सूत्र,
जादू० = नीलमत पुराण जादू, संस्करण, लाहौर
जोन० = जोन राजतरगिणी
जैन = जैन राजतरगिणी (श्रीवर कृत)
जै० ब्रा० = जैमिनीय ब्राह्मण
ट्रोयर = ट्रोवरकृत राजतरंगिणी अनुवाद
ड्रन्यू = ड्रन्यूकृत दी जम्मू एण्ड काश्मीर
तीर्थ० = तीर्थ संग्रह (साहिबरामकृत)
तै० आ० = तैत्तिरीय आरण्यक
तै० स० = तैत्तिरीय सहिता
दत्त० = जोगेशचन्द्र दत्त कृत किंग्स आॅफ काश्मीर
दे० भा० = देवी भागवत्
द्रो० = द्रोण पर्व (महाभारत)
नन्दि० = नन्दि पुराण
नील० = नीलमत पुराण
नागरी अंक = जादू संस्करण
रोमन अंक = ब्रोज सस्करण
पद्म० = पद्म पुराण
पंच विश = पच विश ब्राह्मण
पण्डित०=रणजीत सीताराम पण्डित कृत रा० अ०
पाणिनी = अष्टाध्यायी
वन० = वनपर्व (महाभारत)
वर्नियर=वर्नियर कृत ट्रेवेल्स इन मोगल इम्पायर
वा० रा० = वाल्मीकीय रामायण
अ०=अरण्यकाण्ड
उ०=उत्तरकाण्ड
कि०=किष्किन्धा काण्ड
यु०=युद्ध काण्ड
वाइन०=वाइन कृत ट्रेवेल इन कश्मीर लद्दाख इस्काई
वेट्स० = वेट्स कृत ए गजेटियर आफ काश्मीर
ब्रह्म०=ब्रह्म पुराण
ब्रह्म० वै०=ब्रह्म वैवर्त पुराण
वृ० उ० = वृहदारण्यकोपनिषद्
भ० = भविष्य पुराण
भा० = भागवत पुराण
भी० = भीष्म पर्व (महाभारत)
म०; महा०=महाभारत
मनु० = मनुस्मृति
माहा० = माहात्म्य
मार्क० = मार्कण्डेय पुराण
मूर क्राफ्ट० = मूर क्राफ्ट कृत ट्रेवेल इन हिमालयन प्रोविन्सेज आॅफ हिन्दुस्तान
मौ०=मौसल पर्व (महाभारत)
याज्ञ०=याज्ञवल्क्य स्मृति
योग०=योग वाशिष्ठ रामायण
रा० त०=राजतरंगिणी (कल्हण कृत)
लारेन्स० = लारेन्सकृत दी वैली आफ काश्मीर

लि०=लिंग पुराण
वराह = वराह पुराण
वा० स०=वाजसनेयिसंहिता
वायु० = वायु पुराण
विल्सन० = विलसनकृत हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर
व्रोज० = नीलमत पुराण रोमन, व्रोज संस्करण
विष्णु० = विष्णु पुराण
विष्णु० ध० = विष्णु धर्मोत्तर पुराण
व्हुलर० = रिपोर्ट जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ वम्बे स० ३४ १८७७
श० = = शल्यपर्व (महाभारत)
श० ब्रा० = शतपथ ब्राह्मण
शा० = शान्तिपर्व (महाभारत)
शि० = शिवपुराण
शि० श० = शिव शत रुद्र संहिता
शु० = शुक्रनीति
शुक० =
स० = सभापर्व (महाभारत)
स० सू० = सकल्प सूर्योदय नाटक
सहिता० = वृहद् संहिता
स्कन्द० = स्कन्द पुराण
स्तोन० = स्तीन एम० ए० द्वारा अनूदित कह्लण की राजतरंगिणी
हरिवंश० = हरिवंश पुराण
हि० = हिन्दी
हुगेल० = हुगेल कृत काश्मीर एण्ड दस रीच दर सीक
हुयेन्त्साग० = दी लाइफ ऑस हुयेन्त्साग



कल्हण

रचना : कल्हण के सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक तक प्राप्त हुई है, उससे अधिक इस दिशा में प्रगति नही हो सकी है। राजतरंगिणी, अर्धनारीश्वर स्तोत्र तथा जयसिंहाभ्युदय काव्य कल्हण से सम्बन्धित किये जाते है। राजतरंगिणी निस्सन्देह कल्हण की रचना है। अर्धनारीश्वर स्तोत्र के १८ श्लोको मे सात श्लोक राजतरंगिणी के सात तरंगों के मंगलाचरणो से लिये गये है। जयसिंहाभ्युदय काव्य अभी तक प्रकाश में नही आया है।

राजतरंगिणी के इतिपाठ तथा स्तोत्र के इतिपाठ में मौलिक अन्तर है। राजतरंगिणी के इतिपाठ मे कल्हण ने अपने को महाकवि नही लिखा है। केवल अष्टम तरंग के इतिपाठ में महाकवि शब्द आता है। परन्तु इसका पाठभेद अनेक प्राचीन प्रतियो में मिलता है। जिनमे महाकवि शब्द नही दिया गया है। प्रतीत होता है किसी श्रद्धालु लिपिक ने महाकवि शब्द उसके काव्य के विशाल रूप को देखकर अन्त में दे दिया है। सुयोग्य, विनयी एवं प्रतिभाशाली कवि चाहे कितना ही बडा क्यों न हो, वह अपनी लेखनी से अपने लिए महाकवि पद का प्रयोग नही करेगा। यह आत्मश्लाघा हो जाती है। अर्धनारीश्वर स्तोत्र उसकी स्वतन्त्र रचना है अथवा उसके श्लोको का संग्रह मात्र है अथवा किसी ने उसके पदो का संकलन कर उसे अर्धनारीश्वर स्तोत्र की संज्ञा दे दी है। यह विचारणीय विषय है।

जयसिंहाभ्युदय काव्य उपलब्ध नही है। केवल रत्नाकर के सार-समुच्चय में कल्हण की इस रचना का उल्लेख मिलता है। कल्हण की सूक्तियो के संग्रह का भी उल्लेख मिलता है। किन्तु वह राजतरंगिणी के आठो तरंगो के सुभाषितो का संग्रह मात्र है। यदि जयसिंहाभ्युदय काव्य प्रकाश मे आ जाय तो कल्हण के जीवन पर और प्रकाश पड़ सकता है। स्तोत्र तथा सूक्ति संग्रह का मूल स्रोत राजतरंगिणी है। स्तोत्र मे दिये गये इतिपाठ मे चम्पक महामात्य का नाम नही है। राजतरंगिणी के आन्तरिक लेखो के आधार पर अनुमान एवं निष्कर्ष निकाल कर, कल्हण के जीवन पर कुछ और प्रकाश डाल सकते हैं।

वंश · राजतरंगिणी के इतिपाठ से कल्हण के पिता का नाम महामात्य चम्पक प्रभु होना सिद्ध होता है। यद्यपि अर्धनारीश्वर स्तोत्र के इतिपाठ में कल्हण के वंश, पिता, पद, देशादि का नाम नही दिया गया है। इतिपाठ के अतिरिक्त कल्हण के वर्णन (रा० त० ७ : ९५४, १११७, १११८, ८ : २३६५) से प्रमाणित हो जाता है कि चम्पक कल्हण का पिता था। वह महामात्य था। राजमन्त्री था। समाज मे उच्च स्थान प्राप्त था।

कल्हण अपने चाचा कनक के विषय मे भी सूचना देता है। (रा० त० १११७–१११८) वह चम्पक का कनिष्ठ भ्राता था। कनक काश्मीर राज हर्ष का प्रियपात्र था। शिष्य था। राजा से सपरिश्रम गान विद्या सीखा था। राजा हर्ष सर्वश्रेष्ठ गायक, गीतकार एवं संगीत शास्त्र पारंगत था। कनक के परिश्रम एवं संगीत में श्रेष्ठता प्राप्त करने के कारण, राजा हर्ष ने उसे एक लाख स्वर्ण मुद्रा दिया था। कनक का राजा पर स्नेहयुक्त प्रभाव था।

कल्हण का गृह, गान-वादन, राग-रागिनी, ताल-लय समन्वित पदों एवं गीतों से गुंजित रहता था। कल्हण के पदों में माधुर्य एवं ताल-लय की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित मिलती है। उसका पद

कही भी पद लालित्य से रहित नही है। उसके शब्दो का चयन, संकलन, निबन्धन एवं उनकी ध्वनि श्रोत-प्रिय है। कही भी इस गति में अवरोध किंवा विशृंखलता नही मिलती।

जन्मस्थान कल्हण का जन्म परिहासपुर मे हुआ था। उसका कुल परिहासपुर निवासी था। कल्हण ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। जिस समय राजा हर्ष परिहासपुर के प्रसिद्ध विहार-स्थित बुद्ध की विशाल प्रतिमा खण्डित करना चाहता था, तो परिहासपुर के कनक तथा एक श्रमण कुशलश्री के कारण अपने अनुचित कार्य से विरत हो गया। प्रतिमा की रक्षा हो गयी। (रा० त० ७ १०९७) इससे दो बातें स्पष्ट होती है। कनक परिहासपुर निवासी था। कल्हण का कुटुम्ब परिहासपुर में रहता था। अतएव कल्हण का जन्म परिहासपुर में होना मानना उचित होगा।

कल्हण ने परिहासपुर का स्पष्ट और विस्तृत प्राकृतिक वर्णन किया है। यह वर्णन वहाँ का निवासी ही कर सकता है। परिहासपुर समीपस्थ वितस्ता-सिन्धु सगम प्रयाग (वान्दीपुर) का विषद वर्णन भावमयी भाषा में कल्हण ने किया है। वहाँ के स्थान, मन्दिर आदि का सुस्पष्ट, वास्तविक विस्तृत वर्णन प्रसंग आते ही किया है। दूसरो के लिये यह सम्भव नही था। (रा० त० ४ १९४, २०४, ७ १३२६, १३४४; ५ ९७-१००) परिहासपुर, प्रयाग तथा वान्दीपुर मैं चार बार जा चुका हूँ। वहाँ का जो वर्णन राजतरगिणी में मिलता है वह अक्षरश 'सत्य है।

जाति कल्हण की जाति ब्राह्मण थी। उसे अपने ब्राह्मणत्व का गर्व था। कल्हण ने अपनी जाति स्वय कही नही लिखी है। वह ब्राह्मण था। यह प्रश्न विवादास्पद इसलिए नही रह जाता कि द्वितीय राजतरगिणी के लेखक जोनराज ने उसे 'कल्हण द्विजा' लिखा है। (जो० रा० ५) जोनराज ने कल्हण के वशजो के लिए पुन 'ब्राह्मणान्' 'ब्राह्मण्यान्' 'ब्राह्मण्यात्' विभिन्न पाठभेदो के साथ उल्लेख किया है। (जो० रा० ९९)

शुक ने अपनी राजतरगिणी मे 'श्री कल्हण द्विज' लिखा है। (शुक रा० ५) कल्हण ने सन् ११५० ई०, जोनराज ने सन् १४४६ ई०, तथा शुक ने सन् १५८६ ई० मे अपनी रचनाओ का लेखन-कार्य समाप्त किया था। इस प्रकार कल्हण के रचना काल से आगामी ४३६ वर्षो तक कल्हण तथा उसके वशजो को द्विज किंवा ब्राह्मण माना जाता रहा है।

द्विज शब्द ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य यज्ञोपवीतधारी के लिए निर्देश किया गया है। किन्तु द्विज के साथ ब्राह्मण शब्द का प्रयोग कल्हण की जाति निश्चित कर देता है। आजकल द्विज शब्द ब्राह्मणो के लिए रुढ हो गया है। कल्हण को काश्मीरी ब्राह्मण होने का इतना गर्व था कि (रा० १ १६०) उसने गान्धार ब्राह्मणो को द्विजाधम तक लिखा है (रा० १ ३०७, ४३६, ११५०) तथापि उसने आर्यदेशीय ब्राह्मणो के लिए आदरसूचक शब्दो का प्रयोग किया है। वह ब्राह्मणो को पवित्र तथा सनातनी देखना पसन्द करता था। ब्राह्मणो के अनुचित कार्यो की उसने निन्दा की है। (१ १५८)

जन्म वर्ष कल्हण के पिता चम्पक का सन् ११३६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है। कल्हण ने सन् ११४८-११४९ ई० में राजतरगिणी की रचना प्रारम्भ किया था। कल्हण ने स्वयं, अथवा मंख अथवा किसी अन्य तत्कालीन अथवा परवर्ती लेखक ने इस विषय पर प्रकाश नही डाला है। राजतरंगिणी के आन्तरिक साक्ष्य से ही उसका सम्भाव्य जन्म वत्सर निकालना होगा।

कल्हण की शैली से प्रकट होता है, वह तरगिणी रचना काल में प्रौढ व्यक्ति था। उसका मस्तिष्क प्रौढ था। उसका विचार प्रौढ था। उसका शरीर प्रौढ था। राजा सुस्सल के पुनर्राज्य प्राप्ति के पूर्व

भिक्षाचर के सैनिकों के विश्वासघातक कार्यों का प्रत्यक्षदर्शी था। 'यह घटना सन् ११२१ ई० की है। (रा० ८ : ९४१) उसने राजा सुस्सल (सन् १११२–११२० ई०) के पूर्ववर्ती तीन राजाओ का आँखो देखा वर्णन किया है। यहाँ उसकी शैली घटना-क्रमो को एक के पश्चात् दूसरे को इस द्रुत गति से रखती है, जैसे कोई उन घटनाओ को स्वत. देखकर लिख रहा था। वह किंचित् मात्र कही भी अपनी लेखनी को ठहरने नही देता। शब्द नही खोजता। कडी नही जोडता। वह शीघ्रातिशीघ्र सब कुछ वर्णन कर देने के लिए उतावला हो उठता है। घटनायें जैसे स्वत· एक के पश्चात् दूसरी उसकी लेखनी से प्रसूत होती गयी है। घटना-क्रमो के मूल को जान लेता है। परिस्थितियो का रहस्य समझ जाता है।

कल्हण का पिता चम्पक सन् १०९८ ई० मे० द्वारपति के पद पर था। राजा हर्ष ने उसे मण्डलेश भी बनाया था। निःसन्देह चम्पक इस समय प्रौढ व्यक्ति था। दोनो पद काश्मीर में सर्वश्रेष्ठ उत्तरदायित्व के थे। वे अनुभवी तथा प्रौढ बुद्धि वाले व्यक्ति को दिये जाते थे, जो उनकी गुरुता का अनुभव कर सकता था। यदि चम्पक का अवसान काल सन् ११३६ ई० मान लिया जाय तो यह समय सन् १०९८ ई० के लगभग पडता है। अर्थात् वह ३८ वर्ष की आयु तक द्वारपति एवं मण्डलेश हो चुका था। श्री स्तीन का मत है कि कल्हण का जन्म ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे रखा जा सकता है।

चम्पक किसी युद्ध में हत नही हुआ था। यदि वह अकाल मृत्यु किंवा किसी संघर्ष में हत किंवा आहत होता तो कल्हण उसका अवश्य वर्णन करता; क्योकि कल्हण ने उसे राजनीति एवं संघर्षो में सक्रिय भाग लेते हुए चित्रित किया है। निश्चय ही चम्पक अपनी मृत्यु से दिवंगत हुआ था। यदि सन् १०९८ ई० में उसकी आयु ३८ वर्ष कम से कम मान ली जाय तो सन् ११३६ ई० मे उसकी आयु ६८ वर्ष की ठहरती है। इस आन्तरिक साक्ष्य के अनुसार कल्हण का जन्म सन् १०९८ ई० के समीप रखा जा सकता है। श्री स्तीन के मत मे तथ्य है कि कल्हण का जन्म ग्यारहवी शताब्दी के प्रारम्भ में रखा जा सकता है।

कनक : उच्चल तथा सुस्सल भ्राता द्वय काश्मीर राज्य प्राप्ति हेतु कृत-संकल्प हो गये थे। उच्चल के कारण राजा हर्ष की अमानुषिक क्रूरता को भी लज्जित करने वाली हत्या की गयी। (रा० ७ . १७११, १७१२) राजा हर्ष का मुण्ड काटकर उच्चल के पास भेजा गया। मुण्ड को लगुडा पर खोसकर चारो ओर घुमाया गया। (रा० ७ . १७२१, १७२३) राज्य प्राप्ति के प्रश्न को लेकर दोनो भाई उच्चल तथा सुस्सल में भी सघर्ष आरम्भ हो गया। उस समय सभी अनुचर सात दिनों तक मार्ग मे रोक दिये गये। कल्हण का संगीतज्ञ चचा कनक भी उसी रुके समुदाय मे था। अवसर पाते ही वह समुदाय से निकल भागा। कनक अपने गुरु तथा राजा हर्ष के दु.खद अन्त से इतना खिन्न हो गया कि काश्मीर मण्डल त्याग दिया। वाराणसी मे काशीवास करने लगा! (रा० ८ . १२, १३) काशी किंवा वाराणसी के इस सम्बन्ध के कारण कल्हण ने राजतरगिणी मे काशी का अत्यधिक वर्णन'किया है।

चम्पक : प्रथम तरंग से षष्ठ तरंग के इतिपाठ के अतिरिक्त कल्हण ने प्रथम वार चम्पक का सहसा उल्लेख नन्दि क्षेत्र यात्रा के प्रसंग में किया है। कल्हण की यह शैली है। जब वह किसी व्यक्ति का उल्लेख करता है तो उसके पद, वंश आदि का उल्लेख करता है। यहाँ चम्पक का विना किसी पक्ष आदि के वर्णन करना महत्त्व रखता है। वह मान लेता है कि लोग उसके पिता के सम्बन्ध मे जानकारी रखते थे। कुछ विद्वानो का यह मत है कि यह वर्णन इस वात का प्रतीक है कि उसने अपने समय के लोगो के लिए राजतरंगिणी लिखी थी।

कल्हण स्वयं अपने पिता के साथ नन्दि क्षेत्र की यात्रा में प्रतिवर्ष जाता था। (रा० ७ ९५४) वहाँ उसके पिता प्रचुर धन दान करते थे। (रा० ८ २३६५) कल्हण के पिता निसन्देह सन् ११३६ ई० तक जीवित थे। कल्हण ने जून सन् ११४८ ई० में रचना-कार्य आरम्भ किया था। सन् ११५० ई० में राजतरगिणी का रचना-कार्य समाप्त किया। मालूम होता है, पिता की मृत्यु के पश्चात् उसने रचना में हाथ लगाया था।

कल्हण ने तरग सात की सामग्री पिता चम्पक तथा चाचा कनक से प्राप्त की थी। वे तत्कालीन घटनाओ के प्रत्यक्षदर्शी थे। राजा जयसिंह ने सन् ११२८ से ११५६ ई० तक राज्य किया था। राजा जयसिंह के जीवन काल मे उसने रचना समाप्त की थी। (रा० ८ ३४४४–३४४६) वह स्वय २२ वर्षो के राज्य काल तथा घटनाओ का प्रत्यक्षदर्शी था। वह उस समय युवक नही था। उसने रचना-काल स्वय शक सम्वत् १०७१ दिया है। यह काल सप्तर्षि किंवा लौकिक सम्वत् से ४२२४ वर्ष होता है। इसी से शक तथा लौकिक सम्वत् की गणना का सूत्र मिलता है। सन् ईस्वी के अनुसार यह समय सन् ११४८ ई० आता है। लेखन समाप्ति लौकिक सम्वत् ४२२५ मे किया था। यह समय सन् ११४९–११५० ईस्वी होता है। (रा० त० १ ४४–५३, ८ ३४०४) कल्हण ने जिस समय रचना-कार्य समाप्त किया था, उस समय राजा जयसिंह के राज्यकाल का २२ वाँ वर्ष था। राजा जयसिंह के शेष ९ वर्षो का वर्णन द्वितीय राजतरगिणी के लेखक जोन राजा ने किया है। जयसिंह फाल्गुन वदी १५ लौकिक सम्वत् २४०३ मे राज्यारोहण किया था।

मान लिया जाय कि रचना के समय कल्हण की आयु ४० वर्षो की थी, तो निसन्देह उसने तरग आठ की घटनाओ का आँखो देखा वर्णन किया है। तरग आठ का समय केवल ४८ वर्षो का है। तरंग सात का काल लौकिक सवत् ४०७९ से आरम्भ होकर लौकिक सवत् ४१७७ में समाप्त होता है। यह मध्यवर्ती समय ९८ वर्ष होता है। कल्हण ने पिता चम्पक का वर्णन राजा हर्ष के काल मे सक्रिय कार्य करते हुए किया है। इसी समय कनक भी राजनीति में सक्रिय दिखाई देता है। तरग सात की समस्त सामग्री उसने पिता चम्पक तथा कनक तथा तत्कालीन जीवित प्रत्यक्षदर्शी वृद्धो से लिया है। यही कारण है कि तरग सात में वह छोटी-छोटी घटनाओ का क्रमवद्ध इतिहास प्रस्तुत करता है। तरग आठ मे और भी छोटी-से छोटी घटनाओ और सूक्ष्म से भी सूक्ष्म वातो का विस्तृत वर्णन करता है।

तरग सात के ९८ वर्षो का इतिहास कल्हण ने १७३२ श्लोको में किया है, किन्तु तरग आठ के ४८ वर्षो का इतिहास ३४४९ श्लोको में करता है। राजतरगिणी में कुल ७८२६ श्लोक है। इसमें प्रथम से षष्ठ तरगो का वर्णन ३०४५ श्लोको में किया गया है। केवल दो तरगो सात एव आठ का वर्णन ५१८१ श्लोको में किया जाता है। महाभारत काल से षष्ठ तरगो का वर्णन उसने तत्कालीन प्राप्य ग्रन्थो प्रशस्ति पत्रो, जन-श्रुतियो, प्राचीन कथानको, परम्पराओ आदि के आधार पर किया है।

चम्पक साधारण व्यक्ति नही था। वह महामात्य था। द्वारपति था। मण्डलेश था। अपने उत्तरदायित्वो का जिम्मेदारी के साथ निर्वाह किया था। दुग्घघात दुर्ग दरदो के अधिकार में था। दरदो ने दुग को केन्द्र वनाकर काश्मीर मण्डल के अनेक ग्रामो पर अधिकार कर लिया था। महत्तम सहेल ने राजा को सलाह दिया कि दुर्ग घेर लिया जाय। द्वारपति चम्पक को दुर्ग घेरने और विजय करने का भार सौंपा गया। चम्पक प्रस्थान करने ही वाला था कि वातगण्ड, जिसे राजा ने द्वारपति के पद से हटा दिया था और जो चम्पक से ईर्ष्या करता था राजा हर्ष को अभियान से विरत कर दिया। तथापि चम्पक ने मधुमती नदी पार कर अपने सैनिको को दुर्ग में प्रवेश करा दिया। (रा० त० ७ ११७६-११७९)

अन्य स्थान पर राजा हर्ष को मन्त्रणा देते हुए चम्पक का उल्लेख किया गया है। उसने राजा हर्ष को सलाह दिया—'या तो युद्ध कीजिये अन्यथा लोहर रक्षा की दृष्टि से चले जाइये।' राजा के अनुचर प्रयाग ने राजा को मन्त्रणा दी कि वह युद्ध की अपेक्षा लोहर रक्षा हेतु चला जाय। राजा हर्ष स्वयं उच्चल से युद्ध करता वीरगति प्राप्त करना चाहता था। राजा के कायर पदाति सैनिक राजा के इस विचार के विरोधी थे। अनन्तपाल आदि राजपुत्रो की मन्त्रणा पर राजा अग्रसर होता था परन्तु दण्डनायक मार्गविरोध कर देते थे। चम्पक युद्ध का पक्षपाती था। राजभक्त था। चपक की बात राजा ने नही मानी। परिणाम राजा का दु खद अन्त हुआ।

युवराज भोजदेव जब प्रस्थान कर गया तो राजा उसके वियोग मे दु खी हो गया। राजा हर्ष ने चंपक को युवराज का पता लगाने के लिए कहा। राजा का आदेश सुनकर चपक स्तब्ध हो गया। लबी साँस लेकर कहा—'मेरे चले जाने पर आपका एकमात्र अनुचर प्रयाग आपके साथ रह जायगा। ऐसी परिस्थिति मे आप मुझे अपने पास अपनी रक्षा के लिए रहने दीजिये।'

राजा ने अश्रुपूर्ण नेत्रो से चपक की ओर देखा। राजा जानता था। चपक एवं युवराज भोजदेव मे एक अश्वनी को लेकर विवाद हो गया था। राजा ने व्यगपूर्वक—उत्तर दिया—'चंपक तुम कृतघ्न नही हो। ऐसे काल मे तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यो करते हो?' इस स्थान पर राजा ने चंपक का संबोधन मंत्री रूप से किया है। इससे प्रतीत होता है कि चपक ने मंत्री पद पर भी कार्य किया था। राजा की बात सुनकर चंपक लज्जित हो गया। उदास मन युवराज भोज का पता लगाने के लिए चल पडा।

चंपक ने जिस समय प्रस्थान किया उस समय उसके साथ दो भाई, भृत्य, शेषराज आत्मज के साथ पचास अश्वारोही थे। किन्तु नदी पार पहुँचते-पहुँचते यह सख्या केवल पाँच रह गयी। उसके दोनो भाई शेषराज आत्मज तथा अश्ववार सडक पर घोडो के मरने के कारण गिर गये। वहाँ चपक केवल धानक के साथ घूमने लगा। युवराज भोजदेव का बिना पता लगाये वह लौटना नही चाहता था। वह भ्रमण करता सायंकाल वितस्ता सिन्धु के संगम पर पहुँच गया।

इस उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती है। चम्पक के दो भाई थे। वह मन्त्री था। कुशल सैनिक था। साहसी था। राजा का विश्वासपात्र था। कृतघ्न नही था। कल्हण ने अपने पिता चम्पक के दोनो भाइयों का नाम नही दिया। केवल कनक का अपनी रचना मे उल्लेख किया है। श्रीनगर का राज्य हर्ष ने त्याग किया तो उसके साथ उसका पुराना भृत्य प्रयाग रह गया था। राजा के शरीर पर केवल एक वस्त्र था। वह अत्यन्त हीन एव विपन्नावस्था मे था। राजा की यह करुण ने स्थिति देखकर, चम्पक का भृत्य जेलक भी राजा के साथ हो गया। राजा के अन्तिम काल मे स्वामिभक्त चम्पक क्यो नही उपस्थित था इसका स्पष्टीकरण कल्हण ने स्वयं किया है। राजा ने उसे युवराज को खोजने के लिए भेज दिया था।

जेलक के उद्धरण से यह बात प्रकट होती है। कल्हण का समस्त परिवार सभृत्य स्वामिभक्त था। उसके कुटुम्ब तथा राजा के कुटुम्ब का घर जैसा पारस्परिक व्यवहार था। वे एक कुटुम्ब के प्राणी दु ख-सुख दोनो मे थे। (रा० त० ७ : १५८६–१५९२)

कल्हण का कुल अभिजात था। राज्य मे प्रतिष्ठा प्राप्त था। राजवंश का विश्वासपात्र था। अतएव तरंग सात मे वर्णित राजाओ का इतिहास सप्रमाण है। चम्पक, कनक तथा उसका कुटुम्ब उसके प्रत्यक्षदर्शी थे। इतिहास लिखने की समग्र सामग्री उसे राज्य के कागज-पत्रो के साथ सरलता पूर्वक उपलब्ध थी। इतिहास लिखने के लिए साधन सम्पन्न था। उसने अपने को इस प्रकार उस समय का व्यक्ति प्रमाणित किया है।

धर्म कल्हण शैव था। शिव भक्त था। काश्मीरी सामान्यत शिव उपासक एवं पूजक होते हैं। कल्हण उसका अपवाद नही था। किन्तु बौद्ध धर्म का भी वह प्रशसक था। बुद्ध-दर्शन का उसपर प्रभाव था। शिव भक्ति तथा मत का अत्यधिक वर्णन कल्हण ने किया है। उसके पश्चात् उसने बुद्ध धर्म को ही स्थान दिया है। उसके पिता प्रतिवर्ष नन्दिक्षेत्र की तीर्थ यात्रा के लिए जाते थे। कल्हण भी पिता के साथ जाता था। वहाँ नन्दि पुराण भक्ति के साथ सुनता था। भूतेश्वर के पवित्र वातावरण में, मन्दिरो की सुन्दर शृखलाओ के मध्य, सोदर तीर्थ का जल सेवन करते, प्रकृति के शान्त, गम्भीर, सुरम्य, हरित वातावरण में वह शैवदर्शन एव शिव सम्बन्धी कथादि सुनता था। इस वातावरण का सस्कार बाल्यकाल से ही उस पर पडा था। उसने शैव दर्शन के आचार्य भट्ट कल्लट का नाम आदर एव श्रद्धा के साथ लिया है। कल्लट ने काश्मीर में शैव शास्त्र का प्रचार किया था। (रा० ५ . ६६)

शिवभक्त राजाओ का जहाँ भी कही कल्हण ने वर्णन किया है उसकी लेखनी से उनके लिए श्रद्धा-भक्ति प्रकट हुई है। जलौक (रा० त० ३३५-३३८) विजय (रा० २ १) सन्धि मति (रा० २ ६५) इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्होने शैव मत का प्रचार किया था। शिव-पूजक थे। कल्हण ने स्वर्ग प्राप्ति किंवा किसी पुण्य लोक में जाने की अपेक्षा शिव सायुज्यता को प्राथमिकता दी है। (रा० १ १५२) शिव मन्दिरो में शिव के सम्मुख नृत्य-गान का वर्णन ललित पदो में किया है। (रा० १ १५१, १५४, २७६, २८०)

रावण शिव भक्त था। शेष भारत में वह अत्याचारी, कुमार्गी एव राक्षस रूप में चित्रित किया गया है। किन्तु कल्हण शिव भक्त होने के कारण रावण के लिए अशोभनीय शब्दो का प्रयोग नही करता। भारत में शायद ही कोई रावण नाम अपने पुत्र का रखता है। काश्मीर में रावण नाम के अनेक राजा हुए है। शिव उपासक होने के कारण रावण के प्रति शिवभक्त काश्मीर की जनता ने घृणा नही प्रकट किया है। शिव की रावण पर कृपा थी। इस मान्यता की वृद्धि के लिए रामायण कालीन रावण द्वारा पूजित शिव-लिंग काश्मीर में स्थापित करने की चर्चा कल्हण करता है। (रा० ३ ४४,)

शिव का प्रतीक शिव लिंग है। शिवलिंगो की स्थापना एव उनकी पूजा का उल्लेख करते, कल्हण थकता नही। राजा सन्धि मति ने महालिंगो, महा वनो, महा वृक्षो तथा महा त्रिशूलो से काश्मीर मण्डल को आच्छादित कर दिया था। इस स्थल का वर्णन अतीव श्रद्धा एव वन्दनामय वाणी में किया गया है। (रा० २ १३३)। शिव भक्त का रूप भी कल्हण ने खीचा है। भस्मस्मेर जटाजूट धारी, अक्ष सूत्र धारी, एवं रुद्राक्ष अकित उन्हें चित्रित किया है। (रा० २ १२७-१७६)

स्मशानेश्वर शिव है। योगीश्वर शिव हैं। कल्हण स्मशान का वर्णन करते हुए वहाँ सन्धीश्वर स्थापना का उल्लेख करता है। (रा० २ . १३४) प्रतिमा लिंगो की स्थापना की भी चर्चा करता है। (रा० २ १३५) शिव की अर्चना (रा० २ ११४, १३८) भूतभावन की प्रसन्नता (रा० २ १५३) भूतमर्ता अर्थात् भूतेश किंवा नन्दीश पूजा तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। (रा० २ १६६) शिव-भक्तो के वर्णन में वह तल्लीन हो जाता है। वह कहता है—'पशुपति के पाद मूल में जो जाता है, उसे भस्म मिलता है। और जो शिव उपासक वृषभ की सेवा करता है, उसे सुवर्ण की प्राप्ति होती है।' कल्हण यहाँ पर शिवभक्तो का स्थान बहुत ऊपर उठा देता है। (रा० ३ · १९९)

कल्हण ने सम्पूर्ण राजतरगिणी में भगवान् बुद्ध के प्रति अनुपम आदर एव श्रद्धा प्रदर्शित की है। अशोक से लेकर उसके काल तक जिन राजाओ ने बुद्ध विहार, स्तूप तथा चैत्यादि निर्माण कराया था उनका

नाम एवं स्मरण श्रद्धा-भक्ति के साथ कल्हण ने किया है। उसने उक्त निर्माणों को कश्मीर मण्डल मे खोज-खोजकर, शिव मन्दिरो के समान लिखा है। राजाओ के अतिरिक्त यदि किसी अन्य व्यक्ति ने भी विहार, चैत्य, स्तूपादि का निर्माण कार्य किया था तो उसका भी सादर उल्लेख किया है। उनपर चढाये अग्रहारो एवं दान कर्मों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

धर्म विश्वास में कल्हण ने कट्टरता कही नही प्रदर्शित की है। उसने शैव एव बौद्ध धर्म को परस्पर विरोधी नही माना है। दोनो का उपासक होने के कारण उन्हें एक दूसरे का पूरक माना है। सहायक माना है। बुद्ध को अन्य अवतारो के समान अवतार मान कर वन्दना की है। बौद्धो के प्राबल्य को रोककर जलौक ने शैव धर्म के पुनर्स्थापन के लिए प्रयास करते हुए विहारो तथा बौद्ध धर्म-स्थानो को क्षति पहुँचाने का प्रयास किया तो जलौक का विचार नाटकीय ढंग से कल्हण बदल देता है। उसने शिव के साथ बोधिसत्व के प्रति भी रुचि राजा में उत्पन्न होने की कथा कही है। जलौक से विहार-निर्माण भी करा देता है।

धार्मिक रुचि कल्हण की इससे प्रकट होती है कि वह मेघवाहन को आदर्श किंवा अनुकरणीय राजा मानता है। मेघवाहन विश्वविजय द्वारा अहिंसा का प्रचार करना चाहता था। उसने धुर दक्षिण भारत तक विजय कर राजाओ से अहिंसक होने की प्रतिज्ञा करायी थी। दिग्विजय के स्थान पर मेघवाहन धर्म-विजय किया था। मेघवाहन पशुबलि के स्थान पर, पशु की रक्षा के लिए स्वयं अपनी बलि चढाने के लिए वारंवार उद्यत हो गया था। कल्हण ने अहिंसा व्रत का ओजमयी भाषा मे वर्णन किया है। कल्हण प्रतीत होता है, शाकाहारी था। उसने प्याज तथा लहसुन भोजी ब्राह्मणो की निन्दा की है।

अहिंसा व्रत एवं अहिंसक भावना का अवसर मिलते ही सबल भाषा में उल्लेख करता है। भगवान् बुद्ध की प्रतिमा राजा हर्ष जिस समय परिहासपुर मे खण्डित करना चाहता था तो उसके चाचा कनक ने राजा को इस अनुचित कार्य से विरत किया था। बौद्धमतानुयायी दूसरो का मारा मास निःसंकोच खा लेते हैं। परन्तु कल्हण इसको उचित नही मानता। वह एक शुद्ध ब्राह्मण के समान शाकाहारी था। यद्यपि काश्मीर में आमिष भोजियो की संख्या सर्वाधिक सर्वदा से रही है।

कल्हण ने बौद्ध धर्म सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया है। इससे प्रकट होता है कि उसने त्रिपिटको का अध्ययन किया था। कल्हण ने बौद्ध दर्शन, परम्परा, शासन तथा उसकी पद्धतियो का पूर्णतया अध्ययन किया था। अन्यथा वह साधिकार विश्वास के साथ लिखने मे सफल न होता।

समकालीन व्यक्ति . कल्हण ने तत्कालीन समाज तथा व्यक्तियो का वर्णन बडी निष्ठा के साथ किया है। रिल्हण राजा जयसिंह का अमात्य था। (रा० ८ २४०३) वह राजा सुस्सल का भी विश्वासपात्र था। कल्हण राजा जयसिंह को विद्या का संरक्षक कहता है। रिल्हण, उसके भ्राता, उसकी पत्नी के दान तथा स्थान-स्थान पर उसके सैन्य चातुर्य और वीरता का वर्णन किया है। (रा० ८ : २४०५–२४१८) सुरेश्वरी क्षेत्र में रिल्हण ने अनेक पुण्य-कार्य किये थे। कल्हण उसका विषद वर्णन करता है। उसकी प्रशस्ति सरल भाषा मे किया है। प्रतीत होता है कल्हण का उससे व्यक्तिगत स्नेह था। (रा० ८ : ३३६४–७०)।

दूसरा प्रमुख व्यक्ति अलंकार था। वह राजा जयसिंह के उत्तरार्ध राज्य काल में गंजाधिप था (रा० ८ : २४२३)। उसका भी कल्हण ने आदर के साथ उल्लेख किया है। कवि मंख का वर्णन कल्हण ने एक काव्यकार की दृष्टि से नही वल्कि राजा जयसिंह के सन्धि-विग्राहक के रूप में किया है। (रा० ८ : ३३५४)

गजाधिप अलकार का मंख भ्राता था। मंख ने अपने काव्य में अपने भाई को विद्वानो तथा कलाविदो का सरक्षक कहा है। मख का केवल एक बार उल्लेख कल्हण ने किया है। यह भी श्रीकण्ठचरित काव्य के रचनाकार के रूप में। (रा० ८ ३३५४) कल्हण ने द्वारपति उदय का भी उल्लेख किया है। किन्तु उसके प्रति विशेष आदर प्रकट नही करता। एक व्यक्ति का नाम उसने और आदर के साथ लिया है। उसका नाम है, राज बदन। (रा० ८ २६९८) राज बदन ने राजा जयसिंह के विरुद्ध विद्रोह किया था। अन्य नामो का भी उसने उल्लेख किया है, परन्तु उनका विशेष महत्व नही है।

कल्हण और मंख तत्कालीन लेखको मे कल्हण का उल्लेख केवल मख ने कल्याण नाम से किया है। जबकि कल्हण ने 'मख' शुद्ध और प्रचलित नाम लिखा है। यह एक विचित्र बात है। लेखको, कवियो तथा विद्वानो का उनके जीवन-काल में कम आदर-सत्कार देखा गया है। कल्हण इसका अपवाद नही था। डाक्टर व्हुलर के अनुसार मख ने श्रीकण्ठचरित महाकाव्य की रचना सन् ११२८-११४४ ई० के मध्यवर्ती काल में किया था। सन् ११४४ ई० के दो प्रमाणों से निश्चित हो जाता है। अलंकार के निवास-स्थान पर एक सभा हुई थी। अतिथियो में कन्नौज के राजा गोविन्द चन्द्र का दूत सुहले भी उपस्थित था। राजा गोविन्द चन्द्र का काल सन् ११२०-११४४ ई० है। कल्हण ने अलकार का उल्लेख दो स्थानो पर राज स्थानीय पदाधिकारी के रूप में किया है। (रा० ८ २५५७, २६१८) उसने अलकार का उल्लेख पुन वृहद्गज के रूप में किया है। (रा० ८ २४२३)

मख ने भ्राता अलकार को राज्य का सन्धि-विग्राहक लिखा है। इससे कोई उलझन नही पैदा होती। मख ने स्वयं लिखा है। राजा सुस्सल ने अलकार को सन्धि विग्राहक पद पर रखा था। उसका द्वितीय पद 'स्थानीय' तथा 'वृहद् गज' राजा जयसिह के काल का हो सकता है। कल्हण स्वयं लिखता है। मख ने अपने भाई अलकार के सन्धि विग्राहक पद को प्राप्त किया था। (रा० ८ ३३५४) मख ने जयसिंह को अपना राजा स्वीकार किया है। मख ने कोकन के राजा अपरादित्य का उल्लेख किया है। वह सन् ११८६ ई० तक राज्य करता रहा। इससे इस बात की पुष्टि होती है। काश्मीर के लेखको को तत्कालीन भारतीय राजाओ एव देश-काल का ज्ञान था।

कल्हण का घटना-क्रम वर्णन एवं नामो का उल्लेख मख के श्रीकण्ठचरित से मिलता है। वह कल्हण की सत्यता प्रमाणित करता है। यदि सन् ११४४ ई० श्रीकण्ठचरित की रचना का काल मान लिया जाय तो राजतरगिणी की रचना के पूर्व मख अपना महाकाव्य समाप्त कर चुका था। श्रीकण्ठचरित में मुख्यत पच्चीसवाँ अध्याय उच्चकोटि की काव्य रचना है।

मख अपने भाई अलकार के निवास-स्थान पर हुई सभा का उल्लेख करता है। उस सभा में उसने अपने काव्य को विद्वानो के सम्मुख उपस्थित किया था। उपस्थित व्यक्तियो तथा विद्वानो का परिचय उनके पदो के साथ दिया है। उसमें ३० कवियो एव विद्वानो का उल्लेख है। इस तालिका में कल्हण का नाम नही है। यद्यपि कल्हण ने अलकार एव मख दोनो का नाम सादर लिया है। मख ने कल्याण के सन्दर्भ में तीन पद लिखे है। उसमें उल्लेख किया गया है कि अलक दत्त ने कवि के रूप में कल्याण को चुना था। वह उसके मनोवाछित कार्य को पूरा कर सकता था। उसने पुन लिखा है कल्याण की कविता महाकवि विल्हण की प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है। राजतरगिणी सन् ११४९–११५० ई० में समाप्त हुई थी। श्रीकण्ठ-चरित सन् ११४४ ई० में समाप्त हुआ था। अतएव श्रीकण्ठचरित में राजतरगिणी का उल्लेख नही हो सकता। मख के श्रीकण्ठचरित का इसलिए उल्लेख राजतरगिणी में है कि वह उस समय लिखी जा चुकी थी। उपलब्ध थी।

कल्हण और कल्याण : द्वितीय राज तरंगिणी के रचनाकार जोन राज ने मंख के श्रीकण्ठ चरित पर वार्तिक लिखा है। उसने लिखा है अलक दत्त कल्याण का संरक्षक था। वह सन्धि विग्राहक के पद पर था। किन्तु कल्याण के विषय में जोन राज कुछ प्रकाश नही डालता। उसने भाष्य किंवा वार्तिक लिखते समय यह नही लिखा है कि मंख वर्णित कल्याण ही कल्हण है। जोन राज अपनी रचना मे कल्हण का उल्लेख करता है। कल्हण के छोडे कार्य को वह अपने समय तक के राजाओ एवं बादशाहो का वर्णन कर पूरा करता है। आश्चर्य है उसने मंख एव स्वत· वर्णित कल्याण को कही कल्हण नही माना है।

कल्हण ही मंख वर्णित कल्याण है ? अथवा और कोई व्यक्ति है ? इस पर विचार करना आवश्यक है। श्री स्तीन का मत है कि कल्हण शब्द प्राकृत 'कल्लाण' तथा 'संस्कृत' 'कल्याण' का अपभ्रंश है। स्तीन अपने मत की पुष्टि में जयापीड की रानी का उदाहरण उपस्थित करते है। जयापीड की रानी का नाम 'कल्याण' देवी था। 'कल्याण', 'कल्लणा' तथा 'कल्हणिका' एक ही शब्द किंवा नाम के भिन्न रूप है। 'कल्हणिका' शब्द संस्कृत 'कल्याणिका' है। राजवंश एवं अभिजात कुल की महिलाओ के लिये नाटको तथा उपाख्यानो मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है। राजवंश की स्त्रियाँ राजा कलश तथा जयसिंह के समय तक इसी सम्बोधन से सम्बोधित की जाती थी। संस्कृत नाटको तथा काव्यो में सम्भ्रान्त महिलाओ तथा रानियो के लिये 'कल्याणी' शब्द का प्रयोग सम्बोधन के लिये किया जाता रहा है। (रा० ४ ४६१, ४६७, ७·२६३, ८:१६४८, ३०६९)

कल्हण ने स्वयं राज तरंगिणी मे सहदेव के राजपुत्र कल्हण का उल्लेख किया है। (रा० ८ : ६२६) इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कल्हण नाम उस समय प्रचलित था। लोगो का नाम कल्हण रखा जाता था। सल्हण, रल्हण, विल्हण, मल्हण आदि नाम तुल्य ध्वनि करते है। प्रश्न है। मंख ने प्रचलित नाम कल्हण न देकर उसका शुद्ध संस्कृत अप्रचलित नाम 'कल्याण' क्यो दिया ? कल्हण ने स्वत. कही भी अपने कल्याण नाम की ओर गौण रूप से भी संकेत नही किया है। मख ने राजतरंगिणी मे वर्णित अनेक नामो को अक्षरश रूप अपने काव्य मे दिया है। क्या कारण है कि कल्हण का नाम ही बदलकर उसने कल्याण क्यो लिख दिया ? आदर के लिये कल्हण का शुद्ध संस्कृत नाम कल्याण मंख ने दिया है। यह एक तर्क उपस्थित किया जाता है।

कल्हण ने राजतरंगिणी में सर्वदा प्रचलित नाम दिया है। शुद्ध संस्कृत रूप मे नाम देने का प्रयास नही किया है। कल्हण ने प्रचलित नाम 'गग्ग' 'गर्ग' के स्थान पर 'गगन चन्द्र' देने का प्रयास नही किया है। उसने व्यक्तिवाचक सज्ञा के रूप को परिवर्तित करने का प्रयास नही किया है। (रा० ८ : ३३, ३८, ४३, १८२, १९६, ३४८, ३७६, ३८०, ३९०, ४१५, ४३०, ५०२, ५१५, ५८१, ५९५, ६०५, ६१५, ३४४४)

दूसरा उदाहरण 'लोठन' नाम है। कल्हण ने 'लोठन', 'लोठक' आदि प्रचलित अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है। उसने शुद्ध 'लोष्ठक' शब्द नही दिया है। 'लोष्ठक' शब्द का प्रयोग एक स्थान पर किया है। (रा० ८ . २०२) मख का वर्णित कल्याण ही कल्हण है इस पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है। श्री जोनराज का कल्याण शब्द के साथ कल्हण न लिखना, शान्त रह जाना, जबकि वह स्वयं कल्हण के छोडे कार्य को पूर्ण कर रहा था विषय को सन्देहास्पद बना देता है। सम्भव है। मंख के समय कल्याण नाम का ही कोई कवि रहा हो जिसका ग्रन्थ लुप्त हो गया है। क्योंकि जिस समय मंख ने अपना काव्य लिखकर समाप्त किया उसके ४ वर्ष पश्चात् कल्हण ने लिखना और ६ वर्ष पश्चात् रचना समाप्त किया

था। कल्याण चाहे कल्हण हो या नही कल्हण की ऐतिहासिकता जोनराज, श्रीवर, शुक आदि राजतरंगिणी-कारो के कारण प्रमाणित है। वह ऐतिहासिक व्यक्ति है।

कल्हण वंशज : कल्हण की ख्याति राजतरगिणी लेखक के रूप में दिन पर दिन वढती गयी। काश्मीर में दूसरे इतिहास के अभाव मे कल्हण का एकमात्र इतिहास शेष रह गया था। अतएव हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ने कल्हण के इतिहास का अध्ययन किया। इस अध्ययन के कारण उसकी ख्याति वढती गयी। उसके वशजो का नाम 'काल्हण' तथा 'कल्हणेय' पड गया। जोनराज ने उसके वशजो को 'कल्हण नन्दन' लिखा है। (जो० रा० ९४)। जोनराज ने उसके वशजो को पुन 'काल्हणीन' लिखा है। (जो० रा० ९९)। इसका पाठभेद 'काल्हणान' तथा 'कल्हणीन' भी मिलता है। (जो० रा० १०१)। जोनराज ने 'काल्हण' तथा 'कल्हणात्मजै' शब्द का प्रयोग उसके वशजो के लिए किया है। (जो० रा० १०२)

श्रीवर ने 'कल्हण' शब्द का प्रयोग किया है। (जैन० राज २ १४९) अन्य स्थानो पर कल्हण के सम्बन्ध मे और उल्लेख नही मिल सका है।

अध्ययन : कल्हण पुरातन शैली का विद्वान् था। उसका पठन-पाठन अभिजात कुलीन ब्राह्मण वालक के समान हुआ था। उसने महाभारत और रामायण की घटनाओ का अत्यधिक उल्लेख किया है। दोनो ग्रन्थो के कथानको का प्रचुर वर्णन राजतरगिणी में मिलता है। उनकी घटनाओ की तुलना राज-तरगिणी की घटनाओ से किया है। कल्हण ने पुराण विशेषकर नन्दी और नीलमत पुराण का अध्ययन किया था। उसने कालिदास के रघुवश, मेघदूत, वाण के हर्ष चरित, तथा वराह मिहिर के वृहद् सहिता का अध्ययन किया था। वेद, योग वाशिष्ठ रामायण और विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी पढा था। पुरानी शैली के पण्डित किंवा ब्राह्मण ज्योतिष, वेद, पुराण, इतिहास, व्याकरण, साहित्य, अर्थशास्त्र, स्मृति, आयुर्वेद का एक साथ अध्ययन करते थे। कल्हण ने स्मर शास्त्र, कामशास्त्र, कुट्टनीमतम् तथा भरत के नाटच शास्त्र का अध्ययन किया था। उसने विज्ञान का भी अध्ययन किया था। उसने सूर्य ज्योति (रा० ३ ४९२) तथा जल (रा० ३ २०२) का वर्णन एक वैज्ञानिक की तरह किया है। कल्हण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र विद्वान् था। इस प्रकार के विद्वानो को यह उपाधि दी जाने लगी थी।

ज्योतिष का उसने ज्ञान प्रकट किया है। उसने हर्ष की कुण्डली भी राजतरगिणी म दे दिया है। उसके ग्रहो की तुलना धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन से करता है। उसके लेख से प्रकट होता है उसने पतजलि के महाभाष्य का विषद अध्ययन किया था। चान्द्र व्याकरण भी उसने पढा था। रस, छद, अलकार आदि के समस्त अगो में पारगत था। (रा० २ ८९, ३ ४४०) वाण के हर्ष चरित का उसने अध्ययन ही नही किया था बल्कि उसके २९ श्लोको का उद्धरण राजतरगिणी में दिया है। राजतरगिणी लेखन में वह वाण के हर्षचरित तथा विल्हण के दशकुमार चरित से अत्यधिक प्रभावित था।

कल्हण ने लौकिक रीति-रिवाज, सस्कार, कुसस्कार, अन्धविश्वास, जनश्रुतियो, परम्परा, शुभ-अशुभ, शकुन-अपशकुन, आदि का उल्लेख प्रसग आते ही किया है। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उसने शुभाशुभ लक्षणो से, शकुन-अपशकुन से भविष्य की घटनाओ की ओर सकेत किया है। इस प्रकार प्रकट होता है, उसे फलित ज्योतिष का गहन अध्ययन था। दैव विद् तुल्य उसकी लेखनी चली है। (रा० २ १४९, १ ५५, ७ १७२०, ८ ७१५, ३ ४३३ तथा ३ ४४०)। कल्हण ने भवभूति एव वाक्पति राज का उल्लेख आदर के साथ किया है। (रा० ४ १४४) उसने इसी सन्दर्भ में यशो वर्मा का उल्लेख किया है जहाँ कवियो का आदर एव सत्कार होता था।

कल्हण का समय : कल्हण तथा राजतरंगिणी के समझने के लिए कल्हणकालीन परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है। वह काल भारतीय तथा काश्मीर राजनीति मे उथल-पथल का समय रहा है। लेखक पर उसकी परिस्थितियो, वातावरणो एवं घटना-क्रमो का जाने-अनजाने प्रभाव पडता रहता है। वह प्रभाव उसकी रचना में परिलक्षित होता है।

राजतरंगिणी के रचना-काल से ४३६ वर्ष पूर्व सन् ७१२ ई० मे सिन्ध पर प्रथम मुसलिम आक्रमण हो चुका था। मुहम्मदबिन कासिम मुलतान तक पहुँच गया था। सन् १००० ई० अर्थात् राजतरंगिणी के रचना-काल से १४८ वर्ष पूर्व महमूद गजनी का भारत पर आक्रमण हो चुका था। महमूद गजनी ने सन् १०१५ ई मे काश्मीर पर आक्रमण किया था। सन् १०२६ ई० तक सोमनाथ पहुँच गया था। सन् १०३० ई० मे अल्बेरूनी स्पष्ट लिखता है 'मुसलिम आक्रमणो के कारण हिन्दू काश्मीर चले गए। उन दिनो वाराणसी तथा काश्मीर हिन्दू विद्या के सर्वश्रेष्ठ स्थान थे।' (पृष्ठ १७६–१७७)

काश्मीर मे विद्वानों का भाग कर आने का एक कारण और था। काशी अलप्तगीन के आक्रमण से लूटी जा चुकी थी। जीवन भयापन्न हो गया था। मन्दिर टूट चुके थे। विद्वानो ने काशी को सुरक्षित नही समझा, किन्तु काश्मीर मे महमूद गजनी दो बार हार चुका था। काश्मीर मे मुसलमानो का प्रवेश नही हो सका था।

काश्मीर की उत्तरी एवं पश्चिमी सीमा पर मुसलिम राज्य स्थापित हो चुके थे। प्रबल हो गए थे। धर्म-प्रचार का उन्माद व्याप्त था। इसलाम की ताकत के सम्मुख जनता इसलाम कबूल कर अपने पुरातन बौद्ध तथा हिन्दू धर्म को परित्याग कर चुकी थी। तथापि अभी तक भारत पर मुसलिम राज नही स्थापित हो सका था। सन् ११९४ ई० मे कन्नौज में गहडवाल राजाओ का राज था। सन् ११४८ ई० तक सोलंकी राजा कुमार पाल शक्तिशाली था। महमूद गजनी एक आँधी की तरह आया और चला गया। सन् ११९२ ई० में अर्थात् राजतरगिणी की रचना के ४४ वर्ष पश्चात् मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण कर मुसलिम राज स्थापित किया।

कल्हण के काल मे भारत पर मुसलिम राज्य स्थापित नही हुआ था। परन्तु कल्हण ने तरंग ६ से ८ तक गौण रूप से मुसलिम प्रभाव का उल्लेख किया है। काश्मीर पर मुसलिम सस्कृति का प्रभाव पडने लगा था (रा० ७ · ११४९)। भारत पर मुसलिम आक्रम्ण का परिणाम भयावह हुआ। धर्म तथा जीवन की रक्षा के लिए ब्राह्मण तथा विद्वान, नैपाल, काश्मीर तथा दक्षिण भारत भागने लगे। काश्मीर में उत्तर-पश्चिम भारत से पण्डितो का समूह पहुँच गया। वे अपने साथ ग्रन्थो का भण्डार लेते आये। उस समय काश्मीर मण्डल विद्वानो से भर गया था।

मुसलिम आक्रमण की एक और प्रतिक्रिया हुई। गुरुकुल टूटने लगे। आश्रमो का लोप हो गया। वेद पूर्व काल मे लिपिबद्ध नही थे। गुरुकुल तथा आश्रमो मे वे स्मरण रखे जाते थे। उनको लुप्त होने से बचाने के लिए सर्वप्रथम काश्मीर मे वे लिपिबद्ध किए गए। अलबेरूनी के अनुसार वे बारहवी शताब्दी मे लिपिबद्ध किए गए थे। काश्मीरी ब्राह्मण तथा शुक ने लिखने तथा व्याख्या का कार्य किया था। (पृष्ठ १०७ ; १ : १२६–१२७)

बारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध काश्मीर मे वशानुगत संघर्षो, विद्रोहो, षड्यन्त्रो, क्रान्तियो एवं रक्त-रजित घटनाओ का काल था। उनके कारण काश्मीर मंडल की प्रगति अवरुद्ध हो गयी थी। काश्मीर

दुर्बल हो गया था। राजा हर्ष (सन् १०८९–११०१ ई०) के जीवन, उसके दुःखद अन्त, विश्वासघात, नैतिक पतन का जो चित्रण कल्हण ने किया है, उसे पढकर रोमाच हो जाता है। जमीन्दार तथा जागीरदारो के समान काश्मीर मे कुलीन डामरो का एक वर्ग विशेष अस्तित्व में आ गया था। उनके रक्तरंजित कार्यो से भविष्य की चार शताब्दियाँ ग्रस्त रही है।

उच्चल तथा सुस्सल के नेतृत्व में डामरो ने राजा हर्ष को ग्रस्त करना आरम्भ किया। हर्ष ने उनके कारण राज त्याग दिया। फिर भी उसकी क्रूरतापूर्वक हत्या की गई। उच्चल और सुस्सल ने काश्मीर राज्य को सघर्ष से बचाने के लिए परस्पर बाँट लिया। ज्येष्ठ भ्राता उच्चल काश्मीर तथा सुस्सल ने लोहर का राज लिया। उच्चल डामरो को परस्पर लडाता उनकी शक्ति क्षीण करने लगा। कुछ समय तक गर्गचन्द्र, जो लहर का सरदार था राजसूत्र हाथ में रखने मे सफल रहा। उसका राज्यकाल (सन् ११०१–११११ ई०) सर्वदा हर्ष के उत्तराधिकारी राज लोलुपो तथा भाई सुस्सल के भय के कारण सतर्क मय रहता था। अन्ततोगत्वा अपने पदाधिकारियो के षड्यन्त्र का शिकार बन कर मार डाला गया। तत्पश्चात् रड्डु एक दिन के लिए राजा बन बैठा। (सन् ८–१२–११११ ई०)

गर्ग चन्द्र विद्रोहियो को दबाकर शक्तिशाली हो गया। वह राजाओ को बनाने और बिगाडने वाला बन गया। (रा० ८ ४२५) सल्हण गर्ग चन्द्र की सहायता से राजा बन गया। इसके पश्चात् काश्मीर के अत्यन्त दुःखान्त रक्तपात पूर्ण इतिहास का अध्याय खुलता है। सुस्सल तथा भिक्षाचार आदि के साथ गृह युद्ध सन् १११२ से ११२८ ई०) तक चलता रहा। अन्त मे राजा जयसिंह सन् ११२८ ई० मे राजा बनकर काश्मीर में शान्ति स्थापित करने में सफल हुआ।

चम्पक, कनक तथा कल्हण का काल इन भयकर परिस्थितियो मे व्यतीत हुआ था। क्रान्तियो, रक्तपातो, अराजकताओ, गृह-कलहो, सघर्षो, राज विप्लवो मे काश्मीर अस्त हो रहा था। उसका सामाजिक ढाँचा बिगड रहा था। वैदिक, सनातन, पौराणिक, बौद्ध धर्मो के स्थान पर तन्त्रो का प्राबल्य हो रहा था। काश्मीर मण्डल स्वत विघटित हो रहा था। इन सबका प्रभाव कल्हण पर पडना स्वाभाविक था।

राज्य प्रासादीय षड्यन्त्र, अकाल, जलप्लावन, अग्निदाह, जनपीडा, मूर्तियो-मन्दिरो, विहारो का नाश करना आदि दुःखद घटनायें कल्हण को दुःखित कर रही थी। वह स्वय कुछ कर नही सकता था। परिस्थितियाँ उसे एकाकी बना दी थी। वह अपने देश की भयावह परिस्थितियो से दुःखी था। उसने अपना समय काटने कुछ करने, अपने देशवासियो के चरित्र को उठाने तथा राजाओ को शिक्षा देने लिए काव्य को साधन बनाया। इसी साधन का फल राजतरगिणी है। उसमे उस काल की झलक मिलती है। कवि कल्हण की मानसिक वेदनाओं का उसके पदो मे दर्शन मिलता है।

राजतरगिणी तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक स्थितियो का सजीव चित्रण है। यह चित्रण सप्रमाण है। सत्य है। विषम परिस्थितियो, मानवीय दुर्बलताओ, घृणास्पद कर्मो को देखकर कल्हण की भाषा उपदेशात्मक हो गयी। परिस्थितियो ने उसमे नैराश्य एव विराग उत्पन्न कर दिया था। जयसिंह के काल मे स्थिति अधिक सुधरी नही। दोष बीज अकुरित होता गया। वह अकुर ही कालान्तर मे वृद्धि करता महान पादप बना। उस पादप का फल राजतरगिणी की रचना है।

हर्ष के पतन के कारण कल्हण का कुल प्रभावित हुआ था। राजा हर्ष के प्रिय पात्र उसके पिता तथा चाचा थे। हर्ष के विश्वासपात्र होने के कारण हर्ष के पश्चात हुए अन्य राजाओ के प्रिय पात्र कल्हण,

उसके कुल के लोग नही हो सके। कुल का जीवन एकाकी हो गया था। कल्हण तथा उसके कुल का कोई व्यक्ति राज अनुग्रह प्राप्त दिखायी नही पडता। कल्हण के पूर्व तथा परकालीन वंशजो का आठवें तरंग मे उल्लेख बिल्कुल नही मिलता। राजा जयसिंह के सुझाव पर कल्हण की लेखनी उठी थी, इसकी झलक कही नही मिलती।

समुद्र-ज्ञान : कल्हण ने काश्मीर मण्डल तथा समीपवर्ती स्थानो का भ्रमण किया था। वह काश्मीर के कण-कण से परिचित था। उसका भौगोलिक ज्ञान अद्भुत है। जिस प्रकार उसने भूगोल उपस्थित किया है, उससे प्रतीत होता है कि उसने भारत का भ्रमण किया था। समुद्र तट तक पहुँचा था। उसने समुद्र का जो वर्णन उपस्थित किया है, उसे विना समुद्र देखे, कोई कवि केवल पुस्तक-ज्ञान से नही लिख सकता। ताल वृन्त, नारियल वृक्ष की छाया, डाभ, आदि का पान, अनेक बातें ऐसी है, जिनमे प्रकट होता है कि इतिहास लिखने के पूर्व उसने इतिहास-सामग्री एकत्रित करने के लिए भारत-भ्रमण किया था।

आधुनिक वैज्ञानिको के समान कल्हण पृथ्वी को समुद्र मेखला धारिणी लिखता है। पृथ्वी समुद्र से वेष्ठित है। यह निर्विवाद है। कल्हण समुद्र की मर्यादा का उल्लेख करता है। यह बात समुद्र तटवर्ती निवासी या वहाँ गया पर्यटक ही समझ सकता है। (रा० . १. २५३, १ . २९६) कल्हण दक्षिण समुद्र, पश्चिम समुद्र, पूर्व समुद्र आदि (रा० ३ · ४७९, ४८०) तथा लवण समुद्र का उल्लेख करता है। भारत के दक्षिण मे भारतीय सागर, पूर्व मे बगाल की खाडी तथा पश्चिम मे अरब सागर है। काश्मीर समुद्र से सहस्रो मील दूर पर्वत-मालाओ से वेष्ठित है। कल्हण ऐसा सप्रमाण ऐतिहासिक ग्रन्थ विना भारत-भ्रमण, काश्मीर के राजाओ के दिग्विजय-मार्ग तथा उनके द्वारा विजित प्रदेशो को देखे नही लिख सकता था।

मेघवाहन की सेना दक्षिण भारतीय समुद्र तट पर विश्राम कर रही थी। उस पार द्वीप था। (रा० ३ . ३०) यह स्थान रामेश्वरम् तथा धनुष्कोटि है। चारो धाम की यात्रा करना पुनीत कर्म माना गया है। पुरी, रामेश्वरम् तथा द्वारिका समुद्र तट पर है। कल्हण ने उत्कल किंवा कलिंग, कर्णाट एवं सौराष्ट्र का उल्लेख किया है। वहाँ का वर्णन भी किया है। उसने या तो यात्रा अथवा ज्ञानार्जन के लिए भारत-भ्रमण किया था। वह काश्मीर से कन्नौज, काशी, गया होते पुरी, वहाँ से रामेश्वरम् और लौटते समय गोकर्ण, द्वारका सौराष्ट्र होता अवन्ति से उत्तरापथ में प्रवेश कर, काश्मीर लौटा होगा।

कल्हण ने चार समुद्रो का उल्लेख किया है (रा० ४ · ३१०) सप्त-सिन्धु की पुरानी धारणा है। कल्हण ने उसे न मानकर शिव की चार भुजाओ की उपमा चार समुद्रो से दी है। आजकल पाँच महा समुद्रो की गणना की जाती है। प्राचीन काल मे भी चार ही महा समुद्र की गणना की जाती थी। भारतीय सागर बाद का दिया गया नाम है।

भारतीय सागर प्रशान्त तथा अटलातिक के मध्य तथा अण्टार्कटिक के उत्तर मे पडता है। यदि भारतीय समुद्र को उन समुद्रो का मध्यवर्ती स्थान मान ले तो कल्हण का वर्णन ठीक बैठता है। भारत महा-सागर को उसने दक्षिण सागर कहा है जो दक्षिण ध्रुव तक चला गया है। (रा० ३ · १२६) रघुवंश में कालिदास ने भी चार समुद्रो का ही उल्लेख किया है। राजा रणादित्य के सन्दर्भ मे कल्हण ने चोल राजा रतिसेन को समुद्र की पूजा करते हुए चित्रित किया है। चोल राज्य सुदूर दक्षिण में पूर्वीय तथा सौराष्ट्र पश्चिमी समुद्रतट पर था। कल्हण का यह वर्णन सत्य है। (रा० . ३ · १२६)

भारत पर्यटन : काशी, कन्नौज, अवन्ति, मथुरा के अतिरिक्त और जिन स्थानो का कल्हण

उल्लेख करता है, वे ठीक अपने स्थानो पर मिल जाते हैं। इनमें गलती नही हो सकी है। उसके वर्णना मे उनका ठीक पता लग जाता है।

कल्हण का महत्वपूर्ण योगदान पुरातन भूपरिचय वर्णन है। पुराण, महाभारत, रामायण एव कल्हण की वर्णन-शैली में अन्तर है। पुराण केवल नामो का उल्लेख कर छोड देते है। उनका भौगोलिक परिचय नही देते। महाभारत तथा रामायण कही-कही दिशाओ का भी सकेत करते है। यह सकेत रामायण मे मुख्यत सुग्रीव के सम्वाद और महाभारत में रण अभियान एव दिग्विजयो के सन्दर्भ मे मिलता है। परन्तु कल्हण पता एक भौगोलिक की तरह देता है। भारतीय पुराकालीन लेखको में कल्हण सबसे अधिक सच्चा भौगोलिक स्थिति का वर्णन करता है। भारत के क्षेत्रो का इस प्रकार सर्वागीण ज्ञान किसी रचनाकार ने उपस्थित नही किया है। उसने सिन्धु तट, कालिन्दी पुलिन (रा० १ ९०) का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया है।

कल्हण ने देशो का भी वर्णन किया है। जिन देशो तथा नगरो का उसने उल्लेख किया है, उनकी सम्भवत उसने यात्रा भी की थी। काश्मीर के अतिरिक्त शेष भारतवर्ष को उसने आर्य देश की सज्ञा दी है। गान्धार देश, त्रिगर्त देश (रा० ३ : १००) दर्वाभिसार (रा० १ १८०) चोल, कर्णाट लाट सामान्त, दरद देश, भौट्ट, आदि का उल्लेख किया है। उसने सिहल (रा १ २९४) लका (रा १ २९८) प्राग् ज्योतिप (रा० २ १५२) गौड बगाल आदि का भी उल्लेख किया है। राजाओ में उसने कन्नौज नरेश यशोवर्मन्, सिहल नरेश विभीषण, अवन्ति नरेश विक्रमादित्य, एव प्राग ज्योतिपेन्द्र का वर्णन किया है। उसने चन्द्रभागा, गगा, यमुना, नर्मदा का दर्शन तथा उनमे स्नान अवश्य किया था। इसी प्रकार उत्तर मानस की यात्रा की भी ध्वनि उसके लेख से निकलती है। ईक्षुरस तथा इक्षु में फल न होना वही जान सकता है, जिसने काश्मीर के बाहर जाकर उसका रसास्वादन किया होगा। (रा० २ ५८)

दिग्विजय-स्थान निरूपण : कल्हण ने राजा जलौक मिहिर कुल, मेघ वाहन, प्रवरसेन, ललितादित्य के दिग्विजय का विस्तृत वर्णन किया है। जलौक ने कान्यकुब्ज अर्थात् कन्नौज विजय किया था। काश्मीर के बाहर श्रीकृष्ण के मथुरा तथा गान्धार मे हुए सघर्षो के लगभग ग्यारह सौ वर्षो के पश्चात् प्रथम बार काश्मीरी सेना काश्मीर के बाहर निकली थी (रा १ . ११७, ३३९)। दूसरी बार काश्मीर से मिहिर कुल के नेतृत्व में दक्षिण समुद्र तक पहुँची थी। समुद्र तट से लौटते हुए उसने चोल, कर्णाट, लाट आदि देशो का अतिक्रमण किया था। तीसरे दिग्विजय का अभियान मेघवाहन ने किया था। मिहिर कुल के समान यह भी श्रीलका समुद्र-तट तक पहुँचा था (रा २७, ७२)। चौथो दिग्विजय प्रवर सेन ने किया था। अवन्ति में प्रवेश कर राजा विक्रमादित्य द्वारा अपहृत काश्मीर का राज सिंहासन पुन लौटा लाया था। पाँचवी दिग्विजय ललितादित्य ने किया था। उसने वाक्पति राजा एव भवभूति सेवित कन्नौजपति यशोवर्मन् को जीता था। कन्नौज के दक्षिण में प्रवाहित एव गगा से मिलने वाली कालिका नदी और यमुना के मध्यवर्ती भूखण्ड को घर के प्रागण सदृश बना लिया था। (रा० ४ १४४, १४६) यह भौगोलिक वर्णन सत्य है।

अनन्तर वह कलिग, गौड, कर्णाटक पहुँचता है। इस स्थल पर कल्हण ने 'दक्षिणापथ' शब्द का उल्लेख किया है। पुरातन काल से दक्षिणापथ से जिन क्षेत्रो का सम्बोधन होता था, उन्हे ही कल्हण ने लिखा है। ललितादित्य ने मलय पर्वत, कोकण, द्वारिका, अवन्ति के पश्चात उत्तरा पथ मे प्रवेश किया था।

उत्तरा पथ का अर्थ उत्तरीय भारत प्राचीनकाल से लगाया जाता था। उत्तरा पथ के पश्चात् कम्बोज, तुखार, उत्तरकुरु, जालन्धर, लोहर आदि मार्गों का जो भौगोलिक वर्णन कल्हण उपस्थित करता है, वह प्रायः ठीक मिलता है। (रा० ४ · १३३-१८०) ललितादित्य के पश्चात् भारतीय राजाओ के लिये दिग्विजय के आदर्श का पालन संभव नही रहा। कारण स्पष्ट है। इसके काल के पश्चात् मुसलिम शक्ति प्रबल होने लगी थी। भारत की सीमा पर उनके राज्य स्थापित हो गये थे। उन्ही का भारत पर आक्रमण होने लगा था। इसके पश्चात काश्मीर ही नही समस्त भारत की राजनीति का लक्ष्य प्रमुखत रक्षात्मक हो जाता है।

कल्हण ने राजाओ के दिग्विजय मार्ग एव यात्राओ के जो उल्लेख किये है वे वर्त्तमान भौगोलिक वर्णनो से साधारणतया मिलते है। यह इसलिये भी महत्त्व की बात है कि उन दिनो मानचित्र वर्त्तमान काल की तरह उपलब्ध नही थे। देश का सर्वेक्षण नही किया गया था। केवल जनश्रुति तथा परम्परा के आधार पर कार्य किया जाता था।

इसका समर्थन अल्बेरूनी के लेखो से भी मिलता है। उसने कल्हण के रचना काल से ११८ वर्ष पूर्व काश्मीर के मार्गो का वर्णन किया है। उससे प्रकट होता है कि काश्मीर का सम्बन्ध समस्त भारत से था। अल्बेरूनी के अनुसार एक मार्ग कन्नौज से काश्मीर जाता था। दूसरा मार्ग कन्नौज से पानीपत, अटक काबुल होता, गजनी पहुँचता था। तीसरा मार्ग बज्रहान से अधिष्ठान (पुराधिष्ठान) काश्मीर पहुँचता था। चौथा मार्ग कन्नौज, शिरशारह, दहमाल (जालन्धर की राजधानी) बल्लावर होता लद्द अर्थात् लिदर घाटी काश्मीर पहुँचता था। काश्मीर का उन दिनो इतना महत्त्व था कि उसका सम्बन्ध समस्त भारत से था। अतएव इस अनुमान मे तथ्य है कि कल्हण ने भारत-भ्रमण तथा समुद्र-तट की यात्रा की थी। अन्यथा इस प्रकार का वर्णन करना केवल ग्रन्थो के आधार पर सम्भव नही था।

काश्मीर का भौगोलिक वर्णन . कल्हण ने काश्मीर का स्थान निरूपण किया है। भूपरिचय दिया है, पर्वतो, नदियो, स्रोतस्विनियो, कुल्याओ, नागो, सरो, वनो, क्षेत्रो, तीर्थ-स्थानो का वर्णन सच्चाई के साथ किया है। पर्वतो में, अन्तर्गृही, बहिर्गिरी, हिमालय और लोका लोक का उल्लेख किया है। (रा० १ : १३७) उसने काश्मीर की जल-वायु (रा० १ . ४०-४२) तीर्थो में भेदा देवी, पाप सूदन, स्वयंभू, (रा० १ : १३६) सन्ध्या देवी, शारदा, सोदर (रा० १ : १३४) चीर मोचन (रा० १ : १४९) नन्द शिला (रा० ३ . ४६७) तथा अरिष्टो सादन (रा० ३ : ४८२) का उल्लेख कर उनके स्थानो का निश्चित पता दिया है। क्षेत्रो में नन्दि क्षेत्र, (रा० १ : ११३), विजय क्षेत्र (रा० १ : २७५) तथा इष्टिका पथ (रा० ३ . ४६७) तथा सुरेश्वरी क्षेत्र (रा० ५ . ४५४) का वर्णन किया है। यात्राओ में अमरेश्वर यात्रा (अमरनाथ) (रा० १ : २६७) नन्दि क्षेत्र यात्रा (रा० १ : ११३) तथा तक्षक नाग यात्रा (रा० १ . २२०-२२ १) का उल्लेख किया है। अटवी में रमण्याटवी, (रा० १-२६५) तथा वाक् पुष्टाटवी (रा० २ : ५७) का वर्णन किया है।

सुश्रवा सरोवर (रा० १ . २०३) शेषनाग (रा० १ : २६१) जामातृसर (रा० १ : २६९) उल्लोल सर (रा० ४ : ५९३) उत्तरमानस (रा० ३ : ४) एवं सुरेश्वरी सर अर्थात् डललेक का उल्लेख किया है। नगरो मे नरपुर (रा० १ : २४४) पुराधिष्ठान (रा० ३ : ९९) स्कन्दपुर (रा० १ : ३४०) पद्मपुर (रा० ४ : ६९५) । मन्दिरो मे शत कपालेश, (रा० १ . ३३५) भूतेश, विजयेश,

वर्धमानेश (रा० २ १२३) एव ज्येष्ठेश आदि का उल्लेख करता है। (रा० १ १२४)

अग्रहार : उसने अनेक अग्रहारो, विहारो, चैत्यो, शालाओ एव स्तूपो का उल्लेख किया है। उनमे अधिकाश का पता लगाया जा चुका है। कल्हण उनके स्थानो का ठीक पता देता है। इससे पता चलता है कि कल्हण ने स्थानो की खोजकर उनकी तालिका बनायी थी। वे समस्त काश्मीर मण्डल में फैले थे।

कल्हण ने तीन अग्रहारो का वर्गीकरण किया है। राजकीय अग्रहार (रा० ३ १००) द्विज परिषद अग्रहार (रा० १ १८७) तथा व्यक्तिगत पुण्य कार्य के लिये किये गये अग्रहार। कुछ अग्रहार गान्धार देशीय तथा कुछ काश्मीरी ब्राह्मणो को दिये गये थे। राजा कनिष्क ने समस्त काश्मीर का दान कर दिया था। (रा० १ . २५७) मिहिरकुल जैसे क्रूर राजा ने भी एक सहस्र अग्रहारो का दान किया था। (रा० १ ३१४)

कल्हण ने तरग १-३ में राजाओ द्वारा दिये गये अग्रहारो का उल्लेख किया है। राजा लव ने लेवार (रा० १ . ८७), कुरु ने कुरुहार (रा० १ ८८), खगेन्द्र ने खोनमुष, खागी (रा० १ ९०) गोधर ने गोधर, हस्तिशाला, जालोर (रा० १ ९६) शचीनर ने समागासा तथा सनार (रा० १ १००) जलौक ने वारवल (रा० १ १२१) अभिमन्यु ने कण्टकोत्स (रा० १ १७४) गोपादित्य ने खोल, खागिका, स्कन्दपुर समाजस (रा० १ ३४०), तथा गोप (रा० १ ३४१) वश्चिक (रा० १ ३४३) रानी वाक्पुष्टा ने कनीमुष, रामुष (रा० २ ५५) तथा मेघवाहन ने मेघवन (रा० ३ ८) अग्रहार का दान किया था।

विहार : राजाओ ने जितने अग्रहारो का दान इस काल मे किया था, उससे कम विहारो की स्थापना नही की थी। इस काल मे सनातन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनो की मान्यतायें प्राय समान थी। लोग दोनो धर्मो की बातें मानते थे। राजा सुरेन्द्र ने नरेन्द्र भवन विहार (रा० १ ९३) सौरस विहार (रा० १ . ९४), जनक ने जालोर (रा० १ : ९८), अशोक ने धर्मारण्य, (रा० १ १०३), जलौक ने कृत्याश्रम (रा० १ . १४७), जुष्क ने जुष्कपुर (रा० १ १६९), अमृतप्रभा ने अमृत भवन विहार (रा० ३ . ९), खादना रानी ने खादना विहार (रा० ३ १४), सम्मा रानी ने सम्मा विहार (रा० ३ १४), रानी भिन्ना ने भिन्ना विहार (रा० ३ ४६४), गलून ने रत्नावली विहार (रा० ३ : ४७६) निर्माण कराया था। इनके अतिरिक्त सहस्रो विहार काश्मीर में थे। इसी काल में अनेक राजाओ ने चैत्य एव स्तूपो का भी निर्माण कराया था। अशोक ने शुष्कलेत्र तथा वितस्तात्र मे स्तूप निर्माण कराया था। (रा० १ १०२), रानी अमृत प्रभा ने स्तोन्या स्तूप (रा० ३ . १०) तथा इन्द्र देवी ने इन्द्रभवन स्तूप का निर्माण कराया था। (रा० ३ . १३) अशोक तथा कनिष्क ने स्तूपो तथा चैत्यो की शृंखलाओ से काश्मीर मण्डल को आच्छादित कर दिया था।

चतुर्थ बौद्ध परिषद : सम्राट कनिष्क के समय में चतुर्थ बौद्ध परिषद किंवा सगीति या सगायन होने का उल्लेख बौद्ध पर्यटको तथा ग्रन्थो द्वारा मिलता है। यह परिषद षडर्हद्वन वर्तमान हरवान में हुई थी। सम्पूर्ण त्रिपिटक को ताम्र-पत्रो पर लिपिबद्ध कर, गाड दिया गया था। कल्हण नागार्जुन का उल्लेख हरवान के प्रसग में करता है। परन्तु उसने इस ऐतिहासिक परिषद का उल्लेख नही किया है। प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म की मान्यता शनै शनै क्षीण होती गयी। लोग बौद्ध धर्म की पुरानी बातें, परम्परा, इतिहासादि भूल गये थे।

शाला, जनाश्रय, विद्यावेश्म : कल्हण ने आरोग्यशाला (रा० ३ : ४६१) तथा जनाश्रय (रा० ३ : ४८०) का उल्लेख किया है। प्रथम वर्तमान काल के अस्पतालो तथा द्वितीय धर्मशालाओ के सदृश थे। चतु शाला (रा० ३ . १३) का भी उल्लेख किया गया है। उसका निर्माण बौद्ध संघ तथा भिक्षुओ के निवास हेतु किया गया था। बौद्ध उपासको के लिए भी विहार बने थे। विद्यावेश्म आजकल के छात्रावास सहित विद्यालयों के समान थे। वहाँ विद्वानो, विद्यार्थियो के निवास के साथ पढ़ने तथा भोजनादि का प्रबन्ध था।

मठ, अक्षयिणी, प्रतिष्ठान, सत्र : कल्हण ने मठो का उल्लेख बहुत किया है। साधु-सन्तो के लिए मठ-निर्माण किया जाता था। शुष्कलेत्र क्षेत्र में मठ (रा० १ : १७०), चतुःशाला मठ (रा० १ : १९१) पाशुपत मठ (रा० ३ : ४६०) ब्रह्ममठ (रा० ३ : ४७६) मध्यमठ (रा० १ : ३००) खेरी मठ (रा० १ : ३००) थेडा, भीया मठ (रा० २ : १३५) मेघ मठ (रा० ३ : ४६०) राजाओ द्वारा स्थापित किये गये थे। कालान्तर में मठ बनाने का प्रचलन बहुत हो गया था। दिद्दा मठ आदि अपने समय के प्रसिद्ध मठ थे। मठो के निर्माण का सम्बन्ध तृतीय तरंग तक केवल शैव सम्प्रदाय से था। कल्हण ब्रह्म मण्डप का रानी रण रम्भा द्वारा स्थापित होने का उल्लेख करता है। (रा० ३ : ४५९) यह ब्रह्मविदो के लिए निर्माण किया गया था। राजा तथा धनी जन आप अक्षयिणी (रा० १ : ३४७) प्रतिष्ठान (रा० १ : ३४७) तथा सत्र (रा० २ . ५८) पथिको, यात्रियों तथा भूखो के लिए स्थापित कराते थे। जीर्णोद्धार कराने का भी उल्लेख मिलता है। सम्राट अशोक ने विजयेश्वर के नवीन पाषाण प्राकार का निर्माण कराया था। (रा० १ : १०५), कल्हण ने यागोत्सव (रा० १ : ३३१) तथा लिंग अर्चनोत्सव (रा० २ : १३५) का उल्लेख किया है।

नगर निर्माणादि : कल्हण काश्मीर के नगरो तथा ग्रामो का वर्णन कर उनके स्थानों का ठीक पता देता है। तरंग प्रथम से तीन तक कम-से-कम १७ नगर निर्माणो का उल्लेख किया गया है। राजा लव ने लोलोर (रा० १ ८६) सुरेन्द्र ने सोरक पत्तन, (रा० १ ९३) अशोक ने श्रीनगर (रा० १ : १०४) जलौक ने उज्झट डिम्ब (रा० १ : ११६) हुष्क ने हुष्कपुर, जुष्क ने जुष्कपुर, जय स्वामीपुर, (रा० १ . १६९), सम्राट कनिष्क ने कनिष्कपुर (रा० १ : १६८), अभिमन्यु ने अभिमन्युपुर, वितस्ता पुलिन मे नगर (रा० १ १७५-२०२), हिरण्याक्ष ने हिरण्याक्षपुर (रा० १ : २८७), मिहिर कुल ने हिरण्यपुर, मिहिरेश्वर (रा० १ : ३०६), बक ने लवणोत्स (रा० १ : ३२९), तुंजीन ने कतिका पत्तन, (रा० २ : १४) विजय ने विजयेश्वर को नगर से घिरवाया था। (रा० २ : ६२)। नगरो के लिए पुर तथा पत्तन शब्द समानार्थक है। तीनो शब्दो का प्रयोग कल्हण ने किया है।

ग्रामों का भी उल्लेख किया गया है। उनके स्थानो का पता कल्हण के वर्णनो से मिल जाता है। राजा अक्ष ने अक्षवल (रा० १ . ३३८) मेघ वाहन ने मयुष्ट ग्राम (रा० ३ : ८) तथा भेडर ग्राम (रा० ३ : ४८१) का दान किया था।

मन्दिरो से काश्मोर मण्डल मण्डित था। प्रत्येक ग्राम तथा जनस्थान मे मन्दिर थे। राजा अशोक ने अशोकेश्वर (रा० १ : १०५), जलौक ने ज्येष्ठेश्वर भूतेश (रा० १ : ४८), अभिमन्यु ने शशांक शेखर, (रा० १ : १७५) मिहिर कुल ने मिहिरेश्वर (रा० १ ३०६), बक ने बकेश (रा० १ : ३२९), गोपादित्य ने गोपाद्रि पर ज्येष्ठेश्वर, (रा० १ : ३४१) गोकर्ण ने गोकर्णेश्वर (रा० १ : ३४६), उग्र ने उग्रेश (रा० १ : ३४८), तुंग ने तुंगेश्वर (रा० २ : १४), सन्धिमति ने सन्धीश्वर, इशेश्वर

(रा० २ १३४), रणादित्य ने माहेश्वर रणेश्वर (रा० ३ ४३९-३५८) रानी रणा रम्भा ने रणा स्वामी (रा० ३ ४५४), रानी अमृत प्रभा ने अमृतेश्वर (रा० ४६३) विक्रमादित्य ने विक्रमेश्वर (रा० ३. ४७४) एव उसकी रानी बिम्बा ने बिम्बेश्वर (रा० ३ ४८२) का निर्माण कराया था। निर्माणकर्त्ताओ ने अपना नाम चिरस्थायी करने के लिए अपने नामो पर मन्दिरो का नाम रखा था। कुछ मन्दिरो के ध्वंसावशेष आज भी दिखायी पडते हैं। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

विष्णु मन्दिर : प्रथम तथा द्वितीय तरग में किसी विष्णु मन्दिर के निर्माण का उल्लेख नही मिलता। महाभारत काल किंवा लौकिक सम्वत् ६२८ से रणादित्य के काल लौकिक सम्वत् ३२९९ अर्थात् २६७१ वर्षों तक विष्णु मन्दिर बनने अथवा पूजा का उल्लेख सार्वजनिक रूप से नही मिलता। तृतीय तरग के अन्तिम चरण में रानी रणारम्भा द्वारा विष्णु मन्दिर निर्माण का प्रथम उल्लेख मिलता है। विष्णु प्रतिमा का भी प्रथम बार उल्लेख यही किया गया है। (रा० ३ ४४६) यह विष्णुपूजा एव विष्णु मन्दिरो के निर्माण के इतिहास की ज्ञात बातो से सर्वथा सम्मत है। रानी रणा रम्भा दक्षिण समुद्र तट से काश्मीर मे आयी थी। समुद्र तट पर राम के सेतुबन्ध, लका विजय तथा रामायण की गाथायें अत्यधिक प्रचलित थी और आज भी है। दक्षिण-पूर्व एशिया तक रामायण पहुँच चुकी थी। उसकी गाथायें लोकप्रिय हो गयी थी। दक्षिण से सम्बन्धित होने के कारण ही रानी रणारम्भा विष्णुपूजा से प्रभावित थी। काश्मीर में विष्णु मन्दिर बना कर उसने अपनी रुचि तथा मत का परिचय दिया।

शिवलिंग : कल्हण ने शिव मन्दिरो के साथ ही साथ शिव लिगो की स्थापना का वर्णन किया है, (रा० २ १२८-१३२)। शिव लिंग के अतिरिक्त प्रतिमा लिंग की भी चर्चा कल्हण करता है। थेडा, भेदा, (रा० २ १३५) हिमलिंग (रा० २. १३७) शैललिंग (रा० ३ : ४३९) रत्नलिंग (रा० ३ · ४४६) तथा प्रजापति पूजित लिंग (रा० ३ ४४६) अर्चना का विस्तृत उल्लेख करता है।

जातियो का ज्ञान : भारत भ्रमण काल, सीमावर्ती ज्ञान तथा भारत पर मुसलिम आक्रमण होने के कारण अनेक जातियो के काश्मीर में आ जाने के कारण उससे कल्हण को जातियो के रीति-रिवाज, कर्म आदि का पर्याप्त ज्ञान हो गया था। जो जातियाँ महाभारत पुराण, रामायण मे अलौकिक मालूम होती है वे वास्तव मे मानव जातियाँ थी। भारत निवासी थी। कल्हण ने इसे अपने उल्लेखो तथा उनके कर्मों से सिद्ध किया है। उनका चित्रण अलौकिक मानव की अपेक्षा चलते-फिरते साधारण जनो के समान किया है। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, गुह्यक, शवर, किरात, राक्षस को पुरातन ग्रन्थकारो ने जाति लोकोत्तर मान लिया था। महाभारत से अपने काल तक की ज्ञात जातियो का कल्हण ने उल्लेख किया है। (द्रष्टव्य परिशिष्ट) दक्षिणा पथ के चोल, कर्णाट, कोकण, लाट, सौराष्ट्र, जातियो का भी वर्णन किया है। (रा० १. ३००, ३ ४३२)

कल्हण ने विशेष उल्लेख जमुना से गान्धार प्रदेश तथा काश्मीर की सीमान्त जातियो का किया है। श्रीकृष्ण-गोनन्द युद्ध के सन्दर्भ में वृष्णि तथा यादवो का उल्लेख किया गया है। काश्मीर की उत्तर दिशा में गुह्यक, यक्ष तथा दरद थे। (रा० १५६, १५९, ३१२) दक्षिण दिशा मे गान्धार, खश एव दर्व थे। (रा० १ ६६, ३१७) पूर्व-उत्तर दिशा में भौट्ट थे। (रा० १ ३१२) पूर्व-दक्षिण दिशा में किन्नर थे। (रा० १ १९९) पश्चिम दिशा में यवन, म्लेच्छ एव आर्यों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ थी। आर्य का अर्थ कल्हण ने हिन्दुओ से लगाया है। म्लेच्छो में मुसलमानो के साथ ही साथ अफगान, ईरान तथा तुर्किस्तान की जातियाँ थी। (रा० १ ३१२) किरात पर्वतीय जगलो में रहने वाली जाति

थी। (रा० ३ . ३९) राक्षस लका निवासी थे। (रा० ३ ७४) वे मनुष्यो जैसे थे। स्थापत्य एवं निर्माण कार्यों मे चतुर थे। शवर (रा० ३ . ३३) तथा निशाचर (रा० ३ . ३९) जंगली थे। वे पौराणिक जातियाँ थी। उनके स्थान तथा क्षेत्र विस्मृति-सागर मे डूब गए है। पिशाच तथा नाग जातियाँ काश्मीर की मूल निवासी थी। इसी प्रकार सिद्ध गणो (रा० ३ . ४५६) की भी एक जाति थी। खेचर (रा० ३ ४५०) जाति का भी मालूम होता है पुराणो के आधार पर कल्हण ने वर्णन किया है। (रा० १ · ६३, ६६, ६७, १५३, १५९, १९९, २९८, ३००, ३१२, ३१७, २ : १६५) कल्हण ने बेकाल जाति का भी उल्लेख किया है। (रा० ३ . ४८०) एक मत है। वंकाल शब्द बगाल का अपभ्रंश है।

धर्म : कल्हण कट्टरपथी नही था। वह उदार था। सहिष्णु था। भारत के अन्य भागो के समान काश्मीर में भी सम्प्रदाय, मत-मतान्तरो तथा पूजा-पाठ की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। भारत मे बौद्धधर्म का लोप हो चुका था। परन्तु काश्मीर मे उसकी मान्यता थी। शैव, वैष्णव, तान्त्रिक सभी बुद्ध को अवतार मानकर पूजा करते थे। बौद्धधर्म काश्मीर में तेरहवी शताब्दी तक रहा। आज भी काश्मीर के एक सूबा लद्दाख का वह धर्म है। कवि क्षेमेन्द्र ने कल्हण के एक शताब्दी पूर्व बुद्ध को अवतार मानकर वन्दना किया था। काश्मीर की जनता शुद्ध वैदिक धर्म के स्थान पर मत-मतान्तरो-तन्त्रो के चक्कर मे पड गयी थी। काश्मीर में शैव मत की प्रधागता थी। वह प्रधानता आज भी हिन्दू काश्मीरियों मे सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कल्हण इन सबका अपवाद नही था। वह शिव एवं बुद्ध दोनो की वन्दना करता है।

महाकवि होते हुए भी कल्हण पुरानी परम्परा का अनुकरण कर मंगलाचरणो मे गणेश एवं सरस्वती की वन्दना नही करता। तत्कालीन संस्कृत लेखको की परम्परा को तोडकर उसने अपनी मानसिक स्वतंत्रता के साथ प्रगतिशीलता का परिचय दिया है।

शिव के उस रूप की वन्दना की है जो एकागी नहीं है। केवल पुरुप या नारी मात्र नही है। केवल पुरुष एव प्रकृति मात्र दार्शनिक शब्दो मे नही है। वह पुरुष, प्रकृति, नर-नारी, पिता-माता दोनो का समन्वय है। अतएव वह अर्धनारीश्वर रूप है। अर्धनारीश्वर की कल्पना अद्भुत है। उसका दार्शनिक स्वरूप अत्यन्त भावोत्पादक है। आकर्पक है। तथ्यमय है। जो पुरुष एवं प्रकृति के रूप मे जगत को चलाता है, सृजन का जो मूल स्रोत है, जहाँ सहार एवं लय होता है, साथ ही जो माता स्वरूप पार्वती है, पिता स्वरूप शिव है, जहाँ शिव का योग है, जहाँ देवी पार्वती का स्नेह है, जहाँ शिव त्रिभुवन गुरु है, पार्वती माता है; जहाँ वह शिवभक्ति का वर्णन करता है वहाँ उसकी आन्तरिक भावना, उसकी अटूट श्रद्धा अपनी पूर्ण गरिमा में निखर आती है। (रा० २ · १२१–१७१)

तन्त्र : कल्हण प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अनुयायी था। वह शैव था। तन्त्र-मन्त्र मे विश्वास करता था। किन्तु उसने तत्कालीन तान्त्रिको की दुष्ट प्रवृत्तियो की आलोचना की है। तन्त्र साहित्य का अध्ययन किया था। सर्व प्रथम उसने मातृ चक्र का उल्लेख जलौक की पत्नी ईशान देवी के सन्दर्भ मे किया है। इससे ध्वनित होता है कि कल्हण के अनुसार अशोक के समय में बौद्धधर्म काश्मीर मे प्रवेश कर वृद्धि प्राप्त किया और उसके पुत्र के समय मे तन्त्रो का भी प्रचार हुआ। इस प्रकार बौद्धधर्म तथा तन्त्र एक साथ काश्मीर मे जड जमाने लगे। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह दोषपूर्ण है। तत्र का आरम्भ यद्यपि आधुनिक शोधों की सहायता से बहुत पहले ले जाया गया है किन्तु उसे अशोक के काल से संबधित करना उचित नही लगता। कदाचित् समकालीन बौद्धधर्म मे तंत्रो के व्यापक प्रसार के कारण ही कल्हण की ऐसी

धारणा बनी हो। बौद्धधर्म एव तंत्र दोनो चौदहवी शताब्दी तक काश्मीर में थे। नि सन्देह तन्त्र का प्रचार बौद्धधर्म की अपेक्षा अधिक हो गया था और हिन्दू राज्य की समाप्ति के साथ दोनो का लोप भी काश्मीर में हो गया।

कल्हण ने मातृचक्र का पुन उल्लेख प्रवरसेन के प्रसग में पुराधिष्ठान के सन्दर्भ मे किया है। (रा० २ ९९) कृत्या उपासना का भी वह उल्लेख (रा० १ १३७, १४७, ३ ३३) करता है। यहाँ यह निर्देश कर देना आवश्यक है कि तन्त्र तथा तन्त्री दो विभिन्न वर्ग थे। तन्त्री काश्मीर का एक सामाजिक वर्ग डामरों के समान था। तान्त्रिक लोग तन्त्र-क्रिया करते थे।

तन्त्र की अत्यधिक दुरूह पद्धति मत्स्यायूप याग कल्हण के समय तक प्रचलित था। उसका वर्णन कर तन्त्र ज्ञान का कल्हण परिचय देता है। (रा० ६ ११) इसी प्रकार वह गुरुदीक्षा प्रथा का उल्लेख करता है (रा० ६ १३) राघवानन्द ने पद्धति रत्नमाला मे काश्मीरो तान्त्रिको के इस सस्कार किंवा पद्धति का उल्लेख किया है। काश्मीर में महिलायें भी तान्त्रिक गुरु होती थी

कल्हण ने मत्स्य यज्ञ, अपूप याग विधि के प्रचारको तथा पोपको के लिए 'मूर्ख गुरु' शब्द का निन्दनीय प्रयोग किया है। वे आगम ग्रन्थो का कपोल कल्पित अर्थ, भाष्य एव टिप्पणी करते थे। राजा कलश के गुरु प्रमदकण्ठ ने धार्मिकता की आड लेकर रति सुख की ओर प्रेरित कर उसे कामी बना दिया था। कल्हण ने उसकी खुलकर निन्दा की है। (रा० ७ २७८) अपने गुरु के साथ तान्त्रिक क्रियाओ मे, अर्ध रात्रि में सम्पन्न की जाने वाली 'महासमय रात्रि' मे राजा मदपान करता था। (रा० ७ ५२३) राजा कलश से उसके तान्त्रिक गुरु ने अनुचित कार्य कराया था। (रा० ७ . ७१-) कल्हण ने इन तान्त्रिको का उपहास करते हुए उन पर व्यंग किया है।

कल्हण अभिचार क्रिया मे विश्वास करता था। अभिचार के कारण राजा का देव मोहित होना लिखा है। वह लोगो के अन्ध-विश्वास तथा भूत-प्रेत विश्वास का समर्थक नही था।

मन्त्र शक्ति देवी पूजा : तन्त्र के अतिरिक्त देवी एव शक्ति पूजा का भी प्रचार कल्हण के समय में था। सिंह वाहिनी देवी (रा० ३ ४१२) भ्रमर वासिनी देवी (रा० ३ ४१६ दुर्गा। रा० ८९-९३) योगिनी (रा० २ १००) और महायोगिनी (रा० १ १३१) का उल्लेख कल्हण ने किया है। अशोक ने म्लेच्छो के नाश हेतु तपस्या किया था। तपस्या किया था। तपस्या की शक्ति से उसे जलौक पुत्र प्राप्त हुआ था। (रा० १ १०७) मन्त्र सिद्धि में कल्हण विश्वास करता था। तारकेश्वर मन्त्र तथा वशी मन्त्र का प्रभाव वर्णन किया गया है। (रा० ३ ४६५, ४६६)

बलि प्रथा : बलि प्रथा काश्मीर में प्रचलित थी। देवी के सम्मुख बलि दी जाती थी। नर बलि भी होती थी। मैं काश्मीर के ग्रामों में घूम रहा था। एक स्थान की ओर सकेत किया गया। बताया गया कि वहाँ नरि बलि दी जाती थी। उस गाँव के निवासी सभी मुसलमान थे। पुरातन जनश्रुति लोगो को स्मरण थी। राजा मेघवाहन के सन्दर्भ में नरबलि की बात कही गयी है। (रा० ३ ८) चण्डिकापतन में देवी के सम्मुख बलि दी जाती थी। (रा० ३ ३३) योगेश्वरी भट्टा द्वारा राजा वक तथा उसका समस्त कुटुम्ब देवी चक्र पर उपहार स्वरूप चढा दिया गया था। (रा० १ ३३३) कल्हण ने उपहार एव बलि दोनो शब्दो का प्रयोग किया है। दोनो के अर्थों में भेद है।

धार्मिक क्रान्तियाँ : राजतरगिणी काश्मीर में समय-समय पर हुए धार्मिक विकास, परिवर्तन एव

क्रान्तियों का इतिहास प्रस्तुत करती है। यदि महाभारत काल से बारहवीं शताब्दी तक के काश्मीर राजाओ की राजकथा कल्हण ने लिपिवद्ध की थी तो उसने इसी काल के धार्मिक उथलपथल तथा उनके जनता, समाज और राज्य पर पडते हुए प्रभावो का भी वर्णन किया है। इस दृष्टि से विश्व के किसी भी इतिहासकार ने इतिहास नही लिखा है। कल्हण ने इतिहास को राजाओ किंवा राज्य के तिथिवार घटना-क्रम का संकलन नही माना है। उसने इतिहास मे जनता के मानसिक विचारो, उनके विकास, वृद्धि एव ह्रास की क्रमवद्ध घटनाओ को लिखा है। उनका देश की राजनीति एवं समाज पर क्या प्रभाव पडा है और पड सकता है, इसका विपद वर्णन किया है। अस्तु राजतरंगिणी का महत्व राजनीतिक इतिहास के साथ-ही-साथ धर्म एवं विचारो के विकास के इतिहास के लिये भी है। विश्व के पुरा कालीन इतिहासकारो ने राजनीति के साथ देश की मनःस्थिति पर कम प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से पुरानी शैली के इतिहासकारो के सम्मुख कल्हण ने नवीन शैली उपस्थित की है जिसमे प्रेरणा है, तथ्य है, स्फूर्ति है।

प्रथम धार्मिक क्रान्ति : काश्मीर म चार धार्मिक क्रान्तियाँ हुई है। ये शान्तिपूर्ण थी, अहिंसक थी, पश्चिम के रक्तमय उन्माद की कहानी उनमे नही मिलेगी। उनका साधन शक्ति नही था। वह वर्ष की ऋतुओ के सदृश आयी और चली गयी। उन्होने विघटनात्मक, द्वेषात्मक एव उन्मादात्मक, प्रचारात्मक प्रवृत्तियो एवं इतिहासो का सृजन नही किया। कल्हण ने इन क्रान्तियो का प्रारम्भ यक्ष विपलव, भिक्षु विप्लव आदि नामो से अभिहित किया है। उसने क्रान्ति के स्थान पर विप्लव शब्द का प्रयोग किया है।

काश्मीर मे सर्व प्रथम नील मुनि द्वारा प्रचारित नाग पूजा प्रचलित थी। नील मत पुराण द्वारा प्रतिपादित धर्म काश्मीर का धर्म था, पूजा पद्धति थी। सम्राट अशोक के समय मे सर्वप्रथम वौद्ध धर्म का जोर काश्मीर में हुआ। राजाश्रय प्राप्त कर वह वृद्धि कर गया। अशोक ने विहारो, चैत्यो, स्तूपो से काश्मीर-मण्डल को भर दिया था। वौद्ध शासन का प्राबल्य हो गया। काश्मीर का पुरातन सनातन धर्म पीछे पड गया।

प्रथम क्रान्ति का प्रणेता अशोक का पुत्र जलौक था। उसने भिक्षु विप्लव को रोका। इसका पहला साधन शास्त्रार्थ था। राजा जलौक का गुरु एक अवधूत था। गुरु अवधूत ने वौद्ध विद्वानो को शास्त्रार्थ मे पराजित किया। (रा० १ : ११२) राजा जलौक अपने पुण्य-कार्यों एव पुरातन धर्म की पुनर्स्थापना एव वौद्धो के दलन के कारण नन्दीश्वर का अवतार काश्मीर में मान लिया गया। (रा० १ : १३०) उस समय काश्मीर मण्डल मे वौद्धो का प्रावल्य था। वौद्ध धर्म की मान्यता थी। (रा० १ १:८) कल्हण ने भगवान बुद्ध को उनके मूल वंशीय नाम महाशाक्य से सम्बोधित किया है। (रा० १ : १४१) राजा जलौक के समय मे भी वौद्ध धर्म के दलन की झलक मिलती है। विहारो का निसन्देह दलन किया गया था। (रा० १ : १४०-१४४)

राजा जलौक स्वत. अहिंसक था। कृत्या के मास माँगने पर उसने अपना मास काट कर देना उचित समझा था। उसने वोधिसत्व के शासन एवं कर्मों की स्वय जिज्ञासा कर शान्ति पूर्वक सुना था। तथापि उसने सहिष्णुता का परिचय दिया था। उसे वोधिसत्व स्वरूप ही मान लिया गया था।

ज्येष्ठेश की पूजा के समय नृत्य-गीत कुशल एकसौ अन्त.पुर की महिलाओ को मन्दिर मे नृत्य, गान एवं सेवा के लिये नियुक्त किया था। काश्मोर के इतिहास मे यह प्रथम अवसर था जव मन्दिरो मे नृत्य गानशील महिलाओ का देव सेविका के रूप मे प्रवेश हुआ था। वह प्रथा कालान्तर मे देवदासी की कुप्रथा में परिणत हो गयी।

द्वितीय धार्मिक क्रान्ति : राजा अभिमन्यु के समय में द्वितीय क्रान्ति हुई थी। इस समय भी बौद्ध अत्यन्त प्रबल हो गये थे। (रा० १ १७१) भिक्षु विप्लव से काश्मीर त्रस्त था। (रा० १ १७२-१८१) प्रसिद्ध दार्शनिक प्रचारक नागार्जुन इस समय काश्मीर मण्डल में वर्तमान था। उसकी तुलना बोधिसत्व से की जाती थी (रा० १७३-१७७) नीलमत विहित कर्मकाण्ड, नाग यात्रा, नाग-पूजा, यज्ञादि जो प्राचीन काल से होते चले आते थे बन्द हो गये। संस्कृत भाषा भी पालि के सम्मुख दब गयी थी। पाली मुसलमानो की अरबी की समान बौद्धो की धार्मिक भाषा थी।

बौद्ध वेद द्वेपी थे। उन्होने शास्त्रार्थ में पण्डितो को परास्त कर नील मत विहित मत का उच्छेद कर दिया था। आतकित राजा छ मास तक काश्मीर मण्डल त्याग कर, दर्वाभिसार में समय व्यतीत करता था। पुरातन धर्म की रक्षा हेतु काश्यप गोत्रीय चन्द्रदेव ब्राह्मण ने तपस्या की। नील नाग उसकी तपस्या से प्रसन्न हो गये। (रा १ १८२) पुरातन काल में आद्य चन्द्रदेव विद्वान ने यक्ष विप्लव शान्त किया था। दूसरे चन्द्र देव ने बौद्ध विप्लव शान्त किया। (रा० १ १८५-१८६)

तृतीय धार्मिक क्रान्ति : तृतीय क्रान्ति बौद्ध प्राबल्य को पुन रोकने के लिये राजा किन्नर, सिद्ध, गोपादित्य, सन्धि मति के काल में हुई थी। बौद्ध विहारो को भस्म करने का भी उल्लेख इस समय मिलता है। (रा० १ : २००) राजा सिद्ध ने शैव मत को पुन स्थापित किया था। (रा० १ २७६) गोपादित्य ने वर्णाश्रम धर्म परिपालन हेतु ठोस कदम उठाया था। तथापि अहिंसा व्रत का त्याग नही किया गया। बलिप्रथा का सक्रिय विरोध होता रहा। (रा० १ ३४४) सन्धिमत के समय शैव भक्ति का पूर्णरूपेण काश्मीर मण्डल में प्रचार हो गया। (रा० २ १३२)

कल्हण ने विष्णु का सर्वप्रथम उल्लेख प्राग्ज्योतिष के सन्दर्भ तथा राजा मेघवाहन के विवाह-सम्बन्ध में किया है। (रा० २ : १४७) विष्णु पूजा का प्रवेश बाहरी प्रभाव के कारण काश्मीर मे हो सका था। मेघवाहन की रानी अमृतप्रभा थी। बगाल तथा आसाम में वैष्णव मत का प्रभाव था। एतदर्थ विष्णु का प्रवेश काश्मीर मे रानी अमृत प्रभा तथा रानी रणा रम्भा के कारण हुआ। परन्तु वह शिवपूजा तथा उपासना के समान सर्वमान्य नही हो सका।

चतुर्थ धार्मिक क्रान्ति : चतुर्थ धार्मिक क्रान्ति राजा मेघवाहन के समय में हुई थी। इस काल में बौद्ध मत का प्रचार पुन हुआ। परन्तु शैव मत का विरोध इस बार नही हो सका। शैव तथा बौद्ध मतावलम्बी समझ गये थे। दोनो को एक साथ काश्मीर में रहना था। अतएव दोनो मत बहुत समीप आने लगे। मेघवाहन ने शैव उपासना का विरोध नही किया। उसका एकमात्र उद्देश्य था जगत में भगवान् बुद्ध के आदेशानुसार जीव हिंसा बन्द करना।

मेघवाहन अपने उत्तम आचरण तथा कर्मो से बोधिसत्वो के कार्यो से भी आगे बढ गया था। उसने भिक्षुओ तथा उपासको के लिये नद वन विहार स्थापित किया। भगवान् बुद्ध जेतवन, आम्रवन, तथा वेणु वन आदि विहारो मे निवास करते थे। प्रतीत होता है उसी का अनुकरण कर मेघवाहन ने नदबन विहार स्थापित किया था। (रा० ३ १२) उसके समय में अहिंसा मर्यादा का पटह घोष किया गया था। उसकी रानी अमृत प्रभा के पिता का गुरु स्तुन्या था। वह लोट अर्थात् लद्दाख दिशा से आया था। उसने लो स्तुन्या स्तूप स्थापित किया। (रा० ३ १०)

राजा ने विश्व के इतिहास का एक अभिनव अभियान आरम्भ किया। उसने दिग्विजय कर विश्व

में प्राणि हिंसा निषेध करने का निश्चय किया। (रा० ३ · २७) दक्षिण समुद्र तट पर मेघवाहन का शिविर पडा था। एक शवर चणिकायतन मे नरबलि करने के लिये सन्नद्ध था। उस समय राजा ने स्वयं अपना शरीर अर्पित कर हिंसा से शबर को विरत किया था (रा० ३ · ५७) उसने ब्राह्मण बालक की रक्षा के लिये स्वयं अपना शरीर वलि के लिए अर्पित कर प्राणि रक्षा का स्तुत्य प्रयास किया था। (रा · ३ : ८८) राजा ने राक्षसो से भी अहिंसा बल लेकर उन्हे हिंसा कर्म से विरत किया था। (रा० ३ : ७८-७९) राजा ने अपने राज्य तथा भारत वर्ष में महाघोष कराया कि कोई भी प्राणी क्यो न हो वे सब अवध्य है। (रा० ३ : ८८)

मेघवाहन ने सर्व प्रथम काश्मीर में बुद्ध प्रतिमा अपनी पत्नी भिन्नो के विहार मे स्थापित किया था। (रा० ३ : ४६४) मेघवाहन का जन्म गान्धार में हुआ था। गान्धार प्रदेश मे महायान सम्प्रदाय का प्राबल्य था। कनिष्क के कारण अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तक बौद्ध धर्म पहुँच गया था। गान्धार शैली का स्थापत्य विकसित हो चुका था। मेघवाहन गान्धार मे रहने के कारण उनसे प्रभावित था, अतएव मेघवाहन ने भगवान् बुद्ध की प्रतिमा काश्मीर मे स्थापित की। इस प्रकार उसने प्रतिमा स्थापन की परम्परा चलायी। वह सम्राट् अशोक तथा कनिष्क के पश्चात् तीसरी महान भारतीय आत्मा था जिसने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु सक्रिय पग उठाया था। उसने प्रचार के लिए राजशक्ति का आश्रय लिया था।

कल्हण ने विस्तार के साथ इस काल के क्रान्तिकारी धार्मिक परिवर्तनो का उल्लेख किया है। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तो को भी संक्षेप मे देने का प्रयास किया है। कल्हण के इस व्यापक ज्ञान से प्रतीत होता है कि उसने तत्कालीन मत-मतान्तरो एवं सम्प्रदायो का गहन अध्ययन किया था। उसने तन्त्र, योग, धर्म, मतादि के विषय में जहाँ भी लिखा है, साधिकार लिखा है। उसने चार हजार वर्षों के धार्मिक इतिहास को भी राजनीतिक इतिहास के साथ लिपिबद्ध किया है।

निरपेक्ष चिन्त विद् कल्हण रूढवादी नही था। मौलिकता उसके छन्दो मे, उसके विचारो मे परिलक्षित होती है। वह लकीर का फकीर नही था। वह रचना के लिये रचना नही कर रहा था। वह जगत को कुछ नवीन स्फूर्तिदायक, सजीव विचार देना चाहता था। इसमे वह सफल हुआ है।

कल्हण ने मगलाचरणो में अन्य कवियो के समान प्रार्थना किवा याचना नही किया है। उसका मंगलाचरण उसके मौलिक विचारो एवं मनोभावनाओ का परिचायक है। वह कर्म पर विश्वास करना चाहता है। पाठको को कर्मशील बनाकर उन्हे यशस्वी देखना चाहता है। प्रथम तरंग के मगलाचरण में वह पाठको के 'यश' की कामना करता है। द्वितीय तरंग के मंगलाचरण मे अर्धनारीश्वर के शरीर निर्माण की 'जय' करता है। तृतीय तरग मे पाठको की 'रक्षा' की कामना करता है। चौथे तरंग मे वह 'कल्याण' की कामना करता है। पंचम तथा षष्ठ तरंग मे पुन· पाठको की 'रक्षा' की कामना करता है। सप्तम तरग में जगत की 'प्रसन्नता' और अष्टम तरंग मे 'पापो के नष्ट' करने की कामना करता है।

मंगलाचरणो में उसने अपने लिये कुछ याचना नही किया है। वह पाठको के 'यश', 'जय', 'रक्षा' 'कल्याण', 'प्रसन्नता' एवं 'पापक्षय' की कामना करता है। वह कर्म पर विश्वास करना चाहता है। परन्तु-घटना-क्रमो ने, उनके अनहोनेपन ने, उसे दैववादी बना दिया। वह दैवी शक्ति में, भाग्य में, विश्व के तत्कालीन लेखको के समान विश्वास करने लगा था। (रा० १ : ३२४, २ : ७६, ७७, ७८, ९२, ९३, ३ : १९६, १९७, ४८७, ४९१, ४९३)

विधाता के विधान के औचित्य की उसने खुलकर आलोचना की है। वह क्षण मात्र के लिये भी भयभीत नही हुआ था कि वह उसी की आलोचना कर रहा था। उसे अप्रसन्न कर रहा था, जो उसका भी विधाता था। विधाता क्यो अन्याय होने देता है ? पुण्यात्मा क्यो कष्ट पाता है ? निर्दोप प्राणी क्यो दु खो, यातनाओ का पात्र बना दिया जाता है ? मानव क्यो मानव पर क्रूरता करता है ? पाशविक वृत्ति का क्यो आश्रय लेता है ? आदि प्रसगो को उठाकर भगवान की कटु आलोचना करने में वह संकोच नही करता। (रा० ५ ५४५, ६ २७५, २७७, १३२९, १४३९, ८ · १६७, २३७, १२७५, १७९०)

विधाता की आलोचना करते-करते कल्हण की लेखनी उपदेशात्मक हो जाती है। जव वह किसी घटना के औचित्य का कोई कारण नही दे सकता है तो यह कह कर छुट्टी ले लेता है कि सव विधाता की इच्छा से होता है। (रा० २ ९२, ३ ४९२, ७ ९१६, १०७०, १७३९, १६२९, ८ २२०, ६०७, १०३६, १२७४) इन स्थानो पर पुराणो एव महाभारत में मापीपुर की नाग कन्या, परोक्षित, कच, ताक्ष्र्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, आदि का उदाहरण उपस्थित कर, विधाता के विधान की पुष्टि कर देता है। अलौकिक एव विचित्र घटनाओ के घटना का स्पष्टीकरण शब्द प्रमाण से देता है।

भाग्यवादी किन्तु कर्म मे विश्वास : कल्हण कर्मवाद का समर्थन करते-करते अन्त में भाग्य-वादी बन जाता है। उसने शुभा-शुभ कर्मो और तदनुसार उनके परिणामो में दृढ विश्वास प्रकट किया है। वह कहता है—प्राणी अपने भाग्य की गति वदलने के लिये जिन साधनो का आश्रय लेता है वे ही उसकी भाग्य गति के साधन हो जाते है।' इसका उदाहरण उसने जयसिंह, सन्धिमति, कलश, मिहिर कुल तथा उम्मत वन्ती से दिया है। (रा० ८ ३४०५, २ ७७, २ ६५, ७ ५०६, १ ३२५, ५ ४४८, ७ ९५९, १२८८, १३७२)

कल्हण जिस प्रकार प्राणियो को उनके विपत्तियो का कारण प्राक्तन एवं इस जन्म का किया पाप मानता है, उसो प्रकार देश किवा जनता पर विपत्ति आने का कारण जनता का पाप कर्म मानता है। (रा० १ ८७ ४ ३९) तथापि जयापीड का उदाहरण देकर वह यह मत उपस्थित करता है कि पुरुषार्थ एव आत्मविश्वास द्वारा भाग्य पर, दैव पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। (रा० ४ ४१३) वह इस मत का भी प्रतिपादन करता है 'बली अपने बल पर, विश्वास करता है और उसे करना चाहिये।
(रा० ७ १२८८)

कर्म तथा पुनर्जन्म में कल्हण विश्वास करता है। मनुष्य के शरीर का तिल जिस प्रकार उसका साथ शरीर भस्म होने तक नही त्यागता उसी प्रकार सस्कार एव कर्म मानव का साथ नही त्यागते। मानव अपने पूर्व जन्म के पाप, पुण्य एव कृते का फल भोगता है। वह अपने पूर्व कर्म का परिणाम ही है। कर्म के कारण, वासता के कारण मानव पुनर्जन्म ग्रहण करता है। (रा० ३ १३१, ४२४, ४३०)

भाग्य, कर्म, पुरुषार्थ, आत्म विश्वास सवका निष्कर्ष निकालकर, कल्हण सन्देश देता है—'चाहे कोई भी भाग्य कैसा क्यो न हो, विधाता ने चाहे जो लिख रखा हो केवल आत्म विश्वासी एव सबल राजा काश्मीर की रक्षा कर सकता है।'

धर्म भीरुता : कल्हण की धार्मिक प्रवृत्ति थी। उसने जहाँ भी कही देव स्थान, पूजा, उपासना, वन्दना, देव शृ गार, अर्चना का वर्णन किया है, वहा उसकी भाषा पवित्र प्रभावोत्पादक तथा साफ सुथरी निखरी है। कल्हण गुरु परम्परा में विश्वास करता है। परन्तु अपने गुरु का नाम नही देता। हिन्दू परम्परा

के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को गुरुमुख, गुरुमन्त्र किंवा गुरु दीक्षा के लिये गुरु चयन कर लेना चाहिए। गुरु-पूर्णिमा का पर्व ही गुरु पूजा के लिये अभिहित है। कल्हण अपने किसी शिक्षक का भी नाम नही देता। किन्तु गुरु शब्द का जहाँ भी कही उसने प्रयोग किया है अत्यन्त श्रद्धा के साथ किया है। बुद्ध, वर्ण, त्रिभुवन, उग्र, आदि के लिये गुरु का प्रयोग कर अपनी श्रद्धा का परिचय दिया है।

कल्हण धर्म भीरु था। परिहासपुर के पवित्र वातावरण, विशाल मन्दिरो की शृंखला, परिहास, केशव, बुद्ध मन्दिरो आदि मे होते पूजा-पाठ, राग-भोग, सेवा-सुश्रूषा, सगीत, नृत्य, वन्दना, प्रवचन, कथा, नाटक, उत्सवो एव यात्राओ का उस पर बाल्यावस्था से ही प्रभाव पडता आया था। धार्मिक वातावरण मे रहने के कारण उसका सस्कार धार्मिक हो गया था। वह हिन्दू तथा बौद्ध दोनो विद्वानो के सम्पर्क में आया था। साधु-सत, योगियो, भिक्षुओ आदि के सानिध्य के कारण उसमे जगत के प्रति विराग की भावना परिलक्षित होती है। वह सर्वदा संसार की निस्सारता की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करता है।

कल्हण ने राजाओ को उनके पाप के कारण दण्डित होने का क्रमबद्ध उदाहरण उपस्थित किया है। दण्ड देनेवाले राजा को भी दण्ड देने वाली अव्यक्त शक्ति है, इसका उसने उत्तमता के साथ प्रतिपादन किया है। अधर्म द्वारा अर्जित सम्पत्ति पुण्य कार्यो मे व्यय करने पर अधर्म का निवारण होता है, कल्हण ने इसका ध्यान सर्वदा राजा तथा जनता को दिलाया है। (४ . ७०१)

क्षण-भंगुरता : कल्हण के वर्णन मे जगत की क्षण-भगुरता की भावना पद-पद पर परिलक्षित होती है। (रा० १ २३) वह जगत की क्षण भंगुरता के कारण भाग्यवादी बन जाता है। तत्कालीन समाज मे सुधार तथा गिरते चरित्र को उठता न देखकर वह निराश हो जाता है। भविष्य की घटनाओ पर नियन्त्रण न होने के कारण ने उसे भाग्यवादी बना दिया था। राजनीतिक उथल-पथल, उलट-फेर, पद-प्राप्ति एव पदच्युत होना, सासारिक वैभवो की असारता ने उसे क्षण भंगुरता के सिद्धान्त की ओर आकृष्ट कर दिया था। राज सुख की अनिश्चितता, लक्ष्मी की चंचलता, मानवो की पराश्रयता, पद लोलुपता, विश्वासघात, कृतघ्नता, अकारण क्रूरता, नैतिक नियमो का किंचित स्वार्थ के लिये उल्लघन, स्वार्थसिद्धि हेतु उत्पीडन, घटनाओ का अनजाने घटना, होनी का अनहोनी होना आदि के उदाहरणो के कारण वह क्षणभंगुरता की ओर खिचता गया है। जीवन का ठिकाना न होना, अल्पायु, अकाल मृत्यु, स्वस्थ का अकस्मात रोग के कारण कालकवलित होना, सभी वस्तुओ का नाश, उनका क्षण-क्षण परिवर्तन, परिस्थितियो से बाधित समस्याओ का विचित्र रूप से खडे हो जाना आदि का प्रभाव उसके सरल मस्तिष्क पर उसकी शैली मे दिखायी देता है। (रा० ५ ७)

जगत की क्षणभगुरता का रहस्य अवसर आते ही पाठक पर प्रकट करता है। भगवान बुद्ध का उपदेश—जिसका जन्म हुआ है उसका अन्त होगा और जिसका अन्त होगा उसका पुन. जन्म होगा, जिसका उदय होता है उसका अस्त होगा और सभी धर्मों का कारण कोई हेतु होता है, गर्भ का बालक, युवा होगा, प्रौढ होगा। वृद्ध होगा, जन्म जरा, व्याधि एवं अवसान से कोई बच न सकेगा—उसे विराग के साथ ही साथ क्षण भंगुरता की ओर उन्मुख कर दिया है। क्षण भंगुरता का यह दर्शन कल्हण के तात्कालिक जीवन कठोर जीवन के अनुभवों को बताता है।

देश-प्रेम : कल्हण की आत्मा काश्मीर के कण-कण में व्याप्त थी। उसने जहाँ भी कही कश्मीर का उल्लेख किया है वहाँ देश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति अपनी पूर्ण गरिमा मे प्रकट हुई है। जहाँ भी कही उसने सम्राट कनिष्कादि से काश्मीर भूमि को प्रणाम कराया है वह स्थल संस्कृत साहित्य मे भाव-व्यंजना की दृष्टि

से अत्यन्त उच्चकोटि का हुआ है। (रा० १ २६-७२) राजा युधिष्ठिर तथा उसकी रानियाँ काश्मीर भूमि का अन्तिमदर्शन कर विदा होती है तो देश प्रेम, देश वियोग का जो करुण चित्रण कल्हण ने किया है वह विश्व-इतिहास के किसी भी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जायगी। (रा० १ ३६६-६७३) काश्मीर के लिये कल्हण ने माता शब्द का प्रयोग किया है। (रा० ३ ८६) उसने काश्मीर मण्डल के लिये 'काम्य' शब्द का उल्लेख किया है। उसने काश्मीर देश तथा भूगोल वर्णन आध्यात्म से मिला दिया है। पुण्यभूमि काश्मीर की गरिमा इतनी श्रद्धाभक्ति के साथ प्रकट की है कि उसे पढकर रोमाच हो जाता है। (रा० १ : ४३) उसकी देश भक्ति उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब भगवान श्रीकृष्ण के मुख से एक पुरातन पुराण वचन उद्धृत कराया है—'कश्मीर पार्वती स्वरूप है और वहाँ का राजा हर का अश है।' (रा० १ ७२) कृष्ण गोनन्द तथा दामोदर युद्ध का वर्णन, कश्मीर सेना का अभियान प्रेरणा एव स्फूर्तिप्रद पद कहे जायेंगे। (रा० १ ५७-५८)।

काश्मीर की अजेय शक्ति पर गर्व करना कल्हण कहता है—'कश्मीर पर बल द्वारा नही केवल पुण्य द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। वहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत होते है न कि शस्त्रधारियो से।' उसने विश्व को चुनौती दी है। चार सहस्र वर्षो से स्वाधीनता का भोग करने वाले काश्मीरी कभी बाहरी शक्ति के सम्मुख न झुकने वाले काश्मीरी, शस्त्रो के सम्मुख कभी मस्तक नही झुकाये थे। (रा० १ ३९)।

किन्तु उसने काश्मीरियो के उत्तरकालीन भीरुता, पक्षपात, दुराग्रह, कलह, अर्थहीन, सघर्ष क्षुद्रता, हृदयदौर्बल्य, सैनिको की कायरता, विश्वासघात आदि का नि सकोच वर्णन एव निन्दा की है। ब्राह्मण के दोषो की खुलकर निन्दा तथा राजपूतो के वीरता की प्रशसा की है। (रा० ३ ४२५) देश के चरित्र की राष्ट्रीय दुर्बलताओ का ध्यान रखते हुए भी उसे विश्वास था कि उसका काव्यमय इतिहास तत्कालीन एव भविष्य के राजाओ, देशभक्तो को काश्मीर के महान राजाओ का, महान व्यक्तियो मे तथा महान पूर्वजो की श्रेणियो मे बैठाने योग्य बनायेगा।

काश्मीर की सुरक्षा भावना के प्रति कल्हण विशेष जागरूक था। उसने यही सदेश दिया था—'काश्मीर यदि अरक्षित हो गया तो सब कुछ नष्ट हो जायगा।' अशोक जैसे सम्राट ने काश्मीर की म्लेच्छो से रक्षा हेतु जलौक पुत्र की प्राप्ति के लिये तपस्या की थी। (रा० १ १०७) जलौक ने उज्झट डिम्ब स्थान पर म्लेच्छो का सहार किया था। (रा० १ : ११६) कश्मीर ने यह सतर्कता त्याग दी तो उसे सबकुछ से हाथ धोना पडा।

इतिहास : इतिहास की महत्ता प्राचीन काल से रही है। वेदो का भाष्य करते समय ऋषियो ने बार-बार प्राचीन 'ऐतिह्यो' पर ध्यान आकृष्ट किया है। विश्व के विद्वानो ने सस्कृत वाङ्मय की सर्वांग परिपूर्णता से प्रभावित होकर उसकी प्रशसा की है। किन्तु श्री कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानो ने 'ऐतिह्य' बुद्धि का भारतीयो मे अभाव होना लिखा है। उनका मत है, प्राचीन भारत में इतिहास लिखने की परम्परा नही थी। इतिहास के रूप मे लोग इतिहास से अपरिचित थे। किन्तु भारत में इतिहास का लक्षण कुछ अपना था। उसके अनुसार इतिहास का प्रणयन होता रहा है।

छान्दग्योपनिषद में नारद : सनत्कुमार सवाद मे इतिहास, पुराण पचम वेद है। इस सकेत से इतिहास अध्ययन की बात सुस्पष्ट कही गयी है। यास्क ने निरुक्त म 'इति ऐतिहासिका' कहकर पुरा वृत्तियो का स्मरण किया है।

वेदो के आख्यानो मे ऐतिहासिकता है। तिथि तथा वर्प के अभाव में उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। प्राचीन काल मे 'ऐतिह्य बुद्धि की सत्ता स्वीकार की गयी है। वही कालान्तर में परिवर्तित होकर इतिहास के रूप मे आज वर्त्तमान है।

प्राचीन भारत मे इतिवृत्त को रस के अनुकूल परिवृत्त कर काव्य के रूप में प्रथित करने की प्रथा थी। उनके परिणामस्वरूप अनेक ऐतिहासिक नाटक एवं महाकाव्यों की रचना की गयी। कौमुदी महोत्सव से गुप्त कालीन इतिहास पर प्रकाश पडता है। वाण प्रणीत हर्पचरित में हर्प के इतिहास का निर्विवाद निर्णय प्राप्त होता है। प्रवरसेन का प्राकृत भाषा मे ग्रथित ऐतिहासिक महाकाव्य सेतुबन्ध प्रख्यात काव्य है। कान्यकुब्जाधिपति आश्रित वाक्पति राज ने ऐतिहासिक काव्य गउडवाहो लिखा है। वादिराज ने यशोधर चरित लिखा है। वह ऐतिहासिक एव धार्मिक दृष्टि से सुन्दर काव्य है। कल्हण ने स्वय शंङ्कुक कृत भुवनाभ्युदय का उल्लेख किया है। यह अप्राप्य ग्रन्थ है। उसमे मम्योत्पल के युद्ध का सुन्दर वर्णन है। पद्मगुप्त परिमल का नव साहसाक चरित ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। हेम चन्द्र का 'छ्वयाश्रय' काव्य ऐतिहासिक है। मखक का श्री कठ चरित तथा जल्हण प्रणीत सोमपाल चरित इतिवृत्त परक काव्य है। रामपाल चरित, विक्रमाकाभ्युदय चरित, पृथ्वीराज विजय, जयन्त विजय, सुकृत सकीर्तन, हम्मीर मद मर्दन, वसन्त विलास, सुरतोत्सव, कीर्ति कौमुदी, भोट्टपराज, चन्द्रप्रभा आदि ग्रन्थो में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। इस प्रकार इतिहास को आधारभित्ति वनाकर काव्य की रचना करने वाले कवियों की एक विशाल परम्परा है। ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रणेताओ में महाकवि विल्हण का नाम उल्लेखनीय है। उसने चालुक्य वंशीय विक्रमादित्य षष्ठ को अपने महाकाव्य का नायक वनाकर अमर कर दिया है।

इतिवृत्त मिश्रित काव्यकर्त्ता अनेक हुये है। किन्तु इतिवृत्त को प्रधान बनाकर रचना करने वाले और तिथि वर्ष का सम्यक् उल्लेख करने वाले कवियो की परम्परा कुछ क्षीण रही है। जो थे उनके ग्रन्थ अबतक प्रकाश मे नही आये है। उनका केवल नाम मात्र अवशिष्ट हैं। राजतरगिणी एक सच्चे इतिहासकार की कृति है। कल्हण सहृदय कवि है। उसने इतिहास को भी पूर्ण रूपेण काव्यमय बनाने का प्रयास किया और सफल हुआ है। यदि कवि की प्रतिभा का मूल्याकन किया जाय कि वह कहाँ तक कवि है और कहाँ तक इतिहासकार तो किसी एक निश्चय पर पहुँचना कठिन प्रतीत होता है। कवि एवं इतिहासकार जिस दृष्टि से विचार किया जाय कल्हण को दोनो मे पारगत पाते है। वह ऐतिहासिक एवं महाकाव्यकार दोनो है। उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। उसने राजाओ के काल, समय एवं स्थानो को जो अस्थिर थे, अनियमित थे, निश्चित नही थे, उन्हे निश्चित एवं स्थिर किया है। पाठको की उदात्त भावनाओ को जागृत किया है। उसने नीति वचनो का प्रयोग कर काव्य को हलका बनाने की अपेक्षा गम्भीर एवं उपदेशात्मक वना दिया है।

कल्हण ने वेद की इस महत्त्वपूर्ण परंपरा मे रचना का उत्तरदायित्व उठाया था। उसकी आरम्भ की गयी परम्परा आगामी पाँच शताब्दियो तक चलती रही। उसने जिस तरगिणी को जीवन दिया था उसे जोनराज, श्रीवर, प्रजाभट्ट एव शुक काश्मीर मे प्रथम बार विदेशी मुगल शासन स्थापित होने तक कायम रखे। विश्व इतिहास मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता कि इतिहास लिखने की परम्परा एक ही पुस्तक का लेखन-क्रम पाँच शताब्दियो तक अविच्छिन्न गति से चलता रहा। यह तरगिणी उसी समय सूखी जब काश्मीर की स्वाधीनता भी सूख गयी।

कौटिल्य की परिभाषानुसार राजतरंगिणी इतिहास है। कौटिल्य न इतिहास मे पुराण, इतिवृत्त,

आख्यायिका, उदाहरण, धर्म एवं अर्थशास्त्र का समावेश किया है। जैन आदि पुराण इतिहास की परिभाषा करता है—जो हुआ है वही इतिहास है। हर्ष चरित, गउड वाहो, नव साहसाक चरित, विक्रमाक देवचरित, कुमारपाल चरित आशिक इतिहास हैं। कल्हण के पश्चात् पृथ्वीराज विलास, सोमपाल विलास, कृति कौमुदी, प्रयावक चरित, सुकृत सकीर्तन तथा प्रबन्ध चिन्तामणि, इसी प्रकार की रचनायें हैं। इनमे कुमारपाल, वस्तुपाल, रामपाल, विक्रमादित्य, सिन्धुराज का उल्लेख है। हिन्दी ग्रन्थो मे पृथ्वीराज रासो, वीसल देव रासो आदि भी आशिक इतिहास ग्रन्थ हैं।

पूर्व महाभारत कालीन इतिहास गन्थ नही मिलते। कल्हण इसलिए अपना इतिहास महाभारत काल से आरम्भ करता है। काश्मीर में आर्यों के पूर्व नाग एव पिशाच रहते थे। कल्हण जलोद्भव असुर के बध की कथा पौराणिक शैली से देकर, काश्मीर उपत्यका को बारहमूला के समीप से जल निकालकर, उसके सूखी भूमि हो जाने के समय तथा तुरन्त उसके पश्चात् गोनन्द प्रथम का उपाख्यान आरम्भ कर देता है। (रा० १ २६-२७, ५९-७३)

इतिहास प्रयोजन कल्हण इतिहास रचना का कारण उपस्थित करता है। पूर्व कालीन इतिहास-ग्रन्थो का नाम नही देता। केवल कहता है--पूर्व कालीन इतिहास ग्रन्थ विस्तृत थे। सुव्रत ने विस्तृत इतिहास ग्रन्थ को सक्षिप्त किया। (रा १ ११-१२) अतएव प्राचीन इतिहास लुप्त हो गये, छिन्न हो गये। गोनन्द तृतीय के परवर्ती ५२ महीपति, जो कलियुग मे कौरव एव पाण्डवो के समकालीन थे, उनका लेखा लुप्त हो गया है। (रा० १ . १६, ४४) कवि क्षेमेन्द्र ने नृपावली की रचना की। वह काव्य रचना है। किन्तु अनवधानता के कारण उसमे इतनी त्रुटियाँ रह गयी हैं कि उसका कोई भी अश निर्दोष नही कहा जा सकता था। (रा० १ १३) यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नही आया है। पाशुपत व्रती हेला राज में १२ सहस्र श्लोको की 'पार्थिवावली' लिखी। (रा० १ १७) तत्पश्चात् पद्ममिहिर ने हेलाराज की रचना का अध्ययन कर अशोक के पूर्ववर्ती आठ राजाओ का वर्णन किया है। (रा० १ १८) इस इतिहास का कल्हण नाम नही देता। श्री छविल्लाकर ने अशोक के पश्चात् जिन पाँच राजाओ का वर्णन किया है वे लुप्त बावन राजाओ में से हैं। (रा० १ १९) श्री छविल्लाकर के इतिहास का नाम कल्हण नही देता। गोनन्दादि चार राजाओ का वर्णन नीलमत पुराण से लिया गया है। (रा० १ १६) कल्हण के समय तक राजकथा विषयक ग्यारह ग्रन्थ थे। (रा० १ १४) कल्हण उन ग्रन्थो का नाम नही देता। कल्हण ने सुव्रत के इतिहास का भी नाम नही दिया है।

कल्हण ने अपने रचना-स्रोत का भी उल्लेख किया है। (रा० १ १५) प्रारम्भिक तरग अनुश्रुतियो पर आधरित हैं। ललितादित्य की मृत्यु का वर्णन उसने अनुश्रुति के आधार पर किया है। (रा० ४ ३६७-३७१) यशस्कर की मृत्यु का उल्लेख भी अनुश्रुति के आधार पर किया है। (रा० ६ ९०, ११३) वह अपने इतिहास लिखने का उद्देश्य स्वय देता है—'इस ग्रन्थ को लिखने की मेरी यह योजना है कि मैं सर्वांगीण, पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ जहाँ पुरातन इतिहास-लेखको की रचनायें विशृंखलित है।' (रा० १ १०)

काश्मीर महाभारत काल से कल्हण तथा उसके पश्चात् अकबर के समय तक किसी विदेशी सेना से पदाक्रान्त नही हुआ था। सन् १३३९ ई० में अन्तिम हिन्दू शासिका कोटा रानी को हटाकर शाह मीर काश्मीर का राजा बना, काश्मीर मुसलमान धर्म में परिवर्तित हो गया परन्तु काश्मीर मे काश्मीरी मुसलमानो का ही शासन रहा। काश्मीर प्रकृति की सुषमा में सुरभित रहा। यदि कल्हण के मन में ४२२५ वर्षों

के गौरवमय इतिहास लिखने की कल्पना उदय हुई तो कोई आश्चर्य की बात नही है। उसने कारण भी दिया है। उसने अनुभव किया था कि कितने ही काश्मीर के राजा विस्मृति सागर मे डूब गये थे। कवियो की कृति के कारण कुछ की स्मृति शेष रह गयी थी। कवि या रचनाकार अपनी रचनाओ के कारण स्वय जीवित रहता है और दसरो को भी जीवित रखता है। राजकीय पद एवं चकाचौध मे रहने वाले महामात्यो, मन्त्रियो, सेनानायको की असख्य संख्या लोप हो चुकी है। किन्तु कल्हण स्वयं जीवित रहना चाहता था। इसमें नि सन्देह वह सफल हो पाया है। वह इसलिये भी जीवित रह पाया है कि संस्कृत साहित्य मे सवा चार हजार वर्षो का एक मात्र उसका इतिहास प्राप्य है। उसने विश्व मे भारतीयो को इस कलक से मुक्त किया है कि भारतीयो को इतिहास लिखने का ज्ञान नही था। और भारतीय साहित्य में कोई इतिहास नही है।

कुछ अभाव : कल्हण की राजतरगिणी मे कुछ अभाव खटकता है। आश्चर्य है उसने भारत पर सिकन्दर के आक्रमण, पोरस के साथ युद्ध, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्र गुप्त, स्कन्द गुप्त, शशाक, नरेन्द्र गुप्त, पुलकेशी तथा नागभट्ट जैसे महान भारतीय आत्माओ का उल्लेख नही किया है। दार्शनिको मे शकराचार्य का भी उसने उल्लेख नही किया है। इसी प्रकार लिच्छवी, वज्जी, पंजाब के अनेकानेक गणतन्त्र, मालव, औधेय, आदि का राजतरंगिणी में उल्लेख न होना एक समस्या उपस्थित कर देता है। सीमान्त प्रदेश पर यूनानियो के साथ संघर्ष, अफगानिस्तान आदि में यूनानियो की राज्य स्थापना, ईरान, अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान में पुराने धर्म के स्थान पर मुसलिम धर्म का उदय, उन देशो मे पुरातन राजवशो का पतन तथा नवीन सल्तनतो का कायम होना, ये ऐसी घटनायें है जिनके ज्ञान की अपेक्षा पाठक कल्हण से करता है। ललितादित्य तथा जयापीड ने भारतवर्ष मे क्या महत्वपूर्ण कार्य किया, इस पर कल्हण शान्त है। वह अपना ज्ञान अवन्ती तथा कन्नौज के राजाओ तक एक प्रकार से सीमित कर देता है। अन्य राजाओ का केवल उल्लेख मात्र उसने किया है। इसके दो ही स्पष्टीकरण हो सकते है. कल्हण को कोई तत्कालीन प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ प्राप्त नही था। काश्मीर में जो लोग मुसलिम आतको से भागकर आये, उनके पास शास्त्रीय एव काव्य-ग्रन्थ थे। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि सहस्रो वर्ष की घटनायें लोग भूल गये थे। वे लिपिबद्ध नही थे। इसमे से कुछ घटनाओ एवं व्यक्तियो के विषय मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पूरे भारत के इतिहास के लिए उनका महत्व स्पष्ट है, केवल कश्मीर के सीमित दृष्टिकोण से देखने पर उनका कोई भी स्थान नही निर्धारित किया जा सकता। सभवत इसी कारण कल्हण इनके विषय मे मौन है।

दृष्टिकोण: कल्हण प्रगतिशील था। जडता से दूर था। रुढियो मे बँधा नही था। धार्मिक संकीर्णता, जातीय असहिष्णुता से ऊपर उठा था। उसका दृष्टिकोण आधुनिक जैसा था। उसने एक मनोरंजक कालक्रम से ऐतिहासिक तालिका प्रस्तुत किया है। उसने घटनाक्रमो से व्यापक निष्कर्ष निकाल कर, व्यापक सिद्धान्तो को काव्यमयी भाषा मे प्रस्तुत किया है।

कल्हण का दृष्टिकोण स्थानीय लगेगा। यह काश्मीरियो की प्रवृत्ति उनके प्रदेश के एकाकीपन के कारण हो गयी है। काश्मीर का समस्त जीवनक्रम ही जैसे एकाकी जीवनवृत्त है। उसकी दृष्टि जैसे काश्मीर उपत्यका को घेर कर खडी पर्वत-मालाओ से बाहर नही जाना चाहती। काश्मीरियो की यह मानसिक स्थिति पुराकाल मे भी थी और आज भी है।

कल्हण की दृष्टि बाहर भी गई है। भारतीय साहित्यिक कृतियो के साथ साथ उसे समकालीन भारतीय इतिहास का भी ज्ञान था। उसने काश्मीर के बाहर की घटनाओ एवं राजाओ का उल्लेख किया है।

इनमें न तो प्रशंसा ही है और न आलोचना। वह पुराणो तथा महाभारत के समान समकालीन राजाओ की तुलना नही करता।

राजतरंगिणी गिबन के डिक्लाइन एण्ड फाल ऑफ रोमन इम्पायर तथा वाल्टेयर के इतिहास तुल्य नही है। यह काव्य है। होमर का तथा अश्चाइलस की रचनाओ के तुल्य अमर काव्य है। कल्हण ने काश्मीर को लुप्त होने से बचा लिया है। पुराकालीन इतिहास को लुप्त होने से बचाया। उसने काश्मीर को अन्धकार युग की गाथा मात्र उसी प्रकार होने नही दिया है जिस प्रकार होमर ने यूनान को। उसने पूरा काल को सुनिश्चित इतिवृत्त से मिश्रित किया है। उस दृष्टि से संस्कृत का कोई अन्य लेखक किंवा आलोचक इतिहासकार नही कहा जा सकता। सहस्रो वर्षों के पूर्व कालीन इतिहास को उसने जीवित रखा है।

मम्म के शब्दो मे कल्हण कथा उपाख्यान उत्साह से पढता था। उत्साह से उसने उनका वर्णन भी किया है। मम्मट के अनुसार काव्य का उद्देश्य लोगो को व्यवहारविद् बनाना है। काव्य को वाणी आत्मा है। काव्य का भाव रस है। विद्या का प्रयोजन विनय है। कल्हण के पदो में विनय परिलक्षित होता है। उसने अपने इतिहास काव्य मे कथा, उपाख्यान, चमत्कारादि का मिश्रण कर महाकाव्य के साथ उसे रोचक बना दिया है। पुरा कालीन लेखक चाहे पश्चिम के हो अथवा पूर्व के वे पुरावृत्त, गाथा, कथाओ तथा इतिहास के बीच कोई विभाजन रेखा नही खीच सके थे। कल्हण ने इन बातो से हटकर वैज्ञानिक दृष्टि से इतिहास रचना का प्रयास किया है। वह आधुनिक शैली एव पुरानी शैली के बीच की कडी है। राजतरंगिणी शुष्क ऐतिहासिक ग्रन्थ नही है। वह रसमय है। उसके पढने से मन उबता नही। वह घटना-क्रमो का संग्रह मात्र नही है। उसमें इतिहास के साथ रामायण, महाभारत जैसे कथा प्रसगो के सहित पुराणो जैसा धार्मिक झुकाव एव रोचकता है।

प्रचार एव उपदेशात्मक ग्रन्थ : कल्हण ने काश्मीर की शोचनीय दशा एवं अव्यवस्थित व्यवस्था ठीक करने के लिये राजतरंगिणी की रचना की थी। वह लिखता है—यह भूमि जो कुलवधू के समान थी वह वेश्या के समान दुष्टो के हाथो मे पड गयी है। अब से जो कुचक्रो मे निपुण होगा वही इस हतप्रभ राज्य को प्राप्त करने की आशा करेगा। (रा० ७ १४१९, १४२०) वह जब काश्मीर के पुराकालीन इतिहास की तत्कालीन इतिहास से तुलना करता था तो उसका हृदय रो उठता था। अतएव उसने मानव प्रवृत्ति को अप्रत्याशित रूप मे चित्रित किया है। (७ ७९२)

कल्हण अपने इतिहास की परम्परा काश्यप ऋषि से जोडता है। उनके समय से अपने समय की तुलना करता है। वह दुःखी होकर कहता है—'यह पृथ्वी काल की बलवत्ता के कारण शीघ्रतापूर्वक सकुचित हो रही है।' उसका स्वर्ण युग भूतकाल में था। वह करुण शब्दो में कहता है—कोई प्राचीन राजाओ के समान नही हो सकता।' (रा० ४ ४०७) कल्हण काश्मीर के राजा को 'हराशज' कह चुका था अतएव उसने काश्मीर के राजाओ के दोषो का कारण उनके पूर्व जन्म के दोषो को दिया है। (रा० ३ ४२४) जयसिंह जिसके राज्यकाल में वह अपनी रचना कर रहा था उसे कल्हण ने पुराकालीन राजाओ के तुल्य माना है।

कल्हण काश्मोर में शक्तिशाली एव उदार राजा चाहता था। जो बिगडे घर को सुधार सके और बने घर को बढा सके। जनता के प्रति स्नेह एव सहानुभूति प्रदर्शन कर सके। उसने यह विचार देवी वाक्पुष्टा तुञ्जीन तथा मेघवाहन के प्रसग में प्रकट किया है। (रा० २ ३१-४९) वह कहता है, राजाओ को पृथ्वी का पालन नववधू तुल्य करना चाहिए। (रा० २ ८)

राजतरंगिणी के विषय में कल्हण स्वय लिखता है—'राजाओ के विकास एवं ह्रास के समय मेरी कथा देशकाल के अनुसार उनके लिये उत्साह किंवा शान्तिवर्धक तुल्य उपयोगी सिद्ध होगी। कौन ऐसा चेतन हृदय व्यक्ति होगा जो अनंत व्यवहारो से पूर्ण मेरे इस ग्रन्थ को हृदयगम नही करेगा।' (रा० १ : २१, २२) उसने अपने समय के लोगो के पठन-पाठन हेतु काव्य लिखा था। जो स्वत' काश्मीर की परम्पराओ, घटनाओ, प्रचलनो आदि से परिचित थे। कल्हण ने उनके मार्ग-दर्शन हेतु अपने विचारो को स्वतत्र रूप से राजनीतिज्ञ राजा, जनता, राजन्य वर्ग, कर्म स्थानीय जन, मत्री, पुरोहित, अमात्य, सचिव सबके लिए लिखा था। उसे विश्वास था कि उसके इतिहास के पठन-पाठन से भविष्य के राजाओ की परम्परा अच्छी होगी। वे आदर्श राजा होगे। जनता का मनोबल उठेगा।

आदर्श सम्राट एवं राजा : कल्हण के आदर्श शासक अशोक, कनिष्क और मेघवाहन थे। अशोक उदार सम्राट था। कनिष्क जन हितैपी राजा था। मिहिरकुल क्रूर राजा था। मेघवाहन आदर्श राजा था। भिक्षाचर, कलश तथा हर्ष कल्हण के समय महान पुरुषो के समान स्मरण किये जाते थे। (७ : ५६९, १०६६) कश्मीर के भूपाल पृथ्वीपति पृथ्वीपाल कल्हण की दृष्टि मे सामान्य लघु पर्वतीय राजा नही थे। वे अपने लघु साधनो द्वारा साम्राज्य नही बना सके थे किन्तु कल्हण काश्मीर के राजाओ को शक्तिशाली राष्ट्र का राजा मानता था जिसके राजा पूर्व काल मे भारत विजय दिग्विजय किये थे। (रा० १ . २९७, ३३९, ३ . ३५०, ४ १३१७) कल्हण का आदर्श सार्वभौम राज्य था। (रा० ३ . ८०, ८१)

जनता का अधिकार : काश्मीर मे गणतन्त्र नही था। भारत मे गणतन्त्रो का लोप अन्ततोगत्वा समुद्रगुप्त के साम्राज्य प्रसार के साथ हो गया था। यूरोप मे भी गणतन्त्र उन दिनो नही थे। तथापि राजा निरंकुश नही था, स्वेच्छाचारी नही था। यदि राजा क्रूर, अन्यायी, अत्याचारी एवं दुष्ट था तो जनता को अधिकार था, वह राजा को हटा सकती थी। क्योकि दुष्ट राजा का होना कल्हण की दृष्टि में जनता के भाग्य विपर्यय का कारण था। जनता के कुकर्मो के कारण, नैतिक पतनो के कारण, कायरता के कारण देश मे अवाछनीय राजा राज्य करते है। जिस प्रकार व्यक्ति अपने कर्मो का फल भोगता है, उसी प्रकार जनता भी भोगती है। कल्हण कहता है—'प्रजा के पुण्य के कारण समय-समय पर ऐसे नृपो का जन्म सम्भव होता है जो अत्यन्त छिन्न-भिन्न हुए राज्यो का योजन करते है। (रा० १ १८) कर्म गति से यदि व्यक्ति नही बच सकता तो जनता भी नही बच सकती। कल्हण का यह अभिनव राजनीति दर्शन है। (रा० १ . १८७)।

जनता का राज्य-व्यवस्था में स्थान था। आवश्यकता होने पर जनता राजा का चयन करती थी। काश्मीर की जनता ने सन्धिमति को अपना राजा स्वीकार किया था। (रा० २ : ११६) जनता ने गान्धार से मेघवाहन को लाकर कश्मीर के सिंहासन पर बैठाया था। रा० ३ . २) राजा वक को जनता ने राजा चुना था। (रा० १ : ३२५) विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को काश्मीर का राजा बनाने का विचार किया तो उसने प्रकृति जनो अर्थात् जनता के पास दूत भेजा था। कोई निश्चय करने के पूर्व वह जनता का मत जान लेना चाहता था। (रा० ३ · १८८) कल्हण ने यूनानी लेखको के समान नगर की जनता का चित्रण किया है। वह जनता के प्रति, उसकी भावनाओ के प्रति, उसके कल्याण के प्रति अत्यधिक जागरूक था। वह आनुवंशिक राजाओ के परिवर्तनो के प्रति उदासीन था।

राजा और प्रजा : कल्हण ने राजा को हराशज कहा है। परन्तु पश्चिमी राजनैतिक दार्शनिको के समान वह राजा के दैवी सिद्धान्त मे विश्वास नही करता। राजा दैव नही था। वह सर्वसत्ता सम्पन्न

अधिनायक नही था। वह प्रजा के लिए पिता तुल्य था। (रा० ५ ३५०) साधारण व्यक्तियो के समान राजा भी मानवीय दुर्बलताओ का सरलतापूर्वक शिकार हो जाता था। (रा० ८ १५५२) राज्य के आध्यात्मिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुये कल्हण बलवती भाषा में कहता है अन्यायी राजा कष्ट पाता है। (रा० ७ १५८२, ८ १९५१) दुष्ट राजा की उसकी जीवन काल ही मे दुर्गति होती है। राजा को कल्हण प्रजा से सर्वथा भिन्न नही मानता। राजा एव प्रजा दोनो एक ही शरीर के पुरजे हैं। एक शरीर तुल्य है। उसने यहाँ पर यूनान के नगर राज्यो के दर्शन तुल्य विचार किया है। कल्हण ने राजा को दार्शनिक ढग से केवल प्रजा से ही नही प्राणिमात्र से मिला दिया है। (रा० २४६-२६६, ३ ८१-२, ५०) कल्हण कहता है—'जो प्रजा पीडक राजा होते है वे कुल सहित नष्ट हो जाते हैं। और जो नष्ट राज्य को सुव्यवस्थित करते है उनके वश की अनुगामिनी श्री होती है।' (रा० १ १८८)

पुरोहित एवं द्विज परिषद : कल्हण दो परिषदो का उल्लेख करता है। द्विज परिषद का प्रथम उल्लेख राजा लव के सन्दर्भ में किया है। (रा० १ ८७) मन्दिरो पर चढायी देवोत्तर सम्पत्ति, अग्रहार, ग्राम तथा अन्य दान कालान्तर में परिषद को मिल जाते थे (रा० २ १३२)

राजा का चयन परिषद करती थी। उत्पल वश का जब अन्त हो गया तो ब्राह्मण एकत्रित हुए। राजा चुनने का उसने निश्चय किया। कमलवर्धन के कहने पर द्विज-मण्डली एकत्रित हुई थी। कमलवर्धन स्वय राजा बनना चाहता था। द्विज गण कुछ निश्चय न कर सके। इसी समय पुरोहित परिषद ने यशस्कर को राजा घोषित कर दिया। (रा० ५ ४५६-४६६)

इसी प्रकार ब्राह्मण सभासदो ने तुंग के पतन हेतु ब्राह्मण तथा पुरोहित परिषद् को प्रेरित किया। कि वे परिहास पुर में प्रायोवेशन आरम्भ करें। (रा० ७ १३) कालान्तर में परिषदो का रूप बदल गया था। ब्राह्मण लोग परिषद् तथा प्रायोवेशन को साधन बनाकर अर्थ सिद्धि करने लगे। (रा० ७ १४, २३) भीम केशव का मन्दिर बहुत दिनो तक परिषद् के सदस्यो के पारस्परिक सघर्ष के कारण बन्द रहा। (रा० ७ १०८२) पुरोहित परिषद् ने इसी प्रकार प्रायोवेशन को साधन बनाकर राजा हर्ष को उन्हें रुढ भारोठी से मुक्त करने लिए बाध्य कर दिया। (रा० ७, १०८८) इसी प्रकार राजा सुस्सल के समय पुरोहित परिषद् प्रायोवेशन किये थी। (रा० ८, ७०९) राजा भिक्षाचर के समय में भी पुरोहित परिषद् ने इसी प्रकार प्रायोवेशन द्वारा अपनी बातें मनवायी थी।

पुरोहित एव द्विज परिषद् चार हजार वर्षो तक राजा लव के समय से कल्हण काल तक दिखायी देतो है। विश्व की यह सबसे पुरानी, जागरूक एव शक्ति सम्पन्न सस्था थी।

कल्हण को अपने ब्रह्मणत्व एव अभिजात कुलोत्पन्न होनेका गर्व था तथापि उसने पुरोहित तथा परिषद् के अनुचित व्यवहारो की निन्दा की है। राजा तथा राज्य की स्थिति संकटापन्न होती थी, तो ऐसा ही समय प्रायोवेशन के लिए अधिक से अधिक उपयुक्त समझा जाता था। प्रायोवेशन पुरातन काल में एक नैतिक अस्त्र था। दुर्बल सबलो के विरुद्ध उसका प्रयोग करते थे। किन्तु काश्मीर में द्विजो ने उसे उपहासास्पद बना दिया था। राजनीति स्वार्थ सिद्धि एव धन ऐंठने का साधन हो गयी थी। प्रायोवेशन का इतना दुरुपयोग होने लगा था कि राज्य ने एक प्रायोवेशन अधिकारी नियुक्त किया था। (रा० ६ १४) राजा चन्द्रापीड ने स्वय मार्गदर्शन के लिए मन्दिर में प्रायोवेशन किया था। (रा० ४ ९९) कल्हण ने पुरोहित परिषद् तथा पुरोहितो की खूब खिल्ली उडाई है। उनके इस कार्य को कायरता माना है। (रा० ४ ८२, ९९, ५ ४६८,

६:२५, ३३६, ३४३, ८ . ५१, ११०, ६०९, ७०७, ७६८, ८८८, ९३९, २२२४, २७३३, २७३९) किन्तु कल्हण ने पुण्यात्माओ द्वारा किये गये प्रायोवेशन में श्रद्धा प्रकट की है। (रा० ४ ६३२; ८ : २२४२)

मन्त्रि परिषद : काश्मीर की तीसरी प्राचीन मन्त्रि परिषद थी। यह संस्था का महाभारत काल से कोटारानी (सन् १३३९ ई०) तक कायम थी। यह संस्था पुरोहित परिषद से भी पुरातन थी। कम से कम ४ सहस्र वर्षों से इसका अविच्छिन्न अस्तित्व मिलता है। मन्त्रि परिषद एवं द्विज तथा पुरोहित परिषदो में कौन विशेष शक्तिशाली था यह कहना कठिन है। दोनो ने ही समय समय पर राजाओ को चुनकर सिंहासन पर बैठाया और उतारा हैं।

मन्त्रि परिपद का क्षेत्र राजनीतिक था। परन्तु द्विज एवं पुरोहित परिषद का क्षेत्र धार्मिक एवं राजनीतिक समयानुसार हो जाता था। मन्त्रि परिषद को शक्ति राजबल था। पुरोहित एवं द्विज परिषद की शक्ति उनका आध्यात्मिक बल काश्मीरी जनता की धर्मभीरुता थी। अतएव द्विज एव पुरोहित परिपद की शक्ति कालानुसार श्रेष्ठ मानी गयी थी।

मन्त्रि परिषद भगवान श्री कृष्ण के सम्मुख रानी यशोवती के सन्दर्भ में उपस्थित थी। बाल गोनन्द द्वितीय के समय राजा के नाम से मन्त्रि परिषद शासन करती थी। वह उस समय सर्व सत्ता सम्पन्न थी। (रा० १ : ७८-८१)

काश्मीर की मंत्रि परिषद विश्व की सबसे प्राचीन और सबसे अधिक लम्बे जीवन काल की संस्था थी। इसकी धारा कभी सूखी नही थी। छिन्न नही हुई थी। राजाओ के अभाव एवं अस्तित्व दोनो कालो में यह संस्था अबाध गति से अपना काम करती रही है। मन्त्रि परिपद इतनी शक्तिशाली थी कि सेना से राजभवन तक घेर लेती थी। (रा० १ · ३६६, ३६७) राजा को बन्दी बनाती थी (रा० २ . ४), राजा को पदच्युत कर दूसरे को राजा बनाती थी (रा० २ . ५)। काश्मीर की मन्त्रि परिपद की ख्याति बाहर भी थी। राजा विक्रमादित्य ने मातृगुप्त को राजा बनाने का आदेश मन्त्रिपरिषद को ही दिया था। (रा० ३ : २२४, २३५)

मन्त्रियो ने मेघवाहन को काश्मीर का राज्य सिंहासन ग्रहण करने लिये कहा था। (रा० २ १५१) राजा दुर्लभ वर्धन को मन्त्रियो ने राजा मनोनीत किया था। (रा० ३ . ५२८)

काश्मीर मे जनता, मन्त्रि परिपद, पुरोहित एवं द्विज परिषद ने अनेक अवसरो पर बिना एक दूसरे की सलाह लिये स्वयं अपने निर्णय से राजा चुना है।

अभिषेक : राजतरंगिणी से हमें काश्मीर के इतिहास में अभिषेक प्रणाली के प्रचलन के कई महत्वपूर्ण एवं अनोखे उल्लेख मिलते हैं। यह द्विजो, पौर जनो तथा मन्त्रियों द्वारा समयानुसार होता रहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने द्विजो द्वारा रानी यशोवती का अभिषेक कराया था। (रा० १ : ७०) राजा गोनन्द द्वितीय का अभिषेक द्विजेन्द्रो ने किया था। (रा० १ : ७५) राजा सन्धिमति का अभिपेक द्विजो ने किया था। (रा० २ . ११७) राजा वक का अभिषेक पौर जनो ने किया था। (रा० १ . ३२५) मातृ गुप्त का अभिपेक प्रकृति अर्थात् प्रजा ने किया था। (रा० ३ · २३९) राज्याभिपेक की प्रक्रिया शास्त्रानुसार होती थी। राजा की मूर्धा पर कनक घट से तीर्थो का जल डाला जाता था। उसके पश्चात् अन्य औपचारिक क्रियायें होती थी। (रा० ३ : ५२८)

सभा : काश्मीर में सभा थी। उसके सदस्यों को सभ्य कहा जाता था। (रा० ३ १५८) सभा का सर्वप्रथम उल्लेख सन्धिमति के समय में मिलता है। (रा० २ १२७) सन्धिमति राज्य त्याग करने लगा तो उसने सभा एकत्रित की। उसने काश्मीर का राज्य सभा को लौटा कर वनगमन किया। (रा० २ १५९) कल्हण ने विक्रमादित्य की सभा का उल्लेख मातृगुप्त के प्रसग मे किया है। (रा० ३ १३९, १४६) मातृगुप्त के प्रसग मे ही कल्हण ने सभा का पुन उल्लेख किया है। (रा० ३ २०४) सभा का सभापति होता था। जयापीड की सभा का सभापति भट्टोद्भट था। (रा० ४ ४९५) सभा में सगीत भी होता था। (रा० ५ ३६१) काश्मीर की सभा का कार्य क्या था इस पर कल्हण प्रकाश नही डालता।

शासन पद्धति पर भी कल्हण प्रकाश डालता है। राजा जलौक के पूर्व अन्य राज्यों के समान काश्मीर में व्यवस्था थी। (रा० १ ११८) राज्य की सप्त प्रकृतियाँ थी। (रा० १ · ११९) जलौक ने शासन पद्धति में सुधार किया। उसने महाराज युधिष्ठिर के राज्य में महाभारत के समय की प्रचलित शासन व्यवस्था काश्मीर मे चलायी। (रा० १ १२०)

दण्ड प्रथा प्रचलित थी। कारागार होते थे। उन्हें कारा वेश्म कहा गया है। राजा युधिष्ठिर दुर्गा गलिका में वन्दी बनाकर रखा गया था। (रा० २ ७४) राजा हिरण्य ने अपने भ्रात: तोरमाण को वन्धन में रख दिया था। (रा० ३ १०४) शूल देने की प्रथा थी। श्मशान में शूली दी जाती थी। (रा० २ ७९) समाज में क्रूरता भी होती थी। किन्तु यह अच्छा नही समझा जाता था। क्रूरता की कल्हण ने घोर निन्दा की है। क्रूरता के स्थान पर, उदारता, सहिष्णुता, दान, क्षमादि उदात्त गुणो की प्रशसा की गयी है।

न्याय पर कल्हण अत्यधिक बल देता है। उसने स्वय लिखा है कि तरगिणी की रचना उसने एक स्थेय किंवा न्यायकर्ता तुल्य सब बातो को तौलकर एक निष्कर्ष पर पहुँचकर लेखनी उठायी है। कल्हण शान्ति प्रिय था। शान्त रस को प्राथमिकता दी है। उसके समस्त काव्य में शान्त रस की धारा अबाध्य गति से प्रवाहित मिलती है।

समाज : कल्हण ने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण किया है। उसने अपने समय के नर-नारियो के आहार-विहार, आमोद-प्रमोद, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, सस्कार-कुसस्कार, अन्ध विश्वास, परम्परा, रूढियाँ उनकी जडता, नैतिक चरित्र, सबको एक मनोवैज्ञानिक के समान काव्यमयी भाषा में उपस्थित किया है। नर-नारियो की धार्मिक एव कामुक प्रवृत्तियो और तज्जन्य समस्याओ के निराकरण का मौलिक हल भी स्थान-स्थान पर दिया है। ग्रामीणो तथा नागरिको के व्यग-विनोद, हास-परिहास के वर्णन मे उसकी काव्य कला अपनी उच्चतम अभिव्यक्ति पर पहुँच जाती है। इस प्रकार वह प्रमाणित करता है कि वह कवि प्रथम तत्पश्चात् इतिहासकार था।

कल्हण लेखन-कला में परिपक्व बुद्धि का प्रौढ व्यक्ति था। युवक लेखक कल्पना सागर में तैरने का अधिक प्रयास करता है। कल्हण ने घटना सागर में गोता लगाकर एक प्रौढ सन्तुलित व्यक्ति के समान रत्नो को निकालकर घटनाओ को क्रमबद्ध किया है। अत्याचार, अनाचार, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गृहसघर्ष, अराजकता आदि कटु किन्तु वास्तविक घटनाओ के मध्य गुजरने के कारण उसका उर्वर मस्तिष्क राजतरगिणी जैसे काव्य को प्रस्तुत करने के लिए परिपक्व हो गया था। उसने अपने समय की अनुश्रुतियो को गाथा में पिरो दिया है।

कल्हण ने तत्कालीन समाज का वर्णन करते हुए समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। टंकणित मुद्रा, दीनार, कर-प्रणाली, करो का नाम, राजस्व, कृषि, उद्योग-धन्धा, वाणिज्य, व्यवसाय, के वर्णनो के साथ अकाल, उपल वृष्टि, तुहिनपात, उनका काश्मीर के समाज पर पडते प्रभाव का मर्मस्पर्शी भापा मे वर्णन किया है।

कल्हण ने उत्सवो, यात्राओ, परम्पराओ आदि का संक्षिप्त वर्णन किया है। समाज मे पुराण पाठ, कविता पाठ एवं नाटक होते थे। नट, चारण, (रा० १ : २२२) कुम्भदास (पानी भरने वाले) (रा० ३ · ४५६) मुण्ड (रा० १ २३३) शश्यपाल (रा० १ : २३२) मान्त्रिक (रा० १ . २३४) नैष्ठिक (रा० १ . २३६) कंचुकी (रा० १ . २९५) चर (रा० १ . २५०) गुप्तचर (रा० ३ : १५६) विज्ञदूत (रा० ३ १५६) भृत्य (रा० १ : २४७) धात्री, (रा० १ : ७७) कुम्भकार, यामिक (रा० ३ · १७३) दूत (रा० ३ : १८८) राजीव जीवी (रा० ३ : १९८) राजदासी (रा० ३ १५६) अश्वघास कायस्थ (रा० ३ ४८९) कुट्टनी, विट, गायक, नर्तक आदि का वर्णन उनके कर्मो के साथ किया है।

वाद्यो मे वीणा, (रा० २ · १२६) पटह (रा० २ . १६८) वेणु (रा० २ : १६७) मृदंग, संख, घण्टा, सुगन्धियो में, चन्दन, कर्पूर, धूप, केसर, का प्रयोग किया जाता था। पाणि स्पर्श द्वारा आशीर्वाद, साधुवाद एवं कृतज्ञता प्रकट करने की प्रथा थी। (रा० ३ . १८२) प्रतिज्ञा पालन, वचन-बद्धता पर जोर दिया जाता था। (रा० १ २४३, ३ १८२, ४२५) कल्हण ने विटो की बहुत निन्दा की है। (रा० २ · ६७–७०)

कृषि मुख्य उद्यम था। अरछट, कुल्या (नहर) आदि से सिंचाई होती थी। अरछट अर्थात् रहट काश्मीर मे अति प्राचीन काल से प्रचलित था। जिससे विश्व अपरिचित था। यह प्रथा परसियन व्हील के ऐतिहासिक काल से भी प्राचीन थी।

कल्हण यन्त्र का उल्लेख करता है। यह वर्तमान काल के क्रेन के समान शिला उठाने का यन्त्र था। (रा० १ · ३६३) कूप यन्त्र का भी कल्हण ने उल्लेख किया है। (रा० १ २८४) यह रस्सी का बना होता था। रस्सी चक्र के ऊपर से आती जाती थी। लोग कागडी अर्थात् हसन्ती किंवा अगार धानी का आज के समान उपयोग करते थे। (रा० ३ : १७१)

महिलायें नील निचोल (रा० २ २४७) तथा कंचुकी (रा० २ . २९४) पहनती थी। मूर्धा पर शीर्षाशुक रखती थी। (रा० १ २४७) बालक काक पच्छ लगाते थे। (रा० १ · ८१) स्त्रियाँ नूपुर, स्वर्ण सूत्र, धारण करती थी। पुरुप गण मस्तक स्थित मणि, (रा० २ . १६५) मुकुट मे मुक्ता। रा० ३ . ५२९) धारण करते थे। महिलायें यावक अर्थात् आलता लगाती थी। (रा० ३ ४१५) वे शृंगार करती थी। शृंगार में केसर, चन्दन, चूर्ण, पुष्प एवं सुगन्धियो का उपयोग किया जाता था।

पुरुष उष्णीष धारण करते थे। धौत वस्त्र पवित्रता का प्रतीक था। (रा० २ १६१) रेशमी तथा ऊनी वस्त्रो का प्रचलन था। रुई के वस्त्रो का उल्लेख कम मिलता है। काश्मीर मे रुई नही होती थी। रुई का वस्त्र भारत के अन्य भागो से काश्मीर में आता था। हेम पादाकित (रा० २ . ३००) मार्तण्ड प्रतिमाकित यमुषदेव वस्त्रो (रा० १ २९९) का उल्लेख मिलता है। वे सिंहल से काश्मीर में आते थे।

खान-पान ऋतु तथा जलवायु के अनुसार होता था। सत्तू, कच्चगुच्छ, घृत, मधु, दुग्ध, शाली, गोधूम, तथा विभिन्न अन्नो के पकवान वनते थे। साधारण जनता शाली, शाक, कमल जड तथा सस्ती तरकारी खाती थी। ब्राह्मणो के अतिरिक्त जनता आमिष भोजी थी। भूना मास खाने की प्रथा थी। व्यापारी वर्ग मदिरा का आदी था। पर्वो तथा त्योहारो पर मदिरा पान होता था। मदिरा विक्रय का वर्णन उत्सवो पर मिलता है। हलकी सुरा बर्फ के साथ शीतल कर पी जाती थी। फलो मे प्राय वे सभी फल होते थे जो आज कल वहाँ होते हैं। शहतूत, अनार, बादाम, सेब, खुबानी, सतालू, वम्बू गोशा, नाशपाती, अखरोट खूब मिलते थे। आम का अभाव था। ब्राह्मणो के लिये लहसुन एव प्याज का प्रयोग वर्जित था। (रा० १ . ३४७)

राजकीय चिह्न, छत्र (रा० ३ ६२) ध्वजा, (रा० ३ ७७) तथा पारध्वज (रा० ३ ७८) थे। राजा मुकुट धारण करते थे। काश्मीर में भुवन रचना लकडी तथा पाषाण से होती थी। पाषाण वेश्म का अत्यधिक उल्लेख मिलता है। (रा० १ ८६) काश्मीर के ध्वसावशेषो मे लगे विशालकाय शिला-खण्डो को देखकर आश्चर्य होता है। उनके उठाने तथा रखने के लिए यन्त्रो का प्रयोग किया जाता था। भवनो के अनेक वर्ग थे। विद्या वेश्म आधुनिक स्कूल एव कालेजो के समान थे। सौंध (रा० १ २४६) नाग भवन (रा० १ २५७) हर्म्य (रा० २ १३५) गुहागृह (रा० २ १६१) नदवन (रा० ३ ११) के निर्माण आदि का उल्लेख मिलता है। राजभवन के अन्त पुर का नाम शुद्धान्त था, जहाँ रानियाँ रहती थी। (रा० ३ ४३६, ५०६)

सार्वजनिक निर्माणकार्यों को बहुत महत्व दिया जाता था। कृषि उपयोगी भूमि, सिंचाई व्यवस्था के लिए कुल्या बनाने का कई स्थलो पर वर्णन किया गया है। सुवर्ण मणि कुल्या (रा० १ : ९७) चन्द्र कुल्या (रा० १ ३१८) अपगा (रा० १ ३२९) के अतिरिक्त सेतु एव बाँध बनाने का उल्लेख मिलता है। जल की गति तथा स्रोतस्विनियो की गति नियन्त्रित करने के लिए सेतु निर्माण किये जाते थे। दामोदर सूद (रा० १ १५७) गुद्दसेतु (रा० १ १५६) पाषाणमय सेतु (रा० १ १५९) उनके कुछ उदाहरण हैं।

ब्राह्मण उपनिवेश : अस्पृश्यता काश्मीर में नही थी। जाति-पाँत का वन्धन अत्यन्त शिथिल था। परस्पर विवाह सवध होते थे। राजाओ ने डोम्ब कन्या तथा वैश्य जाति की महिलाओ से विवाह किये थे। डोम्ब कन्या भी काश्मीर की महारानी हुई है। (रा० ५३८ , काश्मीर के सिंहासन को इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तानो ने सुशोभित किया है। राजा भी काश्मीर में निम्न वर्ग कल्यपाल तक हुए है। (रा० ३ ४८८, ४ ६७९, ७१६) उनका विवाह भी राजकुलो में हुआ था। ब्राह्मण वर्ग ने निस्सन्देह अपना अभिजात कुल बनाये रखा था। काश्मीर में जाति-पात का वन्धन अत्यन्त कुचनीय था। प्रत्येक नागरिक समाज का उसी प्रकार अग था जैसे अन्य।

जन्मना वर्ण के आधार पर किसी पर कभी आक्षेप काश्मीर में नही किया गया था। उसने सहि-ष्णुता का सर्वदा परिचय दिया है। जो जाति काश्मीर में आयी वह वहाँ आत्मसात हो गयी। केवल मुसलमान इसके अपवाद थे।

ललितादित्य का तुखार (तुर्क) मन्त्री था। (रा० ४ २१) गैर काश्मीरी होने के कारण किसी का कभी अविश्वास किंवा अनादर नही किया गया था। मेघवाहन का गुरु स्तोन्या गैर काश्मीरी था। परन्तु उसके लिए अत्यन्त आदर एव श्रद्धालु शब्दो का प्रयोग कल्हण ने किया है। (रा० ३ . १०)

मिहिरकुल हूण था। कनिष्क कुषाण था। किन्तु उनकी जाति के कारण उनसे भेदभाव नही किया गया था। काश्मीर के हिन्दू इस दिशा में शेष भारत से जात-बन्धन मे कुचनीय, उदार एवं सहिष्णु थे। इसका कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव था, जो जाति-पाँत एवं वर्णाश्रम में विश्वास नही करता था।

ब्राह्मणो मे नि सन्देह अपनी जाति के एवं वर्ग के लिए कट्टरता थी। कल्हण काश्मीरी ब्राह्मण था। उसके लिए उसे गर्व था। वह अपना रक्त शुद्ध रखना चाहता था। दूसरे ब्राह्मणो से भी यही अपेक्षा करता था। काश्मीरी ब्राह्मणो की इस कट्टरता के कारण वहाँ ब्राह्मणो के चार उपनिवेश वन गये थे।

राजा मिहिर कुल ने आर्य देशीय ब्राह्मणो को काश्मीर मे लाकर आबाद किया था। (रा० १ : ३१३) इसी प्रकार राजा मेघवाहन ने देशीय भिक्षुओ के भोग हेतु अनेक पुण्य कार्यों को किया था। (रा० ३ ९) काश्मीर मे वर्ण-व्यवस्था बौद्ध प्रभाव के कारण लुप्त हो गयी तो राजा जलौक ने कान्यकुब्ज प्रदेश से व्यवहारविद् चातुवर्ण के लोगो को काश्मीर लाकर आबाद किया था। (रा० १ · ११७)

कल्हण ब्राह्मणो के चार उपनिवेशो का उल्लेख करता है। राजा गोपादित्य ने आर्य देशीय द्विजो को अग्रहार दानकर गोपाद्रि के मूल मे गोप अग्रहार स्थापित किया था। (रा० १ : ३४१) दूसरा उपनिवेश पुण्य देशीय ब्राह्मणो का था। यह वश्चिक नामक स्थान में था। (रा० १ : ३४३) तीसरा उपनिवेश भूक्षीर वाटिका में था। यहाँ पर गोपादित्य ने लहसुन भोजी ब्राह्मणो को समस्त काश्मीर मण्डल से एकत्रित कर उनका एक अलग उपनिवेश बना दिया था। उन्हें समाज से एक प्रकार से बहिष्कृत कर दिया गया था। चौथा ब्राह्मणो का उपनिवेश खासटा स्थान मे था। यहाँ पर आचरणहीन ब्राह्मणो को बसाया गया था। (रा० १ . ३४२-३४३)

महिलाओं का स्थान : कल्हण ने सती नारियों की मुक्तकण्ठ से प्रशसा एवं असतियों के प्रति घृणा प्रकट की है। (रा० १ . २७२, ३२०, ३२१) काश्मीर में सती प्रथा प्रचलित थी। प्रथम सती रानी वाकपुष्टा थी। (रा० २ ४४, ५५, ५६) सती प्रथा को कल्हण प्रोत्साहन नही देता। कालान्तर में यह प्रथा जोर पकड गयी और उसका दुरुपयोग होने लगा। (रा० ५ २२४७ : १०३, ४७८)

कल्हण महिलाओ के अधिकार तथा कर्तव्य पर जोर देता है। वह स्त्रियो को जननी मानता है, माता मानता है, प्रकृति का एक अग मानता है। वह विष्णु की विशेष प्रशसा इसलिये नही करता कि उनका स्वरूप एकागी है। वह केवल पुरुष शक्ति के प्रतीक हैं। वह अर्धनारीश्वर की सर्वदा वन्दना इसलिए करता है कि वे नर एवं नारी, किंवा पुरुष एवं प्रकृति दोनो के प्रतीक हैं। कल्हण पुरुष एवं स्त्री दोनो का समाज में समान स्थान मानता है। (रा० ३ : ४४४)

काश्मीर मे महिलाओ ने शासक, अभिभावक एवं रानी के रूप मे सिंहासन को सुशोभित किया है। (रा० १ : ७०–७२) कल्हण उन्हें 'प्रजानाम् मातरम्' जैसे आदर एव पूजनीय शब्दो से सम्बोधित करता है। वे जगत् की, राज्य की माता है। कल्हण उन्हें पूज्य एवं आदर की दृष्टि से देखता है। (रा० १ .७३) राजा एवं रानी का जहाँ कल्हण ने नाम लिया है वहाँ गौरी-शंकर, राधा-कृष्ण के समान स्त्रियो का नाम पुरुषो के पूर्व रखा है। यह शैली स्त्रियो के प्रति अत्यन्त आदर प्रकट करने के लिए कल्हण ने अपनायी है। (रा० २ : ११)

स्त्रियाँ मन्दिरो, राजप्रासादो, उत्सवो, यात्रा, उपासना, पूजा, सर्वत्र पुरुषो के साथ कार्य करती दिखायी देती है। पुरुषो के साथ विपत्ति मे, सघर्ष मे, युद्ध मे, व्यवस्था में सहयोग करती चित्रित की गयी हैं। वे सम्पत्ति की अधिकारिणी थी, सम्पत्ति रख सकती थी, हस्तान्तरित कर सकती थी। पुरुषो से पुण्य कार्यों में वे पीछे नही रहती थी। पुरुषो के समान, उनके साथ वे भी सदेह स्वर्ग गयी है।

स्त्रियाँ अधिदेवता थी। पटरानी थी। (रा० ३ ४३६) गृह की, भू की स्वामिनी थी। तथापि मन्दिरो में कन्याओ किंवा स्त्रियो को चढाने का रिवाज हो गया था। वे देव-सेवा में अपना समय व्यतीत करती थी। पुण्यार्जन करती थी। स्त्रियो का विवाह दूतो के माध्यम से भी होता था। (रा० ३ ४३४) काश्मीर में स्वयम्वर प्रथा का उल्लेख नही मिलता। बहुपत्नी प्रथा पूर्वकाल में काश्मीर में नही थी। राजा मेघवाहन के समय से बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन बढ गया था।

शैली : जिस भाषा में ग्रन्थ लिखा जाय, उस भाषा की कवि के लिए पूर्ण प्रवीणता अपेक्षित है। इस दृष्टि से कल्हण सफल सिद्ध हुआ है। भाषा एव भाव का सुन्दर समन्वय राजतरगिणी में सर्वत्र दृष्टि-गोचर होगा। प्रसग तथा घटनानुसार भाषा लिखी गयी है। भाव एव भाषा में स्पर्धा परिलक्षित होती है। भाव आने के पूर्व ही भाषा बुद्धिगत हुई लगती है। रसानुकूल भाषा का सम्पूर्ण ग्रन्थ में चमत्कार दिखायी देता है। घटनाओ के उतार-चढाव में भाषा अनुरूप रहती है। व्याकरण के प्रयोगो एव सिद्धान्तो का प्रस्तुत विषयो के साथ उपमानोपमेय भाव स्थापित कर वर्णन मे सुन्दर चमत्कृति लायी गयो है। भाषा प्रारम्भ से अन्त तक सरल एव सरस है। जहाँ पर कवि काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है, वहाँ की भाषा और अधिक काव्यमयी हो गयी है, जब कि सामान्य इतिवृत्त के वर्णन मे सामान्य प्रचलित शब्दो का प्रयोग किया गया है। कही-कही दुरूह एव अप्रचलित शब्दो का भी कल्हण ने प्रयोग कर दिया है, जिन्हें समझने के लिए तत्कालीन काश्मीरी भाषा का किंचित ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है। किन्तु वे विशेष बाधक न होकर, प्रकृत वस्तु के साधक ही हुए है। कुछ स्थलो पर स्थानीय एव पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में रचना प्रौढ हो गयी है। तथापि उसमें सामान्यत पद दुरूहता नही आती है।

वैदर्भी रीति में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना हुई है। समास का बाहुल्य नही है। प्राय असमस्त शब्दो का ही प्रयोग किया है। फिर भी जो समास है, वे छोटे है। कुछ स्थलो पर दीर्घ समास भी है। (रा० १ ३६७, २ १६५, ७ १४०३, ८ ३०००) एतावन्मात्र से गौडी रीति का प्रश्न यहाँ नहीं उठता है। पचाली रीति जिसमे समस्त एव असमस्त शब्दो का समान रूप से प्रयोग किया जाता है, यह भी रीति राजतरगिणी में घटित नही होती है। जिस रीति का प्राचुर्य होता है, उस ग्रन्थ की वही रीति मानी जाती है। इस ग्रन्थ मे वैदर्भी रीति का प्राधान्य है।

सूक्तियो के निबन्धन में कल्हण सचेष्ट है। वर्णन के मध्य में अनेक सामान्य मनोरंजक बातो का समावेश कर देता है। यही कारण है कि पुस्तक के पठन-पाठन मे नीरसता किंवा एकरसता नही आती। (रा० १ ४६, २८४ २ ६०)

सम्पूर्ण राज तरगिणी अनुष्टुप छन्द में निबद्ध है। अन्य छन्दो का प्रयोग तरगो के अन्त में तथा विशेष स्थलो पर किया गया है। आदि से अन्त तक इस काव्य में शिखरिणी छन्द का नर्तन, स्रग्धरा का गर्जन विद्यमान मिलता है। मन्दाक्रान्ता एव वसन्ततिलका का प्रचुर प्रयोग किया गया है। कल्हण छन्द ज्ञान में निर्भ्रान्त है। इसके सुललित छन्द महाकवि कालिदास का स्मरण दिलाते है।

काव्योत्कर्ष के लिए अलकार का प्रयोग सुतरा अपेक्षित होता है। कवि कल्हण ने इस महाकाव्य मे अलंकारो का प्रयोग निर्भीकतापूर्वक किया है। भाषा सर्वत्र अलंकारमयी है। घटना-क्रम एव विषय को सुस्पष्ट करने के लिये, उसमें उत्कर्ष लाने के लिए, अलंकारो का प्रयोग प्रशंसनीय शैली में किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, श्लेष, अर्थान्तिरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त आदि प्राय सभी अलंकारो का दर्शन पदो मे मिलता है।

उपमा का प्रयोग सर्वथा नवीन शैली से किया गया है। कल्हण अपनी भौतिक प्रतिभा द्वारा नव-नव प्रयोग प्रत्येक दिशा मे करने में सफल हुआ है। अलकार का बाहुल्य भाषा, भावरस को बोझिल नही बनाता है। अपितु उसमें कुछ और अधिक चारुता आ गयी है।

कल्हण अलंकारो का मर्मज्ञ है। उनके प्रयोगो के अवसर एवं स्थल मे निपुण है। स्थान-स्थान पर उनका प्रयोग अत्यन्त आकर्षक सिद्ध हुआ है। श्लिष्ट प्रयोगो द्वारा वैचित्र्योत्पादन मे कवि ने अपनी चतुराई दिखाई है। अनेक अलंकारो को एक साथ चलाने में कवि की प्रतिभा का विलास मिलता है। (रा० ३ : ४१६)

सर्वतोमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कल्हण से ज्ञान का कोई अंग अछूता नही बचा है। वह साहित्य के सिद्धान्तो का मर्मज्ञ है, रस, छन्द अलंकारादि समस्त काव्यागो मे सम्यक् पारंगत है। व्याकरण चर्चा करते हुए, वह व्याकरण की प्रशंसापरक बातें लिखने से नही चूकता। महाभाष्य तथा अन्य व्याकरण ग्रन्थो के अध्ययनादि के विषय में वह अपना सुस्पष्ट मत एवं लोक-स्थिति का सुन्दर वर्णन करता है। तत्कालीन, देश, काल, समाज की सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बातो को ठीक-ठीक समझकर, उन्हें यथावत लिखने मे कल्हण ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

धर्मग्रन्थों का प्रगाढ परिशीलन कल्हण ने किया है। दण्ड-विधान, कर्मस्थान, न्याय, आदि के अवसर पर तत्तत् नियमों का उल्लेख किया है। वेद, पुराणो का अध्ययन, कवि के पौराणिक एवं वैदिक कथाओ एवं अन्य गूढ बातो के प्रतिपादन से सिद्ध होता है। पुरा कथाएँ सन्ध्याकालीन सरिता-तरंग पर तैरती दीप-दान तुल्य शोभनीय लगती है। कल्हण ने राजाओ की कुण्डलियो के कुग्रह एवं सुग्रह का समुल्लेख किया है। राजा हर्ष की तो उसने पूरी कुण्डली ही दे दी है। (रा० ७ : १७२०) ज्योतिष के समान आयुर्वेद का उल्लेख कर, वह अपने ज्ञान का परिचय पदलालित्य के साथ करा देता है। बौद्ध नास्तिक एवं समस्त आस्तिक दर्शनो का कतिपय स्थलो पर उल्लेख कर उसने अपने पण्डित्य का परिचय दिया है।

कल्हण रसवादी कवि है। उसने प्रत्येक वर्णन को रस एव काव्यमय बनाने में अपनी शक्ति एवं प्रतिभा को प्रकट किया है। किसी भी राजा का वर्णन करते समय, एक सूत्र रूप से कोई बात कहकर, उसी की व्याख्या द्वारा, उस राजा का सम्पूर्ण ऐतिह्य लिख जाता है। बिना किसी शब्दाडम्बर के, किसी राजा के गुण एवं दोष की ओर आकृष्ट हुए, नि संकोच अन्त.पुर तक का सफल चित्रण कर देता है। एक राजा के पश्चात् दूसरे राजा का वर्णन करना होता है तो अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से वर्णन को अन्यत्र संक्रान्त कर देता है। प्रसग विच्छेद का अनुभव नही होता।

राजाओ के ह्रास-विकास, उत्थान एवं पतन में राज-कर्मचारी गण किस प्रकार कारण बन जाते है, इसका वर्णन बडी ही सुन्दर व्यंगात्मक तथा उपहासात्मक शैली से कल्हण ने किया है। उनकी मन:स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया है। स्त्रियो के विषय में कल्हण की अपनी अलग धारणा है। अनेक स्थानो पर स्त्रियो के सर्व सुख सम्पन्न होने पर भी अति पतितावस्था मे जाने का वर्णन कर, आलंकारिक भाषा में नारी जाति

के चाचल्य की निन्दा है। जहाँ नारी जाति के कारण उत्तम कार्य हुये हैं वहाँ कल्हण ने उनकी प्रशसा की है। कितने ही स्थानो पर नारी का चित्रण बडा ही मार्मिक हो गया है। राजा युधिष्ठिर के देश त्याग करते समय नारी की मनोभावनाओ का अत्यन्त कारुण्यपूर्ण दृश्य खीचा है। (रा० १ ३६७-३७३)

महाकाव्य : महाकवि कालिदास ने रघुवश में राजा दिलीप से प्रारम्भ कर रघुवश के समस्त राजाओ का क्रमश वर्णन कर सुन्दर महाकाव्य प्रस्तुत किया है। यही बात कल्हण के इस महाकाव्य के विषय मे कही जायगी। दोनो में अन्तर इतना ही है कि रघुवश एक वश का और राजतरगिणी एक देश के कई वशो का वर्णन करती है। यह बहुनायक महाकाव्य है। महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण इस काव्य में मिलते हैं। शान्त रस इसका अगी रस है। अन्य रस अन्यभूत होकर आये हैं।

काव्य का नाम सारगर्भित होना चाहिए। कल्हण ने राजतरगिणी नाम रखा है। यह युक्तिपूर्ण है। तरगो का आवागमन कभी समाप्त नही होता। राजा भी सागर को तरगो के तुल्य आते-जाते रहते हैं, उठते-गिरते रहते हैं। तरंगें कभी उत्ताल होती हैं, कभी गर्जन करती हैं और कभी शान्त हो जाती हैं। यही दशा राजाओ की है। काव्य के सभी गुण, रस, अलकार, छन्द, पद लालित्य का समावेश इस उत्कृष्ट महाकाव्य में हो गया है।

कल्हण अपने काव्य में केवल कल्पना पर उडा नही है। वह उस पंछी की तरह नही उडता, जो डार-डार, पात-पात उठता-बैठता रहता है। वह अनन्त में, ओर-छोर हीन विश्व में, कल्पनामय जगत में अनायास नही उडता। वह इस जगत में, इस लोक में, साशय उडान लेता है। उसने काव्यमय इतिहास में कल्पना के स्थान पर लौकिक घटनाओ का निबन्धन किया है (रा० १ ४६, ४७)

उसके पद में लालित्य से आरम्भ होता है। उसमें सरलता है। प्रचलित शब्दो का प्रयोग है। वह जैसे-जैसे रचना करता अग्रसर होता है, उसके काव्य में सरलता लुप्त होने लगती है। अप्रचलित शब्दो की प्रचुरता बढ जाती है।

वह सरल, हृदय कवि था। उदार था। उसके हृदयस्थल में कवियो के लिए आदर था। कवि उत्तम रचना करता है। कुकृत वर्णन नही करता इसे उसने बलवती भाषा में लिखा है। (रा० १ ३, ४, ५, ४५–४७) प्रसग आते ही काश्मीर के कवियो का और भारत के अन्य प्रदेशो के कवियो का नाम आदर के साथ लिया है। उसने अनेक राजाओ, उनके समय में हुए कवियो, उनके काव्यो, तत्कालीन विद्वानो, दार्शनिको का वर्णन उनके अनुरूप आदर के साथ किया है। उसने भारत एव काश्मीर की कविकृतियो का अध्ययन किया, उनके रचना-काल का निर्णय किया और उन्हें यथास्थान रखकर काश्मीर के साहित्यिक इतिहास के साथ राजनीतिक इतिहास को प्रस्तुत किया है। (रा० १ १७८, २ . १६; ४ . १४४, ४४८, ४९५, ७०५, ५ २८–३२, २०४)

राजतरगिणी के रूप में कल्हण कोरे इतिहास के स्थान पर एक सुन्दर महाकाव्य उपस्थित करता है। इसी का सुन्दर परिपाक होने के कारण पाठक उसे पढता श्रान्त नही होता। उसके वर्णन में नवीनता प्राप्त होती है। अलकारो की छटा यथावसर देखने को मिलती है। उपमा एव अलंकारो का प्रयोग ठीक लगता है। पाठक उनमें नवीनता एव मौलिकता का बोध करते काव्य-वीथियो में रमता है। उसने उपमाओ को शब्द-जाल में लपेट कर, सुन्दर किन्तु प्राणहीन पदो में पाठक को नही उलझाया है। उसने यथाशक्ति इस महाकाव्य में आध्यात्म एवं नवीन विचार रखने की शैली का अनुकरण किया है। (रा० ३ . ४१६)

अलंकारो के प्रयोग में उसने संयम का परिचय दिया है, नियन्त्रण रखा है। गुणहीन पदावलियो से वह विरत रहा है। किस अवसर पर, किस प्रकार, किस अलंकार को उत्कृष्टतापूर्वक एक कुशल कवि के समान प्रयोग करना चाहिये, इसमें उसने अधिक कुशलता प्राप्त की है। उसने विपयानुरूप भाषा एवं छन्दों का प्रयोग किया है। शृङ्गार वर्णन में, ऋतु वर्णन मे, उसने प्रकृति के साथ मानव-प्रकृति को मिलाते हुए, आध्यात्म एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय किया है। (रा० १ : ६, २८, २०६; ३ . ४१४, ५ : ३४३, ३६१; ७ . ९२८, १५५७; ८ : ८४२, ६४७, १३३४)

कल्हण लौकिक वर्णन करता है। काश्मीर के बाहर का वर्णन उसने केवल ऐतिहासिक घटनाओ की शृङ्खला को विशृङ्खलित न होने देने के लिये किया है। लौकिक वर्णन होते भी उसका काव्य कही एक सुरा नही होने पाया है। उसने अलकारो की पुनरावृत्ति नही की है। यदि वही अलंकार पुनः आता है, तो कुछ दूसरा ही रूप धर कर। इसलिये उसके काव्य का प्रत्येक चरण, प्रत्येक पद ताजी हवा की तरह सर्वदा स्फूर्तिमय, प्राणमय रहता है।

काव्य अलकारमय होते हुए भी अलंकारो से बोझिल नही है। अलंकारो का उपयोग वर्ण्य विषय को सुस्पष्ट तथा उसमे और बल लाने के उद्देश्य से किया गया है। अस्पष्टता का नितरा अभाव है। पदो में, शब्द गठन मे, गतिशीलता है। वे अत्यन्त सक्षिप्त न होकर सरल एव वर्णनात्मक हैं। उनमे सौन्दर्य एवं कला का प्रभाव चिर नूतन, निर्मल, अक्लान्त, स्रोत जल कण तुल्य है। वह श्रान्त मन, मलिन मन, उदास मन में स्फूर्ति उत्पन्न करता है।

पुरातन कवि काव्य-परम्परा का अनुकरण करता, आरम्भ एवं अन्त मे छन्द बदल देता है। महाकाव्यो का यह लक्षण है। अन्त मे छन्द का परिवर्तन कर देना चाहिये। दृश्य, रस एवं घटनाओ के अनुरूप कल्हण छन्द बदल देता है। महाकवि बाण तथा विल्हण मे यत्र-तत्र प्राप्त होती कृत्रिमता का किसी स्थल पर बोध नही होता। उसने लम्बे-लम्बे समासो में जैसे तरंगो को बाँध रखा है।

कल्हण की दृष्टि निरपेक्ष है। उसे आलोचनात्मक प्रखर बुद्धि प्राप्त थी। किन्तु उसने राग-द्वेष रहित होकर, ग्रन्थ-रचना की है। कल्हण जैसा इतिहासकार अट्ठारहवी शताब्दी के पूर्व विश्व में नही हुआ है। उसके समस्त काव्य में शान्त रस की धारा प्रवाहित होती, पाठक के मानस को शान्त करती है। उसके काव्य मे वही स्फूर्ति दिखायी देती है, जो वाल्मीकि की रामायण एव व्यास के महाभारत मे है। उसके पदो मे क्षण-क्षण नवीनता, मौलिकता प्रवेश करती रहती है।

बाण का हर्ष चरित, विल्हण का विक्रमांक देव चरित, राजाश्रय में पुष्पित काव्य है। कल्हण का काव्य एक स्वतंत्र चिन्तक का काव्य है जिसे उसने देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर लिपिबद्ध किया था। उसके काव्य का प्रयोजन किसी राजा, किसी दाता को प्रसन्न करना नही था। किसी राजसभा में, किसी प्रासाद में बैठकर उसने चिन्तन नही किया था। उसकी कल्पना, उसका चिन्तन श्रीनगर से दूर, राज्याश्रय से दूर, राज छाया से दूर, परिहास की प्राकृति सुपमा मे, अपने घर में, अपने ही साधनों से, अपने अर्जित धन से, जीवन यापन करते लिखी गयी जगत की, सरस्वती के एक एकान्त उपासक, स्वावलम्बी मानव की स्वाभिमानी मानव की रचना है। कालिदास, भवभूति, विल्हण, वाण सवको राज्याश्रय प्राप्त था। सबने राज्यान्न खाकर काव्य रचना की थी। कल्हण एक मात्र महान काव्यकार है, जो राजान्न द्वारा वर्धित नही हुआ था। इस दिशा में वह कालिदास आदि से बहुत आगे है। उसका उद्देश्य अपने देश मे स्वर्ण

युग लाना था, जन-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना था, राजाओ का सुधार करना था, उन्हे जन-जीवन से मिला देना था।

कल्हण की रचना में सहज सौन्दर्य है, जिसका विल्हण की रचना में अभाव खटकता है। ठीक कहा गया है कि कल्हण ने अपने काव्य दर्पण को इतना निर्मल, स्वच्छ एव रमणीय रखा है कि उसमें विल्हण की प्रौढ शैली सद्य प्रतिविम्बित होती है। कल्हण की शैली सौन्दर्य पूर्ण है। प्रकृति का उसमें प्राकृतिक चित्रण है। वह चित्राकन सुश्लिष्ट है। (रा० ८ ३१६१-६२, १३३४-१३३८)

चरित्र चित्रण में कल्हण ने क्षमता का परिचय दिया है। आलोच्य स्थान पर निष्पक्ष आलोचना की है। जनजीवन से सम्पर्क बनाये रखा है। किसी के स्नेह एव घृणा से अपने को दूर रखा है। एक स्थेय तुल्य वह चरित्र चित्रण करता है। उसका यह चित्रण, जलौक, मिहिरकुल, हर्ष, कलश, सन्विमति, दिद्दा एव देवी वाक्पुष्टा में निखर उठा है। उसके काव्य में वैदिक, बौद्ध एव संस्कृत महान रचनाकारो की सवाद-परिसवाद शैली का दर्शन मिलता है। (रा० ३ १६१, १८३ ७ ४२३, १२८१, १४१६, १३-८६, ८ . २६१३, ३२१६)

काव्य के माध्यम से कल्हण ने इतिहास लिखा है। (रा० १ : ६) उसने इतिहास एव काव्यकार को मिला दिया है। उसने कथावस्तु के विस्तार के कारण अलकार की विचित्रता का अनेक स्थलो पर प्रयोग नही किया है। युधिष्ठिर का राज्य त्याग, जयापीड का अन्त, चक्र वर्मन का प्रवेश, अनन्त की शत्र यात्रा, राजा हर्ष का राज्य त्याग, हर्ष का अन्तिम काल, सुस्सल का श्रीनगर आगमन एव भिक्षाचर का अन्तिम युद्ध इसके उदाहरण हैं। (रा० १ ३६६, ४ ६४०, ५ · ३४१, ७ ४६१, १६००-१७१४, ८ ९४७, १७४०)

कल्हण के पदो में सस्कृत-गद्य का रस मिलता है। पद्यात्मक होते भी कही-कही गद्यात्मक शैली हो गयी है। उसकी करुणात्मक शैली अत्यन्त नाटकीय एव सशक्त है। राजा जयापीड का अन्त एव वार्तालाप नाटकीय शैली का उदाहरण है। (रा० ४ ६४०) ऐतिहासिक काव्य को नीरसता से बचाने के लिये कल्हण ने अलकार, व्यग तथा उक्तियो का आश्रय लिया है। उसके अधिकाश रूपक मौलिक हैं, सस्कृत साहित्य को उसकी देन है। (रा० ६ २०९, ७ १०६६, १२२४, ८ १३४, २५८६, २६३५, २५२०, २५६०, २७४७)

महाकाव्य राज तरगिणी में दुस्सह स्थल भी हैं। दुरूहताओ एव जटिलताओ का कुछ कारण शैलीगत भी है। जैसे दुर्लभ लौकिक एव अप्रचलित शब्दो का प्रयोग है। काव्यात्मक सन्दिग्धता ऐसे स्थलो पर बढ गयी है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में जटिल राजनीतिक परिस्थितियो तथा उनके वर्णन मे इस प्रकार के स्थल मिलेंगे। उसने राज कुचक्र, दरवारी जीवन, घटनाओ के वर्णन का जितना प्रयास किया है, उतना ही उन स्थलो पर उसके अभिप्राय को समझना कठिन हो गया है। ऐसे स्थल अलकृत काव्य शैली में वर्णित है। सप्तम तथा अष्टम तरग में ऐसे स्थल बहुत मिलते हैं। कारण स्पष्ट है। उन में उल्लिखित व्यक्ति या तो उस समय जीवित थे अथवा कुछ ही वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके थे, जिन्हें लोग उनकी जीवन घटनाओ के साथ जानते थे। कल्हण ने इन स्थलो पर व्यगात्मक शैली का आश्रय लिया है। (रा० ३ १८१, ४ ६३५-६३७, ७ ११२३)

पुनरुक्ति दोष से अपने काव्य को वचाने का प्रयास कल्हण ने किया है। तथापि भूल से कही-कही पुनरुक्तिया आ गयी हैं। ग्रन्थ के अन्तिम चरण के छन्द उच्चकोटि के नही है। उनमें साधारण पुनरुक्तियाँ परिलक्षित होती हैं। स्थान-स्थान पर पाठको का शैथिल्य दूर करने के लिए अलकृत एव आकर्षक पदो की रचना की गयी है।

कल्हण ने यह महाकाव्य विशेष रूप से अपने समकालीन जनो के लिए लिखा था। इसीलिये कुछ स्थलो पर उसने नवीन पात्रो का प्रवेश लम्बे षडयन्त्र, विद्रोहादि का चित्रण बिना उचित पृष्ठभूमि के कर दिया है। ऐसे स्थलों को बिना पूर्वापर का ज्ञान हुये, समझने मे कठिनता होती है। कल्हण का पट इतिहासात्मक काव्य साधारण जनता की अपेक्षा संस्कृत के विद्वानो एवं पण्डितों के लिए विशेषत. लिखा गया था। कल्हण भूतकाल का सुस्पष्ट वर्णन करता है। उसने भविष्य के इतिहास-लेखक एवं विचारको के लिए उपदेशक का कार्य किया है।

कल्हण स्वयं स्वीकार करता है कि उसने विचित्र घटनाओ का विस्तृत समावेश कथा-विस्तार के कारण न कर यत्र-तत्र रुचिकर कथानको को लिखा है। (रा० १ : ६) राजतरगिणी राजकथा महाकाव्य है, इसमे रोचक, विचित्र तथा चमत्कारिक कथाओ का समावेश किया गया है। इस खण्ड मे वर्णित रोचक कथानक है—नाग भार वहन (रा० १ · ११४) वटेश्वर लिंग (रा० १ : १९४) सुश्रवा नागकन्या (रा० १ : २०७) ब्राह्मण बालक (रा० ३ · ६३) भ्रमर वासिनी (रा० ३ : ३९४) रणारम्भा (रा० : ४३१) गिरिसुता विवाह (३ . ४४३) और रावण पूजित लिंग (रा० ३ : ४४७)। पौराणिक शैली पर वर्णित कथायें—दैत्य रमणियो से भोग (रा० ३ : ४६९) जलभेदन (रा० ३ . ४६८) नागो की अलौकिक शक्ति (रा० १ २५८) है। चमत्कारिक कथायें—वितस्तावतरण (रा० १ : १६०–१६६) चन्द्रावती का शिला हटाना (रा० १ . ३२१) सूखा मे भी वृक्षो का हरित होना, (रा० २ · १५) गतप्राण कपोत पात (रा० २ : ५०) सन्धि मति का पुनरुत्थान (रा० २ : १०५) समुद्र स्तम्भन (रा० ३ ६९) रणस्वामी, रणेश्वर स्थापना (रा० ३ · ४५७) है। विचित्र कथायें—रणारम्भा का भ्रमरी रूप धारण (रा० ३ : ४३८) गर्भ मण्डूक (रा० ३ : ४४२) खेचरो का स्मरण (रा० ३ . ४५०) है। चमत्कार, विचित्र एवं रोचक मिश्रित कथायें—नाग द्वारा हिम वर्षा ! (रा० १ . १७९) अश्व पर पाणि प्रहार (रा० १ · २४६) नगर सहित राजा का नाश (रा० १ . २५६) पाषाण वृष्टि (रा० १ . २६५) वरुण आगमन (रा० ३ : ५२) तल्प पर स्त्री स्वरूप बना देना आदि (रा० ३ : ४३८) है।

कथानको के कारण राजतरंगिणी महाकाव्य के साथ सामान्य जनता के लिए भी रुचिकर, मनोरजन-सामग्री बन गयी है। कल्हण ने काव्य को सर्वप्रिय बनाने के लिए ग्रन्थ में अलौकिक कथाओ के अतिरिक्त अन्य कथाओ का भी समावेश किया है। उनमें नाग-मेघ (रा० ३ . २१) कामिनी स्त्री (रा० ३ : ५०१) काम सगम ज्ञान (रा० ३ . ५०८) नारी भर्त्सना (रा० ३ ५०१–५२१) तथा वैराग्य (रा० ३ . ५२५) आदि है।

काल गणना : कल्हण की काल गणना एक समस्या है। अनेक विद्वानों ने उसे सुलझाने का प्रयास गत शताब्दी के प्रारम्भ से किया है। सर्वश्री विलसन, कनिंघम, स्तोन, ट्रायर, एस० पी० पण्डित आदि ने हल निकालने का स्तुत्य प्रयास किया है। परन्तु अभी तक सफलता नही मिली है। मैने काशी मे विद्वानो से निकट सम्पर्क स्थापित किया। परन्तु किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचा जा सका। तरंग प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा कुछ तरंग चतुर्थ की गणना त्रुटिपूर्ण है। चतुर्थ तरंग मे जयापीड के पश्चात् काल गणना सुधरती दिखायी देती है। जयापीड का समय लौकिक सम्वत् ३८७९ तथा कल्हण का समय लौकिक सम्वत् ४२२५ अर्थात् सन् ११४९–११५० है। तरंग पचम और षष्ठ की काल गणना के साथ घटनाओ का सक्षिप्त वर्णन है। षष्ठ तरग के उत्तरार्ध से कल्हण की काल गणना ठीक होने लगी है। वह राजाओ का अभिषेक

एव अवसान के साथ ही साथ मुख्य घटनाओ का लौकिक सम्वत् देना आरम्भ करता है। तरग सप्तम एव अष्टम् की काल गणना सर्वथा ठीक है। कल्हण शक सम्वत् १०७० तदनुसार लौकिक सम्वत् ४२२४ देता है। इससे लौकिक तथा शक सम्वत् की गणना मिल जाती है।

आधुनिक सिद्धान्त है कि सप्तर्षि चलते नही। कल्हण कहता है कि युधिष्ठिर के शासन काल में मुनि मघा नक्षत्र पर थे। सप्तर्षि एक शत वर्ष में मघा नक्षत्र पर आते है। (रा० १ ५३–५६) यह स्वतः अध्ययन एव अनुसन्धान का विषय है। कल्हण अपने इतिहास की रचना महाभारत कालीन गोनन्द प्रथम के समय से आरम्भ करता है। कल्हण ने कलि तथा लौकिक सम्वतो का प्रयोग किया है। मालूम होता है कि कल्हण ने अपनी काल गणना सुनिश्चित एव स्थिर करने के लिए महाभारत काल अपनी काल सीमा ग्रन्थ प्रारम्भ करने के लिए निर्धारित कर लिया था।

महाभारत के पूर्व काश्मीर में क्या सम्वत् प्रचलित था पता नही चलता। कल्हण के समय में कलि, लौकिक एवं शक तीनो सम्वत् प्रचलित थे। लौकिक सम्वत् को आधार मानकर वह काल-क्रमानुसार इतिहास रचना आरम्भ करता है। एक मत है कि द्वापर के अन्त में महाभारत हुआ था। दूसरा मत है कि कलियुग के ६५३ वर्ष पश्चात् महाभारत हुआ था। कलि सम्वत् के २५ वर्ष पश्चात् लौकिक सम्वत् आरम्भ होता है।

पुराकालीन लेखको में कल्हण एक ऐसा महाकाव्यकार है जिसने राजाओ एवं घटनाओ के इतिवृत्त के साथ सम्वत् वर्ष, मास एव दिन दिया है। रामायण एव महाभारत में सवत्सरो का प्रयोग नही किया गया है। कल्हण का इस दिशा में भारतीय ही नही विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है। शामी अर्थात् सेमेटिक जाति इतिहास लिखने में निपुण मानी गयी है। परन्तु वाइविल मे जहाँ राजाओ का उल्लेख किया गया है, वशावली दी गयी है। वहाँ भी काल गणना नही की गयी है।

राजतरगिणी का इतिहास गोनन्द प्रथम से आरम्भ होता है। इस समय से कल्हण क्रमबद्ध इतिहास लिखता है। कलि सम्वत् ६५३ तदनुसार लौकिक सम्वत् ६२८ होता है। गोनन्द प्रथम से अभिमन्यु प्रथम का राज्य काल १२६६ वर्ष अर्थात् लौकिक सम्वत् ६२८ से १८९४ वर्ष तक होता है। इस काल में ३५ लुप्त राजाओ के अतिरिक्त कल्हण १७ राजाओ का नाम तथा इतिहास देता है।

गोनन्द वश में गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर तक का राज्य काल १००२ वर्ष कल्हण देता है। वह समय १८९४ से २८९६ लौकिक सम्वत् वर्ष होता है। इस काल में २१ राजाओ के इतिहास का सक्षिप्त उल्लेख राजतरगिणी में मिलता है। द्वितीय तरग में ६ राजाओ का इतिहास है। उनका राज्य काल १९२ वर्ष आता है। यह लौकिक सम्वत् २८९६ से ३०८८ तक होता है। तृतीय तरग में १० राजाओ का इतिहास है। उनका राज्य काल लौकिक सम्वत् ३०८८ से ३६७७ मध्य तक ५८९ वर्ष १० मास १ दिन होता है। इससे केवल राजा रणादित्य का ही राज्य काल ३०० वर्ष दिया है जो स्पष्ट त्रुटिपूर्ण है। चौथे तरग कर्कोट वंश का काल लौकिक सम्वत् ३६७७ से ३९३१ अर्थात् २५४ वर्ष पाच मास सत्ताइस दिन होता है। पचम तरग उत्पल वंश का आरम्भ राजा अवन्ति वर्मा लौकिक सम्वत् ३९३१ से होता है। इस वश के १५ राजाओ में ९ राजाओ के राज्याभिषेक का मास तथा दिन देता है। उनमे पाँच राजाओ का सम्मिलित राज्य काल मिलाकर पाच वर्ष से अधिक नही होता। इस प्रकार पचम, षष्ठ, सप्तम एव अष्टम तरंग के राजाओ का वर्ष, दिन मास तक देकर वह अपनी काल गणना सिद्ध करता है।

सम्राट् कनिष्क का समय देते समय कल्हण लिखता है कि उस समय भगवान शाक्यसिंह का परि-निर्वाण हुए १५० वर्ष हो गये थे। (रा० १ . १७२) कल्हण की काल गणना इस समय से मिलायी जाय तब भी ऐतिहासिक काल गणना की तुला पर ठीक नही उतरती है। कम-से-कम ४०० वर्षों का हेर-फेर उसकी काल-गणना मे हो जाता है। कल्हण ने तत्कालीन प्राप्य ऐतिहासिक सामग्रियो एवं जनश्रुतियो के आधार पर अनुमान से समय दिया है। काल की ओर या तो कल्हण ने ध्यान नही दिया है अथवा उसने जो कालक्रम दिया है और अब तक इतिहास से जो बातें सिद्ध होती है उनमे क्या दोष एवं त्रुटियाँ हैं यह स्वत विशेष अनुसंधान का विषय है। कल्हण की काल-गणना के अनुसार और अशोक की मान्यता प्राप्त काल-गणना मे शताब्दियो का अन्तर पड जाता है। हिरण्य एव तोरमाण हूण थे परन्तु उन्हे कल्हण ने गोनन्द की वंशावली से जोडा है।

आश्चर्य है। कल्हण को ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान था। उसने अपने अध्ययन के स्थान-स्थान पर ज्योतिष सिद्धान्तो एव काल गणना का उल्लेख किया है। तथापि उसकी काल गणना कैसे त्रुटिपूर्ण रह गयी है इस पर अध्ययन अपेक्षित है। उक्त दोष के होते हुए भी यह स्वीकार करना पडेगा कि सस्कृत साहित्य में कल्हण ने महाभारत काल से सुसंगत इतिहास उपस्थित किया है।

राजतरंगिणी : राजतरंगिणी के तरगो का तीन वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है। श्री स्तीन ने प्रथम वर्ग में तरग एक, दो, तीन, द्वितीय वर्ग मे तरंग चार तथा तृतीय वर्ग में पाँच, छ, सात एवं आठ रखा है। श्री डाक्टर ए० एल० वैशम ने प्रथम वर्ग मे तरंग एक, दो, तीन, द्वितीय वर्ग में तरंग चार, पाँच, छ तथा तृतीय वर्ग में सात एव आठ रखा है।

श्री स्तीन का वर्गीकरण काल गणनानुसार है। चतुर्थ तरंग के उत्तरार्ध से कल्हण की काल गणना क्रमबद्ध होती है। तरग पंचम एवं षष्ठ का भाग गाथा एवं ऐतिहासिक दोनो कालो का मिश्रण है। सातवें तथा आठवें तरंग की काल गणना सुनिश्चित है। श्री वैशम ने वर्गीकरण ऐतिहासिक तथ्य पर किया है। प्रथम वर्ग को वे परम्परा पर आधारित इतिहास कहते है। कल्हण ने इस काल के लिए कोई साक्ष्य उप-स्थित नही किया है कि किस आधार पर उसका वर्णन सत्य माना जाय। कल्हण ने कश्मीर के इतिहास का जिससे महाभारत से किंचित मात्र सम्बन्ध नही है गौरवपूर्ण पौराणिक घटनाओं के काल्पनिक समय से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है।

श्री वैशम द्वितीय वर्ग में तरंग चार, पाँच तथा छ अर्थात् कर्कोट एवं उत्पन्न वंश रखते है। इसे कल्हण ने पूर्वकालीन इतिहासकारो के आधार पर लिखा है, जो घटनाओ अथवा राजाओ के समकालीन थे। तृतीय वर्ग मे श्री वैशम ने सप्तम तथा अष्टम तरंग रखा है। जिसका ज्ञान उसे प्रत्यक्षदर्शियो से प्राप्त हुआ था। तरग आठ का वह स्वय प्रत्यक्षदर्शी था। दोनो ही वर्गीकरण काल एवं प्रमाण की दृष्टि से उचित प्रतीत होते है।

प्रथम तीन तरंग इस समय प्रतिपाद्य विषय है। सर्वश्री स्तीन तथा वैशम दोनो एक मत हैं कि यह काल गाथा कालीन है। तरग चार मे पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध मे इतिहास की झलक अधिक मिलती है। तरंग पाँच से इतिहास वर्णन आरम्भ होता है। यह काल राजा अवन्ति वर्मा (सन् ८५५-८५६ ई०) के समय से आरम्भ होता है। प्रथम तीन तरग ऐतिहासिक सामग्री न होने के कारण छोटे हे। परम्परा एवं जनश्रुतियों पर आधारित हैं। कुछ पौराणिक गाथाओ पर आधारित हैं, और कुछ काल्पनिक हैं।

जैसे-जैसे तृतीय तरग के पश्चात् कल्हण लिखता बढता गया है वैसे-वैसे उसका इतिहास प्रामाणिक होता गया है।

प्रथम तीन तरगो का वर्णन अस्पष्ट है। प्रणय कथानको, असम्भव तिथियो एव पौराणिक नामो को नि सकोच कल्हण ने लिखा है। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण पुराणो तथा उसकी गाथाओ में कल्हण का अन्ध विश्वास था। पुराना विश्वास है कि काल अर्थात् कलि का काल द्वापर युग में लागू नही होता। अतएव कल्हण ने काल भी कलियुग के समय से आरम्भ किया है। कल्हण की शैली वैज्ञानिक है। उसने अनुसधान एव प्राप्य सामग्रियो को सग्रह कर अपना विचार एक स्थेय की तरह स्वय निश्चित किया है। ऐतिहासिक निष्कर्षो को उपस्थित करने मे अपनी कला का अद्‌भुत परिचय दिया है।

कल्हण पर पौराणिक प्रभाव होने का आक्षेप विद्वन् करते हैं। परन्तु यूनान जैसे देश में हिरोदोतस तथा थूसाडाइस के अनुसार उस युग में भी जो वहाँ का स्वर्ण युग था, रण अभियान सूर्य तथा चन्द्र की स्थिति से नियन्त्रित होता था। ग्रहण के कारण पोली चेनिशियन युद्ध में यूनानी असफल हो गये थे। एनक्सा गोरस को यथेन्स की साधारण सभा ने इसलिये मृत्यु दण्ड दिया था कि सूर्य तथा चन्द्रमा यूनानी कवियो की दृष्टि में देवता थे। ज्योतिष ज्ञान का प्रचार वर्जित था। सुकरात को इसलिये मृत्युदण्ड दिया गया था कि वह देवी-देवताओ की पूजा में विश्वास न कर बुद्धिवादी था।

कल्हण ने सम्राट् अशोक एव कनिष्क जैसे महान् व्यक्तियो का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन किया है। इस प्रकार हविष्क एव जविष्क का वर्णन किया गया है। इतिहास एव पुराण मे जैसे अन्तर नही किया गया है। प्रारम्भिक वर्णन इतिहास की दृष्टि से अशुद्ध, अविश्वसनीय, कल्पना तथा जन-श्रुतियो पर आधारित है। वह पुराण तुल्य पौराणिक शैली से लिखा लगता है। इसमें कल्हण का दोष नही है। उसने रामायण, महाभारत तथा पुराणो से सामग्रियाँ एकत्रित कर, काश्मोर के इतिहास को काल क्रमानुसार क्रमबद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है। साहित्यिक दृष्टि से इस काल में निहित वर्णन उपमा, अलकार, विचित्र एव रोचक घटनाओ के सग्रह लगेंगे। वाण के हर्ष चरित के समान कल्हण ने भी दुर्लभ शब्दो का प्रयोग किया है। तथापि किसी प्रकार के इतिहास के अभाव में कल्हण की राजतरगिणी काश्मीर का आदर्श इतिहास हो गयी है। यह अनुपम कृति है। शोधपूर्ण वास्तविक वैज्ञानिक इतिहास लिखने का यह अपनी शैली का प्रथम प्रयास भारत में कहा जायगा।

अनेक दोषो के होते हुए प्राचीन जगत इतिहास का आदर करने में पीछे नही था। भारतीय रचनाकारो ने इतिहास-रचना की परम्परा स्थापित की थी। उनकी शैली तथा विचार अपना था। कल्हण की रचना शैली से यह स्पष्ट प्रतीत होता है। समुद्र का ज्ञान भारतीयो के ऐतिहासिक ज्ञान का परिचायक है, उसे पुरातन भारतीय जान चुके थे। कल्हण समुद्र का बहुत वर्णन करता है। भारतीयो की श्रेष्ठता अन्य दिशाओ मे बहुत बढ गयी थी। यदि उसका कोई अपवाद है तो कल्हण के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक युग है। पुरातन भारतीयो में सच्चे इतिहास का नितान्त अभाव नही था। उनके दृष्टिकोण एव बौद्धिक विकास में दोष नही था।

भारत के इतिहास के अभाव मे राज तरगिणी को स्थानीय, लौकिक किंवा प्रदेशीय इतिहास कह सकते है। भारतीय प्रवृत्ति की यह विशेषता है कि वह आध्यात्म को ओर अधिक झुकी थी। कहा जाता है, विदेशी आक्रमणो के कारण राष्ट्रीय भावनायें उभडती हैं और शक्तिशाली इतिहास लिखने के लिए अनुप्राणित करती हैं। भारत पर सिकन्दर के पूर्व विदेशी आक्रमण नही हुआ था। कभी कल्पना नही की

गयी थी कि राजविप्लव होगा। आक्रमणों के कारण व्यवस्था एवं राज-परम्परा अस्त-व्यस्त हो जायगी हिन्दुस्तान में भारतीय धर्म के स्थान पर अन्य विदेशी धर्मों का प्राबल्य हो जायगा। उस समय इतिहास लिखकर पूर्वकाल की स्मृति को सुरक्षित रखने का विचार नही उठा था।

यूनानी नगर राष्ट्र सर्वदा संघर्षशील थे। रोम का इतिहास सैनिक अभियानो का इतिहास है। अतएव पश्चिम में इतिहास रखने एवं लिखने की विशेष रुचि हुई थी। कह सकते है, पश्चिम में नव-जागरण के कारण आयी आधुनिकता से पूर्व कल्हण जैसा प्रतिभाशाली महान ऐतिहासिक विश्व साहित्य में अन्यत्र भी दुर्लभ है। उसे निःसन्देह पोलाइवियस तथा थुसाडाइड की पंक्ति मे गौरव पूर्वक बैठाया जा सकता है।

कल्हण के उद्धरणो से प्रतीत होता है कि काश्मीर मे इतिहास लिखने की परम्परा प्राचीन-काल से प्रचलित थी। यह परम्परा भारत के अन्य स्थानो मे नही मिलती। काश्मीर ने अपनी एकाकी भौगोलिक स्थिति के कारण अपना एक अलग व्यक्तित्व एव चरित्र विकसित कर लिया था। अपने देश के गौरव तथा इतिहास को लिपिबद्ध करने की भावना सर्वदा काश्मीर में जागरूक थी। इसका एक और कारण हो सकता है। काश्मीर की सीमा पर लडाकू विदेशी राष्ट्र थे। काश्मीर का सम्बन्ध अन्य देशो से था। उनमे इतिहास लिखने और रखने की भावना भारत की अपेक्षा अधिक जागरूक थी। सेमेटिक अर्थात् शामी जाति के प्रभाव से प्रभावित होना असम्भव बात नही थी। अतएव काश्मीरियो ने भी अपने देश में इतिहास लिखने की कल्पना की।

काश्मीर में संस्कृत साहित्य का यह एक मात्र इतिहास शेष रह गया था। जब कि मुसलिम काल में सभी कुछ नष्ट कर दिया गया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अस्तित्व गत शताब्दी के पूर्व विश्व नही जानता था। किन्तु राजतरगिणी का अध्ययन, अध्यापन, अनुवाद उसके अस्तित्व काल से ही आरम्भ हो गया था। उसके अस्तित्व से लोग परिचित थे। फिरदौसी के शाहनामा की तरह राजतरंगिणी गाथादि का संकलन मात्र नही है। काश्मीर के हिन्दू और मुसलमान दोनो को अपने पूर्वजो का इतिहास होने के कारण गर्व था और है।

राजतरंगिणी के अध्ययन का इतिहास : सन् ११५० ई० से अबतक राजतरंगिणी के लगभग ४९ अनुवादो तथा संस्करणों का पता लग सका है। ऐसी कोई शताब्दी नही व्यतीत हुई है, जिसमें तरंगिणी का कोई न कोई संस्करण अनुवाद अथवा प्रतिलिपि न की गयी हो। सन् ११५० से १३३९ ई० का मध्यवर्ती काल काश्मीर का अत्यन्त संघर्षमय समय रहा है। उस समय यदि राजतरंगिणी पर कुछ लिखा भी गया होगा तो पुरानी पुस्तको के नष्ट करने तथा फूकने के उन्माद मे सिकन्दर बुत शिकन के समय में अपना अस्तित्व लुप्त कर चुका है। सन् १३३९ ई० में मुसलिम शासन काश्मीर में स्थापित हुआ। उस समय से जैनुल आब्दीन के काल सन् १४४६ ई० तक का समय काश्मीर के लिए अत्यन्त उथल-पथल का रहा है। काश्मीर की जनता केवल ११ घरो को छोडकर मुसलिम धर्म स्वीकार कर चुकी थी। मन्दिर, मठ, जनाश्रय, शाला, विद्या वेश्म तथा विहार ध्वंशावशेष रह गये थे। पुस्तकें नष्ट की जा चुकी थी। जैनुल आब्दीन (सन् १४४६–१४७२ ई०) के समय श्री जोनराज ने कल्हण के कार्य को अपने समय तक लाकर अपनी राजतरंगिणी लिखी।

जोनराज के पूर्व अथवा उसका समकालीन मुल्ला अहमद था। उसने जैनुल आब्दीन के आदेश

पर तरंगिणी को फारसी में बहरुल असमर ग्रन्थ नाम से अनुवाद किया था। काश्मीर में इस राजभाषा फारसी हो चुकी थी। मुसलमान तथा नाम मात्र के शेष हिन्दू फारसी पढने लगे थे। ५ शताब्दी के मध्य अहमद ने 'वकाअ' काश्मीरी तथा नुरुद्दीन वाली ने काश्मीरी भाषा मे 'नूर नामा' ि जोनराज के छोडे कार्य को (सन् १४५९–१४८६ ई०) श्रीवर ने 'जैन राजतरंगिणी' लिखकर किया। श्री प्रजभट्ट (सन् १५१३–१५१४ ई०) के राजावली पिटक का उल्लेख मिलता है किन्तु अ वह ग्रन्थ प्रकाश में नही आया है। श्री मलिक हैदर ने सन् (१५२३–१५७० ई०) के बीच त री काश्मीर लिखा। श्री शुक ने अन्तिम अर्थात् चौथी राजतरंगिणी सन् १५८६ ई० में लिखी। मुगल काश्मीर में स्थापित होते ही संस्कृत में राजतरंगिणी लिखने का क्रम समाप्त हो गया। विश्व में उदाहरण नही मिलता कि सन् ११५० से १५८६ ई० अर्थात् ४३६ वर्षो तक एक ही ग्रन्थ ७७ क्रम जारी रखा गया है।

फारसी तथा उर्दू में ग्रन्थ समस्त जनता के मुसलमान हो जाने तथा संस्कृत भाषा त्याग दे कारण हिन्दू तथा मुसलमान दोनो लिखने लगे। अब्दुल कादिर-अल-बदायूनी ने सन् १५९४ ई० मे खाबुल तवारीख लिखी। अबुल फजल ने स्वयं आइने अकबरी मे सूबा काश्मीर अध्याय में काश्मीर संक्षिप्त इतिहास लिखा। सम्राट अकबर का सन् १५८८ ई० में काश्मीर आगमन हुआ। आगमन राजतरंगिणी उन्हें भेंट की गयी। सम्राट के आदेश पर मौलाना शाह मुहम्मद शाहाबादी ने अनु फारसी मे किया। उसके अनुवाद का नाम मुन्तखबु-त-तवारीख था। यह ग्रन्थ अप्राप्य है। हिदायतुल्ला महतो ने (सन् १६०२ ई० में) तारीख तथा (सन् १६०५–१६२७ ई०) में इन्तखाब तारीख काश्मीर सम्राट जहाँगीर के आदेश पर अनुवाद-ग्रन्थ लिखा गया। इसे कतिपय लेखको ने है मलिक का गन्थ भ्रान्ति से मान लिया है। बहरिस्तान-ए शाही ग्रन्थ सन् १६१४ ई० की रचना है। मत है कि यह रचना मिरजा मेहदी की है। सन् १६१७ ई० मे हैदर मल्लिक ने राजतरंगिणी पर रित ग्रन्थ लिखा। इसी समय की रचना हादी की तारीख है।

पश्चिमी भाषा मे सर्व प्रथम फ्रेन्च में सन् १६६४ ई० में अनुवाद किया गया। सर्व श्री सलो कलीम, खुशाल, हरबी तथा मीरअली हसन ने सन् १६७३ ई० में पंज मशनवी की रचना की। श्री नार यण कौल ने सन् १७१० ई० में मन्तुख-उल-तवारीख किंवा तारीख नारायण कौल लिखा। श्री दे व सुखजीवन सूबेदार ने सन् १७२५ ई० में तारीख शाहनामा लिखा। ख्वाजा मुहम्मद आज़म ददमरी सन् १७६५ ई० में वकियत-ए-काश्मीर की रचना की। मीर सैय्यद उल्ला ने सन् १७८७–१७९३ ई० बाग-ए-सुलेमान तथा बिदै उद्दीन वल्द मुहम्मद आजम ने गौहरे आलम, नोहफेतु शाही तथा रफी७६ मुहम्मद ने नवादिरउल-अखबार लिखा।

काश्मीर में सिक्खो का राज्य स्थापित होने पर पाश्चात्य विद्वानो का प्रवेश होने लगा। सर्व प्रथ मूर क्राफ्ट ने सन् १८२३ ई० नागरी लिपि मे राजतरंगिणी का संस्करण प्रस्तुत किया। इससे प्रभावित होकर सन् १८२५ ई० में श्री होरेस हेमैन विलसन ने 'एन इस्से ऑन दी हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर' सन् १८२५ ई० मे एशियाटिक रिसर्च सरसपुर के भाग से १५ लिखा। हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर के नाम से इसका पुन संस्करण सुशील गुप्त (इण्डिया, प्राइवेट लिमिटेड ने सन् १९६० मे किया है। श्री अमीरुद्दीन पखली वाले ने सन् १८२५ ई० में तहकीकात अमीरी तथा हज़रत मुल्ला निजामुद्दीन ने वकाअ-ए-निज़ामिया या निज़ाम अल वकाय लिखा। राजतरंगिणी मूल संस्कृत का नागरी संस्करण सन् १८३५ ई० मे ए एस.

सी कलकत्ता ने प्रकाशित किया। श्री एम. ए. ट्रोयर ने (सन् १८४०-१८५२ ई०) में राजतरंगिणी का फ्रेञ्च अनुवाद तीन भागो मे किया। वहालुद्दीन ने सन् १८६८ मे लवुल तवारीख लिखा। श्री दीवान कृपाराम ने सन् १८७१ मे गुलजार-ए. काश्मीर की रचना की। चारो राजतरंगिणियो का अंग्रेजी मे सारानुवाद श्री जोगेशचन्द्र दत्त ने किंग्स आफ काश्मीर के नाम से सन् १८७९ मे किया। श्री हर गोपाल खस्ता ने गुलदस्तये काश्मीर लिखा। श्री मुल्ला अतुल नवी ने सन् १८८४ में वजीवुल तवारीख लिखा।

राजतरंगिणी के पाठों के शुद्धीकरण तथा प्रकाशन का कार्य महामहोपाध्याय दुर्गा प्रसाद ने सन् १८९२ ई० में किया। राज तरंगिणी मूल तीन भागो में प्रकाशित की गयी। वैज्ञानिक शैली से अध्ययन तथा शोध का कार्य श्री स्तीन ने किया है। सन् १८९२ ई० मे उन्होने मूल संस्कृत का पाठशोधन कर मुद्रित करवाया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६० में हुआ है। पीर गुलाम हसन खुरहमी ने सन् १८९८ई० में तारीख लिखा जो हसन को तारीख के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उर्दू अनुवाद श्रीनगर से प्रकाशित हो चुका है। श्री स्तीन का प्रसिद्ध ऐतिहासिक अंग्रेजी अनुवाद सटिप्पण प्रथम बार सन् १९०० ई० मे प्रकाशित हुआ था। श्री गोविन्द कौल ने राज तरंगिणी वर्णित स्थानो का पता लगाया था। श्री स्तीन ने उनकी सहायता से शेष स्थानो का और पता लगाया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६१ मे मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली के यहाँ से हुआ है। श्री निबारण चन्द्र विद्यारत्न ने सन् १९०४ ई०, में संस्कृत से बंगला अनुवाद कर प्रकाशित किया। सन् १९१० ई० में प्रथम तरंग से छठवें तरंग का बंगाली लिपि में मूल तथा अनुवाद हितवादी तथा मनोरंजन कलकत्ता से बगला सम्वत् १३१७ मे प्रकाशित हुआ। इसमें अनुवादक का नाम नही दिय। गया है। सातवें तरंग का अनुबाद बगला मे दुर्गानाथ शास्त्री ने सन् १९११ ई० बंगला सम्वत् १९१८ में किया। आठवें तरंग का बंगला अनुवाद सर्व श्री राम चरन तथा दुर्गानाथ शास्त्री ने सन् १९१२ई० मे चटगाँव निवासी हीरा लाल चट्टोपाध्याय ने कल्हण की राज तरगिणी का अनुवाद बंगला मे प्रकाशित किया। इसका अनुवाद श्लोकानुसार नही है। एक मत है कि वह जोगेश चन्द्रदत्त के अग्रेजी अनुवाद पर आधारित है।

सन् १९२९ में श्री माधव वेंकटेश लेले श्री स्तीन के अनुवाद के आधार पर मराठी में अनुवाद पूना से प्रकाशित किया। श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने आठो तरंग का अंग्रेजी अनुवाद सन् १९३५ मे किया। इसका पुनर्मुद्रण सन् १९६८ मे हो गया है। श्री विश्वबन्धु शास्त्री ने सर्वश्री भीम देव, के एस रामास्वामी शास्त्री तथा ए भास्करन् नायर के सहयोग से सम्पादित कर प्रथम से सप्तम तरंग मूल, पाठभेद के सहित प्रथम खण्ड सन् १९६३ ई० मे विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान से प्रकाशित किया। वही पाठ प्रस्तुत ग्रन्थ का रखा गया है। इसका दूसरा खण्ड अर्थात् आठवाँ तरंग वही से प्रकाशित किया गया है। श्री गोपी कृष्ण शास्त्री ने सन् १९४१ ई० मे प्रथम से सात तरंगो का हिन्दी अनुवाद किया है। यह अनुवाद काशी से प्रकाशित हुआ है। सन् १९६० में श्री राम तेज शास्त्री पण्डित पुस्तकालय, काशी ने मूल के साथ हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। श्री नीलम अग्रवाल ने हिन्दी अनुवाद सन् १९६८ ई० मे किया है। सन् १९६९ ई० इस लेखक ने काश्मीर कीर्तिकलश शीर्षक प्रथम से तीन तरंगो का अनुवाद किया है। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया है। द्वितीय खण्ड तरंग ४ से ७ का हिन्दी अनुवाद भी मुद्रण की स्थिति में है। अन्य सभी ग्रन्थो का आधार एक भाग कल्हण की राजतरगिणी है। इस प्रकार गत ९ शताब्दियो से राज तरंगिणी का अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन कभी बन्द नही हुआ है और जबतक इतिहास की ओर जगत् की रुचि रहेगी कभी बन्द नही होगा।

शुद्धि-पाठ

पृष्ठ	शुद्ध पाठ	अशुद्ध पाठ	पृष्ठ	शुद्ध पाठ	अशुद्ध पाठ
४३	जलोद्भवम्	जलोत्भवम्	४४०	ययौ	ययो
७४	भेडगिरे	भेदगिरे	४६८	वेष्ठिता	वेष्टिता
८३	तिलांशोऽपि	तिलाशोऽपि	४८५	सभं	सम
९१	कौरव	कोरव	५०७	यितु	यितु
१०९	विवाहोत्का	विवाहात्का	५११	ऽर्थिन	ऽथिन
११३	रङ्कुर	रङ्कर	५१४	निर्गर्व.	निगर्व:
१२४	धुर्य	भुर्य	५१९	ददर्शाग्रे	ददार्शाग्रे
१७८	यौधिष्ठिरी	यौधिष्ठिरी	५२३	द्रुतम्	द्रतम्
१८०	वार	वार	५२६	प्राहिणोत्	प्राहिणात्
१८६	सस्पर्धा	सस्पर्धं	५३१	आचख्यावश्व	आचख्यावश्च
१९१	सशयम्	सशयम्	५३२	गणोऽय	गणोऽय
१९४	क्रोधा	क्रोधा	५४०	भवादृशै	भवादृशोः
२२३	दृष्ट्वैना	दृष्ट्वना	५४२	गृह्णातु	गृह्वातु
२५४	देशं	देश	५४२	सर्वमौचित्य	सर्वमौचित्य
२६९	सरलात्मना	सरलात्मन	५४६	शीर्ण	शीण
३३४	जलौघो	जलौघा	५४९	नामाङ्कं	नामाङ्क
३३५	वकेश, वकश्वभ्रे,	वकेश, वकश्वभ्रे	५५१	दुर्लभम्	दुलभम्
	वकवत्यापगा	वकवत्यापगा	५५१	सेतुमेत	सेतुमेत
३४३	द्विजा	द्विज	५६४	जयन्ताख्यो	जयन्ताख्या
४०६	राज्ञ्यग्नि	राज्ञयग्नि	५७७	पस्पर्शाङ्गेषु	प्रस्पशाङ्गेषु
४१०	तावद्व्यक्त	तावव्वक्त	५७९	त्त	त
४३०	कुम्भाम्भ	कुम्भाम्भ	५७९	शान्तौत्सुक्या	शान्तौत्सुक्या
४३१	सर्वतोऽव्यापि	सर्वतोद्याऽपि	५९८	कालम्व्याख्यो	कालम्वाख्यो

काश्मीर का इतिहास

अथ

श्रीकल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

प्रथमस्तरङ्गः

श्रीगणेशाय नम[1]

भूषाभोगिफणारत्नरोचिस्सिचयचारवे ।

मङ्गलाचरण **नमः प्रलीनमुक्ताय हरकल्पमहोरुहे ॥ १ ॥**

१. उन भगवान् शिव[2] को नमस्कार है जो सर्पों के आभूषण से आभूषित हैं; जिनका शरीर सर्पों के फणों में स्थित रत्नों की दीप्ति द्वारा प्रदीप्त है। जो कल्पतरु स्वरूप हैं, और जिनमें मुक्त जन प्रलीन[3] होते हैं।

पाठ भेद:

श्रीगणेशाय नम , ओ श्रीकृष्णाय नम: , ओ सरस्वत्यै, ओ श्रीगणेशाय नम , श्रो नमो नारायणाय , श्रोम् , ओ भगवते वासुदेवाय, श्रो स्वस्ति , अथ राजतरगिणी आदि पाठो का भेद मिलता है।

वाराणसी, पूना, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी तथा श्रीनगर की पाण्डुलिपियो में श्रीगणेशाय नम. मिलता है।

प्रथम श्लोक के शब्द 'भूषाभोगि' का पाठ-भेद 'भूषाहीन', 'मुक्ताय' का 'मुकुटा' तथा 'हर' का 'पुरा मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१. (१) श्री गणेशाय नम:—कल्हण सनातन काव्य रचना एवं कवि परंपरा का अनुकरण करता हुआ, राजतरगिणी का प्रारंभ 'श्री गणेशाय नम ' से करता है। श्री शब्द जब नाम के साथ लगाया जाता है, तो उसका अर्थ पवित्र किंवा शुभ सौभाग्यशाली, भाग्यवान्, पूजनीय तथा महाभाग समझा जाता है।

गणेश के नाम आदि की विस्तृत व्याख्या गणेश पुराण स्वयं करता है । वेद मे गणपति शब्द मिलता है 'गणाना त्वा गणपतिं'—ऋग्वेद २·२३ १। गणपति किंवा गणेश शब्द का अर्थ गणो का अध्यक्ष अथवा लोकतंत्र का राष्ट्रपति लगाया जाता है। भारत गणतंत्र है। गण का पति अथवा राजा, गणपति, गणेश, शाब्दिक अर्थ से ठीक है। प्राचीन काल से गण राज्यो के अधिपति को गणेश किंवा गणपति कहते थे। भारत मे प्रचलित राष्ट्रपति शब्द में गणपति किंवा गणेश का भाव आ जाता है। गणेश का नाम ज्येष्ठराज भी है। महाभारत लिखने के समय व्यास ने गणेश को अपना लिपिक बनाया था।

गणेश का विद्वान् तथा पडित और गोवर गणेश का अर्थ मूर्ख के लिये कालान्तर में जाने लगा है। सत ज्ञानेश्वर ने अपनी गीता की टीका के प्रथम चरण मे ही गणेश का बहुत सुदर रूपक खीचा है।

गणेश बुद्धि के अधिदेवता है। विघ्नविनाशक तथा मगलमूर्ति माने जाते हैं। इनकी मूर्तियो में 'नाग' यज्ञोपवीत देखा जाता है। अत नाग जाति से इनको किसी न किसी रूप से जोडा जा सकता है। उनका विशाल मस्तक हाथी का मुख स्वरूप, हाथो मे परशु, पाश, माला तथा पुस्तक है। लबोदर अर्थात् पेट तुदिल दिखाया जाता है।

अग्नि-सोम—मीठा लड्डू उन्हें प्रिय है। यह उनकी माधुर्यप्रियता का परिचायक है। इसलिये उन्हे ढुढिराज कहा जाता है। उनकी पत्नियाँ ऋद्धि तथा सिद्धि है। कही कही इनकी पत्नी बुद्धि के होने का वर्णन मिलता है। शिव पार्वती की सतान गणेश है। शिव पार्वती के सम्मिलित रूप की कल्पना अर्धनारीश्वर है। शिव उसमें अग्नि स्वरूप तथा पार्वती सोम है। अग्नि में सोम की आहुति डालने का नाम यज्ञ है। अग्नि अश से कुमार किंवा स्कद तथा सोम अश से गणेश अपने पिता-माता शिव-पार्वती के पुत्र कहे गए है।

(२) हर—काश्मीर मे शैव मत, शैव सिद्धात आदि का व्यापक प्रचार था। काश्मीरी अपने को शिव भक्त कहते है। शिव को विश्वात्मा के रूप में देखते है। उनकी एकात कामना शिव में सायुज्य प्राप्त करने की होती है। वह भावना काश्मीरी पडितों में रूढ हो गई है।

शिव का रुद्र प्राथमिक रूप है। यह प्राकृतिक शक्ति का द्योतक है। शैव दर्शन विकसित होकर सभी देवताओ को अपने मे मिलाता कालान्तर मे बहुदेववादी धार्मिक सिद्धात के स्थान पर एकेश्वर-वाद में परिणत हो जाता है। वह बुद्ध के आचार किंवा नैतिक दर्शन का स्थान भी ले लेता है। हलाहल विषपान करने के कारण उनका कठस्थान नीला पड गया है। अतएव उनका एक नाम नीलकठ हो गया।

शिव का नाम त्रिनेत्र है। उनका तृतीय नेत्र भाल पर दोनो भ्रू के मध्य मे है। उनका तृतीय नेत्र खुलता है। सब कुछ भस्म हो जाता है। इसी नेत्र के खुलने के कारण काम भस्म हो गया। उसका नाम अनग पडा। इस त्रिनेत्र रूपक की एक और व्याख्या की जा सकती है। शिव योगी है। योग सिद्धात उनसे आरभ होता है। यह दृष्टि भ्रू मध्य होती है। यहाँ योनि मुद्रा करने पर साधारण साधक को भी प्रकाश दिखाई पडता है। दृष्टि यहाँ स्थिर होने पर ज्ञानचक्षु खुलते है। ज्ञानचक्षु के खुलने पर मायाजाल, बधन तथा सासारिक व्यवधान ज्ञानाग्नि मे भस्म हो जाते है। अतएव शिव को त्रिनेत्र उनके योगी होने के कारण कहा गया है।

शिव के शरीर पर विषधर सर्पादि आभूषण है। भूतप्रेत अनेक योगिनियाँ आदि उन्हे घेरे रहती है। योगी पर विष का प्रभाव नही पडता। उस पर अदृश्य कही जानेवाली शक्तियो का प्रभाव नही पडता। उसे योगिनियाँ अर्थात् नारी का सुदर रूप मोह नही सकता। पिशाचिनियाँ अर्थात् नारी के विकृत रूप से वह भय भीत नही हो सकता। सब स्थानो में वह समरूप रहता है। यह है मुक्ता-वस्था। यही मुक्ति है। इस अवस्था के प्राप्त करने पर शिव मे सायुज्य हो जाता है।

(३) प्रलीन = विशेषण भूपाभोग तथा प्रलीन दोनो शब्दो का प्रयोग शिव तथा कल्पतरु के लिये किया जाता है। प्रलीन यहाँ शिव के साथ सायुज्य के अर्थ मे आया है। सालोक्य तथा सायुज्य मे अन्तर है। सालोक्य का अर्थ है शिव के लोक की प्राप्ति। सायुज्य माने होता है स्वय शिव में मिलकर एक हो जाना। बाण के हर्षचरित्र में (११) इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

भालं वह्निशिखाङ्कितं दधदधिश्रोत्रं वहन् संभृत-
क्रीडत्कुण्डलिजृम्भितं जलधिजच्छायाऽच्छकण्ठच्छविः ।
वक्षो बिभ्रदहीनकञ्चुकचितं बद्धाङ्गनाऽर्धस्य वो
भागः पुङ्गवलक्ष्मणोऽस्तु यशसे वामोऽथवा दक्षिणः ॥ २ ॥

२. जिनका वामाग नारी (पार्वती का) है। जिनका ललाट केसर तिलक से सुशोभित है। जिनके कानो मे दोलायमान कुण्डल क्रीडा करते हैं। जिनका कंठ शंख वर्ण उज्ज्वल है। जिनके वक्षस्थल का दक्षिणाग नर (शिव[1] का) है। जिनके भाल पर वह्निशिखा अंकित है। जिनके कानो के निकट केलित सर्पवृंद मुख खोलते रहते हैं। जिनके कंठ की छवि विषपान करने के कारण मलिन नही होकर कातिपूर्ण है। जिनका वक्षस्थल शेषनाग कवच से वेष्ठित है। वे अर्धनारीश्वर वृषभध्वज, चाहे दक्षिण अथवा वाम अंग हो, आपका कल्याण करें।

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दाऽऽस्कन्दी स सुकवेर्गुणः ।
येन याति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥ ३ ॥

३. सुधा[1]धारा को भी मात करनेवाले सुकवियों का गुण वंदनीय है; जिनके कारण उनकी तथा दूसरों की यशःकाया स्थिर हो जाती है।

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
प्राक्कथन कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥ ४ ॥

४. प्रजा[1]पति के समान रम्य निर्माणशील कवियों के अतिरिक्त और किसमें इतनी क्षमता है, जो भूतकाल की बातें प्रत्यक्ष मूर्तिमान आँखों के समुख उपस्थित कर सके।

पाठभेदः

श्लोक सख्या दो मे 'सम्भृत' का पाठभेद 'सम्भृत' 'जृम्भित' का 'जृम्भित' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२. (१) **शिव**—शिव की यहाँ वदना अर्द्धनारोश्वर के रूप मे की गई है। शिव का दक्षिण अग शिव तथा वाम अंग पार्वती का माना जाता है।

पाठभेद

श्लोक संख्या ३ मे 'सुधा' का 'स्वधा' और 'येन' का 'येना' मिलता है ॥ ३ ॥

पादटिप्पणियाँ

३. (१) **सुधा**—सुधा अर्थात् अमृत पान करनेवाला हो अमृतत्व प्राप्त करता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति अमृत पान करे तो उसका फल अपने को नही मिल सकता। किंतु कवि अपने काव्यामृत एवं लेखनी द्वारा अमर होकर, जिसके विषय मे अपनी लेखनी उठाता है, उसको भी उसके यश-वर्णन द्वारा अमर बना देता है। काया अस्थिर है। उसका नाश होता है। परतु यश काया अपने यश के कारण स्थिर हो जाती है। यदि वाल्मीकि कवि नही होते, तो, राम की कथा और उनका यश कैसे आज तक स्थिर रहता ?

पाठभेद

श्लोक सख्या ४ मे 'पती' का पाठभेद 'पती' मिलता है ॥ ४ ॥

न पश्येत्सर्वसंवेद्यान् भावान् प्रतिभया यदि ।
तदन्यद्दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥ ५ ॥

यदि कवि मे सर्व सवेद्य भावो के प्रकट करने की प्रतिभा न होती तो और किस प्रकार माना जा सकता था कि उन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

कथादैर्घ्याऽनुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते ।
तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत् प्रीतये सताम् ॥ ६ ॥

विचित्र घटनावलियो का विस्तृत समावेश कथा विस्तार के कारण इसमे नहीं किया जा सका है, तथापि सत्पुरुषो को यत्र तत्र किंचित् रुचिकर कथानक भी मिलेगे।

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥ ७ ॥

वही गुणवान् श्लाघनीय है जिसकी वाणी राग-द्वेषो का बहिष्कार कर एक न्यायमूर्ति के समान भूतकालीन घटनावलियो को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करती है।

पादटिप्पणियाँ

४. (१) प्रजापति—सृष्टि के सर्जक परम पितामह ब्रह्मा के लिये प्रजापति शब्द का प्रयोग किया गया है। सृष्टि के सर्जन काल मे ब्रह्मा ने १० लोक-कर्ताओ को उत्पन्न किया था। ऋ० वेद ३·१० १३, ४ २५ १, ८ १ १७, ९ १ २४, ३० ७ ७, वाजसनेयि सहिता माध्यदिन शाखा . ८ ३६, शतपथ ब्राह्मण १,४ २१, तैत्तिरीय ब्राह्मण २ २ १०, मत्स्य पुराण १ १ २५, प्रजापति की परिभाषा करता है—'विश्वेप्रजाना पतयो येभ्यो लोका विनि सृता'।

वेद मे प्रजापति शब्द प्रजापालक, सविता, अग्नि, आदि देवो के लिये भी आया है। ऋग्वेद ४ ५५ २, ६ ५ ६, १० ८५ ४३, अथर्ववेद, १० १ २१।

प्रजापतियो की सख्या कितनी थी, इस सबध मे मतैक्य नही है। कही ७, कही ११, कही १२, कही १४ और कही २१ सख्या उनको दी गई है। महाभारत मे २१ प्रजापतियो का उल्लेख मिलता है। यह सख्या सबसे अधिक—ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम, क्रोध और विक्रीत, महाभरत में दी गई है। (आदि पर्व १.२९, ३३, ३१ २६ २१, शाति पर्व ३३४ १९, २७)। निम्नलिखित प्रजापतियो के नाम सभी तालिकाओ मे पाए जाते है—मरिचि, अत्रि, अगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, वशिष्ठ, भृगु, नारद।

पाठभेद

श्लोक सख्या ५ मे 'दन्यद्दिव्य' का पाठभेद 'दन्यदिव्य' मिलता है॥ ५ ॥

श्लोक सख्या ६ में 'चित्रये' का 'चित्ये', 'तदत्र' का 'तन्मात्र' तथा 'दस्त्येव' का पाठभेद 'दस्त्यत्र' मिलता है।

श्लोक सख्या ७ मे 'ष्कृता' का पाठभेद 'ष्कृत' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

७ (१) स्थेय—कल्हण ने स्थेय शब्द का प्रयोग न्यायाधीश, न्यायकर्ता के अर्थ में किया है। उसने अपने को न्याय दृष्टि से एक न्यायकर्ता की तरह परिस्थितियो के बीच रखा है। प्राचीन प्राप्त पुस्तको, अप्राप्य ग्रथो के उद्धरणो, सभी प्रकार की ऐतिहासिक सामग्रियो का निरीक्षण, अवलोकन तथा विवेक तुला पर एक न्यायकर्ता की तरह तौलकर अपने मत तथा विचार को राजतरगिणी मे लिपिवद्ध किया है।

पूर्वैर्बद्धं कथावस्तु मयि भूयो निबध्नति ।
प्रयोजनमनाकर्ण्य वैमुख्यं नोचितं सताम् ॥ ८ ॥

पूर्वकालीन रचनाकारों द्वारा जो कथा वस्तुएँ निबद्ध कर दी गई हैं। उनका मैं क्यों पुनर्लेखन कर रहा हूँ, इस प्रयोजन के हेतु को बिना समझे सत्पुरुषों का मुझसे विमुख होना उचित नहीं है।

दृष्टं दृष्टं नृपोदन्तं बद्ध्वा प्रमयमीयुषाम् ।
अर्वाक्कालभवैर्वार्ता तत्प्रबन्धेषु पूर्यते ॥ ९ ॥

जिन लेखको ने अपने समय के [1]नृपो का इतिहास[2] लिपिबद्ध किया है, उनके पश्चात् अर्वाचीन काल के कवि के लिये और क्या ऐसी बाते शेष रह गई है, जो अपने नूतन प्रबंध के कारण पूर्ण करेंगे ?

दाक्ष्यं कियदिदं तस्मादस्मिन् भूतार्थवर्णने ।
सर्वप्रकारं स्खलिते योजनाय ममोद्यमः ॥ १० ॥

१०. अतएव इस ग्रन्थ के लिखने की मेरी योजना यह है कि मैं सर्वांगीण पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास उपस्थित करूँ। जहाँ पुरातन इतिहास लेखको की रचनाए विश्रृंखलित हैं।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८ मे 'मुख्यम्' का पाठभेद 'मुख' मिलता है। श्लोक सख्या ९ तथा १० युग्मक हैं।

श्लोक सख्या ९ मे 'बद्ध्वा' का पाठभेद 'बद्धा' ('बुद्ध्वा') तथा 'प्रमय' का 'प्रथम' मिलता है।

श्लोक सख्या १० मे 'कार' का 'कार' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

९. (१) **नृप**—अमरकोशकार ने राजा के सात नाम दिए हैं—(१) राजन् (२) राज्, (३) पार्थिव, (४) क्ष्माभृत्, (५) नृप, (६) भूप और (७) महीक्षित्। -क्षत्रिय वर्ग ८ १।

नृप का शाब्दिक अर्थ होता है 'मनुष्यो की रक्षा करनेवाला।' राजा तथा नृप के अर्थो मे किंचित् भेद है। कल्हण ने यहाँ भूपति, राजा, महीपालादि शब्दो का प्रयोग नही किया है। वैदिक साहित्य मे भी यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद २ १.१ ७, ४ २० १, ७ ६ ९ १, १०:४४ २–३, अथर्ववेद ५ १८ १–१५, तैत्तिरीय आरण्यक . ६ ३ ३।

(२) **इतिहास प्रयोजन**—कल्हण अपने पूर्व लेखको के इतिहास क्रम को जारी रखना चाहता है। उसके इस कथन का अर्थ यह है कि इतिहास लिखने की प्राचीन परपराएँ रही हैं। यदि आज भारतीय इतिहास ग्रथ उपलब्ध नही हो रहे है, तो इसका अर्थ यह न लगाया जाए कि भारत मे इतिहास लिखने की परंपरा थी ही नही। कल्हण का यह संकेत स्पष्ट है कि वह इतिहास लेखको की परपरा को जारी रखना चाहता है, ताकि अपने समय तक के राजाओ का इतिहास जहाँ तक पूर्वलेखक लिख चुके है, उनमे जोडकर टूटी शृंखला के इतिहास के टूटे क्रम को पुन क्रमबद्ध कर दिया जाय।

राजतरंगिणी नाम कल्हण के उर्वर मस्तिष्क की मौलिक उपज है। उसके पूर्व ग्रथ नृप तथा राजाओ के नाम से सबधित थे। उनका नाम ग्रथ के उद्देश्य का बोधक हो जाता था। परतु राजतरंगिणी एक ऐसा नाम है जो राजा

और नरिता किंवा तरगिणी का मेल नही खिलाता। राजा मनुष्य है। तरगिणी एक नदी है। वह प्रकृति की देन जड पदार्थ है। कल्हण ने राजाओं के चरित्र किंवा इतिहास का नूतन नामकरण राजतरगिणी नाम से किया है। कल्हण के पश्चात् आनेवाले इतिहास लेखको ने इस नाम को अपनाया है। काश्मीर के इतिहास को कल्हण के पश्चात् लिखकर इतिहास शृंखला को कायम रखा है- जोनराज, श्रीवर तथा शुक आदि सन् ११४८ से १५५६ ई० तक अर्थात् मुगल काल के प्रारभ तक कल्हण के पश्चात् राजतरगिणी लिखकर कल्हण द्वारा आरभ किए महाप्रयास को आनेवाली चार शताब्दियों तक जारी रखा। इस तरगिणी की धारा को सूखने नही दिया।

तरगिणी अर्थात् नदी की धारा अविच्छिन्न गति से बहती रहती है। तरगिणी का पेटा एक सा रहता है। परतु उसमे सर्वदा नवीन जल आता रहता है। प्रवाह के साथ बहकर गया जल पुन लौटकर नही आता। तथापि धारा की गति तथा जलस्रोत की शृंखला टूटती नही।

तरगिणी के समान देश मे राजा आते रहते है जाते रहते है परतु राज्य सिंहासन खाली नही रहता। देश मे नदी की धारा की तरह राजपरपरा अनवरत गति से अविशृंखल क्रम मे चलती रहती है। राज्य के शासन का क्रम टूटता नही। राजा मरने के साथ ही दूसरे व्यक्ति के रूप मे जीता रहता है। इगलैंड के राजा के जीवन, अभिषेक तथा मृत्यु के समय—भगवान् राजा की रक्षा करे, राजा चिरजीवी हो—कहा जाता है। अर्थात् देश का राजा नही मरता, वल्कि देश मे राजा पदवीधारी व्यक्ति मरता है। नदी के जलबिंदुओं के समान राजपरपरा काल प्रभाव के साथ चलती रहती है। उसमें जल विन्दुओं के तुल्य नामधारी राजा आते रहते है। प्रवाह के साथ वह जाते है। उनके पीछे पुन जल-विंदु आकर प्रवाह को पूर्ववद् जारी रखते है।

राज सिहासन नदी के पेटा के समान है। वहाँ राजा तुल्य जलबिंदु आते है और चले जाते है। राज्य सिहासन नदी के पेटा के समान कभी जलतुल्य राजा से विहीन नही होता। राज्य तथा शासन का क्रम नही टूटता। सिंहासन पर नदी मे आते नवीन जल के समान राजाओं की परपरा आती रहती है। यह प्रवाह कभी सूखता नही। अनादिकाल से चला आया है। चला जायगा। हमारा रहना और न रहना महत्त्वहीन है। नदी प्रकृति के उषाकाल से जल बहाती समुद्र में मिलने चली जा रही है। राजा सभ्यता के उदय काल से होता आया है। काल प्रभाव से होता रहेगा। उसकी यह आने जाने की परपरा नही टूटेगी। कितनी उदात्त कल्पना थी कवि कल्हण की। उसने इतिहास की एक नवीन व्याख्या की है। यह व्याख्या उतनी ही आधुनिक कही जायगी जितने आधुनिक हम अपने होने का गौरव अनुभव करते है।

तरगिणी मे लोल लहरियाँ उठती हैं। उत्ताल तरगें उठती है। भँवरें चक्कर खाती है। उनका निर्मल जल गदले वर्षाकालीन जल मे परिणत हो जाता है। कलकल करती लहरियाँ जलप्लावन का रूप धारणकर गरजने लगती है। जल दूषित होता है। शरद ऋतु आती है। जल पुन निर्मल हो जाता है। शीत ऋतु मे वे ही लहरियाँ जम जाती है। तुषारपात के कारण ठडी श्वेत ओढनी ओढकर सब कुछ ठडा कर देती है। पादपो के पत्ते गिर जाते है। कुसुम-झाडियाँ ठूठ लगने लगती है। वसत आता है। तुषारपात का अवसान होता है। जमा वर्फ गलने लगता है। धारा मे गति आती है। पादपो मे नवकिसलय निकलते है। कुसुम-झाडियो मे कलियाँ मन ही मन मुसकुराने लगती है। ग्रीष्म काल आते ही जल धारा क्षीण होने लगती है। उसकी यह क्षीणता उसकी महत्ता वढा देती

है। वह तृष्ण बुझाने मे, पादपो को विकसित करने मे, पुष्पो की सुरभि फैलाने में, उन्हे जल से सीचकर उनमे उत्साह उत्पन्न करती हैं। शाति प्रदान करती है।

पुनः घूमती वर्षा ऋतु आती है। नदी अपना सुहावना रूप बदलकर हुँकार उठती हैं। किनारो को काटती, वृक्षो को बहाती, जलप्लावन करती, गरजती मलिन रूप धारण करती, महार्णव से मिलने चल देती हैं। ये ही बातें राजाओ तथा राज्यो के विषय मे कही जा सकती है। वर्षा-कालीन नदी का जलप्लावन राज्यो की क्रातियो, शरद् ऋतु की निर्मलता राज्यो को स्थिरता, शीत ऋतु की ठड राज्यो की जडता, वसत ऋतु की सुरभि राज्यो का विकास, ग्रीष्मकालीन जल की उपयोगिता राज्यो के शातिकाल का द्योतक है। नदो राज्य है। जल राज्य की जनता है। वर्षा-कालीन मटमैला जल राज्य के दोषो को प्रकट करता हैं। निर्मल धारा राज्य के गुणो को प्रकट करती है। ग्रीष्मकालीन शीतल धारा जनता के दुःख निवारणार्थ श्रेष्ठ कार्यों का रूपक प्रस्तुत करती है। आततायियो के आतंक से सरिता जल जनता को शीतलता प्रदान करता है। शाति देता हैं। नदी के तट पर गर्मी से व्याकुल व्यक्ति जैसे शीतलता, शाति, सुख का बोध करता है, उसी प्रकार पीडित प्राणी राज्याश्रय प्राप्त करते ही दुःख से पीडा से, त्राण पाता है।

नदी वर्षा मे दूषित होती है। काव्यकारो ने वर्षा ऋतु में नदियो का रजस्वला होना कहा है। उस समय दोष के कारण उनका कोई स्पर्श नही करता। ठीक उसी प्रकार राज्य मे दोष आ जाने पर कोई राज्य के पास आना नही चाहता। इसी नदी का निर्मल जल पान करने वाला उसमे स्नान तक करना नापसद करता है।

राजा में दोष उत्पन्न होने पर राजा अपना तो सर्वनाश करता ही है, दूसरो के भी नाश का साधन बन जाता है। उफनती वर्षा कालीन तरंगिणी की प्रबल वेगधारा अपने ही दोनो तटो को काटती है, अपने ही तटवर्ती फलप्रद छायाप्रद वृक्षो को उखाडती बहाती नष्ट करती है, भूमि के पादपो को सीचने के स्थान पर उन्हे गलाती, गिराती, बहाती, अपनी सीमामर्यादा लाँघती देश को जलप्लावित करती है। उसी प्रकार राजा अपनी मर्यादा अपनी सीमा उल्लघन करने पर क्राति किवा विप्लव का रूप उपस्थित करने के कारण नष्ट हो जाता है। कल्हण ने इसी लिये इतिहास, गाथादि शब्दो के स्थान पर तरगिणी शब्द का प्रयोग राज्यो के इतिहास के लिये किया है।

कल्हण कवि था। कुलीन कवि था। एक राजमत्री का पुत्र था। कवि हृदय प्रकृति के अक मे बैठकर सौदर्य सचय करता है। कवि हृदय प्रकृति से मूक वार्ता करता है। वह प्रकृति की प्रतिभा से अपनी प्रतिभा का भडार भरता है। कवि सरस, अलकृत, भाषा मे अपना उद्देश्य तथा विचार प्रकट करना चाहता है। उसकी सुप्त चेतना कृति के साथ मिलते ही जागृत हो जाती है। कवि कल्हण इसका अपवाद नही था।

कल्हण सफल इतिहास लेखक कवि था। उसने एक सफल कवि की तरह तरगिणी की उपमा राज्य से दी है। राज्य शृखला इस तरगिणी के जल बिंदु है। जल का धारा राज का प्रवाह है, जो कभी सूखता नही। तरगिणी की यह धारा अविच्छिन्न रूप से बहती रही है। राजतरगिणी को इस धारा को सोलहवी शताब्दी तक जोनराज, श्रीवर, शुकादि जैसे ऐतिहासिक कवि विद्वानो ने सूखने नहीं दिया है। तरगिणी आज भी सूखी नही है। उसमे जल रहा है। आता रहेगा, चाहे इस जलधारा मे देश काल पात्र के अनुसार उसके रूप रंग एवं स्वाद मे क्यो न अन्तर पड गया हो ?

विस्तीर्णाः प्रथमे ग्रन्थाः स्मृत्यै संक्षिपतो वचः ।
सुव्रतस्य प्रबन्धेन च्छिन्ना राजकथाऽऽश्रयाः ।। ११ ।।

११. पूर्वकालीन इतिहास ग्रन्थ विस्तृत थे। उन्हें स्मरण रखने के लिये सुव्रत ने उनका संक्षिप्त संस्करण कर दिया था। अतएव वे छिन्न[1] अर्थात् लुप्त हो गए।

पादटिप्पणियाँ

११ (१) विच्छिन्न = लुप्त–आज भी विद्यालयो में विस्तृत इतिहास ग्रन्थ के स्थान पर नोटो से पढने की प्रथा चल निकली हैं। विद्यार्थी विशाल पाण्डित्यपूर्ण विस्तृत इतिहास ग्रथो के चक्कर में नही पडते। परीक्षाएँ पास करने के लिये नोटो का आश्रय लेते है। विस्तृत इतिहास ग्रंथो का केवल सदर्भ के लिये उपयोग किया जाता है।
सुव्रत के सक्षिप्त इतिहास का नाम कल्हण नही देता हैं। पूर्व कालीन इतिहास ग्रन्थो का नाम भी कल्हण नही देता है। प्रतीत होता है कि उसके समय मे मौजूद नही थे। प्रतीत होता है कि सुव्रत ने विद्यार्थियो तथा पाठको की सुविधा के लिये सरल बोधगम्य तथा स्मरण रखने योग्य प्राचीन इतिहासो को संक्षिप्त तथा वर्गीकृत कर दिया था। सुव्रत का यह संक्षिप्त इतिहास प्रचलित तथा ख्यातिप्राप्त हो गया। कल्हण इस बात का स्पष्ट उल्लेख करता है। अतएव पूर्वकालीन विस्तृत इतिहासो की प्रतिलिपि कर उन्हें रखना अथवा उसका पाठ वद हो गया था। उन दिनो आजकल जैसे प्रकाशन तथा मुद्रण का साधन उपलब्ध नही था।

काश्मीर में काफी भोजपत्र के वृक्ष है। जोजिला पास के मार्ग में बहुत वृक्ष मैंने देखा। उनसे कुछ भोजपत्र उखाडकर ले भी आया। भोजपत्र काफी चौडे और लम्बे होते हैं। परतो पर परते जमी रहती हैं। उन्ही पर पुस्तक कालो स्याही से लिखी जाती थी। सुव्रत का इतिहास छोटा था। अतएव उसी की प्रतिलिपियाँ पठन पाठन के लिये वनने लगी होगी। पुरातन इतिहास ग्रथ केवल सदर्भ, अनुसधान तथा शोभा के लिये रह गए होगे। उनका स्वत असामयिक तथा अनुपयोग होने के कारण लोप हो जाना जैसा कल्हण स्वयं स्वीकार करता है, कोई आश्चर्य की बात नही मालूम होती।

कल्हण के समय सुव्रत द्वारा उल्लिखित इतिहास ग्रथ उपलब्ध नही थे। सुव्रत का इतिहास भी अभी तक कही प्राप्त नही है, जो कल्हण के समय प्रचलित था। सभव है, कल्हण की राज तरंगिणी अधिक पूर्ण होने के कारण इसका प्रचलन हो गया और सुव्रत का इतिहास उसी प्रकार राजरगिणी लिखने के पश्चात् स्वतः लुप्त हो गया, जिस प्रकार सुव्रत के इतिहास के कारण प्राचीन इतिहास ग्रंथ स्वत लुप्त हो गए थे।

कल्हण के इस उद्धरण से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में इतिहास लिखने की स्वस्थ परंपरा भारत में प्रचलित थी। गवेषणापूर्ण अनुसंधान के आधार पर रचनाकारो ने गाथा अथवा काव्य नही, अपितु इतिहासो की रचना की थी। पाश्चात्य विद्वानो की धारणा कि भारत में इतिहास लिखने की परपरा नही थी, आमूल मिथ्या प्रमाणित होती हैं।

ऐतिहासिक ग्रन्थो का धार्मिक महत्त्व नही होता था। सस्कृत कल्हण के समय में भारत मे अनेक स्थानो मे राजभाषा थी। संस्कृत में पत्र व्यवहार तथा लिखा पढी होती थी।

इस समय वहुधा धार्मिक ग्रन्थ इसीलिये भारत में पाए जाते है कि उन्हें धार्मिक मान लिया गया था। वे धर्म से सवधित कर दिए गए थे। उन्हें

या प्रथामगमन्नैति साऽपि वाच्यप्रकाशने।
पाटवं दुष्टवैदुष्यतोत्रा सुव्रतभारती ॥ १२ ॥

१२. यद्यपि सुव्रत की रचना ने ख्याति प्राप्त कर ली थी तथापि पाडित्याभिमान के कारण उसकी रचना शैली दोषपूर्ण हो गई थी। अस्तु विषय प्रतिपादन मे निपुणता प्राप्त नहीं कर सकी।

केनाऽप्यनवधानेन कविकर्मणि सत्यपि।
अंशोऽपि नास्ति निर्दोषः क्षेमेन्द्रस्य नृपावली ॥ १३ ॥

१३. यद्यपि क्षेमेद्र[1] की नृपावली[2] काव्य रचना है तथापि अनवधानता के कारण उसमे इतनी त्रुटियाँ रह गई हैं कि उसका कोई भी अंश निर्दोष नही कहा जा सकता।

संजो कर रखने की परपरा चल पडी थी। ऐतिहासिक तथा राजाओ के चरित्र सम्बन्धी ग्रन्थो को, यद्यपि वे संस्कृत मे लिखे गए थे, धार्मिक रूप नही दिया गया। ऐतिहासिक घटनाएँ तथा राजाओ के चरित्र राजवशावली किंवा प्रशस्ति मात्र रह गए थे।

पूर्व काल मे हुए राजाओ की वंशावली तथा उनका चरित्र उनके हजारो वर्ष पश्चात् होनेवाले राजवशो किंवा जनता के लिये महत्त्वहीन हो गए थे। उनके पढने लिखने से न तो पुण्यार्जन हो सकता था और न धनार्जन। यह मनोभावना वलवती हो गई होगी। अस्तु रामायण, पुराण तथा महाभारत में वर्णित यत्र तत्र इतिहास को एक आशिक झलक मिल जाती है। उन्हे धार्मिक ग्रन्थ की मान्यता देकर, उनका धर्म मे समावेश कर लिया गया।

मुसलमानी शामन काल मे संस्कृत ग्रंथो पर विपत्ति आ गई। उन्हे फूंकने, उन्हे नष्ट करने का धार्मिक उन्माद उत्पन्न हो गया। उन्हे पढना कुफ्र समझा जाता था। कितने ही ग्रथ लोगो ने स्वत. भय से फूँक दिए वा उन्हे जल समाधि दे दो। काश्मोर मे यह वहुत वडे पैमाने पर हुआ। इस काल मे जिन्होंने अपना धर्म नही त्यागा, उन्हे धार्मिक ग्रथो की रक्षा की विशेष

चिता हुई। एतदर्थ जो कुछ इतिहास ग्रन्थ शेष रह गये थे वे भी अनायास समाप्त हो गये।

मध्येशिया के लोग पूर्व मुस्लिम काल में बौद्ध या हिन्दू धर्मानुयायी थे। रूसी पुरातत्त्व विभाग के अनुसधानो तथा खनन कार्यों से इस पर यथेष्ट प्रकाश पडा है। वहाँ मुसलमान पहुँचे। मुस्लिम धर्म स्वीकार करने के लिये वाध्य किया गया। वौद्ध भिक्षुओ ने ग्रन्थो को गुफाओ मे खोदकर गाड दिया। वे ही प्राप्त होने वाले ग्रन्थ विश्व इतिहास की इस समय सामग्री वन रहे हैं। यही काम भारत मे मुस्लिम शासन के सत्तारूढ होने के पश्चात् हुआ। मिस्र, ईरान तथा एशिया माइनर के देशो मे प्राचीन ग्रन्थो का सर्वथा लोप हो गया। वहाँ के इतिहासो को पिरामिडो, ध्वंसावशेषो और प्राप्त होने वाले बिखरे शिलालेखो को पढकर जाना जा रहा है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १३ मे 'कर्मणि' का पाठभेद 'कर्माणि' मिलता है।

पाद टिप्पणियाँ

१३ (१) क्षेमेद्र—कवि क्षेमेंद्र का एक नाम व्यासदास भी है। कवि क्षेमेंद्र काश्मीर के राजा अनन्त देव (सन् १०२९–१०६३ ई०) और

दृग्गोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाऽऽश्रयाः ।
मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि ॥ १४ ॥

१४. मैंने अपने पूर्वगामी विद्वानो द्वारा रचित राजकथा विषयक ग्यारह ग्रन्थो तथा नील मुनि[1] के मत का निरीक्षण किया है।

उसके पुत्र राजा कलश (सन् १०६३–१०८९ ई०) का समकालीन था। क्षेमेंद्र संस्कृत साहित्य का ख्यातिप्राप्त कवि हुआ है। उसकी पुस्तक 'नृपावली' का उल्लेख कल्हण करता है। अभी तक वह प्राप्त नही हो सकी हैं।

क्षेमेन्द्र प्रसिद्ध संस्कृत परिहास कथा लेखक है। प्रकाशेन्द्र इनके पिता का नाम था। पितामह का नाम निम्नाशय था। प्रपितामह का नाम सिन्धु था। इसके पूर्व पुरुष काश्मीर मे अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। उसने तत्र तथा आलोचक विद्वान् अभिनवगुप्त से साहित्य तथा शास्त्रो का अध्ययन किया था। इन्होने 'समय मातृका' की रचना सन् १०५० ई० में की थी। 'दशावतारचरित' की रचना सन् १०६६ ई० में की थी। रामायण, महाभारत तथा बृहत्कथा का संक्षेप में रोचक वर्णन, क्रम से रामायण मंजरी, भारत मंजरी तथा बृहत्कथा मंजरी में किया है। 'बोधिसत्त्वावदान कल्पलता' में पारमिता सूचक आख्यानो का वर्णन है। वह पद्य में लिखी गयी है। 'औचित्य विचार चर्चा' में औचित्य को काव्य का मूल भूत तत्त्व स्वीकार किया है।

'नर्ममाला' तथा 'देशोपदेश' परिहास कथा की संस्कृत में अनुपम रचना है। उसमें उन्होने तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण करते हुए उसकी मीठी चोट की है। उनकी रचना का उद्देश्य विशुद्ध चरित्र चित्रण के साथ-साथ चरित्र निर्माण भी है। इन्होने कलाविलास, चतुवर्ग संग्रह, चारुचर्या, समय मातृकादि, लघु काव्य का रचना की है। भाषा के सुबोध सरस विन्यास में क्षेमेन्द्र ने सफलता प्राप्त की है। भावो की उदात्त व्यंजना मे वह सिद्ध हस्त है। पाण्डित्य का अनावश्यक प्रदर्शन तथा शब्द के चमत्कारो से दूर रहने का प्रयास किया है। लोक प्रकाश में क्षेमेन्द्र स्वयं अपना नाम 'व्याम दास' देता है। अपनी वंशावली देता है। उसके अनुसार नरेन्द्र के पुत्र भोगीन्द्र थे। भोगीन्द के पुत्र सिन्धु थे। सिन्धु के पुत्र प्रकाशेन्द्र थे। प्रकाशेन्द्र के पुत्र क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्र का पुत्र सोमेन्द्र था।

(२) **नृपावली**.—कल्हण ११ ग्रन्थो का नामोल्लेख यहाँ नहीं करता। उसने क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' तथा हेलाराज की 'पार्थिवावली' का नाम स्पष्ट रूप से दिया है। यह दोना ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नही हो सके हैं। सुव्रत, पद्ममिहिर और श्रीच्छविल्लाकर के ग्रन्थो का नाम कल्हण यहाँ नही देता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४ मे 'दृग्गोचर पूर्व' का पाठभेद 'दृष्टैश्च पूर्व' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१४ (१) नीलमुनि—नीलमत पुराण नील मुनि की रचना है। काश्मीर मंडल का यह एक प्रकार से आद्य ग्रन्थ है। काश्मीर किस प्रकार किसी समय जलपूर्ण सतीसर था, बारहमूला के पास पर्वत भेदकर, किस प्रकार पानी निकाला गया, काश्मीर की महाभारत काल मे क्या अवस्था थी, काश्मीर की परम्परा, पूजा, पर्व, तीर्थ, त्योहार, धर्म, रीति और रिवाज पर, यथेष्ट प्रकाश नीलमत पुराण डालता है। इसका विस्तृत वर्णन यथास्थान किया गया है।

नीलमत पुराण और राजतंरगिणी

राजतरंगिणी का श्लोक संख्या १६ में वर्णित प्रथम ४ राजाओ तथा श्लोक संख्या ५०–८२ से नीलमत के श्लोको को मिलाया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि कल्हण ने उन्हें नीलमत पुराण

से लिया है। निष्कर्ष निकलता है। कल्हण ने, जैसा वह स्वय लिखता है, नीलमत पुराण का गभीर अध्ययन किया था।

कल्हण ने नील का पुन उल्लेख प्रथम तरग की श्लोक सख्या २८,१८२ मे, नील कुड का १८३, १८६ मे, कर्मकाण्ड, पचम तरग सख्या ९१ में नीलजा (वितस्ता) नदी, नीलभू. सरिता अर्थात् वितस्ता या झेलम नदी का नोलकुण्ड मे पूजा का तरग ८ ३३५, मे उल्लेख किया है।

नीलमत पुराण कथन का उल्लेख कल्हण ने राजतरगिणी के तरग १.१४ में, लुप्त राजाओ का उल्लेख १ ३६ मे, नीलमत पुराण के श्लोक का उद्धरण १ ७२ में, किया है। ज्येष्ठेश की कथा १ ११३ में, सोदर तीर्थ का वर्णन उद्धरण १ १२३ मे, बौद्धो द्वारा नील पुराण के कर्मो का बन्द करना १:१७८ मे, पिशाचो की कथा १ १८४ मे, काश्मीर के तीर्थो तथा सतीसर की कथा आदि नीलमत पुराण से लिया है।

नीलमत पुराण उपलब्ध है। कल्हण ने नीलमत पुराण, नील मुनि तथा नील सम्बन्धी जिन बातो का उल्लेख राजतरगिणी में किया है, वे सब नीलमतपुराण में मिलते है। नीलमत पुराण के श्लोको का उद्धरण राजतरगिणी मे मिलता है। कल्हण ने इसे स्वय राजतरगिणी में स्वीकार किया है। उन्हे उसने नीलमत पुराण से लिया है। कल्हण नीलमत पुराण की सत्यता तथा प्राचीनता सिद्ध करता है। प्राप्य नीलमत पुराण कल्हण की सत्यता भी सिद्ध करता है। साथ ही साथ नीलमत पुराण से जो लेना स्वीकार करता है, वे नीलमत पुराण मे मिलते है।

नीलमत पुराण का अध्ययन करने पर मेरी प्रथम प्रतिक्रिया यह हुई कि नीलमत पुराण वास्तव मे काश्मीर का भूगोल है। काश्मीर के पर्वतो, नदियो, जलाशयो, तीर्थो, देवस्थाना, उपत्यकाओ, झरनो आदि, का विशद वर्णन पुराण करता है। उसमे वर्णित स्थान, नदियाँ, स्रोतस्विनियाँ, पर्वतशिखर, पर्वतमालाएँ, जलाशय, तीर्थ तथा देवस्थान आज भी अपने मूल अपभ्र श किवा परिवर्तित नामो के साथ जहाँ जिस स्थान पर उनका होना कहा गया है, मिलते है। उनकी दिशा, उनके समीप के वर्णित प्राकृतिक भौगोलिक स्थान, यथास्थान मिलते है।

मैने स्वय भ्रमण कर स्थानो का पता लगाया है। बहुत से स्थान लोप हो गये है। लोग भूल गये है। कुछ को मैने इन्हे नीलमत के आधार पर खोजा है। उन्हे यथास्थान पाया है। यद्यपि लबे काल और मुस्लिम प्रभाव के कारण पुराने नामो तथा ख्याति को लोग भूल गये है। नीलमत पुराण के रचनाकार ने काश्मोर मडल का भ्रमण कर आँखो देखा वर्णन किया है।

दूसरी बात और उल्लेखनीय है। नीलमत पुराण काश्मीर की प्राचीन परम्परा, इतिहास, धर्म, आचार, विचार, मतमतातर, कर्मकाड, सामाजिक जीवन, पूजा-पाठ, रहन-सहन,का सजीव चित्रण करता है। निस्सदेह तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्र आँखो के सम्मुख आ जाता है। नीलमत पुराण मे वर्णित स्थानो, उपस्थानो को, मूल श्लोको से मिलाकर अध्ययन करने से वास्तविकता पर प्रकाश पडता है। हुएन साग और नीलमत पुराण पर द्रष्टव्य है परिशिष्ट।

चीनी पर्यटक हुएनसाग ने काश्मीर की यात्रा की थी। कल्हण से शताब्दियो पूर्व आया था। उसने नीलमत द्वारा वर्णित काश्मीर के इतिहास तथा कथाओ का उल्लेख किया है। निस्सदेह तत्कालीन काश्मीर में नीलमत पुराण के प्रचलित होने की पुष्टि करता है। कल्हण के वर्णन की सत्यता सिद्ध करता है। कल्हण ने यथेष्ट ऐतिहासिक सामग्री राजतरगिणी की रचना में नीलमत पुराण से ली है।

कल्हण द्वारा उल्लिखित कम से कम दो बाते हुएनसाग के पर्यटन वर्णन मे मिलती है। हुएनसाग ने उन्हे तत्कालीन प्रचलित सस्कृत. ग्रन्थो से लिया

दृष्टैश्च पूर्वभूभर्तृप्रतिष्ठावस्तुशासनैः ।
प्रशस्तिपट्टैः शास्त्रैश्च शान्तोऽशेषभ्रमक्लमः ।। १५ ।।

१५ पूर्व काल के भूपतियो द्वारा मंदिरो के प्रतिष्ठाकालीन एवं दान संबंधी प्रतिष्ठा[1] तथा वस्तु[2] प्रशस्तिपट्टो[3] और शास्त्रो[4] के अवलोकन द्वारा जो कुछ भ्रम मुझमे शेष रह गया था उसकी भी शाति हो गई है।

था। प्रथम यह कि पुरा काल में काश्मीर विशाल सरोवर अर्थात सतीसर था। जल बह जाने के कारण रमणीय भूमिमय उपत्यका बन गयी थी। नाग जाति यहाँ की सरक्षक थी। जल बह जाने पर सरोवर काश्मीर राज्य के रूप मे परिणत हो गया। उस समय भी नाग जाति वहाँ पर थी।

हुएनसाग मिहिर कुल का वर्णन करता है। वह काश्मीर का राजा था। घोर अत्याचारी था। बौद्ध धर्मानुयानियो का शत्रु था। उसे लोगो के हत्या की कुख्याति प्राप्त थी। वह बाल अवला वृद्ध सबको ताडित करना था।

राजतरगिणी में कल्हण ने पहली घटना का वर्णन १ २५–३१ में किया। दूसरी घटना-मिहिर कुल के शासन और उसके नृशस प्रवृत्तियों-का वर्णन (तरग १ के २८९–३२५) मिलता हैं। मिहिर कुल के राज्यकाल के सदर्भ में इस विषय पर श्रौर प्रकाश डाला गया है।

काश्मीर में मुसलिम शासन हो जाने पर भी नीलमत पुराण की मान्यता थी। मुसलिम बादशाह नीलमत पुराण का श्रादर करते थे। नीलमत पुराण की प्राचीनता तथा उसके श्रस्तित्व का समर्थन श्री जोन राज द्वितीय राजतरगिणी में करते है। श्री जोनराज के समय में नीलमत पुराण का पाठ होता था। काश्मीर के प्रसिद्ध बादशाह बडशाह जैनुल सा-वदीन (सन् १४२०–१४७० ई०) पण्डितो से नीलमत पुराण सुनता था। उसके आधार पर उसने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन जगत् में किया था। (दत्त ९१)

पाद टिप्पणियाँ

१५ (१) प्रतिष्ठाशासन—इस शब्द का प्रयोग कल्हण ने उन शिलालेखो के लिये किया है जो मदिरो, मठो, विहारो, देवस्थानो, स्मारको, प्रतिमाओ के पीठस्थानो, सिहासनो, राजप्रासादो, भवनो पर, स्मृति तथा परिचय निमित्त उत्कीर्ण किये जाते थे। मन्दिरो तथा मूर्तियो के प्रतिष्ठा के समय शिला लेखादि लगाने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

राजाओ के राज्याभिषेक के समय शासन प्रसारित किये जाते थे, जैसे—बदियो की कारागार से मुक्ति, करो की छूट, वलि के लिये पशुहत्या पर प्रतिवन्ध। राजा अपने शासन काल में किस नीति का अवलवन करेगा, कितने दोषपूर्ण राजनियम श्रप्रचलित किये जायँगे, कौन से सुधार एव सशोधन प्रचलित राज नियमो में किये जायेंगे श्रादि। राजाश्रो के राज्या-भिषेक के अवसर पर कुछ प्रतिष्ठा शासन प्रसारित किये जाते थे। कितने दोषपूर्ण राजनियम श्रप्रचलित किये जायेंगे, कितने प्रचलित राज नियमो मे सशोधन, परिवर्धन, किये जायेंगे, इसकी तालिका प्रतिष्ठा शासन में होती थी। राज्याभिषेक उत्सव के उपलक्ष में मदिरो, व्यक्तियो, विहारो, मठो को क्या दान दिया जायेगा, इत्यादि वातें प्रतिष्ठा शासन में आती थी। यह प्रथा श्राज भी प्रचलित हैं।

इस प्रकार की सामग्रियाँ काश्मीर में आज भी खडित बिखरी पड़ी हैं। मुस्लिम शासन काल में सभी मदिर, देवस्थान, आदि तोड दिये गये थे। उनके पत्थर मस्जिदो, मजारो, जियारतो तथा मकानो में लग गये है। कल्हण के पूर्व हुई, रानी दिद्दा का एक शिलालेख मिला है। वह लाहौर के सग्रहालय में सुरक्षित है।

स्वर्गीय प्रोफेसर श्री ब्लूलर को इस प्रकार के शिलालेख खुन मुह (खोन मुथ) तथा बारहमूला (वाराह क्षेत्र) में मिले थे। उसी प्रकार के शिलालेख स्वर्गीय श्री स्तास्तीन को बिजब्रोर (विजयेश्वर) बावन (मार्तंड) तथा अन्य स्थानो पर प्राप्त हुए थे। कल्हण के समय मदिर, बिहार, मठ, देवस्थानादि अपने पूर्व रूप में मौजूद थे, उसे इस स्रोत से यथेष्ट सामग्री इतिहास रचना और विश्रृखलित कडियो को जोडने के लिये मिली थी।

मैने काश्मीर के खडित मन्दिरो, देवालयो, विहारो आदि में खूब भ्रमण किया है। शिलालेखो की खोज की। कुछ मिल नही सका। सभव है। वे कही भूमि मे गडे पडे होगे।

(२) **पूर्व भूभृत वस्तु**—राजा अपने शासन काल में व्यक्ति, मंदिरो, सार्वजनिक स्थानो तथा दान पत्रो के लिये शिलालेखो, ताम्रपत्रो पर अपना नाम, राज्य काल, दान लेने वाले का नाम-पता, दान का प्रयोजन, मदिर किंवा सार्वजनिक निर्माण-शाला की स्थापना का समय, उद्घाटन, जीर्णोद्धार आदि खुदवाता था। नाम, समय, स्थान, दान का प्रयोजन, कभी-कभी व्यय द्रव्य की संख्या, देवस्थान, मन्दिर एव सार्वजनिक स्थानो के नाम, उनकी व्यवस्था, जागीर, भूमिदान किंवा अग्रहार दान, आदि लिखवाता था। कभी-कभी अपनी वशावली के लेख के साथ, शिला, ताम्र किंवा किसी धातु-पत्र, लकडी, अलकृत पट्ट अथवा पट्टिका, गृह-कार्य योग्य वस्तुओ, जैसे बरतन, रजत पात्रादि, पर नामादि खुदवा कर सम्मानार्थ देता था। इसी प्रकार विशिष्ट नागरिक, सामत, अमात्य तथा अन्य नागरिक अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने नाम, ग्राम, पद के साथ लेख खुदवाते थे, कल्हण इन्हे पूर्व भूभृत वस्तु कहता है। राजतरगिणी की लेखन-सामग्री में उसने इन लेखो का सग्रह किया था। जिनके कारण राजाओ, उनके सामतो, तत्कालीन लोगो के काल, स्थान, राज काल, और दान की गई वस्तुओ को देखकर, उस समय की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति का पता लगाया जा सकता था। उस समय की कलाकृतियो को देखकर, तत्कालीन कला का प्रकार तथा उसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाकर, कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना की है।

(३) **प्रशस्तिपट्ट**—मन्दिरो तथा सार्वजनिक स्थानो में प्रशस्तिपट्ट, राजाओ, विशिष्ट व्यक्तियो तथा स्थानो की स्तुति में लगाया जाता था। तीर्थ, देवस्थान, राजादि के गौरव अथवा सम्मान मे काव्य-मय पद्य में स्तुति उत्कीर्ण की जाती थी।

प्रशस्ति का मूल स्रोत वैदिक साहित्य है। स्तोत्रो द्वारा प्रशस्ति गीत तथा काव्य दोनो निकले है। स्तोत्रो में देवताओ की प्रशस्ति किवा स्तुति की जाती है। प्रशस्ति गान से गौरव गीत निकला है। पूर्व काल मे केवल देवताओ तक यह सीमित था। तत्पश्चात् लौकिक पुरुष विशेष की प्रशस्ति किवा कीर्ति लिखी और गायी जाने लगी। पहले उन लौकिक पुरुष विशेष तथा मानवो को प्रशस्ति गायी तथा लिखी जाती थी जिन्होने देवत्व प्राप्त कर लिया था। इस श्रेणी मे साधु, महात्मा, योगी एवं आध्या-त्मिक पुरुष थे। अनन्तर राजाओ आदि के प्रशस्ति गीत लिखे और गाये जाने लगे। कालान्तर में राज कवि होने लगे। वे अपने स्वामी की प्रशसा मे प्रशस्ति गीत और काव्य की रचना करने लगे। प्रशस्ति काव्य के कवि राजाश्रित होते थे। आज-कल अभिनन्दन ग्रन्थ देने की प्रथा चल निकली है। यह किसी को भी समर्पण किया जा सकता था। उसमे व्यक्ति विशेष की प्रशस्ति होती है।

पट्ट का अर्थ महीन वस्त्र होता है। लिखने को पटिया, धातु पत्र, चर्म-पत्र, भोज-पत्र की होती थी। जिस पर जन्मपत्री के समान किसी राजा अथवा किसी की वशावली, वश के कार्यो का उल्लेख, वंश मे उत्पन्न हुए लोगो के जन्म तथा मृत्यु की तिथि आदि लिखी जाती थी। पुरोहित, चारण, भाट, वदी,

सूत के पास पट्टा, मुटठे अर्थात् तालिका होती थी। राजवशो के पट्ट अलकृत रखे जाते थे। विशेष पर्वो पर उन्हे निकाला जाता था। उनका पाठ होता था।

मिथिला मे मैथिल ब्राह्मणो के पास उनके यजमानो की पूरी वशावली रहती है। ब्राह्मण लोग विवाहादि उसे देखकर ठीक करते है। पट्टो के आधार पर वे पता लगा लेते है। किस वश मे कितने पुत्र तथा कन्याएँ हैं। उनका गण्या बैठाकर वे विवाह निश्चय करते है। ग्रामो में आज भी वह प्रथा प्रचलित है। पाश्चात्य देशो जैसा प्रेम-विवाह भारत में नगण्य था। आजकल कुछ प्रचलित हो रहा है।

सूत, वंदी, भाट, चारण, उत्सव पर उन्हे गाते थे। कुटुंबो में प्रशस्तिपाठ करने को रोति थी। राज्याभिषेक, युद्ध, विजय, के समय उनके पुण्य कार्यों, उनकी वीरता और विशिष्ट कार्यो का गुणगान किया जाता था। इस प्रकार के कवि राजस्थान, गुजरात के राजवशो से अब भी सबन्धित है। उन्हे राजकवि कहा जाता है। उन्हे बाच अथवा वही कहते हैं। भारत को रियासतो, तालुकेदारो तथा बडे जमीदारो के यहाँ भी कवि रहते थे। वे कविता-पाठ करने के साथ ही साथ वश का इतिहास कविता मे बना दिया करते थे। मदिरो तथा कुटुम्बो में चैत्र सुदी प्रतिपदा को इनका पाठ पढ़ा जाता था। कुछ कुटुम्बो मे विवाह एव श्राद्ध के अवसर पर पढा जाता था।

मैं भारतीय नव परिवहन मडल के अध्यक्ष की हैसियत से गुजरात के वदरगाहो को देखने मई सन् १९६५ ई० में गया था। बडौदा सग्रहालय में शिलाखेखो पर उत्कीर्ण मुझे प्रशस्ति मिलो। देशी राज्यो में खिन्न भिन्न रूप से प्रशस्तियाँ लिखो जाती थी। किन्तु उनका विषय वस्तु प्राय एक ही रहा है।

विजय दशमी, शस्त्रपूजा तथा यात्रा के समय समेलनो अथवा जलूस के आगे आगे उच्च स्वर में चारण, भाट, बदो, सूत गाते थे। आज भी बारात में आगे आगे वे गाते चलते हैं। बारात में वर और कन्या पक्षो के प्रशस्तिवाचक अपने अपने वशगौरव की कथा सुनाते हैं। यह प्रथा भारत में प्राय लोप हो रही हे।

(४) **शास्त्र**—कल्हण ने यहाँ पर शास्त्र शब्द का प्रयोग सस्कृत में लिखे ग्रन्थो के लिए किया है। स्वर्गीय प्रोफेसर श्री व्हूलर कल्हण के 'शास्त्र' शब्द का अर्थ धर्मशास्त्र एव सस्कृत में लिखे गाथा, विधि पुस्तको से केवल नही लगाते। उनका मत है। शास्त्र शब्द के अन्दर सस्कृत के उन सभी ग्रन्थो का समावेश हो जाता है, जिनमें लेखक ग्रन्थ की समाप्ति अर्थात् अन्त में अपना नाम, रचना काल, लिखकर ग्रन्थ की इति लिखता है।

हुएनसाग ने अशोक और कनिष्क की बौद्ध परिषदो का उल्लेख करते समय अभिधर्म शास्त्र शब्द का प्रयोग किया है। इसमें निवन्ध तथा सिद्धान्त ग्रन्थो का समावेश हो जाता है। कल्हण ने शास्त्र शब्द का व्यापक अर्थ लगाया है। आज भी सस्कृत में लिखे ग्रन्थो को जनता शास्त्र समझती है। प्रसिद्ध व्यक्तियो के सस्मरणो, जीवनियो, ऐतिहासिक चरित्रचित्रणो, निवधो, सिद्धान्त ग्रन्थो, जिनमें कुछ भी ऐतिहासिक सामग्री कडी जोडने के लिए मिल सकती थी, कल्हण ने शास्त्र स्रोत माना है।

प्राचीन समय में ग्रन्थ लिखने की एक प्रचलित शैली थी। ग्रन्थ के अन्त, प्रत्येक सर्ग के अन्त, ग्रथ के आरम्भ में पुस्तक का नाम, अध्याय प्रसग, लेखक का नाम, किस राजा के काल में और किस समय रचना की गयी है, इसका उल्लेख किया जाता था। कल्हण ने राजाओ का काल निर्णय करने में इस अमूल्य स्रोत का उपयोग किया था। इससे प्रकट होता है। कल्हण ने राजतरगिणी लिखने के लिए

द्वापञ्चाशतमाम्नायभ्रंशाद्यान् नाऽस्मरन् नृपान् ।
तेभ्यो नीलमताद् दृष्टं गोनन्दादिचतुष्टयम् ॥ १६ ॥

१६. पूर्व रचनाकारो को बावन राजाओं के इतिवृत्त का प्रमाणों के अभाव मे अज्ञान था। — उनमे से गोनंदादि चार राजाओं[1] का वर्णन नीलमत पुराण से लिया गया है।

अपनी पैनी दृष्टि के साथ ही साथ, परिश्रम से सामग्री एकत्रित कर, इस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना में हाथ लगाया था।

कीर्ति स्तंभ—विजय स्तंभ—कल्हण न काश्मीर में कीर्ति-स्तंभ का उल्लेख नही किया है। मन्दिर, धर्मशाला, विहार, तडाग, वापी, चैत्य, मठादि के शिलालेखो मे राजाओ तथा महान् व्यक्तियो किवा निर्माणकर्ताओ की कीर्ति के पद लिखे जाते हैं।

राजा लोग विजय, राज्यारोहण, यज्ञ, किसी विशेष घटना के स्मरणार्थ कीर्ति-स्तभो का निर्माण कराते है। मिस्र, बेबीलोन, असीरिया तथा ईरान के प्राचीन राजाओ ने अपनी कीर्तियो को स्तभो पर खुदवाया था। भारत के गुप्त सम्राटो ने यह प्रथा चलाई थी। अशोक के स्तभ कीर्ति स्तंभ न होकर प्रचारार्थ धर्म स्तभ कहे जायेंगे। चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि राजाओ ने इस प्रकार के स्तभ का निर्माण कराया था। मन्दसोर तथा महरौली (दिल्ली) के कीर्ति स्तभ इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कल्हण ने सभव है, इस प्रकार के अभिलेखो को, प्रशस्ति-पट्ट वर्ग में रखा हो। कीर्ति और विजय स्तम्भ में अन्तर है। विजय स्तम्भ किसी विजय के उपलक्ष्य म लगाया जाता था। प्रत्येक विजय स्तम्भ कीर्ति स्तम्भ होता है। परन्तु प्रत्येक कीर्ति स्तम्भ का विजय स्तम्भ होना सम्भव नही है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १६ मे 'गोनन्दादि' का पाठभेद 'गोनर्दादि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६ (१) चार राजा—(१) गोनंद, (२) दामोदर, (३) यशोवती, तथा (४) गोनद द्वितीय हैं। नीलमत ६-९।

इस तरग की श्लोक-संख्या १६ तथा ४५ में कल्हण ने स्पष्ट कहा है। पूर्ववर्ती ५२ राजाओ के इतिहास का किसी समय अस्तित्व था। काश्मीर में वे ग्रथ थे। परन्तु उनका लोप हो गया है। कल्हण ने उन्हे खोजने का यथा-शक्ति प्रयास किया।

काश्मीर का इतिहास क्रमबद्ध तिथियो तथा वर्षो तक मे वर्णित किया गया है। कल्हण से सहस्रो वर्ष पूर्व लुप्त राजाओ का काल आता है। सामग्री अप्राप्य देखकर कल्हण ने कारण भी उपस्थित किया है। उन ग्रन्थो के लोप होने का क्या कारण था ? उनको जब कोई उपयोगिता नही रह गई तो उन्हे कौन पढेगा ? अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिम उत्तर सीमात में वेदो तथा सस्कृत ग्रन्थो की रचना हुई थी। वहाँ के लोग मुसलमान हो गए। अतएव पुरातन वैदिक साहित्य तथा संस्कृत ग्रन्थो को उपयोगिता नष्ट हो गई। वे लुप्त हो गए, उनके स्थान पर अरबी, फारसी तथा नवीन लिपी आई। इसका अर्थ यह नही है। आज से १५ सौ वर्ष पूर्व अफगानिस्तान आदि में सस्कृत तथा वैदिक साहित्य का अस्तित्व नही था। यह प्रकृति का गुण है। जिन वस्तुओ की उपयोगिता नष्ट हो जाती है उन्हे त्याग दिया जाता है। शरीर भी जब क्षीण, रोग-ग्रस्त और जर्जर हो जाता है तो आत्मा भी इसका साथ त्याग देती है।

बद्धा द्वादशभिर्ग्रन्थसहस्रैः पार्थिवावलिः ।
प्राङ्महाव्रतिना येन हेलाराजद्विजन्मना ।। १७ ।।

१७ पाशुपतव्रती ब्राह्मण हेलाराज[1] ने पूर्वकाल मे बारह हजार श्लोको की पुस्तक 'पार्थिवावलि' की रचना की थी ।

तन्मतं पद्ममिहिरो दृष्ट्वाऽशोकादिपूर्वगान् ।
अष्टौ लवादीन् नृपतीन् स्वस्मिन् ग्रन्थे न्यदर्शयत् ।। १८ ।।

१८ पद्ममिहिर ने हेलाराज की कृति का अध्ययन कर अपनी रचना मे अशोक के पूर्ववर्ती आठ राजाओ का और वर्णन अंकित किया है । वे लव तथा उसके क्रमशः उत्तराधिकारी थे ।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या १७ में 'पार्थिवाद' का पाठभेद 'या नृपाव' मिलता है ।

श्लोक सख्या १८ 'पद्ममि' का 'पूर्वमि', पूर्वगा' का 'पूर्वजा तथा 'युगलकम्' का 'युग्मम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

१७ (१) **हेलाराज** काश्मीरी ब्राह्मण थे। उनका काल ९वी तथा १०वी शताब्दी के मध्य माना जाता है । उन्होने 'वाक्यपदीय' पर एक भाष्य लिखा है। राजा लव से शचीनर तक के राजाओ का उल्लेख कल्हण ने राजतरगिणी के प्रथम तरग की श्लोक सख्या ८४ से १०० तक में किया है ।

हेलाराज पाशुपत पथ के अनुयायी थे । शैव सिद्धात के आधार आधारित एक पथ था । यह शिव रूप में ईश्वर की कल्पना करता है । शिव को जगत् का सर्जक तथा चलाने वाला मानते हैं। परन्तु जगत् उत्पत्ति का उन्हे भौतिक कारण नही बताते। साख्य दर्शन के 'प्रधान' सिद्धान्त को मानते हुए वे इस सिद्धान्त में विश्वास करते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है । पशुपति किंवा पशुपतिनाथ का मदिर वागमती नदी के तट पर काठमाण्डू नेपाल मे स्थित है । मै यहाँ का दर्शन तथा भ्रमण कर चुका हूँ। पशुपति मूर्ति के विषय में अपनी पुस्तक 'जाग्रत् नेपाल' में प्रकाश डाल चुका हूँ ।

(२) **द्विजन्मना** –कल्हण ने हेलाराज को द्विज कहा है । हेला शब्द नाम के लिये सुसंस्कृत और परिष्कृत नही कहा जा सकता । वह शब्द स्त्रीलिंग है । राज शब्द अन्त में लगा देने से हेलाराज होकर इसे पुंलिग रूप प्राप्त हो गया है । हेला का अर्थ होता है, तिरस्कार, अपमान, आसानी, सौलभ्य, सरवरी एव उत्कट मैथुनेच्छा। हिन्दी भाषा में हेला शब्द मल उठाने वाले भगियो के लिये आता है । यह निसनर शूद्र जाति मानी जाती थी । द्विजन्मना विशेषण हेला शब्द में लगाकर हेला शब्द को उच्चस्तरीय बनाने का सुन्दर प्रयास कल्हण ने किया है। काश्मीर में डोम गायक होते थे । कुछ तो राज परिवार की शोभा तक बढा चुके हैं । काशी में प्रसिद्ध शहनाई-बादको का कुटुम्ब हेला था । इस पीढी में कुछ मुसलमान हो गये है । हेला शब्द का काश्मीर की लौकिक भाषा में उस समय क्या अर्थ था । गवेषणा का विषय है । हेलाराज शुद्ध ब्राह्मण थे इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही है । इसी बात को पाठको के मन पर जमाने के लिये कल्हण ने द्विज शब्द का प्रयोग हेलाराज के नाम के साथ बलवती भाषा में किया है ।

द्विज के लिये कहा गया है–'द्वाभ्या जन्मसस्काराभ्या जायते' दो बार उत्पन्न किंवा जन्म धारण करने वाले को द्विज कहते हैं । ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य द्विज कहे गये है । सस्कार के कारण उनका द्वितीय जन्म माना जाता है । धारणा है । यज्ञोपवीत

येऽप्यशोकादयः पञ्च श्रीछविल्लाकरोऽब्रवीत् ।
तान् द्वापञ्चाशतो मध्याच्छ्लोकस्तस्य तथा ह्ययम् ॥ १९ ॥

१९ श्रीच्छविल्लाकर[1] ने अशोक के पश्चात् के जिन पाँच राजाओ का वर्णन किया है। वे लुप्त बावन राजाओं में से हैं, क्योकि उसका निम्नलिखित श्लोक वह बात स्वतः स्पष्ट कर देता है।

"आऽशोकादभिमन्योर्ये प्रोक्ताः पञ्च महीभुजः ।
ते द्वापञ्चाशतो मध्यादेव लब्धाः पुरातनैः ॥" २० ॥

२० प्राचीन रचनाकारों ने अशोक से आरम्भ कर अभिमन्यु तक जिन पाँच महीभुजों का वर्णन किया है, उसे उन्होंने बावन राजाओ की तालिका मे से ही लिया है।

के पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्री तथा वैश्य द्विज कहे जाते है। प्रथम जन्म माता देती है। दूसरा जन्म उन्हे संस्कार देता है।

अडज प्राणी द्विज कहे जाते है। पहला जन्म अड रूप में माता देती है। दूसरा जन्म अंडा फूटने पर होता है। पक्षी, सर्प, मछली आदि अंडज द्विजन्मा होने के कारण द्विज कहे जाते है। दाँत को भी द्विज कहते है। मनुष्य का दाँत दोवार मुख मे पैदा होता है। पहला दाँत बाल्यावस्था के पश्चात् टूट जाता है। तत्पश्चात् दूसरा दाँत मुख मे पुन. उत्पन्न होता है।

आज कल भारतवर्ष मे द्विज शब्द केवल ब्राह्मणो के लिए प्रयुक्त होता है। राजतरंगिणी के सभी अनुवादकर्ताओ ने द्विज का अर्थ यहाँ पर ब्राह्मण दिया है। श्री स्तीन तथा श्री आर एस. पण्डित दोनो ने यहाँपर द्विज का अनुवाद ब्राह्मण किया है। मैने द्विज शब्द को ही रख दिया है। द्विज शब्द प्रचलित है। साधारण है। उसका अर्थ सभी समझते है।

द्विजन्म प्रथा ईसाइयो मे भी प्रचलित है। वपतिस्मा के पश्चात् दूसरा जन्म होना माना जाता है। यहूदी और मुसलमान जबतक खतना नही हो हो जाता, वे यहूदी तथा मुसलमान नही माने जा सकते। प्राचीन यूनान मे डस्टनाइ डियो नैसस पन्थ में द्विज प्रथा प्रचलित थी।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १९ में 'तान्द्वाप' का पाठभेद 'तान् स्वाप' मिलता है।

श्लोक सख्या २० में 'आशोका' का 'अशोका' और 'शतो' का 'शतौ' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

१९ (१) श्रीच्छविल्लाकर के विषय में अभी तक कुछ भी साधिकार बातें नही जानी जा सकी है। कल्हण ने अशोक के पश्चात् के ५ राजाओ का उल्लेख राजतरंगिणी में छविल्लाकार के आधार पर किया है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से कालगणना मे अंतर पड जाता है। इसके लिये कल्हण की अपेक्षा पूर्वलेखक अधिक उत्तरदायी है, जिनके आधार पर कल्हण ने लिखा है। इस प्रकार ५२ राजाओ मे कल्हण ने १७ राजाओ का पता तत्कालीन ग्रन्थो के आधार पर लगाया है। उनका उल्लेख और वर्णन इन्ही के आधार पर किया है।

इससे यह भी प्रकट होता है। कल्हण ने उन्ही सामग्रियो का उपयोग किया है, जो काश्मीर मे उपलब्ध थी।

कल्हण का लेखन काल सन् ११४८-११५० ई० है। सन् ७१२ में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया था। सिंधराज दाहिर पराजित हो चुका था। उन दिनो सिंध के ब्राह्मणो तथा बौद्धो के मतभेद के कारण अरबो को सफलता मिली थी।

इयं नृपाणामुल्लासे ह्रासे वा देशकालयोः ।
भैषज्यभूतसंवादिकथा युक्तोपयुज्यते ॥ २१ ॥

२१ राजाओ के विकास एवं ह्रास के समय मेरी कथा[1] देशकाल के अनुसार उनके लिये उत्साह किवा शातिवर्धक तुल्य उपयोगी सिद्ध होगी ।

संक्रान्तप्राक्तनानन्तव्यवहारः सुचेतसः ।
कस्येदृशो न संदर्भो यदि वा हृदयङ्गमः ॥ २२ ॥

२२ कौन ऐसा चेतन हृदय व्यक्ति होगा जो अनंत व्यवहारो से परिपूर्ण मेरे इस ग्रन्थ को हृदयंगम नही कर सकेगा ?

मुलतान विजय करता मुहम्मद बिन कासिम उत्तरी पजाव तक पहुँच गया था। सन् ९३३ ई० में समानी वादशाह अलप्तगीन ने हिन्दुओ के राज गजनी पर अधिकार कर लिया था। सन् ९७७ ई० मे अलप्तगीन के पिता के गुलाम ने गजनी पर अधिकार कर लिया। सन् ९९७ ई० मे महमूद गजनवी राज्य सिहासन पर वैठा। भारत पर सन् १००१ ई० में आक्रमण किया। उसका आक्रमण होता रहा। उत्तरी भारत मे अव्यवस्था फैल गई। यद्यपि कल्हण के रचना-काल मे मुसलमानो का अधिकार भारत पर नही स्थापित हुआ था, तथापि उनका आक्रमण होता रहता था। अतएव कल्हण ने काश्मीर से बाहर जाकर इतिहास सामग्री एकत्र करने का सम्भवत प्रयास नही किया।

पाठभेद

श्लोक सख्या २२ मे 'प्राक्तना' का 'प्रार्थना' और 'सुचेतस' का 'सचेतस' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२१ (१) कथा—कथा का शाब्दिक अर्थ होता है कहानी, किस्सा, कल्पित कहानी, वृत्तान्त, वर्णन, वार्तालाप-कथोपकथन, आख्यायिका शैली का गद्यमय निवन्ध। कथा पद्य और गद्य दोनो प्रकार का काव्य होता है।

कथा साहित्य का मूल स्रोत ऋग्वेद है। ऋग्वेद मे ३५ कथाएँ है। उन्हे कथा का रूप वृहद्देवता में देने का प्रयास किया गया है। वेद की कथाएँ अत्यन्त सङ्क्षिप्त है। पुराणो तथा रामायण, महाभारत में उन्हें विस्तृत कर, लिखा गया है। व्यक्ति विशेष अथवा किसी घटना के आदि और अत से युक्त वर्णन को कथा कहा गया है।

कथाएँ ऐतिहासिक तथा कल्पित होती है। भारत मे कथा साहित्य विकसित था। रामायण और महाभारत में वर्णित कथाओ की शैली पर कथा साहित्य भारत मे प्रचलित हुआ। 'बृहत्कथा', 'जातक कथा', 'पचतत्र' आदि उनके उदाहरण है। 'कुमार'-सम्भव', 'कादम्बरी', 'दश कुमार चरित', 'प्रवन्ध चिन्तामणि' 'भविसयत्त कहा' 'लीलावाई कहा' आदि कथा काव्य हैं। 'हितोपदेश', 'कुवलयमाला', 'मलय सुन्दरी कथा', 'भोज प्रवन्ध' कथा साहित्य के अन्तर्गत आते है। मैंने भी 'रामायण कथा', 'योग वासिष्ठ कथा' और 'वेद कथा' लिखा है। मैं कथा साहित्य का प्राचीन चाहे जो रूप रहा हो, आज कथा शब्द से प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो में निहत जीवन चरितो, घटना विशेषो के वर्णनो से लिया जाता है। उन्हें पढना तथा सुनना पुण्य कार्य माना जाता है।

कालान्तर मे कथा का सम्वन्ध पौराणिक महाभारत तथा रामायण कथाओ से हो गया। उन्हें धार्मिक रूप दे दिया गया। एकादशी, पूर्णमासी तथा अनेक पर्वो पर मन्दिरो, जलाशयो, नदी तटो, अथवा घरो में कथा कहने की परिपाटी चल निकली। सत्यनारायण की कथा का आयोजन प्राय पूर्णमासी को सम्पन्न घरो में होता है। मन्दिरो में प्रात.

तथा सायं प्रति दिन नियमित रूप से कथा कहने की रीति है। कथावाचक पण्डित या तो नौकर रख लिए जाते है, अथवा कथा सुनने वाले श्रोतागण उन्हें कुछ दे दिया करते है।

कथा शब्द से सम्बोधन होता है—कहना अथवा वह जो कहा जाय। कल्हण ने राजतरगिणी इस लिए लिखी थी कि लोग उससे लाभ उठावे। उसे सुना जाय। उसके पात्रो तथा उसमें वर्णित चरित्रो को लोग सुनें। उन्हे स्मरण रख कर लाभ उठायें! यह धार्मिक नही राजनीतिक किंवा ऐतिहासिक कथा है। कल्हण सम्भवत इसे श्रव्य ग्रन्थ बनाने की कल्पना कर रहा था। किन्तु वह अपने इस उद्देश्य मे सफल नही हुआ। राजतरगिणी धार्मिक ग्रन्थ नही बन सकी। उसका श्रवण पुराण, रामायण तथा महाभारत के समान धार्मिक रूप नही ले सका। उसे वह पवित्रता तथा आध्यात्मिक महत्त्व नही प्राप्त हो सका, जो धार्मिक ग्रन्थो की श्रेणी मे रख दिये कथा काव्यो को मिला था।

नि सन्देह धार्मिक कथाओ मे चरित्र, उससे सम्बन्धी घटनाओ, उनका उतार चढाव, आदि, अन्त सब कुछ देकर उसे पूर्ण बनाया जाता है। राजतरगिणी में राजाओ आदि के चरित्र का सुन्दर वर्णन दिया गया है। परन्तु राजा देवत्व भाव नही प्राप्त कर सके। इसलिए राजतरगिणी की कथा धार्मिक कथाओ के समान महत्त्व नही प्राप्त कर सकी। वह जनसाधारण में घर नही कर पायी। यद्यपि राजाओ ने अपने नाम पर विष्णु तथा शिव की मूर्तियाँ स्थापित करवाईं। मन्दिर बनवाये। नगर बनवाये। अपने नाम जीवित रखने के लिए उनपर दान चढाये। अग्रहार दिये। तथापि यह स्वीकार करना पडेगा कि कल्हण की भावना उदात्त थी। धार्मिक कथा के कारण जैसे चरित्र सुधरता है, उसी प्रकार इस राजनीतिक कथा के कारण राजाओ तथा देश का चरित्र सुधार होगा, यही कल्हण की उदात्त कल्पना थी। इसी लिए यहाँ पर कथा शब्द का उसने प्रयोग किया है। किन्तु उसकी यह आशा सफल न हो सकी कि राजतरंगिणी को कथा रूप मे स्वीकार कर उसका पाठ किया जाय।

(२) **भैषज**—कल्हण यहाँ अपने इतिहास लिखने का उद्देश्य उपस्थित करता है। उसका एकमात्र लक्ष्य काश्मीर के राजाओ तथा काश्मीर राज्य की राजनैतिक व्याधियो के लिये देशकाल-पात्र के अनुसार औषध प्रस्तुत करना था। उसका उद्देश्य अर्वाचीन ऐतिहासिको के समान वैज्ञानिक इतिहास नही लिखना था। उसने इतिहास को 'काव्य की क्राति' के अंग्रेजी लेखक तुल्य इतिहास को गप्पो का परिणाम नही माना है।

रोम साम्राज्य के ह्रास और पतन के प्रसिद्ध लेखक श्री गिबन की तरह इतिहास को मूर्खताओ, दुर्दशाओ के कथानक के रूप में नही देखा है। महान् सेनानी नेपोलियन कहा करता था—'इतिहास कथानको के अतिरिक्त और है क्या?'

कल्हण कथानक को इतिहास का एकमात्र हेतु नही मानता। उसने इतिहास को दार्शनिक श्री इमरसन के शब्दो में प्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवनचरित्रो का संग्रह नही माना है। जर्मन दार्शनिक श्री श्लेगल ने इतिहास रचनाकारों की तुलना उन मनीषियो से की है, जो भूतकाल की ओर आँखें फेरकर देखते है। कल्हण ने राजाओ का इतिहास लिखा है। उसने पीछे फिरकर झाँका है। उसमें फँस नही गया है। श्री एच. जी वेल्स ने इतिहास को मानव के विचारो का इतिहास माना है।

आधुनिक इतिहास लेखक श्री टानबी ने इतिहास से तात्पर्य माना है कि सभ्यताओ के अन्दर एक प्रक्रिया चलती रहती है। वह उसकी उत्पत्ति, विकास, ह्रास और विघटन को उपस्थित करता है। उसके अनुसार 'इण्डिक' सभ्यता काल ईसापूर्व १७०० से ईसा पश्चात् ५०० वर्ष रही है। विकास का समय वह वेद से बुद्ध काल तक मानता है। उसका मत जहाँ तक काश्मीर के इतिहास का सम्बन्ध है, काश्मीर 'इण्डिक' तथा 'हिन्दू' दोनो सभ्यता काल में

क्षणभङ्गिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते ।
मूर्धाऽभिषेकः शान्तस्य रसस्याऽत्र विचार्यताम् ॥ २३ ॥

२३ क्षणभगुर प्राणियो के स्फुरण के विषय मे जब परिचिंता करता हूँ तब यही परिणाम निकलता है कि रसो मे शात रस[1] श्रेष्ठ है । अतएव ग्रंथ मे शात रस की प्रमुखता है ।

आ जाता है । यहाँ पर और अधिक लिखना अप्रासगिक होगा । यह विषय विवादास्पद है ।

कल्हण इतिहास को सिद्धान्त नही मानता । उसका उद्देश्य उन पाश्चात्य लेखको की अपेक्षा अधिक व्यापक है, जिनके विचारो से जगत् आज प्रभावित होता है । वह इतिहास की शृखला जोडकर उन्हे तरगिणी रूप में प्रस्तुत करता है । नदियाँ ऋतु परिवर्तन के अनुसार विभिन्न रूप धारण करती हैं । उनमे मनुष्य तृप्त होता है । प्यास बुझाता है । उसमें डूबकर मर भी सकता है । नदी बाढ लाकर विप्लव उपस्थित कर सकती है, परन्तु उनके बँधे जल से सिंचकर हरी भरी भूमि और लहलहाते खेत प्राणियो को जीवन-दान देते हैं ।

कल्हण की दृष्टि मे इतिहास विषम परिस्थितियो में राजाओ के लिये ओषधि प्रस्तुत करता है । उसने राजाओ के प्रशस्तिवाचन के लिये लेखनी नही उठाई थी । उसमें रोचक कथाओ का वर्णन है । विचारो का वर्णन है । राजाओ तथा उनके अधिकारियो की मूर्खताओ, दुष्टताओ तथा उनसे उत्पन्न होने वाली दुर्दशाओ का वर्णन है । उत्तम चरित्राकन है । जीवन के अधकारमय पहलू के साथ प्रकाश का उल्लेख है । आशा के साथ निराशा की झलक मिलती है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २३ में 'चिन्तिते' का पाठभेद 'निन्तिनि' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

२३ (१) शात रस—अलकार ग्रथो के नव रसो में शात एक रस है । काश्मीरी विद्वान् द्वारा लिखित काव्यप्रकाश के अनुसार आठ रस होते हैं ।

'वाक्य रसात्मक काव्य' साहित्य दर्पण कहता है । शात रस आतरिक शाति प्रदान करता है । यद्यपि राजतरगिणी मे सभी रसो का रसास्वादन पाठक कर सकते है, परतु कल्हण ने शात रस को प्रधान माना है । सस्कृत का जिसको किंचित् मात्र ज्ञान होगा, उसे कल्हण के काव्य में शात रस की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित मिलेगी । ऐतिहासिक लेखक के लिए शात रस ही उत्तम माध्यम है । राज्यो के उथल पुथल, राजनीतिक प्रवाह, घटनावली वर्णन में यदि कवि शात रस का आश्रय न ले तो भावोद्वेग में भटक सकता है । भावनाविष्ट होने पर निर्णय उचित नही हो सकेगा । अत घटनावलियो, गुण-दोष, पुण्य-पाप, उत्थान-पतन, गौरव-निंदा आदि का यथास्थिति सचाई से वर्णन करने के लिये मन को सतुलित रखना आवश्यक है । शात होने पर मन सतुलित होता है । अतएव शात रस काव्य का प्रधान रस रखकर कल्हण ने इतिहास रचना की शैली के साथ न्याय किया है ।

काव्य की अनेक परिभाषाएँ की गयी है । अलकारशास्त्र के पडित किसी एक परिभाषा पर सहमत नही होते । तथापि स्वीकार करते हैं कि रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं । सामान्य, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतम लक्षणो की दृष्टि मे काव्य देखा जा सकता है ।

काव्य कवि की प्रतिभा का द्योतक है । वह प्रतिभा कही वरदान, आशीर्वाद अथवा जन्मजात गुण और कही व्युत्पत्ति तथा अभ्यास द्वारा परिलक्षित होती है । कल्हण का यह काव्य सूक्ष्म है । उसके पिता कुलीन तथा सुपठित थे । उसमें काव्य-कारण जन्म-

जात तथा अभ्यास दोनो से कहा जायगा। उसका यह काव्य लक्षण तथा कारण की दृष्टि से किस वर्ग में आता है। उसने स्वय कही नही लिखा है।

चार वर्गों मे काव्यो का भेद विभाजित किया गया है, उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम। कल्हण की राजतरंगिणी प्रथम वर्ग मे रखी जायगी। उत्तमोत्तम काव्य ध्वनि के पाँच भेद होते हैं। ध्वनि दो प्रकार की होती है—अभिधामूलक तथा लक्षणा-मूलक। अभिधामूलक ध्वनि के तीन प्रकार होते हैं—रस ध्वनि, वस्तु ध्वनि और अलकार ध्वनि। कल्हण स्वय कहता है कि उसके काव्य मे शात रस प्रधान है। कुछ विद्वान् शात रस को नाटक के लिए ठीक नही मानते।

नव रस श्रृंगार, करुण, शात, रौद्र, वीर, अद्भुत, हास्य, भयानक तथा बीभत्स है।

शात रस का स्थायी भाव 'निर्वेद' है। 'निर्वेद' का लक्षण दिया गया है—'नित्यानित्यवस्तु-विचार-जन्मा विषयविरागाख्यो निर्वेदः।' शात रस का विरोधी 'श्रृंगार' रस है। राजतरगिणी इतिहास है। वह काव्य ग्रंथ, नाटक, उपाख्यान, उपन्यास, कथा, गीत आदि के तुल्य नही है। घटनानुसार सभी रसो का समावेश इसमें मिलेगा। कल्हण का आशय इतिहास लिखकर राजाओ तथा राज्य की बीमारी के लिये उपयुक्त औषध का निदान करना था। सभी राजाओ, जिनका काल लम्बे चार हजार वर्षों का है, उनके चरित्र का चित्रण कर, उनके गुण-अवगुण, उनके उत्थान-पतन, राज्य की समृद्धि तथा ह्रास आदि पर निष्पक्ष वैद्य की तरह, रोगी की भावनाओ से अलग रहकर, नि स्पृह, निष्काम, निर्वेद तुल्य औषध चुनना था। अपना मत प्रकट करना था। इसके लिये शान्त मन, स्थिर बुद्धि और स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक था। यह केवल शात द्वारा ही हो सकता था।

राजतरगिणी को कल्हण ने शातरसप्रधान रखा है। यदि राजा तथा राज्य की बात छोड दी जाय, तो भी समकालीन तथा पूर्वकालीन समाज, लोक, रीति, कुरीति, अधोगति, उन्नति, आचार-विचार और सभी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एव धार्मिक प्रश्नो पर स्वानुभव तथा अर्जित और प्राक्तन ज्ञान के आधार पर निर्णय देना था। यह शात, प्रबुद्ध, स्थिरचित्त द्वारा ही सम्भव हो सकता है। सबसे अलग रहकर, ऊपर उठकर, न्यायाधीश की तरह निर्णय दे सके।

काव्य को आत्मा रस है। रसो में शान्त रस को कल्हण ने श्रेष्ठ माना है। सकल्प सूर्योदय नाटक ने इसे स्वीकार करते हुए तथ्य पूर्ण तर्क उपस्थित किया है।

अभ्यपरिपाटिकामधिकरोति श्रृंगारिता
परसरं तिरस्कृतिं परिचिनोति वीरायितम्।
विरुद्धगतिरद्भुतस्तदलमल्पसारैः परै.
शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रस ॥

(सं० सू० १ अंक. १९)

श्रृंगार रस असभ्यो के व्यवहार का प्रतीक है। वीर रस परस्पर तिरस्कार का परिचायक है। अद्-भुत रस विरोधी बातो का आश्रय लेता है। अन्य रस वाले को अन्य रसो से क्या लाभ हो सकता है। चित्त के खेद को शान्त करने में केवल शान्त रस ही शेष रह जाता है।

मम्मट ने काव्य प्रकाश मे—निर्वेद स्थायि-भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस ' कहा है। (४।३५) भरत ने 'नाटच शास्त्र' में केवल आठ रसो को मान्यता दी है। शान्त रस को मान्यता नही देता। अध्यातम भावना की इस रस द्वारा उत्पत्ति होती है। स्यात् इसीलिए भरत ने अन्य रसो की श्रेणी में शान्त रस को नही रखा है। नाटचशास्त्र मे उल्लेख मिलता है। शान्त रस द्वारा रति आदि आठ स्थायी भावो की उत्पत्ति होती है।

स्वयं निमित्तमासाद्य, शान्ताद्भावो प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते। (६।१०८)

काश्मीरी पण्डित अभिनवगुप्त ने शान्त रस को जिन विद्वानो ने रस नही माना है, उनका तर्कसम्मत

उत्तर दिया है। शान्त रस की तुलना सभी रसो से करते हुए, मम्मट ने उसे पूर्ण रस माना है। तत्त्व ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार करता है।

अग्निपुराण ने शान्त रस की उत्पत्ति 'रति' का अभाव माना है। रुद्रट ने 'सम्यक् ज्ञान', आनन्द वर्धन ने 'तृष्णा क्षय सुख' को शान्त रस का स्थायी भाव माना है। विद्वानो ने अन्य रसो के समान शान्त रस का भेद-प्रभेद करने का प्रयास नही किया है। 'रसकलिका' ने (१) वैराग्य, (२) दोष निग्रह (३) सन्तोष, (४) तत्त्व साक्षात्कार—चार भेद शान्त रस का किया है।

हिन्दी के काव्याचार्यो ने शान्त रस की परिभाषा की है। कुलपति मिश्र कहते है

तत्व ज्ञान ते कविता में जहँ प्रगटे निर्वेद।
कहै सान्त रस जासु को सो है, नौमो भेद।

(रसरहस्य . २८)

यहाँ पर मम्मट के सिद्धान्त का प्रतिवादन किया गया है। पद्माकर कहते हैं

सुरस शान्त निर्वेद है जाको थाई भाव।

(जगद्विनोद ७२०)

कवि केशव दास जी कहते है .

सबते होय उदास मन बसै एक ही ठौर।
ताही सो समरस कहत केशव कवि सिरमौर।

(रसिक प्रिया १४ ३७)

हास्य रस द्वारा मनुष्य में हास्य रस की अधिकता होती है। हँसी आती है। करुण कविता का पाठ करते समय करुणा उत्पन्न होती है। हृदय भर आता है। वीर रस काव्य सुनने पर उत्साह उत्पन्न होता है। अग फडकने लगते हैं। शान्त रस को कविता पाठ के समय मन शान्त रहता है। कल्हण के शब्दो मे 'स्थेय' भाव अर्थात् न्याय दृष्टि उत्पन्न होती है। वह इतिहास को तौलने लगता है। भावातिरेक में स्वय बह नही जाता। काश्मीरी आचार्य काश्मीरी पण्डित अलंकारशास्त्र के आलोचक श्री आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक (सन् ८५५—८८४ ई०) तृतीय उद्योत में (२५-२७) में शान्त रस पर प्रकाश डाला है। तृष्णा का प्रध्वसाभाव शान्तरस कहा गया है। एक अच्छा उदाहरण उक्त पुस्तक की तारावती टीका में उपस्थित किया गया है।

मनुष्य की पूर्ण तृप्ति हो जाती है तो उसे एक प्रकार का आनन्द होता है—जैसे स्वादिष्ट भोजन के पश्चात् एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। ठीक इसी प्रकार तृष्णा क्षय के सुख में भी एक प्रकार के आनन्द का बोध होता है। यही आनन्द शान्त रस का स्थायी भाव है।

शान्त एक प्रकार की प्राकृतिक चित्त वृत्ति होती है। रति आदि वैकृत चित्तवृत्तियाँ है। सभी रसो की शान्त अवस्था को शान्त रस कह सकते है। तृष्णा सुख का जहाँ परिपोष होता है, वही शान्त रस का उदय होता है। विषयो की अभिलाषा से निवृत्ति प्राप्त करना निर्वेद है। उसे वैराग्य भी कहते हैं। यही निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव है।

'शान्तश्च तृष्णाक्षयसुखस्य य
परिपोषस्तल्लक्षणो रस प्रतीयत एव।

(ध्वन्यालोक ३.२६)

कल्हण ने सभी रसो का समावेश राजतरगिणी काव्य में किया है। शान्त को उसने प्रधान माना है। शृगार से शान्त रस तक पहुँचने के लिए बीच में वीर रस का माध्यम लेना पडता है। शृंगार का विरोधी रस शान्त रस है। अतएव सीधे शृगार से शान्त रस पर नही जाया जा सकता। इसी प्रकार शान्त रस से शृगार रस पर आने के लिए बीच में अद्भुत रस का माध्यम लेना पडता है। कल्हण ने इस प्राचीन परम्परागत काव्य पद्धति का अनुसरण किया है।

एक मत शान्त रस का अन्तर्भाव बीभत्स रस मे मानता है। कारण दिया जाता है। शान्त रस के लिए विषयो से घृणा होती है। यह तर्क सम्मत

तदमन्दरसस्यन्दसुन्दरेयं निपीयताम् ।
श्रोत्रशुक्तिपुटैः स्पष्टमङ्ग राजतरङ्गिणी ॥ २४ ॥

२४ सुहृद्वर! शांत सुंदर रसधार युक्त इस राजतरंगिणी का अपने कर्णशुक्तिपुटों[1] (सुतुहियो) द्वारा आनंदपूर्ण उन्मुक्त भाव से परिपूर्ण रसास्वादन कीजिए।

नही है। शान्त रस का स्थायी भाव घृणा नही हो सकती। वह शान्त रस का व्यभिचारी भाव हो सकता है।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य भारतीय विचारधारानुसार मोक्ष प्राप्ति है। सभी विद्या, धर्म, मत-मतान्तर एवं सिद्धान्त मनुष्य को इसी दिशा की ओर ले जाते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है। राजनीति और मोक्ष से क्या सम्बन्ध है। राजतरगिणी इतिहास ग्रन्थ है। उसका सम्बन्ध तत्कालीन काश्मीर की राजनीति से है।

भारत मे राजनीति साध्य नही साधन मात्र समझा गया है। देश मे शान्ति रखकर अराजकता को दूर हटाना हैं। शान्तिमय वातावरण तथा समाज से हो मानव अपने चरम उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। चाणक्य ने उसे सूत्रवत् योग-क्षेम शब्द मे रखा है। इस योग-क्षेम का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति हैं। राज्य इसमे सहायक होता है।

मोक्ष प्राप्ति सबसे बडा पुरुषार्थ माना गया है। इस पुरुषार्थ की तरफ शान्त रस बढाता है। अतएव शान्त रस काश्मीरी साहित्यशास्त्री अभिनवगुप्त (सन् ९५०-९६० ई०) के शब्दो मे अन्य रसो की अपेक्षा श्रेष्ठ रस है। कल्हण ने अपने पूर्व के अलकार शास्त्री तथा काव्याचार्यों के मत के अनुसार शान्त रस को श्रेष्ठ रस मानकर काश्मीर के पूर्व विद्वानो के मतो का अनुकरण किया है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या २४ मे 'स्यंद' का 'स्पंद', 'मंग' का 'सग' 'साग' और 'राज' का 'राजा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४ (१) **शुक्ति पुट**—इस शब्द का साधारण अर्थ होता है, सीप की खाल या सुतुही। शुक्ति पुट तरल पदार्थ पीने के काम मे आता है। श्री आर. एस पण्डित इस श्लोक पर टिप्पणी लिखते हैं। 'कल्हण प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक हिराल्कीत्स की तरह जीवन को शाश्वत माना है। तरगिणी के जल के समान जीवन का क्रम टूटता नही है। वह सतत चलता रहा है। भारतीय और यूनानी दोनो जीवन की अविच्छिन्नता मे विश्वास करते थे। सुरा पीने के लिए शुक्ति पुट के गिलास कल्हण के समय प्रचलित रहे होगे। वह तरग ६:३६९ के सन्दर्भ मे इसकी पुष्टि करता है। कुलीनो मे इस प्रकार के पानपात्र प्रचलित थे। वरनियर का उदाहरण उन्होने दिया है—"औरंगजेब काश्मीर मे आया था तो उसे तिब्बती हरित मणि भेंट किया गया था। जिसका मुगलो के दरबार मे बडा मूल्यांकन था। उसका रग हरापन लिये था। उसपर उज्ज्वल शिराएँ थी। वह इतना सख्त था कि हीरे के चूर्ण से ही उसे बनाया जा सकता था। इस प्रकार के पत्थरो से प्याले और अलकृत पात्र बनाये जाते थे।"

श्रोत्रशुक्तिपुटैः—यह शब्द काश्मीरमे बहुत प्रचलित था। कल्हण के पश्चात् महाकवि जगद्धर भट्ट ने स्तुति कुसुमाञ्जलि मे इस शब्द का प्रयोग किया है। उस समय काश्मीर में मुसलिम राज स्थापित हो चुका था। उनका अनुमानित काल सन् १३५०ईस्वी है। कल्हण से २०२ वर्ष पश्चात् हुए थे।"

पीता सुधा श्रवण शुक्ति पुटैः समक्ष-
मास्वादिता पुनरियं शिवभक्तिरेव॥

(नवम स्तोत्र : २५)

पुरा सतीसरः कल्पारम्भात् प्रभृति भूरभूत् ।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभि पूर्णा मन्वन्तराणि षट् ॥ २५ ॥

काश्मीर वर्णन

२५ कल्प का प्रारंभ था। छ. मन्वन्तर बीत चुके थे। उस पुरा काल मे हिमाद्रि कुक्षि[१] मे अर्णवपूर्ण सतीसर[२] था।

जीवन और तरगिणी की उपमा भारतीय दार्शनिक विचार की ओर लक्ष्य करती है। भारतीय आत्मा को अमर मानते हैं। जीवन कभी नष्ट नही होता। वह चलता रहता है। चलता रहेगा। जीवन की यह धारा कभी विच्छिन्न होने वाली नही है।

पाठभेद

श्लोक सख्या २५ मे 'पुरा' शब्द का पाठभेद 'पुर.' मिलता है।

पादटिप्पणियॉ

२५ (१) हिमाद्रि कुक्षि—हिमाद्रि शब्द का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। 'हिमाद्रि कुक्षि' शब्द काश्मीर के लिये नीलमत पुराण तथा राजतरगिणी दोनो में मिलता है। कुक्षि का अर्थ कोख होता है। माता की कोख में जिस प्रकार शिशु सुरक्षित तथा आराम से रहता है, उसी प्रकार काश्मीर हिमालय को गोद में सब प्रकार से रक्षित सुखपूर्वक है। माता शिशु को अपने बाहु से घेर कर कोख मे रखती है। हिमालय काश्मीर को शिशु तुल्य अपने शैल बाहु से घेरकर माता की तरह गोद मे रखे हुए है। शिशु माँ के पीन पयोधर से चिपका रहता है। विना प्रयास दुग्ध पान करता रहता है। ठीक इसी प्रकार काश्मीर में जलधारा चारो ओर शैल शृग से स्रवित होकर विना प्रयास काश्मीर की प्यास बुझाती रहती है।

कुक्षि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में अनेक काव्यो में महान् भारतीय साहित्यकारो ने किया है। अश्वघोप ने कपिलवस्तु नगर को—'कुक्षि हिमगिरेरिव' कहा है (१ ३५२ ३५५)। ऋग्वेद में—'कुक्षि सोम पातमा'—कोख के लिये कुक्षि शब्द का प्रयोग किया गया है (१ ८ ७)। अथर्ववेद १ ८ ७ तथा ७ ९.१२, शतपथ ब्राह्मण (७ ५ १ ३८) में कुक्षिका का अर्थ भरा पुरा, रक्षित होना, किया गया है। ऋग्वेद (२.११:११) तथा १०:८६ १४, अथर्व वेद २ ५ ४,२ ३३.४, ४.१६ ३, ९ ५ ६० या ६०१, १०.९:१७ एव ऋग्वेद मे एक स्थान पर और कुक्षि का प्रयोग मिलता है। 'इव कुक्षय सोम धाना' अर्थात् दूध के समान कुक्षियाँ सोम साधन है (३ ३६ ८)।

रामायण मे महर्षि वाल्मीकि ने कुक्षि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है—'पुनाग गहन कुक्षि वकुलोद्दालकाकुलम्।' वाल्मोकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड ४२ ७।

हिमाद्रि कुक्षि शब्द का प्रयोग बडे अच्छे ढग से नीलमत पुराण तथा राजतरगिणी में किया गया है। इसमें हिम बर्फ के लिये और अद्रि शैल के लिये व्यवहृत किया गया है। हिमाद्रि का अर्थ होता है बर्फ का पहाड। कुक्षि का अर्थ कोख है। महाभारत में सागर तट के देशो के लिये भी कुक्षि शब्द का प्रयोग किया गया है यथा—'तत सागरकुक्षिस्थान ...' सभापर्व ३२ १६। अत हिमालय शैल की कोख मे स्थित प्रदेश काश्मीर है। इसका सकेत हिमाद्रि कुक्षि शब्द करता है। हिमालय के अक में स्थित काश्मीर माता की कोख मे शिशु की तरह रक्षित है।

हिमाद्रि शब्द का प्रयोग विशल किवा विग्रहराज (सन् १०५६-१०६४ ई०) 'चमन वश' अजमेर तथा शाकम्बरी के सम्बन्ध में किया गया है। (इण्डियन एण्टोक्वेरी १९ २१५ अप्रकाशित)

हिमाद्रि शब्द का प्रयोग हिमालय के लिये नीलमत पुराण तथा राजतरंगिणी दोनो ने किया है।

प्राचीन काल मे हिमालय का नाम, हिमवान् हिमाचल, हिमवत, हैमवत, हिम शैल, पर्वतराज, नगाधिराज आदि था और आज भी है।

भारतवर्ष का एक नाम हैमवत वर्ष है। वह हिमालय के नाम पर रखा गया है। हिमालय पर्वत इस प्रकार वर्ष पर्वत है। हैमवत क्षेत्र को किन्नर खण्ड भी कही-कही कहा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण २ १५ ३१, वायु पुराण ३४ २८)।

काश्मीर के साहित्य मे हिमवंत शब्द का प्रयोग हिमालय पर्वत के लिये किया गया है। काश्मीर के उत्तर मे उत्तरकुरुओ तथा मद्रो को इसके मूल अर्थात् दक्षिण निवास करने का उल्लेख है। हिमवंत शब्द मे हिमालय की पर्वतमालाओ के अतिरिक्त आधुनिक नामधारी कराकोरम (कृष्ण गिरि), सुलेमान पहाड (अंजन पर्वत), हिंदू कुश (निपध), अलताई (चंडीरण) या माल्यवान् पर्वतमालाएँ आ जाती हैं। कराकुरम पर्वत के पूर्वीय शैलबाहु को 'विद्युत्' पर्वत कहा जाता है। सुलेमान पर्वत अर्थात् अंजन पर्वत के दक्षिणी भाग को 'कीर्तहर' पर्वत कहते है। (हरिवश पुराण : १ १८ मत्स्य पुराण अ० १३, महाभारत वनपर्व २५३ १३५, १०, ६९४, ६९५, सभापर्व ३·५८–६०)।

क्षुद्र हिमवंत पश्चिमी तथा महा हिमवंत हिमालय की पूर्वीय पर्वतमालाओ के लिये व्यवहृत किया गया है। विशेष द्रष्टव्य परिशिष्ट 'हिमालय' है।

२. **सती सर**—नीलमत पुराण मे सतीसर का निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

इदं च शिखरं पश्य देशेऽस्मिन्नृप पश्चिमे। ६२।
नौबन्धनम् इति ख्यातं पुण्यं पापभयापहम् ॥41॥
कृततुल्ये तदा काले व्यतीते तु मनुस्तदा। ६३।
विदधाति प्रजासर्गं यथापूर्वम् अरिन्दम ॥42॥
नौदेहन सती देवी भूमिर् भवति पार्थिव। ६४।
यांस्त तु भूमौ भवति सरस ह् विमलोदकम् ॥43॥
षड्योजनायतम् रम्यं तदर्धेन च विस्तृतम्। ६५।
सतीदेशम् इति ख्यातं देवाक्रीडं मनोहरम् ॥44॥
आकाशम् इव गम्भीरं जलजैश् च विवर्जितम् ॥६६।
शीतलामलपानीयम् सर्वभूमिमनोहरम् ॥45॥
अस्मिन् वैवस्वते प्राप्ते राजन् मन्वन्तरे किल। ६७।
मारीचाय ददौ दक्ष. कश्यपाय त्रयोदश ॥46॥

अबुल फजल सतीसर को उमासर कहता है— काश्मीर पेश अज अम्रत सती सर नाम अस्त सती-नाम ईजा अस्त व सर नाम ए हौज कता।

फारस के लोग प्राय हिंदू गाथा को मानते है। इतिहासकार बदैउद्दीन केवल अपवाद है। वह कहता है 'आदम शरन दीप अर्थात् लका से काश्मीर में आये। सेथ के वंश मे काश्मीर का राज्य ११०० वर्ष रहा। हजरत सुलेमान ने काश्मीर को आबाद किया। उसने अपने भतीजा इसौन को काश्मीर का राजा बनाया।

'हिंदुओ ने राजा हरीनंद के नेतृत्व मे काश्मीर पर विजय प्राप्त की। उसका वंश जलप्लावन तक राज्य करता रहा। जलप्लावन के पश्चात् तुर्किस्तान की एक जाति काश्मीर में आकर आबाद हो गयी।

'काश्मीर निवासियो को एकेश्वरवाद का उपदेश हजरत मूसा ने दिया। वे काश्मीर की भूमि पर दिवगत हुए। उनकी मजार अथवा कब्र काश्मीर मे है। उसका अभी पता लगाना बाकी है। कालातर मे काश्मीरियो ने हिंदुओ की बुतपरस्ती स्वीकार कर ली। काश्मीरियो के इस दोष के कारण काश्मीर मे जलप्लावन हुआ था।'

वाकयाते काश्मीर मे उल्लेख है—'काश्मीर प्रदेश जल से भरा था। दैत्य जलदेव वहाँ रहता था। वह मनुष्यो को खाता था। आसपास जो कुछ मिलता था, खा जाता था।' विस्तृत वर्णन जलोद्भव के प्रसग मे किया गया है।

सम्राट् अकबर के समय में प्रथम बार काश्मीर पर काश्मीर के अतिरिक्त अन्य काश्मीर वशीय मुसलमान का राज्य स्थापित हुआ। सम्राट् अकबर जिस समय काश्मीर पहुँचे, तो अबुलफजल को काश्मीरियो ने एक पुस्तक, जिसका नाम 'राजतरगिणी' था, समर्पित की। उसमें चार हजार वर्ष पूर्व से काश्मीर के राजाओ का इतिहास लिखा था। यह पुस्तक सस्कृत मे थी। सम्राट् अकबर ने आदेश दिया कि पुस्तक का फारसी में अनुवाद किया जाय।

अबुल फजल अकबर का प्रियपात्र था। उसके नवरत्नो में एक था। आइने अकबरी मे एक अध्याय सूबा काश्मीर पर लिखा गया है। वह राजतरगिणी तथा तत्कालीन स्थिति पर आधारित है। मत्री होने के कारण अबुल फजल साधनसपन्न था। उसका वर्णन साधिकारिक माना जायेगा। वह लिखता है—

'इस इतिहास में कहा गया है कि काश्मीर का अधिकाश भाग प्रारभिक काल मे केवल उसके पर्वतो को छोड़कर जलमग्न था। उसे सतीसर कहते थे। सती महादेव की पत्नी है। सर का अर्थ सरोवर अर्थात् जहाँ जल एकत्र रहता है, किया जाता है।

'ब्रह्मा का एक दिन १४ मन्वन्तरो का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में ७० कल्प होते है। सत्तर चतुर्युग मिलकर एक कल्प होता है। यह वर्ष सम्राट् अकबर के राज्य काल का चौदहवाँ वर्ष है। काश्मीर मे जिस समय आबादी हुई उसे बीते सातवें मन्वन्तर का २७वाँ कल्प है। तीन युग २८वें मन्वन्तर का बीत चुका है। चौथे युग का ४७०१वाँ सौर वर्ष व्यतीत हो चुका है।'

बरनियर अपने नवें पत्र मे लिखता है 'प्राचीन काल में काश्मीर जल से भरा था। कश्यप ने बारहमूला के पास जल बहने के लिए मार्ग बनाया था। यह जहाँगीर काल के ऐतिहासिक श्री हैदर मल्लिक वल्द हसन मल्लिक बिन मल्लिक मुहम्मद नजी छदबराह [१६१७-१६१९] के इतिहास में मिलता है। छदबराह श्रीनगर के पास एक गाँव है। वह काश्मीर का एक कुलीन था। यह इतिहास प्राचीन काल से अकबर के काश्मीर विजय तक का सक्षिप्त इतिहास है। उसका आधार राजतरगिणी है। बडशाह जैनुलआबदीन की आज्ञा पर इसका फारसी मे अनुवाद किया गया था। इसका नाम 'बहस्ला असमर' रखा गया था। सन् १५९४ मे बदायूनी को अकबर ने आज्ञा दी थी कि वह उसका अनुवाद करे।'

बरनियर लिखता है 'निस्सदेह यह क्षेत्र कभी जल से भरा था। थेसली की भी पूर्व काल मे यही अवस्था थी। वह भी कभी जल से भरा था। किंतु मैं यह नही विश्वास करता कि जहाँ काटकर जल बहना (बारहमूला) बताया जाता है वहाँ पत्थर काटा गया है। वह आदमी का काम नही हो सकता। वह पर्वत बहुत ऊँचा है। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर्वत बैठ गया है। यह भूकप के कारण हुआ होगा। क्योकि काश्मीर में भूकप बहुत आते है।'

सतीसर और काश्मीर—शुक ने चौथी राजतरगिणी मे काश्मीर को सतीसर कहा है। सतीसर देश शब्द काश्मीर के लिए व्यवहृत होता रहा है। शुक लिखता है—मिरजा हैदर मुहम्मद वाकपटु नौशेरवा के समान है। इस जगत् मे पूर्वकालीन राजाओ के उन कार्यो को कहने के लिए पैदा हुआ है जो सतीसर में बहुत दिनो से बुरे हालत में थे। (दत्त ३५१)

काश्मीर पर मुगलो के आक्रमणो की चर्चा करते हुए पुन लिखता है—इस प्रकार सतीसर देश के पापियो पर वज्रपात हुआ। आकाश मे धूमकेतु निरन्तर पूर्व और पश्चिम दिखाई देते रहे। (दत्त २७३)

मुगलो के आक्रमण के पूर्व काश्मीर को सतीसर कहा जाता था। मै समझता हूँ। सतीसर शब्द काश्मीर उपत्यका के लिए प्रयुक्त होता रहा है। इसमे वह भूखण्ड आता है जो कभी जल मग्न था। बारहमूला से वीर नाग तक का भूखण्ड वास्तव, में सतीसर था। अतएव काश्मीर मण्डल, काश्मीर राज्य तथा सतीसर शब्दो के अर्थ में भिन्नता है। काश्मीर मण्डल और काश्मीर राज्य के अन्दर सतीसर देश किंवा भूखण्ड का समावेश हो जाता है। सतीसर मे काश्मीर मण्डल अथवा काश्मीर राज्य का समावेश नही होता। सतीसर काश्मीर मण्डल अथवा राज्य का एक भूखण्ड था।

क्षेमेन्द्र ने लोक प्रकाश में तीन स्थानो पर सती सर का उल्लेख किया है। उससे मेरे मत की पुष्टि होती है :

श्रीमत्सतीसरासा॑ शारिकाशैलभूषितम् ।
श्रीजैननगरादस्मान्नानोपवनविभूषितम् ॥ २ ॥
अस्ति त्रिभुवनाख्या १मुत्तमं भूषणं भुवः ।
श्रीकश्मीरपुरं रम्यं नानोपववशोभितम् ॥३॥
(पृष्ठ ३४)

सतीसर में शारिका शैल, जैन नगर, तथा काश्मीर पुरं का उल्लेख किया गया है। शारिका पर्वत सूखे सतीसर में है। जिस समय सतीसर मे जल भरा था उस समय द्वीप की तरह इसका शिखर दिखाई पडता था। सतीसर के जल की गहराई ३०० से ४०० फीट तक थी। इस पर अकबर द्वारा निर्मित दुर्ग आज वर्तमान है। जैन नगरी का उल्लेख जोनराज श्रीवर तथा शुक की राजतरगिणियो मे है। (दत्त ४७, १२१, १३८, २०६, ३७१)

कश्मीर पुर शब्द यहाँ श्रीनगर किंवा प्रवरसेनपुर के लिये आया है। श्रीनगर शब्द लोग भूल गये थे। कश्मीर पुर शब्द श्रीनगर के लिए व्यवहृत होने लगा था। प्रवरसेनपुर का भी उल्लेख लोक प्रकाश (पृष्ठ ३५) मे किया गया है। श्रीनगर शब्द का उल्लेख जोनराज, श्रीवर और शुक की राज तरंगिणियो में प्राय, नही मिलता है। प्रवर पुर (द० २८, २०१, ४२६) तथा प्रवरेश पुर का (द० २३२) उल्लेख मिलता है।

लोक प्रकाश मे पृष्ठ ६० पर पुन सतीसर का उल्लेख किया गया है :

त्रिविष्टपस्य सारं तत्पार्थिवं क्षेत्रमीश्वरम् ।
तत्रापि सारं हिमवांस्तत्र सारं सतीसरः ॥२॥

सतीसर और काश्मीर मण्डल में स्पष्ट भेद किया गया है :

मनुवारजमित्यूचुः पूतनात्कथ्यते किल ।
सतीसरसि ग्रामाणां यत्प्रमाणमुदीरि१म् ।
षष्टिग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च ।
षष्टि ग्रामास्त्रयो ग्रामा ह्येतत्कश्मीरमण्डलम् ॥३॥

शुक की चौथी और अन्तिम राजतरंगिणी है। जिसे शुक काश्मीरी पंडित ने प्राचीन शैली पर लिखा है। तत्पश्चात् काश्मीर में पुरानी शैली पर सस्कृत मे इतिहास लिखने की परम्परा लोप हो गयी। मुगल शासन के साथ मुसलमान लेखको का काल आता है। उन्होने परसियन अर्थात् फारसी में अधिकतर लिखा है। काश्मीरी पण्डित भी फारसी में विद्वत्ता प्राप्त कर, प्रथम फारसी में लिखे तत्पश्चात् उर्दू में और अब अग्रेजो में लिखने लगे हैं।

जनरल ए. कनिंघम भूगर्भीय चिह्नो के अध्ययन से इसो परिणाम पर पहुँचे हैं कि काश्मीर उपत्यका जल से भरी थी। वे लिखते है :

'एक पर्वतीय चट्टान (क्लिफ) तन्तमूल तथा बारहमूला के १६ मील अधोभाग मे समकोण बनाती झेलम नदी से ऊपर उठी है। उसकी ऊँचाई करीब ३ या ४ सौ फीट होगी। कुछ स्थानो पर मैंने देखा

है कि पर्वतीय चट्टानें ८ सौ फीट ऊँचाई से कम नही है। तन्तमूल के समीप झेलम समुद्र की सतह से ५ हजार फीट ऊँचाई पर है। समस्त काश्मीर उपत्यका जलमय रही होगी। जब तक वह चट्टान घिसकर पतली नही हो गई होगी। काश्मीर की झील का जल स्तर समुद्र की सतह से ५८०० फीट ऊँचा है। उपत्यका मे इस समय तक के वचे करेवा और विखरी एलूवियल (कछारी) समतल भूमि से ५० या १०० फीट ऊँचाई पर जल रहा होगा। मारतण्ड की ऊँची भूमि जल के नीचे नही रही होगी। वामजू को गुफा के चूने के पत्थरो के चट्टान के ऊपर समथर तटवर्ती पानी की सतह का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार वामन के पवित्र जलस्रोत के ऊपर इस प्रकार के चिह्न दिखाई देते है। शुपियान नदी पर स्थित रामू के सराय के ऊपर करेवा एक किनारा वनाता है। उसकी ऊँचाई १०० फीट है। उसके क्षैतिज परतो में विभिन्नता है। सबसे ऊँचाई पर २० फीट की जमीन एलूवियल है। उसके पश्चात् २० फिट का परत गोले-गोले पत्थरो और भुरभुरी मिट्टी का वना है। सबसे नीचे का परत कडी नीली मिट्टी का है। यह परत निश्चय ही झील के जल की निश्चल स्थिति के कारण वन गया होगा। किन्तु मध्यवर्ती मिट्टी की परत उस समय वनी होगी जब उपत्यका का जड वडे वेग के साथ तन्तमूल के नीचे वाली चट्टान के अवरोध के हट जाने के कारण निकला होगा। यह जलावरोध चट्टान के अकस्मात् टूट जाने के कारण हुआ होगा। सबसे ऊपर की मिट्टी उस समय जमी होगी जबकि पानी घटता-घटता अपनी वर्तमान स्थिति पर आ गया होगा। तत्पश्चात् चट्टान का अवरोध अथवा पानी रोकने वाली पथरीली नदी का नदीगर्त क्रमश: जल प्रवाह के कारण घिसता-घिसता क्षीण हो गया होगा तो विभिन्न नदियो ने झील के पुराने गर्त में नवीन धाराओ में अपने को परिणत कर लिया होगा। जब तक कि नोनार, पामपुर तथा खानपुर के करवा घटते पानी के कारण द्वीप तुल्य लगते होगे। और कालान्तर मे लम्वे चोपटे शिखरीय 'हाडियो के रूप में खुले मैदान मे रह गये जैसे आज दिखाई पडते है।' (लद्दाख)

डब्लू वेकफील्ड लिखते है 'कोई प्रामाणिक प्रमाण इस वात का नही मिलता कि काश्मीर उपत्यका झील से अकस्मात अपनी वर्तमान दशा में किस समय परिवर्तित हो गयी है जैसा कि आज दिखाई देती है। न तो हमें यह प्रमाण मिलता है कि वह झील कव सूख गयी। अथवा यह प्रक्रिया वारहमला दर्रा के समीप हठात एक मार्ग वन जाने के कारण हो गया अथवा इसका पानी कालान्तर में निकलता गया।' (हैपी वैली ६९, ६०)

वाइन के इस सिद्धान्त पर कि वह कभी समुद्री जल की झील थी और समुद्र का पानी निकल जाने पर प्राकृतिक मीठे पानी के झरनो के कारण नमकीन जल समाप्त होकर काश्मीर उपत्यका ने वर्तमान रूप प्राप्त किया है। वेकफील्ड लिखता है- इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता कि उपत्यका का जल हठात् वाहर निकल गया और उसने वह रूप प्राप्त कर लिया है जिसे हम आज देखते है। वातो की जाँच करने और जैसा कि एक योग्य भूगर्भ शास्त्रीय करता है। वात उलटी सावित होती हैं। वाइन ने उन्हें स्वय सम्मुख रखा है। वह योग्य तथा निपुण पर्यवेक्षक था। वह यहाँ के निवासियो की परम्परा मे विश्वास करता है कि उपत्यका अपने मूल रूप मे ३०० या ४०० फीट गहरी झील थी। किन्तु वह कहता है कि समय प्रभाव के कारण पानी वहकर वाहर निकल गया। अपने पर्यवेक्षण में वह इस नतीजे पर आगया है कि वहाँ गहरी हरी अथवा वादामी चट्टानो की पहाडियो को जो काश्मीर के चारो तरफ है वे विशाल

महासागर के धरातल तथा समुद्र के नीचे से निकली है। मूल झील का नमकीन जल क्रमश अनेक मीठे चश्मो तथा स्रोतस्विनियों के आते जलो की बाढ के कारण लोप हो गया। उसी समय बारहमूला के समीप पर्वत जो कि जल के उस स्थान पर रोक रखा था फट कर अलग होगया। दूसरे जल के अवरोध अलोढ मिट्टी (एल्लूवियन) के जमा होने मे सहायक हुए जोकि बाढो के कारण पहाडी की मिट्टी लाने लगे। वे मिट्टी को बाहर जाने से रोकने लगे और यही कारण है कि अपनी पडोसी भूखण्डो किवा प्रदेशो की अपेक्षा काश्मीर उपत्यका में अधिक मिट्टी जम गयी। क्रमश इस नवीन बनी हुई झील में जल के कारण स्वतः गहरी प्रणाली अपने लिए बना लिए और समय-समय पर वे अचानक पानी के स्तर के घटाव के कारण कुछ जल रोकने वाले बारहमूला के पास वाले व्यवधानो को अपने साथ बहाता गया। इस बात का प्रमाण कुछ भागो में मिलता है जहाँ कि चूने के पत्थरो पर क्रमश जल के घटाव के कारण किनारो के जल के कारण घिसते हुए ढालू हो गये है। जैसे जैसे समय बीतता गया और क्रमश झील के जल का स्तर नीचा होता गया। पानी जो पहले झील मे था वह झेलम नदी के गति के स्तर में आ गया। और झेलम नदी ने स्वय एक नाली का रूप उपत्यका के सब से निचले भाग में धारण कर लिया और इस प्रकार वहाँ बारहमूला पास के बचे हुये पानी रोकने वाले व्यवधानो को घिसने लगी और द्रुतगामी गतिशील नदी का रूप धारण कर लिया जैसा कि हम उसे आज उपत्यका को त्याग कर जाते हुए देखते है। चारो तरफ के पर्वतो से आता हुआ बढता पानी झेलम के कारण बाहर निकलता जाता है और उपत्यका को अपना पुराना झील का रूप बनने नही देता।" ट्रेवेल इन काश्मीर—७१-७३

कनिंघम द्वारा वर्णित स्थानो को मैंने स्वयं सन् १९६४ में जाकर देखा। वामजू की गुफा के अन्दर एक मन्दिर बना है। गुफा अँधेरी है। लगभग २१० फीट लम्बी है। आगे चलते-चलते पतली हो जाती है। इसके विषय में अनेक किंवदतियाँ हैं। इस गुफा में पानी टपकता रहता है। मक्खो के छाता की तरह जल टपकने से छत बन गयी है। एण्डरू विलमन वहाँ जिस समय आये थे। यहाँ पर मनुष्यो की हड्डियाँ पडी थी। मालूम होता है मन्दिर के दर्शनार्थ कोई यात्री आया रहा होगा और मर गया था। गुफा में मशाल की रोशनी से जाया जाता हैं। यहा पर्वत सीधा उठता है। ढाल कम हैं। उस पर भूगर्भीय चिन्ह आज भी वर्तमान हैं जिनसे कनिघम के तर्क की पुष्टि होती है।

पामपुर तथा समीपवर्ती करेवा पर यदि व्यक्ति खडा हो जाय तो उसे चारो ओर ऊँचा पर्वत मिलेगा। जमीन भूरी और कुछ बलुई है। यही केसर होती है। बनिहाल श्री नगर को सडक कुछ करेवा के समीप से जाती है। वहाँ पर करेवा की बनावट स्पष्ट बताती है कि उसमे तीन तरह की मिट्टी का स्तर है। कोई भी यात्री बस अथवा मोटर से यात्रा करते समय इसे लक्ष्य कर सकता है।

गुहा निवासियो की जो खुदाई वर्जहोम काश्मीर मे हुई है वह भी एक टीले पर है। वहाँ पहुँचने के लिए कच्ची सडक बनाई गयी है। सडक बनाने मे ढाल की कुछ जमीन काटी गयी है। मेरी दृष्टि में यह बात थी। मैंने वहाँ भी टीले अर्थात् करेवा की बनावट में भूमि के स्तरो की मिट्टी मे अन्तर पाया। श्री खजाची केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग का, जो इस समय वहाँ टेण्ट लगाकर खनन कार्य कर रहे थे, मैंने ध्यान आकर्षित कराया। मैंने अपने शिपिंग बोर्ड के चेयरमैन के काल में भारत के पत्तनों का भ्रमण किया है। जल की गति तथा उनके द्वारा भूमि पर पडे चिह्नो का अध्ययन किया है। यहाँ की खोदाई से स्पष्ट प्रतीत होता है कि टीले के निचले भाग मे कभी जल था। उस जल का चिह्न खुले हुए स्थान पर प्रकट होता है।

अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान् ।
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा ॥ २६ ॥

२६ वैवस्वत मन्वन्तर[1] का प्रारम्भ था। सतीसर मे जलोद्भव असुर निवास करता था प्रजापति कश्यप ने द्रुहिण, उपेन्द्र, रुद्र से प्रार्थना की। देवताओ के साथ जलोद्भव वध निमित्त उतरे।

वूलर लेक काश्मीर उपत्यका का सबसे निचला स्थान और पूर्व सतीसर का अवशेष समुद्र की सतह से ५१८७ फीट ऊँचा है। श्रीनगर ५२३५ फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। वावन जिसके समीप वामजू गुफा है वह भूमि समुद्र की सतह से ५८९६ फीट ऊँचा है। अवन्तीपुर तथा व्रिज वेहरा अर्थात् विजयेश्वर ५४०० फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। श्रीनगर तथा अवन्तीपुर और व्रिज वेहरा के वीच अनेक करेवा तथा पामपुर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जिस समय काश्मीर उपत्यका में जल भरा होगा उस समय वामजू पामपुर आदि जो ऊपर लेक की सतह से ऊँचाई पर है सर के तट होगी। वहाँ पर पानी का चिह्न वन जाना स्वाभाविक है।

काश्मीर मे सन् १५५२, १६८०, जून २६ सन् १८२८ तथा सन् १८८५ में भयकर भूकप आया था। सन् १८८५ के भूकप से १३०,००० वर्ग मील क्षेत्र प्रभावित हुआ था। लगभग ५०० वर्ग मील में तो महाभयकर विनाश हुआ था। लगभग २०,००० मकान, ३०,००० जानवर, ३००० मनुष्य, मर गये थे। बारहमूला में सबसे भयानक असर हुआ था। वहाँ एक किला, यात्री निवास तथा शहर के लगभग तीन चौथाई मकान नष्ट हो गये थे।

पादटिप्पणियाँ

२६ (१) वैवस्वत मन्वन्तर—नीलमत पुराण तथा अन्य पुराणो में वर्णित मनुओ के नाम तथा तालिका में अतर हे—

मत्स्य पुराण	विष्णु पुराण	नीलमत पुराण
१. स्वायभुव	,,	१. स्वायभुव
२. स्वारोचिप	,,	२ स्वारोचिप
३. उत्तम, औतम	,,	३. औत्तम
४. तामस	,,	४. तामस
५. रैवत	,,	५ रैवत
६ चाक्षुप	,,	६. चाक्षुप
७. वैवस्वत	,,	७. वैवस्वत
८. सावर्णिक	,,	८. अर्क सावर्णि
९ दक्ष सावर्णि	रुचि	९ ब्रह्म सावर्णि
१० ब्रह्म सावर्णि	भौम	१०. भद्राश्व (रुद्रेश) दोनो पाठ है)
११ धर्म सावर्णि		११. दक्ष सावर्णि
१२. रुद्र पुत्र सावर्णि		२२ रौच्य
१३. देव सावर्णि		१३. भौत्य
१४. इन्द्र सावर्णि		

नीलमत में भूतकालोन छ तथा वर्तमान सातव मनु वैवस्वत का नाम मिलता है परन्तु भविष्य के मनुओ के नामो में भिन्नता है

कालकल्पावुभौ पूज्यौ मनवश्च चतुर्दश।
अतीताश्च भविष्यश्च तेषाम् नामानि ये शृणु ॥
—568/ ६०

स्वायभुवो मनु पूर्वम् मनु स्वारोचिषस्तथा।
औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चक्षुषस्तथा ॥
—561/६९१

वैवस्वतोऽर्कसावर्णिब्रह्मसावर्ण्य एव च।
भद्रेश दक्ष सावर्णो रौच्य भौतस्तथैव च ॥
—570/६९२

संपूजनीया देवेन्द्रस्तथा ब्रह्मश्चतुर्दश।
—571/६९३

भागवत पुराण : ३·१:५२–५६, ५ १ २२, ८:१:१९, ८:१·२३, २७, ८ ५:२, १३·१०, ११, १८, २४, २७, ३०, ३३, ८ ७.५ ब्रह्माण्ड पुराण : २.१४४, वायु पुराण : ६२, मनुस्मृति : १:६१–६३, विष्णु पुराण : ३ २–३ ऋग्वेद : १ ८० १६, २.३३:१३, ८:३० ३, ८ ६३.१, ८:५१:१, १०:१०० ५

तैत्तिरीय सहिता १.५:१:३ शतपथ ब्राह्मण ७ ५ ५ ३, २:२ १०.२, २ " ६·१, २ ३·८.३ जैमिनी उपनिषद्

ब्राह्मण : ३·१५:१, ऐतरेय ब्राह्मण ५:१४:८:२ ३ १.९:४, अथर्ववेद ८:१०:२४, ३.३:२:१ १४:२.४१

५.४·१०·५ पचविंश २३:१ ६७।।

नालमत पुराण के अनुसार १२ सौर मास का एक वर्ष होता है। दो मास का एक ऋतु, ६ ऋतुओ का एक अयन, २ अयनो का एक वर्ष और ४३२००० वर्षों का एक कलियुग होता है। कलियुग का दूना (८६४००० वर्ष) द्वापर, कलियुग का तिगुना (१२९६०००) त्रेता काल और चौगुना (१७२८००० वर्ष) सतयुग किंवा कृत युग काल होता है। एक मन्वतर ७१ चतुर्युगो का होता है। मन्वंतर के अत मे सब कुछ नष्ट हो जाता है। सब कुछ जलमय हो जाता है । युग का प्रमाण ४३२००० वर्ष तथा मन्वंतर का प्रमाण १७२८००० वर्ष है। केवल हिमालय, हेमकूट, निपध, नील, श्वेत, शृङ्गवत्, गंधमादन, मेरु, माल्यवान्, महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष, विंघ्य, पारियात्र का नाश नही होता। जम्बूद्वीप का सर्वथा विनाश हो जाता है।

प्रलय के पश्चात् स्वयं महादेव जल स्वरूप स्थित रहते है। देवोसती एक नाव का रूप तत्काल धारण कर लेती है।। मनु उस नाव पर सर्व प्रकार के वीज रख देते है। मत्स्य रूप धारण कर विष्णु उस नाव को एक शृङ्ग की ओर खीच लाते है। उसे पर्वत के मस्तक पर लाकर बाँध देते है। वह पर्वत शिखर काश्मीर को पश्चिम दिशा मे स्थित नौबधन शिखर है। शिखर पुण्यदायक है। पाप तथा भय को हरता है। कृतयुग के इतना समय बीत जाने पर मनु पुन: प्रजावर्ग की यथापूर्व रचना आरम्भ करते है।

नावस्वरूप देह धारण की हुई सती देवी स्वयं भूमि का रूप धारण करती है। छ. योजन लम्बा तथा ३ योजन चौडा रम्य विमलोदक सर बन जाता है। यहाँ देवगण मनोहर क्रीडा करते हैं। इस देश की ख्याति सती देश (काश्मीर) हो जाती है। जलजो से विवर्जित शीतल अमल जलपूर्ण देश की सब भूमि मनोहर हो जाती है। वैवस्वत मन्वंतर के आरंभ में दक्ष अपनी १३ कन्याओ का विवाह मरीचि के पुत्र कश्यप ऋषि से कर देते हैं। नोलमत पुराण ५०–६७ (वीज) ३३–५५ (जादू)। नौबंधन तीर्थ का शतपथ ब्राह्मण मे उल्लेख मिलता है १:८ : ११।

बाइबिल में जलप्लावन किंवा जलप्रलय तथा नाव और उस पर सब प्रकार के वीज तथा सब प्रकार के प्राणियो का एक जोडा रखने का वर्णन मिलता है। उस नाव को 'हज़रत नूह का आर्क' कहते है। वह पर्वत शिखर पर जाकर रुक जाती है। कुरान शरीफ और बाइबिल मे यह गाथा दी गयी है।

हिमालय और हेमकूट :

प्रलय काल मे हिमालय तथा हेमकूट पर्वतो के बच जाने की बात नीलमत पुराण मानता है। हिमालय तथा हेमकूट दो भिन्न-भिन्न पर्वत माने गए है। हेमकूट पर्वत हिमालय के दक्षिण में है। वाण ने हर्षचरित के अध्याय ७ मे कहा है कि अर्जुन ने राजसूय यज्ञ के समय हेमकूट पर अधिकार किया था। विक्रमोर्वशीय नाटक के प्रथम अध्याय में हेमकूट, तथा हेमकूट शिखर का उल्लेख आया है।

यहाँ पर हिमालय के लिये उसका प्रयोग किया गया है। हेमकूट क्षेत्र को पुरुष वर्ष तथा हिमवत् क्षेत्र को किन्नर खड कहा गया है। किन्नर खड आधुनिक हिमालय प्रदेशका किन्नौर-अचल है। किम्पुरुष एक वर्ष है। इसे हिमालय के दूसरी तरफ पुराणो के अनुसार मानते है।

(भागवत पुराण ५ १९ मत्स्य पुराण ११३ २९, ११४ ५९ ६३–६५, १२१ ४९, वायु पुराण ३४.२८, विष्णु पुराण २:२,१२।)

किंपुरुष प्रियव्रत का पौत्र और आग्नीध्र के नव पुत्रो में एक था। आग्नीध्र ने अपने पुत्रो के लिये जम्बू द्वीप के वर्षो को विभाजित किया था। (विष्णु पुराण २ १ १७ तथा १९)। किंपुरुष वर्ष को उसने अपने पुत्र हेमकूट को दिया था। किंपुरुष वर्ष का राजा द्युम्न था। कृष्ण तथा जरासध के सघर्ष मे द्युम्न ने जरासंध का पक्ष लेकर कृष्ण के विपक्ष में युद्ध किया था। जरासध ने गोमन्त आक्रमण के समय पश्चिम पार्श्व में आक्रमणार्थ द्युम्न को नियुक्त किया था। भागवत पुराण (१ ६ १२ तथा १०.५२.११) के अनुसार परीक्षित ने उत्तर के देशो के विजय काल में किंपुरुष देश को जीता था।

वैदिक साहित्य में किंपुरुष के लिये घृणास्पद शब्दो का प्रयोग किया गया है। कुछ विद्वानो ने इन्हे जगली, कुत्सित तथा कही बदरो जैसे मनुष्यो की नकल करने वाला कहा है। (ऐतरेय ब्राह्मण २ ८, शतपथ ब्राह्मण १ २:३.९ तथा ७ ५ २ ३२, ऐतरेय ब्राह्मण ३ १ १२ १।)

जगत् सृजन कर्ता ब्रह्मा है। उनकी आयु १०० वर्षो की है। पूर्वार्द्ध काल ब्रह्मा का व्यतीत हो चुका है। अर्थात् अपने जीवन का ५० वर्ष वे व्यतीत कर चुके है। ब्रह्मा के उत्तरार्द्ध काल के चारो महायुगो के प्रथम मास के प्रथम पक्ष के प्रथम दिन की ३ घडी तथा ४२ पल अब तक बीत चुका है।

चारो युगो के महायुग का काल ४३२०००० सौर वर्ष है। ब्रह्मा का एक दिन एक सहस्र महायुगो का होता है। इस एक दिन को १ कल्प कहते हैं। सतयुग का समय मान १७,२८,००० सौर वर्ष है। त्रेता का समय मान १२, ९६,००० सौर वर्ष है। द्वापर का मान वर्ष ८,६४,००० वर्ष है। कलियुग का ४, ३२,००० मान वर्ष है। सृष्टि वर्ष का आदि-काल आज से ७, १४, ४०,४१,४६,२५६ वर्ष पूर्व हुआ है।

ब्रह्मा की एक सहस्र वर्ष आयु जितनी विष्णुकी एक घडी होती है। बारह लाख विष्णुओ की आयु के जितनी, रुद्र की आधी कला होती है। रुद्र को एक अर्बुद आयु के काल का समय अक्षर ब्रह्म का समय होता है।

मनुस्मृति के अनुसार कालपरिमाण में १८ निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओ की एक कला, तीस कलाओ का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तो का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र का विभाग सूर्य के उदय अस्त के कारण होता है। मानव के दो पक्ष पित्रो का एक अहोरात्र होता है। कृष्ण पक्ष पित्रो के कर्म करने तथा शुक्लपक्ष शयन निमित्त है। इसी प्रकार भूतो अर्थात् प्राणियो के लिये दिन चेष्टा तथा रात्रि शयन निमित्त निश्चित किया गया है।

मानव का एक वर्ष देवताओ का एक अहोरात्र होता है। उत्तरायण देवताओ की चेष्टा तथा दक्षिणा-यन रात्रिकाल माना जाता है। चालीस हजार वर्ष का सतयुग होता है। चार सहस्र वर्षो की सध्या तथा सध्याश होता है। त्रेतायुग तीन सहस्र वर्षो का होता है। तीन सौ वर्षो की सध्या तथा सध्याश होता है। द्वापर दो सहस्र वर्षो का होता है। दो सौ वर्षो का सध्याश होता है। कलियुग एक सहस्र वर्षो का होता है। एक सौ वर्षो की सध्या तथा सध्याश होता है।

चारो युग मिलकर देवताओ का एक युग होता है। देवताओ के सहस्र युग मिलकर ब्रह्मा का एक दिन होता है। सहस्र युगो की एक रात्रि होती है। इस प्रकार देवताओ के एक सहस्र वर्ष दिन तथा रात्रि मिलकर ब्रह्मा का अहोरात्र होता है। देवताओ के इकहत्तर गुने वर्षो का एक मन्वतर होता है (मनुस्मृति १ ६४-७९)।

इस समय श्वेत वाराह कल्प के छ मन्वतर बीत चुके है। राजतरगिणी तथा नीलमत पुराण में इसी ओर सकेत किया गया है। सातवाँ वैवस्वत मन्वतर चल रहा है। उसके २८वें महायुग के कलियुग का प्रचम चरण सधि में है। कार्तिक शुक्ल ९ के प्रथम प्रहर मे श्रवण नक्षत्र, वृद्धियोग मे सतयुग का जन्म हुआ था। सतयुग मे, (१) मत्स्य (२) कच्छप, (३) वाराह और (४) नृसिह अवतार हुए है।

वैशाख शुक्ल तृतीया सोमवार को रोहिणी नक्षत्र, शोभन योग के द्वितीय प्रहर मे त्रेता की उत्पत्ति हुई है। त्रेता में (१) वामन, (२) परशुराम एव (३) रामचन्द्र के अवतार हुए है।

माघ कृष्ण अमावस्या, शुक्रवार को धनिष्ठा नक्षत्र, परिघ योग, वृष लग्न में द्वापर की उत्पत्ति हुई है। इसमें (१) कृष्ण तथा (२) बुद्ध दो अवतार हुए है।

भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी, रविवार, अश्लेषा नक्षत्र, व्यतीपात योग में अर्धरात्रि काल के मिथुन लग्न में कलियुग का जन्म हुआ है। विष्णु पुराण (अश ४ अध्याय २४, श्लोक ११०-११३) के अनुसार भगवान् कृष्ण के स्वर्गारोहण के दिन से कलियुग आरम्भ होता है। कृष्ण के स्वर्गारोहण के साथ ही युधिष्ठिर ने अपने भाइयो के साथ राजत्याग किया था। इस युग मे केवल कल्कि नामक एक अवतार होगा। कलिगताब्द सवत् इस समय ५०६८ तथा काश्मीर का सप्तर्षि सवत् ५०४३ तथा विक्रम सवत् २०२४ तथा शक संवत् १८८९ तथा सन् १९६७ ई०, हिजरी सन् १३८६-८७ और फसली सन् १३७४—७५ है।

इस सनातन तथा प्रचलित संवत्सर गणना के अनुसार द्वापर में कृष्ण का अवतार ग्रहण करना ठीक बैठ जाता है। भगवान बुद्ध का समय २५०० वर्ष ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध होता है। यह अवतार द्वापर काल में नही पडकर कलियुग में पडता है।

नीलमत पुराण ने बुद्ध को एक अवतार माना है। एक विचित्र पहेली है। ज्योतिषियो का इसका समाधान करना आवश्यक है। नीलमत पुराण मे बुद्धपूजा का वर्णन है। बुद्ध को भगवान् का अवतार माना गया है।

विशार्देवो जगन्नाथ प्राप्ते ब्रह्मना कलियुगे।
अष्टाविंशतिमे भावि बुद्धो नाम जगद्गुरु ।८०९।

शास्त्रीय धारणा के अनुसार इस मन्वंतर के अवतार बुद्ध नही वामन है। सप्तर्षि : (१) अत्रि (२) कश्यप (३) गौतम (४) जमदग्नि (५) भरद्वाज (६) वशिष्ट (७) विश्वामित्र है।

वैवस्वत मन्वतर के देवगण—१० अगिरस, २ अश्विनी, १२ आदित्य, १० भृगुदेव, ४९ मरुत, ११ रुद्र, ८ वसु, १० विश्वदेव और १२ साध्य है।

इस मन्वतर के इंद्र का नाम—उर्वस्विन्, किंवा महाबल है।

मनु के पुत्र; अरिष्ठ, इक्ष्वाकु, इल, करुष, कुशनाम, धृष्ट, नभ, नृग, पृषध्र, प्राशु, वसुमति तथा शर्याति है।

काश्मीर किंवा कश्मीर

काश्मीर किंवा कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत है। सनातन मत है। कश्यप ऋषि ने सतीसर को सूख जाने पर आबाद किया था। सतीसर का नाम कश्यपपुर पड़ गया। कश्यपपुर का अपभ्रश कश्मीर किंवा काश्मीर शब्द है।

पुर, नगर, पत्तन तथा क्षेत्र शब्दो के अर्थों में अन्तर है। नगर तथा पत्तन शहरी क्षेत्र का द्योतक है। किसी सज्ञा के अन्त में जोड देने पर नगर किंवा पत्तन स्थान विशेष का परिचायक होता है। पुर शब्द इससे भिन्न है। किसी व्यक्ति वाचक सज्ञा के साथ पुर जोडा जाता है। किसी स्थान को वसाने वाले व्यक्ति के साथ पुर शब्द जोड कर वसाने वाले की स्मृति चिरस्थायी की जाती है। काश्मीर में अवन्तीपुर, सूरपुर, जयपुर, प्रवरसेनपुर, जौनपुर, प्रतापपुर, हिरण्यपुर, कनिष्कपुर, जुद्धपुर, शिवपुरी, ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी, अभिमन्युपुर, आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण है। श्रीनगर किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर नही वसाया गया था। उसका नाम श्रीनगर पडा। परन्तु श्रीनगर में ही प्रवरसेन ने नगर बसाया तो उसका नाम प्रवरसेनपुर हो गया। नागरिक शब्द देशीय किंवा राष्ट्रीयता का वोधक है। सम्पूर्ण देश के व्यक्तियो के लिए नागरिक शब्द व्यवहृत होता है। पौरजन किंवा पौर शब्द स्थानीय निवास स्थान का परिचायक है। वह किसी एक नगर मे रहने की ओर सकेत करता है। नागरिक शब्द का समावेश अग्रेजी सिटिजेन शब्द में हो जाता है। काश्मीर में पुर शब्द व्यक्ति विशेष के नाम के साथ जोडकर नगर वाचक बना दिया जाता था। आजकल पुर के स्थान पर व्यक्तियो के साथ नगर शब्द जोडने की प्रथा चल निकली है जैसे—टाटानगर, मोदीनगर, गंगानगर, सरदारनगर आदि।

पत्तन शब्द नगर तथा शहर के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह शब्द नदी तथा समुद्रतटीय नगर तथा बन्दरगाहो के लिये विशेष रूप से व्यवहृत हुआ है। पत्तन व्यापार का केन्द्र होता है। विशाखा पत्तन, मसली पत्तन आदि इसके उदाहरण हैं। समुद्र तटीय नगरो के अतिरिक्त अन्य स्थानो के नगरो के लिए नगर अर्थ में पत्तन शब्द का बहुत कम व्यवहार किया गया है।

चाणक्य पत्तन शब्द की यही परिभाषा देता है—वारिस्थल पथ पत्तनानि च निवेशयत। (अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण १ अध्याय १ प्रकरण १९)

क्षेत्र शब्द का अपभ्र श खेत शब्द है। अन्नोत्पादक भूमि, समतल भूमि, उत्पत्ति स्थान, प्रदेश तथा तथा तीर्थ स्थान के लिए क्षेत्र शब्द का व्यवहार किया गया है। क्षेत्र भूखण्ड विशेष की निर्धारित सीमा के लिए आता है। क्षेत्र के अन्तर्गत नगर, पुर, पत्तन, ग्राम आदि सब आ जाते है। काश्मीर में क्षेत्र शब्द तीर्थ स्थानो की सीमा के लिए व्यवहृत किया गया है। वाराह क्षेत्र, मडव क्षेत्र, उत्तर मानस क्षेत्र, विजयेश्वर क्षेत्र, नन्दिक्षेत्र, आदि इसके उदाहरण हैं।

कुछ विदेशी विद्वानो ने एक और मत प्रकट किया है। 'कशप' नाम कश्यप ऋषि का है। 'मर' शब्द का अर्थ 'मठ' है। 'कशपमर' प्राचीन नाम था। कशपमर विगड कर कश्मीर हो गया है।

शुद्ध शाब्दिक अर्थ भी लगाया गया है। 'क' का अर्थ जल है। 'समीर' का अर्थ वायु किंवा हवा है। 'क' + 'समीर' दोनो शब्द मिलकर कसमीर हो गया है। कश्मीर का जल-वायु सर्वश्रेष्ठ है। अपनी जल वायु की उत्तमता के कारण भूखण्ड का नाम कश्मीर पड गया हैं।

और अर्थ अगाया गया है। वायु के कारण जल सतोसर के बाहर निकल गया। अतएव भूखण्ड का नाम कश्मीर पड गया।

डा० सूफी ने एक मत का प्रतिपादन किया है। उनका मत है। 'कस' का अर्थ होता है श्रोत 'मीर' का 'अर्थ' पर्वत है। कश्मीर चारो ओर पर्वत से घिरा है। कठौता जैसा लगता है।' इसलिए इस भूखण्ड का नाम कश्मीर पड गया।

कुछ विद्वानो ने कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति को तोड मरोड कर एक विचित्र मत का प्रतिपादन किया है। उनका मत है। 'कश' एक शामी अर्थात्

सेमेटिक जाति या ट्राइब थी। उस जाति ने 'कश' नगर बसाया। यह नगर बुखारा मे है। उसे अब 'शहर-ए-सवु' कहते है। वह दक्षिण, पश्चिम और पूर्व दिशाओ मे पर्वत से घिरा है। वह शहर सातवी शताब्दी में आबाद हुआ था। यही से काश्मीर में सेमेटिक लोग आये। यहूदियो का काश्मीर में आबाद होना सिद्ध होता है। हिन्दूराज काल मे काश्मीर में कोई बाहरी आबाद नही हो सकता था। यहूदी इसके अपवाद थे। यहूदी सेमेटिक अर्थात् शामी जात है। अतएव अनुमान लगाया गया है कि इसका नाम 'कश' के आधार पर कश्मीर पड़ गया।

उक्त वर्ग के लेखको ने एक और अनुमान लगाया है। 'काशान' या 'काशगर' शब्द का अपभ्रंश कश्मीर हो गया। 'काशान' इराक में शहर है। तेहरान से १५० मील तथा इस्फहान से ९० मील ईशान दिशा मे पडता है। देश भर में सबसे अधिक यहाँ गरमी पड़ती है।

'काशगर' चीनी तुर्किस्तान में उसकी पश्चिमी सीमान्त पर शहर है। काश्मीर के रहने वाले मुसलमान काश्मीर को 'कशीर' कहते है। स्थानीय मुसलिम जनता कश्मीर को 'कसीर' कहती है। इसलिए कश्मीर शब्द को 'काशगर' 'काशान' तथा 'कश' नगरो से जोडने का प्रयास किया गया है। श्रीनगर के स्थान पर कश्मीर शब्द श्रीनगर के लिए मुसलिम काल में प्रयुक्त होता रहा है। सिखो के काश्मीर में आधिपत्य स्थापित हो जाने पर श्रीनगर और कश्मीर समानार्थक माने जाते थे। उक्त तीनो शहर हैं। श्रीनगर को कश्मीर कहा जाता था। अतएव 'कशीर' शब्द ही कश्मीर शब्द का मूल है।

श्री स्तीन ने कश्मीर शब्द का अपभ्रंश 'कशीर' शब्द को माना है। उर्दू तथा फारसी में 'ब्राह्मण' शब्द को 'बरहमन' अबतक लिखते है। इसी प्रकार 'कश्मीर' को अगर उर्दू तथा फारसी के लेखक 'कशीर' लिखने लगे हो तो कोई आश्चर्य की बात नही मानी जा सकती है

जिस प्रकार मुसलमान होने पर पुराना नाम बदलकर मुसलिम नाम रख दिया जाता है। उसी प्रकार काश्मीर मुसलिम बहुल आबादी तथा मुसलिम राज होने के कारण 'कश्मीर' के स्थान पर उसे 'कशीर' और काश्मीरी भाषा को 'कौशुर' कहा जाने लगा।

इसी प्रकार १४ वी शताब्दी मे शाह हमदान ने जो काश्मीर उपत्यका के रक्षक सन्त मुसलमानो द्वारा माने जाते है। काश्मीर का नाम 'बाग-ए-सुलेमान' रख दिया था। शंकराचार्य पर्वत का नाम भी बदलकर 'तख्त-ए-सुलेमान' रखा गया। 'अनन्त' नाग शहर का नाम इसलामाबाद पडा। यद्यपि आज भी अनन्त नाग एक जिला है।

'कश्मीर' या 'काश्मीर' शब्द महाभारत, पुराणादि सभी ग्रन्थो में मिलते है। उनका अस्तित्व आज से ४ या ५ हजार वर्ष पूर्व था। उस समय 'बाइबिल' जिसमें 'हजरत सुलेमान' का नाम आता है का अस्तित्व ही नही था। मुसलिम काल का इतिहास चौदह सदी से अधिक तथा बाइबिल काल ईसा पूर्व २ हजार वर्ष से ऊपर नही जाता। कश्मीर शब्द प्राचीन शब्द है। यही प्रचलित है। निश्चयात्मक रूप से 'कश्यप' से इस शब्द को जोडना उचित प्रतीत होता है।

कम से कम २ हजार वर्षों से इतिहास इस बात का साक्षी है कि 'काश्मीर' शब्द सर्वदा प्रयुक्त होता रहा है। पतञ्जलि ने काश्मीर शब्द का उल्लेख किया है। उसके पश्चात् पाणिनि ने काश्मीर शब्द का उल्लेख किया है। प्लोतमी (सन् १५० ई०) यूरोपियन लेखक ने काश्मीर का नाम 'कस्पीरा' दिया है। वराहमिहिर (५वी शताब्दी) के बृहद् संहिता में काश्मीर का उल्लेख किया है। हुयेन साग (स० ५४१ ई०) चीनी पर्यटक ने काश्मीर को 'किया शि मिलो' लिखा है। रत्नावली नाटक (७ वी सदी) ('काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुमकुमम् पद्मवेदितत्-)' 'काश्मीर' शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।

काश्मीरी लेखक क्षेमेन्द्र (सन् ९९० ई०) ने समयमातृका में ककानी से काश्मीर का वर्णन किया है। इसी समय प्रथम वार 'पचाल धार' अर्थात् पीरपजाल या पीरपेनुसल का उल्लेख किया गया है। विल्हण (१०६३–१७) ने विक्रमाक देव चरित के अन्तिम अध्याय मे काश्मीर का वर्णन किया है।

देशी, विदेशी, काश्मीरी सभी लेखको ने काश्मीर किंवा कश्मीर शब्द का प्रयोग किया है। 'कश' काशीर' 'काशगर' 'काशान' आदि नामो से कश्मीर शब्द को सम्वन्धित करना मौलिक इतिहास को दूसरे रग में रगना कहा जायगा।

राजतरंगिणी के लेखक कल्हण (रचना काल ११४८-११४९) द्वितीय राजतरगिणी के लेखक जोनराज (रचना काल १४४६—१४५९) जोनराज तरगिणी के लेखक श्रीवर (रचनाकाल १४५९–१४८६) राजावली पिटक के लेखक प्रज्ञाभट्ट (सन् १५१३-१५१४) तथा श्री शुक (सन् १५८६) ने काश्मीर शब्द का ही प्रयोग किया है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि सोलहवी शताब्दी तक 'कशीर' 'कश' आदि शब्दो का पता नही था। इसके पश्चात् सस्कृत लेखको की परम्पराका लोप होता है। उनका स्थान परसियन तथा उर्दू लेखक लेते है। इस काल में 'कश' 'कशीर' आदि शब्दो की व्युत्पत्ति तथा उनसे काश्मीर शब्द को जोडने का प्रयास किया जाने लगा।

शक्तिसगम तत्र (भाग ३.७ ९) में कश्मीर की सीमा का वर्णन किया गया है। इस तत्र मे भारत के लगभग ५६ देशो का वर्णन मिलता है। काश्मीर के सीमा निर्धारण में सहायता मिलती है। इसके अनुसार शारदामठ से कुकुमाद्रि अर्थात् पामपुर तक का क्षेत्र काश्मीर कहा जाता था।

शारदामठमारभ्य कुकुमाद्रितटांतकम् ।
तावत्काश्मीर देश स्यात्पञ्चाशद्योजनान्तकः ।।

एक विचार है। उत्तर कुरु के लोग काश्मीर मे आबाद थे। काश्मीर की सीमा के लिए कहा गया है। वह शारदा मठ अर्थात् वर्तमान शारदी तीर्थ जो कृष्णगगा तथा कनकोरी नदी के सगम पर स्थित है, वहाँ से लेकर कुकुमाद्रि अर्थात् पामपुर के केसर उत्पादक पहाडियो तक विस्तृत था। उसका विस्तार ५० योजन था पामपुर मैं चार वार जा चुका हूँ। यह छोटा कस्बा है। ऊनी वस्त्र उत्पादन का वहुत वडा केन्द्र है। श्री गाधो आश्रम उत्तर प्रदेश का ऊन ऊत्पादन केंद्र है।

केसर की खेती तथा उपज के लिये पामपुर प्रसिद्ध है। पामपुर के समीप कोई वडा पर्वत नही है। वानेहाल से श्रीनगर आने वाली सडक के दक्षिण पार्श्व में पर्वतमालाएँ काफी दूर पडती है। पामपुर क्षेत्र में छोटी छोटी मिट्टी की पहाडियाँ वहुत मिलती हैं। दूर पर वितस्ता नदी वहती है। समथर भूमि अधिक नही है। भूमि का रग भूरा है। सेव, वादाम ववूगोशा के वाग प्राय मिलते है।

कुकुमाद्रि का अर्थ केसर का पहाड होता है। पामपुर की मृत्तिका पहाडियो से इसका अर्थ लगाया जा सकता है। सुदूर स्थित पर्वतमाला शीत ऋतु में तुषार पात से ढक जाती है। पामपुर का विस्तृत भूरा भूखण्ड दोनो ओर हिमाच्छादित पर्वतो के मध्य अत्यत सुदर दिखाई पडता है। अक्टूवर मास में दोनो ओर की पर्वतमालाओ पर तुषारपात आरंभ हो जाता है।

मै यह दृश्य देख कर मुग्ध हो गया था। लगभग एक घण्टा चुपचाप एक सेव के वाग में वैठा रहा। इस नगर के अतीत को स्मरण करता रहा। नववर मास सन् १९६३ की काश्मीर यात्रा में वर्णन की सत्यता देखकर चकित हो गया।

इसी तत्र में देवी के वर्णन के साथ उल्लेख है।

काश्मीरात् समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे ।
भोटान्तदेशो देवेशि मानसेशाच्च दक्षिणे ॥
श्लोक ३० पृष्ठ ७

औपधा (औरसा ?) श्चानि भद्राश्च
किरातानां च जातयः ।
तोमरा हंसमार्गश्च काश्मीरास्तंगणास्तथा ॥

मार्कण्डेय, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो मे 'काश्मीरास्तंगणास्तथा' उल्लेख आया है । मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर सौराष्ट्र के साथ 'काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च' वर्णन मिलता है ।

यहाँ भोटात देश के संबन्ध मे कहा गया है कि वह काश्मीर से आरम्भ होकर कामरूप के पश्चिम तक फैला था। उसके पश्चिम में मानसरोवर, पूर्व में काश्मीर अर्थात् उत्तर मे कामरूप तथा मानस में है । वर्तमान भूटान पूर्वकालीन भौट्ट देश का एक खंड मात्र है ।

पुराणो से प्रकट होता है । प्राचीन काल में भोट शब्द तिब्बत निवासियो के लिये प्रयुक्त होता था । भूटान से लेकर काश्मीर अर्थात् हिमालय के उत्तर का भूखंड तिब्बत का भाग रहा है । मानसेश का अर्थ शिव का निवास स्थान अर्थात् मानसरोवर है । विष्णु पुराण (अश ४ १९) मे वर्णन है । चन्द्रभागा और काश्मीर आदि देशो पर व्रात्य, म्लेच्छ, शूद्रादि राजागण राज्य का भोग करेंगे ।

काश्मीर के प्राचीन गौरव पर विचार करने लगा । उसे यादकर दुःख और उमडते हुए मन के अतिरिक्त और कुछ मुझे नही मिला ।

शक्तिसंगम तत्र ३:८ १२–१४ मे कूर्मप्रस्थ का वर्णन किया गया है ।

कूर्मप्रस्थं महेशानि कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥१२॥
गोकर्णे दक्षभागे कामाख्या पूर्वगोचर ।
उत्तरे मानसेश. स्यात् पश्चिमे शारदा भवेत् ॥१३

शारदा शब्द के विषय में कह चुका हूँ । काश्मीर के लिये अनेक ग्रथो तथा स्थानो पर शारदा शब्द प्रयोग किया गया है । यह बात सिद्ध होती है । कूर्मप्रस्थ की सीमा के सन्दर्भ मे कहा गया है । कूर्मप्रस्थ के उत्तर मे (मानसेश मानसरोवर), दक्षिण में गोकर्ण (नेपाल), पूर्व में कामाख्या (कामरूप), पश्चिम में शारदा (काश्मीर) है । मैंने गोकर्ण महादेव का मन्दिर नेपाल में देखा है । उसका वर्णन अपनी पुस्तक 'जाग्रत् नेपाल' में किया है । देवस्थान मुझे बहुत सुन्दर, दिव्य तथा जाग्रत् प्रतीत हुआ ।

'परेण हिमवन्त' उत्तरकुरु को कहा गया है । श्री जिमर ने वैदिक इडेक्स १:८४ मे काश्मीर को उत्तरकुरु कहा है । पाली साहित्य में उत्तरकुरु का स्थान सुमेरु के उत्तर बताया गया है । काश्मीर को को उत्तरकुरु के दक्षिण दिखाया गया है । उत्तरकुरु को समुद्र से आवृत बताया गया है । ऐतरेय ब्राह्मण (८.१४ ४) में उत्तरकुरु हिमालय के पार बताया गया है । वाल्मीकीय रामायण (४ ५३ ५६) में उत्तर मे समुद्र का होना कहा गया है । ऐतरेय ब्राह्मण (८:२३) में वसिष्ठ साल्यहव्य ने उसे देवक्षेत्र कहा है ।

काश्मीर का उल्लेख वीर पुरुषदत्त के नागार्जुनी कोण्डा लेख में आया है । पाणिनि ने उसका उल्लेख (४.२ १३३) किया है । पतजलि ने (३:२.२ पृष्ठ १८८. १८९) तथा (१ १.६ पृष्ठ २७६) महाभारत और बृहत्सहिता मे इसका देश रूप मे उल्लेख किया है (१४ २९) ।

रामायण में काश्मीर

आनद रामायण मे काश्मीर का वर्णन मिलता है । आनद रामायण के याग काड सर्ग ३ ३२.३४ 'श्लोको' मे काश्मीर का उल्लेख आया है । अश्वमेध यज्ञ का आयोजन भगवान् श्री रामचन्द्रजी ने किया था । यज्ञ का अश्व छोडा गया । वीर शत्रुघ्न, मंत्री, सामत, सेना सहित अश्व की रक्षा के लिये साथ भेजे गये थे । शूरसेन, पांचाल, कुरुक्षेत्र, कुरु-जागल, देश होते हुए अश्व ने काश्मीर

में प्रवेश किया। तत्पश्चात् भिल्ल देश, गौड देश, शकदेश, यवनदेश, ताम्रदेश होता अश्व करतोया तट पर पहुँचा। वहाँ से चलता ज्वालामुखी के पर्वतीय क्षेत्रो में अश्व ने प्रवेश किया।

आनद रामायण ने काश्मीर तथा उसके चारो ओर के देशो का वर्णन किया है। यह भौगोलिक वर्णन अशत ठीक है। काश्मीर के सीमावर्ती देशो यथा, गाधार, कावोज, शिवि आदि देशो का स्पष्ट उल्लेख नही किया गया है। मालूम होता है कि आनद रामायण के लेखक के समय मे उन देशो की गणना यवन किंवा शक देश मे होने लगी थी।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तरी दिशा की तीर्थ यात्रा की थी। उसका वर्णन यात्रा काड, आनद रामायण (सर्ग ९।१–३१) मे किया गया है। उसमें उनका ज्वालामुखी, देवप्रयाग, अलकनदा के तट से होते हुए, श्रीवदरी आश्रम पहुँचना दिखाया गया है। श्रीवदरी आश्रम के पश्चात् श्रीराम केदारेश्वर गये। वहा से हिमाद्रि पर गये। वहाँ से महापथ होते हुए मानसरोवर की यात्रा की। मानसरोवर से विंद सरोवर गये। वहाँ से हिमालय होते हुए मेरु पर्वत गये। तत्पश्चात् कैलाश पर गये। वहाँ से भागीरथी के तट से होते हुए हरिद्वार आए। हरिद्वार से कुरुक्षेत्र होते हुए इद्रप्रस्थ पहुँचे। इद्रप्रस्थ (दिल्ली) से मधुवन (मथुरा), वृन्दावन, गोकुल तथा गोवर्धन होते हुए अवतिका अर्थात् उज्जैन गये।

मानसरोवर के पश्चात् देव, गधर्व, किन्नर जातियो का उल्लेख आता है। प्रतीत होता है। भगवान रामचन्द्र काश्मीर के ऊपर अर्थात् उत्तरीय सीमा स्पर्श करते हुए, मेरु तक पहुँचे थे। भगवान् श्रीराम वहाँ से कैलास गये। इससे स्पष्ट होता है। उन्होने पश्चिम की तीर्थ यात्रा यथा जालधर, मूलस्थान, गाधार, कावोज अथवा शिवि देश की नही की। मेरु के दक्षिण काश्मीर का स्थान निर्विवाद रूप से सभी प्राचीन ग्रन्थो ने स्वीकार किया है।

वाल्मीकीय रामायण में काश्मीर का नाम मुझे कही पर मिल नही सका। सभव है। अपने दृष्टिदोष के कारण उसे न देख सका हूँ। परन्तु मै समझता हूँ कि काश्मीर का स्पष्ट रूप से उल्लेख रामायण मे नही है।

योग वाशिष्ठ रामायण में काश्मीर का सबसे अधिक ऐतिहासिक और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया गया है। काश्मीर इतिहास पर उसमे विशेष प्रकाश पडता है। उस स्थान का वर्णन श्लोक २९ टिप्पणी में किया गया है।

राज तरगिणी में श्रीराम के काश्मीर आने की बात तथा उसका क्या प्रमाण है, आदि पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है। राम ने काश्मीर मे एक मदिर का निर्माण करवाया था।

महाभारत मे काश्मीर

महाभारत सभा पर्व (२७.१७) और भीष्म पर्व (९ ५३-६७) मे उल्लेख मिलता है। काश्मीर भारतीय जनपद था। अर्जुन ने इसे दिग्विजय के समय जीता था। सभा पर्व (३ ४ १२ ५२) तथा वन पर्व (५१ २९) के अनुसार काश्मीर निवासी महाराज युधिष्ठिर के लिये भेंट लाये थे। द्रोण पर्व (११ १६ तथा ७० ११) में उल्लेख आता है। काश्मीर को भगवान् श्रीकृष्ण तथा परशुराम ने विजय किया था। अर्जुन ने अपने दिग्विजय के समय काश्मीर को जीता था।

तत काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभ ।
व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिः सह ॥
—सभापर्व २७ १७

तिलभारा मसीराश्च मधुमत्त सुकन्दकः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारादर्शकास्तथा ॥
—भीष्मपर्व ९.५३-६७

द्राविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ।
कुन्तिभोजो महातेजा पार्थिवो गौरवाहनः ॥
—सभापर्व : ३४ १२

काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः ।
शिवि त्रिगर्त यौधेया राजन्या मद्र केकयाः ॥
—सभापर्व · ५२.१४

केकयान् मालवाश्चैव तथा काश्मीरकानपि ।
अद्राक्षमहमाहूतान् यज्ञे ते परिवेषकान् ॥
—म० :·वनपर्व ५१:२६

आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयान् दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान् पिशाचांश्च समुद्गलान् ॥
—द्रोणपर्व ११ १६

भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमा ।
ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥
—द्रोणपर्वः ७०.११

काश्मीर मडल के विशेप महत्त्व का उल्लेख महाभारत में मिलता है । काश्मीर मडल मे उत्तर के ऋपियो यथा नहुप, ययाति, अग्नि तथा कश्यप का परस्पर विचार विनियम हुआ था ।

काश्मीरमण्डल चैतत् सर्वपुण्यमरिंदम ॥
महर्षिभिश्चाध्युषित पश्येदं भ्रातृभि सह ॥ १० ॥
यत्रोत्तराणां सर्वेषामृषीणां नाहुषस्य च ।
अग्नेश्चैवात्र संवादः काश्यपश्च तु भारत ॥११॥
—वन पर्व १३०

काश्मोर मडल के चंद्रभागा तथा वितस्ता नदियो मे सात दिन नित्य स्नान करने पर कहा गया है, मनुष्य निर्मल हो जाता है ।

सप्ताहं चन्द्रभागां वै वितस्ता भूमिमालिनीम् ।
विगाह्य वै निराहारो निर्मलो मुनिवद् भवेत् ॥७॥

काश्मीरमण्डले नद्यो या पतन्ति महानदम् ।
ता नदी· सिन्धुमासाद्य शीलवान् स्वर्गमाप्नुयात्॥९॥
अनुशासन पर्व २५ ७०९

उत्तर दिशा मे कश्यप का निवास बताया गया है । काश्मीर उत्तर दिशा में है :

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषि. ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥३८॥
ऋषीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान् ।
धनेश्वरस्य गुरवः सप्तैते उत्तराश्रितः ॥
—अनुशासन पर्व १५०.३८-३९

कश्यप की पत्नियाँ दक्ष को कन्याएँ अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि, कद्रू थी ।

ते भार्ये कश्यपस्यास्तां कद्रूश्च विनता च ह ।
प्रादात् ताभ्यां वरं प्रीतः प्रजापतिसम. पतिः ॥
—आदि पर्व १६:६

दितिर्दितिर्दनु काला दनायु· सिंहिका तथा ।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनि ॥१२॥

कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत ।
एतासां वीर्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥
—आदि पर्व : ६५:१२

सुर, असुर दोनो के पुर्वपुरुष कश्यप हैं ।

मरीचे कश्यप पुत्र· कश्यपस्य सुरासुरा ।
जज्ञिरे नृपशार्दूल लोकानां प्रभवस्तु सः ॥
—आदि पर्व : ६६ ३४

ज्येष्ठ पत्नी अदिति से १२ जनो का जन्म हुआ था

त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा ।
मारीच. कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत् ॥
— आदि पर्व ७५ १०

कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से भगवान् वामन का अवतार हुआ था ।

कश्यपस्यात्मज श्रीमनदित्या गर्भधारितः ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्र.सूता गर्भमुत्तमम् ॥

बौद्धसाहित्य

बौद्ध ग्रथो में काश्मीर का बहुत वर्णन मिलता है। दिव्यावदान शतक, वोधि सत्त्वावदान, कल्पलता, में उल्लेख मिलता है। काश्मीर के निवासी नाग जाति के थे।

काश्मीर राज्य के विषय में चीनी यात्रियो ने लिखा है 'राज्य ७००० की आवर्त में फैला है। चारो ओर ऊँची पर्वतमालाओ से परिवेष्ठित है। राजधानी वितस्ता के पश्चिम तट पर स्थित है। देश की भूमि अत्यत उर्वरा है। अन्न, फल, तथा पुष्प अत्यधिक उत्पन्न होते हैं। वनस्पतियाँ तथा ओषधियाँ यथेष्ट रूप से मिलती है। जलवायु ठडी है। तथा रूक्ष है। मनुष्य अत्यत रूपवान होते है। उनका रग साफ है। वे विद्यानुरागी है। उनमें अधार्मिक (बौद्ध धर्म नही मानने वाले) तथा बौद्ध धर्मानुयायी दोनो हैं। स्तूप तथा सघाराम देश में मिलते है।'

पर्यटक युवान च्वाग लिखता है "काश्मीर पूर्व काल में गाधार देश मे सम्मिलित था। तृतीय बुद्ध परिषद् के पश्चात् मोग्गलि पुत्र तिस्स काश्मीर मे धर्म प्रचारार्थ भेजे गये थे। अशोक के समय काश्मीर मौर्य साम्राज्य के अतर्गत था। गधार जातक मे काश्मीर तथा गधार का उल्लेख मिलता है।"

बौद्धग्रथो में १६ जनपदो में काश्मीर और गधार को सम्मिलित किया है। इनका विवरण पुकसाति तथा महाकपिन की कथाओ से प्राप्त होता है। जातको से पता लगता है। बुद्ध काल मे व्यापारीगण विदेश से काश्मीर और गधार तक व्यापार करते थे।

मिलिन्द प्रश्न (मिलिन्दपञ्हो) में, 'कासिकोसलेऽपि कस्मीरे गधारे ऽपि'—का उल्लेख मिलता है। काश्मीर का गधार के साथ उल्लेख किया गया है। युवान-च्वाग ने लिखा है—'कभी गधार के अतर्गत काश्मीर था' कल्हण की राजतरगिणी, महाभारत तथा किसी सूत्र से पता नही चलता कि कभी किसी ऐतिहासिक युग में काश्मीर गधार के अतर्गत था। राजतरगिणी काल से लेकर कोटा रानी के लवे चार हजार वर्षों में कही सकेत नही मिलता कि काश्मीर गाधार में सम्मिलित था। भौगोलिक दृष्टि से काश्मीर तथा गाधार सीमात देश थे। अतएव काशी, कोशल के समान बौद्ध साहित्य में गधार काश्मीर का नाम ले लिया गया है।

महावश में उल्लेख आता है। स्थविर घीतिक राजा मिलिंद [मिनाण्डर] के समय काश्मीर गाधार में बौद्ध धर्म प्रचारार्थ आये थे।

भूरिदत्त जातक से मालूम होता है। कृमियो, फतिगो, सर्पो, मेढको, कीडो, मक्खियो आदि की हत्या कम्वोज जनपद के लोग करते थे। इन हत्याओ के कारण मनुष्य अशुद्ध हो जाता था। यूआन च्वाग ने [सातवी शताब्दी] काश्मीर राज्य के दक्षिण स्थित राजपुरी अर्थात् वर्तमान राजौरी के लिये लिखा है—यहाँ के लोग कीडो मकोडो की हत्या करते थे।

मुझे ऋगवेद में काश्मीर का उल्लेख नही मिला। 'वैदिक कथा।' पुस्तक लिखते समय मैंने वैदिक साहित्य को अध्ययन किया उस समय इस पर विशेष ध्यान रखा कि काश्मीर का वर्णन वेद में है या नही।

एक दिन श्री डा० ज्वाला प्रसाद सिंघल अपनी नव प्रकाशित पुस्तक 'स्फिनिक्स स्पीक्स लेकर मेरे निवास स्थान १५ कैनिगलेन नई दिल्ली में आये। उन्होने वेद में काश्मीर के उल्लेख की चर्चा उठायी। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ।

निसन्देह ऋग वेद में 'वितस्ता' नदी का नाम है। वितस्ता काश्मीर से निकल कर पजाब में बहती है। वैदिक पुरुषो को वितस्ता नदी का ज्ञान था। इससे अनुमान लगाया गया है कि काश्मीर मण्डल का ज्ञान वैदिक पुरुषो को था। इस बात को प्रमाणित करने के लिये डा० सिंघल ने अपनी पुस्तक मे तर्क उपस्थित किया है।

मैंने पुस्तक पढने के लिये समय मागा। इसी बीच उनके पुस्तक के विषय की चर्चा समाचार पत्रो में

मे छपी। उसमे उन्होने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कुछ समय पश्चात् वे पुन आये। इस प्रयोग मे उन्होने स्वीकार किया कि श्री ए. सी दास के 'ऋगवेदिक इण्डिया' पुस्तक से वे प्रभावित हुए है। उनका सिद्धान्त उक्त पुस्तक से मिलता है।

उनके काश्मीर विषयक सिद्धान्त को मै यहाँ सक्षेप मे उद्धृत कर देना उचित समझता हूँ। उनके सिद्धान्त को स्वीकार करने के पूर्व काश्मीर के भूगर्भीय ज्ञान का विशेष अध्ययन आवश्यक है।

काश्मीर मे गुहा निवासियो के स्थानो पर खनन कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा हुआ है। उनसे काश्मीर उपत्यका के भूगर्भीय रचना पर प्रकाश पडता है। मैने इन गुफाओ तथा उनसे प्राप्त सामग्रियो को सन् १९६२ तथा सन् १९६६ मे काश्मीर जाकर देखा तथा अध्ययन किया है।

भूगर्भीय स्तर के अध्ययन से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि काश्मीर उपत्यका जल से कभी पूर्ण थी। पानी कभी निकल गया। सूखी भूमि हो गयी। डा० सिघल द्वारा प्रतिपादित अन्य सिद्धान्तो को, जब तक कुछ और अनुसन्धान न हो जाय और प्रमाण न मिल जाय, स्वीकार करने मे कठिनता होगी। वेद की जिन ऋचाओ का उल्लेख डा० सिघल ने किया है और जो अर्थ उन्होने लगाने का प्रयास किया है वे अत्यन्त विवादास्पद है।

'त्रित' के सम्बन्ध मे मैने अपनी पुस्तक 'वैदिक कथा' (२७–३३) मे विस्तृत प्रकाश डाला है। मै डा० सिघल की विवृति का समर्थन करने मे असमर्थ हू। यहाँ स्थानाभाव से विशेष विवृति करना अप्रासगिक होगा। 'भेद' का अर्थ जो डा० सिघल ने लगाया है वह काश्मीरी परम्परा तथा इतिहास से मेल नही खाता। 'गगोद्भेद' तीर्थ तथा 'भेदादेवी' 'भेद पर्वत' के प्रसग मे श्लोक सख्या ३४ की टिप्पणी तथा परिशिष्ट द्रष्टव्य है। तथापि डा० सिघल के मत को यहाँ पर सक्षेप मे उद्धृत कर देना मै उचित समझता हूँ।

'यह कहा जाता है कि काश्मीर की भूमि एक झील थी। वह १६००० वर्ग मील क्षेत्र मे फैली थी। यह २००० फीट गहरी थी। चारो ओर पर्वतो से घिरी थी। तिब्बत उत्तर मे, कैलास पूर्व मे, और सप्तसिन्धु का भूमि खण्ड दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम मे था। हमने देखा है कि जिन्दावेस्ता मे इस चतुर्कोणीय भूमि का नाम 'वरण' अर्थात् 'वरुण' का देश कहा गया है। उसका उल्लेख 'हफ्त हिन्द' अर्थात् 'सप्त सिन्ध' के पूर्व किया गया है। 'नागा जाति' चीनी तुर्किस्तान तथा उसके आस पास रहती थी। उनके देश के साथ 'गरुड' का देश मिला था। दोनो जातियो मे सघर्ष होता रहता था। अतएव नागा जाति ने काश्मीर मे गरुड जाति के भय के कारण शरण लिया।

'कहा जाता है कि काश्मीर मे एक भेद पर्वत था। उस पर देवी सरस्वती अपने वाहन मोर पर रहती थी। यह पर्वत भी तोडा गया और सरस्वती तथा पार्वती ने सरिताओ का रूप धारण कर लिया।

'ऋगवेद' इस कथानक को अर्थयुक्त रूप से उपस्थित करता है। 'इन्द्र' का प्रथम कार्य यह था कि उसने अहिदस्यु 'वृत्र' तथा उसकी माता सहार किया। जिन्होने मेघ से गिरते जल को नागाओ द्वारा रचित गुहा मे बन्द कर रखा था। इन्द्र ने भेद का भी निर्धन कर वध कर दिया। दस्युओ का जो वहाँ पर रहते थे उनका सहार किया। उसने वज्र प्रहार द्वारा पर्वत तोड डाला। वह जल बह कर 'सप्तसिन्ध' की सात नदियाँ हुई। और समुद्र मे जाकर मिल गयी।

'त्रित' को बाराह भी कहते है। अर्थात् बारहमूला के समीप वह मारा गया था। सरस्वती उनमे से मुख्य नदी थी। जो मुक्त की गयी थी। दस्यु लोग 'अनासो' अर्थात् नासिका रहित थे। अर्थात् वे चिपटी नाक वाले थे। ऋगवेद मे यह भी वर्णन आता है कि

अनार्य शिव, अजस, यक्ष, आदि ने यमुना के तटपर भेद के नेतृत्व मे युद्ध किया था जहाँ इन्द्र ने उन्हे पराजित किया था। 'ऋग्वेद' उन अनार्यो का भी वर्णन करता है जो शिशनदेव की पूजा करते थे। उन्हे भी इन्द्र ने पराजित किया था।

'जिस समय काश्मीर मे 'अहिवशीय दस्यु' लोग जिनका स्वामी वृत्र रहता था, उन दिनो आर्य हिन्दूकुश तथा पामीर के गिरिपाद मे रहते थे। हिमालय के उत्तर मे तेथीस सागर था। वह क्रमश सिकुडता गया। और पृथ्वी के शिखर की गति के कारण चीन मे तथा तिब्बत मे भूमि का स्तर ऊचा कर दिया। चीन मे भूमि सूख गयी और तिब्बत अधित्यका अर्थात् प्लेटो वन गया। इसलिए तिब्बत को त्रिविष्टप् अर्थात् तीन वार परत किया हुआ कहा जाता है।

'भूगर्भीय गति का प्रभाव काश्मीर पर भी पडा जो तिब्बत की पश्चिम सीमा से सम्बन्धित है। पर्वत टूट गया और काश्मीर का जल वाहर निकल गया। नाग लोग प्राकृतिक उथल पुथल मे विनष्ट हो गये। इस प्रकार जल निकल जानेपर गिरिपाद से आर्य लोग उतर कर आये और काश्मीर उपत्यका मे आवाद हो गये। उस समय नई नदियाँ सिन्धु में आकर मिली। गान्धार सप्तसिन्धु का एक भाग वन गया।

'वृत्र काश्मीर मे मारा गया था। इसका प्रमाण 'भेद' तथा वाराह के वर्णन से प्रकट होता है, जिनका वर्णन काश्मीर के साहित्य मे मिलता है। भेद के पराजय की वात यमुना तट पर कही गयी है। काश्मीर के इतिहास मे यह कहा गया है कि सरस्वती देवी भेद पर खडी थी। यह वात निर्विवाद है कि सरस्वती तथा यमुना का उद्गम एक ही शैल से होता है। भेद मालूम होता है कि उन लोगो का राजा था जो भेद पर्वत पर रहते थे। उनका विनाश शायद काश्मीर उपत्यका का जल निकल जाने के कारण हुआ अथवा राजा सुदास द्वारा इन्द्र की सहायता मे मारे गये थे।

'इन्द्रको वहाँ देवतारूप नही वल्कि प्रकृति की प्रमुख शक्ति मानना चाहिए। एक 'त्रित' देवता का वर्णन वेदो मे मिलता है। उसने वृत्र का वध किया था। वृत्र यहाँ वराह कहा गया है। वैदिक ऋचाओ से यह वात प्रमाणित होती है कि वराह वृत्र का निवास वारहमूला मे था।

'त्रित' ने वृत्र दैत्य को मारा था जिन्दावेस्ता के प्रथम अध्याय वेन्दीदाद के १८वें पद मे आता है। वहाँ 'त्रित' को 'थ्रेतिन' कहा गया है। 'त्रित' प्राकृतिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। उसे 'त्वश्तर' का पुत्र माना गया है। त्वश्तर को इन्द्र का पिता माना गया है। त्वस्तर को इन्द्रके वज्र तथा देवो के अन्य अस्त्रो का निर्माता माना गया है।

'वरुण, त्रित, इन्द्र के साथ कहा गया है कि वृत्रको मरुत् ने भी मारा था। भूमि की गति के कारण जव काश्मीर का जल वारहमूला के पास से वह निकला होगा तो सम्भव है कि, आन्धी पानी, भूचाल तथा वज्रपात हुआ हो। मरुत् से वृत्र वध को सम्बन्धित करने से यह प्रकट होता है कि प्राकृतिक उथल-पुथल के कारण काश्मीर का जल वह गया और आर्यो को काश्मीर तथा वहाँ रहने वाली जातियो का ज्ञान था।

'मालूम होता है कि ऋग्वैदिक आर्यो ने काश्मीर भूखण्ड का कोई नाम नही रखा था। उनके लिए यह 'दस्युओं' का देश था। वे अपने स्थानो से आकर आर्यो को परेशान करते थे। पौराणिक काल मे इन्द्र और वृत्र के सघर्ष की वात कथानक रूप मे चलाई गयी। आर्यो ने कालान्तर मे शिवपूजा स्वीकार कर ली। उस समय 'सती सर' तथा उससे जल निकलने की घटना को गाथा का रूप दे दिया गया। नागालोग शिव के भक्त थे अतएव 'जलोद्भव' नाम के एक दैत्य की कल्पना कर ली गयी। क्योकि शिव के भक्त नागाओ को आर्य जिन्होने शिव की उपासना स्वी-

कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोत्भवम् ।
निर्ममे तत्सरो भूमौ कश्मोरा इति मण्डलम् ॥ २७ ॥

२७ असुर जलोद्भव का वध किया गया। सतीसर के उस भूमि स्थान पर काश्मीर मण्डल की स्थापना हुई।

कार कर ली थी दैत्य नाम नही दे सकते थे। काश्यप जो मानव जाति के आदिपुरुष माने जाते है उन्हे लाकर बारहमूला के समीप पर्वत विदारण का आख्यान रच लिया गया। सतीसर इस प्रकार 'काश्यप सर' हो गया। और कालान्तर मे काश्मीर हो गया।

'प्राचीन काल के पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रमाणो पर अपने सिद्धान्त की पुष्टि करता लेखक कहता है 'इन्द्रने दस्युओ को काश्मीर उपत्यका मे नष्ट किया। इन्द्र ने उनके ९९ दुर्गो को नष्ट किया। काश्मीर के पूछ क्षेत्र के सोहन नदी मे कहा जाता है कि इन पाषण युगीय लोगो के पाषाण यान्त्रिक उपकरण मिले है। उनका समय ६,००,००० वर्ष पूर्व माना जाता है। इस प्रकार आदिकालीन लोग काश्मीर उपत्यका मे रहते थे इसका प्रमाण ५वे मण्डल के सूक्त ४५ ऋचा ६ पर आधारित किया है। उसमे 'विशिशिप्र' शब्द को वृत्र माना गया है। वहाँ कहा गया है कि गऊ की शाला खोदी गयी है। और उससे जल बाहर निकल गया। यहाँ इन्द्र के स्थान पर माता अथवा प्रकृति के लिए कहा गया है कि प्रकृति के कारण काश्मीर उपत्यका का जल वह गया और भूमि निकल आयी। 'विशिशिप्र' शब्द महत्त्व-पूर्ण है क्योकि दस्युओ के प्रारम्भिक पाषाण युग को उपस्थित करता है।

'यह बात इससे और प्रमाणित होती है कि वृत्र तथा उसके दस्यु साथियो के लिए 'इलीवश' शब्द का प्रयोग मण्डल १ सूक्त ३३ ऋचा १२ मे किया गया है। जिसका अर्थ गुहा मे रहने वाले लोग होते है। इससे प्रकट होता है कि दस्यु लोग पाषाण युगीय गुफा में रहने वाले थे। इन बातो से प्रकट होता है कि ऋग्वेदीय आर्य उनके सम-कालीन थे।'

लेखक ने श्री स्टूअर्ट दिगोट के 'प्रिहिस्टारिक इण्डिया' का उल्लेख करते हुए कहा है 'सोअन सभ्यता सोहन नदी को उपत्यका सिन्धु, पूंछ, झेलम के समीप तथा साल्ट रेंज तक विस्तृत थी।

पाठभेद

'कश्मीर' का 'काश्मीरा' पाठभेद मिलता है।

पादटिपणियाँ :

२७ (१) जलोद्भव : नीलमत पुराण जलोद्भव गाथा का वर्णन करता है। जलोद्भव का अर्थ है, जल से उद्भव अर्थात् जन्म लेनेवाला। काश्मीर मे अत्यधिक ठंड पडती थी। कुछ लोगो का अनुमान है। जलोद्भव शब्द का अर्थ ''तैरता हुआ'' हिमखड है।

नीलमत पुराण मे निम्मलिखित जलोद्भवाख्यान का वर्णन दिया गया है.

कृपया सः शिशुर्नागैर्जले तस्मिन्विवर्धित. ।
यस्मादयं जले जातस्तस्मादेष जलोद्भव ॥
—77।११८, ११९

आराध्य तपसा लेभे वरं देवात्पिता महान् ।
जलेऽमरत्व मायाश्च विक्रमं चातुलं तथा ॥
78।११९, १२०

लब्धमायस्तु दैत्येन्द्रो भक्षयामास मानवान् ।
समीपे सरसस्तस्य नानादेशेष्ववस्थितान् ॥
79।१२०, १२१

दर्भाभिसार-गान्धार-जुहुण्डर-शकान् खसान् ।
तंगणान् माण्डवान् मद्रानन्तर्गिरिवहिर्गिरि ॥
80।१२१, १२२

ते हन्यमाना पापेन देशान् सम्प्राद्रवन् भयात् ।
शून्येषु तेषु देशेषु विचचार स निर्भय ॥
81।१२२, १२३

भगवन्विदित सर्वं यथापूर्वं मया शिशु ।
पालित सग्रहसुतो दैत्यो नाम्ना जलोद्भव ॥
136।१७९

जलोद्भव असुर का वर्णन वामनपुराण (८ ।१८–३३) में किया गया है। ब्रह्मा के वर-लाभानतर सवतापकारी असुर जलोद्भव का वध शिव तथा विष्णु के द्वारा हुआ था। यह कथा नीलमत पुराण मे वर्णित कथा से मिलती है। शक्र सरतीर पर पौलोमी के साथ क्रीडारत थे। परमदुर्जय सग्रह नामक दैत्येन्द्र वहाँ रहता था। शची को देखते ही काममोहित दैत्य का रेतस् सलिलाशय मे पतित हो गया। कामोन्मत्त दैत्य ने शची के अपहरण की लालसा की। शक्र तथा सग्रह मे तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। इन्द्र का युद्ध एक वर्ष तक चलता रहा। सग्रह युद्ध मे हत हो गया।

उस दुरात्मा के रेतस् मे जलोद्भव शिशु उत्पन्न हुआ। जलोद्भव का नागो ने कृपापूर्वक विवर्धन किया। जल से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम जलोद्भव पडा।

जलोद्भव देश का वर्णन महाभारत मे आया है। हिमालय समीपस्थ इस देश का होना मिलता है। इस देश पर भीमसेन ने विजय प्राप्त की थी। मैं समझता हूँ कि वह देश काश्मीर है। (सभा पर्व ३० । ४)

पितामह ब्रह्मा की तपस्या तथा आराधना द्वारा जलोद्भवने तीन वर प्राप्त कर लिये थे। जल से अमरत्व, अतुलनीय विक्रम तथा मायाशक्ति की प्राप्ति। उस दैत्येंद्र ने समीपवर्ती दार्वाभिसार, गाधार, जहुडर, शक, खस, तगण, माडव, मद्र, अतर्गिरि और बहिर्गिरि के निवासियो का भक्षण आरम्भ कर दिया। काश्मीर के समीपवर्ती सीमात देशो को त्रस्त करने लगा। उस पापी के कारण देश जनशून्य हो गया। वह निर्भय हो गया (नीलमत पुराण श्लोक 76–81 ११८–१२२)

वाकयाते काश्मीरी मे उल्लेख है 'जलोद्भव के कारण काश्मीर जनशून्य हो गया था। एक समय मरीचि के पुत्र काश्यप ने जिन्हे कुछ लोग ब्रह्मा का पौत्र कहते है, काश्मीर की यात्रा की। कुछ काल तक पवित्र सुमेरु पर्वत पर निवास करने के पश्चात् काश्मीर भूमि की दुरवस्था की तरफ उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होने दुरवस्था का कारण पूछा। लोगो ने कहा 'जलदेव 'सतोसर' में निवास करता है। वह हम लोगो को नष्ट करता रहता है।

'काश्यप का हृदय करुणापूर्ण हो गया। वह हरीपुर के समीप नौवधन मे निवास करने लगा। वहाँ उन्होने एक सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की। महादेव प्रकट हुए। जलदेव को मारने की प्रार्थना स्वीकार की। महादेव ने विष्णु और ब्रह्मा को जलदेव को हटाने के लिये भेजा। विष्णु और जलदेव का एक सौ वर्षो तक सघर्ष होता रहा।

'विष्णु ने देखा कि जलदेव जल तथा पक मे रहकर अपनी रक्षा करता है। उन्होने बारहमूला के समीप एक जलप्रणाली बनवायी। जल निकल गया। दैत्य दृष्टिगोचर होने लगा। वह पकडकर मार डाला गया। प्रदेश आबाद हो गया। इस लिये काश्मीर को 'कशिपसर' कहते हैं।'

रत्नाकर पुराण का अनुवादकर्ता लिखता है,—'पहले वक्तो में चमनजार काश्मीर मे देव और राक्षस वास किया करते थे। इनमें से एक देव जलोद्भव नामी था। वह बडा जालिम और सरकश था। बहुत अरसा तक उसकी लडाइयाँ तीन कारणो यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ रही। उसके फना होने के बाद मखलूक खुदा ने इत-

मोनान का साँस लिया। आहिस्ता आहिस्ता इंसान इस सर जमीन मे बसने लगे। लेकिन फिर भी काफी मुद्दत तक देवो और राक्षसो के हाथ तकलीफ उठाते रहे। इस दरमियान में गर्मियो में लोग हिन्दुस्तान से यहाँ आते। जरायत व खेती वाडी करते और सर्दियो के मौसम मे कुछ सर्दी की शिद्दत और कुछ देवो के खौफ से फिर अपने वतन को वापस लौट जाते। बिल आखीर रफ्त रफ्त यह बला टल गई और लोगो ने मुस्तकिल तौर पर आबाद होकर हुकूमत के कवानीन और रस्म वो रवाज बना लिये।'

तारीख कश्मीर हसन, पृष्ठ १०–११

स्कन्द पुराण मे ७५ देशो तथा उनके ग्रामो की सख्या दी गई है। काश्मीर का नाम उन ७५ देशो की तालिका मे ३२वाँ आता है। काश्मीर के ग्रामो की सख्या ६८००० दी गयी है। श्री स्ताइन ने अपने समय मे काश्मीर के ग्रामो की गणना कर उनकी सख्या ६६०६३ दी है। अबुल फजल ने भी आइने अकबरी में ग्रामसख्या ६६९७१ दी है। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि पुराणो मे वर्णित काश्मीर संबन्धी बातें कपोलकल्पित नही है।

२ कश्यप—कश्यप ऋषि का उल्लेख ऋग्वेद (९ ११४ २) में मिलता है। सामवेद, (१ १, २ ४, १०, १.४.२ २,) मे प्रजापति रूप में उनका वर्णन किया गया है। अथर्व वेद (१ १४ ४, २ ३३ ७, ४ २०.७ ४ २९ ३, ४:३७ २) तथा मैत्रायणी सहिता एव वाजसनेय सहिता शाखा (३.६२) मे उन्हें प्राचीन पुरुष कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (८ २१) तथा शतपथ ब्राह्मण (१३ : ७ १ ५) के अनुसार उन्होने विश्वकर्मन् यौन राजा का अभिषेक किया था। वृहदारण्यक उपनिषद् (२ २ ६), जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (४ . ३ : १) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (७.२७) मे जनमेजय के सदर्भ मे उनका उल्लेख किया गया है। वृहद्देवता कश्यप का उल्लेख (३.५७ ५ १५ ३ १४५), (२ · १५७ और ८ १८) मे आता है। कुछ विद्वान् कश्यप का समय ईसा पूर्व ५६९६ वर्ष अर्थात् आज से ७ हजार ८ सौ वर्ष पूर्व मानते हैं। किंतु किसी ठोस प्रमाण पर यह गणना आधारित नही है। कश्यप का उल्लेख ऋग्वेद मे है। उनका ऋग्वैदिककालीन अथवा उससे भी पूर्वकालिक होना अनिवार्य है।

कश्यप नागाओं के आदि पुरुष है। नीलमत पुराण मे कश्यप तीर्थ यात्रा का वर्णन सग्रहपुत्र जलोद्भव दैत्य वध प्रसग मे, (श्लोक २०९ से २२७) आता है। कल्हण ने नीलमत से यह प्रसग लिया है। नील नाग ने जलोद्भव के उत्पात का वर्णन निम्नलिखित रूप से नीलमत पुराण मे किया है।

सद्यो लब्ध्वा वरान् पापो ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः।
न मां गणयति दुष्टो न चाहं तस्य निग्रहे॥
समर्थो वरदानेन त्रैलोक्याधिपतेः प्रभोः।

—137।१८०, १८१

तेनेद सकलं शून्य मद्रदेशे कृतम् प्रभो।
खादता नरमांसानि दुष्टेनाकृतबुद्धिना॥

—138।१८१, १८२

दार्वाभिसारगांधारजालन्धरशकाः खसाः।
तगणाश्माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिबहिर्गिरिः॥

—139।१८२, १८३

एते वै मुख्यतस्तेन देशाः शून्यीकृताः प्रभो।
निग्रहे भगवन् तस्य कुरु बुद्धिं जगद्धिताम्॥

—140।१८३ : १८४

एवमुक्त्वा तथेत्युक्त्वा स्नात्वा तीर्थेषु कृत्स्नतः।
आजगाम सतीदेशं विमलं तत्सरोत्तमम्॥

—141।१८७, १८८

तत्र स्नात्वा जगामासौ ब्रह्मलोकं सदातनम्।
पद्भ्यां च क्रमणं त्यक्त्वा स्वशक्त्यैव नरोत्तमः॥

—142।१८८, १८९

नीलेन सहित. प्रायान्नागराजमहात्मना ।
तौ गत्वा ब्रह्मसदन ववन्दतुररिन्दम ॥
—143।१९०

देवं कमलयोनिं च सगत्यासनमास्थितौ ।
वासुदेवेश्वरौ देवावनन्त च महामतिम् ॥
144।१९१, १९२

तैस्तु संपूजितौ तत्र जलोद्भवविचेष्टितम् ।
कथयामासतुरुभौ ततो देव पितामह· ॥
145।१९४

संक्षीयमाने सरसस्तु तोये
चकार माया स जलोद्भवाख्य ।
अथान्धकारं ससृजे समन्ता-
दृदृश्यमासीद्भुवन नृवीर ॥
—170।२२२ · २२३

जलोद्भवासृजा मत्तस्तदा चक्र· सुदर्शन ।
बभ्राम देशं शून्यं त त च जग्राह शकर ॥
188।२४२

ऋषयो देवता नागा गन्धर्वाप्सरसां गणा ।
द्रष्टुं सर्वे समाजग्मुर्जलोद्भवसरस्त्वथ ॥
197।२५९

जलोद्भव भयकर क्रूरकर्मा हो गया था । प्रजापति कश्यप तीर्थयात्रा पर निकले थे। कश्यप से कनखल मे आकर नील नाग मिला। उनकी पूजा की। काश्मीर की तीर्थयात्रा निमित्त निवेदन किया। जलोद्भव के अत्याचार की करुण कथा सुनाई। सतीसर के विमल सरोवर की तीर्थयात्रा निमित्त कश्यप उद्यत हो गये। नीलमत पुराण में निम्नलिखित उल्लेख इस सम्बन्ध मे आता है।

कश्यप ऋषि ब्रह्मलोक मे नील नाग के साथ गये। वहाँ से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ सशक्ति नौवधन तीर्थ की ओर प्रस्थान किये। उनका अनुकरण देवताओ ने किया। असुरो ने किया। वे अपने-अपने वाहनो के साथ चले। नौवधन पहुचे। केशव दृढतापूर्वक वहाँ स्थित हो गये। सुर और असुर दोनो की सेना नौवधन पहुँची। इस महान् वाहिनी की तुमुल ध्वनि जलोद्भव दैत्य ने सुनी, व दहल गया। सुरक्षा निमित्त जल में छिप गया। शत्रु दैत्य जल से बाहर नही निकल रहा था। उसे जल से बाहर निकलता नही देखकर मधुसूदन नौवधन में प्रवेश किये। नौवधन पहुँचकर (कासर नाग अथवा क्रमसर के) तीनो शिखरो के मध्य मे शिव, दक्षिण हरि तथा उत्तर शिखर पर ब्रह्मा ने स्थान ग्रहण किया।

नौवन्धनमथासाद्य केशवो वै व्यवस्थित· ॥
देवानुयात्रनिनद श्रुत्वा दैत्योऽपि दुर्मति· ।
जले त्ववध्यमात्मानं विदित्वा न विनिर्गत· ॥
—162।२१३. २१४

अनिर्गतं त च तदा विज्ञाय मधुसूदन ।
नौबध एवमुदितो विवेशाथ सुरैः सह ॥
—163।२१५,

नौवन्धशिखरे रुद्रो दक्षिणे शिखरे हरि· ।
उत्तरे शिखरे ब्रह्मा तेषामनुसुरासुर· ॥
—164।२१६

एव ते विविशु· शैले ततो देवो जनार्दन· ।
अनन्तमाह धर्मात्मा वधार्थं दानवस्य तु ॥
—165।२१७

जलोद्भव जल मे था। विचलित नही हुआ। बिना जल निकले दैत्य दृष्टिगत नही हो सकता था। अतएव भगवान् अनत ने पर्वतराज को विदारित कर दिया। जल वेग से निकलने लगा। जल निकल जाने पर जल स्थित सभी भूत सज्ञाहीन हो गये।

जलोद्भव ने अधकार का सृजन किया। घोर अधकार में नौवधन आवृत हो गया। शभु ने अपने दोनो करो में सूर्य तथा चन्द्रमा को लिया। अधकार तिरोहित हो गया। विष्णु ने दैत्य को देखा। विष्णु और जलोद्भव का युद्ध आरम्भ हुआ। भीषण

युद्ध के पश्चात् भगवान् के चक्र द्वारा जलोद्भव का मुंड छिन्न हो गया।

नीलमत पुराण मे बारहमूला के पास जल निकालने की तरफ संकेत किया गया है।

नीलाम्बरः काञ्चनबद्धमौलिः संपूज्यमानस्त्रिदशैः समेतैः।
विदारयामास स लागंलेन हिमाचलं शैलवरं पृथिव्याम्॥
—168।२२०

विदारिते पर्वतराजराजे विनिर्ययौ तज्जलमाशुवेगात्।
वेगेन शब्देन च सर्वभूतान् सन्त्रासयानं कुटिलैस्तरंगैः॥
२२१

हिमाचलाभैर्गगनम् स्पृशद्भिः सप्लावमानम्
गिरिमस्तकानि॥ —161।२२१, २२२

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते राजन् मन्वन्तरे किल।
मारीचाय ददौ दक्षः कश्यपाय त्रयोदश॥
—46।६७–७०

एतस्मिन्नेव काले तु कश्यपो भगवान् ऋषिः।
तीर्थयात्राप्रसंगेन चचार सकलां महीम्॥
—81।१२३–१२४

तीर्थयात्रागतं श्रुत्वा कश्यपं पन्नगाधिपः।
नीलो जगाम तं द्रष्टुं तीर्थे कनखले तथा॥
—96।१३९

उपविष्टस्तदा नागो व्यज्ञापयत कश्यपम्।
पितरं तपसां स्थानं यत्तच्छृणु नराधिप॥
—99।१४२

उत्तीर्य च महाभागां विपाशां पापनाशिनीम्।
दृष्टवान् सकलं देशं तदा शून्यं स कश्यपः॥
—133।१७६

ऋद्ध्यैव कश्यपः प्रायाच्छ्रुतवांस्तत् पुरन्दरः।
ततो देवगणैः सार्धं यात्यस्मिन्केशवान्तिकम्॥
—149।२०१

तस्योदगाश्रमं चक्रे ब्रह्मा देववरः स्वयंम्।
पश्चार्धे चाश्रमं चक्रे कश्यपो भगवानृषिः॥
—180।२३३–२३४

देवर्षिनागमुख्येष्वधितिष्ठितेष्वथ कश्यपः।
उवाच वरदं विष्णुं हस्तौ वद्ध्वा पुरः स्थितः॥
—198।२६०

वसतां रमणीयश्च पुण्यश्च भविता तथा।
कश्यपे ब्रुवतीत्येवं नागा वचनमब्रुवन्॥
—199।२६३–२६४

न वयं मानुषैः सार्धं वसामो मुनिपुंगव।
तानुवाच तथा क्रुद्धः कश्यपो वै प्रजापतिः॥
—201।२६६–२६

एवं उक्ते कश्यपेन नीलः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
एते क्रोधवशा ब्रह्मन्नाभिजानन्ति किंचन॥
—202।२६८–२६९

कश्यपस्तमुवाचाथ ऋषिः परमधार्मिकः।
वालुकार्णवमध्ये तु द्वीपः षड्योजनायतः॥
—203।२७६–२७७

कः प्रजापतिरुद्दिष्टः कश्यपश्च प्रजापतिः।
तेनेदं निर्मितं देशं काश्मीराख्यं भविष्यति॥
—218।२९१–२९२

एवं निविष्टान् काश्मीरान्दृष्ट्वा हृष्टस्तु कश्यपः।
आराध्य शंकरं देवमुमां देवीमचोदयत॥
—228।३०५

अदितिर्देवमाता च कश्यपेन प्रचोदिता।
त्रिकोटिर्नामितो भूत्वा नदीदेशे प्रसर्पति॥
—231।३०८

शक्रपत्नी शची या च सा च कश्यपचोदिता।
नाम्ना हर्षं यथा याता देशेऽस्मिन् पापसूदनी॥
—232।३०९

एवं कश्यपवाक्येन देवदानवमातर.।
देवपत्न्यस्तथा पुण्याः सरिद्रूपत्वमागताः॥
—234।३११

तत्र कश्यपवाक्येन तीर्थसागरनिम्नगाः।
काश्मीराय तदा जग्मुः सान्निध्यं पुण्यवृद्धये॥
—235।३१२

कदाचित्कश्यप द्रष्टु ययुर्देव्य प्रकीर्तित ।
तास्तत्र चोदयामास कश्यपो भगवानृषि ॥
—239।३१६–३१८

आराधयामास तदा सत्यर्थेन तु शकरम् ।
तदोवाच हरो भार्या ।कुरु कश्यपभाषितम् ।
—242।३२३–३२८

रसातल जगामासौ पुनस्तामेव कश्यप ।
प्रसाद्योन्मज्जयामास पञ्चहस्त समीपत ॥
—255।३४५–३४६

सा च दृष्टा कृतघ्नेन तिरोधान गता पुन ।
भूय कश्यपवाक्येन चोदिता निम्नगोत्तमा ॥
—257।३४७–३४८

भूय. कश्यपवाक्येन नरसिंहाश्रमे शुभा ।
उन्मज्जिता नदी विप्रैस्तूयमाना सहस्रश ॥
—259।३४९–३५०

क्रोशमात्रे ततो दृष्टा ब्रह्मघ्नेन महानदी ।
अन्तर्धान जगामासौ ततस्तामाह कश्यप ॥
—260।३५०–३५१

एव प्रसादिता भक्त्या कश्यपेन महात्मना ।
उवाच कश्यप देवी त तथावादिन तदा ॥
—266।३५७

एव सशोका विज्ञाय कश्यपस्त्वब्रवीत् पुन ।
त्वमेव परमा शक्तिर्बहुभिर्मन्त्रिभि स्तुता ।
क्षीरोदकन्ये विरजे पवित्रे मङ्गलास्पदे ॥
—273।३६७–३६८

पुनस्ता तु महाभागा ऋषि प्रोवाच कश्यप ।
अवश्य हलमार्गेण गन्तव्य सुभगे त्वया ॥
—300।३९९–४००

अन्यथा देश एवाग सरस्त्वमुपयास्यति ।
भूयो भूयश्चोद्यमाना कश्यपेन सरिद्वरा ॥
—301।४००–४०१

एषा हि पापशमनी वितस्ता निम्नगोत्तमा ।
कश्यपस्य तु वाक्येन लक्ष्म्या सहगता क्षितिम् ॥
—321।४२२

प्रजापति कश्यपो हि सर्वभूतपिता प्रभो ।
त्वया तु शोभतेऽत्यर्थ पुत्रेणात्यन्तधार्मिक ॥
—352।४५५

कार्तिक्या समतीतायां सम्प्राप्ते प्रथमेऽहनि ।
कश्मीरा निर्मिता पूर्व कश्यपेन महात्मना ॥
—450।५६१

ब्राह्मण कश्यपं वह्निं वायु गगनमेव च ।
माल्यैर्गन्धैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैश्च पृथक् पृथक् ॥
—542।६६४

ऋषयो वालखिल्याश्च कश्यपागस्त्यनारदा ।
तथैवाप्सरस पुण्या पूज्या देवाश्च सोमपा ॥
—605।७२७

आषाढ्यां समतीताया यदा स्याद् द्विजरोहिणी ।
तदा तु कश्यप पूज्यो देशस्यास्य प्रवर्तक ॥
—710।८४७

दिवाकरेण सौम्येन वह्निना पवनेन च ।
कश्यपेनाथ भृगुना पुलस्त्येन तथात्रिणा ॥
—1155।१३६६–१३६७

रामोऽपि तपसा दीप्तो वाजिमेधे महाक्रतौ ॥
दत्वा महीं कश्यपाय महेन्द्र पर्वतं गत. ॥
—1225।१४३८–१४३९

नीलमत पुराण से मालूम होता है कि काश्मीर में कश्यप स्वामी, कश्यपेश तथा कश्यपेश्वर के देव-स्थान थे ।

कश्यपस्वामी

कार्तवीर्यार्जुनस्वामी दृष्ट्वा त च दिवाकरम् ।
मार्तण्ड कश्यपस्वामिं विष्वगश्वकृत रविम् ॥
—1017।११८९

ब्रह्माण वरदं दृष्ट्वा शैलरूपधर स्वयम् ।
विष्णुस्वामि हरस्वामि कश्यपस्वामिनस्तथा ॥
—1019।११९१

कश्यपेश

चक्रेश्वर सचन्द्रेश कश्यपेश विलोहितम् ।
कामेश स वसिष्ठेश भूतेश सगणेश्वरम् ॥
—1023।११९४–९५

कश्यपेश्वरः

हिमाचलेशं शंखेशं देशं वैवत्तिलेश्वरम् ।
महानन्दीश्वरं शम्भुं वरदं कश्यपेश्वरम् ॥
—1025।११९७

शम्भुस्तथा चन्द्रदिवाकरौ द्वौ जग्राह देवोऽथ करद्वयेन। प्रकाशमासीज्जगतो निमेषाद्ध्वस्तं तथा सर्वमथान्धकारम् ॥ 171।२२३–२२४

ध्वस्तेऽन्धकारे हरिरप्रमेयः योगेन कृत्वा त्वपरं शरीरम् दैत्येन युद्ध स चकार सार्धं देहेन चान्येन स युद्धमैक्षत् ॥—172।२२४

विष्णोश्च दैत्येन वभूव युद्धं घोरं द्रुमै. पर्वतमस्तकैश्च युद्धं च ते देवगणा. समस्ताः प्रहृष्टचित्ता ददृशु. समन्तात् ॥ 173।२२५–२२६

जल निकल जाने के कारण सतीसर सुदर आनद कानन मे परिणत हो गया। अवुल फजल आइने अकवरी मे लिखता है—'जव जल घट गया, तो कश्यप जो अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणो को इस देश मे आवाद करने के लिए लाये। आदमियो की तादाद वहुत वढ गयी, तो शासन करना आवश्यक हो गया।

'सभा मे एक मत से लोगो ने जो उनमें गुणी था, राजा चुन लिया। उस समय से काश्मीर मे राजतत्र स्थापित हो गया। राजा गोनन्द के समय तक चलता रहा। उसे आज अर्थात् १४ वर्प अकवर के शासन काल से ४४४४ वर्ष हो चुके है।'

कश्यपपुर (मुलतान) मुलतान का प्राचीन नाम था। तत्पश्चात् हसपुर; वेगपुर, शावपुर तथा अत मे इसका नाम मूलस्थान हुआ। वर्तमान मुलतान शब्द मूलस्थान का अपभ्रश है।

लगभग ३००० वर्ष ईसा पूर्व मुलतान का निश्चित नाम क्या था, कहना कठिन है महेनजोदारो तथा हरप्पा से इस नगर का सवंध जल और स्थल दोनो मार्गों से था। यह निर्विवाद है। मुलतान का नाम ई० पू० ६०० वर्ष मे प्रकाश में आया है।

ऊपर लिख चुका हूँ। मुलतान का प्राचीन भारतीय नाम कश्यपपुर था। फारसी तथा प्राकृत भाषा मे मुलतान को कश्यपपुर नाम से सबोधित किया गया है। हेकालीरस ने इसका यूनानी नाम 'कशपापैरोस' दिया है। यह यूनानी शब्द निस्सदेह कश्यपुर का अपभ्रश है।

प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस ने 'कशपतेरोस' नाम का उल्लेख किया है। अलकक्षेत्र अर्थात् सिकदर के ऐतिहासिको ने मुलतान को 'मोल्लियो' की राजधानी वताया है। टोलिमी ने 'कसपुर' नाम दिया है। यह शब्द कश्यपपुर का अपभ्रश है।

सन् ६४१ ई० मे ह्वेनसाग भारत आया था। पर्यटन काल मे इस स्थान की यात्रा की थी। मुलतान के विशाल सूर्य मदिर तथा नगर का अद्भुत वर्णन करता है।

आठवी शताब्दी के पश्चात् मूलस्थान का अपभ्रंश मुलतान हो गया। एक प्राचीन गाथा है। भगवान् नरसिह ने यहाँ अवतार लिया था। नरसिंह भगवान् ने हिरण्यकश्यप राक्षस का वध किया था। हिरण्यकश्यप राक्षसो का राजा था। हिरण्य शब्द के साथ कश्यप शब्द इस वात का वोध कराता है कि हिरण्यकश्यप का सवध कश्यप वश तथा कश्यपपुर से था।

कश्यप राक्षसो के आद्य पुरुष थे। हिरण्यकश्यप का पुत्र विष्णु का उपासक था। राक्षस, पिशाच तथा नाग जाति शिव की उपासक थी। हिरण्यकश्यप संभवत. विष्णु पूजा का विरोधी था। उसका यह विरोध विष्णु भक्ति की ओर आकर्षित प्रह्लाद के प्रति उग्र हो उठा। अनुमान किया जा सकता है। नरसिंहावतार की कथा शैव तथा वैष्णव मत के संघर्ष का एक रूपक है।

कश्यपपुर का नाम मूलस्थान किस प्रकार पड गया। विचारणीय विषय है। मै समझता हूँ, । जहाँ भगवान् के अवतार लेने के स्थान का संकेत

प्राचीन काल मे मिलता रहा होगा। उस स्थान का नाम मूलस्थान रख दिया गया। मुसलिम काल में प्रथम वार काशी का मदिर जहाँ तोडा गया था उसी के समीप में 'आदि विश्वेश्वर' की स्थापना हो गयी। दूसरे विश्वनाथजी के मदिर का निर्माण अकवर काल में हुआ था। आदि विश्वेश्वर के नाम से काशी मे एक मुहल्ला भी है। मथुरा में भगवान् श्रीकृष्ण का जिस स्थान पर जन्म हुआ था उसे जन्मभूमि कहते हैं। वहाँ पर इस समय मसजिद है। मसजिद के पृष्ठभाग मे जन्मस्थान का स्मारक निर्माण कर दिया गया है।

यही वात मुलतान के विषय मे हुई होगी। आदि अर्थात् मूल मंदिर जिस स्थान पर रहा होगा उसे 'मूलस्थान' कहा गया। तीर्थस्थान होने के कारण नाम प्रचलित हो गया। हिंदू काल मे मूलस्थान तथा मुसलिम काल में अपभ्रश होकर मुलतान नाम पड गया।

पुरासस्कृत साहित्य में मूलस्थान का उल्लेख मिलता है। रावी नदी के मध्य दो द्वीपो पर उसके वसने का वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध चोनी पर्यटक युवान च्वाग ने इस नगर को यात्रा की थी। उसने मूलस्थान का स्थान सिध के पूर्व ९० मील वताया है। जनरल कनिघमने उसे मुलतान माना है।

सौवीर सिंधु नदी के पूर्व तथा सिंधु और वितस्ता के मध्यवर्ती भाग को माना गया है। यह देश, प्रदेश किंवा क्षेत्र मुलतान तक विस्तृत था। सिंधु देश को युआन चाग ने सिंध नदी के पश्चिम का भूखड वताया है।

मार्कडेय, ब्रह्माड, वायु तथा मत्स्य पुराण के अनुसार सौवीर में मुलतान तथा झरावार क्षेत्र सम्मिलित थे। झरावार क्षेत्र वितस्ता (झेलम) तथा चद्रभागा (चेनाव) के सगम से ५० मील अधोभाग पर स्थित था। मुलतान सौवीर प्रदेश के उत्तर मे था।

स्कदपुराण ने भारत को ९ खड तथा ७१ विभेदो मे वाँटा है। किंतु नाम ७५ का दिया है। मूलस्थान क्षेत्र की क्रमसख्या तालिका मे ७ वी है। उसमें २५ हजार ग्राम थे। ग्रामो की सख्या स्वल्प होने के कारण अनुमान लगाया जा सकता है। मुलतान क्षेत्र वहुत वडा नही था।

वाराह क्षेत्र—सोमदेव भट्ट 'कथासरितसागर' में उल्लेख करता है कि भगवान् विष्णु ने स्वय वाराह क्षेत्र को पवित्र किया था।—'वाराह यत्र च क्षेत्र ये पूताश्चक्रपाणिना—।'(७ ५ ३७) क्षेमेन्द्र ने लोक प्रकाश मे वाराह क्षेत्र का उल्लेख करते लिखता है 'वाराह क्षेत्र—कोट विहार समीपे–'

मै यहाँ दो शब्द वाराह क्षेत्र माहात्म्य के विषय में लिखना चाहता हू। वारहमूला के 'खादनयार' गाँव के आगे मे वितस्ता की धारा में तेजी आ जाती है। इसके पश्चात् वितस्ता मे नाव चलना सभव नही होता। इस स्थान पर दोनो पार्श्व मे पर्वत है। पर्वतो के मध्य सवसे अधिक सकुचित यह स्थान है। यहाँ से वितस्ता वेगवती हो जाती है। स्पष्ट प्रतीत होता है। जल दौडता नोचे की ओर भागा जा रहा है। यहाँ यदि पानी रोक दिया जाय तो समस्त काश्मीर उपत्यका के पानी का स्तर ऊपर उठ जायेगा। समस्त काश्मीर मडल पूर्वकालीन वर्णित सतीसर तुल्य हो जायगा। केवल सारिका पर्वत तथा उसका स्थान जल मे द्वीप के समान प्रकट होगा।

यही पर पर्वत काटकर सकीर्ण जल मार्ग विस्तृत किया गया था। नदी की सतह की चट्टानो का खोदकर नदी का पेटा गहरा किया गया था। यही वितस्ता द्वारा पानी निकालकर काश्मीर उपत्यका सूखी भूमि वनाई गई थी। इस स्थान तथा उपत्यका का भूगोल समझ लेने पर प्राचीन कथा की सत्यता सिद्ध हो जाती है।

मैंने इस स्थान को देखा है। वितस्ता नदी मे इस समय भी एक चट्टान जल मे टकराती, तटीय

पर्वत के वाम पार्श्व में लगी खडी है। इससे कुछ आगे चलकर द्रंगवल नाला वितस्ता के दक्षिणी तट पर आकर मिलता है। नाले की दो शाखाएँ हो जाती है। मूलत एक ही स्थान पर उनका उद्गम है। यह नाला पहाड से शिलाखंड, रेत तथा पंकराशि लाकर नदी के गर्त को पाटता रहता है। नदी का गर्त किंवा पेटा साफ करने के लिए यहाँ पर बाढ विभाग की तरफ से इस समय कार्य हो रहा है। दो बुलडोजर काम कर रहे थे। नदी से पकराशि निकाल कर बाहर फेक रहे थे।

बारहमूला में दो श्मशान भूमियाँ है। मैने यहाँ की चार बार यात्राएँ की है। सन् १९६० मे आया था तो चिता पर शव जल रहे थे। एक सिखो का श्मशान है दूसरा हिंदुओ का है। यदि इस सकुचित स्थान पर शिलाखड, रेत तथा पकराशि भर जाय तो वितस्ता की जलधारा अनायास रुक जायेगी। काश्मीर उपत्यका का जल वेग से बाहर नही निकल पायगा। काश्मीर उपत्यका में जल रुककर काश्मीर उपत्यका का जलस्तर ऊपर उठा देगा। ऊलर तथा डल आदि सरो का जल उठकर उपत्यका को एक विशाल सर मे परिणत कर देगा। उसे आप्लावित करने लगेगा। एतदर्थ प्राचीन काल से इस स्थान पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। नदी का जल वेग से बाहर निकलता जाय। इसके लिए समय समय पर योजनाएँ बनाई गई हे। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

यहाँ पर एक पुराना 'द्रग' अर्थात् चोकी था। स्थान इतना सकुचित है कि काश्मार मंडल प्रवेश द्वार का कार्य करता है। सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्व रखता है। प्राचीन द्रग के कारण नाला का नाम द्रगबल पड गया है। इस स्थान पर हिन्दू काल मे द्वारपति अर्थात् उच्च सेनाधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। काश्मार के सैनिक इतिहास मे द्वारपति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान तथा योगदान रहा है। इसका पद सेनापति के समान समझा जाता था।

नारायण स्थान :

इस नाला से नदी के अधोभाग की ओर बढने पर नारायण मदिर मिलता है। इसे नीलमत मे नारायण स्थान कहा गया है। यह मदिर वितस्ता के दक्षिण तट पर स्थित है। बारहमूला से एक मील दूर होगा। पुरानी बारहमूला मुजफ्फराबाद रोड पर है। यह पहाडा के मूल में है। वर्तमान बारहमूला सडक के निर्माण के पूर्व यह सडक खूब चलती थी।

मंदिर सवा तेरह वर्ग फुट मे है। मदिर मे केवल एक द्वार तीन फुट चौडा है। मंदिर के समीप एक नाग अर्थात् जलस्रोत है। नारायण मदिर पूर्व काल मे एक सुन्दर निर्मल सरोवर के मध्य में स्थित था। इस समय मदिर के पष्ठभाग का सरोवर स्थान रेत तथा पक से पट गया है। मदिर पूर्णतया खडहर की हालत मे है। मदिर का एक भाग भूमि के अदर है। मदिर द्वार के सम्मुख कुछ सरोवर का भाग अपनी पूर्व स्थिति का स्मरण कराता है। करुण गाथा सुनाता है। यात्रियो से अपनी दशा पर सहानुभूति के लिए याचना करता है। जलस्रोत आँसुओ की तरह निकलता रहता है।

मदिर के पृष्ठ भाग मे एक कब्रिस्तान है। कुछ दिनो मे सरोवर का शेष भाग रेत और पक से पट जायगा। मदिर का अस्तित्व केवल पुस्तको मे शेष रहेगा। मदिर मे मूर्ति नही है। शायद कोई उठा ले गया है। किवा कब्रिस्तान के किसी कब्र मे लगी होगी। अथवा किसी के मकान की नीव मे पडी सो रही होगी। मंदिर मे लगे कुछ पत्थर ९$\frac{3}{4}$ फुट लम्बे तथा १३ इंच मोटे है। मदिर के भग्नावशेष यत्र-तत्र पडे दिखाई देते है।

मै अन्तिम बार यहाँ आया था सन् १९६४ में। उस समय यहाँ के बहुत वृक्ष कट चुके थे। स्थान की अभिरामता नष्ट हो रही थी। दो,तीन सहतूत के पेड़ सरोवर के तीर पर लगे थे। उन्हे भी काटा जा रहा था। किसी समय का सुरम्य देवस्थान कब्रि-

स्तान के सम्पर्क मे रहने के कारण सचमुच श्मशान हो गया है।

इस स्थान से वितस्ता की धारा मे वेग आ जाता है। एक मील और धारा के साथ जाने के पश्चात् वितस्ता नदी अपना शांत स्थिर रूप त्याग कर हर-हर करती गर्त मे प्रवेश करती है। चट्टानो और ढोकों से टकराती उरो तक चली जाती है। नीलमत पुराण में नारायण स्थान का उल्लेख आता है।

नारायणस्य च स्थान सपुण्य बदिराश्रमम्।
सुगन्धा शतकुम्भा च कालिकाश्रममेव च ॥
—87 १२८, १२९

देव नारायण स्थाने पश्चिमे तु वरप्रदम्।
गजेन्द्रमोक्षणं देव वराहस्य समीपगम् ॥
—1158 १३६९, १३७०

स्नात्वा नारायणस्थाने विष्णुलोके महीयते।
रामतीर्थे भवोत्से च फलमेतद् प्रकीर्तितम् ॥
—1312 · १५२६

स्नात्वा नारायणस्थाने वितस्ताम्भसि पार्थिव।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरो नास्त्यत्र सशय ॥
—1345 १५६०

नीलमत पुराण मे नारायण स्थल का दो स्थानो पर तीर्थरूप मे वर्णन किया गया है। मालूम होता है, दो नारायण स्थान थे। श्लोक सख्या १३४५, १५६० तथा १५९४ मे वाराह क्षेत्र का उल्लेख है। परतु श्लोक सख्या १३१२,१५२६ मे वाराह क्षेत्र का उल्लेख नही है।

महाभारत वन पर्व (८३ १८-१९) मे वराहावतार स्थान के विषय में उल्लेख मिलता है। कुरुक्षेत्र सीमा के अतर्गत यह एक तीर्थ है। भगवान् विष्णु ने वहाँ वाराह रूप से अवतार लिया था। इस तीर्थ मे स्नान करने पर स्नानार्थी को अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। वाराह क्षेत्र के विषय म यथा स्थानपर प्रकाश डाला गया है।

वाराह अवतार—वाराह भगवान् का अवतार मालूम होता है। इसी क्षेत्र मे हुआ था। कल्हण ने तरग २ के श्लोक १९२ मे वराह वार्त शब्द का प्रयोग किया है। यह स्थान वर्तमान वराहगाम के समीप होना चाहिए। वराह ग्राम वीरू परगना मे है। द्रग से तीन मील पूर्व होगा। आदिवराह का यहाँ अवतार लेना कहा जाता है। वारहमूला अर्थात् मूल वाराह किंवा वराह नाम से इसालिए सबोधित किया गया है।

बर्नियर का अभिभावक दानिशमद खाँ था जिसके साथ वह काश्मीर गया था। वह एक रोचक कहानी उपस्थित करता है—'दानिशमद खाँ ने मुझे वारहमूला जाकर एक अलौकिक घटना देखने के लिए कहा। तात्पर्य यह था कि मै इस दैवी चमत्कार को देखकर अपना धर्म परिवर्तन कर दूँ और मुसलमान हो जाऊँ। यहाँ पर एक मसजिद है। एक दरवेश की कब्र है। यह कब्र एक मसजिद में है। यद्यपि दरवेश मर चुके है। अलौकिक ढग से बीमार तथा पशुओ को अच्छा करते है। चाहे मै इस चमत्कार पर विश्वास न करूँ परतु यहाँ एक दूसरी चीज और है। उस दरवेश के कारण यह चमत्कार होता है। यहाँ एक गोल पत्थर है। उसे मजबूत से मजबूत आदमी नही उठा सकता। यदि ११ आदमी दरवेश की प्रार्थना कर अपनी एक-एक उँगली इसमे लगाकर उठाएँ तो वह सूखे तिनके की तरह हलका उठ जाता है।

'मुझे वारहमूला अच्छा लगा। दरवेश की जियारत और कब्र कीमती सामान मे सजी थी। उसे घेर कर बहुत से लोग बैठे थे। वे कहते थे कि वे बीमार थे। अच्छे होने के लिए आये थे। मसजिद की बगल में एक बावर्ची खाना था। वहाँ डेग चढा था। उसमें चावल तथा गोस्त पक रहा था। मै समझ गया। इस डेग के चुम्बकीय भोज पदार्थ के आकर्षण के कारण गरीब तथा बीमार एकत्र हो गये थे। मसजिद को दूसरी तरफ मुल्ला का मकान था। बाग था। यहाँ से आमदनी करता था। उसकी तारीफ

करने मे लोग होड लगाए थे। जब तक मैं वहाँ था, एक भी बीमार आदमी अच्छा होते नही देखा।

'वह पत्थर जो मुझे मुसलमान धर्म मे दीक्षित करने के लिए वहाँ पडा था, उसे ११ मुल्ला घेर कर खडे थे। वे इस प्रकार उसे घेर कर खडे थे कि मैं कठिनता से अन्दर देख सकता था। मैंने इस धोखे की बात को किसी प्रकार देख लिया। मुल्ला लोग एक उँगली की जगह अपना अँगूठा तथा उँगलियाँ पत्थर से लगाए थे। वे उसे उठाये। वहाँ खडे लोग चिल्लाने लगे—करामात-करामात। मैंने उन्हे एक रुपया देकर कहा। क्या ग्यारह उठाने वालो मे वे मुझे भी एक शामिल कर लेंगे। उन्होने अनिच्छा प्रकट की। परन्तु मैंने श्रद्धा भक्ति दिखाते हुए एक रुपया और दिया तो एक मुल्ला हट गया। मैंने उसमे अपनी केवल एक उँगली लगाई थी। अतएव पत्थर उठाते समय मेरी तरफ झुक जाता था। मुल्ला मेरी ओर बुरी निगाह से देखने लगे। अत मे मैंने इसमे बुद्धिमानी समझी कि उँगली तथा अँगूठी दोनो लगाया जाय। पत्थर मुश्किल से उठा। मैं भी करामात करामात कहने लगा। मै एक रुपया और फेककर चुपचाप वहाँ से चल दिया। मैंने कुछ जल-पान नही किया था। दरवेश को सर्वदा के लिए नमस्कार किया। मैंने बारहमूला का वह स्थान देखा। जहाँ तग रास्ते से पानी बहता चला जा रहा था (पृष्ठ ५५-२१२-४१६)।" बर्नियर ने यहाँ किसी मन्दिर आदि का वर्णन नही किया है। संभव है। वेरी नाग की तरह औरगजेब के समय मन्दिर नष्ट कर दिए गये हो।

संदर्भ : वाराह वैदिक देवता तथा पौराणिक अवतार है। उनका उल्लेख ऋ० १:६१ ७, १ ८८ ५, १ २१ ११, १ १४४ ५, १० ८६ ४' ८ ७७.१०, ९.९७ ७, १९०.२८.४, १० ८६.४, १०.९९.६, काठक सहिता ८:२.२५ २, मैत्रायणी सहिता ३ १४.१९, तैत्तिरीय संहिता ६.२ ४ १, ७ २:५ १, तैत्तिरीय आरण्यक १ ९.४; शतपथ ब्राह्मण ५ ४ ३, तैत्तिरीय ब्राह्मण १:१:३, १:१:३६; १:७.९:४, मे मिलता है।

पुराण मत्स्य : ४७:४७ भागवत : १:३.२७, ३.१३, लिग १.९४, वायु २:३५, हरिवंश १ ४१, पद्म उ०. ६९,२२७, वराह १३७ १४० मत्स्य १७३, तथा महाभारत : सभापर्व २८ २९, वनपर्व ८३: ८-१९ में उल्लेख मिलता है।

बारहमूला—वारिमूल : वारिमूल शब्द का अपभ्रश बारहमूला हो सकता है। वारिमूल चाक्षुष मन्वतर काल के एक देवता है। वार् किवा वारि शब्द का अर्थ जल होता है। मूल शब्द का अर्थ उदगम् स्थान अर्थात् जड होता है। जहाँ से कोई चीज उत्पन्न होती है। काश्मीर जिस समय सतीसर के रूप मे जलमय रहा होगा, उस समय इसी स्थान से जल स्रोत के रूप मे जल निकाला गया होगा। उसका उद्गम अर्थात् मूल यही स्थान था। देवता तथा अलकार दोनो दृष्टियो से इसका नाम आज से सहस्रो वर्ष पूर्व 'वारिमूल' दिया गया होगा। कालातर में वारि शब्द वार हो गया। उसमें मूल शब्द जोड देने में उसका पूर्ण नाम वारमूल हो गया। वराह अवतार का नाम कालातर में वहाँ वारिमूल के साथ जोड दिया गया। वारिमूल बारह-मूला हो गया होगा। इसी को उलटने पर मूलवाराह नाम पकड लिया होगा। यह मेरा अनुमान मात्र है। इस पर और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

बारहमूला शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग शुक ने चौथी राजतरगिणी में किया है। उस समय काश्मीर का बादशाह फतह शाह (सन् १४८६-१५१४ई०) था। बारहमूला मे मार्गेश इबराहीम अपने साथी मसूद शाह के साथ सेना लेकर आया था। (दत्त ३४५)

बारहमूला शब्द का दूसरी बार उल्लेख श्री शुक ने चक्रेश के बारहमूला से श्रीनगर जाने के प्रसंग मे किया है। (दत्त ३६२) इसके पूर्व सब स्थानो पर बाराह क्षेत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

अबू रिहान ने उष्कर को बारहमूला का नगर कहा है जो नदी के दोनो तटो पर बना आबाद था। (फ्रेगमेन्टस आफ अरबस पृष्ठ ११६)

बारहमूला पहले वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर आवाद था। इस समय दोनो तटो पर आवाद है। उष्कर (हुष्कर) का स्थान वितस्ता के वाम तट पर है। बारहमूला के वर्तमान नगर विकास की सीमा में उष्कर आ गया है। प्राचीन काल से ही बारहमूला नगर तथा हुष्कपुर को जोडने के लिए वितस्ता पर पुल बँधा है। इस समय वह पुल और विशाल तथा आधुनिक शैली का बना दिया गया है। वह पुल हिन्दुओं के तीर्थ वाराह क्षेत्र तथा बौद्धो के तीर्थ हुष्कपुर दोनो को मिलाता था। यात्री एक साथ दोनो तीर्थों की यात्रा कर सकते थे।

काश्मीर मे शिव, विष्णु, तथा बुद्ध तीनो की पूजा एक साथ चलती थी। इससे प्रकट होता है। बारहमूला के दक्षिण तट पर हिन्दुओ को विशेष और उत्तर तट पर बौद्धो की आवादी थो। बाराहमूला का इसलिए और महत्त्व बढ गया था कि वह बौद्ध तथा हिन्दू दोनो का समान रूप से तीर्थ स्थान था। (जोनराज ३५९-३६७)

वाराह क्षेत्र माहात्म्य मे वाराह क्षेत्र तथा उससे सम्बन्धित अनेक तीर्थस्थानो का उल्लेख मिलता है। कल्हण ने वाराह मन्दिर का कई बार वर्णन किया है। जनश्रुति के अनुसार बारहमूला नगर के पश्चिम, वितस्ता तटपर, कोटि तीर्थ के समीप वाराह का मन्दिर था। कोटि तीर्थ में प्राचीन काल की मूर्तियाँ तथा शिव लिंग मिला है। वह सब खण्डित मूर्तियाँ वाराह मन्दिर की रही होंगी।

वाराह का मन्दिर काश्मीर के सुलतान सिकन्दर बुत शिकन (सन् १३८९-१४११ ई०) ने तुडवाया था। उस समय इस मन्दिर के साथ ही साथ काश्मीर के मार्तण्ड, विजयेश, ईशान, चक्रभृत (चक्रधर) त्रिपुरेश्वर, शेष, सुरेश्वरी, के प्रसिद्ध मन्दिर भी तोडे गये थे। (जोनराज श्लोक ६००, दत्त पृष्ठ ६०)

श्री जोनराज (सन् १४४६ ई०) वाराह क्षेत्र मे बडशाह जैनुल आबदीन द्वारा दान सत्र खोलने का उल्लेख करता है। (दत्त ८८) बादशाह ने वाराह क्षेत्र में इतने चावल का दान किया था कि उसके भार से अनन्त नाग का मस्तक झुक गया था इन्द्र का मस्तक भी इस दान को देखकर लज्जा से नत हो गया था। (दत्त १३९)

श्री शुक अन्तिम और चौथी राज-तरंगिणी मे एक अद्‌भुत घटना का वर्णन करता है—

'आश्विन मास लौकिक सवत् ४६३० (सन् १५५२ ई०) सुलतान इस्माइल शाह के समय मे भयकर भूकम्प आया था। लोग इतने भयभीत हो गये थे कि पुत्र, स्त्री, सज्जनो, दयालुओ तथा किसी के लिए सहानुभूति नही रह गयी थी। तथापि वाराह क्षेत्र के नागरिको मे किसी प्रकार की चिन्ता व्याप्त नही थी। वहाँ पर लोगो ने भूकम्प का अनुभव किया ही नही।' (दत्त ३८१) राज-तरगिणी मे अन्तिम बार बारहमूला का उल्लेख सम्राट् अकबर की सेना के अभियान के समय आता है। काश्मीर के सुलतान यूसुफ शाह ने मन्दिर मे शरण ली थी।

वितस्ता. गगा नदी का वर्णन वेदो के केवल दो बार आया है। वितस्ता का नाम ऋग्वेद में एक बार आया है। ऋगवेद के नदी सूक्त के प्रसग (१०,७५,५) तथा निरुक्त (९,२६,) में वितस्ता का उल्लेख किया गया है।

वितस्ता नदी का ज्ञान वैदिक पुरुषो को था। गगा को पूर्व दिशावर्ती नदियो का नाम वेद में नही मिलता है। उनका ज्ञान वैदिक रचनाकारो को नही था। उनके वितस्ता ज्ञान तथा वर्णन से प्रकट होता है। वितस्ता का महत्त्व वैदिक युग मे था।

भागवत पुराण (५ १९ १८) में वितस्ता का उल्लेख मिलता है। पाणिनि की काशिका वृत्ति

(१:४ ३१) में वितस्ता का वर्णन किया गया है। अलकसुन्दर अर्थात् सिकन्दर के इतिहासकारो ने इसका नाम हदसपेश और प्तोलेमो ने इसका बिदसपेश नाम दिया है। काश्मीर मे इसको विरग, अदपल, सदरन तथा झेलम कहते हैं।

पाली साहित्य मे वितस्ता को वितमसा की सज्ञा दी गयी है। उसकी गणना उत्तरापथ की नदियो मे की गयी है। (धम्मपदट्ठकथा भाग २, पृष्ठ ११६, मिलिद प्रश्न हि०, पृष्ठ १४४, अवदान, पृष्ठ २७७, तथा २९१)

महाभारत कर्ण पर्व (अ० ४४) में वितस्ता का उल्लेख मिलता हैं।

चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुवष्ठा वहिर्गिरेः।
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत्॥

सभा पर्व (९ १९) मे उल्लेख है कि वितस्ता वरुण की सभा मे उपस्थित रहती है। उनकी उपासना करती है। वन पर्व (८२ ८९-९१) के अनुसार वितस्ता मे स्नान करने से वाजपेय यज्ञ की फलप्राप्ति होती है। कश्मीर मे नागराज तक्षक का प्रसिद्ध भवन है।

उद्योग पर्व मे वर्णन मिलता है। इसकी धारा मे ब्राह्मणो के ४०० श्यामकर्ण अश्व बह गये थे। भीष्म पर्व (९. १६) मे उल्लेख मिलता है कि इसका जल भारतीय पान करते हैं। अर्थात् वह भारत मे बहती है। अनुशासन पर्व (२५ ७८) तथा (१४६ १८) के अनुसार सात दिन इसमे स्नान करनेवाला मुनितुल्य निर्मल हो जाता है। पार्वती ने वितस्ता के सदर्भ मे शंकर से स्त्री धर्म की चर्चा की थी। इसी पर्व में (८ ६) एक वितस्त्य ऋषि का वर्णन है। वह सावैनस ऋषि के पुत्र थे।

सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर मे वितस्ता को जाह्नवी के समकक्ष माना है :—"धत्ते नाम वितस्तेति वहन्ति यत्र जाह्नवी" ७:५:३७

वनिहाल गिरिपथ से कश्मीर उपत्यका का सुन्दर मनोहारी, अभिराम दृश्य मिलता है। वहाँ से धुँधला वेरी नाग का अचल दृष्टिगत होता है। वनिहाल से काश्मीर उपत्यका मे उतरते ही एक पक्का अलकतरा का सुन्दर राजपथ श्रीनगर के मुख्य मार्ग को छोडता है। पूर्व दिशा मे वेरीनाग की तरफ बढता है। तिमुहानी से उतरने पर वीर नाग ग्राम पडता है। गाँव का नाम यहाँ के निर्झर वार या वेरी के नाम पर पडा। 'वीर नाग' शब्द 'विरह नाग' का अपभ्रश है। नाग का अर्थ जलस्रोत, निर्झर, झरना, चश्मा तथा सोता है। विरह का अर्थ वियोग, बिछुडना अथवा छोडकर चले जाना है। विरह नाग शब्द का अपभ्रश वीरनाग या वेरीनाग हो गया है।

वितस्ता देवी इस स्थान मे जन्म लेना चाहती थी। वहाँ शंकर विराजमान थे। उन्हें वहाँ देखकर देवी ने स्रोतस्विनी का रूप वितस्तारा (विठवतुर) ग्राम मे लिया। यह ग्राम वेरीनाग से एक मील उत्तर-पश्चिम स्थित है। इस स्थान को वितस्ता वार्तिक नाम की भी सज्ञा दी गई है। कल्हण के समय यह स्थान वितस्तारा नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पर अशोक ने स्तूपो का निर्माण कराया था।

वर्तमान कुंड अठपहला है। प्रत्येक पहल का विस्तार ४७ फुट है। मै यहाँ चौथी वार १९६४ मे आया था। प्रथम यात्रा मैने सन् १९५६ ई० मे की थी। आज तथा उस समय के वातावरण तथा स्थिति मे बहुत अतर हो गया है। सन् १९५७ ई० मे तोरणद्वार, सन् १९६० ई० में डाक बगला तथा अब एक प्रकार से समस्त स्थान का जीर्णोद्धार कर दिया गया है। भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा जीर्णोद्धार का कार्य उसके मूल रूप को अक्षुण्ण रखते हुए, किया गया है।

संवत् १९९९ विक्रमी में कुंड के ऊपर वाम पार्श्व में खननकार्य किया गया था। यह स्थान वर्तमान प्रवेश द्वार के दक्षिण पार्श्व मे ऊँचाई पर है। यहाँ प्राचीन मूर्तियाँ एक के ऊपर एक रखी और गड़ी हुई मिली थी। मूर्तियाँ पत्थर की है। विष्णु भगवान्

आद्रि की है। इस समय श्रीनगर के राज्य सग्रहालय मे रखी है। मैं इन्हे कितनी ही वार ध्यानपूर्वक देख चुका हूँ। उन्हें देखकर न जाने क्यो मुझे रुलाई आने लगी। उनसे जैसे अपना निकटतम सवध मालूम होता था। सोचता था। उनका क्या अपराध था। वे खडित कर गाड दी गई। केवल इसलिए कि उनकी कभी हिंदू पूजा करते थे। वे मूर्तिपूजक हिंदू अव मुसलमान हो गये है। मूर्तियो के शत्रु बन गये है। जिनकी कभी पूजा करते थे। उन्हे खडित करने लगे। धर्म की यह विचित्र विडवना देखकर, वे किस प्रकार कभी राजकीय सम्मान पाती रही होगी, स्मरणकर, मन अनायास भर आया। यद्यपि मूर्ति पूजा का मै कायल नही हूँ तथापि मनुष्यो की गति पर, उनकी दुर्वलता पर, मुझे ग्लानि अवश्य उत्पन्न हुई।

अठपहले कुड के अठपहल अर्थात् जलतट के पश्चात् समतल चवूतरा काफी चौडा है। उसके पश्चात् सन् १६२० ई० में जहाँगीर द्वारा छोटे-छोटे कोठरीनुमा वरामदे निर्माण कराये गये थे। चवूतरे से वरामदे की ऊँचाई काफी है। मध्यवर्ती महरावो पर हिंदू शैलो की पापाण की नक्काशीदार घुडियाँ लगी है। सन् १६२७ ई० मे शाहजहाँ ने यहाँ वाग लगवाया था। नहरादि का निर्माण कराया था। इस वाग में चिनार के हरे-भरे काफी ऊँचे वृक्ष लगे है। अनेक तरुवर अपनी अपनी हरियाली तथा छाया से स्थान की अभिरामता वढाते है। कुड से वाहर वाग मे नहर सोधी निकलती है।

नहर के दक्षिण पार्श्व में कुछ पुराना शिवालय है। कुड स्थल मे प्रवेश करते ही वाम पार्श्व मे एक मिहरावदार कोठरी मे देवो तथा देवताओ की मूर्तियाँ रखी गयी है। यहाँ एक पुजारी रहता है। देवी को देवी वितस्ता कहा जाता है।

मन्दिर के दक्षिण पार्श्व में कुछ दूर आगे चलने पर भूमि से पानी वेगपूर्वक निकलता दिखाई पडता है। यह जलस्रोत मुख्य नहरवाले जलस्रोत में जाकर मिल जाता है।

नीलनाग अर्थात् वेरीनाग कुड का जल सि है। उससे जल निकलने का उस समय तक अनु नही होता है, जब तक कि कुड के वाहर नहर वेग से जल गिरता न देख लिया जाय। कुड के की स्थिरता का मुख्य कारण कुड की गहराई है।

कुड को गहराई के तीन खड है। कुड चौ फुट गहरा है। कुड को पहली सीढी का चवूतरा घेरा १८ फुट गहराई के वाद मिलता है। दूसरी गहराई पहले खड के पश्चात् अट्ठारह वाद मिलती है। वहाँ भी चारो ओर चवूतरा है। अट्ठारह फुट गहरा और जाने के पश्चात् कु का तीसरा खड अर्थात् धरातल मिलता है। से पानी कई स्रोतो द्वारा भूमि से निकलता है कुड मे ५४ फुट ऊँचाई का जल भार होने के का जलस्रोत का उफान तथा वेग दिखाई नही पडता।

जल की गहराई के कारण जल का रग गह नीला दिखाई देता है। जल जहाँ जितना गह होगा वहाँ उसमे उतना ही नीलापन अधिक होग कुड की गहराई का कारण क्या है। विचारणी है। मैंने अभी तक कही भी इतने गहरे कुण्ड से ज निकलते नही देखा है। सभी निर्झर तथा स्रोत भू की सतह से निकलते दिखाई देते है। जहाँ जल व निकलता है, वहाँ जल एकत्र करने के लिये त उपयोग निमित्त कुड बनाकर संग्रह कर लि जाता है। चश्मा शाही तथा अन्य पर्वतीय स्था के निर्झरो, स्रोतो के समीप इस प्रकार के कुड रचना नही की जा सकी है। काश्मीर मे एक दूस स्थान है। जहाँ इसी प्रकार के कुड बने मैंने दे है। उसका यथा स्थान वर्णन करूँगा।

पूर्व काल मे किसी हिन्दू राजा ने इस कु का निर्माण कराया था। जहाँगीर के समय भग्न वस्था में था। उसका धार्मिक महत्त्व लोगो मुसलमान हो जाने के कारण लुप्त हो गया था।

उग्रद्वैतस्तनिष्यन्ददण्डकुण्डाऽऽतपत्रिणा ।
यत् सर्वनागाऽधीशेन नीलेन परिपाल्यते ॥ २८ ॥

२८ पवित्र वितस्ता[1] मृणाल दंड तथा विशालकुंड[2] कमल पत्र तुल्य था। उसके[3] कमल पत्र छत्र तथा मृणाल दंड धारी नागाधीश नील द्वारा वह मडल परिपालित हुआ।

अवुल फजल ने आइने अकवरी मे इसका वर्णन किया है। उस समय इसकी गणना पवित्र स्थानो मे की जाती थी। कु ड को पूर्व दिशामे स्थित वह पत्थर के बने हिंदू मन्दिरो का होना लिखता है। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा मे नवीन निर्माण करने के पूर्व कु ड का चौकोर तथा उसके ऊपर आश्रमो का होना लिखा है।

सन् १३३९ ई० के पश्चात् काश्मीर मे मुसलिम शासन स्थापित हुआ। मुगल सम्राट् अकवर के पूर्व काश्मीर मे गैर काश्मोरी मुसलिमो का शासन नही हुआ था। काश्मीरी मुसलिम शासन मे काश्मीर लगभग ३०० वर्षो तक रह चुका था। काश्मीरी जनता इसलाम धर्म ग्रहण कर चुकी थी। हिंदुओ की आवादी नगण्य थी। सभी तीर्थस्थान एव मदिर नष्ट भ्रष्ट हो चुके थे। मदिरो के स्थान पर जियारतें तथा मसजिदें वन चुकी थी। नील कु ड इसका अपवाद नही था।

सवत् १९९९ विक्रमीयमे खनन द्वारा यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ इस वात को प्रमाण हैं कि यह स्थान महत्त्वपूर्ण तीर्थ था। कुंड अत्यत प्राचीन काल से वर्तमान था। जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने उसका मुगल शैली पर जीर्णोद्धार किया था। इस स्थान पर हिंदू शैली का किस प्रकार का मदिर अथवा निर्माण था अनुमान लगाना कठिन है। मूर्तियाँ यहाँ से प्राप्त जो हुई है उस पर गाधार शैली की अपेक्षा भारतीय मूर्तिकला शैली का अधिक प्रभाव है। वितस्ता नदी को वरनियर फ्रान्स की सीन नदी से और काश्मीर के पर्वतो की तुलना अलाइम्पस से करता है।

८

पाठभेद :

'निष्पद' शब्द का पाठभेद 'निष्यन्द' तथा 'नि स्पन्द' मिलता है। इसी प्रकार 'धीसेन' का पाठभेद 'देशेन' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२८ (१) वितस्ता . वर्तमान झेलम नदी। अनुशासन पर्व महाभारत के २५वें अध्याय मे पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को अगिरा ऋषि के वचनो का उल्लेख करते हुए कहा कि चद्रभागा और वितस्ता मे स्नान करने से लोग पापमुक्त हो जाते हैं। वितस्ता का दूसरा नाम पार्वती है। भादो शुक्ल त्रयोदशी को वितस्ता जन्मोत्सव मनाया जाता है।

(२) कुंड : वीर नाग, वेरी नाग, नील नाग, किंवा नील कुड से यहाँ तात्पर्य है। नील कु ड का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है।

नीलकुण्डं वितस्ताख्यं शूलघातं तथैव च ।
तीर्थं त्रिनामकं दृष्ट्वा स्वर्गलोके महीयते ॥
1288 : १५००

तथा त्रिनयनं प्राप्तं फले वाजपेयफलं लभेत् ।
ब्राह्मणकुण्डिकायां च नीलकुण्डे च पार्थिव ॥
1289 : १२८९

(३) कमल पत्र और मृणाल दण्ड : कल्हण की यह उपमा उपत्यका का प्राकृतिक सुरम्य दृश्य उपस्थित करती है। शकराचार्य शिखर से उपत्यका देखी जाय तो वह भूमि पर रखे मृणाल-युक्त पद्म पत्र तुल्य सुशोभित दिखाई देगी। कल्हण ने कु ड शब्द का प्रयोग किया है। डल लेक को कु ड मान लिया जाय तो उपमा ठीक वैठती है। छत्र संखपाल नाग

का चिह्न है। [illegible] पद्मनाग का चिह्न है। कल्हण का लिखा [illegible] देकर कश्मीर मे नागो के महत्त्व की ओर संकेत करता है।

राजधानी अहिच्छत्र नगर के सबध मे शका की जाती है। विदेशी विद्वानो ने नाना प्रकार की कल्पना इस सबध मे की है। मेरा विचार है—'अहि' शब्द नाग के लिए प्रयुक्त किया गया है। [illegible] नाग का छत्र चिह्न है। अहिच्छत्र नाग राजा की राजधानी था। 'छत्र' का अर्थ छाता है। परतु यह प्रतीक भी है। 'अहिच्छत्र' का शाब्दिक अर्थ नाग का छत्र होता है। यहाँ एक शिला है। उसे आदिकोट कहते है। यह पाचाल देश का एक नगर था।

नीलमत के अनुसार द्वीपो का निम्नाकित विभाजन किया गया है।

> इन्द्रद्युम्न कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान।
> नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वो वारुणस्तथा ॥
> 591 ७१२

> अयं च मानवो द्वीपस्तथा सागरसम्भृत ।
> चत्वार सागरा पूज्यास्तथा पातालसप्तकम् ॥
> –512 ७१३

नीलमत पुराण के अनुसार ९ द्वीप, ४ सागर तथा ७ पाताल है। द्वीप—इन्द्रद्युम्न कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गधर्व, वरुण तथा मानव है। सात पाताल—रुक्म भौम, शिला भौम, नील मृत्तिका, रक्तभौम, पीतभौम, श्वेत तथा कृष्णक्षिति है।

८ नीलनाग [illegible] है। कास्मीर की [illegible] है। कास्मीर के नागो, अर्थात् [illegible], [illegible] एव निर्झरो के इष्टदेव नाग है। [illegible] रूप मे [illegible] है। नीलमत पुराण [illegible] का उल्लेख करता है।

> [illegible] ।
> [illegible] ।
> [illegible] ॥
> 625 [illegible]

नील नाग पौराणिक गाथाओ के अनुसार प्रजापति कश्यप का पुत्र है। उसका निवास स्थान समीपस्थ वेरी नाग ग्राम किंवा नील कुड है। यह वितस्ता का मूल स्रोत है। यह कुड बनिहाल पास के पर्वत मूलमे है। शाहाबाद परगना मे है। वितस्ता का उद्गम है। पर्यटको का पर्यटन, यात्रियो की यात्रा बिना इस क्षेत्र के दर्शन के अधूरी रहेगी।

जहाँगीर ने कुड को अठपहला पक्का निर्माण कराया था। कुड का जल स्थिर है। वेग से उद्यान मे नहर के द्वारा निकलता है। जल का रग नीला प्रतीत होता है। किंतु नहर मे जहाँ गिरता है वहाँ उज्ज्वल तथा निर्मल दिखाई देता है। यह जल की गभीरता तथा स्थान की हरियाली का प्रभाव है। कुड पर बनी इमारत की छत पर देखने पर प्रतीत होता है, जैसे अष्टकोणीय नीलम का एक बडा टुकडा भूमि पर पडा है।

काश्मीर उपत्यका से सतीसर का जल बाहर निकालने के लिए नीलमत पुराण के अनुसार भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम हल का प्रयोग किया था। भगवान् शिव के त्रिशूल के आघात से भगवती पार्वती सरिता वितस्ता के रूप मे प्रकट हुई थी। नीलमत मे वितस्ता के उद्भव का सुदर वर्णन मिलता है

> रसातलेनातिरूप करिष्यामि जगद्गुरो।
> कुरु शूलप्रहार त्व नीलवेश्मसमीपत ॥
> 248 ३३६,३३७

> अत्रासीत्तलागत्सुत्र प्रागहं शैलदारणे।
> तेन शूलप्रहारेण निष्क्रम्याहं रसातलम् ॥
> 249 ३३६,३३८

> शूलमार्गेण यास्यामि यावत्सिन्धुर्महानद ।
> तत्र चक्रे हरो देवस्तथा चक्रे सती शुभा ॥
> 250 ३३८,३३९

> तस्या नाम वितस्तेति कृतवान् शकर स्वयम्।
> वितस्तिमात्र गर्त तु शूलेन कृतवान् हर ।
> 251 ३३०,३४०

रसातलगता येन निष्क्रान्ता सा सरिद्वरा।
तस्माद्वितस्तेति कृतं नामैतस्याः स्वयंभुवा॥
252 : ३४०,३४१

हरिचरितामृत अध्याय १२ मे वितस्ता अवतरण का वर्णन किया गया है। इस तीर्थ का तीन नाम नील कुंड, वितस्ता तथा शूलघाट प्रसिद्ध है। वितस्ता माहात्म्य इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। नीलमत पुराण इसके माहात्म्य के विषय मे उल्लेख करता है।

अक्षयं सर्वमुद्दिष्टं दानं श्राद्धं तथा तप.।
वितस्तोन्मज्जने स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्॥
1290 : १५०१,५१०२

ततस्तु सर्वदेशेषु जनः शुश्राव पार्थिव।
सती देवी नदी भूत्वा काश्मीराया विनिर्गता॥
253 : ३४२,३४३,

महापातकसंयुक्तस्तस्यां स्नातुं तदा जनः।
आजगाम भयात्तेषां शूलखातनियोजनात्॥
254 : ३४४,३४५

मैं जिस समय प्रथम बार यहाँ आया तो इसकी अनुपम भव्य सुदरता देखकर स्तब्ध हो गया था। निर्देशक जहाँगीर तथा शाहजहाँ का नाम लेकर उनके निर्माण की प्रशसा कर रहा था। मेरी धारणा हो रही थी। कुंड का पुरा काल में अवश्य अस्तित्व रहा होगा। जीर्ण हो जाने पर जहाँगीर ने उसे मुगल स्थापत्य का जामा पहना दिया है। नोलमत के कुंड शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है। इसमें पक्का घाट या पक्का पहल बना था। हिंदुओ का तीर्थ था। हिंदू मुसलमान हो गये। उनके लिए स्थान महत्त्वहीन हो गया। बिना मरम्मत गिरता पडता खँडहर बन गया। जहाँगीर सहिष्णु था। कट्टर मुसलिम धर्मानुयायी नही था। उसने यहाँ की शोभा देख हिंदुओ का तीर्थ होने पर भी जीर्णोद्धार कराया।

आइने अकबरी मे अबुलफजल, जिसने जहाँगीर के वर्तमान इमारत बनाने के पूर्व वीर नाग को देखा था, वर्णन करता है, वीर सर बेहत अर्थात् वितस्ता का उद्गम स्थान है। इसके कुड का क्षेत्रफल एक जरीब होगा। बहुत गहरा है। इससे जल जोर से आवाज के साथ निकलता है। इसका नाम वीरसर है। इसमे पत्थर के बार्डर लगे है। इसके पूर्व दिशा मे मन्दिर है।

जिस समय इस कुड पर मैं आया था, उस समय कश्मीर के इतिहास लिखने की कल्पना मैंने नही की थी। इस ओर अभिरुचि नही थी। नील कुड के प्रथम दर्शन से प्रथम प्रतिक्रिया जो हुई उसका वर्णन किया है। कश्मीर के इतिहास क सबन्ध मे गवेषणा करना आरम्भ किया तो मेरी धारणा को बल मिलता गया। इसी स्थान के विषय मे नही अन्य स्थानो को देखकर प्रथम प्रतिक्रियाएँ जो होती रही वे प्राय ठीक उतरी है।

बर्नियर यहाँ आया था। जहाँगीर ने यहाँ का बाग सन् १६१२-१६१९ ई० के बीच मे बनवाया था। वह लिखता है :—

'कहा जाता है कि नूर महल अर्थात् नूरजहाँ के इच्छानुसार यह बाग बनवाया था। यहाँ क कुड की पाली गई मछलियाँ इतनी सीधी है। पुकारने पर अथवा रोटी का टुकडा कुड मे छोड देने पर पास आ जाती है।'

औरगजेब के समय जैसा बर्नियर के लेख से प्रकट होता है वहाँ किसी प्रकार का मन्दिर अथवा उसका ध्वसावशेष नही रह गया था। किंतु जहाँगीर अपने पिता के साथ कश्मीर आया था। उस समय उसने कश्मीर के दर्शनीय स्थानो को देखा था। द्वितीय जलूसी वर्ष अर्थात् सन् १६०७ ई० में यहाँ जहाँगीर आया था। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है—

'झेलम नदी का स्रोत काश्मीर मे वीर नाग नामक एक चश्मा है। हिंदीभाषा मे नाग सर्प को कहते है। ज्ञात होता है उस स्थान मे पहले सर्प रहा

होगा। अपने पिता के जीवन काल में हम दो बार उस चश्मे तक गये थे। काश्मीर नगर से बीस कोस पर है। यह चश्मा चौकोर है पर २० गज लम्बा और २२ गज चौड़ा है। इसके आस पास तपस्वियों के बहुत से आश्रम अवशेष हैं। पत्थरों की अनेक गुफाएँ हैं। इसका जल अत्यन्त निर्मल है। यद्यपि इसकी गहराई का हम अनुमान नहीं कर सके पर यदि एक पोस्ते का दाना उसमें छोड़ा जाय तो वह जब तक तह तक नहीं पहुँच जाता तब तक दिखलाई पड़ता है। इसमें मछलियाँ बहुत हैं। हमने सुना है कि इसकी गहराई अगाध है। पत्थर बाँध कर डोरी डालने की आज्ञा दी। डोरी के नापने पर केवल डेढ़ पुरसा निकला। अपनी राजगद्दी के अनंतर हमने आज्ञा दी कि उस चश्मे के किनारों को पत्थर से बाँध दिया जाय। इसके चारों ओर उद्यान लगाकर नहर निकालें। साथ ही उसके आस पास प्रासाद तथा गृह निर्माण करें उसे ऐसा स्थान बना दें जैसा यात्रीगण संसार भर घूमने पर भी उसके जैसा दूसरा न बतला सकें।'' पृष्ठ १६९।

'गहराई चौदह गज थी। इसका जल पहाड़ की हरियाई तथा पौधों की छाया से हरित रंग का ज्ञात होता था। इसमें मछलियाँ बहुत थीं। इसके चारों ओर दालान बुर्जियों सहित बने थे। इसके आगे उद्यान निर्मित किया गया था। तालाब के किनारे से उद्यान के फाटक तक एक नहर चार गज चौड़ी, एक सौ अस्सी गज लम्बी तथा दो गज गहरी बनाई गई। इस तालाब के चारों ओर प्रस्तर निर्मित मार्ग बना था। इस नहर का जल इतना साफ था कि चार गज की गहराई होते भी अगर एक दाना गिरे तो दिखाई पड़े। पानी के नीचे उगी हुई घास आदि से वह ऐसा सुशोभित था कि क्या लिखा जाय। यहाँ अनेक प्रकार की सुगन्धित जड़ी बूटियाँ तथा पौधे खूब लगे हुए थे। और इसमें एक बुत्ता ऐसा दिखलाई पड़ रहा था जो ठीक मोर की पूँछ की तरह रंजित था। जल की धारा से हिलता था। फूल भी स्थान स्थान पर खिले हुए थे। सक्षेप में सारे कश्मीर में ऐसा रमणीक तथा चित्ताकर्षक स्थान दूसरा नहीं था। हमें ऐसा प्रतीत होता है। कश्मीर के ऊपरी भाग का दृश्य निम्न भाग की तुलना में बढ़कर है। हर एक को इस देश में कुछ दिन ठहरकर तथा चारों ओर भ्रमण कर यहाँ का दृश्य देखकर खूब आनंद लेना चाहिए।

'हमने आज्ञा दी कि नहर के दोनों तरफ चिनार के वृक्ष लगाए जायँ।'—पृष्ठ ६८०, ६८२, ६८३।

जहाँगीर पन्द्रहवें जलूसी वर्ष में पुन. कश्मीर गया।

उसने वीर नाग के विषय में दिनांक सोमवार १२ को लिखा है—

'इसका (वितस्ता) स्रोत वीर नाग कहलाता है। जो चौदह कोस (श्रीनगर से) दक्षिण है। हमारी आज्ञा से सोते के पास एक इमारत तथा उद्यान निर्मित हुआ है।'—पृष्ठ ६५२

उसने दिनांक शुक्रवार २७ को वीर नाग की यात्रा के लिए प्रस्थान किया था। उसके संदर्भ में लिखता है—

'पाँच कोस ऊपर (नदी से) जाकर हम नाव से पामपुर में उतरे। शनिवार २८ वीं को हमने साढ़े चार कोस कूच किया। काकापुर से आगे बढ़कर इस नदी के तट पर पहुँचे। काकापुर की भाँग प्रसिद्ध है। वह नदी के किनारे स्वतः पैदा होती रहती है। रविवार २९ को ब्रजबरोर (विजयेश्वर) पहुँचा। सोमवार ३० को इंच का जलप्रपात देखा। यह ग्राम हमारे पिता (अकबर) ने रामदास कछवाहा को दिया था। उसने यहाँ इमारत और जलाशय बनवाया है। बुधवार २८ वीं मिह्र को वीर नाग के जलाशय के किनारे पड़ाव डाला। गुरुवार २ को इसी जलाशय के तट पर मदिरोत्सव मनाया गया। यह सोता झेलम नदी का स्रोत है। यह एक पहाड़ के नीचे है। जिसकी भूमि वृक्षों की

अधिकता, हरियाली तथा घास होने कारण दिखाई नही देती। जब हम शाहजादा थे तभी हमने आज्ञा दी थी कि इस स्थान के उपयुक्त यहाँ एक इमारत बने। वह अब पूरी हो गयी है। इसमें एक अठपहला तालाब बना था।'

कद्रू : दक्ष प्रजापति की एक कन्या का नाम कद्रू था। वे नाग जाति को जननी थी। प्रजापति कश्यप की पत्नी थी। कथा है। कश्यप के वरदान के कारण कद्रू ने एक सहस्र नाग पुत्रो को जन्म दिया था। वर प्राप्ति के लगभग पाँच सौ वर्ष के पश्चात् कद्रू को एक पुत्र प्राप्त हुआ। कश्यप की दूसरी पत्नी विनता को अरुण तथा गरुड़ दो पुत्र हुए।

सूर्य के रथ का अश्व किस रग का है? इस प्रश्न पर कद्रू तथा विनता मे विवाद हो गया। विनता ने अश्व का रग श्वेत बताया। कद्रू ने अश्व की पूछ काले रग की बतायी। दोनो ने एक दूसरी की दासी होने का शर्त लगाया। कद्रू ने अपने नाग पुत्रो को आदेश दिया। वे अश्व की पूछ मे लिपट जाएँ। पूँछ का रग काला दिखाई पडे। कुछ नागो ने माता की आज्ञा स्वीकार नही की। उन्हे जनमेजय के नागयज्ञ मे भस्म होने का मा ने शाप दिया। भुजग कर्कोट ने माता को आश्वासन दिया। वह पूँछ मे लिपट जायगा। रग काला प्रतीत होगा। माता जीतेंगी। विमाता को हारकर दास्यव्रत स्वीकार करना होगा।

काश्मीर के कर्कोट वश के राज्य का यथास्थान वर्णन किया जायेगा। महाभारत आदिपर्व के ३५ वे अध्याय मे कद्रू के प्रमुख नाग सतानो की नामावली दी गयी है।

कपटाचार के कारण कद्रू की विजय हुई। विनता ने दासी वृत्ति स्वीकार की। छल द्वारा विजय प्राप्त करने तथा माता को सपत्नी अर्थात् सौत की दासी होने के कारण विनता का यशस्वी पुत्र गरुड क्रुद्ध हो गया। कद्रू सतान नाग तथा विनता के सतान गरुड मे संघर्ष आरंभ हो गया।

इस सघर्ष की मेरी समझ मे धार्मिक पृष्ठभूमि और है। कश्यप की कद्रू से उत्पन्न नाग जाति शिव की उपासक थी। विनता की संतान गरुड विष्णु के उपासक थे। शिव मदिर मे नाग पूजा तथा विष्णु मन्दिर मे गरुड पूजा होती थी। उनकी मूर्तियाँ मडप अथवा गर्भगृह के बाहर प्रतिमा के सम्मुख रखी जाने लगी। शैव तथा वैष्णव सप्रदायो के सघर्ष का वह एक कारण बन गया। कालान्तर मे एक पिता की सन्तान होने पर भी वे विभिन्न शाखाओ मे विभाजित हो गये।

नील एक पर्वत है। यह पर्वत उत्तर दिशा मे गधमादन तथा मदराचल पर्वतो के बाद पडता है। नील नाग इन्ही नागो मे से एक था। (वनपर्व १८८ ११३)

नील पर्वत का उल्लेख नीलमत पुराण मे मिलता है।

> एकार्णवं जगत् सर्वं तदा भवति भूपते।
> हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः॥
> 34 : ५५, ५६

> गंगाद्वारं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम्।
> तथा कनखलं तीर्थं तीर्थान्यन्यानि पार्थिव।
> १५,१३

> श्वेतश्च श्रृङ्गवानेष माल्यवान् गन्धमादनः।
> महेन्द्रो मलयः सत्यः शक्तिमान् ऋभवानपि॥
> 35 : ५६,५७

> पुण्यं च नैमिषारण्यं गंगाद्वारसत. परम्।
> स्थानेश्वरात्कुरुक्षेत्रं ततो विष्णुपदं शुभम्॥
> 1054 : १२३८

विष्णुपद—

दिल्ली की कुतुबमीनार एक पहाडी पर बनी है। उस पहाडी का नाम विष्णुपद था। वहाँ पर विष्णु का मदिर था। विष्णुपद पर स्थित विष्णु

गुहोन्मुखा नागमुखापोतभूरिपया रुचिम् ।
गौरा यत्र वितस्तात्वं याताऽप्युज्झति नोचिताम् ॥ २६ ॥

२६. उसका छत्र नीलकुंड तथा दंड वितस्ता नदी है।[1] गुहाश्रिता देवी गुहोन्मुखी नागो को जलपान करानेवाली नागपीत पयस्वरूप गौरी ने अपने दोनो कार्य गुणो तथा नागपीत पय को त्यागकर गुहोन्मुखत्व तथा नागपीत पयत्व दोनो धर्मों का पालन करती है।

मदिर तोडकर मसजिद कूवते इसलाम कुतुबुद्दीन ऐवक के समय बनाई गई थी। उसे अल्तमश ने और बढाया था। अलाउद्दीन खिलजी ने इस मसजिद को और बडा रूप देने का प्रयास किया था। उसके ठीक दूसरी तरफ मसजिद के वाम पार्श्व में कुतुबमीनार जैसी मीनार बनाना चाहता था। उसका नाम अलाई मीनार है। यह पूरी बन नही सकी। ध्वसावस्था में आज भी देखी जा सकती है। अलाउद्दीन ने यहाँ पर अलाई दरवाजा भी बनवाया है। वह आज तक सुरक्षित है। अलाउद्दीन खिलजी तथा अल्तमश दोनो की मजारें यहाँ पर बनी है।

चद्रगुप्त के लौहस्तभ पर खुदे अभिलेख से पता लगा है कि वही स्थान नीलमतवर्णित विष्णुपद है।

यहाँ गगाद्वार का उल्लेख हरद्वार के समीपवर्ती क्षेत्र के लिये किया गया है। कनखल का उल्लेख नील पर्वत तथा गगाद्वार का स्थान स्पष्ट कर देता है।

गगाद्वार में एक नील पर्वत का वर्णन मिलता है। कहा गया है कि वहाँ स्नान करने पर मनुष्यो के पाप नष्ट हो जाते है

गगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।
तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिव व्रजेत् ॥
—म० अनुशासन पर्व २५ १३

जैन उत्तराध्ययन सूत्र (११:२८ ४९) के अनुसार सीता नदी का उद्गम स्थान नील पर्वत है। नील पर्वत के दक्षिण मे हिमालय पर्वत का स्थान माना गया है। इस नदी को गभीर अर्थात् गहरी तथा दुरतिक्रम मार्कंडेय पुराण ने बताया है। कुछ विद्वान् सीता नदी को झारकद किंवा जरफसा नदी बताते है। सीता नदी वास्तव में सीर दरया है। सीता नदी का प्राचीन भौगोलिक वर्णन सीर दरया से मिलता है। आधुनिक विद्वानो ने सीर दरया को सीता नदी माना है।

विष्णु पुराण (२ २ १०) के अनुसार नील पर्वत की गणना वर्ष पर्वत मे की गई है। उसकी स्थिति सुमेरु के उत्तर में है। उत्तर में ही श्वेत शृगी वर्ष को बताया गया है।

तेनाय प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णो मतिम् ।
प्राशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वज. स्थापित. ॥

आश्चर्य है कि नीलमत पुराण मे मुझे इद्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर का नाम नही मिला। विष्णुपद पर्वत के वर्णन से प्रतीत होता है कि नीलमत पुराणकार को इद्रप्रस्थ किंवा दिल्ली का ज्ञान था। पाडवो का वर्णन, कृष्ण का वर्णन, मथुरा आदि का नाम आने पर भी इद्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर का न होना इस बात का प्रमाण है कि दिल्ली का महत्त्व केवल विष्णुपद पर्वत के कारण था। द्वितीय चद्रगुप्त के कुतुबमीनार किंवा महरौली के विष्णोर्ध्वज स्तभ मे इन्द्रप्रस्थ आदि का नाम नही दिया गया है।

पाठभेद

श्लोक २६ में 'नागमुखा' का नागमुखी' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२६ (१) छत्र और दड कल्हण ने यहाँ पुन सुदर तथ्यपूर्ण उपमा दी है। यदि नीलकुड की इमारत के ऊपर खडा होकर प्राकृतिक दृश्य देखें तो अठपहला नीलकुड वास्तव में छत्र तुल्य तथा

शङ्खपद्ममुखैर्नागैर्नानारत्नावभासिभिः ।
नगरं धनदस्येव निधिभिर्यन्निषेव्यते ॥ ३० ॥

३०. विविध रत्नभांडों से विभूषित शंख पद्मादि नागों का कश्मीर मंडल कुबेर पुरी तुल्य आश्रय स्थान है।

उससे समुद्रयात्रा निमित्त निकली जल स्रोत रेखा छत्रदंड तुल्य लगेगी। इस समय नील कुंड किंवा वेरीनाग का जल जहाँगीर तथा शाहजहाँ द्वारा निर्मित सीधी नहर जैसा बहता निकलता है। प्राचीन काल मे जल निकलने की अवश्य कोई नहर किंवा प्रणाली रही होगी। कल्हण उसी जल रेखा का दंड तथा अष्टकों में नील कुंड की उपमा छत्र से यहाँ देता है।

(२) नाग कश्मीर मे नाग जलस्रोत तथा जलप्रपात को कहते हैं। कश्मीर के जलस्रोतो तथा सरोवरो का देवता नाग तथा नागी है। ये देवता जलाशयो तथा जलस्रोतो मे निवास करते है। बडे जल स्रोत को नाग तथा छोटे को नागी कहा जाता है। नीलमत पुराण मे अत्यधिक देवस्थानो तथा तीर्थो का स्थान जलस्रोतो तथा जलाशयो के समीप है। उनसे सबंधित है। नागरूप से उनकी पूजा अनादि काल से होती आई है। कश्मीर उपत्यका की मुसलिम जनता में विश्वास व्याप्त है। नाग जलस्थानो मे रहते हैं। मुसलमान होने पर भी वे नागो के प्रति आदर प्रकट करते है। चाहे उसकी पूजा करने से विरत भले ही हो गये है। निर्झरो तथा चश्मो से निकलती टेढी मेढी उज्ज्वल जल धारा नागो के रेंगने की तरह लगती है। अतएव उनके देखने से अनायास नागकी कल्पना मन मे उठ जाती है।

आइने अकबरी से प्रकट होता है कि जिस समय अकबर १६ वी शताब्दी मे आया था कश्मीर मे ७०० स्थानो में नागपूजा होती थी। इस समय तक यह विश्वास तथा संस्कार लोगो मे जमा है कि नाग सर्प के रूपमे निवास करते है। वे जल-स्रोतो अथवा जलाशयो मे रहते है। जलाशयो की रक्षा करते है। राजतरंगिणी के वर्णन (४ ६०१, ७:१७१) से प्रकट होता है कि हजारो वर्षो से इस प्रकार का संस्कार लोगो के हृदयो मे बैठ गया था।

यह भी धारणा व्याप्त थी। नाग मानवरूप धारण कर प्रकट होते थे। राजतरंगिणी मे नाग सुश्रुवा तथा उसकी कन्या के कथानक से यह बात सिद्ध होती है। वे मेघ, महाशिला किंवा हिमवृष्टि का रूप (रा० त० १ १७९, २२९, २१६) धारण कर लेते थे। लोगो को त्रस्त करते थे। भयभीत करते थे।

पादटिप्पणियाँ :

३० (१) शंख तथा पद्म नाग का वर्णन नीलमत पुराण मे किया गया है। कश्मीर के नागाओ की महत्त्वपूर्ण स्थान नही रखते है। परम्परा से नीलमत पुराण में नागाओ की तालिका के क्रम मे उनका १२ वाँ स्थान आता है।

शंखाक्ष कमलाक्षश्च मणिनागो वहैवकाः ॥
994 : १०९१

पद्म नाग का नीलमत पुराण (श्लोक 884 १०५४) मे दो बार उल्लेख आया है। दो महापद्म नागो के अतिरिक्त इनकी क्रमसंख्या २६ वी आती है।

शंख नाग का स्थान कश्मीर मे कहाँ पर है उसका वर्तमान परिवर्तित नाम क्या है ? अभी तक पता नही चल पाया है। शंखपाल नाग शंखनाग से भिन्न है। पद्म नाग को प्रोफेसर बह्लर महा-पद्म नाग मानते है। यह ऊलर लेक का नामधारी देवता है। इसका उल्लेख राजतरंगिणी (४ ५९३)

उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः ।
नीलवासास्तथा गच्छेच्छंखतीर्थं महायश. ॥१९
तत्रापश्यन्महाशंखं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशं ऋषिसंघैर्निषेवितम् ॥२०
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।
यत्रा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥२१

—म० शल्यपर्व ३७ : १९–२६

योगवाशिष्ठ रामायण मे महापद्म सर का उल्लेख कश्मोर के सदर्भ मे किया गया है। कल्हण ने महापद्मसर अर्थात् उलर लेक का उतना सुन्दर वर्णन नही किया है जितना योगवाशिष्ठ जैसे महान् ग्रन्थ में उपलब्ध है। जिन लोगो ने महापद्मसर को देखा है, यदि वे योगवाशिष्ठ का वर्णन पढे तो उन्हे प्रतीत होगा, जैसे कोई लेखक आज के लेक का आँखो देखा वर्णन लिख रहा है। वर्णन किया गया है 'महापद्मसर कमल दल द्वारा पूर्ण रहता है। उसमें मछलियाँ होती है। ग्रीष्म काल मे सारस विहार करते है।'

योगवाशिष्ठ मे महापद्म के साथ ही साथ पद्मसर की भी सज्ञा महापद्म के लिये दी गयी है। महापद्म तथा पद्मसर दोनो एक ही है।

स्तीन का अनुमान सत्य है महापद्म सर पद्मसर है। स्तीन योगवाशिष्ठ नही देखा था। अन्यथा उसका उल्लेख करता। स्तीन ने कितना गहन अध्ययन कश्मीर के सम्बन्ध मे किया था। यह इसी एक बात से अनुमान लगाया जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि योगवाशिष्ठ में महापद्मसर का वर्णन करते है, "पद्मसर श्वेत कमल पक्तियो की माला से युक्त है। शैवाल, तरंगो से अत्यन्त सुशोभित है। नील कमल की लताओ से पूर्ण है। आवर्त शीतल है।" (योगवाशिष्ठ स्थिति प्रकरण ३२. ५०१०) निस्सदेह यह वर्णन आज भी महापद्मसर का जीता जागता रूप उपस्थित करता है। पद्मसर मे सारस, नील कमल, उज्ज्वल कमल तथा पर्वती शीतल मद मंद समीरण मे, हलकी लहरें, कश्मीर की अभिरामता बढा देती है जिसे कोई पर्यटक भूल नही सकता।

नाग एक जाति थी। वे मनुष्य थे। उनका यथास्थान विस्तृत वर्णन परिशिष्ट में किया गया है। भारतवर्ष में नागो के दो राज्य थे। मथुरा मे सात नाग राजाओ ने राज्य किया था। इसी प्रकार चम्पावती मे नव नाग राजाओं ने राज्य किया था।

—वायु पुराण. ९८. ४५३, ९९ : ३८२; ब्रह्माण्ड पुराण ३ ˙ ७४ : १९४–५ २६७।

नवद्वीपो मे इन्द्रद्वीप, कसेरुमान, ताम्रवर्णी, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य द्वीप, गन्धर्व द्वीप तथा कुमारी द्वीप है। इसमें नाग द्वीप का उल्लेख किया गया है। इससे प्रकट होता है। नाग जाति का एक देश था। वहाँ उनकी आबादी थी।

राजशेखर ने काव्य मीमासा मे सम्राट् तथा चक्रवर्ती के अवधारणा के संदर्भ मे विचार करते हुए नाग द्वीप का उल्लेख किया है।

नागद्वीप का उल्लेख महाभारत (भीष्मपर्व ६ ˙ ५५) मे है। उसे सुदर्शन द्वीप के अन्तर्गत एक द्वीप माना गया है। वह शशिमडल की शशाकृति मे कानस्वरूप दृष्टिगोचर होता है। नागद्वीप का उल्लेख पुराणो मे विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। (भागवत ५ १६:२६, पद्मपुराण, सृष्टिखंड ३१) विष्णुपुराण अंश ४६३ मे पद्मवतीपुरी मे नाग लोगो के उपभोग करने का वर्णन किया गया है।

अमरकोशकार ने नाग शब्द की परिभाषा की है—'अधो भुवन-पाताल-वलिसद्म-रसातलम्। नागलोकोऽथ कुहरं सुषिरं विवरं बिलम्।' पाताल, रसातल और वलि का घर नाग लोकातर्गत है। अमेरिका को कुछ लेखक पाताल देश मानते है। इस विवाद मे न पड़कर यही कहना अलम् होगा। अमेरिका के मूल निवासी रेड इडियनो मे नाग पूजा प्रचलित थी। नाग की आकृतियाँ शिलाओ पर उत्कीर्ण मिली हैं।

यत्ताक्ष्यंभीत्या प्राप्तानां नागानां गुप्तये ध्रुवम् ।
प्रसारितभुजं पृष्ठे शैलप्राकारलीलया ॥३१॥

३१. काश्मीर मडल की प्राकार-स्वरूप पर्वतमालाएँ जैसे भुजाएँ उठाये गरुड द्वारा ताडित शरणागत नागो की रक्षा कर रही है।

भुक्तिमुक्तिफलप्राप्तिः काष्ठरूपमुमापतिम् ।
पापसूदनतीर्थान्तर्यत्र संस्पृशतां भवेत् ॥३२॥

३२. पापसूदन[1] तीर्थ मे काष्ठ-स्वरूप उमापति के दर्शन एवं स्पर्श द्वारा भोग तथा मोक्ष दोनो फलो की प्राप्ति होती है।

अफगानिस्तान का एक वर्ग नागवशी कहा जाता है। वगाल में एक वश का पदगौरव नाग है। वे अपने को नागवशीय कहते हैं। वगाल के नाग महाशयो का गोत्र वासुकी नाग है। वासुकी नाग का स्थान कश्मीर का भद्रवा अचल है। विशेष अध्ययन के लिए 'नाग' परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ३२ मे 'काष्ठरूपम' का 'कपटेश्वरम्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३२ (१) प [illegible]दन तीर्थ वेरी नाग के लगभग १० मील दूर अरपथ उपत्यका में पापसूदन तीर्थ स्थित है। पापसूदन तीर्थ का पवित्र जलकुड कपटेश्वर नाम से पूजित होता है। कोकर ग्राम के निकट, परगना कुथर अर्थात् कपटेश्वर मे एक अत्यन्त निर्मल जलपूर्ण कुड है। वह एक जलस्रोत को वाँधकर वनाया गया है। भगवान् शिव की कपटेश्वर नाम से यहाँ पूजा होती है। वे यहाँ कपट अर्थात् लकडी के रूप मे जल पर तैरते प्रकट होते है। कपटेश्वर के सम्बन्ध में एक पुरानी गाथा है—

'शिव दर्शन के इच्छुक ऋषि तथा मुनिगण दृषद्वती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र से प्रस्थान किए। रात्रि में उन्हें शिव ने स्वप्न दिया। नील के निकास स्थान कश्मीर में वे जाँय। आनेपर उन लोगो ने वहाँ केवल लकडी के टुकडे देखे। उने उन्होंने इधर उधर फेंक दिया। कुछ समय पश्चात् कपटेश्वर मे जल वेग से निकलने लगा। उन्होंने उसमे स्नान किया। स्नान करते ही ऋषि रुद्र हो गये।

केवल वसिष्ठ अर्थात् गौरपराशर को कुछ कौतूहल हुआ। उन्होंने स्नान नही किया। वे उपवास करने लगे। उनका शरीर सूख गया।

शिव ने स्वप्न मे उन्हें दर्शन दिया। उनसे वर माँगने के लिये कहा। वसिष्ठ ने निवेदन किया—'आप सर्वदा इस पवित्र जलाशय मे काष्ट के टुकडे तथा जल के रूप में निवास कीजिए। कलियुग मे लोग काष्ठ रूप आपका दर्शन तथा स्नान कर पाप मुक्त हो जाँय।' शिव ने वर दिया। उसीके फल स्वरूप कपटेश्वर में जल पूर्ण रहता है और काष्ठ रूप में भगवान् प्रकट होते रहते है।

मालवराज राजा भोज ने पुष्कल धन व्यय कर कपटेश्वर के कुड का निर्माण कराया था। राजा यहाँ के पवित्र जल द्वारा नित्य मार्जन करते थे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी। काँच कलश में कपटेश्वर का जल प्रतिदिन कश्मीर से मालवा भेजा जाता था। तत्कालीन कुड निर्माण के भग्न विशाल शिलाखड यहाँ यत्र-तत्र पडे है।

गोलाकार कुड है। शिला प्राकार द्वारा परिवेष्टित है। उन्नीस वर्गगज क्षेत्रफल होगा। इस तीर्थ का उल्लेख नीलमत पुराण तथा हरिचरितामृत दोनो मे है। उसी के आधार पर कपटेश्वर माहात्म्य की रचना की गई है।

अलबेरुनी कुंड के विषय मे अपनी पुस्तक (भाग २ पृष्ठ १८१) मे एक गाथा का उल्लेख करता है। काश्मीरियो से सुनकर लिखा था। उसने स्वय इस स्थान की यात्रा नही की थी। अन्यथा वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से यहाँ के प्राकृतिक दृश्य का इतना सुन्दर वर्णन करता कि वह स्वय एक ऐतिहासिक काव्य हो जाता। वह कहता है—'महादेव द्वारा प्रेषित लकडो के टुकडे प्रतिवर्ष कुंड मे उतराते हैं। इस कुंड का नाम कुडेशह किंवा कवडेश्वर है। यह वितस्ता नदी के उद्गम स्थल के वाम दिशा मे स्थित है। यह आश्चर्यजनक घटना वैशाख मास के मध्य काल मे होती है।'

हरचरितामृत (अध्याय १४।२२) मे इस स्थान का उल्लेख मिलता है। यहाँ का वर्णन तथा तीर्थ यात्रा का जो समय अलबेरुनी ने दिया है वह माहात्म्य मे दिये गये समय तथा वर्णन से मिलता है। अलबेरुनी ने जिन सूत्रो के आधार पर यहाँ का वर्णन लिखा है वह सत्य प्रतीत होता है।

अबुल फजल आइने अकबरी मे कपटेश्वर के विषय मे लिखता है—'अलबेरुनी का कवडेश्वर शब्द कपटेश्वर का अपभ्रंश है। कोटेहर ग्राम मे एक गहरा झरना है। उसके चारो ओर मंदिर बने है। इसका पानी जब घटता है तो चदन की लकडी के रूप मे महादेव प्रकट होते है।"

कल्हण ने (रा० त० ७:१९०) कपटेश्वर का उल्लेख किया है। राजा मुचकुद यहाँ के जल से स्वस्थ हो गये थे। स्थानीय जनश्रुति है। जल मे विलक्षण स्वास्थयदायक शक्ति है। कथासरित्सागर मे सोमदेव भट्ट ने कश्मीर मे जाकर शिव पूजा के माहात्म्य का वर्णन किया है। कपटेश्वर मे शिव पूजा का उल्लेख करते हुए लिखता है—

'सुरेश्वर्याद्रिपु तथा विजये कपटेश्वरे'

(९. १ ४८)

नीलमत पुराण मे कपटेश्वरके संबध मे निम्नलिखित उल्लेख मिलता है—

दृष्ट्वा धनेश्वरं देवं वितस्ताक्षासमीपतः।
कपटेश्वरपार्श्वे च दृष्ट्वाऽगस्त्येन निर्मितम्॥
—100 : ११७८

तोयमध्यगतं दृष्ट्वा संप्राप्तं कपटेश्वरम्।
गोसहस्रमवाप्नोति संपूज्याभीप्सितां गतिम्॥
920—१०२९:१२०२

कपटेश्वर इत्युक्तं देवदेवस्य शूलिनः।
पुण्यमायतनं तस्य समुत्पत्तिं वदस्व मे॥
—1125 : १३२९

रुद्रलोकमवाप्नोति स्नात्वा तु कपटेश्वरे।
विश्वलिंगहृदे स्नात्वा रुद्रलोके महीयते॥
—1302 : १५१६

नीलमत पुराण में कपटेश्वर माहात्म्य के विषय मे निम्नलिखित वर्णन मिलता है।

गौरपराशर उवाच :

वरश्च दीयते देव मम कामांगनाशन।
ऋषिभिस्त्वं यथा दृष्टः काष्ठरूपी महेश्वरः॥
—1143 : १३४८, १३४९

महेश्वर उवाच :

द्रक्ष्यन्ति ये जनाः सर्वे काष्ठरूपं समास्थितम्।
कदाचिद् द्विजशार्दूल सर्वकालं तु न द्विज॥
—1143 : १३५०, १३५१

अयं च सततं नन्दी काष्ठरूपी गणो मम।
दर्शनं दास्यते नृणां तदनुग्रहकाम्यया॥
—1144 : १३५३

मां च दृष्टा न यास्यन्ति स्वशरीरेण रुद्रताम्।
कपटेन च दास्यामि नराणां दर्शनं यदा
—1145 : १३५४, १३५५,

तदा संज्ञामवाप्स्यामि कपटेश्वर इत्यतः।
तोयस्य बहुलीभावो देशेऽस्मिन् ब्राह्मणोत्तम॥
—1146 : १३५५, १३५६

दर्शनस्य मदीस्य पूर्वरूप भविष्यति ।
इत्येतत्कथितं तुभ्यं कटेश्वरसमवम् ॥
—1147 १३५६, १३५,

कपटेश्वर अचवल होकर जाना चाहिए। वेरीनाग से होते हुए कपटेश्वर जाना पहले चाहे सुविधाजनक रहा हो, परन्तु सडको तथा परिवहनो के साधनो के कारण, अनन्त नाग तथा अचवल होकर जाना अधिक सरल तथा सुविधाजनक हो गया है। अचबल के डाक बगला के दक्षिण पार्श्व से एक पक्की सडक कपटेश्वर जाती है। उससे कुछ आगे जाने पर एक कच्ची सडक मिलती है। संभव है कुछ समय पश्चात् वह सड़क भी पक्की बन जाय। यह सडक देवदार के सुरम्य वनो द्वारा कोथर ग्राम पहुँचती है। मार्ग की वन-श्री सुन्दर है। मन करता है। चुप-चाप यहाँ बैठकर प्रकृति की अभिरामता देखते रहें।

सडक चढाव-उतराव से होकर गुजरती है। कुछ ऊपर जाने पर दूसरी ओर की उपत्यका का मनोरम प्राकृतिक दृश्य मिलता है। सवारी कोथर गाँव तथा कपटेश्वर पर्वत के पादमूल तक पहुँच जाती है। ग्राम से सडक के दाहिनी तरफ अखरोट, विलो की हरित झूमती सघन तरु पक्तियाँ मिलेंगी। ऊपर से किंचित् कल-कल ध्वनि के साथ उतरता निर्झर दिखाई देगा। यह जल पापसूदन कुड द्वारा निकला निर्मल उज्ज्वल शीतल जल है। निर्झर प्रणाली पर दो एक लकडी के बने शानखुट अर्थात् 'स्नान गृह' रखे थे। काश्मीरी जलाशयो के समीप सर्वत्र लकडी निर्मित महिलाओ के स्नान निमित्त शानखुट रखे मिलते है।

सडक त्यागकर पगडण्डी पकडनी पडती है। लगभग २ फर्लांग की सरल चढाई है। पाँच मिनट की चढाई के पश्चात् पापसूदन तीर्थ का मनोरम दर्शन मिलता है।

वेरीनाग अर्थात् नीलकु ड के समान यहाँ एक विस्तृत कु ड किंवा सरोवर है। वेरीनाग से बहुत बडा है। जल वेरी नाग की तरह स्थिर, शान्त तथा जीवन मय है। जल में एक प्रकार की चचलता दिखाई पडती है। जैसे कु ड की आत्मा जल स्तर पर फिर रही हो। एक कोना से जल तीव्र गति द्वारा बाहर निकलता रहता है। वहाँ से जल किंचित् प्रपात का रूप धारण करता है। ग्राम के जल प्रणाली का रूप ले लेता है। ग्राम की सतह से लगभग २०० फीट की ऊँचाई पर पापसूदन तीर्थ का पवित्र कु ड स्थल है।

स्थान जागृत है। चारो ओर वन देखकर मन पुलकित हो जाता है। यहाँ की प्रकृति सुषमा में जीवन है। चेतना का अनुभव होता है। बहुधा स्थानो के सुदर होने पर भी उनमें चेतना का अनुभव नही होता। यहाँ मुझे जीवन तथा चेतना का बोध प्रकृति के शान्त वातावरण में होने लगा। जिस समय यह स्थान अपनी पूर्ण गरिमा में रहा होगा उस समय वेरीनाग इसके सम्मुख तुच्छ प्रतीत होता होगा। इसकी सुदरता की कल्पना में नील नाग किंवा वेरी नाग की सुन्दरता नगण्य मालूम होगी।

कपटेश्वर धार्मिक तीर्थ था। मन्दिरो का अद्भुत समूह था। बुतपरस्ती का एक बडा मरकज होने के कारण इसके विकास अथवा इसे सुन्दर बनाने का प्रयास हिंदू राजाओ के पश्चात् मुसलिम राजाओ ने नही किया। यह स्थान श्रीनगर से दूर है। मुख्य राजपथ से दूर है। यहाँ आना कठिन है। अतएव इसका महत्त्व घटता गया। वेरीनाग सुगम होने के कारण महत्त्व प्राप्त करता गया। मुगलो के कारण, राजकीय सरक्षण के कारण, विकास की सुनियोजित योजना के कारण, वेरीनाग ने सुन्दरता का परिधान पहन लिया है। वितस्ता का उद्गम स्थान होने के कारण साधारण जनता की दृष्टि में इसका मान बढता गया। चाहे वे हिन्दू हो अथवा मुसलमान।

कपटेश्वर तीन ओर से अत्यन्त हरित उत्तुग देवदार तथा चीड वृक्षो की अवलियो से आवृत हैं। उत्तु ग हरित सुन्दर शिखर हैं। ऊपर निर्मल नील गगन है। गाँव की दिशा की ओर पृष्ठ भागो में बहुत दूर हिमाच्छादित शिखर सूर्य किरणो के प्रतिबिंब में रंग बदलता दिखाई पडता है। यदि आँखें नीचे उठ गयी, तो विस्तृत हरी-भरी उपत्यका, उनमें यत्र-तत्र बिखरे ग्राम छाया तुल्य दिखाई देते हैं।

स्थान की परिकल्पना अद्भुत हैं। विचित्र है। आज खडहर है। इन खंडहरो में किंचित् कल्पना का आश्रय लेने पर स्थान की भव्यता का अनुभव होगा। मध्य मे वृत्ताकार कु ड के चारो ओर पत्थर की सीढियाँ है। जल के नीचे तक सीढियाँ चली गयी है। जल के स्तर से दो-तीन फीट ऊपर २० छोटी-छोटी मन्दिराकार मढियाँ कु ड के तटपर बनी हैं। चारो दिशाओ से चार सीढियाँ भूमि स्तर से जल तक आती है। प्रत्येक दो सीढियो के मध्य उल्लिखित ५ मढियाँ मन्दिराकार बनी है। मढियो की छतें प्रस्फुटित कमल के चौकोर पत्थर से ढँकी हैं। मढियाँ चौकोर हैं। इस प्रकार की मढियो के निर्माण की प्रथा काशी तथा अन्य तीर्थ स्थानो में जलाशयो के तटो पर है। उनमें विभिन्न देवताओ की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। कही-कही मढिया स्नान के पश्चात् वस्त्र परिवर्तन करने, साधुओ के निवास किंवा पूजापाठ करने के लिए काम मे लाई जाती हैं। कपटेश्वर की मढिया लगभग ३ फुट ऊँची तथा उतनी ही चौडी होगी। प्रायः वर्गाकार हैं।

मढिया केवल देवस्थान एवं मूर्ति स्थापन के लिए बनाई गई थी। एक मढी मे पत्थर का सिंहासन नष्ट होने से बच गया है। गाँववालो से मढियो के विषय मे पूछने पर पता चला। उन्होने अपने पूर्वजो से सुना था। मढियो में विभिन्न देवताओ की मूर्तियाँ थी। मुसलिम काल में उन्हें उठाकर फेक दिया गया। मन्दिर गिरा दिए गए। इस प्रकार कुफ्र एक का गढ नष्ट हो गया। ईमान की विजय हुई।

मढियो के ऊपर भूमि का विस्तृत ऊपरी स्तर है। यह चौडा स्तर चारो ओर चौकोर है। स्तर के मूल से भूमि बाँध की तरह उठती गयी है। उस ऊँची भूमि पर चारो दिशाओं में चार भव्य मन्दिरो का निर्माण कराया गया था। इस समय केवल एक का आकार शेष रह गया है। शेष तीन मदिर तोड दिए गए हैं। खँडहर बन गए हैं। उनके पत्थर ग्रामीण उठा ले गये हैं। ऊपरी चारो मन्दिरो के द्वार से जल तक पहुँचने के लिए चारो दिशाओ से उतरती सीढियाँ कुंड में जाकर लोप हो जाती है। ऊपरी मदिर जलस्तर से लगभग एक सौ फुट ऊँचाई पर होगा।

ग्राम की तरफ जल एक प्रणाली से निकलता है। प्रणाली के तल में कुछ खंडित देवताओ की मूर्तियाँ तथा शिवलिंग रखे हैं। वे तोडकर छोड दिये गये थे उनकी दयनीय स्थिति जगत् को दिखाने के लिए उन्हे मारियो में ईंटो की तरह रख दिया गया है। इस स्थान से जल लेकर आचमन किया जाता है।

ग्राम तथा कु ड की मध्यवर्ती भूमिपर इस समय मदिरो के विशाल ध्वंसावशेष मिलेंगे। एक छोटा मंदिर गाँव की ओर वाली ऊँची भूमि तथा सरोवर की दीवार के मध्य स्थित है। तीनो मंदिरो के मुख किंवा द्वार सरोवर की तरफ हैं। दोनो विशाल मन्दिरो का अधिष्ठान भूमि से १५ फुट ऊँचाई पर है। मन्दिर के अन्तराल तक पहुचने के लिए ९ सीढियाँ चढनी होगी। उक्त दोनो विशाल मन्दिरो की पट्टिका के ऊपर का ढाँचा बिल्कुल लोप हो गया है। भित्तियो का कही पता नही है। केवल चारो भित्तियो का मूल आकार मात्र शेष रह गया है।

मन्दिरो के पत्थर ग्रामीण तोड-तोडकर उठा ले गये हैं। केवल भूमि से अन्तराल तक पहुँचनेवाली

सीढियाँ शेष रह गयी है। यह दोनो मन्दिर दीवार तथा कु ड के मध्यवर्ती भूमि की सीढियो के दक्षिण में स्थित हैं। लघु मन्दिर वाम पार्श्व मे है। लघु मन्दिर मे दो साधु अपना सामान रखते हैं। उसमे प्रतिमा किंवा शिवलिंग नही है। लगभग तीन वर्षो से वे यहाँ निवास करते है। समीप फौज की छावनी है। फौज के सिपाहियो ने अपने प्रयास से एक तिरपाल डालकर अस्थायी टेंट बना दिया है। टेंट में बाबाजी भोजन बनाते है। रात्रि में सोते हैं। उनमें एक हरिद्वार तथा दूसरा प्रयाग का साधु था।

बाहरी दीवाल की मध्यवर्ती सीढियो के दोनो पार्श्व में १० गवाक्ष की तरह मढियाँ बनी है। इस प्रकार एक दिशा की दीवाल में २० ताखा थे। चारो ओर की दीवालो में कुल ८० मढियाँ रही होगी। शेष तीन तरफ की दीवालो मे कोई मढी शेष नही रह गयी है। दीवालो का आकार तथा रूप समाप्तप्राय है। इन मढियो की छतें पत्थर पर खुदे उत्फुल्ल कमल की बनी हैं। एक ओर लघु मन्दिर उक्त छोटे मन्दिर के सम्मुख कुछ हटकर है। भग्नावस्था में है। दोनो छोटे मन्दिर ऊँचे अधिष्ठान पर बने है।

मैंने साधुओ से बहुत देर तक बातें की। उनका कहना था। दो वर्ष पूर्व तक यहाँ बहुत पत्थर थे। शनै शनै सब चोरी हो गये है। लोग उठा ले गये। गाँववाले मकान बनाने तथा कब्रो में लगाने के लिए ले जाते हैं। रक्षा के अभाव मे प्रतीत होता है, यहाँ के सब ध्वसावशेष समाप्त हो जाएँगे।

उसी भूमि पर एक ओर एक और मन्दिर शेष रह गया है। मैंने गाँववालो से यहाँ की बातें जाननी चाही। पूछने पर पता चला। पचास-साठ वर्ष पूर्व उनका चिह्न था। किंतु वे गिरते ही गए। कोई मरम्मत नही होती थी। मंदिरो में देवता नही थे। अतएव हिंदू डोगरा राज काश्मीर में होने पर भी उनकी ओर ध्यान नही दिया गया। पत्थर ले जाने वालो को कोई रोकने वाला नही था। इसलिए पत्थर आदि गायब होने लगे। मन्दिरो के स्थान पर मढियो के ढूहे रह गये हैं। कुछ समय पश्चात् ढूहे जो पुराने चूनो और सुर्खियो के अवशेष थे, उन्हें गचो तथा छतो में लगाने के लिए लोग ढो ले गये।

चैत्र तृतीया को यहाँ मेला लगता है। स्थानीय मुसलमानो से इस मन्दिर तथा स्थान के विषय में सर्वदा कुछ न कुछ विवाद रहता है। ग्राम मे पीने तथा सिंचाई का एक मात्र स्रोत इस तीर्थ का जल है। जब से यहाँ साधु लोग रहने लगे हैं, स्थान की सुरक्षा होने लगी है। टेंट लगने के पहले साधु लोग वृक्षो के नीचे बैठकर तुषारपात जैसे भयकर काल को काट देते थे।

साधुओ को कोई आमदनी नही है। मुसलमान कभी कुछ देते नही। यात्री आते नही। कभी कोई भूला भटका आ गया तो दो-चार पैसा दे दिया। लकडियाँ वृक्षो से तोड लेते है। धूनी सतत जलती रहती है। साग-पात मिल गया। पका लिया। नही मिला तो चुपचाप पडे रहे। उनका सन्तोष, उनकी शाति मुझे पसन्द आई। इस विरोधी वातावरण में, आकाश के नीचे, बिना किसी साधन के, बिना किसी आशा के, अपने घरो से हजारो मील दूर पडे रहना, उनकी धार्मिकता, उनकी कठोर लगन का ज्वलन्त उदाहरण था।

मेरा मन यहाँ उदास हो गया। स्थान जितना सुन्दर था, उतना ही उपेक्षित था। प्रकृति ने उसे सुषमा दी। मनुष्यो ने उसे सजाया। और मनुष्यो ने ही उसे नष्टकर खडहर बना दिया। मानव ककालतुल्य अपनी करुण गाथा सुनाने के लिए उसे छोड दिया। मैं मन मारे चुपचाप कल-कल नाद करते जल प्रणाली के साथ गाँव की ओर उतर चला। इस स्थान को सर्वदा के लिए नमस्कार कर, इसके रचनाकारो के प्रति श्रद्धा प्रकट कर, और इसके नष्ट करने वालो की मानवीय दुर्बलता पर अफसोस करते।

सन्ध्यादेवी जलं यस्मिन् धत्ते निस्सलिले गिरौ।
दर्शनं पुण्यपापानामन्वयव्यतिरेकयोः ॥ ३३ ॥

३३ काश्मीर मण्डल के नि:सलिल गिरि पर सन्ध्या देवी के जल धारण द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि वहाँ पुण्य का अस्तित्व तथा पाप का अभाव है।

मै गाँव में आकर ठहर गया। इन ग्रामीणो के पूर्वज कभो इन मदिरो के उपासक थे। उनके पुरोहित लेकिन आज उस ओर उलट कर देखने में हिचकते हैं। उपासको के वशज कहलाने में संकोच करते हैं। वल्कि नापसन्द करते है।

स्त्रियाँ काम कर रही थी। मैं खडा हो गया। वे मक्के की बालो से दाने निकाल रही थी। ओखली होती है। लम्बे मूसल होते हैं। ओखलो में बाल डालकर कूटती हैं। मक्के के दाने तथा खुखडी अलग हो जाते हैं। वे हमे चकित होकर देखने लगी। खेलते बच्चे कुछ सहम कर खडे हो गए। हमारा मन यहाँ से हट जाने के लिये कहने लगा।

गाँव मे अखरोट के वृक्षो की बहुलता है। ग्रामीणो का सीधा सादा सरल जीवन अच्छा लगा। वे शहरी वातावरण से दूर थे। उनकी जीविका अखरोट, शाली तथा मक्का की उपज पर निर्भर थी। अखरोट का मौसम था। अखरोट घाम मे सूखने के लिये फैलाए गए थे। मुझे देखकर बच्चे अखरोट के पास खडे हो गये। बालजन्य दुर्वलता उनमे आ गई। कही मैं अखरोट, उनकी एकमात्र सम्पत्ति उठा न लूँ। मैं उन्हे देखकर मुसकराया। चुपचाप उन्हे देखने लगा। मूसल चलाती स्त्रियाँ जैसे कुछ समझ न पाकर मूसल चलाना रोक कर मेरी ओर देखने लगी। मै कुछ बोलना चाहा। बोल न सका। अपनी राह पकड़ा।

स्थान रम्य है। सुहावना है। विकास करने पर आदर्श पर्यटन केन्द्र वन सकता है। केन्द्र होने पर स्थानीय निर्धन ग्रामीणो की आर्थिक दशा सुधर सकती है। पर्यटको को कश्मीर का, कभी का भूला, एक तीर्थस्थान दर्शनार्थ मिलेगा।

पाठभेद :

श्लोक ३३ मे 'धत्ते' की जगह 'दत्ते' पाठ भेद मिलता है।

पाददिप्पणियाँ :

३३ (१) सन्ध्या देवी सन्ध्या देवी ब्रह्मा की मानस कन्या कही जाती है। यहाँ सन्ध्या देवी प्रसिद्ध त्रिसन्ध्या निर्झर रूप में प्रकट होती है। वह उपत्यका के एक तरफ है। देवल गोम ग्राम के दक्षिण दिशा मे यह निर्झर है। यहाँ के एक लघु ग्राम का नाम सुन्दब्रार है। ब्रार का अर्थ देवी होती है। यह शब्द सन्ध्या का अपभ्रंश है। ग्राम अब निर्झर के निकट है। इस निर्झर के समीप ही एक छोटा और झरना सप्तर्षियो के नाम से सम्बन्धित है। किन्तु चमत्कार के कारण त्रिसन्ध्या को ही विशेष महत्त्व दिया गया है।

सन्ध्या माहात्म में वर्णन मिलता है कि भद्रेश्वर वतु के पुत्र माया वतु ने सन्ध्या गगा को अपने आश्रम देवल ग्राम के समीप लाया था।

चमत्कार

यह निर्झर ज्येष्ठ तथा आषाढ मास मे तीन बार दिन तथा तीन वार रात्रि मे चलता है। त्रैकालिक सन्ध्या की उपमा झरने से दी गई है। निर्झर का त्रिसन्ध्या नामकरण किया गया है। अत्यन्त प्राचीन काल से यह कश्मीर का पवित्र तीर्थस्थान रहा है। इसका उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। त्रिसन्ध्या माहात्म्य मे उत्पत्ति उद्गमादि का वर्णन मिलता है। झरना वर्ष में अधिक दिनो तक सूखा रहता है। कश्मीर उपत्यका में यह एक आश्चर्यजनक चमत्कार माना जाता है। कल्हण कपटेश्वर के पश्चात् इसका वर्णन करता है।

डाक्टर श्री बरनियर ने सन् १६६५ ई० में अपने सरक्षक दानिशमन्द खाँ के साथ यहाँ की यात्रा की थी। उनका वर्णन प्राचीन शास्त्रीय वर्णन से मिलता है। उसने यहाँ की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया था। इस चमत्कार के कारण देने का भी प्रयास किया है। वह लिखता है—"मई मास में जब वर्फ गलती है तो वह झरना ५ दिन तक दिन मे तीन बार चल कर बन्द हो जाता है। वह उषाकाल, मध्याह्नकाल तथा सायकाल चलता है। लगभग ४५ मिनट झरना चलता है। उसमे से काफी पानी निकलता है। वह १० या १२ फुट वर्गाकार और उतने ही गहरे कुण्ड को भरने के लिए काफी होता है। वह झरना बन्द हो जाता है। वर्षा ऋतु में अन्य झरनो के समान निस्सन्देह इसमे पानी आ जाता है।"

कुण्ड के समीप हिन्दुओ का एक मदिर है। उसमे देवी की मूर्ति है। अतएव इस स्थान को सेंड कहते है। लोग पूजा निमित्त आते हैं। यहाँ के सम्बन्ध मे अनेक गाथाएँ तथा कपोल कल्पनाएँ है। बरनियर लिखता है। मैं यहाँ ६ दिन इस चमत्कार को देखने के लिए रहा। मैंने यहाँ के पर्वत का अच्छी तरह अध्ययन किया। पर्वत मूल में वह झरना स्थित है। मै इस चमत्कार का कारण जाँचने के के लिए चारो तरफ कदम कदम देखता पर्वत के ऊपर पहुँचा। यह पर्वत उत्तर से दक्षिण फैला है। दूसरे पहाडो से अलग है। इसका रूप गधे की पीठ की तरह है। यह लम्बा अधिक है। चोटी कठिनाई से १०० पद चौडी होगी। पूर्व की तरफ यह पहाड घासो से ढँका है। पश्चिम की तरफ वृक्ष तथा झाडियाँ है। दूसरी तरफ पहाड होने के कारण सूर्य की रोशनी इस पर आठ बजे प्रात काल के पहले नही पडती।

मैने विचार किया। सभव है। सूर्य की गरमी के कारण यह चमत्कार उत्पन्न होता है। मै समझता हूँ। शीत काल मे समस्त भूमि तुषाराच्छादित हो जाती है। पर्वत के उस भागमें जम जाती है जहाँ प्रात कालीन उगते सूर्य की किरणें पडती हैं। वफ पिघलती है। जल झरने मे जाता है। इसी प्रकार मध्याह्न काल मे बर्फ पिघल कर धीरे-धीरे झरने में पहुँच जाती है। इसी प्रकार सूर्य की किरण जब पश्चिम की ओर झुकती है तो वर्फ गल कर दूसरे स्रोत से पहुँचती है। इस प्रकार सायकालीन जल झरने मे आ जाता है। सायकालीन जल झरने में इसलिए कम आता है कि पश्चिमी तरफ वाले पहाड पर वृक्ष तथा झाडियाँ लगी है। उसके कारण सूर्य की किरणें इस तरफ बरफ पिघलाने के लिए अधिक नही पहुँच सकती। पानी पन्द्रह दिनो में इसलिए समाप्त होकर बन्द हो जाता है कि पहले दिनो में पानी ज्यादा चलता है। धीरे-धीरे कम होता हुआ पन्द्रहवें दिन बन्द हो जाता है। वर्फ जो पर्वत में जमी रहती है वह धीरे-धीरे गलकर समाप्त होती रहती है। जल का आना एक-सा नही रहता। कभी दोपहर में अधिक आता है। कभी देखा गया है कि प्रात काल अधिक आता है। कभी प्रात काल अधिक तथा मध्याह्न काल मे कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि किसी दिन ज्यादा ठढक होती है और किसी दिन कम। किसी दिन बादल आ जाने के कारण ठढक बढ जाती है। और गर्मी असमान रूप से पड़ने लगती है।"—Berneirs Travels in the Mogul Empire, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ४१०-४१३

हरचरितचिन्तामणि में वर्णन मिलता है। यदि कोई पापी इस स्थान पर आ जाय तो उसे निर्झर का आश्चर्यजनक कार्य नही दिखाई पडेगा (४ ५०)।

सिख गवर्नर कर्नल मियान सिंह यहाँ आये थे। निर्झर का चलना बंद हो गया था। उन्होने लम्बा उपवास किया। विचित्र निर्झर पुन चलने लगा।

नीलमत पुराण मे सध्या शब्द एक स्थान पर नदी और दूसरे पर पुष्करिणी के लिए व्यवहृत किया गया है। अतएव उन्हें एक नही मानना

स्वयम्भूर्यत्र हुतभुक् भुवो गर्भात् समुन्मिषन् ।
जुह्वतां प्रतिगृह्णाति ज्वालाभुजवनैर्हविः ॥ ३४ ॥

३४ स्वयम् अग्निज्वाला पृथ्वी गर्भ से निकल कर जैसे अपनी भुजाओ द्वारा होताओ की हवि प्रतिग्रहण करती है ।

चाहिए । नीलमत पुराण उनमे स्पष्ट भेद करता है ।

सन्ध्या नदी :

मउवायां नरः स्नात्वा गोसहस्रम् फलम् लभेत ।
सन्ध्याम् नाम नदीम् दृष्ट्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥
—1252 . १४७१

सन्ध्या पुष्करिणी :

सन्ध्या पुष्करिणी त्वन्या पूर्वतुल्यफलप्रदा ।
अवगाह्य नरो भक्त्या पुण्याम् ब्राह्मणकुण्डिकाम् ॥
—1287 : १४९९

पादटिप्पणियाँ :

३४ (१) स्वयभू—यह ब्रह्मा के पुत्र है । इनसे प्रजा की उत्पत्ति हुई है । (मत्स्य पुराण · ३·३१) इनका शरीर अर्धनारी का था । एक भाग नारी तथा दूसरा नर का था । ब्रह्मा ने एक ही शरीर के दोनो भागो को अलग करने का आदेश दिया । उन्ही से मानव जगत् में नर एवं नारी का सृजन हुआ है । नारी शरीर से सतरूपा तथा नर शरीर से स्वयभू हुए है । (मारकण्डेय पुराण · ५०, विष्णु ' ७ ६, भागवत : ३ १२:५३)

बाइबिल मे वर्णित आदम तथा होवा की कथा इसमे मिलती है । उसमे भी वर्णन मिलता है । भगवान् ने पहले आदम को पैदा किया । आदम की एक पसली से होवा स्त्री पैदा हुई । इस प्रकार आदम नर तथा होवा अर्थात् ईव नारी हुई । उन्ही से सृष्टि चली ।

स्थानीय ग्रामीण स्थान को 'सुयम' कहते है । यह स्थान 'नील होम' ग्राम से आधा मील दक्षिण पश्चिम दिशा मे स्थित है । मछीपुर परगना मे है । यहाँ पर ज्वालामुखी का प्रतिभास एक नीची भूमि मे बालू तथा भूमि के मध्य होता है । किसी वर्ष इसमे से उष्ण वाष्प निकलने लगती है । स्थान इतना गरम हो जाता है कि यात्री श्राद्ध की वस्तु उस पर रख देते है । वह पक जाती है ।

श्री स्तीन सन् १८९२ मे इस स्थान पर आये थे । वहाँ वालो से उन्हे मालूम हुआ कि वाष्प अथवा ज्वाला गत १५ वर्षो मे नही निकली है । श्री स्तीन ने देखा । वहाँ के छिछले स्थान की भूमि ईट की तरह चमकीली तथा लाल थी । वह जली मिट्टी की तरह थी । वह सकीर्ण विवर हल चला जैसा मालूम होता था ।

सन् १८७६ मे पण्डित गोविन्द कौल यहाँ की तीर्थ यात्रा करने आये थे । उस समय इसकी यह क्रिया लगभग दस मास तक चलती रही ।

वाइन ने अपने यात्रा विवरण मे लिखा है । यह आश्चर्यजनक प्रतिभास इस शताब्दी के आरम्भ मे देखा गया था ।

अबुलफजल ने आइने अकबरी (२ ३६५) मे लिखा है—गुरंगो के समीप एक दर्रा है । उसे सोयुम कहते है । उसके छोर पर एक स्थान लगभग १० जरीब के क्षेत्रफल मे होगा । जिस समय बृहस्पति सिंह राशि मे प्रवेश करता है उस समय लगभग एक मास तक भूमि इतनी गरम हो जाती है कि समीपवर्ती वृक्ष सूख जाते है । यदि कोई पशु या पक्षी इस भूमि पर रख दिया जाय तो भुन जायगा । इस स्थान के समीप आबादी है । कमराज से जो दर्रा इस तरफ आता है वह दूसरी तरफ कामराज से जाकर मिल जाता है । इसके पश्चिम तरफ पर्वत है । यहाँ सोना मिलता है ।

मैं सन् १९६४ मे इस स्थान पर आया था । उस समय यहाँ की भूमि गरम नहीं थी । स्थानीय लोगो मे यहाँ के सम्बन्ध मे अनेक किंवदन्तियाँ है ।

देवी भेदगिरेः शृङ्गे गङ्गोद्भेदशुचौ स्वयम्।
सरोऽन्तर्दृश्यते यत्र हंसरूपा सरस्वती ॥ ३५ ॥

३५ गंगा के स्रोत से पावन भेदगिरि[१] पर स्थित सरोवर मे देवी सरस्वती हंस रूप मे दिखायी देती हैं।

सोमदेव भट्ट कथासरित्सागर में स्वयम्भू का वर्णन करता है। वह लिखता है कि कश्मीर मे वहुत-से स्वयम्भू तीर्थ है वहाँ जाकर पूजा करना चाहिए—'काश्मीरेपु स्वयभूनि गत्वा क्षेत्राणि पूजय।' (९.१ ४५)

निस्सन्देह स्वयम्भू एक प्राचीन तीर्थस्थान है। नीलमत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है।

सप्तर्षीणाम् तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा।
तुंगवासं च वरद च स्वयभुवम् ॥१३७१॥
स्वायंभुव वह्निकृत तथा वै पिंगलेश्वरम्।
विन्दुनादेश्वर देव देवं भडेश्वरं तथा।१९३१।

नीलमत पुराण काल में भी स्वयभू के सम्वन्ध में अग्नि का उल्लेख किया गया है। अग्नि के कारण भूमि तप्त होती है। यह स्थान सर्वदा पवित्र कश्मीर में माना गया है। कश्मीर के राजा उच्चल ने (सन् ११०१ ई०) स्वयभू की तीर्थ यात्रा की थी। (रा० त० ८ २५०)

स्वयभू माहात्म्य से प्रकट होता है कि देवता लोग असुरो से त्रस्त किये गये थे। उनके निवेदन करने पर भगवान् शिव ने यहाँ कालाग्नि रुद्र का रूप धारण किया था।

स्वयभू का अर्थ होता है जो स्वय पैदा हो जाता है। स्वयभू मनु से तथा पुराणो के वर्णित अन्य स्वयभू देवताओ से कश्मीर के स्वयभू को मिलाना नही चाहिए। (मत्स्य पुराण ४ २६, २ . २७, २ ३०, तथा वायु पुराण ४ · ४४)

पादटिप्पणियाँ ·

३५ (१) भेदा देवी—गगोद्भेद तीर्थ इस अत्यन्त प्राचीन तीर्थ स्थान को लोग भूल गये थे। यह विलुप्त उपेक्षित तीर्थ स्थल है। श्री स्तीन ने इसका पता लगाया था। काश्मीर के सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में इस स्थान का वहुत महत्त्व रहा है।

'परिशिष्ट' में विस्तृत वर्णन इस स्थान का किया है। श्री स्तीन ने जो कुछ यहाँ देखकर लिखा है उसमे वहुत कुछ अन्तर पड गया है। स्वयं इस स्थान पर बडी कठिनाई से पहुँच पाया था।

श्री स्तीन ने लिखा है गिरि शिखर पर लगभग २० फीट क्षेत्रफल का एक जलकुण्ड है। उसमें पत्थर की सीढियाँ चारो तरफ बनी है। वे जीर्ण शीर्ण हो गयी है। कुण्ड से ६ फीट दूर पर प्राचीन प्राचीर का चिह्न मिलेगा। यह उत्तर पूर्व तथा उत्तर पश्चिम अच्छी हालत में है। (यह लोप हो चुकी है) उत्तर पूर्व की ओर एक द्वार वना है। द्वार पर उतरने के लिए सीढियाँ वनी हैं। (यह भी लोप हो चुका है) निर्माण मे लगे शिला खण्ड अलकृत है। द्वार के निम्न भाग मे एक जलस्रोत है। वह कुण्ड के जल को वहाता रहता है। द्वार के समीप एक भद्रपीठ पर २ शिवलिंग हैं। (यह भी लोप हो चुका है) इस रुद्र पीठ पर मूर्तियाँ भी वनी हैं। यहाँ से सौ फीट की ऊँचाई पर एक खुला सीढीनुमा मैदान है। उस पर कुछ ऊँचा ढूहा है। उसपर प्राचीन काल की कुछ लाल ईंटें बची पडी है। (मैंने केवल चार ईंटें वहाँ देखी)। दीवाल का चिह्न ८० वर्ग गज में दिखाई देगा।

श्री स्तीन को यहाँ के गूजरो से मालूम हुआ था। 'आज से १५० वर्प पूर्व यहाँ व्राह्मण लोग आते थे'। नाग में स्नान कर श्राद्ध करते थे। वे अब वहाँ श्राद्ध करने नही आते।'

एक वृद्ध गूजर से श्री स्तीन को मालूम हुआ था। कुण्ड न तो कभी जमता है और न उसका जल बढता या घटता है।' स्तीन का मत है—बुदब्रार ही भेदा देवी का स्थान है। कुण्ड का नाम गंग भेद है। यह स्थान ७८०० फीट समुद्र की सतह से ऊँचा है। यहाँ की दुर्गम यात्रा से बचने के लिए एक दूसरे स्थान पर भेदा देवी की मूर्ति स्थापित कर दी गयी है। बुदब्रार से द्राव गाँव तथा पीर पंजाल दर्रा को मिलाता है। यह मार्ग बुदब्रार के दक्षिण पार्श्व से पहाडी पर चढता है। यह आगे चलकर पीर पंजाल के मुख्य मार्ग से दुवजी के पास जाकर मिल जाता है।

श्रीवरने जैन तरंगिणी में भेद वनपथ का वर्णन किया है। उसमे श्री स्तीन का वर्णन मिलता है।

गंगोद्भेद माहात्म्य की कथा है। पुलस्त्य ऋषि ने सती की भूमि मे लम्बी तपस्या की। उनके यज्ञ के लिये गगा नदी हिमवत पर्वत से चलकर यहाँ निकल पडी।

तपस्या के पश्चात् ऋषि पुलस्त्य जल यथावत् प्रवाहित रहने देना चाहते थे। उसी समय सरस्वती देवी की आकाशवाणी श्रवण गत हुई 'गिरि शिखर पर जिस स्थान से भेद अरण्य मे जल उद्भूत हुआ है उस तीर्थ का नाम गगोद्भेद होगा। पर्वत के ऊपर जहाँ दश धनुष परिणाम लम्बा चौडा स्थान है वहाँ एक बडा कुण्ड शुद्ध जल का बन जायगा। पर्वत के पूर्वीय मूल भाग से एक सरिता 'अभय' निकलेगी। वह सब पापो को धोएगी। गगा जी इसी रूप से यहाँ प्रकट होगी। इसका जल कभी समाप्त नही होगा। सरिता 'अभय' पर्वत से उछलती नही गिरेगी। गगा का यह जल वर्ष के तृतीयाश काल मे ही प्रवाहित रहेगा।' शेष काल मे गगा का जल स्वर्ग तथा नरक मे बहता रहेगा।'

पुलस्त्य ऋषि ने निवेदन किया—देवी, पर जल वहाँ वर्ष पर्यन्त चलता रहना चाहिए।' देवी ने सर्वदा जल प्रवाहित रहने का वचन दिया।

एक सहस्र वर्ष और पुलस्त्य ने यहाँ तपस्या की। आकाश में राजहंस रूप से देवी सरस्वती ने दर्शन दिया।

चैत्र शुक्ल अष्टमी तथा नवमी को पूजा प्राप्त कर देवी ने वहाँ अपनी ६ प्रकृतियो का वर्णन किया। प्रकृतियो के भेद वर्णन करने के कारण देवी का नाम 'भेद' दिया गया।

ऋषि पुलस्त्य ने देवी सरस्वती की पूजा देवी वागेश्वरी भेद रूप से प्रारम्भ की। पूजा चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को आरम्भ की। अतएव स्थान का नाम गगोद्भेद तीर्थ पडा। चार दिन पूजा होने लगी।

'भेद' देवी माहात्म्य का वर्णन कर माहात्म्य सहसा समीपवर्ती तीर्थ स्थानो का वर्णन करने लगता है। गोवर्धनधर विष्णु उल्लेख करता कहता है कि वहाँ पर १२५ हस्त परिणाम में कभी तुषार-पात नही होता।

माहात्म्य से एक बात स्पष्ट होती है। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य का उसने जो वर्णन किया है वह अक्षरश. मिलता है। कुण्ड का माप भी जो दिया गया है वह ठीक है। अतएव निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री स्तीन ने इस स्थान को मूल गंगोद्भेद माना है वह ठीक है।

नील मत पुराण मे गगोद्भेद तीर्थ का वर्णन मिलता है।

> तावत्क्षेत्रं समं पुण्यं प्रयागेण नराधिप।
> गंगोद्भेदं नरः स्नात्वा भेदा देवी समीयते॥
>
> —1522

यहाँ पर यम की देवी मूर्ति जिसे औजस कहते है ऋषियो के निमित्त स्थापित की गयी थी। इसकी पूजा आश्वयुज अर्थात् आश्विन वदी चतुर्दशी को होती है। माहात्म्य वहाँ के समीपस्थ तीर्थ रामाश्रम, रामुसा, सप्तर्षि आश्रम तथा वैतरणी नदी का वर्णन करता है। तात्पर्य यह है कि गंगोद्भेद की यात्रा के समय उनकी भी यात्रा करनी चाहिए।

नन्दिक्षेत्रे हरावासप्रासादे द्युचरार्पिताः ।
अद्याऽपि यत्र व्यज्यन्ते पूजाचन्दनबिन्दवः ॥ ३६ ॥

३६ हर के आवास के प्रासाद स्वरूप नन्दि क्षेत्र मे देवताओ द्वारा अर्पित पूजा के चन्दन विन्दु दिखाई पडते हैं ।

महाभारत मे गगोद्भेद तीर्थ का वर्णन मिलता है। यह स्थान 'भेदा' देवी कश्मीर का स्थान है या दूसरा इसपर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। वनपर्व मे तीर्थों की महिमा का वर्णन ऋषि पुलस्त्य ने किया है। उसमे भारत के प्रसिद्ध तीर्थों के साथ गगोद्भेद का भी उल्लेख किया है।

गगोद्भेद समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नर ।
वाजपेयमवाप्नोति ब्रह्मभूतो भवेत् सदा ॥
वनपर्व ८४ · ३५

'गगोद्भेद तीर्थ में तीन रात उपवास करने वाला मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। सर्वदा के लिये ब्रह्मीभूत हो जाता है।'

रामतीर्थ का उल्लेख नीलमत पुराण करता है

स्नात्वा नारायणस्थानं विष्णुलोके महीयते ।
रामतीर्थे भवोत्से च फलम् एतत् प्रकीर्तितम् ॥
1312

वैतरणी का उल्लेख मिलता है

ऋषितीर्थं नर. स्नात्वा निर्मलो मुनिविद् भवेत् ।
वैतरण्याम् नरः स्नात्वा न दुर्गतिम् अवाप्नुयात् ॥
—1315

गगोद्भेद का उल्लेख नीलमत में आता है ·

मणिभद्रम् तथा दृष्ट्वा धनवान् अभिजायते ।
पुलस्त्यनिर्मिता देवी भुवि भेदेति विश्रुता ॥
—1010

गगोद्भेदे नरः स्नात्वा भेदे देवीसमीपत. ।
गगास्नानफलम् प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
—1309

सप्तर्षि आश्रम का भी उल्लेख नीलमत करता है ·

विगाह्य पुष्करम् तीर्थम् अतिरात्रफलम् लभेत् ।
तीर्थं सप्तर्षीणाम् च वह्निस्तोमफलम् लभेत ॥
—1343

(विशेष द्रष्टव्य 'भेदादेवी' परिशिष्ट)

पाठभेद ·

श्लोक ३६ में 'हरावास' का 'सुरावास' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३६ (१) नन्दि क्षेत्र :—इसका उल्लेख नील मत तथा हरमुकुट माहात्म्य में है। हरमुकुट माहात्म्य मे नन्दि क्षेत्र सज्ञा उस भाग की दी गयी है, जो एक उत्तुग पर्वतीय उपत्यका हरमुख शिखर के पूर्वीय हिमानी अर्थात् ग्लेशियर मूल में है। उसी स्थान पर कालोदक सरोवर है। उसे नन्द कुल कहा जाता है। स्थान १३ हजार फीट ऊँचाई पर स्थित है। गगासर किंवा उत्तर मानस तीर्थ यात्रा मार्ग के मुख्य पडाव पर है। नीलमत पुराण कालोदक का वर्णन करता है।

तस्य शृङ्गस्य पूर्वार्धे सरोऽस्ति विमलोदके ।
कालोदकमिति ख्यातम् सर्वकिल्विषनाशनम् ॥
1048 . १२३२, १२३३

तत्रैव देवदेवेश. समाप्ते ब्रह्मण. क्रतौ ।
सर्वैर् देवगणैः सार्धम् ययौ कालोदकम् सर.॥
1099 . १२९७, १२९८

वालखिल्ये कृतेऽगस्त्ये तुल्यतेजा महर्षिभिः ।
कालोदकं नन्दिकुण्डम् शङ्खचक्रौ गदाम् तथा ।
—१243 · १४५८, १४५९

कालोदकम् यत्र याति नदी मानससंभवा ।
तत. स्नातस्य दूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥
—1247 . १४६१

महाभारत में कालोदक तीर्थ का उल्लेख मिलता है। भारतवर्ष के प्रधान तीर्थों मे इसकी गणना की गयी है। मानसरोवर, प्रभास, पुष्कर, सरस्वती, प्रयाग सगम, आदि के समकक्ष उसे रखा गया है।

यत्रावगाह्य पीत्वा च नैनं श्वोमरणं तपेत्।
महासरः पुष्कराणि प्रभासोत्तरमानसे ॥
कालोदकं च गन्तासि लब्धायुर्जीविते पुनः।
सरस्वतीदृषद्वत्योः संगमो मानसो सरः ॥
—शान्ति पर्व १५२ : १२-१३

अनुशासन पर्व मे उल्लेख मिलता है कि सौ योजन से आकर भ्रूणहत्यारा भ्रूण हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम्।
अभ्येत्य योजनशतादभ्रूणहा विप्र मुच्यते।
—अनुशासन पर्व २५ . ६०

नन्दी गणो के शाप वर्णन के प्रसंग में कथा कही गयी है। सरोवर के अन्तरीय भाग का जल तल गहरा नील वर्ण है। उसके बाहर का जल हलका हरे रग का है। यह काल अर्थात् शिव का निवास स्थान कहा जाता है। नन्दी का स्थान माना जाता है। यहाँ शिव की पूजा नन्दीश नाम से होती है। नीला जल शिव का आवास माना जाता है। बाहर का हलका हरा जल नन्दी का निवास स्थान कहा जाता है। इसका उल्लेख किया है। (१ ११३, १२३, १३०, १५०, २ · १७०)

कल्हण नन्दिक्षेत्र का विस्तार भूतेश्वर अर्थात् बुतसर तक कर देता है। यह स्थान काकनई उपत्यका मे नन्दकुल के अधोभाग तक कल्हण के अनुसार फैला है। कल्हण ने इसका वर्णन भूतेश्वर मन्दिर के नन्दिक्षेत्र में निर्माण होने के सम्बन्ध में किया है । (रा० त० १ : ११३ १ : १४८, २ १७०, ७ ६४६, ९५४, ८ : ७७, २३६५, २४३९)

मत्स्य पुराण के अनुसार नन्दीश वास्तु शास्त्र के एक ग्रन्थकार थे।

नीलमत पुराण मे नन्दी का एक उपाख्यान दिया गया है। उसमे कुछ और जोडकर कथा का रूप दिया गया है। एक शिलादा नामक ब्राह्मण था। वह नन्दि पर्वत पर आया। वह निःसन्तान था। उसने एक सौ वर्ष तक हर की तपस्या की। इस काल में उसने अन्न ग्रहण नही किया। वह शिला चूर्ण खाता था। शिला चूर्ण खाने के कारण उसका नाम शिलादा पड़ गया था।

शिव उससे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गणेश नन्दी को आदेश दिया कि उस ब्राह्मण के यहाँ सन्तान रूप से जन्म ग्रहण करे।

शंकर की बात सुनकर नन्दी ने निवेदन किया। योनिज न बनने दिया जाय। वह ब्राह्मण का पुत्र होने के लिए उद्यत है। शिव ने उसे स्मरण दिलाया। भृगु के शाप के कारण उसे मृत्युलोक मे पैदा होना था। नन्दी के आग्रह पर शिवने उसकी यह बात मान ली वह योनिज अर्थात् स्त्री के गर्भ से जन्म नही लेगा। और स्वल्प काल तक मनुष्य योनि में रहेगा। शिलादा जिस समय शिला तोडेगा उस समय उसे वह देखेगा। पुत्रस्वरूप स्वीकार कर लेगा।

शिलादा शिला तोड रहा था। उसने एक दरार मे एक शिशु देखा। उसे वह घर उठा लाया। पुत्रवत् पालन पोषण किया।

शिलादा ने ब्राह्मणो तथा ज्योतिषियो से पुत्र का भविष्य पूछा। उत्तर मिला। पुत्र अल्पायु है। कुछ वर्षों में मर जायगा। शिलादा शोकाकुल हो गया।

पिता का दुःख देखकर नन्दी का हृदय द्रवित हो गया। हरमुकुट गगा के समीप कौल सर गया। वहाँ घोर तपस्या दीर्घ जीवन निमित्त करने लगा। सौ वर्ष तक जल मे खडे रहकर तपस्या किया। अपने मस्तक पर एक बडी शिला रखकर रुद्र का जाप करने लगा। शिव उसकी तपस्या से प्रसन्न हो गये। काशी से शिव हरमुकुट पर आ गये। वहाँ उसे दीर्घ कालीन जीवन का वर दिया। इस प्रकार

नन्दी सर्वदा भूतेश्वर मे रहते हैं। भगवान् शिव भी नन्दी के कारण वहाँ निवास करते हैं।

नीलमत पुराण मे उपाख्यान का निम्नलिखित रूप मिलता है

शिलादो नाम विप्रोऽभूत् पुरा पुत्रविवर्जित ।
तेन वर्षशतं भुक्त्वा शिलाचूर्णम् नराधिप ।
नन्दिपर्वतमासाद्य महादेवप्रसादत ॥
1033 । १२०५, १२०६

पुत्रार्थे तु तदा तस्य देवदेवो अनुकम्पया ।
पुत्रत्वे नन्दिनम् प्रादात् स्वगणेशम् महाबलम् ॥
1033 । १२०६, १२०७

दीयमानस्तु पुत्रत्वे नन्दी प्रोवाच शकरम् ।
अनुग्रहाद् द्विजस्यास्य पुत्रोऽहं भविता प्रभो ॥
1034 । १२०८, १२०८

कि त्वयोनिभवो देव भवेय त्वस्य पुत्रक ।
चिरम् च न च वत्स्येऽह मानुषे त्वद्विनाकृत ॥
1035 । १२०८, १२०९

तमुवाच हरो देव प्रहसन्ननुकम्पया ।
उमाविवाहे शप्तोऽसि भृगुना त्वम् गणोत्तम ॥
1036 । १२०९, १२१०

अपूजितेन मानुष्ये तेनापि भविता ध्रुवम् ।
तेन चैव शरीरेण मत्समीपमुपेष्यसि ॥
1037 । १२१०, १२११

तत. प्रभृति मानुष्ये वत्स्यसि त्वम गणोत्तम ।
वत्स्यसे मत्समीपे च प्राकाम्येण यथा सुखम् ॥
1038 । १२११, १२१२

वत्स्यसे किम् च मानुष्ये भृगुशापबलाकृत ।
तत्रापि तेऽह वत्स्यामि प्राकाम्येन गणेश्वर ॥
1039 । १२१२, १२१३

एवम् भूतेश्वरे नन्दी नित्यम् वसति पार्थिव ।
प्राकाम्येन हरो देवस्तथा त्वदनुकम्पया ॥
1040 । १२१३, १२१४

३६ (२) हरमुकुट हरमुख पर्वत का शिखर हरमुकुट है। मुकुट मस्तक पर धारण किया जाता है। तुषाराच्छादित हिमालय शिखर की उपमा कवियों ने भारत माता के किरीट मे दी है—तुषार किरीट धारिणीम्।

अलबेरुनी ने इस पर्वत के विषय में लिखा है। (२ ३६३)

हुक्खुट पास की पूर्वीय दिशा में पर्वतमाला उठते उठते हरमुख शिखर में परिणत हो जाती है। यह शिखर लगभग १७ हजार फीट ऊँचा है। इसके चारो तरफ हिमानी अर्थात् ग्लेशियर है। कश्मीर उपत्यका से हरमुकुट पर्वत का सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। पर्वत के मूल में स्थित सरोवर सुदूर प्राचीन काल से पवित्र तथा पुण्य स्थल माना जाता है।

भगवान् शिव का हरमुकुट शिखर आवास है। पर्वत के समीपवर्ती तीर्थों की गाथाएँ भगवान् शिव से सम्बन्धित की गयी हैं। हरचरित चिन्तामणि में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। नीलमत पुराण हरमुकुट के विषय में लिखता है।

हरमुकुटमिति ख्यातम् शृगम् हिमवत शुभम् ।
जगाम सहसा नन्दी तपसे कृतनिश्चय ॥
1047

तस्यैव सरसोऽभ्यासे शृग त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
हरिमुकुटमिति ख्यात आरुरोह मुदान्वित ॥
1118 । १३२२

कश्मीर में एक जनश्रुति बहुत प्रचलित थी और है। हरमुकुट शिव का आवास है। मानव पद वहाँ नही पड सकता। आजकल भी कश्मीर के हिन्दू तथा मुसलमान दोनो वहाँ जाने से हिचकते है।

३६ (३) चन्दन विन्दु श्री स्तीन सितम्बर मास सन् १८९४ में इस शिखर पर पहुँचे थे। लौटने

आलोक्य शारदां देवीं यत्र संप्राप्यते क्षणात् ।
तरङ्गिणो मधुमती वाणो च कविसेविता ॥ ३७ ॥

वहाँ देवीं शारदा की तीर्थयात्रा के समय यात्री कवि पूजित तरंगिणी मधुमती एवं सरस्वती दोनो के समीप पहुच जाता है ।

---

३७ (१) जनश्रुति है । आद्य श्री शंकराचार्य का कश्मीर मे आगमन हुआ था । वे शारदा मन्दिर मे जाना चाहते थे । उन्हे मन्दिर प्रवेश करने की आज्ञा तत्कालीन पण्डितो ने नही दी । शारदा पीठ प्राचीन काल में काशी की तरह विद्या की राजधानी थी । वहाँ के विद्वानो का समस्त भारत मे आदर तथा सम्मान किया जाता था ।

शारदा पीठ के विद्वानो ने पुरानी परम्परा के अनुसार शंकराचार्य के सम्मुख एक शर्त रखी । वे यदि शारदा पीठ के विद्वानो के प्रश्नो का उत्तर दे दें तो उनका प्रवेश मन्दिर मे हो सकता था ।

कश्मीर का एक पुराकालीन नाम शारदा पीठ अथवा शारदा क्षेत्र था । शारदी का स्थान पठन पाठन तथा विद्याध्ययन के लिये प्रसिद्ध था । विद्या का केन्द्र माना जाता था ।

बौद्ध जगत् के तक्षशिला तथा नालन्द विद्या-केन्द्र थे । हिन्दू जगत् मे यह धर्म तथा विद्या का केन्द्र था । कश्मीर में उसे वही स्थान प्राप्त था जो उत्तर भारत मे काशी, पूर्व मे नवद्वीप तथा दक्षिण मे काची को था ।

इस स्थान के विषय मे श्रीनगर स्थित वृद्ध ब्राह्मणो से मैंने कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाही । एक आस्तिक वयोवृद्ध पण्डित ने बताया । पुरानी पद्धति के अनुयायी पण्डितो में अब भी प्रथा प्रचलित है । जिस दिन शारदा मे स्नातको को प्रमाण पत्र दिया जाता था उसे ही किसी न किसी रूप मे प्रचलित देखने के लिये आज भी सनातन धर्मावलम्बी ब्राह्मण अपने विद्यार्थियो को प्रमाणपत्र देते है । अथवा विद्यार्थी को स्नातक बना देते है ।

पर लोगो से उन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन किया । परन्तु कश्मीरियो ने उसपर विश्वास नही किया । उनका कहना था । जिस शिखर पर श्री स्तीन पहुँचे थे । वह हरमुकुट नही था । वहाँ किसी प्राणी का पहुँचना कठिन है । श्री स्तीन के साथ एक मुसलमान कुली था । उससे पूछा गया । शिखर पर पहुँचे थे या नही । उसने शिखर पर चढने की बात पूर्णतया अस्वीकार कर दी । वह शिखर पर चढने की कल्पना भी नही कर सकता था ।

कल्हण वर्णित चन्दन विन्दु के सम्बन्ध मे श्री स्तीन ने श्लोक की टिप्पणी मे लिखा है कि उन्हे किसी पुस्तक तथा स्थानीय जनश्रुति परम्परा से इसका समर्थन नही मिल सका । श्री स्तीन सितम्बर मास मे शिखर पर पहुँचे थे । उन्होने विस्तृत वर्णन नही लिखा है । कश्मीर मे यह महीना श्रेष्ठ समझा जाता है । बरफ गिरने का भी यह समय नही है ।

मै भूतेश्वरादि स्थानो तथा हरमुख पर्वत के मूल तक पहुँचा था । शिखर १७ हजार फीट की ऊँचाई पर है । मै हाईब्लड प्रेसर का मरीज हूँ । पैदल इतनी ऊँचाई पर चढना मेरे लिए असम्भव था । मैने जो वर्णन लिखा है उसका मुझे गौण ज्ञान है । श्री स्ताइनादि लेखको तथा स्थानीय लोगो द्वारा सुनी बातो के आधार पर लिखा है ।

किसी युवक अनुसन्धानप्रिय विद्वान् को यहाँ की यात्रा कर वास्तविकता का पता लगाना चाहिए । कल्हण ने जो बातें लिखी है वे प्रायः सत्य सिद्ध हुई हैं । चन्दन बिन्दु किस रूपक के आधार पर लिखा था । इन्हें जानना चाहिए । पर कथानक कपटेश्वर मे तैरते काष्ट टुकडो से मिलता है ।

आइने अकबरी में अबुलफजल शारदा तीर्थ का वर्णन करता है। वह एक विचित्र घटना का उल्लेख करता है। यह लिखता है —'शुक्लपक्ष अष्टमी को पूरा मन्दिर हिलने लगता है।' (२ ३६६)

अलबेरुनी ने इस तीर्थ के विषय मे लिखा है कश्मीर के अन्तर्गत राजधानी से दो या तीन दिन की मजिल पर बोलोर पर्वत की दिशा में शारदा की एक काष्ठ मूर्ति है। वहाँ बडी श्रद्धा भक्ति के साथ यात्री जाते हैं।' इण्डिया (१ ११७)

उक्त वर्णन से कम से कम इतना स्पष्ट हो जाता है। शारदा की 'दारु प्रतिमा' अर्थात् काष्ठ की मूर्ति थी। प्रतिमा का रूप तथा आकार कैसा था, इसका अभी तक वर्णन प्रामाणिक तौर पर नही मिल सका है।

इसकी भारत में प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि राजा ललितादित्य के राज्यकाल में गौड देश के सैनिक शारदा तीर्थ यात्रा के वहाने से कश्मीर मे प्रवेश किये थे। वे अपने राजा गौड नरेश की हत्या का प्रतिशोध कश्मीर के राजा से लेना चाहते थे। उन्होंने विष्णु मन्दिर को परिहास केशव का मन्दिर समझ कर घेर लिया था।

दारुमयी, लौहसघमयी, अष्टधातुमयी, मृत्तिका धातु युक्ता, ताम्र कास मयी, पाषाण मयी, प्रतिमाएँ वनाने की प्रथा थी। अपनी दक्षिण पूर्व एशिया की यात्रा मे 'एगलोर वाट', कम्वोडिया मे मैंने सैकडो बुद्ध तथा देवी देवताओं की दारु अर्थात् काष्ठमयी प्रतिमाएँ देखी है। जगन्नाथपुरी मे जगन्नाथ जी की प्रतिमा काष्ठ अर्थात् दारुमयी है। यदि शारदा की प्रतिमा दारुमयी थी तो इसमें कोई आश्चर्य की वात नही है।

शारदा की प्रतिमा वैठी थी या खडी थी, 'हंसा रूढ थी अथवा आसनारूढ इसका वर्णन नही मिलता है। वीणा युक्त थी अथवा नही केवल अनुमान का विषय है।

शक्ति सगम तन्त्र में शारदा का उल्लेख कश्मीर की सीमा निर्धारण के सम्वन्ध में आया है

शारदामामारस्य कुकुंमाद्रि तदात्मकत् ।
तावत् काश्मीरदेश. स्यात्पचाशद्योजनायतम् ॥
३.७ ९

काश्मीर की पश्चिमी सीमा शारदा मठ मानी गयी है।

शक्ति सगम तन्त्र मे पुन कूर्मप्रस्थ की सीमा के सम्वन्ध में काश्मीर का उल्लेख आया है। कहा गया है। कूर्मप्रस्थ की पश्चिमी सीमा शारदा मठ तक विस्तृत है।

कूर्मप्रस्थमहेशानि कथ्यते श्रृणु साम्प्रतम् ।
गोकर्णो दक्षभागे कामाख्या पूर्वगोचर ।
उत्तरे मानसेश स्यात् पश्चिमे शारदा भवति ।
3 १२.१३

कश्मीर के 'देश व्यवस्था' पुस्तिका में, शारदा तीर्थ को कश्मीर की उत्तरी सीमा माना गया है।

सितम्बर सन् १८९२ मे श्री स्तीन ने शारदा तीर्थ स्थान का पता लगाया था। वह तीर्थ कृष्णगगा उपत्यका के अधोभाग में है। इसे शारदी कहते है। श्री स्तीन ने अपनी पुस्तक राजतरंगिणी के अनुवाद के 'परिशिष्ट' में इस पर विशेष प्रकाश डाला है।

यह देवस्थान कृष्णगगा तथा मधुमती के सगम पर है। एक पहाडी पर स्थित है। मधुमती नदी पर्वतमाला के दक्षिण पूर्व दिशा से वहती आती है। शारदी के ठीक दूसरी तरफ हिमाच्छादित्व चिलास पर्वत माला से एक बडी स्रोतस्विनी प्रवाहित होकर आती है। यह कृष्णगगा में उत्तर तरफ मिलती है। इसका नाम सरस्वती है। इसको कनकोगो भी कहते हैं। शारदा माहात्म्य मे इसे सरस्वती कहा गया है। माहात्म्य में कृष्णगगा को केवल गगा और सिन्धु नाम से सम्वोधित किया गया है। उसे शारदा का ही एक रूप पार्वती गगा कहते हैं।

शारदी के अधोभाग मे कुछ मील दूरपर शिरः शिला का दुर्ग है। इस दुर्ग को राजा जयसिह (सन् ११२८–११४९ ई०) ने घेरा था। (रा० त०८: २५५६,२७०६, २४९२,) कल्हण शारदी को 'शारदा स्थान' कहता है।

शिर शिला का दुर्ग, मधुमती सिन्धु तथा मुक्ताश्री के मध्य स्थित था। गर्ग के पुत्र षणचन्द्र के समय यहाँ मन्दिर पूर्ववत् वर्तमान था। (रा० त० ८ : २५५६) अलंकार डामर के प्रसंग में पुन इस स्थान का उल्लेख कल्हण करता है। (रा० त० ८.२७०६)

कृष्णगंगा उपत्यका का ऊर्ध्व भाग मुगल तथा पठान काल मे स्वतन्त्र राज्य था। इसे 'याघिस्तान' कहते थे। याघिस्तान शब्द विचारणीय है। शारदा का स्थान भारतवर्ष मे अत्यन्त पवित्र माना जाता था। विद्या का केन्द्र था। वहाँ आर्य लोग रहते थे। वेदो का अध्ययन अध्यापन होता था। वैदिक पुरुषोकी कल्पना बिना यज्ञो के नही की जा सकती। यज्ञादि करने के निमित्त स्थान शान्त, प्राकृतिक दृश्यो से पूर्ण होना अच्छा समझा जाता था। मैं समझता हूँ। यज्ञो के करने के कारण उक्त भूखण्ड का नाम 'यज्ञस्थान' पड गया था। वहाँ अनेक आश्रम तथा यज्ञशालाएँ रही होगी। उसी का अपभ्रंश 'याघिस्तान' प्रतीत होता है।

इस समय यह स्थान पाकिस्तान के पास है। मैंने इस तरफ जाने का दो-तीन बार प्रयास किया। सुरक्षा व्यवस्था और पाकिस्तान की अनिच्छा के कारण नही जा सका। अतएव अपना विचार इस स्थान के सबन्ध में स्वानुभव से प्रकट करने में असमर्थ हूँ। इस समय वहाँ मन्दिर आदि है या नही यह जानने का प्रयास किया। परन्तु कुछ प्रगति नही हो सकी।

कश्मीर के ब्राह्मण लोग इस स्थान को भूल गये थे। उनके विस्मरण का कारण यहाँ आने का दुरूह मार्ग था। मुसलिम आवादी होने के कारण सम्भवत यहाँ आने मे लोग खतरा समझन लग होंगे।

श्री स्तीन के समय कश्मीर मे डोगरा राज के कारण शारदा तीर्थ के समोपवर्ती परगना कमराज के ब्राह्मण यदा कदा चले जाते थे। मार्ग की दुर्गमता के कारण श्रीनगर के समीप एक दूसरी शारदा देवी की प्रतिष्ठा कर दी गयी थी। शारदा तीर्थ के लिए जो समय निर्धारित है उस समय डल झील के लगभग ४ मील उत्तर सस्त गाँव के समीप एक नाग है। उसे शारदा कुण्ड का नाम दे दिया गया है। उसी मे स्नानादि कर श्रीनगरके ब्राह्मण मूल शारदा तीर्थ की यात्रा कर लेने का सन्तोष करते है।

यह एक प्राचोन परम्परा है। काशी मे भारत के सभी तीर्थ स्थानो तथा देवताओ के नाम से कुण्ड, स्थान तथा मन्दिर बना लिये गये थे। उनमें आज भी अनेक बचे है और प्राचीन काल की याद दिलाते है। मार्ग की कठिनता अथवा अर्थाभाव के कारण जो लोग मूल तीर्थों की यात्रा नही कर सकते थे वे इन तीर्थों की यात्रा किंवा दर्शन कर पुण्य लाभ करते थे। इसी प्रथा का कश्मीर के ब्राह्मणो ने भी अनुकरण किया है। मूल शारदा की प्रतिकृति श्रीनगर मे बना ली है।

३७ (२) **मधुमती**—इस नाम की २ नदियो का वर्णन मिलता है। शारदा के समीप कृष्णगगा को सिन्धु नद कल्हण के समय तक कहा जाता रहा है। इसका वर्णन कल्हण ने दो स्थलो (८:२४९२ तथा २५०७) पर किया है। मधुमतो उस नदी का नाम है जो कृष्ण गंगा मे दक्षिण दिशा से प्रवाहित होती आकर मिल जाती है। आइने अकबरी में इसका उल्लेख मिलता है। एक मधुमती नदी का उल्लेख कल्हण रा०त०११७९ मे करता है।

मधुमती तटपर नरकासुर संग्राम का होना कहा जाता है। नी० ११५८:७-६३९।

विल्हण कवि ने विक्रमाकदेव चरित में मधुमती नदी का वर्णन किया है। मालती माधव में भवभूति

ने मधुमती नदी का उल्लेख किया है। यह वर्तमान नदी (मोहर) है।

पिपीलिका का वर्णन महाभारत में मिलता है।

नद् वै पिपीलिक नाम उद्धृत यत् पिपीलिकै ।
जातिरूप द्रोणमेयमहापु पञ्चशो नृप ॥
(सभापर्व . ५२-४,)

हिरोडोटस भी पिपीलिका का वर्णन करता है जो चीटियो द्वारा एकत्रित किया जाता था। (३ १ १०५)

परशुराम भगवान् ने क्षत्रियो का २१ वार सहार कर, मधुमती के तटपर केशव की मूर्ति स्थापित की थी। यहाँ पर वलि के साथ पूजा की जाती थी। परशुराम ने गृद्धकूट पर्वत पर भी विष्णु की प्रतिमा स्थापित की थी। नीलमत पुराण परशुराम को भगवान् का अवतार नही मानता।

इन्द्रकीलम् समारुह्य गोसहस्रफलम् लभेत् ।
तथा मधुमतीतीरे शाण्डिल्येन निवेशितम् ॥
—1230 · १४४३, १४४४

शाण्डिलीमधुमत्योश्च स्नातो य. संगमे नर. ।
सर्वपापविनिर्मुक्त स्वर्गलोक स गच्छति ॥
—1233 १४४६

मधुमत्यास्तयोश्चैव स्नातस्य नृप संगमे ।
कथित मुनिभि पुण्यमश्वदानस्य यत्फलम् ॥
—1239 · १४५२, १४५३

तत. प्रभवमासाद्य मधुमत्या मनोहरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥
—1240 १४५३, १४५४

काश्मीर मे एक दूसरी मधुमती का वर्णन मिलता है। यह वितस्ता नदी में मिलनेवाला वन्द पोर नाला है।

कृष्णावितस्तासम्योगे गोसहस्रफलम् लभेत् ।
वितस्तामधुमत्योश्च संगमे त्रिदिवम् व्रजेत् ॥
—1229 १४४२

कुलारणी पापहरा च कृष्णा
नदीसुपुण्या मधुमत्यथापि ।
नदीं परुष्णीं च तथात्र पुण्या
प्रयान्ति दिव्या वरदां वितस्ताम् ॥
—1390 . १६०८

(३) सरस्वती शारदा तीर्थ के ठीक दूसरी तरफ उत्तर में तुषारमण्डित पर्वतमाला है। चिलास से वही एक वडी नदी कृष्णगगा मे आकर मिलती है। इस नदी को कनकोतरी कहते है। यही शारदा माहात्म्य मे वर्णित सरस्वती नदी है। यह नदी पजाव की सरस्वती नदी नही है। एक और नदी शान्दिली का उल्लेख मिलता है। मधुमती तथा दुर्गा मन्दिर के समीप इसका स्थान माना गया है।

नीलमत पुराण में पंजाब की सरस्वती तथा काश्मीर दोनो का उल्लेख मिलता है

यमुनां यमपाशघ्नीं शतद्रुं द्रुतगामिनीम् ।
सरयूं यूपसंपन्नां तथा देवीं सरस्वतीम् ॥
—91 · १३२, १३३

उत्तीर्य यमुनां देवीं तथा देवी सरस्वतीम् ।
कुरुक्षेत्रं तथा दृष्ट्वा सन्नितिर्यत्र विश्रुता ॥
—126 १६९

मकरेण ययौ गगा कूर्मेण यमुना नदी ।
वृषारूढा शतद्रुश्च महिषेण सरस्वती ॥
—153 २०४, २०५

ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा निद्रा धनेश नदकूवरम् ।
शखपद्मौ निधी पूज्यौ भद्रकाली सरस्वती ॥
—585 . ७०६

सरस्वत्योघनाशा च सुवेरु विमलोदका ।
पुष्कराद्यानि तीर्थानि वितस्ताद्याश्च निम्नगाः ॥
—600 · ७२१, ७२२

शुद्धा सरस्वती चैव सयोग यत्र गच्छत ।
तत्र स्नातस्य रामस्य करौ शुद्धिमुपागतौ ॥
—1183 १३९५

चक्रभृद्विजयेशादिकेशवेशानभूषिते
तिलोऽशोऽपि न यत्राऽस्ति पृथ्व्यास्तीर्थैर्बहिष्कृतः ॥३८॥

३८. चक्रभृत्[१], विजयेश[२], आदिकेशव[३] तथा ईशान द्वारा विभूषित इस भूमि पर तिल मात्र ऐसा स्थान नही है, जो तीर्थों से बहिष्कृत हो।

नदी सरस्वती नाम यस्यां स्नातो दिवं व्रजेत् ।
पूर्वं दक्षिणभागे तु स्थिता देवसरस्यपि ॥
—1984 : १४९६

पादटिप्पणियाँ :

कल्हण ने यहाँ शैव तथा वैष्णव दोनो मतानुयायियो की समानता का ध्यान रखा है। चक्रधर अर्थात् विष्णु उसके पश्चात् शिव विजयेश पुनः विष्णु आदिकेशव तथा अन्त में शिव ईशान से समाप्त करता है। विष्णु पालक हैं। रक्षक है। शिव प्रलय, सहार, समाप्ति के देवता है। अतएव उनके नाम के साथ वह देवो का क्रम समाप्त करता है।

३८ (१) **चक्रभृत्** चक्र चक्रवर्ती राजा का चिह्न तथा विष्णु एव कृष्ण का आयुध है। वायु पुराण (७ : ६८) तथा महाभारत स्वर्गारोहण पर्व (४ १२७) के अनुसार चक्र के धारण करने के कारण विष्णु का नाम चक्रधर रखा गया है। चक्रभृत्, केशव तथा चक्रधर भगवान् विष्णु के पर्यायवाची नाम है।

वैदिक साहित्य मे चक्र रथ के पहिए के लिए प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद मे दो-तीन तथा आठ चक्रो के रथ का उल्लेख मिलता है। कुम्भकार के चाक को भी चक्र कहते है।

चक्रधर विष्णु तथा विजयेश शिव दोनो का मन्दिर पास ही पास था। यहाँ पर चक्रधर के स्थान पर कल्हण ने 'चक्रभृत्' शब्द का प्रयोग किया है।

चक्रधर एक अधित्यका (उडर) पर स्थित था। उसे अब तस्कदर कहते हैं। राजतरगिणी के प्रथम तरंग २६१ में नागराज सुश्रुवा के प्रसग मे चक्रधर मन्दिर का उल्लेख आता है। राजतरंगिणी (४ . १९१) मे इसका वर्णन पुन मिलता है। ललितादित्य ने वितस्ता नदी पर रहट लगवाया था। इसका उल्लेख पुन: (रा० त० ८ ९७१) मिलता है।

चक्रतीर्थ—

सन्नीतिं तां तथा दृष्ट्वा चक्रतीर्थं तथैव च ।
यदर्थं नारदोद्गीता गाथा चरितभूतले ॥
129 : १७२

अहो लोकस्य निर्बन्ध आदित्यग्रहणं प्रति ।
चक्रतीर्थेन पर्यस्तं ग्रहाद् दशगुणं फलम् ॥
130 : १७३

तं दृष्ट्वा चक्रतीर्थाख्यं तथा तीर्थं पृथूदकम् ।
दृष्ट्वा विष्णुपदं पुण्यं तथा चमरपर्वतम् ॥
131 : १७४

ब्रह्मणो यागभूमिश्च तत्र पुण्या महीपते ।
चक्रतीर्थं देवतीर्थं तीर्थं ब्राह्मणकुण्डिकाम् ॥
1449 : १४६२

वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गोप्रदानफलं लभेत् ॥
1317 : १५३१

चन्द्रधर का मन्दिर हस्तिकर्ण से १ मील दक्षिण वितस्ता नदी एक बडा मोड़ लेती है। इस प्रकार बने Renemsula मे एक छोटा उदर बन गया है। वह सबसे अलग और ऊँचाई पर होने के कारण इस क्षेत्र मे अनायास लोगो का ध्यान आकर्षित करता है। यही पर विष्णु चक्रधर का प्राचीन मन्दिर था।

चक्रधर मन्दिर का वर्णन माहात्म्य, जोनराज राजतरगिणी (७६३), मख कवि के श्रीकठ चरित (३ १२) तथा नीलमत पुराण (११७०) मे उल्लेख मिलता है। इसके समीपवर्ती नरपुर नगर के अग्निकाड के सम्बन्ध में भी इसका उल्लेख किया गया है।

राजा उच्चल (११०१–११११)ने चक्रधर क्षेत्र के देवस्थान का जीर्णोद्धार कराया था। उसके समय मे स्थान अत्यन्त जीर्णावस्था में था। (रा० त० ८ ७८)

राजा सुस्सल (सन् ११२१–११२८ ई०) के समय हुए भयकर गृहयुद्ध के प्रसग मे चक्रधर मन्दिर का उल्लेख मिलता है। मन्दिर उद्र के समतल भूमि पर वना था। विजयेश्वर किंवा विजब्रोर में राजकीय सेना ने लोगो से स्थान खाली करा लिया। वहाँ उद्वासित तथा समीपवर्ती ग्रामो के लोग चक्रधर मन्दिर में शरण लिये थे। ऊँचाई पर होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से स्थान उपयुक्त माना गया है। विद्रोही सैनिको ने मन्दिर में स्थित पराजित सैनिको तथा नागरिको को घेर लिया।

मन्दिर की चहार दिवारी (प्राकार) मोटी लकडी की वनी थी। मालूम होता है यहाँ पत्थर के अभाव में लकडी का उपयोग किया गया था। उसमे द्वार वने थे। विद्रोहियो ने उसमें आग लगा दी। पहले लकडी की चहार दिवारी जलने लगी तत्पश्चात् आग प्रागण में फैली। लोग अग्नि से घिर कर भाग भी नही सके और वही जलकर मर गये। लकडो का घेरा वगैरह था अतएव मन्दिर का भग्नावशेष यहाँ नही मिलता। प्रोफेसर वूल्हर को उद्र उत्तरीय छोर पर जो एक निचली भूमि के कारण शेष भूखण्ड से अलग है। यहाँ एक आयताकार घेरा का चिह्न मिला था। वह घेरा ४० वर्गगज में था। उसमें negular गड्ढो के चिह्न थे। वह गड्ढे मालूम होता है कि चहार दिवारो के भस्मावशेष के चिह्न रह गये थे। उच्चल द्वारा जीर्णोद्धार के बाद मन्दिर में आग काण्ड हुआ था। कालान्तर में मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया था।

विजब्रोर (विजयेश्वर) के अधोभाग में वितस्ता के वाम तट पर एक मील दूर एक (उद्र) अधित्यका पर यह देव स्थान था। इस अधित्यका का नाम आज भी तस्कदर उद्र है। कल्हण ने प्राय चक्रधर पहाडी तथा मन्दिर का उल्लेख किया है। आपत्ति काल में सुरक्षा के लिये स्थान उपयोगी है। (रा० त० १. २६१, २७०, ४ १६१, ७ २५८, २६१,२६६, ८७ ८, ८ ९७१, ९९१, १००४, १०६४ में) इसका उल्लेख किया गया है।

नीलमत पुराण चक्रधर को विष्णु का रूप मानता है। इस स्थान के सम्बन्ध में एक गाथा का वर्णन करता है। (नीलमत ९००, :११६६, ११४९ : १३५९) हरचरितचिन्तामणि (८ ६१) में भी उल्लेख मिलता है। इसकी भौगोलिक स्थिति एव स्थान का पता (रा० त० ८ ९७१) श्लोक द्वारा मिलता है। यह तीर्थ यात्रा में सम्मिलित नही किया जाता है।

३८ (२) **विजयेश्वर** . विजयेश्वर अत्यन्त प्राचीन काल से कश्मीर का प्रसिद्ध तथा पवित्र तीर्थ स्थान रहा है। विजयेश, ईशान तथा विज्यभाड शब्द शिव का वाचक है। विजयेश्वर नाम पर नगर को सज्ञा दी गयी थी। विजयेश्वर का अपभ्रश ब्रिजब्रोर है। काश्मीर शब्द ब्रोर सस्कृत भट्टारक शब्द का अपभ्र श है। उसका अर्थ ईश्वर है। काश्मीरी शब्द ब्रोर का अर्थ देवी है। सम्राट् अशोक के समय मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था इसका वर्णन कल्हण करता है। यहाँ कुछ ध्वसावशेष विखरे पडे है। विजयेश्वर माहात्म्य तथा हरचरितचिन्तामणि मे भिन्न-भिन्न गाथाएँ इसके सम्बन्ध में दी गई है। कुछ अँग्रेजी पुस्तको में पजावी के आधार पर इसे विजविहार का अपभ्रश कहा गया है। यह गलत है। नीलमत पुराण में उल्लेख आता है

विशोका विजयेशं च वितस्तासिन्धुसंगमम् ।
एतान् सर्वानतिक्रम्य प्रययौ भरतं गिरिम् ॥
1056 : १२४०

विजयी साग्रतः स्नात्वा वितस्तायां महीपते ।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम् ॥
9303 : १५१६

विजयेश्वर होकर मैं दो-तीन बार गया हूँ। परन्तु कभी नगर के अन्दर नही गया था। उस समय मुझे इस पवित्र स्थान का महत्त्व मालूम नहीं था। यह वनिहाल श्रीनगर की सडक पर श्रीनगर से २९ मील पर स्थित है। नगर वितस्ता के वाम तट पर है। नगर मे बिजली तथा पाइप द्वारा पानी दिया जाता है। इस समय यहाँ पर एक नवीन पुल का और निर्माण हो गया है। पुराना डोगराकालीन पुल भी कायम है। पुराने पुल से गाडियाँ नही जा सकती। नवीन पुल द्वारा गाडी बडी ट्रक, बस तथा सभी कुछ का परिवहन हो सकता है। इस समय यहाँ ग्रामीण औद्योगिक स्टेट राजकीय विभाग द्वारा बनाया गया है।

नगर बडा है। पुरानी शैली का है। गलियो में पत्थर के फर्श लगे हैं। पक्की सडकें हैं। शहर की जमीन बहुत ऊँची-नीची है। समभूमि पर नगर नही आबाद है। पुराने पुल द्वारा नगर का अभूत-पूर्व दृश्य मिलता है। शहर वितस्ता तट पर ऊँचे कगार किंवा करार पर बसा है।

यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से पुरानी शैली का संस्कृत विश्वविद्यालय था। सस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता था। शारदा पीठ के पश्चात् सस्कृत शिक्षा का काश्मीर में यह दूसरा केन्द्र था। इस समय कुछ घर ब्राह्मणो के बचे खुचे रह गये हैं। काश्मीर के इतिहास मे विजयेश स्थान का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन मिलता है। यथास्थान उसका उल्लेख किया गया है।

विजवेहरा या विजब्रोर मे अशोक ने दो मन्दिर निर्माण कराये थे। इनका उल्लेख राजतरङ्गिणी मे मिलता है। मन्दिर का नाम अशोकेश्वर राजा अशोक के नाम पर रखा गया है। यहाँ के खनन द्वारा प्राप्त मूर्तियाँ खंडित कर इतनी विरूप कर दी गयी हैं कि उनके विषय में साधिकार कुछ कहना कठिन है।

अशोकेश्वर संज्ञा से प्रकट होता है कि अशोक द्वारा शिव मन्दिर की स्थापना की गयी थी। यहाँ से प्राप्त खण्डित मूर्तियाँ अशोक काल की हैं या नही कहना कठिन है। सम्भव है कि यदि कुछ और खनन कार्य किया जाय तो तत्कालीन स्थिति तथा इतिहास पर अधिक प्रकाश पडेगा।

श्रीनगर संग्रहालय की मूर्ति ए जी १ गुप्त-कालीन मूर्तिकला मालूम पडती है। सम्भवत' देवी की मूर्ति है। केश विन्यास सुन्दर है। मूर्ति अलकृत है। कानो के वृत्ताकार कुण्डल कपोल के नीचे तक झूलते है। मूर्ति खण्डित कुरूप है। पादविहीन है। विष्णु मूर्ति ए जी ४ भी खण्डित है। ललाट पर मुकुट है। मूर्ति ए सी ३० विष्णु की है। वह विरूप कर दी गयी है। उसे बुरी तरह से नष्ट किया गया है। तोडने वाले ने अपने पूरे क्रोध का प्रदर्शन किया है। मूर्ति वक्षस्थल तक प्राप्त है। उसके सम्बन्ध मे कोई मत निर्धारित करना कठिन है। विजयेश्वर से महाराज अशोक से सम्बन्धित तत्कालीन बौद्ध कला-कृतियाँ तथा मूर्तियाँ मिलनी चाहिए थी परन्तु वे अब तक नही प्राप्त हो सकी हैं। सम्भव है किसी मसजिद, जियारत अथवा कब्र के अन्दर पडी होगी।

खनन कार्य इसलिए कठिन मालूम होता है कि जहाँ मन्दिर किंवा देवस्थान नष्ट किए गए थे। उन स्थानो पर जियारतें, मसजिदें तथा कब्रिस्तानो का निर्माण कर दिया गया है। मूर्तियाँ खण्डित कर गाड़ दी गयी या उन्हें टुकडे-टुकडे कर फेंक दिया गया। इस समय उन्हे ढूँढ निकालना कठिन प्रतीत होता है।

विजयेश माहात्म्य में अनेक तीर्थस्थानो का वर्णन मिलता है। उनकी यात्रा विजयेश की यात्र

के साथ करने की बात लिखी गयी है। इस समय चक्रधर तथा गम्भीर सगम के अतिरिक्त और किसी तीर्थ स्थान का पता नही लगता।

नये पुल के समीप एक नवीन मन्दिर का निर्माण किया गया है। मैं जिस समय यहाँ आया था। पानी बरस रहा था। मैं कीचडो से गुजरता एक मन्दिर में पहुचा। इस मन्दिर में एकादश लिग एक ही अरघा में स्थापित किये गये हैं। प्रवेश द्वार के दोनो पार्श्वों में किसी पुराने मन्दिर की खण्डित मूर्तियों के पत्थर लगे हैं। यहाँ के प्राचीन मन्दिर के कलश का आमलक मन्दिर के वाम पार्श्व में भूमि पर पडा था। इस पत्थर को लडके तथा लोग कौतूहल से देखते है। यदि ग्यारह व्यक्ति उँगली लगाकर उठायें तो वह उठ जाता है। एक आदमी यदि पूरा जोर लगाये तो भी।दोनो हाथों से नही उठता। मैंने वहाँ खडे बालको को बुलाया। उन्हे मिलाकर ग्यारह की संख्या पूरी हो गयी तो उँगली लगाया। बच्चे क-क-क कहने लगे और पत्थर उठ गया। मन्दिर में ग्यारह शिवलिंग हैं। अतएव ग्यारह व्यक्ति के उँगली लगाने की बात शिवलिंग से सम्बन्धित कर दी गयी है।

पुराने पुल के समीप एक दूसरा मन्दिर नगर में है। नवीन निर्माण है। इसके साथ एक धर्मशाला बनायी गयी है। 'विजयेश्वर सुधार कमेटी' विजयेश्वर तीर्थों के सुधार तथा उन्नति निमित्त गठित की गई है। इस कमेटी के कार्यकर्त्ताओ से बातचीत हुई थी।

यहाँ के हिन्दू मुसलमान दोनो से बातें कीं। मालूम हुआ कि नगर पूर्वकाल में मन्दिरो से भरा था। किन्तु कालान्तर में वे नष्ट हो गये। नगर में ऊँचे नीचे बहुत स्थान मिलेंगे। इनके होने का एक यह भी कारण हो सकता है कि मन्दिरो के अधिष्ठान ऊँचे बनाये जाते थे। उनके आसपास को भूमि समतल कर दी जाती थी। मन्दिरो के नष्ट होने पर उनके स्थान पर दूसरी इमारतें बन गयी अथवा मन्दिर के मलबो को पाटकर उन पर रहने आदि के स्थान बना लिये गये। अतएव मकान प्राय ऊँची नीची भूमि पर बने मिलेंगे। समभूमि नगर मे कठिनता से मिलेगी। नगर के बाहर चारो ओर समभूमि है।

विजयेश्वर मन्दिर के ध्वसावशेष की खोज में लग गया। नगर में घूमता हुआ बाबा साहब को जियारत में पहुँचा। यह बडा भारी घेरा है। कब्रि-स्तान घेरा के बाहर और भीतर दोनो जगहो पर है। जियारत के लगभग दो-तिहाई स्थान पर बडी-बडी कब्रें बनी हैं। शेष मे छोटी छोटी कब्रें है। जियारत चौकोर है। इस जियारत में एक मसजिद है। जियारत तथा मसजिद के पत्थर मन्दिरो के ध्वसा-वशेष हैं। जियारत की परिक्रमा करते चला जियारत के दाहिनी तरफ मुझे मन्दिर का विशाल आमलक तथा कलश एक ओर लुढका मिला।

मन्दिरो के अलकृत पत्थर बहुत दिखाई पडे। मन्दिरो के शिखर पर कलश लगाने की प्रथा बौद्धो की अपेक्षा हिन्दू मन्दिरो में अधिक थी। यह विज-येश्वर किंवा अशोकेश्वर दो में से एक का मन्दिर होना चहिए। किसका था कहना कठिन है। यहाँ पत्थर के सुन्दर खम्बे गोले चौपहले पडे मिले। स्तम्भ का अधिष्ठान जियारत तथा बाहर दोनो जगहो पर लगा दिखाई पडेगा। कुछ कब्रो के पत्थर मन्दिर के अधिष्ठान के शिलाखण्ड के थे। अतएव यह निश्चय है कि वह स्थान प्राचीन मन्दिर था।

रतन हाजी की मसजिद के बाहर भद्रपीठ का बडा शिला खण्ड पडा मिला। मसजिद के अन्दर स्तम्भ लगे हैं। मसजिद के आस-पास प्राचीन पत्थरो के टुकडे बिखरे पडे थे।

विजयेश्वर की इस समय काफी उन्नति हो रही है। प्राचीन विजयेश्वर नगर से आबादी उठकर श्रीनगर-बनिहाल सडक पर आकर आबाद हो रही है। मैं नगर में घूम रहा था। पानी बरस चुका था। कुछ झीसी पड रही थी। नव निर्मित मन्दिर का द्वार बन्द था। स्वय सिकडी खोलकर अन्दर गया। यहाँ चारो ओर मुसलिम आबादी है। एक मुसलमान सज्जन ने यहा के पुजारी को बुला दिया।

विजीयते पुण्यबलैर्बलैर्यत्तु न शस्त्रिणाम् ।
परलोकात् ततो भीतिर्यस्मिन् निवसतां परम् ।। ३९ ।।

३९. उसपर पुण्य बल द्वारा ही विजय प्राप्त किया जा सकता है । अतएव वहाँ के निवासी केवल परलोक से भयभीत रहते हैं न कि शस्त्रधारियों से ।

मन्दिर के आगन के एक तरफ गीता अध्ययन के लिए स्थान बना है । जिस समय मै गलियों में घूम रहा था तो खिड़कियो से औरतें तथा बच्चे कौतूहल पूर्वक झाँक कर मुझे देखते थे । मै धोती, चट्टी, तथा कुरता पहने था । मैं टोपी नही लगाता । कश्मीर के हिन्दू धोती नही पहनते ? धोती पहनना अपवाद माना जायेगा । सर पर टोपी अथवा पगडी अवश्य होगी । मै एक कौतूहल की सामग्री था । मुझे स्मरण होकर रोमाच हो जाता था । यहाँ के लोग कभी हिन्दू थे । हमारे जैसे धोती पहनते थे । उनके लिए धोती आज कौतूहल की वस्तु बन गई है ।

मरहोम ग्राम प्राचीन मदवाश्रम के समीप विसाड तथा रामन्यार नदियो के सगम पर है । यह संगम वितस्ता संगम के कुछ ऊपर है । दोनो की मिली धारा को गम्भीर नदी कहते हैं । सगम स्थान को गम्भीर सगम कहा जाता है । गम्भीर नदी बहुत गहरी है । विजयेश्वर तथा श्रीनगर मार्ग पर होने के कारण इसका सैनिक महत्त्व है । एक गम्भीर नदी और है । वह राजस्थान में चित्तौर दुर्ग के समीप बहती है । उसे लौकिक भाषा में गम्भीरा नदी कहते हैं ।

(३) आदि केशव : आदि केशव का स्थान कश्मीर में कहाँ था कहना कठिन है । मैंने पता लगाने का प्रयास किया । कुछ स्थान बताये गये परन्तु वे ऐतिहासिक तुला पर ठीक उतरे नही ।

विष्णु के रूप केशव हैं । केशव के अनेक नाम तथा रूप है । आदि शब्द प्रारम्भ मे जोडने से मूल केशव का अर्थ वराह मूल किंवा मूल वराह की तरह प्रकट होता है । केशव के और भी मन्दिर कश्मीर में थे । अतएव सबसे प्राचीन केशव के मन्दिर अथवा मूर्ति का नाम आदि केशव रख दिया गया होगा । आदि शब्द देवताओं तथा पुस्तको में लगा देने से उनके मौलिक रूप की ओर सकेत हो जाता है ।

काशी मे आदि विश्वेश्वर तथा आदि केशव के मन्दिर हैं । आदि विश्वेश्वर उस स्थान को कहते हैं जहाँ प्रथम विश्वनाथ जी का मन्दिर अलप्तगीन के समय में तोडा गया था । काशी में मुसलिम राज्य समाप्त होने पर पार्श्व में एक मन्दिर बना दिया गया।

वाराणसी प्राचीन काल में वरुणा गंगा के संगम से आरम्भ होकर अस्सी गगा के संगम पर समाप्त होती थी । वरुणा गंगा के संगम पर आदि केशव का मन्दिर है । यही वाराणसी का आदि किंवा आरम्भ है । काशी में केशव तथा विश्वेश्वर के अनेक मन्दिर है । परन्तु आदि शब्द से यही प्रतीत होता है कि सबसे प्राचीन मन्दिर को आदि का विशेषण दे दिया गया । यही बात काश्मीर मण्डल के साथ भी हुई होगी ।

(४) ईशान : यह शब्द रुद्र किंवा शिव के लिये आता है । पारस्करगृह्यसूत्र (३ : १३ : ४) में समिति के सभापति के लिये इस शब्द का व्यवहार किया गया है—'अस्या . पर्षद : ईशान —। अमर कोष (१ ३२–३६) कार ने शिव के अडतालीस नामो में 'ईशान' भी एक नाम दिया है ।

ईशान सन्धि-मति के गुरु थे । उनकी स्मृति मे ईशेश्वर नामक एक मन्दिर निर्मित किया गया था । ईशेश्वर तथा इशावर स्थान को ईशान स्थान से मिलाना गलत होगा । विशेष प्रकाश रा० २ : १३४ श्लोक में डाला गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९ में 'पुण्य' का पाठभेद 'मुख्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

इस श्लोक द्वारा कल्हण कश्मीरियो की वीरता

सोष्मस्नानगृहाः शीते सुस्थतीराऽऽस्पदा रये।
यादोविरहिता यत्र निम्नगा निरुपद्रवाः ॥ ४० ॥

४०. यहाँ जल जन्तुओं से विहीन निरुपद्रव सरिताओं के स्वस्थ[१] तीर पद हैं और शीत ऋतु मे स्नान निमित्त उष्ण[२] स्नानगृह बने हैं।

तथा धर्मभीरुता दोनो आचरणो पर प्रकाश डालता है। वास्तव मे काश्मीर इस दृष्टि में अपने गौरव का शानी नही रखता। भारत के पराधीन होने पर भी लगभग तीन शताब्दी तक हिन्दू राज्य कश्मीर में कायम रहा। कश्मोर को विदेशी अथवा विदेशी मुसलिम राजाओ ने नही जीता था। अन्तर्देशीय झगडो के कारण अपने ही लोगो के कारण हिन्दू राज्य हटाकर काश्मीरी मुसलिम राज्य कायम किया। सोलहवी शताब्दी अर्थात् लगभग तीन शताब्दी तक वहाँ का शासन काश्मीरी मुसलिम बादशाहो के हाथो मे रहा। वे बाहरी मुसलिम सेना का सर्वदा सामना करते रहे। अकबर के समय बाहरी मुसलिम शासन काश्मीर में स्थापित हुआ था। महमूद गजनी जैसे योद्धाओ को काश्मीरियो ने लोह कोट के पीछे हटाया था साथ ही वे बढे धार्मिक भी थे। हिन्दू और मुसलमान काश्मीरी आज भी बहुत धर्म प्रिय है।

पाटभेद ·

श्लोक संख्या ४० में 'सुस्थतीरा' का पाठ भेद 'स्वस्थतीरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

४०(१) **सुस्थ तार पद** वितस्ता नदी तीर-स्थित तीर्थस्थानो, जलाशयो पर स्नान, पूजन, मार्जन, अभिपेक निमित्त पत्थर के घाट प्राचीन काल से बनाये जाते रहे हैं। काशी, मथुरा, नासिक, हरद्वारके घाट प्रसिद्ध है। नगर के लोग स्नान निमित्त घाटो पर आते हैं। काश्मीरी भाषा में घाट को यारबल कहते है। जहाँ यार अर्थात् मित्र मिलते हैं।

घाट नगर के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। घाटो पर कथा वार्ता, पूजा-पाठ, सन्ध्या वन्दन, श्राद्ध, क्षौरकर्म, स्नान, वस्त्र प्रक्षालन, दीप दान, पुष्पदान, अर्घदान, सभी कुछ दैनिक, दैहिक, भौतिक कर्म किये जाते हैं।

४० (२) **स्नानगृह** कल्हण ने लकडी के कुटी तुल्य रचना का भी उल्लेख (रा० त० ८ ७०६) राजतरगिणी में किया है। उन्हें काष्ठ मण्डप कहा जा सकता है। वे नदी तट पर रखे रहते थे। काशी मे काष्ठ मण्डप के स्थान पर स्नान के पश्चात् स्त्रियो के वस्त्र वदलने के लिए घाटो पर पक्की मढियो के बनाने की प्रथा थी। और है। नवीन घाट निर्माण के समय उनके रचना पर विशेष ध्यान रखा जाता है। कही-कही पर स्त्रियो के वस्त्र वदलने तथा जल में स्नान के लिए लकडियो के मण्डप बनाये जाते हैं। काशी में आज कल टिन तथा लोहे के स्नानगृह पीपा पर बनाये जाते है जो पानी पर तैरते रहते है। और नदी के उतार चढाव के समय भी स्वय ऊपर नीचे उठते रहते हैं।

कल्हण के समय स्नान निमित्त काष्ठ मण्डप बताने का सकेत प्रमाणित करता है कि बन्द स्थान में लज्जा तथा शील की रक्षा करते हुए, स्नान की व्यवस्था थी। काश्मीरियो के विकसित सास्कृतिक जीवन का यह द्योतक है। तत्कालीन सामाजिक जीवन काफी विकसित हो चुका था। कल्हण स्नान गृह का पुन उल्लेख तरग आठवें में करता है।

सरित्स्नानगृहे स्नान्तो वृद्धा· भीणनियोगिन·।
राजवेश्मान्यगणिता नाम मात्र नृपात्मजा ॥

—रा० · ८ · ७०६

गर्म स्नानगृह अथवा हमाम कश्मीर के शीतकालीन सामाजिक जीवन में विशेषस्थान रखता है। स्नान किंवा मार्जन के लिए केवल

असंतापार्हतां जानन् यत्र पित्रा विनिर्मिते।
गौरवादिव तिग्मांऽशुर्धत्ते ग्रीष्मेऽप्यतीव्रताम् ॥ ४१ ॥

४१. भगवान् भुवन भास्कर अपने पिता काश्यप के प्रति आदर प्रकट करने के कारण उनके द्वारा निर्मित काश्मीर मण्डल को कष्ट न मिले, एतदर्थ ग्रीष्म[1] ऋतु की गरिमा काल में भी किरणों में तीव्रता नहीं लाते।

विद्यावेश्मानि तुङ्गानि कुङ्कुमं सहिमं पयः।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम् ॥ ४२ ॥

४२. उत्तुंग विद्या वेश्म,[1] कुकुंम[2], हिम जल, द्राक्षादि[3] पदार्थ जो स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं। यहाँ साधारण सुलभ हैं।

उसका उपयोग नही किया जाता अपितु शीतकालीन निवास में परिणत कर काम मे लाया जाता है। गरीब मुसलमान प्राय. मसजिदो के हमामो का प्रयोग करते है। इस प्रकार के हमामों का निर्माण बडी मसजिदो में हैं। बहुत से हमाम घाटो के किनारो पर बने रहते है। वहाँ गरम पानी स्नान निमित्त पहुँचाया जाता है। मालूम होता है। आजकल जैसी प्रथा कल्हण के समय में प्रचलित रही होगी। यही कारण है कि नदियो के वर्णन के साथ कल्हण ने इनका वर्णन दैनिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण किया है।

मैने कश्मीर के ग्रामो में बहुत भ्रमण किया है। सभी सरोवरो, तडागो, पुष्करिणियो, नागो अथवा जलाशयो के पास लकडी का चौकोर शिवालय नुमा बन्द स्नान-गृह रखा रहता है। वह हटाया-बढाया जा सकता है। प्रथा अत्यन्त प्राचीन है।

इतिहास लेखक प्रायः ग्रीस और रोम की स्नान प्रथा को श्रेय देते है। मुख्यत हमाम शैली के स्नान को। भ्रम के कारण कुछ लेखक इस प्रथा का जनक उन्हे बताते है। टर्किश बाथ किंवा हमाम प्रथा का श्रेय तुर्कियो को दिया जाता है। वस्तु स्थिति यह नही है। कुस्तुनतुनियाँ को जब तुर्कों ने विजय किया तो वहाँ रोम तथा ग्रीक शैली के गर्म जल द्वारा परिचालित स्नानगृह थे। तुर्कों ने उनका नाम हमाम रख दिया। टर्किश बाथ, टर्किश बाथ सोप इत्यादि स्नान सम्बन्धी प्रसाधनो के नाम प्रचलित हो गये। किन्तु कश्मीर मे यह प्रथा बहुत समय पूर्व से प्रचलित थी। यह रोमन बाथ, टर्किश बाथ की नकल नही थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१ मे 'असन्तापार्हताम्' का पाठ भेद 'न्तापहताम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४१(१)कल्हण यहाँ पर कश्मीर मण्डल की रचना काश्यप द्वारा हुई थी उस ओर पुनः संकेत करता है। कश्मीर मे कभी गरमी नही पडती यह निर्विवाद है। ग्रीष्म ऋतु मे जब समस्त भारत तपने लगता है। पृथ्वी प्यासी रहती है। सभी स्रोत बरफ गलने से पूर्ण रूप से चलने लगते है। उस समय कश्मीर में पुष्प खिलते हैं। और वर्षा ऋतु मे फल लग जाते है। गर्मी वहाँ क्यो नही पडती उसपर कल्हण ने उत्प्रेक्षा द्वारा एक प्राचीन पौराणिक धार्मिक गाथा की ओर संकेत किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२ मे 'यत्र सा' का पाठ भेद 'यत्रासा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४२ (१) विद्या वेश्म : उत्तुंग विद्या वेश्म के उल्लेख से प्रकट होता है कि कश्मीर मे विद्याध्ययन

त्रिलोक्यां रत्नसूः श्लाघ्या तस्यां धनपतेर्हरित् ।
तत्र गौरीगुरुः शैलो यत् तस्मिन्नपि मण्डलम् ।। ४३ ।।

४३ त्रैलोक्य मे रत्नसूया भूलोक श्लाघ्य है। भूलोक मे कुबेर की उत्तर दिशा श्लाघ्य है। वहाँ की पर्वत मालाओ मे गौरी[1] पिता हिमाचल श्लाघ्य है, और उसमे भी पर्वतों द्वारा आवृत कश्मीर मण्डल श्लाघ्य है।

पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता था। विद्यालयो तथा उनके विद्या भवनों का महत्त्वपूर्ण स्थान सामाजिक जोवन में था। कल्हण राज्य प्रासाद, राजभवन किंवा नगर के अन्य धनी मानी नागरिको के अथवा नगर के भवनो का वर्णन नही करता। केवल उत्तुग विद्या वेश्म का उल्लेख करता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कश्मीर की इमारतों में सर्वश्रेष्ठ इमारतें विद्यालयो की थीं। यह कश्मीर की जनता का विद्याप्रेम तथा सरस्वती के प्रति प्रगाढ भक्ति का द्योतक है। देव मन्दिरो को भव्यता की ओर सकेत नही किया गया है। यह अभाव खटकता है। महत्त्व-पूर्ण है। इस बात का प्रमाण है कि कश्मीर में विद्या वेश्म को मन्दिरो की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती रही होगी।

(२) कुकुम केशर भारत में केवल कश्मीर में होती है। विश्व में केशर की सर्वश्रेष्ठ खेती स्पेन में होती है। स्पेन की केशर दुनिया में सबसे अच्छी होती है। केशर किश्तवार तथा कश्मीर के अन्य स्थानो मे होती है। कश्मीर में केशर की खेती के लिए पद्मपुर अर्थात् पामपुर प्रसिद्ध है।

कश्मीर तथा अन्य देशो के कुंकुम अर्थात् केशर का वर्णन भावप्रकाश में मिलता है।

काश्मीरदेशजे क्षेत्रे कुंकुम यद्भवेद्धि तत् ।
सूक्ष्मकेशरमारक्तपद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥
वाह्लीकदेशसंजातं कुकुमं पाण्डुरं भवेत् ।
केतकीगन्धयुक्तं यत् तन्मध्य सूक्ष्मकेसरम् ॥
कुकुमं पारसीके यत् मधुगन्धि तदीरितम् ।
ईषत्पाण्डुरवर्णं तदधमं स्थूलकेशरम् ॥
—भावप्रकाश

काश्मीर के केशर तथा अन्य स्थानो में उत्पन्न होने वाले केशरो की विशेषता तथा रूप का वर्णन भावप्रकाश करता है। कश्मीर का केशर आरक्त रग, सूक्ष्म तथा उसकी गन्ध पद्म अर्थात् कमल की तरह होती है। वह उत्तम होती है। वाह्लीक अर्थात् बलख देश की केशर पाण्डु रग को होती है। उसकी गन्ध केतकी को सुगन्ध को तरह होती है। उसके फूल के बीच में सूक्ष्म केशर होता है। पारसीक अर्थात् इरान के केशर की सुगन्ध मधु अर्थात् शहद की तरह होती है। उसका रग पाण्डु वर्ण का होता है। वह सूक्ष्म नही स्थूल होती है। कश्मीर तथा वाह्लीक के केशर की पखुडी पतली तथा ईरान की मोटी होती है।

(३) द्राक्षादि. यहाँ स्पष्ट तात्पर्य, फलो से है। कश्मीर का अगूर वहुत प्रसिद्ध नही है। सेव, वम्बूगोशा, और अखरोट की ख्याति है। कश्मीर का अम्बरी सेव विश्वविख्यात है। इसका अपना एक विचित्र मधुर स्वाद है। अखरोट जितना अच्छा काश्मीर में होता है उतना शायद ही विश्व में कही प्राप्त हो सके। वम्बूगोशा कश्मीर की खास चीज है। कश्मीर फल और पुष्पो का आगार है। जल कश्मीर मे सर्वत्र शीतल मिलता है। बर्फ गलने से स्रोतो में जल निरन्तर आता रहता है।

पाठभेद .

श्लोक संख्या ४३ में 'रत्नसूः' का 'रत्नभू', 'गुरु' का 'गिरि' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

४३ (१) कल्हण ने गौरी शब्द का प्रयोग यहाँ अत्यन्त पवित्रता एवं श्रद्धा की दृष्टि से किया है। गौरी एवं

तत्र कौरवकौन्तेयसमकालभवात् कलौ ।
आ गोनन्दात् स्मरन्ति स्म न द्वापञ्चाशतं नृपान् ॥ ४४ ॥

४४ कौरव एवं पाण्डवों के कलियुग[1] समकालीन तृतीय गोनन्द के पूर्व हुए कश्मीर मण्डल के राजाओं का इतिहास लुप्त हो गया है।

तस्मिन् काले ध्रुवं तेषां कुकृत्यैः काश्यपीभुजाम् ।
कर्तारः कीर्तिकायस्य नाभूवन् कविवेधसः ॥ ४५ ॥

४५. उन राजाओं के पूर्व कुकृत्यों के कारण काश्यपी[1] में कोई कृती कवि नहीं हुआ जो उनकी कीर्ति काया निर्माण निमित्त लेखनी उठाता।

गिरिजा देवी पार्वती का नाम है। हिमाचल की कन्या मानी जाती है। किन्तु गौरी उस कन्या को कहते हैं जो आठ वर्ष की होती है। कुआरी होती है। क्वारी कन्या देवी स्वरूप होती है। प्राचीन हिन्दू प्रथा के अनुसार इस प्रकार की कन्याओ को नवरात्र की नवमी को भोजन कराया जाता है। उनकी पूजा होती है। पूर्वीय उत्तर प्रदेश में इसको 'छोहरी' खिलाना कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४ मे 'भवात्कलौ' का पाठभेद 'भवान् कलौ' तथा 'गोनन्दात्' का 'गोनर्दात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४४ (१) कलियुग : उपोद्घात, कश्मीर वर्णन के पश्चात् कल्हण इतिहास लिखने का आरम्भ इस श्लोक से करता है। इसका आरम्भ वह कश्मीर के बावन लुप्त राजाओ से करता है। उनका कोई सूत्र कल्हण को नही मिल सका। इतिहास सामग्री भी वह अपने समय में उनके विषय मे नही प्राप्त कर सका। अतएव वह स्पष्ट कहता है कि गोनन्द (तृतीय) के पूर्व के बावन राजाओ की स्मृति लुप्त हो गयी है।

कल्हण ने यहाँ 'गोनन्दात्' शब्द का प्रयोग किया है। गोनन्द प्रथम का उल्लेख उसने श्लोक संख्या १.१६ मे किया है। गोनन्दात् शब्द यहाँ पर तृतीय गोनन्द के लिये प्रयुक्त किया गया है। ज्ञात राजाओ का नाम गोनन्द तृतीय से आरम्भ होता है।

कल्हण ने अपने इतिहास का प्रारम्भ काल (वराहमिहिर के बृहद् सहिता से) युधिष्ठिर के राज्यकाल से आरम्भ किया है। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तथा कथित समय का आधार कल्हण ने नीलमत पुराण को माना है। गोनन्द प्रथम काश्मीर का ऐतिहासिक पुराकालीन राजा रूप मे चित्रित किया गया है। नीलमत पुराण के अनुसार गोनन्द पाण्डवो का सम कालीन था।

राजा जनमेजय ने ऋषि वैशम्पायन से आश्चर्य चकित होकर पूछा कि नाना देश के राजाओ ने महाभारत मे भाग लिया। क्या कारण है कि कश्मीर के राजा महाभारत युद्ध मे किसी पक्ष की तरफ से भाग नही लिया। ऋषि वैशम्पायन ने राजा जनमेजय की शंका का समाधान किया है। उसी प्रसग मे काश्मीर के इतिहास का वर्णन किया है। वही कथोपकथन नीलमत पुराण का वर्तमान स्वरूप है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५ मे 'कुकृत्यै.' का पाठभेद 'कुकृतै.' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४५ (१) काश्यपी काश्यपी का यहाँ अर्थ कश्मीर है। अन्यथा पृथ्वी के सताइस नामो मे एक

नाम कश्मीर भी है। यहाँ काश्यपी का पृथ्वी भी अर्थ लगाया जाय तो अर्थ के भाव में विशेष अन्तर नही पडता। वह अधिक व्यापक अवश्य हो जाता है। कश्मीर मण्डल के कवियो के स्थान पर पृथ्वी पर कोई कवि नही हुआ। यह अर्थ हो जायगा।

श्लोक ४५ से ४७ तक सस्कृत साहित्य तथा कवियो की प्रशस्ति में कहे गये श्रेष्ठ पद हैं। उनके माधुर्य, पद लालित्य तथा भाव का अनुवाद करना कठिन है। कवि तथा लेखक अपनी लेखनी द्वारा व्यक्तियो को महान् तथा अमर बना देता है। कवि कह्लण ने उसे अत्यन्त सक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप में रखा है। अग्रेजी के महान् कवि कारलाइल ने भी इसी प्रकार भावोद्रेक 'हीरोज् प्रोएट' में किया है।

कल्हण राजतरगिणी १ १३ से २० तक श्लोको में कश्मीर के इतिहास लिखने का हेतु उपस्थित करता है। वह स्वीकार करता है। इतिहास का पुनर्लेखन उचित नही है। तथापि लोग इतिहास लिखते हैं। नवीन सामग्रियो की प्राप्ति, नवीन अनुसन्धान, त्रुटि पूर्ण भ्रामक एकागी घटनावलियो तथा मतो को निवारणार्थ और नवीन कल्पना, सकल्प और अनुभूति द्वारा लेखक इतिहास लिखने के लिए अनुप्राणित होता है। कल्हण ने कश्मीर के तत्कालीन इतिहासो में व्याप्त त्रुटियो के निवारणार्थ लेखनी उठाई थी।

पूर्व काल में कश्मीर का अत्यन्त विस्तृत इतिहास था। राजाओ का व्यापक वर्णन किया गया था। इतिहासकार सुव्रत ने कश्मीर का सक्षिप्त इतिहास लिखा था। डाक्टर व्हुलर का मत है कि सुव्रत ने विद्यालयो तथा पाठशालाओ में अध्यापन तथा अध्ययनार्थ विद्यार्थियो के लिए इतिहास का सक्षिप्त नोट बनाया था। उस नोट के कारण कालान्तर में इतिहास का विस्तृत वर्णन विस्मृत हो गया।

सुव्रत के सक्षिप्त इतिहास के प्रयोग तथा प्रचलन के कारण प्राचीन इतिहास ग्रन्थ लुप्त हो गये। सुव्रत की रचना कठिन थी। समझने के लिए व्याख्या तथा भाष्य की आवश्यकता पडती थी। सर्व साधारण को इतिहास का वास्तविक ज्ञान नही प्राप्त हो सकता था। इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए सुलभ सामग्री प्राप्त नही थी।

कवि क्षेमेन्द्र ने नृपावली नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की थी। इतिहास की अपेक्षा उसे काव्य कहना अधिक सगत होगा। निस्सन्देह काव्य दृष्टि से श्रेष्ठ होने पर भी कल्हण के विचार से उसमें इतनी त्रुटिया रह गयी थी कि उसमें निहित इतिहास सामग्री को निर्दोष कहना कठिन था। क्षेमेन्द्र का उपनाम व्यासदास था।

कश्मीर मण्डल मे कवि क्षेमेन्द्र राजा अनन्त (१०२८–१०६३ ई०) तथा राजा कलश (१०६३–१०८९ ई०) के राजत्व काल मे समय व्यतीत किया था। उसका जन्म शारदा अर्थात् शारदी में हुआ था। शारदी भारत में विद्या का केन्द्र था। उसने वहा शिक्षा प्राप्त की थी। उसे हर प्रकार की ज्ञानार्जन की सुविधा थी। वातावरण पाण्डित्यपूर्ण था। अनेक विचारधाराओ के सगम में उसने स्नान किया था। उस समयका इतिहास कश्मीर की राजनीतिक, राजवशीय, प्रासादीय, दलीय, षड्यन्त्रो, असतोषो, नैराश्य एव रक्तरजित घटनाओ से भरा पडा है। उसके ग्रन्थ 'समयमातृका' का रचना-काल सन् १०५० ई० तथा अतिम ग्रन्थ 'दशावतार चरित' का सन् १०६० ई० है। क्षेमेन्द्र के पूर्वज कश्मीर राजा की राजसेवा में अमात्य पद पर थे। क्षेमेन्द्र के पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था। पितामह का नाम 'निम्नाशय' था। प्रपितामह का नाम 'सिन्धु' था। उसने साहित्य शास्त्र 'अभिनव गुप्त' से सीखा था। उसके दीक्षा गुरु 'सोमपाद' थे। गुरु के विचारो से प्रभावित था। इसके ग्रन्थ 'रामायण मजरी' और 'भारत मंजरी' में रामायण, और महाभारत की कथाओ का और 'बृहत्कथा मजरी' में मौलिक कथाओ सक्षिप्त सग्रह है। महाकवि 'गुणाढ्य' ने पैशाची

भुजवनतरुच्छायां येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशना मेदिन्यासीदसावकुतोभया ।
स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे ॥ ४६ ॥

४६. उन महत्त्वशाली कवि कृति को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके अनुग्रह बिना उन प्रतापशाली राजाओं को जिनकी बलवती भुजा की छाया से समुद्र वेष्ठित मेदिनी वनच्छाया तुल्य निर्भय थी। कोई स्मरण भी न करता।

येऽप्यासन्निभकुम्भशायितपदा येऽपि श्रियं लेभिरे
येषामप्यवसन् पुरा युवतयो गेहेष्वहश्चन्द्रिकाः ।
तांल्लोकोऽयमवैति लोकतिलकान् स्वप्नेऽप्यजातानिव
भ्रातः सत्कविकृत्य किं स्तुतिशतैरन्धं जगत्त्वां विना ॥ ४७ ॥

४६. जिनके पदों द्वारा हस्त मस्तक पद दलित होता था; जिन प्रसिद्ध प्राप्त के प्रासादों में कमनीय कामिनियाँ दिवा शशि के समान विहरती थीं; उन लोक तिलकों के अस्तित्व का स्वप्न में भी भला कवि कृति के बिना कौन स्मरण रखता ? ओ ! कवि बन्धु !! जिनके बिना यह जगत् अन्धकार मे रहता उन आपकी शत-शत स्तुति क्यों न करूँ।

भाषा मे 'वड्डकहा', (संस्कृत वृहत्कथा) लिखा था। ग्रन्थ अनुपलब्ध है। उसका संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है। क्षेमेन्द्र ने उसकी कथाओ को संस्कृत पद में सक्षिप्त कर लिखा है। इसके अतिरिक्त 'बोध-सत्त्वावदान' नामक अवदान की रचना भी इन्होंने की थी। क्षेमेन्द्र की 'नृपावली' अभी तक प्राप्त नही हुई है। उसके मिलने पर कश्मीर के इतिहार पर नवीन प्रकाश पड सकता है।

क्षेमेन्द्र कुलीन था। उसका समय सन् ९९० से १०९५ ई० तक था। उसकी शिक्षा बहुत अच्छी हुई थी। उसने विदेश भ्रमण किया था। शैव सम्प्रदाय का अनुयायी था। सोमपाद किंवा भागवत के साथ अध्ययन करने के कारण उसका झुकाव वैष्णव मत की ओर हो जाना स्वाभाविक था।

क्षेमेन्द्र ने बौद्ध धर्म का गम्भीर अध्ययन किया था। बौद्ध धर्म के विषय में उसकी धारणा ऊँची थी। 'नरमाला' संस्कृत साहित्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। क्षेमेंद्र ने अपने समकालीन कायस्थ कर्मचारियो की कटु आलोचना की है।

समयमातृका मे वर्णित स्थलो का पता आज भी कश्मीर में लगाया जा सकता है। क्षेमेन्द्र कवि रंगमंच का प्रेमी तथा नाटक देखने का शौकीन था। मुसलिम काल में भारतीय रगमंच का अराजकता, धार्मिक उन्माद तथा संरक्षण के अभाव में लोप हो गया। भारतीय कलाकार कश्मीर मे आश्रय निमित्त आने लगे। नाट्यकला तथा रगमच कश्मीर में विकसित होने लगे। कश्मीर मे भी हिन्दू राज्य की समाप्ति तथा मुसलिम राज्य के उदय के साथ नाटक तथा रगमच संरक्षणहीन हो गये। वे स्वत. लोप हो गये। कश्मीर की जनता के मुसलिम हो जाने पर धार्मिक नाटकादि में रुचि नही रह गयी थी। 'कविकण्ठाभरण' में क्षेमेन्द्र लोगो को रंगशाला में जाने की सलाह देता है।

अष्टषष्ट्यधिकामब्दशतद्वाविंशतिं नृपाः ।
अपीपलंस्ते कश्मीरान् गोनन्दाद्याः कलौ युगे ॥ ४८ ॥

४८. कलियुग काल में गोनन्द तथा उसके उत्तराधिकारी राजाओं ने दो हजार दो सौ छियासी वर्षों तक काश्मीर मण्डल का राज्य किया।

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृपा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ ४९ ॥

४९. इस काल गणना को भ्रम के कारण कतिपय इतिहासकार इसलिये ठीक नही मानते। उनकी धारणा है कि महाभारत का युद्ध द्वापर के अन्त मे हुआ था।

लब्धाऽऽधिपत्यसंख्यानां वर्षान् संख्याय भूभुजाम् ।
भुक्तात् कालात् कलेः शेषो नास्त्येवं तद्विवर्जितात् ॥ ५० ॥

५०. यदि उन राजाओ का राज्य काल जिनको वर्ष काल ज्ञात है योग किया जाय तो कलियुग के व्यतीत हुए काल मे से कुछ शेष नही बचता, जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियो से ज्ञात होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६ मे 'भुजवनतरु' का पाठभेद 'भुजतरुवन' मिलता है।

श्लोक संख्या ४७ मे 'स्वप्नेऽप्य' का पाठभेद 'सर्वोऽप्य' मिलता है।

श्लोक संख्या ४८ मे 'कश्मीरान्' का पाठभेद 'काश्मीरान्' मिलता है।

श्लोक संख्या ४९ मे 'भारतम्' का पाठभेद 'युद्धम्' मिलता है।

श्लोक संख्या ५० मे 'नास्त्येवम्' का पाठ 'नास्त्येव' मिलता है। 'वर्जितात्' तथा 'वर्जनात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५० (१) कल्हण ने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारो के ११ ग्रन्थो का अध्ययन किया था। उसे नीलमत के विचारो का अध्ययन किया था। देव मन्दिरो, नगरो, ताम्रपत्रो, आज्ञापत्रो, प्रशस्ति पत्रो एव अन्यान्य शास्त्रों के अध्ययन से अपना भ्रम दूर कर, उसने राजतरंगिणी लिखने मे हाथ लगाया था। उक्त ग्यारह ऐतिहासिक ग्रन्थ उपलब्ध नही है। कल्हण ने उनके नाम का उल्लेख नही किया है। केवल ग्रन्थ-संख्या दी है।

ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे प्राचीन ग्रन्थकारो को कश्मीर के ५२ राजाओ के चरित्र तथा इतिहास का ज्ञान नही था। गोनन्द आदि चार राजाओ का वर्णन कल्हण ने नीलमत पुराण के आधार पर किया है।

महाव्रती पाशुपत सम्प्रदायवादी कवि हेलाराज द्विज ने १२ सहस्र श्लोको की 'पार्थिवावली' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। हेलाराज वाक्यपदीय भाष्य के लेखक है। उनका काल प्रामाणिक तौर पर निश्चित नही कहा जा सकता है। अनुमान लगाया जाता है। वे नवी अथवा दशवी शताब्दी में हुए थे। हेलाराज ने गाथाओ, लोकोक्तियो तथा जनश्रुतियो के आधार पर राजाओ के वृत्तान्त का सकलन किया था। राजाओ के नामो का सम्बन्ध किसी न किसी मन्दिर, मूर्ति, अग्रहार, तथा ग्रामो से रहा होगा। उनके साथ कोई न कोई गाथा जोड दी गयी होगी, अतएव हेलाराज ने इतिहास उन आधारो पर लिखा होगा।

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः ॥ ५१ ॥

५१. कलियुग के छः सौ तिरपन वर्ष व्यतीत हो गये तो इस भूतल पर कौरव एवं पाण्डव हुए थे ।

पद्ममिहिर ने अशोक के पूर्व कालीन ५२ राजाओ तथा लव के पश्चात् ८ राजाओं का और वर्णन किया है। पद्म मिहिर ने इन आठों नामो को हेलाराज की पुरानी पुस्तक 'पार्थिवावली' से लिया था।

इतिहासकार छविल्लकार ने बावन राजाओ में अशोक से अभिमन्यु तक के पाँच राजाओ का और वर्णन किया है। इस लेखक के विषय मे विशेष जानकारी नही है। अशोक, जलौक, दामोदर, हुष्क, जुष्क, कनिष्क का वर्णन कल्हण ने इसी कवि के आधार पर राजतरंगिणी मे किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१ में 'मभूवन्' का पाठभेद 'मभवन्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५१. क्षेमेंद्र के लगभग एक शताब्दी पश्चात् अर्थात् सन् ११४८-११४९ ई० मे कवि कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना की थी। कल्हण के लगभग ३०० वर्ष पश्चात् जोनराज ने (सन् १४७१-१४७२ ई०) में मुसलिम शासन-काल मे राजतरंगिणी लिखी। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी सन् १४८६ ई० में कश्मीर के बादशाह जैनुल आबदीन के समय में लिखी थी। प्रज्ञाभट्ट ने सन् १५१२ ई० मे राजावली पटक लिखा। कश्मीर के संस्कृत इतिहासकारो में शुक ने अपनी राजतरंगिणी सन् १५९६ ई० मे लिखी थी। वह प्राचीन शैली का अन्तिम लेखक था। उसके पश्चात् किसी प्रसिद्ध किंवा अप्रसिद्ध इतिहासकार का पता नही चलता। जिसकी लेखनी वैज्ञानिक ढंग से कश्मीर का वास्तविक इतिहास लिखती। इसके पश्चात् मुसलिम इतिहास लेखको का काल आता है। वे प्राचीन भारतीय शैली परम्परा तथा संस्कृत ज्ञान से अनभिज्ञ थे। अतएव उनका लेखन भ्रामक हो गया है।

सुलतान सिकन्दर बुतशिकन (१३९३-१४१६ ई०) के समय मे प्रायः सभी प्राचीन तथा हिन्दू धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ जलवा दिये गये। शेष को जल समाधि दे दी गयी। अथवा किसी प्रकार नष्ट कर दिये गये। सुलतान जैनुल आबदीन ने १५ राजतरंगिणियो का पता लगाया था। परन्तु आज वे प्राप्त नही हैं। उनके नाम का पता अभी तक नही चल सका है। यदि वे मिल जाँय तो कश्मीर के इतिहास पर कुछ और प्रकाश पड सकता है।

कल्हण ने लौकिक संवत् ४२२४ तदनुसार सन् ११४८-११४९ ई० मे राजतरंगिणी लिखी। सन् १३३९ ई० मे कोटा रानी के पश्चात् मुसलिम शासक कश्मीर मे हुए। मुसलिम अधिकार में कश्मीर रणजीत सिंह के समय तक रहा। सिकन्दर बुतशिकन (सन् १३८९-१४१६ ई०) का समय कश्मीर के इतिहास का भयंकर काल था। सभी मन्दिर नष्ट कर दिये गये। पुस्तकें फूंक दी गयी। केवल ११ ब्राह्मण घरो के अतिरिक्त सभी मुसलमान हो गये थे। कुछ भी इतिहास सामग्री शेष नही रह गयी। जैनुल आबदीन बादशाह (सन् १४२०-७० ई०) के समय जोनराज ने (१४७१-१४७२ ई०) राजतरंगिणी लिखना आरम्भ किया।

कल्हण की मृत्यु के ३२१ वर्ष पश्चात् पुनः राजतरंगिणी की शृंखला जोडी गई। उसने सन् प्रायः ११५० से जैनुल आबदीन के काल तक का इतिहास लिखा। जैनुल आबदीन के जीवन काल में उसका अवसान हो गया। उसके शिष्य श्रीवर ...

लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम् ।
सप्तत्याऽभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥ ५२ ॥

५२. लौकिक संवत् का चौबीसवाँ वर्ष है; इस प्रकार संवत् के एक हजार सत्तर वर्ष अब तक व्यतीत हो चुके हैं।

श्रीवर ने तृतीय राजतरंगिणी लिखी। उसमें जैनुल आबदीन से मुहम्मद शाह (सन् १४८४ ई०) तक का वर्णन मिलेगा। उसने अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। श्रीवर के पश्चात् श्री प्रज्ञाभट्ट ने राजावली पिटक लिखा। उसने सन् १४८५ से सन् १५१३ ई० अर्थात् लौकिक संवत् ६१ से ८९ तक अर्थात् २८ वर्ष का मुहम्मद शाह (सन् १४८४-१४८६) तथा फतह शाह (सन् १४८६-१५२४ ई०) का इतिहास दिया है। तत्कालीन अराजकता से ऊबकर प्रज्ञाभट्ट ने आगे नही लिखा। प्रज्ञाभट्ट ने जहाँ तक लिखा था उसके पश्चात् शुभ्याश्रय के पुत्र शुक ने मुगल शासन काल तक का इतिहास लिखा है। इसी को चौथी राजतरंगिणी की संज्ञा दी गयी है। उसने फतह शाह (सन् १४८६-१५१४ ई०) के समय से लेकर मोमरा खाँ (सन् १५७८-१५८६) तक अर्थात् किस प्रकार जलालुद्दीन अकबर ने कश्मीर को अपने राज्य मे मिलाया। लगभग १०० वर्षों की घटनावली का वर्णन किया है।

शुक ने अपनी राजतरंगिणी मे मंगलाचरण के पश्चात् कल्हण के प्राक्कथन की शैली अपनाया है। उसने अपने पूर्व के इतिहासकारो का वर्णन किया है। भारतीय संस्कृत साहित्य तथा कश्मीर का यह अन्तिम इतिहास ग्रन्थ है। चारो राजतरंगिणिया की विशेषता यह है कि निष्पक्ष रूप से विचारो को व्यक्त किया गया है। इसके पश्चात् मुसलिम इतिहासकारो का उदय होता है। सबका आधार राजतरंगिणी है। परन्तु उसे तोड-मरोड कर रखने का प्रयास किया गया है।

साधिकारिक कश्मीर के इतिहास का वर्णन पुन अकबर के राज्यकाल में मिलता है। अकबर के नवरत्न तथा मन्त्री अबुल फजल ने आइने अकबरी मे 'सूबा कश्मीर' पर एक अध्याय लिखा है। उसमें कश्मीर के हिन्दू राजाओं और मुगलों तक हुए मुसलिम राजाओं की तालिका दी गयी है। उनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। कश्मीर की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाज, तौल, बाट, शासन और दर्शनीय स्थानों का वर्णन निष्पक्ष भाव से किया गया है। आज तक लिखे इतिहासों का मूल साधिकारिक स्रोत, उक्त ग्रन्थ है। अतएव मैंने भी उनका ही आश्रय लिया है। मध्यकालीन तथा कुछ आधुनिक लेखकों ने जिस तरह कश्मीर के इतिहास को तोड़-मरोड़ कर उसे दूसरे रंग में ढालने का प्रयास किया है। उसका मैंने उदाहरण देकर आलोचना की है। सर्व साधारण में उनके लेखों के कारण भ्रम उत्पन्न हो गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ में 'त्याम्यधि' का पाठभेद 'त्याधमि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५२ (१) लौकिक संवत् : कश्मीरी संवत् को लौकिक किंवा सप्तर्षि संवत् कहते हैं। अलबेरूनी ने अपने पर्यटन वर्णन मे काश्मीरी संवत् का उल्लेख किया है। कश्मीर मे शताब्दी छोड़कर लिखने की प्रथा है। अतएव शताब्दी न देकर केवल चौबीस का उल्लेख कल्हण ने किया है। सन् ईसवी लिखते समय आज भी प्रथा है कि १९६८ न लिखकर केवल ६८ लिखा जाता है। अतएव लौकिक वर्ष २४ का अर्थ है २४२४ लौकिक वर्ष। वह जिस समय राजतरंगिणी लिख रहा था उसका लौकिक संवत् देता है। इस प्रकार उसका राजतरंगिणी का रचना काल साधिकारिक रूप से प्रकट हो जाता है।

प्रायस्तृतीयगोनन्दादारभ्य शरदां तदा ।
द्वे सहस्रे गते त्रिंशदधिकं च शतत्रयम् ॥ ५३॥

५३. प्रायः[1] गोनन्द तृतीय के राज्याभिषेक से अबतक २३३० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिश्च संयुक्ता ।
भूभुजां कालसंख्यायां तद्द्वापञ्चाशतो मता ॥ ५४ ॥

५४. उन बावन लुप्त राजाओं का राज्य काल ऐसा मत है कि १५६६ वर्ष होता है।

ऋक्षादृक्षं शतेनाब्दैर्यात्सु चित्रशिखण्डिषु ।
तच्चारे संहिताकारैरेवं दत्तोऽत्र निर्णयः ॥ ५५ ॥

५५. सप्तर्षि एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर एक सौ वर्षों में जाते हैं। इस प्रकार की गति के के कारण संहिताकार ने इस समस्या के निराकरण निमित्त हल निकाल दिया है।

कलि सवत् पच्चीस चैत्र सुदी एक को ईसापूर्व ३०७५—७६ होता है। शक संवत् सन् ईस्वी से ७८ वर्ष पश्चात् आरम्भ होता है। कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना शक संवत् १०७० में आरम्भ की थी। यह काल लौकिक संवत् का ४२२४ वाँ वर्ष होता है। यह कश्मीरी सवत् अबतक कश्मीर तथा उसके आस पास पर्वतीय क्षेत्र मे चलता है। लौकिक सवत् २५ कलि संवत् से आरम्भ होता है। शक संवत् का आरम्भ ३१५४ वर्ष में होता है। कल्हण के और शक संवत् के समय मे १०७० वर्ष का अन्तर होता है। इस प्रकार ३१५४+१०७० वर्ष मिलकर ४२२४ वर्ष हो जाते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३ में 'गोनन्दादा' का पाठभेद, 'गोनर्दादा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५३ (१) प्राय —प्राय शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। वह निश्चित रूप से समय निर्धारित नही कर सका है। उसके समय जो कुछ सामग्री प्राप्त थी उसी पर उसने मोटे तौर पर हिसाब लगाया था।

श्लोक संख्या ४८ में दिया गया वर्ष काल २२६८ वर्ष है। कल्हण के दिये राजत्व के वर्ष कालो का योग तरंग दो से आठ तक का १३२८ वर्ष मोटे तौर पर होता है। इस २२६८ वर्ष मे तरंग एक के राजाओ का १२६६ वर्ष दिया काल श्लोक सं० ५४ का घटा दे तो १००२ वर्ष आता है। यह काल गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर प्रथम का राजत्व काल होता है। यदि वर्ष काल १३२८+ १००२ का योग कर दिया जाय तो २३३० वर्ष काल आता है। यही काल गोनन्द तृतीय से कल्हण तक का राज्य काल होगा।

५४ (१) मत : कल्हण ने मत शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। उसने काल गणना स्वयं की थी। तत्कालीन प्राप्त सामग्रियो के आधार पर वह एक निश्चित 'मत' पर पहुँचा होगा। अतएव इस श्लोक में उसने अपना मत प्रकट किया है। किसी प्राचीन काल गणना के आधार पर निश्चयात्मक वात नही कहा है। मत मे विभिन्नता हो सकती है। कोई मत नही मान सकता। अथवा भविष्य मे यह मत गलत हो सकता है। किन्तु एक बात निश्चयात्मक रूप से कह देने से वह प्रमाण मान लिया जाता है। कल्हण स्पष्ट सकेत करता है कि यह काल गणना स्वत. प्रमाण नही किन्तु मत मात्र है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५५ मे 'तच्चारे' का पाठभेद 'उच्चारे' मिलता है।

आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥ ५६ ॥

५६. जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथ्वी पर शासन कर रहे थे उस समय मुनि[1] मघा[2] पर थे। युधिष्ठिर[3] का राज्य काल शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व था।

पादटिप्पणियाँ :

५५ (१) संहिता यहाँ पर संहिताकार से तात्पर्य वृहत्संहिताकार से है। कल्हण वहाँ वृहत् संहिता का (१२:३) उल्लेख करता है।

कल्हण ने उक्त श्लोक संख्या ५१ में जिस मत का प्रतिपादन किया है। उसके प्रमाण मे वृहत् संहिता का उल्लेख करता है। इस प्रकार कुरु पाण्डव और गोनन्द प्रथम का काल शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व है। यह समय कलि संवत् ६५३ होता है।

५६ (१) मुनि का अर्थ यहाँ सप्तर्षि से है।

(२) मघा से तात्पर्य मघा नक्षत्र से है।

(३) **युधिष्ठिर** युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का समय कल्हण प्रथम गोनन्द का प्रथम वर्ष राजत्व काल देता है। यही समय उसने अपनी काल गणना के लिये आधार माना है।

राजतरंगिणी श्लोक १८२ में कल्हण गोनन्द प्रथम का पौत्र गोनन्द द्वितीय को कहता है। कल्हण गोनन्द द्वितीय को महाभारत काल का समकालीन मानता है। इसमें कोई विरोध नही मालूम होता। युधिष्ठिर के अभिषेक तथा महाभारत युद्ध काल के आरम्भ में वर्षों का अन्तर है। इस मध्यवर्ती काल मे एक राजा का और हो जाना कोई असम्भव नही बात मालूम पडती।

महाराज युधिष्ठिर के काल निर्णय के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव से श्रीमद्भागवत (एकादश स्कन्ध) में कहा है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् कलियुग का प्रवेश होगा।

कल्हण कहता है कि मघा नक्षत्र पर जब सप्तर्षि थे। उस समय युधिष्ठिर राज्य कर रहे थे। श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के द्वितीय भाग में उल्लेख है कि जब सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर होंगे तब कलियुग का प्रवेश होगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण का स्वर्गारोहण होगा उसी दिन कलियुग का आरम्भ होगा। कल्हण वराहमिहिर की तिथि मानता है। युधिष्ठिर शक संवत् से २५२६ वर्ष पूर्व हुए थे। अर्थात् कलि संवत् ६५३ था। दूसरे वह मानते है कि गोनन्द कलियुग के आरम्भ में हुआ था। इस मत के मानने वाले कहते है कि महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ था। कल्हण और नीलमत पुराण दोनो गोनन्द से काश्मीर का इतिहास प्रारम्भ करते हैं।

कलि संवत् का आरम्भ ३१०१ वर्ष ई० पू० से माना जाता है। यहोल के जैन शिलालेख से प्रकट होता है कि यहोल मन्दिर का निर्माण राजा पुलकेशिन् द्वितीय चालुक्य वंशीय ने महाभारत के ३७३५ वर्ष पश्चात् अर्थात् वर्तमान प्रचलित शक संवत् ६५६ में कराया था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इस समय के प्रचलित शक संवत् के ३१९७ वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ था।

आइने अकबरी में अबुलफजल लिखता है कि विक्रमादित्य से ३०४४ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर राजा हुए थे।

राजतरंगिणी के प्रथम तरंग के श्लोक ४४ तथा ४९ से प्रकट होता है कि महाभारत द्वापर के अन्त में हुआ था। मिताक्षरा की भूमिका में श्री बापूदेव शास्त्री लिखते हैं कि कलियुग की प्रथम शताब्दी में परीक्षित् का जन्म हुआ था। राजा

कश्मीरेन्द्रः स गोनन्दो वेल्लद्गङ्गादुकूलया ।
दिशा कैलासहासिन्या प्रतापी पर्युपास्यत ॥ ५७ ॥

५७. वह दिशा[1] जिसका तुषार मण्डित जाज्वल्यमान कैलास हास था, जिसका दुकूल कल्लोलिनी गंगा थी[2], प्रतापी काश्मीरेन्द्र गोनन्द[3] की उपासना करती थी ।

जनमेजय के समय कलियुग के १२५ वर्ष व्यतीत हो चुके थे । श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति का मत है कि कलियुग के ८० वर्ष बीतने पर राजा परीक्षित का जन्म हुआ था ।

ज्योतिष ग्रंथ खंड-खाद्य के रचनाकार ब्रह्मगुप्त थे । (शक ५२० संवत्) उसने प्राचीन ज्योतिष आर्यभट के आधार पर गणना की है कि विक्रमादित्य के समय कलि के ३०४४ वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।

निर्णय सिन्धु से मालूम होता है कि शक सवत् मे यदि ३१७९ वर्ष और जोड दिया जाय तो कलियुग का आरम्भ तथा युधिष्ठिर के राज्यकाल का ज्ञान हो जायगा ।

नीलमत पुराण मे गोनन्द का उल्लेख आता है । कल्हण ने गोनन्द सम्बन्धी सामग्री नीलमत से ली होगी । यहाँ नीलमत का कुछ श्लोक उद्धृत करना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित होगा ।

इममर्थं पुरा जातु गोनन्दाख्यो नृपोत्तमः ।
तीर्थयात्राप्रसंगेन बृहदश्वमुपागतम् ॥
28 : ४८

गोनन्द उवाच :

मन्वन्तरेषु पूर्वेषु नासीद्देशमिमं किल ।
काश्मीराख्यं बभूवास्मिन्कथं वैवस्वतेऽन्तरे ॥
29 : ५०

एवमुक्त्वा स गोनन्दो बृहदश्वेन भूभुजा ।
372 : १५८

एवमुक्तोऽपि गोनन्दो बृहदश्वेन भूमिप ।
प्रावर्तयत् समुच्छिन्नानाचारान् कालदोषतः ॥
875 : १०४६

काश्मीरकस्तु गोनन्दो बृहदश्वेन भाषितम् ।
श्रुत्वा स्वकीयम् आचारम् किमपृच्छदतः परम् ॥
778 : १०४९

वैशम्पायन :

काश्मीरकस्तु गोनन्दो बृहदश्वेन भाषितम् ।
श्रुत्वोवाच मुनिश्रेष्ठं बृहदश्वं नराधिपः ॥
879 : १०४९

वैशम्पायन उवाच :

एवमुक्त्वा स गोनन्दं बृहदश्वो नराधिपम् ।
धर्मात्मा तीर्थयात्रार्थं जगामाभीप्सितां गतिम् ॥
1366 : १५८२

बहु मेने तथात्मानम् गोनन्दः समरप्रियः ।
स प्रशशास वसुधां राजा धर्मानुसारतः ॥
1379 : १५८३

गोनर्द और गोनन्द दो भिन्न नाम हैं । गोनर्द एक प्रदेश का नाम हैं । हेमचन्द्र ने गोनर्द को योगसूत्र तथा महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि मुनि का निवास स्थान माना है । गोनर्द उत्तर प्रदेश के गोण्डा जिला का प्राचीन नाम है । गोनर्द व्यक्ति विशेष का नाम भी हो सकता है ।

पाठभेद :

'कश्मारेन्द्रा' का 'काश्मीरेन्द्रा', 'नन्दा' का नर्दो' तथा 'दुकूलया' का 'दुगूलया' पाठभेद मिलता है ।

दटिप्पणियाँ :

५७ (१) दिशा : यहाँ दिशा का अर्थ उत्तर दिशा होगा । कैलास तथा गंगा दोनो उत्तर दिशा मे है । कश्मीर स्वत उत्तर दिशा मे है । कश्मोर की सीमा का भी वर्णन परोक्ष रूप से कल्हण ने किया है।

विहाय देह शेषाहेर्विषाश्लेषभयादिव ।
भूर्गारुत्मतरत्नाङ्के भेजे तस्य भुजे स्थितिम् ।। ५८ ।।

५८. पृथ्वी शेषनाग के विष के भयभीत होकर शेष नाग के शरीर का त्याग कर गरुड़ के पवित्र रत्नो[१] द्वारा आभूषित राजा की भुजाओ का आश्रय थी ।

काश्मीर के उत्तर पूर्व निस्सन्देह कैलास है । गगा पूर्व मे पडती है। वह कश्मीर की कभी सीमा नही हो सकती । किन्तु कश्मीर मे गगा से अभिप्राय सिन्धु नदी से भी लिया जाता रहा है । नीलमत पुराण के पद–'गगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा' से प्रतीत होता है कि यहाँ उस सिन्धु से तात्पर्य है जो दरस उपत्यका से प्रवाहित होती काश्मीरी प्रयाग के समीप वितस्ता में आकर मिलती है। जोनराज भी सिन्धु से मानसावल सरोवर में नहर लाने की बात का उल्लेख करता है । प्राचीन लेखको ने सिन्धु का उद्गम गगा झील अर्थात् गगवल के उत्तर पूर्व हरमुख शिखर के हिमानी को माना है । कश्मीर मे अनेक जल स्रोतो को गगा नाम दिया गया है । यहाँ दुकूल अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र से अर्थ इसी नदी से लगाना चाहिए । मै जोजिला पास से श्रीनगर लौट रहा था। मार्ग मे सडक सिन्धु के तट से जाती है । मुझे कल्हण का यह श्लोक याद था । सिन्धु का जल पाषाण शिलाओ से टकराता उछलता इस प्रकार चलता है कि मालूम पडता है उज्ज्वल महीन दुकूल हवा मे भर कर उडने की कोशिश कर रहा है । यह मत मान्य नही किया जा सकता कि इस श्लोक द्वारा कश्मीर मण्डल की सीमा गोनन्द के समय कैलास तथा वर्तमान गगा नदी अर्थात् उत्तर प्रदेश तक थी ।

(२) **गंगा** काश्मीरी साहित्य मे सिन्धु को गगा अर्थात् उत्तर गगा नाम से सम्बोधित किया गया है । यह हरमुख शिखर के ईशान कोणीय हिमानी अर्थात् ग्लेशियर के अधोभाग मे है । सिन्धु नदी द्रस उपत्यका तथा हरमुख पर्वत के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रो के जल को ग्रहण करती है। वितस्ता की सिन्धु सबसे बडी शाखा नदी है ।

काश्मीरी सिन्धु नदी को गगा तथा वितस्ता को यमुना कहा गया है । नीलमत पुराण का उल्लेख यहाँ सगत होगा ।

गगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ।'
—294 . २९७–२९८

५७ (२) **गोनन्द** . गोनन्द काल से सीमा का अनुमान किया जा सकता है । नीलमत पुराण मे इस काल का उल्लेख है '

कुरुपाण्डववेलाया भूमिर्भगवता स्वयम् ।
पाविताभूद्दितिसुतानवतीर्णान् जघान यत् ॥
10 १०

तस्मिन् कालेऽत्र समभूत् राजा विशदकीर्तिमान् ।
काश्मीरान् पालयन् सौम्य गोनन्द इति सज्ञया ॥
11 ११

युधिष्ठिर तथा अर्जुन के नामो का उल्लेख मुझे नीलमत में नही मिला । कश्मीर के प्रसिद्ध नागो में युधिष्ठिर तथा अर्जुन का नाम आता है । महाभारत के राजा तथा उसके पात्र के रूप में वर्णन नही मिलता ।

हवोत्सव. शठ शाण्य. शत्रुघ्नो रामलक्ष्मणौ ।
महादेव कामपालो गोशिरा सयुधिष्ठिर ॥
913 १०७९ १०८०

पानीयश्चाप्यनीकश्च कनकाख्य कलिंकक ।
अर्जुन पौण्डरीकश्च धनदो नदकूवर. ॥
886 . १०५६

पाठभेद ·

श्लोक स० ५८ में 'देहम्' का 'दिशम्', 'विनाश्ले' को 'र्होर्वषश्लि' तथा 'रत्नाङ्के' का 'रत्नाङ्ग' पाठभेद मिलता है ।

साहायकार्थमाहूतो जरासन्धेन बन्धुना ।
स संरुरोध कंसारेर्मथुरां पृथुभिर्बलैः ।। ५६ ।।

५८. अपने बन्धु जरासन्ध[१] के सहायतार्थ आवाहन पर राजा गोनन्द ने[२] कंस के शत्रुओं को मथुरा नगर में अपनी सेना से घेर लिया ।

पादटिप्पणियाँ :

५८ गरुड़प्रियरत्न : गरुड का प्रिय रत्न मरकत किंवा हरिन्मणि । यहाँ कल्हण अत्यन्त सुन्दर रूपक खीचा है । इससे ज्ञात होता है । कल्हण ने शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन किया था ।

रत्नका गुण उसकी चमक किंवा ज्योति है । रत्न गरुड का आभूषण है । नाग तम है । उनका अति भयकर विषैला रूप काला है । तम का रग काला होता है । ज्योति एवं तम का सघर्ष विश्व का मूल है । गरुड तथा सर्पो किंवा नागो के परम्परा गत संघर्ष का यही आधार है । इसकी लाक्षणिक मूर्तियाँ कुषाण काल की मथुरा सग्रहालय में संग्रहीत है ।

गरुड का रूप विग्रह है । पुरुष एवं पत्नी का मिश्रित आकार नरसिंह के समान है । विष्णु के वाहन हैं । पक्षियो के राजा है । गरुड का मुख्य लक्षण गति है । यह गति छद युक्त कही गयी है । भागवत मे छदोमय गरुड कहा गया है । बिना दो पखो के गति नही होती । इसी प्रकार बिना दो पदो के छद नही होता । गति एक छद किंवा ताल युक्त क्रिया मानी गयी है । पखो के सिकुडने और फैलनेसे पक्षी गतिशील होता है । वैदिक पुरुष इसी को सकुचन और प्रसारण कहते हैं । ऋग्वेद में गरुड को, अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि के समकक्ष रखा गया है ।

शेष नाग अर्थात् अन्धकार से पृथ्वी भयभीत होती है । अन्धकार ज्योति से दूर होता है । गरुड को देखते ही अन्धकार किंवा नाग भागते है । कल्हण गोनन्द की भुजाओ पर गरुड़प्रिय रत्नो का उल्लेख कर बताना चाहता है कि राजा की भुजाओ मे अमित बल था । वे पृथ्वी को भयहीन, अन्धकार हीन करने की भुजबल से सामर्थ्य रखते थे ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५९ मे 'स सरू' का पाठभेद 'सम रू' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५९ (१) जरासध जरासध का पिता वायु पुराण के अनुसार नभस् था । भागवत, विष्णु तथा मत्स्य पुराणो के मतानुसार वह बृहद्रथ का पुत्र था । अतएव जरासंध को बार्हद्रथि भी कहते है । हरिवंश पुराण के अनुसार उसके पिता का नाम सभव था ।

काशीराज की दो युगल कन्याएँ थी । उन दोनो से बृहद्रथ ने विवाह किया था । उन्हें बहुत दिनो तक सन्तान नही हुई । काक्षीवत पुत्र चन्द्रकौशिक ने राजा को पुत्रप्राप्ति निमित्त एक आम का फल दिया । राजा ने दोनो पत्नियो को आधा आधा फल खिला दिया । कालान्तर मे दोनो रानियो के गर्भ से आधा आधा शरीर के बालक उत्पन्न हुए । उन्होंने नवजात शिशु के चौराहा पर रखवा दिया ।

जरा नामक राक्षसी ने उन्हे जोड दिया अर्थात् दोनो टुकडो को सन्धि मे मिला दिया । शिशु जी उठा । राक्षसी उसे ले जाना चाहती है । बालक रोने लगा । रुदन सुनकर राजा बाहर आया । राक्षसी ने बालक राजा को दे दिया । बालक का नाम जरासध पडा । (महाभारत सभापर्व १६–१७ तथा मत्स्य पुराण)

भागवत के अनुसार बृहद्रथ के एक ही पत्नी के बालक के दो अलग अलग भाग पैदा हुए । जरा राक्षसी ने मन्त्र बल से उन्हे जोड दिया । अतएव उसका नाम जरासध पडा । (भागवत ९ २२)

तेनोपकूलं कालिन्द्याः स्कन्धावारं निबध्नता ।
यादवीहसितैः सार्धं योधानां मीलितं यशः ॥ ६० ॥

६०. कालिन्दी पुलिन[1] मे काश्मीरी सेना ने जिस समय अपना शिविर स्थापित किया उस समय यादवीय सेना का गौरव यादवी ललनाओ की स्मित रेखाओ के साथ लुप्त हो गया ।

एकदा सर्वतो भग्नाः स्वसेनास्त्रातुमुद्यतः ।
तं संरुरोध योद्धारं संगरे लाङ्गलध्वजः ॥ ६१ ॥

६१. एक समय पलायनोन्मुख भग्न यादवी सेना की रक्षा निमित्त लागलध्वज[1] उस योद्धा (गोनन्द) से युद्ध में रत हुए ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ६० मे 'स्कन्धावारम्' का पाठभेद 'स्कन्दावारम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

६० हरिवश पुराण (२ ३५) के अनुसार कश्मीराधिपति गोनन्द मथुरा के पश्चिमी घेरे की ओर अपनी सेना सहित युद्ध निमित्त तत्पर था ।

जरासध के नेतृत्व मे मथुरा चारो ओर से महा विशाल सेना द्वारा घेर ली गयी थी । निम्न रूप से चारो दिशाओ मे घेरा डाला गया था ।

पूर्वीय मोर्चा और घेरे पर उलूक, केतव, अशमान राजा का पुत्र एकलव्य, बृहत्क्षत्र, बृहद्धर्मन्, जयद्रथ, उत्तमोजस, शल्य, कौरव, कैकेय, वैदेशि, वामदेव, तथा शिनि देश का राजा साकृति था ।

पश्चिमी मोर्चो पर—मद्रराज, कलिगपति, चेकितान, बाल्हीक, काश्मीर राज गोनन्द करूपेश द्रुमराज, किम्पुरुष, तथा पर्वतीय राज अनामय था ।

उत्तरीय मोर्चो पर—कुरु कुलोत्पन्न, वेणुदारि, विदर्भाधिपति सोमक राज, भोजेश्वर रुक्मिन्, सूर्याक्ष तथा मालवेश, अवन्ति देश के विंद तथा अनुविंद, दन्तवक्र, छागलि, पुरमित्र, विराट्, कौशल, मालव, शतधन्वा, विदूरथ, भूरिश्रवा, त्रिगर्त, बाण तथा पचनद के राजा एव योद्धा गण एव दक्षिणी मोर्चो पर—रुक्म, वेणिराज तथा स्वय जरासंध था ।

राजाओ तथा योद्धाओ की यह तालिका अपूर्ण है । उनके नामो मे भी विभिन्नता है । किन्तु गोनन्द कश्मीरराज का नाम सभी सूचियो मे है । (हरिवश पुराण २ ३४) अतएव यह प्रमाणित और निर्विवाद हो जाता है कि नीलमत पुराण तथा कल्हण वर्णित यह बात साधिकार प्रमाणित है कि गोनन्द कश्मीरराज जरासध का पक्ष लेकर मथुरा के आक्रमण में सम्मिलित था ।

श्री कृष्ण की ओर से युद्ध मे भाग लेने वाले राजाओ का नाम स्पष्ट नही मिलता । महाभारत सभा पर्व (१४ ३५) से इतना ही मालूम होता है कि १८ कुलो ने मिलकर जरासध के आक्रमण का सामना करने की योजना बनायी थी ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ६१ में 'भग्ना' का 'भग्न' तथा 'स्वसेना' का पाठभेद 'स्वसेवा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

६१ लागल ध्वज—इसका शाब्दिक अर्थ हलध्वज होता है । यहाँ बलराम किंवा बलभद्र के लिये आया है । बलभद्र आयु मे श्री कृष्ण से तीन मास ज्येष्ठ थे । पिता वसुदेव तथा माता रोहिणी थी । इस प्रकार श्री कृष्ण विमातृ भाई थे । वे अत्यन्त सुन्दर थे । एतदर्थ इनको राम कहा जाता था । अत्यन्त बली थे । इसलिए 'बलराम' नाम पड़ गया । इनका नाम 'हली' 'हलायुध' 'सीरपाणि' 'मुसली' 'मुसलायुध' 'हलधर' आदि है ।

तयोस्तुल्यौजसोर्युद्धे चिराय करवर्तिनी ।
मम्लौ विजयसंदेहे वरणस्रग्जयश्रियः ।। ६२ ।।

६२. दोनों तुल्य बलशाली योद्धाओं के संघर्ष से विजय सन्देहात्मक हो गया और विजय देवी के करपल्लवों की वैजयन्ती अधिक समय तक हाथ में रहने के कारण म्लान हो गयी ।

बलराम सर्वदा नोल वस्त्र धारण करते थे । कमल की माला पहनते थे । गदा युद्ध मे अत्यन्त प्रवोण थे । जरासध वध निमित्त तपस्या द्वारा 'संवर्तक' नामक हल तथा 'सौनद' नामक मुसल प्राप्त किया था । महाभारत के युद्ध मे यह किसी पक्ष से भाग नही लिये थे ।

पाचरात्र शास्त्रो के अनुसार बलभद्र भगवान् वासुदेव के व्यूह किंवा रूप हैं । शुंग कालीन बलराम की मूर्तियाँ मिली है । बलराम शेष के अवतार माने गये हैं । अतएव उनकी मूर्तियो के पृष्ठ भाग मे शेष की मूर्तियाँ किंवा आभोग बना दिखाया रहता है । मूर्तियाँ हल, मूसल, युक्त कही द्विभुज और कही चतुर्भुज मिलती हैं । उनके कर्णों मे एक ही कुण्डल कही कही दिखाया गया है । एक कुण्डलधारी होना 'बृहत्संहिता' द्वारा समर्थित है । कुषाण तथा गुप्त कालीन बलराम की मूर्तियाँ सिह कुण्डल युक्त दिखायी गयी हैं । बलराम का विवाह रेवत की कन्या रेवती से हुआ था ।

बूमरैंग तथा हल—आस्ट्रेलिया के भ्रमण काल में (स० १९५०) मैंने बूमरैंग का चलाना देखा था । बूमरैंग का रूप हलसदृश हो जाता है यदि उसके हरीस का लम्बा भाग छोटा कर दिया जाय । बलराम ने तपस्या द्वारा यह अस्त्र पाया था । अतएव यह अस्त्र वास्तव मे हलाकार रहा होगा । आस्ट्रेलिया के सग्रहालय में मैंने एक प्राचीन गणेश की मूर्ति भी देखी थी । उसी समय मैंने सोचा था कि कभी आस्ट्रेलिया और भारत से निकट का सम्बन्ध था जो भारतीय पराधीनता के कारण टूट गया । यह एक कल्पना मात्र है । यदि यह अस्त्र था तो तो वह बूमरैंग की तरह ही रहा होगा कि आजकल के बडे हल के समान जिसका उठाना और चलाना कठिन है । । (विशेष द्रष्टव्य 'आस्ट्रेलिया' काशी)

लागलध्वज, वृषभध्वज, हनुमानध्वज, गरुड-ध्वज आदि झण्डो पर लगे चिह्न को भी कहते हैं । बलराम के ध्वज पर लागल अर्थात् हल का चिह्न अंकित रहा होगा अतएव उन्हें लागलध्वज कहा गया है ।

पुराण से प्रकट होता है । यादव सेना अल्प संख्या में थी । तथापि बलराम तथा श्री कृष्ण के रण चातुरी एवं वीरता के कारण रण मे विजय प्राप्त की थी । (हरिवंश पु० २ : ३६)

श्री रणजोत सीताराम पण्डित इस श्लोक की टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि बलराम सर्व साधारण जनता मे से उठे थे । उन्होने हल को जो परिश्रम-शील जनता का प्रतीक था अपना प्रतीक बनाया ।

बलराम श्री कृष्ण के भाई थे । राजवंशी थे । राजपुत्र थे । कुलीन थे । मथुरा राज्य का अधिकार प्राप्त किया था । तत्कालीन कुलीनो ने तुल्य राज्य में भाग लिया था । हल कृषक वर्ग का निश्चय प्रतीक हो सकता है परन्तु समस्त जनता का नही हो सकता । सन् १९४८ मे कृषक मजदूर प्रजा दल का सघटन हुआ था तो हल और दानेदार चक्र उसका प्रतीक था ।

निस्सन्देह कल्हण ने लागलध्वज शब्द का यहाँ प्रयोग किया है । उसका अर्थ जैसा ऊपर लिखा गया है ध्वजा पर अंकित किंवा बना हल प्रतीक है । वृषभध्वज शिव के समान उनका भी नाम हल प्रतीक के कारण लागलध्वज पड गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२ मे 'वरणस्र' का पाठभेद 'किं जयस्र, मिलता है ।

अथ शस्त्रक्षतैरङ्गैरालिलिङ्ग रणाङ्गणे ।
भुवं काश्मीरको राजा यादवस्तु जयश्रियम् ।। ६३ ।।

६३. अन्तत. युद्धभूमि मे दोनों योद्धाओं के अंग परस्पर प्रहार द्वारा आहत हो गये थे। काश्मीरराज ने समर भूमि का आलिगन किया और यादवराज का आलिगन किया विजय ने।

पादटिप्पणियाँ

६२. प्रतीत होता है। दोनों योद्धा बलराम तथा गोनन्द समान बलशाली थे। यादव सेना पलायनशील थी। उसमें बलराम के युद्ध में जमने के कारण नव शक्ति आ गयी थी। बलराम तथा गोनन्द का द्वन्द्व युद्ध बहुत समय तक चलता रहा।

इस युद्ध वर्णन से यह मालूम होता है कि प्रथम बलभद्र ने जरासध पर आक्रमण किया था। वह दक्षिणी मोर्चा पर था। बलराम के द्वारा जरासध का वध सम्भव नही था। अतएव वह पश्चिमी मोर्चा पर आक्रमण किया, जहाँ कश्मीरी वाहिनी राजा गोनन्द के नेतृत्व मे युद्ध निमित्त सन्नद्ध थी।

विजयमाला को वैजयन्ती कहते है। हाथियो के दाँतो पर माला भारतीय स्थापत्यो मे लगी दिखायी पड़ती है। यह माला गाथानुसार हाथी किसी व्यक्ति के गले मे डाल देता था। वह व्यक्ति राजा चुन लिया जाता था। राजा चुनने की यह अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन एव केन्द्रीय मन्त्रालय के भवनो पर हाथी के मस्तकके बिना ही दातो पर माला लिपटा पत्थरो में खोदकर दिखाया गया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ६३ में 'काश्मीरको' का पाठभेद कश्मीरको' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

६३. नीलमत पुराण गोनन्द के पराजय का कारण देता है —'राजा गोनन्द ने नील मुनि द्वारा निर्धारित कुछ अनुशासनो का पालन नही किया था अतएव मथुरा में बलभद्र द्वारा पराजित हो गया था। यदि कश्मीर के राजा नील द्वारा निश्चित आदेशो का पालन करेंगे तो उनकी अकाल मृत्यु नही होगी। कश्मीर मण्डल में कभी भय उत्पन्न नही होगा।' श्लोक सख्या (८७५,८७६)।

वृष्णि अर्थात् यादव सेना ने निस्सन्देह विजय पायी थी। कश्मीरराज ने वीर गति पायी। किन्तु जरासध जीवित रहा। अपनी शेष सेना के साथ मगध लौट गया। इस युद्ध पर महापुराणो तथा महाभारत के आधार पर और विशेष लिखना अप्रासगिक होगा।

इस युद्ध के बीस वर्ष पश्चात् महाभारत का युद्ध हुआ था।

गिरिवज्र मे जरासध तथा भीम का गदा युद्ध प्रारम्भ मे आरम्भ हुआ। यह युद्ध कार्तिक शुक्ल को आरम्भ हुआ था। गदा टूट जाने पर मल्ल युद्ध हुआ। यह युद्ध महाभारत सभा पर्व (२१ १७,१८) के अनुसार १४ दिन, पद्मपुराण (उ० २७९) के अनुसार २५ दिन, भागवत (१०:७२) के अनुसार ४० दिनो तक चलता रहा। जरासंध को भीम ने बीच से चीर दिया था। सधि खुल गयी। जिस रूप में वह जन्मा था उसी रूप में मर गया।

आइने अकबरी में अबुल फजल गोनन्द का नाम ओगनन्द देता है। वह कहता है—कृष्ण के ज्येष्ट भ्राता बलराम द्वारा गोनन्द मारा गया। वह मेहतरा (मथुरा) तथा (विहार) के राजा जरासध के बीच हुआ था।

हसन गोनन्द को आदि गोनन्द कहता है। गोनन्द के वश के विषय मे वह लिखता है—इस राजा ने अराकीने सल्तनत की मरज़ी से सन् कल जुग की इब्तदा से बीस साल पेश्तर तख्त कश्मीर पर जलवागिरी फरमाई। बाज मुवरखो के नज़दीक

गतिं प्रवीरसुलभां तस्मिन्सुक्षत्रिये गते ।
श्रीमान्दामोदरो नाम तत्सूनुरभृत क्षितिम् ॥ ६४ ॥

६४. जब उस सुक्षत्रिय ने प्रवीर सुलभ गति[१] प्राप्त कर ली तो उसका यशस्वी पुत्र श्रीमान् दामोदर क्षिति की रक्षा में तत्पर हुआ।

भोगयोगोर्जितं राज्यं प्राप्तवानपि भूपतिः ।
ध्यायन्पितृवधं मानी नोपलेभे स निर्वृतिम् ॥ ६५ ॥

६५. यद्यपि उस भूपति ने भोग सम्पत्ति सम्पन्न राज्य अर्जित किया था तथापि पितृ वध का ध्यान उदय होते ही उस मानी को शान्ति दुर्लभ हो जाती थी।

यह भी राजा जम्मू के खान्दान में था। और बाज ने इसे मथुरा का पोता खयाल किया है। उसने हकूमत का नज्म व नस्ख निहायत खूबी से सरंजाम दिया। उन दिनो हिन्दुस्तान मे जरासन्ध राजा की हकूमत को उसने श्रीकृष्ण जी महाराज के साथ विनाय मुखासवत डाली हुई थी। राजा आदि गोनन्द अपनी करीबी रिस्तादारी के पेश नजर एक बडी भारी फौज कश्मीर से लेकर राजा जरासन्ध की मदद को रवाना हुआ। अपना लाव लश्कर लेकर उनके साथ मसरूफ पैकार था। दरया जमुना के किनारे फरीकों की फौजो के मावैन में बडा भारी रण पडा। आखिर मे किसी वजह से राजा आदि गोनन्द की फौज में भगदड पड गयी। खुद राजा मजकूर साबिक कदम रहा। और दाद सुजाअत देता हुआ वलभद्र जी विरादर श्री कृष्ण जी महाराज के हाथो मैदान कार जार से काम आया। मुद्दत हकूमत सत्तरह साल।'

हरिवश पुराण विष्णु पर्व ४१ २८ मे स्पष्ट उल्लेख है कि अन्य राजाओ के साथ कश्मीर राजा ने जरासन्ध का पक्ष लेकर मथुरा पर आक्रमण कर कृष्ण से युद्ध किया था।

मद्रः कलिंगाधिपतिश्चेकितानश्च वाह्लिक. ।
कश्मीरराजो गोनर्दः करूषाधिपतिस्तथा ॥

पादटिप्पणियाँ ·

६४ (१) गति : कल्हण यहाँ पर भारतीय वीर परम्परा की ओर संकेत करता है। क्षत्रियो को स्वर्ग प्राप्ति युद्ध स्थल मे होती है। प्रासादो मे बैठकर जीवन व्यतीत करना और मर जाना यह क्षत्रियो किंवा आयुधधारियो का कभी भारतवर्ष में आदर्श नही रहा और न इस प्रकार के जीवन को भारतीय कभी अच्छा मानते थे। विजय दशमी के दिन अर्थात् चातुर्मास के पश्चात् विजय यात्रा का मुहूर्त माना जाता था। इस दिन प्रतापी राजा विजय यात्रा निमित्त निकलते थे। सन् १९४७ के पूर्व प्राय. सभी भारतीय राजाओ के यहाँ सुसज्जित सेना प्रयाण करती थी। अस्त्र-शस्त्र को पूजा होती थी। समरागण मे वीर गति प्राप्त करने से बढकर क्षत्रियो के लिये और कोई श्लाघनीय मृत्यु नही मानी जाती थी।

६५. जरासंध मगध का सम्राट् था। उसके पुत्र का नाम सहदेव था। उसकी दो कन्याएँ अस्ति तथा प्राप्ति का विवाह मथुरा के राजा कस के साथ हुआ था। महाभारत में कहा गया है कि जरासध ने सम्राट् का पद प्राप्त किया था। चेदि का राजा शिशुपाल उसका सर्वप्रधान सेनाध्यक्ष था। जरासध एक संघ का सम्राट् था। महाभारत मे प्रमाण मिलता है कि बहुत से राजा मिलकर एक सम्राट् का निर्वाचन करते थे। उसे उस पद पर अभिषिक्त करते थे। राजाओ ने एकता की दृष्टि से यह प्रथा चलाई थी। जरासध ने मालूम होता है सम्राट् होने पर इस सिद्धान्त को अवहेलना की थी। (सभापर्व अ० १८, आदिपर्व अ० १०० ७) मथुरा का बडा महत्त्वपूर्ण इतिहास है। रामायण,

अथोपसिन्धु गान्धारैः सज्जे कन्यास्वयंवरे ।
निमन्त्र्य शुश्रावाऽऽनीतान् वृष्णीन् दर्पोष्णदोर्द्रुमः ।। ६६ ।।

६६ जिसकी भुजाएँ वृक्ष तुल्य शक्तिशाली थी। जो दर्प की गर्मी से गर्वित था, उस राजा ने सुना-सिन्धुतट पर गान्धारो[1] ने कन्या स्वयंवर सज्जित कर वृष्णियो को विशेष रूप से आमन्त्रित किया था।

पुराण तथा महाभारत के आधार पर गाथा कहती हैं। मधु का पुत्र लवण था। लवण को पराजित कर राम के कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी की स्थापना की थी। दानवों के आक्रमण के कारण वृष्णि तथा अन्धक लोगो ने मथुरा त्याग दिया। द्वारिका मे आबाद हो गये। (हरिवंश पुराण विष्णु पर्व ३८ ४०)

कृष्ण द्वारा कस का वध हुआ था। उसने समाचार सुना कस के पुत्र को शूरसेन का राजा घोषित किया। जरासध ने मथुरा पर आक्रमण किया। इस कार्य के लिए उसकी दोनो विधवा पुत्रियाँ उसे प्रोत्साहित करती रहती थी। परन्तु जरासध पराजित हुआ। उसने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किया था। (हरिवंश पुराण ३७ ४४)। उसकी सहायता हिमालय के पर्वतीय चेकितान, वाह्लीक, कश्मीर, करूप, किन्नर, दरद आदि राजाओ ने की थी। पुराण इस बात का समर्थन करते हैं। जरासंध तथा कृष्ण का युद्ध हुआ था। उसकी सहायता पर्वतीय राजाओ ने की थी। गोनन्द का जरासन्ध की सहायता निमित्त आना असभव नही प्रतीत होता। पुराणो से भी इसकी पुष्टि होती है।

श्रीकृष्ण भीम तथा अर्जुन ने मिलकर कालान्तर मे जरासध को मारने के लिए योजना बनायी। ब्राह्मण वेश धारण कर उसके नगर मे गये थे। भीम के साथ जरासध का द्वन्द्व युद्ध हुआ। जरासध शक्तिशाली प्रतीत हुआ। पर कृष्ण ने सकेत किया। भीम ने जरासध का एक पैर अपने पैर के नीचे दबाकर दूसरा पैर उठाकर चीर दिया। इस प्रकार जरासध का शरीर अपने पूर्व जन्मकालीन रूप दो शक्लो में हो गया। शरीर की सन्धि छिन्न हो गयी। यह निर्विवाद है। जरासध शक्तिशाली राजा था। उसका खुला सामना कर उसे पराजित करना सरल नही था। अतएव तत्कालीन युद्ध प्रचलित परम्परा तथा नीति का अतिक्रमण कर उसकी छल द्वारा हत्या की गयी। सभव है। कस की हत्या के प्रश्न को लेकर विवाद खडा हुआ होगा। उसमे जरासध का पक्ष न्यायोचित जानकर कश्मीर के राजा गोनन्द तथा भारत के अन्य राजाओ ने लिया होगा। कृष्ण के विरुद्ध उसकी सहायता किये होगे।

सम्राट् जरासध की मृत्यु के पश्चात् मगध का साम्राज्य नष्ट हो गया। पाडवो का चक्रवर्ती राजा होना निष्कटक हो गया। जरासध वध महाभारत सभापर्व का एक अवान्तर पर्व है। अध्याय ३०–२४ तक में वर्णन मिलेगा।

(पुराण विष्णु ४ १९ ९९, भागवत ९ २२ ७-८, १० ५०, १० ७२,१५–४६,हरिवश ३२ ९६–९६, ३७, वायु ९९ २२५–२२६)

पाठभेद

श्लोक सख्या ६६ में 'शुश्रावा' का पाठभेद 'शुश्रुवा' तथा 'दर्पोष्ण' का 'दर्पोस्म' मिलता है।

पादटिपणियाँ :

६६ (१) गान्धार गान्धार प्रदेश के उल्लेखो से भारतीय वाङ्मय भरा है। तक्षशिला से काबुल तक की भूमि गान्धार नाम से प्रख्यात थी। इसी प्रकार सिन्धु महानद से शतद्रु अर्थात् सतलज नदी के मध्यवर्ती भाग किंवा अन्तर्द्रोणी को वाहीक कहते थे। उसमें उशीनर, मद्र तथा त्रिगर्त के क्षेत्र सम्मिलित थे। गान्धार तथा वाहीक प्रदेशो का सम्मिलित नाम उदीच्य था। प्राच्य तथा उदीच्य की मध्यवर्ती सीमा शरावती नदी थी। गान्धार का उल्लेख नीलमत पुराण मे आता है

प्राचीन कपिशा नगरी अफगानिस्तान में थी। उसका वर्तमान नाम बेग्राम है। यहाँ कपिशा नामांकित शिलालेख प्राप्त हुए हैं। कपिशा के उत्तर कंबोज हैं। यह पामीर की मध्येशिया स्थित अधित्यका है। कम्बोज के पूर्व तारिम नदी है। उसी के समीप कुचा प्रदेश है।

गान्धार से प्राच्य तक के क्षेत्र में पाणिनि काल में संस्कृत भाषा प्रचलित थी। गान्धार, कपिशा, वाह्लीक एव कम्बोज महाजनपद पाणिनि काल मे भारत के उत्तर पश्चिम में थे। कम्बोज काशगर के दक्षिण का प्रदेश था। हिन्दूकुश के दक्षिण पूर्व मे गाधार, दक्षिण-पश्चिम मे कपिशा, उत्तर-पश्चिम वाल्हीक तथा उत्तर-पूर्व मे कंबोज जनपद थे।

गाधार को यूनानियो ने 'गन्दराई' नाम दिया है। उस समय यह प्रदेश तक्षशिला से कुनड नदी तक विस्तृत था। पश्चिमी गाधार की राजधानी पुष्कलावती थी। उसका सम्बोधन यूनानियो ने 'पिउकलाउती' से किया है। वह स्वान तथा काबुल नदी का संगम स्थान वर्तमान चारसद्दा है। मारकण्डेय पुराण (५७ : ३९) मे 'पुष्कला' जनपद का उल्लेख आया है।

दार्वाभिसार गान्धार जुहुण्डर शकान् खसान्।
तङ्गणान् माण्डवान् मद्रानन्तगिरिर्बहिर्गिरीन् ॥
80 : १२१, १२२

यह श्लोक नीलमत मे किंचित् पाठभेद से पुन. मिलता है।

दार्वाभिसार गान्धार जुहुण्डर शकाः खसाः।
तगणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिबहिर्गिरिः ॥
139 : १८२, १८३

गान्धार का एक नाग रूप से वर्णन मिलता है।

उरूचः क्रोकणो वायुः शुक्रो वैश्रवणो यम.।
मण्डूकनासो गान्धारो नागः शूर्पारकिध्वनि. ॥
894 : १०६४

गाधार देश के राजा आरव्व का नाम भागवत पुराण मे, सेतुपुत्र का नाम विष्णु पुराण मे, शरद्वान का नाम वायु पुराण मे आया है। शकुनी भी गाधार के राजा थे। शकुनी दुर्योधन के मामा तथा महाभारत युद्ध मे शल्य के पश्चात् कौरव सेना के सेनापति हुए थे।

गान्धार राज : शकुनी पार्वतीय · उद्योग पर्व ३० २७ मे उल्लेख मिलता है। गान्धार का राजा दुर्योधन का मामा शकुनी था। गान्धार के एक नग्नजित् राजा का एतरेय ब्राह्मण (७ : ३४) मे उल्लेख आता है। उससे सोमविषयक ज्ञान प्राप्त हुआ था।

सुवल राजा की कन्या गान्धारी थी। वह धृतराष्ट्र की पत्नी तथा दुर्योधन की माँ थी।

गान्धारी किल पुत्राणां शतं लेभे वरं शुभा।
इति शुश्राव तत्त्वेन भीष्मः कुरुपितामहः ॥
आदिपर्व : १०९ : ११

ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत।
अचक्षुरिति तत्रासीत् सुवलस्य विचारणा ॥
११० : १२

गान्धार·जातक तथा कुम्भकार जातक तथा बौद्धधर्म· ग्रन्थो मे गान्धार का विशेष उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद १ १२६:७ तथा अथर्व वेद ५ २२·१४ में गाधार का उल्लेख आया है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल से गान्धार का ऐतिहासिक महत्त्व था। इसकी प्रसिद्धि थी।

वाल्मीकि रामायण मे वाह्लीक, कम्बोज, दरद, चीन आदि हिमालय के पर्वतीय जनपद कह गये है। गान्धार का स्पष्ट उल्लेख रामायण मे नही किया गया है। सम्भव है कि उस समय गाधार कम्बोज, शक, वाह्लीक, आदि क्षेत्रो के अन्तर्गत समझा जाता रहा होगा अन्यथा रामायण उसका उल्लेख करने मे न चुकता।

तत्र म्लेच्छान् पुलिंदॉश्च, शूरसेनाँस्तथैव च।
प्रस्थलान् भरतॉश्चैव कुरूँश्च सह मद्रकैः ॥
काम्बोजान्यवनांश्चैव शकानारट्टकानपि।
वाह्लीकानृषिकाश्चैव पौरवानथ टंकणान् ॥

ततस्तस्यातिसंरम्भात् तानदूरस्थितान् प्रति ।
यात्राऽभूद् ध्वजिनीवाजिरेणुग्रस्तनभस्तला ॥ ६७ ॥

६७. वृष्णि जब बहुत दूर नही रह गये थे तो क्रोध जर्जरित राजा ने सवेग उनके विरुद्ध इस प्रकार अभियान किया कि उसके अश्वारोही दल के टापो की उडी धूल से आकाश भर गया।

चीनान्यपरचीनाश्च नीहारांश्च पुन पुन ।
अन्विष्य दरदॉश्च हिमवन्तम् तथैव च ॥
—वाल्मीकि रामायण
अरण्य काण्ड 43 १०, १२

बौद्ध ग्रन्थो मे गान्धार जनपद का उल्लेख अनेक स्थलो पर आया है। मोगलिपुत्र स्थविर ने तृतीय सगीति को समाप्त कर मध्यातिक स्थावर को कश्मीर तथा गाधार राष्ट्र मे धर्म प्रचारार्थ भेजा। गान्धार जनपद की राजधानी तक्षशिला थी। प्राचीन काल मे पुक्कुमाति वहाँ का राजा था। बुद्ध भारत का प्रधान शिक्षा तथा व्यापारिक केन्द्र था। तक्षशिला मे बौद्ध विद्वान् जीवक, बन्धुल मल्ल, प्रसेनजित, महालि आदि की शिक्षा हुई थी।

पाठभेद

श्लोक सख्या ६७ मे 'सरम्भात्' का पाठभेद 'सभारात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६७ (१) ध्वजिनी का अर्थ होता है ध्वजाधारी दल आज से डेढ शताब्दी पूर्व तक सेना मे अश्वारोही ध्वजाधारी होते थे। वे सेना के आगे चलते थे। ध्वजा की रक्षा करना सैनिको का परम कर्तव्य होता था। ध्वजा पकड जाने पर एक प्रकार से हार मानी जाती थी। मानी सेनानायक पराजय के समय या आत्मसमर्पण के समय ध्वजा स्वय नष्ट या भस्म कर देते थे ताकि वह शत्रु के हाथो मे पड कर अपमानित न की जा सके। सिख ध्वजा को इतना महत्त्व देते हैं कि उसकी पूजा करते हैं। प्रत्येक गुरु-द्वारा पर उसे ससम्मान स्थापित किया जाता है।

हनुमान जयन्ती कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को हनुमान जी की पूजा होती है। उस दिन नवीन ध्वजा तैयार की जाती है। उसकी विधिवत् पूजा होती है। ध्वजाभिवादन सैनिक समारोह का एक विशेष महत्त्वपूर्ण सस्कार है। ध्वजा देश के गौरव का प्रतीक माना जाता है।

२. कृष्ण दामोदर युद्ध नीलमत पुराण (श्लोक स० ६) मे मिलता है।

कल्हण ने यह प्रसग नीलमत पुराण से लिया है। नीलमत पुराण इस प्रश्न से यह विषय आरम्भ करता है। क्या कारण है। महाभारत के युद्ध मे भारत के सभी राजाओ ने भाग लिया था। काश्मीरराज राजाओ की तालिका में दिखायी नही पडते। उसका उत्तर नीलमत देता है। कश्मीर राजा शिशु थे। इसलिये कश्मीर राजा और कश्मीर की सेना महाभारत युद्ध मे भाग नही ले सकी।

मथुरा युद्ध मे गोनन्द प्रथम ने वीर गति प्राप्त की। केवल शिशु गोनन्द उस समय देवी यशोवती के गर्भ मे था। वह उत्पन्न हुआ। शिशु था। महाभारत मथुरा युद्ध के केवल बीस वर्ष पश्चात् हुआ था। इस काल मे दामोदर राजा था। उसके वीर गति प्राप्त करने पर शिशु गोनन्द द्वितीय राजा हुआ।

नीलमत पुराण (श्लोक स० ६) मे स्पष्ट उल्लेख है कि माधव अर्थात् श्रीकृष्ण मे युद्धार्थ दामोदर चतुरगिणी सेना के साथ अभियान किया था। यादव सेना श्रीकृष्ण सहित स्वयवर निमित्त गान्धार जा रही थी। नीलमत (श्लोक सख्या ७) से स्पष्ट प्रकट होता है कि दोनो राजाओ मे युद्ध हुआ और राजा दामोदर वीर गति प्राप्त किया।

जनमेजय ने वैशम्पायन से पूछा

महाभारतसग्रामे नानादेश्या नराधिपा ।
महाशूरा समायाता· पितणा मे महात्मनाम् ॥ 3·२

तदाहवे विवाहोत्का विध्न्यते स्म पतिंवरा।
आसीत्तु द्युपुरन्ध्रीणां गान्धारेषु स्वयंवरः ॥ ६८ ॥

६८ समरांगण मे जब विवाहोत्सुक गान्धारकन्याएँ पति वरण निमित्त उदास होने लगीं तो उसी समय स्वर्ग रमणियाँ [1] युद्ध स्थल में वीरों का स्वयं स्वयंवर करने लगीं।

कथं कश्मीरको राजा नायातस्तत्र कीर्तय।
पाण्डवैर्धातराष्ट्रैश्च न वृतः स कथं नृप ॥
4 : ४

काश्मीरमण्डलं चैव प्रधान जगति स्थितम् ॥
5 : ५

अथोपसिन्धुगान्धारविषयेऽभूत्स्वयंवर.।
यत्राहूताः समाजग्मू राजानो वीर्यशालिनः ॥
33 : २४

तत्रागतं समाकर्ण्य वासुदेव स्वयंवरे.।
जगाम माधवं योद्धुं चतुरंगबलान्वितः ॥
6 : २५

तत्र तस्याऽभवद्युद्धं वासुदेवेन धीमता.।
यादृशं वासुदेवस्य नरकेन सहाऽभवत् ॥
7 : २६

ततः स वासुदेवेन सुयुद्धे विनिपाततः ॥
8 : २७

अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं वासुदेवोऽभ्यषेचयत्।
भविरपुत्रराज्यार्थं तस्य देशस्य गौरवात् ॥
9 : २७–२८

नीलमत पुराण मे नाम वालगोनंद दिया गया है।

ततः सा सुषुवे पुत्रं बालगोनन्द संज्ञिनम्।
बालभावात् पाण्डुसुतैर्नानीत. कौरवैर्न वा ॥
10 : २८-२९

हसन लिखता है–'वाप के इन्तकाल के वाद व मशविरह अराकोन सलनत सन कलजुग से तीन साल पहले यह शख्स तख्त हकूमत पर बैठा। रैयत को अदल व अहसान के जरिए गुलाम बनाकर अकसर व वेशतर राजे अपने मुतईम बनाये। इन्ही दिनो राजा कन्दहार की लडकी की शादी का शोहरा दूर दराज के मुल्को मे फैल गया। बडे शान व शौकत वाले राजे महाराजे उसके स्वयंवर मे कन्दहार हाजिर हो गये। श्रीकृष्ण जी ने भी किसी वजह से इसमे शमूलियत जरूरी समझी। यह खबर सुनकर दामोदर जो अपने बाप के खून का प्यासा था एक भारी फौज लेकर श्रीकृष्ण जी के मुकाबला के लिए कन्दहार रवाना हो गया। और साथ जंग व जदल की वुनियाद डाली। राजा मजकूर श्रीकृष्ण के हाथो कतल हुआ। उसकी रानी जसोमती जो उन दिनो हामला थी मशविरह श्रीकृष्णजी महाराज अपने खाविन्द की जानशीन हुई। मुद्दत हकूमत १३ साल।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६८ मे 'विघ्न्यते' का 'विध्नति' तथा 'सीत्तु' का 'आसीत्त' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६८(१) यह एक प्राचीन गाथा है। आर्य जाति मे प्राचीन काल से पायी जाती है। सुरबालाएँ रण-स्थल में वीर योद्धाओंका वीर गति प्राप्त करने पर वरण करती थी। हिन्दू परम्परा के अनुसार वीर गति प्राप्त योद्धा स्वर्ग जाता है। अतएव उसे वरण करने के लिए स्वर्ग की वालाएँ उत्सुक रहती हैं। कल्हण इस ओर सकेत करता है।

यूरोप मे स्कैण्डेनेवियन गाथा के अनुसार युद्ध भूमि मे वीर गति प्राप्त वीर को लेने के लिये रथो पर सुरवालाएँ आती थी। उन्हे साथ लेकर स्वर्ग जाती थी।

उक्त पद का प्रथम आधा पद विरोधाभास प्रकट करता है।

तदाऽऽक्रान्तासुहृच्चक्रः स चक्रायुधसङ्गरे ।
चक्रधाराऽध्वना धीरश्चक्रवर्ती दिवं ययौ ॥ ६९ ॥

६९. तब वह चक्रवर्ती राजा शत्रुओ की चक्र पंक्ति द्वारा परावृत चक्रधर के चक्रधारपथ गति-द्वारा उस समरागण मे गमन किया ।

अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं तदा यदुकुलोद्वहः ।
राज्ये यशोवतीं नाम द्विजैः कृष्णोऽभ्यषेचयत् ॥ ७० ॥

७० यदु कुलोद्भव श्री कृष्ण ने दामोदर की गर्भवती पत्नी यशोवती[1] देवी का द्विजो से अभिषेक करा दिया ।

पाठभेद .

श्लोक संख्या ६९ में 'तदा' का 'तत्रा', 'सचक्रा' का 'सश्चक्रा' तथा 'राध्वना' का 'राधुना', राधना, 'राध्यना' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

६९ (१) चक्रधर से यहाँ अर्थ श्री कृष्ण से है। वह यादव सेना सहित गान्धार में स्वयवर मे भाग लेने जा रहे थे। मार्ग मे दामोदर ने कश्मीरी सेना के साथ उनपर आक्रमण किया । युद्ध मे दामोदर का वध श्रीकृष्ण के चक्र द्वारा हुआ था। पिता का ज्येष्ठ भ्राता बलराम ने तथा पुत्र का कनिष्ठ भ्राता श्री कृष्ण ने वध किया था ।

'चक्रधाराध्वना' शब्द श्रोत्र प्रिय है। कश्मीर के पडितो को श्री स्तीन के शब्दो में यह वाक्य बहुत प्रिय था । इसका सरल अर्थ होता है। 'चक्रधार पथ' से दामोदर दिवगत हुआ और स्वर्ग गया था। यह वाक्य 'चक्रधर कृष्ण' एव पन्थास्तेन' भी स्तीन के मत से हो सकता है। उस समय अर्थ हो जायगा 'श्रीकृष्ण चक्रधर द्वारा मार्ग खोला गया'। कल्हण की कल्पना यह भी हो सकती है कि भगवान् कृष्ण द्वारा आहत होने पर दामोदर निश्चय ही स्वर्ग गया ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ७० मे 'यशोवती' का 'यशोवन्ती' तथा 'षेचयत्' का पाठभेद 'सूचयत्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

७०(१) यशोमती नीलमत पुराण में रानी का नाम यशोमती नही दिया गया है। उक्त श्लोक स० २७ मे 'तस्य पत्नी' अर्थात् 'उसकी पत्नी' शब्द ही का उल्लेख है।

अन्तर्वर्त्नी तस्य पत्नी वासुदेवोऽभ्यषेचयत् ।
भविष्यत्पुत्रराज्यार्थं तस्य देशस्य गौरवात् ॥
९ : २७

कल्हण ने यशोमती का नाम किसी अन्य पूर्व ऐतिहासिक ग्रन्थ से लिया है। कल्हण ने रा० त० १ : ७३ तथा ८ ३४०८ में यशोमती के नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है। वह राजा दामोदर की पत्नी थी ।

हसन के अनुसार–'राना सन् १० क० मे तख्त सल्तनत पर बैठी । बादशाहो के काम मर्दों की तरह इन्तहाई बहादुरी और खुश असलूबो से अजाम दिये। पहले मालूम हो चुका है कि यह अपने खाविन्द राजा दामोदर से हामिला थी। इसलिए मुकर्रर वक्त गुजरने पर बाल गोनन्द इससे पैदा हुआ। मुद्दत हकूमत १५ साल ।'

(२) गर्भवती का अभिषेक . भगवान् के मत्री गर्भवती रानी यशोमतो के अभिषेक से प्रसन्न नही थे। भगवान् ने इसको शकाओ का समाधान पौराणिक प्रमाणो का उद्धरण देकर कर किया था ।

यह विषय हिन्दू उत्तराधिकार के मौलिक प्रश्न को उठाता है। प्रचलित हिन्दू कानून के अनुसार

तस्मिन्काले स्वसचिवान् सासूयान्विन्यवीवरत् ।
इमं पौराणिकं श्लोकमुदीर्य मधुसूदनः ॥ ७१ ॥

७१ मधुसूदन[१] के सचिव गण स्पृहणीयता से भुनभुना रहे थे, उस समय भगवान् ने निम्नलिखित पुराण[२] पद का उल्लेख कर उन्हें शान्त किया।

"कश्मीराः पार्वती तत्र राजा ज्ञेयः शिवांशजः ।
नाऽवज्ञेयः स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता ॥" ७२ ॥

७२ काश्मीर[१] की भूमि पार्वती है। वहाँ का राजा हर[२] का अंश है। कल्याणेच्छुक विज्ञ जनों के लिये वह दुष्ट होने पर भी अवज्ञा का पात्र नही है।

गर्भधारण के समय से ही गर्भ स्थित सन्तान का उसी माता-पिता अथवा जहाँ भी कही उसके उत्तराधिकार का हक मिलता है अथवा उत्तराधिकार मिलने वाला होता है—(सरवाइवरशिप) विधि के अनुसार उसे अधिकार प्राप्त हो जाता है। सम्भव है कि विधवा का अभिषेक तत्कालीन प्रचलित विधि तथा संहिताओं व आचारों के विरुद्ध रहा हो।

भगवान् श्रीकृष्ण का कार्य विधि तथा धर्म सम्मत दोनो था। भगवान् ने माता के गर्भ मे स्थित पुत्र का अभिषेक किया था। ऐसी स्थिति मे प्रश्न नही उठता कि स्त्री विधवा है अथवा सधवा। सम्भव है कि भगवान् ने उस अनुचित प्रचलित रूढि पर अपने इस कार्य द्वारा आघात किया हो, जिसमे विधवा को अशुभ मान लिया जाता है। भगवान् ने पुराण का उल्लेख–'कश्मीर पार्वती तुल्य है। वहाँ का राजा हरांशज किंवा शिव का अंश है' इस प्राचीन स्मृति का प्रमाण देकर तथा स्त्री का सम्मान कर पुरानी स्मृति पर अपनी मुहर लगायी है। उसे राज्य कार्य के योग्य तथा सिंहासन की अधिकारिणी, अपने अधिकार से नही सही पुत्र के संरक्षक के अधिकार के कारण माना है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७१ मे 'वीवरत्' का पाठभेद 'वारयत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७१ (१) मधुसूदन विष्णु का नाम है। यहाँ पर श्रीकृष्ण के लिये आया है। मधु तथा कैटभ दो राक्षस थे। उन्हे एक साथ "मधु-कैटभ" नाम से पुकारा जाता है। मधु की त्वचा कोमल थी। इसलिये उसका नाम मधु पडा था। गाथा है कि भगवान् के नाभि कमल पर दो जल बिन्दु गिरे थे। वे रजोगुण तथा तमोगुण के प्रतीक थे। भगवान् ने उन बूँदो की तरफ देखा। एक मधु तथा दूसरा कैटभ हो गया (मेरु शान्ति पर्व ३५५–२२–२३) एक और गाथा है। उनकी उत्पत्ति भगवान् विष्णु के कान के मैल से हुई थी। (दे० भा० १ ४)। पद्म पुराण (सृ ४०) के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण से इनकी उत्पत्ति हुई थी। कालान्तर मे दोनो आततायी राक्षस हो गये थे। ब्रह्मा के सुझाव पर विष्णु ने उनका वध किया था। अतएव उनका नाम 'मधुसूदन' पड गया। (म० शा० २०० १४–१६)

(२) पुराण कल्हण ने पुराण का नाम नही दिया है। नीलमत मे यह श्लोक मिलता है परन्तु शब्दावली मे किंचित् भेद है। कल्हण ने पुराण शब्द का प्रयोग प्रायः नीलमत पुराण के लिये किया है। उसने बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री नील मत पुराण से ली है।

पाठभेद

श्लोक संख्या ७२ मे 'कश्मीराः' का पाठभेद 'कश्मीरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७२ (१) नीलमत पुराण मे यह श्लोक निम्न लिखित रूप में मिलता है।

पुंसां निर्गौरवा भोज्य इव याः स्त्रीजने दृशः ।
प्रजानां मातरं तास्तामपश्यन्देवतामिव ॥ ७३ ॥

७३. मनुष्यो की जो दृष्टि स्त्री जनो को निर्गौरव एवं भोग्य पदार्थ समझती थी, वही उसे प्रजा की माता[1] तथा देवी स्वरूप समझने लगी ।

कश्मीरायां तथा राजा त्वया ज्ञेयो हरांशज ।
तस्यावज्ञा न कर्तव्या मतत भूतिमिच्छता ॥
—237 २१४

लोक प्रकाश मे श्लोक का उद्धरण निम्नलिखित रूप मे दिया गया है ।

'सती च पार्वती ज्ञेया राजा ज्ञेयो हराशज ।' जोनराज ने अपनी राजतरगिणी में कल्हण के इस पद का उद्धरण दिया है ।

(२) हराशज . यहा पर भगवान् ने 'देवाधिराज' अर्थात् 'डिवाइन राइट' के सिद्धान्तको ओर एक प्रकार से सकेत किया है । भारत मे एक मत राजा को देवाश मानता है । यूरोप के मध्ययुग में तथा मुसलिम खिलाफत काल में इस सिद्धान्त को मान्यता दो गयी थी । वर्तमान लोकतत्र इस सिद्धान्त को मान्यता को समाप्त कर पश्चिम मे उदय हुए है । भगवान् श्रीकृष्ण ने कश्मीर मण्डल को पार्वती का रूप माना है । समर्थन में एक प्राचीन उद्धरण दिया है । राजा को हराशज कहा है । कश्मीर मण्डल तथा राजा दोनो को इस प्रकार मान्यता देकर पवित्र किया है । उसे दूसरे शब्दो मे कह सकते है । कश्मीर भूमि यदि मातृ भूमि है, तो वहाँ का राजा पिता है । यह अनुपमेय उपमा भगवान् ने अनोखे ढग से दी है ।

भगवान् ने किस पुराण से उद्धरण दिया था । कल्हणने उसका उल्लेख नही किया है । किन्तु इस सिद्धान्त, भाव तथा शब्दावली की पुष्टि नीलमत पुराण के श्लोक से मिलती है । सम्भव है । नीलमत पुराण में यह श्लोक किसी अन्य पुराण से उद्धृत किया गया हो । अथवा उसका भाव ले लिया गया हो । कल्हण केवल पुराण शब्द का उल्लेख करता है । उसे नीलमत पुराण का ज्ञान था अतएव नीलमत शब्द का न लिखना अर्थपूर्ण है । यह तर्क सम्मत मालूम होता है । उसका अभिप्राय यहाँ नोलमत पुराण के अतिरिक्त किसी अन्य पुराण से नही था ।

७३ (१) 'प्रजाना मातरम्'. भगवान् ने यहाँ एक आदर्श सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । कल्हण के श्लोक से ध्वनि निकलती है । पूर्व काल मे स्त्री केवल भोग्य पदार्थ मानी जाती थी । उनका राज काज में विशेष हाथ नही था । रानी पर भी उनकी स्थिति में विशेष अन्तर नही आता था ।

भगवान् ने इस मत का खण्डन कर नवीनमत जगत् के सम्मुख रखा । राजा यदि देश का पिता है, तो रानी देश की माता है । राजतन्त्र में नागरिक होते हैं । उनकी लोकतन्त्रीय परम्परा के अनुसार स्वतन्त्र नागरिक की स्थिति नही होती अतएव यहाँ प्रजा की माता शब्द का प्रयोग किया गया है । यदि काश्मीर गणराज्य होता तो भगवान् निस्सन्देह राजमाता शब्द का प्रयोग न करते ।

भारत मे राजमाता पद इसी समय से ऐतिहासिक तथ्य के साथ चलता मालूम होता है । आज भी भारत में रानी को राजमाता कहते है । यह उदात्त भावना थी, राजा-प्रजा मे, रानी-प्रजा में, वात्सल्य भाव उत्पन्न करती है । सकेत करती है । राजा एव रानी का कर्तव्य है । अपनी सन्तान तुल्य प्रजा का पालन करे ।

पृथ्वी को सर्वत्र स्त्री माना गया है । पृथ्वी माता, भारत माता, आदि शब्दो का व्यवहार किया गया है । पृथ्वी किंवा भूमि एक प्राचीन आख्यायिका के अनुसार राजा की पत्नी मानी गयी है । अतएव

अथ वैजनने मासि सा देवी दिव्यलक्षणम् ।
निर्दग्धस्यान्वयतरोरङ्कुरं सुषुवे सुतम् ॥ ७४ ॥

गोनन्द

७४. दग्ध वंश वृक्ष में अंकुर तुल्य उस देवी ने समय पर दिव्य लक्षणो[1] से युक्त पुत्र प्रसव किया ।

तस्य राज्याभिषेकादिविधिभिः सह संभृता ।
द्विजेन्द्रैर्निरवर्त्यन्त जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥ ७५ ॥

७५. द्विजेन्द्रों ने राज्याभिषेक[1] के साथ जातकर्म तथा अन्य सम्बन्धित संस्कार विधिवत् कराया ।

पृथ्वी माता, भूमि माता आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है ।

मालूम होता है । भगवान् देवी यशोवती से प्रभावित थे । गर्भवती होने पर भी रानी अपने पति कश्मीरराज के साथ वृष्णियों के विरुद्ध गान्धार युद्ध मे गयी थी । भगवान् ने उसका अभिषेक वही किया था । कोई प्रमाण नही मिलता । श्री कृष्ण कश्मीर मे आये थे । कश्मीर भूमि पर यशोवती का अभिषेक किया था ।

गीता जैसे उदात्त दार्शनिक सिद्धान्तो के रचनाकार श्री कृष्ण से राजनीतिक सिद्धान्तो पर भी इसी प्रकार के विचारो को प्रकट करने की अपेक्षा की जा सकती है ।

कश्मीरराज को पराजित करने पर भी श्रीकृष्ण ने कश्मीर पर शासन नही किया । उसे लेने तक की कल्पना नही की । राज्य जिसका था, उसे लौटा दिया । दामोदर के पिता गोनन्द ने मथुरा में उनसे युद्ध किया था । वे वैर भाव भी भूल गये । उन्होने उपनिवेश बनाने, साम्राज्य बनाने की कल्पना नही की । इस प्रकार के राजनीतिक उदात्त उदाहरण भारतवर्ष जैसे देश मे ही सम्भव हो सकते है ।

७४ (१) लक्षण महापुरुषो तथा राजाओ मे भारतीय ज्योतिष के अनुसार शरीर पर कुछ स्पष्ट चिह्न होते है । उनकी महत्ता, विशेषता के कारण उन लक्षणो मे कमी किंवा अधिकता होती है ।

भगवान् रामचन्द्र मे, कृष्ण मे इस प्रकार के लक्षण थे । भगवान् बुद्ध मे महापुरुषो के ३२ लक्षण थे । उनके अग्रश्रावको मे कुछ लक्षणो के होने का उल्लेख मिलता है ।

ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक लक्षण का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है ।

७५ (१) राज्याभिषेक शिशु गर्भ से निकलते ही पूर्ण सत्ता सम्पन्न राजा हो गया । इस सिद्धान्त की ओर कल्हण संकेत करता है । भगवान् ने दिव्य दृष्टि द्वारा गर्भ का रहस्य जान लिया था । गर्भ मे पुत्ररत्न स्थित है । अतएव यशोवती का अभिषेक गान्धार मे किया था ।

पुत्र का जन्म होते ही यशोवती की सत्ता समाप्त हो गयी । पुत्र पूर्ण राजा हो गया । उसका अभिषेक भगवान् ने गर्भ में ही कर दिया था । उत्तराधिकार के विवाद का प्रश्न नही उठता था । भगवान् ने एक विषम समस्या का अत्यन्त चतुराई के साथ समाधान किया था । किसी भी सम्बन्धी तथा गोत्री को किसी प्रकार के विवाद करने का अधिकार नही था । विजेता ने राज्य पुनः गर्भ स्थित उत्तराधिकारी को लौटा दिया था ।

यदि पुत्र न होता तो कम से कम कुछ मासो का समय यशोवती को इसलिये दिया कि देश मे

स नरेन्द्रश्रिया सार्धं लब्धवान्बालभूपतिः ।
नाम गोनन्द इत्येवं नप्ता पैतामह क्रमात् ।। ७६ ।।

७६. उस बाल भूपति ने राजश्री के साथ ही साथ समय पर अपने पितामह का नाम[1] गोनन्द भी प्राप्त किया ।

आस्तां बालस्य संनद्धे द्वे धात्र्यौ तस्य वृद्धये ।
एका पयःप्रस्नविणो सर्वसंपत्प्रसूः परा ।। ७७ ।।

७७. बालक के वार्धक्यपरिचर्या निमित्त दो धात्रियाँ सन्नद्ध रहती थी । एक पयःप्रस्नविणी धात्री तथा दूसरी सर्वसंपत्प्रसूता पृथ्वी थी ।

अराजकता रोककर, स्थिति सुदृढ कर ले । अपने विरोधियो का इस काल में कटक शोधन करे ।

राजा के मन्त्री थे । उसकी सेना थी । उसकी अभिभाविका उसकी मा थी । राजा की संरक्षिका थी । केवल माता यशोवती नही अपितु मन्त्रिमण्डल प्रत्येक कार्यों के लिए, राजकार्य के लिए, उत्तरदायी था ।

राजमाता यशोवती केवल अभिभाविका तथा सरक्षिका मात्र थी । वह कश्मीर मण्डल की विधि-पूर्वक राजा नही थी । उसका प्रत्येक कार्य मन्त्रि-मण्डल के मन्त्रणानुसार होना आवश्यक था । यशोवती को मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणाओ को टालने किंवा मानने का अधिकार था या नहीं इस सूक्ष्म विवेचन पर कही प्रकाश नही डाला गया है । शिशु राजा के वयस्क होने तक यशोवती देवी का राज्यानुशासन एव राज्य कार्यो के विषयो को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा ।

पाठभेद

श्लोक संख्या ७६ मे 'नरेन्द्र' का पाठभेद 'नगेन्द्र' तथा 'गोनन्द' का 'गोनर्द' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७६ (१) **नामकरण संस्कार** कश्मीर मे प्रचलित सस्कार के अनुसार जातकर्म सस्कार के एक दिन पश्चात् नामकरण सस्कार अर्थात् शिशु का नाम रखा जाता है ।

कल्हण का वर्णन यहाँ पूर्ण प्रामाणिक तथा युक्ति सगत प्रतीत होता है । जरासन्ध के साथ मथुरा में गोनन्द सम्मिलित हुआ था । उस समय उसका पुत्र दामोदर युवक था । युवराज था । उसकी पत्नी यशोमती को कोई सन्तान नही थी । केवल एक सन्तान गर्भ में थी । भगवान् कृष्ण मथुरा युद्ध के पश्चात् गान्धार स्वयंवर में गये थे । युवक राजा दामोदर ने उनपर आक्रमण किया । पिता गोनन्द युद्ध में कृष्ण के भाई बलराम द्वारा तथा पुत्र दामोदर स्वय कृष्ण द्वारा मारा गया था । इससे प्रकट होता है कि गोनन्द युद्ध करने योग्य था । वह वृद्ध नही था । उसका पुत्र दामोदर उसके साथ मथुरा सम्भवत नही गया था । यदि वह गया होता तो शायद वह भी वही वीरगति प्राप्त करता ।

मालूम होता है कि मथुरा मे जरासन्ध के आह्वान पर जाते समय गोनन्द अपने वयस्क पुत्र को कश्मीर की राज्य-व्यवस्था के लिए छोड गया था । दामोदर की अवस्था मै समझता हूँ उस समय २० से २५ वर्ष की और गोनन्द की ५० वर्ष के भीतर रही होगी । यशोमती से एक ही सन्तान के वर्णन से सिद्ध होता है, कि यशोमती युवती मात्र थी । गोनन्द के मथुरा युद्ध में हत होने के कुछ ही समय पश्चात् दामोदर भगवान् कृष्ण से युद्धार्थ गान्धार गया होगा । यह बात राजतरगिणी के ८२ वें श्लोक से और स्पष्ट हो जाती है कि बालक होने के कारण कौरव-पाण्डवो ने उसे युद्धार्थ आमन्त्रित नही किया था । बालक राजा द्वितीय गोनन्द की अवस्था महाभारत काल मे कठिनता से तीन या चार

तस्यावन्ध्यप्रसादत्वं रक्षन्तः पितृमन्त्रिणः ।
पार्श्वगेभ्यो ददुर्वित्तमनिमित्तस्मितेष्वपि ॥ ७८ ॥

७८. उस बालक के अधरों पर अकारण स्मित रेखा देखकर उसके पिता के मन्त्रिगण उसकी प्रसन्नता[१] को सफल देखने की अभिलाषा से पार्षदों को पुरस्कार दिया करते थे।

अबुद्ध्वाऽननुतिष्ठन्तस्तस्याव्यक्तं शिशोर्वचः ।
कृतागसमिवात्मानममन्यन्ताधिकारिणः ॥ ७९ ॥

७९. अबोध शिशु की वाणी का आशय एवं आदेश समझने एवं पालन करने में असमर्थता का अनुभव कर वे मन्त्रीगण अपने को स्वयं अपराधी मानते थे।

पितुः सिंहासनं तेन क्रामता बालभूभुजा ।
नोत्कण्ठा पादपीठस्य लम्बमानाङ्घ्रिणा हृता ॥ ८० ॥

८०. पिता के सिंहासन[१] पर स्थित बालक नरेश का पद पादपीठ पर छोटा होने के कारण नही पहुँच पाता था अतएव स्पर्श सुख का उत्कण्ठी पादपीठ निराश हो जाता था।

वर्ष की रही होगी। अर्थात् गान्धार युद्ध के ५ से १२ वर्ष पश्चात् ही महाभारत आरम्भ हो गया था। बाल्यकाल से मैं समझता हूँ ५ से १२ वर्ष की अवस्था का बोध होना चहिए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७७ मे 'प्रस्रविणी' का पाठभेद 'प्रसविनी' मिलता है।

श्लोक संख्या ७८ में 'ददु' का पाठभेद 'दधु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७८ (१) प्रसन्नता · राजा प्रसन्नता का प्रदर्शन कुछ देकर करता है। सेवक इसलिए उसे प्रसन्न रखने का सर्वदा प्रयास करते हैं। अप्रसन्न होने पर राजा का दण्ड स्वरूप उग्ररूप प्रकट होता हैं। जिसका अन्त किसी के दु ख किंवा दण्ड मे होता हैं। किसी के कार्य से प्रसन्न होने पर राजा उसे पदवी, जागीर किंवा पुरस्कार देते हैं।

शिशु अबोध था। वह किसी कार्य से प्रसन्न होता था। मुसकुराता था। उसकी प्रसन्नता राजकीय परम्परानुसार व्यर्थ न हो, एतदर्थ मन्त्रिगण उस परम्परा को कायम रखने के लिये पुरस्कार देते थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७९ मे 'अबुद्ध्वाऽननुतिष्छन्त.' का पाठभेद 'अबुद्धमनुतिष्छन्तः' मिलता है।

श्लोक संख्या ८० में 'हृता' का पाठभेद 'कृता' तथा 'हृता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८० (१) सिंहासन . इस श्लोक से कल्हण का मन्तव्य यह मालूम होता है कि शिशु राजा सिंहासन पर आसीन होता था। उसका पैर इतना छोटा था कि पादपीठ तक नही पहुँच सकता था। मन्त्रीगण शिशु के अबोध होने पर भी प्रतीक स्वरूप उसे सिंहासन पर बैठाते थे। ताकि सिंहासन सूना न रहे। वे राजा की ओर से राजकार्य करते थे। उसी प्रकार जैसे देवता के नाम से धर्मदाय भूमि सम्पत्ति तथा अन्य कार्यों का शासन तथा सचालन किया जाता है।

मिलता है कि माधव अर्थात् श्री कृष्ण से युद्ध निमित्त दामोदर चतुरंगिणी सेना लेकर गया था। जिस समय यादव सेना स्वयंवर निमित्त गान्धार जा रही थी।

तं चामरमरुल्लोलकाकपक्षं नृपासने ।
विधाय मन्त्रिणोऽशृण्वन्प्रजानां धर्मसंशयम् ॥ ८१ ॥

८१ चामर मरुत् द्वारा बालक के काक[1]पक्ष उल्लोलित होते थे। उसे नृपासन पर बैठाकर मन्त्रीगण विवादो को सुनकर धर्म संशयो[2] का सविधि निर्णय करते थे।

इति काश्मीरको राजा वर्त्तमानः स शैशवे।
साहायकाय समरे न निन्ये कुरुपाण्डवैः ॥ ८२ ॥

८२. अस्तु यही कारण है। कौरव एवं पाण्डव दोनो पक्षो ने कश्मीर के राजा को शिशु जानकर महाभारत[1] युद्ध मे सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित नही किया था।

श्लोक सं० ७ स्पष्ट उल्लेख करता है कि दोनो राजाओ में युद्ध हुआ। उसमे काश्मीर राजा पराजित हुआ। वीर गति प्राप्त किया।

८१ (१) काक पक्ष मस्तक के दोनो पार्श्व में बच्चो तथा क्षत्रिय युवको में कुछ बाल छोड दिये जाते थे। मेरी बाल्यावस्था में मेरे घर में मस्तक के ऊपर लगभग एक चौथाई बनवाकर शेप बाल छोड देते थे। यह बाल रखने की प्रथा लुप्त हो गयी है। पठान तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रान्त के पुराने कुलीन लोग अब भी इस प्रकार से बाल रखते है। मैंने अफगानिस्तान की अपनी यात्रा मे प्राय लोगो को इस प्रकार का बाल रखे देखा था। भारत मे काबुली लोग अब भी इस प्रकार का बाल रखते हैं। ईरान मे इस फैशन को 'काकुल' कहते हैं।

(२) धर्मसंशय यहाँ धर्मसंशय से अर्थ है— विवाद। दो पक्षो मे अधिकार, अपराध, दण्ड आदि के विषयों में जब सशय उत्पन्न होता था और प्रचलित विधि के विषय में शका उत्पन्न होती थी तो वह विषय अन्तिम निर्णय हेतु राजा के सम्मुख उपस्थित होता था। राजा को प्रतीक मानकर मन्त्रीगण राजा के नाम से राजा के सम्मुख निर्णय देते थे। राजा न्याय का स्रोत था। न्याय का सरक्षक था। अतएव राजा को सम्मुख रखकर मन्त्रीगण निर्णय लेते थे।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८२ में 'निन्ये' का 'नीत.' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८२ (१) महाभारत और कश्मीर राज : नीलमत पुराण का आरम्भ राजा जनमेजय की इस जिज्ञासा से होता है। महाभारत युद्ध स्थल में सभी देशो के राजा उपस्थित थे। किन्तु क्या कारण है कि कश्मीर मण्डल के राजा ने युद्ध मे किसी पक्ष से भाग नही लिया। इस प्रश्न का उत्तर वैशम्पायन ने कश्मीर का राजा बालक होना दिया है.

जनमेजय उवाच :

महाभारतसग्रामे नानादेश्या नराधिपा ।
महाशूरा.·समायाताः पितॄणां मे महात्मनाम् ॥
3 · ३

कथं काश्मीरिको·राजा नायातस्तत्र कीर्तय ।
पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रैश्च न वृत स कथं नृप ॥
4 : ४

कश्मीरमण्डल चैव प्रधान जगति स्थितम् ।
कथं नासौ समाहूतस्तत्र पाण्डवकौरवै ॥
5 : ५

किंनामाऽभूत राजा च कश्मीराणां महाशय ।
कथं वासौ निशम्यैतन्नायातश्चात्मना तदा ॥
6 . ६

आम्नायभङ्गान्निर्नष्टनामकृत्यास्ततः परम् ।
पञ्चत्रिंशन्महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे ॥ ८३ ॥

पैंतीस राजा

८३. तत्पश्चात् हुए पैंतीस महीपालों के नाम तथा कर्म परम्परा गत लेखादि के नष्ट होने के कारण विस्मृति सागर में डूब चुके हैं।

स्वर्गसोपानपंक्तिर्हि भव्यानां समभूदिदम् ।
भारतं नाम युद्धं यज्जिगीषूणां महात्मनाम् ॥
7 : ७

अकारणमिदं नाम न भवेद्यदसौ तदा ।
नायातो भारतं युद्धं राजा काश्मीरिको महान् ॥
8 : ८

वैशम्पायन उवाच :

सत्यमेतन्महाराज त्वया प्रोक्तं महीपते ।
यथा नासौ समायातस्तन्निशामय सुव्रत ॥
9 : ९

कुरुपाण्डववेलायां भूमिर्भगवता स्वयम् ।
पाविताभूद्दितिसुतानवतीर्णाञ्जघान यत् ॥
10 : १०

तस्मिन्कालेऽत्र समभूद्राजा विशदकीर्तिमान् ।
कश्मीरान् पालयन् सौम्य गोनन्द इति संज्ञया ॥
11 : ११

असौ प्रतापकलितो दिशं सौम्यां समाश्रितः ।
शुशुभे विक्रमोदग्रो मानी कलितसंस्थितिः ॥
12 : १२

अथोत्थिते किल महाविरोधे दैत्यबन्धुना ।
वृष्णीनां कृष्णमुख्यानां जरासंधेन भूभृता ॥
13 : १३

अनेन बन्धुना मानस्थानमेष महीपतिः ।
काश्मीरिकोऽभ्यर्थनयाहूत. साहाय्यकाम्यया ॥
14 : १४

गत्वासौ बन्धुगृह्यत्वाज्जरासंधस्य भूपतेः ।
चक्रे साहाय्यकं धीमान् जरासन्धस्य भूपतेः ॥
15 : १५

रुरोधाथ च कंसारेर्मथुरां मधुराकृतिः ।
बलैः स्वैर्बलवान् राजा त्रेसुस्ते यत्र यादवाः ॥
16 : १६

भूरिशोऽथ बले भग्ने यादवानां बलोद्धतः ।
बलो बलेन रुरुधे महता तं जिगीषया ॥
17 : १७

अतीव तुमुले तस्मिन् युद्धेऽन्योन्यजिगीषया ।
काश्मीरिकोऽसौ क्रुद्धेन बलेन बलवान् बलात् ॥
18 : १८

रुद्धोऽभूत्पतितो भूमौ शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहः ।
इत्यस्मिन् वीरकलितां गतिमाप्ते महात्मनि ॥
19 : १९

दामोदराभिधस्तस्य सूनू राजाऽभवत्सुधीः ।
विभूतिकलितेनाऽथ समृद्धेन महात्मना ॥
20 : २०

येन काश्मीरभूः राज्ञाऽन्विता सौम्या जहास ह ।
स राजबीजो सत्कीर्तिर्वीर्यशाली महाभुजः ॥
21 : २१

अतश्चिन्तातुरो जातु न लेभे निर्वृतिं पराम् ॥
अहो महात्मा राजा स कथं नाम हतो बलात् ।
द्वीपान्तर्वासिना तातो बलेन बलवान् मम ॥
22-23 : २२-२३

हसन गोनन्द द्वितीय को बाल गोनन्द लिखता है। अराकीन दौलत के मशविरह से यह शख्स सन् २५ क० बाद अज बलगत तख्त नशीन हुआ। एक खासी मुद्दत नेकनामी के साथ हुकूमत के चलाने में गुजारी। बिल आखिर हरणदेव के हाथ कत्ल हुआ। मुद्दत सल्तनत चालीस साल।

हसन का यह कयास है कि द्वितीय गोनन्द मारा गया। इसका कोई प्रमाण नही है। कोई कारण नही देता कि गोनद की हत्या क्यो की गयी। हत्याकारी हरणदेव का गोनद से क्या सम्बन्ध था।

८३ (१) लुप्त राजा कह्लण ने ३५ राजाओ का नाम तथा समय नही दिया है। इस प्रसग मे एक रोचक बात रत्नाकर पुराण की है उसका उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है।

कश्मीर का बडशाह अर्थात् बादशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२०–७० ई०) ने प्राचीन पुस्तको का अन्वेषण कराया था। उसने १५ राजतरगिणियो का पता लगवाया था। सिकन्दर बुत शिकन (१३९३–१४१६ ई०) के समय केवल ११ ब्राह्मणो के कुटुम्ब कश्मोर में रह गये थे। उनके अतिरिक्त हिन्दू या तो मुसलमान हो गये या विनष्ट कर दिये गये या कश्मीर त्याग कर भाग गये। देवस्थान तथा मन्दिर नष्ट कर दिये गये। पुस्तकें आदि भस्म कर दी गयी। उनका या तो नदियो में प्रवाह कर दिया गया अथवा भस्म कर दी गयी। बहुतो ने राज्य भय से स्वय वितस्ता में उनका जल प्रवाह कर दिया।

बडशाह के समय कह्लण की राजतरगिणी जो प्रायः एक सौ वर्ष तक लुप्त थी प्राप्त हुई। उसमें ३५ विस्मृत राजाओ का उल्लेख नही था।

कुछ समय पश्चात् भोजपत्र पर लिखी एक पुस्तक और मिली। उसका नाम 'रत्नाकर पुराण' था। रत्नाकर पुराण में ३५ लुप्त राजाओ का वर्णन था। बादशाह जैनुल आबदीन ने रत्नाकर पुराण तथा राजतरगिणी का अनुवाद फारसी में कराया। पुराण मे कलियुग के प्रारम्भ से होने वाले राजाओ का वर्णन था। दोनो ही मूल ग्रन्थ अर्थात् रत्नाकर पुराण तथा उसका अनुवाद इस समय अप्राप्य हैं।

कश्मीर के इतिहासकार पीर हसन शाह का कहना है कि उन्हें रत्नाकर पुराण के अनुवाद की एक प्रति रावलपिण्डी में किसी काश्मीरी सज्जन से प्राप्त हुई थी। उसमें जिन ३५ राजाओ का वर्णन कह्लण ने नही किया है, उनका उल्लेख था।

हसन वितस्ता में एक दिन रत्नाकर पुराण के अनुवाद वाली पुस्तक के साथ नाव पर जा रहे थे। नाव डूब गयी। वे स्वयं बच गये पुस्तक डूब गयी। हसन ने नहीं लिखा है कि वह पुस्तक रावलपिण्डी मे किससे मिली थी।

हसन के अनुसार २२ राजाओ का शासन काश्मीर में एक हजार वर्ष तक था। उन्हें वह पाण्डववशीय कहता है। कश्मीर की परम्परा चली आती है कि प्रत्येक स्मारक तथा गाथा को पाण्डव से जोडते हैं। उन्हें पाण्डव लारेह किंवा पाण्डव स्मारक कहते हैं।

हिमाल तथा लोलार की प्रेमगाथाएँ इसी काल की कही जाती है। हिमाल का प्रेमी नागराय तथा लोलार का प्रेमी वोम्बरे था। कश्मीर के ग्राम्य गीतो में उनका नाम अभी तक प्रचलित है। वोम्बरे उन विस्मृत राजाओ में से एक था। वोम्बरे लोलार पर इतना आसक्त था कि उसने राज्य त्याग दिया। हिमाल-नागराय की एक प्रचलित कहानी है। नागराय को भी उक्त ३५ लुप्त राजाओं में रखा गया।

हसन के अनुसार हरणदेव पाण्डव वशज था। वह गोनन्द द्वितीय के यहाँ सेवावृत्ति करता था। कालान्तर मे वह राजमन्त्री हो गया। गोनन्द की हत्या कर स्वयं राजा बन गया।

रामदेव हरणदेव के पश्चात् राजा हुआ। उस प्रतापी राजा ने भारतवर्ष के ५०० राजाओ को परास्त कर अरब सागर से बगाल की खाडी तक राज्य कायम किया। उसने उपज का १० प्रतिशत राजकर निश्चित किया। किन्तु उसके उत्तराधिकारियो ने उसे बढाकर २० प्रतिशत कर दिया था।

यदि रामदेव इतना प्रतापी राजा होता तो कश्मीर के इतिहास तथा तत्कालीन कश्मीर साहित्य मे उसके सम्वन्ध में कुछ न कुछ कहानी तथा कोई न कोई घटना अवश्य लिखी मिलती। उसका कोई न कोई स्मारक, मन्दिर अथवा भवन के रूप मे अवश्य होता। उसका किसी न किसी काश्मीरी साहित्य में उल्लेख मिलता। कह्लण के समय तक कुछ वात उसके सम्वन्ध में अवश्य प्रचलित रहती।

हसन के अनुसार पाण्डव वंश का वाईसवाँ राजा सुन्दरसेन था। उसके समय में भयंकर भूकम्प आया। भूकम्प राजधानी के सन्धिमत नगर के मध्य में हुआ। समस्त नगर, राजा, नागरिक, जीव-जन्तु इसके शिकार हो गये। नगर जिस स्थान पर था वहाँ उलर झील हो गयी।

हसन ने वाइविल तथा कुरान शरीफ वर्णित जल प्लावन के आधार पर इस कथा का वर्णन किया है। राजवंश के निर्मूल होने पर, कश्मीर के उत्तर-पूर्व स्थित अत्यन्त रमणीय, उर्वरा लौलह किंवा लोलाव अथवा आधुनिक लोव उपत्यका के सामन्त लव को कश्मीर के लोगो ने राजा निर्वाचित किया। उसे कश्मीर के सिंहासन पर बैठाया। सम्भव है कि भूचाल तथा जलप्लावन के कारण जो कश्मीर मे प्राय. हुआ करते हैं, लुप्त राजाओ से संवंधित पुस्तिकाएँ तथा सामग्रियाँ नष्ट हो गयी हो।

जिस रत्नाकर पुराण के आधार पर हसन ने इतिहास लिखा है, उसके विषय मे कहता है कि वह पुस्तक के साथ वितस्ता नदी में नाव पर जा रहा था। तूफान आया। पुस्तक नदी में डूव गयी।

नीलमत पुराण तुल्य रत्नाकर पुराण का होना सम्भव हो सकता है। नीलमत के समान उसमें भी ऐतिहासिक वर्णन रहा होगा। किन्तु अभी तक रत्नाकर पुराण तथा उसका अनुवाद नही मिल सका है।

मैंने हसन द्वारा वर्णित राजाओ का वर्णन परिशिष्ट ३ में दे दिया है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व भविष्य के गर्भ में है। वस्तुस्थिति तथा घटना क्रम जो प्रकाश में आये हैं, उनके आधार पर उसका ऐतिहासिक महत्त्व नगण्य है।

मै यहाँ मुल्ला अहमद के 'वाकये कश्मीर' का 'दीबाचा' दे देना उचित समझता हूँ जिससे वहुत वातें साफ हो जायेंगी। पता चलेगा कि रत्नाकर पुराण की कहानी सर्व प्रथम कैसे आरम्भ हुई या गढी गयी। लुप्त राजाओ को किस प्रकार एक दूसरे से जोडने का प्रयास किया गया है। हसन ने दीवाचा अपनी पुस्तक में उद्धृत की हैं। उसे अविकल रूप में यहाँ देना अच्छा होगा।

मुल्ला अहमद 'वाकये कश्मीर' के दीबाचा मे रुक्म तराज़ है—'यह हकीर पुर तकसीर जव आला हज़रत शहन्शाह मुअज़म यानी जैनुल आवदीन के 'वाजिबुल अजा' के मुताविक किताव महाभारत के फारसी तरजुमे से फारिग हुआ तो इसके फौरन वाद ही कश्मीर के राजो-महाराजो की तारीख नवोसी पर मुकर्रर हुआ। चुनाचः इस इरशाद के मिलते ही मैंने संस्कृत ज़बान के उन 'पुरानो' और 'तरंगिनियो' की तलाश शुरू की जो तुरकी लुटेरे कश्मीर पर हमलावर होने और वाज सुलतान सिकन्दर वुतशिकन की मजहवी ना खादारी के वापस जाया हो चुकी थी। और जो वाकी थी वह वहुत थोडी और नायाव थी। वकौल शख्से जो-इन्दा या विन्दा वडी मशक्कत और मिहनत के वाद मैं उनके पाने मे कामयाव हो गया। इनमें से काविले ज़िक्र कितावें कल्हन पण्डित, क्षेमेन्द्र, छविल्लकार और पद्ममिहिर को राजतरंगिनियाँ हैं। लेकिन उसे छोडकर कह्लण पण्डित की राजतरंगिनी के तरजुमा की तरफ मुतवज्जह हुआ जो वहमदुल्लाह वहुत जल्द इख्तनाम पज़ीर हो गया।

'इसके थोड़े अरसा वाद ही पण्डित रत्नाकर की पुरानी तारीख के कुछ अजज़ा पण्डित प्रजा को

तवज्जो और इनायत से हासिल हो गये। ये तारीख भोज के पत्तो पर लिखी हुई थी। मुतालह करने से पैंतीस राजाओं के नाम जो सन् कलयुग शुरू होने से कबल कश्मीर में हुए थे और जिन्हे कल्हन पण्डित ने व वजह अद्म वसूक तर्क कर दिया था मालूम हुए। बादशाही हुक्म के मुताबिक इस किताब का तरजुमा भी किया गया और बतौर जमीया अपनी किताब के आखिर मे मिलाकर दोस्त अहबाब के लिये सामाने मुसर्रत बनाने की कोशिश की।' हसन कहता है—'राकुमउल हरूफ ने मुसन्निफ 'वाकए कश्मीर' के तरजुमा के मुताबिक उन राजाओ के अहवाल से अपनी तारीख शुरू की है। जिन्हें कल्हन पण्डित ने अपनी राजतरगिनी मे तर्क कर दिया था। यहाँ गोविंद सानी तक जो तजकिरा किया गया है सबका सब मुल्ला अहमद की 'वाकये कश्मीर' से माखौज है।'

(पृष्ठ १४–१५)

तारीख हसन कश्मीर के मुसलमानो मे बहुत प्रचलित है। इसलिए कश्मीर के इतिहास का वास्तविक ज्ञान कश्मीर उपत्यका की मुसलिम जनता को कम प्राप्त हो सका है। लुप्त राजाओ के विषय में हसन का वर्णन उनके शब्दो मे देना अच्छा है।

'मुसन्निफ ने कश्मीर की यह तारीख चार जिल्दो मे मदून की है। जिल्द अव्वल मे जुगराफिया का बयान है। उसमे इक्त सादियात पैदावार आसार करीमा और शहराए सबका मुफस्सल और निहायत दिल आवेज हाल मिलता है। हक तो यह है कि यह अपनी नवैयत का पहला कारनामा है और अपनी अफाहियत की वजह से बडी ही अहम तालीफ है। जिल्द दोयम में जिसका उर्दू तरजुमा इन औराक के साथ कारहन है। कदीम हिन्दू राजाओ सलातीन व मल्कत मुतल्लिकाएँ कश्मीर सलातीन चुगताइया, अफागना, सिख और डोगरा हुक्मदानो के हालात है। जिल्द सोयम और चहारम सूफिया औतिपाए कराम उलमा और शोहरा के हाल पर मुस्तमिल है।

'जिल्द अव्वल एक मशरकी तर्ज के मुख्तसर मुकदमा से शुरू होती है। औवल्लन अकातीन आलम और जुगराफिया फल्की व लवई का बयान है। यह हिस्साए अलमी नुक्ता निगाह से ज्यादह वकी नही। और गालिबन इब्तदाई दरसी किताबो से माखूज है। हिस्साए मावद पूरे तौर पर कश्मोर से मुतअल्लिक है। अगर ये इसमे ओरेल स्टाइन के कदीम जोगराफिया कश्मीर या कनिंघम की एक ऐसी (दिक्कत) नजर नही मिलती ताहम इसकी वफादियत से भी इन्कार नही किया जा सकता। जिल्द दोयम में सयासी मदो जजर का बयान है। वकौल मुसन्नफ उसमें मुन्दरज जैल माखौजो से इस्तफादा हासिल किया गया है।

(२) वाकये कश्मीर · मुसन्निफा अल्लामा अहमद काश्मीरी—इसके मुतल्लिक सतूर बाला में इशारा हो चुका है। इस किताब की मदद से मुसनिफ ने उन पैंतीस राजाओ का तजकिरा मुरतब किया है जिनके हालात कल्हण की राजतरगिणी मे भी नही मिलते।

अलावा अजई उन ६ राजाओ का तजकिरा भी इस किताब का रहीने मिन्नत है। जिन्होने १९१ सन् से ४१४ ईसवी तक और फिर रानादित्य के अहद हकूमत ४१४–४७४ के बाद ५७१ ई० तक काश्मीर पर हुक्मदानी की। यहाँ इस चीज का जिकर दिलचस्पी से खाली न होगा कि कल्हण को जब इन सात राजाओ के हालात दस्तयाव न हो सके तो उसने रानादित्य के अहदे हकूमत ३०० वर्ष मुतैय्यन करके इस खला को पूरा करने की कोशिश की। जाहिर है कि अक्ले सलीम इसके मानने से कासिर है और कल्हण का यह कौल महज बर वजन सुखन है। हमारे मुसन्नफ की इस दरयाफ्त ने तारीख कश्मीर को मुकम्मल कर दिया और यह एक बडी ही अहम कडी है जो तारीख हसन के अलावा कही और दस्तयाव नही होती। कारेन की दिलचस्पी के लिए इन राजाओ की फिहरिस्त दर्ज जैल है।"

अथाभवत् लवो नाम भूपालो भूमिभूषणम् ।
वेल्लद्यशोदुकूलायाः प्रीतिपात्रं जयश्रियः ।। ८४ ।।

लव[1]

८४. अनन्तर जयश्री[2] का प्रिय पात्र उल्लोलित दुकूल धारी भूमिभूषण लव राजा हुआ ।

यस्य सेनानिनादेन जगदौन्निद्रयदायिना ।
निन्यिरे वैरिणश्चित्रं दीर्घनिद्राविधेयताम् ।। ८५ ।।

८५. उसके सेना का निनाद जिसने दुनिया की नींद हराम कर दी थी, आह ! आश्चर्य है !! वैरियों को लम्बी नींद में सुला दिया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८४ मे 'दुकूलायाः' का पाठभेद 'दुगूलाया ' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८४ (१) लव : मुसलिम इतिहासकारो ने लव का नाम लू अथवा लू-लू लिखा है। उसने लोलार नगर बसाया था ।

आइने अकवरी में अवुल फजल ने लिखा है। लोलार कश्मीर का पश्चिमी अचल था । वहाँ उसके निर्माण की साक्षी वहाँ के एक करोड शिलाखण्ड व स्मारक दे रहे थे । आइने अकवरी के अनुसार नगर का आकार सम्राट् अकबर के समय तक देखा जा सकता था ।

इतिहासकार हसन ने लव का निर्वाचन होना लिखा है । कल्हण ने केवल ४ श्लोको मे इस राजा का वर्णन किया है । कल्हण ने अन्य राजाओ तुल्य लव का वर्णन नही किया है कि उसने किस प्रकार राज्य पाया । स्पष्ट है कि लव पूर्वकालीन राजवंश से भिन्न वश अथवा कुल का था । उसने अपने राजवश की नवीन परम्परा चलाया ।

कल्हण ने लव, कुश, खगेन्द्र, सुरेन्द्र, गोधर सुवर्ण जनक और सचीनर का नाम पद्मामहिर के आधार पर लिखा है। पद्ममिहिर की तालिका विवादास्पद है ।

लोलार के साथ लव का नाम व्यर्थ जोड दिया गया है। डाक्टर श्री हुल्तसेह ने आलोचना की है । स्थानीय नाम लवादि राजाओ के साथ वह इस लिये जोड दिया गया है कि स्वरविज्ञान किवा साम्य ध्वनि पर आधारित मालूम होता है । स्थानीय नामो के अर्थ लगाने में प्राय यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि उसे किसी न किसी राजा के नाम के साथ जोड दिया जाता है। वे राजा चाहे काल्पनिक किवा सत्य क्यो न रहे हो। कश्मीर के स्थानो के नामो को इस वात ने वहुत प्रभावित किया है । (विलसन द्वारा उल्लिखित पृष्ठ १७)

श्री स्तीन उक्तमत का समर्थन करते है । उनका भी मत है कि यह वात पद्ममिहिर की तालिका के सम्वन्ध मे सन्देह उत्पन्न करती है ।

(२) जयश्री : विजय देवी का चित्र भारत तथा पश्चिम देशो मे तूर्य सहित आकाश मे उडते हुए वस्त्रो के साथ दिखाया गया है। उनके पृष्ठ भाग में मेघ रहता है । वह वहती वायु का प्रतीक है । श्रीदेवी के दुकूल किवा वसन मे भरती हवा अभिराम, उत्साह, उमग एव उल्लास पूर्ण चित्र उपस्थित करती है । विजय देवी पश्चिम में जैतून शाखा का मुकुट किंवा केवल पल्लव युक्त शाखा लिये दिखाई गयी है । वह शान्ति, सन्धि, मैत्री, तथा वीरता की प्रतीक मानी जाती है । भारत में जैतून के पल्लव एवं शाखा के स्थान पर माला एवं पुष्प चित्रित किया जाता है ।

तेन षोडशभिर्लक्षैर्विहोनामश्मवेश्मनाम् ।
कोटिं निष्पाद्य नगरं लोलोरं निरमीयत ॥ ८६ ॥

८६. उसने पाषाण वेश्म[1] बनवाकर लोलोर[2] नगर का निर्माण कराया।

दत्त्वाऽग्रहारं लेदर्यां लेवारं द्विजपर्षदे ।
स द्यामनिन्द्यशौर्यश्रीरारुरोह महाभुजः ॥ ८७ ॥

८७. लेदरी[1] स्थित अग्रहार[2] लेवार[3] द्विज परिषद् को दान देकर महाभुज अनिन्द्य शौर्य-शाली राजा ने स्वर्गारोहण किया।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या ८६ में 'लक्षै' का पाठभेद 'लक्ष्यै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

८६ (१) वेश्म : रत्नाकर पुराण में ८४ लाख के स्थान पर केवल ८० हजार मकानो का उल्लेख है। उसी के अनुसार राजा ने ६० वर्ष राज्य किया।

(२) लोलार कश्मीर में प्रचलित परम्परा से प्रतीत होता है कि राजा लव ने लोली (लोलाव) परगना कमराज में स्थापित किया था। पुराना सस्कृत नाम (त० रा० ७ १२४१) लौलाट है। लोक प्रकाश मे इसे 'ललत्र' कहा गया है। पण्डित साहिब राम ने 'लौलाह्' का वर्तमान नाम 'ललव' दिया है। हसन इसका नाम 'लो लो' देता है—इलाका लोलाव के बीचो बीच एक शहर 'लो लो' नाम का भी था जिसमें निहायत उम्दा किस्म की दुकानें और मकानात थे तामीर कराया।

उक्त प्राचीन नगर किस स्थान पर था निश्चय नही किया जा सका है। लोलार से मिलता कोई स्थानोय नाम श्री स्तीन को नही मिल सका था। वह कहते है कि परम्परा लव का नाम कमराज के परगना 'लोलाऊ' किंवा 'लोलाव' से जोडती है।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ८७ में 'पर्षदे' का पाठभेद 'षट्पदे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

८७ (१) लेदरी- · इसे लेदर्य तथा लम्वोदरी भी कहते हैं। आधुनिक नाम लिदर नदी है। यह वितस्ता की एक मुख्य सहायक नदी है। उर्ध सिद्ध उपत्यका के दक्षिणी क्षेत्र के जल को बहाकर ले जाती है। वितस्ता में अनन्त नाग तथा विजब्रोर के मध्य में आकर मिलतो है। नदी तट पर पर्यटको का प्रिय प्रसिद्ध नगर पहलगाव इस समय वसा है। स्थान रम्य तथा चित्ताकर्षक है। भारतीय स्वाधीनता तथा कश्मीर में लोकतन्त्रीय शासन स्थापित होने के पश्चात् पहलगाव की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। यहाँ से यात्री श्री अमरनाथ की यात्रा करते हैं। मैंने इस यात्रा का दृश्य देखा है। सर्व प्रथम छडी चलती है। उसके पीछे हजारो यात्री पैदल तथा टट्टुओ पर चलते हैं। भारत के कोने कोने से तीर्थ यात्री आकर यात्रा मे सम्मिलित होते हैं। नोलमत मे इसका उल्लेख है

खेड. शपालः खेरीशो लाहुरो लेदिरस्तथा।
खेडश्च फरडाडश्च जयन्तश्च समस्तथा॥
887 : १०५७

(२) अग्रहार : यह एक प्रकार की जागीर थी। किसी राजा की ओर से ब्राह्मणो के निर्वाहार्य भूमि दान को अग्रहार कहते थे। अग्र का अर्थ प्रथम आहार एव भोजन है। सर्व प्रथम भोजन के लिए दिया गया है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है। भूमि, क्षेत्र अथवा ग्राम की आमदनी किसी परिषद्, मन्दिर, देवस्थान अथवा व्यक्ति को अर्पण किया जाता था।

कुशेशयाक्षस्तत्पुत्रः प्रतापकुशलः कुशः ।
कुरुहाराग्रहारस्य दाताऽभूत्तदनन्तरम् ॥ ८८ ॥

कुश

८८. उसके पश्चात् उसका कुशेशयाक्ष प्रताप कुशल पुत्र कुश[1] जिसने कुरुहार[2] अग्रहार दान किया था राजा हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ में 'कुशेशयाक्षं' का 'कुशेशयाख्यं' तथा 'कुरुहाराग्रहार' का पाठभेद 'कुलर' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८८(१) **कुश** : राजतरंगिणीकारने लव, कुश का क्रम कश्मीर के राजाओ मे एक के बाद दूसरा रखा है। लव निर्वाचित राजा कश्मीर का था। अतएव वह बाहरी व्यक्ति था। राम के पुत्र लव से लवकुश को मिलाना ठीक नही होगा। पुराणो के आधार पर लव कुश के भाई तथा उत्तरकोसल के राजा थे। इनकी राजधानी श्रावस्तो थी। (पुराण भागवत ९·११ ११; पुराण ब्रह्माण्ड ३.६३·१९८, पुराण वायु ८८:२००)

आइने अकबरी में राजा का नाम किशेन तथा राज्यकाल ७ वर्ष दिया गया है। हसन ने राजा का नाम 'कोशिशो' दिया है। राज्य काल १३ वर्ष लिखा है। कुश नाम के कई व्यक्ति हुए हैं। राम के पुत्र कुश थे। कुश के पुत्र अतिथि थे। कुशस्थली को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया था। (पुराण वायु ८८ १९८, विष्णु पुराण ४:४·४७, भागवत पुराण ९ ११ ११, मत्स्य पुराण १२ ५१, ब्रह्माण्ड पुराण ३६३ १९८।) राम ने उत्तरकोसल का राज्य कुश को दिया था। उसकी राजधानो श्रावस्ती थी।

विदर्भराजा के तीन पुत्रो मे एक पुत्र कुश का उल्लेख भागवत पुराण ९:२४·१ मे आता है। कुश नामक एक जाति का उल्लेख मिलता है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३·७४ २६८, मत्स्य पुराण २७४:७२)

भागवत पुराण के अनुसार सुहोत्र राजा के तीन पुत्रो में दूसरा कुश था।

जागीर देने की वर्तमान प्रथा पुराने अग्रहार प्रथा पर आधारित है। मुसलिम, सिख तथा डोगरा काल में भी यह प्रथा प्रचलित थी।

(३) **लेवार** : लिदर नदी के दक्षिण तटपर वर्तमान ग्राम लिवर है। इसे लेवरा भी कहते हैं। लिदर नदी वितस्ता नदी मे अनन्त नाग तथा बिजब्रोर के मध्य मे मिलती है। वितस्ता की सहायक नदी है। सिन्धु उपत्यका के ऊर्ध्वभाग का पर्वतीय जल लाती है।

नीलमत पुराण मे इस ग्राम का उल्लेख है।

भूर्जस्वामी हिडिम्बेषु लोभारः श्रीविनायकः ।
उत्तंकेषु गुहावासी भीमेषु सौमुखस्तथा ॥
992 : ११६३

जोनराज ने अपनी राजतरगिणी मे लेद्री किंवा लेदरी का उल्लेख किया है। उसका कहना है कि वितस्ता लेद्री, सिन्धु, तथा क्षिप्रिका नदियाँ परस्पर अपने समीपवर्ती ग्रामो एवं भूमिखण्ड को जल प्लावित करने मे स्पर्धा करती थी। (जो० १०६, ११८)

श्रीवर एक युद्ध के प्रसग मे वर्णन करता है। चक्रेश के नेतृत्व मे मार्ग पति से चक्रधर को ओर से आकर वामतट से नदी पार कर बादशाह से मिल गये। (श्लोक २२२)

मुझे लेवार, लोलोव ग्राम तथा लोलोव का उल्लेख जोनराज, श्रीवर, शुक की राजतरगिणियो मे नही मिला। इन पुस्तको में नामानुक्रमणिका उपलब्ध न होने के कारण और कठिनाई पडी है।

निस्सन्देह नोलमत वर्णित लोभार का अपभ्रंश 'लोलार' हो सकता है।

ततस्तस्य सुतः प्राप रिपुनागकुलान्तकः ।
भुर्यः शौर्यश्रियः श्रीमान् खगेन्द्रः पार्थिवेन्द्रताम् ।। ८९ ।।

खगेन्द्र

८९. कुश के पश्चात् उसका पुत्र रिपुनाग कुलान्तक पार्थिवेन्द्र श्रीमान् खगेन्द्र[1] राजा हुआ। वह शौर्यशाली और जननेता था।

स खागिखोनमुषयोः कर्ता मुख्याग्रहारयोः ।
हरहाससितैः कृत्यैः क्रीताँल्लोकान्क्रमाद्ययौ ।। ९० ।।

९० वह खोनमुष[1] तथा खागी[2] अग्रहारो का कर्ता था। शिव के हास तुल्य उज्ज्वल अपने शुभ कर्मो द्वारा उसने स्वर्ग लोग क्रय कर स्वर्ग गमन किया।

एक दूसरी कुशस्थली अनर्तदेश की राजधानी थी। पुण्यजन नामक राक्षसो ने रैवत राजा के समय इसे लूट लिया था। (पुराण विष्णु ४ १:१९, वायु ८६ २४:२४, भागवत १ १० २७, ब्रह्माण्ड ३ ६१ २०)

कुशद्वीप का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। कुसमाल समुद्र को कुशद्वीप से मिलाने की चेष्टा की गयी है। अफ्रीका के उत्तरी पूर्वीय तट नुबिया के समीपवर्ती समुद्र को इसकी सज्ञा दी गयी है।

(सुपारक जातक भाग ४ पृष्ठ १४०)

जम्बु. शाक. कुशः क्रौञ्च' शाल्मलिर्द्वीप एव च ।
गोमेध पुष्करश्चैव द्वीपा पूज्या पृथक्-पृथक् ॥
587 . ७०८

कुशपुर किंवा कुशभवनपुर नाम जनश्रुति के अनुसार राम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया है। यह तीन तरफ गोमती नदी से घिरा है। उत्तर प्रदेश मे है।

कुशवती वर्तमान कुशीनारा अथवा कुशीनगर है। जहाँ भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ था। यह मल्लो की राजधानी थी। (जातक ५ २७८, दोघ-निकाय २ १७०)

कुश वैदिक साहित्य में कुशा के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। यह लकडी अथवा धातु के कील रूप में भी प्रयुक्त किया गया है। (शतपथ ब्राह्मण ३ ६. २ ९, १५ २ २५, ३ १ २ १६; ५ १ ३ २ ७, मैत्रायणी सहिता ४ ५ ७, तैत्तिरीय ब्राह्मण १ ५ १० १)

(२) कुरुहार वर्तमान कुलर है। लिदर नदी की पश्चिम दिशा में लगभग ४ मील उत्तर लिदर उपत्यका में स्थित है। यह एक बडा गाव है। पण्डित दयाराम कौल का मत है कि यह दक्षिणपुर परगना में है।

८९ (१) खगेन्द्र आइने अकबरी ने खगेन्द्र का नाम कहेगुन्दर दिया है। खगेन्द्र का अर्थ गरुड होता है। हसन ने इसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया है।

खगेन्द्र का शाब्दिक अर्थ गरुड होता है। नाग का अर्थ सर्प है। गरुड तथा सर्प मे वशपरम्परागत शत्रुता है। गरुड सर्प किंवा नाग का सहार करता हैं। कल्हण ने वही उपमा यहाँ दी है। गरुड खग अर्थात् पक्षियो का राजा है। तात्त्विक दृष्टि से खगेन्द्र ज्योति तथा नाग तम के प्रतीक हैं। ज्योति एव तम अर्थात् अन्धकार एव प्रकाश का सघर्ष ही खगेन्द्र एव नागो का चिरकालीन सग्राम हैं। खगेन्द्र जिस प्रकार पक्षियो का नेता है। उसी प्रकार मानव नामधारी खगेन्द्र जनता का नेता है। गरुड विष्णु का वाहन है। वेगमान है। शौर्यशाली है। इस प्रकार गरुड के नाग विध्वंसक, तथा नेतृत्व, एव शौर्य को तुलना मानवीय खगेन्द्र से कल्हण ने की है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९० में 'खोनमु' का पाठभेद 'खागिखुनमु' मिलता है।

अनर्घमहिमा दीर्घमघवत्ताबहिष्कृतः ।
अथ साश्चर्यचर्योऽभूत् सुरेन्द्रस्तत्सुतो नृपः ॥ ९१ ॥

सुरेन्द्र

९१. उसके पश्चात् उसका पुत्र सुरेन्द्र[1] राजा हुआ। वह पापों से बहुत दूर था। उसमें असीमित महानता थी। उसके कार्यों से जगत् आश्चर्यित था।

पादटिप्पणियाँ :

९० (१) खोनमुष : यह प्रसिद्ध वर्तमान ग्राम खुनमोह हैं। पामपुरके उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम लगभग ३ मील पर है। यह केशर की खेती के लिए प्रसिद्ध है। विक्रमाकदेवचरित्र के लेखक कवि विह्लण की जन्म-भूमि है। (वि० १८७०७) विक्रमादित्य त्रिभुवन मल्ल ने कल्याण में सन् १०७६ से ११२७ ई० तक राज्य किया था। यहाँ के मन्दिरो को मुसलिम जियारतो में परिणत कर दिया गया है।

विह्लण जैसे महान् कवि का यहाँ स्मारक नही है। यह देखकर दुःख हुआ। स्थानीय ग्रामीणो से बातचीत की। किसी ने विह्लण का नाम जैसे यहाँ सुना हो नही हैं। यह नाम उनके लिए अपरिचित सा लगा। इस स्थान की क्यो प्रसिद्धि है किसी को कुछ मालूम नही। प्राचीन इतिहास लोग भूल गये हैं।

श्रीनगर आने वाली सडक के बाईं तरफ सटा एक नाग है। सडक के नीचे पुस्ता बाधा गया है। सडक के एक ओर उठता पहाड़ है। दूसरी तरफ नीचे के कुण्ड बने हैं। सडक के पुस्ता के लगभग १५ फुट नीचे चौखटा कुण्ड बनाया गया है। जल सडक के नीचे नली से सरोवर होकर कुण्ड में पहुँचता है। जल दूसरी तरफ वाली पहाडी से आता है।

जलस्रोत का जल उपयोगी बनाने के लिये दो कुण्ड चौकोर बने है। पहला कुण्ड सडक के पुस्ता से सटा है। उसके दक्षिण कोण पर कुछ शिवलिंग तथा ठोस मन्दिराकार शिलाखण्ड रखे हैं। दूसरे कुण्ड में उतरने के लिए सीढियाँ नाग की बाईं तरफ से बनी हैं। उन सीढियो के बाईं तरफ फर्श पर कुछ ठोस शिलाखण्ड मन्दिराकार रखे थे।

स्नान करने के लिए एक स्त्री तथा एक पुरुष के लिए लकडी के स्नान गृह बने रखे थे। ग्राम की जनता मुसलिम है। मुसलिम स्त्रियाँ कुण्ड मे वस्त्र धो रही थी। कुण्ड का जल गन्दा हो गया था।

शहतूत के वृक्ष आस पास काफी हैं। बादाम के पेड इस ओर बहुत मिलेगे। बादाम के बाग, शाली तथा केशर यहाँ की मुख्य कृषि है। स्थान रम्य है। ग्रामीण जनता सरल तथा भावुक है। कुण्ड के दक्षिण पार्श्व के बाग मे मसजिद तथा जियारतें हैं।

(२) खागी : वर्तमान ग्राम खाड़ा है। यह एक बडा ग्राम है। बीरू परगना मे है। इसका उल्लेख रा० त० १:३४० में पुनः किया गया है। गोपादित्य ने खौगिका अग्रहार स्वरूप इसका दान किया था।

हैदर मलिक तथा नारायण कौल के इतिवृत्त के अनुसार काकपुर ग्राम है। यह ग्राम पामपुर के ऊपर स्थित है। उसे खागी कहा गया है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नही मिलता।

खागी से ३६ मील उत्तर एक शैलबाहु बाहर निकला है। इसे पोष्कर कहते हैं। कह पीर पंजाल पर्वतमाला से मैदान को तरफ निकलता हैं। इसके पूर्व ओर पुष्कर नाग है। नीलमत तथा माहात्म्यो में इसकी सज्ञा तीर्थ की दी गयी है। लोग यहाँ की यात्रा करते हैं। कश्मीर मे कई पुष्कर तीर्थों का वर्णन है। एक सुरेश्वरी तीर्थ से सम्बन्धित सम्भवतः फाख में था।

९१ (१) सुरेन्द्र आइने अकबरी में सरेन्द्रिर नाम दिया गया है। सुरेन्द्र का अर्थ इन्द्र होता है। हसन ने इसका शासन-काल ४७ वर्ष लिखा है।

मुसलिम इतिहासकारो ने लिखा है कि राजा को एक कन्या सतपनभानु थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता, यौवन तथा शालीनता की ख्याति सुनकर इफेन्दियर का पुत्र वहमन उस पर मोहित हो गया। उसने भानु से विवाह कर लिया। अर्दिशीर दिरजदेस्त के नाम से ईरान का बादशाह हुआ।

वैदुद्दीन इतिहासकार के अनुसार—यह सम्बन्ध सुखकर नही हुआ। राजपुत्री के पिता, कश्मीर के राजा सुरेन्द्र के सम्बन्ध में बादशाह ने अपमानजनक शब्दो का प्रयोग किया। काश्मीर राजपुत्री की प्रेरणा पर वहमन मार डाला गया।

हसन एक और विचित्र कहानी पेश करता है—'राजा सिर्फ एक लडकी रखता था। कनालू नामी जो शक्ल व सूरत और इल्म व फन में मशहूर रोजगार थी। एक दिन एक ईरानी नाजिर कीमती जवाहरात लेकर वराए फरोख्त राजा की खिदमत में हाजिर हुआ। नावाकिफियत की वजह से राजा को इनमें से एक भी पसन्द न आया। जिससे वेचारा वहुत ही शिकस्त दिल हुआ। इन्तहाई मायूशी के पेशनजर नाजिर मजकूर कनालू की खिदमत मे गया। कनालू जो हर शनास थी, लेहाजा उसने एकदम तमाम जवाहरात ताजिर से खरीद लिए।

'वापसी पर सौदागर ने इस लडकी के हुस्न व जमाल और सलीक की तारीफ अपने मुल्क के वादशाह वहमन असफदयार से की। असफदयार लडकी ना नादीद आशिक हो गया। हकीम तानास्य को खवास्तगारी के लिए राजा के पास भेजा। राजा ने कनालू की मरजी को मुताविक वहमन की दरख्वास्त मजूर की और कीमती तुहफे व तहायफ के साथ अपनी लडकी उसके रजायी भाई लोलो हमराह वहमन के पास भेज दिया। वहमन पारजानी के साथ दाद ऐश देने में मशरूफ था कि कुछ बरस वाद अपने बीवी के रजाई भाई लोलो की ग़द्दारी से इन दुनिया से रुखसत हो गया। लोलो भी अपने फेल वद की सजा भुगतने से न बच सका।

हसन का बयान किसी आधार पर आधारित नही है। बिलकुल वनावटी है। कश्मीर में मुसलिम शासन स्थापित होने पर बहुत से मुसलिम इतिहासकारो ने कश्मीर का सम्बन्ध गैर हिन्दुस्तानी देशो से जोडने तथा हिन्दुओ को नीचा दिखाने का प्रयास किया है। उसी का यह एक नमूना है।

कल्हण स्पष्ट लिखता है कि राजा सुरेन्द्र सन्तानहीन था। यदि हसन तथा मुसलिम इतिहास लेखको की बात मान ली जाय कि राजा को एक कन्या थी और उसका विवाह ईरान के राजा से कर दिया गया था तो यह स्वाभाविक था कि कश्मीर मण्डल के राज्य का उत्तराधिकारी उसकी कन्या अथवा कन्या की सन्तान होती। ईरान का राजा तथा कश्मीर की राजकुमारी अपने अधिकार का अवश्य दावा करती।

यदि राजकुमारी का पति उसकी अनुमति से मार डाला गया था तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राजकुमारी का ईरान के राजनीतिक जीवन में प्रभाव था। अन्यथा राजा के वध-षड्यत्र में सम्मिलित तथा सफल नही होती। राजा के वध के पश्चात् उसका ईरान की राजनीति में प्रवल हाथ होता। वह अपने नि सन्तान पिता का राज्य लेने का अवश्य प्रयास करती। किसी मुसलिम इतिहासकार ने राजकुमारी का मारा जाना नही लिखा है। केवल हसन ने लिखा है कि राजपुत्री के रजाई अर्थात् धात्री भाई न ईरान के राजा की हत्या को और वह मारा गया।

इसका एक दूसरा पहलू है। कल्हण कहता है। सुरेन्द्र का राज्य दूसरे कुल में चला गया। ऐसी स्थिति में राजा सुरेंद्र अपनी एक मात्र सन्तान

शतमन्युः शान्तमन्योर्गोत्रभिद्गोत्ररक्षिणः ।
लेभे यस्य सुरेन्द्रस्य सुरेन्द्रो नोपमानताम् ॥ ९२ ॥

९२. इन्द्र सुरेन्द्र [1] की इस सुरेन्द्र से तुलना नहीं हो सकती क्योकि सुरेन्द्र शतमन्यु अर्थात् शतक्रोधी था और सुरेन्द्र शान्त मन्यु अर्थात् शान्त क्रोध था। यह सुरेन्द्र गोत्र अर्थात् पर्वत रक्षक था और वह सुरेन्द्र गोत्रभिद अर्थात् पर्वत सहारक था।

कश्मीर के बाहर विदेश नहीं भेजता। कश्मीर में हिन्दू धर्म का प्रभाव था। सुरेन्द्र स्वयं धार्मिक राजा था। उसके लिए यह संभव नही हो सकता था कि वह अपनी एक मात्र सन्तान का विवाह एक विधर्मी से कर देता। ईरान के राजा ने उस पर आक्रमण नही किया था। एक सौदागर के कहने और एक हकीम से संदेश सुनकर, राजपुत्री को विवाह के लिए भेज देना तर्क सम्मत नही मालूम होता। यदि वह अपनी कन्या का विवाह करना स्वीकार करता तो दो राज्यो के विवाह सम्बन्ध के अनुसार पिता किवा वर स्वयं एक दूसरे के यहाँ आकर करते। कश्मीर मण्डल के चारो ओर हिन्दू राज्य था। कन्या के लिए वर मिलना कठिन नही था। राजा सुरेन्द्र अपना राज्य कैसे दूसरे कुल में, अपनी कन्या ईरान के राजा को देकर, जाना पसन्द करता, कुछ बात दिमाग में बैठती नही। हसन अथवा मुसलिम इतिहासकारो के दिमाग में मुसलिम काल की बातें याद आई होगी। जहाँ लर्डकियाँ छोटे राजाओ के यहाँ से खूबसूरती की सुहरत सुनने पर मँगा ली जाती थी। उनका धर्म परिवर्तन कर विवाह कर लिया जाता था। यह सब मनगढन्त और इतिहास पर दूसरा रंग देने का विचित्र प्रयास किया गया है, जो कल्पना तथा मानव-प्रवृत्ति के परे की बात है।

(२) दीर्घबहिष्कृत—इसका श्री स्तीन ने दो प्रकार से अनुवाद किया है।—उसका एक अनुवाद उन्होने किया है—'जिसने कि इन्द्र के राज्य को भी मात कर दिया था—।'

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९२ मे 'सुरेन्द्रो नोपमानताम्' का पाठभेद 'न सुरेन्द्र. समानताम्' तथा 'यस्य' का 'तस्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९२(१) सुरेन्द्र—सुरेन्द्र का अर्थ यहाँ इन्द्र है। दोनो सुरेन्द्रो के आचरणो की तुलना कल्हण ने की है। उसने राजा सुरेन्द्र को 'शान्तमन्यु' अर्थात् शान्त क्रोध और इन्द्र को 'शतमन्यु' अर्थात् 'सैकडो से क्रुद्ध' कहा है। इन्द्र को पर्वत नाशक अर्थात् गोत्रभिद् और सुरेन्द्र राजा को गोत्र रक्षक अर्थात् पर्वत का रक्षक कहा है। कश्मीर मण्डल पर्वतीय क्षेत्र है। पर्वत द्वारा आवृत है। अतएव कल्हण ने सुरेन्द्र को पर्वतीय काश्मीर का रक्षक कहा है।

उत्तर वैदिक साहित्य मे वर्णन है। पर्वतो को पंख होते थे। वे उडते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान पर उडकर बैठ जाते थे। जनता तथा भूमि नष्ट हो जाती थी। इन्द्र ने पर्वतो का पंख काट दिया। उस समय से पर्वतो का उडना बन्द हो गया। पूर्व वैदिक साहित्य के अनुसार इन्द्र को गोत्रभिद् कहा गया है। वैदिक कथानक के अनुसार गोत्रपर्वत का भेद किया था जिससे जल मुक्त होकर निकला। इन्द्र का निवासस्थान स्वर्ग है। राजधानी अमरावती है। नन्दन उद्यान है। ऐरावत श्वेत हाथी है। अश्व उच्चै. श्रवा है। सारथि मातलि है, धनुष शक्र-धनुष है। तलवार का नाम परेज है।

क्षत्रिय राजाओ की उपमा प्राय. इन्द्र से दी जाती है। भारतीय राजतन्त्र का सिद्धान्त इन्द्र की कल्पना पर आधारित है। इन्द्र स्वर्ग का राजा है। पृथ्वी का राजा क्षत्रिय है, मनुष्य है। अतएव इन्द्र की तुलना पृथ्वी के श्रेष्ठ राजाओ से की जाती है।

दरद्देशान्तिके कृत्वा सोरकाख्यं स पत्तनम् ।
श्रीमान्विहारं विदधे नरेन्द्रभवनाभिधम् ॥ ९३ ॥

९३. उसने दरद देश[१] के समीप सोरक[२] नामक पत्तन बसाया और उस श्रीमान् ने[३] नरेन्द्र भवन विहार का निर्माण कराया।

तेन स्वमण्डलेऽखण्डयशसा पुण्यकर्मणा ।
विहारः सुकृतोदारो निर्मितः सौरसाभिधः ॥ ९४ ॥

९४. उस अखण्ड यशशाली पुण्यकर्मी राजा ने अपने मण्डल मे सौरस[१] विहार की स्थापना की जो सुकृत तथा उदारता के लिये प्रसिद्ध था।

यहाँ कल्हण ने सुरेन्द्र शब्द का अच्छा निर्वाह किया है।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या ९३ मे 'सोरकाख्य' का पाठभेद 'सरोकाख्य' तथा 'सौरसाख्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

९३ (१) **दरद देश** इसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थो मे आता है। यह अचल कश्मीर का आज भी एक भाग है। कश्मोर प्रदेश के उत्तर में हैं। इसको दर्दिस्तान कहते हैं। जातको मे इसकी स्थिति हिमवा अर्थात् हिमालय में वतायी गयी है। हिमालय की शाखा हिन्दुकुश में है। मार्कण्डेय पुराण में दर्दुर पर्वत का उल्लेख है। इस अचल के पर्वत को दर्दुन कहा जाना ठीक है। यूनानियो ने दरदाई नामक जाति का उल्लेख किया है। जातको मे उपचर के पाँचवें पुत्र के दद्दरपुर नगर वसाने का उल्लेख मिलता है। (चेतिय जातक जातक भाग १ ६७ ३ १५-१६। विशेप परिशिष्ट दरद जाति मे देखिये)।

(२) **सोरक** दरद अर्थात् दर्दिस्तान के साथ कह्लण के स्वमण्डल शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि यह स्थान कश्मीर के वाहर था। इस स्थान का पता अभी तक नही लग सका है। एक मत है कि दर्दिस्तान की सीमा पर वह स्थान है।

(३) **नरेन्द्र भवन** कह्लण ने भवन शब्द का प्रयोग विहारो के लिए किया है। नरेन्द्र-भवन-तुल्य स्कद भवन, अमृत भवन, मोराक भवन आदि विहारो का वर्णन मिलता है। भवन शब्द का साधारण अर्थ निवास स्थान होता है।

रोरक तथा नरेन्द्र भवन विहार स्थानो के विषय से निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि वे कहाँ थे।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९४ में 'सुकृतोदार' का पाठभेद 'स्वकृतोदारे' और सुकृतोदारे' तथा 'सौरसाभिध' का पाठभेद 'मोरसाभिध' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

९४ (१) **सौरस :** पडित पी० गोविन्द कौल ने सौरस विहार का स्थान वर्तमान ग्राम सुरस बताया है। यह नागाम परगना के सगसफेद (चतस्कनो) पर स्थित है। यह स्पष्ट है कि नाम सौरस स्थान का सुरस शब्द को व्युत्पत्ति के आधार पर रखा गया है।

(२) **विहार स्थापना** विहार शब्द का राजतरगिणी एव कश्मीर के इतिहास में यहाँ प्रथम वार उल्लेख मिलता है। मालूम होता है कि राजा सुरेन्द्र के समय वौद्ध धर्मावलम्वी कश्मीर में आए और राजा ने उस धर्म की ओर आकर्षित होकर विहारो की स्थापना की थी। विहार की स्थापना भिक्षुओ के लिए की जाती है। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वौद्ध धर्म के प्रचारक कश्मीर मडल मे पहुँच चुके थे। उनका प्रभाव कश्मीर में वढ रहा था।

तस्मिन्निस्सन्ततौ राज्ञि प्रशान्तेऽन्यकुलोद्भवः ।
बभार गोधरो नाम सभूधरवरां धराम् ॥९५॥

गोधर

९५. राजा सुरेन्द्र जब सन्तान हीन स्वर्ग गमन किया तो अन्य कुलोद्भव गोधर[1] राजा हुआ। उसने सुरम्य पर्वतों सहित पृथ्वी का भार उठाया।

गोधराहस्तिशालाख्यमग्रहारमुदारधीः ।
स प्रदाय द्विजन्मभ्यः पुण्यकर्मा दिवं ययौ ॥९६॥

९६. उस उदारधी राजा ने गोधर[1] हस्तिशाला[2] अग्रहार द्विजन्मों को प्रदान किया और पुण्य कर्म करते हुए स्वर्ग गमन किया।

विहार शब्द रहने तथा कोठरी जिसमे भिक्षु-निवास करते हैं दोनो के लिये आता है। सघाराम के अन्दर अनेक कोठरियाँ होती हैं। उनमें एक कोठरी का नाम विहार पड़ता है। मूलगन्धकुटी विहार भगवान् बुद्ध के रहने की कोठरी थी। बौद्ध मठों के लिये कालान्तर में विहार शब्द को संज्ञा दी जाने लगी। विहारो की अधिकता के कारण विहार प्रदेश का नाम पडा है। विहार शरीफ एक स्थान पटना से लगभग ३० मिल दक्षिण पूर्व पचानन नदी पर स्थित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९५ में 'वरा धराम्' का पाठभेद 'वसुन्धराम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९५ (१) आइने अकबरी मे गोधर नाम दिया गया है। हसन इस राजा का राज्य-काल ३२ वर्ष देता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९६ मे 'गोधराह' का पाठभेद 'गोधरोह' तथा 'गोधर अस्ति हिल्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९६ (१) गोधर दिवसर परगना के वर्तमान ग्राम गोधर, अस्तेल प्राचीन गोधर तथा हस्तिशाला अग्रहार है। गोधर विशोका नदी के तट पर ग्राम है। यह विशोका में मिलने वाली स्थानीय नदी गोदावरी के संगम पर है। गोदावरी माहात्म्य में गोदर नाम से गुदर ग्राम का उल्लेख आया है। उसे गोदावरी उद्भव गाथा से सम्बन्धित करता है।

अस्मित् गिरो महादेवी गौतमेन महात्मना।
गौर्वा विदारिता प्रोक्तो गौदरो गिरिसत्तमः॥

यह गोदावरी नदी दक्षिणापथ की सबसे लम्बी बडी और प्रसिद्ध नदी नही है। कश्मीर की साधारण एक स्रोतस्विनी है। नीलमत पुराण में उल्लेख है।

नदी चित्ररथा पुण्या मृगनन्दा मृगा तथा।
गोदावरी वैतरणी तथा मन्दाकिनी शुभा॥
1254 : १४६६,१४६७

गोदावरी माहात्म्य मे उल्लेख आता है।

यस्मिन्गिरौ महादेवि गौतमेन महात्मना।
कृत्या गौर्दारिता प्रोक्तो गोदरः सः गिरिर्महान्॥
यस्मिन् ग्रामे गोदराख्यः पर्वतः संप्रतिष्ठितः।
स ग्रामो प्रथितः क्वापि गोदराख्यो महेश्वरि॥
गौर्वा विदारिता यत्रोत्थिता गंगा जलोच्छ्रिता।
सैव गोदावरी नाम गंगा परमपावनी॥
(रघुनाथ मन्दिरजम्मू. सं० ३६६४।३६ बी०)

श्री स्तीन यहाँ आये थे। उन्हें यहाँ के मियां, जागीरदार तथा स्थानीय पुरोहितों से मालूम हुआ था कि एक जनश्रुति प्राचीन काल से सुनाई पड़ती चली आती है कि इस स्थान पर राजा गुदर ने एक नगर

तस्य सूनुः सुवर्णाख्यस्ततोऽभूत्स्वर्णदोऽर्थिनाम् ।
सुवर्ण सुवर्णमणिकुल्यायाः कराले यः प्रवर्तकः ॥९७॥

९७. उसके पश्चात् याचको का सुवर्ण[1] दाता उसका पुत्र सुवर्ण राजा हुआ। उसने कराल[2] मे सुवर्ण मणि कुल्या[3] लाया।

बसाया था। यहाँ कोई ध्वसावशेष नही मिलता। बडा नगर आबाद होने योग्य स्थान नही है। सम्भव है प्राकृतिक एव ऐतिहासिक उथल-पुथल में उनका प्राचीन रूप नष्ट हो गया तथा बचे-खुचे ध्वसावशेषो का उपयोग कही और हो गया हो।

(२) हस्तिशाला . गुदर से लगभग १ मील उत्तर-पूर्व विशोका नदी के वलुए द्वीप पर हस्तिशाला स्थित है। इसे अस्ति हेल कहते है। मालूम होता है कि हेलराज द्वारा उल्लिखित राजा गोधर के कारण कल्हण तथा पद्ममिहिर का ध्यान इस ग्राम की ओर गया होगा। यहाँ गोधर राजा सम्बन्धी कुछ गाथा प्रचलित है। गोधर का अर्थ होता है। गाय का स्थान गोशाला।

८७(१) सुवर्ण आइने अकबरी सुरेन नाम देती है। हसन लिखता है कि सन् ११६६ क० में राजा सुवर्ण गद्दी पर बैठा। उसने आडोन का परगना आवाद किया। राज्य-काल ३५ वर्ष कहता है।

(२) कराल : जौन राज (८६१-६२) तथा श्रीवर ने (३ १९४) अपनी राजतरगिणियो में कराल का उल्लेख किया है। वहाँ वडशाह जैनुल आबदीन ने जैनपुरी परगना कराल विश्य में बसाया था। जैनपुरी (दत्त ४७,२४८) वर्तमान जैनपुर है। यह अद्विन अर्धवन परगना की अधित्यका में रामव्यार नदी के दक्षिणी क्षेत्र का बाधक है। यही क्षेत्र कराल है। हैदर मल्लिक ने भी राजा सुवर्ण के कार्य स्थान का सम्बन्ध इससे जोडा है।

(२) सुवर्ण मणि कुल्या कुल्या शब्द वैदिक है। ऋग्वेद में यह उस नहर के लिए व्यवहृत किया गया है जो किसी झील किंवा ह्रद में गिरती अथवा मिलती हैं। (ऋग्वेद ३ ४५ ३, १०:४३ ७,) कश्मीर की अनेक कुल्याएँ डल लेक तथा ऊलर लेक में मिलती हैं या उनसे निकाली गयी हैं।

पुराणो मे कुल्या का उल्लेख मिलता है

त्रिसामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या।
लांगलिनी वंशधरा महेन्द्र-तनया- स्मृता॥

ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
क्रिया पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवा· स्मृताः॥

त्रिसादा ऋषिकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवा स्मृता·।
ऋषिकुल्या कुमार्याद्या· शुक्तिमत्पादसम्भवा.॥

मार्कण्डेय पुराण मे 'पितृ सामपि कुल्या,' 'वायु पुराण में 'त्रिसामा ऋषिकुल्या,' 'त्रिसामा ऋतु कुल्या,' ब्रह्माण्ड पुराण में 'त्रिसामा ऋषिकुल्या,' विष्णु पुराण में 'त्रिसामा चार्ष्यकुल्याद्या,' 'ऋषि कुल्या कुमार्याद्या', ब्रह्माण्ड पुराण में 'त्रिसान्ध्य-ऋषि कुल्याद्या,' 'त्रिमाया ऋषिकुल्याद्या' तथा 'ऋषिकुल्या कुमाराद्या' का उल्लेख आया है। कूर्म पुराण में 'ऋषिकुल्या त्रिसामा', मत्स्य पुराण में 'त्रिभागा ऋषिकुल्या' का उल्लेख मिलता है।

ऋषिकुल्या नामक एक धारा बरहमपुर के दक्षिण पूर्वी रेलवे स्टेशन पर स्थित गंजाम जिला उत्कल प्रदेश के समीप वगाल की खाडी में गिरती है। एक दूसरी ऋषिकुल्या और धारा है। उसे छोटा नागपुर में कोइल कहते हैं। कुल्या का अपभ्रंश कोइल हो गया। तीसरी ऋषिकुल्या गगा की एक सहायक नदी कियुल है। कियुल शब्द भी कुल्या शब्द का अपभ्रंश है।

कुल्या शब्द वैदिक काल से अब तक जलधारा के लिए मुख्यत वे धाराएँ जो जल सिंचन निमित्त निकाली गयी हैं, प्रयुक्त होता रहा है। नाला शब्द

तत्सूनुर्जनको नाम प्रजानां जनकोपमः।
विहारमग्रहारं च जालोराख्यं च निर्ममे ॥९८॥

जनक

९८. प्रजागण के लिये जनक तुल्य उसका पुत्र जनक[1] राजा हुआ। उसने जालोर[2] विहार तथा अग्रहार निर्मित किया।

शचीनरस्तस्य सूनुः क्षितिं क्षितिशचोपतिः।
ततः श्रीमान्क्षमाशीलो ररक्षाऽक्षतशासनः ॥९९॥

शचीनर

९९. उसके पश्चात् उसका पुत्र शचीनर[1] जो पृथ्वी पर शचीपति तुल्य था, पृथ्वी की रक्षा किया। उस श्रीमान् क्षमा शील के शासन का कोई स्वेच्छया उल्लंघन नहीं करता था।

कुल्या के तत्सम रूप से प्रयुक्त होता है। कुल नाला के लिए व्यवहार किया गया है। सम्भव है किसी रूप में कुल्या का अपभ्रंश नाला शब्द हो गया है। नलिका शब्द छोटी धारा के लिए प्रयुक्त किया गया है। नलिका का अपभ्रंश नाली है।

ऋषिकुल्यामथासाद्य देवकुल्यां तथैव च।
अश्वतीर्थं प्रभासं च वारुणं तीर्थमेव च ॥
1316 : १५३०

सुवर्ण मणि कुल्या को स्वन्नमय नादो कहते हैं। यह वर्तमान सुन्नमन कुल है। जैनपुरी अधित्यका के पूर्वीय अंचल में निल्लू, परगम, कुजरू, आदि गाँवों में बीस मिल बहती आदविन गाव से थोडी दूर पर विशोका अर्थात् विसावू नदी में पुनः मिल जाती है। यह विशोका नदी से ही लागू ग्राम के समीप निकाली गयी है।

९८(१) जनक : आइने अकबरी ने जन्नेक नाम दिया है। बैदुद्दीन इतिहासकार कहता है कि जनक ने अपने पुत्र को ईरान पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उस समय ईरान का राजा होमाई था। बहमन के पुत्र दरव द्वारा आक्रमणकारी राजपुत्र मार डाला गया।

(२) जालोर : हसन ने जालोर तथा जालोर बाग का दान देना लिखा है। विहार का अर्थ उसने गाव लगाया है। यह गलत है। हसन को इतना भी ऐतिहासिक ज्ञान नही है कि विहार बौद्धो के देवस्थान को कहते है। यदि रत्नाकर पुराण से अथवा अन्य किसी ग्रन्थ से यह लिया गया है तो विहार का अर्थ सर्वदा बौद्ध स्थान के रूप में किया गया है। इस राजा का राज्य-काल वह ३२ वर्ष देता है।

पं० गोविन्द कौल जालोर को वर्तमान ग्राम जोलुर बताते हैं। यह जैनगिर परगना मे है। हैदर मल्लिक 'जालुरः' को 'विहू' अर्थात् 'वीही' परगना में होना बताते है। इस पर कुछ और अन्वेषण की आवश्यकता है।

९९ (१) शचीनर : आइने अकबरी में नाम सजोनीर दिया गया है। हसन ने राजा शचीनर का राज्य-काल ४० वर्ष दिया है। यह केवल अनुमान है। वैदिक साहित्य मे शची शब्द का प्रयोग शक्ति, सामर्थ्य के अर्थ मे किया गया है। इंद्र का नाम शचीपति है। यहाँ शचीपति का शाब्दिक अर्थ होगा इन्द्र। (ऋग्वेद १:१७'४. १.६२:१२, १:१०३ २; १:१०९'७, ३:६० .६ शाखायन गृह्यसूत्र १:१२, वाजसनेयि संहिता १९'८१ तथा ऐतरेय ब्राह्मण ७ ३३)।

कल्हण (तरंग ८:३४११) ने शचीनर की माता का नाम शची दिया है।

राजाग्रहारयोः कर्ता शमाङ्गासाशनारयोः ।
साऽभूदपुत्रः सुत्रामविष्टरार्घसमाश्रयी ॥१००॥

१००. यह राजा राजकीय अग्रहार शमांगासा तथा शनार की स्थापना किया। राजा नि:सन्तान था उसने इन्द्र का आधा सिंहासन प्राप्त किया।

प्रपौत्रः शकुनेस्तस्य भूपतेः प्रपितृव्यजः ।
अथावहदशोकाख्यः सत्यसन्धो वसुंधराम् ॥१०१॥

अशोक

१०१. तत्पश्चात् सत्यसंघ[1] अशोक[2] जो भूपति के प्रपितृव्य तथा शकुनी[3] का प्रपौत्र था, वसुंधरा पर राज्य किया।

---

१०० (१) समागासा यह वर्तमान सागस ग्राम है। यह एक बडा ग्राम है। कोठार अथवा कुठहार परगना के अरपथ नदी के वाम तट पर स्थित है। हैदर मल्लिक लिखता है 'शमाल काश' नामक गाव कुट्हार परगना में राजा ने बसाया था। समागासा का उल्लेख पुन कह्लण ने रा० त० ८ ६५ में किया है।

(२) शनार : वीही परगना में शार नाम ग्राम है। यह रन्प्रू के दक्षिण पूर्व एक मील पर होगा। हैदर मल्लिक के अनुसार राजा शचीनर ने वीही परगना में 'शरार' ग्राम आबाद किया था। शार लोहे के कारबार का केन्द्र था। सार का अर्थ लोहा होता है। यह पूर्व काल मे लोहा बनाने का केन्द्र था। स्तीन ने यहा की यात्रा सन् १८९१ में की थी। यहाँ के गाँव के मध्य की जियारत 'ख्वाजा खिज्र' में प्राचीन ध्वसावशेष के विशाल पत्थर लगे है। यह जियारत सन् १५८० ई० की बनी है। एक नाग अर्थात् निर्झर के समीप कुछ अलकृत स्तम्भ पडे है। श्री वाइन ने अपने यात्रा-वर्णन (ट्रेवेलस २ ३५) में इसका उल्लेख किया है।

हसन ने शनार को शारदा गाव माना है।

१०१ (१) सत्यसध का अर्थ होता है सत्य-प्रतिज्ञ, सत्यवादी, सत्य सकल्प, वचन पालक तथा ईमानदार। नि सन्देह अशोक सच्चरित्र था। सत्य-प्रिय था। सत्य प्रतिज्ञ था।

मालूम होता है। कल्हण के समय अशोक नाम से सम्बन्धित प्रसिद्ध विशेषण 'देवानाम् प्रिय' 'प्रियदर्शी' जनता विस्मृत कर गयी थी। सम्भव है अशोक कालीन लिपि, भाषा तथा पालि भाषा विज्ञ उस समय कोई नही रह गया था। अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक स्वल्प किंवा प्रचुर सामग्री कल्हण को नही प्राप्त थी। अतएव उसने विस्तार के साथ अशोक जैसे महान् राजा के विषय में नही लिखा है।

अशोक का जन्म ईसा पूर्व २९७ में हुआ था। वह सिंहासन पर ईसा पूर्व २७२ में बैठा। उसकी मृत्यु ईसा पूर्व २३२ में हुई थी। इस प्रकार कल्हण और अशोक के काल में १३८० वर्षों का अन्तर पडता है।

कल्हण के समय देवानाम् प्रिय एव प्रियदर्शी विशेषण लोग भूल गये थे। कल्हण ने अशोक जैसे सम्राट् का राज्य काल एव समस्त वर्णन केवल ७ श्लोको (१ : १०१–१०७) में समाप्त कर दिया है। स्पष्ट है कि उस समय कश्मीर में अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध नही थी। उसके निर्मित चैत्य, विहार जिन पर पालि भाषा तथा ब्राह्मी लिपि आदि में शिलालेख अकित रहे उनका पढना तथा अर्थ लगाना लोग भूल गये थे। अन्यथा अशोक द्वारा निर्मित विहारो, चैत्यो

एवं स्तूपो के स्थान, कालादि के वर्णन द्वारा कल्हण अशोक का पूर्णतया वर्णन करता। उनके कारण इतिहास पर नवीन प्रकाश पडता। यदि कश्मीर में अशोक सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती तो कल्हण जैसी पैनी दृष्टि वाला इतिहास लेखक, इस प्रकार की दुर्लभ सामग्रियो की उपेक्षा नही कर सकता था।

तथापि सत्यसध शब्द देवानाम् प्रिय तथा प्रियदर्शी से कम महत्त्व नही रखता। सम्भव है इस विशेषण का उल्लेख किसी भूगर्भ स्थित शिलालेखादि में कभी प्राप्त हो जाय। यह भी सम्भावना हो सकती है। कश्मीर के किसी शिलालेख किंवा ग्रन्थ में अशोक के नाम के साथ सत्यसंघ विशेषण लगा कल्हण को मिल गया हो, जो अब लुप्त हो गया है। मुझे इसकी सम्भावना अधिक मालूम होती है।

कल्हण ने अपने पूर्व इतिहासकारो के अशोक सम्बन्धी उल्लेखो से लेखन सामग्री प्राप्त की थी। शिलालेखादि यदि मिला होता, उन्हें पढ लिया होता और अशोक जैसे महान् सम्राट् पर उन आलेखो के आधार पर बहुत कुछ लिखता।

कल्हण ने स्वयं लिखा है। उसने तत्कालीन प्राप्त शिलालेखो आदि का अध्ययन किया था। उनके आधार पर इतिहास लिखा था। अतएव अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भो, स्तूपो तथा चैत्यो के अभिलेखो पर अशोक का प्रसिद्ध विशेषण, देवानाम् प्रिय मिलना सम्भव था। क्योंकि अशोक के समस्त साम्राज्य मे लिखने की यह शैली प्रचलित थी।

कल्हण ने स्तूपों, चैत्यो तथा स्तम्भो के आलेखो का अपनी इतिहास सामग्री में उल्लेख नही किया है। उन्हे अपना स्रोत नही माना है। उनकी गणना अपने इतिहास सामग्री में नही की है।

कल्हण से सात शताब्दी पूर्व हुएनसाग ने भारत की यात्रा की थी। उसके समय में बुद्ध धर्म ह्रास की ओर कश्मीर में था। यही प्रतिक्रिया समस्त भारतवर्ष में हो रही थी। कश्मीर उसका अपवाद नही था। हुएन साग स्वयं लिखता है। कश्मीर मे किसी एक धर्म विशेष की ओर जनता की आस्था नही थी।

कश्मीर में सनातन धर्म एवं शैव सिद्धान्त की प्रबलता उत्तरोत्तर होती गयी। लोग भारतवर्ष के समान कश्मीर में बुद्ध धर्म को बारहवीं शताब्दी में प्राय: भूल चुके थे। कश्मीर में कुछ उत्सव बुद्ध धर्म सम्बन्धी पूर्व काल से होते चले आये थे। वे किसी रूप से कुछ होते रहे। वे पूर्व काल की केवल धुँधली स्मृति मात्र थे।

कश्मीर के राजा नव निर्माण निमित्त पुरानी सामग्रियो का भी उपयोग करते थे। मन्दिरो, चैत्यो, स्तूपो, मठो, शाला तथा विहारो के ध्वन्सावशेषों, शिलाखण्डो, पत्थरो, ईंटो का प्रयोग मुक्तहस्त करते थे। भारत में भी सारनाथ के धर्मराजिक स्तूप के पूरे स्तूप के ईंटो तथा शिलाखण्डो का उपयोग तत्कालीन काशी के राजा तथा उनके कुटुम्बियो ने किया था। उस विशाल स्तूप की केवल नीव मात्र रह गयी है।

भगवान् ने सारनाथ में प्रथम उपदेश किंवा धर्मचक्र प्रवर्तन जहाँ किया था वहाँ बहुत बड़ा स्तूप था। वर्तमान धमेक स्तूप जैसा बना था। वह धर्मराजिक स्तूप था। अज्ञान के कारण लोगों ने उसे ईंटो का खदान या पहाड समझ लिया था। उस स्तूप में से भगवान् की धातु मिली थी। भ्रम के कारण उसे अस्थि समझ कर गगा मे प्रवाह कर दिया गया था।

भारत ही केवल इसका अपवाद नही है। इसराइल की यात्रा मे मैंने देखा कि क्रुसेड के समय निर्मित गिर्जाघरो, उपासना स्थानो तथा प्रासादों में लगे स्तम्भो तथा पत्थरों का उपयोग 'केसरिया' (हैफा के समीप) के बन्दरगाह तथा घाटो के बनाने में किया गया था। भारत में इसी प्रकार

मन्दिरो को खण्डित कर उनके पत्थरो से मसजिद तथा जियारत बनाना साधारण बात हो गयी थी। काशी विश्वनाथ का मन्दिर, मथुरा तथा अयोध्या का जन्म स्थान, महरौली दिल्ली में विष्णु पर्वत पर, विष्णु मन्दिर के स्थान पर, कुतुबमीनार तथा मसजिद, कूवते इसलाम आदि का बन जाना अनेक उदाहरण हैं।

कश्मीर में राजाश्रय न मिलने के कारण बुद्ध धर्म तथा उससे सम्बन्धित इमारतो की उपेक्षा हो गयी। बुद्ध धर्म के प्रति रुचि न होने के कारण तत्सम्बन्धी धार्मिक स्थान क्षीणता को प्राप्त होते होते लुप्त हो गये।

कह्लण अशोक के १६ शताब्दी पश्चात् हुआ था। इतने लम्बे काल तक बिना जीर्णोद्धार किंवा मरम्मत के किसी भी रचना का कायम रहना कठिन था। कश्मीर का प्रत्येक राजा किंवा रानी अपने काल में अपने नाम से किसी न किसी नवीन इमारत की रचना अपना नाम कायम रखने के लिए करता था। मेरी समझ में यही कारण है। बौद्ध भुवन रचना सामग्रियाँ जो प्राय उस समय जीर्णावस्था में थी, बिखरी थी और जिनका जन जीवन में विशेष महत्त्व नही रह गया था। कल्हण ने उनका प्रयोग नही किया। इसलिये 'देवानाम् प्रिय' 'प्रियदर्शी' शब्दो का अभाव कल्हण के साहित्य में मिलता है।

कल्हण ने अशोक तथा उसके पश्चात् के ५ राजाओ का श्रीच्छविल्लाकर के आधार पर वर्णन किया है। सम्भव है श्री छविल्लाकर ने सत्यसघ का प्रयोग अशोक के लिये किया होगा। कल्हण कवि ने उसी पदवी को अशोक के नाम के साथ प्रयोग कर दिया है। श्रीच्छविल्लाकर का इतिहास अप्राप्य है। कल्हण पण्डित ने अशोक के विषय में विशेष छान बीन नही की थी।

(२) अशोक आइने अकबरी में अशोग नाम दिया गया है। इसके अनुसार अशोक शिव का उपासक था। उसने प्राचीन विजयेश मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। कालान्तर में उसने जैन शासन चलाया। राजा जैनेह का अशोक भतीजा था। उसके काल में ब्राह्मण सस्कार के स्थान पर जैन शासन कश्मीर में चलाया गया। राजा जैनेह कौन था इसपर अबुल फजल आइने अकबरी में कोई प्रकाश नही डालता।

हसन लिखता है—'राजा शचीनर वल्द शकुनी के पोतो में से अशोक था। कलयुग सवत् १६५५ में अपनी ख्वाहिश से तख्त कश्मीर को जीनत देकर परगना खादर भारत में एक शहर आलीशान और दिलपसन्द महलात वाला बनाया। पिछले मुअरखीन इन मकानो को तायदाद ६ लाख लिखते हैं। शहर के आस-पास एक निहायत ऊँची और पायदार फसील बनवायी। पनगलवा और पतेख के गाँव आबाद करके बरहमनो को बखशिश दिये और मजहब जैन यानी बुद्ध मजहब जिसका जिक्र पहले हिस्सा में आ चुका है, अपने लिए पसन्द किया। उसकी इशाअत और तबलीग में दिल व जान से कोशिश की और सारे मुल्क में उसके अहकाम जारी कर दिये। कसबा बिजबारह मे पिछले तमाम मन्दिर तबाह व बरबाद करके उनकी जगह अपने मजहब के इबादतखाने निहायत आलीशान और पुख्तगी से बनवाये। बैजबारह के मुत्तसिल ही एक और मन्दिर बनवाया जिसका नाम अपने नाम पर अशोकेश्वर रखा। मौजा हुँखलतरो और मौजा वतर हेल में के बहुत से मन्दिर बनवाये। बिल आखीर अछूतो की मुखालिफत और उनकी नाफरमानी से पेशनजर तारिकुल दुनिया होकर पहाड बदेशर की तलहटी में नारायण नाग के चश्मा पर बूतेश्वर का मन्दिर जिसके निशानात ताहाल मौजूद हैं बनवाया। यहाँ अपनी बकिया उम्र इक्कावन बरस हकूमत करके इस दारेफानी से रुखसत हुआ।'

हसन का यह कहना है कि ५१ वर्ष अशोक ने राज्य किया सर्वथा मिथ्या है। अशोक का वह क०

यः शान्तवृजिनो राजा प्रपन्नो जिनशासनम् ।
शुष्कलेत्रवितस्तात्रौ तस्तार स्तूपमण्डलैः ॥१०२॥

१०२. यह नृप जिसके पाप शान्त हो गये थे, जिन[1] शासन स्वीकार किया। शुष्कलेत्र[2] तथा वितस्तात्र[3] स्थानों को स्तूप मण्डलों से आच्छादित कर दिया।

१६५५ सवत् में राज्यारोहण तथा उसके पश्चात् जलौक का राज्यारोहण क० १७२६ संवत् में बताता है। इस प्रकार अशोक का राज्य काल ७१ वर्ष होता है न कि एक्कावन वर्ष। वह अशोक तथा जलौक के बीच किसी और राजा को नही रखता। अशोक के पश्चात् जलौक का होना स्वीकार करता है।

ऐतिहासिक प्रमाणो से सिद्ध हो चुका है कि राज्य उत्तराधिकार का संघर्ष २७० वर्ष ईशा पूर्व आरम्भ हुआ था। अशोक २७४ वर्ष ई० पू० राज सिंहासन पर बैठा था। उसकी मृत्यु ई० पू० २३२ वर्ष में हुई। (परिशिष्ट ए० 'अशोक' ले० राधाकुमुद मुकर्जी, १९६२ संस्करण)।

इस प्रकार उसका राज्यकाल केवल ३८ वर्ष ठहरता है। अतएव हसन का राज्यारोहण, राज्य-काल आदि सब भ्रामक, परस्पर विरोधी तथा अप्रमाणित उसकी अन्य बातो की तरह होता है। अशोक ने कितने दिनो तक शासन किया, इस पर कोई प्रकाश कल्हण नही डालता। उसका सम्बन्ध मौर्य वश से भी नही जोडता है।

रत्नाकर पुराण की बात केवल कपोलकल्पना है। इसका लाभ उठाकर हसन ने अनुमान से समय निश्चित किया है।

अशोक के जीवन की प्रमुख घटनाओ पर तिथि-वार प्रकाश डाल देने से इतिहास समझने में सुविधा होगी। कश्मीर के इतिहास पर प्रकाश पडेगा। इसका उल्लेख परिशिष्ट 'अशोक' में किया गया है।

अशोक कश्मीर का राजा था। इसपर विस्तृत विवेचन मैने परिशिष्ट 'अशोक' में किया है। अशोक का एक राज्यपाल तक्षशिला में रहता था।

इतिहास का यह वह काल है जब रोम और कार्थेज युनिक युद्ध मे रत थे। बुद्ध धर्म का कश्मीर में प्रवेश करने के कारण बौद्धधर्मानुयायियो को कष्ट सहने को आदत पड गयी थी। सहिष्णुता की भावना बढ गयी थी। भूकम्प विसूचिका तथा महामारी आदि का स्थिरतापूर्वक सामना करना चाहिये यह भावना बढने लगी थी। उन्हे केवल दैवी प्रकोप मानकर चुप बैठने की पुरानी आदत बुद्ध धर्म के व्यावहारिक रूप और ज्ञान के कारण बदल रही थी। नास्तिक बुद्ध धर्म के वैज्ञानिक तर्क ने पुराने विचारो मे एक क्रान्ति उपस्थित कर दी थी। कर्म, आचरण, और शील की ओर लोगो को उन्मुख किया था। अन्ध विश्वास, निष्क्रियता, केवल सैद्धान्तिक आकाशीय उडान के स्थान पर भूमि पर चलने की ओर लोगो को प्रवृत्त किया था।

अशोक के कारण कश्मीरियो के चरित्र निर्माण में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि कश्मीर की मसजिदें बौद्ध पगोड़ा तुल्य दिखायी पड़ती है। यद्यपि नूरजहाँ ने सर्व प्रथम अपने मसजिद के निर्माण द्वारा सेमेटिक स्थापत्य एवं वास्तु कला का प्रवेश कश्मोर में कराया था।

बुद्ध धर्म कल्हण के समय तक कश्मीर में किसी न किसी रूप में अत्यन्त लघु पैमाने पर प्रचलित था। कल्हण स्वय शैव था। 'अशोक' परिशिष्ट में विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। अन्यथा टिप्पणी स्वत बहुत बडी हो जाती।

जोनराज, श्रीवर, प्रज्ञाभट्ट एव शुक की राज-तरगिणियो में अशोकेश्वर तथा अशोक का उल्लेख मैं प्राप्त नही कर सका। उनका किसी सन्दर्भ में भी वर्णन नहीं मिलता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०२ के 'वितस्तात्र' का पाठभेद 'वितस्ताद्री' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१०२ (१) जिन-शासन : कल्हण यहाँ स्पष्ट उल्लेख करता है कि राजा ने जिन-शासन स्वीकार कर लिया था। यह मगध सम्राट् 'देवानाम् प्रिय', 'प्रियदर्शी' अशोक था इसमें सन्देह नही रह जाता। अशोक जन्मजात बुद्धधर्मावलम्बी नही था। कलिंग युद्ध के पश्चात् इतिहास की प्रचलित धारणाओ के अनुसार बुद्ध धर्म स्वीकार किया था। उसका व्यापक प्रचार किया था।

शकराचार्य ने 'बौद्ध-शासन' शब्द का प्रयोग किया है। 'धर्म' के स्थान पर 'शासन' शब्द का प्रयोग वस्तुस्थिति में अन्तर नही उत्पन्न करता।

कल्हण के 'जिन-शासन' शब्द का कुछ लेखको ने अर्थ 'जैन धर्म' लगाया है। यह गलत है। उस समय हिन्दू अथवा सनातन धर्म शब्द प्रचलित नही थे। एक ही धर्म था। वह था भारतीय धर्म। उसमें अनेक सम्प्रदाय एव पन्थ थे। उसी प्रकार 'वुद्ध शासन' भी कश्मीर में तथा भारत में एक पन्थ, सम्प्रदाय किंवा शासन था। धर्म शब्द आधुनिक काल की देन है। जैसे सिख पन्थ है। राजनीतिक कारणो से सिख धर्म को धर्म की सज्ञा देकर उसे भारतीय हिन्दू धर्म से अलग करने का प्रयास किया गया है। काशी में श्री गुरु तेगवहादुर देव जी की सगत है। श्री गुरु नानक देव जी का वाग है। मुझे अच्छी तरह याद है। हम छोटेपन में एक वैनर लेकर चलते थे। उस पर लिखा रहता था 'हिन्दू धर्म रक्षक श्री गुरु गोविन्द सिह की जयन्ती।' मैं कितने ही वर्षो तक इस उत्सव मे सम्मिलित होता रहा। परन्तु पचास वर्षों में सव कुछ वदल गया है।

अशोक ने वौद्ध धर्म स्वीकार किया था। यह एक ऐतिहामिक तथ्य है। कल्हण के वर्णन की सत्यता प्रमाणित करता है। इस श्लोक में स्तूपो के स्थापित करने का उल्लेख मिलता है। अशोक ने समस्त भारत में स्तूपो तथा स्तम्भो को शृखला स्थापित की थी। भगवान् के धातुओ पर चारो ओर धर्मराजिक स्तूपो का निर्माण कराया था।

कल्हण अशोक द्वारा स्तूप मण्डलो की स्थापना का उल्लेख करता है। यह अशोक के राज्यकाल एवं जीवन की विशेषता थी। कल्हण इस अकाट्य सत्य का समर्थन करता है।

इस तरग के श्लोक सख्या १०३ से बातें और साफ हो जाती हैं। अशोक ने चैत्य तथा विहार शब्द की स्थापना करायी थी। चैत्य एवं विहार शब्द शुद्ध बौद्ध धर्म सम्वन्धी शब्द है। उनके द्वारा पूजनीय स्थान चैत्य तथा प्रव्रजितो के निवासस्थान विहारो का बोध होता है। उनका निर्माण कराना बुद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु भक्त का कर्तव्य माना जाता है। धार्मिक पुण्य कर्म उसी प्रकार है जिस प्रकार हिन्दू मन्दिर, धर्मशाला, मठ और मुसलमान मसजिद, जियारत, तथा सराय का निर्माण कराता है। कल्हण अशोक के जीवन से इस पहलू पर प्रकाश डालता है। जिसकी साक्षी भारतीय इतिहास स्पष्ट और बलवती भाषा में करता है।

(२) शुष्क लेत्र श्री स्तीन ने सन् १८९१ में पं० काशीराम को इस स्थान की जाँच के लिये भेजा था। यह स्थान हुखलेत्रो कहा जाता था। यह वर्तमान ग्राम हुखलित्तर है। इसे हकलित्री भी कहते हैं। श्री स्तीन द्वारा प्रस्तुत मानचित्र में इसे हकलिट्री नाम से दिखाया गया है। दुत्त परगना में है। श्री काशीराम को इस स्थान पर प्राचीन भग्नावशेष तथा चिह्न नही मिले।

मैं यहाँ आया था। आधुनिक विकास के कारण ग्राम का पुराना रूप वदलता जा रहा है। मुझे दो चार शिला खण्ड अवश्य मिले। उनके देखने से किसी समय यहाँ किसी इमारत के होने का अनुमान किया जा सकता है। वर्तमान समय में पत्थर लाना और उनसे निर्माण कराना प्राय. समाप्त हो गया है। कश्मीर

धर्मारण्यविहारान्तर्वितस्तात्रपुरेऽभवद् ।
यत्कृतं चैत्यमुत्सेधावधिप्राप्त्यक्षमेक्षणम् ॥१०३॥

१०३. वितस्तात्र पुर में धर्मारण्य विहारान्तर्गत राजा द्वारा निर्मित एक चैत्य[1] था। वह इतना ऊँचा था कि आँखें उसके शिखर तक नहीं पहुँच पाती थी।

मे इतने मन्दिर, देवालय एवं विहार पत्थरो से बने थे कि लगभग सात या आठ शताब्दी से पत्थर कही से लाने की आवश्यकता ग्रामो तथा छोटे स्थानो में नही थी। पुराने पत्थरो से काम चल जाता था। कश्मीर में शायद ही कोई ऐसी जियारत या दरगाह मिलेगा जिसमें प्राचीन ध्वंसावशेषो के शिला खण्ड न लगे हो अथवा वे मन्दिरो तथार विहार के स्थान पर न निर्मित किये गये हो। कल्हण ने इसका उल्लेख पुन. तरंग १:१७० मे किया है।

(३) **वितस्तात्र** . यह स्थान बनिहाल पर्वत मूल मे वेरी नाग के वायव्य दिशा मे लगभग एक मिल पर विथवत्रो ग्राम है। इस ग्राम का वर्तमान नाम विथवुतुर है, गाँव छोटा है।

ग्राम के समीप एक सरोवर है। उसमे एक बडा जलस्रोत है। यह झरना वितस्ता नदी का मुख्य उद्‌गम कहा जाता है। बनिहाल नाम का मूल वितस्तात्र ग्राम ही था। उसी का अपभ्रंश तथा बिगड़ता रूप बनिहाल एक मत के अनुसार हो गया है।

स्थानीय हिन्दू इसे एक तीर्थ मानते हैं। वाइन ने अपने भ्रमण मे इसका उल्लेख किया है। वितस्ता माहात्म्य (२ : ४०) मे इसे 'वितस्ता वर्तिका' कहा गया है।

राजा अनन्त के समय मे कल्हण ने (७ ३६४) वितस्तात्रपुर का उल्लेख किया है। महाराज सुस्सल के राज्य काल (सन् ११२१–११२८ ई०) मे कल्हण ने 'वितस्ता' स्थान का उल्लेख (८ · १०७३) किया है। कल्हण के निम्नलिखित उद्धरण इस स्थान के सम्बन्ध मे द्रष्टव्य हैं। (१ : १०२, १०३, १·१७० ७:३५४, ८:१०७३–७४)

नील नाग किंवा वेरी नाग की यात्रा के समय इस स्थान की यात्रा की जा सकती है। यह स्थान किसी बडे नगर के लिये उपयुक्त स्थानाभाव के कारण नही है। इसका महत्त्व प्राचीन काल मे पूर्वीय पंजाब से आवागमन मार्ग के कारण था। रावलपिण्डी तक रेलवे लाइन और वहाँ से राजपथ द्वारा उरी होते बारहमूला सडक से पहुँचा जाता था। यह सडक सर्वदा खुली रहती है। हिमपात के कारण मार्गावरोध नही होता। भारतीय स्वाधीनता और कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के कारण यह मार्ग बन्द हो गया है। रावलपिण्डी पाकिस्तान की राजधानी इसलामाबाद नाम से हो गया है। अतएव बनिहाल मार्ग का महत्त्व बढ गया है। भारत और कश्मीर को सम्बन्धित करने वाला यही एक मात्र मार्ग शेष रह गया है। सन् १९६३ के पूर्व बनिहाल के पास का मार्ग शीतकाल में तुषारपात के कारण अवरुद्ध हो जाता था। अब वहाँ बहुत नीचे दूसरी सुरग खोद कर मार्ग बनाया गया है। इससे यह मार्ग अब पूर्णतया खुला रहता है।

कश्मीर आने वालो को प्रथम दर्शन बनिहाल से वितस्तात्र ग्राम तथा नील कुण्ड किंवा वेरी नाग का मिलता है। इस स्थान का महत्त्व अब बढ गया है।

इस स्थान पर स्तूपो के ध्वन्सावशेष नही मिलते। कुछ स्थानो मे प्राचीन इमारतो के आकार मात्र भूमि मे मिलते हैं। वहाँ गढे और अनगढ पत्थर भी कुछ पडे हैं। परन्तु स्थान का रूप आधुनिक प्रगति के साथ बदलता जा रहा है। कुछ वर्षो मे यह सब भी लुप्त हो जायगा। पत्थरो का प्रयोग स्थानीय जनता मुक्तहस्त करती है।

स षण्णवत्या गेहानां लक्षैर्लक्ष्मीसमुज्ज्वलैः ।
गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपः ॥१०४॥

१०४ उस श्रीमान् ने श्रीनगरी[1] की स्थापना की जिसका महत्त्व उसके लक्ष्मी द्वारा समुज्ज्वल छानबे लाख गेहो के कारण थी।

पाठभेद

श्लोक संख्या १०३ में 'यत्कृतं' का पाठभेद 'यात्कृत' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१०३ (१) चैत्य कश्मीर में चैत्यो की शृखला थी। प्रत्येक ग्राम तथा महत्त्वपूर्ण स्थानो में चैत्य निर्मित थे। उनकी पूजा बौद्ध तथा हिन्दू दोनो करते थे। धर्मारण्य विहार तथा चैत्य दोनो का लोप हो गया है। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय विहार तथा चैत्य दोनो का अस्तित्व था। कश्मीर में हिन्दूराज के लोप तथा जनता के मुसलिम धर्म ग्रहण करने के कारण विहारो तथा चैत्यो का कोई महत्त्व नही रह गया। वे गिरते-पडते खँडहर हो गये। उनके पत्थर लोग उठा ले जाने लगे। जब केवल आकार मात्र शेष रह जाता था तो उन पर इमारत बना दी जाती थी, इस प्रकार प्राचीन स्थानो का अस्तित्व लोप हो जाता था। यह बात केवल हिन्दू अथवा बौद्ध धर्मस्थानों के सम्बन्ध में ही नही लागू होती। बडो-बडी जियारतें तथा मजारें इसी तरह लोप को जाती हैं। मैं सन् १९४८ मे दिल्ली आया था तो सफदरजग से महरौली तक बिलकुल आबादी नही थी। चारो ओर कब्रिस्तान, मजार तथा जियारतें थी आज वहाँ कुछ भी नही है। बदायूँ मे बहुत बडा कबरिस्तान है। वहाँ पर ऊँची पक्की कब्र के चारो ओर जमीन खोद देते हैं। दो-चार वर्षो के पश्चात् कब्र स्वत गिर जाती है। पत्थर तथा ईंट बेच दिये जाते हैं। जमीन समथर हो जाती है। उन पर नवीन इमारत बन जाती है।

पाठभेद

श्लोक संख्या १०४ में 'लक्षै' का पाठभेद 'लक्ष्यै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१०४ (१) श्रीनगरी : अशोक ने दो नगरियो का निर्माण कराया था। कश्मीर में श्रीनगर तथा नेपाल में देवपत्तन। नेपाल में अशोक की कन्या चारुमति गयी थी उसका विवाह देवपाल से हुआ हुआ था। पति-पत्नी दोनो नेपाल मैं धर्म प्रचारार्थ आबाद हो गये थे। अशोक की नेपाल यात्रा के स्मरणार्थ नगर बसाया गया था। देवपत्तन नगर के नाम से अनुमान किया जा सकता है कि देवपाल ने अपने श्वसुर अशोक की यात्रा की स्मृति में नगर बसाया होगा।

ऋग्वेद मे श्री शब्द सम्पदा के अर्थ में व्यवहृत किया गया है (८ २ १९, अथर्ववेद ६ ५४,१, ६ ७३ १, ९ ५ ३१, १०:६:२६, ११ १:१२ २१, १२ १ ६३, १२ ५ ७)

श्री शोभा, सम्पन्न, वृद्धि, विभूति, कीर्ति, यश, प्रभा, सिद्धि, विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती तथा वाणी के अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है। शतपथ ब्राह्मण में (११ ४ ३) श्री को देवी माना गया है।

अतएव श्रीनगरी का अर्थ सपदा, वृद्धि, यश, कीर्ति तथा सरस्वती नगरी हुआ। श्रीराज्य वर्तमान मैसूर राज्य का पुराना नाम था। दक्षिण-पूर्व एशिया में श्रीविजय साम्राज्य स्थापित था।

जनरल कनिंघम ने वर्तमान ग्राम पाण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठानपुर को अशोक निर्मित श्रीनगरी की सज्ञा दी है। वह वितस्ता के वाम तट पर है। वर्तमान श्रीनगर से २ मील ऊपर श्रीनगर अनन्त-नाग सडक पर स्थित है। कनिंघम ने कल्हण के रा० त० १ १२४ तथा रा० त० ३ ९९ के आधार

पर इसका निर्धारण किया है। क्योकि जलौक ने ज्येष्ठ रुद्र देवस्थान की स्थापना श्रीनगरी में की थी। इस-देवस्थान को शंकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर से सम्बन्धित करते हैं। पर्वत मूल मे दक्षिण-पूर्व ३ मील दूर पर पाण्डरेन्थन है। किन्तु प्रोफेसर वुह्लर ने इस मत को ठीक नही माना है। वर्णनो से प्रतीत होता है कि जलौक का मन्दिर या तो पर्वत पर था अथवा उसके समीप कही आसपास होना चाहिए।

पुराधिष्ठान शब्द का अर्थ पुरानी राजधानी है। सोदर जलस्रोत समीप होने (रा० त० १:१२४) के कारण इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। योग वासिष्ठ मे राजा यशस्कर के सन्दर्भ मे अधिष्ठान नगर का उल्लेख किया गया है। वास्तव मे नगर का नाम अधिष्ठान था। नगर प्राचीन होने पर उसमें पुरा अर्थात् प्राचीन शब्द विशेषण की तरह जोड दिया गया था। यह नगर राजा यशस्कर के समय तक समृद्धशाली था। योग वासिष्ठ में कहा गया है कि वृक्षो तथा पर्वतो से सुशोभित पुराधिष्ठान कश्मीर के मध्य में स्थित है। यह वर्णन आज की परिस्थितियो मे भी मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ महावश में उल्लेख आता है। उत्कल जनपद के अधिष्ठान नगर के तपस्सु और मल्लिक व्यापारी थे। भगवान् को बुद्धत्व प्राप्त होने के पश्चात् उरुवेला मे राजयतन वृक्ष के नीचे प्रथम बार भोजन उन लोगो ने दिया था। उक्त नगर कश्मीर में नही उडीसा मे था।

गुप्त काल में छोटे राज्यो की राजधानियो को अधिष्ठान कहा जाता था। 'उडीसा मे अधिष्ठान नामक एक आबादी है।

नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर है। प्रवरसेन द्वितीय ने उसका निर्माण कराया था। वह वर्तमान श्रीनगर है। उसे प्रवरपुर कहा गया है। श्रीनगर का नपुंसक लिंग मे कल्हण ने सब स्थानो पर वर्णन किया है। वह केवल इस स्थान पर उसका स्त्री रूप मे प्रयोग किया है।

हैदर मल्लिक तथा मुहम्मद अजीम आदि इतिहास लेखक अशोक-द्वारा निर्मित राजधानी को लिदर नदी के वाम तटपर 'शीर' स्थान को बताते है जो खादरयार परगना मे है। प्रोफेसर वुह्लर ने एक स्थान पर कहा है कि कुछ काश्मीरी पण्डितो का मत है कि यह नगर इस्लामाबाद अर्थात् अनन्त नाग के समीप था।

पण्डरेथन में खनन कार्य किया गया है। जिस सरोवर मे पण्डरेथन का मन्दिर निर्माण किया गया था उसका जल निकाल कर उसके नीव तक खनन कार्य किया गया था। मन्दिर १८ वर्ग फीट क्षेत्रफल मे स्थित है। मन्दिर का निर्माण कश्मीर के राजा पार्थ ने सन् ९२१ ई० मे कराया था।

जहाँगीर अपनी आत्मकथा मे लिखता है .

'नगर का नाम श्रीनगर है। झेलम नदी इसके बीच से बहती है। इसका उद्गम वीरनाग कहलाता है। जो चौदह कोस दक्षिण है। हमारी आज्ञा से सोते के पास एक इमारत तथा बाग बनवाया गया है। नगर मे पत्थर तथा लकडी के बडे मजबूत चार पुल बने हुए है। जिनसे लोग आते जाते है। इस देश की भाषा मे पुल को कदल कहते है। नगर मे एक बडी ऊँची मसजिद है। जो सुलतान सिकन्दर के चिह्न स्वरूप वर्तमान है। और हिजरी सन् ७९५ई०मे बनी थी। कुछ दिनों के बाद यह जल गयी। और तब पुन सुलतान हुसेन ने इसे बनवाया। यह पूरी नही हुई थी कि उसके जीवन का प्रासाद ढह गया। सन् ९०९ हिजरी के सुलतान के वजीर इब्राहीम माकरी ने इसे सुंदरता के साथ पूर्ण किया। उस समय से अब तक १२० साल से यह बनी हुई है। मेहराब से पूर्वी दिवाल तक एक सौ पैतालीस गज है और चौडाई एक सौ चौआलीस गज है। इसमे चार ताक है और चारों ओर दालान तथा खंभे हैं। संक्षेप मे कश्मीर के शासको का इससे अच्छा स्मारक और कोई नही है। मीर सैय्यद

हमदानी कुछ दिन इस नगर में रहा था। इसका स्मारक यहाँ एक खानकाह है। नगर के पास दो झीलें हैं जो वर्ष भर जल से भरी रहती हैं। इनके जल का स्वाद कभी बिगडता नही। मनुष्यो के आने जाने और अन्न ईंधन आदि लाने के लिए नावें काम में आती हैं। नगर तथा परगनो में सत्तावन सौ नावें तथा चौहत्तर सौ नाविक है। कश्मीर प्रान्त मे अडतालीस परगने है। यह दो भागो में विभक्त है। और नदी के ऊपरी भाग को कमराज कहते है। वहाँ भूमि का कर या व्यापार के लेन-देन में सोना चाँदी देने की प्रथा नही है। केवल कुछ सायर कर में दिया जाता है। ये वस्तुओ का मूल्य चावल के खरवारो से करते है और हर खरवार तीन मन आठ सेर वर्तमान तौल से होता है। कश्मीरियो मे २ सेर का एक मन होता है और चार मन अर्थात् आठ सेर का एक तर्क होता है। कश्मीर की आय तीस लाख तिरसठ हजार पचास खरवार ग्यारह तर्क है। यह नगदी में सात करोड छिआलीस लाख सत्तर सहस्र दाम होता है। साधारणत. यहाँ आठ सहस्र सवार रहते हैं।' (पृष्ठ ६५३)

वरनीयर लिखता है—'कश्मीर प्रदेश तथा उसकी राजधानी दोनो का नाम कश्मीर है।' मुसलिम काल में श्रीनगर का नाम छोडकर श्रीनगर को कश्मीर कहने लगे थे। सिखो ने सन् १८९१ ई० में जब कश्मीर विजय किया तो उन्होने पुराना नाम श्रीनगर कश्मीर की राजधानी का पुन. प्रचलित किया। बरनीयर तथा उन्नीसवी शताब्दी तक मुसलमान लोग श्रीनगर को 'कश्मीर' या 'कशूर' कहा करते थे।

वरनीयर श्रीनगर का वर्णन करता है—'नगर के चारो ओर चहार दिवारी नही है। यह तीन चौथाई लीग लम्बा तथा आधा लीग चौडा शहर है। यह मैदान के अर्ध चन्द्राकार पर्वत से २ लीग दूर पर बसा है। ताजे पानी वाले लेक के तटपर बसा है। यह सरोवर ४ से ५ लीग होगा। इस लेक मे बहुत से चलते निर्झर है। तथा पर्वत से स्रोतस्विनियाँ आकर मिलती है। यह वितस्ता मे एक नहर द्वारा मिलती हैं। उससे नावें आती जाती हैं। नदी नगर के बीच से बहती है। नदी में २ लकडी के पुल (झेलम या वितस्ता) पर बाँधे गये हैं। नगर के मकान अधिकतर दो तथा तिमजले लकडी के बने है। कुछ पुरानी इमारतें तथा प्राय पत्थरो के बने मन्दिर टूटे पडे हैं। पत्थर की अपेक्षा लकडी सस्ती होती है। उसे नदियो द्वारा पहाड से लाते हैं। नदी के प्राय सभी किनारो के मकानो के साथ वाटिकाएँ है अर्थात् नगर में वाटिका गृहो की अधिकता है। वे गर्मी तथा वसन्त ऋतु मे बहुत ही रुचिकर लगते हैं। नगर के भीतरी भाग के बहुत मकानो में वाटिकाएँ हैं। अनेक मकानो के के समीप नहरे हैं। जहाँ मकान मालिक अपनी नावें रखते हैं। उनसे वे सम्पर्क स्थापित करते है।

'नगर के समीप एक अकेला पहाड है। उसके ढाल पर बडे ही सुन्दर मकान बने है। मकानो मे बगीचा हैं। चोटी पर मसजिद तथा आश्रम हैं। दोनो ही अच्छी इमारतें हैं। पर्वत की चोटी पर हरित पादपो के मुकुट है। अपने वृक्षों तथा बागो के कारण स्थानीय लोग उसे 'हरीपर्वत' कहते है।

'हरीपर्वत' के दूसरी तरफ एक और पर्वत है। उसपर एक छोटी मसजिद है। उसमें वाटिका है। वहाँ पर एक बहुत ही पुरानी इमारत है। उसके चिन्हो के देखने से स्पष्ट मालूम होता है। वह मन्दिर था। यद्यपि उसे तख्तए सुलेमान कहते हैं। मुसलमान कहते हैं। राजा सुलेमान जब कश्मीर में आए थे तो उन्होने इसे बनवाया था। परन्तु मुझे सन्देह है। कभी हजरत सुलेमान का यहाँ प्रवेश हुआ था।

'डल लेक द्वीपो से भरी है। वे आरामगाह हैं। जल के बीच में वे बहुत ही हरे भरे और सुन्दर लगते हैं। उनमें फलदार वृक्ष तथा नियमित झाभरी-दार भ्रमण मार्ग से पूर्ण है। दो-दो फिट की दूरी पर लगाए गये है, यह वृक्ष इतने कम मोटे है कि

दोनों हाथो के बीच मे आ जाते हैं। किन्तु वे जहाज के मस्तूल इतने ऊँचे हैं। केवल शिरोभाग पर ताड़ के वृक्ष की तरह उनमे शाखो का गुच्छा होता है।

'लेक के तटवर्ती पर्वतो के ढालो पर मकानो तथा फूलो के बागो की भरमार है। हवा स्वास्थ्यकर है। इनका जलवायु बहुत ही अच्छा है। उनमे झरने तथा स्रोतस्विनियाँ खूब हैं। वहाँ से लेक, द्वीप तथा नगर का बहुत ही हृदयग्राही दृश्य मिलता है।'

शालीमार बाग का बर्नियर ने ऐसा ही वर्णन किया है जैसा आज भी वह मौजूद है। केवल इतना और कहता है, 'शाहजहाँ द्वारा तोडे गये मन्दिरो के खम्बो तथा द्वारो से नहरो के मध्य में ग्रीष्म भवन बनाया गया है। उनका मूल्याकन करना कठिन है।'

केप्टन नाइट (१८६०) श्रीनगर के विषय मे लिखता है 'पूरे शहर मे कोई भी प्राचीन निर्माणो के ध्वंसावशेषो को देख सकता है। वे त्रिशान्त शिलालेखो में अलकृत मिलेंगे। ये लेख सब यहाँ लिखे मिलेंगे जो गौरवशाली प्राचीन काल की दु खभरी कहानी कहते हैं। नदी के दोनो तटोपर लकडियो के दर्शनीय मकानो की पक्तियाँ मिलेगी। 'बहुत से मकान मुझे मिलें। वे अपनी नीव की ओर जैसे 'पिसा के लीनिंग टावर' को भी लज्जित करते झाँक रहे है। ··· 'मकान छमंजिलो तक ऊँचे है। इनकी खिडकियाँ लकडी के नक्काशी के कामो से सुन्दर बनी रहती है।

'पूर्व के वेनिस सदृश इस शहर की नदी में सैर करते हुए मैंने देखा कि नदी के तटपर बने भवनो की दिवालो में बहुत से अलंकृत शिलाखण्ड लगे थे। हम घूमते हुए एक मुसलिम कब्रिस्तान में पहुँचे। यहाँ एक गिरी मसजिद थी। उसमे बहुत से पुराने मन्दिरो के अलंकृत शिलाखण्ड लगे थे। वे प्राचीन मालूम होते थे। उन्होने अपना जीवन इस मुसलिम भूमि से कही और आरम्भ किया था।'

पण्डरेथन का मन्दिर सुन्दर है। मै जिस समय यहाँ अपनी यात्रा में चौथी बार १३-९-१९६२ ई० मे पहुँचा तो मन्दिर का द्वार वितस्ता जल के बाढ के कारण डूबने मे केवल एक फीट और बाकी रह गया था। वितस्ता मे बाढ आई थी। श्रीनगर अनन्त नाग तथा श्रीनगर-पठानकोट की सडको की सतह तक पानी की धारा बह रही थी। श्रीनगर पामपुर वाली सडक पर बाँध बँधने के कारण जल नही आ सका था। पडरेथन का कुछ ऐसा विशद वर्णन लेखको ने किया है कि मैंने समझा था कोई बहुत बडा मन्दिर होगा। ध्वंसावशेष तथा स्मारक अत्यधिक होगे परन्तु यहाँ जितनी बार आया निराशा हुई। कश्मीर मे जल प्लावन तथा वितस्ता के बाढ तथा उसके कारण हुए विनाश का बहुत वर्णन किया गया है। अतएव इस भयकर बाढ के समय अपनी आँखो से कुछ देख लेने के मोह के कारण यात्रा की थी।

इस समय यहाँ भारतीय सेना की छावनी पडी है। मन्दिर के पृष्ठभाग मे पाकिस्तानी आक्रमण काल के समय वीरता प्रदर्शित करने के कारण मेजर शोभनाथ शर्मा, कमायूँ रेजिमेण्ट का स्मारक बना है। मन्दिर के दक्षिण मुख्य सडक तक एक छोटा उद्यान बनाया गया है। चिनार का पेड़ लगा है। यहाँ पहले विलो अर्थात् वेत के वृक्ष बहुत थे। परन्तु उनकी सख्या कम हो गयी है।

मन्दिर का सरोवर ४० वर्ग गज होगा। मन्दिर १८ वर्ग फीट में है। सरोवर के पूर्व तरफ २ छोटे जलस्रोत है। उनका जल सरोवर मे निरन्तर आता रहता है। सरोवर का जल झेलम नदी मे एक गहरी नहर द्वारा निकल जाता है। झेलम मन्दिर से केवल २०० फीट दूर बहती है।

मन्दिर कश्मीर के अन्य मन्दिरो तुल्य कश्मीर शैली पर बना है। मन्दिर का कलश गायब है या

टूट कर गिर गया है। आमलक शेष है। मन्दिर सिकन्दर बुतशिकन द्वारा पूर्णतया नष्ट न किये जाने का कारण यह मालूम होता है कि मन्दिर सरोवर के मध्य मे है। मन्दिर का आधार भूमि की सतह से नीचा है। मन्दिर तोडने की अपेक्षा सरोवर को मिट्टी से पाट देने पर सरोवर तथा मन्दिर दोनो का अस्तित्व लोप हो जाता है। सम्भव है यही यहाँ किया गया होगा। अन्यथा सिकन्दर बुतशिकन के आँखो के सम्मुख बचा रह जाना अनहोनी बात है। अथवा मिट्टी से सरोवर भर गया होगा। मन्दिर दृष्टिगत नही हो सका होगा। मैंने स्वय देखा कि वितस्ता के बाढ के कारण सरोवर पूरा भर गया था। जल मे मन्दिर की पूरी भीत डूब गयी थी। मन्दिर उपेक्षित पडा था। उसमें वितस्ता जल से लाई मिट्टी जो शताब्दियो तक जमती रही। मन्दिर सरोवर में पडने के कारण स्वय आँखो से लोप हो गया होगा। काशी में घाटो पर बने मन्दिर बरसात में गगा की मिट्टी जमने के कारण भर जाते है।

मन्दिर के द्वार की ऊपरी देहली पर मूर्तियाँ बनी है। किन्तु वे कुरूप कर दी गयी है। स्थानीय लोग इस मन्दिर को पचमुखी महादेव का मन्दिर कहते है। मन्दिर के भीतर अलकृत तथा मूर्तिमय शिलाखण्ड है। यह मेरुवर्धन स्वामी का मन्दिर कहा जाता है। मेरुवर्धन राजा पार्थ का प्रधान मन्त्री था।

अशोक द्वारा निर्मित यही प्राचीन श्रीनगर था। राजा प्रवरसेन द्वितीय (११०–७० ई० पू०) ने उक्त मन्दिर निर्माण होने के पूर्व प्रवरपुर अर्थात् वर्तमान श्रीनगर बसाया था। उसे अपनी राजधानी बनाया था।

पुराधिष्ठानपुर राजा अभिमन्यु द्वितीय (९६० ई० पू०) के समय आग लगने के कारण भस्म हो गया था। इतनी भयकर आग लगी थी कि इस मन्दिर के अतिरिक्त जो जल के मध्य मे था और जहाँ आग नही पहुँच सकती थी, सब कुछ जल गया।

मन्दिर की उत्तर दिशा में कुछ खनन कार्य हुआ था। उसमें पुराने मन्दिरो के पत्थर बिखरे मिले थे। वहाँ एक ६ फीट ऊँचा शिवलिंग तथा लगभग १६ फीट ऊँचा टूटा लिंग मिला था। इन दोनो लिंगो के मध्य एक आसीन मूर्ति का पद तथा पाँव जो ठेहुनी भर ऊँचा था, मिला था। वैरन हुगेल ने इसे बुद्ध की प्रतिमा का अवशेष माना है। ह्यूम ने लिखा है कि पाद तथा पैर २० फिट ऊँची मूर्ति के अवशेष थे। वह बैठी मूर्ति थी। उस सरोवर में एक छोटी नाव बँधी रहती थी। उससे दर्शक स्वयं नाव खेकर मन्दिर तक पहुँच जाता था। वहाँ बहुत कम लोग आते थे। सरोवर बडे नरकुल से भरा लगभग ४० वर्ग गज में है। पुराधिष्ठान के अन्य मन्दिरो के ध्वसावशेषो के कुछ पत्थर समीपस्थ मसजिद के निर्माण मे लगाये गये है।

प्रश्न उपस्थित होता है। अशोक ने इस स्थान को अपनी राजधानी के लिए क्यो चुना ? अशोक ने यह स्थान दो कारणो से राजधानी निमित्त चुना होगा। प्रथम कारण यह मालूम होता है कि वितस्ता का जल इस स्थान को डुबा नही सकता। यह ऊँचा है। पृष्ठभाग में पर्वतमाला है। पर्वत के ढाल के पश्चात् पथरीली ऊँची भूमि है। पर्वत कच्चा नही पक्का है। पत्थर गया जी के पत्थर की तरह सख्त है। मैंने स्वय देखा सडक बनाने के लिए गिट्टी पहाड तोडकर बनाई जा रही थी। बाढ़ आने पर लोग पीछे पर्वत के ढाल पर जाकर अपनी रक्षा कर सकते थे। पर्वत के खिसकने का—भूभ्रंश का भय नही था। इस बात का वितस्ता के बाढ तथा अत्यन्त वर्षा के समय यहाँ रहकर मैंने अनुभव कर लिया।

दूसरा कारण यह मालूम होता है कि वर्तमान पण्डरेथन ग्राम तथा शकराचार्य पर्वत तक का भूखण्ड वितस्ता तथा पर्वतमाला के मध्य समतल तथा उपजाऊ है। विस्तृत भूखण्ड है। इस स्थान को बादामो बाग कहते है। यहाँ बादाम के बहुत बगीचे

हैं। बागो की यह श्रृंखला पामपुर तक मिलती चली जाती है। बनिहाल श्रीनगर मार्ग पर है। आगे जाने पर पामपुर पडता है। केसर की खेती के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ की उपजाऊ भूमि, फलदार वृक्षादि के कारण इस स्थान का चयन अशोक ने किया होगा।

इस समय मैदान में भारतीय सैनिक छावनी का कैम्प गत सन् १९४७ ई० से पडा है। सैनिक एव सुरक्षा की दृष्टि से स्थान श्रेष्ठ माना जायगा। इसके दक्षिण-पश्चिम वितस्ता तथा पूर्व ओर ऊँचो पर्वत-मालाएँ है। दक्षिण मे पाण्डु चक पर वितस्ता तथा पर्वत के मध्य अत्यन्त सकीर्ण मार्ग है। पश्चिम रुस्तम गढी जिस पर इस समय कश्मीर राजा का प्रासाद बना है। उस पर्वत तथा वितस्ता के मध्य का स्थान हवाखातून की मजार के समीप का मार्ग ४० फीट सकीर्ण हो जाता है। यहाँ महासरित वितस्ता पर्वत मूल तक खाई का काम करती है। इस प्रकार यह स्थान प्राकृतिक सुरक्षा पंक्ति—एक ओर वितस्ता तथा तीन ओर पर्वत से घिर जाता है। यही कारण है कि इस समय भारतीय सेना यहाँ बडे पैमाने पर रखी गयी है। उसका पूर्ति तथा सम्भरण केन्द्र है। डोगरा काल मे यहाँ कैण्टोनमेण्ट था। अर्थात् सेना की छावनी थी। अशोक उत्तर-पश्चिम भारत मे रह चुका था। स्वयं युद्ध विद्या मे निपुण था। एक सैनिक होने के नाते उसने इस स्थान का सैनिक महत्त्व समझा। अतएव इस स्थान को राजधानी के लिए चुना।

अफगानिस्तान मे जिस प्रकार भगवान् की बडी मूर्ति खण्डित की गयी थी उसी प्रकार इस मूर्ति का हाथ जो सम्भवत अभय मुद्रा मे था खण्डित कर दिया गया। बामियान मूर्ति की मुखाकृति ललाट से नीचे बिल्कुल छील दी गयी है। भगवान् त्रिचीवर धारण किये हुए है। इस मूर्ति पर दृष्टि पडते ही मुझे अपनी आँखों देखी बामियान की दोनो मूर्तियाँ स्मरण हो आयी। मैने उक्त दोनो बामियान की मूर्तियो का वर्णन विस्तार से अपनी पुस्तक 'आर्याना' में किया है।

भगवान् की अभय मुद्रा में एक और मूर्ति है। मूर्ति भव्य है। अनायास मन पर अभय भावना स्थापित करती है। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। यज्ञोपवीत, धोती, वाम कर में मृणाल सहित पद्म, तथा दायें कर में माला और मूर्धा पर केश के ऊपर मुकुट है। इस मूर्ति की मुद्रा मुझे बहुत अच्छी लगी।

मूर्ति की मुखाकृति बडी सरल है। मालूम पडता है मूर्ति जैसे कुछ कहना चाहती है। देखकर मन अनायास मूर्ति की ओर आकर्षित हो जाता है। संग्रहालय मे यहाँ से प्राप्त गगन मे गमनशील गन्धर्व यक्षादि की भी मूर्तियाँ प्रदर्शित की गयी है।

यहाँ से प्राप्त दो और मूर्तियाँ दर्शनीय है। एक की सख्या 'ए' १०४ है। यह लुम्बिनी वन मे भगवान् के जन्म की घटना प्रदर्शित करती है। देवी महामाया शाल वृक्ष की एक शाखा पकडे खडी है। उनका बायाँ हाथ एक महिला के स्कन्ध पर है। कहते है यह महा प्रजापति गौतमी देवी महामाया की कनिष्ठ बहन थी। उनका विवाह उनके पति शुद्धोदन के साथ हुआ था। भगवान् के जन्म के सातवें दिन देवी महामाया दिवंगत हो गयी थी। अतएव विमाता प्रजापति गौतमी ने भगवान् बुद्ध का लालन-पालन किया था। भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त होने पर महाप्रजापति गौतमी ने स्वयं प्रव्रज्या ले ली और अपने ही पुत्र की शिष्य हुई। पुत्र को शास्ता स्वीकार किया। देवी ने प्रव्रज्या के पश्चात् यह मार्मिक शब्द कहा था—मै तुम्हारी माता हूँ और आप मेरे शास्ता हो। किन्तु किसी बुद्ध ग्रन्थ मे मुझे नही मिला कि प्रजापति गौतमी देवी महामाया के देवदह जाते समय साथ थी। सम्भव है कालान्तर में इस प्रकार की कहानी प्रचलित हो गयी हो। अथवा किसी लेखक के ग्रन्थ मे इसका उल्लेख किया गया है। जिसके आधार पर यह मूर्ति बनायी गयी है।

मूर्ति के पृष्ठ भाग में एक चामर धारिणी युवती है। काश्मीर में उस समय महिलाओ की क्या वेशभूषा थी, किस प्रकार केशविन्यास, शृगारादि करती थी इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश पडता है। उसका वहाँ वर्णन अप्रासगिक होगा।

एक विचित्र खण्डित मूर्ति इस सग्रहालय में और है। मूर्ति का पाद से कटि प्रदेश तक का ही भाग शेष रह गया है। शेष भाग खण्डित कर दिया गया है। कही लुप्त हो गया है। यह पुरुष मूर्ति है। सिंह वाहन है। अर्थात् सिंह पर आसीन है। उसके पैर के अँगूठे से कटि तक, पादत्राण वस्त्रादि से विभूषित है। यह मूर्ति किसी कुषाण वशीय राजा की हो सकती है। उसने अपनी शक्ति का परिचय सिंह पर बैठ कर दिया है। सिंहवाहिनी दुर्गा या देवी की यह मूर्ति नही है। यह किसी सैनिक राजपुरुष की मूर्ति है। इसके पद की जो वेशभूषा है वह पेशावर जिला के ग्रामीण क्षेत्रो के बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ काल तक प्रचलित थी।

पुराधिष्ठान अर्थात् पण्डरेथन का वर्णन तथा विस्तार के साथ उल्लेख महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'योग वासिष्ठ रामायण' मे जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ मिलता है। राजा यशस्कर के प्रसग मे मैंने इसका वर्णन किया है। योग वासिष्ठ रामायण, पुराधिष्ठान तथा कश्मीर का सम्बन्ध है या नही। यह प्रश्न स्वयं एक स्वतंत्र विषय है। इस प्रसग के लिये यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त प्रतीत होता है।

योग वासिष्ठ के वर्णन और पुराधिष्ठान के भौगोलिक आदि स्थिति का पूरा मेल खाता है। कुछ विद्वान् कह सकते हैं कि योग वासिष्ठ का यह अश प्रक्षिप्त है। इस विवाद मे यहाँ प्रवेश करना अप्रासगिक होगा।

पर्वत के ढाल पर लगभग एक मील से अधिक के क्षेत्र में पुराने खिलौने, मूर्तियाँ आदि बहुत मिली हैं। वे इस तरह तोडी गयी है कि खण्ड मात्र रह गयी है। बादामी बाग के पास कैण्ट तथा अस्पताल आदि सैनिकोपयोगी स्थान बने है। यहाँ के खनन में हयग्रीव, वराह, रुद्र, पार्वती, शिव, भैरव, त्रिमूर्ति, लक्ष्मी की मूर्तिया मिली है। वे इतनी बुरी तरह तोडी गयी हैं कि उन्हें देखकर दया आती है। मूर्तिया भव्य, सुन्दर तथा कलापूर्ण है। उनकी अपनी शैली है।

पण्डरेथन का सबसे पुराना फोटो कर्नल कोल की पुस्तक मे छपा है। उसने पण्डरेथन के मन्दिर तथा कला पर प्रकाश डाला है। मन्दिर उस समय जिस अवस्था मे था उसी अवस्था मे आज है। केवल कुछ मरम्मत कर दी गया है। सैनिक छावनी के कारण इस स्थान पर कुछ चहल-पहल हो गयी है। यहाँ की मूर्तिया किस कठोरता के साथ भग्न की गयी थी उसका प्रमाण श्रीनगर कला सग्रहालय में संग्रहीत मूर्तियाँ हैं। यहाँ के प्राप्त वस्तुओ से कश्मीर की तत्कालान स्थिति पर यथेष्ट प्रकाश पडता है।

प्रतापसिंह सग्रहालय में कुछ मूर्तियाँ तथा मूर्तिखण्ड सग्रहीत हैं। उनमें मूर्ति सख्या १६ गान्धार शैलो की है। भगवान् बुद्ध ध्यान मुद्रा में आसीन हैं। महीन चीवर धारण किये हैं। पद्मासीन है। मूर्ति का हस्त नासिकादि खण्डित कर दिया गया है। भगवान् बुद्ध की खडी मूर्ति संख्या ११ मथुरा से प्राप्त भगवान् की प्रसिद्ध मूर्ति से मिलती है।

केप्टन श्री नाइट (सन् १८६० ई०) के समय पण्डरेथन में खनन कार्य नही हुआ था। परन्तु उनके वर्णन से स्पष्ट होता है। वहाँ यथेष्ट भग्नावशेष बिखरे थे। कालान्तर में खनन कार्य यहाँ पर किया गया। उससे प्रमाणित हो गया। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन रहा है।

श्री नाइट ने अपनी पुस्तक में मन्दिर का जो चित्र दिया है उससे प्रकट होता है। मन्दिर इतना उपेक्षित एव जीर्णावस्था मे था कि शिखर पर एक

पेड जम गया था। मन्दिर के चारो ओर नरकट के लम्बे-लम्बे पेड उगे थे। मन्दिर का मध्म भाग दिवाल सा लगता था। वह लिखता है—'श्रीनगर से तीन कोस इधर हम लोग एक विस्तृत दानव सम्बन्धी भूमि के ध्वंसावशेष पर ठहर गये। यह स्थान पण्डरेथन कहा जाता है। यहाँ हमने पूर्णावस्था में एक इमारत देखी। इस प्रकार की इमारत अब तक हम लोगो ने नही देखी थी। उसके चारो ओर बहुत दूर तक इस प्रकार के चिह्न मिले जिनसे मालूम होता था कि प्राचीन काल मे यहाँ विशाल नगर था।'

'अन्य रुचिकर अवशेषो मे एक मूर्ति का ठोस अधिष्ठान देखा। वह एक फसल कटे हुए खेत मे खडा था। मूर्ति की ठेहुनी से अधोभाग का शेष रह गया था। यह शिलाखण्ड सात फिट ऊँचा था। मूर्ति की उँगलियाँ तथा अँगूठे तोड डाले गये थे। किन्तु पाँव टूटने से बच गये थे।

'यहाँ से आधा मील दूर पर एक विशाल स्तम्भ की वेदी पडी थी। वह कुछ अच्छे स्थान पर थी। इसका व्यास छहफिट था। इसे यहाँ रखने के लिये भारी यन्त्र की आवश्यकता पडी होगी। कुछ दूर पर हमे स्तम्भ का भाग मिला। वह तीन भागो मे खण्डित था। वह १२ फिट लम्बा था। उसका अधोभाग बहु कोणीय था। मध्य भाग गोलाकार था। शिरा भाग नोकदार शुण्डाकार था। वह हिन्दुओ के महादेव के मन्दिर मे लगे पत्थर के समान था। (पृष्ठ १२२)

श्री कनिंघम (सन् १८४८ ई०) पण्डरेथन के विषय में लिखते है—'इस नाम का अर्थ पुरानी राजधानी अथवा प्राचीन मुख्य नगर होता है। विभिन्न यात्रियो ने भिन्न-भिन्न प्रकार से इसका उच्चारण किया है। श्री मूर क्राफ्ट ने इसे 'पण्डेथन' श्री वाइन ने 'पण्डरेण्टोन' तथा श्री वैरन हुगेल ने 'पण्डरोटन' लिखा है।

'इस मन्दिर की इमारत का उल्लेख सन् ९१३ तथा ९२१ के बीच मिलता है। तत्पश्चात् सन् ९५८ तथा ९७२ के मध्यवर्ती कालो मे मिलता है। उस समय रोमन सम्राट् नीरो तुल्य राजा अभिमन्यु ने अपनो राजधानी मे आग लगवा दी थी। किन्तु यह मन्दिर नष्ट होने से बच गया था।

'चूंकि यह एकमात्र मन्दिर पुरानी राजधानी मे स्थित है, अतएव इसमें सन्देह नही कि यह वही मन्दिर है जो इस समय वर्तमान है। यह एक सरोवर के मध्य मे स्थित है। चारो ओर जल है। यही स्थिति उस अग्निदाह के समय मे रही होगी। अतएव अग्निदाह से यह बच गया था। जब कि अन्य इमारतें जलकर चूना और भस्म मात्र रह गयी।

'वैरन हुगेल मन्दिर को बौद्धो का मानते है। कहते है। मन्दिर के अन्दर की मूर्तियाँ सुरक्षित है। किन्तु उनकी यह भ्रान्ति है। मन्दिर विष्णु का है। भीतर की मूर्तियो का कोई सम्बन्ध बौद्ध धर्म से नही है।

'श्री ट्रिवेक इसके भीतर तैर कर गये। उसे वहाँ किसी प्रकार की मूर्ति का दर्शन नही हुआ था। उस समय छत तक पानी था अतएव वह भीतर की मूर्तियाँ नही देख सके थे।

'जल के अन्दर मन्दिर बनाने का यह उद्देश्य रहा होगा कि उन्हे नागो की सरक्षता में रखा जाय। नागो के शरीर का ऊर्ध्व भाग मनुष्य तथा अधोभाग सर्प का होता है। कश्मीर में उनकी पूजा प्राचीन काल से प्रचलित थी।' जनरल एशियाटिक सोसाइटी (भाग. १६) श्री डब्लू० वेल फील्ड (सन् १८७९ ई०) ने पण्डरेथन को 'पण्डरिटन' लिखा है। वह लिखते है—'पण्डरिटन एक समय अत्यन्त समृद्धिशाली तथा बडा नगर था। प्रदेश की की राजधानी था। कितने दुःख का विषय है। अपने एक पुराने राजा के पागलपन के कारण यह पत्थरो का सग्रह मात्र रह गया है।

जीर्णं श्रीविजयेशस्य विनिवार्य सुधामयम् ।
निष्कल्मषेणाश्ममयः प्राकारो येन कारितः ॥१०५॥

१०५ उस निष्कल्मष राजा ने विजयेश्वर [1] के पवित्र देव स्थान के जीर्ण हुए चूने आदि से बने प्राकार के स्थान पर नवीन पाषाण प्राकार का निर्माण कराया।

'कहा जाता है। यह नगर एक समय मिलो में विस्तृत था। उसमें दर्शनीय भवन थे। अशोक ने एक देवस्थान निर्माण कराया था। उसमें भगवान् बुद्ध का एक धातु रखा गया था। इस समय उस पवित्र देव स्थान का पता नही है। उस गौरवशाली प्राचीन काल की स्मृति को जीवित रखने के लिये, इस एक मन्दिर के अतिरिक्त और कुछ शेष नही रह गया है। यह मन्दिर सरोवर के मध्य में है। इसके चारो ओर विलो के उद्यान है। अतएव इसके भीतर क्या है। बहुत लोग इसके अन्दर जाकर देख नही सके है। (पृष्ठ २३१)

पाठभेद :

श्लोक सख्या १०५ मे 'सुधामयम्' का पाठभेद 'सौधम्' और 'प्राकारो' का पाठभेद 'प्रासादो' तथा 'कारित.' का 'निर्मित.' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

१०५ (१) विजयेश्वर काल शिव विजयेश्वर का प्रसिद्ध देवालय वर्तमान विजब्रोर तथा उसके आस-पास का क्षेत्र था। इसे विजयेश्वर क्षेत्र कहते थे। स्थानीय पुरोहितो के अनुसार विजयेश्वर का प्राचीन मन्दिर लगभग १०० गज नदी तट से दूर वितस्ता सेतु के दूसरी तरफ था। यहाँ से कश्मीर के डोगरा राजा रणवीर सिह ने अपने नवीन मन्दिर निर्माण निमित्त बहुत सामग्री प्राप्त की थी। यहाँ स्तीन सन् १८८९ में आये थे। मन्दिर के अधिष्ठान के पास कुछ टूटे हुए पत्थर तथा मलवे मिले थे। यहाँ पर कुछ निर्माण किया गया है। नवीन मन्दिर के समीप कुछ मूर्तियाँ जो पुरानी नही मालूम होती, रखी थी। यह मन्दिर नदी के ऊपर कुछ दूर पर बना है।

विजयेश्वर का मन्दिर राजा अनन्तदेव के समय में भस्म हो गया था। राजा कलश ने उसका जीर्णोद्धार कराया था। (रा० त० ७:५२४) पुराना आकार अथवा सुधामय सम्भवत ईंट अथवा पत्थरो के ढोको का बना था। अशोक ने पत्थरो से उसका निर्माण कराया था।

नीलमत पुराण मे दो स्थानो पर विजयेश का उल्लेख मिलता है। पहला वर्णन शक्र सगम तथा दूसरा वितस्ता माहात्म्य के वर्णन के सन्दर्भ में मिलता है। दोनो से कल्हण की बातो की पुष्टि होती है।

विशोकां विजयेशं च वितस्तां सिन्धुसगमम् ।
एतान् सर्वानतिक्रम्य प्रययौ भरतं गिरिम् ॥
1056 : १२४०

'—विशोका, विजयेश, वितस्ता, सिन्धु सगम पार करते हुए वह भरतगिरि पर पहुँचा।

विजयीशाग्रत स्नात्वा वितस्तायां महीपते ।
रुद्रलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते सुखम् ॥
1303 १५१६,१५१७

'महीपते! विजयेश्वर के सम्मुख वितस्ता मे स्नान करने वाला अपने कुल का उद्धार करता स्वयं रुद्रलोक प्राप्त कर सुख भोगता है।

उक्त उद्धरणो से दो बातें स्पष्ट होती हैं। विजयेश्वर तीर्थ था। विजयेश्वर घाटपर स्नान करने पर मुक्ति मिलती थी। कुल का उद्धार होता था। सुख की प्राप्ति होती थी। विजयेश का महत्त्व सिन्धु सगम जैसा महत्त्वपूर्ण था। उसकी गणना पवित्र स्थानो में थी। इस आध्यात्मिक महत्त्व के साथ दूसरा भौगोलिक महत्त्व भी प्रकट होता है। वितस्ता

सभायां विजयेशस्य समीपे च विनिर्ममे।
शान्तावसादः प्रासादावशोकेश्वरसंज्ञितौ ॥१०६॥

१०६. उस शान्त एवं अवसाद रहित राजा ने विजयेश्वर के समीप दो प्रासादों[1] का निर्माण सभा[2] स्थान में कराया उनका नाम अशोकेश्वर[3] था।

तटपर विजयेश तीर्थ था। वर्तमान बिजब्रोर अथवा ब्रिजबेहरा किंवा ब्रजब्रारी ही पूर्वकालीन विजयेश्वर क्षेत्र था। वहाँ के मन्दिर मे एक विजयेश का मन्दिर था। अशोकेश्वर का वर्णन नीलमत पुराण में नही आता है। इस अभाव के दो कारण हो सकते है। पहला कारण यह हो सकता है कि नीलमत पुराण अशोक के पूर्व लिखा गया हो अथवा विजयेश यहाँ के प्राचीन नगर देवता थे अतएव उनका महत्त्व काशी के देवता काशी विश्वनाथ की तरह था। नीलमत पुराण ने विजयेश को ही तीर्थ तथा तीर्थ का प्रधान देवता माना होगा। अन्य देवताओ का उल्लेख विजयेश क्षेत्र मे नही मिलता।

बिजब्रोर अर्थात् विजयेश्वर श्रीनगर से १९ मील दूर स्थित है। कह्लण के अनुसार इस मन्दिर की स्थापना विजयराज ने की थी। (राज० त० २·६२) सिकन्दर बुतशिकन ने इसे नष्ट किया था। यहाँ पर बडी मसजिद के समीप कुछ ध्वन्सावशेष पाये जाते है। इस मन्दिर का स्तम्भ रतन हाजी की मसजिद में तथा प्रसाद चढाने का बडा शिलाखण्ड मसजिद के बाहर पडा है। कथा है कि इस मन्दिर के नष्ट होने का समय शिलालेख पर पहले ही लिखकर रख दिया गया था। उस पर लिखा था 'बिस्मिल्लाह मन्त्रेण भशन्त विजयेश्वर।'

विजयेश्वर का उल्लेख जोन आदि की राजतरंगिणी (दत्त पृष्ठ ११, ८८, १२०, १३२, १४०, १४६, १४७, ३२२, ३७२, ३८१, ४०८) मे विशेष रूप से किया गया है।

१०६ (१) प्रासाद प्रासाद शब्द से किंचित् भ्रम उत्पन्न हो सकता है। आजकल प्रासाद शब्द मन्दिरो के लिये प्रयोग नही किया जाता। संस्कृत मे प्रासाद का अर्थ—राजभवन, विशाल भवन, देवालय एवं मन्दिर है। 'प्रासादो देवभूभुजाम्।' अर्थात् देवालय एवं महल दोनो का अर्थ प्रासाद है। अमर कोष (२ २:९)

(२) सभा . आज भी यह प्रथा प्रचलित है। बडे मन्दिरो मे राजा तथा श्रीसम्पन्न लोग छोटे-छोटे मन्दिर अपने नाम से स्थापित करा देते है। काशी विश्वनाथ के मन्दिर मे इस प्रकार कितने ही शिव लिंगो को स्थापना लोगो ने करायी है। छोटे-छोटे मन्दिर दिवालो तथा खाली स्थानो मे बनवा दिये जाते है। दक्षिण भारत की यात्रा मे भी मैने विशाल मन्दिरो मे यह प्रथा प्रचलित पायी है। अशोक ने भी इसी प्रकार पुण्यार्जन निमित्त विजयेश्वर जैसे पवित्र धाम में उसके सभा स्थल अर्थात् प्राकार के भीतर मन्दिर निर्माण कराया होगा।

सभा का अर्थ यहाँ सभामण्डप तथा विशाल मन्दिर का प्राकार दोनो लगाया जा सकता है। सभा का अर्थ वास, कुटी, शाला, सभा, सभाभवन, सभासद् तथा परिषद् होता है। (अमर कोष २.२.७ तथा ३:३ १३७) सभामण्डप छाया हुआ सभा का स्थान होता है। गर्भ गृह के सम्मुख ढके स्थान को सभामण्डप कहते है। यह सभी मन्दिरो में होता है। यहाँ पर अर्थ सभा अर्थात् विस्तृत प्राकार वेष्ठित स्थान लगाना उचित प्रतीत होता है। यद्यपि मन्दिर के सभा मण्डप में भी लोग अपने नाम से दिवालो या किसी कोने मे मूर्तियाँ स्थापित कर देते हैं। अशोक के निर्मित मन्दिर निश्चय ही विजयेश्वर प्राकार के अन्तर्गत भिन्न मन्दिर थे।

(३) अशोकेश्वर : विजयेश्वर के प्रसग मे लिखा जा चुका है कि मन्दिर का पता नही चलता।

म्लेच्छैः संच्छादिते देशे स तदुच्छित्तये नृपः ।
तपस्संतोषिताल्लेभे भूतेशात्सुकृती सुतम् ।।१०७।।

१०७ म्लेच्छो से कश्मीर देश संछादित हो गया था अतएव राजा ने कठोर तपस्या कर भूतेश से वरस्वरूप जलौक नामक पुत्र उनके संहार निमित्त प्राप्त किया।

मूल मन्दिर नष्ट हो गया तो उससे सम्बन्धित इमारतो आदि का नष्ट होना स्वाभाविक था। उसी के साथ अशोकेश्वर का मन्दिर भी नष्ट हो गया।

कश्मीर मे भविष्य के सभी राजा, रानी, मन्त्री तथा गणमान्य लोग अपने नामो मे मूर्तियो की स्थापना तथा मन्दिरो का निर्माण कराने लगे। अपने नामो के अन्त मे शिव मन्दिर के लिये ईश्वर तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द जोड कर मन्दिर तथा मूर्ति का नाम रख देते थे। वह प्रथा कश्मीर के बौद्ध विहारो के सम्बन्ध मे नही मिली है। यदि एकाध होगे तो वे भी हिन्दू राजाओ द्वारा अपने नाम से बनवा दिये गये होगे। परन्तु सर्वमान्य प्रथा यह नही हो सकी थी। मठो तथा शालाएँ भी व्यक्ति विशेष के नाम पर निर्माण कराये जाते थे जैसे दिद्दामठ आदि। इनका उदाहरण यथास्थान दिया गया है।

पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान के दो मील ऊपर पाण्डुचक मे प्राप्त मन्दिर को अशोकेश्वर का मन्दिर कहा जाता है। किन्तु यह भ्रान्ति मात्र है। पाण्डुचक वास्तव मे पाण्डव तीर्थ जनश्रुति के अनुसार है। नीलमतपुराण मे पाण्डव तीर्थ का स्पष्ट वर्णन मिलता है। (नीलमत १३२३ तथा वेल पृष्ठ १०७)

कल्हण के समय अशोकेश्वर का मन्दिर वर्तमान था। उसने स्पष्ट उल्लेख किया है। जयसिंह की रानी रड्डादेवी ने अशोकेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। (रा० त० ८ ३ ८९१)

१०७ (१) म्लेच्छ म्लेच्छ का अर्थ—अनार्य, असंस्कृत भाषा बोलने वाले, अनस्कृत भाषाभाषी, शास्त्रो को न मानने वाले, जाति बहिष्कृत आदि होता है। बोधायन ने म्लेच्छ शब्द की परिभाषा की है।

गोमांसखादको यस्तु विरुद्ध बहु भाषते ।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥

म्लेच्छ देश मे उत्पन्न लोगो को भी म्लेच्छ कहा गया है।

म्लेच्छ. तद्देश उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्ति अस्य, म्लेच्छ ।

अमरकोषकार परिभाषा देता है। उन्हे सीमा प्रान्त की संज्ञा देता है।

प्रत्यन्तो म्लेच्छदेश स्यात ।

कल्हण ने यूनानियो के अर्थ मे ही यहाँ म्लेच्छ शब्द का व्यवहार किया है। भारत की पश्चिम-उत्तर की सीमा पर निवसित विदेशियो को म्लेच्छ कहा जाता रहा है। यह शब्द अहिन्दुओ के लिये व्यवहृत किया गया है।

यूनानियो ने बर्बर शब्द का जिस अर्थ मे प्रयोग किया है उसी अर्थ मे म्लेच्छ शब्द का प्रयोग भारतीयो ने किया है। शतपथ ब्राह्मण मे म्लेच्छ भाषा का निर्देश प्राप्त है। जहाँ उसे अनार्य लोगो की बर्बर भाषा कहा गया है। (श० ब्रा ३ २:१ ४)

अरब वालो ने जिस समय ईरान जीता था। ऊँची सभ्यता वाले यूनानियो को भी 'अजय' अर्थात् गूँगा अर्थात् बात न समझने वाला कहते थे।

चन्द्रगुप्त के समय भारत पर अलक्षुन्दर, किंवा अलक्षेन्द्र (अलेक्जेण्डर), सिकन्दर, का आक्रमण हुआ था। दार्वाभिसार के राजा आभी का सम्पर्क सिकन्दर से था। यूनानियो के लौट जाने तथा सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके अनेक यूनानी

साथी अफगानिस्तान तथा भारत के पश्चिम उत्तर सीमा पर बस गये थे। उनका वहाँ राज्य भी स्थापित हो गया था।

काश्मीर की सीमापर स्थित काफिरिस्तान के लोग अपने को यूनानी वंशज कहा करते थे। वे वीसवी शताब्दी के आरम्भ में गैर मुसलिम धर्म माननेवाले थे। वे एक प्रकार से मूर्तिपूजक थे। अतएव अफगानी उन्हें काफिर और उनके भूखण्ड को काफिरिस्तान कहते थे।

अंग्रेजो ने काबुल फतह किया। उस समय काफिरिस्तान के निवासियो का एक शिष्ट मण्डल उन्हे यूरोपीय तथा अपना वंशज जानकर उनसे मिलने आया था।

कालान्तर मे काफिरिस्तान पर अफगानिस्तान के अमीर अब्दुलरहमान का अधिकार हो गया। उन्हे शक्ति प्रदर्शन द्वारा मुसलिम धर्म में परिवर्तित किया गया। उनके बच्चे काबुल आदि स्थानो मे इसलामी शिक्षा प्राप्ति निमित्त भेज दिये गये। जिन्हो ने इसलाम धर्म स्वीकार नही किया वे बुरी तरह मार डाले गये। (वान् क्रिस्चियन लेस्सिन लिपजिग रा० ६६-१८७४ 'इण्डिसचे अल्तथुम्स कुणे' भाग २. पृष्ठ २८५)

अशोक के समय यूनानी अर्थात् म्लेच्छ भारत की सीमा पर रहते थे। भारतीय भूखण्डपर आक्रमण करते थे।

कश्मीर की सीमा पर उनकी आवादी थी। अशोक के समय कश्मीर मण्डल मे प्रवेश, उनके रीति-रिवाज एवं धार्मिक धारणाओ का कश्मीर मण्डल पर प्रभाव और उनका कश्मीर के भूखण्ड पर अनेक भागो मे अधिकार हो गया होगा। एतदर्थ उनके उन्मूलन अर्थात् उनसे कश्मीर मण्डल की रक्षा निमित्त अशोक ने भूतेश्वर की पूजा कर पुत्र रत्न प्राप्त किया था।

कह्लण के अन्य स्थानो के वर्णनो से भी इसी वात की पुष्टि होती है। तरंग आठ मे भोज के प्रसग मे वर्णन करता है कि भोज ने सीमान्त म्लेच्छ जाति से संपर्क स्थापित कर सहायता ली थी। (रा० त० ८:२७६३, २७६६)

मनुस्मृति मे उन सब धर्मभ्रष्ट जातियो को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारत मे कही भी निवास करते थे। उनका सर्व प्रथम उल्लेख भारत के पश्चिम-उत्तर की सीमा पर मिलता है। किन्तु महाभारत से मालूम होता है कि राजा भगदत्त ने समुद्रतटवर्ती म्लेच्छो के साथ युधिष्ठिर के राजसूयज्ञ मे भाग लिया था। भीमसेन ने दिग्विजय के समय पूर्व दिशा मे समुद्रतटवर्ती म्लेच्छो को जीता था। सहदेव ने दक्षिण तथा नकुल ने पश्चिम-उत्तर के दिग्विजय काल मे म्लेच्छो पर विजय प्राप्त की थी।

स्पष्ट प्रतीत होता है। महाभारत काल मे म्लेच्छ भारत मे चारो दिशाओ मे थे। महाभारत के युद्ध मे कौरवो का पक्ष म्लेच्छो ने ग्रहण किया था। अर्जुन ने समस्त 'जटिलान, म्लेच्छो का सहार किया था। म्लेच्छो के धंग नामक राजा का बध नकुल ने किया था। म्लेच्छहन्तृ प्रद्योत राजा का नाम म्लेच्छो के संहार करने के कारण पड गया था। (म० द्रो : ६८ ४२-४४, ९५ ३६, म० स० : २७·२५-२६, २८.४४, २९:१५, ३१ १०, म० व० १८८.२८-२९, म० आश्व० · ९१ २५; म० क० · १४ १४-१७)

स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रारम्भ मे म्लेच्छ जाति भारती सीमा पर स्थित अभारतीय धर्म मानने वाली जाति थी। कालान्तर मे उन सभी जातियो को म्लेच्छ की संज्ञा दे दी गयी जो भारतीय धर्म तथा आचार को नही मानते थे।

(२) भूत : भूत का अर्थ होता है-अतीत-जो वीत चुका है। घटित है। पंच महाभूतो मे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्व आते है। अमरकोष-कार भूत का अर्थ करता है—लब्धं प्राप्त विन्न भावितमासादितं च भूत च। (३:१:१०४) अर्थात्

लब्ध प्राप्त, विन्न, भावित, आसादित, और भूत है। पुन (३ ३ ७७) मे अर्थ किया गया है।

अत्याहितं महाभीति. कर्म जीवानपेक्षि च।
युक्ते क्ष्मादावृते भूत प्राण्यतीते समे त्रिपु॥

अर्थ होता है अत्याहित—महाभय, साहसी कर्म, न्याय, पृथ्वी, अप, तेज वायु, आकाश, सत्य, प्राणी, बीता समय।

ब्रह्माण्ड पुराण के मतानुसार भूतों की उत्पत्ति भूत तत्त्व से हुई थी। इनका भोजन पिशित था। (२ ८ ३९-४०) 'पिशित' का अर्थ होता है मास-भक्षी, राक्षस, पिशाचादि।

इनका वर्णन अद्भुत है। वे कृशाक्ष अर्थात् छोटे कद के थे। लबकर्ण थे। प्रलम्बोष्ठ थे। लम्बे दांत युक्त थे। नखिन् अर्थात् नख रखते थे। स्थूलपिण्डक अर्थात् स्थूल शरीर वाले थे। बभ्रुव अर्थात् लम्बी भौं वाले थे। हरि तथा मुंज केश थे। ठिगने थे। वर्ण नीललोहित था। पिंगल वर्ण भी होता था।

सगीत विरोधी होते थे। शक्तिशाली होते थे। सर्प यज्ञोपवीत धारण करते थे। शरीर को अनेक रगो के लेप द्वारा सज्जित करते थे। केशो को मुकुट तुल्य बाँध कर रखते थे। हाथी का चमडा धारण करते थे, अथवा नग्न रहते थे। इनके आयुध, शूल, धनुष, निषग, वरूथ तथा असि थे। वह वर्णन अफरीका तथा आस्ट्रेलिया की घोर जगली जातियों मे मिलता है।

पूर्व काल मे अत्यन्त जगली जाति थे। किन्तु असुर एव देवो के सम्पर्क के कारण इनकी स्थिति मे विशेष सुधार हो गया था। असुरो के सम्पर्क के कारण नृत्य एव सगीत इन्होने सीखा। एक तरह की सामाजिक व्यवस्था में इन्होंने अपने को सघटित किया। उनकी मूल सामाजिक व्यवस्था क्या थी। पुराणो आदि मे विस्तार से वर्णन नही मिलता।

स्वायम्भुव मन्वन्तर के पूर्व युग मे भारतवर्ष में वे निवास करते थे। उनका निवासस्थान हिमाचल का पर्वतीय प्रदेश था। धुर उत्तरीय हिमालय भाग मे रहते थे। भारतवर्ष के सबसे पुराने रहनेवाले थे। मूल निवासी थे।

असुरो तथा भूत जाति मे प्राय सघर्ष होता रहा। उत्तर से असुरो का दबाव पडने लगा। वे अपनी रक्षा निमित्त विन्ध्य की पहाडियो मे चले आये। वही रहने लगे थे।

शकर भगवान् तथा अन्धकासुर के युद्ध मे भूतो ने शंकर के पक्ष में रहकर युद्ध किया था। उस युद्ध मे विनायक भूत ने सर्वप्रथम अन्धकासुर पर आक्रमण किया था। अधक ने विनायक को परास्त कर दिया। अनन्तर नदी तथा विनायक दोनो ने अन्धकासुर पर आक्रमण किया था। उस युद्ध मे अन्धकासुर पराजित हो गया था। अधक शकर की शरण मे आ गया। शकर ने उसे भूतगण का गणपति बनाया। उसका नाम भृगी पडा।

भूत एक जाति थी। यह पर्वतीय जाति थी। पिशाच एव नाग जाति की तरह उत्तर पश्चिम भारतीय सीमा के आस-पास रहते थे।

कश्मीर में नाग तथा पिशाचो के सघर्ष के कारण आर्यो का वहाँ आगमन हुआ। उसी प्रकार प्रतीत होता है। भूत तथा असुरो के सघर्ष के कारण कालान्तर मे दुर्बल होने पर भूत जाति उत्तर से दक्षिण की ओर बढने लगी। अन्त मे विन्ध्य की पहाडियो मे शरण ली। वैवस्वत मन्वन्तर के काल तक उनका स्थानान्तरण उत्तर से दक्षिण की ओर पूर्ण हो गया था। (वायु पुराण ३०:८९-१०१, वामनपुराण ६७ १-२३, ब्रह्माण्ड १ ३२ ८८-८९, २ ३ २-३४ २ ८ ३९-४०, २ ९ ६८-७८,)

भूतो को प्रेतो की सज्ञा कालान्तर मे दे दी गयी। उन्हे शरीरहीन मृतको के जीव रूप मे मान लिया गया। बात इसके विपरीत है। भूत को

एक जाति रूप मे जीवित जागृत प्राणी माना गया है। पुराण इसका स्पष्ट निर्देश करते है। वह एक जाति थी। किन्तु अशिक्षित थी। नाग तथा पिशाच जाति से गये गुजरे थे। उनका कोई साहित्य तथा इतिहास नही मिलता। केवल पुराणो के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है।

पुराणो के अनुसार भूत प्राचीन भारतीय मानव जातियो में एक जाति थी। पुराण मानव जाति के चार वर्ग करते है . (१) धर्म प्रजा (२) ईश्वर प्रजा (३) काश्यपीय प्रजा तथा (४) पुलह प्रजा।

धर्म प्रजा की उत्पत्ति धर्म ऋषि से हुई थी। ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति ईश्वर से हुई थी। काश्यपी प्रजा की उत्पत्ति काश्यप ऋषि से हुई थी। पुलह प्रजा की उत्पत्ति पुलह ऋषि से हुई थी। भूत योनि प्राप्त प्राणियो की पुलह प्रजा मे गणना होती है। (ब्रह्माण्ड पुराण १ ३२ ८८, २ ३ ३-३५ तथा २ ७)

पुराणो मे भूतो के राजा की संज्ञा रुद्र वैदिक देवता है। रुद्र को भूतनायक तथा गणनायक कहा गया है। भूतो को रुद्र का अनुचर एव भव परिषद् कहा गया है।

रुद्र प्रतीत होता है। कोई एक व्यक्ति नही थे। भूतो के राजा की सामूहिक सख्या थी। अनेक स्थानो पर इनके राजा को गणपति भी कहा गया है। यहं गणपति आर्य कालीन गण राज्य के अध्यक्ष एवं सभापति से भिन्न थे।

उनमें जो सबसे शक्तिशाली किंवा बलवान व्यक्ति होता था वह राजा निर्वाचित किया जाता था। उसका नाम रुद्र रखा जाता था। पुराणो में इस प्रकार के दो रुद्रो का उल्लेख मिलता है। वीरभद्र सिंहमुख नामक भूतगणो का प्रमुख था। (वामन पुराण ४ १७) दूसरे रुद्र का नाम नन्दिकेश्वर था। शैलादि नायक भूत गणो का नेता था। (मत्स्य पुराण . १८१ २)

वामन पुराण भूतगणो की जनसंख्या ग्यारह करोड देता है। उनमें स्कंद, शाख एवं भैरवादि प्रमुख थे। इसी पुराण मे भूतो के रूप एव अस्त्रो का विस्तृत वर्णन किया गया है।

उक्त पुराण मे भूतो की आकृति का भी वर्णन किया गया है। जिस प्रकार किन्नरो को 'अश्वमुख' कहा गया है। उसी प्रकार भूतो को 'वानरास्य' एवं 'मृगेन्द्र वदन' कहा गया है। भस्म, खट्वाग आदि उनके आयुध थे। इनकी ध्वजा पर किसी पशु या पक्षी की आकृति बनी रहती है। प्रत्येक गण ध्वजा के नाम पर 'मयूरध्वज' आदि नाम से सम्बोधित किया जाता था। (वामन पुराण ६७ १-२३)

भूतो को ऊर्ध्वरेतस् कहा गया है। अर्थात् वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। उनमे विवाह पद्धति मालूम नही पडती। किन्तु रुद्राणी आदि कतिपय भूत स्त्रियो का उल्लेख मिलता है। इनका वर्णन मार्कण्डेय, वामन पुराणो तथा देवी माहात्म्य मे मिलता है। इनके आकृति का जो वर्णन किया गया है वह आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका के जगली जातियो से मिलता है।

बौद्ध ग्रन्थो मे भूत-प्रेत शब्द आता है। प्रेत को वे एक योनि मानते है। परन्तु भूत को दिवंगत व्यक्ति की आत्मा किंवा शरीर विहीन प्राणी नही मानते। 'भूत गाम' शब्द का प्रयोग किया गया है। वृक्षो आदि को काटने तथा गिराने पर प्रायश्चित्त करने का विधान है उसे 'भूत गाम' की संज्ञा दी गयी है। भूत से प्रेत अलग माने गये है। प्रेतो को पेच्च किंवा पेत आस अर्थात् प्रेत कहते है। प्रेत वत्थु तथा बम्हजाल सुत्त में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

मैं समझता हूँ। कश्मीर में नाग तथा पिशाचो के पूर्व भूत जाति पर्वतीय क्षेत्रो मे रहती थी। वह पूरे आदिवासी थे। भारत तथा कश्मीर के सबसे प्राचीन मानव असभ्य असस्कृत प्राणी थे। एक समय

आया। नाग जाति ने उन्हें उद्वासित किया होगा। भूतो के नागो का यज्ञोपवीत पहनने का दो अर्थ हो सकता है। एक तो मुण्डमाला के समान नागो की हत्या का प्रतीक होगा दूसरा नागो से उनमे किसी प्रकार सन्धि हो गयी थी। प्रतीक स्वरूप हृदय स्थान पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। शकर किंवा रुद्र दोनो का अधिपति होकर भूतेश तथा नागेश हो गये। भूतगण नागगण उनके गण बन गये।

भूत शब्द शायद इसलिये प्रयोग किया गया कि वे भूत की एक जाति थे। उनका मिश्रण पिशाच, नाग तथा आर्यो में हो गया अतएव उनका जाति का चाहे जो भी नाम रहा हो उसकी सज्ञा भूत की रख दी गयी। अर्थात् वह जाति जो भूत काल में थी। आजकल आदिवासियो मे अनेक जाति तथा भाषा-भाषियो तथा धर्मावलम्बियो का बोध होता है। वास्तव मे आदिवासी किंवा अनुसूचित कोई एक वर्ग नही है। इसी प्रकार भूत शब्द वर्ग तथा समष्टि वाचक है; उससे एक वर्ग का बोध होता है। उसमे कितनी ही जातियाँ तथा उपजातियाँ क्यो न रही हो। नाग जाति के लोप हो जाने पर भी जैसे नागेश्वर, पिशाच जाति के लुप्त होने पर पिशाचमोचन तथा पिशाचेश्वर है। उसी प्रकार भूत जाति के लुप्त हो जाने पर भी भूतेश्वर उस लुप्त जाति का एक प्रतीक है।

प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार व्यक्ति मरने के पश्चात् भूत हो जाता है। शरीर विहीन प्राण अन्तरिक्ष मे विहार करता है। शिव सहारक देवता है। इस शरीर के संहार के पश्चात् काया हीन प्राण शेष रह जाता है। वह भूत है। उसके देवता जिसके कारण शरीरस्थ प्राण अशरीरस्थ हो जाता है। भूत के नेता भूतेश हो जाते है। भूतेश्वर की पूजा का प्रचलित रूप यही है। वह भूतो के देवता है। शिव के नाना रूपो मे यह भी एक रूप है।

केवल हिन्दू धर्म की गाथाओ में प्रेतादि का वर्णन नही परन्तु बौद्ध ग्रन्थो में भी खूब वर्णन मिलता है। बौद्ध पुनर्जन्म मानते है। कर्म के अनुसार मनुष्य जन्म लेता है। मुसलिम कथानको मे भी जिनो का वर्णन मिलता है।

भूतेश : कश्मीर में प्राचीन काल से शिव भूतेश की पूजा प्रचलित है। उसने कश्मीर के सामाजिक, राजनैतिक एव ऐतिहासिक जीवन को प्रभावित किया है।

हिन्दू शास्त्रो मे द्वादश ज्योतिर्लिगो और उनके साथ उपलिंगो का उल्लेख मिलता है। भूतेश एक ज्योतिर्उपलिग है। द्वादश ज्योतिर्लिग (१) सोमेश्वर, (२) मल्लिकार्जुन, (३) महाकालेश्वर (४) ओंकारेश्वर (५) केदारेश्वर (६) भीम शकर (७) काशी विश्वनाथ (८) त्र्यम्बकेश्वर (९) वैद्यनाथ (१०) नागेश्वर (११) रामेश्वर तथा (१२) घुश्मेश्वर है।

केदारेश्वर के उपलिंग भूतेश है। उनका स्थान यमुना तट है यथा—'केदारेश्वरसम्भूतं भूतेश यमुनातटे।' भूतेश ज्योतिर्लिग नागेश्वर के भी उपलिंग है। यह झिल्लिका सरस्वती तट पर स्थित है। झिल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम्—'

भारतवर्ष मे बावन शक्तिपीठ है। उनमे शक्ति पीठ 'त्रिसन्ध्या' कश्मीर मे है। यहाँ पर देवी सती का अग कठ गिरा था। देवी का यहाँ नाम महामाया पडा था। कहा गया है। भैरवो त्रिसन्ध्येश्वर है। इसी प्रकार देवी सती का केशजाल वृन्दावन मे गिरा था। देवी का नाम उमा तथा भैरव का नाम भूतेश है।

कंकणी नदी का सकीर्ण गर्त शैल वाह के दक्षिण दिशा में प्रवाहित है। कंकणी के तट पर वह वेगथ (वसिष्ठाश्रम) ग्राम से तीन मील ऊर्ध्व दिशा में भूतेश है। वहाँ पर सत्तरह मन्दिरो के भग्नावशेष मिलेंगे। इनका उल्लेख विशप कोवी ने सन् १८६६ में अपनी पुस्तक के पृष्ठ १०१ तथा मेजर कोल ने एनसिएण्ट बिल्डिग इन कश्मीर पृष्ठ ११ पर किया है।

उक्त मन्दिर समय समय पर कश्मीर के राजाओ द्वारा निर्माण कराये गये थे। भूतेश्वर जाते समय एक ऊर्ध्व पर्वतीय खण्ड मिलता है। उसे भरतगिरि कहते हैं। यहाँ एक लघु सरोवर है। उसे ब्रह्म सर कहते है। नीलमत पुराण के के अनुसार हरमुकुट, नन्दिपर्वत, भरतगिरि, अमरेश्वर, महादेव गिरि, धनद तथा वैश्रवण, इन्द्र कील, गौरीशिखर, उशीरिका, पचालधारा, बर्हिगिरी, अन्तर्गिरी, पर्वतो को श्रेणियो मे आते है।

श्रीनगर सोन मार्ग राजपथ पर वुसन से एक सडक फूटकर पर्वतीय ग्राम वेगथ की ओर जाती है। यह वेगथ नाला के पार्श्व से चलती है। स्थल सघन देवदार तथा फर पादपावली से हरित है। चारो ओर उत्तुग पर्वतमालाएँ हैं। नरन्नाग का उत्तुग शिखर जैसे इस यात्रा का अन्तिम स्थान है। सात किंवा आठ मील की यात्रा समाप्त कर यात्री नरन्नाग पहुँचता है। नरन्नाग मन्दिरो का समूह है। उसे वेगथ मन्दिर समूह को संज्ञा विदेशी पर्यटको ने दी है। वेगथ ग्राम से तीन मील दूर मन्दिर समूह है।

मैंने पहली बार यहाँ को यात्रा की थी। मार्ग कष्टप्रद था। कुछ दूर तक सडक नाम मात्र के लिये बनी थी। तत्पश्चात् पगडण्डी का आश्रय लेना पडा था। दूसरी बार सन् १९६४ की यात्रा में सडक नरन्नाग तक करीब बन चुकी थी। वहाँ ठहरने के लिये डाक बंगला बन रहा था। पहली यात्रा मैंने सन् १९५६ में की थी। उस समय कश्मीर सरकार से कहा था। इस स्थान तक पहुँचने का मार्ग सुगम बना दिया जाय। उस समय मेरे साथ पचास समद् सदस्यो का दल कश्मीर गया था। किन्तु भूतेश्वर जाने का कोई साहस नही कर सका। मैंने यह यात्रा श्री गुलाम बख्शो तत्कालीन कश्मीर के मुख्य मन्त्री के प्रबन्ध की सुविधा के कारण की थी। अन्यथा यात्रा असम्भव थी। अब सडक बन गयी है। डाक बंगला तैयार हो गया है। छोटी कार अथवा जिप से सुगमता पूर्वक जाया जा सकता है।

यह स्थान मुझे कश्मीर मे बहुत ही आकर्षक, भव्य तथा जीवनमय मिला। स्थान जागृत है। जैसे जैसे व्यक्ति भूतेश्वर के समीप पहुँचता चलता है, उसके मन पर स्थान की भव्यता का गम्भीर प्रभाव पडता जाता है।

मुझे वेगथ से नरन्नाग तक दूसरी बार की यात्रा मे पैदल चलना पडा था। पैदल चलने में विचित्र आनन्द का अनुभव होता है। बढते चलिये उतने ही प्राकृतिक दृश्य की सुन्दरता बढती मिलेगी।

नाला किंवा कंकणी नदी के तट से मार्ग चलता है। एक ओर नदी का कलकल निनादित प्रवाह तथा दूसरी ओर देवदार तथा चीड के वृक्षो की सघन छाया, नदी के गर्त के दोनो ओर ऊँचे होते जाते अत्यन्त हरित पादपपूर्ण पर्वतो की श्रेणी, उनपर वृक्षो का वायु प्रवाह मे झूमना, हृदय पर अपना विचित्र प्रभाव छोडता है। स्थान निर्जन होने पर भी मन उचटता नही। नदी का निनाद मन बहलाता रहता है। एकान्त का तीव्र अनुभव नही होने देता।

भूतेश्वर की ओर चलते रहने पर सम्मुख हिमाच्छादित हरमुकुट पर्वत जैसे ऊँचा उठता जाता है। पृष्ठ भाग मे उपत्यका को घेर कर बन्द कर देता है। पहले हरित तत्पश्चात् हिमाच्छादित पर्वत मन पर सौन्दर्य मिश्रित भय उत्पन्न करता है।

मन्दिर से दो फर्लांग पहले वेगथ की ओर एक नाला पडता है। नाला पर लकडी का पुल बना है। उस पर खडे होकर वाम पार्श्व में देखने पर एक विचित्र दृश्य मिलता है। दो हरित शिखरो के मध्य एक हिमाच्छादित पादप हीन शिखर झाँकना दिखायी पडता है। उसके तीन छोटे छोटे शिखर त्रिमूर्ति तुल्य लगते है।

मन्दिर समूह के समीप पहुँचते ही मार्ग का श्रम स्थान की अभिरामता के कारण तिरोहित हो जाता है। चारो ओर उत्तुग शिखरमाला खडी मिलती है। पर्वतमालायें शिखर से मूल तक अत्यधिक हरित हैं। उनका दृश्य मन को मुग्ध कर देता है। विश्व मे इतना सुन्दर पर्वतीय दृश्य दुर्लभ है।

प्राचीन काल में वसिष्ठाश्रम (वेगथ) से लेकर मन्दिर समूह तक तपस्वियो के आश्रम थे। तीर्थ यात्रा पथ के दोनो ओर ब्राह्मण रहते थे। परन्तु इस समय यहाँ गूजरो की आवादी है। कृपि मे मक्का यहाँ को मुख्य उपज है। गूजर हिन्दू तथा मुसलमान दोनो होते है। यहाँ के आवाद गूजर मुसलमान हैं।

यह स्थान जगल है। सम्भव है कालान्तर मे पर्यटक केन्द्र वन जाने पर कुछ और विकसित हो जाय।

वन मे भालू है। वे मक्का खा जाते है। उनसे रक्षा का विचित्र उपाय ग्रामीणो मे निकाल रखा हूँ। शेर मे भालू भय खाता है। शेर की आखें अन्धकार में चमकती है। अतएव ग्रामीण दो स्थानो पर करीव-करीव आग जला देते है। दूर से मालूम होता है। शेर खडा है। उसकी आँखें चमक रही है। भालू भयभीत हो जाता है। समीप नही आता।

शेर से भी सुरक्षा की तरकीव ग्रामीणो ने ने निकाल ली है। शेर आग से डरता है। ग्रामीण आग की ज्वाला प्रज्वलित करते है। शेर पास नही आता। भाग जाता है। सडक निर्माण तथा पर्यटको के आवागमन के कारण भालू तथा शेर से स्थान निरापद हो गया है। वे दूर जगलो में चले गये है।

सन् १८६९ में लेफिनेण्ट कर्नल श्री हेनरी एच कोल ने (सुपरिण्टेडेण्ड आर्कयालोजिकल विभाग उत्तर पश्चिम अचल) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एन सिएण्ट विल्डिङ्ग इन कश्मीर' लण्डन से प्रकाशित करवायी थी। वह उपलब्ध है। उसमे यहाँ के मन्दिर समूहो का चित्र दिया गया है। उस समय मन्दिरो की क्या अवस्था थी उन चित्रो के देखने से पता चलता है।

श्री कोल ने यहाँ के मन्दिर समूहो को दो वर्गो मे विभक्त कर उनका नामकरण किया है। एक का नाम राजदैन वल तथा दूसरे का नाग वल मन्दिर समूह रखा है। प्रथम मन्दिर समूह की सज्ञा राजदैन वल तथा पीछे वाले मन्दिर समूह को सज्ञा नागवल दिया है। विशप कोवी ने नागवल को पूर्वीय तथा राजदैन वल को पश्चिमी मन्दिर समूह कहा है। विशप कोवी के समय मन्दिरो पर घास, फूस वहुत जमे थे। (जे० एस० वी० १८६६ पृष्ठ १०१) पूर्वीय मन्दिर समूह अर्थात् नाग वल किंवा भूतेश मन्दिर के प्राकार की उत्तर पूर्व दिशा मे एक छोटा सरोवर है। इस सरोवर को नारान नाग कहते हैं।

नीलमत पुराण तथा कल्हण के अनुसार यह सरोवर प्रसिद्ध सोदर तीर्थ है। इस तीर्थ से वीस गज पश्चिम बडे मन्दिर के प्राकार के वाहर उत्तराभिमुख एक और मन्दिर था। यह मन्दिर भैरव का मन्दिर था। नागवल अर्थात् पूर्वीय मन्दिर समूह में वडा मन्दिर शिव भूतेश का था। राजदैन वल अर्थात् पश्चिमी मन्दिर समूह मे वडा मन्दिर शिव ज्येष्ठेश का था। इस मन्दिर के पश्चिम दक्षिण कोण विशप कोवी को शिवलिंग का अधिष्ठान किंवा अरघा मिला था जिसपर शिव लिंग स्थापित किया जाता है। वह शिव अधिष्ठान ज्येष्ठेश का था। मैंने चारो ओर लगभग एक घण्टा तक उसे खोजा। परन्तु वह मुझे मिला नही। अतएव नही कह सकता कि उसका रूप क्या था। यदि वह मिल जाता तो शिव लिंग जिस स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाता है उसके घेरे, गहराई तथा आकार से कल्पना की जा सकती थी कि शिवलिंग का प्रकार तथा आकार क्या था।

कर्नल श्री कोल श्रीनगर से दो पडाव डालकर यहाँ पहुँचे थे। पहला पडाव १० मील तथा दूसरा

१५ मील पर डाला था। आज से १०० वर्ष हो गये। उस समय बेगथ का मार्ग इतना सकीर्ण था कि यात्रा कठिनता से हो सकती थी। मार्ग में चीड तथा फर के इतने वृक्ष थे कि उन्हे काट कर श्री कोल यहाँ तक पहुँच सके थे।

ज्येष्ठेश्वर तथा भूतेश्वर के मन्दिरो के मध्य लगभग २०० गज का अन्तर है। ज्येष्ठेश्वर मन्दिर के पृष्ठ भाग मे सर्व प्रथम आयताकार एक चबूतरा १०० फीट लम्बा तथा ६७ फीट चौडा मिलता है। उसके पश्चात् भूतेश मन्दिर का ध्वसावशेष पडता है।

वेगथ की ओर से पहुँचने पर प्रथम ध्वसावशेष ज्येष्ठेश्वर किंवा राजदैन बल समूह का मन्दिर पडता है। इसका मुख्य मन्दिर श्री कोल के समय आज ही जैसा खडा था। उसका प्राकार १७६ फीट लम्बा उत्तर-दक्षिण तथा १३० फीट चौडा पूरब-पश्चिम है। प्राकार की नीव का आकार आज भी अक्षुण्ण है। यद्यपि पत्थर लोग उठा ले गये हैं। नीव के पत्थर शेष रह गये हैं। उनसे प्राकार के आकार का अनुमान होता है।

ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर २४ वर्ग फीट मे है। इसका बहिर्वेशन चारो तरफ ३ × १५ फीट ६ इच है। मन्दिर चौकोर है। मन्दिर के पूरब तथा पश्चिम दोनो ओर आमने सामने दो द्वार हैं। द्वार अलकृत हैं। उनमे देवी तथा देवताओ के चित्र खोदे गये थे। इस समय उन मूर्तियो की एक प्रकार से छाया मात्र ही रह गयी है।

मन्दिर के दक्षिण तथा उत्तर की दिवाले बन्द है। बन्द दिवालो के बाहरी तरफ बडे गवाक्ष बने है। उनमे पूर्व काल मे मूर्तियाँ स्थापित थी। नागबल अर्थात् भूतेश्वर मन्दिर की अपेक्षा ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर अधिक अच्छी हालत में है। इसकी छत शिखर सुरक्षित है। वह मन्दिर की रचना तथा तत्कालीन स्थापत्य पर प्रकाश डालता है। छत तथा शिखर पक्की बनी हे। मन्दिर के प्रागण मे पडे शिलाखण्डो का रूप काल प्रभाव के कारण कुछ विकृत हो गया है। कहना कठिन है। शिला स्तम्भ गोले थे अठपहले थे अथवा चौपहले थे। स्तम्भो के अधिष्ठान यत्र तत्र बिखरे पडे है।

कर्नल कोल ने इस मन्दिर का प्लान पृष्ठ ७:६८ तथा मन्दिर का चित्र ८ ६८ तथा ९ ६८ पृष्ठो पर दिया है। उसमे ज्येष्ठेश्वर मन्दिर को लेकर ६ मन्दिर प्रदर्शित किये गये है। पुस्तक के चित्र देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मन्दिरो पर वृक्षादि जम गये थे। उनकी रक्षा तथा मरम्मत का भी प्रबन्ध नही किया गया। मुद्रित चित्र देखने से मन मे भय का सचार होता है। मन्दिर वास्तव मे भूतो का निवास होगा धारणा अनायास उत्पन्न हो जाती है।

प्रागण मे घास, झाडियाँ तथा पेड लग गये है। वह एक उपेक्षित वन का रूप प्रकट करता है। सब कुछ बिखरा, अस्त-व्यस्त, टूटा-फूटा तथा भयंकर रूप से उपेक्षित तथा विघटित है।

जिस समय मै दूसरी बार पहुँचा तो घास-पात वृक्षादि साफ कर दिये गये थे। बडे मन्दिर का उपयोग गूजर वर्षा तथा तुषारपात से रक्षा निमित्त करते है। उनमे अपने पशु बाँधते है। मन्दिर की मूर्ति जहाँ थी वहाँ गोबर तथा कीचड सड रहा था। मन्दिर मे किसी प्रकार की मूर्ति तथा अधिष्ठान नही है। जिस समय यह मन्दिर नष्ट किया गया होगा, उस समय लिग किवा मूर्ति ककणी नदी मे या तो टुकडे-टुकडे कर फेक दी गयी होगी।

कर्नल कोल ने ६ मन्दिरो का उल्लेख किया है। परन्तु मैने यहाँ पर छोटे-बडे मिलाकर ११ मन्दिरो का आकार देखा। श्री कोल का प्लान अधूरा है। तत्कालीन समय मे पेडो की झुरमुट और सघन झाडियो के कारण, श्री कोल को सबका पता नही लग सका था। बडे मन्दिरो को ही वे लक्ष्य कर सके थे।

ज्येष्ठेश्वर मन्दिर की उत्तर दिशा मे ५ मन्दिर है। दक्षिण दिशा मे एक भी मन्दिर नहीं हे। उत्तर

तरफ मन्दिर की नीव से प्रागण ९२ फीट है। किन्तु दक्षिण तरफ केवल ३५ फीट है। कोई भी मन्दिर इस प्रकार अपने मूल रूप में जब कि भारतीय स्थापत्य, वास्तु तथा मूर्तिकला इतनी विकसित हो चुकी थो, त्रुटि नही उपस्थित कर सकता। कश्मीर के प्राय सब मन्दिर प्रागण की मध्य रेखा पर ही मिलेगे। भूतेश्वर का मन्दिर भी ऐसा ही है। परन्तु ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर उत्तर-दक्षिण के प्रागण खण्ड के मध्य मे नही है। अतएव निश्चय ही दक्षिण मन्दिर का भाग ककणी नदी के गर्त में चला गया है।

मेरा निश्चित मत है। दक्षिण का भाग ककणी नदी मे गिर कर नष्ट हो गया है। ज्येष्ठेश्वर के उत्तर दिशावर्ती लघु मन्दिर किसी सिधायी मे नही वने है। अतएव मुख्य मन्दिर के निर्माण के पश्चात् समय-समय पर काश्मीर के राजाओ ने यहाँ मन्दिर निर्माण कराया था। यह प्रथा प्राय समस्त भारत मे आज भी प्रचलित है। लोग विशाल मन्दिरो के प्रागण मे अपने नामो से लघु मन्दिरो का निर्माण कर उसमे मूर्तियो किंवा लिगो की प्रतिष्ठा करते हैं।

जनरल श्री कनिंघम के मतानुसार इस मन्दिर का निर्माण ईसापूर्व २५० वर्ष में हुआ होगा। कर्नल कोल इसका निर्माण काल सन् ईसवी का प्रारम्भिक काल मानते है।

ज्येष्ठेश्वर ने मन्दिर के पृष्ठ भाग मे तथा विश्राम अथवा पाठ, किवा कथा स्थान या वर्तमान लम्वे चौडे चवूतरे के ध्वसावशेप के मध्य मुझे दो ढूहे तुल्य स्थान मिले। उनमे लम्वे-चौडे विशाल शिलाखण्ड लगे है। वे भी मन्दिर ही रहे होगे। इनका वर्णन किसी अन्य पर्यटक तथा यात्री ने नही किया है।

वहाँ ध्वसावशेष होने का सरल अर्थ है। मन्दिर वहाँ थे। वे टूटे। उनके मलवा का ढूहा वना जो अव तक घास पात से ढका पडा है। यह धारणा मेरी इसलिये और दृढ हो गयी कि वहाँ पर अलकृत शिलाखण्ड जो मन्दिरो मे लगाये जाते थे। विखरे पडे थे। वे इस मन्दिर के ही रहे होगे अन्यथा यहाँ पर उनके अस्तित्व का कोई अर्थ मालूम नही होता।

इस मन्दिर तथा भूतेश्वर के मध्य उक्त चवूतरा है। यह पूजा पाठ करने तथा विश्राम निमित्त बरामदा किंवा अलिन्द था। मण्डप शिला स्तम्भो की अवलियों पर निर्मित था। दोनो मन्दिरो के मध्य मे होने के कारण दोनो मन्दिरो के उपासक, पुजारी तथा भक्त उससे लाभ उठा सकते थे।

कर्नल कोल को यहाँ बहुत नकाशीदार किंवा अलंकृत स्तम्भ मिले थे। स्तम्भों के अधिष्ठान भी अपने स्थानो पर मिले थे। मुझे इस समय दो चार स्तम्भ तथा दो ही चार अधिष्ठान मिल सके। उनका व्यास दो फीट था। शेप गायव थे। इससे २० फीट पूर्व भूतेश्वर के मन्दिर का प्राकार है।

नागवल किंवा पूर्वीय या द्वितीय मन्दिर समूह का नाम भूतेश किवा भूतेश्वर मन्दिर समूह दिया गया है। इसके प्रागण का पता दिवाल पर स्तम्भावली के अधिष्ठान के चिन्हो द्वारा लगाया जा सकता है। यह १५५ फीट वर्गाकार है। इसका कोई भाग ककणी नदी की धारा में ध्वस्त होकर नही गिरा है। चहार दिवारी का आकार तथा उनकी नीव में लगे पत्थर वर्तमान है।

मेजर कोल ने मन्दिर के प्रागण में भूतेश्वर के विशाल मन्दिर को लेकर केवल सात मन्दिरो की गणना की है। उन्होने अपने प्लान मे पृष्ठ ६ ६६ पर इसे प्रदर्शित किया है। उसमे मन्दिर की उत्तर दिशा में मन्दिर के मुख्य द्वार के समीप रखी टकी किंवा एक ही पत्थर मे खोदा हौज है। यह वास्तव में एक ही पत्थर की आश्चर्यजनक रचना है। यह २२ फीट लम्वा तथा ७ फीट चौडा है। लगभग इतना ही मोटा है। मानव वुद्धि इस विशालकाय शिला मे खुदी टकी को देखकर चकित हो जाती है। इस दुर्गम स्थान में इतना विशाल शिलाखण्ड किस प्रकार उठा कर लाया गया होगा सरल मानव वुद्धि मे कौतूहल उत्पन्न करता है।

यह टकी अत्यन्त विलक्षण तथा कलापूर्ण शैली से बनायी गयी है। आज तक टूटी नही है। अनेक भूचाल आये होगे। उसे तोडने का प्रयास किया गया होगा। परन्तु वह यथावत् स्थिति मे स्थित है। यहाँ के ग्रामीण बन्धु कहते है। इसका जल सर्वदा एक जैसा रहता है।

तोरण द्वार चहार दिवारी में पश्चिमाभिमुख बना है। मन्दिर मे केवल एक द्वार है। वह भी पश्चिमाभिमुख है। अतएव वह स्वय इस बात का प्रमाण है। यह मन्दिर शिव का था। शास्त्रानुसार शिव, शकर, रुद्र के मन्दिरों का द्वार पश्चिम तथा दक्षिण होता है।

कर्नल कोल ने अपने प्लान पृष्ठ ७:८८ मे भूतेश्वर मन्दिर सहित कुल ७ मन्दिरो को दिखाया है। किन्तु मुझे प्रागण मे भूतेश मन्दिर सहित कुल १२ मन्दिरो के भग्नावशेप मिले। सम्भव है। कोल की यात्रा के समय शप मन्दिर मलवो तथा घास. फूस के अन्दर छिपे रहे हो। शताब्दियो से पड़ती धूल, वृक्ष, तुषारपात आदि के जम जाने के कारण श्री कोल को पता न चला हो।

भूतेश्वर का मन्दिर प्रागण के दक्षिण उत्तर की लम्बाई के मध्य मे है। मन्दिर की उत्तर दिशा के पार्श्व मे ५ तथा दक्षिण दिशा के पार्श्व मे ६ मन्दिर है। दक्षिण पार्श्व के मन्दिरो मे पूर्व से तीसरे मन्दिर के सम्मुख एक और मन्दिर बना है। यह निर्माण बहुत समय पश्चात् का मालूम होता है। वह उत्तर तथा दक्षिण मन्दिरो की सीध मे नही आता।

मै समझता हूँ कि एकादश रुद्र की कल्पना पर ग्यारह मन्दिरो की रचना की गयी थी। अन्यथा दोनो पार्श्वो मे छह-छह मन्दिर होने चाहिए थे। भूतेश रुद्रेश है। कल्पना की गयी है। यह अनुमान लगाया गया है। मुख्य मन्दिर भूतेश की रचना के पश्चात् कालान्तर मे राजा मन्दिर निर्माण करते गये।

यह तर्क सम्मत नही है। सामने वाला मन्दिर बनाने वाला पाँचवें मन्दिर के पश्चात् छठा मन्दिर बनवाकर उसकी पक्ति पूरा करता। वह मन्दिरो की पक्ति के बाहर जाकर मन्दिर का निर्माण न कराता। अतएव यह मन्दिर एकादश रुद्र कल्पना पर बना है। भूतेश का मन्दिर ज्येष्ठेश्वर मन्दिर की अपेक्षा सादा है। अतएव ज्येष्ठेश्वर मन्दिर के पूर्व की रचना मालूम पडती है।

नरनाग किवा नारायण नाग का कुण्ड भूतेश्वर मन्दिर की उत्तर दिशा से पहाडी द्वारा जल स्रवित होकर आता है। जल कुण्ड किवा सर से निकलता स्पष्ट दिखायी पडता है। वह बहता ककणी नदी मे गिर जाता है। जल अत्यन्त निर्मल है। हलका है। कर्नल कोल ने इसीलिए इसे नाग कहा है। नाग का अर्थ जल स्रोत होता है।

कुण्ड के दो ओर पूर्वकाल की बनी सीढियाँ अपनी पूर्वावस्था मे वर्तमान हैं। इस कुण्ड की सफाई नही हुई है। चारो ओर मुसलिम गूजरो की आबादी है। अतएव कुण्ड की सफाई नही है। उसमे पत्ती, टूटी लकडी तथा पहाडो पर से गिरे कंकड पत्थर पडे थे। पत्तियो के सडने के कारण कुण्ड का स्तर साफ नही था। जल निरन्तर कुण्ड मे आता और निकलता रहता है अतएव वह साफ लगता है।

इस कुण्ड का निर्मल जल तथा यहाँ को मनोमुग्धकारी प्राकृतिक दृश्यावली देखकर जलपान के लोभ का सवरण नही कर सका। मैंने जल पीया। वह मधुर तथा शीतल था। उसमे मुझे जैसे जीवन मिला। इस कुण्ड किवा सर को सोदर तीर्थ कहते थे। इसके जल का वडा ही विशद वर्णन किया गया है। इसके नाम पर एक दूसरा सोदर तीर्थ श्रीनगर के समीप निर्माण कराया गया था। उसका यथा स्थान वर्णन किया है।

इस सरोवर के समीप एक विशाल शिलाखण्ड पडा मिला। वह १५ फीट लम्बा ८ फीट चौड़ा तथा ६ फीट मोटा था। यह शिलाखण्ड मूर्ति का अधिष्ठान है।

ककणी नदी मे आध मील दूर धारा के मध्य एक शिलाखण्ड है। उस पर एक कोठरी बनी है।

हरिमुकुट यात्रा से लौटते समय भूतेश मन्दिर का स्थान मार्ग पर पडता है। परन्तु इस पर विशेष ध्यान कभी नही दिया गया था। मालूम होता है मन्दिर के नष्ट भ्रष्ट हो जाने के कारण इसका महत्त्व लोग भूल गये थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०८ मे 'साऽथ' का पाठभेद 'सोथो' तथा 'ज्जलौको' का 'ज्जलोको' तथा 'सुधया' का 'श्रद्धया' मिलता है।

१०८ (१) जलौक · आइने अकबरी में नाम ज्यूलोक दिया है। अबुल फजल के अनुसार—'राजा ने समुद्र तक विजय प्राप्त किया था। विजय यात्रा से लौटते समय वह कन्नौज गया था। उस समय कन्नौज (कान्यकुब्ज) हिन्दुस्तान को राजधानी थी। जलौक कन्नौज से अनेक गुणी तथा विद्वानो को कश्मीर लाया। उनमें सात को चुनकर विभिन्न विभागो का मुख्याधिकारी नियुक्त किया। उसमे एक ज्योतिष विभाग था।

'उसके आदेश पर सर्पों का एक बहुत बडा समूह चलता था। उन्ही पर आरूढ होकर राजा लम्बी जल यात्रा करता था। राजा किसी समय युवा और किसी समय वृद्ध बन जाता था। उसके सम्बन्ध मे अनेक चामत्कारिक बातें कही जाती हैं। इस राजा के समय बुद्ध धर्म मानने वालो के साथ सहिष्णुता का व्यवहार किया जाता था।'

अबुल फजल ने राजतरंगिणी के फारसी अनुवाद तथा प्रचलित जनश्रुति पर राजा जलोक का उल्लेख किया है। जलौक के समय कन्नौज भारतवर्ष की राजधानी नही था। पाटलीपुत्र राजधानी था। यहाँ सर्पो का तात्पर्य नागो से अबुल फजल का मालूम होता है।

इतिहासकार आजम ने लिखा है —कश्मीर पर एक नया धर्म लादा गया। उच्छिष्ट डिम्ब से अशोक के पुत्र जलौक ने म्लेच्छो को निकाल बाहर किया। राजा देश-विजय हेतु निकला। उसने उत्तरी ईरान जीत लिया।

उत्तरी ईरान जीतने का कोई साधिकार प्रमाण नही मिलता। विदेश यात्रा का अर्थ आजम ने उत्तरी ईरान लगाया है। आजम ने यह तथ्य कहाँ से पाया कोई प्रमाण नही देता।

बैदुद्दीन इतिहासकार लिखता है —'ईरान का राजा इस समय 'दोरात्र' था। ईरान के विजय के पश्चात् उसने कन्नौज जीता था।'

आजम तथा बैदुद्दीन की बातें यदि मान ली जाँय तो नवीन धर्म पारसियो की अग्नि पूजा हो सकती है। कश्मीर मे बुद्ध तथा सनातन धर्म दोनो उस समय प्रचलित थे। दोनो मे विरोध नही था। ईरान से सम्पर्क मे आने पर इसी की सम्भावना हो सकती है।

अग्नि पूजक पजाब के उत्तर तथा पश्चिमी भाग मे एक समय आबाद थे। किन्तु कश्मीर मे अग्नि पूजा पारसियो की शैली की कभी प्रचलित नही थी। हवन, यज्ञ, पचाग्नि, अग्निहोत्र आदि सनातन धर्म के अग थे। आर्य धर्म मे परम्परा से यज्ञ होता आया है। वह यज्ञ वेदी तक सीमित था। महात्मा जरदस्तु द्वारा प्रसारित तथा प्रचलित अग्नि पूजा का चिह्न कश्मीर मे अभी तक मिल नही सका है।

किसी अग्निकुण्ड, अग्निमन्दिर किंवा अग्नि वेदी का उल्लेख नीलमत पुराण एवं राजतरंगिणी मे नही मिलता। जलौक ने ईरान विजय के पश्चात् एक नवीन धर्म कश्मीर पर लादा वह भ्रामक एवं तथ्यहीन है।

हसन लिखता है —'जलौक राजा अशोक का दूसरा बेटा था। कलिसंवत् १७२६ मुखालिफो का किला फतह करके सखावत और इन्साफ परवरी में

नेकनामी हासिल की। मुल्क की आबादी में हद दर्जा रोशा रहा। लार में मौजा वारहमूला उसी की नामोगान मे से है। कल्हण पण्डित ने उसे फरिश्ता सीरत जानकर अच्छी अच्छी खूबियो से मुत्तसफ इसान सावित किया है। पण्डित उद्‌भट्ट जो अपने वक्त का एकता था उसी के तरतीबयाफ्तो मे से था। उसके कहने सुनने से राजा जलौक ने फौरन् बुद्धमजहब छोड दिया। और अपने बाप के बर खिलाफ शैव मजहब अख्तियार कर लिया। विजयेश्वरी और नन्दह किशोर मन्दिरो की पूजा पाठ अपने ऊपर लाजिम कर ली। सख्त रयाजतो और रुहानी सफाई और करामतो के पेश नजर अपने जमाना का एकता था।

कफ—'कहते है कि हर दिन लाडू वेजवारह और वारहमूला के मन्दिरो की पूजा-पाठ के लिए घोडो पर सवार होकर जाया करता था। एक साप तावा किया हुआ था। जिस पर हर दिन सवार होकर जहाँ चाहता था पहुँचता था। यह साँप उसे वाकी साँपो से भी वचाता था। शिवजी के तमाम मन्दिरो को निहायत उम्दगी से सजाया। इसके जमाने मे वुद्धमजहब की कोई रौनक न रही।

'मशहूर है कि एक औरत ने उससे सवाल किया कि मुझे कुछ वतौर खैरात के दे। राजा ने कहा कि जो माँगेगी दूँगा। इसके वाद औरत मजकूर देवी की शकल मे मुतशकल हो गयी। और राजा से इन्सान का गोश्त माँगा। राजा किसी इन्शान के कतल पर राजी न हुआ। और खुद उसके हवाला कर दिया। देखकर उस औरत ने इन्तहाई खुशी के साथ राजा के हक मे तौफीक इवादत की दुआ माँगी—फकत।

'वाद अजई राजा ने मुल्को के फतह करने का पुख्ता इरादा कर लिया। सर जमीन हिन्दुस्तान मुल्क मे कन्नौज और विहार तक के वहुत से शहर अपने कब्जा अख्तियार मे कर लिये। तिमिर नाशक के कौल के मुताबिक कन्दहार और वाख्तर तक के बहुत से शहरो पर अपना कब्जा और इक्तदार जमा लिया। आस पास के मुल्को और इलाको की फतह के वाद जब अपने मुल्क को लौटा तो वहुत से दस्तकार और अहल पेशा आदमी उसके साथ थे। अपने मुल्क की दौलतमन्दी और शान व शौकत इस दरजा तक पहुचा दी कि दूर दराज के इलाको के रहने वाले लोगो के दिल उसे सुनकर वाग वाग हो जाते थे। उसके वक्त तक कश्मीर में मुल्की ओहदेदारो का इन्तजाम न था। राजा ने मुल्की मुआमलात के इन्तजाम को चलाने के लिए अजखुद आफिसर मुकर्रर किये। और उन्हे अपने फरायज का जवाव देह करार दिया। जो ओहदह जात इस राजा ने पैदा किये उनकी तफसील हस्व जैल है।

(१) उहदा दिवानी—इसके जिम्मा मुल्की लेन देन का इन्तज़ाम था।

(२) उहदा खानसामानी—इसके जिम्मा खजानो की हिफाज़त और आमदनियो का हिसाव व किताव था।

(३) दारोगा फोरखाना—इसका काम फौज के हथियार, लिवास और सामान वगैरह की हिफ़ाज़त था।

(४) वखशी—फौज की इन्तजाम के लिये।

(५) वजारत—वादशाह की राय और मशविरा के लिए।

(६) दारोगा सदर—खैरात और सदकात की तक्सीम के लिए।

(७) नकीव—सिपाहियो और किसानो की खवरगीरी के लिये।

अलगरज हकूमत के इन्तज़ाम की पुख्तगी और अदल व इन्साफ, सखावत और रास्त वाजी मे लाशानी था। कहते हैं कि गोटी नीद नाम की एक दवाई पाई थी। जिससे सोना वनाया करता था। इल्म सीमया वखूवी जानता था। आखिर कार कपल मोचन के मुकाम जो कसवा सूपियान में सोनगुल नहर का मुनवअ है राहे वहक हो गया। उसकी वीवी इशान देवी इन्तहाई दरजा की रयाज़त कीश और वाहिम्मत औरत थी। उसके मातर चकर और हस्त

यस्य दिव्यप्रभावस्य कथाः श्रुतिपथं गताः ।
आश्चर्याचर्यतां यान्ति नियत द्युषदामपि ॥ १०९ ॥

१०९. राजा के दिव्य प्रभाव की कथा जब देवताओं के कानो तक पहुँची तो वे आश्चर्य चकित स्तम्भित हो गये।

कोटिवेधिनि सिद्धे हि स रसे हाटकार्पणैः ।
अमीसुषिरतां हर्तुं हेमाण्यस्य ध्रुवं क्षमः ॥ ११० ॥

११०. कोटिवेधिनी रस की सिद्धि[1] द्वारा करोड़ों वस्तुओं को सुवर्ण मे परिणत कर शून्य गगन मण्डल को सुवर्ण दान द्वारा भर देने में राजा सक्षम था।

हाल बनाकर गरीबो और मसकोनो को बख्श दिये। व्यासदेव के शागिर्द से नन्दी पुराण पढकर नन्दीश्वर का मजहब अपने ऊपर अख्तयार कर लिया। बुद्ध मजहब कतइयन् तर्क कर दिया। राजा जलौक की कुल हुकूमत साठ साल थी।' (पृष्ठ ३९४०)

हसन ने अपने पूर्व के मुसलिम इतिहासकार तथा कल्हण सब के द्वारा वर्णित घटनाओं का समन्वय कर लिखा है। सब की बात मान ली है।

उसने 'इतिहास तिमिर नाशक' का उल्लेख किया है। काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने भारत का एक अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास लिखा था। मैंने उसे अपनी बाल्यावस्था में पढा था। वह हिन्दी तथा शायद उर्दू दोनो भाषाओ मे छपा था। हसन ने यही इतिहास पढा था। इतिहास तिमिर नाशक साधारण लोगो के पढने के लिये उन्नीसवी शताब्दी मे लिखा गया था। मेरे पास इसको मूल प्रति थी। वह 'कलकतिहा नागरी' मोटे टाइप मे आर्ट कागज पर छपा था। उन दिनो उसका मूल्य था। क्योकि कोई और इतिहास भाषा मे उपलब्ध नही था। राजा शिवप्रसाद नागरी और हिन्दी भाषा के महान् पक्षपातियो एवं उन आन्दोलको मे थे जिन्होंने हिन्दी को उर्दू से भारत मे बचाया था। उन दिनो हिन्दी के स्थान पर उर्दू चलाने का प्रचार तेजी पर था। काशी की नगरी प्रचारिणी सभा की स्थापना तथा तत्कालीन हिन्दी आन्दोलन की यज्ञी पोठिका थी। हसन का ऐतिहासिक ज्ञान कितना सीमित था यह इसी एक बात से प्रमाणित होता है कि उसने अपने मत की पुष्टि इतिहास तिमिर नाशक का उद्धरण देकर करना चाहा है। जिसका ऐतिहासिक महत्त्व साधारण है। जलौक सम्बन्धी हसन के मत को मैं उसी प्रकार मान्यता देने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ जैसे अबुल फजल, आजम तथा बैदुद्दीन को।

जलौक का वर्णन कल्हण ने कवि श्री छविल्लाकर के आधार पर किया है। श्री छविल्लाकर ने जैसा वर्णन किया होगा उसे ही कल्हण ने अपनी पुस्तक राजतरंगिणी मे स्थान दिया है। इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन परिशिष्ट 'जलौक' मे द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०९ मे 'आश्चर्याचि' का 'आश्चर्याश्च' और 'नियत' का 'निश्चयं' और 'द्युषदा' का 'द्युसदा' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ११० मे 'वेधिनि' का 'वेदिनि', 'सुषिरताम्' का 'सुरिक्तताम्' और 'हर्तुं' का 'कर्तुं' और 'हेमाण्यस्य' का 'हेमागस्य' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

११० (१) कोटिवेधिनि रस : कल्हण ने धातुओं से सुवर्ण बनाने का उल्लेख राजा ललितादित्य (रा० त० ४ २४६ तथा ३६३) और सिकन्दर बुतशिकन के वर्णन प्रसंग में, जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी (श्लोक संख्या ५७८) में किया है।

सुस्तम्भ्याम्भःप्रविष्टेन तेन नागसरोऽन्तरम् ।
तारुण्यं फणिकन्यानां निन्ये संभोगभव्यताम् ॥ १११ ॥

१११ अपना तारुण्य फणि कन्याओ के संभोग मे सफल करने के निमित्त राजा नाग-सरोवरो मे जल स्तम्भित कर प्रवेश करता था ।

भारत मे प्राचीनकाल से यह कथा प्रचलित चली आती है। साधु महात्मा तथा चामत्कारिक पुरुष स्वर्ण बनाने की सिद्धि प्राप्त करते है। मुख्यतया पारा सिद्ध कर उसके द्वारा सोना बनाया जाता है।

उसी प्रकार यह कथा भी प्रचलित है। पारस पत्थर के स्पर्श कराने से धातुएँ तथा लोहा सोना बन जाता है। इस प्रकार चामत्कारिक बातें साधु महात्मा तथा महान् पुरुषो की महत्ता वृद्धि के निमित्त उनके जीवन मे सम्बन्धित कर दी जाती हैं।

कोटिवेधिनी रस का कल्हण ने उल्लेख यहाँ किया है। यह रस क्या था ? कैसे बनता था ? इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता था ? इस पर अब तक प्रकाश नही पड सका है। यह किसी प्रकार का रस था। जिसके सिद्ध करने से सुवर्ण तैयार हो जाता था।

१११ (१) नागसरोऽन्तरम्ः यहाँ यह अर्थ करना समीचीन मालूम होता है। नाग अर्थात् झरनो, प्रपातो एव सरोवरो का जल स्तम्भित, अर्थात् रोककर राजा नागकन्याओ के साथ भोग कर अपना यौवन सुफल करता था। जलप्रपात, स्रोत तथा सरोवर कश्मीर में नागो के स्थान माने गये है। वे प्रत्येक सरोवर तथा प्रपातो एव स्रोतो में निवास करते है। वहाँ पर नागकन्याओं का रहना स्वाभाविक है। जलप्रपात, स्रोत तथा सरोवर को स्तम्भित करने का अर्थ जल शान्त करना है। उन्हें अपने काम प्रसग निमित्त हलचलहीन बनाना है। अत्यन्त एकान्त वातावरण उत्पन्न करता है। यहाँ पर कल्हण ने किसी सरोवर, स्रोत एव प्रपात विशेष का उल्लेख नहीं किया है। इसका मन्तव्य मालूम होता है। राजा किसी नाग किवा सर विशेष की नागकन्या के स्नेह सूत्र द्वारा ही सीमित नही था। वह इच्छानुसार कश्मीर के अगणित नागो तथा सरो मे प्रवेश कर अनेकानेक नागकन्याओ से सम्बन्ध स्थापित करता था। वह किसी एक स्थान से बँधा नही था।

कल्हण इस प्रकार राजा जलौक की ऋद्धि का वर्णन गौण रूप से कर देता है। राजा ऋद्धि सम्पन्न था। वह नागो तथा सरो के जलो को बाँध देता था। जल बाँध देने की कथा योगियो के जीवन से सम्बन्धित की जाती है। योगी नदी के जल को स्तम्भित किवा बाँधकर नदी पार पैदल चला जाता है। जल बाँधकर अपना चमत्कार दिखाता है। चामत्कारिक कथानको से साहित्य भरा पडा है। कल्हण राजा जलौक के कोटिवेधिनी रस तुल्य उसके दूसरे चमत्कार का वर्णन करता है।

कल्हण एक तीसरे चमत्कार को और राजा के जीवन मे सम्बन्धित करता है। राजा जल मे प्रवेश करता था। जल मे डूबने अथवा रहने पर साधारण प्राणी प्राणवायु के अभाव मे मर जाता है। परन्तु राजा जलौक वहाँ नागकन्याओ के साथ विहार करता था। राजा की दिव्य शक्ति का जो उल्लेख कल्हण ने श्लोक सख्या १०९ मे किया है उन्ही का यहाँ विस्तार करता है। राजा मे इतना अधिक दैवी गुण किवा प्रभाव था कि मनुष्य होते हुए भी वह देवताओ तुल्य अद्भुत कार्य करता था। राजा का जल के अन्दर विना प्राणवायु प्राप्त किये विहार करना स्वत एक चमत्कार की बात थी। कल्हण ने राजा के दिव्य प्रभाव का यह तीसरा उदाहरण दिया है।

तत्कालप्रबलप्रेद्धबौद्धवादिसमूहजित् ।
अवधूतोऽभवत्सिद्धस्तस्य ज्ञानोपदेशकृत् ॥ ११२ ॥

११२. राजा का ज्ञानोपदेशक एक तेजस्वी दार्शनिक अवधूत था, जिसने कश्मीर मण्डल मे सफलता से फूल कर प्रबल हो उठे बौद्ध [1]समूह को शास्त्रार्थ में परास्त किया था।

---

११२ (१) **बौद्ध :** अशोक के कारण बौद्धधर्म का प्रचार प्रवल हो उठा था। संघ का भी संघटन सुदृढ हो गया था। अशोक ने कश्मीर सीमान्त पर (१) मानसेहरा, (२) शहवाज गढी, तथा (३) धौली मे लगे शिला अभिलेख में धर्म प्रचार तथा संघ संघटन का निर्देश दिया है। धौली मे कश्मीर के सीमान्त स्थान तक्षशिला का भी उल्लेख किया गया है।

अशोक ने धर्म प्रचारार्थ पंच वर्षीय योजना बनायी थी। शहबाज गढी तृतीय अभिलेख मे उसने स्पष्ट लिखा है—'वदय वषभिसितेन'' अणपितं। सवत्रमअ विजिते युत रजिको प्रदेशिक पंचपु पंचपु ५ वपेपु अनुसंयनं निक्रमतु एतामि वो करण इमिस ध्रंमनु शस्तिये थ अन्येपि क्रमये।' अभिलेख के बारह वर्ष (पश्चात्) मेरे द्वारा ऐसी आज्ञा दी गयी। सर्वत्र मेरे राज्य में, युक्त, रज्जुक, प्रादेशिक पाँच पाँच (५) वर्ष पर इस कार्य के लिये, इस धर्मानुष्ठान के लिये तथा, अन्य कार्य के लिए दौरे पर जाँय।'

मानसेहरा तृतीय अभिलेख मे पुन लिखा गया है ' देवनं प्रिये प्रियद्रशि रज एव्र अह (१) दुवड शवप भिषितेन मे इयं अणपयिते (२) सव्रत्र विजि तसि तरनु प्रदेशिके पंचसु ५ वपेपु

' अनुसंयनं निक्रमतु एतये अ अग्रये इमये ध्रमनु शस्तिये यथ अन्नये पि क्रमणे (३) सधुमत पितुष्य मित्र संस्तुत '' ''

'ञतिकिनं च व्रमण श्रमणनं सधुदने प्रणन अनरभे सधु अपवयत अपभडत सधु (४) परिप पि च युतनि गणनसि अण पयि शति हेतुने च। वियंज न ते च।

देवाना प्रिय, प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा द्वादश वर्षाभिषिक्त मुझसे ऐसा आज्ञप्त हुआ। राज्य में सर्वत्र मेरे युक्त, रज्जुक, प्रादेशिक (नामक राज्य कर्मचारी) पाँच-पाँच (५) वर्षो मे दौरे पर निकलें। इस प्रयोजन के लिए इस धर्मानुशासन के लिए तथा अन्य भी कार्य के लिए। 'परिषदें युक्तो को हेतु (कारण) और व्यञ्जन (अक्षरशः अर्थ) के साथ (इन नियमो की) गणना करने के लिए आज्ञा देंगी।

उक्त दोनो स्थानो के पंचम अभिलेखो में धर्म महामात्र की नियुक्ति के साथ अपने पुत्र, प्रपौत्र आदि के लिये अभिषेक के तेरहवे वर्ष में अशोक ने आदेश दिया।

'११. देवनं प्रियो प्रियद्रसि रय एवं अहति कलणं दुकरं यो आदि करो कलणस सो दुकरं करोति सो मय बहुकलं किटं तं मअ पुत्र च नतरो च तेन ये मे अपच व्रक्षन्ति अवकपं तथ ये अनु वटिशन्ति ते सुकिटं कषंति यो चु अ तो '' 'कं प हये शदि सो दुकटं कषति पयं हि सुकरं स अति क्रतं अतर नो भुत प्रुव ध्रंम महमत्र नम सो तोदश वपभिसितेन १२ मम ध्रम महमत्र किट ते सव्र प्रपंडेपु वपट धमं धिथ नये च धम वडिय हिद सुखये च ध्रमयुतस'''' ''।'

[देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा। जो कल्याण का प्रारम्भ करता है वह दुष्कर कार्य करता है किन्तु मुझसे बहुत कल्याण किया गया। यदि मेरे पुत्र, नाती और उनके परे मेरे अपत्य कल्प के अन्त तक (इसका) अनुसरण करेंगे वे कुछ सुकृत करेंगे। जो यहाँ (इस देश मे) इसका एक अंश भी नष्ट करेगा वह दुष्कृत करेगा। पाप सुकर है। बहुत समय बीता। भूतकाल मे धर्म महामात्र नाम (का अधिकारी) नही थे। किन्तु राज्याभिषेक के तेरह वर्ष पश्चात् मेरे द्वारा धर्म महामात्र (नियुक्त) किये गये।

धर्म की स्थापना, धर्मवृद्धि और धर्मयुक्तो के हित सुख के लिये वे पाषण्डो (धार्मिक सम्प्रदायो) मे व्याप्त हैं ।']

मानसेहरा में भी यही अभिलेख है । कश्मीर की सीमा पर प्राप्त दोनो अभिलेखो के पश्चात् 'धौली के प्रथम पृथक् अभिलेख मे अपने राजनीतिक आदर्श में धर्म प्रचार का आदर्श भी रखा । उसने महामात्रो के साथ ही साथ कुमार अर्थात् राज्यपालो के लिये त्रिवर्षीय योजना प्रस्तुत की । यहाँ तक्षशिला के नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है जो कश्मीर की सीमा और कभी कश्मीर राज्य के अन्तर्गत था ।

२१ 'अकस्मा पलिकिलेसे वनो सियाति (२३) एताये च अठाये हव्य मते पचसु पचसु वसे ।

२२ सुनिखा मयि सामि ए अरखसे अचडे सखिनालभे होसति एत अठ जानितु तथा

२३ कलति अथ मम अनुसथीति (२४) उजेनि तेपि चु कुमाले एताए व अठाये निखा मयिस

२४. हे दिसमेव वग नो च अति कामयिस्मति तिनि वसानि (२५) हेमेव तखसिलाते पि (२६) अदा अ

२५. ते महामाता निखमिसति अनुसयान तदा अहा पयितु अतने कम एत पि जानिसति

२६. त पि तथा कलति अथ लाजि ने अनुसाथीति (२७)

[बिना किसी कारण के परिक्लेश (शारीरिक कष्ट) का दण्ड न मिले । इस प्रयोजनके लिए मैं महामात्रो को पाँच-पाँच वर्षों के अन्तर से दौरे पर भेजूँगा । जो अकर्कश, अचण्ड, श्लक्ष्णारम्भ (सरल) हैं और मेरे उद्देश्यको जानते हुए वे ऐसा (२३) करेंगे । जैसा मेरा आदेश है । किन्तु उज्जयनी से (राजपाल) इस प्रयोजनके लिए दौरे पर भेजेंगे । (२४) इसी प्रकार के वर्गको जो तीन वर्षसे अधिक समय नही बीतने देगें । इसी प्रकार तक्षशिलासे भी । जब (२५) महामात्र अनुसयान (दौरे) पर निकलेंगे तब वे अपने कर्तव्यो की अवहेलना न करते हुए मेरे इस आदेश को जानेंगे (२६) और ऐसा कार्य भी करेंगे जैसा राजाका अनुशासन है ।]

अशोक ने सामाजिक जीवन मे भी आमूल परिवर्तन करनेका विचार किया जैसे उसने 'विहार यात्राके स्थानपर' 'धर्म यात्रा' का प्रचलन किया । (जौगढ अष्टम अभिलेख) उसने स्वयं स्थान स्थान पर २५६ से अधिक पडाव डाला था । (गुर्जरा तथा सहसराम अभिलेख) ।

राजाश्रय, प्रचारादिके कारण बौद्ध धर्मको विशेष बल मिला । चीनी यात्रियोको अशोक निर्मित कम-से-कम चार स्तूप कश्मीर उपत्यका से मिले थे । पाँच सौ चैत्यों का निर्माण हुआ था ।

कल्हण इस दशा की ओर सकेत करता है। बौद्ध धर्मानुयायी प्रवल हो गये थे । वे धर्म प्रचारके उत्साहसे भर गये थे । उनका अपने धर्मके समर्थन निमित्त शास्त्रार्थ करना व्यावहारिक बात मालूम होती है । पुराने सनातन धर्मके पक्षपाती अवधूतने उन्हे शास्त्रार्थमे पराजित किया था । कल्हण वहाँ गौण रूपसे सकेत करता है । जनता तथा जलौक राजा पुराने धर्मकी ओर पुन मुडे थे । यद्यपि उसने बौद्ध धर्मका विरोध नही किया था ।

(२) अवधूत 'महानिर्वाण तत्र' के अनुसार अवधूतो का वर्गीकरण किया गया है । अवधूत शैव तथा वैष्णव दोनो सम्प्रदाय के होते थे । अवधूतका शाब्दिक अर्थ त्यागी किंवा सन्यासी होता है । उनका वर्गीकरण 'महानिर्वाण तन्त्र' के अनुसार (१) ब्रह्मावधूत (२) शैवावधूत (३) वीरावधूत तथा (४) कुलावधूत होते हैं ।

किसी भी आश्रम एव वर्णका ब्रह्मोपासक ब्रह्मावधूत कहा जाता है । विधिपूर्वक सन्यास लिया व्यक्ति शैवावधूत कहा जाता है । वीरावधूत के रूप का विचित्र वर्णन मिलता है । उसके सर के बाल लम्बे तथा बिखरे जटा की तरह होते है । कण्ठ मे रुद्राक्ष किंवा अस्थियो की माला रहती है । कटि मे

विजयेश्वरनन्दीशक्षेत्रज्येष्ठेशपूजने ।
तस्य सत्यगिरो राज्ञः प्रतिज्ञा सर्वदाऽभवत् ॥ ११३ ॥

११३. उस सत्यवादी राजा ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि नन्दिक्षेत्र स्थित ज्येष्ठेश्वर[१] तथा विजयेश्वर की सदा पूजा किया करेगा।

गुप्तांग ढकने मात्र के लिये कौपीन होता है। शरीर भस्म किंवा रक्त चन्दन से पुता रहता है। हाथो मे काष्ठ दण्ड, परशु एव डमरू और मृगचर्म रहता है। कुलावधूत उसे कहते हैं जो कुलाचार मे अभिषिक्त होकर भी गृहस्थाश्रम मे रहता है।

वैष्णव सम्प्रदाय मे रामानन्द को शिष्य परम्परा मे अवधूत होते है। वैष्णव अवधूत के सर के केश लम्बे होते है। कण्ठ मे स्फटिक की माला रहती है। शरीर पर कथा रहता है। हाथ मे दरियाई नारियल वा खप्पर होता है। इस सम्प्रदाय के बंगाल मे पृथक् पृथक् अखाडे होते हैं। सभी जाति के लोग इसमें सम्मिलित हो सकते है। वे गृहस्थो के द्वार पर वीर अवधूत नामका स्मरण कर एकतारा किंवा अन्य कोई वाद्य यत्र बजाकर गाते है। इनके निवास की शैली अव्यवस्थित रहती है। इन्हे बगाल मे कुछ लोग बाउल गायक कहते है। परन्तु वह अवधूतो का एक भेद मात्र है।

नाथ सम्प्रदाय मे अवधूतो का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। वे प्रकृति विकारो से दूर रहते है। कैवल्य की प्राप्ति निमित्त आत्मचिन्तन तथा अभ्यास मे निरन्तर रत रहते है। 'सगुण एवं निर्गुण' ब्रह्म दोनो से पर की उनकी स्थिति होती है।

गुरु दत्तात्रेयको अवधूत कहा जाता है। दत्त सम्प्रदाय मे अवधूतको सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'अवधूत गीता' मे अवधूतो का पूर्ण विवेचन विस्तार के साथ प्राप्त होता है।

स्त्रियाँ भी अवधूत तुल्य अवधूती कही जाती है। वे विशेषतया पश्चिमोत्तर भारतीय क्षेत्र मे मिलती है। वे सन्यासी पुरुषो तुल्य वेश धारण करती है। भस्म लगाती है। कण्ठ तथा बाहु मे रुद्राक्ष को माला पहनती है। कतिपय अवधूतनियाँ अपने जूडो मे भी रुद्राक्ष माला लपेट लेती है।

अवधूती मार्ग सुषुम्ना नाडी की एक सज्ञा है। उस प्राण वायु को इडा पिंगला नाडी के स्थान पर सुषुम्ना नाडी मे धारण करने को अवधूती किंवा अवधूतिका मार्ग कहा जाता है।

अवधूतेश्वर शकर का एक अवतार माना गया है। कथा है। एक समय इन्द्र तथा बृहस्पति भगवान् शकर के दर्शनार्थ कैलास जा रहे थे। उनकी परीक्षा लेने का शंकर ने विचार किया। मार्ग में दिगम्बर और भयकर रूप बनाकर बैठ गये। वह न तो मार्ग से हटते थे और न कुछ बोलते थे।

इन्द्र ने चिढकर वज्र निकाला। शकर ने वज्र का स्तम्भन कर दिया। उनका तृतीय नेत्र खुल गया। उससे ज्वाला निकलने लगी। बृहस्पतिने शंकरका उग्र रूप देखकर, स्तुति की। वह अग्नि ज्वाला लवणोदधि मे डाली गयी। उससे जालधर उत्पन्न हुआ। उसका वध शकर ने किया। (शिव० शत ३०)

११३ (१) ज्येष्ठेश = शकर की पूजा कश्मीर मे अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। उनकी तीन नामो यथा ज्येष्ठेश, ज्येष्ठेश्वर तथा ज्येष्ठ रूप से पूजा होती थी। उनके स्थान भी भिन्न थे।

प्रथम ज्येष्ठेश का स्थान हरमुकुट पर्वत के अधोभाग मे नन्दिक्षेत्र किंवा नन्दीश क्षेत्र मे था। इसका उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी १: ३६ मे किया है। द्वितीय स्थान त्रिपुरेश्वर अर्थात वर्तमान त्रिफर के समीप था। इसका उल्लेख राजतरगिणी मे कल्हण ने ५ १२३ मे किया है। तृतीय स्थान श्रीनगर के समीप था। इसका उल्लेख राजतरगिणी १ : १२४ मे कल्हण ने किया है।

इस स्थान पर कल्हण ने ज्येष्ठेश का स्थान निश्चित नन्दिक्षेत्र बता दिया है। द्वितीय ज्येष्ठेश को प्रथम ज्येष्ठेश ने भिन्न मानने के लिये त्रिपुरेशाद्रिनिष्ठ सज्ञा दी है। त्रिपुरेश पर्वत के अधोभाग मे उनका निश्चित स्थान बताता है। तृतीय ज्येष्ठेश्वर रुद्र का स्थान डल लेक के समीप था। यहाँ महाराज हरी सिंह ने अपना राजभवन बना लिया है। वह भवन अब होटल रूप से चलता है। श्रीनगर से गुपदकर होते हुए जो सडक डल लेक के तट से होती चश्माशाही, शालीमार बाग की तरफ जाती है, वही पर सडक से ऊपर राजभवन के स्थान पर यह स्थान था।

नन्दिक्षेत्र के ज्येष्ठेश वही है जिनका वर्णन भूतेश्वर मन्दिर के सन्दर्भ मे किया गया है। भूतेश्वर मन्दिर के प्राकार मे अनेक मन्दिर निर्माण किये गये थे। यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन थी। मेवाड मे एकलिंग जी के मन्दिर के प्राकार के अन्दर एकलिंग के मुख्य मन्दिर के चारो ओर अनेक मन्दिरो का निर्माण कालान्तर में राजाओ ने भूतेश्वर मन्दिर के समान कराया था। भूतेश्वर मन्दिर के समीप जैसे सोदर तीर्थ का अति लघु सरोवर है उसी प्रकार एकलिंग मन्दिर मे भी एक लघु सरोवर है।

नीलमत पुराण इसे और स्पष्ट कर देता है .

पूर्वोत्पन्न च यज्ज्येष्ठेशाख्य लिंग मम द्विज।
तत्रापि सन्निधान मे नित्य विज्ञातुमर्हसि ॥
1110.१३११

ऋषिकोटिसहस्राणि मम भक्त्या द्विजोत्तम।
तत्र संस्नापयन्ति स्म ज्येष्ठेश त सदैव तु ॥
१३१२

वसाम्यह च ज्येष्ठेशे भूतै. सह तथोमया।
वस त्वमपि सद्विप्र मन्निष्ठो मत्परायाण. ॥
1111 १३१७

भयदाता च दैत्यानां सुराणामभयप्रदः।
ज्येष्ठेश्वरसमीपे तु वसिष्ठोऽपि महायश ॥
1119.१३२३

स्नाता तु सोदरे पुण्ये दृष्ट्वा भूतेश्वर हरम्।
ज्येष्ठेश्वर नन्दिन्द्र च गाणपत्यमवाप्नुयात ॥
1124 १३२८

ज्येष्ठेश के स्थान निर्णय मे इस प्रकार कोई विवाद नही रह जाता। नीलमत स्थान का निश्चय स्पष्ट करता है। नन्दिक्षेत्र तथा वसिष्ठ आश्रम अर्थात् वेगथ के समीप ज्येष्ठेश का स्थान बताकर, वह भूतेश्वर स्थित ज्येष्ठेश को ही कल्हण वर्णित ज्येष्ठेश मानने के लिये बाध्य कर देता है।

शिव तथा नन्दी की कथा मे एक प्राचीन लिंग की बात आती है। उसे ज्येष्ठेश कहते थे। वह नि सन्देह शिव भूतेश्वर के स्थान में था। प्राचीन नन्दीक्षेत्र माहात्म्य मे उल्लेख मिलता है कि ज्येष्ठेश्वर किंवा ज्येष्ठनाथ की पूजा नन्दीश तथा भूतेश्वर के अत्यन्त समीप होती थी। (श्लोक १४६)

कल्हण ने राजतरंगिणी के श्लोक १ १५१ मे ज्येष्ठ रुद्र का उल्लेख किया है। वहाँ पर ज्येष्ठ रुद्र वास्तव मे ज्येष्ठेश है। कल्हण पुन ४ १९० मे उल्लेख करता है कि ज्येष्ठ रुद्र का एक मन्दिर भूतेश्वर मे निर्माण कराया गया था। कल्हण ने अन्तिम बार इसका उल्लेख ८ २४३० मे किया है। वसिष्ठाश्रम जो बूथेसर अर्थात् भूतेश्वर के समीप था कह कर स्पष्ट कर देता है, कि नन्दिक्षेत्र मे जो ज्येष्ठेश है, वही यहाँ वर्णित ज्येष्ठेश है।

इस श्लोक से एक बात और स्पष्ट हो जाती है। उक्त ज्येष्ठेश का लिंग स्वयभू था। वह अनगढ था। इस प्रकार के अनगढ शिलाखण्ड की पूजा आज भी सारिका पर्वत, श्रीनगर तथा सुरेश्वरी स्थान मे होती है।

ज्येष्ठेश का मन्दिर भूतेश्वर स्थित मन्दिरो के दो समूहो मे पश्चिमी मन्दिर समूह मे था।

स्वयभू लिंगो की पूजा भारतवर्ष के अनेक तीर्थो मे होती है। मैंने राजस्थान मे अनेक स्थानो पर चाहे

वे नगर हो अथवा ग्राम अनगढ शिलाखण्ड की पूजा भैरव, रुद्रादि नामकरण देकर किये जाते देखा है।

शिव लिग के प्राप्त करने की एक पुरानी प्रथा है। उन्हे गढना अच्छा नही माना जाता। शिवलिंग प्रायः नर्वदा नदी से प्राप्त किये जाते थे। उन्हे नर्वदेश्वर कहा जाता था। ब्राह्मण किंवा पुरोहित अथवा इस कार्य के लिये नियुक्त व्यक्ति स्नानादि कर शुद्ध होकर नर्वदा को धारा मे डुबकी लगाते थे। नदी तल में जो लिग मिल जाता था उसे लेकर निकलते थे। उसी लिंग की स्थापना गढे अर्घो मे कर दी जाती थी। नर्वदा तल मे सभी पत्थर के ढोके प्राय शिव लिंग आकार के गोले तथा लम्बे आकार के होते है। आज कल इस प्रकार के शिव लिंग मूर्तिकार गढने लगे है। पालिश करते हैं। तत्पश्चात् स्थापनार्थ बेचते है।

यहाँ ज्येष्ठेश शब्द की व्याख्या मे विस्तार से जाना अप्रासगिक होगा। ज्येष्ठेश नाम क्यो दिया गया? किसी व्यक्ति के नाम पर, ऋषि के नाम पर अथवा किसी पुरानी कथा के आधार पर यह नामकरण किया गया। इसका सम्बन्ध धार्मिक अनुसधान से है। ऐतिहासिक दृष्टि से इतना वर्णन अलम् प्रतीत होता है।

रुद्र वास्तव मे वैदिक देवता है। वैदिक साहित्य मे नैसर्गिक एवं व्याधि जनित उत्पात निर्माण कारक देवता की सज्ञा रुद्र नाम से दी गयी है।

शिव की सज्ञा उसी देवता के समनकारी रूप को दी गई है। अतएव एक ही देवता के रौद्र एवं शान्त रूप का नाम रुद्र एव शिव है।

पाश्चात्य दैव विज्ञान मे सृष्टि सचालक एवं संहारक एक ही देव को मानकर उसकी द्विविध रूप मे उपासना की जाती है। भारती दैव विज्ञान संचालक एवं संहारक दो शक्तियो किंवा दैव को मानता है। सचालक शक्ति को विष्णु तथा सृष्टि संहारक शक्ति को रुद्र को सज्ञा दी गयी है।

ऋग्वेद से गृह्यसूत्रो के काल तक रुद्र देवता विषयक कल्पनाओ की उत्क्रान्ति पर दृष्टिपात किया जाय तो प्रतीत होता है। ऋग्वेद अथवा वैदिक साहित्य में रुद्र निसर्ग प्रकोप का देव था।

वही रुद्र उत्तर कालीन साहित्य मे पशु, वन, पर्वत, नदी, स्मशानादि समस्त सृष्टि व्यापक एक महान् शक्ति सम्पन्न देवता के रूप मे मान्यता प्राप्त कर लिया है।

ऋग्वेद मे रुद्र के स्वरूप का वर्णन किया गया है। उनका वर्ण भूरा है। सूर्य तुल्य जाज्वल्यमान एवं सुवर्ण समान प्रदीप्त है। (ऋ० १:४३, २:३३) पूषन तुल्य जटाधारी है।

सहिताओ में वैदिक रुद्र का रूप बदलता दिखाई देता है। उन्हे सहस्राक्ष. नील वर्ण ग्रीवा, एव केश युक्त बताया गया है (वा० स० १६, ७, अथर्ववेद २·२२) उनका उदर किवा पेट कृष्ण एव वर्ण रक्त कहा गया है। (अथर्व वेद १५: १) उन्हे चर्मधारी भी कहा गया है। (वा० स १६-२–४,५१) कालान्तर मे यह चर्मधारी रूप बाघाम्बर एवं मृग चर्मधारी रूप में परिणत हो गया।

महाभारत एवं पुराणो मे रुद्र के स्वरूप की अनेक कल्पनाएँ की गयी हैं। पंचमुख की कल्पना विशेष प्रचलित है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर एव ऊर्ध्व दिशा वाला मुख सौम्य तथा दक्षिण दिशावर्ती मुख रौद्र दिखाया गया है। दक्षिण दिशा काल की दिशा कही गयी है। अतएव रौद्र रूप प्रदर्शित करना इसी काल किंवा संहार का प्रतीक है। (म० अनु० १४० ४६)

ग्रीवा नील होने का महाभारत में ही दो वर्णन मिलता है। महाभारत अनुशासन पर्व (१४१ ८) इन्द्र के प्रहार के कारण ग्रीवा नील होना कहता है। महाभारत शान्ति पर्व (३४२.१३) दूसरा कारण देता है। समुद्र मंथन से प्राप्त हलाहल विष पान करने के कारण शिव की ग्रीवा नीली हो गयी थी। नाम नीलकंठ पड गया था। उन्हे वही पर श्रीकंठ कहा भी गया है।

पुराणो मे रुद्र को चतुमुख (विष्णु धर्मः ३:४४–४८,५५·१) अर्ध्वनारीश्वर, नटेश्वर (मत्स्य. २६०) एवं त्रिनेत्र कहा गया है।

रुद्र का निवास स्थान वैदिक साहित्य के अनुसार पर्वतों और मुख्यतया मूजवत् पर्वत है (वा० ग० २६ २–४; ३ ६१,) महाभारत रुद्र का आद्य निवास स्थान मेरु पर्वत मानता है। रुद्र का इसलिए एक नाम मेरुधामा पड गया है। (म० अनु० १७ ९१) आश्वमेधिक पर्व महाभारत (८ १) वायु पुराण (४७ १९) एव सौप्तिक पर्व (१७ २६) के अनुसार रुद्र का निवासस्थान मुजवान किंवा मूजवत पर्वत है। वह पर्वत कैलास के उस पार था। महाभारत भीष्म पर्व (७ ३१) मे इनका निवास स्थान कैलास एव हिमालय पर्वत बताया गया है।

महाभारत अनुशासन पर्व (१४१ १७–१९) के अनुसार रुद्र का निवास स्थान काशी की स्मशान भूमि है। सवर्त को शव रूप शिव का दर्शन काशी मे हुआ था।

सभी का समन्वय करने पर निष्कर्ष निकलता है कि रुद्र का स्थान हिमालय के एकान्त मे, तपस्या योग्य वनश्री के मध्य होना चाहिये। भूतेश्वर का स्थान इस दृष्टि से आदर्श है। वहाँ ज्येष्ठ रुद्र की स्थापना की कल्पना सराहना योग्य है।

दक्ष प्रजापति ने रुद्र को नन्दिकेश्वर नामक वृषभ वाहन के लिये दिया था। उनकी ध्वजा पर वृषभ का चिह्न था। अतएव नाम वृषभध्वज पड गया। भूतेश्वर स्थान नन्दिक्षेत्र के अन्तर्गत है। इनका आयुध, विद्युत शर है। वेद मे इनका शस्त्र धनुष वाण एव वज्र कहा गया है। ऋ० २ ३३ ३, १०,५४२ ११,१० १२६ ६)

यजुर्वेद के शतरुद्रीय अध्याय मे रुद्र का स्वभाव चित्रण अधिक विस्तार के साथ किया गया है। (तै० स० ४.५ १, वा० स० १६) इन्हे 'रुद्रतनु' अर्थात् रुद्रस्वरूप और 'शिवतनु' अर्थात् शिव स्वरूप कहा गया है।

या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया जो मृड जीवसे ॥

अथर्ववेद मे सप्त रुद्रो यथा (१) ईशान, (२)भव, (३) शर्व (४) पशुपति (५) उग्र (६) रुद्र एव (७) महादेव का वर्णन है। पुराणो मे अष्ट रुद्रो का उल्लेख है। यथा–(१) रुद्र (२) भव (३) शर्व (शिव) (४) पशुपति (५) भीम (६) ईशान (७) उग्र एव (८) महादेव। महाभारत मे एकादश रुद्रो का उल्लेख है। यथा (१) मृगव्याध (२) शर्व (३) निर्ऋति (४)अजैकपाद (५) अहिर्बुध्न्य, (६) पिनाकिन् (७) दहन (८) ईश्वर (९) कपालिन् (१०) स्थाणु एव (११) भव (म० आदि ५० १०३)

स्कन्द पुराण मे (१) भूतेश, (२) नील रुद्र (३) वृषवाहन (४) त्र्यंबक (५) महाकाल (६) भैरव (७) मृत्यु जय (८ कामेश एव (९) योगेश रुद्रो का नाम दिया गया है। (स्कन्द पु० ७ १ ८७) इस पुराण की मान्यता है। कृतयुग मे अष्ट रुद्र थे। कलियुग मे ग्यारह रुद्रो का अवतार हुआ था। भागवत पुराण (२ १३ ७–१८) मे (१) मन्यु (२) मनु (३) महिनस् (मोम) (४) महत् (५) शिव (६) ऋतध्वज (७) उग्ररेतस् (८) भव (९) काल (१०) वामदेव (११) धृतव्रत का नाम दिया गया है।

स्कन्द पुराण में 'भूतेश' को एक रुद्र माना गया है। भूतेश्वर स्थान 'भूतेश' का मन्दिर था। स्थान का नाम भी भूतेश्वर था। अतएव यह निश्चित हो जाता है कि स्थान रुद्र से सम्बन्धित था। ज्येष्ठ रुद्र का नाम उक्त मान्य तालिकाओं में किसी में नहीं मिलता।

ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्रन्थो मे जो रुद्र था वही उपनिषदो में शिव का रूप ले लिया इस प्रकार रुद्र को परम शुद्ध आध्यात्मिक रूप प्राप्त हो गया। उनकी पूजा मद्य मास से नही बल्कि फल-पुष्पादि द्वारा होने लगी। उनका रूप अथर्व वेद वर्णित सातवे रुद्र उच्च-लोक के अधिपति 'महादेव' तुल्य हो गया। इसीको महाभारत अनुशासन पर्व (१६१ ३) बडी उत्तमता से प्रकट करता है।

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः॥

[शिव की घोर एव शिवा नामकी दो मूर्तियाँ है। उनमें घोरा अग्नि रूप है एवं शिवा परम गुह्य अध्यात्म स्वरूप महेश्वर है]

रुद्र शिव की उपासना भारत में अत्यन्त प्राचीन है। उपासना का काल विभाग दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम काल में शिव की प्रतिकृति की उपासना की जाती थी। द्वितीय काल में शिवलिंगोपासना आरम्भ हो गयी।

भूतेश एव ज्येष्ठ रुद्र इसी द्वितीय काल विभाग मे आते है। उनमे शिवलिंग की स्थापना की गयी थी। ज्येष्ठ रुद्र का लिंग स्वयभू था।

ऋग्वेद (७ २१ ५, १०।९९ ३) मे शिश्नदेव की उपासना का उल्लेख अनार्य लोगो के सन्दर्भ में किया गया है। प्राचीन वैदिक वाङ्मय मे नही मिलता। पतजलि के महाभाष्य (३.९९) मे शिव, स्कंद, विशाख, की स्वर्णादि की मूल्यवान प्रतिकृतियो की पूजा के स्पष्ट निर्देश हैं। वेम कद फिसस की मुद्राओ पर शिव की त्रिशूलधारी एवं शिव के प्रतीक स्वरूप शिवलिंग नही अपितु नन्दिन् उत्कीर्ण किया गया है।

श्वेताश्वर उपनिषद् (४,११,५ २) मे सर्व प्रथम शिवलिंगोपासना का निर्देश मिलता है। 'ईशान रुद्र' को समस्त योनियो का अधिपति कहा गया है। किन्तु यहाँ भी शिवलिंग को शिव का प्रतीक होने का स्पष्ट निर्देश नही है।

महाभारत में उपमन्यु के आख्यान मे सर्व प्रथम शिवलिंगोपासना का स्पष्ट रूप मे निर्देश प्राप्त होता है।

मोहे जो दडो एव हडप्पा के उत्खनन मे शिव रूप से मिलती मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। उनका काल ईशा के ३००० वर्ष पूर्व अर्थात् ४९६८ वर्ष है। यही काल कल्हण तथा नीलमत पुराण के अनुसार महाभारत काल था। यहाँ के प्राप्त देवताओ को मूर्तियाँ महाभारत वर्णित 'त्रिशीर्ष' 'वित्रस्त्र' 'ऊर्ध्वलिंग' 'योगाध्यक्ष' स्वरूप से मिलती है। (म. अनु. १४. १६२, १६५, ३२८,१७ ४६, ७७.९९) वहाँ से प्राप्त मूर्तियो के वाम हस्त में व्याघ्र एवं हस्ती है। दक्षिण हस्त मे वृषभ एव गण्डक है। वह चित्र भी महाभारत अनुशासन पर्व (१४ ३१३, १७,४८,६१,८५,९१) वर्णित 'पशुपति' 'शार्दूल रूप' 'व्याल रूप' 'मृग बाण रूप, 'नागचर्मोत्तरच्छद' 'व्याघ्राजिन' 'महिषघ्न' 'गजहा' एव 'मण्डलिन्' से मिलता है।

महाभारत मे शिव को सर्वत्र वृषभवाहन कहा गया है। हिटाइट लोगो के तेशब देवता से शिव का साम्य मिलता है। बेबिलोन मे प्राप्त अनेक शिल्पो एवं अवशेषो मे तेशव की प्रतिमाएँ मिली है। उनमे तेशव को वृषभवाहन एवं त्रिशूलधारी दिखाया गया है। तेशव को पत्नी का नाम माँ था। शिव भी अम्बिका जिन्हे पार्वती एव दुर्गा कहा गया है उनके पति है। तेशब को पत्नी सिंहारूढ है। दुर्गा भी सिंहवाहिनी है।

सुसा मे प्राप्त तेशव की पत्नी का चित्रण मधुमक्षिका के साथ किया गया है। यह मार्कण्डेय पुराण वर्णित भ्रामरी देवी से साम्य रखता है। कल्हण ने भ्रामरी वासिनी देवी का वर्णन राजतरंगिणी मे (३ ३९४, ४२३) किया है।

तेशव के समान रुद्र के हाथ मे विद्युत, धनुष, त्रिशूल, दण्ड, परशु, पट्टिश आदि अस्त्र दिखाये गये है। (ऋ. २ ३३, ३, म. अनु १४ २८८ २८९, १७ ४३, ४४:९९)

'शत्रुजय सूक्त' शुक्लयजुर्वेद मे रुद्र को लक्ष्य कर लिखा गया है। उसका विचार सुमेरियन देवता 'नेर्गल' से मिलता है। मत है कि भारतीय रुद्र शिव का सम्बन्ध किंवा साम्य अनातेगलिया, मेसोपोटामिया, एव सिन्धुघाटी की सभ्यता से अवश्य रखता है। (राय चौधरी स्टडीज इन इण्डियन अण्टिक्विटीज पृष्ठ २००-२०४)

नि सन्देह रुद्र सर्व प्रथम वैदिक देवता थे। कालान्तर मे वे व्रात्य, निषाद, वन्यादि एव अनार्य

ग्रामे ग्रामे स्थितैरश्वैर्धावनं प्रतिपिद्धवान् ।
स्वेनावहत्तं सततं नागः कोऽपि सुहृत्तया ॥ ११४ ॥

११४. एक सदय हृदय नाग ग्राम ग्राम[1] पडावो पर प.रवर्तनार्थ स्थित अश्वो की लम्बी कष्टप्रद यात्रा[2] से राजा को विरत कर स्वयं उन्हे ज्येष्ठेश से विजयेश्वर निरतर पहुँचा दिया करता था ।

स रुद्धवसुधान्म्लेच्छान्निर्वास्याखर्वविक्रमः ।
जिगाय जैत्रयात्राभिर्महीमर्णवमेखलाम् ॥ ११५ ॥

११५. उस विक्रमशाली राजा ने म्लेच्छो[1] से आक्रात वसुधा का उद्धार कर अपनी विजय यात्राओ द्वारा समुद्र मेखला धारिणी मही का जय किया ।

लोगो के देवता वन गये । प्राचीन वैदिक आर्यों द्वारा प्रस्थापित कल्पनाएँ लुप्त हो गयी । अन्तर पडता गया । रुद्र भूतपति, किंवा भूतेश, सर्पधारी, स्मशान-निवासी देव में परिणत हो गये । प्रतिकृति की पुरातन उपासना की परपरा नष्ट हो गयी । उसका स्थान शिव लिग की उपासना करने वाली नवीन परम्पराओ ने ले लिया ।

ज्येष्ठेश किवा ज्येष्ठ रुद्र नामकरण इसलिये किया गया कि सप्त, अष्ट, एकादश रुद्रो मे सबसे ज्येष्ठ रुद्र की उपासना गाह्य की गयी । अतएव भूतेश रुद्र के समान ज्येष्ठेश रुद्र नामकरण कर दिया गया ।

पाठभेद

श्लोक सरयातुं ११४ में 'हत्त, का 'ह' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

११४ (१) **ग्राम ग्राम** अश्व से यदि ज्येष्ठेश से विजयेश तक की यात्रा की जाय तो चार दिन पडाव डालकर पहुँचा जा सकता है। कल्हण यहाँ स्पष्ट कहता है। मार्ग मे पडने वाले ग्रामो मे अश्व नियुक्त रहते थे । एक ही अश्व द्वारा पूरी यात्रा नही समाप्त हो सकती थी । कुछ दूरो पर नवीन अश्व तैयार रहते थे। शिथिल अश्व को त्याग कर नवीन अश्व से यात्रा की जाती थी। पडाव पर अश्व रखने और बदलने की प्रथा वहुत पुरानी है । उन्नीसवी शताव्दी के प्रारम्भ तक रेल तथा मोटर के आने के पूर्व यूरोप, एशिया तथा सभ्य जगत् में यह प्रथा प्रचलित थी । राजकीय डाक तथा सवाद ले जाने के लिये पडाव निश्चित रहते थे। वहाँ अश्व रखे जाते थे। ठहरने किंवा विश्राम का प्रवन्ध रहता था। कश्मीर मे यह प्रथा आज से तेईस सौ वर्ष पूर्व ही प्रचलित प्रतीत होती है ।

(२) **यात्रा** श्री स्तीन ने इस श्लोक की टिप्पणी में ठीक ही लिखा है । कल्हण ने यहाँ ज्येष्ठेश से विजयेश्वर तक की लम्वी कष्टप्रद यात्रा का वर्णन किया है। यह कम से कम अश्वो द्वारा चार दिन का पडाव कर समाप्त की जा सकती थी। शीघ्र पहुँचने की दृष्टि से और यह किस प्रकार एक ही दिन मे सम्भव हो सकता था, कल्हण ने नाग की कथा जोड दी है। प्रतिदिन यह कार्य राजा के लिए किस प्रकार सम्भव था इसका स्पष्टीकरण नाग को राजा के वाहन रूप में प्रस्तुत कर कल्हण करता है ।

ज्येष्ठेश से विजयेश की दूरी पक्षी उडान या नभ से सीधे ४५ मिनट की होती है । यदि यह यात्रा अश्व से की जाय तो सचमुच चार दिन लग जायगा। मार्ग अत्यन्त लम्वा, पहाडियो का चक्कर काटता, ऊबड-खावड और कष्टप्रद था। पहाडियो के कारण अश्व की गति तेज भी नही हो सकती थी । भूतेश्वर से कनक-वाहिनी नदी की घाटी पकडकर चलने से सिन्धु नदी पहुँचने तक मार्ग है । अतएव नाग को यहाँ पर लाया गया है कि उसपर सवारी कर राजा अविलम्ब नित्य पहुँच जाता

था। अश्व की सवारी से किसी प्रकार एक दिन में ज्येष्ठेश से विजयेश्वर नहीं पहुँचा जा सकता। इस लिए इस असंगति दोष को दूर करने के लिये कल्हण ने नाग का कथानक यहाँ जोड़ा है। वसिष्ठाश्रम, बारबल, चीरमोचन, तत्स्थात् मयग्राम, कुम्भाश्रम, हिरण्यपुरा, भूतेश्वरी, ईशेश्वर, भीमा देवी, गोपाद्रि होते हुए श्रीनगर आता है। वहाँ से पुराधिष्ठान, ज्यवन, सिंहपुर समरस्वामी पद्मपुर, ललितपुर गोपालपुर, अवन्तीपुर, वर्तिका, होते वितस्ता पार कर यदि चला जाय तो गम्भीरा संगम होते चक्रधर से विजयेश्वर पहुँचता है। यह मार्ग त्रिकोण बनाता भूतेश्वर से विजयेश्वर तक बड़ा लम्बा बन जाता है।

श्रीनगर से विजयेश्वर ३१ मिल पड़ता है। प्राचीन मार्ग का अनुसरण किया जाता तो वह लगभग साँ मिल से उस समय के चक्करदार मार्ग के कारण कम न होगा। आजकल सुगम राज पथ एवं सभी स्थानों में पहुँचने के लिए सड़क बन जाने के कारण मार्ग की दूरी कम हो गयी है और पथ भी सरल हो गये हैं।

११६ (१) म्लेच्छ : यहाँ म्लेच्छ से तात्पर्य यूनानी आक्रामकों से है। म्लेच्छ शब्द की विस्तृत व्याख्या परिशिष्ट 'म्लेच्छ' में की गयी है द्रष्टव्य है।

कश्मीर के सीमान्त पर अर्थात् सिन्धु के पश्चिमी तट अफगानिस्तान, तथा कश्मीर के उत्तर एवं पश्चिम यूनानियों का शासन अलक्सुन्दर अर्थात् सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् हो गया था। सम्राट् अलक्सुन्दर की मृत्यु के पश्चात् यूनानी साम्राज्य अनेक क्षत्रपों में विभाजित हो गया था। निस्सन्देह अशोक का प्रभाव क्षेत्र किंवा राज्य मानसेहरा, तक्षशिला, शहबाजगढ़ी, लम्पक, कन्दहार तक फैल चुका था। अन्यथा वहाँ अशोक अपने स्तम्भों का निर्माण और धर्म प्रचार कराने में समर्थ नहीं हो सकता था।

ईसा पूर्व २०६ ई० में यूनानी क्षत्रप, शासक किंवा राजा अन्तियोकस तृतीय ने बल्ख पर आक्रमण किया। जीत लिया। बिखरे राज्य को पुनः संघटित करने का प्रयास किया। उसने इसी वर्ष भारत की सीमा का अतिक्रमण किया। वह काबुल उपत्यका लाँघता भारत भूमि पर सेना सहित आ पहुँचा। उस समय पाटलीपुत्र में मौर्य राजा शालीशुक था। उसे सुभगसेन भी कहा जाता है। अन्तियोकस ने शालीशुक से मित्रता कर ली थी।

अलक्सुन्दर के आक्रमण के समय तक्षशिला एवं दर्वाभिसार के राजा आम्भी ने अपनी निष्ठा अलक्सुन्दर के प्रति प्रकट की थी। कश्मीर के राजा ने भी अपने भाई के साथ चालीस हाथी अलक्सुन्दर के भेंट निमित्त भेजे थे।

अन्तियोकस के अभियान का उद्देश्य मालूम होता है, अलक्सुन्दर द्वारा विजित भूक्षेत्र पर पुनः अधिकार किंवा प्रभाव स्थापित करना था। सम्भव है। इसी दृष्टि से कश्मीर के राजा ने भी हाथी भेज कर अपनी निष्ठा प्रकट की थी। कश्मीर में अशोक का पुत्र जलौक शासन कर रहा था। कश्मीर भी अशोक के राज्य का अंश था। एतदर्थ अन्तियोकस ने आक्रमण किया होगा।

कल्हण स्पष्ट कहता है कि म्लेच्छों के संहार निमित्त तपस्या कर अशोक ने जलौक पुत्ररत्न भगवान् शंकर की कृपा से प्राप्त किया था। उसके जन्म ग्रहण का प्रयोजन म्लेच्छों का संहार करना था।

कल्हण ने इसी बात को दृष्टि में रख कर म्लेच्छ संहार की बात अपनी वर्णन संगति कायम रखने के लिये की है।

अशोक का अवसान ईसा पूर्व २३२ वर्ष में हुआ था। यह घटना अशोक की मृत्यु के २६ वर्ष पश्चात् की है। भारतीय इतिहास की गणनानुसार इस समय अशोक का प्रपौत्र शालीशुक पाटलीपुत्र का राजा था। अशोक का पुत्र जलौक कश्मीर का राजा था।

मालूम होता है। जलौक न तो कभी पाटलीपुत्र गया और न उसका कोई वंशधर पाटलीपुत्र का राजा हुआ था। उसने अपने पिता के सिंहासन पर बैठने का भी प्रयास नहीं किया। वह कश्मीर से ही सन्तुष्ट था। जलौक का अशोक के पश्चात् २६ वर्ष तक राज्य करते जीवित रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं मालूम पड़ती।

ते यत्रोज्झटितास्तेन म्लेच्छाः छादितमण्डलाः ।
स्थानमुज्झटडिम्बं तज्जनैरद्यापि गद्यते ॥ ११६ ॥

११६. म्लेच्छाच्छादित मण्डल को जिस स्थान पर म्लेच्छो को उज्झटित कर राजा ने मुक्त किया था उसे लोग उज्झटडिम्ब[1] कहते थे और आज भी कहते हैं ।

जित्वोर्वी कान्यकुब्जाद्यां तत्रत्य स न्यवेशयत् ।
चातुर्वर्ण्यं निजे देशे धर्म्याश्च व्यवहारिणः ॥ ११७ ॥

११७. कान्यकुब्ज[1] तथा अन्य भूमि जीतकर राजा ने वहाँ के चातुर्वर्ण्य[2] निवासियो और धर्म तथा व्यवहार निपुणो को अपने देश मे लाकर बसाया ।

कहा जाता है । ईसा पूर्व २०६ वर्ष मे कश्मीर तथा कलिगादि राज्य स्वतन्त्र हो गये थे । कश्मीर पर अशोक के विजय की बात कही नही मिलती । किन्तु कश्मीर के स्वतन्त्र राज्य होने का प्रमाण अशोक के पश्चात् मिलता है । कश्मीर अपनी स्वतत्र स्थिति कायम रखने के लिये पाटलीपुत्र का मुखापेक्षी नही रहता था । अतएव म्लेच्छो के आतक का सामना कश्मीरी सेना ने किया । यूनानी अर्थात् म्लेच्छो से कश्मीरी सेना ने लोहा लिया । म्लेच्छ पराजित हुए । म्लेच्छाकीर्ण भूमि पुन. म्लेच्छ विहीन हो गयी । दूसरी तरफ मौर्य साम्राज्य दुर्बल होता गया । अशोक जैसी क्षमता उसके उत्तराधिकारियो मे नही रह गयी थी । शालीशुक म्लेच्छ सेना का सामना करने मे असमर्थ था । यूनानियो से सन्धि कर ली ।

कश्मीर के राजा जलौक ने म्लेच्छो का उच्छिन्न किया । राज्य का विस्तार किया । उसने विजय यात्रा किस ओर की थी । किन भूखण्डो पर विजय प्राप्त किया था । इस पर कल्हण कुछ प्रकाश नही डालता ।

पाठभेद

श्लोकसख्या ११६ मे 'ते' का 'स', 'यत्रो' का 'तत्रो', 'ज्झटिता' का 'ज्जूटित', मुज्भट' का 'मुजुट' मुजूट', 'मुत्कुट' 'मुज्जूट' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

११६ (१) उज्झटडिम्ब कश्मीर मे डिम्ब शब्द स्थानीय नामो के अन्त मे 'मूर' अथवा 'योग' के समान जोडते है । उज्भटित अर्थात् जिस स्थान पर म्लेच्छो को राजा जलौक ने परास्त किया था उसका इतना महत्त्व काश्मीरी इतिहास मे हो गया था कि उसके नामपर एक स्थान का नाम पड गया । काश्मीरियो ने यूनानियो को पराजित किया था । वह उनके लिये गौरव तथा महत्त्व की बात थी । यह इस उल्लेख से और स्पष्ट होता है कि कल्हण के समय अर्थात् लगभग १३५४ वर्ष युद्ध के पश्चात् तक उज्झटडिम्ब स्थान तथा नाम प्रचलित था । कल्हण ने वहाँ से प्राप्त सामग्री एव किसी कथानक के आधार पर म्लेच्छो के उच्छिन्न करने का वर्णन लिखा है ।

इस समय वह स्थान कहाँ पर है । पता नही चलता । परन्तु इसे काश्मीर के दक्षिण पश्चिम किंवा पश्चिम होना चाहिए ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ११७ मे 'कान्यकुब्ज' का पाठभेद 'कन्यकु' तथा 'सन्य' का 'सन्य' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

११७ (१) कान्यकुब्ज : यह स्थान वर्तमान कन्नौज है । इत्र, गुलावजल, सुगन्धित तेलके लिये आजकल प्रसिद्ध है । उत्तर प्रदेश मे फरुखाबाद जिला मे एक नगर है । गगा के वामतट पर स्थित है । वाल्मीकि रामायण मे कन्नौज के नामकरण का उल्लेख है ।

वाल्मीकीय रामायण मे नगर के नामकरण की एक कथा मिलती है। चन्द्रवंशी राजा कुशनाभ ने महोदय नगर की स्थापना की थी। राजा की एक सौ कन्याएँ वायु के शाप से कुब्जा हो गयी। उस समय इस नगर का नाम 'कन्य-कुब्ज' पडा।

प्रतीत होता है कि सबसे प्राचीन नाम महोदय नगर था। तत्पश्चात् कान्यकुब्ज पडा। अनन्तर गाधिपुर कुशस्थल कुशिक आदि नाम पडता गया। कुसुमपर भी इसका नाम पड गया। जन्हु के नाम पर गंगा की धारा का नाम जान्हवी पड़ा था।

महाभारत के अनुसार वह राजा गाधि की राज-धानी थी। कान्यकुब्ज राज्य एवं उसके जनपद दोनो का नाम था। (म० आदि १७४ ३, वन० ११५ २०) विश्वामित्र ने कान्यकुब्ज मे इन्द्र के साथ सोमपान किया था। (म० वन० ८७:१७) गाधिराज कुमारी सत्यवती को अपनी पत्नी बनाने के लिये ऋची ऋषि ने अपना विचार प्रकट किया था। (म० उ० ११९.४)

स्कन्द पुराण मे देशो की तालिका मे कान्यकुब्ज का स्थान छठवाँ है। इसमे ३६ लाख ग्राम थे।

कान्यकुब्ज को प्राचीनकाल मे गाधिपुर, कुश-स्थल तथा महोदय नगर कहते थे। भागवत पुराण मे अजामिल को वही का निवासी बताया गया है। विश्वामित्र की वह जन्मभूमि थी।

बुद्ध काल से गुप्त काल के अत तक स्वतंत्र जनपद के रूप मे कान्यकुब्ज का नाम प्राय नही मिलता। कालान्तर मे यह मौखरी राज्य का केन्द्र हो गया। मौखरी राज्य का सस्थापक हरिवर्मा था। मौखरी वंश के प्रसिद्ध राजा 'ईशानवर्मा' ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। थानेश्वर के शासक हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा गृहवर्मा से हुआ था। मालवा के शासक देवगुप्त ने गृहवर्मा को मारकर राज्यश्री को बन्दी बना लिया। कान्यकुब्ज के मन्त्रियो ने राज्य-हर्षवर्धन को दे दिया।

महाराजा हर्षवर्धन के समय कान्यकुब्ज की आशातीत उन्नति हुई। वह राज्य से साम्राज्य की राजधानी बन गया। महाकवि बाण ने 'हर्ष चरित' मे कान्यकुब्ज का जीता जागता चित्रण किया है।

हुएनत्साग ने कान्यकुब्ज की यात्रा की थी। उसने यहाँ की भूरि भूरि प्रशसा की है। बौद्ध साहित्य मे कान्यकुब्ज का 'कन्यकुब्ज' जो संस्कृत कान्यकुब्ज का अपभ्रंश है, नाम मिलता है। हुएनत्साग ने स्पष्ट उल्लेख किया है। यहाँ पर बौद्ध विहार थे। उसमे दस सहस्र भिक्षु विहार करते थे। हुएनत्साग के अनुसार कान्यकुब्ज का विस्तार ४००० ली था। उसका कथन है। कान्य-कुब्ज ने संस्कृति, सभ्यता, युद्ध एवं शान्ति कालीन कला मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी।

हर्ष के पश्चात् यशोवर्मा राजा हुआ। तत्पश्चात् क्रमशः आयुध, प्रतीहार तथा गाहडवाल राजवंशो का कान्यकुब्ज पर अधिकार हुआ। प्रतिहार वश मे नागभट, मिहिरभोज, महेन्द्रपाल आदि प्रसिद्ध राजा हुए है। गाहडवाल वंश मे गोविन्दचन्द्रादि के समय कन्नौज की विशेष उन्नति हुई थी। निस्सन्देह छठवी शताब्दी से १२वी शताब्दी तक साहित्य, कला, धर्मादि का विशेष विकास कन्नोज मे हुआ था। 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' के लेखक बाणभट्ट के अतिरिक्त यशोवर्मा के राजकवि वाक्पति एव भवभूति थे। प्रतीहार काल मे राजशेखर, गाहडवाल काल में लक्ष्मीधर एव श्रीहर्ष सस्कृत के उद्भट साहित्यकार एव कवि हुए थे। प्रतीहरो के समय कन्नौज स्थापत्य एवं मूर्तिकला में प्रसिद्ध हो गया था। छठवी शताब्दी में श्वेत हूणो ने कन्नौज पर आक्रमण किया था। तालिमी ने इसका नाम 'कनोगिजा' दिया है।

फिरदौसी ने शाहनामा मे कन्नौज का प्रशमनीय भाषा मे उल्लेख किया है। उसका कथन है कि

पुराकालीन ईरान के वीर योद्धागण, कन्नौज निर्मित शिरस्त्राण, जिरहबख्तर, कृपाण, छूरा, इत्यादि का प्रयोग कन्नौज से मँगाकर करते थे।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का कन्नौज मुख्य स्थान रहा है। प्राचीन काल से ही कान्यकुब्ज के ब्राह्मण, शास्त्र, विद्या, धर्म, न्याय, पाण्डित्य, व्यवहार तथा आचार मे श्रेष्ठ माने जाते थे। यहाँ से ब्राह्मण बगाल, गुजरात तथा कश्मीर गये थे।

कान्यकुब्ज के गौरवशाली इतिहास का दु खान्त पटाक्षेप दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहान तथा कन्नौज के राजा जयचन्द्र के सघर्ष में होता है। शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी के कन्नौज विजय के समय सन् ११९३ ई० मे पूर्णतया पटाक्षेप हो जाता है। जिस श्री के कारण सहस्रो वर्षो तक अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में कान्यकुब्ज उदीयमान नक्षत्र तुल्य दिव्य प्रकाश पुज फैलाता रहा वह श्री सर्वदा के लिये मुसलिम वाहिनी की रण हुकार मे कान्यकुब्ज को नमस्कार कर चली गयी।

(२) वर्णाश्रम धर्म कल्हण ने धार्मिक क्रान्ति की ओर यहाँ सकेत किया है। अशोक का पुत्र होने पर भी जलौक अशोक के वसीयत एव मन्तव्यानुसार कार्य नही कर सका। परिस्थितियो ने उसे बाध्य कर दिया था। वह विवश होकर वर्णाश्रम धर्म के प्रचार की ओर अग्रसर हुआ। भारतवर्ष ने ५० वर्ष के अन्दर ही दो धार्मिक क्रान्तियो का दर्शन किया। पहली क्रान्ति का जनक अशोक और दूसरी क्रान्ति का जनक जलौक तथा पुष्यमित्र हुआ था।

जलौक दो कारणो से इस क्रान्ति का जनक हुआ था। पहला कारण कश्मीर मण्डल मे बौद्धो का प्राबल्य होना था। उसे वह कम करना चाहता था। उनका प्रभाव घटाने का इच्छुक था। अतएव उनके कार्यों को निष्फल करने के लिये, वर्णाश्रम धर्म का आश्रय लिया। सामाजिक शक्ति एव सन्तुलन कायम रखने के लिये वर्णाश्रम धर्मानुयायियो को कश्मीर मे बसाया। ताकि बौद्धमतानुयायी उसके राजकीय कार्यो मे अवरोध और राज्य का बहिष्कार कर राज्यतन्त्र को पगु न बना दें। समाज का कार्य समुचित रूप से चलते रहने के लिये वर्णाश्रम धर्मानुयायी जनता को भी कश्मीर मण्डल में स्थान दिया। समाज तथा जनता का कार्य ठप न हो जाय इसके लिये जागरूक साथ ही साथ धार्मिक विद्वानो तथा न्यायकर्ताओ अर्थात् व्यवहार निपुण पण्डितो को कश्मीर मे बसाया। न्याय कार्य बौद्ध शासन पर आधारित न कर वर्णाश्रम व्यवहारशास्त्र पर आधारित किया गया।

राजा जलौक ने अपने पिता अशोक के विचार एवं नीति की विरोधी धारा चलायी। तथापि भारतीय परम्परा के अनुसार बौद्धो को परेशान अथवा ताडित नही किया। उसने बौद्ध धर्म तथा उसके अनुयायियो को यथावत् रहने देकर लुप्त होती वर्णाश्रम धर्मधारा को जारी रखने का प्रयास किया। कश्मीर मे बौद्ध एव सनातनी सम्प्रदाय एक दूसरे का खुलकर विरोध नही कर सके। पुराने सनातन किंवा वर्णाश्रम धर्म के साथ ही साथ बौद्ध धर्म की धारा अविच्छिन्न रूप से कश्मीर मण्डल मे प्रवाहित रही।

कान्यकुब्ज का पुन वर्णन कल्हण ने राजतरगिणी मे (४ १३५, १४५, ४७१, ५ १९६, ७ २३७, ८ २०५२ तथा २४७३) किया है।

जलौक के क्रान्तिकारी कदम उठाने का कारण था। सम्राट् अशोक ने कश्मीर मे बौद्ध धर्म का प्रचार किया। भेरी घोष के स्थान पर धर्म घोष किया। सम्राट् अशोक ने पुरातन धर्म की परम्परा, मान्यता एवं सामाजिक जीवन में आमूल परिवर्तन करना चाहा था। राजा जलौक को यह परिवर्तन रुचिकर नही लगा। पाटलीपुत्र मे बौद्धो का प्रभाव था। उसके भाई आदि पाटलीपुत्र के राजा थे। उसने कश्मीर की स्थिति एक स्वतन्त्र राज्य का बना ली थी। इस स्वातन्त्र्य भावना मार्ग मे कठोर बुद्ध शासन तथा राज्य पर उनका प्रभाव बाधक

हो सकता था। सम्भव है। उसे बौद्धो का सहयोग कश्मीर मे अपनी स्वतन्त्र स्थिति बनाये रखने मे न मिली होगी। अस्तु उसने बौद्ध प्रभाव के समान ही सनातनी प्रभाव को खडा कर देना चाहा।

पाटलीपुत्र की दुर्बल नीति एव सैनिक अव्यवस्था के कारण जलौक को सफलता अनायास मिलती गयी। अशोक के अहिंसक विचार के कारण, उसकी सेना निष्क्रिय हो गयी थी। सैनिक अभियानो के स्थान पर, मृगया के स्थान पर, विजय यात्रा के स्थान पर धार्मिक यात्रा को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा।

'अतिक्रत अंतर देवन प्रिय हरियत्र नभ नित्रमिथु। अत्र अगय अञति च एदिशनि अभिरमनि अभुवसु। सो देवनं पियो पियद्रशि रज दशवप सत निक्रमि संबोधि। तेनद धंमयत्र। अत्र इय होति ...।'

[बहुत समय व्यतीत हुआ देवताओ के प्रिय (राजा लोग) विहार यात्रा पर निकलते थे। इसमे मृगया तथा अन्य इसी प्रकार के आमोद प्रमोद होते थे। किन्तु देवाना प्रिय प्रियदर्शी राजा अपने अभिषेक के दसवें वर्ष सम्बोधि गये। इससे धर्म यात्रा (प्रारम्भ हुई) इसमे यह होता है ।'] (शहबाज गढी अष्टम अभिलेख)

जलौक पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश के समीप था। उसके सीमान्त पर यूनानी थे। उसे म्लेच्छ यूनानियो का उच्छेद करना था। अतएव अहिंसा का सिद्धान्त उसकी मदद नही दे सकता था।

अशोक के अभिलेखो से ही स्पष्ट है कि सीमान्त पर यवन आदि राज्य थे।—'अंतियोको योन राजा ये वा पि तस अंतियकस समीपं राजानो ... '

(गिरनार द्वितीय अभिलेख)

(यवन राजा अन्तियोक, उस अन्तियोक के समीप जो राजा है)

'...पोण कम्बोज गंधारानं, रिस्टिक पेतेणि का न ये वा पि अंञे आपराता .... ।'

(गिरनार पंचम अभिलेख)

[जो यवन कम्बोज गन्धार राष्ट्रिक प्रतिष्ठानिक (अथवा पैत्र मणिक) तथा अपरान्तो–पश्चिमी सीमा प्रान्तो मे।'

' ...सेवेसु च योन राज पर च तेन चत्वारो राजानो तुरमायो च अतेकिन च मगा च ... इध राज विस यम्हि योन कबो ' ।'

(गिरनार त्रयोदश अभिलेख)

[...और यहाँ सब सीमा प्रान्तो मे यवनराज और उसके परे चार राजे तुरमाय, अन्तेकिन, मग (और अलिकसुन्दर) ... यहाँ राज विषयो मे यवन कम्बोज ।']

वह सुसंघटित सेना, और दृढ जनता चाहता था। जो किसी भी विदेशी सत्ता का सामना करने योग्य उसे बना सके। उसने वर्णाश्रम धर्म मे क्षत्रिय अर्थात् शस्त्रधारी एक वर्ग पाया। वे किसी विहार मे निष्क्रिय होकर मुक्ति पाने की अपेक्षा शत्रुओ से संघर्ष करते हुए मृत्यु वरण मे अपनी मुक्ति की कल्पना करते थे। उनका जन्म जात कर्म आयुधजीवा होना था। इसका हल उसे वर्णाश्रम धर्म में मिला जहाँ क्षत्रियो का, जनता के लगभग चौथाई वर्ग का एकमात्र धार्मिक कार्य, देश के लिये शस्त्र उठाना था। उसके लिये जीवनोत्सर्ग करना था। उसमे गौरव अनुभव करना था।

अशोक धर्म घोप चाहता था। जलौक चाहता था भेरी घोप। धर्म घोप म्लेच्छो के आक्रमण को रोक नही सका। भेरीघोप उनसे जनता को मुक्त करने मे कम से कम सहायक अवश्य सिद्ध हुआ।

अशोक का धर्म घोप सम्प्रदायो मे एकता, समानता, भेदभाव हीनता, की बात करते हुए भी बौद्ध धर्म के प्रसार का साधन था। प्रचलित धार्मिक संस्कारो, पाखडो, सम्प्रदाय, उत्सवो को 'समाज' कहकर हितकर बात करने की चर्चा उठायी गयी थी। तत्कालीन 'मंगल संस्कारो' को फलहीन बता

कर उसके स्थानो पर महाफलदायक 'धर्म मगल' की वात चलायी गयी थी। अशोक की दृष्टि मे यह आवश्यक सुधार था। धर्म प्रचार था। परन्तु यह सुधार जनता हृदयगम न कर सकी। पश्चिमोत्तर सीमान्त पर उठते युद्ध के वादल, जलौक को दूसरे ढग पर विचार करने के लिये वाध्य कर दिये। अशोक का अभिलेख इस सम्बन्ध में स्पष्ट था।

'इय कप (८) ये हि एत के मगले शसयिके त (९) सिय वो त अठ निवटेयति सिय पुन नो (१०) इअलोक च वो त (११) इद पुन ध्रम मगल अकलिक (१२) यदि पुन त अठ न निवटे इअ अथ परत्र अनत पुनं प्रसवति (१३) हचे पुन त ठ निवटेति ततो उभयेस लध भोति इअ च सो अवो परत्र च अनत पुञ प्रसवति तेन ध्रमगलेन।'

[यह करूँगा। क्योकि इस प्रकार के मगल सन्दिग्ध फल वाले होते हैं। इनसे अभीष्ट फल की प्राप्ति हो भी सकती है और नहो भी। ये इहलौकिक है। किन्तु धर्म मगल समय से वाधित नही है। हो सकता है कि इससे इस लोक में वाञ्छित फल की सिद्धि न हो। किन्तु परलोक मे इससे अनन्त पुण्य होता है। परन्तु यदि इससे (इस लोक मे भी) सिद्धि होती है तब तो दोनो लाभ प्राप्त होते है। अर्थात् इस लोक मे इससे अर्थ की प्राप्ति होती है। और परलोक में इस धर्म मगल से अनन्त पुण्य उत्पन्न होता है]

"से अज देवन प्रियस प्रियद्रसिने रजिने ध्रम चरणेन भेरिघोषे अहो धमघोषे विमन द्रशन अस्तिने अगिकधनि अञनि च दिवनि रुपनि द्रशेति जनस (२) (मानसेहरा शिला चतुर्थ अभिलेख)

[किन्तु आज देवाना प्रिय प्रियदर्शी राजा के धर्माचरण से भेरीघोष (रणभेरी) धर्म घोष हो गया। विमान दर्शन, हस्ति दर्शन, अग्नि स्कन्ध तथा अन्य दिव्य प्रदर्शनो को जनता को दिखाकर]

क्रिया की प्रतिक्रिया होना अनिवार्य है। अशोक के धर्म प्रचार के उत्साह की प्रतिक्रिया पाटलीपुत्र तथा कश्मीर दोनो स्थानो मे हुई। कश्मीर मे कल्हण के मतानुसार बौद्ध प्रभाव प्रवल हो उठा था। उसने जनता मे विरक्ति की भावना भर दी। गृहत्याग की भावना भर दी। प्रव्रज्या को श्रेष्ठ माना। जीवन में उदासीनता को महत्त्व दिया। वह एक प्रकार से गार्हस्थ एव क्षत्रिय धर्म से निष्क्रियता की ओर ले गया। राजाश्रय प्राप्त कर पाटलीपुत्र सैनिक शक्ति के केन्द्र के स्थानपर धर्म प्रचार का केन्द्र वन गया।

जलौक ने विदेशी खतरे को देखा। उसका सामना करने के लिये जनता के विचार मे परिवर्तन लाना चाहा। एतदर्थ कान्यकुब्ज से वर्णाश्रम धर्मानुयायियो एव विद्वानो को लाया। लुप्त होते वर्णाश्रम धर्म का उद्धार किया। एक नवीन जीवन उत्पन्न किया। नवीन प्रेरणा दी।

कश्मीर में बौद्धधर्म के विरुद्ध वह प्रतिक्रिया अशोक की मृत्यु के ३० वर्ष के अन्दर ही हो गयी। बौद्धधर्म 'सघ' शरण की बात करता है। उसके अनुशासन को मानता है। यूरोप मे मध्ययुग में सघ अर्थात् चर्च तथा राज्य मे सघर्ष हुआ था। चर्च राज्यपर अपना अंकुश रखना चाहता था। मूर्तमान प्रश्न खडा हो गया था। चर्च और राज्य दोनो में किसका आदेश किंवा अनुशासन मानना श्रेयस्कर होगा। इस भावना के कारण यूरोप मे सुधारवादी, नव जागरण तथा धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा बलवती हुई। उसने भयकर रक्त-रजित आन्दोलन का रूप पकड लिया।

कुछ इसी प्रकार की वात भारत में हुई। उसका बीज जलौक ने कश्मीर में डाला। वह उसके समय अकुरित हुआ। और महा वृक्ष के रूप में पल्लवित, पुष्पित होता गया। वर्णाश्रम धर्म मे देश, जनपद, नगर, ग्राम एव गृह का स्थान था। उनके लिये उत्तरोत्तर त्याग करने की वात कही गयी है। देश किंवा राष्ट्र को आदर्श माना गया है। जननी जन्म भूमि को स्वर्ग से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। जन्मभूमि

यथावद् वृद्धिमप्राप्तं व्यवहारधनादिभिः ।
सामान्यदेशवद्राज्यं तावदस्मिन्हि मण्डले ॥ ११८ ॥

११८. उस समय तक कश्मीर मण्डल में व्यवहार तथा धनादि का यथोचित विकास नही हुआ था और वहाँ की शासन व्यवस्था अन्य सामान्य राज्यों तुल्य थी ।

को माता माना गया है । यह सिद्धान्त राष्ट्रीयता की ओर ले जाता था ।

सघ का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख करता था । जनता संघ के अनुशासन मे रहेगी अथवा राज्य—यह कठोर प्रश्न उपस्थित हो गया था । सघ की शरण गया व्यक्ति सघ के अनुशासन को मानने के लिये बाध्य था न कि राज्य के । विचारो का संघर्ष उत्पन्न हो गया । शान्ति काल मे संघ अनुशासन चाहे कितना ही आदर्श क्यो न हो परन्तु जब सीमा पर शत्रु सेना सज्जित खडी हो, राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो, देश मे भी जनता की शक्ति सघ एवं देश में विभाजित हो गयी हो, तो इस काल मे सैनिक विहीन, युद्ध सिद्धान्त विहीन, विरक्त समाज किवा देश अपनी रक्षा करने में समर्थ कैसे हो सकता था ? जलौक ने जनता से प्रतिबन्धरहित किवा ऐकान्तिक राजभक्ति की अपेक्षा की । इसमे उसे सफलता मिली । म्लेच्छो अर्थात् यूनानियो के आतंक से देश को मुक्त किया । उन्हें पराजित किया और कान्यकुब्ज तक सैनिक अभियान के साथ पहुँच गया । दूसरी ओर पाटलीपुत्र का शासन यूनानियो का सामना करने मे असमर्थ सिद्ध हुआ ।

पाटलीपुत्र में राजा स्वयं बौद्ध था । अशोक का पुत्र था । तत्पश्चात् पौत्र हुआ । अशोक ने अभिलेखो में स्पष्ट आदेश दिया था । उसके पुत्र, पौत्र, तथा उत्तराधिकारी उसके धर्म घोष को जारी रखेंगे । 'त मम पुता च पोता च परं च तेन य मे अपचं आव संवटकवा अनुवति सरे तथा सो सुकत कासति (५) यो तु एत देस पि हापेसति सो दुकतं कासति (६) सुकरं ही पापं (गिरनार पंचम अभिलेख)

यदि मेरे पुत्र, पौत्र, और उनके परे जो मेरे अपत्य (संतान) कल्प के अन्त तक (इसका) अनुसरण करेंगे तो वे सुकृत करेगे । जो इसका एक अंश भी नष्ट करेगा वह दुष्कृत करेगा । पाप सुकर है । 'कश्मीर में प्रतिक्रिया बौद्ध केन्द्र पाटलीपुत्र से दूर होने के कारण शीघ्र हुई । किन्तु पाटलीपुत्र बौद्धधर्म का केन्द्र था अतएव प्रतिक्रिया की गति मन्द थी । विलम्ब से हुई ।

राजाश्रय मे भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनो शक्तियाँ वार्ध्यक्य प्राप्त करती हैं । पाटलीपुत्र मे जिस प्रतिक्रिया रूपी विद्रोह का बीजारोपण हो रहा थी उस विप्लव वृक्ष के बढने एवं पल्लवित होने में ४८ वर्ष लग गये ।

अशोक की मृत्यु के ठीक ४८ वर्ष पश्चात् मौर्य वशीय अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर पुष्यमित्र (ईसा पूर्व १८५ वर्ष) ने शुंग वंश की स्थापना की थी । उसने पुरातन सनातन किंवा वर्णाश्रम धर्म को पुन राज्याश्रय दिया ।

बौद्ध लेखक पुष्यमित्र को बौद्ध विरोधी चित्रित करते है । बौद्धधर्म की अपेक्षा वर्णाश्रम धर्म की ओर उसका झुकाव था । वह स्वयं एक ब्राह्मण का पुत्र था । बृहद्रथ का सेनापति बन गया था । इस प्रकार कश्मीर मे जो धार्मिक क्रान्ति अशोक की मृत्यु के ३० वर्षों के अन्दर हुई उसे भारतवर्ष अथवा पाटलीपुत्र मे सफल होने मे ४८ वर्ष लग गये । इस विलम्ब का कारण पाटलीपुत्र मे बौद्धो का अत्यधिक प्राबल्य होना था ।

अशोक के उत्तराधिकारी धर्म घोष करने मे असफल रहे । उन्होने सनातन धर्म किंवा वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा निमित्त भी कोई प्रयास नही किया ।

धर्माध्यक्षो धनाध्यक्षः कोशाध्यक्षश्चमूपतिः ।
दूतः पुरोधा दैवज्ञः सप्त प्रकृतयोऽभवन् ॥ ११९ ॥

११९. राज्य मे सप्तप्रकृति[1] अर्थात् धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, चमूपति, दूत पुरोधा, एवं दैवज्ञ केवल सात ही राज्याधिकारी थे।

कर्मस्थानानि धर्म्याणि तेनाष्टादश कुर्वता ।
ततः प्रभृति भूपेन कृता यौधिष्ठिरीस्थितिः ॥ १२० ॥

१२०. राजाने अठारह कर्म स्थानो[1] को धर्मानुसार स्थापित किया। उसने महाराज युधिष्ठिर के राज्य समान स्थिति उस समय से राज्य मे प्रचलित की।

उनकी निष्क्रियता उनके नाश का राजनीतिक एवं धार्मिक दोनो दृष्टियो से कारण हुई।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ११८ मे 'मत्प्राप्तं' का 'यत्प्राप्तं' तथा 'राज्य' का 'राज्ञा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

११९ (१) सप्त प्रकृति : महाभारत सभापर्व पंचम अध्याय अड़तीसवें श्लोक में राज्य की सात प्रकृतियो का उल्लेख मिलता है।

कच्चित् प्रकृतय. सप्त न लुप्ता भरतर्षभ ।

राजा के सात अग किवा प्रकृति स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, तथा सेना एव पुरवासी है। राज्य की सप्त प्रकृतियो में दुर्गाध्यक्ष, बलाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, सेनापति, पुरोहित, वैद्य एव ज्योतिषी की भी कही कही गणना की गयी है।

कायन्दक नीतिसार में पुरातन भारतीय राज्य की प्रकृति का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार राज्य की सात प्रकृतियाँ—स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड एव मित्र थे।

स्वामी राज्य की प्रथम प्रकृति है। स्वामी शब्द के अन्तर्गत राजतंत्र का राजा तथा गणतत्र का राष्ट्रपति दोनो आ जाते हैं। स्वामी शब्द वर्तमान प्रचलित शब्द सोवरेनिटि किवा सम्प्रभुत्व के अर्थ में प्राचीनकाल में प्रयुक्त किया जाता था। कौटिल्य राजा को स्वामी मानता है। वह राजतन्त्र में विश्वास करता था। स्वामी के चार गुण माने गये हैं—अभिगामिका, प्रज्ञा, उत्साह और आत्मसम्पद्।

अमात्य के लिये कौटिल्य दो बातें आवश्यक मानता है। प्रथम उसे जानपद अर्थात् देश का नागरिक तथा उसमें दृढभक्ति होनो चाहिए। दृढभक्ति का अर्थ है, राष्ट्र के प्रति एकमात्र निष्ठा। शब्द का भाव अग्रेजी शब्द लायलटी मे आ जाता है। परन्तु भक्ति शब्द अधिक व्यापक एव उदार है।

तृतीय प्रकृति जनपद है। इसका अर्थ राष्ट्र किवा देश है। राष्ट्र में तीन गुणो का होना कौटिल्य ने आवश्यक माना है। शत्रु द्वेषी शक्यसम्पद् अर्थात् इतना शक्ति सम्पन्न होना चाहिए कि पडोसी राज्यो को नियन्त्रण में रख सके। तृतीय गुण उसे कर्म शील कर्षक अर्थात् कर्मशील तथा कृषी कार्य में निपुण होना आवश्यक है। उसका चौथा गुण भक्तिशील मनुष्यो से युक्त सेना है। जनपद को प्रजाभक्त, देश भक्त तथा शुद्ध होना चाहिए।

राज्य की चौथी प्रकृति है दुर्ग। दुर्ग के अन्तर्गत सैनिक शक्ति आती है। प्राचीन काल में बारूद तथा अणु परिचालित अस्त्र शस्त्र नही थे। दुर्ग का विशेष महत्त्व था। कौटिल्य चार प्रकार के दुर्ग का वर्णन करता है। वे जल, गिरि, मरुस्थल तथा अटवी दुर्ग हैं। दुर्ग उस समय राजधानी किवा पुर होते थे। दुर्ग के अन्दर नगर बस जाता था। मुसलिम काल में शहर पनाह तथा खाई नगर के चारो ओर बनायी जाती थी। उनपर मोर्चेबन्दी होती थी। कही कही खाई और खाई के पश्चात् शहर पनाह दोनो बनायी जाती थी। मनु दुर्ग के स्थान पर पुर शब्द का व्यवहार करते हैं। (मनुस्मृति ९ ५ २९४·)

कोश शब्द मे धनादि आय-व्यय सभी वित्तीय वस्तुओ का समावेश हो जाता है। प्रचार समृद्धि, शस्य सम्पत्, पण्य बाहुल्य होना कोश का गुण माना गया है।

दण्ड शब्द के अन्तर्गत बल शब्द आता है। कोश के समान बल का होना राज्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। बल पुराकालीन भारतीय राज्य प्रकृति का छठवाँ अंग माना गया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में छह प्रकार के बलो का उल्लेख किया है यथा—मौल बल, भृतक बल, श्रेणी बल, मित्र बल, शत्रु बल, तथा अटवी बल।

राज्यकी अन्तिम तथा सातवी प्रकृति मित्र है। कौटिल्य मित्रो को दो श्रेणियो मे विभक्त करता है। प्रथम श्रेणी सहज मित्रो की होती है। द्वितीय श्रेणी मे कृत्रिम मित्र आते है। सहज मित्रो की श्रेणी मे आनुवंशिक तथा पड़ोसी राष्ट्र होते वे। कृत्रिम मित्र सन्धि तथा प्रयोजन विशेष के लिये बना लिये जाते है।

भारतीय राज्य की इस प्रकृति सिद्धान्त की तुलना शंकराचार्य ने एक रथ से की है। जिसका प्रत्येक भाग एक दूसरे पर आश्रित रहता है। सब मिलकर रथ बन जाता है। गति देता है। राज्य की यह परिकल्पना शरीर सदृश की गयी है। राज्य की प्रकृतियाँ शरीर के विभिन्न अवयव है।

नीतिसार (४ ५,७५) तथा मनुस्मृति (९ २९६, २९७) मे इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कौटिल्य एक चरमसीमा पर पहुँच जाता है। कहता है—राजा राज्यम् इति प्रकृतिसक्षेप। अर्थात् राजा ही राज्य है। किन्तु यह कथन फ्रान्स के सम्राट् लुई १४ के मत से सर्वथा भिन्न है। जहाँ वह कहता है। वह स्वय राज्य है। वह राष्ट्र से अपने को ऊपर रखता है। परन्तु कौटिल्य राजा को राष्ट्र किंवा देश का सेवक मानता है। वह राजा के छह शत्रुओ अर्थात् काम क्रोध मोहादि पर नियन्त्रण रखने के लिये जोर देता है। राज्य कितने प्रकार के थे यह राजनीति विज्ञान का विषय है। प्रकृति के सम्बन्ध मे इतना ही लिखना पर्याप्त होगा।

१२० (१) **कर्मस्थान**: महाभारत मे कर्मस्थानो को तीर्थ कहा गया है। रामायण मे भी उत्तम अठारह कर्मस्थानो का उल्लेख मिलता है।

> कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च।
> त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः॥
> सभापर्व ५ : ३८.

अट्ठारह तीर्थ किंवा कर्म स्थान—मन्त्री, पुरोहित, युवराज, सेनापति, द्वारपाल, अन्तर्वंशिक, कारागाराध्यक्ष, द्रव्यसचय कर्ता (कोषाध्यक्ष), मन्त्रिधात्र, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माण कर्ता, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रसीमापाल, तथा वनरक्षक। प्रथम तीन तीर्थो को शेष करने पर पन्द्रह तीर्थ होते है। शत्रु के अट्ठारह तथा स्वपक्ष के पन्द्रहो तीर्थो का गुप्तचरो द्वारा देखभाल करवाना राजा का कर्तव्य माना गया है।

पञ्चतन्त्र (३.६७—७०) में कर्मस्थानो का वर्णन किया गया है।

कालिदास ने रघुवश (१७ ६८) मे तथा शिशुपालवध (१४ १९) मे इन कर्मस्थानो किंवा तीर्थो का उल्लेख किया है।

रामायण तथा महाभारत में राजा के साथ पुरोहितो का उल्लेख मिलता है। वामदेव प्रसिद्ध पुरोहित थे। ऋग्वेद मे वशिष्ठ तथा विश्वामित्र को पुरोहित कहा गया है। राष्ट्र की आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक पुरोहित माना गया है। यह शक्ति शास्त्र मे निहित थी। शास्त्र के पण्डित ब्राह्मण थे। पुरोहित ब्राह्मण होते थे। पुरोहित राजा का सलाहकार तथा धर्मनियन्त्रक होता था। लौकिक शक्ति का प्रतीक राजा किंवा क्षत्री होता था। अनादि काल से आध्यात्मिक एवं लौकिक शक्ति के माध्यम से राज्य संचालन की कल्पना भारत में की गयी थी। अतएव पुरोहित का स्थान कर्म स्थान मन्त्री के पश्चात् एवं युवराज किंवा उपराजा के पूर्व रखा गया है।

स विक्रमप्रभावाभ्यां समुपार्जितया श्रिया ।
विदधे बारबालादीनग्रहारानुदग्रधीः ।। १२१ ।।

१२१. अपने विक्रम एवं प्रभाव से उपार्जित धन द्वारा उस उग्र धीमान् राजा ने बार बाल[1] इत्यादि अग्रहारो की स्थापना की ।

मनु कहते है । क्षत्रियो का उत्कर्ष ब्राह्मणो के बिना सहयोग के नही हो सकता । इसी प्रकार ब्राह्मण एव क्षत्रियो के एक साथ मिलने पर लोक तथा परलोक दोनो में वार्धक्य प्राप्त होता है । (मनु० ९ ३२३) ।

प्रारम्भ मे पुरोहित का पद चाहे कुछ भी रहा हो परन्तु कालान्तर में यह पद वश परम्परागत हो गया था । राजा का यह कर्तव्य माना जाता था कि वह कुलपुरोहित के मतो का आदर करेगा । पुरोहित धर्मशास्त्र एव दण्डनीति दोनो मे पारगत होता था ।

राजतन्त्र एव धर्म अर्थात् पौरोहित्य पद तथा उसके कार्य एक दूसरे को शक्ति देते थे । पुरोहित धर्म से राजा को विरत नही होने देता था । वह राजा पर अकुश रखता था । यदि पुरोहित अनुचित कार्य करता तो राजा भी उसे दण्ड देनेके लिये धर्मानुसार मुक्त था । नैपोलियन ने एक समय कहा था—'ईसाइयत का सबसे आश्चर्य जनक कार्य यह था कि उसने गरीबो को अमीरो से त्रासित करने से रोका था और यदि पोप का अस्तित्व न होता तो मुझे एक पोप का आविष्कार करना पडता ।'

राजनीति एव धर्म दोनो को मनु ने एक दूसरे का पूरक माना है । अतएव राजा पर धर्म और धर्म पर राजा राष्ट्रहित निमित्त अकुश लगाया गया है ।

कल्हण ने राजतरगिणी मे सब स्थानो पर राजाओ के पुण्य कार्यों, उनके निर्माणो, यथा मन्दिरो, अग्रहारो, शालाओ, छात्रावासो, विहारो, का वर्णन करने में किंचित् मात्र संकोच नही किया है । उसकी लेखनी में उनके वर्णन काल मे स्फूर्ति आ जाती है । यूरोप के सम्राटो, राजाओ एव सामतो ने मध्य काल मे धर्म निमित्त जिस प्रकार के कार्य किये थे उसी प्रकार के कार्य कश्मीर के राजाओ ने इतिहास के आदिकाल से चौदहवी शताब्दी तक अर्थात् हिन्दू राज्य काल में अनवरत किया है । इसमे कही भी शिथिलता का अनुभव नही होने पाया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२१ मे 'नुदग्रधी' का पाठभेद 'नुदारधी' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

१२१ (१) **बारबाल** यह वर्तमान ग्राम वारबुल है । सिन्धु तथा ककणी नदी के सगम से एक मिल ऊर्ध्व भाग मे कंकणी नदी के दक्षिण तटपर स्थित है । यह भूतेश्वर जाने वाले मार्ग मे पडता है । इस कारण इसका और महत्त्व प्राचीन काल में था ।

अगस्त सन् १८९१ मे श्री स्तीन भूतेश्वर की यात्रा काल में इस ग्राम मे आये थे । उन्हे मार्ग के समीप शिवलिंग का अलकृत एक विशाल पाषाणखण्ड पर बना भद्रपीठ मिला था । वह बहुत बडा था । उसे देख कर श्री स्तीन ने और अन्वेषण किया । उन्हे एक और बडा अलकृत पत्थर खेत मे मकानो के नीचे लगा दिखाई दिया था ।

श्री स्तीन को बारबाल के वृद्ध मुकद्दम से मालूम हुआ था । यह अग्रहार अथवा जागीर बहुत दिनो तक श्रीनगर के एक पीरजादा कुल की थी । राजा गुलाब सिंह के शासन काल पूर्व तक यही व्यवस्था थी । वल्लर कल्लर स्थान सर्वे मानचित्र में दिया गया है । परन्तु श्री स्तीन को इस नाम का कोई स्थान वहाँ पर नही मिला था ।

बारबाल के दक्षिण पश्चिम सिन्धु तटपर प्राचीन चीर मोचन, पूर्व दक्षिण ककनपुर, तथा पश्चिम दक्षिण मय ग्राम था । इसके उत्तर से उत्तुग पर्वत शिखर आरम्भ होता हरमुकुट तक चला जाता

द्वारादिषु प्रदेशेषु प्रभावोग्राण्युदग्रया ।
ईशानदेव्या तत्पत्न्या मातृचक्राणि चक्रिरे ॥ १२२ ॥

१२२. राजा की पत्नी ईशान देवी ने द्वार देशो तथा प्रदेशों में अनेक प्रभावशाली मान चक्रों की स्थापना की जो अपनी दैवी शक्ति के कारण विशिष्टता रखते थे।

है। यहाँ से भूतेश्वर का मार्ग पर्वतो के बीच से होकर जाता है। कंकनी नदी के दोनो तटो पर ऊँची पर्वतमाला मिलती है।

श्री स्तीन का मत है कि कल्हण ने इस अग्रहार का विशेष रूप से उल्लेख इस लिये किया है कि वह भूतेश्वर के तीर्थ यात्रा मार्ग पर पडता था। कल्हण का पिता चम्पक भूतेश्वर की नियमित रूप से यात्रा करता था। (रा० ७ ९५४) अतएव यह सम्भव प्रतीत होता है कि कल्हण कई बार इस स्थान से अपने पिता के साथ किंवा अकेले गया होगा।

पाठभेद .

श्लोक संख्या १२२ मे 'द्वारादिपु' का पाठभेद 'स्तिशालादिपु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२२ (१) मातृचक्र मातृचक्र का शब्दिक अर्थ होता है मातृकाओ का समूह। 'मातृ चक्र विवेक' इस विषय पर विशेष प्रकाश डालता है। उसका अध्ययन अच्छा होगा। सक्षेप मे इसके अर्थ के सम्बन्ध मे इतना ही लिखना अलम् होगा कि मूल ज्योतियाँ सूर्य, चन्द्र, बिम्ब तथा चिदात्मा हैं। उसकी रश्मियाँ देवता हैं। मातृका, वर्ण, शक्ति प्रभृति संज्ञा उनकी दी गयी हैं। इस रश्मिमाला किंवा मातृका चक्र के बहिर्विकास का नाम सृष्टि तथा अन्त सकोच का नाम प्रलय रखा गया है।

वैदिक ग्रन्थो तथा गृह्यसूत्रो में मातृकाओ का निर्देश प्राप्य नही है। ऋग्वेद मे सप्तमाताओ का उल्लेख मिलता है। मत है कि वहाँ सप्त नदियो तथा स्वरो के अर्थ मे उनका प्रयोग किया गया है। (ऋ० ९ १०२.४)

महाभारत में इनके स्वरूप का वर्णन मिलता है। उन्हे दीर्घनखी, दीर्घतुण्डी, निर्मांसगात्री, कृष्णमेघनिभ, दीर्घकेश, लबकर्ण, लबपयोधर, तथा पिंगाक्ष लिखा गया है। वे कामरूपधर एवं कामरूपचारी है। वायु समजव है। इनका निवास स्थान वृक्ष, चत्वर, गुफा, स्मशान, शैल एव प्रस्रवण मे कहा गया है। (म० भा० श० ४४ ३०–४०) मत्स्य पुराण मे मातृकाओ के जन्म का वर्णन अन्धकासुर बध के प्रसंग में किया गया है।

मातृकाओ की संख्याएँ ग्रन्थो मे समान नही मिलती। उनकी सख्या कही सात, कही अट्ठारह तथा कही बत्तीस बताई गयी है। महाभारत शल्य पर्व मे कार्तिकेय किंवा स्कन्द की अनुचरो मातृकाओ की नामावली दी गयी है। उनकी संख्या बत्तीस है। उनमे प्रभावती विशालाची आदि के नाम हैं।

सप्त मातृका मे, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी एवं ऐन्द्री है। (मार्क० पु० ८८.११–२०, ३८) अष्ट मातृका में ब्राह्मी, माहेश्वरी, चण्डी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुण्डा एव चर्चिका है। शिशुमातृका मे काकी, हलिमा, रुद्रा, वृहली, आर्या, पलाला एवं मित्रा हैं। (म० व० २१७ ९) चौदह मातृकाओ मे, गौरी, पद्मा, शची, मेध्या, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि एव कुलदेवी जो प्रत्येक कुल के लिये भिन्न-भिन्न होती हैं। (गोभिल० स्मृति० १ ११–१२) अष्टादश मातृका, विनता, पूतना कष्टा, पिशाची, अदिति किंवा रेवती, मुखमण्डिका, दिति, सुरभि, शकुनी, सरमा, कद्रू, विलीनगर्भा, करजनीलया, धात्री, लोहितायनी, आर्या है। महाभारत की इस नामावली में

दो मातृकाओ का नाम नही दिया गया है। (म० आर० २१६ २६–४१)

पहली शताब्दी से मातृका पूजन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर के बृहत्सहिता में इसका स्पष्ट उल्लेख है। (५८.५६) मृच्छकटिक नाटक तथा स्कन्दगुप्त के विहार के शिलालेख में मातृका पूजन का निर्देश प्राप्त है। चालुक्य एव कदव राजवश मातृका के उपासक थे। मालवा के विश्वकर्मन राजा के अमात्य मयूराक्ष ने सन् ४२३ ई० में मातृकाओ का एक मन्दिर निर्माण कराया था। पश्चिमी एशिया के 'द्रो' सस्कृति में प्राचीन काल से मातृका पूजा प्रचलित थी। मोह-जोदडो तथा हडप्पा स्थित सिन्धु सस्कृति मे मातृका पूजा प्रचलित थी। इन सस्कृतियो की जो मुद्राएँ प्राप्त हुई है उनमे मूर्ति के सम्मुख नर किंवा पशुवलि के चित्र अकित है।

मातृकाओ की प्रतिमाओ की पूजा समस्त भारत में प्रचलित थी। इनका स्वरूप, अर्धनग्न, एव शिरोभूषण, कण्ठहार, तथा मेखला युक्त प्रदर्शित किया गया है।

उदयपुर सग्रहालय में मातृकाओ की अनेक मूर्तियाँ हैं। उनकी विशेषता यह है कि प्रत्येक मातृका मूर्ति के साथ एक नवजात शिशु वना रहता है। यही कारण है कि शिशु के जन्म के प्रथम दिनो तक मातृ पूजा का विधान मिलता है।

कल्हण ने मातृचक्र का उल्लेख राजतरगिणी ३३५, ३४८ मे किया है। रा० त० १ ३३३ मे देवी चक्र का उल्लेख कल्हण करता है। उसने पुन रा० त० ३:६६ तथा ५·५५ में मन्दिर के सन्दर्भ में मातृ चक्र का उल्लेख किया है।

मातृचक्र शिला पर श्रीचक्र तथा रजनीचक्र तुल्य खोदा जाता है। कश्मीर मे अव तक उनकी पूजा गृहो तथा मन्दिरो में की जाती है। यह तान्त्रिक पूजा है। सारिका स्थान अर्थात् हरिपर्वत श्रीनगर में श्रीचक्र की पूजा होती है।

इसी प्रकार ज्वालामुखी चक्रपूजा उपेन अर्थात् ओवन की चट्टानी पहाडी पर होती है। यह स्थान वीही परगना में है। इस स्थान का विशेष महत्त्व है। यहाँ लोग वडी श्रद्धा भक्ति के साथ पूजा करने आते हैं।

कश्मीर में तन्त्र आधारित मातृ पूजा के प्रतीक स्वरूप अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। तन्त्र के अनुसार सप्त मातृका देवी, जोवन एव मृत्यु के अनेक रूपो को प्रकट करती है। श्रीनगर के सग्रहालय मे दुर्गा का एक स्वरूप वाराही रूप में दिया गया है। यह एक युवती की आदम कद मूर्ति है। परन्तु मुख शूकरी अर्थात् वाराही का वनाया गया है। अलवेरुनी ने सप्त मातृ देवियो के साथ वाराही का भी उल्लेख किया है।

कश्मीर उपत्यका में आनेवाली दर्रों को द्वार कहा गया है। कालान्तर मे इसे द्रग कहने लगे थे। द्वारो की रक्षा पर कश्मीर के राजा विशेप जोर देते थे। द्वारदेश के सैनिक अधिकारी को द्वारपति कहते थे। कश्मीर की स्वतत्रता की रक्षा इन द्वारो की सुरक्षा पर आधारित थी।

भारत ने खैबर दर्रे की सुरक्षा का व्यापक और मजवूत प्रबन्ध नही किया था अतएव पश्चिमोत्तर सीमान्त से सर्वदा भारत पर आक्रमण होता रहा। यूनानी, हूण, शक, मुसलमान आदि खैवर द्वार से भारत मे प्रवेश करते थे। खैबर की सुरक्षा शिथिल होने के कारण भारत पराधीनता की वेणी में जकड गया। अग्रेजो ने इस बात को प्रारम्भ से ही समझा था। अतएव लगभग दो तिहाई सेना सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश मे लगी रहती थी। खैवर की मोर्चे वन्दी आधुनिक शैली से किया था।

कश्मीर के राजा अत्यन्त प्राचीन काल से इस इस महत्त्व को समझते हैं। द्वारो की सुरक्षा का विशेप ध्यान रखा जाता था। द्वारपति का स्थान सेनापति तुल्य होता था। उन्हें द्वाराधिपति, द्वारेश तथा द्वाराधिकारी कहा जाता था। यह पद अत्यन्त

श्रुतनन्दिपुराणः स व्यासान्तेवासिनो नृपः ।
सेवनं सोदरादीनां नन्दीशस्पर्धया व्यधात् ॥ १२३ ॥

१२३. वह नृप व्यास[1] के एक अन्तेवासी[2] से नन्दी पुराण[3] सुनकर सोदर[4] तथा अन्य स्थानों की तीर्थयात्रा करने लगा जैसे नन्दीश[5] से स्पर्धा करता था।

महत्त्वपूर्ण सामरिक पद कश्मीर मे माना जाता था। इन द्वारो पर सैनिक चौकियाँ होती थी। बारहमूला के अधोभाग अर्थात् वितस्ता के संकीर्ण गह्वरो मे इस प्रकार के द्वार थे। अलबेरुनी ने उनके वर्णन के प्रसग मे उनको संज्ञा द्वार से ही दी है। हुएन स्वाग और ओ कुग चीनी पर्यटकों ने भी उनका उल्लेख किया है। उन्हें कालान्तर में द्रग के साथ-साथ ढक्क भी कहा जाने लगा था। ईशान देवी ने द्वारो पर मातृचक्र की स्थापना कर उसे दैवी शक्ति से भी समन्वित किया। उसे एक धार्मिक रूप दिया। द्वार पर नियुक्त सेना तथा अधिकारियो मे विश्वास उत्पन्न किया कि दैवी शक्ति द्वार की सुरक्षा करने में उनके अनुकूल तथा सहायक है।

कश्मीर के प्रदेशो मे भी मातृचक्रो की स्थापना दानी ईशान देवी ने इसी दृष्टि से करायी। प्रदेश राज्य के अवयव है। उनमे विद्रोह न हो, आततायी शान्त रहे एतदर्थ यहाँ मातृचक्र की शक्ति स्थानीय राज अधिकारियो को बल देते रहे यही मन्तव्य मालूम होता है। महाराष्ट्र तथा मेवाड में मैने सैनिक महत्त्व के स्थानो पर हनुमान एवं दुर्गा की की मूर्तियाँ प्रायः स्थापित देखी है।

द्वार शब्द कश्मीर मे दर्रो के लिये प्रयुक्त होता रहा है। यद्यपि दर्रो के लिए संस्कृत मे संकट शब्द भी आता है। प्रदेश शब्द भी महत्त्वपूर्ण है। आजादी के पश्चात् सूबो अर्थात् प्रान्तो के लिए प्रदेश शब्द का व्यवहार भारत में किया जाने लगा था। परन्तु प्रदेश शब्द बदलकर उसके स्थान पर अमेरिका की सघ शासन प्रणाली के आधार पर उन्हे 'राज' कहा जाने लगा है। प्राचीन काल में राज केवल एक होता था। उसके अगो को प्रदेश कहते थे।

१२३ (१) व्यास : इस शब्द का अर्थ विस्तार, विश्लेषण, कथावाचक तथा पुराणो की कथा कहने वाला होता है। कल्हण वहाँ किसी का नाम नही देता। महाभारतकार वेदव्यास का भी नाम नही देता। जो पराशर के औरस तथा सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वह वैदिक सहिताओ के पृथक्करण कर्ता, वैदिकशास्त्र प्रर्वतको के आद्य आचार्य, ब्रह्मसूत्रो के प्रणयिता महाभारत पुराणादि ग्रन्थो के रचनाकार थे। वे वैदिक संस्कृति के पुनरुज्जीवक तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सत्यवादी साख्य, योगधर्मादि शास्त्रो के ज्ञाता एवं दिव्यदृष्टिशाली थे।

उनमे असामान्य प्रतिभा, क्रातिदर्शी द्रष्टापन, जीवन सम्बन्धी विरागी दृष्टिकोण, अगाध विद्वत्ता, एव अप्रतिम सघटन कौशल्य, इन समस्त गुणोयुक्त व्यास तुल्य मूर्तिमत सस्कार प्रतिमा प्राचीन भारतीय साहित्य जगत् मे क्वचित् ही मिल सकेगी। उन्हे बुद्ध साहित्य मे केवल ऋषि ही नही देवता स्वरूप माना गया है। वायु, (१: ४२—४३) कूर्म (१ ३०. ६६) गरुड (१: ८७ ५०), पुराणो मे व्यास को विष्णु का अवतार माना गया है। इनको शिव का अवतार कूर्म (२ ११:१३६) तथा ब्रह्मा का अवतार वायु(७७,७४—७५) ब्रह्माण्ड (३.१३:८६) पुराणो मे माना गया है। लिंग पुराण (२ ४९.१७) मे ब्रह्मा के पुत्र का अवतार व्यास को माना गया है। धर्मराज युधिष्ठिर ने महाभारत में (आश्रः ८७) मे व्यास को भगवान् की उपाधि दी है।

वैदिक संहिता साहित्य मे व्यास का निर्देश नही मिलता। सामविधान ब्राह्मण (१ ४ ३७७) में इनका पैतृक नाम 'पारशर्य' दिया गया है। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मो में एक जन्म 'कण्हदीपायन' अर्थात् कृष्ण द्वैपायन दिया गया है।

आज से २५०० वर्ष पूर्व स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण द्वैपायन नाम प्रसिद्ध हो चुका था। कृष्ण द्वैपायन नाम पडने का कारण था। यह यमुना द्वीप में जन्म ग्रहण किये थे अतएव द्वैपायन नाम इनका पडा था। (म. आ० ५४ २) इनकी माता कैवर्तराज की कन्या सत्यवती थी। उसका नाम काली था। इसलिये इन्हे कृष्ण कहा गया है। एकमत हैं कि इनका वर्ण कृष्ण अर्थात् काला था। अतएव कृष्ण द्वैपायन नाम पड गया था। यमुना द्वीप कोई देश विशेष नही मानना चाहिए। नदियो मे द्वीप बन जाते हैं। दो धारायें बनकर बहने लगती है। द्वीप पर आबादी हो जाती है। दिल्ली में जमुना की दो धारायें वर्षा में स्पष्ट दिखाई पडती है। मध्य में द्वीप बना रहता है। उस पर कैवर्त अर्थात् धीवर या माझी किंवा कृषक झोपडी अथवा कच्चा मकान बनाकर रहने लगते है।

व्यास का जन्म वैशाख पूर्णिमा को हुआ था। इनके पुत्र शुकदेव जी थे। शुकदेव को इन्होने सृष्टि क्रम, युगधर्म, ब्राह्म प्रलय, महाप्रलय, मोक्षधर्म एव क्रिया फलादि का उपदेश दिया था। व्यास की वश परम्परा इनके पुत्र शुकदेव जी के कारण चली थी। शुक का विवाह पीवरी से हुआ था। उन्हें भूरिश्रवस, प्रभु, शम्भु, कृष्ण एव गौर नाम के पाँच पुत्र तथा कीर्तिमती नामक एक कन्या हुई थी। विष्णु पुराण मे २८ व्यासो का उल्लेख मिलता है।

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। प्रत्येक वेद तथा उसकी शाखाओ की शिष्य परम्परा है। इसी प्रकार व्यास की पुराण शिष्य परम्परा है। प्रतीत होता है कि व्यास को इस शिष्य परम्परा मे कोई अन्तेवासी था।

व्यास शब्द कालान्तर में प्राय सभी कथा-वाचको के लिये प्रयुक्त होने लगा। आज व्यास शब्द से इन्ही का बोध होता है। व्यास की वश परम्परा किंवा शिष्य परम्परा में जो लोग रहे होगे उन्हें व्यास कहा जाता रहा होगा। कह्लण यहाँ 'व्यास' पद रूप में व्यवहृत किया है। वह आद्य व्यास नही बल्कि उनकी वश किंवा पुराण शिष्य परम्परा मे कोई व्यक्ति रहा होगा। पुराण का पारगत तत्कालीन व्यास के किसी अन्तेवासी अथवा शिष्य से राजा ने नन्दिपुराण सुना होगा। व्यास की कोई गद्दी अथवा पीठ कश्मीर में उस समय रही होगी। वहाँ अन्तेवासी किंवा शिष्य रहकर पुराण का अध्ययन तथा अध्यापन करते रहे होगे। उन्ही में से किसी एक प्रमुख से राजा ने नन्दीपुराण सुना था।

(२) अन्तेवासी अन्तेवासी का अर्थ समीप रहने वाला शिष्य होता है। यह शब्द उस शिष्य के लिये व्यवहार किया जाता है जो शिक्षक किंवा व्यास के समीप निवास कर अथवा उसके आश्रम, पीठ एव शाला मे रहकर विद्याध्ययन करता है।

(३) नन्दी पुराण महापुराण किंवा पुराण, उपपुराण और उपोपपुराण तीन वर्गो मे पुराण साहित्य का वर्गीकरण किया गया है। मत्स्य पुराण में पुराणो को गुण के अनुसार सात्त्विक, राजसिक एव तामसिक पुन तीन वर्गों मे वर्गीकृत किया गया है। विष्णु ब्रह्मा एव अग्नि-शिव की उपासना प्रतिपादित करने वाले पुराणो-को क्रम से सात्त्विक, राजसिक एव तामसिक कहा गया है। सरस्वती एव पितरो का माहात्म्य कथन करने वाले पुराणो को सकीर्ण कहा गया है। (मत्स्य ५३ ६८-६९) पद्म एव भविष्य पुराणो में भी सात्त्विक, राजसिक तामसिकादि के प्रकार दिये गये है। किन्तु यहाँ उनका वर्गीकरण और प्रकार से किया गया है। (पद्म उ० २६३ ८१-८५ भविष्य : ३ २८ १०-१५)

पुराणो की श्लोक सख्या में एकवाक्यता नही है। प्रत्येक पुराण के वक्ता, देवता, गुण तथा प्रसग एव स्थल भिन्न-भिन्न हैं। लगभग ११ पुराणो का प्रसग एव स्थल नैमिषारण्य है। नृसिंह, भागवत के विष्णु एव देवी वायु तथा शिव पुराणो को महापुराण मानने मे एकवाक्यता नही है।

उपपुराणो की सख्या भी १८ कही जाती है। किन्तु उनकी नामावली मे मतैक्य नही है। शिव

राज्ञस्तस्य कदाचित्तु व्रजतो विजयेश्वरम् ।
ययाचे काचिदबला भोजनं मार्गमध्यगा ॥ १३१ ॥

१३१. किसी समय राजा विजयेश्वर जा रहा था। मध्य मार्ग मे एक अबला मिली। उसने राजा से भोजन की याचना की।

यथेष्टमशनं दातुं ततोऽनेन प्रतिश्रुते।
व्यवृणोद्विकृता भूत्वा सा नृमांसाश्रयां स्पृहाम् ॥ १३२ ॥

१३२. राजा ने उसकी इच्छानुसार भोजन देने का वचन दिया तो उसने अपना असली रूप धारण कर मानवमास की स्पृहा प्रकट की।

स सत्त्वहिंसाविरतस्तस्यै मांसं स्वविग्रहात् ।
अनुज्ञां प्रददौ भोक्तुं यदा सैवं तदाऽब्रवीत् ॥ १३३॥

१३३. राजा अहिंसा व्रत धारण कर जीव हिंसा से विरत हो गया था। उसने उससे कहा — 'मेरे शरीर का मांस ग्रहण[1] कर सकती हो।' उसने राजा से कहा।

उरुमुश अपने जीवन काल मे ही ईश्वर का अवतार माना जाता था। नरामसिन राजा कहता था। उसमें देवता का रूप प्रवाहित था अतएव उसने अपने मस्तकपर सीग से युक्त चित्र अंकित करवा रखा था।

मिस्र में कुछ इसी प्रकार थी मान्यता थी। वहाँ का राजा दैवी शक्ति युक्त माना जाता था। मिस्री लोगो का विश्वास था। 'रा' देवता रानी के साथ सहवास करता था। उससे अलौकिक शक्ति सम्पन्न राजपुत्र जन्म लेता था।

यूनानियो में अवतार की कल्पना आर्यों के समान थी। वीर पुरुषो को वे विभिन्न देवो के पुत्र तुल्य मानते थे। जैसे महाभारत मे कर्ण सूर्य के, युधिष्ठिर धर्मराज के, अर्जुन इन्द्र के पुत्र माने गये थे। यहूदी धर्म मे ईश्वर के अवतार किंवा पुरुष विशेष में ईश्वर की शक्ति विशेष मानने की ओर अधिक झुकाव है।

ईसाई धर्म मे बाइबिल का अध्ययन इस मान्यता को स्वीकार करता है। महात्मा ईसा मे अलौकिक शक्ति का होना स्वीकार किया गया है। इसलाम में शिया सम्प्रदाय इमाम में अलौकिक शक्ति की मान्यता स्वीकार करता है।

कल्हण यहाँ पर जलौक मे उसी अलौकिक ईश्वरीय शक्ति का होना कहता है। उसकी तुलना नन्दीश के अवतार से करता है।

१३१ (१) कृत्या कथा कल्हण ने यहाँ भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित तत्कालीन एक कथा का उल्लेख किया है। राजा जलौक का झुकाव बुद्ध धर्म की ओर अधिक नही था। अपितु वर्णाश्रम धर्म प्रचार निमित्त ठोस कदम उठाया था। बौद्धो मे आतंक व्याप्त हो गया होगा। राज्याश्रय के अभाव में वे भय का अनुभव करते। वर्णाश्रम धर्मावलम्बियो द्वारा बौद्धो का उत्पीडन बन्द किया जाय, एतदर्थ यह कथा यहाँ जोड दी गयी है। राजा जलौक के समय बौद्धधर्मावलम्बियो की क्या स्थिति हो गयी थी। यह इस कथा द्वारा प्रकट होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३२ में 'यथेष्ट' का पाठभेद 'यथेच्छ' मिलता है।

श्लोक संख्या १३३ में 'मास' का पाठभेद 'दातु' मिलता है।

बोधिसत्त्वोऽसि भूपाल कोऽपि सत्त्वोर्जितव्रतः ।
कारुण्यं प्राणिषु दृढं यस्येदृक्के महात्मनः ॥ १३४ ॥

१३४ ' निश्चय आप कोई बोधिसत्त्व है' भूपाल ! और कौन ऐसा सत्यव्रती हो सकता है ? महात्मन् ! आपने जीवित प्राणियो मे दृढ़ करुणा दिखायी है ।

बौद्धभाषामजानानो माहेश्वरतया नृपः ।
को बोधिसत्त्वो यं भद्रे मां वेत्सीति जगाद ताम् ॥ १३५ ॥

१३५. शिव उपासक होने के कारण नृप बौद्ध भाषा नही समझ सका । राजा ने जिज्ञासा की—' भद्रे ! बोधिसत्त्व क्या ? जिसे तुमने मुझे समझा है ? '

पुनर्बभाषे सा भूपं श्रोतव्य मत्प्रयोजनम् ।
"अह ह्युत्थापिता बौद्धैः क्रोधाद्विप्रकृतैस्त्वया ॥ १३६ ॥

१३६. उसने पुन उस भूप से कहा — ' प्रयोजन सुनिए मैं उन बौद्धो द्वारा भेजी गयी हूँ जिन्हे अपने क्रोध के कारण आपने दु खी कर दिया है ।

पाटटिप्पणियाँ

१३३(१) शरीर मांस ग्रहण कल्हण इस श्लोक के द्वारा राजा जलौक का चरित्र महत्त्वपूर्ण बना देता है । राजा का पवित्र चरित्र निखर उठा है । कृत्या बौद्धो द्वारा भेजी गयी थी । परन्तु राजा ने असीम धैर्य, मेधा एव दयाशीलता का परिचय दिया है । कृत्या के प्रति किंचित् मात्र क्रोध, क्षोभ किंवा द्वेष उसमें उत्पन्न नही हुआ ।

यद्यपि राजा बौद्ध धर्म विरोधी था, परन्तु इस श्लोक से स्पष्ट प्रकट होता है । राजा अहिंसक था । उसने बौद्धो के प्रति हिसा वृत्ति का वरण नही किया था । उन्हे ताडित नही किया था । उसने राजा शिवि के समान प्राणी रक्षा के लिये अपना मास देना पसन्द किया । अपने जीवन की आहुति देना स्वीकार किया । परन्तु किसी प्राणी को कष्ट देना, उसकी हत्या करना, उसने अपनी जीवन रक्षा निमित्त भी उचित नही समझा । कल्हण राजा के अलौकिक गुणो का वर्णन करते हुए, उसे महाभारत वर्णित ययाति राजा के पौत्र राजा शिवि औशीनर के समकक्ष कर देता है ।

जिस प्रकार राजा शिवि ने कपोत की रक्षा के निमित्त अपना मास काटकर तराजू पर रखना आरम्भ किया । अपने वचन का पालन किया । शरणागत की रक्षा की । यहाँ कल्हण राजा जलौक को और ऊपर उठा देता है । राजा किसी का भी मास कृत्या को दे सकता था । वह अपना मांस देने के लिये न तो वचनबद्ध था और न प्रतिज्ञा किया था । परन्तु किसी भी प्राणी को उसके कारण कष्ट न हो, अतएव अपना माम स्वत देने पर कटिबद्ध हो गया ।

१३४ (१) बोधिसत्त्व : इस शब्द का अर्थ होता है बुद्ध प्राप्ति का अधिकारी व्यक्ति किंवा पात्र । वह व्यक्ति जिसने बुद्धत्व प्राप्त नही किया है । वह महापुरुष जो आगे चलकर बुद्ध हो गया । भगवान् बुद्ध के जन्म काल से उनके बोध गया मे बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व काल के जीवन का सम्बोधन बौद्ध ग्रन्थो में बोधिसत्त्व नाम से किया गया है । बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बोधिसत्त्व स्वय बुद्ध हो जाते हैं ।

कल्हण ने यहाँ अबला किंवा कृत्या से राजा जलौक के गुणो की प्रशसा कराने के साथ ही उन्हें नन्दीश अवतार के समान बुद्ध अवतार होने की ओर भी सकेत किया है । वह राजा जलौक के अवतार की

लोकालोकाद्रिपार्श्वस्थास्तामस्यः कृत्तिका वयम् ।
बोधिसत्त्वैकशरणाः काङ्क्षन्त्यस्तमसः क्षयम् ॥ १३७ ॥

१३७. 'हम लोकालोक[1] पर्वत के पार्श्व की तम[2] निवासिनी कृत्या[3] हैं। तम मुक्ति की आकांक्षा में बोधिसत्त्व के शरण मे रहती हैं।'

लोके भगवतो लोकनाथादारभ्य केचन ।
ये जन्तवो गतक्लेशा बोधिसत्त्वानवेहि तान् ॥ १३८ ॥

१३८. 'भगवान् लोकनाथ[1] से आरम्भ होकर अबतक इस लोक में कुछ प्राणी गतक्लेश[2] हो चुके हैं उन्हें ही बोधिसत्त्व कहा जाता है।'

मान्यता हिन्दू और बौद्ध दोनो से दिलाता है। कृत्या राजा के मास को स्पृहा करती थी। उसने स्वयं स्वीकार किया। राजा जलौक बोधिसत्त्व है। कल्हण ने काश्मीर में निवसित बौद्ध एव हिन्दू दोनो धर्मावलम्बियो के अवतार रूप मे जलौक को उपस्थित किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३६ में 'ह्यु त्था' का पाठभेद 'अहन्तृत्था' मिलता है।

श्लोक संख्या १३७ मे 'तमस.' का पाठभेद 'तपस' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३७ (१) **लोकालोक पर्वत :** पौराणिक गाथा के अनुसार सातो समुद्रो को परिवेष्ठित करने वाली यह पर्वत श्रेणी है। 'लोकालोकश्चक्रवाल' पृथ्वी को घेरने वाले दो पर्वत लोकालोक तथा चक्रवाल है। (अमर· शैल वर्गः ३·२) इसका अर्थ दृश्य एवं अदृश्य लोक होता है। कृत्या का निवास स्थान यहाँ वर्णन किया गया है। वे अदृश्य लोक अथवा अन्धकार में निवास करनेवाली होती है। अतएव उन्हे स्पष्ट नही देखा जा सकता।

(२) **तम :** यहाँ तम शब्द तामस प्रकृति, अन्धकार, तमोगुण एवं पाप के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस अर्थ में मै समझता हूँ कल्हण ने तम शब्द का प्रयोग किया है। तमस का अर्थ कूप नरक का अन्धकार तथा केश भी होता है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (१०·१२०:३) में तमस शब्द आया है। यहाँ इसका अर्थ अन्धकार किया गया है। तम आसीत् तमसा '...' प्रारम्भ मे तमस् ही तमस् था। सबकुछ तम से आवृत था।

(३) **कृत्या :** आभिचारिक कर्म के अर्थ मे अनेक स्थानो पर कृत्या शब्द का प्रयोग किया गया है। (ऋ०:१० ८५·२८;२९) अथर्ववेद (५:१४:११) मे मनाया गया है कि कृत्या अपने कर्त्ता के पास लौट जाय। अमरकोष में (नानार्थ वर्ग ३ १५८) मे कृत्या का अर्थ दिया गया है—कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु भेद्ये धनादिभि·।' कार्य, भूत प्रेत आदि अधम देवता, धन, स्त्री, भूमि से भेद डाले जाने वाले पराये राज्य के व्यक्ति इसका अर्थ किया गया है। इसका उल्लेख एक देवी विशेष के अर्थ में भी आता है। मारण कार्य के लिये विशेष रूप से बलिदानादि द्वारा इसकी पूजा की जाती है। यह एक शक्ति विशेष अथवा देवी है। अभिचार क्रिया द्वारा किसी का वध करने के लिये अनुष्ठान विशेप द्वारा उत्पन्न की जाती है। कृत्या को तम शक्ति भी सज्ञा दी गयी है।

१३८ (१) **लोकनाथ :** लोकनाथ से यहाँ अर्थ भगवान् बुद्ध से है। इस शब्द का अर्थ ब्राह्मण, विष्णु, शिव, राजा तथा बुद्ध होता है।

(२) **क्लेश :** कल्हण यहाँ भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शब्द 'दुःख' का उल्लेख न कर क्लेश शब्द का प्रयोग करता है। यहाँ पर क्लेश का अर्थ दुःख

सागसेऽपि न कुप्यन्ति क्षमया चोपकुर्वते ।
बोधिं स्वस्यैव नेच्छन्ति ते विश्वोद्धरणोद्यताः ॥ १३९ ॥

१३९. वे पापियो पर भी क्रोध नही करते। वे अपनी क्षमाशीलता द्वारा बुरे का बदला भले से देते हैं। वे केवल अपने लिये बोधि नहो चाहते, अपितु विश्व की मुक्ति निमित्त उद्यत रहते है।

विहारतूर्यनिर्घोषैरुन्निद्रः प्रेरितः खलैः ।
पुरा भवान्व्यधात्क्रोधाद्विहारोद्दलनं यदा ॥ १४० ॥

१४०. एक दिन विहार के तूर्य घोष द्वारा आपकी निद्रा भंग हो गयी। कतिपय खलो की प्रेरणा से आपने क्रोधित होकर विहारो[1] के दलन का आदेश दे दिया।

मानना बौद्धदर्शन तथा सिद्धान्त से अधिक मेल खायेगा। योगशास्त्र के अनुसार क्लेश मुख्यतया पाँच प्रकार के होते है यथा—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अधिनिवेश।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १३९ में 'क्षमया' का 'कृपया', 'बोधि' का 'हित' 'नेच्छन्ति' का 'नेष्यन्ति' 'श्वोद्धरणा' का 'श्वद्धरणो' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

१४० (१) **विहार दलन :** विहारो के दलन करने के आदेश से मालूम होता है कि राजा जलौक बौद्धो का घोर विरोधी था और वर्णाश्रम धर्म के उद्धार निमित्त तुल गया था। कल्हण विहारो के नष्ट करने तथा भिक्षुओ के निकाले जाने का उल्लेख पुन. रा० त० १ १८०,१८१ में करता है। बौद्ध विहारो में हिन्दू देवता रखने की प्रथा बौद्धधर्म के पतन के साथ आरम्भ हो गयी थी। कपिलवस्तु के समीप अनेक प्राचीन बौद्ध मन्दिरो में पौराणिक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। भगवान् बुद्ध को अवतार मानकर कालान्तर में हिन्दुओ ने बुद्ध पूजा आरम्भ कर दी थी। अतएव देवमन्दिरो मे बुद्ध मूर्ति के साथ पौराणिक देवी देवताओ की मूर्तियो के रखने की प्रथा चल पडी थी। आज भी एक ही मन्दिर में शिव, विष्णु, नरसिह, दुर्गा, गणेश आदि देवताओ की प्रतिमायें स्थापित की जाती है। विहारो को हिन्दू मन्दिर मे परिवर्तित कर देना साधारण बात हो गयी थी। यह समय-समय पर भारत मे होता रहा है।

कृत्या के इस सवाद से यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि राजा का विचार बौद्धो के प्रति अच्छा नही था। उग्र था। इसका कारण बौद्धो की राज्य के प्रति निष्ठा में कमी होना हो सकता है। बौद्ध सघ-शरण में विश्वास रखते थे। देश एव राष्ट्र का उनमें स्थान न था। देश एव सघ के मतवैभिन्य अथवा शासन वैभिन्न्य में किसको प्राथमिकता दी जायगी यह प्रश्न मूर्तमान सर्वदा खडा होता रहा है।

बौद्ध जीवन से विरक्त होते थे। सघ शासन मे अनुशासित थे। उनकी निष्ठा सघ की अपेक्षा राज्य के प्रति कम होती थी। यह प्रश्न मध्ययुग के प्रारम्भ काल मे यूरोप में भी उग्र रूप से खडा हो गया था। चर्च और राज्य दोनो के निष्ठाकाल मे किसको प्राथमिकता दी जायगी इस प्रश्न को लेकर शताब्दियो तक राज्य एव चर्च मे सघर्ष होता रहा है। बुद्धधर्म प्रवर्तक धर्म का। वह लोगो का मत परिवर्तित कर सघ में सम्मिलित करने में मिलते इसलाम की तरह विश्वास करता था। सम्भव है। बौद्धो की इन मनोवृत्तियो के कारण राजा जलौक बौद्धधर्म विरोधी हो गया होगा। उसके स्थानपर वर्णाश्रम धर्म को प्रश्रय दिया था।

अनेक अनुवाद-कर्ताओ ने 'विहार नष्ट करने का आदेश राजा ने दिया' यह अनुवाद किया है।

'महाशाक्यः स नृपतिर्न शक्यो बाधितुं त्वया ।
तस्मिन्दृष्टे तु कल्याणि भविता ते तमःक्षयः ॥ १४१ ॥
अस्मद्गिरा प्रेरणीयो विहारकरणाय मः ।
दत्त्वा स्वहेमसंभारं त्वया मलिनितः खलैः ॥ १४२ ॥
तस्मिन्कृते न जायेत विहारच्छेदवैशसम् ।
तस्य तत्प्रेरकाणां च प्रायश्चित्तं कृतं भवेत् ॥' १४३ ॥
क्रुद्धैर्बौद्धैरनुध्याता त्वद्वधाय प्रधाविता ।
अनुशिष्टा समाहूय बोधिमत्त्वैस्तदेत्यहम् ॥ १४४ ॥

१४१–१४४. ' उत्तेजित भिक्षुओ ने मेरे लिये सोचा । आपके बध निमित्त मुझे भेजा । उस समय बोधिसत्त्वों ने मुझे बुलाया । निम्नलिखित उपदेश दिये– ' कल्याणि ! वह राजा महाशाक्य[१] हैं । तुम उनका वध नहीं कर सकती । किन्तु उनका दर्शन करते ही तुम्हारा तम कम हो जायगा । खलों की प्रेरणा द्वारा उसने दोष किया है, हमारे नाम से तुम उसे प्रेरित करना कि वह अपना हेम संभार देकर विहार का निर्माण करा दे । ऐसा करने से विहार उच्छेद के दोष का भागी राजा न रहेगा और जिन खलों ने उसे उत्तेजित किया है उनके और उसके दोषों का इस प्रकार प्रायश्चित्त हो[१] जायगा ।

कुछ ने 'विहार गिराने का राजा ने आदेश दिया' यह अनुवाद अंग्रेजी तथा हिन्दी में किया है । यहाँ दलन शब्द का प्रयोग किया है । दलन का अर्थ 'दवाना' अर्थात् विहारो को कुचलने किंवा दबाने का था । यह अर्थ अधिक समीचीन मालूम पडता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४१ मे 'महाशाक्य' का पाठभेद 'महासत्त्व' मिलता है ।

श्लोक सख्या १४२ मे 'स्वहेम' का पाठभेद 'दत्वाम्ब हेम' मिलता है ।

श्लोक सख्या १४४ मे 'अनुशिष्टा' का 'अनुदिष्टा' तथा 'सत्वै' का पाठभेद 'सत्यै' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१४१ (१) महाशाक्य : एक मत है कि शुद्ध पाठ महासम्मत है । महासम्मत तथा महाशाक्य में नाम मात्र का भेद है । महावश (२.२३) के अनुसार भगवान् बुद्ध के वश का नाम महासम्मत था । महावंश मे उल्लेख है क्षत्रिय वशो में शिरोमणि महासम्मत वंश मे महामुनि (बुद्ध) ने जन्म लिया ।'

त्रिपिटक के अनुसार भगवान् बुद्ध शाक्य वंशीय थे । देवदह शाक्य थे । उनके पुत्र सिंहहनु थे । सिंहहनु के पुत्र शुद्धोधन थे । शुद्धोधन के पुत्र गौतम अर्थात् बुद्ध थे । गौतम गोत्र था । शाक्य क्षत्रियो की एक शाखा थी । यह शाखा राजा इक्ष्वाकु के रक्त से सम्बन्धित थी । भगवात् बुद्ध शाक्य मुनि है । उन्हें शाक्य मे सर्वश्रेष्ठ होने के कारण उनको महाशाक्य की सज्ञा दी गयी है । महासम्मत शब्द का सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के वश किंवा जाति से था । महाशाक्य भगवान् का नाम शाक्यो में सर्व श्रेष्ठ किंवा महान् होने के कारण दिया गया था । वह विशेपण है । महाशाक्य शब्द का प्रयोग महासम्मत के स्थानपर अधिक उपयुक्त लगता है ।

तस्मात्सत्त्वातिरेकस्ते मिषादेवं परीक्षितः ।
क्षीणपापाऽद्य संवृत्ता स्वस्ति ते साधयाम्यहम् ॥" १४५ ॥

१४५. 'राजन् ! मैंने रूप परिवर्तन द्वारा आपके स्वत्व की परीक्षा ली थी। आपके दर्शन द्वारा मेरे पाप क्षीण हो गये हैं। अब मैं जाती हूँ। स्वस्ति ! राजन् !'

कृतप्रतिश्रवे राज्ञि विहारकृतये पुनः ।
प्रहर्षोत्फुल्लनयना कृत्यादेवी तिरोदधे ॥ १४६ ॥

१४६. राजा से विहार के पुनर्निर्माण का वचन लेकर प्रहर्षोत्फुल्लनयना कृत्या अदृश्य हो गयी।

'बौद्ध ग्रन्थों' के अनुसार महासम्मत शाक्यों के आदि राजा थे। महासम्मत से बुद्ध तक वंश कभी छिन्न नही हुआ था। वंशपरम्परा टूटी नही थी। वे सूर्यवंशी थे। उन्हे महासम्मत इसलिए कहा जाता था कि पृथ्वी पर जब अनाचार फैला तो जनता ने सर्व सम्मति से उन्हें राजा निर्वाचित किया था। महासम्मत के राज्य में ताडना, वहिष्कार, जुर्माना आदि दण्ड के प्रकार अज्ञात थे। एक मत है। महासम्मत मनु थे। श्रीलंका के राजा अपनी वंशावली महासम्मत से सम्बन्धित करते थे।

१४३ (१) प्रायश्चित्त : भगवान् बुद्ध की करुणा तथा क्षमा का वर्णन यहाँ कल्हण ने किया है। इन श्लोको मे प्रकट होता है। कल्हण ने स्वयं विहार उच्छेद के कार्यो को पसन्द नही किया था। राजा के चरित्र मे कालिमा न लगे इसलिये उसने कृत्या द्वारा भगवान् स्वरूप बोधिसत्त्वो का सन्देश राजा को दिया। उसने दोष किया था। दोष किंवा पापो का निराकरण प्रायश्चित्त द्वारा हो सकता था। यदि विहार उच्छेद जैसे दोष के कारण मन स्ताप होगा तो वह भी दूर हो जायगा। प्रायश्चित्त का प्रकार भी कल्हण ने बताया है। जिसका नाश किंवा उच्छेद किया है उसे पूर्ववत् कर देने मे दोष किंवा पाप का प्रायश्चित्त हो जाता है।

कल्हण ने यहाँ यह भी प्रकट किया है। राजा के पास हेम सभार अर्थात् प्रचुर स्वर्ण भण्डार था। उसका कोश खाली नही था। पूर्ण था। वह सुयोग्य राजा था। कोश बल पूर्ण था। राजा स्वर्ण भण्डार का दान देकर दान के पुण्य का भागी बन सकता था। बौद्ध धर्म में दान का बहुत महत्त्व है। बौद्ध साहित्य में विहार, चैत्य, वन, शालादि निर्माण कराने वालो की बडी प्रशसा की गयी है। भगवान् बुद्ध ने जेतवन निर्माणकर्ता अनाथपिण्डक, पूर्वाराम निर्माणकर्त्री विशाखा, जीवक वन निर्माण कर्ता जीवक आदि की बडी प्रशसा की है। यहाँ कल्हण इसी दान की ओर सकेत करता है। बोधिसत्त्व उसके अपराधो को इस प्रकार क्षमा कर देंगे। इसे स्पष्ट रूप से यहाँ कहा गया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १४५ में 'पापा' का 'पापो' 'सवृता' का 'सजाता' पाठभेद मिलता है।

१४५ (१) स्वस्ति : कल्हण ने यहाँ वैदिक शब्द स्वस्ति का प्रयोग कृत्या से कराया है। वह महत्त्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म वेद की मान्यता नही देता। उसकी परम्परा में विशेष आस्था नही रखता। कश्मीर में बौद्ध धर्म, वैदिक परम्परा तथा तत्कालीन हिन्दू धर्म से इतना प्रभावित हो गया था कि दोनो में भेद नाम मात्र का रह गया था। बुद्ध को अवतार मान लेने पर रहा सहा भेद भी नष्ट हो गया था। स्वस्ति का अर्थ कल्याण है। स्वस्ति शब्द का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद (१ १ ९,१ ३५ १,२ ३२ ८,१० ८,३,३१. ८१,२ ३८ १,३ ३८ ९) में मिलता है। स्वस्ति वाचन भारतीय परम्परा है। स्वस्ति का अर्थ जाति

अथ कृत्याश्रमं कृत्वा विहारं वसुधाधिपः।
तत्रैव क्षीणतमसं कृत्यादेवीमसन्धयत् ॥ १४७ ॥

१४७. तत्पश्चात्-उस वसुधाधिप ने कृत्याश्रम[1] में विहार का निर्माण कराया। वहाँ क्षीण तमस कृत्या देवी की राजा ने उपासना[2] की।

मात्र का प्रतीक है। चाहे वे हिन्दू, ईसाई या कोई भी क्यो न हो।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४७ में 'अयं' का 'अये' 'मसन्धयत्' का 'मवन्दयत' पाठभेद मिलता है।

१४७ (१) कृत्याश्रम बाहरमूला से पाँच मिल अधोभाग में वितस्ता के वामतट पर वर्तमान कित्सहोम ग्राम प्राचीन कृत्याश्रम का स्थान है। चीनी पर्यटक ओ कुङ्ग (सन् ७५९-७६३ ई०) कश्मीर पर्यटन काल में इस स्थान को देखा था। उसका उल्लेख किया है। कल्हण ने इसका पुन उल्लेख रा० ४२४० में किया है। ओ कुङ्ग के अनुसार वह एक गाँव था। बारहमूला के समीप था। उसे किचाश्रम भी कहा गया है। ओ कुङ्ग ने इसे कित्चे नाम से सम्बोधित किया है। ओ कुङ्ग के पर्यटन काल मे इस स्थान को किचा कहा जाता था। उसे उसने अपनी भाषा में कित्चे लिखा है।

श्री स्तीन यहाँ मई सन् १८९६ ई० में आये थे। यह ग्राम वितस्ता नदी तथा पर्वत बाहुमूल के मध्य स्थित है। यहाँ दो ग्रामीण मसजिदें बनी है। श्री स्तीन को मसजिदो के समीप कुछ अलंकृत शिला खण्ड दिखायी पडे थे। उनमें कुछ मूर्ति खुदे शिला खण्ड थे। उन्हें ग्राम के उत्तर ११५ वर्ग गज पर प्राचीर अर्थात् दिवाल का आयताकार नीव चिन्ह मिला था। इस हाता के केन्द्र में श्री स्तीन को एक ऊँचा स्थान दिखाई दिया था। उसे वहाँ के लोग गद्दी कहते थे। हाता के बाहर दक्षिण पूर्व के कोने पर एक १५ फीट ऊँचा टीला अथवा ढूहा था। श्री स्तीन के मत से यह स्तूप का ध्वसावशेष था। यहाँ पर और ध्वंसावशेष तथा पत्थरादि न मिलने का कारण स्तीन ने यह दिया है।

यहाँ की उपत्यका में पठान शासन काल में पूर्व दिशा में एक सीधी दिवाल कित्सहोम से चौथाई मिल दूर पर बना दी गयी थी। इस दिवाल का अस्तित्व सन् १८३५ ई० तक था। वैरन श्री हुजेल इस ओर आये थे। इस दिवाल को नदी के पार से देखा था। यह दिवाल प्राचीन कृत्याश्रम के ध्वंसावशेष से प्राप्त पत्थरो से बनायी गयी थी। नवीन सडक का निर्माण मन् १८८६ ई० के लगभग होने लगा। उक्त दिवाल कृत्याश्रम से प्राप्त पत्थरो और उक्त ढूहे से बहुत पत्थर लिये गये थे। यही कारण है कि राजा जलौक द्वारा निर्मित कृत्याश्रम विहार का स्पष्ट चिन्ह नही मिलता। जो कुछ शिलाखण्ड शेष बच गये थे वे सडक निर्माण मे लग गये।

मै यहाँ आ चुका हूँ। बारहमूला से डरी जाने वाली सडक पर अनेक मन्दिर बायें पार्श्व में बने आज भी खडे है। कुछ में तो छतें बिल्कुल नही है और कुछ पर टिन आदि की छते लगा दी गयी है। दो एक टूटे मन्दिरो मे मैंने दक्षिण भारतीय साधुओ को निवास करते हुए पाया। वे उन टूटे देवस्थानो में दीपक जलाते तथा पूजा करते थे।

मुझे कित्सहोम अथवा कृत्याश्रम में स्तीन द्वारा वर्णित बातो के अतिरिक्त विशेष और देखने को कुछ नहीं मिला। यदि यहाँ खनन कार्य हो तो कुछ

विधाय सोऽश्मप्रासादं नन्दिक्षेत्रे क्षमापतिः ।
भूतेशाय समं कोशैः पूजां रत्नमयीं ददौ ॥ १४८ ॥

१४८. नन्दिक्षेत्र[1] मे राजा ने अश्म प्रासाद भूतेश[2] निमित्त निर्माण कराया। उसने कोश के साथ ही साथ रत्नों[3] द्वारा भगवान् की विधिवत् पूजा की।

सामग्री मिल सकती है। इस समय यहाँ के समीपवर्ती क्षेत्र मे सैनिक कैम्प लगे है। पाकिस्तान से रावलपिण्डी श्रीनगर आने वाली यही मुख्य सडक है। इस सडक पर बहुत लडाइयाँ हो चुकी हैं। उनके स्मारक भारतीय सुरक्षा विभाग ने स्थान-स्थान पर बनवा दिये है। यहाँ के शेष पत्थर आदि कुछ ही दिनो मे विकास योजनाओ मे लुप्त हो जायेंगे। ग्राम का प्राचीन रूप बदल गया है।

जलौक शैव था। जाति पाति हीन सघ एव समाज की जो स्थापना बौद्धो द्वारा हो रही थी वह पुन वर्णाश्रम आधारित समाज की ओर मुड रही थी, राजा शैव होने पर भी कृत्या के नाम पर कृत्याश्रम विहार की स्थापना किया था। निस्सन्देह वह विहार ग्यारहवी शताब्दी तक कायम था। कल्हण के समय चाहे इसका पूर्व गौरव लुप्त हो गया था परन्तु विहार एवं स्तूप का आकार शेष था।

क्षेमेन्द्र अपनी पुस्तक समयमातृका (सन्१०५०) मे नायिका कंकाली को इस विहार मे ठहराता है। इससे भी स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र काल मे वह विहार निवास करने योग्य था और उसका पूर्व गौरव लुप्त नही हुआ था।

बोध मूल ग्राम कृत्याश्रम के समीप है। जहाँ पर बौद्ध कालीन वस्तुएँ पाई जाती हैं। बारहमूला के समान कहा जाता है कि यहाँ भगवान् ने निवास किया था।

बारहमूला से कृत्याश्रम की ओर चलने पर हुष्कपुर, नाण्डव विहार, आदि प्राचीन स्थानो के क्षेत्र मिलते है।

महाभारत में कृत्तिकाश्रम एक तीर्थ का वर्णन मिलता है। अनुशासन पर्व में विस्तृत उल्लेख मिलता है। महाभारत तथा कल्हण वर्णित कृत्याश्रम दोनों ही जलाशय के पास थे। (म० अनु०, २५ : ५)

महाभारत मे कृत्या का उल्लेख मिलता है। दैत्यों ने आभिचारिक यज्ञ द्वारा एक राक्षसी का उत्पन्न किया था। वह आमरण अनशनकारी दुर्योधन को उठाकर रसातल ले गयी थी। (म. वन : २५२ : २१-२०) भीष्म पर्व महाभारत मे कृत्या नामक एक नदी का भी उल्लेख मिलता है। (९:१८) महाभारत वर्णित आश्रम तथा कृत्याश्रम दो भिन्न स्थान प्रतीत होते है। अनुसन्धान का विषय है।

(३) कृत्या उपासना : राजा की सहिष्णुता की यहाँ पराकाष्ठा दिखाई गयी है। जिस कृत्या ने राजा का मांस मांगा था, जिसने बौद्धों के उल्लेख से राजा को विरत किया था, जिसने राजा का स्वयं बोधिसत्त्व अर्थात् ईश्वर रूप दर्शन कर, नाश क्षय किया था, उसे ही राजा ने देवी मानकर उसकी स्मृति मे कृत्याश्रम विहार का निर्माण कराया था। राजा चाहे कट्टर वर्णाश्रम धर्मानुयायी भले न रहा हो, उसने इस घटना के पश्चात् अपनी उग्रता शिथिल कर दी थी। उसके विचारों मे परिवर्तन हुआ था। अन्यथा जिस बौद्ध धर्म को उन्मूलन करने पर तुला था, ठोस कदम उठाया था, उसी के प्रति आदर प्रकट कर विहार का निर्माण न कराता। इससे यह बात प्रकट होती है कि राजा सभी धर्मों के प्रति आदर करता था। आज कल के हिन्दुओं के समान सभी देवी देवताओं की उपासना तथा पूजा करने में संकोच नहीं करता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४८ में 'सोऽश्म' का 'सोऽस्य' 'समं' का 'समा'; 'कोशैः' का 'कोषैः'; पूजां का 'पूजा' पाठभेद मिलता है।

चीरमोचनतीर्थान्तर्गणरात्र तपस्यता ।
ब्रह्मासननिविष्टेन ध्याननिष्पन्दमूर्तिना ॥१४९॥

१४९. राजा ने ब्रह्मासनस्थ[1] होकर स्पन्दन हीन मूर्तिवत् चीरमोचन तीर्थ[2] मे ध्यान रत होकर अनेक रात्रियाँ व्यतीत की।

पादटिप्पणियाँ

१४८ (१) नन्दिक्षेत्र पाद टिप्पणी पृष्ठ ७६ रा० त० १ ३६ द्रष्टव्य है।

(२) **भूतेश** : पादटिप्पणी रा० त० १ १०७ पृष्ठ द्रष्टव्य है। यह भूतेश्वर के पूर्वीयद्वीप समूह का मुख्य और बडा मन्दिर है।

(३) रत्न पूजा कश्मीर शिव पूजा पद्धति में रत्न तथा मूल्यवान धातुओ को देवताओ पर चढाने तथा उनसे पूजा करने का उल्लेख मिलता है। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। शिव लिंग पर सुवर्ण, रजत मुकुट अथवा रत्न जटित मुकुट, मेखला, माला, शेष नाग, जलद्रोणी, अर्घा, पचपात्र, आरती आदि चढाया जाता है। दक्षिण रामेश्वर मे रत्न का एक भण्डार ही है। विभिन्न पर्वों मे विभिन्न रत्नो तथा शृगार विशेष से पूजा की जाती है। रामेश्वरादि दक्षिण के मन्दिर मे इन रत्नो को यात्रियो को दिखाया भी जाता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १४९ में 'चीर' का 'क्षीर', निष्पन्द का नि स्पन्द, निस्पन्द पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४९ (१) **ब्रह्मासन** : कल्हण राजा के योग का वर्णन करता है। राजा को वीर, क्षमाशील, दानी तथा धर्म परायण अब तक चित्रित करता चला आया है। अब उसने राजा के योग का उल्लेख कर उसे योगी रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिक आसन ध्यान के लिये योगशास्त्रानुसार श्रेष्ठ कहे गये है। उनके स्थान पर ब्रह्मासन का उल्लेख किया गया है। ब्रह्मासन वह योगी लगाता है जो ब्रह्मा का ध्यान करता है। राजा शैव था। विष्णु के अवतार बुद्ध के प्रति भक्ति होने के कारण विष्णु भक्त तथा अन्तिम काल मे उसने ब्रह्मासन लगा कर ब्रह्मा की उपासना की। ब्रह्म का ध्यान किया जो विश्व का कर्ता है। समस्त जीवन उसने विष्णु के अनुरूप रक्षा का कार्य किया, शिव गुण के अनुरूप संहार का भी कार्य किया। जीवन के अन्तिम अध्याय में उसने जगत कर्ता ब्रह्मा का ध्यान किया।

योग मे ध्यान की मुद्रा मेरुदण्ड को सीधा रखकर ध्यान लगाना है। मेरु दण्ड सीधा होने पर इडा और पिंगला नाडियो से प्राण संचार बन्द हो कर सुषुम्ना नाडी मे प्रवेश करता है। सुषुम्ना में प्राण संचार के कारण योगी का ध्यान लगता है। वह वायुहीन तैल दीप की ज्योति के समान कम्पनहीन हो जाता है। वह इस ध्यान मुद्रा में आत्मा का साक्षात्कार करता है। वह विदेह स्थिति प्राप्त करता है। वह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को समझ जाता है। वह आत्मानुभूति मे रम जाता है। स्थूल जगत् से ऊपर उठता है। उसे सविकल्प के पश्चात् निर्विकल्प समाधि लग जाती है। राजा अनेक रात्रियो तक निस्पन्द बैठा रहा। इसका स्पष्ट अर्थ है। वह समाधि में ध्यानस्थ था। वह दृश्य, दर्शन, द्रष्टा, को स्थिति से ऊपर उठकर एकाकार हो गया था। वह कर्ता, कार्य, कारक की स्थिति से ऊपर उठ गया था। वह भौतिक जगत् की सीमा पार कर आध्यात्मिक जगत् में विचरण करता था। वह भूताकाश, चित्ताकाश की स्थिति से चिदाकाश की स्थिति में आ गया था। वह कर्मेन्द्रियो एव ज्ञानेन्द्रियो के प्रपंच एवं बन्धन को तोड कर मुक्त हो चुका था। वह ब्रह्मासन पर बैठ-कर ब्रह्मा में लीन होना चाहता था। ब्रह्मा के कारण

उसकी रचना हुई थी वह उसी सर्जक ब्रह्मा के पास पुन. लौट कर मुक्त होना चाहता था।

(२) चीरमोचन . नीलमत पुराण के आधार पर कहा जा सकता है कि चीरमोचन तीर्थ कनक वाहिनी नदी के समीप कही था। नीलमत पुराण (श्लोक १३२५–१३२८) से चीर मोचन तीर्थ के स्थान के सम्बन्ध में एक सूत्र मिल जाता है उससे स्थान का पता लगाया जा सकता है। श्रीस्तीन ने भी इस सम्बन्ध मे प्रयास किया है। उन्होने भी इस तीर्थ के सम्बन्ध में अनुमान लगाया है।

चीरमोचन तीर्थ का नामकरण सप्तर्षियो के 'चीणाणि' अर्थात् वल्कल वस्त्र के कारण पडा था। इस तीर्थ पर सप्तर्षि गण अपना चीर त्याग कर स्वर्गारोहण किये थे।

नन्दि क्षेत्र माहात्म्य स्पष्टतया कनकवाहिनी नदी का सम्बन्ध चीरमोचन तीर्थ से जोडता है। श्री स्तीन जिस समय कश्मीर का पर्टयन कर रहे थे उस समय कश्मीर के पण्डितो को चीरमोचन तीर्थ का ज्ञान नही था। लम्बे काल एव लम्बे मुसलिम शासन के कारण अन्य तीर्थो के समान वह स्थान भी लोग भूल चुके थे। हरमुकुट के पुरोहितो से भी श्री स्तीन ने जिज्ञासा की थी। परन्तु वे भी कुछ प्रकाश नही डाल सके थे।

नीलमत पुराण तीर्थों मे स्नान के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए कनकवाहिनी और सिन्धु-सगम का उल्लेख श्लोक सख्या १३२५ में किया है। श्लोक सख्या १३२६ में पावन तथा रजोविन्द नदियो में स्नान करनेवाला पुण्डरीक तथा राजसूय फल का भागी होता है कहा गया है। श्लोक सख्या १३२७ में नीलमत पुराण कहता है कि वहाँ से चीरमोचन तीर्थ तक विस्तृत क्षेत्र वाराणसी के समान पवित्र है। श्लोक सख्या १३२८ में चीरमोचन का उल्लेख करता पुराण कहता है। चीरमोचन का पवित्र स्थान स्वर्ग मार्ग प्रशस्त करता है। वहाँ पर सभी तीर्थ उपस्थित रहते है। श्लोक सख्या १०२९ में नामकरण का कारण उपस्थित करता है—वहाँ सप्तर्षि अपना चीर त्याग कर स्वर्गारोहण किये थे। वहाँ स्नान करने पर पापी भी स्वर्ग गमन करते हैं। श्लोक सख्या १३३० में सोदर तीर्थ का उल्लेख किया गया है।

तयोः समागमे पुण्ये राजसूयफलं स्मृतम्।
तस्माद्देशादथारभ्य यावत्स्याच्चीरमोचनम्॥
॥ १५४१ ॥

स्वर्गमार्गप्रदं प्रोक्तं तीर्थं चीरप्रमोचनम्।
दिवमुत्सृज्य चीराणि यत्र सप्तर्षयो गताः॥
॥ १५४३ ॥

नीलमत के अनुसार कनकवाहिनी सिन्धु तत्पश्चात् पावन एव रजोबिन्दु नदियो के बाद और सोदर तीर्थ के मध्य कही चीरमोचन तीर्थ होना चाहिए।

दूसरा सूत्र इस स्थान का पता लगाने का यह मिलता है कि यह स्थान कनकवाहिनो नदी के समीप था। वशिष्ठाश्रम अर्थात् वेगथ चीरमोचन के ऊपर कनकवाहिनी के तट पर था। सप्तऋषियो में एक ऋषि वशिष्ठ भी हैं। चीरमोचन मे सप्तऋषियो ने स्वर्गारोहण किया था यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

राजा जलौक भूतेश का उपासक था। नन्दिक्षेत्र का उसके जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। चीरमोचन से भूतेश्वर सीधे मार्ग से लगभग १० मिल और वशिष्ठाश्रम लगभग आठ मिल पडता है। क्या कारण है। राजा ने अपने प्रिय स्थान भूतेश्वर में जाकर तपस्या नही की। उसने चीरमोचन तीर्थ ही तपस्या निमित्त क्यो चुना ?

श्री स्तीन ने इस विषय में यथेष्ठ परिश्रम तथा अनुमान लगाया है। हरमुकुट गंगा माहात्म्य मे कनकवाहिनी नदी का नाम करक नदी दिया है। करक तीर्थ को करक ग्राम के समीप बताया गया है। हरमुकुट सर की यात्रा के पूर्व इस तीर्थ मे आना आवश्यक माना गया है। श्री स्तीन को पुरोहितो

से मालूम हुआ था। यह स्थान प्रंग ग्राम के नीचे सिंधु नदी के दक्षिण तट पर था। यह एक छोटे गाँव लर्री के समीप है। प्रंग ग्राम के कुछ मकानो के पश्चात् एक छोटी धारा कनकवाहिनी की मुख्य धारा से शाखा रूप वारबुल के समीप फूट कर सिन्धु नदी में मिलती है। इस संगम स्थान पर करंक तीर्थ मे विहित श्राद्ध किया जाता है। यह स्थान प्राचीन चीरमोचन तीर्थ श्री स्तीन ने माना है। उन्होने इसका कारण उपस्थित किया है। उनका मत है कि हरमुकुट माहात्म्य प्राचीन ग्रंथ नही है। उसमे ग्रामो तथा स्थानो के नवीन नाम मिलते है। वे प्राचीन नामो के अपभ्रंश है। उसमें भूतेश्वर का नाम बोधेश्वर दिया गया है। अमरेश्वर का नाम अम्बोरुह बना दिया गया है। वह वर्त्तमान अम्बुरहर है। कनकवाहिनी नदी का नाम करंक नदी दिया गया है। उसका वर्तमान नाम ककनी नदी हो गया है। इसी प्रकार प्राचीन चीरमोचन का नाम करंक हो गया है।

नोलमत पुराण, नन्दि क्षेत्र माहात्म्य तथा राजतरगिणी चीर मोचन का उल्लेख कनकवाहिनी के समीप करती है। करक तीर्थ के विषय में वे चुप है। दूमरी तरफ हरमुकुट माहात्म्य जिसमें चीरमोचन तीर्थ का उल्लेख नही है। करंक तीर्थ को कंकनी नदी के समीप बताता है।

नोलमत पुराण इस स्थान का तथा क्षेत्र का निश्चित पता देता है। मै वहाँ पर आया था। मुझे वहाँ कोई प्राचीन चिन्ह नही प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह तर्क उठा था। जलौक ने तपस्या निमित्त इस स्थान को क्यो चुना था? राजा ने भूतेश्वर जैसे दुर्गम स्थान मे जाना पसन्द न किया होगा। दोनो स्थान देखने पर निस्सन्देह वर्तमान चीरमोचन का स्थान अधिक शात मालूम होना है। भूतेश्वर में कनकवाहिनी का कलकल उग्र निनाद होता रहता है। स्थान उत्तुङ्ग पर्वत से आवृत है। तेज पर्वतीय हवा चलती है। भयंकर तुषारपात होता है। जंगली जन्तुओ का उपद्रव आज की अपेक्षा उस समय और अधिक रहा होगा।

यह स्थान राजधानी श्रीनगर से लगभग पन्द्रह मिल दूर है। श्रीनगर से चीरमोचन तक का मार्ग पहाडी नही बल्कि समथर है। दिन मे आसानी से व्यक्ति श्रीनगर से घोडो से पहुँच और लौट सकता था। वह स्थान श्रीनगर के धुर उत्तर है। वहाँ से वितस्ता सिंधु संगम अर्थात् प्रयाग लगभग बीस मिल दक्षिण पश्चिम पडता है। काश्मीरी राजाओ का दाह प्रयाग मे होना पुण्य माना जाता रहा है। आज भी यह प्रथा प्रचलित है। काश्मीरी ब्राह्मण या तो यहाँ फूँका जाना पसन्द करते है अथवा उनका अस्थि विर्सजन यहाँ किया जाता है। पडित जवाहरलाल नेहरू काश्मीरी ब्राह्मण थे। उनके भस्म के एक भाग का यहाँ प्रवाह किया गया था।

राजा जलौक ने अपने स्वर्गारोहण निमित्त यह स्थान उपयुक्त ही चुना था। स्थान राजधानी तथा दाह स्थान दोनो से दूर थे। काल की दिशा दक्षिण समझी जाती है। चीरमोचन से प्रयाग सगम दक्षिण दिशा की ओर पडता है। स्वर्गारोहण के लिये उत्तर दिशा श्रेष्ठ मानी गयी है। पाण्डवो ने उत्तर दिशा में ही गमन किया था। भगवान् बुद्ध राजगृह से उत्तर दिशा कुशीनगर मे आये थे। राजा जलौक स्वर्गारोहण निमित्त अपना राजप्रासाद त्याग कर उत्तर दिशा चीरमोचन पहुँचा था।

राजाने प्रतीत होता है। इच्छामृत्यु प्राप्त की थी। योग एव ध्यान के लिये उस काल में जब चीरमोचन मे आबादी न रही होगी, स्थान शान्त, प्राकृतिक एव मानवीय दोनो उपद्रवो तथा कोलाहलो से दूर था। वह भूतेश्वर जैसे घोर पर्वतीय एवं श्रीनगर जैसे जनाकीर्ण स्थानो के मध्य में था। वह स्थान ध्यान योग एव समाधि के लिए उपयुक्त था।

सप्तर्षियो ने चीरमोचन से स्वर्गारोहण किया था। वशिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र है। राजा ने ब्रह्मासन लगाया था। ब्रह्म की उपासना की थी। चीरमोचन स्थान

राज्ञा कनकवाहिन्याः सुचिरात्पुण्यकर्मणा ।
नन्दीशस्पर्शनोत्कण्ठा तेनानीयत कुण्ठताम् ।। १५० ।।

१५०. उस पवित्र पुण्यात्मा राजा की कुछ समय पश्चात् नन्दीश स्पर्श की प्रबल उत्कण्ठा कनकवाहिनी[२] नदी के कारण कुण्ठित हो गयी ।

सप्तर्पियो के स्वर्गारोहण के कारण पवित्र माना जाता था । अतएव ऐसे पुण्य स्थान का चयन भावना तथा विवेक दोनो दृष्टियो से राजा ने उचित ही किया था ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १४९ में 'कनकवाहिन्या' का 'कनकवाहिन्या', 'स्पर्शनो' का 'स्पर्धनो' तथा 'कुण्ठताम्' का पाठभेद 'कुण्ठनाम्' और 'कुण्डनाम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१५० (१) **श्लोक १५० :** यह श्लोक कुछ स्पष्ट नही है। इसका अर्थ बैठता नही। कनक वाहिनी के कारण राजा की उत्कण्ठा क्यो कुण्ठित हुई समझ मे नही आता ।

श्री स्तीन ने उक्त श्लोक को पादटिप्पणी मे श्लोक को स्पष्ट करने के लिए एक ओर अर्थ किया है—राजा ने अपनी तपस्या द्वारा कनकवाहिनी नदी की नन्दीश के स्पर्श की इच्छा धीरे-धीरे शिथिल कर दिया।

मैं इसका अर्थ यह लगाता हूँ कि राजा स्वय अवतार था। नन्दीश स्वरूप हो गया था। कनक-वाहिनी नदी नन्दी क्षेत्र से प्रवाहित होती आती है। उसने राजा के ही तपस्या के कारण नन्दीश स्वरूप समझा। अतएव कनकवाहिनी नदी की नन्दीश स्पर्श की कामना नही रह गयी । यदि इसका अनुवाद वाला उक्त अर्थ मान लिया जाय तो उसका भाष्य यही किया जा सकता है कि राजा अपनी तपस्या के कारण इस स्तर पर पहुँच गया था कि उसकी नन्दी स्पर्श की उत्कण्ठा कनकवाहिनी के कारण इसलिये कुण्ठित हो गयी थी कि कनक-वाहिनी नन्दी क्षेत्र का स्पर्श करती नित्य प्रति चली आ रही थी । वह राजा कनकवाहिनो में स्नान कर, उसके समीप तपस्या कर स्वय अनुभव करता रहा कि प्रत्येक जल बिन्दु नन्दिक्षेत्र से स्पर्श करते चले आ रहे है। उनके माध्यम से नन्दीश का स्पर्श कर चुका है। एतदर्थ नन्दीश स्पर्श की को कामना तिरोहित हो चुकी थी। वह तपस्या के कारण नन्दीश का सानिध्य प्राप्त कर चुका था ।

(२) **कनकवाहिनी :** नीलमत पुराण (श्लोक १३३०—१३३१) इस नदी का स्थान निश्चित कर देता है। चीरमोचन के पश्चात् श्लोक सख्या १३३० मे नीलमत सोदर तीर्थ के स्नान का महत्त्व बताता है। तत्पश्चात् श्लोक सख्या १. १२३१ में कनकवाहिनी तथा कालोदया नदी के सगम मे स्नान करने का उल्लेख करता है ।

सयोगं सिन्धुना यत्र गता कनकवाहिनी ।
गोसहस्रम वाप्नोति धनवानपि जायते ॥
॥ १५३९ ॥

तथा कनकवाहिन्या सगम याति यो नर ।
तथा कालोदया पुण्या नदी यत्रैव सगता ॥
॥ १५४० ॥

स्नात्वा तत्र दिवं यान्ति येऽपि पापकृतो नराः ।
सोदरे तु नरः स्नात्वा गोसहस्रफल लभेत् ॥
॥ १५४१ ॥

एकमत है कि नीलमत वर्णित हिरण्या नदी ही कनकवाहिनी नदी है। 'हरिण्यिनी पुण्यजला नाम्ना' यह स्रोतस्विनी भूतेश्वर के नीचे से बहती है। इसे आजकल कनकनी अथवा ककनई नदी कहते है ।

ह्लादोदयान्नृत्तगीतक्षणे नर्त्तितुमुत्थितम् ।
प्रददौ ज्येष्ठरुद्राय सोऽवरोधवधूशतम् ॥ १५१ ॥

१५१. ज्येष्ठ रुद्र[१] के नृत्य एवं गान[२] के समय अन्तःपुर की स्त्रियों को नृत्य एवं गान निमित्त खडी होती देखकर आह्लादित राजा ने एक शत स्त्रियाँ ज्येष्ठरुद्र को दे दीं।

भूतेश्वर के ऊपर अर्थात् उत्तर तरफ अनेक नाग पडते है।उनमे ब्रह्मसर भी एक नाग पडता है उसके ऊपर कालोदक है। हरमुकुट गगा का यह अन्तिम तीर्थ स्थल है। प्रति वर्ष भाद्रपद में तीर्थ यात्रा काल पडता है। वर्ष मे जो लोग दिवंगत होते है, उनका अस्थि प्रवाह भी इसमे किया जाता है। इस सर के कुछ नीचे एक दूसरा सर है। उसे कालोदक कहते हैं। नन्दीसर भी उसकी एक सज्ञा है। गाथा है। काल तथा शिव दोनों का यह निवास स्थान था। यही शिव के नन्दी भी रहते थे। कनकवाहिनी नदी मे इनका तथा हरमुकुट पर्वत के पूर्व तथा दक्षिण पूर्व का जल कनकवाहिनी मे आता है। नीलमत पुराण के अनुसार कनकवाहिनी का प्रवाह सोदर तीर्थ के दक्षिण है। यह काश्मीर का मानचित्र देखने से स्पष्ट होता है। वह उत्तर से बहती आती है। भूतेश्वर के समीपस्थ भूखण्ड का स्पर्श करती नीचे बहती दक्षिण की ओर चली जाती है। यदि सोदर अर्थात् नरनाग अथवा भूतेश्वर मन्दिर पर खडे होकर देखें तो इन स्थानो के पूर्वीय अंचल का स्पर्श करती भयंकर गर्व मे बहती दक्षिण दिशा की ओर चली जाती है। कनकवाहिनी में हरमुकुट के गगा सरोवर अर्थात् गंगवल और पवित्र नन्द कोल के जलस्रोत आकर मिलते हैं।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १५१ में 'न्नृत्त' का 'न्नृत्य' तथा 'सोऽवरोध' का पाठभेद 'स्वावराध' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५१ (१) ज्येष्ठरुद्र वादटिप्पणी १.११३ द्रष्टव्य है।

(२) **नृत्य एवं गान :** मन्दिरो में देवताओ के सम्मुख नृत्य एव गान निमित्त स्त्रियो की नियुक्त करने की प्रथा कश्मीर में प्राचीन काल से प्रचलित थी। गान तथा नृत्य वश परम्परा गत भी चलता था। देव दासी प्रथा दक्षिण भारत की तरह इस समय कश्मीर मे प्रचलित नही थी परन्तु स्त्रियाँ स्वत अपने को देवता पर अर्पित कर देती थी। नृत्य एवं संगीत कार्य पेशेवर स्त्रियो तक सीमित नही था। मन्दिरो तथा देवालयो में घर गृहस्थो की भी स्त्रियाँ नृत्य एव गान में भाग लेती थी।

कल्हण ने (रा० त० ४ २६९—२७०) राजा ललितादित्य के प्रसग मे वशानुगत नृत्य एव गान की प्रथा का वर्णन किया है। राजा ललितादित्य को एक वन में युवतियाँ नाचती और गाती दिखायी पडी थी। राजा ने उनसे उस एकान्त स्थान में नृत्य एव गान का कारण पूछा। युवतियो ने राजा को सूचित किया कि इस स्थान पर अनादि काल से उनके कुटुम्ब की कन्या किंवा युवतियाँ निश्चित समय पर आती थी। नाचती थी। गाती थी। पुन चली जाती थी। राजा चकित हुआ। वहाँ उनका नृत्य तथा गान सुनने अथवा देखने वाला कोई नही था। प्रसंग वश उसे मालूम हुआ था। वहाँ कोई देव स्थान कभी था। राजा को कौतूहल हुआ। उसने उस स्थान पर खनन कार्य किया। भूमि के नीचे केशव का मन्दिर मिला। वह शताब्दियो से वही भूमिस्थ हो गया था। अथवा मिट्टी पडते-पडते वह छिप गया था।

वहाँ मन्दिर था। वह परम्परा किंवा जनश्रुति चली आ रही थी। जिस कुटुम्ब के लोग मन्दिर मे गाते तथा नाचते रहे वे मन्दिर के भूमि में लोप

भुक्त्वैश्वर्यं स पर्यन्ते प्रविष्टश्चीरमोचनम् ।
पत्न्या समं ययौ राजा सायुज्यं गिरिजापतेः ॥ १५२ ॥

१५२ ऐश्वर्य भोगकर राजा ने चीरमोचन मे अपनी पत्नी[1] के साथ प्रवेश किया। पत्नी सहित उस राजा ने गिरिजापति के साथ सायुज्य[2] प्राप्त किया।

हो जाने पर भी नियमत नृत्य एव गान की परम्परा का निर्वाह करते चले आ रहे थे।

इसी तरग के छत्तीसवें श्लोक मे नोण वणिक् का वर्णन मिलता है। उसने अपनी पत्नी को मन्दिर में गान एव नृत्य निमित्त दान कर दिया था।

कश्मीर में नृत्य एव सगीत कला पुरा काल से ही विकसित थी। राजा स्वय नृत्य एव सगीत में भाग लेते थे। इस तरग के श्लोक ४२३ से पता चलता है कि राजा जयापीड ने भरत मुनि कृत नाटय शास्त्र का अध्ययन किया था। वह नृत्य तथा संगीत का विद्वान् था।

काश्मीर का राजा हर्ष स्वय सगीत एव नृत्य विशारद था। उसके रचित गीत जनता गाती थी। राजा स्वय नृत्य एव सगीत की शिक्षा लोगो को देता था। युवराज काल मे ही वह अपने पिता राजा कलश की राज्य सभा में गीत की रचना करता था। उन्हे स्वय गाता था।

तरग (७०६—७१०) में मदिरालय मे वृद्धा वेश्या के नाचने का उल्लेख मिलता है। कर्णवती नर्तकी का उल्लेख (रा त. ७ १४६० मे) मिलता है। कश्मीर की राजसभा के गायक तथा नर्तकी समाज मे विशिष्ट स्थान रखते थे। उनकी तुलना यूनान के हेइटेरा वर्ग से की जा सकती है।

कश्मीर मे नृत्य, सगीत तथा काम कला वहुत विकसित थी। कुट्टनीमत जैसे ग्रन्थो का समाज मे स्थान था। उसका रचनाकार स्वय राजा जयापीड का मत्री दामोदर गुप्त था। उसके अध्ययन से कश्मोर के उत्साहपूर्ण, उल्लासपूर्ण, उमगपूर्ण, आह्लादपूर्ण मस्त जीवन की एक झाँकी मिलती है।

पाठभेद

श्लोक संख्या १५२ में 'प्रविष्टश्चो' का पाठभेद 'प्रतिष्ठ ची' तथा 'प्रविष्टश्चो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१५२ (१) पत्नी कल्हण ने राजा का चरित्र पवित्रता तथा धार्मिक प्रवृत्ति से पूर्ण कर दिया है। कह्लण यहाँ केवल एक ही पत्नी का उल्लेख करता है। प्रतीत होता है। राजा एक पत्नीव्रतधारी था। उसका आचरण अनुकरणीय था। पत्नी भौतिक सुख त्याग कर पति के साथ चीरमोचन तीर्थ मे स्वर्गारोहण निमित्त आयी थी। पति का जीवन पर्यन्त साथ दिया था। अन्तिम समय में भी साथ दिया। वह लोक में साथ थी। परलोक साथ गयी।

पति के साथ पत्नी सती हुई इसका उल्लेख नही मिलता है। यदि वह सती होती तो कह्लण उसका अवश्य उल्लेख करता। राजा ने जिस प्रकार अन्तिम काल में योग का आश्रय लिया और इच्छा मृत्यु प्राप्त की। उसी प्रकार पत्नी ने भी मृत्यु प्राप्त किया होगा। राजा मृत्यु के आलिंगन की प्रवल उत्कण्ठा से चीरमोचन तीर्थ मे प्रविष्ट हुआ था। श्रीनगर राजप्रासाद में भौतिक प्रसाधनो के मध्य मरना उसे अच्छा नही लगा। वह सप्तर्षियो के समान स्वेच्छया स्वर्ग जाना चाहता था। कह्लण इसी ओर सकेत करता है कि राजा अपनी पत्नी के साथ सायुज्य प्राप्त किया।

(२) सायुज्य : पाँच प्रकार की मुक्तियों मे यह एक प्रकार की मुक्ति है। एक दूसरे मे इस प्रकार मिल जाता कि परस्पर किसी प्रकार का भेद न रह जाय इस प्रकार की मुक्ति को सायुज्य कहते हैं।

कल्हण ने यहाँ शिव, शंकर, महादेव का नाम न लेकर गिरिजापति का नाम लिया है। यह विशेष महत्त्व रखता है। कल्हण संकेत करता है। राजा और रानी दोनो ने शरीर विसर्जन कर सायुज्य प्राप्त किया। इसलिये कल्हण ने कवि दृष्टि से गिरिजापति अर्थात् शिव शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। पत्नी पति की अर्द्धांगिनी होती है। इसी से अर्धनारीश्वर की कल्पना की गयी है। शिव का शरीर पत्नी एव पति दोनो का योग अर्थात् अर्धनारीश्वर है। एक भाग शिव तथा दूसरा भाग पार्वती का है। गिरिजा और पति दोनो मिलकर शिव हुए है। अतएव राजा जलौक अपनी पत्नी के साथ सायुज्य प्राप्त किया। अर्थात् शिव मे मिल कर एकाकार हो गया। मुक्त हो गया। राजा का अश शिव तथा पत्नी का अंश गिरिजा मे मिलकर एक ही अर्धनारीश्वर के शरीर मे साथ ही विलीन हो गये। पुरुष मिल गया पुरुष भाग में और स्त्री मिल गई स्त्री भाग में।

सायुज्य शब्द का प्रयोग कल्हण ने बहुत समझ और तौलकर यहाँ किया है। राजा ब्रह्मासन पर बैठा था। उसे ब्रह्मलीन होना न कहकर गौरीपति अर्थात् शिव में सायुज्य प्राप्त करना लिखता है। ब्रह्मलीन केवल ऋषि तथा ब्राह्मणो का होना पुरानी परम्परा के अनुसार कहा गया है। राजा जलौक ब्राह्मण नही था। राजर्षि था। ऋषि नही था। अतएव कल्हण पुरानी परम्परा का निर्वाह करते हुए सायुज्य का उल्लेख करता है। कल्हण स्वय शैव था अतएव उसकी दृष्टि में शिव के सायुज्य को विशेष महत्त्व था।

मूल्यांकनः

जलौक का चरित्र चित्रण भारतीय इतिहास में शून्यवत् है। उसका उल्लेख सर्वत्र अशोक के एक पुत्र के सन्दर्भ में किया गया है।

राजा जलौक का चरित्र इतना महान् एव आदर्श है कि उसके जैसे चरित्रवान राजा विश्व मे इने गिने मिलेंगे।

कल्कि अवतार का वर्णन पुराणो मे मिलता है। म्लेच्छो के नाश तथा धर्म के पुन.स्थापना निमित्त कल्कि अवतार होने की भविष्यद् वाणी की गयी है। कल्कि के काल्पनिक रूप एव क्रिया कलाप से जलौक का क्रिया कलाप मिलता है। सम्भव है जलौक का ही कल्कि अवतार की कल्पना रूप मे चित्रण किया गया हो। परन्तु इस विवाद मे यहाँ पडना उचित नही है। जलौक कल्कि अवतार के समान महान् सेनानी था। उसने म्लेच्छो से भूमि से विहीन किया। कल्हण के शब्दो मे वह स्वयं अवतार था। बौद्धो के शब्दो मे वह बोधिसत्त्व था। तत्कालीन सनातन धर्म तथा बौद्ध धर्म दोनो मतावलम्बियों ने उसे अवतार चाहे न भी हो अवतार के समकक्ष माना है।

जलौक महान् सेनानी के अतिरिक्त, आदर्श राजा, विद्वान्, द्रष्टा, सघटन कर्ता, चरित्रमान, उदार, सहिष्णु, सरल, धर्मभीरु, दानी, एक पत्नीव्रतधारी, कर्मठ एव योगी था। उसने इच्छा मृत्यु पाकर, स्वयं योग द्वारा शरीर त्याग कर, अपनी श्रेष्ठता तथा अलौकिकता की छाप लगायी है।

राजा ने विदेशियो से कश्मीर मण्डल को मुक्त किया। कश्मीर की सैनिक शक्ति का संघटन किया। उसने कश्मीर वीरो को फौलाद की दीवाल तुल्य बना दिया। उन्हें विश्व के यूनानी जैसे वीर सैनिको के सामने खडा कर दिया। वह राज्य पाकर बैठा नही रहा। ऐश्वर्य मे डूबा नही। उसने एक विज्ञ कर्मशील राजा तुल्य अस्त्र उठाया। अभियान किया। भूखण्ड विजय किया। किन्तु उपनिवेशवाद का वरण नही किया। उसने विजय करने के पश्चात् भी कश्मीर मण्डल के अतिरिक्त अन्य भूखण्डो पर राज्य नही किया। उन्हे अपने राज्य में सम्मिलित नही किया। उनसे मित्रता स्थापित की। जिनका राज्य था उन्ही को वहाँ रहने दिया।

उसने कश्मीर का सामरिक एव सुरक्षा दृष्टि से अध्ययन किया। चतुर सेनापति के समान वह समझ गया। कश्मीर की सुरक्षा उसके संकट या द्वार

अर्थात् दर्रों की रक्षा पर अवलम्बित है। यह प्रथम कश्मीरी राजा था जिसने एक ठोस सैनिक नीति को स्थापना की। उसने भविष्य के राजाओ को चेतावनो दी जबतक कश्मीर के द्वारो की दृढता पूर्वक रक्षा होती रहेगी, कश्मीर को स्वतन्त्रता कायम रहेगी।

राजा ने द्वारो अर्थात् दर्रों को मोर्चेबन्दी की। वहाँ सैनिक चौकियाँ तथा शिविर स्थापित किया। और उसकी रानो ईशान देवी ने द्वारो की रक्षा के निमित्त आध्यात्मिक शक्ति मातृ चक्रो की स्थापना की। यदि पति ने भौतिक शक्ति को उत्साहित किया तो पत्नी ने आध्यात्मिक शक्ति का कश्मीर मण्डल की रक्षा के लिये आश्रय लिया।

वह धर्म निरपेक्ष किंवा लौकिक राजा था। उसने सभी धर्मों के प्रति समभाव रखा। बौद्धो के प्रति उमका रोष स्वाभाविक था। बौद्धो का सघटन, राष्ट्र ने प्रति निस्संकोच निष्ठा भावना का अभाव, प्रारम्भ में उसे उनका विरोधी बना दिया था।

उसने सनातन धर्म की पुन स्थापना की। कल्कि अवतार तुल्य उसने सनातन धर्म का कश्मोर मण्डल में उद्धार किया। परन्तु समय आते ही वह सहिष्णु हो गया।

कृत्या के साथ हुआ उसका सवाद उसके चरित्र को ऊपर उठा देता है। वह बौद्धो के प्रति झुकता है। उनके विहारो की स्थापना करता है। उनके प्रति क्रोध, उग्र व्यवहार सबको तिरोहित कर देता है। स्वमास देने की घटना उसे पौराणिक आदर्श राजाओ की श्रेणी में बैठा देती है।

राजा लोकप्रिय था। लोकनायक था। लोक वीर था। अनेक लोकविजेता था। लोकनाथ था। अनेक लोक प्रिय गाथाएँ उसके जीवन के साथ सम्बन्धित कर दी गयी थी। उसकी महानता प्रमाणित करने के लिये अनेक अलौकिक घटना पूर्ण गाथाएँ उसके नाम के साथ जोड दी गयी है।

राजा ने कश्मीर मण्डल को ऊपर उठाया। तत्कालीन ऐतिहासिक जगत् में उसका स्थान बनाया। उसने अनेक उपनिवेश कश्मीर मण्डल में बसाये। जनजीवन को उन्नत किया। समाज को विकसित करने के लिये विद्या का आश्रय लिया। जनता में नव चेतना एव स्फूर्ति का सचार किया। उसने कश्मीर मण्डल में नव क्रान्ति की। जिसने कश्मीर जीवन में एक नवीन प्रेरणा का सूत्रपात किया। निष्क्रियता से लोगो को उठाकर कर्मशीलता की ओर प्रेरित किया।

राजशास्त्र का राजा विद्वान् था। राजशास्त्र का अध्ययन किया था। यह उसके प्रशासनिक सुधारो से स्पष्ट प्रतीत होता है। उसने रूढ एव जडता प्राप्त प्राचीन शासन पद्धति में आमूल परिवर्तन किया। उसे समयोपयोगी बनाया। शासन के ढाँचे को वैज्ञानिक ढग पर ढाला। शासन पद्धति का नवीनीकरण किया। पुन.सघटन किया। शासन को जनता के लिए उपयोगी बनाया। जनता की सुविधा, कार्यों की सरलता, समृद्धि का ध्यान रखते हुए राज्ययन्त्र को सुशासित, समयोपयोगी एव सुनियोजित किया।

अशोक ने भेरी घोष के स्थान पर धर्म घोष किया था। उसके पुत्र जलौक ने भेरी घोष किया, धर्मघोष किया और विवेक घोष का आश्रय लिया। उसने अपना जीवन एकागी नही बनाया। उसने अपने जीवन को राज्योपम सन्तुलित रखा। किसी का त्याग, किसी का नितान्त विसर्जन, किसी का सम्पूर्ण ग्रहण, उसने नही किया। राज्य के लिए, लोक के लिये, जब जिस समय, जो उपयोगी सिद्ध हुआ, उसे एक राजर्षि तुल्य निस्सकोच ग्रहण किया।

सन्त अवधूत ने अपने पाण्डित्य से बौद्धो को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। लोक ने इस खण्डन मण्डन से स्वय निष्कर्ष निकाला। अपना मार्ग सुनिश्चित किया।

शैवमतावलम्बी होते हुए भी वह सहिष्णु था। कृत्या की घटना से स्पष्ट करती है। बौद्धो के प्रति जो भी कुछ विरोधी भाव था उसे वर्णाश्रम धर्म प्रचार भावना की प्रबलता होते ही क्षण मात्र में त्याग दिया। उसने विनष्ट विहारो का पुनर्निमाण, राजकोश

से कराया। उसने मिथ्या राजकीय मान एवं प्रतिष्ठा का आश्रय नही लिया। बौद्धो के प्रति आदर का भाव प्रकट किया। वर्णाश्रम धर्मप्रचारार्थ शक्ति का आश्रय नही लिया। शास्त्रार्थ द्वारा मत परिवर्तन के लोक तान्त्रिक प्रणाली का अनुकरण किया।

राजा के विरोधी बौद्धो ने अन्त मे उसे स्वयं बोधिसत्त्व मानकर आदर किया। उसे सर्वश्रेष्ठ उपाधि किंवा पद, जो बौद्ध जगत् मे हो सकता था, दिया। विश्व मे इस प्रकार के कम उदाहरण मिलते है जहाँ अपने विरोधियो से इतना आदर एक व्यक्ति ने पाया है।

विश्व मे अपनी जनता का जितना विश्वास तथा आदर राजा जलौक ने पाया है उस तरह के उदाहरण कम मिलते है। हिन्दुओ ने उसे अवतार तुल्य माना और बौद्धो ने बोधिसत्त्व तुल्य। इस प्रकार तत्कालीन दो विरोधी धर्मानुयायियो का राजा आदर्श हो गया। परस्पर विरोधी विचारो, विरोधी दर्शनो, विरोधी मतो सबका उसने विश्वास प्राप्त किया था।

राजा वास्तव में राजर्षि था। विदेह था। कृत्या ने राजा से ठीक ही कहा था। वह बोधिसत्त्व था। इस एक शब्द बोधिसत्त्व का प्रयोग कर कल्हण ने राजा के पवित्र आदर्श चरित्र का चित्रण कर दिया है।

शिव विजयेश, नन्दीश के उपासक रूप मे उसे चित्रित कर कल्हण ने उसे साधारण मानव तल से उठाकर अलौकिक पुरुष की श्रेणी मे रख दिया है। तथापि लोक, समाज, नित्य एव नैमित्तिक कर्मों से उसे कल्हण ने अलग रखने का प्रयास नही किया है।

राजा कार्यपटु था। दृढनिश्चयी था। कृतसकल्प था। भूतेश्वर तथा विजयेश्वर के दर्शन की प्रतिज्ञा का निर्वाह करता था। उसकी इस निष्ठा को देखकर नाग भी द्रवीभूत हो गया था।

राजा में अहंकार नही था। कल्हण उसमें कोई दोष नही निकाल सका है। कल्हण ने निष्पक्ष भाव से राजाओ के दोष एवं गुण का वर्णन किया है किन्तु राजा जलौक का चरित्र शुद्ध जल तुल्य निर्मल था।

राजा सुधार करने में किंचित् मात्र सकोच नहीं करता था। वह पाखण्ड एवं आडम्बरो से धर्म एव समाज को दूर रखना चाहता था। उसके समय मन्दिरो तथा विहारों में बेढंगे रूप से वाद्य बजते थे। धार्मिक कृत्यों मे, उपासना में, इनका क्या स्थान हो सकता था? वे जनता की निद्रा मे, स्थान की शान्ति मे बाधक होते थे। राजा इस पाखण्ड के कारण विहारो से चिढ गया। प्रतीत होता है। आजकल के समान बेडौल रूप घण्टा-घडियाल, झाँझ, शख धौंसे तथा लाउड स्पीकर, रेडियो बजते थे। राजा को यह अप्रिय लगा। उसने इनका कोई उपयोग नही देखा।

किन्तु दूसरी ओर देवस्थानो के जीवन को सरस तथा कलात्मक बनाने के लिये राजा ने निसकोच एक शत नृत्य गान निपुण ललनाओ को मन्दिरो के लिये दे दिया था। वह स्वयं मन्दिरो के सास्कृतिक कार्य क्रमो में भाग लेता था। उसने मन्दिरो मे नृत्य, सगीत शास्त्र कला विशारदो को रखकर, देवस्थानो को जन जीवन का एक अग बना दिया। उसके प्रति लोक मे रुचि उत्पन्न किया। सरसता का सृजन किया। उन्हे केवल पूजा के स्थान पर जन-जीवन का, सामाजिक कार्य-क्रमो का, एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना दिया। उसने ललित कलाओ मे भी आध्यात्मिकता की भावना भर कर उन्हें पवित्र बनाने का प्रयास किया। देवस्थानो मे बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी सभी एकत्रित होकर नृत्य, एव संगीतादि के साथ अध्यात्म का दर्शन कर सकते थे। ललित कला, नृत्य सगीत नाटकादि को विलास की सामग्री न बनाकर उन्हे देवस्थानों से सम्बन्धित कर उन्हें आध्यात्मिकता का चोला पननाकर मानव को विकासोन्मुख करते हुए, दैवो

जीवन का अविच्छिन्न अग बना दिया था। सगीतादिकला पेशा न होकर, क्रय-विक्रय की सामग्री न होकर, भगवान् के मनोरञ्जन, उनके प्रति श्रद्धा भक्ति प्रकट करने, उनके सानिध्य में रहने का एक साधन हो गयी। कला जीविकोपार्जन का साधन न होकर मानव विकास का सोपान बन गयी।

राजा ने राजकोश का प्रयोग अपने विलास के लिये नही किया। जनता का धन जनता के जीवन स्तर को उठाने के लिये, सार्वजनिक कार्यो के लिये खर्च किया। उसने मन्दिरो पर दान चढाया। विहारो का निर्माण कराया। मन्दिरो का निर्माण कराया। जनता को उनके लिये सक्रिय किया। उनके सम्मुख दान का आदर्श रखा।

राजा की देश-भक्ति सकुचित नही थी। वह प्रतिक्रियावादी नही था। उसने कश्मीर मण्डल का सामाजिक ढाँचा शिथिल देखा। रूढ देखा। जड देखा। विद्या की कमी देखी। उसने सोत्साह कश्मीर के बाहर से विद्वानो को बुलाया। उन्हें सब तरह की सुविधा देकर कश्मीर को समृद्ध करने की ओर उन्हें प्रेरित किया। निश्चित योजनानुसार चलाने का स्तुत्य प्रयास किया।

राजा का व्यक्तिगत चरित्र बडा निर्मल था। वह राज्य कार्य में व्यस्त रहने पर भी धार्मिक कर्म से विरत नही हो सका। उसने भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनो कार्य कलापो को एक समान तुला के दोनो पलडो की तरह रखा।

राजा स्वय योगी था। उसने चारपाई पर राज्य प्रासाद में रोग ग्रस्त होकर मरना उचित नही समझा। उसने राज सुख त्याग दिया। उसने शरीर तथा इन्द्रियो के शिथिल होने के पूर्व शरीर त्याग देना उचित समझा। उसने एक ऋषि तुल्य अपने परलोक की यात्रा निमित्त स्वय यात्रा मार्ग प्रशस्त किया। वह चीर मोचन तीर्थ में आकर बैठ गया। योग का आश्रय लिया। अपनी पत्नी जिसका पाणिग्रहण किया था। जिसे सप्तपदी के समय वचन दिया था कि इसे सर्वदा साथ रखेगा विलग नही होगा, उसने एक अग से स्वर्ग जाना पसन्द नही किया। अपनी अर्धांगिनी को भी साथ लिया। दोनो पति-पत्नी ने एक साथ ससार का त्याग किया। उसने तपस्वियो एव ऋषियो जैसी मृत्यु आलिगन की भूमिका तैयार की।

ब्रह्मासन लगाया। निश्चेष्ट अकम्पित धूम्र हीन ज्योति तुल्य निश्चल ध्यानरत हो गया। इसी रूप से उसने सायुज्य प्राप्त किया।

राजा जलौक का व्यक्तित्व इतना ऊँचा है कि कवि की वाणी, लेखक की वाणी उसके वर्णन में, उस तक पहुँचने में असमर्थता का बोध करती है। कश्मीर मण्डल के राजाओ की लम्बी शृखला में इतना महान्, समर चतुर, सेनानी, ज्ञानी, राजनीतिज्ञ, कलाप्रेमी, शास्त्रज्ञ, तपस्वी, निर्मल चरित्र, राजा का दर्शन नही मिलता। उसने अपने लिये अपने सुख के लिये कुछ नही किया। जो कुछ किया कश्मीर मण्डल के लिये किया। वहाँ की जनता के लिये किया।

मुसलिम इतिहासकार भी जलौक के जीवन से अत्यन्त प्रभावित थे। उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिये अबुल फजल उसकी विजय समुद्र पर्यन्त होना लिखता है। आजम, वैबुद्दीन उसे उत्तरीय ईरान का विजेता मानते है। हसन उसे कन्धार और बलख तक पहुँचा देते हैं। कन्नौज और विहार तक उसे पहुँचाना हसन के लिये साधारण बात थी। कन्नौज तक उसका आना प्रमाणित होता है। इन वर्णनो का इतना महत्त्व अवश्य है कि जलौक को सभी एक महान् विजेता समझते थे और विजेता रूप में उसका चित्रण करते है। वह पहला कश्मीरी राजा था जो गोनन्द के पश्चात् कश्मीरी सेना लेकर कश्मीर मण्डल के बाहर विजयार्थ निकला था। लगभग ढाई हजार वर्ष पश्चात् कश्मीर-वाहिनी ने मथुरा युद्ध के बाद पुन अपना पराक्रम प्रदर्शित किया था।

अथाऽशोककुलोत्पन्नो यद्वाऽन्याभिजनोद्भवः ।
भूमिं दामोदरो नाम जुगोप जगतीपतिः ।। १५३ ।।

१५३. तत्पश्चात् अशोक कुलोत्पन्न अथवा अन्य कुलोद्भव दामो.र नामक राजा भूमि-रक्षक हुआ ।

ऋद्धया जाज्वलितस्योच्चैर्माहेश्वरशिखामणेः ।
अद्यापि श्रूयते यस्य प्रभावो भुवनाद्भुतः।। १५४ ।।

१५४. ऋद्धि से जाज्वल्यमान, माहेश्वर[२] शिवउ ासको मे शिखामणि, जिस राजा के अद्भुत प्रभाव की गाथा भुवन मे आज भी सुनी जाती है ।

जलौक योगी अवधूत का शिष्य था । उसने योगाभ्यास किया । जल का बाँधन, उसके अन्दर प्रवेश कर रहना यौगिक क्रियाओ से सम्बन्ध रखता है । उसका अन्तिम समय मे योग द्वारा प्राण विसर्जन करना उसे राज योगी के साथ ही साथ राजर्षियो की श्रेणी में रख देता है ।

१५३ (१) दामोदर द्वितीय : आइने अकबरी ने राजा का नाम दामोदर दिया है । उसके अनुसार कुछ लोगो का कहना है वह अशोक का वशज था । कुछ कहते है । वह अन्य वश का था । राजा धार्मिक था । एक भक्त को अपमानित करने के कारण उसके शाप द्वारा सर्प हो गया था ।

कल्हण ने दामोदर द्वितीय की इतिहास सामग्री छविल्लकार से ली है । तत्कालीन प्रचलित ग्रन्थो, शिलालेखो, अग्रहारो एवं मन्दिरो से प्राप्त कुछ सग्रहो पर दामोदर द्वितीय का वर्णन किया है ।

मुहम्मद आजिम इतिहासकार के अनुसार दामोदर उद्र वह स्थान है, जहाँ ब्राह्मणो ने राजा को सर्प होने का शाप दिया था । यह सरोवर राजधानी मे ७ मील पर है । यहाँ अब भी कथा प्रचलित है कि राजा सर्प के रूप मे इस स्थान पर प्रकट होता है ।

हसन लिखता है—दामोदर राजा जलौक का भाई था । पसन्दी और उमद खूबियो में उसका हमसर था । तख्त सल्तनत पर बैठकर मल्लूक खुदा को अदल और अहसान के जरिए आराम अगाइश बख्शी । मौजा 'गोठ सवू' इसी राजा का बनाया हुआ है । करेवा दामोदर पर अपनी राजधानी के लिए कशीर इमारतो वाला एक शहर तामीर किया ।

कैफियत—एक दिन श्राद्ध के तकरीब पर दरयाए झेलम पर गुशल के लिए जाता था । रास्ते में दो बरहमनो ने उससे खाना माँगा । राजा ने कहा । गुशल और श्राद्ध के बाद मैं तुम्हे सीर कर दूँगा । इस पर इन बरहमनो ने राजा के हक में दुआए बंद कर दी । इसके नतीजा मे राजा की शक्ल साँप की हो गयी । बरसो तक राजा मजकूर जंगलों में परीशान था । इस वाकया की पूरी तफसील करेवा दामोदर के जिकर मे गुजर चुकी है । राजा दामोदर की मुद्दत सलतनत ३२ साल थी ।

हसन के वर्णन का कोई आधार तथा सत्यता नही है । कल्हण निश्चित नही कहता कि दामोदर कौन था । ? उसकी वश परम्परा क्या थी ? इतना अवश्य निश्चयपूर्वक उसके वर्णन मे निष्कर्ष निकाला जा सकता है । वह जलौक का पुत्र नही था । अशोक का वशज हो भी सकता है और नही भी । इसका केवल मात्र अनुमान किया जाता है । प्रत्यक्ष प्रमाण अभी तक नही मिल सका है । हसन का यह कहना कि वह राजा जलौक का भाई था किसी प्रमाण से अबतक सिद्ध नही हो सका है ।

वह किस कुल का था ? किस प्रकार कश्मीर का राज्य प्राप्त किया ? उसके उत्तराधिकार का रूप क्या था ? सभी कुछ अज्ञात इतिहास के गर्भ मे है ।

हरप्रसादपात्रेण सच्चरित्रानुरागिणा ।
बबन्ध सुखिना सख्यं येन वैश्रवण स्वयम् ॥ १५५ ॥

१५५. उस हर प्रसाद पात्र एवं सच्चरित्रानुरागी सुखी राजा से स्वयं वैश्रवण[१] मैत्री सूत्र मे बँधे थे।

कुबेर इव यो राज्ञामग्र्यः स्वाज्ञाविधायिनः ।
आदिश्य गुह्यकान्दीर्घं गुद्सेतुमबन्धयत् ॥ १५६ ॥

१५६ कुबेर तुल्य राजाओ मे अग्र उसने आज्ञानुवर्ती गुह्यको[१] को आदेश देकर दीर्घ गुद्द सेतु[२] बँधवाया।

यदि वह अशोक वशोत्पन्न होता तो भारतीय इतिहास इस पर प्रकाश अवश्य डालता। अब तक की प्राप्य सामग्रियों के आधार पर अशोक के किसी दामोदर पौत्र का होना नही मिलता है।

१५४ (१) **माहेश्वर :** कल्हण ने राजा को यहाँ पर शिव के उपासक रूप में उपस्थित किया है। उसने महेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण ने श्लोक सख्या १३५ में भी जलौक के लिये माहेश्वर शब्द का प्रयोग किया है। यह राजा निस्सन्देह अपने पूर्व राजा जलौक के समान महेश किंवा शिव का उपासक था। अन्यथा उसे उत्तराधिकार मिलना कठिन होता।

वह जनता अथवा मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्वाचित राजा था। अथवा जलौक कुलावतस था। यह सब अप्रकट है। यहाँ केवल एक कडी माहेश्वर शब्द उसे जलौक से जोडती है। यह श्लोक और श्लोक सख्या १३५ इस बात को प्रमाणित करते है कि जलौक तथा दामोदर दोनो का मत एक था। वे एक ही देव के उपासक थे।

माहेश्वर शिव के एक अवतार हुए है। शिव के अडतालीस नामो में एक नाम महेश्वर है। आठ मातर में एक माहेश्वरी है।

१५५ (१) **वैश्रवण :** अथर्ववेद (८ १० २८) में कुबेर वैश्रवण का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण (१७:४ ३ १०) के अनुसार कुबेर वैश्रवण एक राजा है। राक्षस उनकी प्रजा है। तैत्तिरीय अरण्यक (१ ३१ ३) ने कुबेर को एक देवता रूप में प्रस्तुत किया है। वे नमस्कृत्य हैं। प्रार्थित है।

वैवस्वत मन्वन्तर मे विश्रवा ऋषि का इसे पुत्र कहा गया है। इनकी माता इडविडा थी। उनकी माता का नाम मदाकिनी भी मिलता है। धनपतित्व के निमित्त इसने तपस्या की। कुबेर हो गया। जिस स्थान पर तपस्या की थी वह महाभारत (श. ४६.२२) के अनुसार कौबेर तीर्थ हो गया। देवी पार्वती की ओर इसने एक बार देखा तो इसका बाँया नेत्र नष्ट हो गया। दक्षिण नेत्र पीला पड गया। इसलिये उसका नाम एकाक्ष पिगलिन् हो गया।

उत्तर दिशा का अधिपति माना गया है। उत्तरस्थित यक्ष लोक में निवास करता है। यक्षो के अधिपतित्व प्राप्त की कामना से इसने तपस्या की थी। तपस्या स्थान कावेरी नर्वदा सगम माना गया है। गन्धमादन पर्वत शिखर पर इसका निवास स्थान है। मेरु पर्वत के उत्तर विभावरी भी इसका एक निवास स्थान है। वृद्धि तथा ऋद्धि इसकी शक्तियाँ है। इसकी सभा का नाम कुबेर सभा है। कुबेर की एक पत्नी का नाम भद्रा है। इसकी पुरी का नाम अलकापुरी है। पूर्व जन्म से काम्पिल्य नगरी में अग्निहोत्री यज्ञदत्त का गुणनिधि नामक पुत्र था। मुचकुद से इसका सवाद, ब्राह्मण क्षत्रिय एकता होने पर राज्य सुख की वृद्धि होती

है, हुआ था। (म. श. ७५) इसका एक नाम सौम है। एतदर्थ उत्तर दिशा का नाम सौम्य पड़ा है।

वैश्रवण कुबेर के पिता विश्रवस पुलस्त्य एवं हविर्भू का पुत्र कहा गया है। (भा० ४ १·३६—३७) ब्रह्माण्ड पुराण में इसकी माता का नाम इलविला दिया गया है। वह तृणविन्दु तथा अलंवुषा की कन्या थी। (३:७:३९—४२) किन्तु वायु पुराण मे इसकी माता का नाम द्रविडा दिया गया है। (८६·१६) इसकी नव पत्नियाँ थी। (म. व. २५९ ६०) इसकी एक पत्नी केशिनी से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा कन्या सूर्पणखा हुई थी। महाभारत के अनुसार इसकी पुष्पोत्कटा, राका एवं मालिनी तीन पत्नियाँ राक्षसी थी। महाभारत वनपर्व (२५९.७—८)में मालिनी का विभीषण, पुष्पोत्कटा का रावण और कुम्भकर्ण तथा राका का पुत्र खर और कन्या सूपर्णखा कही गयी है।

१५६(१) **गुह्यक** : दश देवयोनियो मे यक्षो तुल्य एक योनि है। अमरकोश के अनुसार दस निम्नलिखित देवयोनियाँ है.

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गधर्व-किन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥
॥१:१:११॥

कुबेर को गुह्यकेश्वर तथा वैश्रवण भी कहा गया है। गुह्यक उन लोगो के लिये प्रयुक्त किया गया है, जो कुबेर के धमकोष की रक्षा करते थे। उनके स्वामी को गुह्यकेश्वर कहा गया है।

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः।
॥१:२:७१॥

मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः।
किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः॥
॥१:२:७२॥

भास्कर्य किंवा मूर्तिकला विकास मे कुबेर तथा यक्षो का प्रमुख स्थान है। कुबेर की अलकापुरी का सुन्दर वर्णन मेघदूत मे कालिदास ने किया है। यक्ष का स्वामी कुबेर है। बौद्ध मूर्तियो मे कुबेर तथा यक्ष भगवान् की पूजा करते दिखाये गये है।

गुह्यक शब्द का एक जाति के रूप मे प्रयोग मिलता है। उन्हे देवयोनि के अन्तर्गत एक जाति महाभारत ने माना है। (आदि पर्व १८६.७) इस जाति के लोग द्रौपदी के स्वयंवर के समय उपस्थित थे। गुह्यकेश्वर अर्थात् कुबेर की सभा में गुह्यको का रहना कहा गया है। (सभा पर्व १०.३) गन्धमादन पर्वत पर उनका निवास स्थान था। भीमसेन ने उन्हे वही अपनी गदा द्वारा हत किया था। (शल्य पर्व ११ ५५–५) गुह्यक को यक्ष भी कहा गया है (१० १५)।

पुराणो में कुबेर के अनुयायी तथा दानव गुह्यक कहे गये है। (भागवत पुराण १.९·३, १०·३४:२८, २ १०:३७, ४ ४·३४) गुह्यक जाति हिमालय में निवास करती थी। (भागवत ४ ५.२६ ४:१०.५) वे माया विद्या मे निपुण थे। (भागवत पुराण १७ ५५·२३) गुह्यको के देवता शिव थे। वे शिव के अनुयायी थे। (भागवत पुराण ६३:१०) गुह्यकों ने पुण्यात्माओं के सम्पर्क से स्वर्ग प्राप्ति की थी। (भागवत पुराण ११:१२:३, १४ ५,) गुह्यको को यक्षो तथा राक्षसों की श्रेणी में रखा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७.१६७, ४ २ २६, (मत्स्यपुराण १३ १७, १२१, २)। गुह्यको के आचरण तथा कर्तव्यो का विशद वर्णन मत्स्य पुराण (१८० ९०, २४६:५३,) तथा वायु पुराण (अध्याय ६९ तथा १०१) मे मिलता है। गुह्यक वर्ग को वायु पुराण (अध्याय ३०) मे हिमालयवासी गुह्यक कहा गया है—शकर पार्वती के साथ विराजमान थे। उस समय आदित्यगण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गुह्यको को साथ लेकर वैश्रवण कुबेर, सनत्कुमार, परमर्षि, अगिरादि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, कैलास निवासी यक्षराज, महा-

मुनि उसना, तथा अप्सराएँ उमा शकर की उपासना करने लगी।

हरिवश पुराण में कैलास शिखर पर गुह्यको के साथ कुबेर के आगमन का वर्णन मिलता है। (८५ १०) मैंने इस विषय पर प्रकाश यक्षो से सम्बन्धित परिशिष्ट में डाला है। यक्ष जाति की गुह्यक जाति एक शाखा किंवा वर्ग थी। उनमे तथा यक्षो मे भिन्नता मालूम होती है। गुह्यक गणो का उत्तरदायित्व सम्पत्ति की रक्षा करना था। उनका काम सैनिको का था। वे प्रतिहारी थे। वे साधारणतया शस्त्रोपजीवी थे। पहरा, चौकी, तथा रक्षादि करते थे। शस्त्रादि चलाते थे। उन्होने महाभारत युद्ध मे भाग लिया था। यक्ष जाति के होते हुए भी, उन्हें अलग गुह्यक सज्ञा उसी प्रकार दी गयी थी, जैसे हिन्दू होने पर भी क्षत्रियो की अलग जाति शस्त्रोपजीवी होने के कारण हो गयी थी।

वायु पुराण (अध्याय १०१) से प्रकट होता है कि गुह्यक लोग सत्य अर्थात् ब्रह्म लोक में देवताओ के साथ रहते थे। सत्य लोक सातवाँ किंवा अन्तिम लोक है। उसमें समस्त देवगण, गन्धर्वों, अप्सराओ, यक्षो तथा गुह्यको के साथ स्वर्ग लोक मे निवास करते है। वायु पुराण (अध्याय ६९) मे गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष तथा पिशाचो को असुरदेव की श्रेणी मे रखा गया है। परन्तु यहाँ पर सर्प, भूत, पिशाच, नाग एव मनुष्यो को पृथ्वी लोक का निवासी बताया गया है। इस गुह्यको का स्थान पिशाचो तथा मनुष्यो से ऊपर रखा गया है।

गुह्यको की उत्पत्ति के विषय मे वायु पुराण (अध्याय ९ ३२,३० ७) में कथा आती है—'ब्रह्मा मे रजस्तम प्रधान दूसरा शरीर धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होने दूसरी प्रजा उत्पन्न की। वह प्रजा जल को भक्षण करने के लिये कटिबद्ध हो गयी। हम जल की रक्षा करते है। कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस हुए। जिन लोगो ने कहा हम जल को खा जायेंगे। नष्ट कर देंगे। अतएव उनका नाम राक्षस पडा। यक्ष धातु पालनार्थक है। अतएव उनका यक्ष नाम पडा। अ० ९।

भागवत (१ ९ ३) मे श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के रथ पर जाने की शोभा के वर्णन में उसकी तुलना गुह्यको सहित कुबेर से की गयी है। वहाँ पर गुह्यको को कुबेर का साथी कहा गया है।

स्कन्द (२ १० ३७) मे भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूपो का वर्णन किया गया है। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सराएँ, नाग, सर्प, किंपुरुष, उरग, मातृकाएँ, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूपमाण्ड, उन्माद, वैताल, यातुधान के वर्ग मे गुह्यको को रखा गया है। (स्कन्द ११ १२ ३,१४ ५)

दक्ष यज्ञ मे सती के प्राण विसर्जन काल मे गुह्यक तथा प्रमथ गणो का उपस्थित होना प्रकट होता है। मालूम होता है शिव के पार्षद गुह्यक तथा प्रमथ गण सती के साथ दक्ष यज्ञ मे गये थे। सती के प्राण विसर्जन के साथ ही गुह्यको तथा प्रमथो ने क्रुद्ध होकर, दक्ष यज्ञ मे विघ्न डाला था। अस्त्र-शस्त्रो से आक्रमण किया था। उनके भयकर आक्रमण के वेग को देखकर भृगु ने यज्ञ द्वारा सहस्रो ऋभु नामक देवो को उत्पन्न किया। जलती लकडियो द्वारा प्रथमगण तथा गुह्यको पर वे आक्रमण कर, उन्हे भगाने मे समर्थ हुए थे।

दक्ष यज्ञ के प्रसग मे गुह्यकालय अर्थात् गुह्यको के निवास स्थान का उल्लेख किया गया है। सती की प्राणाहुती से क्रुद्ध होकर, वीरभद्र ने दक्ष के मस्तक को यज्ञ की दक्षिणाग्नि मे डाल दिया। यज्ञ को विध्वस कर गुह्यकालय लौट गये। यहाँ पर गुह्यकालय हिमालय स्थित कैलास के समीप का स्थान होना चाहिए। वायु पुराण ने हिमालय का यही अंचल गुह्यको का निवास स्थान बताया है।

उत्तम मृगया निमित्त हिमालय गया था। वहाँ उसकी हत्या कर दी गयी थी। ध्रुव अत्यन्त क्रुद्ध होकर, रुद्रो के अनुचरो से सेवित उत्तर दिशा मे हिमालय के द्रोणी अर्थात् घाटी मे गये। वहाँ नगर गुह्यको से जनाकीर्ण था। (भागवत ४ १० ५) यहां पर भी यही निर्देश किया गया है। गुह्यक लोग उत्तर दिशा मे हिमालय की घाटी किंवा द्रोणी में रहते थे।

श्री कृष्ण द्वारा गुह्यक शंखचूड के वध की कथा भागवत (१०:३४ २८) मे कही गयी है। गोपियो को एक समय शंखचूड गुह्यक लेकर, उत्तरदिशा की ओर भाग चला। श्री कृष्ण उस समय गुह्यक के पास पहुँचे। गुह्यक गोपियो को छोड़कर भागा। श्री कृष्ण ने उसका पीछा किया। उसका वध किया। मणि लेकर वापस लौट आये।

इससे दो बाते स्पष्ट होती हैं। गुह्यक दस्यु आदि का अनुचित कार्य करते थे। उनका निवास स्थान उत्तर दिशा था। मथुरा से उत्तर दिशा पजाब, कश्मीर, हिमाचल पडता है। उत्तर दिशा का अर्थ प्राय हिमालय का उत्तरीय पर्वतीय अचल माना जाता है।

प्रद्युम्न तथा शम्बरासुर वध के प्रसग मे गुह्यको का पुन उल्लेख भागवत (१०.५५ २३) में किया गया है। शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसो की सैकडो माया का प्रयोग किया। गुह्यक मायावी थे। युद्ध मे माया का प्रयोग करते थे। अन्य पुराणो में भी इस प्रकार का उल्लेख किया गया है। शम्बर ने गुह्यको की माया का प्रयोग किया है। यहाँ गुह्यको ने युद्ध में भाग नही लिया। परन्तु उनकी युद्ध नीति का प्रयोग शम्बर ने प्रद्युम्न के विरुद्ध किया था।

भागवत (११ १२ ३) मे पुन दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक को एक ही वर्ग मे रखा गया है। गुह्यको के पूर्वज ब्रह्मर्षि थे। देवयोनि वर्ग मे थे। इसका उल्लेख भागवत (११ १४ ५) मे किया गया है। इन ब्रह्मर्षियो की सतान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्देव, नाग, किन्नर, राक्षस, और किम्पुरुष आदि थे। अपना वंश वृक्ष इन्ही ब्रह्मर्षियो से प्राप्त किया था।

रामायण में कैलास के समीप गुह्यको के रहने की बात कही गयी है। सुग्रीव ने उत्तर दिशा मे देवी सीता को खोजने के लिये, जिन देशो तथा जातियो का नाम लिया है, उनमे गुह्यक है। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३, श्लोक ३ मे उल्लेख आता है—वहाँ यक्षो के स्वामी विश्रवाकुमार श्रीमान् राजा कुबेर जो समस्त विश्व के लिये वन्दनीय है तथा धनदाता हैं, वह यक्ष राजा गुह्यको के साथ निवास करते हैं।'

कह्लण के गुह्यक शब्द के व्यवहार से गुह्यक जाति की सत्यता तथा वास्तविकता पर विशेष प्रकाश पडता है। पुराणो में गुह्यको को यक्षो का एक वर्ग माना है। इसका उल्लेख कर चुका हूँ। कह्लण के इस शब्द से कि राजा ने गुह्यको से सहायता अर्थात् काम लिया, इससे मालूम होता है, उस समय गुह्यक नामक जाति कश्मीर मे रहती थी। जाति परिश्रमी थी। निपुण थी।

पुल बनाना आज भी शिल्पिक कार्य समझा जाता है। किसी कश्मीर कलाकार की सहायता नही ली गयी। गुह्यको की सहायता पुल बनाने के लिये ली गयी, इसका अर्थ है। यह जाति इस कला में निपुण थी। यक्ष नाम की भी जाति थी, गुह्यक नाम की भी जाति थी। कश्मीर में रहती थी। यक्षो गन्धर्वों को कालान्तर मे मानव विशेष समझ लिया गया। इसी प्रकार गुह्यको को भी मानव विशेष समझा गया।

कह्लण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। गुह्यक एक जाति थी। इस जाति के लोग कश्मीर में आबाद थे। और निर्माण कला में निपुण थे।

सूदे दामोदरीये यत्तस्यासीत्स्वकृतं पुरम् ।
सेतुना तेन तत्रैच्छत्कर्तुं सोऽम्भःप्रतारणम् ॥ १५७ ॥

१५७. दामोदर सूद्र[1] में राजा ने स्वयं एक पुर[2] निर्माण कराया था। उसने इस सेतु द्वारा वहाँ जल ले जाने की योजना बनायी।

कल्हण ने पुन श्लोक सख्या १५९ में यक्ष शब्द का उल्लेख किया है। यक्षो के सम्बन्ध में भी कहा गया है। उनकी सेवा सेतु अर्थात् पुल बनाने में ली गयी थी। पुराण महाभारत में यक्ष के अन्तर्गत गुह्यक जाति मानी गयी है। अतएव राजा दामोदर के काल तक यक्ष और गुह्यक दोनो जातियाँ कश्मीर मे थी। वे परिश्रमी थी। शिल्प उनका मुख्य उद्यम मालूम होता है।

(२) सेतु : सेतु का एक सस्कृत नाम आलि तथा आजकल का प्रचलित नाम सेतु या पुल है। पुल बनाने की बडी प्राचीन कथा है। ईसा से दो हजार छह सौ पचास वर्ष पूर्व मिस्र के राजा मेनस ने नील नदी पर पुल बनाया था। बेबलोन की रानी ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व फरात नदी पर पुल निर्माण करायी थी।

भारत मे सबसे प्राचीन पुल किंवा सेतु बनाने का उल्लेख रामायण में मिलता है। लका विजय हेतु सेतु बन्ध रामेश्वरम् मे पुल बनाया गया था। सेतु शब्द वैदिक साहित्य में अलकार के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

पुलो की रचना में निरन्तर विकास होता गया है। सबसे प्राचीन ठोस पुल अर्थात् काजवे होता है। उसमें ताखे अथवा खम्बे नही होते। आज का जहाँ बाँध बाँधे जाते है। उसी पर पुल बना दिया जाता है वह बाँध तथा पुल दोनो का काम देते है। जल रुक जाता है। उसे दूसरी तरफ मोडा जाता है। दूसरा प्रकार खम्बा गाड कर उसे लकडी, पत्थर, सिमेण्ट, ककरोट तथा लोहा से पाटा जाता है। तीसरा प्रकार झूला पुल है। दोनो तटो पर लोहे के आधार पर पुल झुला दिया जाता है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण हवडा तथा आस्ट्रेलिया में सिडनी का पुल है। इसे हेंगिग ब्रिज कहते हैं। कश्मीर में लकडी का पुल झेलम तथा अन्य नदियो मे कैंटीलीवर शैली पर बनाया जाता रहा है। चौथा सेतु का प्रकार नौका पुल है। नौका के स्थान पर अब पीपा का प्रयोग किया जाता है।

गुदा सेतु का प्रकार क्या था कल्हण इसका उल्लेख नही करता। गुदा का अर्थ बन्धा भी होता है। यह सेतु प्रतीत होता है बन्धा था।

राजा सेतु द्वारा दामोदर सूद में जल ले जाना चाहता था। यह नही प्रकट होता है कि वह बन्धा अथवा सेतु रोमन इक्वेडक्ट की शैली पर था या ठोस पत्थरो का बना था। नव निर्मित दामोदर सूद नगर मे जल लाने के लिये उसने इस सेतु की योजना बनायी थी। मै समझता हूँ। यह पुल बान्ध सदृश अथवा इक्वेडक्ट तुल्य बनाया गया होगा।

मैं इस स्थान पर सन् १९६४ ई० मे आया था। वहाँ खोजने पर भी प्राचीन अवशेष नही मिले। पहले वह स्थान प्रायः निर्जन था। अब आबादी हो गयी है। बढती जाती है।

गुदा सेतु के स्थान की चौहद्दी निम्न लिखित है। इसी के मध्य मे पूर्व कालीन सेतु स्थित था। वह अब लोप हो गया है। गुदा सेतु के उत्तर एछागा गाँव, उत्तर पूर्व तकिया आरिफ शाह, पूर्व महल गुन्द, दक्षिण लाल गाँव, दक्षिण पश्चिम सुन्द गुद, और चिनना, पश्चिम बलना तत्पश्चात् एक नाला है। गुद सेतु के धुर दक्षिण एछारा नदी तत्पश्चात् पूर्व दक्षिण दुग्ध गगा नदी पडती है। पुराधिष्ठान से दक्षिण पश्चिम दिशा में यह स्थान पडता हैं। दोनो के मध्य में कोई पर्वत नही है।

१५७ (१) दामोदर सूद : कल्हण के समय तक राजा दामोदर सम्बन्धी जनश्रुतियाँ प्रचलित थी।

हितं लोकोत्तरं किंचिच्चिकीर्पोरुन्नतात्मनः।
रोहन्ति हा धिक्प्रत्यूहा मितपुण्यतया नृणाम् ॥ १५८ ॥

१५८. जब कोई उन्नतात्मा कुछ महान् लोकोत्तर हित कार्य करना चाहता है तो उस विघ्न[१] को धिक्कार है जो मनुष्यो की अल्प पुण्यशीलता के कारण उपस्थित हो जाता है।'

मख के कोश में सूद का अर्थ वह स्थान होता है जहाँ की भूमि बंजर होती है। यहाँ पर उदाहरण, दामोदर सूद' से दिया गया है। राजतरंगिणी की गाथा की यहाँ पुनरावृत्ति की गयी है।

प्राचीन कृत्रिम सिंचाई की नाली अर्थात् नलिका इस प्रकार की दूसरी उद्र अर्थात् सूखी भूमि पर मिलती है। मारतण्ड तथा जैनपुर के बलुई भूमि पर उनका अवशेष मिलता है। ऊँचे उद्र पर सिंचाई निमित्त जल पहुँचाने का' ललितादित्य ने तस्कदर में (रा० त० ४·१९१) प्रयास किया था।

दामोदर सूद कश्मीर से ८ मील दक्षिण स्थित है। एक छोटा गाँव अधित्यका पर बसा है। दामोदर सूद नामक यहाँ एक हवाई अड्डा है। दामोदर करेवा को कल्हण ने दामोदर सूद कहा है। उद्र कश्मीरी शब्द है। फारसी अर्थ करेवा अथवा प्लेटो है।

प्राचीन दामोदर सूद का क्षेत्र उत्तर मे मीर गुद और बदीपुर, दक्षिण मे लाल गाँव, वहतोर, पूर्व मे बुन बाग, मोहनपुर, पीर बाग, रावलपुर, जफरखा, गोगू, बोहूस, तकिया पीरखा और दुग्धगंगा का एक भाग, तथा पश्चिम मे खानपुर, जोरगुण्ड-तकिया गयर पण्डित की आबादियो तक विस्तृत माना जा सकता है।

(२) पुर : कल्हण यहाँ पर राजा के एक नगर बसाने तथा वहाँ के जलाभाव को दूर करने की योजना की ओर संकेत करता है। राजा निर्माण-कार्य प्रिय था। प्रजा की रक्षा, सुविधा का ध्यान रखता था। प्रसग है। या तो ऊँचे स्थान पर रोमन इक्वेडक्ट के समान सेतु बनाकर जल ले जाया जाय अथवा बाँध बाँधकर जल रोका जाय। जल स्तर

आज भी दामोदर सूद से सम्बन्धित गाथाएँ प्रचलित हैं। यह एक सूखी अधित्यका कश्मीर उपत्यका मे श्रीनगर के दक्षिण दिशा मे है। इस अधित्यका को दामोदर सूद कहते थे। इस समय इसे दामोदर उद्र कहते हैं।

उद्र को फारसी मे करेवा कहते हैं। उद्र अथवा करेवा कश्मीर उपत्यका में बहुत है। यह दामोदर उद्र पच परगना मे है। बडे गाँव बहतोर है। श्रीनगर से सात मील दक्षिण है। यह उसके उत्तर-पश्चिम दिशा मे फैला है। यह छह मील लम्बा होगा। चौडाई दो से तीन मील होगी। अत्यन्त सूखा होने के कारण इस पर कही-कही खेती हो जाती है। पहले यह शृगालो का निवास स्थान था। राजा क्षेमगुप्त के समय में दामोदराण्य नाम के शृंगालो के स्थान रूप मे इसका वर्णन किया गया है। कल्हण ने इसका उल्लेख (६ १८३, तथा ८ १५१९) केवल दामोदर नाम से किया है।

इस अधित्यका के दक्षिण मूल मे गुदसुथ नामक ग्राम है। यहाँ से चढाई करीब १०० फीट ऊँची है। नीचे ऐचार नदी द्वारा सिंचित उपजाऊ उपत्यका है। श्री स्तीन इस स्थान पर अक्तूबर सन् १८९१ ई० मे आये थे। उन्हे सेतु अथवा जल के बाँध का किसी प्रकार का चिन्ह नही मिला था। कल्हण के समय गुद का अर्थ बन्धा या बन्ध होता था।

राजा दामोदर के सर्प हो जाने की कहानी यहाँ ग्रामीणो मे आज भी प्रचलित है। राजा के सेतु बनाने की कथा केवल उन्हे मालूम है, जिन्होंने राजतरगिणी पढी है। यहाँ के निवासी ब्राह्मणो तथा मुसलमानो दोनो से बात करने पर स्तीन को मालूम हुआ था। उन्हे किसी प्रकार के सेतु की बात मालूम नही थी।

स हि कारयितुं यक्षैर्यतते स्म स्वमण्डले ।
दीर्घानश्ममयान्सेतूंस्तोयविप्लवशान्तये ॥ १५९ ॥

१५९ उस राजा ने स्वमण्डल मे जल[1] विप्लव शान्त करने के लिये यक्षो[2] की सहायता से पाषाण मय दीर्घ सेतुओ के निर्माण का यत्न किया था ।

ऊँचा होने पर उसे ऊँचे स्थान में पहुँचाया जा सकता है । राजा दामोदर द्वारा वसाये नगर को आज भी स्मृति स्थानीय लोगो में है ।

१५८ (१) **विघ्न :** कल्हण ने कुटिल तथा तुच्छ मनुष्यो द्वारा परोपकारी कार्यों में बाधा डालने की मनोवृत्ति को धिक्कारा है । उस लोकोत्तर कार्य को उन्नतात्मात्रो का कार्य कहा है । और इस प्रकार के कार्यों में अरुचि रखने तथा बाधा डालने वालो को उनकी पूर्व जन्म की पुण्यशीलता का अभाव होना उनमें माना है । वह यहाँ पर कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करता है । वह महात्मा गान्धी के समान मनुष्य को बुरा नही कहता परन्तु उनके कर्म को बुरा कहता है । कर्म द्वारा मनुष्य पुण्यात्मा एवं दुरात्मा दोनो होता है । अतएव सुकर्म करने वाले श्लाघ्य है । दुष्कृति करनेवाले धिक्कार के पात्र हैं ।

१५९ (१) **जल प्लावन :** कश्मीर को प्रकृति ने हराभरा नन्दन उद्यान तुल्य अतिरम्य वनाया है तथापि कश्मीर मण्डल पर प्रकृति की ही वक्र दृष्टि रहती है । जल एव अग्नि कश्मीर, मुख्यतया श्रीनगर, के शत्रु रहे है । जल विप्लव, जलप्लावन वर्षा के द्वारा पहाडो का गिरना आदि साधारण बातें हैं । घनघोर वर्षा यदि लगातार तीन दिन तक कश्मीर में हो जाय तो जल विप्लव सदृश दृश्य दिखायी पडता है । इनसे कश्मीर की रक्षा करने का स्तुत्य प्रयास प्राय. सभी राजाओ ने किया है । राजा ने भी यक्षो को सहायता लम्बे बाँध बँधाने के लिये ली थी । यक्ष शब्द के प्रयोग से यहाँ प्रकट होता है । राजा का सेतु निर्माण कार्य असाधारण था । साधारण पुरुषार्थ मात्र से सम्भव नही था । आज कल कश्मीरी मुसलमान कश्मीर के वने पुराने मन्दिरो तथा अन्य निर्माण मे लगे विशाल शिलाखण्ड को देखकर उन्हें जिन तथा परियो का काम कहते हैं । इसका कारण यह है कि मुसलिम काल में किसी वडी पत्थरो की इमारत की रचना नही हुई । पुराने पत्थरो को तोड कर नि सकोच उनका प्रयोग नवीन निर्माण मे किया जाता रहा है ।

१५९ (२) **यक्ष :** कल्हण कश्मीर में प्रचलित किंवदन्ती की ओर सकेत करता है । प्राचीन विशाल इमारतो का निर्माण, जिनमे विशाल शिलाखण्ड लगे है, उन्हे यक्षो का निर्माण, मानवीय शक्ति के परे होने के कारण मानता है । कल्हण ने जिन भव्य भवनो तथा निर्माणो का वर्णन किया है उनमें वहुतो के ध्वसावशेष वर्तमान है । कश्मीरी मुसलमान उन्हे जिन तथा परियो का वनाया मानते है । कारण स्पष्ट है । आज भी उन शिलाखण्डो को देखकर आश्चर्य होता है । वे किस प्रकार मानवो को स्वल्प शक्ति से उठाये और भवनो मे लगाये गये होगे ।

यक्ष शब्द ऋग् तथा अथर्व वेद में अनेक स्थलो पर आया है । (ऋग्वेद १ १९० ४, ४ ४.१३, ५ ७० ४, ७:५३:९६, १० ८८ १३, ७ ६१ ५, अथर्व वेद ८ ९ २५, १० २ ३२, १० ७ ३८, १० ८ ४३, ११ २ ४)

वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड पुराणो में यक्ष शब्द प्राय गन्धर्व तथा किन्नर के साथ आता है । ये हिमालय प्रदेश निवासी जातियाँ थी । अलबेरुनी ने गन्धर्वो को गायक जाति में गिना है । गन्धर्वों का सगीत तथा नृत्य पेशा था और आज भी है ।

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरांस्तथा ।
कलायग्रामकाश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान् ॥

अग्नि पुराण (१९ १८) मे 'कश्यपपत्नीखसाजाता' अर्थात् कश्यप की पत्नी खसा से यक्षो की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है ।

यक्षो का वर्णन महाभारत में यथेष्ट रूप से मिलता है। गुह्यको के सन्दर्भ मे यक्षो का उल्लेख किया गया है। महाभारत मे उन्हे देव योनि मे रखा गया है। विराट अण्ड द्वारा ब्रह्मादि के उत्पन्न होने के पश्चात् यक्षो की उत्पत्ति बताई गयी है। महाभारत आदि पर्व (१ ३५) मे यक्षो को पुलस्त्य मुनि की सन्तान कहा गया है। आदि पर्व (६६ ७) मे राक्षस रावण पुलस्त्य का नाती था। अतएव यक्षो का सम्बन्ध राक्षसो से मिलाने का प्रयास किया गया है।

यक्ष मानव थे। श्री शुकदेव जी ने यक्षो को महाभारत की कथा सुनायी थी (आदि पर्व १ १०८) यक्षो ने कुबेर का राजपद पर अभिषेक किया था। (वन पर्व ९११ १०:११) पाण्डव भीमसेन ने यक्षो तथा राक्षसो को पराजित कर भगा दिया था। (वन पर्व १६० ५७–५८) सुन्द-उपसुन्द ने इनको पराजित तथा पीडित किया था। (वन पर्व २०८ ७)

यम ने यक्ष का रूप धारण कर युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किया था। यक्ष के प्रश्नो का उत्तर देकर, धर्मराज युधिष्ठिर ने चारो भाइयो को जीवित किया था। (वनपर्व ३१४ ४७।)

प्राय देवताओ की मूर्तियो पर यक्षगण आकाश में उडते उन्हे माला पहनाते, पुष्प वर्षा करते हुए दिखाये जाते है। भगवान् बुद्ध की मूर्ति मे भी शिरोभाग के दोनो पार्श्वो मे उडते यक्ष, माला सहित उत्कीर्ण किये मिलते है।

ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणो के अनुसार वे राक्षस तथा खसा की सन्तान हैं। वे अपनी माता को खा जाना चाहते थे अतएव उनका नाम यक्ष पडा। यक्षो के रूप का वर्णन किया गया है। उन्हे चार हाथ तथा चार पैर वाला दिखाया गया है। रात्रि मे अपने आहार निमित्त विचरण करते है। एक यक्ष वसुरुचि का रूप धारण कर अप्सरा क्रथस्थला के साथ नन्दन में निवास किये थे। उससे रजत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यक्ष अपने पुत्र के साथ हिमालय में निवास निमित्त आया था।

ब्रह्माण्ड (३ ७ ६०, १००–१७, २२·१४, ४१ ३०, ७१ १११,) भागवत आदि पुराणो मे यक्षो की उत्पत्ति की एक और कथा है। कश्यप पिता तथा विश्वा माता का पुत्र यक्ष था। (भागवत (२ ६ १३, ६·८२४, १० ३:२७, ६२ १८, ८५ ४१ ब्रह्माण्ड पुराण २·३२ १–२, ३५ १९१, ३६·११८)

पुराणो मे उन्हे रुद्र का अनुयायी कहा गया है। उनके स्वामी का नाम कुबेर दिया गया है। भागवत (४·१०:४,११·१६.१६,२३ २४) तथा मत्स्य पुराण (८·५) के अनुसार ब्रह्मा ने यक्षो का अधिनायकत्व शूलपाणी को दिया था। वृत्र की सहायता इन्द्र के विरोध में यक्षो ने की थी। दक्ष यज्ञ मे सती के साथ गये थे। भागवत (६·१०२०,४:४ ४:३४) उनके खेलो का वर्णन भागवत पुराण (१०:९० ९) मे किया गया है। हरि की भक्ति के कारण यक्षो ने मोक्ष प्राप्त किया था। भागवत (७·७·५०)। ब्रह्मा के समीप जब ककुद्मी गये थे तो उनका अनर्त राज्य यक्षो ने ले लिया था। भागवत (९·३ ३६) देवों के साथ भगवान् कृष्ण को यक्ष देखने आये थे। भागवत (७ ८.३८,९:३१ २) रावण ने यक्षो को परास्त किया था। ब्रह्माण्ड पुराण (३ ७:२५५)। वे पित्रो की पूजा करते थे। भागवत पुराण (३ १० ३८, ११९, ११८१, ४ २ २६, १४ ४, २० ५०, ३०:९, ३३ ७५)।

मत्स्य पुराण (अध्याय २३) मे वर्णन मिलता है कि देव गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण शंकर तथा चन्द्रमा मे युद्ध हुआ। उसमे यक्षो के स्वामी कुबेर ने वैताल, यक्ष, नाग तथा किन्नरो की सेना के साथ शंकर की सहायता निमित्त युद्ध मे भाग लिया था।

मत्स्य पुराण (अ० १८०) मे यक्षो के विषय मे एक रोचक कथा दी गयी है। उससे यक्षो के व्यवहार, आचरण तथा धर्म पर प्रकाश पडता है। इसका सम्बन्ध हरिकेश यक्ष से है।

पूर्णभद्र यक्षो का राजा था। उसका पुत्र हरिकेश था। हरिकेश शिव का उपासक बन गया। पूर्ण भद्र ने अपनी पुरातन परम्परा पर पुत्र का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—रुद्र की उपासना उचित नही है। हमारा काम मानवो से भिन्न है। यक्ष स्वभाव से क्रूर होते हैं। कच्चा मास खाते है। कुत्सित जीवो का भक्षण करते हैं। हिंसक होते हैं।

न हि यक्षकुलीनानामेत मूढ व्रत तव।
गुह्यका बत यूय वै स्वभावाक्क्रूरचेतस.॥
कृत्यादाश्चैव किमक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मैव कार्षीर्न ते वृत्तिरेव दृष्टा महात्मना॥

पिता की बात न मानकर हरिकेश काशी आकर तपस्या करने लगा। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने हरिकेश से वर माँगने के लिये कहा। हरिकेश ने शिव भक्ति का वर माँगा। शिवने प्रसन्न होकर यक्ष को वरदान दिया —'यक्ष, तुम सबके पूज्य गणो के स्वामी तथा धनपति होगे। प्राणियो से अजेय होगे। अन्नदाता होगे। क्षेत्रपाल होगे। उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे होगे। तुम दण्डपाणि होगे।'

काशी तथा मथुरा दोनों स्थानो पर यक्ष लोग अपने पुरातन धार्मिक परम्परा के स्थान पर शिव की उपासना अपना लिये। यक्षों ने लौकिक किंवा जातीय धर्म तथा रीतियो के स्थान पर शैव मत स्वीकार कर लिया। उन्हे शिव के गणो मे सम्मिलित कर लिया गया। वे शिव के भक्त तथा अनुयायी हो गये थे।

भागवत (२ ६.१३) मे विराट् पुरुष के वर्णन के प्रसंग में देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्षो, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, प्रेत, विद्याधर, सर्पादि को एक वर्ग में रखकर उन्हे विराट् पुरुष माना गया है।

भागवत (६ ८ २४) मे नारायण कवच के वर्णन मे कूष्माण्ड, विनायक यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि को कौमोदकी गदा से नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है।

देवराज इन्द्र के विरुद्ध जाते हुए यक्षो का वर्णन किया गया है। दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस सुवर्ण के साज सामान से सुसज्जित होकर देवराज इन्द्र की सेना की बाढ रोकने के लिये आये थे। (भा०६ १० २०)।

नृसिंह अवतार के समय भगवान् के समीप जय-जयकार करते आने वालो में—सिद्ध, विद्याधर, महा-नाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरायें, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वैताल, सिद्ध, किन्नर, सुनन्द तथा कुमुद आदि विष्णु के सभी पार्षद वहाँ आये। भागवत (७ ८ ३८) यहाँ पर विष्णु के पार्षद रूप से यक्षो का वर्णन किया गया है।

रेवत ने कुशस्थली नामक नगर बसाया था। उनके ५० ककुद्मी थे। वे ब्रह्मा से भेंट करने गये थे। लौटकर अपने नगर मे आये। देखा कि उनके वशजो ने यक्षो के भय से नगर का त्याग कर दिया था। भागवत पुराण (९.३.३५)।

भागवत (१०.६ २७) में यक्षो को भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस और विनायक के वर्ग में रखा गया है। भागवत पुराण (१० ३२ १९) में यक्षो को पुन देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, दैत्य, विद्याधर तथा मनुष्यो के साथ वर्णन किया गया है। भागवत पुराण (१० ९० ९) मे भगवान् अपनी पत्नियो के साथ बिहार करने की उपमा यक्षराज कुबेर का यक्षिणियो के साथ बिहार करने के साथ देते हैं।

उद्धव के प्रश्नो का उत्तर देते हुए कृष्ण ने अपने विराट् स्वरूप का वर्णन किया है। उसमे कहा है—'मै दैत्यो मे दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रो में चन्द्रमा, औषधियो मे सोमरस एव यक्षराक्षस में कुबेर हू। (११ १६.१६)।

यक्षो को 'धन कृपण' कहा गया है 'जो मनुष्य, देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति, भाई, कुटुम्बी और धन के भागीदारो को उनका भाग देकर सन्तुष्ट नही रखता और न स्वय ही उपभोग करता है वह यक्ष के समान धन की रखवाली करने वाला कृपण है।' भा० (११.२३.२४)।

रामायणकार को यक्षो का ज्ञान था। सुग्रीव ने बन्दरो को सीता के अन्वेषणार्थ जिन देशो तथा जातियो में जाने का नाम लिया था उनमें यक्ष का भी नाम है। वह जाति कैलास के समीप उत्तर मे निवास करती थी। (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३:२३)।

मत्स्य पुराण (अध्याय १२१) में यक्षो के निवास-स्थान के सम्बन्ध में उल्लेख है -- कैलास पर्वत के पूर्व और उत्तर दिशा में दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला रत्नो की तरह जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभा गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदी निकली है। नदी के तट पर चैत्ररथ वन है। उसके समीपस्थ पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा, यक्ष सेनापति, गुह्यको से रक्षित निवास करता है।

कैलास के दक्षिण और पूर्व दिशा मे हेमशृंग किंवा लोहित नामक एक पर्वत है। उसके पाद प्रदेश में लोहित सरोवर है। उससे लौहित्य महानद निकला है। उसके तट पर विशोक वन है। वहाँ परम धार्मिक मणिधर यक्ष एवं सौम्य गुह्यको द्वारा रक्षित निवास करता है।

ककुद्मी कैलास के पश्चिम ककुद्मान पर्वत पर रुद्र (वृष नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई थी। त्रिक-कुद के सम्मुख त्रैककुद कज्जल तुल्य शैल है। वहाँ वैद्युत पर्वत है। उस पाद में मानस दिव्य सरोवर है। उससे सरयू नदी निकली है। उसके तट पर वैभाज दिव्य वन है। वहाँ प्रहेति का पुत्र कुबेर का सेवक ब्रह्मघाती पौरुषशाली राक्षस निवास करता है।

वायु पुराण (अध्याय ३९) में यक्षो का निवास स्थान दिया गया है—शतशृंग पर्वत पर अत्यन्त बली यक्षो के सौ पुर है।

वायु पुराण (अध्याय ६९) मे यक्षो के विषय में उल्लेख मिलता है—

पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष, एव देवजन नामक यक्षादि गुह्यको के अन्तर्गत है। अगस्त्य पौलस्त्य तथा विश्वामित्र के गोत्रो में उत्पन्न होने वाले राक्षस तथा यक्षो के राजा कुबेर है। अलका नगरी के कुबेर अधी-श्वर है। यक्ष केवल आँखो से देखकर रक्त मास एव चर्बी पी जाते है। राक्षस शरीर के भीतर प्रवेश कर पी जाते है। पिशाच पीडित कर पीते है। सभी लक्षणो से सम्पन्न देवताओ के समान, अधि-कारी, तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यशाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, शक्तिशाली, विक्रमी, लोको द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करने वाले, तेजस्वी, यक्षादि के योग्य वरदान देने वाले, यक्ष परायण एव देवताओ के समान धर्मात्मा होते है, उन्हे असुर कहा जाता है।

गन्धर्वों का प्रभाव देवताओ की अपेक्षा तीन-चौथाई हीन होता है। अर्थात् गन्धर्वों में देवताओ का चतुर्थांश प्रभाव हीन है। गुह्यक का प्रभाव यक्षो के प्रभाव का चतुर्थांश होता है। अर्थात् गुह्यको में केवल सोलहवा भाग देवताओ के प्रभाव का शेष रहता है। राक्षसो का प्रभाव गुह्यको अर्थात् यक्षो तुल्य होता है। यक्षो से तीन गुने हीन प्रभाव पिशाच होते हैं। रूप, वायु बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपस्या, शास्त्र बल एवं पराक्रम मे गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच चार देवयोनियो मे उत्पन्न होने वाले, वर्ग सुर तथा असुरो की अपेक्षा हीन होते है।

उक्त उद्धरणो से यक्षो के सम्बन्ध में कुछ बातें स्पष्ट होती है। (१) यक्ष देवयोनि में थे। मानव थे। (२) उन्हे गन्धर्व, राक्षस तथा पिशाचो के वर्ग में रखा गया है। (३) सुरो की अपेक्षा असुरो के वर्ग मे उन्हे अधिक रखा गया है। (४) वे हिमालय निवासी थे। उनका आवास कैलास के आसपास था। (५) वे आसुरी मत, मासादि खाने तथा रक्त पात करने वाले थे। किन्तु कालान्तर मे वे शिव के अनुयायी हो कर शैवमतावलम्बी हो गये थे। (६) कुबेर उनका राजा था। वे युद्ध मे भाग लेते थे।

तपोविभूतयोऽचिन्त्या द्विजानामुग्रतेजसाम् ।
तादृशामपि ये कुर्युः प्रभावस्य विपर्ययम् ॥ १६० ॥

१६० उग्र तेजस्वी द्विजो की तापो विभूतियाँ अचिन्त्य होती है क्योंकि उन जैसे राजाओ का भी प्रभाव जिन्होने नष्ट कर दिया है।

दायादादिबलैर्नष्टा दृष्टा भूयः समुत्थिता ।
श्रीर्विप्रावज्ञया गज्ञामपुन संभवा पुनः ॥ १६१ ॥

१६१. दायाद[१] आदि के बल से नष्ट श्री का पुनरुत्थान देखा गया है किन्तु विप्रो को अवज्ञा द्वारा नष्ट श्री का होना असंभव है।

श्राद्धार्थमुत्थितः स्नातुं द्विजैः कैश्चिद् बुभुक्षितैः ।
प्राक्स्नानाद्भोजनं राजा स कदाचिदयाच्यत ॥ १६२ ॥

१६२. किसी समय राजा श्राद्ध निमित्त स्नान करने के लिये उठा। उसी समय कुछ बुभुत्सु ब्राह्मणो ने राजा से स्नान के पूर्व ही भोजन मांगा।

---

(७) मत परिवर्तन के कारण उन्हे शिव का गण बना लिया गया था। (८) गुह्यक लोग यक्षो की एक शाखा थे। (९) उनका सम्बन्ध भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा तथा पर्वतीय भागो मे रहने के कारण असुरो से होना स्वाभाविक था तथा उनका आचार-विचार प्रारम्भ से असुरो से मिलता था। (१०) यक्ष कश्मीर के सीमान्त मेरु के दक्षिण तथा कैलास के पश्चिम अर्थात् कश्मीर की उत्तरी पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहते थे।

मैंने गुह्यको के सदर्भ मे लिखते हुए यक्षो के विषय में कुछ लिखा हैं। कल्हण ने यक्षो का विवेचन यहाँ शिल्पी के रूप में किया हैं। वे सेतु निर्माण करने में निपुण थे। पुराणो मे यक्षो को वस्तुपरक माना है। कही-कही उन्हे इतर योनि भी माना गया हैं। आँखो मे पडने वालो के रूप मे भी चित्रित किया गया है। कल्हण ने इन सब कपोलकल्पनाओ को छोडते हुए वास्तविकता का परिचय दिया हैं। उसने यक्षो को एक जाति के रूप मे चित्रित किया है। जिनका मुख्य काम शिल्प था। राज्य मे जलाभाव को दूर करने के लिये राजा ने यक्षो-द्वारा योजना बनायी। वे राजा दामोदर के समय गुह्यको के साथ कश्मीर मे आबाद थे। गुह्यक और यक्ष दोनो शिल्पो के रूप में चित्रित किये गये है। किन्तु कल्हण ने गुह्यको का विवरण केवल सेतु के सम्बन्ध मे दिया है। और यक्षो का सेतु अर्थात् बाँध बनाने के सम्बन्ध मे दिया है। अतएव गुह्यक यदि सेतु बनाने मे प्रवीण थे तो यक्ष जलाभाव दूर करने के लिये बाध बनाने मे चतुर दिखायी पडते है।

१६१ (१) दायाद दायाद शब्द का अर्थ उत्तराधिकारी—पुत्र, भाई, बन्धु होता हैं। दाय भाग हिन्दू कानून इसी शब्द के आधार पर बना है। कल्हण, राजा का बल किस प्रकार नष्ट होता है, इस ओर सकेत करता है। कश्मीर मे राजा गण अपने उत्तराधिकारियो तथा सम्बन्धियो से बहुत परेशान किये गये थे। उनके कारण कश्मीर के राजा तथा कश्मीर राज्य दुर्बल होता रहा है। दिल्ली मे मुसलिम बादशाहो को सर्वदा अपने सम्बन्धियो से भय बना रहता था। उत्तराधिकार के लिये गृह युद्ध होता रहता था।

कल्हण यहाँ ब्राह्मणो की प्रबल शक्ति का वर्णन करता है। उसके मत से ब्राह्मणो का कोप-

यियासुना वितस्तान्तर्यदा तेनावधीरितम् ।
तदा प्रभावात्ते तस्य तां धुनीमग्रतो व्यधुः ।। १६३ ।।

१६३. वितस्ता गमनातुर राजा ने जब उनका तिरस्कार किया तो ब्राह्मणों ने अपने प्रभाव से वितस्ता[1] को राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया ।

सेयं वितस्ता दृष्ट्वनां भोजयास्मान्स तैरिति ।
उक्तोऽपि मायाविहितामज्ञासीत्सरिदाहृतिम् ।। १६४ ।।

१६४. ब्राह्मणों ने कहा --' यह वही वितस्ता है । इसे देखकर अब हमे भोजन कराओ । उनके इस प्रकार कहने पर भी राजा ने नदी का लाया जाना माया[1] ही समझा ।

भोज्यं ददामि नाऽस्नातो विप्राः सपत सांप्रतम् ।
तेनेत्युक्तास्तमशपंस्ततः सर्पो भवेति ते ।। १६५ ।।

१६५. ' विप्रो ! बिना स्नान किये मैं भोजन नही दूँगा । आप लोग इस समय सर्पत[1] होइये । ' राजा के इस प्रकार कहने पर ब्राह्मणो ने शाप दिया --' तुम सर्प हो जाओ ।'

भाजन राजा कभी सम्हल नही सकता । यद्यपि सम्बन्धियों तथा अन्य कारणो से नष्ट राजाओं का पुनरुत्थान देखा गया है ।

१६३ (१) वितस्ता : कल्हण ब्राह्मणों के प्रभाव, चमत्कार तथा अलौकिक शक्ति का यहाँ उल्लेख करता है । प्रतीत होता है । राजा किंचित् हठी था । वह ब्राह्मणो की शक्ति पर विशेष विश्वास नही करता था । अतएव उसने उपेक्षा भाव यहाँ प्रकट किया है ।

१६४ (१) माया : अलबेरुनी ने कश्मीर के ब्राह्मणो के चमत्कार का वर्णन किया है । वह कहता है कि कश्मीरी जड खिलौनो तथा प्रतिमानो को सजीव प्राणी की तरह चला देते थे। मैंने इसका यथा स्थान विस्तृत वर्णन किया है ।

निस्सन्देह योग तथा सिद्धियो द्वारा बहुत कुछ अनहोनी बातें प्रत्यक्ष दिखाई पडती हैं । ब्राह्मणो के इस चमत्कार को देखकर भी राजा ने विशेष महत्त्व नही दिया । क्योकि वह ब्राह्मणो की माया का उसे खेल समझता था ।

विप्रो तथा राजा के सवादों से प्रकट होता है कि ब्राह्मण भोजन पाने के लिए जिद कर रहे थे । और राजा भी स्नान के पश्चात् ही भोजन देने का हठकर बैठा था । यह ध्यान देने की बात है कि राजा ने भोजन देना अस्वीकार नही किया था । वह श्राद्ध निमित्त स्नान के पश्चात् देने पर हठ किया था । कल्हण स्वय ब्राह्मण था । अतएव उसने यहाँ ब्राह्मणो की प्रतिभा दिखाने का स्वाभाविक प्रयास किया है ।

१६५ (१) सर्पत कल्हण ने यहाँ अपनी कविप्रतिभा का परिचय दिया है । पूर्व पद मे 'सर्पत साप्रतम्' तथा उत्तर पद मे 'सर्प' शब्द का प्रयोग कर अनुप्रास बैठाया । राजा ने उन्हे जैसे रेंगते हुए चले जाने के लिये कहा । उनका तिरस्कार किया । उस तिरस्कार से क्रुद्ध होकर राजा के ही 'सर्पत' शब्द को पकड कर 'सर्प' हो जाने का शाप दिया । मनुष्य को सर्प रूप परिणत कर देना यह कोई नयी बात नही थी । इसके और भी प्रमाण पुरा साहित्य मे मिलते है ।

नहुष जब इन्द्र पद पर आसीन हुए थे तो उन्होने इन्द्राणी को प्राप्त करने का प्रयास किया । सप्तर्षियो से पालकी उठवायी । इन्द्राणी मिलन की उतावली मे सत्वर गति से चलने के लिए 'सर्प-सर्प' कहने लगे ।

अशेषमेकेनैवाह्ना श्रुत्वा रामायणं तव ।
शापस्य शान्तिर्भवितेत्यूचिरे ते प्रसादिताः ।। १६६।।

१६६. राजा द्वारा प्रसन्न हुए ब्राह्मणो ने कहा -- 'सम्पूर्ण रामायण एक दिन मे सुनने पर शाप शान्त[1] हो जायगा।'

स दामोदरसूदान्तर्धावन्दूररुदन्यया ।
शापोष्णश्वासधूमेन जनैरद्यापि लक्ष्यते ।। १६७ ।।

१६७. आज भी लोग उस शाप ग्रस्त[1] राजा को उसके उष्णश्वास के धूम से पहचानते हैं जो जल निमित्त दामोदर सूद मे इधर उधर प्यासा घूमता रहता है।

अथाभवन्स्वनामाङ्कपुरत्रयविधायिनः ।
हुष्कजुष्ककनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रैव पार्थिवाः ।। १६८ ।।

१६८ तत्पश्चात् वही पर तीन राजा हुष्क[1] जुष्क तथा कनिष्क नाम के हुए जिन्होने अपने नाम पर तीन नगर (हुष्कपुर, जुष्कपुर, कनिष्कपुर) बसाये।

सप्तर्षियो मे अगस्त्य ऋषि ने क्रोधित होकर शाप दिया —'तू सर्प हो जाय।' राजा नहुष सर्प होकर पृथ्वी पर गिर पडे। अगस्त्य को उसकी दशा पर दया आयी। उन्होने शाप शान्ति के लिये कहा— युधिष्ठिर के राज्य काल में तुम्हे सर्प योनि से मुक्ति प्राप्त होगी। (मे० उ० ११ . १७' अनु० १५६-१५७ ' आ० ६ १८ २—३ ' . भा० ६ ७—८ ' विष्णु० १ २४)

राजा नहुप तथा राजा दामोदर द्वितीय दोनो ब्राह्मणो के कारण पतित होकर सर्प गति पाये थे। राजा नहुष तथा राजा दामोदर दोनो को ब्राह्मणो का कोपभाजन बनना पडा था। उनके कारण राज्य के साथ ही साथ मनुष्य योनि त्याग कर सर्प होना पडा।

१६६ (१) शाप ऋषि, मुनि, देवी, देवता, सक्षम ब्राह्मण क्रोधित होने पर शाप देते है। शाप देने वाले की भी शक्ति क्षय होती है। शाप सर्वदा क्रोध के कारण दिया जाता है। आन्तरिक क्रोध का शाप बाहरी साकार रूप है। क्रोध स्वत अवगुण तथा दोप है। प्राय देखा गया है कि शाप देने वाला ही शाप शान्ति का उपाय भी बताता है। नहुष के शापित होने पर अगस्त्य ने शाप शमन का उपाय बताया था। यहाँ पर भी शाप देने वाले विप्रो ने ही उसके शान्ति का उपाय राजा को बताया था।

१६७ (१) शापग्रस्त : कल्हण के समय तक यह कहावत प्रचलित थी। दामोदर उद्र मे उसे सर्प स्वरूप व्याकुल तृषित गर्म श्वास लेते हुए लोग देखते है। इससे दो बातें प्रकट होती है। मालूम होता है राजा शाप मुक्त नही हुआ था। कल्हण उसकी मृत्यु, राज्य काल, उसके उत्तराधिकारियो के विषय में कुछ नहीं लिखता। इस विषय पर कही से और प्रकाश अभी तक नही पड सका है। स्थानीय वृद्ध ग्रामीण इस प्रकार को कथा कहते हैं। परन्तु नयी पीढी उन्हें भूल रही है। कल्हण ब्राह्मणो के शाप के अद्भुत प्रभाव की धाक बैठाता है। चेतावनी देता है। विप्र के विमुख होने पर परिणाम भयंकर होता है। कहावत है—दुर्भाग्य गर्म श्वास पैदा करती है। और सौभाग्य उसे शीतल बना देता है।

१६८ (१) आइने अकबरी में उन्हें व्येशेक, जेशेक, केनशेक तीन भाई कहा गया है। अबुल

फजल कहता है। तातार में एक कथा प्रचलित है। ओधुज तुरुष्क राजा ने बोखारा, बलख, इमोर, काबुल तथा कश्मीर जीता था। उस समय कश्मीर का राजा जगम् था। उसने कश्मीर मे जफैत नामक धर्म चलाया। यह घटना ई० पू० २८०० वर्ष पहले घटी थी।

हसन इनके सम्बन्ध मे रत्नाकर पुराण का सन्दर्भ देकर एक विचित्र बात कहता है—'तुर्किस्तान के शहजादो मे से ३ आदमी हुष्क, जुष्क, कनिष्क राजा सन्दिमान के इस तख्त पर हमराह थे। इस बिना पर अपनी पैंदाइश खसलत के बमूजिब इन तीनो शहजादो को मुल्क कश्मीर बतौर जागीर बख्शा। इस मुल्क के बहुत से लोगो को अपना गरवेदा बना लिया। एक हफ्ता तक कश्मीर की शैर वह सपाहत अख्तियार कर वापसी अख्तियार किया।'

रत्नागर किंवा रत्नाकर पुराण की गाथा को मिथ्या करार देने के लिये यहाँ एक और प्रमाण उपस्थित हो जाता है। हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क के कालो का निर्धारण हो चुका है। कनिष्क (७८–१०१ ई०) ईसा के पश्चात् हुआ था। हजरत सुलेमान का काल ईसा से ९७० वर्ष पूर्व है। हज़रत सुलेमान का काल ९७० ईसा पूर्व से ९३३ वर्ष ईसा पूर्व निर्धारित हो चुका है। सन्धिमति, सन्धिमान, सन्धिमदि एक ही व्यक्ति के नाम है। अभिमन्यु के काल तथा सन्धिमान के काल में लगभग ११०० वर्षो का अन्तर है। सम्राट् कनिष्क तथा हजरत सुलेमान के समय में १०४८ वर्षो का अन्तर है। अभिमन्यु, हुष्क, जुष्क, कनिष्क, सन्धिमत तथा हज़रत सुलेमान जिन्हे एक ही समय मे रखने का प्रयास किया है। उनके ऐतिहासिक कालो में शताब्दियो का अन्तर है। वे एक समय नही हुए थे। उनका एक काल में होना ऐतिहासिक तथ्यो के परे है। रत्नाकर पुराण की कपोल कल्पना, उसके अनुवाद तथा उसके अस्तित्व मे गम्भीर सन्देह प्रकट करने का अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है।

हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क को सन्दिमान अर्थात् हजरत सुलेमान ने काश्मीर का राज्य जागीर के रूप मे दिया। उन्हे तुर्किस्तान से साथ लाकर, गद्दी पर बैठाया। इतिहास इसकी साक्षी देने में असमर्थता प्रकट करता है। हुष्क, जुष्क, तथा कनिष्क तीनो को काश्मीर राज की जागीर दी गयी और तीनों एक साथ राज्य किस प्रकार कर लिये ऐतिहासिक तथ्यो तथा घटनाओ के विरुद्ध होते हुए भी मानवीय प्रकृति के तथा व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नही है। एक साथ तीन राजा सिंहासन पर बैठें। राज्य करें, वह भी जहाँ राज्य प्रणाली राजतंत्र पर आधारित हो इतिहास इस प्रकार का उदाहरण भूत वर्तमान तथा किसी काल में देने में असमर्थ है। गणतन्त्र शासन प्रणाली में यह सम्भव हो सकता है। जैसे कि रोम मे दो कार्उसिलो की प्रथा थी।

हुष्क, जुष्क तथा कनिष्क तीनो तीन विभिन्न व्यक्ति थे। तीनो का राज्यकाल भिन्न था। अतएव हसन तथा रत्नाकर पुराण को गाथा मनगढन्त कपोल कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नही है।

हज़रत सुलेमान और कनिष्कादि : हसन अपने इतिहास मे लिखता है—यह तीनो राजे हजरत सुलेमान की मदद से क० १७९८ संवत् मे हकूमत कश्मीर पर मुन्तकिल हो गये। मखलूक खुदा को अपने अदल व इन्साफ और सखावत से दिल खुश किया। इन तीनो ने तीन गाँव आबाद किये। चुनाच हुष्क ने मौजा अशकूरा, कनिष्क ने परगना वहो में कापपुरा और जुष्क ने परगना काक में मौजा जकरो जजी आखराजल करने मौजा जकरो की आबादी के लिए, सन्दलार से पानी की एक नहर जारी की। मज़कूरह बाला तीनो राजाओ ने इकतालीस साल इत्तहाई, इतफाक व इतहाद से, हकूमत की। और बहुत से लोगो को अपने मज़हब का गरवीदा बनाया। इसके पहले एक शख्स शाख सहम

नामी ने डेढ सौ साल से लेकर इनके वक्त तक खिता कश्मीर मे वुद्धमत का प्रचार किया था और बहुत से लोगो को इस मजहव में दाखिल कर लिया था। उसके पैरोकारो में एक शख्स नागसेन ने मौजा हारून में वुद्धमत के प्रचार मे वदिल वजान कोशिश की थी। उन्ही दिनो वरहमनो और जैनियो के मा वैन मजहवी मुआमलात पर सख्त झगडा वरपा हुए जिससे जनवेन में सख्त खून रेंजी हुई। हुष्क और कनिष्क के पास इन झगडो को दवाने के लिए काफी फौज न थी। इसलिए वह इस मुआमला (हकूमत) के चलाने से आजिज रहे। इसलिए तमाम वरहमनो के इत्तफाक़ राय से अभिमन्यु जो राजा वीरमचन्द की औलाद से था और परगना दाच्छेन वारह में जागरो रखता था। तख्त सल्तनत पर वैठा। हुष्क, कनिष्क और जुष्क हकूमत से अलग कर दिये गये। (पृष्ठ ४२–४३)

उक्त वातें मनगढंत हैं। हजरत सुलेमान ने अगर इन लोगो को गद्दी पर वैठाया तो उनको भगवान् वुद्ध के समय या उनके पश्चात् होना चाहिए। परन्तु भगवान् बुद्ध हज़रत सुलेमान के ४१६ वर्ष पश्चात् हुए थे। उनके जीवन में शताब्दियो का अन्तर है। वाइविल के हजरत सोलेमन और कुरान शरीफ़ के हजरत सुलेमान एक ही व्यक्ति है। कनिष्क का काल सन् ईसवी की पहली शताव्दी है। कनिष्क और भगवान् वुद्ध के समयो मे चार शताब्दियो का अन्तर है। कनिष्क के समय मे तृतीय वुद्ध परिषद कश्मीर में हुई थी। अतएव कनिष्क को हज़रत सुलेमान से जोडना इतिहास की सत्यता, तथा सिद्ध घटनाओ, तथ्यो और काल निर्णय से परे जाना होगा।

छिन्नश्रृंखला:

कह्लण की इतिहास श्रृखला वहाँ टूट जाती है। जलौक के पश्चात् दामोदर द्वितीय तत्पश्चात् वह हुष्क, जुष्क, कनिष्क का उल्लेख करता है। दामोदर द्वितीय से उक्त राजाओ के कालो में शताब्दियो का अन्तर पडता है। कल्हण ने इन तीनो राजाओ का वर्णन छविल्लाकर के आधार पर किया है। (रा० त० १ २०)

कल्हण यहाँ मौन हो जाता है। इस लम्बे काल में कश्मीर में कितने राजा हुए। कश्मीर मण्डल की क्या अवस्था थी ? कोई प्रकाश नही पडता।

अशोक के पश्चात् लगभग अडतालीस वर्षो तक मौर्य वश का राज्य ईसा पूर्व १८४ वर्ष तक था। मौर्य वश के पश्चात् ईसा पूर्व १८५ वर्ष में शु ग वश का राज्य पाटलीपुत्र में हुआ। कनिष्क का काल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है।

जलौक तथा दामोदर का राज्य काल कल्हण ने नही दिया है। यदि उन दोनो का सम्मिलित राज्य काल पचास से साठ वर्ष भी मान लें तो दामोदर और कनिष्क के बीच कम से कम एक शताब्दी का अन्तर पड जाता है।

कल्हण स्पष्ट कहता है। जलौक के पश्चात् दामोदर द्वितीय राजा हुआ। परन्तु दामोदर द्वितीय के पश्चात् कश्मीर मण्डल में कौन राजा हुआ उसपर कुछ प्रकाश नही डालता। इस शताब्दी का इतिहास अभी तक अन्धकार की गोद में है। जलौक की वश परम्परा लुप्त हुई। दामोदर राजा हुआ। प्रतीत होता है कि दामोदर का वश भी लुप्त हो गया था। दामोदर के शाप ग्रस्त होने पर क्या घटनाएँ घटी कुछ पता नही चलता। दामोदर ने रामायण सुनकर प्रायश्चित्त किया या नही यह भी सन्दिग्ध है। वह सर्प हो गया। सर्प तुल्य गर्म श्वास लेता था। इससे यही प्रकट होता है। उसने प्रायश्चित्त शायद नही किया। उसके वश में कोई था या नही। उसके सर्प होने पर कश्मीर की क्या अवस्था हुई सब कुछ लुप्त हैं। क्योकि कल्हण ने ५२ लुप्त राजाओ में से केवल पाँच राजा अर्थात् अशोक से अभिमन्यु यथा जलौक हुष्क, जुष्क, कनिष्क तथा अभिमन्यु का वर्णन किया है। अतएव इनकी काल गणना अमान्य है। इन दोनो राजाओ का क्रम भी

गलत दिया गया। इस पर प्रकाश परिशिष्ट 'कुशान राजा' मे डाला गया है।

कुशान वंशी किस प्रकार काश्मीर के राजा हुए कल्हण मौन है। वह दामोदर द्वितीय के पश्चात् सहसा कुशान वंशीय राजाओ का उल्लेख करता है। कोई कारण भी नही उपस्थित करता कि वह लम्बी राजाओ की शृंखला का जो दामोदर द्वितीय से कुशान वंशीय राजाओ तक हुए थे उल्लेख क्यो नही करता। प्रतीत होता है कश्मीर मे लिखित, अलिखित कोई सामग्री प्राप्त नही थी जिसके आधार पर वह एक शताब्दी के राजाओ तथा कश्मीर की घटनाओ पर प्रकाश डालता।

(२) **हुष्क :** मथुरा के लेख से हुष्क राजा हविष्क प्रमाणित हुआ है। परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(३) **जुष्क :** जुष्क राजा वास्तव में कुशान राजा वशिष्क था। परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(४) **कनिष्क :** परिशिष्ट 'कुशान वंश' द्रष्टव्य है।

(५) **हुष्कपुर :** वर्तमान उश्कुर गाँव है। यह ग्राम बारहमूला से २ मील दक्षिण-पूर्व वितस्ता के वाम तट पर स्थित है। बारहमूला के डाक बंगला से आध मील पर है। कल्हण ने इसे वाराह क्षेत्र मे कहा है। (रा० त० ५ २५९, ६.१८६, ७ १३११, ८:३६०, ७१८, ८२२, ९४४)

यहाँ ललितादित्य ने विहार तथा मन्दिर निर्माण कराया था (रा० त० ४·१८८)। कश्मीर के पश्चिमी पत्थरो से बने द्वार से प्रवेश करने पर यही हुएनसाग ठहरा था (हुएनसाग १:२०) अल्बेरुनी ने इसे वारहमूला के दूसरी तरफ लिखा है। (इण्डिया पृष्ठ १ २०७)। अबूरिहान उष्कर और वारहमूला को मिला दिया है। (फ्रग मेण्टस आफ अरब पृष्ठ .११६)

बारहमूला के समीप उष्कर ग्राम वितस्ता के वाम पार्श्व मे है। यहाँ दो चीजें दर्शनीय है। एक ऊँचा टीला उष्कर ग्राम के पास है। मैं जिस समय पहुँचा था यहाँ भारतीय फौज की छावनी थी। छावनी के फाटक तथा ऊँचे ढूहा के मध्य से बारहमूला ऋषी बाबा की सडक है। वह सडक बारहमूला से बाबा ऋषी जाती है।

ढूहा पर एक भीमकाय शिवलिंग है। लगभग ६ फीट ऊँचा है। मेरे पास फीता नही था। अतएव ठीक नाप नही दे सकता। शिव लिंग में एक बाण बना है। बाण की नोक मूर्धा से प्रत्यंचा नीचे की तरफ होती भद्रपीठ तक चली गयी है। लिंग का भद्रपीठ चौकोर है। लिग मे बाण तथा यज्ञोपवीत तुल्य प्रत्यंचा बना मैने अब तक कही किसी लिंग में नही देखा है। इस लिग का नाम क्या था। कहना कठिन है। बाण चिह्न अंकित होने के कारण 'बाणेश्वर' नाम रखा जा सकता है। इस समय केवल लिंग अकेला गडा है। यहाँ न तो कोई मन्दिर है न किसी प्रकार का ध्वसावशेष। लिग की पूजा भी नही होती। बाणेश्वर लिंग होना असम्भव नही है। बाणेश्वर का मन्दिर रतलाम स्टेशन से ४४ मील पर स्थापित है। यह स्थान बाणासुर की राजधानी थी। कथा है कि बाणासुर ने बाणेश्वर लिंग की स्थापना की थी। संभव है। इस ढूहा पर कभी मन्दिर था वह तोड दिया गया। अब उसका ध्वंसावशेष मात्र रह गया है। ढूहा खोदने पर यहाँ के स्थान पर कुछ प्रकाश पड सकता है। यहाँ की ईंट आबादी पास होने के कारण गाँव वाले उठा ले गये हो। केवल मिट्टी का टीला मात्र शेष रह गया है।

उष्कर ग्राम मे, वारहमूला स्कूल के प्लेग्राउण्ड के पीछे मुकुलित कमल शैली के स्तूप का भग्नावशेष है। परिहासपुर तथा उष्कर दोनो स्तूपो की परिकल्पना एक जैसी है। इस समय यह स्थान तार से घेर दिया गया है। बडी-बडी घास तथा जंगली खर-

पात उगे थे। उनसे मेरा पैर बुरी तरह छिला गया। किसी प्रकार अन्दर पहुँचा।

स्तूप का अधिष्ठान मात्र शेष रह गया है। स्तूप की चारो दिशाओं में सीढियाँ बनी हैं। दो सीढियो के बीच तीन त्रिकोणीय अधिष्ठान के अश किवा कमल की मुकुलित एक एक पखडी है। इस समय यहाँ यत्र-तत्र पडे कुछ अलकृत शिलाखण्डो के अतिरिक्त और कोई दर्शनीय वस्तु शेष नही रह गयी है। स्तूप के पृष्ठ भाग मे एक तरफ पहाडो है। दूसरी तरफ वारहमूला शहर वितस्ता के वाम तट पर है। बारहमूला इस समय समृद्धिशाली नगर हो गया है। भारतीय सेना की छावनी के कारण खूब चहल-पहल रहती है।

हुष्कर मे एकाकी एक स्तूप और उसके परिवेष्ठित दिवाल का अश शेष रह गया है। खनन कार्य मे यहाँ से प्राप्त खिलौने प्रतापसिह सग्रहालय श्रीनगर कश्मीर मे सगृहीत हैं। वे दिवाल के उत्तरीय दिशा में एकाध फीट की दूरी पर गडे मिले थे। कश्मीर में मूर्तिभग की शैली भारत जैसी ही थी। मन्दिर तथा मूर्तियो को खण्डित करने की एक शैली प्रचलित हो गयी थी। मूर्तियो के नाक तथा हाथ अवश्य खण्डित कर दिये जाते थे। खण्डित मूर्तियो को या तो किसी मसजिद को सीढियो मे लगा दिया जाता था कि लोगो के पैरो तले पडती अपनी असमर्थता, दयनीय दशा, शक्तिहीनता प्रकट करती रही अथवा तोडकर कही मुर्दों की तरह दफना दी जाती थी।

हुष्कर से प्राप्त खण्डित मूर्तियो पर गन्धार शैली की छाप है। मूर्तिया कश्मीर के पुराकालीन मूर्तिकला तथा उनके स्थापत्य शैली पर प्रकाश डालती हैं।

प्रताप सिह सग्रहालय की भगवान् वुद्ध की (वी सी. १.) मूर्ति ध्यान मुद्रा प्रदर्शित करती है। भगवान् पद्मासन लगाकर बैठे हैं। त्रिचीवर धारण किये हैं।

मूर्ति बी सी २ गान्धार परवर्ती काल की मूर्ति कला पर प्रकाश डालती है। यह एक मस्तक मात्र है। अधोभाग का पता नही चला है। मूर्ति भग्न है। मूर्धा पर उर्म है।

मूर्ति बी सी. ३ भग्न मस्तक है। नाक तोड दिया गया है। मस्तक के उर्म खण्डित है। मुख अण्डाकार है।

मूर्ति बी. सी ४ एक ब्राह्मण का मस्तक है। तत्कालीन लोगो की वेशभूषा पर प्रकाश डालती है। मूर्ति कला सजीव है। दाढी-मूँछ है। केश पीछे बँधे है। वाल कघी से सँवारे गये हैं।

मूर्ति वी. सी. १० केश विन्यास का उत्कृष्ट नमूना है। घुंघराले केशो से कान ढका है। मूर्धा पर से केश चारो तरफ फैले है। उन्हे सर पर मुक्तापोहित सूक्ष्म वस्त्र से बाँधा गया है। आज कल केशो को सयत रखने के लिये रूमाल या पट्टी से प्राय बाल बाँध लिये जाते हैं। कश्मीर के खेतो पर काम करने वाली नारियो के सर पर इसी प्रकार के वस्त्रो से बाल बाँधा मुझे दिखाई पडा। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण कश्मीर की नारियो के साज-शृगार तथा वेशभूषा मे आमूल परिवर्तन होने लगा है। मूर्ति की मुखाकृति कोमल है। यह भग्न मस्तक बोधि सत्त्व का है।

मूर्ति बी सी. ११ बोधिसत्त्व का भग्न मस्तक है। उस मस्तक पर अलकृत मुकुट है। यह मुकुट ब्रिटिश राजाओ के मुकुट से कुछ मिलता है।

मस्तक वी. सी. १५, एक युवक का है। उस मस्तक का, दाढी-मूँछ, सव कुछ मुडा है। अधरो पर आध्यात्मिक मुस्कान है। आकृति भव्य तथा प्रभावोत्पादक है। कलाकार ने जैसे अन्तर की मनोवृत्तियो को मुखाकृति में उरेह दिया है।

मूर्ति वी. सी. १८. अत्यन्त उत्कृष्ट कलाकृति यह एक उपासिका का खण्डित मस्तक है।

अधरो पर गम्भीर मुद्रा के साथ आध्यात्मिकता मिश्रित मुसकान है। भरी पुरी मुखाकृति है। कंघी से सँवारे केश मे सीमत मन मे अनायास पवित्र भाव उत्पन्न करते है। मिथुन, काम एव भौतिक सौन्दर्य प्रदर्शक मुद्रा के यह विपरीत मुद्रा है तथा कलाकृति है।

मूर्ति बी. सी १९· भग्न मस्तक है। नासिका, भौ, अधरो पर की मुसकान देखते बनती है। मस्तक पर बाल कढे हुए है। मध्य भाग से कानो के ऊपर होते हुए कंघी किये हुए केश पीछे की ओर घूमे है।

खण्डित पीन पयोधर की क्रम सख्या बी. सी. ३५ है। स्तन पर कुच बन्ध लगा है। कण्ठ में मुक्ता माला के अतिरिक्त स्तनो पर दूसरी मुक्तामाला सुशोभित हैं। कामिनी के शृगार के रूप को प्रकट करती है। तत्कालीन काश्मीर के लोग कितने शृंगार तथा कला के प्रिय थे। उस पर प्रकाश डालती है।

मस्तक खण्ड बी. सी. १६ एक भिक्षु का है। उसकी दाढी-मूँछ तो मुडी है परन्तु मस्तक पर बाल कढे हैं। यह तत्कालीन काश्मीरी लोगो के बाल रखने की एक शैली पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार के बाल काटने को बनारस की तरफ 'खत' काटना, कहते थे। मेरे बचपन मे पुराने लोग 'खत' कटाते थे। मेरा भी बाल बचपन में इसी ढग पर काटा जाता था। इस समय पाश्चात्य शैली पर बाल काटा जाने लगा हैं। पुरानी बातें लोग भूल रहे हैं।

मूर्ति खण्ड बी. सी. ३४ विचित्र मूर्ति है। उसका कटि तथा ऊरु मात्र शेष रह गया है। इस मूर्ति का शिश्न तथा अण्डकोष खुला है। कन्धा से आता कुर्ता कटि प्रदेश तक रह गया है। कुर्ता के छोर पर मुक्ता पक्ति गुथी है। यह किसी श्वेताम्बर जैन सन्त की मूर्ति हो सकती है।

इसके अतिरिक्त वहाँ से हाथ, कलाई, पद, भुजाओं के खण्डित भाग मिले है। उन्हे देखने से तत्कालीन वेशभूषा तथा विभिन्न प्रकार के प्रायोगिक अलंकारो पर प्रकाश पडता है। ककण, चूडियाँ, भुजबन्द पहनने की चाल थी। कलाई की उँगलियाँ बहुत ही सुन्दर तथा लहर की तरह बनायी गयी है।

(६) **जुष्कपुर :** श्रीनगर के उत्तर मे एक बडा ग्राम है। इसका वर्तमान नाम जुकुर है। हरि पर्वत से ४ मील दूर है। यहाँ के प्राचीन ध्वंसावशेषो के शिलाखण्ड, मजारो, कब्रिस्तानो तथा मसजिदो मे लगे मैंने देखा है। बहुत पत्थर गढकर नवीन इमारतो मे लगाये गये है। अतएव उनका पूर्व रूप निश्चित करना दिन पर दिन कठिन होता जायेगा। जनरल श्री कनिघम को सन् १८४७ मे तथा श्री स्तीन को वहाँ बहुत शिलाखण्ड मिले थे।

जनरल कनिघम ने सन् १८४७ ई० नवम्बर मास मे वहाँ की यात्रा की थी। उन्हे उस स्थान पर बहुत अधिक सख्या मे पत्थर के स्तम्भ मिले थे। कुछ कश्मीरी पुरातन शैली से अलकृत पत्थर थे। सबका उपयोग तराश कर मसजिदो तथा जियारतो मे किया गया था। (एनिसिएण्ट ज्योग्रेफी पृष्ठ ८५)

जनरल कनिघम ने जिन स्तम्भो तथा पत्थरो को देखा था वे निस्सन्देह जुष्कपुर मे निर्मित विहारो के अवशेष थे। अगले श्लोक से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उसने जुष्कपुर में विहार का निर्माण किया था। जुष्कपुर के उत्तर देवीपुर, पूर्व मे तालवल, पश्चिम प्राचीन अमरेश्वर, ऊबरहर और धुर दक्षिण डगरपुर तथा दूर पर हरिपर्वत पडता है।

(७) **कनिष्कपुर**. वर्तमान कानिशपुर है। यह श्रीनगर-बारहमूला सडक पर स्थित है। ग्राम के पास एक पुराना टीला है। वहाँ से अलकृत पत्थर मिले थे। कहा जाता है कि राजा कनिष्क का यहाँ निवासस्थान था। इस स्थान पर प्राचीन ध्वसावशेषो के शिलाखण्ड तथा मुद्राएँ मिलती है, जनरल कनिघम ने १८४७ मे यहा की यात्रा की थी। प्राचीन ध्वसावशेषो के शिलाखण्डादि उन्हे जियारतो तथा कब्रो में लगे मिले थे। बहुत अधिक सख्या मे इस प्रकार के ध्वंसावशेष बिखरे थे।

श्री स्तीन लिखते है। पण्डित साहिबराम के तीर्थ मे इसका मूल नाम कनिष्कपुर दिया गया है।

सविहारस्य निर्माता जुष्को जुष्कपुरस्य यः ।
जयस्वामिपुरस्यापि शुद्धधीः सविधायकः ॥ १६९ ॥

१६९ उस शुद्धधी जुष्क राजा ने जुष्कपुर के विहार का निर्माण कराया। वह जय स्वामीपुर[1] का भी निर्माता था।

ते तुरुष्कान्वयोद्भूता अपि पुण्याश्रया नृपाः ।
शुष्कलेत्रादिदेशेषु मठचैत्यादि चक्रिरे ॥ १७० ॥

१७०. तुरुष्क[1] वंश मे उद्भूत होते हुए भी इन पुण्यात्मा नृपो ने शुष्कलेत्रादि[2] स्थलो मे मठ, चैत्यादि वनवाथा।

श्री पण्डित काशीराम से श्री स्तीन ने सन् १८९१ ई० मे जाँच कराया था। वहाँ के स्थानीय ब्राह्मणो की एक प्रचलित परम्परा से ज्ञात हुआ था। यहाँ कनिष्ठराज का राज्य था।

यह स्थान पीर पचाल जाने वाले दर्रा मार्ग पर श्रीनगर से १० मिल दक्षिण स्थित है। यहाँ पर एक छोटी सराय है उसे कामपुर सराय कहते है।

यह स्थान वितस्ता नदी से लगभग ९ मील पूर्व है। इसके दक्षिण वितस्ता पर वारहमूला पडता है इसके उत्तर पूर्व रावटपुर तथा पूर्व दक्षिण सैय्यद भोकल की जियारत है।

१६९ (१) जयस्वामीपुर : जयस्वामीपुर का पता अभी नही चल सका है। इस पर अनुसन्धान की आवश्यकता है। जयस्वामी विष्णु का नाम है। प्रतोत होता है। जविष्क का झुकाव वैष्णव धर्म की ओर हो गया था। अन्यथा वह जयस्वामी शब्द का प्रयोग नही कर सकता। उसने जुष्कपुर मे विहारो का भी निर्माण कराया था। इससे प्रतीत होता है। राजा सहिष्णु था। वह वौद्ध तथा वैष्णव दोनो धर्मो का आदर करता था।

१७० (१) तुरुष्क : कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारी तुर्कवशीय थे। यह मान्यता प्राचीन काल से प्रचलित रही है। अल्वेरुनी ने भी यही कहा है (२ १०)। तुरुक्ष शब्द ऋग्वेद (२.४६ ३२) मे दास शब्द के साथ आया है। आर्येतर जाति किंवा दास हुए आर्य के लिये सम्भवत प्रयोग होता रहा है। पुराणो मे तुषार शब्द तुरुष्क के लिये भी आया है। भागवत के पाठ मे तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। इनका उल्लेख यवनादि राजाओ के साथ किया गया है। (वायुपुराण ९९ ३६० ६२, मत्स्य पुराण २७२ १९ २१ ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७४ १७२—१७६, भागवत पुराण १२ १ ३० ।)

पुराणो में उल्लेख आया है

काम्वोजा दरदाश्चैव वर्वरा अग लौकिका. ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च वहुला वाह्यतो नराः ॥

मारकण्डे पुराण ५७·३९

'वाह्यतो नरा' शब्द महत्त्व रखता है। इस ओर सकेत करता है कि वे भारत के वाहर से आने वाले लोग थे।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराणो के अनुसार कम्वोज, कश्मीर के राजौरी (राजपुरी) उपत्यका से हिन्दूकुश पर्वतमाला तक रहने वालो के लिये प्रयुक्त किया गया है। कुछ विद्वान् कम्वोज क्षेत्र को वदखशा के समीप हिन्दूकुश के पार तक ले जाते है। दरद-कृष्णगगा के अर्ध्व भाग वाली उपत्यका अर्थात् उत्तरी कश्मीर में रहते हैं उसे वर्तमान काल मे दर्दिस्तान कहते हैं।

कम्वोज और दरद नाम के साथ-साथ आने से यह प्रतीत होता है कि दोनो क्षेत्र परस्पर मिले थे। (मत्स्य पुराण २७३, वायु पुराण २ ३७, ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७४)

'चीनाश्चैव तुषाराश्च' के प्रयोग से मालूम होता है कि कम्बोज तथा दरद की तरह चीन तथा तुषार देश परस्पर मिले थे। दोनो की सीमाएँ एक साथ मिलती थी अन्यथा युगल प्रयोग न किया गया होता।

मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणो मे 'चीनाश्चैव तुपाराश्च' एक साथ उल्लेख किया गया है। वायु पुराण में 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण मे 'चीनाश्चैव तुषाराश्च' का उल्लेख है। वामन पुराण मे 'वेरणाश्चैव तुषाराश्च' शब्द का उल्लेख किया गया है। अरबो ने तुखारिस्तान का वर्णन किया है। उसमे बलख सम्मिलित हो जाता है। वक्षु अर्थात् आमू दरया के मध्यवर्ती दोनो तटवर्ती अंचलो को लेता चला जाता है। यद्यपि आमू दरया के दक्षिण का अंचल तुषार देश मे आता है। वर्तमान तुर्किस्तान तुषार अर्थात् तुर्कों का अचल कहा जा सकता है।

पुराणो मे उल्लेख मिलता है

साध्रास्तुषाराद् लम्पाकान् पल्हेवान् पारदान् शकान्।
एतान् जनपदांश्चक्षु: प्लावयन्ति गतोदधिम्॥

वायु पुराण मे 'साग्ध्रास्तुपारास्तम्याकान् तथा 'साध्रास्तुषारास्तम्यकान्' आया है। मार्कण्डेय पुराण मे 'तुषारान् वर्वराकारान्' तथा 'तुखारान् वर्वराकानू' का प्रयोग किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण मे 'साध्रास्तुषारान् लम्पाकान्' का उल्लेख मिलता है।

तुशार तथा तुषार शब्द एक ही है। जाति के लिए तोषणी अथवा तोखरी शब्द का प्रयोग किया गया है। विष्णु पुराण (४·२४ ५३) मे तुरुष्क शब्द का उल्लेख करते हुए 'तुरुष्कारा मुण्डाश्च' कहा गया है। इस प्रकार तुशार, तुषार, तोखरी, तुरुष्क, तुर्क सब एक ही जाति के नाम हैं। केवल उच्चारण के भेद प्रकट करते हैं। महाभारत में तुषार तथा तुशार दोनो ही शब्दो का प्रयोग किया गया है। तुषारवासियो को म्लेच्छ भी कहा गया है। (सभा पर्व ५०:१८५०)

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में वहाँ के निवासी आये थे तथा रसोई परोसने का कार्य करते दिखाई देते है। वन पर्व (५१:२५-२६, ५१.१९९१, १७७·२१.) मे उल्लेख मिलता है। पाण्डव लोग गन्धमादन से द्वैत वन की ओर लौटते समय तुषार देश को पार कर राजा सुबाहु के नगर में पहुँचे थे। भीष्म पर्व (७५ २१) मे तुषारो के युद्ध मे भाग लेने का वर्णन मिलता है। तुपार जनपद के वीर गण भीष्म द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व स्थान में व्यूह की रक्षा कर रहे थे। शान्ति पर्व (६५·२४२९) तुषारवासियो के निवास के विपय मे कहा गया है। तुषारवासी म्लेच्छ मान्धाता के राज्य में निवास करते थे।

मान्धाता के विषय में पुराणो में कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंश की १८वी पीढी मे हुए थे। वे अपने पिता युवनाश्च की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। पुरुकुत्स, अम्बरीप तथा मुचुकुन्द उनके पुत्र थे। मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे। सात द्वीपो मे उनका राज्य था। उनके राज्य विस्तार के विषय मे कहा गया है।

यावत् सार्प उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते॥
(ब्रह्माण्ड पुराण ३ ६३ ६८-७२)

हरिवंश पुराण उनका शक, पल्लव, दरद, अन्य म्लेच्छ तथा दस्यु जातियो के साथ उल्लेख करता है।

स्ट्रेवो (९.५१५) कहता है कि ग्रीक अर्थात् यूनानियो के बलख से निकालने का श्रेय तोपरी जाति को भी है। यह स्थान तुर्किस्तान प्रतीत होता है। तोखरी जाति का स्थान हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर बताया गया है। वह तोखरी जाति का उल्लेख करता है जो वास्तव मे तुषार अर्थात् तुर्किस्तान के तुर्क हैं। मार्कण्डेय पुराण (५७·३९) में तुषारो

का वर्णन है। उनका उल्लेख काम्बोज, दरद, बर्वर तथा चीनो के साथ आया है।

१५वी शताब्दी तक सस्कृत लेखो मे तुर्की के लिए तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया गया है। मेवाड के राजा मोकल का विक्रम सवत् १४८५ के चितौड गढ के लेख में उल्लेख है कि राजा ने अग, कामरूप, वेग, निषाद, चीन तथा तुरुष्को पर विजय प्राप्त किया था। यह कवि का गौरव वर्णन है। ऐतिहासिक तथ्य नही है। इसका महत्त्व केवल इसलिए है कि उस समय भारत में रहने वाले मुसलमानो के लिए तुरुष्क शब्द का प्रयोग होता था।

अपनी बाल्यावस्था की बातें मुझे याद है कि तुर्क शब्द का प्रयोग मुसलमानो के लिए गाँवो में होता था। तुर्की नाई, तुर्की कहार आदि लोग हिन्दू से मुसलमान हो गये थे। हिन्दू नाई तथा मुसलमान नाई में भेद जानने के लिए तुर्क शब्द लगा दिया जाता था।

(२) **शुष्कलेत्र :** कल्हण उक्त तीनो तुरुष्क राजाओ में किसी विशेष की शुष्कलेत्रादि क्षेत्रो में मठ, चैत्य, तथा उसी के सदृश अन्य निर्माण बनाने का उल्लेख करता है। अपितु उनका नाम सम्मिलित लेता है कि उन राजाओ ने निर्माण कराया।

वह ग्राम दुत्त परगना मे हुकालेतर अथवा हुकालेतरी है। श्री स्तीन के निर्देश पर सन् १८९१ में प० काशीराम ने यहाँ की यात्रा की थी। परन्तु उन्हें यहाँ कोई प्राचीन ध्वसावशेष नही मिला।

यह स्थान श्रीनगर से लगभग १४ मिल दक्षिण पश्चिम है। दामोदर उद्र क्षेत्र के पश्चिम ओर किंचित् दक्षिण दिशा की ओर झुकता है। शुष्कलेत्र क्षेत्र के उत्तर में नागम, पूर्व में गुन्द, दक्षिण मे पेत कूट, पश्चिम में खुन्दरा तथा लरवल है। स्थान के समीप छोटे छोटे नाले है।

चैत्य चैत्य अमरकोश कार के अनुसार यज्ञशाला तथा आयतन होता है। परन्तु पालि मे यह भिन्न अर्थो में प्रयुक्त होता रहा है। इसका पालिरूप चेतीय है। 'चिताया भव' चैत्यः' अर्थ किया जाता है। चिता से इसे सम्बन्धित कर दिया गया है।

ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन परम्परा के अनुसार दिवगत के पवित्र भस्म वा चिता स्थान के ऊपर स्मृति भवन, समाधि, तथा वृक्षो को लगाया जाता था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू तथा लालबहादुर शास्त्री के भस्मस्थान पर उद्यान बना दिये गये है। महात्मा गान्धी की समाधि तथा जवाहरलाल जी के चितास्थान में शान्ति वन दिल्ली में बन गया है। राजाओ के दिवगत होने पर उनके राज्यो में छतरियाँ बना दी जाती है।

रामायण, महाभारत एव भगवद्गीता में यह शब्द पावन वेदी, देवस्थान, प्रासाद एव धार्मिक वृक्ष आदि के लिये प्रयुक्त हुआ है। देवस्थानेषु चैत्येपु' (महा ३ १९०. ६७) 'प्रासादगोपुरसभाचैत्य' (भाग ९११२७) 'कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्ट' (महा० वन० १२२९) चैत्य शब्द प्राचीन शब्द है। भगवान् बुद्ध के समय में भो चैत्य के चापाल चैत्यादि पर्याय थे।

बौद्ध काल में अस्थि एव चिता भस्मो पर चैत्य बनाने की परम्परा चल पडी थी। कालान्तर में चैत्य विशालकाय होकर स्तूपो का रूप ग्रहण कर लिये। श्रीलका में इन्हे दागव जो सस्कृत शब्द धातुगर्भका अपभ्रश है कहा जाता है। तिब्बती भाषा में दुगनेन कहते हैं। बौद्ध स्थापत्य में चैत्य निर्माण की एक विशेष कला विकसित हुई थी। गिर्जाघर एव चर्चो ने चैत्य शैली के उपासना गृहो की नकल की हैं। अजन्ता एलोरा एव ईसा से पूर्व बने चैत्यो के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। उपासना भवन में जहाँ चर्च की वेदी तथा ईसा मसीह की मूर्ति एव क्रास होता है वही पर बौद्ध उपासना स्थल में चैत्य तथा वेदी होती है। प्रारम्भ में चैत्य रामायण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थो के अनुसार

प्राज्ये राज्यक्षणे तेषां प्रायः कश्मीरमण्डलम् ।
भोज्यमास्ते स्म बौद्धानां प्रव्रज्योर्जिततेजसाम् ॥ १७१ ॥

१७१. प्रव्रज्या ज्योति[1] से बौद्ध उन शक्तिशाली राजाओं के विस्तृत राज्यकाल में कश्मीर मण्डल का प्रायः उपभोग करते थे।

काष्ठ के होते थे। कालान्तर मे वे पक्के पत्थर तथा ईंटा चूनो से बनने लगे।

कनिष्क प्रसिद्ध बुद्धचरित्र के लेखक अश्वघोष का संरक्षक था। कनिष्क के समय में अश्वघोष का होना कहा जाता है। चीनी भाषामें बुद्ध चरित्र का अनुवाद सन् ४२० ई० में हुआ था। एक मत है कि बुद्ध घोष ने किसी युद्ध में पाया था। उसे निवास स्थान तथा अध्ययन अध्यापन एवं लेखन की पूर्ण सुविधा दी थी। बुद्ध चरित्र काशी से प्रकाशित हो चुका है। कुछ भाग सस्कृत तथा कुछ हिन्दी मे है।

पाठभेद .

श्लोकसख्या १७१ में 'कश्मीर' का 'काश्मीर' तथा 'स्म' का 'स' और 'च' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

(१) प्रव्रज्या : बौद्धो मे दो वर्ग होते है। उपासक एवं भिक्षु। उपासक साधारण वेश भूषाधारी गृहस्थ होते है। प्रव्रज्या लेने वाला व्यक्ति गृह त्याग करता है। गृहस्थ धर्म त्याग करता है। सर दाढी मुडाकर, सन्यासी बन चीवर धारण करता है। पिण्डपात, चीवर, शयनासन, ग्लान तथा प्रत्यय भिक्षुओ के चार निश्चय कहे जाते है। भिक्षा पात्र के अतिरिक्त उनके पास और कुछ नही होता। असंग्रही होते है। माला, गन्ध, विलेपन, अलंकार ऊँची शय्या, संगीत, सोना, चाँदी, आदि से विरत रहते है। भिक्षा माँग कर भोजन करते है। भिक्षा माँगने की भी एक शैली है। भिक्षु किसी गृहस्थ के द्वार पर चुपचाप जाकर खडा हो जायगा। कुछ माँगेगा नही, याचना नही करेगा। यदि गृहस्थ ने उसके पात्र में कुछ भोज्य पदार्थ डाल दिया तो ले लेता है। अन्यथा वह लौट आता है। विहार में वृक्ष मूल, अथवा गुफा मे आसन लगाता है।

संघ शासन मे भिक्षु शामिल रहता है। संघ उसे दण्ड दे सकता है। संघ से निकाल सकता है। भिक्षु त्रिरत्न किंवा तीन वचनो, बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मम् शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि, कहकर तीनों की शरण लेता है। बुद्धधर्म में ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक जोर दिया गया है। वे अपने कठोर आचरण से लोगो को प्रभावित करते है। उनका नियंत्रित जीवन आकर्षक होता है। वे मध्याह्न के पूर्व केवल एक बार भोजन करते हैं। मध्याह्न के पश्चात् भोज्य सामग्री ग्रहण नही करते। केवल पेय पदार्थ लेते हैं। सनातन धर्मी संन्यासी दण्ड धारण करते है। गेरुआ वस्त्र पहनते है। परन्तु बौद्ध भिक्षु दण्डधारण नही करते। ऊपर से नीचे तक सुआच्छादित रहते हैं।

परिव्राजक के पाँच नाम होते है। (१) भिक्षु (२) परिव्राजक (३) कर्मन्दिन् (४) पाराशरिन् तथा (५) मस्करिन्। परिव्राजक और प्रव्रज्या के शाब्दिक अर्थ मे भेद नही है। प्रव्रज्या का शाब्दिक अर्थ होता है। व्रज का अर्थ गमन होता है। प्र उपसर्ग विशेष लगाकर प्रव्रज्या शब्द बन जाता है। विशेषरूप से गृहत्याग करना यही साधारण अर्थ होता है।

बीस वर्ष से कम आयु का व्यक्ति उपासक हो सकता है। श्रमणेर हो सकता है। उसे एक आचार्य किंवा उपाध्याय के निश्रय में रहना पड़ता था। बीस वर्ष से ऊपर होने पर ही वह भिक्षु हो सकता है। दस चीजें ग्रहण करने पर श्रमण होते है। दस भिक्षुओ के मध्य ही उपसम्पदा दी जा सकती है। भिक्षुओ को २२७ नियमों का

तदा भगवतः शाक्यसिंहस्य परिनिर्वृतेः ।
अस्मिन्महोलोकधातौ सार्धं वर्षशतं ह्यगात् ॥ १७२ ॥

१७२. उस समय भगवान् शाक्य सिंह[1] का इस महीलोक में परिनिर्वाण[2] हुए एक सौ पचास वर्ष व्यतीत हो चुके थे ।

पालन करना पडता है । पचशील ग्रहण करने वाला कोई भी व्यक्ति भिक्षु हो सकता है । जीवित माता पिता की अनुमति विना कोई भिक्षु नही हो सकता ।

बौद्धो को राजकीय आश्रय कश्मीर में मिला था । कनिष्क ने तृतीय सगीत कश्मीर में की थी । फाहियान तथा सुगयुन के वर्णनो से प्रकट होता है । गाधार में बौद्ध भिक्षुओ को राजकीय प्रश्रय था । उनकी यात्रा के समय कश्मीर में सनातन धर्म का प्रभाव बढ गया था ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १७२ में 'तदा' का 'ततो', 'परिनिर्वृते' का 'पुरनिर्वृते' और 'परनिर्वृते', तथा 'महीलोक' का 'सहलोक' 'सह्रीलोक' और 'शवलोक' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ·

(१) **शाक्यसिंह** शाक्य भगवान् बुद्ध के वश का नाम है । वह इच्छाकुवशीय क्षत्रियो की एक शाखा है । उस वश में सिंह तुल्य अर्थात् श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध हुए थे । अतएव उनका नाम शाक्यसिंह रख दिया गया था । वास्तव में उनका नाम 'सिद्धार्थ' था । भगवान् के जन्म स्थान के सम्बन्ध में अब कोई विवाद नही रह गया है । ईसा पूर्व ५६३ वर्ष में शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी अर्थात् रूमिनदेई में भगवान् का जन्म हुआ था । अशोक का स्तम्भ वहाँ पर गडा है । उसपर अंकित है—'हिय वुधे जाते ति' सुत्तनिपात में स्पष्ट उल्लेख आता है—'सो बोधिसत्तो' ।

भगवान् को शाक्य मुनि भी कहते हैं । कल्हण ने भगवान् का तत्कालीन प्रचलित मूल नाम दिया है । उसने बुद्ध तथा बौद्ध शब्द का प्रयोग भगवान् के प्रचलित बौद्ध धर्म के लिये सर्वत्र किया है ।

(२) **परिनिर्वाण :** कल्हण यहाँ कुशान राजाओ का काल भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १५० वर्ष पश्चात् देता है । यह अब तक के प्राप्त प्रमाणो के आधार पर ठीक नही बैठता ।

सिंहली परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण ईसापूर्व ५४४ वर्ष में हुआ था । यही कारण है कि सन् १९५६ में विश्वव्यापी समारोह २००५ वर्ष पूर्ण होने पर परिनिर्वाण उत्सव मनाया गया था ।

राजा बिम्बसार तथा उनके पुत्र अजातशत्रु के भगवान् समकालीन थे ।

महाराज अशोक का भगवान् के परिनिर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् राज्याभिषेक हुआ था । यह सब काल प्रमाणतुला पर तौल कर प्रामाणिक माने गये हैं ।

यदि कल्हण की काल गणना मान लो जाय तो कुशान वशीय राजाओ का काल ईसा पूर्व ४१६ वर्ष होता है । अशोक का राज्याभिषेक परिनिर्वाण के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ था । इस प्रकार कुशान वशीय राजाओ का काल अशोक के राज्याभिषेक से ६१ वर्ष पूर्व होता है । अर्थात् कुशान वशीय राजाओ के पश्चात् अशोक का काल पड जाता है ।

हुएनसाग कनिष्क का शासन काल भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के ४०० वर्ष पश्चात् रखता है ।

कल्हण स्वय अशोक, जलौक, दामोदर तथा अन्य लुप्त राजाओ के पश्चात् कुशान वशीय राजाओ का क्रम रखता है । कल्हण की काल गणना यहाँ प्रामाणिक नही मानी जा सकती । उसने तत्का-

बोधिसत्त्वश्च देशेऽस्मिन्नेको भूमीश्वरोऽभवत् ।
स च नागार्जुनः श्रीमान् षडर्हद्वनसंश्रयी ॥ १७३ ॥

१७३. इस देश में षडर्हद्वन[1] निवासी नागार्जुन[2] नामक भूमीश्वर हुआ। वह बोधिसत्त्व भी था।

लीन किसी काल गणना के आधार पर यह समय नही दिया है। कुशान वशोय राजाओ तथा कल्हण के काल मे लगभग तेरह शताब्दियो का अन्तर पड जाता है। उसके समय तक भारत मे बौद्धधर्म लुप्त हो चुका था। भारत मे मुसलिम शासन दो शताब्दियो से कायम था। कश्मीर मे स्वतः इतने राजविप्लव, जलप्लावन, भूचाल आये थे कि कितनी ही इतिहास सामग्रियाँ नष्ट हो गयी थी। यहाँ पर कल्हण कोई प्रमाण भी नही उपस्थित करता कि उसकी काल गणना का आधार क्या है? तर्क और प्रमाण की तुला पर कल्हण का यह समय ठीक नही उतरता।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १७३ मे 'न्नेको' का 'न्नेक', 'भूमीश्वरो' का 'भूम्येश्वरो', 'भवत्' का 'वसत्', 'च' का 'तु' और 'त', एवं 'र्हद्वन' का 'र्हन्वन, 'र्हर्वन' 'र्हत्वन' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७३ (१) **षडर्हद्वन :** वर्तमान हरवान है। इसका शाब्दिक अर्थ ६ सन्तो का वन है। श्रीनगर की जल पूर्ति निमित्त सन् १८९५ मे यहाँ निर्माण कार्य आरम्भ किया गया। उस समय यहाँ के ध्वसावशेषो का पता चला। सन् १९२५ में पुन: यहाँ खनन कार्य हुआ है। जलाखात सुन्दर झील का रूप उपस्थित करता है। सीढियो से जलाखात के बाँध पर लगभग ४० फीट जाना पडता है। एक तरफ हरा ऊँचा पर्वत है। दूसरी तरफ ऊँची भूमि है तथा बाँध के नोचे सुन्दर बगीचा है। इसमे चिनार के पेड़ लगे हुए है। वनोत्सव तथा वन विहार के लिए आदर्श स्थान है।

कहा जाता है। हरवान में कनिष्क के समय में चतुर्थ बौद्ध परिषद हुई थी। खनन कार्य के पश्चात् इसे परिषद से और सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है। विहारो के निर्माण निमित्त यह स्थान प्रकृति की गोद मे अत्यन्त सुहावना तथा उपयुक्त है। हरवान के ध्वंसावशेष स्थान से यदि उपत्यका की तरफ दृष्टिपात किया जाय तो हृदयग्राही सुन्दर दृश्य नेत्रो को अनायास सुखकर प्रतीत होता है।

हरवान के पृष्ठभाग मे उत्तुङ्ग पर्वत है। दक्षिण दिशा में भी उत्तुङ्ग पर्वत है। सम्मुख पर्वत है। केवल वाम पार्श्व में खुलता गया विस्तृत मैदान है। तीनों पार्श्वों में पर्वत द्वारा वेष्ठित मध्य मे खुली उपत्यका इतनी सुन्दर लगती है कि यहाँ चुपचाप बैठकर समय बिताते रहने मे एक प्रकार के नैसर्गिक आनन्द का बोध होता है। सितम्बर माह की शालि से भरी पुरी उपत्यका केसरिया साडी पहने युवती कामिनी तुल्य लगती है। हरे-भरे पादप, पल्लवित वृक्षो का समूह, ग्राम का झुरमुट, पास बहती जल रेखा किसी प्राप्तयौवना के चीर पर बने बेल-बूटे जैसे लगते है।

मै प्रकृति के इस अनुपम दृश्य को देखता मुग्ध खडा था। सम्मुख पर्वत पर खानाबदोशो के कुछ कैम्प लगे थे। यहाँ से ब्रुज होम दिखाई पडता था। उस समय वहाँ पर खनन कार्य हो रहा था। शायद वहाँ कभी सिद्ध रहते थे। गुह्यक गण रहते थे। भौमगृह वासी रहते थे। वे वास्तव मे कौन थे अभी अनुसन्धान का विषय है। इस स्थान पर मै तीन बार जा चुका हूँ। वहाँ से होकर मैं यहाँ आया था।

जिस समय मै पहुँचा था आकाश मेघाच्छन्न था। हरवान पर जहाँ पर विहार बना था उसके पीछे का

पहाड सूखा है। मेघ उसपर जमे थे। उनका शनै शनै इधर-उधर जाना, वाम पार्श्व मे वर्षा जल द्वारा प्रवाहित कल-कल ध्वनि करता नाला, ग्रामो के शान्त गृहों से उठती धूम राशि, पडते फुहार मे किंचित् खडे होकर उपत्यका को चुपचाप निरखते रहने मे मुझे एक विचित्र आनन्द का बोध हो रहा था। यह दृश्य और यह स्थान मुझे इतना प्रिय लग रहा था मानो मै स्वय इस दृश्य का एक अग बन गया था।

इस समय हरवान का रूप बदल गया है। स्तीन के समय हरवान जो रूप उपस्थित करता रहा होगा वह अब नही है। शालीमार के दक्षिण पार्श्व से पक्की पिच की सडक हरवान ग्राम होती आगे निकल जाती है। सडक के समीप स्वच्छ जल पूर्ण नाला है। यहाँ पर तीन नाले है। दची ग्राम नाला, तेल बल नाला तथा शराब कुल। शराब कुल स्वच्छ जल की प्रणाली है। विहार की पहाडी के आधे भाग में बहती है। पूछने पर प्रकट हुआ। यह जल राजा के शराब बनाने के कारखाने की तरफ जाता है। अतएव इसका नाम शराब कुल पडा है। इस समय कारखाना बन्द है।

हरवान पहाड की उतार किंवा ढाल पर है। ढाल पर स्थान इतना समतल बनाया जा सकता है कि पर्वतीय शैली पर बहुत मकान बन सकते है। एक छोटा चौरस मैदान किंवा भूमि है। उसमे तीन चौकोर प्रागण बने है। मध्यवर्तीय प्रांगण मे चौकोर स्तूपाकार स्थान बना है। उसके दक्षिण पार्श्व मे चौकोर प्रागण के निर्मित पूर्वकालीन दिवालो के कुछ ध्वसावशेष के आकार शेष रह गये है। मध्यवर्ती प्रागण के समीप भी एक लम्बी दिवाल का भग्नावशेष रह गया है। प्रागणो के ऊपर दिवालो का अवशेष बच गया है। दिवालें विचित्र रूप उपस्थित करती है। निर्माणकर्ताओ तथा राजगीरो की कला पर प्रकाश डालती है। दिवालो की रचना पर यहाँ पर दो शब्द लिख देना उचित होगा।

पत्थर के ढोको सी दिवाल खडी की गई है। उनके बाहर बडी सुन्दरता से छोटे शिव लिंगो की तरह नदियो से प्राप्त पत्थरो को पलस्तर के स्थान पर लगाया गया है। स्थान स्थान पर सुन्दरता और बढाने के लिये बीच बीच मे पत्थर के ढोके रख अतीव मनोरम रचना की गयी है। वे देखने मे अत्यन्त सुन्दर लगती है। आधुनिक कला की याद दिलाती है। इस प्रकार की दिवाल रचना में कितना श्रम लगा होगा उन्हे देख करके ही अनुमान लगाया जा सकता है।

यहाँ पर पुराने बर्तनो के टुकडे तथा खपडे बहुत निकले है। प्राप्त टाइल्स मे फूल-पत्ती तथा मानव आकार बने हैं। तत्कालीन पुरुषो तथा स्त्रियो की वेशभूषा तथा उनका चेहरा-मोहरा कैसा था। स्पष्ट मालूम होता है।

मैंने उन आकृतियो को ध्यानपूर्वक देखा। आर्यो की मुखाकृति जैसी हैं। मुख-रेखाएँ उनके हृष्ट पुष्ट, स्वस्थ तथा बलवान रूप को प्रकट करती है। उनका कद ऊँचा है। पाद की पेडली मास पेशी पुष्ट सम तथा आकर्षक है। नारियो का रूप उनका आकार अत्यन्त हृदयग्राही हैं। नासिका लम्बी आर्य जातीय सीधी है। रोमन नासिका की तरह उनमें मोड नही है। बाल उभडे गण्डस्थल पर अद्भुत शोभा बढाते है। कानो मे गोलाकार बाला है। आज भी कश्मीर की स्त्रियाँ गुच्छे का बाला पहनती है। मुसलमान स्त्रियाँ चाँदियो के बाले गुच्छो में कानो से लटकाती है। बाली किंवा बाले पहनने की प्रथा कश्मीरी अँगनावो से शीघ्रतापूर्वक लोप हो रही हैं। उनके स्थान पर तग पहनने की प्रथा फैल चुकी हैं। टाइल्स पर बने आकार नर-नारियो के हैं। शरीर पर अलंकारो की बहुलता नही है। रोचक अलकार है। वे शरीर की सुन्दरता बढाते है। उसे भडेहर नही बनाते। इससे प्रकट होता है कि समाज उस समय कितना सुसस्कृत तथा सभ्य था। पुरुष ढीला-ढाला वस्त्र पहने दिखाये गये है। वर्मधारी, अश्वारोही, धनुष-बाण धारी तथा वीर पट्ट पहने पुरुषो की आकृतियाँ मिली है। युवतियाँ मृदग अथवा

ढोल बजाती तथा नर्तकियाँ नृत्यमुद्रा मे खपडो तथा टाइल्स पर मिली है।

हाथो का उल्लेख काश्मीरी साहित्य मे मिलता है। हरवान के टाइल्स पर हाथी की मूर्ति खुदी मिली हैं। हस्तिशाला का उल्लेख भी (रा० त० ७: ७७२-७७६ में) कल्हण करता है। हरवान मे स्तूप मन्दिर, ईंटा, टाइल्स छत्रावली के अतिरिक्त 'ये धर्मा हेतुप्रभवा' ब्राह्मी लिपि मे मिला है। एक काकासन में बैठे साधु की आकृति भी मिली है। खरोष्ट्री लिपि का भी यहाँ दर्शन मिला है।

कुछ ऊपर एक हाल है। हाल के पीछे एक वृत्ताकार हाल और है। इसे देखकर मुझे गौहाटी स्थित कामाचा देवी के मन्दिर का स्मरण आ गया। यदि इस हाल का प्रत्यास्थापन किया जाय तो कामरूप कामाक्षा के मन्दिर तुल्य पृष्ठ भाग मे गर्भगृह तुल्य गोलाकार तथा मण्डप आयताकार होगा। कामाक्षा देवी में मण्डप से गर्भ गृह मे जाने के लिए द्वार बना है। परन्तु यहाँ आयताकार मण्डप से पृष्ठभागीय वृत्ताकार गर्भ गृह मे जाने के लिए किसी द्वार किंवा मार्ग का चिन्ह मैंने नही देखा। यह वृत्ताकार स्थान चैत्य हो सकता है। स्तूप होने का भी अनुमान लगाया जा सकता है। अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओ में चैत्य के सम्मुख आयताकार मण्डप भिक्षुओं के बैठने तथा पूजा करने के लिए बना है। सम्भव है कि उसी स्थापत्य तुल्य यहाँ का निर्माण रहा हो।

हरवान पिण्डपात किंवा भिक्षुओ के भिक्षा प्राप्त करने की दृष्टि से आदर्श स्थान माना जा सकता है। जल का सुपास है। जल दूर से लाने की यहाँ समस्या नही थी। निर्झर के कभी सूखने की कल्पना भी नही की जा सकती है। बादाम, अखरोट तथा फलो के वृक्ष तथा उनके उद्यान यहाँ मुझे अधिकता से मिले। उपत्यका मे शालि खूब उत्पन्न होती है। हरवान जिस समय अपनी गौरव गरिमा पर रहा होगा, उस समय यहाँ फल-फूल के वृक्ष खूब लगाये गये होगे। खेतो मे नाना प्रकार की सब्जी तथा अन्न उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता रहा होगा। पिण्डपात निमित्त स्थानीय जनता से भात, तरकारी तथा फलादि मिल जाना सरल था। इस समय चिनार के वृक्ष भी लगे है। मालूम नही उन दिनो यहाँ चिनार थे कि नही। कुछ लोगो का मत है कि चिनार के वृक्ष ईरान से लाकर लगाये गये है। इस विवाद मे न पडकर मै यही कहना चाहता हूँ कि अध्यात्म ज्ञान चर्चा एवं तपस्या निमित्त हरवान का स्थान शान्त तथा आदर्श कहा जायेगा।

इस समय हरवान ग्राम का रूप बहुत कुछ बदल गया है। भौतिक दृष्टि से यह एक समृद्धिशाली ग्राम है। यहाँ अस्पताल, स्कूल, ट्राउट फार्मिंग सेण्टर, श्रीनगर वाटर वर्क्स तथा ध्वंसावशेषो के कारण प्रसिद्ध स्थान हो गया है।

(२) नागार्जुन : उरुष्क राजाओ किंवा कुशान राजाओ का समकालीन नागार्जुन नही था। कल्हण के वर्णन से भ्रम उत्पन्न हो सकता है। चीनी ग्रन्थो मे जो सामग्री इनके जीवन के सम्बन्ध में प्राप्त होती है उससे पता चलता है वह आन्ध्रभृत्यकुलीय शालिवाहन राजा श्री गौतमी पुत्र का समकालीन था। उसका काल सन् १६६-१९६ ई० तक था। कश्मीर मे कल्हण वर्णित हविष्क का काल सन् १०६ ई० आता है। कुछ मत हैं कि यह शालिवाहन राजा गौतमी पुत्र यज्ञश्री नही है परन्तु अब अनेक विद्वान् इसी को मानते है। नागार्जुन ने इस राजा के पास जो पत्र लिखे थे उनका अनुवाद तिब्बती तथा चीनी भाषा मे उपलब्ध है। राजा यज्ञश्री नागार्जुन का सम-सामयिक माना जाता है। इस पत्र का नाम 'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व सहल्लेख' है।

'आर्य नागार्जुन बोधिसत्त्व' यह उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है। कल्हण ने इस श्लोक मे उसे बोधि-सत्त्व कहा है। कल्हण के समय मे नागार्जुन प्रख्यात था। वह बोधिसत्त्व माना जाता था। उसे कश्मीर मण्डल का भूमीश्वर भी कहा गया है। नागार्जुन नाम

के साथ आर्य एव बोधिसत्त्व दोनो शब्द होने के कारण प्रकट होता है। बौद्ध जगत् मे उसका अत्यधिक आदर था। भूमीश्वर शब्द का प्रयोग कल्हण ने यहाँ राजा के अर्थ मे नही किया है। बोधिसत्त्व राजा नही हो सकता। वह भौतिक जगत् से, उसकी सम्पदाओ से, उसके ऐश्वर्यों से अलग रहता है। यहाँ कल्हण ने उसे कश्मीर मण्डल का अधीश्वर उसी प्रकार कहा है जैसे 'एकलिंग' जी मेवाड के अधीश्वर हैं। यहाँ पर यह शब्द नागार्जुन की कश्मीर राज्य में महत्ता तथा उसके प्रभाव के कारण प्रयोग किया गया है। उसका प्रभाव राजा पर था। राजा का प्रभाव कश्मीरमण्डल पर था। अतएव वास्तव मे कश्मीर मण्डल का वह भूमीश्वर तुल्य था।

नागार्जुन बौद्ध दर्शन के माध्यमिक सम्प्रदाय का समर्थक था। उन्हें शून्यवादी कहा जाता है। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'माध्यमिक कारिका' अथवा 'माध्यमिक शास्त्र' है। वह २७ प्रकरणो में विभक्त है। कारिकाएँ ४०० हैं। यह माध्यमिक दर्शन का प्रधान ग्रन्थ है। महायान सूत्रो को सक्षेप रूप से इनमें सकलन किया गया है। इस महान् ग्रन्थ द्वारा नागार्जुन की अन्तर्दृष्टि, विवेक, तर्क तथा मेधा शक्ति का परिचय मिलता है।

हिमालय निवासी एक अति वृद्ध भिक्षु से नागार्जुन सूत्र प्राप्त हुआ था। एक मत और है। अश्वघोष से काशी में नागार्जुन ने शिक्षा प्राप्त की था। यही उसे महायान सिद्धान्त से प्रथम बार सम्पर्क स्थापित हुआ था। मैं स्वय निश्चय करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ कि उनमे कौन बात सत्य है।

युआनचाग ने बौद्ध धर्म को विश्व मे प्रकाशित करने वाले चार सूर्यों का वर्णन किया है। उसमें वह अश्वघोष, कुमारलब्ध, आर्य देव तथा नागार्जुन को स्थान देता है। इस समय तक नागार्जुन की २० रचनाओ के चीनी अनुवाद प्राप्त हो चुके है। नागार्जुन द्वारा प्रतिपादित शून्यवाद के मुख्य व्याख्याकार पाचवी शताब्दी मे बुद्ध पालित तथा भाष विवेक हुए है।

कथा है। नागार्जुन विदर्भ में एक ब्राह्मण के घर जन्म लिया था। अपने पिता का एक मात्र पुत्र था। पिता की बडी उम्र मे पैदा हुआ था। ज्योतिषियो ने कहा। नागार्जुन केवल ७ वर्ष जीवित रहेगा। माता पिता दुखी हुए। सातवें वर्ष उसे नालन्द विश्वविद्यालय मे विद्यार्जनार्थ भेज दिया। उसने ९० दिनो में त्रिपिटको का अध्ययन कर लिया था।

आचार्य राहुल से नालन्दा में नागार्जुन का सम्पर्क स्थापित हुआ। वह भिक्षु बन गया। लोग नवयुवको का स्वरूप धारण कर उसका प्रवचन सुनते थे। नाग जाति के आमन्त्रण पर उनके बीच तीन मास व्यतीत किया। नागाओ के सम्पर्क के कारण उसका नाम नागार्जुन पड गया।

एक कथा और है। अर्जुन वृक्ष की छाया में उसका जन्म हुआ था। अतएव नाग तथा अर्जुन मिलाकर उसका नाम नागार्जुन पड गया था।

नागार्जुन महायान सम्प्रदाय का प्रवर्तक था। उसने तिब्बत में अपने दर्शन एव मतका प्रचार किया। वह कवि, दार्शनिक तथा वैद्य था। एक और कथा तिब्बत में नागार्जुन के विषय में प्रचलित है। नागार्जुन के जन्म के समय से माता पिता ने ज्योतिषियो से सम्पर्क स्थापित किया। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। ग्रामो में यह कार्य पुरोहित करते है। उनके पास पत्रा होता है। एक रिकार्ड भी रखते हैं। उनमें ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति के जन्म एव मृत्यु का दिन तथा समय लिखा रहता है। मुझे भी अपना जन्म दिन तथा काल मालूम नही था। हमारे ग्रामीण पुरोहित से लगभग २० वर्ष पश्चात् मिला था। यह यह प्रथा कम होती जा रही है। साक्षरता के प्रचार के कारण लोग अपने यहाँ डायरी आदि मे लिखने लगे हैं। अतएव अब ग्रामो के पुरोहितो के यहाँ रिकार्ड मिलना कठिन होता जा रहा है।

ज्योतिषियो के अनुसार नागार्जुन की आयु केवल ७ दिनो की थी। उसके माता-पिता के धर्माचरण के कारण देवताओ ने उसको ७ सप्ताह बढा दिया। तत्पश्चात् पुनः आयु ७ वर्ष बढा दिया। सात वर्ष पूर्ण होने के पूर्व वह नालन्द विहार मे विद्याध्ययन निमित्त भर्ती किया गया वहाँ उसने अमितायु की पूजा आरम्भ की। देवता प्रसन्न हो गये। उसकी आयु ३०० वर्षों की हो गयी। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में विचित्र कथा है। उसने स्वय अपना मस्तक अपने हाथो से काटकर मृत्यु का आलिगन किया था।

कहा जाता है। नागार्जुन आन्ध्र प्रदेश के गन्तूर जिला में श्रीपर्वत पर रहते थे। कालान्तर मे इसे विजयपुरी तथा नागार्जुन कोडा कहने लगे। जन-श्रुति है। राजा शातवाहनके समय नागार्जुन ने काशी छोडने के तश्चात् श्रीपर्वत पर अपना निवास स्थान बनाया। कश्मोरी बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध धर्मानुयायी वहीं की यात्रा करने लगे।

नागार्जुन कोण्डा मे भगवान् बुद्ध की धातु एक स्तूप मे पायी गयी है। उस स्तूप में भगवान् की धातु एक गोले सुवर्ण मंजूषा में मिली थी। सन् १९३३ मे यह धातु महाबोधि सग्रहालय सारनाथ वाराणसी में केन्द्रीय सरकार ने सुरक्षित रखने के लिये दे दिया है। मैं प्रात प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा में भगवान् के इस पवित्र धातु का दर्शन करता हूँ। यह धातु मूल गन्धकुटी विहार में सुरक्षित है। यहाँ के खनन कार्य में बडे स्तूप, विहार, मन्दिर, मूर्तियो, लघु स्तूप, देहली, अधिष्ठान आदि अमरावती शैली के प्राप्त हुए हैं।

प्राकृत अभिलेख ब्राह्मी लिपि मे दूसरी तथा तीसरी शताब्दी के मिले हैं। वहाँ एक अर्धचन्द्राकार देवस्थान (संख्या २) नागार्जुन कोण्डा मे दान देने वालो की तालिका अंकित मिली है। समोपवर्ती स्थानो मे श्रीलका, गाधार, चीन तथा कश्मीर के पर्यटको तथा यात्रियो के लिये स्थान बनाने का उल्लेख है।

नागार्जुन की एक मूर्ति नालन्द के खनन कार्य सन् १९१९—१९२० में प्राप्त हुई है। स्वर्गीय श्री राहुल सास्कृत्यायन तिब्बत से कुछ चित्र लाये थे। उनमे एक नागार्जुन का है। वह इस समय पटना सग्रहालय विहार मे सुरक्षित है।

रानी शातिश्री ने अनेक चैत्य तथा विहारो का निर्माण नागार्जुन कोडा में कराया था। एक अन्य उपासिका बोधिश्री ने चैत्यगृह वहा बनवाया था। उनमे विदेश तथा कश्मीर के भिक्षु आकर रहते थे।

चीनी अनुवादो में उसके १८ ग्रन्थो का उल्लेख वुनियु नजियो ने अपनी तालिका में दिया है। नागार्जुन ने 'सहल्लेख' अर्थात् अपने उन पत्रो का संग्रह किया था, जिसे उन्होने पत्र स्वरूप अपने मित्र यज्ञश्री गौतमीपुत्र को लिखा था। नागार्जुन की जीवनी का अनुवाद चीनी भाषा में कुमार जीव ने सन् ४०५ ई० में किया था। नागार्जुन का तिब्बती नाम है क्लुसग्रुव। प्राकृत आख्यायिका लीलावती के अनुसार नागार्जुन पोट्टिस तथा कुमारिल के साथ शातवाहन की राजसभा में रहते थे।

नागार्जुन सिद्ध हस्त लेखक थे। उनकी रचना शैली तथा युक्ति विश्व साहित्य मे प्रसिद्ध है। माध्यमिक कारिका नागार्जुन के पाण्डित्य, विद्वत्ता, तर्कबुद्धि, दार्शनिक विचार तथा उसके व्यावहारिक ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है।

नागार्जुन शून्यवाद का आचार्य है। वह कहता है.

न सन् नासन् न सदसत् न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥

नागार्जुन की दृष्टि मे मूलतत्त्व शून्य है। किसी भी पदार्थ का स्वरूप निर्णय करने मे चार ही कोटियो का प्रयोग संभाव्य है। पहला अस्ति है। दूसरा नास्ति है। तीसरा तदुभयम् चौथा नोभयम् है। परमार्थ इन चारो कोटियो

अथ निष्कण्टको राजा कण्टकोत्साग्रहारदः ।
अभीर्बभूवाभिमन्युः शतमन्युरिवापरः ॥ १७४ ॥

१७४ तत्पश्चात् निर्भीक एवं निष्कंटक[1] तथा कण्टकोत्स[2] अग्रहार दाता द्वितीय इन्द्र तुल्य अभिमन्यु[3] राजा हुआ।

से मुक्त होता है। अतएव उसके अभिधान निमित्त शून्य शब्द का प्रयोग नागार्जुन ने किया है।

आर्य नागार्जुन के नाम से अनेक वैद्यक, रसायन विद्या एवं तन्त्र के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। दार्शनिक नागार्जुन को तान्त्रिक नागार्जुन से अनेक विद्वान् भिन्न मानते हैं। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिये तान्त्रिक नागार्जुन को सिद्ध नागार्जुन के नाम से अभिहित किया जाता है। नागार्जुन का काल द्वितीय शती के उत्तरार्ध तथा सिद्ध नागार्जुन का सातवीं शती के समीप रखा जाता है।

आयुर्वेदाचार्य नागार्जुन सिद्धों की परम्परा मे हुए हैं। इनका समय आठवीं तथा नवीं शताब्दी है। प्रबन्ध चिन्तामणि से पता चलता है कि नागार्जुन पादलिप्त सूरि के शिष्य हैं। इस पुस्तक के अनुसार पारद से स्वर्ण बनाने मे उन्होंने सफलता प्राप्त की थी। भारत मे इन मुख्य तीनों नागार्जुनों के कार्य लेखन, गुण एवं धर्म मे अन्तर है। उन्हे प्राय मिलाकर एक व्यक्ति मान लिया जाता है। बौद्ध दर्शन माध्यमिककारिकाकार, आर्य नागार्जुन सबसे पूर्व नागार्जुन नामक व्यक्ति हुए थे। वे अन्य इसी नाम के प्रसिद्ध व्यक्तियों से भिन्न थे।

आधुनिक युग मे नागार्जुन के दर्शन का पुनर्जागरण हुआ है। जापान के वर्तमान सामाजिक जीवन मुख्यतया बौद्ध धर्मानुयायियों मे इसने पुन. स्थान प्राप्त किया है।

कल्हण नागार्जुन के विषय में यह सत्य ही लिखता है कि वह कुशान राजाओं के समय हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७४ 'कण्टकोत्साग्र' का 'कण्टकोत्मार्ग' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७४ (१) निष्कंटक का अर्थ कंटकहीन होता है। राजाओं के अनेक कंटक होते हैं। राजमार्ग कण्टकाकीर्ण कहा गया है। राजा के पार्श्व मे रहने वाले, उसके दायाद, कुटुम्बी तथा सम्बन्धी प्रथम कंटक होते हैं। उत्तराधिकार किंवा राजा के पश्चात् राज्य, पद, सम्पत्ति आदि पाने के इच्छुक राजा के सम्बन्धी अशुभ कामना करते हैं। कब राजा मरे और वे कब स्वयं राजा बन बैठें। यह मनोवृत्ति राजाओं के विरुद्ध षड्यन्त्र, विप्लव युद्ध तथा हत्याओं मे परिणत होती रहती है। महत्त्वाकांक्षी सेनापति तथा अमात्य जो राज्य-लिप्सा से लिप्त होते हैं, अथवा स्वयं राज्य लेना चाहते हैं इसी श्रेणी में आते हैं। कौटिल्य ने इसीलिये राजा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कंटक-शोधन कहा है।

(२) कण्टकोत्स : वीर परगना में यह कन्कोर ग्राम है। हुरबलितर ग्राम से बहुत दूर नही है।

(३) अभिमन्यु : आईने अकबरी में नाम अबेहमुन दिया गया है। हमने अभिमन्यु के विषय मे लिखा है। राजा अभिमन्यु ने १८३४ क० मे लोगो की मरजी से ताज हकूमत सर पर रखकर पहला काम यह किया कि, बुध मजहब को कत्तैयन जड से उखाड दिया। इन दिनो चन्दर आचारज नाम एक निहायत ही फाजिल बरहमन था। उसने हिन्दुस्तान मे महावाश

स्वनामाङ्कं शशाङ्काङ्कशेखरं विरचय्य सः ।
परार्घ्यविभवं श्रीमानभिमन्युपुरं व्यधात् ॥ १७५ ॥

१७५. इस श्रीमान् राजा ने अपने नाम पर परम वैभवशाली अभिमन्युपुर[1] नगर बसाकर उसमें उस नगर का आभूषण शशांकांकशेखर[2] मन्दिर का निर्माण कराया।

(महाभाष्य) किताब अपने हमराह लाकर यहाँ के बरहमनो को तालीम दी और अपनी खुद नसीफ करदा किताब 'चन्द व्याकरण' यहाँ पर रायज कर दी । चूँकि (४३) नागसेन की तालीम और परचार से वहाँ के बहुत से लोग अपने मजहब बरगस्तर हो गये थे और बुध मजहब अख्तियार कर लिये थे अपने खादती अशगाल छोडकर बडे कामो में मुबतिला हो गये थे इसलिये उसकी नहूसत से इस मुल्क मे वकसरत वरफ बरसना शुरू हो गयी । यहां तक कि यहा के बादशाह मौसम सरमा में पंजाब और (४४) वगैरह की तरफ हर साल जाने लगे। चन्दर आचारज हुस्न इखलाक और तालिफ कलूब से काम लेकर लोगो को अपने पुराने बाप-दादो के मज़हब पर कायम रहने को तलकीन करता। इस वजह से यहाँ के बहुत से लोगो ने बुध मज़हब छोडकर अपना पुराना आबाई मजहब अख्तयार कर लिया । नीलमत पुराण किताब पर अजसरे नव अमल पैदा होकर साबिक् रवाज के मुताबिक नजर व खैरात करने लगे। इसकी बरकत से बरफ की मुसीबत से निजात पाई। राजा अभिमन्यु ने परगना बागल मे मौजा आमपुरा आबाद करके बरहमनो को बख्श दिया। चन्दर आचारज को खास एक जागीर देकर ताजीम और तकरीम से उसकी परवरिश की। यह राजा बौद्ध मज़हब के पीरो के साथ मजल्शि मुनाजिरह मुनकद कराता था। इससे इस मजहब के लोगो को बडी खराबी का सामना करना पडता था। ३३ साल हकूमत करके इस दुनिया को छोड दिया।

गुलजार कश्मीर का मुसनिक लिखता है कि यही चन्दर आचारज है जिसने किताब नीलमत पुराण चश्मा नीलनाग से निकाली है। या खुद तसनीफ की है। फकत अल्लाह ज्यादा जानता है। (पृष्ठ ४४)

पुरातन इतिहासकार छविल्लाकर की लुप्त राजाओ की तालिका में यह अन्तिम नाम है। कल्हण ने इस राजा का वर्णन छविल्लाकर के वर्णन के आधार पर किया है।

अभिमन्यु कौन था । किस वंश का था। किस प्रकार कश्मीर का राजा हुआ इस पर कल्हण ने कोई प्रकाश नही डाला है । कुशान राजा वसुदेव की शक्ति क्षीण हो गयी थी। उसका राज्य मथुरा मण्डल के समीप सीमित रह गया था। नाग जाति के उपद्रवो के कारण कुशान शक्तिहीन होकर अपना अधिकाश राज्य खो बैठे थे। कल्हण ने हविष्क के पश्चात् कुशानवंशीय और किसी राजा का वर्णन नहीं किया है। कुशान राजाओ के प्रति किसी प्रबल विद्रोह एव संघर्ष की ओर कल्हण संकेत नही करता। निर्विवाद मालूम होता है। वासुदेव तथा उसके पश्चात् के राजा निर्बलता के कारण कनिष्क के साम्राज्य को सम्हाल सकने में असमर्थ रहे। केन्द्रीय शक्ति के क्षीण होने के कारण शासन सूत्र शिथिल होकर टूट गया । प्रदेश तथा विजित भूखण्ड स्वतन्त्र हो गये। निस्सन्देह यही प्रक्रिया कश्मीर मे हुई होगी।

कश्मीर की व्यवस्था कुशान राजा न कर सके। पंजाब तथा मथुरा के समीप उसकी शक्ति नाग जाति के विद्रोह को दबाने मे लग गयी। कश्मीर जैसे दूर पर्वतीय प्रदेश से सम्बन्ध विच्छेद हो जाना स्वाभाविक था।

चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वाऽऽदेश तस्मात्तदाऽगमम्।
प्रवर्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतम् ॥ १७६ ॥

१७६. चन्द्राचार्यादि[1] ने राजा के आदेश पर उस समय लुप्तप्राय भाष्य[2] का जनता मे प्रचार किया। साथ ही साथ उन्होने अपने स्वरचित व्याकरण[3] का भी प्रचार किया।

अभिमन्यु इस स्थिति से लाभ उठाकर या तो स्वय कश्मीर मण्डल का राजा हो गया होगा अथवा कश्मीर की जनता ने उसके गुणो के कारण शासन निमित्त राजा चुना होगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७५ में 'नामाङ्क' का 'नामाङ्का' 'नामाङ्क' और 'शशाङ्काङ्क' का 'शशाङ्कार्थ' पाठ-भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१७५ (१) **अभिमन्युपुर :** यह श्रीनगर के नैऋत्यकोण में चार मील दूर विमयन ग्राम है। रानी दिद्दा द्वारा वसाया गया अभिमन्युपुर जिसका वर्णन राज० तर० ६ २९९ में किया है दूसरा ग्राम है। दोनो को एक ही अभिमन्युपुर नही मानना चाहिए।

(२) **शशाकांकशेखर :** शशाक का अर्थ शशि या चन्द्रमा होता है। शेखर का अर्थ शिर का आभूषण है। शिर पर धारण की जाने वाली किरीट तथा पुष्पमाला है। भगवान् शिव का शिरोभूषण चन्द्रमा है। अतएव शशाकशेखर शकर का नाम पडा है। कल्हण ने शशाकशेखर अर्थात् शिव के मन्दिर की समानता नगर के अलकार से की है। शशाक जिस प्रकार शिव का अलकार है उसी प्रकार अभिमन्युपुर नगर का आभूषण किंवा अलकार शशाकशेखर का मन्दिर था। कल्हण का तात्पर्य यह मालूम होता है कि मन्दिर इतना सुन्दर था कि वह नगर का आभूषण मालूम होता था।

कल्हण ने इस मन्दिर के माध्यम से यह कहने का प्रयास किया है कि राजा शिवभक्त था। कुशान राजाओ द्वारा प्रचलित बुद्धधर्म को राजाश्रय प्राप्त नही था। राजाश्रय प्राप्त हो गया था। वे शिवभक्त किंवा सनातनधर्मी थे। कश्मीर ने चार धार्मिक क्रान्तियो का सामना तीन शताब्दियो के अन्दर किया था। पहली धार्मिक क्रान्ति बुद्धधर्म प्रचार की अशोक ने की थी। उसकी विरोधी दूसरी क्रान्ति जलौक ने सनातन धर्म को चलाकर की। तीसरी क्रान्ति कुशान राजाओ ने बुद्ध धर्म की पुन प्रतिष्ठा तथा राजाश्रय देकर की। सनातन धर्म पृष्ठ भाग में रह गया। चौथी क्रान्ति राजा अभिमन्यु ने पुन. बौद्धधर्म के स्थान पर सनातन धर्म को स्थापित कर की थी। एक प्रकार से सनातन तथा बौद्धधर्म के अनुयायी राजा अपने धर्मों का प्रचार तथा राजाश्रय देते रहे। एक ही कश्मीर मण्डल जैसे लघु स्थान में धार्मिक क्रान्तियाँ एक के पश्चात् दूसरी होती रही। परन्तु वे राजविप्लव का रूप नही ले सकी। विचार आते रहे। जाते रहे। जनता समयानुकूल उनको स्वीकार तथा अस्वीकार करती रही।

पाठभेद

श्लोक सख्या १७६ में 'लब्ध्वाऽऽदेशं' का 'लब्धादेश', 'लब्ध्वादेशान्' 'लब्धादेशैं' 'लब्धादेशात्' तथा 'स्व च' का 'चन्द्र' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

१७६ (१) **चन्द्राचार्य :** इनका नाम चन्द्रगोमी था। चन्द्राचार्य एव चन्द्र नाम से इनकी ख्याति थी। इन्होने पाणिनीय व्याकरण के आधार पर अपने एक और व्याकरण की रचना की। उसमें 'स्वर वैदिकी' प्रकरण नही मिलता। इस आधार पर विद्वानो का मत है कि वे बौद्ध थे। क्योंकि बौद्ध वेद को मान्यता नही देते।

इनका कहाँ जन्म हुआ था अनिश्चित है। कुछ विद्वानो का मत है कि 'व तथा ब' मे इन्होंने भेद नही किया है। अन्तस्थ 'व'कारान्त पदो को भी पवर्गीय 'ब'कारान्त प्रकरण मे पढा है। अतएव कहा जाता है कि वे वग (बगाल) निवासी थे। कारण यह दिया जाता है कि 'वंग' प्रदेशीय लोगो मे यह उच्चारण दोष पाया जाता है। इनके वश का विशेष परिचय नही मिलता है।

(२) **महाभाष्य :** यहाँ पतजलि के महाभाष्य से अभिप्राय है। वह दूसरी शताब्दी ईसापूर्व मे हुआ था-। पाणिनि पर उसने महाभाष्य लिखा है। राजा जयापीड के समय (रा० त० ४ ४८८) में इसी प्रकार का प्रयास किया गया था। राजा अभिमन्यु ने व्याकरण शास्त्र के लुप्त हो जाने के कारण साहित्य को नवजीवन तथा एकरूपता देने के लिये चन्द्राचार्य जिन्हे चन्द्रगोभिल भी कहा जाता है। तथा अन्य विद्वानो को नियुक्त किया था। मालूम होता है। उस समय काश्मीर में व्याकरणाचार्यों की कमी हो गयी थी। शिक्षको के अभाव में उसने चन्द्राचार्यादि की सहायता द्वारा लुप्तप्राय ज्ञान के पुनर्जीवन निमित्त प्रयास किया था। जयापीड के समय मे भी पतजलि के महाभाष्य के प्रचार निमित्त पुन' प्रयास होता दिखायी पडता है।

हिन्दू राजाओ के अतिरिक्त कश्मीर का सुलतान बडशाह जैनुल आबदीन जो स्वयं सस्कृत का ज्ञाता था। उसके निर्देश पर रामानन्द ने महाभाष्य पर टीका लिखी थी। बुद्धभट्ट स्वयं महाराष्ट्र में अथर्ववेद के ज्ञानार्जन निमित्त गया था। वह बादशाह के पास न्यायाधीश शिवाभट्ट की प्रेरणा पर भेजा गया था। लुप्तप्राय वेद का ज्ञान प्राप्त कर, उसका प्रचार कश्मीर में आकर करें। लगभग ५०० वर्ष पश्चात् स्वर्गीय रणजीत सीताराम पण्डित के भाई स्वर्गीय श्री एस. पी. पंडित को जब अथर्ववेद की पाण्डुलिपि दक्षिण मे प्राप्त नही हो सकी, तो कश्मीरी पाण्डुलिपियो को उन्होने अपना आधार माना था।

कल्हण ने पतंजलि का नाम महाभाष्य के साथ नही लिखा है। परन्तु राजतरंगिणी के सभी विद्वानो का मत है कि यहाँ कल्हण का तात्पर्य पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य से ही है। उन्हें योग सूत्र, चरक सहिता तथा व्याकरण महाभाष्य का रचनाकार माना जाता है। परन्तु प्रथम दो ही ग्रन्थ उपलब्ध है। तृतीय का लेखक भिन्न व्यक्ति है इस प्रकार का मत कुछ विद्वानो ने प्रकट किया है। परन्तु सत्रहवी शताब्दी के वैयाकरण नागोजि किंवा नागेश भट्ट ने अपने व्याकरण ग्रन्थ मंजूषा मे 'इति चरके पतंजलि' शब्द का प्रयोग किया है। तथापि आधुनिक विद्वान् चरक संहिता का लेखक योग सूत्रकार पतंजलि को नही मानते।

महाभाष्यकार पतंजलि का काल निर्णय निश्चयात्मक रूप से निश्चित नही हो सका है। शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र के श्रौतयज्ञ मे, कहा जाता है, पतंजलि पुरोहित थे। 'इह पुष्यमित्रं याजयाम.' महाभाष्य से सिद्ध होता है। यवनों ने साकेत और माध्यमिका पर आक्रमण किया था। पतजलि उस समय वर्तमान थे। इह प्रकार महाभाष्य तथा पतंजलि दोनो का समय ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी ठहरता है। इस आधार पर विद्वानो का मत है कि ईसा पूर्व २०० वर्ष से १४० वर्ष के मध्य महाभाष्य की रचना हुई थी।

महाभाष्य मे 'मुनित्रय' को विशेष महत्त्व दिया गया है। वह मुनित्रय अष्टाध्यायीकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन, तथा महाभाष्यकार पतजलि हैं। अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वार्तिको की रचना कर व्याकरण को अधिक व्यापक, पूर्ण, तथा स्पष्ट किया है। पतजलि ने अपने महाभाष्य द्वारा वार्तिको की व्याख्या की और आगे बढाया है। उसमे उन सूत्रो की भी विवेचना की गयी है जिन पर कात्यायन ने लेखनी नही उठायी थी।

'वाक्यपदीय' कार भर्तृहरि ने महाभाष्य की रचना का हेतु उपस्थित किया है। उनका मत है

तस्मिन्नवसरे बौद्धा देशे प्रबलतां ययुः ।
नागार्जुनेन सुधिया बोधिसत्त्वेन पालिताः ॥ १७७ ॥

१७७. सुधी बोधिसत्त्व नागार्जुन[१] द्वारा पालित बौद्ध उस समय देश मे प्रबल हो गये थे।

कि जिस समय व्याकरण के विद्वान् सक्षेप रुचि तथा अल्पविद्यापरिग्रही हो गये तो 'सग्रह' ग्रन्थ का सन्ध्या काल आ गया। उस समय तीर्थदर्शी गुरु पतजलि ने महाभाष्य की रचना की। उसमें न्याय बीजो का भी निबन्धन है। इससे स्पष्ट होता है। 'सग्रह' ग्रन्थ मे व्याकरण सम्बन्धी अत्यन्त विस्तृत विवेचन था।

महाभाष्य की शैली पाण्डित्यपूर्ण है। व्याख्या शैली सरल है। गद्य अत्यन्त सरल है। अकृत्रिम है। स्पष्ट है। धारा प्रवाहिक है। भर्तृहरि की टीका का अधिकाश अबतक अनुपलब्ध है। विवादास्पद विषयो का योग्यतापूर्वक निर्वाह किया है। पहले पूर्व पक्ष को उपस्थित कर उसके पश्चात् उत्तर पक्ष को उपस्थित किया है। अनन्तर उसने अपना मत प्रकट किया है। यह शैली कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भी अपनायी है। महाभाष्य में दार्शनिक दृष्टि के साथ ही साथ शब्दनित्यवाद किंवा शब्द ब्रह्मवाद का निर्देश किया गया है। 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि ने इस पर विस्तृत व्याख्या की है।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय उपयुक्त तथा विज्ञ अध्यापको तथा शुद्ध पाठ के अभाव में उसका व्यवहार कम हो गया था। शनै शनै उसे लोग भूल गये थे। (तरग ४ ४८८) राजा जयापीड के समय मे कल्हण पुनः वर्णन करता है कि महाभाष्य का प्राय लोप हो गया था। राजा ने कश्मीर मण्डल के बाहर से विद्वानो को बुलाकर उन्हे कश्मीर में रखा। महाभाष्य का पठन-पाठन पुन आरम्भ हुआ था।

(३) चान्द्र व्याकरण के (१:२ २६) के 'अजयत् जर्तो हूणान्' को परिवर्तित कर कुछ विद्वानो ने 'जर्तो' के स्थान पर 'गुप्तो' कर दिया इसमें अभिमन्यु का काल गुप्त सम्राटो के पश्चात् सिद्ध करते है। किन्तु 'जर्त' शब्द का उल्लेख महाभारत में प्राप्त है। यह शब्द राजा के लिये भी प्रयुक्त किया गया है। उससे प्रकट होता है कि जर्त ने हूणो को पराजित किया था। अतएव अभिमन्यु का काल प्राचीन प्रतीत होता है। राजतरगिणी में कल्हण ने जो समय दिया है वह चन्द्राचार्य के वास्तविक समय के बहुत निकट है।

१७७ (१) **बोधिसत्त्व नागार्जुन:** कल्हण ने यहाँ पर नागार्जुन के लिये पुन· बोधिसत्त्व शब्द का प्रयोग किया है। बौद्ध गण नागार्जुन द्वारा पालित अर्थात् कश्मीर मण्डल में रक्षित थे। उनका किसी प्रकार अनिष्ट नही हो सकता था। बोधिसत्त्व स्वत प्रबोधि प्राप्त के पश्चात् बुद्ध हो जाते है। नागार्जुन के आध्यात्मिक शक्ति का उल्लेख यहाँ पर कल्हण करता है। नागार्जुन यद्यपि कश्मीर मण्डल के राजा नही थे परन्तु श्लोक सख्या १७७ में उसे भूमीश्वर कहा है। राजा यद्यपि शिव उपासक था परन्तु वह मालूम पडता है, बौद्धो का विरोध करने में असमर्थ था।

भगवान् बुद्ध को पूजा कल्हण के समय तक प्रचलित थी। बुद्ध जन्मोत्सव मनाने का कल्हण उल्लेख करता है। बारहवी शताब्दी सन् ११९१ ई० की हादी ग्राम में एक शिलालेख मिलता है। वह बुद्ध अवलोकितेश्वर की स्तुति से आरम्भ होता है। परिहासपुर में बोधिसत्त्व तथा एक बुद्ध की मूर्ति मिली थी। हुऐनसाग १०० तथा ओकुग (सन् ७५९ ई०) ८०० विहारो के होने का उल्लेख करता है। प्रताप सिंह सग्रहालय श्रीनगर में बोधिसत्त्व पद्मपाणि की एक मूर्ति रखी है।

ते वादिनः पराजित्य वादेन निखिलान्बुधान् ।
क्रियां नीलपुराणोक्तामच्छिन्दन्नागमद्विषः ॥ १७८ ॥

१७८. आगम द्वेषी[1] उन बौद्धों ने अपने विरोधी निखिल विद्वानों को बाद में परास्तकर[2] नीलमत पुराणोक्त धार्मिक क्रियाओं को उच्छिन्न[3] कर दिया।

---

१७८ (१) **आगम :** शब्द का अर्थ लिखित प्रमाण ज्ञान, परम्परा गत सिद्धान्त, शास्त्र किंवा विधि, वेद तथा न्याय के चार प्रकार के प्रमाणो मे अन्तिम प्रमाण है।

आगम शास्त्र साधारणतया तन्त्र शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। निगमागम शब्द का प्रयोग बहुत होता है। निगम जिस प्रकार वेद है उसी प्रकार आगम तन्त्र भी है। निगम कर्म, ज्ञान तथा उपासना का स्वरूप बनाता है। आगम उनके उपायभूत साधनो का वर्णन करता है। वाराही तन्त्र के अनुसार आगम का सात लक्षण यथा—सृष्टि, प्रलय देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट् कर्म तथा साधन और ध्यान योग हैं। षट्कर्म,—शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण है।

महानिर्वाण तन्त्र के अनुसार प्राणी पवित्र तथा अपवित्र अर्थात् मेध्य तथा अमेध्य हैं। विचारो से प्राय हीन होते हैं। प्राणियो के कल्याणार्थ शकर ने पार्वती को आगमो का उपदेश स्वयं दिया था 'कलि आगम सम्मत' अर्थात् कलियुग मे आगम की पूजा पद्धति उपयोगी एव लाभप्रद कही गयी है।

वेद में बहुदेववाद का बहुल है। उनकी भिन्नता के कारण उनके तीन प्रकार हो गये हैं। वैष्णव आगम अर्थात् पाचरात्र और वैखानस आगम एवं शैव आगम मे पाशुपत, शैव सिद्धान्ती तथा त्रिक। तीसरा शाक्त आगम है। द्वैत द्वैताद्वैत एवं अद्वैत दृष्टियो से भी तीन भेद माने गये हैं।

अनेक आगम वेद मूलक हैं। अनेक तन्त्रो पर आगम का बाह्य प्रभाव भी लक्षित होता है। बौद्ध धर्म ने वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध आवाज उठायी थी। वेद एवं ब्राह्मणो की समालोचना से बौद्ध-साहित्य भरा पडा है। बौद्धो की इसी मनोवृत्ति की ओर संकेत करते हुए कह्लण ने बौद्धों को आगम द्वेषी रूप में यहाँ चित्रित किया है।

शिव तथा त्रिक सूत्र के पूर्व भी कश्मीर मे आगम तन्त्र शास्त्र का अस्तित्व मिलता है। मालिनी, विजय, स्वच्छन्द, बिज्ञान भैरव, आनन्द-भैरव, उच्छस्य भैरव, मृगेन्द्र, मातंग, नेत्र, नव स्वास, स्वयभू एव रुद्रयामल रूप मिलते हैं।

(२) **वाद** : वाद का अर्थ वाणी, शब्द, वचन, कथन, वर्णन, निरूपण, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, तथा खण्डन मण्डन होता है। वाद प्रतिवाद का अर्थ झगडा-वहस आज कल होता है। कह्लण ने यहाँ वाद शब्द शास्त्रार्थ के अर्थ में प्रयुक्त किया है। पराजित शब्द के 'वादेन' के पूर्व रखने से स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धो ने शास्त्रार्थ मे तत्कालीन विद्वानो को परास्त किया था। बौद्धो ने आगमो का खण्डन कर अपने मत का मण्डन किया था।

(३) **उच्छिन्न :** कह्लण बौद्धो की प्रबल बुद्धिप्रबलता का यहाँ उल्लेख करता है। सभी कश्मीर मण्डल के विद्वानो को बौद्धो ने शास्त्रार्थ मे पाण्डित्य, अकाट्य तर्क, एवं विद्वत्ता के कारण परास्त कर दिया था। उनके धर्म प्रचार का इतना गम्भीर प्रभाव पड़ा कि कश्मीर मे नील मत विहित धार्मिक सस्कार आदि समूल नष्ट हो गये। यह एक सामाजिक क्रान्ति थी। उसने समाज के ढाँचे को बदल दिया। लोग प्राचीन सनातनधर्मी परम्पराओ को स्वत त्याग दिये। राजा इस सामाजिक एवं धार्मिक क्राति मे सम्मिलित नही था परन्तु बौद्धो के अनुशासन, विचार तथा प्रचार के कारण धार्मिक कृत्य स्वत उच्छिन्न हो गये थे।

मण्डले विप्लुताचारे विच्छिन्नबलिकर्मभिः ।
नागैर्जनक्षयश्चक्रे प्रभूतहिमवर्षिभिः ।। १७९ ।।

१७९. जब उस मण्डल मे आचार विलुप्त हो गये, वलिकर्म[1] विच्छिन्न हो गये तो नागाओ[2] द्वारा की गई प्रभूत हिम[3] वर्षा द्वारा जन क्षय होने लगा।

हिमान्यां बौद्धबाधाय पतन्त्यां प्रतिवत्सरम् ।
शीते दार्वाभिसारादौ षण्मासान्पार्थिवोऽवसत् ।। १८० ।।

१८०. बौद्धों को बाधा पहुँचाने के लिये प्रति वर्ष हिम वर्षा होने लगी। अतएव राजा शीत काल मे छः मास तक दार्वाभिसार[1] मे निवास करने लगा।

---

१७९ (१) **बलि कर्म** अनेक प्रकार के वलि कर्म एव सस्कार नील मत पुराण में विहित हैं। बौद्धो के कारण वलि कर्म बन्द हो गया था। बौद्ध नाग पूजा, मूर्ति पूजा तथा देव पूजा में उस समय तक विश्वास नही करते थे।

पंच महा यज्ञो में पाँचवाँ बलि है। वलि अर्थात् जीवो को अन्न दानादि से सन्तुष्ट करने का नाम भूतयज्ञ है। बलि का दूसरा प्रकार पशुओ का वध किवा बलिदान है। वलि का वलिदान काल मे पूर्वाभिमुख तथा खड्गधारी वलि देने वाले का मुख उत्तर दिशा की ओर रहना चाहिए। 'वैश्वदेव' कर्म करने के काल मे जो अन्न भाग अलग रख दिया जाता है। उसे प्रथमोक्त बलि कहा जाता है। यह अन्न भाग देव यज्ञ के लक्ष्यभूत देव के प्रति एव जल, वृक्ष, गृहपशु इन्द्रादि देवताओ को समर्पित किया जाता है। वलि का अन्न भाग अग्नि मे नही डाला जाता। भूमि पर फेंक दिया जाता है।

(२) नाग : नाग पूजा कश्मीर में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी। ओनिस क्रीटस सम्राट् सिकन्दर के साथ यूनान से भारत मे आया था। उसके लेख का उल्लेख स्टार्वो ने किया है—दर्भाभिसार के राजा का दूत दो बडे नागो का पालन-पोषण करता था। इसी प्रकार तक्षशिला के राजा ने एक वडा भारी नाग दिखाया था। उसे वह बडे स्नेह से खिलाता था। उसकी पूजा देवता तुल्य करता था। आइने अकबरी में अबुल फजल लिखता है—"कश्मीर मे नाग पूजा सम्राट् अकवर के समय तक होती रही है। यद्यपि वहाँ के रहने वाले प्राय. मुसलमान हो गये थे। इस समय ७०० नाग मूर्तियाँ कश्मीर के विभिन्न स्थानो में पूजी जाती हैं। अबुल फजल ने यह उद्धरण आइने अकवरी मे पुण्यभट्ट से लेकर दिया है।

नीलमत पुराण में भगवान् विष्णु ने नाग पूजा के प्रसंग में कहा है—

नागस्य यस्य ये स्थाने निवसिष्यन्ति मानवा ।
ते त सपूजयिष्यन्ति पुष्पधूपानुलेपनै ।।
नैवेद्यैर्विविधैर्गन्धै प्रेक्षादानैश्च शोभनै. ।
त्वयोक्तं च सदाचारं पालयिष्यन्ति ये जनाः ।।
२८९–२९०

\+ \+ \+

तस्मादस्य सदा पूजां बलि च विधिना बुध. ।
विदध्यात्तन्निवासस्थैरम्भर्च्योऽसौ सदा मुदा ।।
२९७

(३) **हिमपात :** प्रतीत होता है कि बौद्धो के प्राबल्य के पश्चात् कश्मीर मे कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिनका कारण बौद्धो के सर थोपा गया। लगातार कई वर्षों तक अकाल पडता रहा। हिमपात इतना होने लगा कि लोग व्याकुल हो गये थे। चन्द्रदेव, एक ब्राह्मण नेता ने प्रचार आरम्भ कर दिया कि इन सब अनर्थो का मूल कारण बौद्धो का प्रचार

तथा प्राचीन सनातन धर्म से लोगो का विरत होना था। नाग देवतागण अपनी पूजा बन्द हो जाने के कारण क्रुद्ध हो गये थे। हिमपात इतना भयकर होने लगा था कि राजा दार्वाभिसार (कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम रजौरी क्षेत्र मे) किंवा नौशेरा और पुछ मे जहाँ कुछ शीत कम पडती थी निवास करने लगा।

१८० (१) दार्वाभिसार दार्वाभिसार का उल्लेख पुराणो, महाभारत तथा बृहत् सहिता मे पंजाब की जातियो के वर्णन के सम्बन्ध मे आया है। यह रावी तथा झेलम (वितस्ता) नदियो के अधोभागीय मध्यवर्ती पर्वतीय स्थान के लिए प्रयोग किया गया है। रजौरी का पर्वतीय क्षेत्र दर्भाभिसार मण्डल मे आता है। (रा० त० ८:१५३१, १८६१)। भीमवार इसी क्षेत्र के मध्य में एक छोटा पर्वतीय राज्य था। डगल वितस्ता के समीप अधोभागीय पर्वतीय दुर्ग घग्घर को कहते हैं। दर्भामिसार उत्पलापीड के समय कश्मीर के अन्तर्गत था। (रा० त० ४:७१२) शंकर वर्मा ने उसे पुन उस समय जीता था जब वह गुजरात जो भीमवर के दक्षिण था जीतने गया था (रा० त० ४ १४१, ५ २०८)। यहाँ के लोगो के चरित्र के विषय में कल्हण ने (रा० त० ८ १५३१ में) वर्णन किया है।

दर्भाभिसार का उल्लेख सिकन्दर के आक्रमण के समय भी आया है। दर्भाभिसार के राजा ने सिकन्दर की सहायता की थी।

दर्वः एक जाति का नाम है। यह जाति वल्लावर तथा जम्मू में रहती थी। दर्व जाति के साथ ही अभिसार जाति आबाद थी। अतएव प्रदेश का नाम दर्वाभिसार पड गया। चेनाव तथा रावी का मध्यवर्ती पर्वतीय भाग दर्व जनपद था। मार्कण्डेय पुराणादि के आधार पर कहा जा सकता है कि दर्व लोग पजाब की उत्तरीय दिशा की जातियो मे से थे। उनका उल्लेख त्रिगर्त के साथ प्राय. आया है।

महाभारत सभापर्व में दरद-दार्व-जाति का उल्लेख आया है। (सभापर्व ५१।१३) पुनः उल्लेख आया है।

कामव्याः दरदा दार्वा शूरा कैमकास्तका।
औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा वाल्हिकै. सह॥
कश्मीरा कुन्दमानाश्च पौरका हंसकायना.।
शिवत्रिगर्तयौधेया राजन्याश्चन्द्रकेकयाः॥

—सभा पर्व ४८ १२ १३

उशीनर की पत्नी का नाम दर्वा था। दर्विन उशीनर का पुत्र वैष्णव मत के अनुसार था।

अभिसार का उल्लेख बृहत् सहिता में वाराहमिहिर ने किया है। उसने अभिसार, दरद, दर्वा, खस, कीर, कुलूत, कौलिन्द आदि जातियो का वर्णन किया है। अभिसार जनपद झेलम चनाव के मध्यवर्ती प्रदेश का नाम था। अतएव निष्कर्ष ठीक होगा दर्वा तथा अभिसार दो भिन्न जनपद थे। मारकण्डेय पुराण मे वर्णन आया है।

कुन्दप्रावरणाश्चैव उर्णा दार्वाः सुकृद् गृहाः।
त्रिगर्ता. जालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह॥

५७·५७

बृहत् सहिता १४.२९, अलबेरुनी १.३०३

दर्वा का उल्लेख पर्वताश्रयी देश के रूप में मारकण्डेय पुराण मे आया है।

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहारा. हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खशा.॥
कुन्तप्रावरणाश्चैव उर्णा. दार्वाः सकृद्गृहाः।
त्रिगर्ताः गालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह॥

मारकण्डेय पुराण ५७।५६–५७

नागरहुजा गिलगिट क्षेत्र में स्थान है। उसका प्राचीन हंसमार्ग नाम था। हस का अपभ्रंश हुजा हो गया है। यह प्राचीन दरद जनपद है। पुरातत्त्व विद्वानो मे अब भी मतभेद है कि वास्तव मे हुजा हसमार्ग ही है। मै स्वय कुछ साधिकार नही कह सकता क्योकि इस स्थान पर मै आया नही हूँ और यह नही देख सका हूँ कि ऋतु विशेष में हंस किंवा पक्षी इस ओर से गमन करते है। यह स्थान इस

तदा प्रभावः कोऽप्यासीद्वलिहोमविधायिनाम् ।
नानशन्यद्वशाद्विप्रा बौद्धाश्च निधनं गताः ॥ १८१ ॥

१८१ उस समय किसी अलौकिक शक्ति के प्रभाव के कारण जिन ब्राह्मणो ने वलि तथा होम[1] विधिवत् किया उनका नाश न होकर केवल बौद्धों का निधन[2] हुआ था।

समय पाकिस्तान में है। वहाँ पाकिस्तानी सैनिक छावनिया है जाना सम्भव नही है।

मारकण्डेय पुराण में—'जर्णा दर्वास्तथैव च' 'उर्णा दर्वास्त्थैव च' ब्रह्माण्ड पुराण में ऊर्णा दर्वास्तथैव च' उल्लेख आया है। पुराण काल मे दर्व जाति तथा दर्वा देश समझे जाते थे। भीष्म पर्व में जनपदो के वर्णन मे दर्वा तथा अभिसार दोनो जनपदो का नाम भारतवर्ष के जनपदो के अन्तर्गत भीष्म पितामह ने गिनाया है।

अभीसारा उलूताश्च, शैवला वाहिकास्तथा।
दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगा. ॥
भीष्म पर्व ९ ५४

सभा पर्व में अर्जुन के पर्वतीय देशो के विजय के सम्बन्ध में तालिका दी गयी है। उसमें दार्वा का नाम आया है। दार्वा दर्व प्रदेश किंवा जनपद है। उसका वर्णन काश्मीर त्रिगर्त आदि देशो के साथ ही क्रम से आया है।

ततस्त्रिगर्ता कौन्तेयं दार्वा कोकनदास्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वश. ॥
२७.१९

साथ ही दूसरे श्लोक में 'अभिसारी' शब्द आया है। यह अभिसार प्रदेश तथा नगर का द्योतक है।

अभिसारी ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दन.।
उरगावासिनं चैव रोचमान रणेऽजयत ॥
२७.१९

भीष्म पर्व में एक भारतीय जनपद के रूप मे 'दव' शब्द का प्रयोग किया गया है।

अभीसारा उलूताश्च शैवला वाल्हिकास्तथा।
दार्वी च वानवा दर्वा वातजामरथोरगा. ॥
९.५४

सभा पर्व में दर्व शब्द का प्रयोग एक क्षत्रिय जाति के रूप में किया गया है। पूर्व वशीय क्षत्रिय राजकुमारो ने युधिष्ठिर को बहुत धन उपहार स्वरूप दिया था।

कैराता दरदा दर्वाः शूरा वै यमकास्तथा।
औदुम्बरा दुर्विभागा· पारदा वाल्हिकै. सह ॥
५२:१३।

दार्व शब्द का प्रयोग दर्वदेशीय किंवा दर्व जाति में उत्पन्न क्षत्रिय नरेश के रूप में किया गया है।

ततस्त्रिगर्ता. कौन्तेय दार्वा. कोकनदास्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वश ॥

दार्वाभिसार शब्द एक म्लेच्छ जाति के लिये प्रयुक्त किया गया है।

दार्वाभिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रश ।
तेन शक्या. स्म संख्यातुं व्रात्या शतसहस्रश ॥
९३ ४४।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या १८१ में 'विधायिनाम्' का 'विधायिन' तथा 'नशन्' का 'नश्यन्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८१ (१) होम : देवताओ के उद्देश्य से अग्नि में घृतादि डालकर हवन करने को होम कहते हैं। यह पच महायज्ञो में से एक देवयज्ञ है। उस दान का भो होम कहते हैं। जा श्राद्धादि के समय मत्र पूर्वक किया जाता है। मनुस्मृति ने होम को एक यज्ञ माना है।

नीलमुद्दिश्य देशस्य रक्षितारमहीश्वरम् ।
काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यस्तपस्तेपे ततो द्विजः ॥ १८२ ॥

१८२ काश्यप गोत्रीय चन्द्रदेव[1] नामका द्विज नीलनाग को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगा जो काश्मीर के नागाओं का राजा तथा रक्षक था ।

तस्य प्रत्यक्षतां यातो नीलस्तुहिनविप्लवम् ।
न्यवारयज्जगादापि स्वपुराणविधिं पुनः ॥ १८३ ॥

१८३. चन्द्रदेव के सम्मुख नील प्रसन्न हुए । तुहिन विप्लव शान्त किया । नील ने स्व (नीलमत) पुराण की यज्ञादि विधियाँ[1] पुनः बतायी ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
३ ७० ।

(२) निधन . बौद्धो के राजनीतिक उत्पीडन का श्लोक संख्या १८० तथा १८१ मे एक मत से कवित्वपूर्ण वर्णन कल्हण ने किया है । बौद्धो को बाधा पहुँचाने के लिये हिम वर्षा तथा बलि एवं होम के कारण ब्राह्मणो पर सकट न आकर बौद्धो का निधन होने लगा यह पुरातन सनातन परम्परानुसार बलि तथा होम की शक्ति तथा महत्ता दिखाने के लिये यहाँ वर्णन किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८२ मे 'तारमहीश्वरम्' का 'तार महेश्वरम्', 'तपस्तेपे' का 'ततस्तेपे' तथा 'ततो द्विजः' का पाठभेद 'द्विजस्तत.' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१८२ (१) चन्द्रदेव : इस तपस्वी के विषय में विस्तृत बातें अप्राप्त है । यह ब्राह्मण थे । तपस्वी थे । काश्मीर में हिम विप्लवादि समाप्त करने के लिये काश्मीर के नागराज नील को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगे । कश्मीर मे यह प्रचलित परम्परा है कि नील नाग कश्मीर का रक्षक है । वही सब नागो का नेता किंवा राजा है । नीलमत पुराण कश्मीर का पुराण तथा पूजा, उपासना, बलि एवं धार्मिक संस्कारों की विधि निर्धारित करता है । प्राचीन संस्कार बौद्धो के नवीन शासन के कारण नष्ट प्राय हो गये थे अतएव उन्हें पुनः जारी करने के लिये उसने तपस्या की ।

१८३ (१) विधि : प्रतीत होता है कि बौद्धो के प्रभाव के कारण, बौद्धमतावलम्बी राजाओ के लम्बे काल एव प्रश्रय के कारण नीलमत पुराण विहित सस्कार विधि कश्मीर मे प्रायः लोग भूल गये थे अथवा भूलने लगे थे । नील ने चन्द्रदेव ब्राह्मण के सम्मुख प्रकट होकर नीलमत पुराण विहित विधियो, धार्मिक सस्कारो आदि को पुन बतायी । सम्भव हो सकता है कि प्राचीन नीलमत पुराण लुप्त हो गया हो । उसके स्थान पर नवीन नीलमत पुराण का सस्करण चन्द्रदेव ब्राह्मण ने किया । अन्यथा यहाँ पुनः नीलमत वर्णित बातो को बताने की आवश्यकता न पड़ती ।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित 'रिवर आफ किंगस' पृष्ठ २६ पर श्री फाउचर के एक मन्तव्य का उल्लेख करते हैं । श्री फाउचर ने कश्मीर के ब्राह्मणो तथा मुसलमानो दोनो मे नाग, पिशाच, योग नियोग आदि के विषय में अनेक कथायें तथा जनश्रुतियो का होना कहते हैं । जिनपर कश्मीर उपत्यका की साधारण जनता विश्वास करती है । उनका अभिप्राय है कि इस प्रकार की कथाओ, किंवदन्तियो का संग्रह करना अच्छा होगा ।

आद्येन चन्द्रदेवेन शमितो यक्षविप्लवः।
द्वितीयेन तु देशेऽस्मिन्दुस्सहो भिक्षुविप्लवः ॥ १८४ ॥

१८४. आद्य चन्द्रदेव[1] ने यक्ष विप्लव का शमन किया था और द्वितीय चन्द्रदेव ने इस देश मे दु सह भिक्षु विप्लव शान्त किया।

पाठभेद

श्लोकसख्या १८४ में 'यक्ष' का 'पक्ष', 'यज्ञ' तथा 'भिक्षु' का 'बौद्ध' 'निच' तथा 'भिक्ष' ये पाठ भेद मिलते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

१८४ (१) आद्य चन्द्रदेव पिशाचोसे आदि चन्द्रदेव ने कश्मीर मण्डल की रक्षा की थी। नीलमत पुराण में चन्द्रदेव ब्राह्मण नील समागम वर्णन है। उसमे आद्य चन्द्रदेव काश्यप वशीय वृद्ध ब्राह्मण थे। शीत ऋतु एव तुहिन पात के कारण लोग आसुज मास में पुरानी परम्परा के अनुसार कश्मीर उपत्यका का त्याग करते थे।

वृद्धावस्था के कारण चन्द्रदेव काश्मीर का त्याग न कर सके। पिशाच उसके साथ क्रीडा करने लगे। उसे सर्व प्रथम रज्जु से बाँधकर रखा। अनन्तर उसे मुक्त कर दिया। उसे कुछ समझ में नही आ रहा था। वहाँ शरण ग्रहण करें। वह घूमने लगा। घूमते-घूमते वह नील के निवास पर पहुँचा। नील को उसकी दशा पर करुणा आयी। उसका आतिथ्य सत्कार किया। उसने पिशाचो तथा शीत रक्षा निमित्त अनेक क्रियाएँ बतायी।

चैत्र मास में हिमपात बन्द हो जाता है। भूमि हिम विहीन हो जाती है। लोग पुन कश्मीर उपत्यका में लौट आते है। वृद्ध चन्द्रदेव को प्रसन्न तथा स्वस्थ देखकर लोगो को आश्चर्य हुआ। उसे राजा वीर्योदय के सम्मुख उपस्थित किया। चन्द्रदेव ने पिशाच तथा नील के साथ हुई वार्तालाप तथा घटनाओ का वर्णन किया। नील द्वारा विहित पूजा विधि बतायी। राजा तथा प्रजा उन्हें प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो गये। परिणाम स्वरूप कश्मीर उपत्यका पिशाच-भय एव उपद्रव विहीन हो गयी।

अवश्युज्यामतीतायां निर्मयुमनिवा वहि.।
काश्यपश्चन्द्रदेवाख्यो वृद्धो ब्राह्मणपुंगव ॥

निर्जगाम निर्वेदाच्चोदितोऽर्थेन भाविना।
क्रीडानिमित्त च भयान्निकुम्भस्य न यातित ॥

ब्राह्मणेन पिशाचास्तुश्चिक्रीडुस्तेन ते तदा।
रज्जुबद्धेन तु पथा यक्षिणा नृपदारका ॥

कल्पमाना' (१) पिशाचैस्तु निर्वेदं परम ययौ।
हिमेन शोतेन तथा पिशाचै.समीप्यमानो द्विजवृद्धवर्य'।
बभ्राम तत्रैव विमूढ़चेता भ्रमन्ययौ यत्र स नागराज.॥
४२५–४२९

यहाँ कल्हण ने पिशाच के स्थान पर यक्ष शब्द का प्रयोग किया है। दोनो शब्द को प्राय समानार्थक कुछ ऐतिहासिको ने माना है। परन्तु यक्ष तथा पिशाच दो भिन्न जातियाँ हैं। उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। मुझे नीलमत का मत कल्हण की अपेक्षा अधिक तर्कसम्मत मालूम होता है। कश्मीर में यक्ष, गुह्यक तथा पिशाच तीनो जातियाँ थी। यक्षो को कही धर्मविरोधी कार्य करते नही दिखाया गया है। पिशाच धर्म विरोधी कार्य करते थे। अतएव यहाँ पिशाच नाम यक्ष के स्थान पर होना चाहिये। यक्षो को शिल्पी के रूप में चित्रित कल्हण ने किया है। वे निर्माण कार्य मे लगे दिखाई देते है। चन्द्रदेव आख्यान से प्रतीत होता है। कश्मीर उपत्यका में लोग ६ मास निवास करते थे। तुषारपात आरम्भ होने के पूर्व उपत्यका छोडकर गर्म स्थान में चले जाते थे। इसी प्रकार तुषारपात बन्द होने पर पुन उपत्यका मे लौट आते थे। अब भी

शीत ऋतु प्रारम्भ होते ही पर्वतो पर रहने वाली घूमन्तू जातियाँ मैदान मे अपनी भेडो तथा पशुओ के साथ शरण लेती है। सितम्बर मास मे मैंने इस प्रकार ऊँचे पर्वतो पर से आने वाले लोगो का समूह कश्मीर की सडको पर बहुत देखा है। कल्हण ने यहाँ पुरानी गाथा की पुनरावृत्ति की है।

उक्त वर्णन से प्रकट होता है। पुरातन नीलमत वर्णित सस्कारादि जो बौद्धो के कारण बन्द हो गये थे पुनः आरम्भ किये गये। नाग पूजा पुन कश्मोर मे प्रचलित हुई। कुछ विद्वानो का मत है। नीलमत पुराण इसी समय की रचना है। नीलमत सिद्धान्त लोग त्याग दिये थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि नीलमत पुराण का महत्व घट गया था। बौद्ध सिद्धान्तो ने जोर पकड़ लिया था। बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया का काल था। कुछ लोगो का मत है कि नीलमत ६वी अथवा ७वी शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ नही है।

हसन चन्द्रदेव के विषय मे लिखता है एक दफा का जिक्र है कि एक बूढा खूसट ब्राह्मण चन्द्रदेव नाम जो इल्म व अमल मे मुमताज था कश्मीर के एक गार मे छुपकर याद खुदा मे मसरूफ हो गया। जरूरियात जिन्दगी की तमाम चीजें इस शख्स ने अपने पास जमा कर लीं। जाडे का मौसम था। बर्फ व बारिश से तग आकर देव फौज दर फौज इसके पास जमा हो गये और उस बूढे खूसट ब्राह्मण को अपनी खुफिया जगह से निकाल बाहर किया। बाद अजा दो खतरनाक कवो हैकल देव नील नाग के चश्मा पर जो कोहस्तान नागिम की तलहटी मे वाका है खडे हो गये और बरहमन मज़कूर को यह दोनो एक दूसरे की बगल मे डालकर हँसी ठट्ठा करने लगे। इत्तफ़ाक से गरीब ब्राह्मण का पाँव फिसल गया। और चश्मे के अन्दर जा पडा। देखता है क्या कि एक बडी वसीय व खराज दुनिया है जिसमे एक आलीशान महल है और महल मे एक जर निगार तख्त जिसपर एक बादशाह बडी शान व तमकुनत के साथ जलसहगर है। ब्राह्मण हाथ जोडकर उसके सामने खडा हो गया और बडी आजिजी के साथ देवो के मुजालिम और बर्फ की तकालीफ उससे बयान करने लगा। यह बादशाह खुद नील नाग था। उसे ब्राह्मण की हालत जार पर सख्त रहम आया और अपने पास बुलाकर अपनी खुद तसनीफ करदा किताब नीलमत पुरान उसको बख्श दी। साथ ही वसीयत की कि किताब मज़कूर को मुतवाँक मुकामात पर पढकर देवो और राक्षसों को खैरात व शदकात दिये जाया करें। वह अमल और वज़ायक जो इस किताब मे दर्ज है बाजाप्तगी से हमेशा पढे जावे। अकसर औकात खुदाताला की इबादत व अताअत मे मसरूफ रहा जाये। इस सूरत मे लोग देवो और राक्षसो की इज ज तकालीफ से महफूज रह सकेंगे। यह कह कर बरहमन मजकूर को चशमा नील नाग के किनारे पहुँचा दिया।

इबनदार बहार थी। लोग सरजमीन हिन्दुस्तान में खेती बाडी की गरज़ से फिर कश्मीर आने लगे। यह देखकर उन्हें बडा ताज्जुब हुआ कि एक बूढा व नातवान ब्राह्मण सही हव मालम मौजूद है। लोगो ने इसका सबब दरयाफ्त किया जिसको उसने मन व अन्न से कह डाला। यह सुन कर लोग बहुत खुश हुए। चुनाचः उसे और उसकी किताब फाले नेक जानकर अपने अफसर दरया देव नामी के पास ले गये। लोगो ने दरया देव के हुक्म पर सरअताअत रखकर देवो और शिद्दत बरफ बारा के आसोब से नजात हासिल कर ली। उसी वक्त से कश्मीर में बिला इम्तयाज मौसम मुस्तकिल तौर पर आबादी शुरू हो गयी। नस्ले इन्शानी की दिन ब दिन कसरत के वापस दिहात व कस्बात बजूद मे आ गये।

इब्दा मे हर एक गावो का अलग हाकिम होता था। फिर सरकशी और हिर्स के बढ जाने की वजह से एक शख्स कई-कई दिहात दबा बैठा। बाहमी मुदाफत और एक दूसरे के शर से बचने के लिये इन लोगो ने छोटे-छोटे किलो की बुनियाद डाल दी। जिन्हे कोट के नाम से पुकारा

राजा तृतीयगोनन्दः प्राप्तराज्यस्तदन्तरे ।
यात्रायागादि नागानां प्रावर्तयत पूर्ववत् ॥ १८५ ॥

१८५. तदन्तर गोनन्द तृतीय[1] राजा हुआ। उसने पूर्ववत् नागयात्रा, नागयज्ञादि[2] प्रवर्तित किया।

जाता है। चुनाचे आज भी यह राय मुन्दरज जैल मुकामो के नामो से दुरुस्त साबित होती है— अन्दर कोट, जीन कोट, सीदरह कोट, दूर-कोट, पट कोट और स्यालकोट। तारीख में इस दौर को कोट राज (या तवालीफ अलमलूकी) के नाम से ताबीर किया जाता है। कश्मीर में यह दौर काफी मुद्दत तक जारी रहा। उस जमाना मे कोट हाकिम को सन्सज (सन्नर) कहा जाता था।

'अपनी असली दौलत पर काना न होकर इन कोट राजो ने एक दूसरे पर चढाई शुरू कर दी। नतीजा मगलूब हुक्मरान को राजा जम्मू की तरफ मुतवज्जह होना पडा। उसने अपने बेटे कुअर दयाकरण की सरकर्दगी मे एक बडी भारी फौज भेज दी। जिससे बहुत थोडे अरसा में अमन और अमान बहाल हो गया। उसी वक्त से राजा जम्मू की हकूमत की कश्मीर में दाग-बेल पडी। कहा जाता है कि इस राजा के खानदान के पचीस आदमियो ने छ सौ तिरपन साल तक सर जमीन कश्मीर पर हकूमत की। लेकिन इन बादशाहो के नाम की उनकी मुद्दत हकूमत और उनके कारनामो की तशरीफ कोई मोरख भी न कर सका।

हसन तारीख कश्मीर पृष्ठ ११–१२

पाठभेद :

श्लोकसख्या १८५ मे 'गोनन्द' का 'गोनर्द' तथा 'प्राप्तराज्यस्त' का 'प्राप्तो राज्ये तद' पाठ-भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१८५ (१) **गोनन्द :** आइने अकबरी मे नाम राजा केनुन्द तथा राज्यकाल ३५ वर्ष दिया गया है।

वैबुद्दीन कहता है। गोनन्द राजा बनाया गया था। वह अभिमन्यु का पुत्र नही था। वह यह भी लिखता है। राजा के सेनापति नन्दराम ने नर्वदा तक हिन्दुस्तान का फतह किया था। किन्तु लेखक के मत का कही से समर्थन नही मिलता है। इस राजा ने नर्वदा तक विजय किया था। इसका भी प्रमाण नही मिलता।

हसन कहता है - राजा गोनन्द सोयम राजा लव के कबीले मे से था। क० संवत् १८६२ मे ताज हकूमत सर पर रखकर अदल व अहसान और मखलूक खुदा की फलाह व बहबूद मे दिल व जान से काशा रहकर उन्हें आराम आसाइश पहुँचाई। यकीदा की उमदगी और अच्छे कामो की बदौलत सरजमीन कश्मीर से मजहब जैन का गलबा और शिद्दत बरफबारी खतम हो गयी। ३५ बरस बादशाह रहकर इस दारेफानी से रुखसत हुआ। हुस्न नीयत की बरकत से बहुत से पोते पडपोते उसकी जरीयत से इस मुल्क के हाकिम हुए। इसके खान्दान के हुक्मरानो का कुल मुद्दत हकूमत दो हजार छह सौ मुतएन की गयी है। पृष्ठ ४४ हसन की काल गणना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

(२) **गोनन्द तृतीय :** गोनन्द तृतीय कौन था ? उसकी वश परम्परा क्या थी ? उसे राज्य कैसे प्राप्त हुआ ? आदि इन बातो की ओर किंचित् मात्र सकेत कल्हण नही करता। राजा अभिमन्यु प्रथम के समान गोनन्द ने अपने भाग्य अथवा पराक्रम से कश्मीर मण्डल का राज्य प्राप्त किया होगा। राजा अभिमन्यु के किसी वशज, सम्बन्धी आदि का कोई वर्णन कल्हण ने नही किया है।

राज्ञा प्रवर्तिते तेन पुनर्नीलोदिते विधौ ।
भिक्षवो हिमदोषाश्च सर्वतः प्रशमं ययुः ॥ १८६ ॥

१८६. राजा द्वारा नीलोक्त विधि को पुनः प्रवर्तित करने पर भिक्षु तथा हिम दोष सर्वतः [1]शान्त हो गये ।

काले काले प्रजापुण्यैः संभवन्ति महीभुजः ।
यैर्मण्डलस्य क्रियते दूरोत्सन्नस्य योजनम् ॥ १८७ ॥

१८७. प्रजा के पुण्य के कारण समय-समय पर ऐसे नृपो का जन्म सम्भव[1] होता है जो अत्यन्त छिन्न भिन्न हुए राज्य का योजन (पुनर्संघटन) करते हैं ।

मालूम होता है । बौद्धो के विरुद्ध हुए आन्दोलन तथा पुरातन धर्म के पुनःस्थापन निमित्त गोनन्द ने विशेष प्रयास किया होगा । अतएव या तो अभिमन्यु ने गोनन्द को स्वयं अपना उत्तराधिकारी बनाया होगा । अथवा सन्तान हीन उसके मरने पर प्रजा ने गोनन्द को राजा निर्वाचित कर लिया होगा ।

(३) **नाग यात्रा नाग यज्ञ :** नील मत पुराण द्रष्टव्य है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १८६ मे 'हिमदोषाश्च' का 'हिमदोषाच्च' तथा 'हि सदोषाश्च' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

१८६ (१) **दोष शान्ति :** कल्हण ने प्राकृतिक प्रकोप किस प्रकार रोका गया था तथा रोका जा सकता है । उसका यहाँ उल्लेख किया है । तपस्या, पूजा, पाठ, यज्ञादि एवं नीलमत विहित संस्कारो तथा कर्मो के कारण बौद्ध तथा हिमपात दोनो का समय हो गया ।

१८७ (१) **सम्भव :** यहाँ गीता की ओर लक्ष्य कल्हण करता है । धर्म की जब जब हानि होती है तो भगवान् का अवतार सम्भव होता है उसी प्रकार प्रजा यदि पुण्य कार्य करती है तो राज्य को समृद्धिशाली, सुगठित बनाने के लिये सुयोग्य नृपो का जन्म सम्भव होता है । गीता के धार्मिक सिद्धान्त 'सम्भवामि युगे-युगे' को कल्हण ने राजनीति क्षेत्र मे 'संभवन्ति महीभुज' कह कर दोनो की समानता की है । वह प्रजा को पुण्य कर्मी होने के लिये संकेत करता है । प्रजा के पुण्य के कारण उत्तम राजाओ का आविर्भाव सम्भव होता है । प्रजा के पाप के कारण क्रूरकर्मा राजा उत्पन्न होते है । कल्हण ने कर्म सिद्धान्त को राजनीति मे लागू किया है ।

'मैन एण्ड टेकनीक' मे श्री स्पेगलर ने इस कर्म सिद्धान्त को ओर लक्ष्य किया है । उसमे प्राचीन भारतीय कर्म सिद्धान्त की झलक मिलती है । वह कहता है । यह हमारी शक्ति मे नही है कि हम यह चुनें कि हम तीन सहस्र वर्ष पूर्व किसी मिस्री कृषक, किसी ईरानी राजा, अथवा आधुनिक जगत् के अवारो की सन्तान बने । यह भाग्य कुछ इस प्रकार का है कि हमे स्वीकार करना पडेगा । वह हमे किस परिस्थित, विचार एवं कार्य की ओर प्रवृत्त करता है । जिसके विषय मे दार्शनिक बातें करते है । किन्तु केवल समय के आदमी होते हैं, स्थान के आदमी होते है जाति के आदमी होते हैं, व्यक्तिगत वर्ग के आदमी होते है जो समरागण मे एक निर्दय विश्व मे सन्तोष करते है और जीतते या हारते हैं जब कि उनके चारो तरफ विश्व शनैः शनैः गतिशील ईश्वर के निर्लिप्त भाव तुल्य रहता है । यह सघर्ष जीवन है निःसन्देह जीवन नीत्से के भाव मे एक निर्दय-दयाहीन है जिसमे इच्छा द्वारा शक्ति प्राप्ति के सघर्ष का कोई स्थान नही है ।

ये प्रजापीडनपरास्ते विनश्यन्ति मान्वया ।
नष्टं तु ये योजयेयुस्तेषां वंशानुगाः श्रियः॥ १८८ ॥

१८८ जो प्रजापीडक राजा होते हैं वे कुलसहित नष्ट हो जाते हैं और जो नष्ट राज को सुव्यवस्थित करते है, उनके वंश की अनुगामिनी श्री[१] होती है।

इत्येतत्प्रतिवृत्तान्तं देशेऽस्मिन्वीक्ष्य लक्षणम् ।
भाविनां भूमिपालानां प्राज्ञैः यं शुभाशुभम् ॥ १८९ ॥

१८९ विज्ञ जन राजाओ के इन प्रतिवृत्तान्तो को देखकर भावी भूपालो के शुभाशुभ कर्म[१] को समझ लेते है।

नवीकृतवतो देश तस्य वंश्यैरियं मही ।
सिद्धैः प्रवरसेनाद्यैश्चिरं भुक्ता सुकर्मभिः ॥ १९० ॥

१९०. देश को नवीकृत[१] करने वाले उस राजा (गोनन्द) के वशज, प्रवरसेन आदि सिद्ध थे तथा अपने सुकर्मो द्वारा पृथ्वी का चिरकाल तक भोग किये।

कल्हण इसी ओर संकेत करता है। हम चाहते कुछ है। होता कुछ है। यह क्यो होता है ? इसे कर्म का फल कहा जाता है। कल्हण जनता को सचेत करता है। यदि वह पुण्यशाली होगी तो आदर्श नृपो का राज्यसूत्र परिपालन सम्भव है अन्यथा क्रूर होने पर पापी किंवा दूषित होने पर उसे उसके कर्मानुसार उसी प्रकार के अवाञ्छित राजाओ की प्राप्ति होगी।

पाठभेद

श्लोक सख्या १८८ मे विनश्यन्ति सान्वयाः' का पाठभेद 'नश्येयु सहान्वया ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१८८ (१) श्री : कल्हण ने सूत्रवत् यहाँ राजाओ के भाग्य तथा उनके भविष्य की तरफ लक्ष्य कर इस श्लोक से चेतावनो दी है। पाप का परिणाम सर्वनाश है। पुण्य का परिणाम श्री की प्राप्ति करना है। राजा को पुण्याश्रयी होना चाहिए। राज्य को सुव्यवस्थित करना, जनता का सन्तानवत् पालन करना, जनता के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना, उसके निमित्त बडा से बडा त्याग करना यह राजा का पुण्य कार्य है। उनके द्वारा उसके यश, कुल तथा राज्य की श्री-वृद्धि होती है। अन्यथा सब कुछ नष्ट हो जाता है। व्यास ने १८ पुराणो को लिखने के पश्चात् कितना अच्छा निष्कर्ष निकाला है।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

पाठभेद

श्लोक सख्या १८९ में 'देशे' का 'देवे' तथा 'देवी' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१८९ (१) शुभाशुभ कर्म कल्हण राजा के जीवन चरित्र तथा उनके शुभाशुभ कर्मो पर पुन प्रकाश डालता उन्हे चेतावनी देता है। पूर्ववर्ती राजाओ का इतिहास एव वृत्तान्त उनके कर्मो पर आधारित रहता है। राज्य के घटना चक्र कर्मो के कारण घटित होते हैं। यह घटना चक्र उनका यह प्रतिवृत्तान्त भविष्य के भूपालो के लिए उदाहरण है। उनका भविष्य किसी अलौकिक शक्ति द्वारा परिचालित नही होगा। अपितु वह नियन्त्रित होगा। जीवन मे मोड लेगा उनके कर्मो के द्वारा। वही उनके भविष्य के शुभ तथा अशुभ का निर्णय

गोनन्दान्वयिनामाद्यः स रघूणां रघुर्यथा ।
नृपतिः काश्यपीं वर्षान्पञ्चत्रिंशतिमन्वशात् ॥ १९१ ॥

१९१. यह राजा जो गोनन्द वंश मे प्रथम राजा रघुवंशियों[1] मे रघु तुल्य हुआ था। इस काश्यपी[2] का पैतीस वर्ष[3] तक शासन किया।

वर्षषष्टिं सषण्मासैः षड्भिर्वर्षैर्विवर्जिताम् ।
विभीषणाभिधोऽरक्षत्क्षितिं गोनन्दनन्दनः ॥ १९२ ॥

१९२. तत्पश्चात् गोनन्द नन्दन विभीषण नामक राजा ने तत्पश्चात् साठ वर्ष मे ६ वर्ष ६ माह कम अर्थात् तिरपन वर्ष छह मास क्षिति की रक्षा की।

करते हैं। यही उनके भाग्य का निर्णय करेगा। विद्वान् इनसे शिक्षा लेकर राजाओ को चेतावनी देते रहे, जनता तथा राजा का मार्ग दर्शन करते रहे यही अभिप्राय यहाँ कल्हण का है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १९० मे 'वंश्यै' का 'वंशै' तथा 'सुकर्म' का पाठभेद 'स्वकर्म' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९० (१) **नवीकृत** कल्हण का तात्पर्य यहाँ सुधारो से है। गोनन्द वंशीय राजाओ ने कश्मीर मे सुधार किया था। शासन तथा शान्ति स्थापित की थी। आध्यात्मिक विचारधारा, प्राचीन नील-मत द्वारा विहित धर्म तथा संस्कारो की ओर मोडकर उनका देश मे प्रचार किया था। हिमपात तथा बौद्धो दोनो के प्रबल दोषो से कश्मीर मडल का उद्धार किया था।

पाठभेद

श्लोक सख्या १९१ मे 'गोनन्दा' का 'गोनर्दा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९१ (१) **रघुवंश** : रघु इक्ष्वाकु वंश मे एक अतिश्रेष्ठ राजा हुए है। यह भगवान् राम के पूर्व पुरुष थे। राम का एक नाम रघुनाथ इसी रघु के कारण पडा है। महाभारत मे वर्णित प्राचीन राजाओ की नामावली में रघु का नाम लिया गया है। (म० आ० १ : १७२) भागवत, विष्णु एवं वायु पुराणो के अनुसार रघु राजा दीर्घबाहु का पुत्र था। राजा दिलीप खट्वाग क पौत्र थे। किन्तु मत्स्य तथा पद्म पुराणो में रघु को निघ्न राजा का पुत्र कहा गया है। (पद्म० सृ . ८)

कालिदास ने रघुवंश मे रघु को राजा दिलीप का पुत्र कहा है। नन्दिनी धेनु के प्रसाद स्वरूप रघु पुत्र राजा दिलीप को प्राप्त हुआ था। इक्ष्वाकु वश में सर्व श्रेष्ठ होने के कारण हरिवंश पुराण (१ १५) ने इसे अयोध्या का प्रथम राजा माना है। इस कालान्तर में इक्ष्वाकु वंश रघुवश नाम से विख्यात हुआ है। रघुवश (५) तथा स्कन्द (२ ८ २) पुराण मे रघु के दान एवं गौरव का वर्णन किया गया है। रघु को अपने पूर्वज युवनाश्व राजा द्वारा दिव्य खड्ग प्राप्त हुआ था। इस खड्ग को उसने अपने वंशज हरिणाश्व को दे दिया था। रघु के पुत्र अज थे। अज के पुत्र दशरथ थे। दशरथ के पुत्र भगवान् रामचन्द्र थे।

कल्हण ने रघुवश मे जैसे रघु श्रेष्ठ थे। उनके नाम पर वंश चला था। उसी प्रकार गोनन्द वंश मे यह गोनन्द राजा सर्व श्रेष्ठ हुआ था। उसी के नाम पर इस वश की ख्याति गोनन्द वंश से हुई। यहाँ कल्हण रघु वंश की गोनन्द वंश तथा रघु की गोनन्द से तुलना करता है।

इन्द्रजिद्रावणावास्तां पितापुत्रौ नृपौ क्रमात् ।
पञ्चत्रिंशत्सहार्धांश्च वर्षांस्त्रिंशच्चयोर्ययुः ॥ १९३ ॥

१९३ पिता तथा पुत्र इन्द्रजीत[1] तथा रावण[2] राजाओं ने क्रमश ३५ वर्ष ६ मास तथा तीस वर्ष राज्य किये ।

बिन्दुरेखाच्छविर्यस्य दृष्टा भाव्यर्थशंसिनी ।
स रावणस्य पूजार्थं लिङ्गं भाति वटेश्वरः ॥ १९४ ॥

१९४. वटेश्वर नामक लिंग की रावण पूजा निमित्त उपयोग करता था । वह लिंग आज भी चमकता है । लिंग के चमकते बिन्दु एवं रेखाएँ भविष्य की सूचना देती हैं ।

( ) काश्यपी कल्हण कश्मीर को यहाँ काश्यपी अर्थात् कश्यप के देश के नाम से सम्बोधित करता है ।

(३) काल उल्लेख : कल्हण गोनन्द तृतीय के समय से क्रमबद्ध सवत् तथा राज्यकाल अपने इतिहास राजतरगिणी में देना आरम्भ करता है । वह राजाओ का विधिवत् नाम देता है । उसने कश्मोर मण्डल को क्रमानुसार वशावली तथा राज्य का वर्णन किया है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या १९२ में 'गोनन्द' का 'गोनर्द' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

१९२ (१) आइने अकबरी में नाम बिखुन तथा राज्यकाल ५३ वर्ष दिया गया है ।

बिभीषण का राज्यकाल लौकिक वर्ष १९२९ होना चाहिए । कल्हण ने राज्याभिषेक का कोई सवत् तथा काल नही दिया है ।

हसन के अनुसार—राजा बबीशान क ० १८९७ सवत् में बाप का जानशीन ताजशाही सर पर रखा और रिआया की आशाइश और खुशहाली में तिरपन साल बसर करके इस जहान से रुख्सत हुआ । पृष्ठ ४५ ।

१९३(१) इन्द्रजीत आइने अकबरी ने इन्दर-जीत नाम तथा उसका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ मास दिया है ।

हसन के अनुसार राजा इन्द्रजीत क० १९५१ में बाप की जगह तख्त नशीन होकर कश्मीर और हिन्दुस्तान के आसपास के इलाको पर काबिज हुआ । बाप की सल्तनत को अदल व इन्साफ से आबाद किया । ३५ बरस और ६ माह हकूमत की सतरज खेलकर जिन्दगी का बिस्तरा लपेट लिया । पृष्ठ ४५

(२) रावण आइने अकबरी ने रावेन नाम तथा उसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया है । गणना से लौकिक वर्ष २०१७ आता है । हसन के अनुसार राजा रावन बाप के मरने के बाद क० १९८६ मे ताजशाही सर पर रख कर हिन्दुस्तान की सरजमीन के बहुत से शहर फतह किये । तीस साल तक हुक्मरा था । पूजा-पाठ के लिये वटेश्वर का मन्दिर तामीर किया । मुसन्नफ गुलदस्तए काश्मीर ने उसे बादशाह का मन्दिर ख्याल किया है । हालाँकि यह बिल्कुल गलत है । मतरजुम रत्नाकर ने बडशाह के मन्दिर का माम लोकश्री बताया है । पृष्ठ ४५.

पाठभेद .

श्लोकसख्या १९४ में 'पूजार्थं' का पाठभेद 'पूजार्हं' मिलता है ।

चतुःशालामठस्यान्तः कृतायाऽदायि भूभुजा ।
वटेश्वराय निखिलं तेन कश्मीरमण्डम् ॥ १९५ ॥

१९५. चतु शाला मठ[1] मे स्थापित वटेश्वर पर उस राजा ने निखिल कश्मीर मण्डल चढ़ा दिया था।

पञ्चत्रिंशतमब्दानां क्ष्मां बुभोज महाभुजः ।
रावणक्षोणिभृत्सूनुः सार्धमन्यो विभीषणः ॥ १९६ ॥

१९६. रावण का पुत्र महाभुज विभीषण[1] राजा हुआ। उसने पैंतीस वर्ष छह मास पृथ्वी का राज्य किया।

किंनरापरनामाऽथ किंनरैर्गीतविक्रमः ।
विभीषणस्य पुत्रोऽभून्नरनामा नराधिपः ॥ १९७ ॥

१९७. जिस नर[1] किंवा किन्नर राजा का विक्रम गीत किन्नर[2] गाते हैं। वह अपने पिता विभीषण के पश्चात् नराधिप हुआ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १९५ में 'शाला' का 'शाल' तथा 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९५ (१) वटेश्वर तथा चतुःशाला मठ : इस अद्भुत वटेश्वर लिंग का पुन. राजतरंगिणी मे कहीं उल्लेख नहीं करता। उनका स्थान किस दिशा अथवा स्थान में था। कल्हण के समय तक दोनो का अस्तित्व था। वे इतने प्रसिद्ध थे कि कल्हण ने उनके स्थानादि का वर्णन करना साधारण बात समझकर नहीं किया। आगरा से ३०मील दक्षिण-पूर्व यमुना के दक्षिण तट पर वटेश्वर है। आज भी बैलो का मेला लगता है। यह प्राचीन नगर है। यहाँ प्राचीन खण्डहर तथा ध्वंसावशेष हैं। यह वटेश्वर महादेव का स्थान है। तीर्थ है। इसी के आधार पर या मौलिक रूप से वटेश्वर के मन्दिर में वटेश्वर महादेव की स्थापना निमित्त निर्माण कराया गया होगा।

काश्मीर मण्डल को राजाओ ने कई बार भगवदर्पण किया है। कनिष्क ने समस्त कश्मीर धर्म हेतु अर्पित कर दिया था। मेवाड के राजा भी अपना राज्य एकलिंग का मानते थे। भारतीय स्वतन्त्रता के पूर्व स्वयं अपने को भगवान् का सेवक समझ राज्य की व्यवस्था करते थे।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १९६ मे 'क्षोणि' का 'क्षीणि', 'क्षौणि' तथा 'सार्धा' का 'सार्ध' 'सावा' 'सार्ध्व' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९६ (१) विभीषण : आइने अकबरी ने नीवीखुन नाम तथा उसका राज्यकाल ३५ वर्ष ६ मास दिया है।

गणना से राज्यारोहण का लौकिक वर्ष २०४८ आता है।

वैबुद्दीन यहाँ एक दूसरे राजा इन्द्रायन को रखता है। उसे कैलाश सिंह का पुत्र बताता है।

हसन कहता है— राजा बबीशन दोम रावन का बेटा था। क० २०१६ में तख्त शाही पर बैठा। चूंकि इल्म मौसीकी बखूबी सीखा था इसलिए हमेशा साजो सरोद और गाने बजाने में अपने औक़ात बसर करता था। तबियत मौजू पाई थी। इसलिए लोग इसे बहुत बडा शायर भी मानते है। ३६ वर्ष हकूमात में गुजारा। पृष्ठ ४५

सदाचारोऽपि स नृपः प्रजाभाग्यविपर्ययैः ।
व्यधाद्विषयदोषेण महानर्थपरंपराम् ॥ १९८ ॥

१९८. यद्यपि वह राजा सदाचारी था। परन्तु प्रजा के भाग्य[1] विपर्यय के कारण विषय दोष की बाधा लग गयी और महा अनर्थ करने लगा।

---

१९७ (१) **नर :** आइने अकबरी ने नाम नर्ख दिया है। यह भी लिखा है कि उसे खर भी कहते हैं। राज्यकाल ३९ वर्ष ९ मास दिया है। अबुल फजल ने लिखा है कि इस राजा की मदद से ब्राह्मणो के अनुयायियो ने बौद्धो के विहारो को जला दिया।

अन्य मुसलिम लेखको ने उसे बूज़ लिखा है। उनकी गणना से लौकिक वर्ष २०८३३ आता है।

हसन लिखता है—'राजा नर क० २०५२ में बाप के कायम मुकाम होकर ताजशाही सर पर रखा। इन्साफ पसन्द और सखी था लेकिन अपनी रानी के साथ सख्त उलफत रखता था। रात-दिन उसी के पास बैठने में अपने औकात बसर करता। इसलिए रियाया को देख-भाल की उसे फुरसत नही थी।

कैफ़ियत—'मजहब जैन का एक बडा आबिद व जाहिद इन्सान मुकाम कानर में रहा करता था। जोग माया के जोर से उसने एक ऐसा तिलस्म और जादू किया हुआ था कि वह तो सबको देख सकता लेकिन उसे कोई न देख सकता। इस जादू के जोर से वह लोगो के घर में दाखिल हो जाता और उनकी औरतो और लडकियो से जनाह किया करता। यहाँ तक कि राजा की रानी से मदारखलत करने लगा। राजा को जब इस बात का पता लगा तो उसके तनबदन में आग लग गयी। इस बिना पर उसने बौधो के सारे इबादतखानो और मन्दिरो के इनहदाम का हुक्म दे दिया और उन में आग लगवा दी। उनका तमाम माल, दौलत, जागीर और गाँव और मकानात बरहमनो को बख्श दिये। दरयाए झेलम के किनारे मुकाम चक्दर मुतसिल बैजबारह एक शहर बनवाया और वहाँ अपने लिए एक आलीशान महल निहायत पुख्तगी और शानवाला तामीर कराया।

कैफ़ियत—'मोरखीन लिखते हैं कि इसके हकूमत में विशाक नाम का एक बरहमन था। शेशरम नाग की लडकी को अपने निकाह में लाये हुए था। राजा नर उस पर फेसफला हो गया। अपने साथ सुलाने और सुहबत करने के लिए राजा मजकूर ने बरहमन मजकूर पर जबर तशद्दुद किया। यह बात सुनकर शेशरम नाग गुस्सा मे भर गया और राजा के बनाए हुए शहर पर आग बरसाना शुरू कर दी। शहर और शहर वालो को थोडी ही देर में तबाह व बरबाद कर डाला। इसके बाद शेशरम नाग की बहन रमती ने गुस्सा से भरपूर हो कर बीस मोल तक शहर मजकूर पर पत्थरो को बारिश की जिसके बायस यह शहर ही दुनिया से मादोम हो गया। इसका मुफसल किस्सा शेशरम नाग के जिक्र मे मजकूर है। राजा नर की मुद्दत हकूमत उनतालीस साल और नव महीना थी। पृष्ठ ४६

(२) **किन्नर :** दश देवयोनियो मे एक योनि है। शरीर मनुष्य तथा मुख अश्व तुल्य होता है "स्यात्किन्नर किम्पुरुषस्तुरगवदनो मयु।" (१ २ ७) वैदिक साहित्य में मुझे किन्नर जाति का वर्णन किंवा उल्लेख नही मिला। सम्भव है यहाँ अश्व तुल्य का अर्थ मुख लम्बा समझा गया है। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणो मे किन्नरो का उल्लेख आता है। यथा

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खगान् ॥

हिमालय पर्वतीय सीमावर्तीय जाति का उल्लेख न होना विज्ञ पाठको को चकित करेगा। इस पर गवेषणा की आवश्यकता है।

१९८ (१) **भाग्य विपर्यय :** कल्हण वहाँ पर पुन दुष्ट राजा होने अथवा राजा के दुष्ट हो जाने का दोष प्रजा पर मढा है। प्रजा के भाग्य के कारण

विहारे निवसन्नेकः किनरग्रामवर्तिनि ।
तस्य योगबलात्कोऽपि श्रमणोऽपाहरत्प्रियाम् ॥ १९९ ॥

१९९. किन्नरग्राम[1] स्थित एक विहार मे रहने वाले श्रमण[2] ने योग बल द्वारा उसकी प्रिया का हरण कर लिया।

विहाराणां सहस्राणि तत्कोपान्निर्ददाह सः ।
अजिग्रहच्च तद्ग्रामान्द्विजैर्मध्यमठाश्रयैः ॥ २०० ॥

२००. इस कारण कुपित होकर राजा ने सहस्रों विहारों[1] को जलवा दिया और उन विहारों पर चढ़े ग्रामो को मध्यमठ[2] निवासी ब्राह्मणों को दे दिया।

ऋद्धापणं राजपथैर्नौयानोज्ज्वलनिम्नगम् ।
स्फीतपुष्पफलोद्यानं स्वर्गस्येवाभिधान्तरम् ॥ २०१ ॥
दिग्जयोपार्जितैर्वित्तैर्जितवित्तेशपत्तनम् ।
वितस्तापुलिने तेन नगरं निरमीयत ॥ २०२ ॥

२०१-२०२. दिग्विजय द्वारा उपार्जित धन से वितस्ता पुलिन मे राजा ने एक नगर[1] निर्माण कराया था। वहाँ आने वाले राजपथों द्वारा बाजार सामानों से लदा था। नौकाओ के आवागमन से नदी की गरिमा बढ़ गयी थी। प्रभूत पुष्प एवं फलोद्यानों से पूर्ण नगर दूसरे स्वर्ग सदृश लगता था। वह नगर कुबेर की भी पुरी को मात करने वाला था।

प्रजा को बुरे राजा की प्राप्ति होती है। यहाँ पर लोकतान्त्रिक सिद्धान्त की गौण रूप से पुष्टि की गयी है। प्रजा को जागरूक होना चाहिए। वह उसका भी कर्त्तव्य है कि सच्चरित्र राजा को दुश्चरित्र होने से बचाये। कल्हण ने यहाँ पर यह भी सकेत किया है कि सच्चरित्र राजा भी विषय दोष मे लिप्त हो सकता है। यदि मन्त्रिगण, प्रजागण राजा को निरकुश कर देते हैं तो निश्चय ही दोषो की ओर प्रवाहित हो जाता है। राजा चाटुकार, स्वार्थी, कुटिल पार्षदो से भी घिरा रहता है। वे अपने स्वार्थ सिद्धि किंवा राजा को प्रसन्न करने के लिए सन्मार्ग से कुमार्ग में बदल देते हैं।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १९९ मे 'विहारे' का 'विकारे', 'त्रिकारो', पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१९९ (१) **किन्नर ग्राम :** कश्मीर के नागिम परगना में कानिर ग्राम हो सकता है। एक किन्नौर क्षेत्र है जो किन्नर जाति का मूल स्थान माना जाता है। हिमाचल प्रदेश मे है। मैं यहाँ गया हूं। यहाँ के लोगो का मुख सुन्दर होता है। आकृति आर्यों तुल्य है। कही-कही पर्वतीय तथा मंगोल मिश्रण मालूम होता है। सम्भव है। पूर्व काल में इस स्थान पर लद्दाखी ढंग के आदमी अधिक रहते रहे हो। जिनका मुख लम्बा होता है। मैं लद्दाख मे गया। वहाँ के लोगो की मुखाकृति देखकर पहली प्रतिक्रिया मेरी यही हुई कि वे आर्यवंशीय नही है। उनका मुख गोल होने की अपेक्षा लम्बा तथा चपटा अधिक होता है। यहाँ अश्व की तरह मुख यदि शाब्दिक अर्थ मे मान लिया जाय तो उन्हे हयग्रीव मनुष्य कहना होगा जो गलत होगा।

(२) **श्रमण** . बौद्ध भिक्षु।

पाठभेद

श्लोक संख्या २०० मे 'अजिग्रहच्च' का पाठ भेद 'अजिग्रहश्च' मिलता है।

तत्रैकस्मिन्किलोद्याने स्वच्छस्वादुजलाश्चितम् ।
आसीत्सुश्रवसो नाम्नो नागस्य वसतिः सर ॥ २०३ ॥

२०३. वहाँ किसी एक उद्यान मे स्वच्छ सुस्वादु जल मय सरोवर था। वहाँ सुश्रवा[1] नामक नाग निवास करता था।

पादटिप्पणियाँ

२०० (१) विहारदाह कश्मीर में यह एक और उदाहरण मिलता है। जब राजा ने कुपित होकर धार्मिक स्थानो मे आग लगवा दी थी। कश्मीर के अनेक राजाओ ने भविष्य में धार्मिक स्थानो को नष्ट करने का प्रयास किया है।

राजा विषय वासना मे लिप्त हो गया था। उसका प्रभाव अन्त पुर में पडना अवश्यम्भावी था। राजा के कारण नैतिक पतन हो रहा था। इसका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि एक श्रमण का यह साहस हुआ कि वह राजा की प्रिया को उठा ले गया।

(२) मध्यमठ इस स्थान का निश्चय नही किया जा सकता कि कहाँ था। कल्हण इस स्थान के विषय में कुछ सकेत भी नही करता।

श्लोक सख्या २०१ तथा २०२ युग्म है। दोनो का अर्थ एक साथ किया गया है।

२०१-२०२ (१) नगर किन्नर किंवा नरपुर : राजा नर के पत्तन अर्थात् नगर का दो नाम दिया गया है। (रा० त० १ २७४) उसे किन्नरपुर तथा (रा० त० १ २४४) नरपुर कहा गया है। कल्हण ने चक्रधर का वर्णन (रा० त० १ : २६१, २७०, ८ ९६१) करते हुए इस नगर का स्थान विजयेश्वर अथवा विजब्रोर के अत्यन्त समीप रखा है। यही बात स्थानीय जनश्रुति से भी प्रकट होती है। विजब्रोर से १ मील नीचे एक उदर है। जिसे आज भी तस्कदर (चक्रधर) कहते है। यही पर चक्रधर का मन्दिर था। यहाँ वितस्ता एक प्रायद्वीप बनाती है। इस अधित्यका के दक्षिण-पूर्व कोण के समीप एक सूखी नीची भूमि है। वहाँ स्तीन को अपनी यात्रा (सन् १८८९ तथा १८९५) में स्थानीय लोगो से मालूम होता था कि इसी स्थान को सुश्रवा नाग का निवास स्थान कहा जाता था।

कल्हण द्वारा वर्णित पुनरावृत्ति अभी तक स्थानीय लोगो की परम्परा तथा स्मृति मे जीवित है। तस्कदर के टीले तथा विजब्रोर के मध्य के स्थान को लोग उस नगर की सज्ञा देते है जिसे नागो ने भस्म कर दिया था।

प्राचीन यूनानी तथा भारतीय शककालीन मुद्राएँ बहुत सख्या में यहाँ मुख्यतया नदी पुलिन से प्राप्त हुई है। इन मुद्राओ की प्राप्ति द्वारा इस स्थान की प्राचीनता में किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। यहाँ बाढ के समय प्रति वर्ष जल आ जाता है। यदि उदर में खनने का कार्य किया जाय तो कुछ प्राचीन ऐतिहासिक सामग्रियाँ प्राप्त हो सकती है। कल्हण (रा० त० १ २७०) के उल्लेख से प्रकट होता है कि उसके समय मे भी यह स्थान अपना प्राचीन गौरव समाप्त कर ध्वसावस्था मे पडा था। पृष्ठ ८३ की टिप्पणियाँ द्रष्टव्य है।

मैंने विजयेश्वर की यात्रा में इस स्थान को देखा है। श्री स्तीन ने जिस जनश्रुति का उल्लेख किया। उसे मैंने अतिवृद्धो से सुना है। आधुनिक काल से लोग उसे भूल चुके है। भूल रहे हैं। वे इन सविधानो को कपोल कल्पना मानते हैं। अन्तरीप का दृश्य सुहावना है। स्थान के प्राचीन भूगोल तथा वर्णन में परिवर्तन हो गया है। बाढ़ के जल के कारण मूल रूप बदल गया है। कल्हण के समय निस्सन्देह बहुत कुछ प्राचीन अवशेष तथा रूप स्थायी रहे होगे।

कदाचित्तस्य दूराध्वक्लान्तो मध्यन्दिने युवा।
छायार्थी तत्सरःकच्छं विशाखाख्योऽविशद्द्विजः॥ २०४॥

२०४. किसी समय मध्याह्नकाल मे एक युवक विशाख नामक ब्राह्मण दूर मार्ग से थका हुआ उस सरोवर तट पर छाया निमित्त आया।

सच्छायपादपतले समीरैः शमितक्लमः।
शनैर्जलमुपस्पृश्य भोक्तुं सक्तून्प्रचक्रमे॥ २०५॥

२०५. उस पादप तल की सुछाया मे समीर के कारण उसकी क्लान्ति का शमन हो गया। हाथ-मुँह धोकर धीरे धीरे सत्तू[1] खाने लगा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०३ मे 'ञ्चितम्' का 'ञ्चित' तथा 'सर' का 'सारः' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०३ (१) सुश्रवा नाग हरचरित चिन्तामणि (१०.२४८) में तथा नीलमत पुराण मे सुश्रवा नाग का उल्लेख मिलता है। सुश्रवा नाग का स्थान विजयेश्वर तीर्थ के समीप था।

आखुफालौ फलाफश्च नागः कानसरस्तथा।
सुश्रवो देवपालश्च नागेन्द्रोऽथ वलाहक॥
नी० ८९२:1062

(२) चन्द्रलेखा : श्लोक संख्या २०३ से २७९ तक चन्द्रलेखा उपाख्यान कल्हण ने वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २०४ मे 'मध्य' का पाठभेद 'मध्या', 'मध्ये' तथा 'मध्य' मिलता है।

श्लोक सख्या २०५ मे 'शनैर्जल' का पाठभेद 'सरोजल' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०५ (१) सत्तू : प्रचलित शब्द सत्तू है। पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा विहार मे मध्याह्न काल मे गरीबो का एक मात्र भोजन है। पर्वतीय क्षेत्रो मे सत्तू का प्रयोग किया जाता है। प्राय भारतवर्ष मात्र मे सत्तू का किसी न किसी रूप मे प्रचलन है। यह बना बनाया भोजन है। मक्का, ज्वार, बाजरा, यव-चना का मुख्यतया सत्तू बनता है। यव-चना का मिश्रित सत्तू अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। वह रोटी और दाल दोनो पोषक गुणो का मिश्रण है। मै ग्रीष्म ऋतु मे प्राय. सत्तू खाता हूँ। सत्तू मध्याह्न काल के पूर्व खाना चाहिए। सत्तू खाने के कई प्रकार है। पहला प्रकार नमक मिर्च, तथा आम की चटनी अथवा अचार से, तथा दूसरा प्रकार मीठा सत्तू खाने का है। इसमे दूध, चीनी अथवा घी चीनी मिलाते है। नमकीन सत्तू मे भी सम्पन्न लोग घी मिलाकर प्रयोग करते है। सत्तू के होटल भी चलते है। उन्हें तुरन्ता होटल कहा जाता है। जहाँ तुरन्त भोजन मिल जाता है।

सत्तू का वेदोक्त नाम सक्तू है। परवर्ती संहिताओ एवं ब्राह्मण ग्रन्थो मे सक्तू शब्द विशेषत: यव के सक्तू का वाचक है। (तै० स० ६·४:१०.६, वा० सं० १९ २१, श० ब्रा० १.६ ३१६,-९ १:१·८)

ऋग्वेद् में केवल एक वार (१० ७१.२) इसका उल्लेख तितऊ (चलनी) से चालने के प्रसंग मे आया है। शतपथ ब्राह्मण (१३.२·१३) मे 'देवाना वा एतद् रूपं यत्सक्तव' मे सक्तु का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार 'प्रजापतेर्वा एतद् रूप यत्सक्तव' का उल्लेख, तैत्तिरीय ब्राह्मण (३·८:१४.५) मे किया गया है।

सत्तू का इतना महत्त्व दिया गया है कि मस्तू संक्रान्ति पर्व के दिन सत्तू खाना धार्मिक कृत्य मान

तान्पाणौ गृह्णतैवाथ तेन तीरविहारिभिः ।
पूर्वमाकर्णितो हंसैः शुश्रुवे नूपुरध्वनि ॥ २०६ ॥

२०६. उसने ग्रास हाथ मे लिया ही था कि नुपरध्वनि सुना। उस ध्वनि को तटपर विहार करने वाले हंसो द्वारा पूर्व ही सुन चुका था।

निर्गते मञ्जरीकुञ्जादपश्यत्पुरतस्ततः ।
कन्ये नीलनिचोलिन्यौ स केचिच्चारुलोचने ॥ २०७ ॥

२०७. नील निचोल[1] धारिणी चारुलोचना दो कन्याओ को उसने मंजरी कुञ्ज से निकलती सम्मुख देखा।

कर्णिकापद्मरागाब्जनाललीलायितस्पृशा ।
मनोज्ञधवलापाङ्गे तनीयोऽञ्जनरेखया ॥ २०८ ॥

२०८. मनोज्ञ धवल अपाग की पतली अंजन रेखा, उसके कर्ण कुण्डल मे लगे पद्मराग मणि के कमल नाल तुल्य लग रही थी।

हारिनेत्राञ्चलैर्मन्दमारुतान्दोलनाकुलैः ।
सनाथांऽसयुगे रूपपताकापल्लवैरिव ॥ २०९ ॥

२०९. उनके दोनो स्कन्धो[1] पर मन्द मन्द मरुत के आन्दोलन से आकुल मंजुल नेत्रांचल, सौन्दर्य के पताका पल्लव सदृश लग रहे थे।

लिया गया है। इस दिन ब्राह्मणो को सत्तू, एक झझर भरा जल तथा दक्षिणा देने की परम्परा प्रचलित है।

वैदिक साहित्य में इन्द्र के प्रसग में वर्णन मिलता है। उनका स्वागत सत्तू तथा सोमरस से किया जाता था।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २०७ में 'निर्गते' का पाठभेद 'निर्गतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२०७ (१) निचोल : चोल का शाब्दिक अर्थ चोली अथवा अगिया है। चोल अथवा निचोल संस्कृत शब्द का अर्थ चादर, ओढनी, घूँघट, बुरका, पलग-पोश तथा पालकी का परदा होता है। सचोलक का अर्थ चोली तथा सदरी होता है। शाल शब्द निचोल से निकला है सरल भाषा मे कह सकते हैं शाल शब्द चोल का अपभ्रंश है। सुदूर पुरा काल से कश्मीर का शाल प्रसिद्ध रहा है। यह कहना भ्रामक है। कश्मीर मे शाल का बनना मुसलिम काल मे आरम्भ हुआ था। यूरोप में नेपोलियन बोनापार्ट ने शाल को विख्यात किया था। राज्यमुकुट धारण करते समय उसने शाल को मान्यता दी थी। उस समय पेरिस में उन्हे 'शाले दि कश्मीर' कहा जाता था।

२०९ (१) स्कन्ध : कालिदास के समान कल्हण नारी रूप का प्रशसक रहा है। वह जहाँ भी कही नारी का वर्णन करता है उसका वर्णन अत्यन्त परिष्कृत, सौन्दर्यमय उसकी कवित्व प्रतिभा को प्रकट करता है। कालिदास ने नारी के स्कन्धो का सुन्दर वर्णन किया है। कल्हण ने भी वहाँ स्कन्धो की सुन्दरता का अति उत्तम वर्णन किया है। इस प्रकार कल्हण उँगलियो का वर्णन श्लोक सख्या २५३ मे करता है।

ते शशाङ्कानने दृष्ट्वा शनैरभ्यर्णमागते ।
विरशमाशनारम्भान्मुहुर्व्रीडाजडाकृतः ॥ २१० ॥

२१०. उन शशांक आनन कन्याओं को समीप आयी देखकर वह लज्जा विमूढ़ हो भोजन आरम्भ करना बन्द कर दिया ।

भुञ्जाने कच्छगुच्छानां शिम्बोरम्बुजलोचने ।
ते पुनर्दृष्टवानग्रे किंचिद्व्यापारितेक्षणः ॥ २११ ॥

२११. उसने किंचित् नेत्र घुमाकर देखा । कमललोचना वे दोनों कन्याएँ कच्छ गुच्छ[1] की फलयाँ खा रही थीं ।

आकृतेर्हा धिगीदृश्या भोज्यमेतदिति द्विजः ।
ध्यायन्कृपार्द्रः संमान्य स ते सक्तूनभोजयत् ॥ २१२ ॥

२१२. 'धिक्कार है ! इस रूप का यह भोजन ? सम्मान्य तथा दयार्द्र उस ब्राह्मण ने उन दोनों कन्याओं को सत्तू खिलाया ।

उपनिन्ये च सगृह्य पुटकैश्चटसीकृतैः ।
तयोः पानाय पानीयं सरसः स्वच्छशीतलम् ॥ २१३ ॥

२१३. तत्पश्चात् पीने के लिये पत्रपुटक[1] में स्वच्छ एवं शीतल सरोवर जल लाकर दिया ।

---

(२) **तिलकम् :** कल्हण ने युग्मम् तिलकम् तथा कुलकम्, तीनो श्लोक रचना शैली को किसी विषयो घटनाओ एव श्रृंगार वर्णन के लिए अपनाया है । दो श्लोक मे जहाँ भाव किंवा घटना प्रकट की जाती है उसे युग्मम्, तीन श्लोको मे प्रकट की जाती है उसे तिलकम् तथा पाँच से पन्द्रह श्लोक मे जहाँ प्रकट किया जाता है उसे कुलकम् कहा जाता है ।

कल्हण ने श्लोक संख्या २०८, २०९, २१० तिलकम् में कन्याओ के सौन्दर्य का वर्णन किया है । प्राय सभी अनुवादकर्ताओ ने तीनो श्लोक का अनुवाद एक ही मे किया है । मैंने उन्हे श्लोक के क्रम से दिया है । इन श्लोको का रूप वर्णन अनुवाद में नही लाया जा सकता । तीनो श्लोक कल्हण की उत्तम कवित्व प्रतिभा प्रकट करते है । उनका रस उनके मूल मे ही है । उनका अनुवाद कठिन है । प्राय सभी अनुवादकारो ने भिन्न-भिन्न शैली तथा शब्दो का विभिन्न अर्थ करते हुए अनुवाद किया है । मैं स्वय नही कह सकता कि इनका अनुवाद करने में मैं सफल हो सका हू ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २१० मे 'व्रीडा' का 'व्रीड' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या २११ में 'दृष्ट्वा' का पाठभेद 'धृष्ट्वा' 'सृष्टवा' तथा 'पृष्ट्वा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२११ (१) **कच्छ गुच्छ :** कश्मीर में इसे 'कचदन' कहते है । एक प्रकार की घास है । उपत्यका के चर तथा सुसिंचित नदी के समीप बहुत होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१२ मे 'कृपार्द्र' का पाठभेद 'कृपार्द्रा' मिलता है ।

श्लोक संख्या २१३ में 'शीतलम्' का 'शीत्कृतम्' पाठभेद मिलता है ।

आचान्ते शुचितां प्राप्ते कृतासनपरिग्रहे ।
ततश्च वीजयन्पर्णतालवृन्तैरभाषत ।। २१४ ।।

२१४. भोजनोपरान्त जल से शुद्ध होकर, उनके आसन ग्रहण करने पर विशाख पत्र ताल वृन्त (पंखा) से हवा करता हुआ बोला ।

भवत्यौ पूर्वसुकृतैः कैश्चित्संप्राप्तदर्शनः ।
चापलाद्विप्रसुलभात्प्रष्टुमिच्छत्ययं जनः ।। २१५ ।।

२१५. पूर्वकृत सत्कर्मों से आप दोनो का दर्शन प्राप्त हुआ । अब विप्रसुलभ चपलता के कारण यह जन[१] कुछ पूछना चाहता है ।

कल्याणिनोभ्यां कतमा पुण्या जातिः परिष्कृता ।
कुत्र वा क्लान्तमेतादृग्विरसं येन भुज्यते ।। २१६ ।।

२१६. 'कल्याणिनी आप दोनो ने कहाँ और कौन सी पुण्य जाति को अलंकृत किया है ? जिसके कारण इस प्रकार के क्लान्त एवं नीरस वस्तु को खाती हैं ।'

एका समूचे विद्ध्यावामस्य सुश्रवसः सुते ।
स्वादु भोक्तव्यमप्राप्तं किमीदृङ् नोपभुज्यते ।। २१७ ।।

२१७. उनमे से एक ने कहा —हम सुश्रवा नाग की कन्या हैं । सुस्वादु[१] वस्तु के अभाव हम क्या यह भी न खाएँ ?

पादटिप्पणियाँ :

२१३ (१) **पुटक :** यहाँ पर पत्तो के दोनो से अर्थ है । विशाख ने समीपवर्ती कमल पत्र अथवा किसी अन्य वृक्ष किंवा पौधे के पत्तो से दोना बनाकर उनमे कन्याओं को जल पीने के लिये दिया ।

२१४ (१) **तालवृन्त :** ताल पखा अर्थ यहाँ लगता है । प्रतीत होता है । कश्मीर के दक्षिण पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणापथ मे प्रचलित ताल अर्थात् ताड के पखो का प्रचलन हो गया था ।

२१५ (१) **जन :** कुछ विद्वान् अनुवादको ने 'जन' का अनुवाद 'आप का विनम्र सेवक' किया है । मैंने यहाँ मूल जन शब्द ही रख दिया है । जन शब्द प्रचलित हैं । बोधगम्य है । कल्हण ने प्रकृत जन शब्द प्राय जन साधारण के लिये प्रयोग किया है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २१६ में 'परिष्कृता' का 'वहिष्कृता' मिलता है ।

२१६ (१) **प्रश्न :** कल्हण की प्रश्न शैली कालिदास की शकुन्तला नाटक शैली जैसी है । नाटक के प्रथम अक में कण्व के आश्रम की युवतियो तथा दुष्यन्त के बीच हुए प्रश्नोत्तर का स्मरण कराती है । निष्कर्ष निकाला जा सकता है । कल्हण ने इतिहास के साथ ही साथ साहित्य सस्कृत एव काव्य का यथेष्ट अध्ययन किया था । यह शैली ऋग्वेद में उर्वशी और पुरुरवा के सवाद तथा यम-यमी के प्रश्नोत्तर मे भी मिलता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २१७ मे 'प्राप्त' का पाठभेद 'प्राप्य' तथा 'मप्राप्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२१७ (१) **सुस्वादु :** कल्हण ने वडी ही सरल, मर्मस्पर्शी शैली तथा भाषा में कन्याओ की दयनीय दशा का चित्रण किया है । स्वादिष्ट भोजन के अभाव में जो कुछ मिल जाय वही वहुत कुछ है ।

पित्रा विद्याधरेन्द्राय प्रदातुं परिकल्पिता ।
इरावत्यहमेषा च चन्द्रलेखा यवीयसी ॥ २१८ ॥

२१८. 'पिता ने विद्याधरेन्द्र[1] को मुझे देने की परिकल्पना की है। मेरा नाम इरावती[2] और इस युवती का चन्द्रलेखा[3] है।'

पुनर्द्विजोऽभ्यधादेवं नैष्किञ्चन्यं किमस्ति वः ।
ताभ्यामवादि तातोऽत्र हेतुं वेत्ति स पृच्छ्यताम् ॥ २१९ ॥

२१९. द्विज ने पुन: कहा—आप इतनी निष्किचन (दरिद्र) क्यों है ? उन दोनों ने उत्तर दिया इसका कारण पिता जी जानते हैं। उनसे पूछिए।

ज्येष्ठेऽत्र कृष्णद्वादश्यां यात्रायै तक्षकस्य तम् ।
आगतं चूडया तोयस्यन्दिन्या ज्ञास्यसि ध्रुवम् ॥ २२० ॥

२२०. 'ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी को तक्षक नाग[1] की यात्रा के लिये आये हुए, उनके जलस्यन्दी चूड़ा से उन्हें निश्चय जान लेंगे।'

पाठभेद :

श्लोक सख्या २१८ मे 'च' का 'मे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२१८ (१) विद्याधरेन्द्र : विधाधरेन्द्र जाति के राजा का अर्थ यहाँ है। विद्याधर एक देव योनि विशेष है। पुराणो में इनके राजाओ का नाम चित्र-केतु, चित्ररथ, अथवा सुदर्शन दिया गया है। (मा० ६ १७:१,११ १६२९) वायु पुराण (३८-१६) में पुलोमन को विद्याधरपति कहा गया है। इनकी स्त्रियो को विद्याधरी कहा जाता है। (ब्रह्माण्ड पु० ३.५०.४०)

इन देवताओ के शैवेय, विक्रान्त एवं सौमनस नामक तीन प्रमुख गण थे। (वायु० ३० ८८) इनका विद्याधर नामक नगर ताम्रवर्ण सरोवर एवं पतग पर्वतमालाओ के मध्य है। (मत्स्य० ६५:१८)

(२) इरावती : पजाब की एक नदी है। रावो का नाम इरावती है। ब्रह्मा की भी एक नदी का नाम है। कश्यप की कन्या का नाम इरावती है। इरावती का विस्तृत वश ब्रह्माण्ड मे है। यहाँ पर यह शब्द केवल नाम के लिये प्रयुक्त किया गया है।

(३) चन्द्रलेखा : चन्द्रलेखा का अर्थ चन्द्रमा की कला है। एक अप्सरा का भी नाम चन्द्रलेखा पुरा साहित्य मे आता है। चन्द्रलेखा बाणासुर की कन्या एवं उषा की सखी थी। यहाँ केवल नाम का बोधक है।

पाठभेद :

श्लोकसख्या २२० मे 'ज्येष्ठे' का 'ज्यैष्ठे' तथा 'चूडया' का पाठभेद 'चूलया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२२० (१) तक्षक नाग : बीही परगना के जयवन वर्तमान जेवन के समीप एक पवित्र स्वच्छ नाग है। सिपोर से दो मील से भी कम दूरी पर उत्तर पश्चिम जेवन पडता है। वह नाग सरोवर आज भी वर्तमान है। मै वहाँ पर दो बार आ चुका हूँ। उसमे आज भी तक्षक नाग की पूजा की जाती है। यह स्थान श्रीनगर से ५ मील दूर है। विक्रमाकदेव चरित्र के लेखक विल्हण ने इसका बडा ही सुन्दर वर्णन किया है। इसके समीप ही खोनमुख ग्राम मे उसका जन्म हुआ था। (१८ ७०) विल्हण कहता है: प्रवरपुर (श्रीनगर) से डेढ गव्यूती पर स्थित है। जयवन मे एक ऊँचा स्मारक है। उसे जयवन कहते

है। वहाँ स्वच्छ जल पूर्ण एक सरोवर है। तक्षक का वह पवित्र स्थान है। तक्षक नागो का राजा है। धर्म नष्ट करने वाले कलि का मस्तक चक्रतुल्य नाग ने यहाँ उडा दिया था।

पुरावृत्त है। तक्षक नाग ने इस क्षेत्र में केसर की खेती सर्वप्रथम करना आरम्भ किया था। आइने अकबरी में वर्णन आता है। ज्येष्ठमास में जब केसर की खेती आरम्भ की जाती है तो इस जलाशय को तीर्थ यात्रा की जाती है। (२ ३५८ तथा रा० त० ४:९३१) माहात्म्य से प्रकट होता है कि हर्षेश्वर तीर्थ में तक्षक नाग का स्थान है। (श्लोक ८०) ज्येष्ठ की पूर्णिमा को हर्षेश्वर की तीर्थ यात्रा के समय तक्षक नाग के स्थान पर भी आना चाहिए। तक्षक नाग का उल्लेख कल्हण ने पुन रा० त० ४:२१६ में किया है। नीलमत पुराण मे उल्लेख है

द्वौ पद्मौ द्वौ महपद्मौ द्वौ कालौ द्वौ च कच्छपौ।
द्वौ समुद्रौ समुद्राणौ द्वौ गजौ द्वौ च तक्षकौ ॥
884

नरपुर के प्रसग मे तक्षक नाग की यात्रा का वर्णन कल्हण ने किया है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे इस तीर्थ का महत्त्व था।

महाभारत मे प्राप्य तीर्थो की तालिका में कश्मीर के केवल इस तीर्थ का उल्लेख मिलता है।

काश्मीरेष्वेव नागस्य भवन तक्षकस्य च।
वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापापमोचनम् ॥
(म० व० ८२ ९०)

कश्मीर में नाग, विष्णु, शिव एव सूर्य की पूजा अन्य देवताओ की अपेक्षा विशेष प्रचलित थी।

अबुल फजल कश्मीर के देव स्थानो की निम्नलिखित तालिका देता है—शिव = ४५, विष्णु = ६४, ब्रह्मा = ३, दुर्गा = २२ और नाग = ७००।

आठवी शताब्दी तक वराह तथा नरसिंह की पूजा प्रचलित हो गयी थी। अबुल फजल की उक्त तालिका से स्पष्ट है कि नाग पूजा तथा देवस्थान कश्मीर मे सर्वाधिक लोकप्रिय थे।

तक्षक नाग कश्यप एव कद्रू का पुत्र था। (विष्णु १ १५, मत्स्य ६ ७, म० आ० ५९ ४०, ह० व० १.३ १२।) उसके दो पुत्र अश्वसेन तथा श्रुतसेन थे। (म० आ० ३ १४५—१४६)

अर्जुन ने खाण्डव वन अग्नि को दिया। उस समय वहाँ तक्षक, उसकी पत्नी तथा अश्वसेन उपस्थित थे। अश्वसेन की माता ने पुत्र को मुख में ले लिया। वह आकाशमार्ग द्वारा भागने लगी। अर्जुन ने बाणो द्वारा उसका शिरश्छेद कर दिया। तक्षक के मित्र इन्द्र थे। इन्द्र ने अश्वसेन की रक्षा का विचार किया। उसने अश्वसेन की रक्षा की (म० आ० २१८ ९)

इस घटना के समय तक्षक कुरुक्षेत्र में था। (म० आ० २१९ १३) तत्पश्चात् ऋषि शमीक के पुत्र शृंगी की प्रेरणा पर अर्जुन के पौत्र राजा परीक्षित को डँस कर उसकी मृत्यु का कारण हुआ।

जनमेजय तथा तक्षक में शत्रुता वैद ऋषि के शिष्य उत्तक के कारण हुई थी। पौष्य राजा की रानी का गुरु उत्तक था। पौष्य पत्नी ने अपना कुण्डल गुरुदक्षिणा स्वरूप उत्तक को दिया। (म० आ० ३ २५) तक्षक नाग उस कुण्डल को हस्तगत करना चाहता था। उसने एक क्षपणक का वेष धारण किया। वह कभी दृश्य होता था। कभी अदृश्य हो जाता था।

उत्तक मार्ग मे कुण्डल रखकर लघुशका करने लगे। क्षपणक रूपधारी तक्षक ने कुण्डल चुरा लिया। उत्तक आचमन कर लौटे। उन्होने देखा। क्षपणक कुण्डल सहित भागा जा रहा था। उत्तक ने पीछा किया। क्षपणक ने अपना मूल स्वरूप धारण किया। एक विवर मे तक्षक नाग रूप प्रवेश किया। पाताल में पहुँचा। उत्तकने बिल किवा

द्रक्ष्यस्यावामपि तदा तदभ्यर्णकृतस्थिती ।
इत्युक्त्वा फणिकन्ये ते चणादास्तां तिरोहिते ।। २२१ ।।

२२१. 'उस समय हम दोनों को भी उनके समीप स्थित देखेंगे' यह कहकर वे फणि-कन्याएँ तत्क्षण तिरोहित हो गयी ।

क्रमात्प्रववृते सोऽथ नटचारणसंकुलः ।
प्रेक्षिलोकसमाकीर्णस्तत्र यात्रामहोत्सवः ।। २२२ ।।

२२२. वहाँ नट चारण संकुल प्रेक्षक समाकीर्ण नाग यात्रा महोत्सव क्रम से आरम्भ हुआ ।

द्विजोऽपि कौतुकाकृष्टः पर्यटन् रङ्गमञ्जसा ।
कन्योक्तचिह्नज्ञातस्य नागस्याऽन्तिकमाययौ ।। २२३ ।।

२२३. कौतुकाकृष्ट वह द्विज भी शीघ्रता पूर्वक मेले मे पर्यटन करता हुआ, कन्या द्वारा बताए, चिन्ह से ज्ञात नाग के समीप आ गया ।

पार्श्वस्थिताभ्यां कन्याभ्यां पूर्वमावेदितोऽथ सः ।
द्विजन्मने व्याजहार स्वागतं नागनायकः ।। २२४ ।।

२२४. पार्श्व स्थित दोनो कन्याओ ने उसके विषय मे पिता को जना दिया था । अतएव नागनायक ने ब्राह्मण के लिये कहा--'स्वागत' ।

ततः कथान्तरे क्वाऽपि पृष्टः कारणमापदाम् ।
जगाद तं द्विजन्मानं निःश्वस्य श्वसनाशनः ।। २२५ ।।

२२५. तदनन्तर कथा प्रसंग मे आपदाओं का कारण पूछने पर उस द्विजन्मा से निःश्वास लेकर श्वसनाशन[1] (नाग) बोला :

विवर खोदा। पाताल पहुचा। नागो की स्तुति की । (म० आ० ३ १५८—१५८ दे० भा० २ १०) ।

तक्षक को नष्ट करने की कामना से, ऋषि उत्तक ने जनमेजय को सर्प यज्ञ करने के लिये, प्रेरित किया । सर्पसत्र राजा ने आयोजित किया । उसमे अट्ठारह सर्पकुल जलकर मर गये वे पिच्छाडक, मडलक, पिडसिक्त, रमेणक, उच्छिक, शरभ, भग, बिल्वतेजस, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेचन, मुद्गर, शिशुरोमन, सुरोमान तथा महाहनु थे । तक्षक नाग ऋषि आस्तीक की कृपा से नागयज्ञ मे हवि होने से बच गया । (म० आ० ४८.१८)

महाभारत वर्णित कश्मीर के इस तीर्थ का महत्त्व आज भी है। जेवन ग्राम के समीप एक बडे निर्मल सरोवर मे तक्षक नाग की पूजा की जाती है। (रा० त० ७:६०७)

पाठभेद

श्लोक सख्या २२१ मे 'तद' का 'पाठभेद 'तदा' मिलता है ।

श्लोक सख्या २२४ मे 'वेदितोऽथ' का पाठभेद 'बेदिताय' मिलता है ।

२२५ (१) श्वसनाशन : इसका अर्थ यहाँ नाग किंवा सर्प है । 'श्वसनः स्पर्शनो वायुः इत्यमर.'

अभिमानवतां ब्रह्मन्युक्तायुक्तविवेकिनाम् ।
युज्यतेऽवश्यभोग्यानां दुःखानामप्रकाशनम् ।। २२६ ।।

२२६. 'ब्रह्मन्' ! स्वाभिमानी युक्तायुक्तविवेकी जन अवश्यमेव भोग्य दुखो[१] को प्रकाशित करना ठीक नही समझते ।

परदुःख समाकर्ण्य स्वभावसुजनो जनः ।
उपकारसमर्थत्वात्प्राप्नोति हृदयव्यथाम् ।।२२७ ।।

२२७. 'स्वभावतः सज्जन जन, पर दुःख सुनकर उपकार करने मे असमर्थ होने के कारण हार्दिक व्यथा का अनुभव करते है ।

वृत्ति स्वां बहु मन्यते हृदि शुचं धत्तेऽनुकम्पोक्तिभि-
र्व्यक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वन्स्तुतोरात्मनः ।
गर्ह्योपायनिषेवणं कथयति स्थास्नुं वदन्व्यापदं
श्रुत्वा दुःखमरुंतुदां वितनुते पीडां जनः प्राकृतः[१] ।। २२८ ।।

२२८. मितमति साधारण जन दुखियो के दु ख को सुनकर, आत्मश्लाघा करता हुआ, उनकी अपेक्षा अपनी वृत्ति श्रेष्ठ समझता है । तथापि हृदय मे शोक धारण करता हुआ, सहानुभूति पूर्ण वचनो से उनकी योग्यता की स्पष्ट निन्दा करता है । दुःख निवृत्ति निमित्त कुत्सित उपायो के आश्रय की मन्त्रणा देता है ।

अत एव विवेक्तृणां यावदायुः स्वमानसे ।
जीर्णानि सुखदुःखानि दहत्यन्ते चिताऽनलः ।। २२९ ।।

२२९ अतएव विवेकियो के मन मे आजीवन जीर्ण हुए सुख-दुःख अन्त मे चितानल ही जलाते हैं ।

अर्थात् वायु जिसका भोजन है उसे नाग कहते है । सर्प हवा पीकर रहते हैं यह आम कहावत है ।

२२६ (१) दुःखः कल्हण का यह श्लोक अत्यन्त मार्मिक है । उसने स्वाभिमानी और विवेकी लोगो के चरित्र का चित्रण किया है । वे भाग्य विपर्यय के कारण आये हुए दुःखो को चुपचाप सह लेते है । उसे प्रकट करने का किंचित् मात्र प्रयास नही करते । इसी भाव को कवि रहीम व्यक्त करता है ।

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय ।
सुनि अठिलैहे लोग सब बाँटि न लैहें कोय ।।

पाठभेद

श्लोक सख्या २२७ में 'समाकर्ण्य' का 'यदा कर्ण्य' तथा 'स्वभाव' का 'सुभाव' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक सख्या २२८ में 'मति' का 'मते'; 'स्तुतोरा' का 'स्तुतेरा', 'निषेवण' का निषेवन' तथा 'जन' का 'पुन' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२२८ (१) यह शार्दूल विक्रीडित छन्द है । इसका लक्षण निम्न प्रकार से है ।

सूर्याश्वैर्मसजस्तता सगुरव शार्दूलविक्रीडितम् ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २२९ में 'विवेक्तृणा' का 'विवक्तृणा', 'जीर्णानि' का 'दीर्घीनि' तथा 'दीर्घाणि' और 'चितानल' का 'चितानिलः' पाठभेद मिलता है ।

कः स्वभावगभीराणां लक्षयेद् बहिरापदम् ।
बालापत्येन भृत्येन यदि सा न प्रकाश्यते ॥ २३० ॥

२३०. स्वभावतः गम्भीर जनों की आपदाओं को बाहर कौन जान सकता है ? यदि बालक एवं भृत्य उसे प्रकाशित[1] न करें।

तदस्मिन्नेतयोर्बाल्याद्वस्तुनि व्यक्तिमागते ।
तवाग्रे गोपनं साधो न ममाऽप्युपपद्यते ॥ २३१ ॥

२३१. इन दोनों कन्याओ के बाल स्वभाव[1] द्वारा वस्तु स्थिति प्रकट हो जाने पर साधो ! आपके सम्मुख अब कुछ गोपनीय रखना, मेरे लिये उचित नहीं है।

त्वयाऽप्यस्मद्धितार्थाय निसर्गसरलात्मनः ।
ईषत्प्रयासः कल्याणिन्क्रियतां यदि शक्यते ॥ २३२ ॥

२३२ कल्याणिन् ! स्वभावतः सरलात्मा आप भी हमारे हित हेतु यदि हो सके, तो थोडा प्रयास कीजिए।

योऽय तरुतले मुण्डश्चूडालो दृश्यते व्रती ।
अमुना सस्यपालेन कान्दिशीकाः कृता वयम् ॥ २३३ ॥

२३३. यह तरु तले, जो मुण्ड जटाधारी व्रती दिखाई पड़ रहा, इसी सत्यपाल ने हमे भयभीत कर रखा है।

अभुक्ते मान्त्रिकैरन्ने नवे नागैर्न भुज्यते ।
अयं नात्ति च तत्तेन समयेन हता वयम् ॥ २३४ ॥

२३४. मान्त्रिकों[1] के नवान्न ग्रहण करने के पूर्व नाग नया अन्न नही खाते। यह नवान्न नही खाता है। इसी नियम के कारण हमारी यह दुर्दशा है।

---

२३० (१) प्रकाशित : कल्हण एक चतुर व्यावहारिक गृहस्थ को तरह घर को बात बाहर किस प्रकार फूटतो है, उस पर प्रकाश डालता है। गम्भीर मनुष्यो की बातें, जिसे वह किसी से कहता नही, तथापि घर के बालक तथा नौकरो के कारण बाहर फैल जाती हैं। किसी भी व्यक्ति के लिए यह असंभव है। घर में अपनी बात बालक किंवा नौकरो से छिपाकर रख सके। दोनो ही अपनी मूढता के कारण गुप्त से गुप्त बातें अनजाने बता देते है।

२३१ (१) बाल स्वभाव : बालक का स्वभाव सरल होता है। वे बात प्रकट कर देते हैं। इस ओर सकेत करता तक्षक नाग कन्याओ द्वारा बात प्रकट करने पर खेद प्रकट करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३२ मे 'र्थाय' का 'दाने' तथा 'कल्याणिन्' का 'कल्याणि' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या २३३ मे 'मुण्डश्चूडालो' का 'मुण्ड चूडालो' तथा 'सस्य' का 'शस्य' पाठभेद मिलता हैं।

पादटिप्पणियाँ :

२३३ (१) मुण्ड : मुण्ड शब्द का अर्थ शर मुडा हुआ अथवा मुण्डित होता है। मुण्ड शुंभ का एक सेनापति था। इसका अर्थ राहु और मुंडित का अर्थ अधम भी होता है। तक्षक नाग ने यहाँ मुण्ड शब्द उपेक्षा एव घृणा सूचक अर्थ मे व्यवहृत किया है।

क्षेत्राणि रक्षत्येतस्मिन्दृष्ट्वाऽपि फलसम्पदम् ।
भोक्तुं नैव समर्थाः स्मः प्रेता इव सरिज्जलम् ॥ २३५ ॥

२३५ इसके खेतो के रक्षक रहते हुए, हम प्रेतो[1] के समान सरिता के जल तुल्य फल सम्पत्ति देखकर भी ग्रहण करने मे असमर्थ हैं।

पाठभेद

श्लोक सख्या २३४ मे 'रत्ने' का 'रत्नै' पाठभेद मिलता है।

ादटिप्पणियाँ

२३४ (१) मान्त्रिक : कल्हण ने यहाँ नागो में चलित किसी पुरानी प्रथा को ओर सकेत किया है। ाग जाति नया अन्न मान्त्रिक के ग्रहण कर लेने पर ी खाते थे। यह सकेत यहाँ मिलता है।

यह प्रथा किसो रूप में आज भी प्रचलित ै। ग्रामो मे पुरोहित तथा ब्राह्मणो को नवीन न्न दान देने के पश्चात् ग्रहण करने की प्रथा ारत के अनेक अचलो मे प्रचलित है। भगवान् ी पूजा सर्व प्रथम नवान्न तथा उससे वने सामान की जाती हैं। तत्पश्चात् उसे ग्रहण किया ाता है।

मान्त्रिको ने नवान्न नही ग्रहण किया था। तएव तक्षक नाग की कन्याएँ नवान्न उपलब्ध ोने पर भी ग्रहण नही कर रही थी।

ाठभेद :

श्लोक सख्या २३५ में 'रक्षत्ये' का 'रक्षत्वे' था 'दृष्ट्वा' का 'सृष्ट्वा' पाठभेद मिलता है।

ादटिप्पणियाँ

२३५ (१) प्रेत : मृत व्यक्तियो की सज्ञा ात नामो से दी जाती है। परासु, प्राप्तपचत्व, ेत, प्रेत, सस्थित, मृत तथा प्रभीत। मृत आत्मा ी प्रेत एक अवस्था है। वह और्ध्वदैहिक त्य किये जाने के पूर्व रहती है। प्र+इत दो ब्दो के सयोग से प्रेत वना है। इसका अर्थ है—वह ो चला गया है। पापियो की आत्मा प्रेतस्वरूप चिर तृष्णा से तृपित रहती है। वे अपनी तृष्णा जल से तृप्त नही कर सकते। जल के समीप रहते जल पान से वचित रहते है। मानव शरीर त्याग देने पर दिवगत भूत हो जाता है। भूत का अर्थ शरीरहीन आत्मा। भूत तथा प्रेत में अन्तर है। पापी प्रेत होते हैं। भूत मरने पर सभी होते है।

वैदिक काल मे प्रेत दिवगत आत्मा के लिए व्यवहृत होता था। प्रेतो को जल नही प्राप्त होता। पश्चिम तथा पूर्वीय प्राचीन विश्वास के अनुसार वे जल की सीमा पार नही कर सकते। प्रेत का अर्थ भूत पिशाच वहुत वाद में होने लगा है। वैदिक साहित्य मे दिवगत मानव के लिए प्रेत शब्द का प्रयोग किया है। (शतपथ ब्राह्मण १० ५ २:१३ वृहदारण्यकोपनिषद् ५ ११ १)

दग्ध के पश्चात् पीपल वृक्ष से मृत्तिका पात्र मे 'घण्ट' लटका दिया जाता है। उस हँडिया मे छेद कर देते है। छेद मे कुशा डाल दिया जाता है। कुशाग्र से बूँद-बूँद जल गिरता है। शुद्ध होने तक दग्ध देने वाला व्यक्ति प्रात· तथा साय उस पात्र मे जल भर देता है। कथा है। यह टपकता बूँद प्रेत ग्रहण कर सकता है। प्रेत की कल्पना विश्व के समस्त साहित्य, धर्म तथा देशो में किसी न किसी रूप मे प्रचलित है। विश्वास किया जाता है। शरीर से आत्मा निकल कर इधर उधर भटकती रहती है।

ब्राह्मण प्रेत को ब्रह्म कहा जाता है। स्त्री प्रेत को चुडैल कहते है। अत्याचारी तथा पापी प्रेत का पिशाच प्रचलित नाम है।

प्रेत कल्पना का आधार जीव वाद है। प्रेत का स्वभाव प्रतिशोधात्मक माना गया है। वैक

द्वीप निवासी प्रेत को 'वी' कहते है। 'वी' में चिन्तन शक्ति रहती है। परन्तु स्वरूप का अभाव रहता है। वे स्वरूप धारण कर सकते हैं। तथापि अदृश्य रहते हैं। केवल मृत व्यक्ति उन्हे देख सकता है।

असुर अर्थात् असीरिया निवासी प्रेत को 'एडिमू' कहते हैं। अकाल मृत्यु के पश्चात् 'एडिमू' की स्थिति होती है। प्रेत तुल्य 'एडिमू' प्राणियो को भयभीत करते है। वहाँ सात प्रकार के प्रेतो की कल्पना भारत के सप्त प्रेतो तुल्य की गयी है।

चीनी लोग प्रेत को 'की' कहते है। 'की' रात्रि में विचरण करते है। मिस्र में प्रेत को 'खू' कहते है। जापान में प्रेत को 'ओनी' कहते है। उनका विश्वास है कि 'ओनी' त्रिनेत्र होते है। उनकी जिह्वा बाहर लपलपाती निकलती रहती है। उनका दर्शन केवल अर्ध रात्रि में होता है।

इस्लाम मे प्रेत को 'जिन' कहा जाता है। उनको सज्ञा शैतान से भी दी गयी है। पारसी धर्मानुयायी प्रेतो को देव तथा प्रेत योनि को 'वूजेज' कहते है। अहरीयन प्रेतो का नायक है। तिब्बत में प्रेतो को 'इहा' कहते है।

पुराणो में प्रेतो के रूप का वर्णन किया गया है। उनका वर्ण कृष्ण, स्वरूप विकराल तथा पद की उँगलियाँ पीछे की तरफ होती है। उनकी छाया मनुष्यो के समान नही पडती। वे नकिया कर बोलते हैं।

मृत्यु के उपरान्त लिंग शरीर रह जाता है। पिण्डादि दिया जाता है तो प्रेत शरीर होता है। वह उनका भोग शरीर होता है। स्वर्ग किंवा नरक प्राप्ति के पूर्व तक प्राणी प्रेतयोनि में रहता है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार कतिपय निषिद्ध कार्यों के करने पर प्रेत योनि प्राप्त होती है। निषिद्ध कर्मों की लम्बी तालिका है। उनमे मुख्य द्विज निन्दा, माता-पिता का निरादर, कन्या विक्रय, कुरुक्षेत्र मे दान ग्रहण करना, गोवध, चोरी, मदिरा, दूध, दही, मट्ठा का विक्रय मुख्य है। प्रेतो के सम्बन्ध में धारणा है। वे अपवित्र स्थानो मे रहते हैं। अपवित्र वस्तु ग्रहण करते है। उनका सूई के समान पतला शिर तथा पेट बहुत बडा होता है। अतएव वे सर्वदा तृष्णा एव क्षुधा से पीडित रहते हैं।

प्रेत सस्कार की विधि विहित है। प्रेत सस्कारो के द्वारा अनेक उद्देश्यो की पूर्ति की जाती है। मृत्यु के उपरान्त पूरक पिंड संस्कार या दस पिड संस्कार द्वारा प्रेत देह की उत्पत्ति होती है। प्रथम पिंड द्वारा प्रेत का मस्तक, दूसरे द्वारा कान, आँख तथा नाक, तीसरे के द्वारा कठ, स्कन्ध तथा हृदयस्थल, चौथे के द्वारा मूत्रेन्द्रिय, नाभि तथा गुदा, पाँचवें के द्वारा जंघा, छठे के द्वारा चर्म; सातवें के द्वारा नाडियाँ, आठवें के द्वारा दाँत और केश, नवें के द्वारा वीर्य तथा दसवे पिण्ड के द्वारा सभी अंगो की पूर्ति होती है। मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् सपिण्डीकरण संस्कार होता है। उक्त संस्कार द्वारा व्यक्ति प्रेत देह तथा प्रेतयोनि का परित्याग करता है। प्रेत सस्कार करने का अधिकार ज्येष्ठ किंवा कनिष्ठ पुत्र को होता है। उनके अभाव में पौत्र प्रेत श्राद्ध तथा संस्कार कर सकता है।

कर्मविशेष से प्रेत श्राद्ध होने पर भी कुछ लोग प्रेतयोनि मे रहते है। उन्हे भूत कहा जाता है। प्रेत श्राद्ध निमित्त कुछ समय निश्चित है। चैत्र, आश्विन कृष्ण पक्ष, पितृ पक्ष उत्तम समय कहा गया है। प्रेतत्व दूर करने की पुराणो में अनेक विधियो का उल्लेख किया गया है। उनमें वृषोत्सर्ग मुख्य है। इसे आद्यैकोदिष्ट श्राद्ध भी कहते है। एक वर्ष तक प्रेत निमित्त प्रतिदिन जल तथा अन्न दान दिया जाता है। इसे अंबुघट श्राद्ध कहते है। प्रेत बाधा समाप्त करने के लिये गया में प्रेतशिला पर पिण्डदान करने का विधान है। गया मे एक प्रेत पर्वत है। वहाँ श्राद्ध करने पर प्रेतोद्धार होता है। काशी में पिशाचमोचन

तथा कुरु यथा भ्रश्येत्समयादेष नैष्ठिकः ।
योग्यां प्रतिक्रियां विद्मो वयमप्युपकर्तृषु ।। २३६ ।।

२३६. 'आप ऐसा कीजिये कि यह नैष्ठिक[1], जिसने प्रातज्ञा कर ली है कि नवान्न नही ग्रहण करेगा, प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो जाय। हम भी उपकारियो का योग्य प्रत्युपकार करना जानते हैं।'

स तथेति ततो नागमुक्त्वा यत्नपरो द्विजः ।
अचिन्तयद्दिवारात्रं सस्यपालस्य वञ्चनाम् ।। २३७ ।।

२३७. 'ऐसा ही करूँगा।' यत्न तत्पर उस द्विज ने नाग से कहकर, रातदिन उस सस्यपाल[1] को व्रतभ्रष्ट करने की चिन्ता करने लगा।

गूढं तस्य बहिःक्षेत्रकुटीगर्भकृतस्थितेः ।
पच्यमानान्नभाण्डान्तर्नवान्नं न्यक्षिपत्ततः ।। २३८ ।।

२३८. जब मान्त्रिक खेत के बाहर कुटी मे बैठा था, उस विप्र ने नैष्ठिक के पकते भोजन पात्र मे छिपकर नवान्न डाल दिया।

भुञ्जान एवं तत्तस्मिन्क्षणादेव जहार सः ।
अहीन्द्रः करकासारवर्षी स्फीतां फलश्रियम् ।। २३९ ।।

२३९ मान्त्रिक के तत्क्षण भोजन ग्रहण करते ही अहीन्द्र[1] ने उपल तथा घनघोर[2] वृष्टि द्वारा खेतो की अत्यधिक उपज हरण कर ली।

पर प्रेत बाधा प्रतिकार निमित्त श्राद्ध किया जाता है।

२३६ (१) **नैष्ठिक :** नैष्ठिक शब्द निष्ठा से बना है। किसी बात का व्रत लेना, प्रतिज्ञा करना, किसी बात का निर्णय लेकर उसपर दृढ रहने वाले व्रती को नैष्ठिक कहते है। यह विशेषण है। उपनयन से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक गुरुकुल मे रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को भी नैष्ठिक कहा जाता है। किसी व्रत के अनुष्ठान में सलग्न व्यक्ति के हेतु भी इस विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

कल्हण ने इस अर्थ में इस शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। मान्त्रिक ने नवान्न न ग्रहण करने का व्रत लिया था। उसका यह दृढ निश्चय था। एतदर्थ उसे नैष्ठिक कहा गया है। श्लोक सख्या २३८ में कुटी मे इस मान्त्रिक का रहना कल्हण ने वर्णन किया है। इससे भी प्रतीत होता है। मान्त्रिक निष्ठावान, गृह त्यागी और कुटी निवासी था।

पाठभेद

श्लोक २३७ मे 'दिवारात्रम्' का 'दिवारात्रौ', 'सस्य' का 'शस्य' तथा 'वञ्चनाम्' का 'वञ्चन' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

२३७ (१) **सस्यपाल :** पाल का अर्थ रक्षक, राजा, ग्वाल तथा सस्य का अर्थ अन्न होता है। शाब्दिक अर्थ खेत की फसल तथा अन्न का रक्षक है। यहाँ पर अर्थ खेत की फसल की रखवाली करने वाला करना अच्छा होगा।

२३९ (१) **अहीन्द्र :** अहि का अर्थ सर्प, नाग, वृत्रासुर, मेघ, जल, नक्षत्र, पृथ्वी तथा नाभि होता है। अहीन्द्र का अर्थ सर्पो, नागो किंवा अहियो का राजा है। यहाँ पर सुश्रवा नाग के लिए यह शब्द आया है।

(२) **उपल वृष्टि तथा तूफान :** नागलोग उपल वृष्टि तथा तूफान का रूप धारण करते हैं।

तं च व्युत्क्रान्तदारिद्र्यः सरसोऽभ्यर्णमागतम् ।
कृतोपकारमन्येद्युर्निजोर्वीमनयद् द्विजम् ॥ २४० ॥

२४०. दारिद्र्य मुक्त नागराज ने उस उपकारी द्विज को, जो दूसरे दिन सरोवर पर आया था, अपने[१] स्थान पर ले गया।

स तत्र पितुरादेशात्कन्याभ्यां विहितार्हणः ।
अमर्त्यसुलभैर्भोगैरतोष्यत दिने दिने ॥ २४१ ॥

२४१. वहाँ पिता के आदेश पर दोनों कन्यायें द्विज की शुश्रूषा करने लगी। वह दिनोंदिन अमर्त्यो के सुलभ भोगों से तुष्ट होने लगा।

कालेन सर्वानामन्त्र्य स्वां भुवं गन्तुमुद्यतः ।
प्रतिश्रुतवरं नागं चन्द्रलेखामयाचत ॥ २४२ ॥

२४२. कालान्तर में सबसे विदा लेकर, अपने घर जाने के लिये उद्यत हुआ। वर देने की प्रतिज्ञा करने वाले नाग से द्विज ने चन्द्रलेखा माँगी।

यह जनश्रुति सत्य मानी जाती है। तूफानो द्वारा कृषि नष्ट कर भोजन प्राप्त करते है। यही बात तरंग ३:१६ मे कही गयी है। उनकी तूफान पैदा करने वाली शक्ति का वर्णन तरंग १·२५९ में किया गया है। सि-यू-की (१ ६५ तथा १२२) इसी प्रकार का वर्णन करता है।

उपल वृष्टि, तूफान, हैजा, जलप्लावन कश्मीर के लिये साधारण बातें है। हैजा पर अब नियन्त्रण कर लिया गया है। जल प्लावन अर्थात् बाढ जब भी बारहमूला के पास बालू अथवा पत्थर नदी तल मे एकत्रित हो जाते है, तो घोर वृष्टि होने पर जलस्तर उठ जाता है। उपत्यका में जल प्लावन का दृश्य उपस्थित हो जाता है। कश्मीर सरकार ने दो ड्रेजर खरीद लिया है। वे वितस्ता का बालू साफ करते है। अतएव जलप्लावन की सम्भावना कम हो गयी है।

सन् १४६६, १५७६, १६८२, १७२३, १७३२, १७४५, १७९३ के जलप्लावन अत्यन्त उग्र थे। सन् १६८२ को बाढ एक मास तक कश्मीर में रही। सन्१८९३ मे श्रीनगर के ७ पुलो मे ६ वितस्ता के धारा प्रवाह में बह गये थे। पुरातन कागजो के देखने पर पता चलता है कि प्रत्येक १२ वर्षो मे एक बार बाढ आने का क्रम रहा है।

२४० (१) नाग स्थान : नीलमत के अनुसार नागाओ का निवास स्थान भोगवती नगरी है। यह नगर पाताल का एक खण्ड माना जाता है। बौद्ध ग्रन्थो में नगरो की तालिका में भोगवती नगरी का उल्लेख है।

नागानामालयं नागनाम्ना भोगवती पुरीम्।
223.२९८

योगी भूत्वा स नागेन्द्र तत्रेहापि कृतालयः ॥

नीलमत पुराण मे नये वर्ष के प्रथम दिवस पर महाशान्ति वर्णन में नाग द्वीप का उल्लेख किया गया है।

इन्द्रद्युम्न. कशेरुस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्य गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥
591·७१२

ग्रहो नागस्तथा मासो यः स्यात्संवत्सरः प्रभुः ।
ग्रहो भविष्यद्वर्षस्य तथा मासस्य चारकः ॥
625.७४७

सम्बन्धायोग्यमपि तं कृतज्ञत्ववशंवदः ।
संविभेजे स भुजगः कन्यया च धनेन च ॥ २४३ ॥

२४३. यद्यपि वह विप्र सम्बन्ध के अयोग्य था, तथापि कृतज्ञता द्वारा वशंवद, उस भुजंग[1] ने कन्या एवं धन के साथ उसे भेजा।

एवं नागवराऽवाप्तश्रियस्तस्य द्विजन्मनः ।
महान् नरपुरे कालस्तैस्तैर्नित्योत्सवैर्ययौ ॥ २४४ ॥

२४४. नाग द्वारा वर से प्राप्त श्री के साथ उसने 'नरपुर' मे नित्योत्सवो द्वारा बहुत समय व्यतीत किया।

भुजगेन्द्रतनूजाऽपि तं पति पतिदेवता ।
अतोषयत्पराध्यश्रीः शीलाचारादिभिर्गुणैः ॥ २४५ ॥

२४५. भुजगेन्द्र की वह अतुल सौन्दर्यवती कन्या, पति को देवता[1] मानती हुई शील एवं आचारादि गुणो से संतुष्ट रखती थी।

तस्यां कदाचित्सौधाग्रस्थितायां प्राङ्गनाद्बहिः ।
आतपायोज्झितं धान्यं बुभुजे विहरन्हयः ॥ २४६ ॥

२४६ किसी समय जबकि चन्द्रलेखा अपने सौधाग्र पर स्थित खड़ी थी, प्रांगण के बाहर सुखवन के लिये डाले गये धान्य[1] को विहरता एक अश्व आकर खाने लगा।

तं वारयितुमाहूता भृत्या नासन्गृहे यदा ।
शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरा सा तदाऽवातरत्स्वयम् ॥ २४७ ॥

२४७. उसे हटाने के लिये चन्द्रलेखा ने भृत्यो को पुकारा परन्तु वे घर मे नही थे। तब शिञ्जान मंजु मंजीरा[1] वह स्वयं नीचे उतरी।

एतेषां पूजनं कार्यं बह्वन्नकुसुमोत्करैः ।
फल वेदान्तथा ज्ञात्वो नगवर्षस्य वारकम् ॥
627 ७४५-७४६

वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामन च गोप्रदानफल लभेत् ॥
1317 = १५३९

पाठभेद :

श्लोक सख्या २४२ में 'श्रुतवर' का पाठभेद 'श्रुत वर' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४३ (१) भुजंग : सुश्रवा नाग यद्यपि स्वकुल परम्परा के अनुसार कन्या दान द्विज को नही कर सकता था तथापि कृतज्ञता तथा वचनबद्धता के कारण चन्द्रलेखा को उसने कुल परम्परा तोड कर विशाख ब्राह्मण को दिया था।

२४५ (१) देवता : देव से तल प्रत्यय होकर देवता बनता है। देव तथा देवता शब्द समानार्थक नही थे। देवता शब्द स्त्रीलिंग है। उसका प्रयोग केवल मंत्रो के सम्बन्ध में होता रहा है। प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ उसके देवता का नाम निर्दिष्ट रहता है। हिन्दी में देवता शब्द का व्यवहार देव शब्द के समान पुलिंग में होने लगा है। देव वर्ग का निवास स्वर्ग है। देव का पर्याय सुर होता है। देव, दिव्य धातु से बना है। इसका अर्थ चमकना है। प्रकाशमान एवं तेजस्वी लोग देव कहे गये हैं।

एकहस्तधृतावेगस्रस्तशीर्षांशुकान्तया ।
तया पाणिसरोजेन धावित्वा सोऽथ ताडितः ॥ २४८ ॥

२४८. वेग से आने के कारण [1]शीर्षांशुक सर से खिसक गया था। उसके छोर को एक हाथ से पकड़े उसने दूसरे पाणि सरोज से दौड़कर उसे (अश्व को) मारा।

भोज्यमुत्सृज्य यातस्य फणिस्त्रीस्पर्शतस्ततः ।
सौवर्णी पाणिमुद्राऽङ्के तुरगस्योदपद्यत ॥ २४९ ॥

२४९. भोज्य को त्याग कर जाते हुए तुरग के अंग पर फणि स्त्री के स्पर्श से सौवर्णी पाणि मुद्रा अंकित हो गयी।

तस्मिन्काले नरो राजा चारैस्तां चारुलोचनाम् ।
श्रुत्वा द्विजवधूं तस्थौ प्रागेवाऽङ्कुरितस्मरः ॥ २५० ॥

२५०. उस समय राजा नर के मन में चारुलोचना द्विज वधू के प्रति अनुराग अंकुरित हो गया, जिसके सौंदर्य के विषय मे वह अपने गुप्तचरों से पूर्व ही सुन चुका था।

कल्हण ने पति देवता शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। पतिव्रता स्त्रियाँ पति को देवता मानती हैं। पति भक्ति उनका धर्म माना गया है। कल्हण आर्यों की इस परम्परा का यहाँ उल्लेख करता है।

२४६ (१) **धान्य :** धान्य का शाब्दिक अर्थ धान होता है। धान कूटने और भूसी निकल जाने पर चावल हो जाता है। धान्य का राजतरंगिणी मे सर्वत्र अर्थ चावल धान्य किंवा शाली किया गया है।

२४७ (१) **शिञ्जानमंजुमंजीरा :** यहाँ पर इस वाक्य का अनुवाद न कर यथावत् रख दिया है ताकि मूल भाव का रस प्राप्त हो सके। यह शब्द कवि कल्हण के साहित्य मर्मज्ञता का परिचायक है। भूषणो की मधुर ध्वनि के लिये शिंजित शब्द का प्रयोग प्रशस्त कहा गया है। 'भूषणाना तु शिञ्जितम्'। 'ङ्क' 'ञ्ज' का प्रचुर प्रयोगमाधुर्य का व्यंजक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४८ मे 'एकहस्त' का पाठभेद 'एकहस्ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४८(१) **शीर्षांशुक :** शाब्दिक अर्थ शिर तोपने का वस्त्र होता है। शिरोधान भी कहते हैं। कश्मीर मे इसे तरंगा कहते हैं। हरवान विहार के खनन कार्य में मिट्टी की टाइल्स तथा खिलौने मिले है। तृतीय शताब्दी के शिरोवेश किंवा शीर्षांशुक के रूप तथा प्रकार का ज्ञान होता है।

हरवान के एक टाइल पर नृत्यशील एक रमणी का चित्र उभडा अंकित है। वह पैरो मे या तो शलवार पहनी है या पाजाम। शरीर पर कुरता है। कुरता की बाँहे ढीली नही है। कानो मे बाला है, लम्बे केश जूडा में बँधे है। शिर पर दुपट्टा की तरह वस्त्र है। वह दोनो हाथो मे शिरो भाग से वाम कर में नीचे जानु तक तथा दक्षिण कर में स्कन्ध प्रदेश तक उठा है। उसका वाम पद सीधा तथा दक्षिण पद उठा है। वह वाम दिशा की ओर देख रही है। यह टाइल अत्यन्त भावनामय प्रभावोत्पादक होने के साथ ही साथ तत्कालीन वेश भूषा पर प्रकाश डालती है। उसमें प्रकट होता है कि उस समय का कश्मीर समाज वेशभूषा मे कितना सुसंस्कृत तथा आगे बढ चुका था। इस टाइल के चौखूटे पर गोले गोले चिन्ह धँसे तथा उभडे है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४९ मे 'द्राङ्के' का पाठभेद 'द्राके' मिलता है।

तस्य धावन्तमुन्मत्तमन्तःकरणवारणम् ।
बलान्नियमितु नासीदपवादभयाङ्कुशः ।। २५१ ।।

२५१. लोकापवाद का भय रूपी अंकुश राजा के धावित उन्मत्त अन्तःकरण रूपी गज को बल पूर्वक नियन्त्रित करने मे असफल रहा ।

तस्मिन्नुद्वृत्तरागाग्निविप्लवे भूपतेः पुनः ।
उवाह हयवृत्तान्तो दृप्तवातानुकारिताम् ।। २५२ ।।

२५२. राजा की उस उद्दीप्त रागाग्नि विप्लव मे पुन. अश्व वृत्तान्त ने प्रचण्ड वायु का कार्य किया ।

चक्रे पर्यस्तमर्यादः सरलाङ्गुलिशोभिना ।
स काञ्चनकराङ्केन शशाङ्केनेव वारिधिः ।। २५३ ।।

२५३. शशाक जिस प्रकार समुद्र को मर्यादा हीन कर देता है, उसी प्रकार काचनकरा किंतु सरल अंगुलियो[१] की शोभा ने राजा को मर्यादा रहित कर दिया ।

व्रीडानिगडनिर्मुक्तो दूतैराकूतशंसिभिः ।
तामुपच्छन्दयन्सोऽथ सुन्दरीमुदवेजयत् ।। २५४ ।।

२५४. लज्जा शृंखला से निर्मुक्त उस राजा ने अभिप्राय विज्ञ दूतो द्वारा उसे प्रलोभित[१] करता उस सुन्दरी को उद्वेजित किया ।

सर्वोपायैरसाध्यां च विप्रस्तत्पतिरप्यसौ ।
तेनाऽयाच्यत लुब्धेन रागान्धानां कुतस्त्रपा ।। २५५ ।।

२५५. उस लोभी राजा ने सब साध्य उपायो से अप्राप्य उसके पति विप्र से भी उस सुन्दरी की याचना की । रागान्धो को भला लज्जा[१] कहाँ ?

श्लोक सख्या २५१ में 'वारणम्' का पाठभेद 'कारणम्' मिलता है ।

श्लोक सख्या २५२ मे 'न्नुद्वृत्त' का पाठभेद 'न्नुद्वृद्ध' तथा 'न्नुद्धृत्त' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ·

२५३ (१) सरलागुलि : कल्हण यहाँ अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता का परिचय देता है । यहाँ पर सरल शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया गया है । स्त्रियो की सरल एव लम्बी उगलियाँ प्रशस्त फल किंवा शुभकर कही गयी है । भावप्रकाश इसे व्यक्त करता है ।

कोमल सरलोऽङ्गुष्ठो वर्तुलो यदि योषिताम् ।
क्रमादेवं कृशाङ्गुल्यो दीर्घाकाराश्च वर्तुला ।
पृष्ठरोमा शस्तफलाश्चिपिटा उदिता बुधै· ।

कवि दण्डी 'दशकुमार चरितम्' मे सरल, गोल, लाल उँगलियो का इसी प्रकार सुन्दर वर्णन करता है—'कोमल नखमणी ऋज्वनुपूर्ववृत्ततप्ततात्राङ्गुली सन्नतास देशे सौकुमार्यवत्यो निमग्नपर्वसन्धी च वाहुलते । ६।२८ ।

२५४ (१) प्रलोभन : इस विषय पर कश्मीरी रचना सस्कृत काव्य 'कुट्टनीमतम्' द्रष्टव्य है । वह गणिका, वेश्या तथा कामियो के प्रलोभन आदि का विपय वर्णन करता है ।

अथ निर्भर्त्सनां तस्मादपि प्राप्तवताऽसकृत् ।
हठेन हर्तुं तां राज्ञा समादिश्यन्त सैनिकाः ॥ २५६ ॥

२५६. उस द्विज से निरन्तर तिरस्कृत होने पर भी उस राजा ने सैनिकों को बलात् उसको हरने का आदेश दिया ।

तैर्गृहाग्रे कृतास्कन्दो निर्गत्याऽन्येन वर्त्मना ।
त्राणार्थी नागभवनं सजानिः प्राविशद् द्विजः ॥ २५७ ॥

२५७. गृहाग्र उन सैनिकों से घिरा देख सपत्नीक त्राणार्थी उस द्विज ने अन्य मार्ग से निकल कर नागभवन में प्रवेश किया ।

ताभ्यामभ्येत्य वृत्तान्ते ततस्तस्मिन्निवेदिते ।
क्रोधाऽन्धः सरसस्तस्मादुज्जगाम फणीश्वरः ॥ २५८ ॥

२५८. समीप पहुँचकर उन दोनों के वृत्तान्त निवेदित करने पर क्रोधान्ध फणीश्वर उस सरोवर से बाहर निकला ।

उद्गर्जज्जिह्मजीमूतजनितध्वान्तसंततिः ।
स घोराशनिवर्षेण ददाह सपुरं नृपम् ॥ २५९ ॥

२५९. उस नाग ने काले बादलों से अन्धकार उत्पन्न कर भयंकर गर्जना की और घोर अशनि वृष्टि द्वारा नगर सहित राजा को भस्म कर दिया ।

दग्धप्राण्यङ्गविगलद्वसासृक्स्नेहवाहिनी ।
मयूरचन्द्रकाङ्केव वितस्ता समपद्यत ॥ २६० ॥

२६०. दग्ध प्राणियों के अंगों से विगलित वसा, रक्त एवं अन्य तरल शरीर तत्वों के बहने के कारण वितस्ता नदी विचित्र मयूर पंख तुल्य[1] हो गयी थी ।

---

२५५ (१) लज्जा : महाकवि कालिदास ने कुमार संभव मे उसी भाव को प्रदर्शित किया है ।

'यमानयन्त्यात्ममुतोऽपि······

न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षेत ५:८२

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५७ मे 'वर्त्मना' का 'वर्त्मणा' तथा 'सजानिः' का 'सजामि' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२६० (१) मयूरपंख तुल्य : कल्हण के इस वर्णन से सिद्ध होता है कि किन्नरपुर किंवा नरपुर वितस्ता पुलिन में था । इतने समीप था कि लोगो के मेद, मज्जा, रक्त तथा जले हुए शव नदी मे बह गये थे । कल्हण यहाँ अपनी कवित्व शक्ति का परिचय देता मज्जा, मेद, रक्त तथा जले हुए शव के वर्णन की तुलना मयूर पख से करता है । नदी के उज्ज्वल एवं निर्मल जलस्तर पर यदि जली हुई स्मशान की लकडी, कोयला अथवा जला या अधजला शव तैरने लगे तो वह सचमुच कृष्ण मयूर पुच्छ तुल्य आकार वना देता है । मैने स्वय एक समय काशी मे मणिकर्णिका घाट पर यह दृश्य वनते देखा है ।

चिता शव दाह के पश्चात् ठण्डी की जाती है । चिता पर पानी डाला जाता है । जली लकडी, कोयला, शव का शेपाश आदि गगा मे वहा दिये जाते

शरणाय प्रविष्टानां भयाच्चक्रधरान्तिकम् ।
मुहूर्तान्निरदह्यन्त सहस्राणि शरीरिणाम् ॥ २६१ ॥

२६१ भयग्रस्त सहस्रो प्राणी जो शरण हेतु, चक्रधर[1] मन्दिर मे प्रविष्ट हुए थे, वे मुहूर्त मात्र मे जल गये।

मधुकैटभयोर्मेदः प्रागूर्वोरिव चक्रिणम् ।
दग्धानां प्राणिनां तत्तदा सर्वाङ्गमस्पृशत् ॥ २६२ ॥

२६२. प्राचीन काल मे मधु-कैटभ[1] के मेद से चक्रधर के दोनो ऊरु स्पर्श हुए थे। परन्तु इस समय उनका सर्वांग शरीर दग्ध प्राणियो के मेद से लिप्त हो गया था।

है। उस समय गगा के उज्ज्वल जल स्तर पर मयूर-पख के 'आँख' पुच्छ तुल्य चित्र वन जाता है।

२६१ (१) चक्रधर : टिप्पणी श्लोक ३८ (१) तथा श्लोक २०१ द्रष्टव्य है। कल्हण इस प्रकार का वर्णन पुन तरग ८ ९९० में करता है।

कल्हण का वह वर्णन नरपुर स्थान के निश्चय में सहायक होता है। चक्रधर के समीप नरपुर था। इस भयकर अग्नि दाह के समय लोग त्रस्त हो कर चक्रधर मन्दिर में रक्षा निमित्त शरण लिये थे। परन्तु मन्दिर भी अग्निदाह से नही बच सका। वहाँ भी लोग जल मरे। मन्दिर नरपुर में, या उसके इतने पास था, कि लोग दौडकर उसमे पहुँच गये थे।

पाठभेद

श्लोक सख्या २६२ में 'मेंद' का 'मेंत' तथा 'तत्तत्' का पाठभेद 'त त' मिलता है।

पादटिप्पणियॉ :

२६२ (१) मधु कैटभ : मधु एव कैटभ का वध पुरावृत्त के अनुसार भगवान् चक्रधर ने अपनी जघा पर रख कर किया था। उनके वध के कारण मेद अर्थात् चर्वी उनके जाघ ही तक सीमित थी। इस समय सहार के कारण भगवान् का समस्त शरीर मज्जा पूर्ण हो गया था।

मधु कैटभ असुर द्वय है। सुविख्यात हैं। मधु तथा कैटभ दोनो असुरो का जन्म ब्रह्मा के स्वेद से हुआ था। (विष्णु धर्म १ १५) पद्म पुराण सृ० ४० के अनुसार ब्रह्मा के तमोगुण द्वारा इनकी उत्पत्ति हुई थी। देवी भागवत (१ ४) के अनुसार इनकी उत्पत्ति विष्णु भगवान् के कान की मैल अर्थात् खुँठ से हुई थी। महाभारत भी इस कथा का समर्थन करता है। भगवान् ने मृत्तिका से इनकी आकृति का निर्माण किया था। उन मूर्तियो में वायु का प्रवेश हो गया। अस्तु वे सप्राण हो गयी। इन दोनो असुरो में मधु की त्वचा कोमल थी। अतएव उसका नाम मधु पडा।

महाभारत में उनके जन्म की एक और कथा दी गयी है। भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर जल के दो बिन्दु गिर गये थे। वे तमोगुण तथा रजोगुण के प्रतीक थे। भगवान् ने उन बूंदो पर दृष्टि-पात किया। उनमें एक मधु तथा दूसरा कैटभ हो गया। (म० शा० ३५५ २२ :२३)

कठिन तपस्या द्वारा वे अजेयत्व प्राप्त कर लिये थे। कालान्तर में असुर स्वभावानुकूल प्राणियो को त्रस्त करने लगे। अतएव भगवान् विष्णु ने इनका वध किया। (दे ० भा ० १ . ४)

महाभारत वन पर्व (१३ ५०) में इनकी एक और कथा दी गयी है। जन्म के साथ ही दोनो ने ब्राह्मणो का वध करना आरम्भ कर दिया। ब्रह्मा की हत्या पर भी तत्पर हो गये। ब्रह्मा ने विष्णु की स्तुति की। भगवान् विष्णु का इन दोनो असुरो के साथ सहस्र वर्ष तक सघर्ष होता

स्वसा सुश्रवसो नागी रमण्याख्याऽद्रिगह्वरात् ।
साहायकायाऽश्मराशीन्समादाय तदाऽऽययौ ॥ २६३ ॥

२६३. उसी समय सुश्रवा की बहन रमणी (रमण्या[१]) नाम्नी नागी गिरि गह्वर से सहायता निमित्त अश्म राशि लेकर आयी।

सा योजनाधिके शेषे मार्गस्यारात्सहोदरम् ।
कृतकार्यं निशम्याश्मवर्षं ग्रामेषु तज्जहौ ॥ २६४ ॥

२६४. एक योजन[१] से कुछ अधिक मार्ग शेष रह गया, तो उसने अपने सहोदर भाई की सफलता सुनकर, अश्म राशि की वहीं ग्रामों पर वृष्टि कर दी।

योजनानि ततः पञ्च जाता ग्रामधरा खिला ।
सा रमण्याटवीत्याद्याऽप्यस्ति स्थूलशिलाविला ॥ २६५ ॥

२६५. पाँच योजन तक ग्रामों की समस्त भूमि स्थूल शिला मय हो गयी और वह 'रमण्याटवी'[१] आज भी है।

रहा। इन्हें मरता न देखकर भगवान् ने इन्हें मोहित किया। तत्पश्चात् उन्हे पलथी अर्थात् ऊरुओ पर रख कर मारा। (पद्म क्रि० २, मार्क०: ७८ ह. व० ३:१३)

इनकी मेद से पृथ्वी बनी। अतएव पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा। ब्रह्मा के निवेदन पर विष्णु ने उन्हे मारा था। अतएव विष्णु का नाम मधु-सूदन हो गया। (म० शा० २००:१४—१६)

पद्म पुराण के अनुसार देवासुर संग्राम में वे हिरण्याक्ष के पक्ष से युद्ध मे भाग लिये थे। देवों से वे मायायुद्ध करते थे। (पद्म० सृ०: ७०) मधु-कैटभ असुरो के पूर्वज थे। तमोगुण प्रवृत्ति के कारण, उग्र प्रवृत्ति के हो गये थे। भयकर एवं क्रूरकर्मा थे।

कह्लण ने राजा नर तथा सुश्रवा नाग के संहार की तुलना मधु कैटभ की हत्या से की है। भगवान् विष्णु ने उन्हें ऊरु पर रख कर मारा था। भगवान् चक्रधर का केवल ऊरु प्रदेश तक असुरो के मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था। परन्तु सुश्रवा नाग का नर सहार इतना क्रूरकर्मा एवं भयकर था कि भगवान् चक्रधर का समस्त शरीर मानव मेद, मज्जा एवं रक्त से भर गया था।

पाठभेद:

श्लोक संख्या २६३ मे 'राशीन्' का पाठभेद 'राशी' मिलता है।

२६३ (१) **रमण्या**—यहाँ का "रमण्याख्याद्रि" पाठ बहुत भ्रामक है। इससे बहिन के नाम का और पर्वत के नाम का भी भ्रम होता है। रमणी शब्द स्त्रीवाचक भी है। रमण्या पर्वत है या बहन है? श्री रणजीत नारायण पण्डित ने यहा पर रमण्या का पर्वत अर्थ लगाया है। श्री स्तीन ने 'रमण्या' नागी का नाम दिया है। रमणी अर्थ भी लगाया जा सकता है। रमणी+आख्या से रमण्याख्या बन जाता है। और श्लोक सख्या २६५ में भी यह बैठता है। वहाँ पर रमणी+अटवी 'रमण्यटवी' बन जाता है। रमण्या+अटवी यदि मान कर सन्धि की जाय तो रमण्याटवी बन जाता है। जो अभीष्ट नही है। क्योकि पाठ रमण्य अटवी है।

पाठभेद:

श्लोक संख्या २६४ मे 'सा यो' का 'स यो' तथा 'रात्सहोदरम् का 'रान्महोदरम्' पाठभेद मिलता है।

२६४ (१) **योजन**: एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस २ मील का होता है।

घोरं जनक्षयं कृत्वा प्रातः सानुशयोऽप्यहिः ।
लोकापवादनिर्विण्णः स्थानमुत्सृज्य तद्ययौ ॥ २६६ ॥

२६६. घोर जन क्षय करके भी पश्चातापयुक्त नागराज लोकापवाद से खिन्न होकर, प्रात काल उस स्थान का त्याग कर चला गया।

दुग्धाब्धिधवलं तेन सरो दूरगिरौ कृतम् ।
अमरेश्वरयात्रायां जनैरद्यापि दृश्यते ॥ २६७ ॥

२६७. उसने दूर पर्वत पर दुग्ध सागर तुल्य धवल एक सर[1] का निर्माण कराया। अमरेश्वर[2] यात्रा मे जनता उसे आज भी देखती है।

अल्बेरुनी लिखता है—हिन्दुओं में दूरी नापने का माप है। उसे योजन कहते है। योजन ८ मील का होता है। अर्थात् २३,००० गज होता है। इस नाप के अनुसार अल फजारी ने अपनी गणित ज्योतिष पुस्तिका मे पृथ्वी की परिधि का नाप दिया है। योजन को उसने 'जुन' कहा है। जुन का बहुवचन अजवान होगा।

पाठभेद

श्लोक सख्या २६५ में 'खिला' का 'शिला' 'रमण्याटवी' का 'रमण्यटवी' तथा 'प्यस्ति' का पाठभेद 'प्यस्थि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२६५. (१) रमण्याटवी : नागराज सुश्रवा की बहन का पुरावृत्त यहाँ दिया गया है। उसे रामव्यार नदी के सन्दर्भ में कहा गया है। रामव्यार नदी का शुद्ध सस्कृत शब्द रमण्याटवी है।

रामव्यार नदी पीर पजाल पर्वत माला तथा रुपरी दर्रो के मध्य बहने वाली जल धाराओ को अपने मे मिलाती है। हुरपुर के समीप से बहती हुई नुरियान होती उत्तर-पूर्व बहने लगती है। यह वितस्ता में गम्भीर सगम के समीप आकर मिलती है। यह सगम चक्रधर से तीन मील अधोभाग में है। हुरपुर अथवा हरिपुर से यह अनेक छोटी-छोटी धाराओ में पत्थरो के ढोको और ककडो से ठोकर खाती बहने लगती है। आगे बढने पर चौडी होती जाती है। नदी का पाट प्राय वर्ष मे सूखा रहता है। केवल बाढ के समय जल से पाट भर जाता है। त्सूरन के समीप इसका पाट दो मील का हो जाता है परन्तु लितर गाँव के ऊपर से यह पाट संकुचित होने लगता है। प्रवाह एक ही धारा बनकर सूखी बलुई भूमि से बहने लगती है। लितर ग्राम के ऊपर पथरीली भूमि में वह स्थान मिलता है जहाँ कहा जाता है कि रमण्या ने पत्थरो की वर्षा की थी। चक्रधर और इस स्थान के मध्य ८ मील की दूरी होगी। कल्हण के वर्णन से बिल्कुल मिलता है। वह कहता है चक्रधर से एक योजन से कुछ ऊपर अर्थात् ८ मील की दूरी पर रमण्या ने पत्थर फेंक दिया था।

कल्हण ने लिखा है। शिला वृष्टि द्वारा ५ योजन की सीमित भूमि बेकार कर दी गयी। स्तीन के मत के अनुसार माप मे कुछ स्थान कम उतरता है। हुरपुर से लितर की आबादी के मध्य की भूमि की दूरी लगभग २२ मील होगी। यह पाँच योजन अर्थात् बीस मील से कम स्थान होगा। वर्तमान काश्मीरी कोस डेढ मील का होता है। कल्हण तरग (७:३९३) तथा विक्रमाकदेव चरित्र मे बिल्हण के दिए गए माप (१८ ७०) अर्थात् पुराना काश्मीरी कोस इससे कम न होगा।

२६७ (१) सुश्रवा सरोवर : यह सरोवर जिसके साथ सुश्रवा नाग के निवास का पुरावृत्त गुथा है, लिदर नदी के एक उद्गम स्थान के पास है। यह

शेष नाग नाम से प्रसिद्ध है। अमरेश्वर तीर्थ यात्रा का यह एक प्रमुख स्थान है।

अमरेश्वर माहात्म्य के अध्याय ६ में जो पुरावृत्त कहा गया है। उससे यह सरोवर शेष नाग के सरोवर से मिलता है। उसी अध्याय मे सरोवर की सज्ञा सुश्रमस नाग से दी गयी है। सुश्रमस शब्द सुश्रवा का अपभ्रंश मालूम होता है। अमरेश्वर के पुराने पुरोहित इसे अभी भी सुश्रम नाग सरोवर कहते है।

इस सरोवर का जल उज्ज्वल है। यह विशेष ध्यान देने की बात है। चारो तरफ के चूने के पत्थरो के चट्टानो के प्रतिविम्ब के कारण इसका उज्ज्वल रंग प्रतीत होता हो।

एक संकीर्ण जल स्रोत इस सरोवर में जल लाता है। दक्षिण दिशा में कोहेन हर शिखर की ओर है। इसे जामातुर नाग कहा है। जामातुर का अर्थ जामाता होता है। सुश्रवा नाग का जामाता अर्थात् जामातृ विशाख था। अमरेश्वर यात्रा मार्ग मे सुश्रम नाग के साथ इसका भी उल्लेख किया गया है। तीर्थ मे इसका वर्णन मिलता है।

(२) अमरनाथ यात्रा : अमरेश्वर यात्रा से यहा तात्पर्य अमरनाथ की यात्रा से है। शिव अमरेश्वर उन देवताओ के सम्मुख प्रकट हुए थे जिन्होने उनकी स्तुति मृत्यु से रक्षा निमित्त की थी। यहा हिम शिव लिंग की पूजा होती है।

कश्मीर की यह यात्रा अत्यधिक सर्वप्रिय है। यहा भारतवर्ष के सभी भागों से यात्री आते हैं। नीलमत पुराण मे इस तीर्थ का बहुत कम उल्लेख है। इसी प्रकार राजतरंगिणी में भी अमरनाथ का बहुत कम उद्धरण दिया गया है। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल मे इसका उतना महत्त्व नही था। जितना आजकल है।

नीलमत पुराण ने कश्मीर के तीर्थो मे अमरेश्वर को भी एक तीर्थ तथा पर्वत माना है। यथा :

अमरेशे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्।
मालिन्यां तु नर स्नात्वा दशगोदफलं लभेत्॥
1321 : १५३५

जोजिला पास के पूर्व और दक्षिण-पूर्व पर्वतमाला कश्मीर की पूर्वीय सीमा बनाती अपने मुख्य पर्वतमाला से फूटकर कई शाखाओ मे हो जाती है। वह पर्वतशाखा प्रायः दक्षिण की तरफ जाती है। वितस्ता के धुर दक्षिणीय उद्‌गम स्थान तक चली आती है। वहां से वह उत्तर-पश्चिम घूमती है। बनिहाल पास के समीप आकर पीर पंजाल पर्वतमाला से मिल जाती हैं। इस पर्वत से चलकर मार्ग कश्मीर तथा वादवन उपत्यका को पूर्व मे जोडता है। इस उपत्यका का जल चन्द्रभागा अर्थात् चनाव नदी मे बहकर जाता है। यह मार्ग किस्तवार अर्थात् प्राचीन काष्टवाट उपत्यका से मिलाता है।

काष्टवाट चन्द्रभागा नदी पर है। इस क्षेत्र में आबादी कम है। मार्ग दुर्गम है। भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् सडकें इस क्षेत्र मे बन गयी है। मार्ग सुगम हो गया है। दोनो उपत्यकाओ ने कश्मीर के इतिहास मे अपने दुर्गम आवागमन के साधनो के कारण कोई महत्वपूर्ण भाग नही लिया है। वैदेशिक तथा व्यापारिक क्षेत्र मे भी विशेष भाग नही लिया है। इसके उत्तरी छोर पर तुषार मण्डित पर्वतमाला है। समीप अमरेश्वर किंवा कल्हण कालीन अमरनाथ का तीर्थ है। हरमुकुट पर्वत के गंगा सरोवर के पश्चात् कश्मीर का सबसे महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थान रहा है।

कश्मीर के अगणित तीर्थों मे हिन्दू तीर्थ यात्रियों को अमरनाथ की यात्रा आकर्षित करती है। बद्रीनाथ की यात्रा के पश्चात् अमरनाथ की यात्रा आधुनिक काल के तीर्थयात्रियों की दृष्टि मे महत्त्व पूर्ण पर्वतीय तीर्थ यात्रा हो गयी है। यात्रा श्रावण मास में होती है।

भगवान् अमरनाथ का हिमलिंग समुद्र तल से १२७२९ फुट ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पर पारदर्शी हिमलिंग बनता है। शशि कला जिस प्रकार घटती-बढ़ती रहती है, उसी प्रकार

श्वशुरानुग्रहान्नागोभूतस्यापि द्विजन्मनः ।
जामातृसर इत्यन्यत्तत्र च प्रथितं सरः ।। २६८ ।।

२६८. स्वसुर के अनुग्रह से नाग हुए, द्विजन्मा का जामातृ सर[1] नामक वहाँ एक दूसरा प्रसिद्ध सरोवर है।

लिंग का आकार भी घटता बढता है। विश्व के वैज्ञानिको के लिए यह एक विचित्र चमत्कार उपस्थित करती है।

श्रावण पूर्णमासी के दिन यह लिंग पूर्ण आकार मे दृश्यगत होता है। वैज्ञानिको का मत है। शीत के कारण, पानी चूने के कारण, गिरता जल जम कर लिंगाकार हो जाता है। अतएव लिंग की सज्ञा स्वयभू लिंग से दी गयी है। अमरनाथ माहात्म्य में यात्रा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

नीलमत पुराण तथा राजतरगिणी काल मे इस यात्रा का विशेप महत्त्व नही मालूम होता। वहुत कम उल्लेख आया है। जोनराज सुलतान जैनुल आवदीन अमरनाथ की यात्रा का वर्णन करता है।
१२३३ जोन चरित्र

अमरनाथ की यात्रा वडी रोचक होती है। मैंने इस यात्रा का दृश्य देखा है। श्रीनगर से अमरनाथ की गुफा ९५ मील दूर पर स्थित है। श्रीनगर से पहलगाँव ६० मील पर है। पहलगाँव से श्रीनगर तक की सडक वहुत अच्छी, चौडी तथा आरामदेह है। वसें चलती है। साधारण यात्री वसो का उपयोग करते है। मार्ग का दृश्य अच्छा है। पहलगाँव से ३५ मील का मार्ग मोटर कार तथा वस चलने लायक अव तक नही वन पाया है। जीप वहुत दूर तक जा सकती है। प्राय पहलगाँव से हजारो यात्री पैदल, और टट्टू पर जाते है। धनी लोग जीप मे भी जहाँ तक पहुच सकती है, जाते है। इस समय यह यात्रा इतनी सुगम हो गयी है कि पहलगाँव से एक दिन में वहाँ पहुँचा तथा लौटा जा सकता है। चन्दनवाडी पहलगाँव मे ८ मील दूर है। चन्दनवाडी ९५०० फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ की वनश्री देखते ही वनती है।

चन्दनवाडी से शेपनाग ६ मील दूर है। पिस्सू घाटी तक की चढाई सीधी ऊँचाई पर है। जाजपल के समीप मार्ग एक छोटे मैदान से होकर गुजरता है। वहाँ पैदल यात्री अपना शिविर अर्थात् कैम्प लगा सकते है। यहाँ से ३ मील और चलने पर शेपनाग पहुँचा जाता है। शेषनाग १२२३० फुट ऊँचाई पर स्थित है। इस गिरि का दृश्य प्रेक्षणीय है। इसका जल हिम तुल्य शीतल है। इसमे स्नान करने से थकान तुरन्त मिट जाती है। वेवजन स्थान पर कैम्प लगाया जा सकता है। यहाँ लकडी की कमी है। जलाने का पहले से प्रवन्ध कर लेना चाहिए।

यात्रा का तृतीय चरण शेपनाग से पच तरणी तक है। दोनो के मध्य ८ मील की दूरी है। शेपनाग से सीधी चढाई महागुण तक मिलती है। यह स्थान समुद्र की सतह से १४००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ स्रोतस्विनियो का जल मिलता है। यहाँ से उतराई आरम्भ होती है। भैरव पर्वत के मूल में पाँच स्रोतस्विनियाँ मिलेंगी। उन्हे पार करना पडता है। उनका नाम पच तरणी है। वहाँ यात्री एक रात पडाव कर सकते है।

यात्रा का चतुर्थ चरण पच तरणो से आरम्भ होता है। यहाँ से अमरनाथ की गुफा केवल ४ मील दूर रह जाती है। यह छोटा चढाई का मार्ग है। पर्वत के वाहुमूल में घूमकर यात्री सगम स्थान पर पहुँचता है। यहाँ अमरावती नदी पचतरणी में मिलती है। इस स्थान से गुफा का दृश्य मिलता है।

२६८ (१) सर : अमरनाथ तीर्थ यात्रा मार्ग मे पर्वत शिखर पर एक सरोवर है। उसे शेपनाग सर कहते है। गाथा है कि यह सर सुश्रवा निर्मित सरोवर है। यहाँ एक और सर है। उसे जामातुर नाग कहते है। कल्हण वर्णित जामातृ सर है।

प्रजानां पालनव्याजान्निश्शङ्कक्षयकारिणः ।
अकस्मादन्तकाः केचित्संभवन्ति तथाविधाः ॥ २६९ ॥

२६९. प्रजापालन के व्याज से प्रजा का निशंक क्षय करने वालों के इस प्रकार के अन्तक[1] अकस्मात् उत्पन्न हो जाते हैं।

अद्याऽपि तत्पुरं दग्धं श्वभ्रीभूतं च तत्सरः ।
उपचक्रधरं दृष्ट्वा कथेयं स्मर्यते जनैः ॥ २७० ॥

२७०. भस्म हुए उस नगर तथा चक्रधर के समीप छिछले सरोवर[1] को देखकर, इस घटना का आज भी लोग स्मरण करते है।

राज्ञां रागः कियान्नाम दोषः स्वल्पदृशां मते ।
तत्तस्य तेन संवृत्तं यन्नाऽभूत्काऽपि कस्यचित् ॥ २७१ ॥

२७१. संकुचित दृष्टि वालों के मतानुसार—'राजा का अनुराग कौन बड़ा दोष है?' तथापि उस नाग ने इस राजा को ऐसा कर दिया, जैसा कही भी किसी के साथ नही हुआ था।

सतीदैवतविप्राणामप्येकस्य प्रकोपतः ।
श्रुतो हि प्रतिवृत्तान्तं त्रैलोक्यस्यापि विप्लवः ॥ २७२ ॥

२७२. सती स्त्री, देवता तथा विप्रों मे किसी एक के भी प्रकोप से त्रैलोक्य के भी विप्लव का वृतान्त सुना गया है।

चत्वारिंशतमब्दान्स मासैश्चोनां त्रिभि समाम् ।
भुवं भुक्त्वा क्षितिनृपा दुर्नयेन क्षयं ययौ ॥ २७३ ॥

२७३. चालीस वर्ष मे तीन मास कम भूमि का भोगकर अपने दुर्नीति के कारण राजा न हो गया।

अप्यल्पकालसंदृष्टप्राकाराट्टालमण्डलम् ।
तत्किन्नरपुरं लेभे गन्धर्वनगरोपमाम् ॥ २७४ ॥

२७४. प्राकार एवं अट्टालिकाओं से पूर्ण उस नगर का अस्तित्व अल्प काल तक ही रहा। तत्पश्चात् गन्धर्व[1] नगर सदृश हो गया।

---

२६९ (१) अन्तक : इस शब्द का अर्थ मृत्यु, काल, यमराज, तथा नाश करने वाला होता है। प्रजा के निशक क्षय करने वालो के दलन, किवा सहारार्थ प्रन्त निमित्त कोई न कोई कार्य, घटना किवा व्यक्ति उत्पन्न हो जाते है जो सहारक के नाश के कारण बनते हैं। कल्हण ने अन्तक शब्द का इसी अर्थ मे यहाँ प्रयोग किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २७० में 'श्वभ्री' का पाठभेद 'शुभ्री' मिलता है।

२७० (१) सरोवर : श्री स्तीन ने इसी छिछले सरोवर का उल्लेख चक्रधर के अन्तरीप के सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी रा० त० १.२०१–२०२ में किया है। वह सरोवर सुश्रवा नाग का कहा जाता है।

एकस्तु तनयस्तस्य वैचित्र्यात्कर्मणां गतेः ।
स्वधात्र्या विजयक्षेत्रं नीतः प्राणैर्न तत्यजे ॥ २७५ ॥

२७५. भाग्य वैचव्य के कारण उसका एक तनय अपनी धात्री के साथ विजयक्षेत्र[1] गया था। अतएव जीवित रह गया।

राजा सिद्धाभिधः सोऽथ तथा निश्शेषितं जनम् ।
नवीचकार जलदो दावदग्धमिवाचलम् ॥ २७६ ॥

सिद्ध :—

२७६. सिद्ध[1] नामक उस राजा ने शेष जनो मे उसी प्रकार नवजीवन का संचार किया, जिस प्रकार जलद दावानल से दग्ध पर्वत का पुनः नवीकरण कर देता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २७१ में 'राज्ञा' का 'राज्ञो', 'कियान्नाम' का 'कियन्नाम', 'मते' का 'मते', 'यन्ना' का 'यत्रा' तथा 'त्ववापि' का 'त्कापि' पाठभेद मिलता है।

श्लोक सख्या २७३ मे 'दुर्नयेन' का पाठभेद 'दर्णयेन' मिलता है।

श्लोक सख्या २७४ मे 'अप्यल्प' का पाठभेद 'अत्यल्प' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

२७४ (१) गन्धर्वनगर गन्धर्व नगर काल्पनिक नगर तुल्य माना जाता है। किन्नरपुर का अर्थ किन्नरो का नगर होता है। किन्नर का शाब्दिक अर्थ 'कि कुत्सिनो नर' होता है। देवताओ के गायक माने गये है। इनका मुख अश्व तथा शरीर मनुष्य तुल्य होता है।

गन्धर्व भी देवताओ के गायक माने गये हैं। मृत्यु के पश्चात् एव जन्म के पूर्व की यह एक स्थिति मानी गयी है। गन्धर्वनगर दृष्टि दोष के कारण मृगमरीचिका के समान अथवा आकाश मे दिखाई देने वाला मिथ्या किंवा आभास रूप नगर है।

कश्यप तथा अरिष्टा की सन्तति को गन्धर्व कहते है। हाहा, हूहू, तुम्बुरु, किन्नरादि इसके भेद माने गये है। गन्धर्वो का देश हिमालय का मध्य भाग माना गया है। गन्धर्व तथा किन्नर देश पुराणो द्वारा निर्दिष्ट किये गये है। गन्धर्वों की स्त्रिया अप्सरा कही जाती है। कश्यप खसा की सन्तानें अप्सराएँ है।

चित्ररथ, विश्वावसु, चित्रसेन, आदि गन्धर्व राजाओ का निर्देश सर्वत्र मिलता है। चित्ररथ तथा पाण्डवो का संघर्ष प्रसिद्ध है। गन्धर्व अपनी सुन्दरता, वीरता तथा वल के लिये प्रसिद्ध है।

पाठभेद

श्लोक सख्या २७५ में 'वैचित्र्यात्' का 'वैचित्रात्' तथा 'स्वधात्र्या' का पाठभेद 'स्वधात्रा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

२७५ (१) विजय क्षेत्र : विजय क्षेत्र किंवा विजयेश्वर क्षेत्र मे विजयेश्वर तथा बिजब्रोर का नगर सम्मिलित था। टिप्पणी तरग १ ३८, १०५ १०६, ११७, १३१, ३१४ तथा तरग २ १२३ १२५ तरग ५ ४८, तरग ६ ९८, तरग ७ १८३, १८४, ३५४, ४६३, तरंग ८ २२२२ २३७१, हरचरित चिन्तामणि, राजानक जयद्रथ १० १९१ रा० त० ७ ३३६, ४३१, ५२४ भी द्रष्टव्य है।

किन्नरपुर नगर की भौगोलिक स्थिति यह श्लोक और स्पष्ट करता है। विजय क्षेत्र, विजयेश, चक्रधर, किन्नरपुर सभी एक ही भौगोलिक सी

इतिवृत्तं महाश्चर्यं तस्य पित्र्यं महामतेः ।
संसारासारताज्ञाने प्राप पुण्योपदेशताम् ॥ २७७ ॥

२७७. उस महामति के लिये पिता का महाश्चर्य पूर्ण इतिवृत्त संसार के असारत्व के ज्ञान मे पुण्योपदेश सिद्ध हुआ।

भोगयोगेन मालिन्यं नेतुं मध्यगतोऽपि सः ।
न शक्यते स्म पङ्केन प्रतिमेन्दुरिवामलः ॥ २७८ ॥

२७८. पंक मे निर्मल इन्दु प्रतिबिम्ब[1] सदृश वह राजा भोग योग के मध्यगत होता भी उससे मलिन नही हो सका था।

दर्पज्वरोष्णभूपालमध्ये निध्यायतोऽनिशम् ।
सुधासूतिकलामौलिं तस्यैवोल्लाघतोऽभवत् ॥ २७९ ॥

२७९. दर्प ज्वर से सन्तप्त भूपाल के मध्य मे सुधा सूति कला मौलि (शिव) का रात्रि-दिन ध्यान करते हुए केवल वही पूर्ण स्वस्थ रहा।

गणितं गुणिना तेन मणींस्तृणमिवोज्झता ।
खण्डेन्दुमण्डनार्चायां मण्डनत्वमखण्डितम् ॥ २८० ॥

२८०. मणियों को तृण तुल्य त्यागते हुए, इस राजा ने खण्डेन्दु मण्डन (शिव) की अर्चा को अखण्डित मण्डन माना।

वितस्ता तट पर एक साथ ही थे। नर का पुत्र सिद्ध छोटा था इसलिए अपनी उपमाता किंवा धात्रीमाता के साथ विजय क्षेत्र गया था। यह स्थान किन्नरपुर के समीप था इसीलिए अपनी धात्रीमाता के साथ सिद्ध गया था। उसकी इस अनुपस्थिति मे ही किन्नरपुर मे अग्निदाह हुआ था।

२७६ (१) सिद्ध : आइने अकबरी मे नाम 'सिदेह' तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है।

सिद्ध का राज्याभिषेक काल २१२४ लौकिक वर्ष होगा। हसन लिखता है—'राजा सिद्ध राजा नर का बेटा था। क० २०९१ में बाप के हादशा के वक्त शहर वैनवारह से अपनी रजाई मा के साथ गया था। उसके वफात के बाद तख्त नशीन हुआ। अदल व इन्साफ, बहादुरी और सुजाअत मे बे नज़ीर था। हमेशा रैय्यत के आराम और आशायश और मखलूक खुदा की फ़लाह व बहबूद मे ब दिल ब जान कोशा रहता। साठ बरस हकूमत करके मुल्क अदम मे जा बसा।' (पृष्ठ ४६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७७ में 'पित्र्यं' का 'पित्रं' तथा 'ताज्ञाने' का पाठभेद 'ताज्ञेन', 'ताज्ञनं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७८ (१) चन्द्र प्रतिबिम्ब : पंकमय सरोवर मे चन्द्र प्रतिमा अथवा चन्द्रबिम्ब की पडती छाया पक के कारण दूषित नही होती और न उसका चन्द्र बिम्ब पर कोई प्रभाव पड़ता है।

कल्हण ने उपमा दी है। पंकिल जल मे अथवा पंक मे शशि बिम्ब पड़ता है। किन्तु उस पंक तथा पकिल जल के कारण उसके बिम्ब में मलिनता नही आती। दूषित पक अथवा पंकिल जल शशि बिम्ब के ससग मे आने पर भी मलिन करने से असमर्थ रहता है। इसी प्रकार भोग के मध्य रहते हुए भी भोग का दोष राजा को स्पर्श नही कर पाया था। वह भोग मे रहता भी निर्लिप्त था। निर्मल था।

राज्ञस्तस्यैव राजश्रीः परलोकानुगाऽभवत् ।
यस्तामयोजयद् भूमौ धर्मेणाऽव्यभिचारिणा ॥ २८१ ॥

२८१. केवल उसी राजा की राज्यश्री उसकी परलोकानुगामिनी हुई। क्यो कि उसने इस भूमि पर अव्यभिचारी धर्म से उस राज्यश्री को संयुक्त कर दिया था।

षष्टिमब्दान्प्रशास्योर्वीमासन्नानुचरान्वितः ।
आरुरोह सदेहोऽसौ लोकाञ्शशिशिखामणेः ॥ २८२ ॥

२८२. इस राजा ने साठ वर्ष तक[1] पृथ्वी का प्रशासन कर निकटवर्ती अनुचरो सहित सदेह शशिशिखामणि के लोक पर आरोहण किया।

भृत्या नरं समाश्रित्य प्रययुः शोचनीयताम् ।
तत्सुतं तु समालम्ब्य प्रभुं भुवनवन्द्यताम् ॥ २८३ ॥

२८३ राजा नर का आश्रय लेकर भृत्यो की शोचनीय दशा हुई थी किन्तु उसके पुत्र प्रभु का समालम्बन लेकर उनकी भुवन मे वन्दना हुई।

यात्याश्रितः किल समाश्रयणीयलभ्यां
निन्द्यां गतिं जगति सर्वजनार्चितां वा ।
गच्छत्यधस्तृणगुणः श्रितकूपयन्त्रः
पुष्पाश्रयी सुरशिरोभुवि रूढिमेति ॥ २८४ ॥

२८४. जगत् मे आश्रित, आश्रयदाता से प्राप्त निन्दनीय अथवा सर्वजन श्लाघ्य गति को प्राप्त करता है। क्योकि कूप यंत्र[1] का आश्रय वाली तृण की रस्सी नीचे जाती है। और पुष्प का आश्रय लेकर तृण सुर के शिर पर चढ़ता है।

पाठभेद

श्लोक संख्या २७९ में 'रोष्ण' का 'रोस्म' 'रोपम', 'अनिशम्' का 'भृशम्' तथा 'ल्लाघतोद्ययो' का पाठभेद 'ल्लाघतोर्य्ययो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

२८० (१) मण्डन-विरोधाभास : यहाँ विरोधाभास अलकार का प्रयोग कल्हण ने किया है। शकर के लिए खण्डेन्दुमण्डन शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु शिव की अर्चना किवा अर्चा को अखण्डित मण्डन अर्थात् पूर्ण आभूपण माना है। खण्डित मण्डन की अर्चा द्वारा खण्डित मण्डनत्व की प्राप्ति सगत हो सकती है। परन्तु यहाँ खण्डितेन्दुमण्डन की अर्चा से अखण्डित मण्डन की प्राप्ति विरोधाभास का मूल हैं।

पाठभेद

श्लोक सख्या २८१ मे 'यद्भूमौ' का पाठभेद 'यद्भूतो' 'यद्भूतो' 'यद्भुतो' 'यद्भूर्तो' तथा 'धर्मेणाव्य' का 'धर्मेणव्य' पाठभेद मिलता है।

२८२ (१) सिद्ध का राज्यकाल : राजा के लम्बे राज्यकाल का कारण यह है कि वह शैशवावस्था में राजा वन गया था। धात्री माँ के साथ विजयेश्वर मे जाने के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि वह उस समय शिशु था। शैशवावस्था में उसका अभिभावक कौन था ? तथा राज्य सचालन किस प्रकार होता रहा ? कल्हण ने इस पर प्रकाश नही डाला है। सम्भव है। राज्य के मन्त्रियो ने कोई परिपद वनाकर शासन-सूत्र के सचालन का प्रवन्ध किया हो

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८३ में 'वन्द्यताम्' का पाठभेद 'वन्ध्यताम्' मिलता है।

श्लोक सख्या २८४ में 'चिता' का पाठभेद 'चितं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८४ (१) यन्त्र : कूप शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। यह सम्भवतः अरघट्ट अर्थात् रहट के लिए प्रयोग किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्राय वर्णन मिलता है। परसियन ह्वील इसका नवीन नाम है। ईरान में इसके प्रचलन के बहुत पूर्व से वह भारत मे प्रचलित था। यह भारतीय अन्वेषण था न कि परसियन। अपना इतिहास भूल जाने के कारण लोगो ने इसे परसियन व्हील का नाम दे दिया है।

कल्हण ने ऐतिहासिक दृष्टि से यन्त्र का यहाँ प्रयोग कर भारत का गौरव बढाया है। रहट अर्थात् परसियन व्हील द्वारा कूप से जल निकाला जाता है। जगत् यही जानता है कि यह परसियन अर्थात् ईरान वालो का आविष्कार है। परन्तु कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि कश्मीर में रहट सुदूर प्राचीन काल से प्रचलित था।

भारतवर्ष में मेवाड ऐसा स्थान है जहाँ विदेशी प्रभाव कम पड सका है। वहाँ की जनता शताब्दियो तक स्वाधीनता के लिए युद्ध करती रही। अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखने मे सफल रही। मै जब हिन्दुस्तानिक लिमिटेड का अध्यक्ष हुआ तो प्राप्य साधनो के कारण मेवाड का कोना-कोना छान डाला। आश्चर्य हुआ। भारतीय संस्कृति सभ्यता वहाँ अपने कुछ मौलिक रूप में दिखाई दी। मन्दिरो की श्रृखलाएं अछूती खडी है। वे खण्डित एवं भंग नही किये गये थे। कश्मीर मे जिस प्रकार ग्राम-ग्राम में प्राचीन काल मे देव स्थान थे उसी प्रकार यहाँ प्रत्येक ग्राम तथा स्थान पर मन्दिर, स्मारक, सती का चौरा आदि बने दिखाई देंगे। पुराने रीति-रिवाज भी कायम मिलेंगे। अपनी भाषा वे बोलते हैं। उस पर फारसी तथा अंग्रेजी का कम प्रभाव पड़ा है। इस समय परिवर्तन तेजी के साथ हो रहा है।

मैंने यहाँ पर रहट चलते हुए बहुत देखे। वे अत्यन्त प्राचीन शैली के हैं। शताब्दियों पूर्व से चलते आ रहे है। वे लकड़ी के बनाये जाते हैं। परसियन व्हील का नाम बहुत सुना था। यह भी सुना था कि रहट परसियन आविष्कार है। ईरान से भारत मे आया था।

यह धारणा तथा मान्यता गलत है। 'रहट' भारतीय आविष्कार है। भारत मे आज से सहस्रो वर्ष पूर्व चलता था। आज भी चल रहा है। उनका मूल रूप आज भी मेवाड़ मे दिखाई पडता है। राजस्थान में रहट बहुलता के साथ मिलेगा।

मेवाड में ५२ विशाल झीलें है। वापियाँ हैं। कूप है। जलस्रोत हैं। स्रोतस्विनियाँ है। सरोवर है। पानी की कमी नही है। एतदर्थ रहट अत्यन्त उपयोगी पानी उठाने तथा सीचने के लिए कश्मीर के तुल्य उपयोगी यहाँ सिद्ध हुआ है। कश्मीर में जल का सर्वत्र सुपास है। प्रायः वही बात उदयपुर के क्षेत्र के विषय मे कही जायेगी।

कश्मीर मे पुराने ढग के रहट दिखाई नही देंगे। परन्तु मेवाड में गाँव गाँव मे अभी तक वे मिलते हैं। यद्यपि बीस पचीस वर्ष में वे भी लोप हो जायेंगे। उनका स्थान पाम्पिंग सेट अथवा लौह रहट ले लेगा।

नवम्बर सन् १९६७ मे मेवाड का पर्यटन आरम्भ किया। पुराने मन्दिरो, दुर्गों, भग्नावशेषो के साथ रहटो को देखा। मैंने उनका नाम पूछा—लोगो ने उसका नाम 'अरहट' बताया। राजतरंगिणी के 'अरघट्ट' शब्द की ओर तुरन्त ध्यान गया। इस विषय पर टिप्पणी लिख चुका था। लेकिन उसे पुनः लिखने का निश्चय किया।

रहट शब्द प्राचीन सस्कृत शब्द 'अरघट्ट' का अपभ्र श है। 'अर' का अर्थ होता है पहिये की अरा। नेमि के मध्य की आडी लकडी। उसे पहिये का आरा भी कहते हैं। राष्ट्रीय भण्डो पर चक्र के मध्य केन्द्र बिन्दु से परिधि पर लगी लकडियाँ 'अर' अथवा 'आर' कही जाती हैं। 'घट' का अर्थ है घडा। अर + घट मिलकर बनता है 'अरघट'। अथवा जिसका अर्थ होगा 'घडा युक्त आर अथवा अर'।

उदयपुर का प्राचीन शैली का 'रहट' आधुनिक रहट से भिन्न है। वह प्राचीन परिभाषा से मिलता है। खडा 'अरा' घूमता है। वह चक्र अर्थात् चर्खी को घुमाता है। चर्खी अथवा पहिया पर 'घट' रस्सियो से बँधे रहते है। यह 'घट' पहिया से आधुनिक 'रहट' के 'वालटी' अथवा 'डब्बो' की तरह नीचे जाते और पानी लेकर घूमते पहिया पर आते हैं। 'अरहट' शब्द इसी 'अरघट' शब्द का अपभ्रश है।

'मृच्छकटिकम्' नाटक में अरघट, अरघट्टा, रहट का नाम 'कूपयन्त्रघटिका' दिया गया है। (१० . ५९) 'कूपयन्त्रघटिका' वही रस्सी मे बँधा घटिका यन्त्र था। जल लेकर ऊपर आता तथा नीचे फिर जाता था। कवि शूद्रक ने उसकी उपमा उन्नति एव अवनति तथा दैव से दी है। भाग्य इसे यन्त्रघटिका के समान मनुष्य को नीचे गिराता तथा ऊपर उठाता है।

'कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा
कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुन.
कांश्चिन्नयत्याकुलाम् ॥
अन्योन्यप्रतिपक्षसहतिमिमां
लोकस्थितिं बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिका
न्यायप्रसक्तो विधि ॥

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक के द्वितीय अक श्लोक १२ में यन्त्र शब्द का प्रयोग कल्हण के समान किया है। उसका भी अर्थ रहट ही है

बिन्दुन्क्षेयान्पिपासु परिसरति शिखी
भ्रान्तिमद्वारियन्त्र
सर्वैरुस्रै. समग्रैस्त्वमिव नृपगुणै-
र्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥ (२.१२)

अरघट्ट अरघट्टा, अरघट्टक अथवा रहट को मराठी में 'रहाट' सिन्धी में 'अरट्ट' पजावी 'रट्ट' राजस्थानी मे 'अरहट' तथा हिन्दी में 'रहट' कहते है। यह सब मूल अरघट्ट के अपभ्रश है। इसी प्रकार 'अर' को हरियाणा मे 'आरा' हिन्दी मे 'आरा गज' कहते हैं। यह लकडी या पटिया अथवा चक्र और नेमि के बीच की लम्बी लकडी है।

परसियन ह्वील तथा भारतीय रहट में मौलिक अन्तर था। परसियन व्हील का चलाने वाला पैदल बैल अथवा ऊँट को हाँकता, उसके पीछे स्वय घूमता है।

भारतीय रहट दो प्रकार के होते थे। और है। एक तो परसियन रहट की तरह। चलने वाला स्वय पशु के पीछे हाकता चलता है। दूसरा रहट पर स्वय आदमी बैठता है। तेली के पुराने कोल्हू के समान वैठने के लिये स्थान वना रहता है। उसी पर आदमी बैठ कर घानी चलाता है। यही प्रकार मेवाड के रहट में विशेष प्रचलित है। रहट पर चलाने वाला स्वय बैठ जाता है। बैठे ही बैल को हाँकता है। परसियन' रहट मे यह बात नही है। इस दृष्टि से भारतीय रहट 'परसियन रहट' की अपेक्षा अधिक विकसित था और है।

'परसियन रहट' में मृत्तिका पात्र गोले हँडिया शैली के लगते है। वे भी रस्सी से वाँधकर माला रूप चेन की तरह वनाये जाते हैं। उदयपुर के

सिद्धः सिद्धः सदेहोऽयमिति शब्दं सुरा दिवि ।
प्राघोषयंस्ताडयन्तः पटहं सप्त वासरान् ॥ २८५ ॥

२८५. 'सिद्ध,[1] यह सदेह सिद्ध है।' सुरगण इसका घोष करते हुए सात दिन तक पटह[2] बजाते रहे।

रहट का मृत्तिका घट अण्डाकार होता है। प्रत्येक ग्रामो मे कुम्हार यह घट अथवा घडा बनाते हैं। वह ज्यादा पानी उठाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से परसियन–पुराने रहट से यह अधिक विकसित कहा जायगा।

कल्हण का वर्णन आठ शताब्दी पूर्व का है। उस समय भारत मे और कश्मीर में रहट चलता था। कल्हण ने पुनः 'अरघट्ट' का वर्णन रा० त० ६ : ४८ में किया है।

मैंने उदयपुर तथा समीपस्थ स्थानों के वृद्धो से पूछा। उनका 'अरहट' कब से चलता है। वे बोले—"बाप दादों ने अपने बाप-दादों से सुना था। वह बहुत दिन से चलता रहा है। हम भी चला रहे हैं।"

मेवाड को छोडकर शेष भारत में यह नवीन सिंचाई की प्रथा है। उत्तर प्रदेश तथा विहार में इसका प्रचलन गत तीस या चालीस वर्षों से हुआ है। पजाब में निस्सन्देह यह बहुत पूर्व आ गया था। परसियन भाषा, लिपि तथा सभ्यता का उत्तरी भारत में मुगल समय में अधिक प्रचार हुआ था। यदि यह पुराना भी रहा होगा तो इसका नाम परसियन दे दिया गया। अंग्रेजी सभ्यता के समय परसियन तथा अंग्रेजी नाम मिल कर उसका नामकरण 'परसियन व्हील' हो गया।

निस्सन्देह 'अरघट' अर्थात् रहट भारतीय आविष्कार था। कश्मीर मे हजारो वर्ष पूर्व प्रचलित था। मेवाड में आज भी अपने मूल रूप में प्रचलित है। वह परसियन व्हील से अधिक विकसित तथा चलाने में सरल, सुगमता से ग्रामीण साधनो-द्वारा प्राप्य है। रहट को विदेशी आविष्कार कहना तथ्यो एवं प्रमाणो के विपरीत बात होगी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८५ मे 'प्राघोष' का 'प्रोद्घोष', 'ताडयन्तः' का 'तानुयन्त.' 'न्तो ह्यनन्' पाठभेद मिलता है।

२८५ (१) **सिद्ध :** दश देव योनि मे एक योनि सिद्धो की है। मनुष्यों में जिसका साधन पूरा हो जाता है उसे सिद्ध कहते हैं। जिन संतो तथा योगियो को सिद्धि प्राप्त हो जाती है उन्हे सिद्ध कहते हैं।

राजा का नाम सिद्ध था। कल्हण उसके नाम के अनुसार सिद्ध प्रमाणित कर उसे सदेह स्वर्ग भेजता है। सदेह स्वर्ग जाना अत्यन्त कठिन कार्य है। विश्वामित्र तथा त्रिशंकु की कथा सदेह स्वर्ग गमन के लिए प्रसिद्ध है। त्रिशंकु विश्वामित्र को तपस्या के बल से भी सदेह स्वर्ग नही जा सका था। आज भी अधर में लटक रहा है।

कल्हण ने राजा सिद्ध में भी जलौक के समान अलौकिक गुणो के वर्णन का प्रयास किया है। राजा जलौक आध्यात्मिक तथा राजनीतिक दोनों दृष्टियो से श्रेष्ठ था। परन्तु वह भी सदेह स्वर्ग नही जा सका। उसने साधना–द्वारा अपने शरीर का त्याग किया था।

राजा सिद्ध को कल्हण सदेह स्वर्ग पहुँचा कर, आध्यात्मिक जगत् मे उसे मनुष्य वर्ग से ऊपर उठा कर, सिद्ध अर्थात् देव वर्ग में रख देता है।

सदेह स्वर्ग महाभारत के पात्रो में केवल धर्मराज युधिष्ठिर गये थे। भगवान् राम तथा श्री कृष्ण ने भी शरीर त्याग इसी भूमि पर किया था।

राजा सिद्ध युधिष्ठिर तुल्य धर्मात्मा था। अपने पिता नर के चरित्र तथा आचरण से उसका चरित्र

उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया गतः ।
तत्सूनुस्त्रिशतं सार्धं वर्षाणामन्वशान्महीम् ॥ २८६ ॥

उत्पलाक्षः

२८६. पेशलाक्ष होने के कारण प्रसिद्ध राजा सिद्ध के पुत्र उत्पलाक्ष[1] ने तीस वर्ष छ: मास मही का शासन किया ।

तस्य सूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाङ्कं पुरं व्यधात् ।
क्ष्मां सप्तत्रिंशतिं वर्षान्सप्तमासांश्च भुक्तवान् ॥ २८७ ॥

हिरण्याक्ष.

२८७. उसके पुत्र हिरण्याक्ष[1] ने अपने नाम पर नगर[2] बसाया और सैंतीस वर्ष सात माह पृथ्वी का भोग किया ।

विपरीत था । पिता जितना क्रूर, विषयी एव लम्पट था, सिद्ध उतना ही अपने गुणो के कारण सिद्ध होकर, सदेह स्वर्ग प्राप्त किया था ।

(२) पटह : पटह का अर्थ ढोल, मृदग, डुग्गी, नगाडा, डका होता है । देवगण मृदग तथा नगाड़ा बजाते थे । पटह घोष, ड्योढी तथा डुग्गी बजाने वालो का होता है । पटह भ्रमण का अर्थ जनता को एकत्रित करने के लिए घूमकर ढोल बजाने वालो का होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८६ में 'पेशलाक्षतया' का पाठभेद 'पेशलाक्षितया' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२८६ (१) उत्पलाक्ष यह एक मत है । पुष्कराक्ष नामक कोई राजा कश्मीर में नही हुआ है । कल्हण की काल गणना अति त्रुटिपूर्ण इस समय की है । मुद्राराक्षस नाटक का काल भी अभी निश्चित नही हो सका है । विभिन्न विद्वानो के मतो में उसके रचना काल में शताब्दियो का अन्तर पड जाता है ।

पुष्कराक्ष को चन्द्रगुप्त कालीन राजा मान लिया जाय तो उसका समय अशोक, जलौक आदि सबके पूर्व पड जाता है । अर्थात् वह कल्हण के वर्णनानुसार लुप्त राजाओ की श्रेणी में आ जाता है ।

श्री एस० जी० पण्डित इस राजा का काल कल्हण की गणना के अनुसार ईसा पूर्व ८९५ वर्ष और श्री स्तीन उत्पलाक्ष का समय लौकिक संवत् २१८४ वर्ष तीन मास देते हैं । प्राप्य सामग्रियो के आधार पर अभी कुछ निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता । इस पर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है । यदि मुद्राराक्षस के ऐतिहासिक घटना को सत्य मान लिया जाय तो ऐतिहासिको के मत से चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य काल ईसा पूर्व होता है । मुद्राराक्षस का जो उद्धरण दिया जाता है । वह निम्नलिखित है :

'काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपु, महिमा सैन्धव सिन्धुषेणा.' अंक ५ में पुन उल्लेख प्रथम अंक श्लोक ११ के पश्चात् आता है

'—कुलूताधिपश्चित्रवर्मा मलयजनपदाधिप. सिंहनाद, कश्मीरदेशाधिप पुष्कराक्ष, सिन्धुराज. सिन्धुसेनः, पारसिकाधिपतिर्मेघाक्षः

अक ५ में पुन उल्लेख आता है

'—ये एतेन राक्षसेन सह सौहार्दमुत्पाद्यास्मच्छरीरद्रोहेण चन्द्रगुप्तमाराधयितुकामा राजान तद्यथा कौलूतः चित्रवर्मा, मलयनरपतिर्सिहनाद, काश्मीरपुष्कराक्ष सिन्धुराजसुषेण —

आइने अकबरी में नाम 'अदुत वील वेह' तथा राज्यकाल ३० वर्ष ६ मास दिया गया है । हसन लिखता है—'राजा उतपलाक क० ५१५२ में बाप

हिरण्यकुल इत्यस्य हिरण्योत्सकृदात्मजः ।
षष्टिं षष्टिं वसुकुलस्तत्सूनुरभवत्समाः ॥ २८८ ॥

हिरण्यकुल :
२८८. उसके पुत्र हिरण्यकुल[1] ने हिरण्योत्स[2] स्थापित किया और साठ वर्ष राज्य किया।
वसुकुल :
उसके पुत्र वसुकुल[3] ने भी साठ वर्ष राज्य किया।

के कायम मुकाम होकर हमेशा रिआया की फलाह व बहबूद मे कोशा रहता था। कुल तीस बरस हकूमत में गुजारे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८७ मे 'सप्त त्रिशतिं' का पाठभेद 'सप्त त्रिंशतं' तथा 'सप्ता त्रिशतिं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८७ (१) हिरण्याक्ष : आइने अकबरी में 'हिरण्य' नाम तथा राज्यकाल ३७ वर्ष ७ मास दिया गया है।

हसन लिखता है—'राजा हरनयाख ने क० २१८२ मे बाप के तख्त को रौनक बख्श कर मुकाम रनल आबाद किया। पैंतीस साल सात माह हकूमत व सल्तनत में गुजारे।'

हिरण्याक्ष एक दैत्य का भी नाम है। हिरण्यकश्यप का भ्राता था। वह वाराह भगवान् द्वारा मारा गया था। (भागवत पुराण ३ : १७ :१८—३१, ३ : १८)

कथासरित्सागर मे हिरण्याच नायक के रूप मे चित्रित किया गया है। (६५ : २१५) उसके पिता का नाम कनकाश दिया गया है। उसे कश्मीर का राजा कहा गया है। उसको राजधानी हिरण्यपुर बतायी गयी है। हरिणाक्ष सरित सागर मे एक नायक के रूप मे एक विद्याधरी से विवाह करता है। उसके पिता का 'कच' नाम भी दिया गया है।

(२) हिरण्यपुर : श्रीनगर से गान्दर बल तथा सिन्ध उपत्यका में जाने वाली ऊँची सड़क पर 'रान्येल' ग्राम है। गाँव के समीप का नाग एक तीर्थ स्थान माना जाता है। यहाँ हरमुकुट जाने वाले यात्री आते है। इसका उल्लेख तीर्थों में है। सुरेश्वरी माहात्म्य में इसे (२:७) हिरण्यगगा कहा गया है। कल्हण ने इस स्थान को हिरण्यपुर के समीप लिखा है।

भिक्षाचर, मयग्राम आधुनिक मनगाम के समीप शिविर डाले पड़ा था। यह स्थान सिन्धु उपत्यका के लार से बहुत दूर नही है। लहर अर्थात् लार के विद्रोही जो उसके समर्थक थे, हिरण्यपुर के समीप राजकीय सेना को पराजित किये थे। (रा० त० ८ : ७२९) राजकीय सेना का शिविर अमरेश्वरपुर अर्थात् अम्बुरहर मे पडा था। यह स्थान रान्येल ग्राम से ढाई मील दक्षिण होगा। यही स्थान हिरण्यपुर था। इसी प्रकार जब उच्चल लोहर से बढता आया और सिन्ध उपत्यका से राजधानी पर घेरा डाला था। उस समय मार्ग में ही अर्थात् हिरण्यपुर में ब्राह्मणो ने उसका राज्याभिषेक कर दिया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८८ मे 'ण्योत्सकृदा' का 'ण्याक्षस्य चा' तथा 'वसुकुल' का 'वमुकुल' 'वमुष्कुल' और 'च मुकुल' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८८ (१) हिरण्यकुल : आइने अकबरी में नाम 'हिरेन कुल' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है।

हसन कहता है—'राजा हरन्यगुल (हरन्याख) उसका बेटा था। साठ बरस, अकल व इन्साफ

अथ म्लेच्छगणाकीर्ण मण्डले चण्डचेष्टितः ।
तस्याऽऽत्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमो नृपः ॥ २८९ ॥

मिहिरकुल :

२८९. म्लेक्ष[1] गणो से मण्डल आकीर्ण होने पर उसका लडका चण्डचेष्टा, काल स्वरूप मिहिरकुल[2] राजा हुआ।

से वादशाहत करके दुनिया से रुखसत हुग्रा ।

(२) हिरण्योत्स : इस स्थान का पता नही चलता ।

(३) वसुकुल : आइने ग्रकवरी में नाम 'इविदकह' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। हसन कहता है—राजा 'वस कुल' राजा हरन्यगुल का बेटा था। इसने भी साठ साल हकूमत किया। लौकिक वर्ष २३१२ में कश्मीर के राज्य सिंहासन पर बैठा होगा।

२८९ (१) म्लेच्छ : पाँचवी शताब्दी के प्रयोग मे ग्रामू दरया के उपत्यका के हूण जु ग्रन जाति से मुक्ति पाकर शक्तिशाली हो गये। शासको के वंश के कारण येथा—इफथेलाइट कहे जाने लगे। यूनानियो ने इन्हें श्वेत हूण कहा है। यही शब्द आज प्रचलित है। यहाँ म्लेच्छ शब्द से इफथेलाइट हूणो से तात्पर्य है। इन हूणो ने ग्रामू दरया के समीपवर्ती प्रदेशो पर अपना राज्य स्थापित किया था। यूनानी वौद्ध सभ्यता का अफगानिस्तान मे नाश किया। उत्तरी भारत मे राज्य विस्तार कर स्यालकोट को ग्रपनी राजधानी वनाया। भागवत पुराण के अनुसार हूणो पर भरत ने अपनी दिग्विजय यात्रा मे विजय प्राप्त की थी। (भागवत ९ २० · ३०)। मत्स्य पुराण मे १९ हूणो का वर्णन मिलता है। (मत्स्यपुराण २७२ : ९)

हसन लिखता है—'राजा मिहिरकुल राजा वसुकुल का वेटा था। क० २३३९ में हकूमत का झण्डा वुलन्द किया। खुदा का खौफ न होने ग्रौर वेरहमो और गजवनाकी में वेमिसाल था। थोडे जुर्म पर कतल करने से गुरेज नही करता था। किसी दिन भी खून रेजी के वगैर चैन न लेता। रहम करने के नाम व निशान का उसको पता तक न था। परिन्दे और चरिन्दे मकतूलो के गोश्त की उम्मीद में उसके साथ-साथ जाया करते थे। उसके ज़माने में तुरकिस्तान के एक हाकिम ने कश्मीर पर हमला कर दिया। राजा ने इन्तहाई जवाँ मरदी, वहादुरी और इस्तकलाल के साथ उसके हमला का मुँहतोड जवाव दिया। जिसके नतीजा में वहुत से सिपाही मकतूल और ज़ख्मी हुए। विल आखीर शिकस्त खाकर भाग गया। चन्दरकुल नाम की एक नहर परगना खादिर पारा मे खुदवायी। दौरान खुदवाई मे कोह आसर व अगर के पुश्ता में एक वड़ा भारी पत्थर सदराह हो गया और किसी भी तदवीर ग्रोर हीला से अपनी जगह से न हिला। यह देखकर राजा को सख्त फिकर हुई। पूजापाठ के वाद ख्वाव में एक आदमी देखा। जो उससे कह रहा था कि हर वह औरत जो गुनाह वदकारी से पाक व साफ होगी जव इस पत्थर पर हाथ रखेगी तो वह फौरन नावूद हो जायगा। राजा ने इसी इलहाम के वमूजिव हर तरफ से ग्रौरतो की जमायतो को अखड करवाया। लेकिन किसी एक के भी हाथ लगने से वह पत्थर अपनी जगह से न हिला। राजा निहायत गज़वनाक हुग्रा और औरतो को जिनारकारी ग्रौर वच्चो को हरामजदगी और मरदो का वेवस और वेहयाई के वहाने से कतल ग्राम कर दिया।

कैफियत—'मोरखो ने औरत, वच्चे ग्रौर मर्द मकतूलीन की तादाद तीन करोड लिखी है लेकिन वाज तीन लाख तक खायत करते हैं।

'आखिरकार चन्द्रवती जो एक कुम्हार की लडकी थी हाज़िर हुई। उसने राजा को वडे गुस्सा

के साथ मुखातिब होकर कहा राजा साहब अपने पहले ही दिन औरतो को इस मुश्किल काम करने की तलकीन न फरमाई ताकि पाक दामनी के जोर से वह इस पत्थर को फना कर देती और फिर इतने बेगुनाहो का खून जनाअ न होता। अगर औरतो के हाथ लगाने से इस पत्थर ने अपनी जगह से हरकत नही की तो हम देखेंगे कि यह सवासन जो अपने लोगो पर की है क्या आप अपने ऊपर कर सकते है ? यह कहा और अपना अकपरस्त हाथ पत्थर पर रखा और अपनी जगह से उठाकर एक तरफ फेंक दिया।

एक दिन वही राजा अपने महल मे दाखिल हुआ और अपनी रानी को देखा कि एक सुनहरी नकशा व निगार का कपडा अजीब तन किये हुए है उस पर राजा सिंगल द्वीप की तसवीर है। यह देखते ही राजा के गुस्सा की हाड़ी जोश मे आ गयी। कसम खाई जब तक राजा सिंगल-द्वीप को सजा न दूँगा किसी काम पर हाथ न डालूंगा। उसी दिन से लडाई का साज् व सामान जमा करके बहुत भारी फैयज के हमराह सिंगल-द्वीप की तरफ रवाना हो गया। रास्ता मे लाल चोल और करनाट के राजो को अपना मतिअ किया। और वहा से जहाजो और किश्तियो के जरिए सिगल द्वीप मे जा पहुँचा। बड़ी खूनरेजो और जंग व जद'ल के बाद वहा के राजा को फौज की एक वडी तादाद के समेत कतल कर डाला। उसकी जगह दूसरा राजा बैठाकर हुक्म नाफिद कर दिया कि इसके बाद कपडो पर लोगो के तसवीरो मे सूरज की तसवीरें बनायें। वापसी के वक्त जुल्म जुल्म व तअदी से काम लेकर बहुत-सा माल गनीमत इकट्ठा कर लिया। जिस वक्त पीर पंजाव के पहाड पर पहुँचा अचानक एक हाथी एक टीला से फिसल गया और फिसलते वक्त हाथी ने जोर जोर से दहाड़ें मारी। राजा को हाथी का दहाडना बहुत पसन्द आया। चुनाचे हुक्म दिया कि एक सौ हाथी इसी तरह टीला से नीचे गिराये जांय। इस वक्त से उस जगह को 'हस्तवज' कहते है। काश्मीर में पहुँचकर होल लाड के मुकाम पर मिहिरपुर नामका एक शहर आवाद किया। कन्दहार के बरहमनो को बडी वडी जागीरें अता की। मुख्तसर यह कि किस्म किस्म के जुल्मों में वह जालिम इस मरतबा का था कि अहाता तहरीर मे नही लाया जा सकता। सत्तर साल हुक्मरानी के बाद एक निहायत ही पचीदह और खतरनाक मर्ज उस पर तारी हो गया। एक दिन हवन के लिए आग जलाई थी उसमे अपने आप को आहुति की जगह जलती हुई आग में डालकर जला दिया।'

हूण—पुराणो मे एक जाति के रूप मे हूणो का चित्रण किया है। राजा भरत ने अपने दिग्विजय काल मे हूणो का संहार किया था। (भागवत पुराण ९ : २० : ३०) मत्स्य पुराण (२७२ : १९) मे १९ हूणो का वर्णन मिलता है।

वैदिक साहित्य मे हूणो का नाम नही मिलता। रघुवंश महाकाव्य मे दिग्विजय के समय राजा रघु ने वक्षु के तट पर हूणो को पराजित किया था। (४:८५)। कालान्तर मे हूणो के लिए किसी किसी लेखक ने तुषार तथा तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि तुरुष्क, तथा तुषार वास्तव मे तुर्कों के लिए व्यवहृत किया गया है।

पुराणो में उल्लेख मिलता है—

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः।
शतद्रुजा कुणिन्दाश्च पारदा हारहूणकाः॥

ब्रह्माण्ड पुराण मे 'पारदा हारहूणका' मार्कण्डेय पुराण मे 'पारदा हारभूषिका' 'हारहूण' शब्दो का उल्लेख किया गया है। सम्भव है वे हूणो की एक शाखा रहे हो। हूणो ने मध्य एशिया से मध्यभारत तक की भूमि पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विजयकर, राज्य स्थापित किया था। कुछ लोगो का मत है। हार हूणो का स्थान हेरात क्षेत्र था। वे वही के निवासी थे। किन्तु यह विवादास्पद है।

हर्षचरित मे हूणो का स्थान उत्तरापथ में रखा गया है। 'हूणदावास्तिथैव च' का उल्लेख

मिलता है। कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में दार्वाभिसार का स्थान है। इस मत से पश्चिमीय-उत्तरीय पजाब में इनका निवास प्रकट होता है। पुराणो में एक स्थान पर हूणो का और उल्लेख आता है।

मा (म) रुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिन ।
सौवीरा. सैन्धवा हूणा शाल्वा' शाकलवासिन ॥

विष्णु पुराण तथा कूर्म पुराण में 'सौवीरा सैन्धवा हूणा' का उल्लेख आया है। यह भी इस बात की ओर सकेत करता है। पश्चिमी उत्तरी भारत में हूण रहते थे। उनका स्थान सिन्धु नदी से पश्चिम था।

शोभा तन्त्र ५६ देशों की एक तालिका देता है। उसमें हूणो का उल्लेख है। उन्हे पुलिन्द, कौख तथा गान्धार के साथ रखा है। सकेत मिलता है। वे पश्चिमीय उत्तरी भारत को तरफ रहते थे।

मलाश्चैव पानारा पावाघान्धक (१) पुलिन्द (का)।
हु(हू)ण कौखगान्धारविदर्भा. सविदेहका. ॥४॥२.४

शक्ति संगम 'तन्त्र ३ ७.४३ में हूणो के देश का उल्लेख है।

कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि ।
श्रीकुन्तलाभिधो देशो हूण श्रृगु महेश्वरि ॥५३॥

यहाँ पर हूण देश कामगिरि के दक्षिण मे तथा मरुदेश के उत्तर मे रखा गया है। श्री कुन्तल नाम के कई क्षेत्रो का वर्णन मिलता है। अतएव इस कुन्तल का निर्धारित करना कठिन है। यह कौन कुन्तल है। कामगिरि मरुस्थल के उत्तर में था। सिन्ध राजस्थान तथा पजाब का दक्षिणी भाग मरुस्थल है। अतएव यहाँ कुन्तल से तात्पर्य उत्तर पश्चिमी भारत में लगाना चाहिए। काम देश का नाम सन् ११७६ ई० के एक अभिलेख में मिला है। जिसमें वहाँ के राजा को सयादलक्ष (सेवालिक) पर्वत के राजा के अन्तर्गत कहा गया है।

हूणो को एक जाति के रूप मे महाभारत ने चित्रित किया है। उनको उत्पत्ति नन्दिनी गौ के फेन से हुई थी। गाथा का वर्णन महाभारत आदि पर्व (६५ ५१) तथा वन पर्व (४३ १४) में किया गया है। हूणो के देश को हूण देश कहा गया है। उनका स्थान पश्चिम दिशा निर्धारित किया गया है। उन पर नकुल ने विजय प्राप्त की थी! (सभा पर्व ३२ . १३)। हूण देश तथा जाति के राजागण युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट लेकर आए थे। (सभा पर्व ५१ ३४)

(२) **मिहिरकुल :** आइने अकबरी में नाम 'मेरह कुल' तथा राज्यकाल ७० वर्ष दिया गया है। राज्यकाल लौकिक वर्ष २३७२ से आरम्भ माना जाता है। कुछ ऐतिहासिक इसका सन् ५१५-५५० ई० मानते हैं।

मिहिरकुल इफथेलाइट अथवा श्वेत हूण था। हूणो ने बौद्धो के विरुद्ध जिहाद बोला था। उनके विहारो तथा चैत्यो को नष्ट किया था। भिक्षुओ को तलवार की घाट उतारा था। ह्वेन्साग लिखता है–मिहिरकुल अपने अजेय साहस तथा प्रलोभनीय प्रकृति के कारण अपूर्व व्यक्ति था। पडोसी राजाओ में ऐसा कोई नही था। जो सकम्पित उसके आदेशो का पालन न करता रहा हो।'

आमू दरया से चलकर हूणो ने हिन्दूकुश पर्वत पार किया। गान्धार लिया। आगे बढना चाहते थे। सन् ४६० ई० मे स्कन्दगुप्त ने उनकी बाढ रोक ली। ईरान में हूण सफल हुए। ईरान ने हथियार रख दिया। सन् ४८४ ई० में ईरान के राजा को मारकर राज्य पर अधिकार कर लिया।' पाँचवी शताब्दी के अन्त तक उनका राज्य बलख तक फैल गया।

पाँचवी शताब्दी में तोरमाण ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। एक मत है। मालवा के राजा यशोवर्मा ने सन् ५३०–५४५ ई० के बीच हूणो पर विजय प्राप्त की थी। यह भी एक मत है। वे बालादित्य नरसिंह गुप्त से पराजित हो गये थे। इस पराजय के पश्चात् मिहिरकुल ने भारत कश्मीर विजय किया। वहां से उसने गान्धार पर आक्रमण किया। वहा के राजवश

को समाप्त किया। स्तूप, चैत्य तथा विहारो को नष्ट किया। देश को लूटा। अपनी लूट तथा युद्धबन्दियो के साथ कश्मीर लौट पडा। मार्ग मे उसने बन्दियो को सिन्धु तट पर मार डाला। अन्ततोगत्वा भारत से हूण लोग थानेश्वर के हर्षवंशोय राजाओ द्वारा निकाल बाहर किये गये। हूण बौद्धो के विरोधी थे। वे शिव के उपासक थे। उन्होने शिव मन्दिर निर्माण कराया था। वे शैव मत के समर्थक थे।

मिहिरकुल तोरमाण का पुत्र था। तोरमाण की मुद्राओ से पता चलता है कि उसने मध्य प्रदेश से इरन सागर तक अधिकार कर लिया था। उससे यह भी पता चलता है कि वह उत्तर प्रदेश, पंजाब और कश्मीर तक पहुँच गया था। तोरमाण ने जैन धर्म जैन श्रुति के अनुसार स्वीकार कर लिया था। पव्वैया में रहने लगा था। यह स्थान चन्द्रभागा अर्थात् चनाव नदी के तट पर पंजाब मे है। तोरमाण का उत्तराधिकारी मिहिरकुल सन् ५१५ ई० मे राज्यसिंहासन पर बैठा।

यशोवर्मा तथा बालादित्य से हार कर वह कश्मीर राजा के आश्रय मे आया। राजा ने उसे कश्मीर में एक जागीर दी। किन्तु वह कश्मीर के राजा को हटा कर स्वयं राजा बन गया। उसने कन्धार पर आक्रमण कर विजय किया। अनेक लोगो को सिन्धु मे डुबाकर मार डाला।

गाथा है। मिहिरकुल ने नरसिंहगुप्त बालादित्य (सन् ४८५-५३० ई०) को पराजित करने का निश्चय किया। परन्तु अपने साथियो के साथ बन्दी बना लिया गया। बालादित्य उसका वध करना चाहता था। परन्तु उसकी मा ने उसे मुक्त कर देने के लिए कहा। बालादित्य ने एक राजकन्या से उसका विवाह कर दिया।

कश्मीरी इतिहासकारो तथा भारतीय इतिहासकारो के काल में मेल नही खाता। मन्दसोर के शिलालेख से पता चलता है। शैव यशोधर्मन के सम्मुख मिहिरकुल का मस्तक झुक गया था।

कोसमस ने इडिको प्लुस्तस में मिहिरकुल (कोसमस : इन्डिको प्लुस्तस) को गोला नाम से सम्बोधित किया है। चीनी पर्यटक सुगयुन ने इसे गान्धार का शासक 'येथा' कहा है। मिहिरकुल की राज्य सभा में सन् ५२० ई० मे अपना जाना वर्णन करता है।

ह्यूनत्साग ने मिहिरकुल को मोह-हिस लो-बुलो लिखा है। उसे महान् साहसी लिखा है। कोई भी ऐसा पड़ोसी राजा नही था जो उसका आदेश नही मानता था। उसने मिहिरकुल को बुद्धों के एक बडे भारी पीडक के रूप में प्रस्तुत किया है। गाथा है कि मिहिरकुल ने बौद्धो से एक उपदेशक मागा। भिक्षुगण उसके भय किवा स्वल्प ज्ञानी होने के कारण कुछ निश्चय न कर सके। अन्त में उन्होने राजा के राजभवन के एक भृत्य बौद्ध को धर्मज्ञानी के रूप मे चुना। राजा ने अपना अपमान समझा। क्रुद्ध होकर उसने बौद्ध संघ के नाश का आदेश दिया। इससे प्रकट होता है। उस समय बौद्ध सघ निष्क्रिय, प्राणहीन एवं अज्ञ हो गया था।

राजतरंगिणी का वर्णन तोरमान तथा मिहिरकुल के भारतीय ऐतिहासिक वर्णन से मेल नहीं खाता। राजतरंगिणी के अनुसार तोरमाण तथा मिहिरकुल के समयो मे अन्तर पड़ता है।

चीनी राजदूत सुंगयुन ने सन् ५२० ई० मे गान्धार की सीमा के शिविर मे राजा मिहिरकुल से भेंट की थी। उसने उस समय के इतिहास पर प्रकाश डाला है। वह अपने समय से दो पीढ़ी पूर्व का इतिहास देकर तत्कालीन समय का वर्णन करता है। वह मिहिरकुल से उसके राज्य के प्रारम्भिक काल मे सम्भवत: मिला था। वह लिखता है—उत्तर भारत मे श्वेत हूण रहते

हैं। उनमे एक नाम गोला (मिहिरकुल) है। वह युद्ध के समय २ हजार हाथी तथा विशाल अश्वारोही सेना के साथ चलता है। वह भारत का राजा है। वह लोगो को नष्ट करता है। लोगो को सम्पत्ति भेंट करने के लिए बाध्य करता है। फिसन नदी (सिन्धु) हूणो के देश को भारत से अलग करती है। यह उल्लेख सन ५२५-५३५ ई० का है। इससे दो बात सिद्ध होती है। तोरमाण भानुगुप्त से पराजित हो गया था। हूणो का राज्य सिन्धु नदी के पश्चिमी क्षेत्र तक सीमित रह गया था।

तोरमान के पश्चात् मिहिरकुल ने राज्य विस्तार का विचार किया। उसने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया। सन् ५३० ई० के शिलालेख से प्रकट होता है वह उसके राज्य का १५वा वर्ष था। उस समय उसका राज्य ग्वालियर तक विस्तृत था।

मिहिरकुल के यशोधर्मन तथा नरसिंह गुप्त के कारण उत्तरी भारत का त्याग करना पडा। उसने सन् ५४४-५५० ई० के बीच सिन्धु नदी के अधोभाग स्थित राज्य प्राप्त करने का पुन: प्रयास किया। जिसे खो चुका था।

यशोधर्मन महाप्रतापी राजा था। उसके चरणो पर अपमानित राजा मिहिरकुल का मस्तक झुका था। मिहिरकुल शिव के अतिरिक्त और किसी के सम्मुख मस्तक झुकाने में सर्वथा अशक्य था। जिसकी भुजाएं तुषार पर्वत का आलिंगन करती थी। उसे अपने राज्य के दुर्दम्य होने का दम्भ उत्पन्न हो गया था।

यहाँ तुषार पर्वत से अर्थ हूणो का उस समय हिमालय के पर्वतीय खण्ड में रहना सिद्ध करता है। सुग-युन ने स्पष्ट कहा है कि हूण राज का कश्मीर के राजा से संघर्ष हुआ था। तुषारपात कश्मीर के अतिरिक्त पश्चिम दिशा में और कही नही होता अतएव कश्मीर में हूणो का रहना लक्ष्य करता है। मिहिरकुल जब भारत के भीतरी भागो में घुसने का प्रयास कर रहा था। तो मालवा के राजा यशोधर्मन ने उसका सामना किया था। यशोधर्मन के पश्चात् मिहिरकुल का पुन: शक्तिशाली हो जाना मालूम होता है।

मिहिरकुल अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था। पर्यटक ह्वेनसाग के अनुसार उसने स्यालकोट तथा समीपवर्ती भूभागो पर अधिकार स्थापित कर लिया था। किसी समय बौद्ध भिक्षुक से रुष्ट हो गया था। उसने अपने अधिकारियो को आज्ञा दी। हिन्दुस्तान के बौद्धो का नाश कर दिया जाय। बुद्ध अनुशासन समाप्त कर दिया जाय। बुद्ध नाम से सम्बन्धित कोई चीज शेष न रह जाय।

इसने कश्मीर पर अधिकार करने के पश्चात् वहा बौद्ध विहारो तथा स्तूपो को नष्ट करा दिया। सम्पत्तियाँ जप्त कर ली।

हूण बौद्ध नही थे। वे पिशाचो की पूजा करते थे। हूण राज्य के साथ किपिन अर्थात् कश्मीर का सीमावर्ती विवाद हुआ था। कश्मीर तथा हूण राज में ३ वर्ष तक युद्ध चलता रहा।

स्कन्दरिया निवासी एक यूनानी ने हूणो के समय के गुप्तवशीय राजा का नाम नरसिंह बालादित्य दिया है। वह यशोधर्मन तथा हूणो के आक्रमणो से त्रस्त हो गया था। गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती देखकर हूणो ने अपनी शक्ति बढा ली। वह मिहिरकुल को भेंट भी देने लगा।

बालादित्य के साथ हुए युद्ध का वर्णन ह्वेनसाग करता है—बालादित्य भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखता था। मिहिरकुल के अत्याचार को बात सुनी तो उसने भेंट भेजना बन्द कर दिया। मिहिरकुल ने उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। बालादित्य ने एक द्वीप पर शरण ली। सूचना प्राप्त होने पर नाव द्वारा मिहिरकुल ने द्वीप पर आक्रमण किया। द्वीप पर उसको

सेना उतरी। उसने अपनी सेना का मुख्य भाग अपने कनिष्ठ भ्राता के नेतृत्व मे पीछे छोड दिया। वह एक संकीर्ण दर्रा से गुजर रहा था। बालादित्य की सेना ने उस पर आक्रमण किया। मिहिरकुल बन्दी बना लिया गया। बालादित्य उसका वध करना चाहता था। परन्तु उसकी माता ने उसे रोका। उसे मुक्त कर दिया। छूटने पर मिहिरकुल ने सुना कि उसका भाई लौट गया है। स्वय राजसिंहासन पर बैठ गया है। उसने कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली।

कश्मीर मे मिहिरकुल ने एक विद्रोह आयोजित किया। कश्मीर के राजा को हटाकर स्वयं राजा बन बैठा। उसने गान्धार के राजा को भी मार कर, उसके वंशजो को समाप्त किया। वहाँ का भी राजा बन गया। स्तूपो तथा संघारामो को खूब लूटा। देश को भी लूटा। लौटने के एक वर्ष पश्चात् मर गया। सन् ५६३–५६७ ई० में मध्य भारत मे हूणो का लोप हो गया। तुर्क तथा ईरानियो ने भी आमू दरया की उपत्यका के निवासी हूणो का संहार कर हूण शक्ति नष्ट कर दी।

मिहिरकुल ने साकल अर्थात् स्यालकोट तथा उसके समीपवर्ती भूखण्डो पर अपना अधिकार कर लिया था।

मिहिरकुल की मुद्रा पर-'जयतु वृष' 'जयतु वृष ध्वज' टंकित है। उसकी मुद्राओ पर चन्द्रकला, वृषभ, त्रिशूल, सर्प का चक्र तथा शैव चिन्ह टंकित है। 'मिहिर' का अर्थ सूर्य होता है। यह सस्कृत शब्द है। ईरानी अवेस्ता उल्लिखित मिहिर शब्द मिथ्र अर्थात् 'मित्र' है। ईरान तथा मन्दसोर के अभिलेख मिहिरकुल के इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश डालते है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि मिहिरकुल का क्या कोई शिलालेख आदि भी प्राप्य है। जिसके कारण कल्हण की बात की पुष्टि हो। यह सिद्ध माना जाय कि कश्मीर में मिहिरकुल का शासन था। हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर का शिलालेख तिथि शासन-काल १३, इस विषय पर प्रकाश डालता है।

नाना धातु विचित्रे 'गोषाह्वय नाम्नि भूधरे रम्ये'
कारितवान्शैलमयं भानोः प्रासादवरमुख्यम् ॥ ९
पुण्याभिवृद्धि हेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव।
वसता च गिरिवरे ( ) स्मि (न) राज्ञः ॥१०

'गोपाह्वय नाम भूधरे' यहाँ गोपा का अर्थ मैं गोपाद्रि गिरि अर्थात् गोप पर्वत लगाता हूँ। गोपाद्रि वर्तमान शंकराचार्य पर्वत है। शकराचार्य पर्वत के मूल में डललेक के तट पर गुपकर जिसका प्राचीन नाम गोपा अग्रहार था, स्थित है। वन, शैल तथा पुण्य की वृद्धि के लिए वह इस शिखर मे निवास करता है। यह स्थान पुराधिष्ठान है। पुराधिष्ठान जैसा मैं लिख चुका हूँ गोपाद्रि अर्थात् शंकराचार्य पर्वत के वाम पार्श्व मे है। मिहिरकुल के समय मे कश्मीर की राजधानी था। अतएव गिरिवर पर बसने की ओर संकेत शिलालेख मे किया गया है।

मिहिरकुल बौद्ध धर्म विरोधी हो गया था। उसके शिलालेख से प्रकट होता है कि वह द्विजगणो के प्रति आस्था रखता था। यथा—

(यतौ) (नि) र्म्मले भाति ॥ ६
द्विजगण मुख्यैरभि संस्तुते च पुण्याह नाद घोषण।
तिथि नक्षत्र-मुहूर्ते संप्राप्ति सप्रशस्त (दिने) ७
मातृ तुलस्य तु पौत्रः पुत्रश्च मातृदासस्य।
नाम्ना च मातृचेटः पर्व्व—
(त दुर्ग (नु वास्तव्यः) ॥८॥

इसी शिलालेख से तोरमाण और मिहिरकुल का सम्बन्ध सिद्ध होता है कि मिहिरकुल ऐतिहासिक प्राणी था। तोरमाण का पुत्र था। कल्हण का वर्णन वास्तव मे कश्मीर में किसी प्रचलित इतिहास के आधार पर दिया गया है। कल्हण मिहिरकुल को वसुकुल का पुत्र बताता है। वह मिहिरकुल की वंशावली ५ पीढियो तक की देता है। कल्हण मिहिरकुल के पुत्र बक का भी उल्लेख करता है।

जो उसके पश्चात् कश्मीर का राजा हुआ था। बक के पश्चात् सीधी वंश परम्परा का लोप होता है। उसी के एक वंश का क्षितिनन्द राजा होना कल्हण लिखता है। एक ओर कल्हण स्पष्ट वर्णन करता है तथा दूसरी तरफ तोरमाण तथा मिहिरकुल के शिलालेखो में कश्मीर का उल्लेख नही मिलता।

'गोपाहव्य' शब्द से उसका सम्बन्ध खीच तानकर जोडा जाता है। अशोक के समान मिहिरकुल के कश्मीर सम्बन्ध पर सन्देह किया जा सकता है। अशोक के सम्बन्ध में यही बात राजतरंगिणी में पाई जाती है जिसमें उसके दादा का नाम शकुनी दिया गया है। अशोक की वंशावली दी गयी है। उसमें गोधर, उसके पश्चात् उसका पुत्र सुवर्ण, उसके पश्चात् उसका पुत्र जनक तथा उसके पश्चात् शचीनर और उसके पश्चात् राजा शकुनी का प्रपौत्र अशोक राजा हुआ। जिस प्रकार कल्हण की दी गयी अशोक की वंशावली भारतीय इतिहास से मेल नही खाती उसी प्रकार मिहिरकुल की दी गयी कल्हण की वंशावली भारतीय इतिहास से मेल नही खाती।

ग्वालियर का शिलालेख इस विषय में स्पष्ट है :

श्री तोर (माण इ) ति प. प्रथितो (भू चक्र) य. प्रभूत-गुण ।
सत्य प्रदान शौर्यार्धेन मही न्याय त शास्ता ॥ ३
तस्योदित कुल कीर्ते. पुत्रो ( ) तुल विक्रम. पति पृथ्व्या ।
मिहिर कुले तिख्यातो ( ) भडगो य. पशुपतिम ॥ ४

यह मिहिरकुल या तो भारतीय राजा मिहिरकुल था अथवा वह कश्मीर का भिन्न राजा था। हसन ने रत्नाकर पुराण का उल्लेख बहुत किया है किन्तु उसने वही वंशावली दी है जो कल्हण की है। नीलमत पुराण हूण राजाओ, हूण जाति, तथा मिहिरकुल आदि किसी का उल्लेख नाममात्र के लिए नही करता। चीनी लेखको ने मिहिरकुल के पिता का नाम नही दिया है। भारतीय इतिहास लेखको ने कल्हण तथा चीन पर्यटको द्वारा कश्मीर राजा मिहिरकुल को एक में मिलाने का प्रयास किया है। इन नामो की समता विशेष रूप से आधार मानी गयी है। इस विषय पर अभी और अनुसधान तथा गवेषणा की आवश्यकता है।

ग्वालियर का शिलालेख मिहिरकुल को वसुकुल का पुत्र बताता है। यह एक विचित्र पहेली है। ग्वालियर के शिलालेख तथा कल्हण के काल में ६०० वर्षों का अन्तर है। अतएव ग्वालियर का शिलालेख मिथ्या नही हो सकता। सम्भव है कि मिहिरकुल को कश्मीर राज्य की परम्परा में जोडने का प्रयास किया गया है। उसे ५ पीढी से 'कुल' पदीयराजाओ के साथ कर दिया गया हो। तोरमाण और मिहिरकुल नाम में साम्य नही है परन्तु वसुकुल तथा मिहिरकुल के नामो में साम्य है और वे एकवंशीय मालूम होते है।

यशोधर्मन के मन्दसोर प्रशस्ति में उल्लेख मिलता है

आ लौहित्योपकण्ठा न्तलवन गह(नो)
पत्यकादा महेन्द्रादा
गगाश्लिष्टसानोस्तुहिनशिखरिण
पश्चिमादापयोधे ।
सामन्तैर्यस्य बाहु द्रविण-हृत-म (दै)
पादयोराननमद्भि
श्चूडा-रत्नांशु-राजि व्यतिकर शबला
भूमि भागा क्रियन्ते ॥५॥
स्थाणो रत्नत्रयेण ऽणति कृपणता
प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरि
र्दुर्गि-शब्दाभिमान (म्)।
नीचैस्तानापि यस्य प्रणति भुजबला-
वर्ज्जन क्लिष्ट मूर्द्धना
(चू) डा पुष्पोपहारैर्मिहिरकुल नृपे
णाच्चिता (.) पादयुग्मं ॥६॥

दक्षिणां सान्तकामाशां स्पर्धया जेतुमुद्यता ।
यन्मिषादुत्तरहरिद्व्यभारान्यमिवान्तकम् ॥ २९० ॥

२९०. उत्तर[1] दिशा ने, दक्षिण दिशा[2] पर विजय प्राप्त करने के लिए दक्षिण के देवता काल की स्पर्धा मे मिहिरकुल को यमराज तुल्य उपस्थित किया ।

सान्निध्यं यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाशनोत्सुकान् ।
अजानन्गृध्रकाकादीन्दृष्ट्वाऽग्रे धावतो जनाः ॥ २९१ ॥

२९१. राजा के समीप आने को सूचना लोग उसकी सेना द्वारा मारे जाने वालों के मांस उत्सुक गृध्र, काकादि पक्षियो को उसके आगमन के पूर्व मँड़राते हुए देखकर पा जाते थे ।

दिवारात्र हतप्राणिसहस्रपरिवारितः ।
योऽभूद् भूपालवेतालो विलासभवनेष्वपि ॥ २९२ ॥

२९२. रात दिन सहस्रों हत प्राणियो से परावृत वह भूपाल अपने विलासभवन मे भी वेताल[1] था ।

बालेषु करुणा स्त्रीषु घृणा वृद्धेषु गौरवम् ।
न बभूव नृशंसस्य यस्य घोराकृतेर्घ्नतः ॥ २९३ ॥

२९३. घोर आकृति, नृशंस और मानव द्रोही इस राजा मे बालकों के प्रति करुणा, स्त्रियों के प्रति घृणा तथा वृद्धों के प्रति गौरव भाव नही था ।

---

(१) उत्तर दिशा : चारो दिशाओ के चार दिक्पाल किंवा देवता है । इन्द्र पूर्व दिशा, वरुण पश्चिम दिशा, कुबेर उत्तर दिशा तथा यम दक्षिण दिशा के देवता हैं । कुबेर धन के स्वामी है । उनके कारण लक्ष्मी प्राप्त होती है । वे पालक है । सम्पत्ति प्रदायक है । नाशक नही है । विष्णु भी रक्षक हैं । विष्णु मन्दिर का मुख इस लिये उत्तर तथा पूर्व दिशा रखा जाता है । उत्तर जिस प्रकार दक्षिण दिशा के ठीक विरोधी दिशा में है । उसी प्रकार दोनो दिशाओ के देवता तथा कर्म भी परस्पर विरोधी है । कल्हण इसी ओर सकेत करता है । उत्तर दिशा ने दक्षिण दिशा पर विजय प्राप्ति निमित्त दक्षिण दिशा के संहारक यम तुल्य मिहिरकुल स्वरूप यमराज उत्पन्न किया था ।

(२) दक्षिण दिशा : मृत्यु की दिशा है । उसका देवता यम है । शिव सहार के देवता है । अतएव शिव मन्दिर का द्वार दक्षिण तथा पश्चिम होता है । पश्चिम मे सन्ध्या जन्म लेती है । व जीवन सन्ध्या की दिशा है । वहाँ अन्धकार उत्पन्न होता है । पूर्व दिशा उदय की दिशा है । वहाँ से सूर्य ज्योति अन्धकार को तिरोहित करती उठती हैं । और पश्चिम मे जाकर लुप्त हो जाती है । उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर मुख कर उत्तम तथा पवित्र कार्य किये जाते है । मृत्यु के पश्चात् मनुष्यो का पद दक्षिण दिशा की ओर कर दिया जाता है । मुसलमान भी अपने शव का पद दक्षिण की ओर करके गाडते है ।

२९२ (१) वेताल : पिशाचो का एक समूह वेताल कहा जाता है । रुद्र गणो मे वेताल सम्मिलित हैं । रणभूमि मे उपस्थित रहते है । वहाँ के मानव रक्त एवं मास भक्षण करते है । (भा० २:१०·३९) इनकी देवता मानकर भी पूजा की जाती है। । इन्हे सर्वत्र शिव का उपासक माना गया है । (मत्स्य

स जातु देवीं संवीतसिंहलांशुककञ्चुकाम् ।
हैमपादाङ्कितकुचां दृष्ट्वा जज्वाल मन्युना ॥ २९४ ॥

२९४. किसी समय रानी को हैमपादांकित[१] सिंहल देशीय कंचुकी धारण किये देखकर, जिसका अंकित पद रानी के कुच पर पड़ता था, वह क्रोध से प्रज्वलित हो उठा।

२५९.२४) पार्वती के शाप के कारण मृत्यु लोक में इसने मनुष्य योनि प्राप्त की थी। वेताल की भक्ति देखकर शिव एवं पार्वती भी महेश एव शारदा नाम से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। (शिव० शत १४)।

कालिका पुराण मे वेताल के भाई का नाम भैरव दिया गया है। वे राजा चन्द्रशेखर तथा रानी तारा के पुत्र थे। वे पूर्व जन्म में भृङ्गी एव महाकाल नामक शिवदूत थे। भृङ्गी वेताल हुआ था। महाकाल ने भैरव का रूप लिया था। कामाख्या देवी की उपासना द्वारा उन्हें शिव गणो का नेतृत्व प्राप्त हुआ था। इनके वशजो को 'वैताल वंश' कहते हैं। वैताल जननी स्कन्द की एक अनुचर मातृका थी। (म० शा० ४५:१३) प्रेत का एकी प्रकार भी वेताल कहा जाता है। शव पर अधिकार ~कर लेता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २९४ मे 'सिंहलां' का 'सिङ्हाल द्वीप' तथा 'हैम' का पाठभेद 'हेम' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२९४ (१) हेमपादांकित : कचुकी महिलायें पहनती हैं। पुराने समय में चोली पहनती थी। स्तन वे भीतर से रूमाल और आजकल पेटी कोट से कसती हैं। उसपर कचुकी अथवा चोली या ~पर पहनती है। कुच स्थान पर किसी पुष्प गोलाकार आकृति किंवा कुछ न कुछ वेल वूटा बना देती हैं। इसी प्रकार स्वर्ण पाद अकित चिन्ह कुच स्थल पर बन जाता था।

आज कल भी वेल-वूटो मे उँगलियाँ, हाथ, पंजा, मुखाकृत, मनुष्याकृति, पशु पक्षी की आकृति, वनायी जाती है। कुछ इसी प्रकार का स्वर्ण ज़री का ब्लाउज कंचुकी अथवा चोली का कपडा उन दिनो श्री लंका किंवा सिंहल में वनता रहा होगा।

इस वर्णन से एक वात का और पता लगता है। सिंहल से कश्मीर का व्यापार होता था। सिंहल के व्यापारी कश्मीर तथा कश्मीर के व्यापारी सिंहल की वस्तुओं का व्यापार करते थे। अन्यथा श्रीनगर से श्री लका अथवा सिंहल दो हजार मिल दूर पडता है। वहाँ का वस्त्र कैसे कश्मीर मे उपलव्ध हो सकता है। निस्सन्देह मिहिरकुल तथा प्राचीन काल मे कश्मीर का व्यापार समृद्ध था। कश्मीर मे भारत के कोने कोने से व्यापारी आते थे और कश्मीर से भी चारो ओर जाते रहे होंगे।

पादांकित शब्द एक अनुमान की ओर अनायास ले जाता है। मिहिरकुल के समय मे सिंहल के सभी लोग वुद्धमतावलम्वी हो चुके थे। आज भी वे वौद्ध है। सिंहल अर्थात् श्री लका मे आदम पीक अर्थात् शिखर है। उस पर चरण चिन्ह है वौद्ध उसे वुद्ध, हिन्दू विष्णु तथा ईसाई महात्मा आदम का चरण चिन्ह मानते है। वाइविल गाथा के अनुसार वे मानवो के आदि पुरुष थे। उन्ही से जगत् के मानवो की सन्तति हुई है। वे चाहे आज विभिन्न वर्ण, रूप, जाति एव भाषाभाषी क्यो न हो।

वैष्णव वैरागी लोग रामनामी ओढते हैं। वह कई प्रकार की होती है। किसी पर राम, किसी पर शिव का नाम छपा रहता है। इसी प्रकार भगवान् विष्णु का यह चिन्ह, शख, गदा, चक्र तथा पद्म भी छपे रहते हैं। ललाट वाहु हृदय पर विष्णु पद छाप चन्दन, कस्तूरी, रोरी

तथा गोपी चन्दन से लगवाते हैं। अनेक भक्त उनका गुदना गुदवा लेते हैं।

पैर का चिन्ह वस्त्र पर छपवाने का कोई तुक नही मालूम होता। वह मनुष्य पादाकित वस्तु अपवित्र मानी जायगी। यह सम्भव नही था कि तत्कालोन हिन्दू किंवा बौद्ध जनता पादाकित वस्त्र अपनो महिलाओं से हृदय पर धारण करवाती।

मैं समझता हू। सिहल भगवान् के पद चिन्ह के कारण तीर्थ था। उसे देखने तथा पूजा करने के लिए हिन्दू तथा बौद्ध दोनो जाते थे। भगवान् का पद पवित्र था। अतएव उसे वस्त्र पर स्वर्ण सूत्र अर्थात् जरी से अंकित कर दिया जाता था। उसी प्रकार शिव विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूल वस्त्रो, उत्तरीय आदि पर अंकित कर दिये जाते हैं। सिहल का यही पादाकित वस्त्र कश्मीर मे आया रहा होगा।

किन्तु कल्हण यहाँ 'राजा' शब्द पादाकित के लिए प्रयोग करता है। उसका स्पष्ट अर्थ राजा का पद है। यहाँ पर दो बाते सम्भव हो सकती है। मिहिरकुल बौद्ध धर्म विरोधी था। वह शिव भक्त था। उसने यदि जाना होगा कि उसको हृदयेश्वरी हृदय पर बुद्ध पादाकित वस्त्र पति के शिव भक्त होते हुए भी धारणा करती है, तो वह क्रोधित हो उठा होगा। वह सिहल राज के इस धर्म प्रचार को बुरा मानकर उसे दण्ड देने के अपने उग्र स्वभावानुकूल अभियान किया होगा। सिहलराज के पादाकित वस्त्र विक्रय करने का कुछ अर्थ समझ मे नही आता। उसने भगवान् का पादांकित वस्त्र सिहल के गौरव स्वरूप बेचने का प्रयास किया।

मिहिरकुल ने पादांकित वस्त्र के स्थान पर यमुषदेव वस्त्र लाया। कल्हण ने उल्लेख किया है। सूर्य की उपासना आर्य धर्मावलम्बी करते है। सूर्य को उपासना का स्थान बौद्ध धर्म मे नही है। यमुषदेव वस्त्र भी सिहल मे तैय्यार होता था। हिन्दू धर्म का प्रतीक सूर्य तथा बुद्ध का प्रतीक चरण दोनों से अंकित वस्त्र बनते थे।

गया मे चरण पादुका पर पूजा होती है। दिल्ली में कुतुब मीनार स्थान का नाम विष्णु पद पर्वत था। मन्दिर विष्णु का था। हिन्दुओ मे पादुका पूजा एवं चरण पूजा का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक मन्दिर मे चरणपादुका पत्थर पर बनी होती है। उस पर पुष्प, दक्षिणादि चढाया जाता है। बौद्धो मे भी हिन्दुओ की देखादेखी चरण पूजा आरम्भ हो गयी थी। बौद्ध मन्दिर मे भी चरण पादुका रखी जाने लगी।

राजा मिहिरकुल ने बौद्धो के इस प्रचार प्रकार को, हैमपादाकित वस्त्र के स्थान पर अपने अभियान के फलस्वरूप यमुषदेव हिन्दुओं के प्रतीक चिन्ह को मान्यता दिया। सिहल राजा पादाकित वस्त्र की यह कल्पना सर्वथा ठीक नही उतरती। वे पद के तीर्थ तथा पद की पवित्रता के महत्त्व को भूल गये होगे।

कल्हण यहाँ कंचुकी के मुख से कहलाता है कि सिहल राज के पद का अकिन वस्त्र था। कंचुकी का अन्त.पुर मे स्थान एक पार्षद का था। वह वृद्ध रूप मे सर्वदा एवं सर्वत्र चित्रित किया है। वह नारद का भी कार्य करता चित्रित किया गया। राजा के क्रोध को देखकर परिहास किंवा राजा की चाटुकारिता के लिये 'पद' देख कर दो राजाओ में लडाई हो जाय, कटुता बढे इस प्रयोजन से सिहलराज का नाम ले लिया होगा। सिहल का वह वस्त्र था। यह सब जानते थे। सब प्रयोग करते थे। किसी ने पद की ओर ध्यान भी नही दिया होगा। यदि कभी किसी ने जिज्ञासा की भो होगी तो सिहल के व्यापारी भगवान् का पद है कह दिये होगे।

कंचुकी को तुरन्त उत्तर देना था। परिहास एवं पिशुनता के कारण सिहल के राजा के वस्त्र

मे सिंहलराज के अतिरिक्त और किस का पद हो सकता है। इस विचार से अनायास सिंहलराज का हेमाकित पद कह दिया। राजा मिहिरकुल के उग्र स्वभाव को देखकर किसी को प्रतिवाद करने का साहस न हुआ होगा।

सिंहल का प्राचीन नाम श्री लका तथा अर्वाचीन नाम सिलोन है। अरबो ने इसका नाम 'सैलान' रखा था। अंग्रेजो ने उसी सैलान नाम के आधार पर इसे सीलोन कहना आरम्भ किया और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में यही नाम प्रचलित हो गया।

सिहल में रावण की ख्याति एक वैद्य तथा विद्वान् के रूप में है। विभीषण की मान्यता देवता तुल्य है। श्रीलका मे अशोक वाटिका आज भी है। उसकी पुरानी राजधानी का नाम 'सीता बक' है। विजय सिंह गुजरात से श्री लका गये थे। अतएव उनके नाम पर सिंहल नाम पडने की एक गाथा है।

प्राचीन समय में भगवान् बुद्ध की प्रतिमा नही बनती थी। उनके श्रीपद ही की पूजा होती थी। यह पद सीधा है। साधारण मनुष्यो का पद किंचित् घुमा हुआ रहता है। पद चिन्ह में महापुरुषों के लक्षण है।

श्री लका में प्राचीन भित्तिचित्रो मे कचुकी के स्थान पर गोलाकार वृत्त बने दिखाये गये है। यह वृत्ताकार चिन्ह बौद्ध जगत् का तथा धर्म चक्र प्रवर्तन का प्रतीक है। सम्भव है। भगवान् का चरण हृदय देश पर स्थित रहे अतएव हेम पादाकित चिन्ह वक्षस्थल पर कचुकी में बनाया जाता रहा होगा। हेम शब्द यहाँ महत्त्व रखता है। क्योकि भगवान् का वर्ण स्वर्ण अर्थात् हेम तुल्य था।

कश्मीर के इतिहास तथा उसके स्थानो पर जिस प्रकार मुसलमानी धार्मिक रग चढाने का प्रयास किया गया है उसी प्रकार श्रीपाद पर्वत पर भी हिन्दू तथा बौद्ध परम्पराओ पर परदा डाल कर उसे मुसलिम धार्मिक साचा में ढालने का प्रयास किया गया है।

श्रीशंकराचार्य पर्वत का नाम जिस प्रकार कश्मीर में तख्तए-सुलेमान दे दिया गया है। वही प्रक्रिया श्री लंका में श्रीपाद-पर्वत के साथ हुई। उसका नाम बाबा आदम की चोटी तथा खोह का नाम 'खोह खिज्र' रख दिया है।

श्रीपाद पर पहुँचने वाले रास्तो का मूल नाम बदल कर एक मार्ग को 'बाबा आदम' तथा दूसरा 'मामा' (हौवा) नाम रख दिया गया है। श्रीपाद तक पहुँचने के लिए श्री लका के राजाओ ने लोहे की सिकडी अथवा जजीरें लगवा दी थी। यात्री उन्हे पकडकर श्रीपाद तक पहुँचता है। उसे सिकन्दर का लगवाया प्रसिद्ध किया गया।

प्रसिद्ध ईरानी कवि असग्फ ने अपने ग्रन्थ सिकन्दरनामा में लिखा है कि सिकन्दर जब लका पहुँचा तो जजीरो को आदम के क़दम तक पहुँचने के लिए लगवा दिया था।

इब्नबतूता एक कदम और आगे बढ जाता है। वह कहता है द्वार सिकन्दर का निर्माण कराया हुआ है। यहाँ पर लाल गुलाब का फूल हथेली भर का होता है। उस पर 'अल्लाह और 'मुहम्मद' का नाम प्रकृति ने स्वय लिख दिया है। जजीर का भी नामकरण कर दिया गया है। दसवी जजीर को जर्जीरे शहादत की सज्ञा दे दी गयी है। दसवी जजीर से खोह खिज्र तक की दूरी दस मील है। उसमें एक स्रोत है। उस स्रोत को हजरत खिज्र से सम्बन्धित कर दिया गया है। जजीर शहादत पकडने पर 'कलम शहादत' पढने की हिदायत की गयी है।

इब्नबतूता ने चरण चिन्ह का परिमाण ग्यारह बालिश्त और सुलेमान सौदागर ने सत्तर हाथ लम्बा बताया है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि मन की भावना के अनुसार वह किसी को बालिश्तो में और किसी को हाथो

मे वहुत लम्बा और छोटा दिखाई देता है। यह सब वास्तविक इतिहास पर दूसरा रंग चढ़ाने के लिए किया गया है।

यह तथ्य है कि सिकन्दर कभी लंका मे पैर भी नही रखा था। वह ईसा पूर्व ३२७ वर्ष में भारत आया और सिन्ध के मार्ग से अपने देश की ओर लौट गया और मार्ग मे ही उसका देहावसान सूसा में हो गया। हजरत खिज्र का पैगम्वर मुहम्मद के बहुत बाद का है। पैगम्वर साहब का जन्म ही सन् ५७० ई० मे हुआ था।

श्रीपाद पर्वत का अस्तित्व हजरत खिज्र के जन्म से हजारो वर्ष पूर्व था। बौद्ध धर्म अशोक के काल अर्थात् ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पहुँच चुका था। देश बौद्ध हो चुका था।

श्रीपाद श्री लंका का श्रेष्ठ पूजनीय स्थान था। श्रीपाद धर्म चिन्ह था। सिंहल के हेमांकित पाद-चिन्ह वस्त्र का वही अर्थ था कि वह वस्त्र जहा जाता था वह भगवान् बुद्ध के पद चिन्ह के कारण रामनामी वस्त्र के समान पवित्र तथा श्रेष्ठ माना जाता था। पाद चिन्ह का इतना महत्त्व था कि उसे विश्व में चार स्थानो मे बौद्धो ने माना है। जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना पद रखा था। यद्यपि यह भी सत्य है कि भगवान् बुद्ध अपने भौतिक जीवन काल में मध्य देश से कभी बाहर नही गये। श्री लंका तो भारत के बाहर था। पाद चिन्ह के विषय में कहा गया है। एक पाद चिन्ह नर्वदा के तट पर था। दूसरा सत्य, वध्य पर्वत की चोटी पर था। तीसरा श्रीलका में कूट पर था। चौथा यवन देश में था। बुद्ध जगत् निम्नलिखित पद पढ़कर चरण चिन्ह की वन्दना करता है।

यं नम्मदाय नदिया पुलिने च तीरे
यं सच्चवद्धगिरिके सुमनां च लग्गे।
थं तध्य यौनक पुरे मुनिनौ च पाद,
तं पाद लच्छनमहं सिरसा नमामि ॥

सुमन कूट पर श्रीपाद है। पवनपुर में चौथे श्रीपाद का होना कहा गया है। मैने वहुत वृद्ध भिक्षुओ से पूछा। उनका कहना है कि चौथा पाद मक्का में था। काबा जिसे बुतखान कहा गया है वह वास्तव मे बुद्ध स्थान था। वहाँ सैकडो से ऊपर मूर्तियाँ थी। बुत शब्द बुद्ध का अपभ्रंश है। यह अब प्रमाणित हो चुका है कि बुद्ध शब्द का बुत अपभ्रंश है। काबा मे ३००से ऊपर मूर्तियाँ थी। सबकी पूजा होती थी। इस विवाद में न पड़ कर यही कहना अलम् होगा कि मिहिरकुल के समय तक बौद्धधर्म भारत तथा बाहर था। श्रीपाद का हेम पादाकित रूप पूज्य था। क्योकि उस समय बुद्ध प्रतिमा की पूजा प्रचलित नही थी।

सुमनकूट पहुँचने के लिये हेटन पहुँचना चाहिए। हेटन से मसकेलिय जाना पड़ता है। वहाँ से ११ मिल दूर पडता है। मसकेलिय से श्रीपाद पर्वत दिखाई पडता है। शिखर पर पहुँचने पर चट्टान काटकर सीढ़ियाँ बनायी गयी है। जंजीर तथा छड पकडकर श्रीपाद तक पहुँचते हैं।

श्रीपाद के समीप सुमन देव का मन्दिर है। यह स्थान समुद्र की सतह से ७३६० फ़िट ऊँचाई पर है। भगवान् सुमन देव की प्रार्थना पर तीसरी बार लंका आये थे। सुमन कुटी पर उनका आगमन हुआ। यहाँ पर वैशाख पूर्णिमा के दिन अपराह्न काल में अपने वाम पद का चिन्ह अंकित किया था। (सुमन्त कूट-वण्णना ७७९) इस पाद की महिमा में समन्त कूट वण्णना मे कहा गया है–'ऐसे द्वेष रिपुरहित मनुष्यो के हित-साधक उस धर्मराज न लंका की लक्ष्मी के रम्य सुमनगिरि पर जिस-जिस चरण चिन्ह को दिया वह चित्त मात्र के प्रसन्न होने से तुम्हें बुद्ध के समान स्वर्गापवर्ग देगा। अतएव हे लोगो! प्रसन्न मन होकर सज्जनो से प्रशंसित उसे नमन करो। उसकी पूजा करो।'

उसकी महत्ता का वर्णन उसी ग्रन्थ में और किया गया है—वहाँ सर्वदा वृक्ष एवं लताएँ नत

सिंहलेषु नरेन्द्राङ्घ्रिमुद्राङ्कः क्रियते पटः ।
इति कञ्चुकिना पृष्टेनोक्तो यात्रामदात्ततः ।। २९५ ।।

२९५. जिज्ञासा पर कंचुकी ने बताया 'सिंहल मे बने वस्त्र पर राजा का पद चिन्ह अंकित किया जाता है।'— राजा ने अभियान का आदेश दिया।

तत्सेनाकुम्भिदानाम्भोनिम्नगाकृतसंगमः ।
यमुनालिङ्गनप्रीतिं प्रपेदे दक्षिणार्णवः ।। २९६ ।।

२९६. उसकी सेना के गजो के गण्डस्थल से उद्भूत मद धार मिलन से दक्षिण समुद्र ने यमुना[1] मिलन सुख का अनुभव किया।

मस्तक श्रीपाद का मनस्कार करती हैं। उस पर्वत पर जहाँ पदचिन्ह है, मनुष्यसंकुल होने पर भी स्थान हो जाता है। जव एकत्रित मनुष्य पूजा कर निकलते हैं तो उस पवित्र चरण चिन्ह को मेघ धो डालते हैं।'

प्रामाणिक रूप से यह मान्यता है कि श्रीपाद ५ फिट लम्वा है। वह स्पष्ट नही है। केवल लम्वा गड्ढा मालूम पडता है। राजा नि शक मल्ल (सन् ११९३-१२०७) श्रीपाद को एक बडे शिला खण्ड से ढकवा दिया था। ढके पत्थर पर नवीन चिन्ह मूल के समान बनवा दिया गया। स्थान छाया हुआ है। समीप ही पुष्पासन है। वहाँ पूजा निमित्त पुष्पाजलि दी जाती है। श्रीपाद इस समय सिमेण्ट की रेलिंग से घेर दिया गया है। वह स्थान समुद्र तट से ६५ मील दूर है। नव मिल दूर से ७३६४ फिट की ऊँची चढाई चढनी पडती है। मार्ग घने वन श्री से होकर जाता है। मार्ग में धर्मशालाएँ बनी है। छ मिल तक मूल शिखर दिखाई नही पडता। तीन मिल की चढाई शेष रह जाने पर श्रीपाद शिखर का दर्शन होता है। तत्पश्चात् सीधी चढाई पडती है। पहाड काट कर सीढियाँ बनायी गयी है। सीढियो के पश्चात् जजीरो का सहारा लेना पडता है। जजीरो तक पहुँचने के पूर्व यात्री को खूब समझा दिया जाता है कि वह नीचे की ओर न देखे। नीचे देखने पर भयकर खाई मालूम पडती है। मस्तक घूमने लगता है। किंचित् मात्र पैर फिसलने पर शरीर का पता नही चलेगा. सब कुछ चकनाचूर हो जायगा। इसके पश्चात् ४० फिट ऊँची लोहे की सीढी है। उसके पश्चात् श्रीपाद का चबूतरा मिलता है। मैं श्री लका की यात्रा दो बार कर चुका हूँ। मेरा निश्चित मत है कि कल्हण वर्णित पाद हेमाकित चिन्ह इस श्रोपाद का प्रतीक था जो कचुकी पर इस प्रकार बनाया जाता था कि वह हृदय स्थल पर भगवान् का पद स्पर्श करता है।

पाठभेद

श्लोक सख्या २९५ में 'नोक्तो' का 'नोक्ता' तथा 'मदात्तत' का 'मधात्तत' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ.

२९५ (१) कंचुकी : इसका शाब्दिक अर्थ चोली, अगिया स्त्री लिंग रूप में तथा पुलिंग रूप में अन्त पुर रक्षक, द्वारपाल, रनिवास में दास दासियो का अध्यक्ष माना गया है। अन्त पुर के राज्य अधिकारियो मे इसका बडा महत्त्व रहा है। संस्कृत नाटको में यह पात्र विशेष रूप से चित्रित किया गया है। राजाओ के गार्हस्थ्य जीवन के स्वरूप को प्रकट करता है।

२९६ (१) यमुना : गगा-यमुना का प्राय एक साथ वर्णन मिलता है। गगा का जल उज्ज्वल तथा यमुना का नीला माना गया है। और है भी। इसका स्पष्ट दर्शन प्रयाग सगम पर मिलता है। जहाँ यमुना तथा गंगा का जल आकर मिलता है। वहाँ

दोनो जलो में भिन्नता प्रकट होती है। संगम के पश्चात् काशी पहुँचने पर गंगा जल उतना उज्ज्वल नही रह जाता, जितना हरद्वार तथा प्रयाग में दिखाई देता है। हरद्वार से प्रयाग तक गंगा की धारा में तेजी रहती है। प्रयाग के पश्चात् वेग का लोप हो जाता है। स्थिरता आती है।

हिमालय से गंगा तथा यमुना दोनो नदियाँ निकलती हैं। दोनो का जल सदृश होना चाहिए। परन्तु भिन्नता दिखाई पडती है। इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

गंगा में हरद्वार से प्रयाग तक मिलने वाली सब नदियो का स्रोत हिमालय है। सब हिमालय का जल लाकर गंगा मे डालती हैं। अतएव गंगा का जल एक ही हिमालय एवं हिम गलने के कारण एक रूप रहता है।

यमुना के साथ ठीक उलटी बात होती है। यमुना में मिलने वाली सब नदियाँ विन्ध्याचल, अरावली आदि से निकलती हैं। दक्षिण दिशा किंवा दक्षिण पथ से आकर यमुना में मिलती है। वे मैदानी क्षेत्र तथा विन्ध्य के उज्ज्वल वर्ण हीन पत्थरो का टकराया हुआ जल यमुना मे लाती है। यमुना का जल हिमानी, हिम गलित उसके स्रोत के पश्चात् पुन उसमें नही आता। किन्तु गंगा का जल हिमालय पर्वत के पत्थरो से, जो अपेक्षाकृत विन्ध्य के पत्थरो से अधिक उज्ज्वल है, टकराता बलुई भूमि से बहता आता है। वह अपनी उज्ज्वलता स्थिर रखता है।

यमुना मे आनेवाला जल दक्षिण की नदियो का जल है। वे नदियाँ बलुई भूमि से न होकर कुछ काली मिट्टी से बहती आती हैं। वह मिट्टी लसदार होती है। वह उत्तर प्रदेश के गंगा और हिमालय के मध्य भागीय क्षेत्र की मिट्टी की तरह भूरी तथा बलुआ नही है। स्पर्शास्पर्श एवं भौगोलिक स्थिति के कारण जल के रूप में परिवर्तन हो जाता है। जैसे एक ही पिता के दो पुत्र एक ही वर्ण एवं रूप के होते हुए भी यदि एक रूस मे तथा दूसरा कांगो अथवा मद्रास में निवास करे तो कुछ समयपश्चात् दोनो के वर्ण में अन्तर पड जायगा। एक अधिक शीत के कारण गोरा ही रहेगा। दूसरा अल्पाधिक गरमी के कारण झाँवर होता जायगा। यही बातें गंगा तथा यमुना के जलो के विषय मे कही जा सकती है।

सिंहल (श्रीलंका) तथा भारत अर्थात् रामेश्वर के बीच मनार की खाडी है। दोनो के मध्य पतला समुद्र भाग है जो भारत तथा सिंहल को अलग करता है। भगवान् रामचन्द्र ने पम्बन के पास सेतु बाँधा था। रामेश्वर का मन्दिर तथा स्थान पम्बन सेतु पार कर जाना पडता है। पम्बन से धनुषकोटि तथा रामेश्वर दो तरफ रेलवे लाइन गयी है। धनुषकोटि तथा रामेश्वर एक द्वीप पर हैं। धनुषकोटि से आज भी जहाज तथा नावें श्री लंका को जाती हैं।

सन् १९६४–१९६७ ई० भारतीय नौपरिवहन मण्डल के अध्यक्ष होने के कारण मैं यहाँ कई बार आ चुका हूँ। सेतुम् समुद्र एक विशाल योजना है। उसके द्वारा बडे जहाजो को भारतीय समुद्र में होकर आवागमन के लिये नहर बनाने की योजना है। इस समय जहाज भारत के पश्चिमी तट से पूर्वीय तट पर आने के लिये श्री लका को परिक्रमा करते हैं। इस योजना के बनने पर वे सीधे भारतीय क्षेत्रीय जल सीमा के अन्दर ही पूर्व से पश्चिम तथा पश्चिमी से पूर्वीय तट पर पहुँच जायेंगे। लगभग ४०० मील की लम्बी यात्रा बच जायगी।

उस समय मैंने यहाँ की भौगोलिक स्थिति आदि का विशेष अध्ययन किया। निस्सन्देह मिहिर-कुल धनुषकोटि अंचल पर अपना शिविर लगाया होगा। यही से सबसे संकीर्ण समुद्र पार करने का मार्ग है।

समुद्र का जल यदि शीशे के गिलास में रख दिया जाय तो वह उतना नीला नही लगेगा। जल को गहराई, समुद्र अथवा नदी में जल का बाहरी

स सिंहलेन्द्रेण समं संरम्भाददपाटयत् ।
चिरेण चरणस्पृष्टप्रियालोकनजां रुषम् ॥ २९७ ॥

२९७ उसने सिंहल नरेश को पदाक्रान्त करने तथा हेम पादांकित प्रिया के कंचुकी द्वारा उद्भूत क्रोधो को शान्त किया।

दूरात्तत्सैन्यमालोक्य लङ्कासौधैर्निशाचराः ।
भूयोऽपि राघवोद्योगमाशङ्क्य प्रचकम्पिरे ॥ २९८ ॥

२९८ जब लका के सौधो से निशाचरों ने उसकी सेना का दूर से ही अवलोकन किया, तो राघव[1] के आक्रमण की पुनः आशंका हुई।

रूप तथा वर्ण बनाती है। हवाई जहाज में यात्रा करने पर यह बात स्पष्ट दिखायी पडती है। तट-वर्ती समुद्र का पानी भूरा तथा गदला लगेगा। तट से जितना ही दूर जाय, उतना ही जल का रग गाढा नीला हो जायेगा। समुद्र मे जहाँ नदिया आकर मिलती हैं वहा दो तीन मील तक का जल गदला रहता है। गगा सागर के पास यह बडी अच्छी तरह दिखाई देता है। प्रशान्त, अटलाण्टिक महासागर, तथा भूमध्य महासागर का जल अत्यन्त नीला मिलेगा। इसी प्रकार बंगाल की खाडी के मध्य पहुँचने पर भी जल की नीलिमा वढ जाती है। तटवर्तीय जल होने के कारण समुद्री जल का वर्णन नीलजा यमुना के जल के समीप रग रूप में पहुँच जाता है।

कह्लण ने बडी ही उत्तम उपमा यहा दी है। नील समुद्र में नीलजा का जल मिलना प्रिय तथा प्रिय के मिलन तुल्य है। नील जल युक्त समुद्र पुल्लिग है और नील जल के साथ नीलजा अर्थात् यमुना स्त्रीलिंग है। नर-नारी का मिलन ही प्रेम है। वही काम की चरम सीमा है। निस्सन्देह कल्हण की उपमा की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोडी मानी जायगी।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २९७ मे 'रुषम्' का पाठभेद 'रुजम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२९७ (१) सिंहल आक्रमण : मुजमुल तुल तवारीख में लगभग इसी प्रकार का वर्णन दिया गया है। कश्मीर के एक राजा ने सिंध पर आक्रमण किया था। कश्मीर के राजा का नाम नही दिया है। सिन्धराज हाल ने मिहिरकुल को सन्धि करने के लिए बाध्य कर दिया था।

(२) क्रोध : कह्लण यहा दोनो क्रोधो की शान्ति का उल्लेख करता है। प्रथम क्रोध हेम पादाकित कचुकी देखने के कारण उसमें उत्पन्न हुआ था। दूसरे क्रोध का उदय सिंहल आक्रमण काल में शत्रु को पराजित करने के लिए हुआ था। सिंहल विजय के कारण हेम पादाकित वस्त्र के स्थान पर यमुपदेव वस्त्र प्राप्त किया था। इस प्रकार उसके प्रथम क्रोध की शान्ति हुई। दूसरे क्रोध की शान्ति सिंहलराज को सिंहासन च्युत कर किया था।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २९८ मे 'सौधैर्नि' का पाठ-भेद 'सौधान्नि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) राघव : यहा पर राघव शब्द भगवान् श्री रामचन्द्र जी के लिये आया है। श्री लका पर ऐतिहासिक किंवा गाथा के आधार पर सर्व प्रथम श्री राम की सेना ने सफल आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी।

कल्हण मिहिरकुल के लका आक्रमण की तुलना भगवान् श्री राम के आक्रमण से करता है। लका पति रावण से राम की सेना देखकर भयग्रस्त राक्षसो ने संवाद कहा था। अन्धकारमय भविष्य कहा था। राम की सेना से उत्पन्न भय कहा था। यही अवस्था मिहिरकुल की सेना देखकर राक्षसो की हुई थी। वे भयभीत हो गये थे।

(२) सौध से सेना अवलोकन : लंका का जैसा सर्वनाश बन्दरो तथा राम की सेना द्वारा हुआ था। कही उसी की पुनरावृत्ति न हो जाय। इसे स्मरण कर लंका वासी आशंकित हो गये थे।

लका के सौधो अर्थात् प्रासादो से उन्होने मिहिरकुल की सेना देखी। इसी प्रकार सेना देखने का वर्णन वाल्मीकि ने रामायण मे किया है।

'लंका सौध से सेना अवलोकन क्या सम्भव था?' प्रश्न उपस्थित होता है। क्या भारतीय तट पर पडी सेना लंका के सौधों से रामायण तथा मिहिरकुल काल मे देखी जा सकती थी। मै इसका यही उत्तर दे सकता हूँ कि यह सम्भव था।

मण्डपम स्टेशन से रेलगाडी रामेश्वर द्वीप की ओर बढती है तो बीच में सागर मिलता है। यह बंगाल की खाडी तथा मन्नार की खाडी के जल को मिलाता है। जल डमरूमध्य है। इस पर लम्बा रेलवे का पुल बना है। रेल गाडी बहुत धीरे धीरे चलती है।

समुद्र का जल जिस दिन भाटा के कारण नीचे आ जाता है तो लहरें नही उठती। जल स्थिर हो जाता है। यही समय है। जब निश्चय किया जा सकता है कि भारतीय भूखण्ड और पम्बन को जोडने के लिए कभी सेतु वहाँ बाँधा गया था या नही। ज्वार के समय जल बहुत ऊपर उठ जाता है। पम्बन के पुल के नीचे वेग से लहर उठती है।

मैंने यही समय इस स्थान को देखने का निश्चय किया। अपने साथ शिपिंग विभाग के एक इंजीनियर को भी ले लिया।

पहली वस्तु ध्यान आकर्षित करने वाली समुद्र तल में पड़ी विशाल चट्टानें है। दोनो भूखण्डो के मध्य विशाल शिलाखण्ड समुद्र तल मे पडे हैं। यह केवल वही मिलते है। समीप पर्वत नही है। जहाँ से विशाल शिलाखण्ड लाया जा सके।

यह शिला खण्ड इतने विशाल है कि उन्हे मानवी शक्ति द्वारा उठाना सम्भव नही है। उन्हे उठाने के लिये क्रेन अथवा कल्हण वर्णित यन्त्र की आवश्यकता पड सकती है। वाल्मीकि रामायण मे उल्लेख मिलता है। नल तथा नील तत्कालीन अभियन्ताओ के निरीक्षण मे सेतु बाँधा गया था। विशाल शिलाखण्ड बन्दर लाते थे और समुद्र मे छोडते थे। यन्त्र का प्रयोग किया गया था।

पम्बन् पुल के नीचे के विशाल शिलाखण्ड और कश्मीर के भूतेश्वर, मार्तण्ड, परिहासपुरादि मे लगे विशाल शिलाखण्डो को देखकर अनायास प्रश्न उठता है। उनका लाना कैसे मानवीय शक्ति के सामर्थ्य की बात हो सकती थी?

कल्हण इसका उत्तर देता है। कल्हण ने शिलाखण्डो को उठाने के लिए 'यन्त्र' शब्द का प्रयोग किया है। यह यन्त्र क्रेन थे। वह स्पष्ट उपमा देते हुए कहता है कि 'यन्त्र' से गिरे शिला तुल्य, अर्थात् यन्त्र शिला को क्रेन की तरह ऊपर उठाता था। वह किसी समय गिरता था तो राज्यच्युत होते राजा के समान उसे रोकना कठिन था। यही बात क्रेन के सम्बन्ध मे कही जायगी। क्रेन से गिरते सामान को किसी प्रकार भी रोका नही जा सकता। वह गिर कर ही रहेगा।

रामायण ने इसका उत्तर बन्दरो की अलौकिक शक्ति का वर्णन कर दिया है। इससे प्रतीत होता है। प्राचीन काल मे कश्मीर से रामेश्वरम् तक 'यन्त्र' अर्थात् क्रेन का शिलाओ के उठाने तथा निर्माण कार्य मे प्रयोग किया जाता था। यद्यपि वे क्रेन

आज के समान विद्युत भाप तथा मशीन परिचालित नही थे। प्रारम्भ मे क्रेन भी हाथ से ही चलते थे। कल्हण ने भी सेतु शब्द का उल्लेख गुद्द सेतु के सदर्भ में किया है। भगवान् राम निर्मित सेतु ठोस था अथवा पावो पर बनाया गया था, स्वत एक गवेपणा का विपय है। जैसा कि गुद्द सेतु के सम्बन्ध मे लिखा जा चुका है। विशेपज्ञो की यह धारणा पुष्ट हो गयी है कि सेतु सम्भवत ठोस था। पांवों पर नही बना था।

मुझे एक रोमन कैथोलिक आयरिश इजिनीयर मिल गये। वे विश्व पर्यटन निमित्त निकले थे। उन्हें भी स्थान देखकर कौतूहल हुआ। चर्चा प्रसग में उन्होने कहा—'मै रोमन कैथोलिक हूँ। वाइब्रिल में विश्वास करता हूँ। रामायण की चाहे जो गाथा हो। परन्तु मै इतना निश्चय रूप से कह सकता हूँ। यह विशाल शिलाखण्ड यहाँ बाहर से लाये गये थे। दोनो समुद्री तटो को सेतु से जोडने का प्रयास किया गया था।' (वाल्मीकि रामायण लका काण्ड सर्ग २२ द्रष्टव्य है)

मै हिन्दू हूँ। अतएव राम तथा राम गाथा पर स्वभावत विश्वास करता हू। परन्तु अभियन्ताओ का यह मत स्थिर हो चला है। किसी समय यहा सेतु था। भारतीय भूखण्ड को रामेश्वर द्वीप से मिलाता था।

वर्तमान सेतुबन्ध रामेश्वरम् मन्दिर का स्थान दो हजार वर्ष से पुराना किसी भी प्रकार नही हो सकता। अतएव निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। रामायण वर्णित रामेश्वर की स्थापना किस स्थान पर की गयी थी। रामेश्वर शब्द से स्पष्ट है। राम ने रामेश्वर की स्थापना की थी। ईश्वर शब्द इस बात का द्योतक है कि शिव की स्थापना भगवान् राम ने की थी। उन्ही के नाम पर रामेश्वर शिवलिंग का नाम रखा गया। कल्हण ने राजतरगिणी में सर्वत्र शिव मन्दिरो के लिए नाम के अन्त में ईश्वर या ईश तथा विष्णु मन्दिर के लिये स्वामी शब्द का प्रयोग किया था। यह नामकरण पद्धति समस्त भारत मे प्रचलित हो गयी थी।

सेतुबन्ध शब्द से प्रतीत होता है कि रामेश्वर का सेतुबन्ध ठोस था। इस सेतु को पार कर राम की सेना लका के समीप पहुँच गयी थी।

यदि धनुषकोटि के पास खडा हो कर देखा जाय तो दूसरी ओर श्रीलंका का तट स्थान धुँधला दृष्टिगोचर होगा। लका और भारत के बीच वह सबसे सकीर्ण स्थान है। दोनों के मध्य छिछला जल है। उसमें कुछ द्वीपो की शृंखला मिलेगी जो लका और भारत के बीच है इस छिछले पानी के कारण बगाल की खाडी से अरब सागर जाने वाले जहाज सरल और नजदीक के मार्ग से न जा कर श्री लका की परिक्रमा कर जाते हैं। इस संकीर्ण स्थान को आज कल की प्रचलित भाषा में 'आदम्स् ब्रिज' कहते है। पूर्व काल मे रामेश्वरम् द्वीप से लका तट स्थान भूखण्ड से मिला रहा होगा।

मिहिरकुल की सेना सेतु किवा नाव से श्री लका पहुँची थी या कोई और उपाय निकाला था। इस विषय पर कल्हण शान्त है। रामायण का वर्णन अधिक पूर्ण तथा विस्तार से वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालता है।

कल्हण ने स्वय श्री लका किंवा रामेश्वर की यात्रा नही की थी। उसने पूर्व श्रुत अथवा किसी पूर्व कृति पर अपना वर्णन लिखा है। यदि वह रामेश्वरम् की यात्रा किया होता तो उसका वर्णन अधिक सारगर्भित, पूर्ण और समुद्री दृश्यो के वर्णन से भरा होता।

कल्हण ने केवल 'राघव' की सेना से उपमा यहाँ दी है। श्री राम की सेना ने जहाँ शिविर डाला था वहाँ मिहिरकुल की सेना का शिविर पड़ना सम्भव तथा कठिन दोनो हो सकता है। इस स्थान की भौगोलिक स्थिति में आमूल परिवर्तन हो चुका है। साइक्लोन, सैण्ड डून तथा तूफानो से स्थान

आक्रान्त रहता है। सन् १९६५ ई० के साइक्लोन मे पम्बन सेतु बह गया था। अनेक मकानों की छतें साइक्लोनो मे उड गयी थी। भूमि कही समुद्र मे धँस गयी, कुछ लोप हो गयी, कुछ निकल आयी थी। बडे-बडे वृक्ष जड़ से उखड़ कर तृण के समान उड़ गये थे। अतएव लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अथवा रामायण काल में क्या भौगोलिक स्थिति थी। इस पर स्वतः एक ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

सबसे आश्चर्य जनक बात यहाँ के समुद्र तट पर मीठा पानी मिलता है। श्री राम तथा मिहिरकुल की सेना के लिये जल की आवश्यकता पड़ी होगी। यहाँ कोई नदी नही है। सरोवर नही है। इस एक बात के अनुसन्धान में उलझन उत्पन्न कर दी थी।

जिस समय मन्नार के गल्फ तथा बंगाल की खाडी मिलाने के लिए ड्रिलिंग का कार्य नहर के सर्वेक्षण के लिये आरम्भ हुआ तो दो बातें विशेष महत्त्वपूर्ण मिली। जिनसे रामायण की सत्यता तथा कल्हण के वर्णन का मेल खाता है।

समुद्र तट से २०० गत दूर पर ड्रिलिंग करते समय जो पानी निकला वह मीठा था। मन्नार की खाड़ी तथा उसके दूसरे तट बंगाल की खाडी तक के मध्यवर्ती भूभाग मे कही भी ३०० फिट गहराई तक भूमि मे पहाड अथवा चट्टाने नही मिली। बलुई भूमि ही मिलती गयी। जल कही भी किंचित् मात्र खारा नही मिला। इससे दो तथ्यो की पुष्टि होती है।

श्रीराम तथा मिहिरकुल की सेना को मीठा जल समुद्र तट पर मिल गया था। वहाँ शिविर स्थापित करने योग्य स्थान था। दूसरी बात भी प्रमाणित होती है कि सेतु बध के लिए शिलाखण्ड कही बाहर से लायें गये थे। जो पम्बन सेतु के नीचे विशालकाय पडे हैं। क्योकि यहाँ भूमि के ऊपर तथा भूमि के नीचे पत्थर नही मिलते।

मैंने इस विषय मे कोचीन बन्दरगाह के बनाने वाले श्री वेकटेश्वरम् मुख्य अभियन्ता जो इस समय सेतु समुद्रम योजना मे रामेश्वर मे कार्य कर रहे हैं। विस्तार से विचार विमर्श किया। उनका भी वही मत है। किसी समय श्री लका तथा भारत मे स्थल तथा जल दोनो माध्यमो से आवागमन रहा। कालान्तर मे हजारो वर्ष के भूकम्पो साइक्लोन समुद्र के तूफान के कारण यह भूमार्ग या तो समुद्र गर्भ में चला गया है, अथवा टूटा फूटा 'आदम ब्रिजस' के रूप मे उसकी छाया रूप वर्तमान है।

राघव तथा मिहिरकुल दोनो की सेनाओं का शिविर लंका से बाहर था। उनके मध्य समुद्र था। उसे ही देखकर राक्षसो को लंका पर आक्रमण का भय, श्री राम की सेना को देखकर हुआ था। और मिहिरकुल के समय उस आशका की पुनरावृत्ति हुई।

समुद्र दोनो तटो के मध्य इतना सकीर्ण है कि लंका के सौधों अर्थात् प्रासाद किंवा उच्च स्थान से भारतीय तट पर होती घटनाये, सेना का शिविर, सेना का परिचालन तथा सेना का प्रकार देखा और समझा जा सकता है।

मिहिरकुल ने किस प्रकार लंका पर आक्रमण किया, युद्ध मे क्या गति हुई? युद्ध का क्या रूप था? इन सब महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा उनके वर्णन के सर्वथा अभाव मे कुछ तत्त्व पूर्ण निश्चित अनुमान लगाना कठिन है। वाल्मीकि लका काण्ड (सर्ग ४,२०) द्रष्टव्य है।

रामेश्वर सेतुबन्ध के सम्बन्ध मे रामायण का उद्धरण यहाँ ठीक होगा। पत्थरो से जल स्थान पाट दिया गया था। रामायण में कहीं ताखा अथवा खम्भा बनाने का उल्लेख नहीं आता। वहाँ यहीं उल्लेख मिलता है कि शिलाखण्ड फेंक जल में गिराये गये। वे शिलाखण्ड हाथियो जैसे विशाल थे। पर्वतो से लाते थे। वे बाहर से समुद्र तट पर लाये जाते थे।

ते नगान् नगसंकाशाः शाखामृगगणर्षभाः।
बभञ्जुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम्॥

(रा० अ० २२:५५।)

स तत्रान्यं नृपं दत्वा तीव्रशक्तिरुपाहरत् ।
पटं यमुपदेवाख्य मार्ताण्डप्रतिमाङ्कितम् ॥ २९९ ॥

२९९ तीव्र शक्तिमान राजा ने सिंहल का सिंहासन दूसरे नृप को देकर, वहाँ से मार्तण्ड प्रतिमा।कत यमुप देव नामक वस्त्र लाया ।

हस्तिमात्रान् महाकाया. पाषाणाश्च महाबला. ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥ २२ ६० ।

समुद्र क्षोभयामासुर्निपतन्त समन्तत. ।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायत शतयोजनम् ॥ २२ ६२ ।

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान् गिरीणा शिखराणि च ।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्यदानवसनिभा. ॥ २२'६६ ।

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभि. ।
योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै ॥ २२ ७२ ।

उक्त उल्लेख से पांच बातें सिद्ध होती हैं। शिलाखण्ड विशाल थे। जैसे वे आज भी 'पम्बन' पुल के नीचे पड़े हैं। दूसरी बात पर्वतों तथा अन्य स्थानों से उन्हें यन्त्रों द्वारा लाया जाता था। वह इतने बड़े थे कि मानवीय किंवा वानरी शारीरिक शक्ति के परे की बात थी। तीसरी बात महत्त्वपूर्ण यह है कि पुल पांच दिनों मे बनकर तैयार हो गया। चौथी बात महत्त्वपूर्ण है। खम्भा या ताखा नही बनाया गया था। सर्वत्र उल्लेख मिलता है। शिलाखण्डों से पाट दिया गया था। वह बात 'पम्बनम्' मे किसी प्रकार के निर्माण न मिलने के कारण स्पष्ट होती है। पाँचवी बात, निर्माण में सूत्र का प्रयोग किया गया था कि पुल सीधा बने।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णान ह्यायतं शतयोजनम् ॥ २२.६२ ।

यद्यपि सूत एक सौ योजन लम्बा बांधा गया था। परन्तु सेतु केवल २३ योजन लम्बा बांधा गया था। यह बात श्लोक सख्या २२ ७२ के 'योजनानि त्रयोविंशत' से प्रकट होती है। एक सौ योजन लम्बा सेतु बांधा गया था परन्तु पुल तेईस योजन ही क्यो बांधा गया और वह भी केवल पाँच दिनो मे। इन बातो मे मेल नही खाता। यदि एक योजन आठ मील का मान लिया जाय तो लंका और भारत के मध्य समुद्र का पाट ८०० मिल होना चाहिए। परन्तु शुद्ध पाट केवल २० मील का है। यदि सेतु २३ योजन लम्बा था तो १८४ मील लंका और भारत के मध्य दूरी होनी चाहिए। यह भी गलत होता है। 'पम्बनम्' पुल की लम्बाई देखकर यह समझा जा सकता है कि निर्माण मे विशेष दिन नही लग सका। केवल 'पाँच दिन' के उल्लेख से प्रकट होता है कि पुल ८०० या १८४ मिल लम्बा नही हो सकता। कवि वर्णन एव सेतु की विशालता दिखाने के लिये यह वर्णन किया गया है। एक योजन चार कोस का होता है। एक कोस दो मिल का होता है। परन्तु काश्मीरी कोस दो मिल तथा ढाई मिल के बीच होता था। प्रचलित कोस की दूरी से कम था। उक्त प्रमाणो तथा 'पम्बनम्' में बड़े विशालकाय शिलाखण्डो को देखकर सेतु का वही होना प्रमाणित होता है।

यहाँ तटपर मुसलमान माझियो तथा ईसाइयो की आबादी है। कुछ निम्न वर्ण के हिन्दू रहते हैं। उनसे मैंने महिरकुल सम्बन्धी पुरानी कहानी किंवा आख्यायिका जानने का प्रयास किया। परन्तु उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होने मिहिरकुल का नाम भी नही सुना था। वे केवल रामायण वर्णित गाथा को ही कुछ हेर फेर के साथ बता सकने मे समर्थ हुए।

पाठभेद

श्लोक संख्या २९९ मे 'शक्तिरुपा' शक्ति का

व्यावृत्य चोलकर्णाटलाटादींश्च नरेश्वरान् ।
सिन्धुरानिव गन्धेभो गन्धेनैव व्यदारयत् ॥ ३०० ॥

३००. लौटकर उसने मार्ग में चोल[1], कर्णाट[2], लाटादि[3] के नरेशों को परास्त कर दिया, जैसे गजराज मदगन्ध से ही हाथियों को तितर बितर कर देता है ।

मया' तथा 'शक्तिदया' और 'मार्तण्ड' का 'मार्तण्ड' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२९९ (१) यमुषदेव : यह वस्त्र क्या था ठीक से पता नही चलता । मार्तण्ड अर्थात् सूर्य का उल्लेख यहाँ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि से है । मिहिरकुल तथा उसके पिता दोनो की मुद्राओ पर सूर्य आकृति अंकित मिलती है । प्रतीत होता है । राजा शिव भक्त था । सूर्य का उपासक था । सिंहल राजा के हेमपादाकितं चिन्ह के स्थान पर उसने 'सूर्यांकितं' वस्त्र का प्रचलन किया । रानी के कुच पर उसने सिंहल राजपादाकित चिन्ह देखा था । उसके स्थान गोल उत्तुंग कुच पर उगता गोल सूर्य रश्मि तुल्य वस्त्र लगाना अधिक कलात्मक मालूम होता है । स्तनों पर पश्चिमीय देशो के रंगमंच पर स्त्रियो को इस प्रकार का गोल जरी का काम किये वस्त्र पहने देखा है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०० में 'लाटादींश्च' का 'नाटादीश्च' तथा 'व्यदारयत्' का 'व्यधारत्' पाठभेद मिलता है ।

३०० (१) चोल : आधुनिक तंजौर तथा त्रिचनापल्ली तथा पुडुकोट्ट के कुछ भागो को मिलाकर प्राचीन चोल मण्डल प्राय: बन जाता है ।

चोल राज्य पूर्वीय सागर तट पर पेन्नर नदी से वेल्लार तथा पश्चिम में कुर्ग तक विस्तृत था । यह भी मत है । वेल्लारू नदी के उत्तर दक्षिण (एक ही नाम की दो नदियाँ हैं) पूर्व में समुद्र तथा पश्चिम में कोट्टाइंक्कराय तक फैला था । वर्तमान त्रिचिनापल्ली, तंजोर तथा पुडुकोट्टह का कुछ भाग सम्मिलित था । इसकी राजधानी उरगपुर अथवा उरेपुर अर्थात् प्राचीन त्रिचनापल्ली थी । कवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में चोल देश का उल्लेख किया है । कावेरीपट्टन कावेरी नदी के उत्तर इस राज्य का बडा बन्दरगाह था । कांची अर्थात् वर्तमान कांजीवरम चोल प्रदेश का एक विशाल नगर था । नागपटम अर्थात् नाडीपत्तनम भी इसका एक बन्दरगाह था । यह बन्दरगाह आज भी चालू है । मैं यहाँ दो बार आ चुका हूँ । समुद्र उथला होने के कारण जहाज दो मिल दूर ठहरते हैं ।

तंजोर, त्रिचनापल्ली, कुम्भकोनम पूर्वकालीन चोल राज्य के प्रसिद्ध नगर हैं । ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी में गंगाई कोण्डा, चोलपुरम चोल राज की राजधानी थी । दक्षिण भारत के अभिलेखो में कावेरी नदी का नाम चोल भी दिया गया है । चोल देश तथा देशवासी दोनो के लिए आया है । (सभा पर्व ५२:३५) ।

मार्कण्डेय (५७:५·४५,) वायु (४५:५:१२४) मत्स्य पुराणो (११२:५:४६) में चोल राज्य का नाम पाण्ड्य तथा केरल के साथ आया है । इसके अतिरिक्त पद्म पुराण (३०, १०८, १०९;) स्कन्द पुराण (२:४:२६–२७) में भी उल्लेख मिलता है ।

रामायण किष्किन्धा काण्ड (४१:१२) में चोल का उल्लेख आन्ध्र, पुण्ड्र, पाण्ड्य, केरल के साथ किया गया है । उसकी दिशा दक्षिण बतायी गयी है । कावेरी नदी का उल्लेख इसी स्थल पर किया गया है ।

महाभारत सभा पर्व (२७:२१) में उल्लेख है कि अर्जुन ने चोल सेना पर विजय प्राप्त की थी । भीष्म पर्व (९:६० तथा ५०.५१) में उल्लेख

मिलता है। धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित, क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व में यहाँ के सैनिक रक्षा निमित्त तत्पर थे। कर्ण पर्व (१२ १५) में उल्लेख आता है। पाण्डवो के पक्ष से चोलवासियो ने महाभारत युद्ध मे भाग लिया था। द्रोण पर्व (११ १७) में वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण ने इस देश को जीता था।

कात्यायन ने पाणिनि के वार्तिक में चोल तथा पाण्डय का उल्लेख किया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में (४:१.१७५-७) काचीपुरम का उल्लेख किया है। अशोक ने द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में चोल, पाण्ड्य, केरल पुत्तो (केरल पुत्र) तथा सतियपुत्तो (सत्यपुत्र) का उल्लेख अपने राज्य के दक्षिणान्त के सीमान्त देश के रूप में किया है।

तिब्बतीय बौद्ध ग्रन्थो से मालूम होता है। मौर्यो ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। इसका समर्थन आधुनिक अनुसन्धानो से हो गया है। महावश में चोल तथा कावेरीपत्तनम का उल्लेख है। जातक में कावेरीपत्तन का उल्लेख मिलता है। चोल का इतिहास उतार-चढाव से भरा पडा है।

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में चोल का उल्लेख किया है। बौद्ध ग्रन्थो मे समन्त पसादिका, जातक, पिटकादि में 'कोल' जनपद का अर्थ चोल जनपद लगाना चाहिए।

परमार राज लक्ष्मण देव की प्रशस्ति में चोल विजय का वर्णन है। परन्तु यह कल्पना मात्र प्रतीत होता है। प्लोतमी ने चोल का उल्लेख 'सोर' शब्द से किया है। उस पर अरकाट का शासन होना बताती है।

मार्कण्डेय पुराण (५७.४५), वायु पुराण (४५ १२४), मत्स्य पुराण (११२ ४६) में चोल देश का उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण में—'चोला कुल्यास्तथैव च' वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में—'चौल्या कुल्यास्तथैव च' मत्स्य पुराण में 'चोला कुल्यास्तथैव च।' वामन पुराण मे 'चोल कुल्याश्च राक्षस' का उल्लेख आया है।

शक्ति सगम तन्त्र (३:७ २२) में उल्लेख किया गया है

द्राविडतैलगयोर्मध्ये चौलदेशः प्रकीर्तितः ।
लम्बकर्णाश्च ते प्रोक्ता मेदोस्यावान्तरो भवेत् ॥ २२

इससे प्रकट होता है कि चोल देश द्रविड तथा तैलग देश के मध्य स्थित था।

२ कर्णाट: वर्तमान कर्णाटक क्षेत्र है। भागवत (५ ६ ७,) महाभारत भीष्म पर्व (९ १९) मे कर्णाटक को दक्षिण भारत का एक जनपद कहा गया है। जातक (भाग १ ४४७,) महावश (६ ५, ६:३५, ८ ६-७)

भागवत पुराण (५ ६.७) मे कर्णाटक का उल्लेख आया है। इसे धरा मडल कहा गया है। स्कन्द पुराण के देशो की तालिका में कर्णाट का स्थान ४४वाँ तथा ग्राम-सख्या १२५००० दी गयी है। बृहत् सहिता मे केरल के साथ कर्णाट का उल्लेख किया गया है।

सम्मोह तन्त्र जिसकी रचना सन् १४५० ई० के पूर्व हुई थी, मे उल्लेख आता है:

सौराष्ट्रो द्रविडश्चैव (व) तैलिंग मल्याद्र (द्रि) कौ।
कर्णाटावन्त्य वैदर्भ सर्वा (र्भा) मीर (रा) समालवा (वा) ॥ ४

शक्ति सगम तन्त्र (३.७ ११४ ६) मे उल्लेख आता है

मार्जारतीर्थराजेन्द्रे कोलापुरनिवासिनी ।
तावद्देशो महाराष्ट्र कर्णाटस्याभि गोचरं ॥ ११
रामनाथ समारभ्य श्रीरंगान्तं वरेश्वरि ।
कर्णाट देशो देवो शे साम्राज्यभोगदायकः ॥ १९

शक्ति संगम तन्त्र ३ ८.१५

पूर्वे वैरजनाथस्तूत्तरेऽमरकण्टकम् ।
कांचीपुरमभध्यमागे मोहनावर्त्तमे (ए)व च ॥ १५

उक्त उद्धरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कल्हण ने कर्णाट नाम ठीक दिया है। कर्नाटक प्राचीन नाम नही है। कन्नड़ भी प्राचीन नाम नही

है। कर्नाटक देशवासियो की भाषा कन्नड़ है। उनका साहित्य कन्नड साहित्य कहा जाता है। वर्तमान मैसूर राज्य समस्त कन्नड भाषियो का राज्य है। कन्नड़ शब्द सस्कृत कर्णाट का अपभ्रंश है।

उक्त तन्त्रो के अनुसार प्राचीन कर्णाटक देश रामनाथ से श्रीरंग तक विस्तृत था। श्रीरंग शब्द वर्तमान श्रीरंगपत्तन के लिए आया है। श्रीरंग कावेरी नदी के दूसरे तट पर तंजोर के दूसरी तरफ है। रामनाथ स्थान रामनाथपुरम् अर्थात् पूर्व रामनद जिला अथवा रामनाथ मठ मदुरा जिला अथवा तुंग और भद्रा नदियो के संगम पर रामेश्वर तीर्थ हो सकता है।

कश्मीरी महाकवि विल्हण ने कुन्तल देश को कर्णाट देश का समानार्थक कहा है। विक्रमादित्य षष्ठ को 'कुन्तलेन' तथा 'कर्णान्ते' कहा गया है। कुन्तल देश कर्णाटक का एक भाग हो सकता है। हरिहर राजा द्वितीय के एक लेख सन् १३०७ ई० से पता चलता है कि कुन्तल विश्य कर्णाट देश मे था।

विजय नगर साम्राज्य के विस्तार के साथ कर्णाट प्रदेश को सीमा दक्षिण मे वहुत विस्तृत हो गयी थी। तल्लीकोट के युद्ध (सन् १६६५ ई०) के पश्चात् विजयनगर के राजा चन्द्रगिरी अर्थात चित्तूर जिला तत्पश्चात् वेल्लोर जिला, उत्तरीय अरकाट तक पीछे चले आये थे। उनका राज्य परिमित हो गया था। लघु राज्य होने पर भी उन्हे कर्नाटक का राय कहा जाता है। सन् १६९२-१७०३ ई० मे जुलफिकार अली खा कर्नाटक का नवाव वना दिया गया था।

(४) लाट : दक्षिण तथा गुजरात के मध्य का प्रदेश जिसे तापी तथा नर्वदा नदिया सीचती हैं। लाट देश था। एक मत है। तापी और माही के मध्य का देश लाट था। वन्धुवर्मा के मन्दसोर शिलालेख मे लाट का उल्लेख मिलता है। प्रतिहार राजा कक्कुक ने लाट देश मे वहुत ख्याति प्राप्त की थी। एक और मत है माही और किम नदियो के मध्य यह अचल था। उत्तरी कोकन और गुजरात का पुराना नाम कहा जाता है। एक मत है कि यह मध्य गुजरात का भाग है। खेह के कर्ण के शिलालेख से मालूम होता है कि इसमें मध्य तथा दक्षिणी गुजरात क्षेत्र सम्मिलित थे। बौद्ध साहित्य द्वीपवश तथा महावंश के अनुसार लाटराष्ट्र गुजरात था जिसकी राजधानी दीपवंश के अनुसार सिंहपुर थी। पुराने राष्ट्रकूट और गुजरात के कागजातो से प्रतीत होता है कि लाटेश्वर देश गुजरात था। लाटेश्वर राज्य की राजधानी इलापुर थी।

महाभारत अनुशासन पर्व (३५ : १७-१२) मे वर्णन आता है कि लाट एक क्षत्रिय जाति थी परन्तु ब्राह्मणो के साथ ईर्ष्या करने के कारण नीच हो गये थे।

समोह तन्त्र में (२ : ३) देशो की तालिका मे लाट देश का नाम दिया है। यथा .

चोलयां (पां) चालगौश्च मलपांठ (पालश्च सिंहल।
व्योक विडो व्योत्राश्चैव(१) का (क)र्णाटो लाट एव च॥

शक्ति सगम तन्त्र (३.७ ५५) मे लाट देश का उल्लेख मिलता है।

अवन्तीत. पश्चिमे तु वैदर्भाद् दक्षिणोऽन्तरे।
लाटदेशः समाख्यातो वर्वरे श्रृणु पार्वति ॥

लाट देश उक्त उद्धरणो के आधार पर अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ (वरार) के उत्तर पश्चिम ठहरता है। लाट देश अधोगामी माही तथा तापी के मध्य में था। राजाओ की शक्ति एवं राज्य विस्तार के कारण यह सीमा कभी-कभी माही से और परे तक चली जाती थी। उसने भृगुकच्छ (भडौच) तथा नवसारिका (नवसारी) के अंचल सम्मिलित थे। कामसूत्र (६·५·२६) के अनुसार लाट देश मालवा के पश्चिम दिशा मे था। सन् १४२५ ई० के एक दक्षिणी अभिलेख से पता चलता है कि पच द्राविड ब्राह्मणो मे कन्नदिग, तामिल, तैलग, इयाल अर्थात् गुजरात के ब्राह्मण

तस्मिन्प्रयाते प्राप्तेभ्यः शशंसुस्तत्पराभवम् ।
नगर्यो नरनाथेभ्यस्त्रुटयदट्टालमेखलाः ॥ ३०१ ॥

३०१ उसके चले जाने पर, पुनः लौटे, राजाओ से टूटती अट्टाल मेखलाओ वाली नगरियो ने उनके पराभव को कहा।

काश्मीरं द्वारमासाद्य श्वभ्रभ्रष्टस्य दन्तिनः ।
श्रुत्वा स त्रासजं घोप तोपरोमाञ्चितोऽभवत् ॥ ३०२ ॥

३०२ कश्मीर द्वार[1] पहुँचने पर गर्त[2] मे गिरे गज[3] के आर्तनाद को सुनकर वह हर्प से रोमाचित होगया।

थे। स्कन्द पुराण के पच द्राविड ब्राह्मणो मे निम्नलिखित ब्राह्मण वर्ग आते हैं।

कर्णाट श्चैव, तैलगा (द्राविडा) गुर्जरा राष्ट्रवासिन ।
आन्ध्राश्च द्राविड़ा. पच त्रिघ्यदक्षिणवासिन ॥

कर्णाट, तेलग, गुर्जर, आन्ध्र तथा राष्ट्रवासी (महाराष्ट्र) पाँच राष्ट्रवासियो को विंध्य के दक्षिण रहने वालो में गिनता हैं। अर्थात् दक्षिणापथ का अर्थ यही लगाया जाता था। विन्ध्य के उत्तर रहने वाले पच गौड ब्राह्मण पुरो की व्याख्या स्कन्दपुराण करता है

सारस्वतः कान्यकुब्जो गौडमैथिलउत्कला. ।
पञ्चगौड़ा इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥

विनयचन्द्र की काव्यशिक्षा मे लाट देश के ग्रामो की सख्या २१ हजार तथा गुर्जर देश की ७० हजार दी गयी है। स्कन्द पुराण मे देशो की तालिका में लाड किंवा लाट देश की क्रमसख्या ३८ तथा उसके ग्रामो की सख्या भी २१ हजार दी गयी हैं। उसमें कच्छ की ग्रामसख्या १४ हजार, सौराष्ट्र की ५५ हजार तथा गुजरात की ग्राम सख्या ७० हजार दी गयी है। इससे स्पष्ट है कि लाट देश का अस्तित्व प्राचीन काल में गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ से स्वतन्त्र तथा भिन्न था। लाट प्रदेश गुजरात तथा सौराष्ट्र से छोटा और कच्छ से बडा था।

लाट तथा लाट विश्य का उल्लेख प्रथम शताब्दी से सातवी तथा आठवी शताब्दी तक भारतीय वाङ्मय मे होता रहा है। इस प्रदेश का नाम पुराण तथा महाभारत और रामायण मे मुझे नही मिल सका है। प्लोतमी ने इसका उल्लेख किया है। लाट देश का प्रकृत रूप लार देश हो गया था। इसमे गुजरात तथा उत्तरीय कोकन का अचल आ जाता था। मुगलो के काल मे लार समुद्र तथा भापा मसूदी लारी का उल्लेख मिलता है। लाट देश के अन्तर्गत वरयगजा (भडौच भरुकच्छ) तथा ओगेन (उज्जैन) नगर थे।

३०२. (१) द्वार : द्वार का अर्थ दर्रा या पास है। सस्कृत में दर्रा को सकट कहते हैं। खैबर पास की तरह कश्मीर के दर्रों अर्थात् द्वारो की सुरक्षा का विशेप प्रयत्न किया जाता था। द्वारो पर सेना रहती थी। सुरक्षा की दृढ व्यवस्था की जाती थी। उन्हे द्वाराधिप, द्वाराधिपति, द्वारपति, द्वारेश, द्वाराधिकारी तथा द्वारनायक कहा जाता था। द्वार के आधीन 'द्रंग' अर्थात् चौकियाँ होती थी। द्रंगाधिपति द्रग का नायक होता था। वह द्वाराधिप के आधीन होता था। कल्हण ने द्वार का पुनः उल्लेख रा० त० ४ ४०४ ५ १३७, ८.१६३० में किया है। विशेष द्रष्टव्य है टिप्पणी १ १२२ पृष्ठ १८२।

(२) गर्त हस्तिवज जिसे आइने अकबरी में गलती से हस्तिवतर लिख दिया गया है। पीर पजाल मार्ग पर अलियाबाद सराय से आधा मील अधोभाग में है।

तदाकर्णनसंरम्भे सहर्षोऽथ विरुद्धधीः ।
शतमन्यद्गजेन्द्राणां हठेन निरलोठयत् ॥ ३०३ ॥

३०३. उस समय विरुद्धधी, प्रसन्न उस राजा ने, उस घोष को सुनने के उत्साह मे एक सौ दूसरे हाथियों[1] को बलात् गर्त[2] मे गिरवा दिया ।

---

(३) गज-हाथी : वरनीयर इसी प्रकार की औरंगजेव के समय की एक घटना का वर्णन करता है, जबकि हाथी पीर पजाल पन्तसल या पचाल धारा पर्वत पर चढ रहा था, तो गर्त मे गिर गया ।

३०३. (१) हाथी : सुग युन तथा कोसमस इण्डिको प्लीपुस्टेस (पृष्ठ ७९) दोनो इस बात पर जोर देते हैं कि श्वेत हूणो की सेना मे हाथियों का एक बडा भारी समूह था। सुंग युन लिखता है कि सेना मे सात सौ हाथी थे । इण्डिकोप्लोपुस्टेस से प्रतीत होता है कि 'गोल्लास' (मिहिरकुल) के युद्ध में जाते समय एक सहस्र हाथी से कम उसके पास नही थे ।

(२) गर्त हस्तिवंज : प्राचीन काल से ही यह घटना जहाँ हुई थी उसे लोग जानते हैं। इस घटना के पश्चात् से मिहिरकुल जिस मार्ग से लौटा था उसे हस्तिवज कहने लगे थे । आइने अकबरी मे यह घटना राजतरगिणी से ली गयी है। उसमें गलती से 'हस्तीवतर' स्थान का नाम लिखा है ।

काश्मीर इतिहास लेखक हैदर मलिक, नारायण कौल और बीरबल कचरू हस्तिवज ही नाम देते हैं। उसे पीर पंजाल पर्वतमाला मे ही स्थित करते है ।

स्तोन ने स्वयं सितम्बर १८९१ मे इस स्थान की यात्रा की थी। उसने वहाँ स्थान तथा लोकश्रुति का पता लगा लिया था। उसने वहाँ का विस्तृत वर्णन टोपो ग्राफी पीर पन्तसाल मार्ग जे० ए० एस० पी० १८९५ पृष्ठ ३७६ पर दिया है। पुराने मुगल मार्ग का वर्णन किया है । हूरपुर अर्थात् शूरपुर (३:२२७) से यह मार्ग कुछ दूर तक रामव्यार नदी के दक्षिण तट के साथ चलता है । फिर मार्ग यह ऊँचाई पार करता वाम अथवा उत्तरी तट पर चलता पुरानी मुगल सराय जिसे 'अलियाबाद' कहते है पहुँचता है । दक्षिणी पार्श्व के संकुचित मार्ग के दूसरी तरफ लगभग आध मील अलियाबाद के अधोभाग मे एक ऊँची पर्वतीय ऊर्ध्व भूमि मिलती है । वहाँ से कगार की चट्टान ढालुआ होती नदी के पेटा मे मिल जाती है । यह झुकी हुई ऊर्ध्वभूमि हस्तिभज का स्थान कहा जाता है। यहाँ के सभी लोग इस बात को दुहराते हैं । एक राजा का हाथी यहाँ से नीचे खड्ड में गिर गया था । राजा का नाम उन्हे नही मालूम है । हाथी स्वय गिरा था । अथवा गिरा दिया गया था । यह भी उन्हे मालूम नही है ।

अकबर के सड़क बनवाने के पहले मार्ग हस्तिवंज टीले पर से रामव्यार नदी के दक्षिण तट से जाता था । आइने अकबरी मे अबुल फजल भीमवर से काश्मीर के अनेक मार्गों का वर्णन करता है । वह हस्तिवज (हस्तिवतर) का उल्लेख अलग करता है (२ ७।३७) । यह पूर्वकालीन मार्ग था । अकबर की सेना इसी मार्ग से काश्मीर पहुँची थी ।

पीर पंतसल का मुगल मार्ग जो पोसियाना तथा वहराम गल्ला होकर जाता है वह दक्षिण से उस मार्ग से मिलता है । जो नन्दन सर के पास से दुरहाल दर्रा होता राजौरी जाता है । यहाँ से दक्षिण का मार्ग सीधा पडता है । इस मार्ग का लोग अब भी प्रयोग करते है । सन् १८१४ तथा १८१९ मे सिखो ने अपने सैनिक अभियान के लिये इसी मार्ग को चुना था। यह मार्ग रामव्यार नदी के दक्षिण और हस्तिवंज के ऊपर होकर जाता है । इस प्रकार नदी पार नही करना पडता ।

सीमान्त प्राचीन द्वार अथवा ढक्क का स्थान क्रमावर्त मे था । (रा० त० ३:२२७) । इस स्थान

को स्तीन ने कामलेन कोठ से पहचाना है। यह वर्तमान द्वार स्थान रामव्यार नदी के दक्षिण में है। हस्तिवज से लगभग ३ मील नीचे अर्थात् अधोभाग में है। इससे प्रकट होता है कि पुराना द्वार जिसका उल्लेख श्लोक २०२ मे कल्हण ने किया है। उसी दिशा में रहा होगा।

हस्तिवज जिस मार्ग से पार किया जाता है। वह ऊँचाई पर चढता, घास वाले ढाल से पूर्व की ओर टीले के पश्चिम पडता है। आज भी इस उपेक्षित मार्ग पर जानवरो पर सामान लादकर ले जाया जा सकता है।

हस्तवज नाम से ही प्रकट होता है। स्थान का सम्बन्ध हस्त अर्थात् हाथो से रहा होगा। परसियन पुरावृत्तकारो से पता चलता है। 'वज' शब्द का अर्थ 'रफ्तन' अर्थात् चलना है। पश्चिमी पजावी में वज माने 'चलना' आज भी प्रयुक्त होता है।

अलियाबाद सराय श्रीनगर से ४६ मील दूर होगी। पीर पतसल या पंजाल दर्रा (राकट) के पडाव का स्थान है। मुगलो के समय यह सराय थी। आश्रय स्थान का कार्य करती थी। जगल में है। शीतकाल में हिमाच्छादित हो जाता है। समुद्र की सतह से ११४०० फुट ऊचा है।

समीपवर्ती पर्वत शिखर लगभग १६००० फुट ऊँचा है। कौसर नाग पर्वत पर स्थित कश्मीर की सबसे बडी झील है।

इसका प्राचीन नाम करमसर है। शिखर का नाम नौवन्धन है। नौवन्ध तीर्थ का वर्णन महाभारत के वन पर्व १८७:५० में किया गया है। इस शिखर पर मत्स्य भगवान् के सीग से खोलकर नौका सप्तर्षियो ने बाँधा था। यह शिखर बनिहाल की पश्चिम दिशा में है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश,—तीन शिखर हैं। इनमें सबसे ऊँचा शिखर १५५३३ फुट है। यही प्रसिद्ध नौवन्धन तीर्थ है।

बाइबिल वर्णित जलप्लावन तथा हज़रत नूह के नाव से कथा मिलती है। नाव से दुर्गा प्राणियो के सहार से रक्षा निमित्त उत्पन्न हुई थी। 'महाभारत वन पर्व १८७:५०, नीलमत ३३, हरचरित चिंतामणि ४.२७, श्रीवर १ १७४, सर्वावतार ३:४,१२, ४ १७४, नौवन्धन माहात्म्य)

वह समुद्र की सतह से १३००० फुट ऊँचाई पर है। झील दो मील लम्बी है। झील के चारो ओर हिमालय की अत्यन्त शोभनीय पर्वतमालाएँ तथा शिखर है। उनमें ३ शिखर १५००० फुट ऊँचे है। वे कौसर नाग सर को जैसे निरन्तर नीचे की ओर देखती रहती हैं। 'पजाल' ईरानी शब्द है। कश्मीरी में उसे पतसल कहते हैं। इसका अर्थ होता है यात्रियो के लिए जल का प्रबन्ध। 'पौसला' अथवा 'पौसरा' से इस शब्द का मेल खाता है। पौसला, पोसरा, प्याऊ, सबील, एक ही शब्द के समानार्थक भिन्न नाम हैं। उनका सम्बन्ध पानी से है। पचाल शब्द के लिए पन्तशाल शब्द का प्रयोग किया गया है। पंचाल महाभारत मे एक जनपद के लिए प्रयुक्त किया गया है। (भीष्म पर्व ९ ४१ ९ ४७)

मैंने इस स्थान को देखा है। यदि ऊपर अर्थात् भारत से आने वाले मार्ग से श्रीनगर की ओर चला जाय तो इस अचल का सर्व प्रथम प्राचीन स्थान पुश्यानाद मिलेगा। यह वर्तमान पुशियान है। तत्पश्चात् पचाल धारा पडेगी। अनन्तर हस्तिवज और फिर उसके बाद उतराई पर क्रमावर्त, द्रग एव सूरपुर पडेगा। सूरपुर को आज कल शूरपुर कहते है। तत्पश्चात् प्राचीन देग्राम, नगकोल, मिनार और शुपियान पडता है। शुपियान के पश्चात् श्रीनगर और विजयेश्वर तक समथर भूमि मिलने लगती है।

अलियाबाद सराय रामव्यार नदी के वाम तट पर खडे ऊचे पहाड के मूल में स्थित है। नवम्बर से अप्रैल तक तुषार से ढँका रहता है। यहाँ उस समय कोई नही आता। वह उजडे,निर्जन स्थान मे उपेक्षित पडा है। यात्रियो का निवास स्थान प्रवेश द्वार के दूसरी तरफ के आगन के पश्चिम पार्श्व में हैं। इमारत भयंकर रूप में गदी है। उसमे खिड़की

तथा दरवाजे तक नही लगे है। सराय की अपेक्षा इसे अस्तबल कहना ठीक होगा। फिर भी तूफान में इससे रक्षा की जा सकती है। यह इतना ठण्डा तथा डरावना है कि वहा पर किसी प्रकार का सामान नही मिलता। सराय के चारो तरफ कैम्प लगाने लायक स्थान है। नदी के तट के समीप यहाँ हैजे द्वारा सन् १८७६ में मरे अल्फ्रेड जान नले एस० डी० की कब्र है। इस सराय पर पहुचने के पूर्व रामव्यार नदी के दक्षिणी तट पर एक स्रोतस्विनी इससे मिलती है। उसे लद्दी नाला कहते है। इसके तट से मार्ग नन्दन सर तथा भगसर को जाता है। इन सरो मे राजौरी से दरहल दर्रा से होकर पहुचा जा सकता है। वहा दो-तीन पडाव डाल कर पैदल पहुचा जाता है। यहा जाने के लिए वरमगल्ला या पोशियन या हुर-पुर से सामान आदि ले लेना चाहिए। रावलपिण्डी से आने वाले मार्ग पर यह कश्मीर उपत्यका के सबसे समीपवर्ती पडने वाले सर है। बडी ऊँचाई पर होने के कारण स्थान शीतल, पथरीला तथा रहने योग्य नही है। कठिनता से जलौनी लकडी मिलती है। यहा कुछ ऊपज नही होती। कस्तूरी मृग अलियाबाद सराय के ऊँचे पर्वतो स्थानो मे मिलते है।

अलियाबाद में यात्रियो को नही ठहरना चाहिए। सराय से ६ मील दूर शंखोद मे ठहरना चाहिए। कैम्प लगाने लायक स्थान रामव्यार नदी के दक्षिण तट पर मिल जाता है। यहाँ से सुपियान एक दिन मे जाया जा सकता है।

केप्टन नाइट ने सन् १८६० जून २७ में यहा की यात्रा की थी। वह अपनी पुस्तक मे लिखता है—दो मील दर्रा से नीचे उतरने पर अलियाबाद सराय मिली। वहा पर रहने लायक एक भाग था जिससे एक फकीर या मुल्ला रहता था। और एक युवक बंगाली तोपची जो शिकार खेलने आया था रहता था। लगभग मध्याह्न काल मे पानी बरसने लगा। वहाँ एक कष्टप्रद रूम में बचाव के लिए गया। वहाँ की फर्स सीलन से भरी थी। वहाँ पत्थर के बहुत ही सुन्दर सगतराशी की एक खिडकी थी। वहाँ की शेष इमारतो से वह मेल नही खाती थी। सराय के बीच मे हरा जल से भरा एक गड्ढा था। पृष्ठ ७१

डब्ल्यू०डब्ल्यू० अल्फ्रेड (१८७५) संक्षेप मे केवल इतना कहता है। पोशियन से अलियाबाद सराय आया जाता है। दोनो के मध्य मे दूरी ११ मील है। एक दिन मे मार्ग खतम किया जा सकता है। मुख्य दर्रा पीर पजाल का यहाँ से पार किया जाता है। वह ऊँची और खडी चढाई है। चढाई ऊँचाई पर टेढा मेढा और पहाड का किनारा काटकर कर मार्ग बनाया गया है। मार्ग काफी अच्छा है। परन्तु कही कही पर बडे बडे पत्थरो के ढोंको और असम्बन्धित पत्थरो के कारण उबड खाबड़ है। मुझे बडा आश्चर्य मालूम होता था कि कैसे रहूँ। खच्चड लदे हुए एक चट्टान से दूसरे चट्टान पर बिल्ली की तरह कूदते हुए चलते थे। ऊपर की चढाई धीमी पड़ जाती है। पेत-शिया से प्रस्थान करने पर चार घण्टे मे शिखर पर पहुँचते है। जहाँ से पोशियाना ६ मील पीछे छूट जाता है।

शिविर उतराई क्रमशः सरल दूर्वाच्छादित प्लेटो पर से आरम्भ हो जाती है। ५ मील लम्बा तथा आठ मिल चौड़ा मार्ग ५ मील चलकर अलियाबाद सराय पहुचा देता है। यह यात्रियो के लिए एक साधारण आश्रम स्थान है। यह एकाकी एक निर्जन स्थान में खडा है। वर्ष के अधिक महीनो में वह वीरान पडा रहता है। क्योकि बर्फ के कारण यहाँ पहुँचना कठिन हो जाता है।

बादशाह (औरंगजेब) पीर पजाल पर्वत पर चढ रहे थे। वह पहाड़ो मे सबसे ऊँचा था। वहाँ से कश्मीर का दृश्य मिल जाता है। बादशाह के पीछे हाथियो की लम्बी कतार थी। जिनमे महिलाएँ थी। हौदो तथा अम्बारियो में बैठी थी। पहला हाथी लम्बी चढ़ाई देखकर भयभीत हो गया। वह पीछे

हटा। उसके पीछे हटने पर पीछे वाले हाथी अपने पीछे वाले हाथी को धक्का दिये। इस प्रकार हट जाने के कारण पक्ति मे हाथियो ने अपने पिछले आने वाले को हठात् धक्का दिया। वहाँ चढाई और मार्ग पतला था। घूम न सकने के कारण उस घबडाहट मे १५ हाथी ऊँची चढाई से नीचे गिर गये। उन पर चढी स्त्रियो में तीन मर गई। शेष इस लिए बच गयी कि वहाँ चढाई बहुत ऊँची नहीं थी। हाथियो को बचाने का कोई उपाय नही था। हाथी जब अच्छी सडक पर गिर जाते हैं उस समय भी उन्हे उठने मे कष्ट होता है। हाथियो के गिरने के दो दिन पश्चात् हम लोग इस मार्ग से गुजरे। मैंने उन गरीब हाथियो को देखा कि उनमे कुछ अभी भी सूँड हिला रहे थे। बादशाही फौज जो एक ही पक्ति से इस मार्ग से जा रही थी उसे बहुत असुविधाओ का सामना करना पडा था। शेष दिन तथा रात गिरो स्त्रियो तथा सामान बचाने मे लगाया गया।

हमें तीन चीजें स्मरण रहेगी जब हम यहाँ से जा रहे थे। पहला तो यहाँ गरमी तथा ठडक दोनो ऋतुओ का अनुभव एक ही घण्टा के बीच मे हुआ। चढते समय कडी धूप लगी और पसीना आने लगा। चोटी पर पहुँचते ही जमा बर्फ मिला। बर्फ काटकर जाने वाली फौज ने रास्ता बना दिया था। कुछ पानी बरसने लगा था। शरीर को चुभने वाली ठण्डी हवा चलने लगी थी।

दूसरी चीज यह थी कि २०० कदम के बीच ही दो दिशाओ से एक साथ हवा चल रही थी। चोटी पर चढने के समय यह उत्तर से बह रही थी। जब मैं उतरने लगा तो यह पीठ की तरफ अर्थात् दक्षिण से बहने लगी।

तीसरी चीज यहाँ पर मुझसे एक फकीर से भेंट हुई। वह जहाँगीर के समय से यहाँ की चोटी पर रहता था। उसके धर्म के विषय मे नही कहा जा सकता था कि वह किस धर्म का अनुयायी था। कहा जाता था कि वह अलौकिक बातें करता था। वह विचित्र बिजली पैदा कर देता था। हवा का तूफान चला देता था। वह तुषार तथा वर्षा तक करा देता था।

उसकी सफेद और घनी दाढी बहुत लम्बी थी। वह बडी रुखाई तथा कडाहट के साथ भीख माँगता था। वह देखने मे जगली मालूम होता था। वह यात्रियो के एक पत्थर पर रखे गये कतार मे मिट्टी के बरतन से पानी पी लेने के सकेत के साथ जल्दी से जल्दी चुपचाप चोटी छोडकर चले जाने का इशारा करते हुए वहाँ ठहरने के लिए हाथ से मना करता था। वह उन लोगो पर बडा गुस्सा होता था जो हल्ला करते थे। मैं उसको गुफा में गया। आधा रुपया उसके हाथ पर रखा। उसको देखा कि मुखाकृति पर कुछ कोमलता आई है। उसने मुझे बताया कि यहाँ हल्ला करने से बडी भयंकर आँधी आती है। औरगजेब ने उसकी सलाह पर बुद्धिमानी से काम लिया। फौज को जल्दी तथा चुपचाप चले जाने का आदेश दिया। उसका पिता शाहजहाँ भी इसी प्रकार विवेक से काम लेता था। जहाँगीर ने एक बार उसके कहने के अनुसार काम नही किया और झाँझ तथा तुरही बजवाया। वह बडी कठिनता से विनाश होने से बच पाया। पृष्ठ ४०८–४१०

पुस्तक का सम्पादक इस पर नोट लिखता है कि आज कल भी कश्मीर के पर्वतो की चोटी पर स्थित पवित्र स्थानो पर यात्रा करने वाले मन्त्रादि तथा प्रार्थना नही करते जब कि वे बर्फ के किनारे पहुँचते हैं। क्योकि वाणी की प्रतिध्वनि के अवालाच को अस्थिर कर देता है और उसके लपेट मे कितने ही नर नारी नष्ट हो जाते हैं। नोट पृष्ठ ४१०

उक्त वर्णित फकीर की मजार सम्भवतः दर्रा की चोटी पर है। यहाँ बहुत यात्री अब भी आते है। कश्मीरी बहुत दूर से लाश दफनाने के लिए वहाँ लाते हैं। आज भी अठपहले बाँचे टावर के पास एक फकीर दिखाई पडता है। वह दर्रा की चोटी पर रहता है। वह यात्रियो को दूध, पानी तथा आवश्यक सामान देता है। नोट पृष्ठ ४०९

स्पर्शोऽङ्गानि यथा वाचं कीर्तनं पापिनां तथा ।
सदूषयेदतो नोक्ता तस्यान्याऽपि नृशंसता ॥ ३०४ ॥

३०४. जिस प्रकार पापियों का स्पर्श अंगों को दूषित करता है, उसी प्रकार पापियों का कीर्तन वाणी को सन्दूषित करता है। अतएव उसकी अन्य नृशंसता का वर्णन नहीं किया गया है।

को वेत्त्यद्भुतचेष्टानां कृत्यं प्राकृतचेतसाम् ।
धर्मं सुकृतसंप्राप्तिहेतोः सोऽपि यदाददे ॥ ३०५ ॥

३०५ अद्भुत चेष्टा करने वाले सामान्य चेतस प्राणियों के कृत्य को कौन जान सकता है, जबकि वे भी सुकृति प्राप्ति हेतु धर्म का आश्रय लेते हैं।

श्रीनगर्यां हि दुर्बुद्धिर्विदधे मिहिरेश्वरम् ।
होलाडायां स मिहिरपुराख्यं पृथुपत्तनम् ॥ ३०६ ॥

३०६. उस दुर्बुद्धि राजा ने श्रीनगर मे मिहिरेश्वर[1] तथा होलाडा[2] में मिहिरपुर[3] नामक महा नगरों की स्थापना की।

आइने अकबरी मे भी यह कहानी दी गयी है। मिहिरकुल लज्जाहीन क्रूर राजा था। स्वर्ग ने उसे इजाज़त नही दी थी कि वह काफी फतह करे। एक बार जब वह पर्वत से हस्तीवतर स्थान पर उतर रहा था तो एक हाथी फिसल कर गर्त मे चला गया। मृत्युमुग्न कष्ट मे पडे हाथी का आर्तनाद सुनकर मिहिरकुल प्रसन्न हो गया। तुरन्त आदेश दिया कि एक सौ हाथी और उस स्थान पर ढकेल दिए जाएँ। वह क्रूर राजा उन हाथियो का करुण क्रन्दन सुनकर आनन्द विभोर हो उठा।

बरनीयर कहता है कि औरंगजेब जब कश्मीर जा रहा था तो इस स्थान पर १५ हाथी नीचे गिर कर मर गये।

विचित्र बात है कि सुंग-युन तथा यूनानी लेखक कौसमस दोनो ही हूणो की सेना मे विशाल हाथीवाहिनी का वर्णन करते है। सुंगयुन सशस्त्र सुमज्जित ७०० शिक्षित हाथियो का वर्णन मिहिरकुल की सेना मे करता है। कोसमस ने गोल्ला को युद्ध पर एक हजार से कम हाथियो के साथ जाते नही कहता।

पीर पजाल का प्राचीन नाम पचाल धारा है। वह कश्मीर की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर स्थित है।

निम्नलिखित उल्लेख नीलमत पुराण में इसके सन्दर्भ मे आता है:

तदा स्थापयते राजंस्तां च नावं जगद्गुरुः ।
मत्स्यरूपधरो विष्णुः शृङ्गे कृत्वापकर्षयति ॥
आकृष्य नावं तां देवस्तस्मिन्पर्वतमस्तके ।
बद्ध्वा व्रजति भूपाल ह्यभिज्ञातां तद्गतिम् ॥
इदं च शिखरं पश्य देशेऽस्मिन्नृप पश्चिमे ।
नौबन्धनमिति ख्यातं पुण्यं पापभयापहम् ॥

६०–६३. 39-41

नानेतान् शिखरान्पश्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान् ।
नौबन्धशिखरं यत्तु स एव नृप शंकरः ॥

क्षेमेन्द्र कवि ने समयमातृका मे वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३०५ में 'वेत्यद्भुत' का पाठभेद 'वेत्युद्वृत्त' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३०६ मे 'होलाडाया' का पाठभेद 'हीलाडाया', 'होलाह्वाया', 'होलडाया' तथा 'होलाढ्वाया' मिलता है।

अग्रहाराङ्गगृहिरे गान्धारब्राह्मणास्तत ।
समानशीलास्तस्यैव ध्रुवं तेऽपि द्विजाधमाः ॥ ३०७ ॥

३०७. उसके समान शील वाले, वे द्विजाधम गान्धार[1] ब्राह्मणो ने उस राजा से अग्रहार ग्रहण किया।

पादटिप्पणियाँ :

३०६ (१) मिहिरेश्वर यह मन्दिर कहाँ था कुछ पता नहीं चलता। राजा मिहिरकुल ने अपने नाम पर मिहिरेश्वर की स्थापना की। इससे पता चलता है कि वह पूर्णतया शिवभक्त था।

(२)होलाडा : प्राचीन हालदा अचल अवन्तीपुर के दक्षिण दिशा में है। इसके पूर्व कटिका, भवच्छेद, खोल तथा उत्तर में पर्वत और पश्चिम में वितस्ता नदी पड़ती है। होलडा क्षेत्र इस समय वुलर परगना नाम से विख्यात है। काश्मीर उपत्यका में वितस्ता के उत्तर- पूर्व दछिनपुर तथा वीही परगना के वीच में स्थित है। इसका प्रशासकीय केन्द्र त्राल है। लार अर्थात् लोहर तथा देवसर के सम्बन्ध में इसका पुनः उल्लेख आया है। रा० त० ८.३११५। तरंग ७ १२२८ के वर्णनो से प्रकट होता है कि यह मदव राज्य में था। मदव राज्य मराज है। काश्मीर उपत्यका का पर्वीय भाग है। इसका स्थान रा० त० ८:१४३० के वर्णन से और स्पष्ट हो जाता है। राजा जयसिंह के दो अधिकारी होलदा के विद्रोही डामरो द्वारा घेर लिये गये थे। यह स्थान अवन्ति स्वामी का मन्दिर था। अवन्तीपुर में था। अवन्तीपुर उलर परगना में है। रा० तरगिणी (८:७३३,२८०८,३११५) से और समर्थन मिलता है। होलदा के डामर खूदवी अर्थात् खुव के डामरो के साथ दिखाये गये है। खुव वीही परगना के समीप था। जोनराज के वर्णन (श्लोक सं० ५४८) से मालूम होता है।

(३) मिहिरपुर। स्थान का पता नही चला है। इस नाम तथा इससे मिलते किसी अपभ्रंश नाम का कोई स्थान अभी तक नही पाया जा सका है।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ३०७ में 'गान्धारब्रा' का पाठभेद 'गान्धाराब्रा', मिलता है।

३०७ (१) गान्धार : काबुल उपत्यका का गान्धार एक प्रदेश था। इसमें अग्रहार, लम्बक (लघमान) कपिसा (कावुल तथा कोहिस्तान का उत्तरी भाग) तथा पुरुषपुर (पेशावर) सम्मिलित थे।

गान्धार के ब्राह्मणो का वर्णन महाभारत के कर्ण पर्व में आता है। उनका वर्णन पजाव के ब्राह्मणो के साथ उनके असनातनी आचार के सम्बन्ध में किया गया है। महाभारत की वातो का ही समर्थन कल्हण के वर्णन से मिलता है। कल्हण उन्हे द्विजाधम कहा है। महाभारत काल में भी गान्धार ब्राह्मणो के आचार उत्कृष्ट नही माने गये थे और लगभग ३ हजार वर्ष पश्चात् कल्हण ने उनकी निन्दा दूषित किंवा क्रूर मिहिरकुल द्वारा किए गए दान लेने के कारण किया है। काश्मीर के ब्राह्मणो ने सम्भवत पापो तथा दुरात्मा के हाथो द्वारा प्रदत्त पाप धन रूप दान लेना अस्वीकार किया था। अतएव गैर काश्मीरी अर्थात गान्धार के ब्राह्मणो को दान देने की वात कहकर कल्हण काश्मीरी ब्राह्मणो के चरित्र की गौण रूप से प्रशंसा करता है।

नीलमत पुराण मे गान्धार देश का उल्लेख मिलता है

दर्वाभिसार गान्धार जुहुण्डुरशकान खसान्।
तंगणान् माण्डवान् मद्रानन्तर्गिरि वहिर्गिरीन् ॥
80:१२२

दार्वाभिसारगान्धारजालन्धरशका खसा.।
तंगणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिः वहिर्गिरिः ॥
139:१६२

मेघागमः फणिभुजं प्रथितान्धकारः
प्रीणाति हंसममलो जलदात्ययश्च।
प्रीतेः समानरुचितैव भवेन्निमित्तं
दातुः प्रतिग्रहकृतश्च परस्परस्य ॥ ३०८ ॥

३०८. घोर अन्धकार वाले मेघ का आगमन मयूर को तथा जलद का निर्मल अन्त हंस को प्रसन्न करता है। क्यो कि दाता एवं ग्रहीता की समान रुचि ही परस्पर प्रेम का कारण होती है।

स वर्षसप्तति भुक्त्वा भुवं भूलोकभैरवः।
भूरिरोगार्दितवपुः प्राविशज्जातवेदसम् ॥ ३०९ ॥

३०९. वह भूलोक भैरव सत्तर वर्ष भूमि का भोग करके अत्यधिक रोग ग्रस्त होकर, अग्नि में प्रवेश किया।

सोऽयं त्रिकोटिहा मुक्तो यः स्वात्मन्यपि निर्घृणः।
देहत्यागेऽस्य गगनादुच्चचारेति भारती ॥ ३१० ॥

३१० इसके शरीर त्यागने पर गगन से यह भारती उच्चरित हुई—'त्रिकोटिहन्ता वह मिहिरकुल मुक्त हो गया, जिसने अपने शरीर पर भी दया नही की।'

उरुचः क्रोकणो वायुः शुक्रो वैश्रवणो यमः।
मण्डक नासो गान्धारो नाग. शूर्पारिकिर्ध्वनिः॥
894:१०६४

विशेष द्रष्टव्य है–'गान्धार' पृष्ठ १०६ टिप्पणी श्लोक १६५

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०८ में 'त्ययश्च' का 'न्गयश्च' 'निमित्तम्' का 'नितान्त' तथा 'ग्रहकृतश्च' का पाठभेद 'ग्रहहृतश्च' मिलता है।

३०९. (१) **भूलोकभैरव :** अष्ट भैरव निर्दिष्ट है, उनके नाम हैं—असितांग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कुपति किंवा कपालिन्, भीषण एवं संहार। भैरव की गणना रुद्र गणो में होती है। भैरव वाराणसी नगर के क्षेत्रपाल (कोतवाल) है। लिंग पुराण वीरभद्र को ही भैरव का रूप मानता है। कालिका पुराण में भैरव स्तोत्र नामक मंत्र की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है। उसके अनुसार वाराणसी असुरविख्यात राजा विजय भैरव का वंशज था। उसने खाण्डवी नगर को विध्वस्त कर खाण्डव बन निर्माण किया था। (कालिका पुराण ९२)।

भैरव की उत्पत्ति की कथा लिंग पुराण (१.९८) मे दी गयी है। एक समय विष्णु तथा ब्रह्मा गर्वोद्धत होकर भगवान् शकर का अपमान करने लगे। शिव क्रुद्ध हुए। एक अत्यन्त भयानक शिवगण को उत्पन्न किया। वही भैरव है। उत्पन्न होते ही वाम कर की उँगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवाँ मुख काट डाला। ब्रह्मा ने अपने पाँचवें मुख से शिव की निन्दा की थी। अतएव उसे ब्रह्म हत्या का पातक लग गया। शिव ने ब्रह्मा का कपाल भैरव को थमा दिया। आदेश दिया कि कपाल में भिक्षा माँगो। साथ ही शकर ने ब्रह्म हत्या से एक स्त्री का निर्माण किया। और उसे भैरव का अनुकरण करने का आदेश दिया।

अन्ततोगत्वा वाराणसी क्षेत्र में प्रवेश करने पर इसकी ब्रह्म हत्या दूर हो गयी। तत्पश्चात् ब्रह्मा का कपाल भैरव के हाथ से गिर गया। जिस स्थान पर

इत्यूचुर्ये मते तेषां स एव परिहारदः ।
खण्डयन्वीतघृणतामग्रहारादिकर्मभिः ॥ ३११ ॥

३११ जो लोग इस प्रकार कहते थे, उनके मन मे था। परिहार देने वाले, उसी राजा ने अपनी निर्दयता को, अग्रहारादि कर्मों द्वारा खण्डित कर दिया था।

आक्रान्ते दारदैर्भौट्टैर्म्लेच्छैरशुचिकर्मभि ।
विनष्टधर्मे देशेऽस्मिन्पुण्याचारप्रवर्तनम् ॥ ३१२ ॥

३१२ दरदो,[1] भौट्टो,[2] म्लेछों[3] तथा अन्य अशुचि कर्मों द्वारा आक्रान्त इस विनष्टधर्म देश मे उसने पुण्याचार का प्रवर्तन किया।

गिर गया उसे कपाल मोचन तीर्थ कहते हैं। (शिव० शत ८ तथा स्कन्ध पुराण ३·१:२४)।

भैरवी यातना काशी में एक प्रचलित शब्द है। काशी में मृत व्यक्ति को भैरव दो घडी में यातना देकर उसे मुक्ति दे देते हैं। इसी के आधार पर कहा जाता है कि काशी में मरने से मुक्ति होती है।

कल्हण ने भू-लोक भैरव मिहिरकुल को कहा है। वह इतना भयकर था कि काल स्वरूप भैरव तुल्य था। इस भूमि का अर्थात् मानव रूप वह भैरव था।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ३१० में 'गगना' का पाठभेद 'गणना' मिलता है।

३१०. (१) **भारती :** इसका शाब्दिक अर्थ सरस्वती, वाणी, तथा वाणी की अधिष्ठात्री है। यहाँ पर कल्हणने आकाश वाणी के अर्थ में प्रयोग किया है। वह वाणी जो सुनाई पडती है। परन्तु कहने वाला दिखाई नही पडता।

३११ (१) **खण्डित :** दान की महिमा का वर्णन कल्हण यहाँ करता है। दान के द्वारा मिहिर-कुल के नृशस एव निर्दयता पूर्ण कार्यों के दोषो किंवा पापो का मोचन हो गया था। यदि मिहिरकुल ने क्रूरता की तो उसने उपकार भी किया था। कल्हण उसके गुण एव अवगुण दोनो चरित्रो का यहाँ चित्रण करता है।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ३१२ में 'भौट्टै' का पाठभेद 'भौट्टै' तथा 'भट्टै' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१२. (१) **दरद :** कल्हण वर्णित दरद जाति आधुनिक दरद है। वे आर्य जातीय हैं। प्राचीन यूनानी लोगो को उनका ज्ञान था। वे इस समय भी सिंधु नदी के पश्चिम चित्राल और यासीन से गिलगिट, चिलास, वुजी तथा कृष्णगगा की उपत्यका मे रहते हैं। उनका निवास स्थान काश्मीर के उत्तर दिशा में है। (रा० त० ७ ११७१ तथा ८:२७०९) दरद के कुछ ग्रामो में विचित्र प्रथा है। धर्म परिवर्तन बहुत होता रहता है। बौद्ध माता-पिता का पुत्र मुसलमान और मुसलमान माता-पिता का पुत्र बौद्ध धर्मावलम्बी हो जाता है। इस ओर के दरदो में किसी भी धर्म के प्रति विशेष आस्था नही है।

यूनानी इतिहास लेखक हिरोडोट्स के समय से आज तक दरदो के निवास स्थानो में सम्भवत' कोई परिवर्तन नही हुआ है। यह कश्मीर की उपत्यका के उत्तरीय पर्वत माला में सुदूर पडता है।

(२) **भौट्ट :** तिब्बत वशीय जाति है। कश्मीर के पूर्व तथा पूर्व-उत्तर अर्थात् वर्तमान काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र लद्दाख पास तथा कुछ स्कर्दू में निवास करते हैं। जो जिला पास (रा० त० ८:२८८६) के वर्णन से मालूम होता है कि

दरस तथा लद्दाख के ऊँचे पर्वत भौट्ट तथा काश्मीर के मध्य जलच्छाया बनाता था। श्री जोनराज ने द्वितीय राजतरंगिणी में भौट्टो का उल्लेख किया है। कल्हण वर्णित भौट्ट यही लोग थे।

घनाम्बु प्राप्य भौट्टेभ्य' कश्मीरजनविक्रयात्।
गर्ज्जन्नाशाः प्यधात्सर्वास्तदा रिञ्चनवारिदः ॥१५८

भौट्टांल्लहरकोटान्तः पट्टविक्रयकौतुकान्।
प्रत्यहं वचनोद्योगै रिञ्चनोऽपविसृष्टवान् ॥ १६७॥

× × ×

स्वदेशे मन्त्रिणोस्तस्य कोटभट्टोदयश्रियोः।
समरेषु भरत्वासीच्चन्द्रडामरलौल्योः ॥ ३९९ ॥

× × ×

केवलं हृदयं शून्यं भौट्टानां नाभवत्तदा।
भूमिपालभयावेशात् कोषोऽपि चिरसञ्चितः ॥८२५॥

श्रीवर ने तृतीय अर्थात् जोनराज तरङ्गिणी मे भौट्टो का उल्लेख किया है।

अथाशङ्क्या नृपः पाप तद्वधात् कतिचिद्दिनैः।
बहिर्निष्कासयामास भुट्टमार्गेण तं सुतम् ॥१:७१॥

× × ×

कालेनादमखानेऽथ भुट्टान् जित्वा समागते।
हाज्यिखानोऽकरोद्यात्राः लोहराद्रौ नृपाज्ञया ॥१:८२॥

× × ×

पित्र्याः पैतामहा वापि विरुद्धा बन्धनेऽवसन्।
भुट्टदेशं धिया तस्य तेषां निष्कासनं व्यधात् ॥३:३२

सम्मोह तन्त्र में भोट देश का उल्लेख किया गया है :

ऐराकभोटांतचीन (नाः) महाचीनस्तथैव च।
नेपाल(लः) शीलटट्टश्च, गौडकोशलमगधाः ॥

—शक्ति संगम तन्त्र ३:७:३३

काश्मीरं तु समारभ्य कामरूपाच्च पश्चिमे।
भोटान्तदेशो देवि ऐराकः परिकीर्तितः ॥ ३३ ॥

उक्त उल्लेखों से भोट देश का महाचीन, नेपाल, काश्मीर, कामरूप ऐराक के समीप वर्णन किया है। काश्मीर से कामरूप अर्थात् आसाम तक यह अंचल लम्बा था। मानसरोवर के दक्षिण था। इस प्रकार प्राचीन भोट्ट देश की सीमा उत्तर में मानसरोवर, दक्षिण में नेपाल, पूर्व में कामरूप किंवा आसाम तथा पश्चिम में काश्मीर था। वर्तमान तिब्बत का यह दक्षिणी भाग था। वर्तमान भूटान सिक्किम तथा तिब्बत का वह दक्षिणी भाग जो मानसरोवर के दक्षिण मे पडता था, भोट देश में सम्मिलित समझा गया था। तिब्बती लोगो के लिए भोट्ट, भोटिया तथा भोट शब्द का प्रयोग किया गया है।

कल्हण ने 'भुट्टराष्ट्राधवन' भौट्ट देश जाने वाले मार्ग जोजिला पास का नाम दिया है। (रा० त० ८.२८८७)

(३) म्लेच्छ : यह सम्भवतः हूणो के लिये प्रयुक्त किया गया है जो सिन्धु महानद के उस पार रहते थे। किन्तु म्लेच्छ शब्द का रूप तथा उससे सम्बन्धित होने वाले लोगो की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है।

मुद्राराक्षस अंक प्रथम (१:२) मे चाणक्य कहता है—'यथा तस्य म्लेच्छराजबलस्य मध्यात् प्रधानतमाः पञ्च राजानः परया भक्त्या राक्षसमनुवर्तन्ते। ते यथा—

कौलूतश्चित्रवर्मा मलयनरपतिः सिंहनादो नृसिंहः
काश्मीरः पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिमो सैन्धवः सिन्धुषेणः।
मेघाक्षः पञ्चमोऽस्मिन् पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो

म्लेच्छ राज मलयकेतु की सेना के पाँच प्रमुख राजगण राक्षस के बड़े भक्त तथा अनुयायी थे। उनका नाम— कुलूतराज चित्रवर्मा, मलयनरेश सिंहनाद, काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष, सिन्धु-देशाधिपति सिन्धुषेण, पारसीकाधिराज मेघाक्ष था।

राक्षस छठवें अंक में मलयकेतु को म्लेच्छ कहता है:—

आर्यदेश्यान्स संस्थाप्य व्यतनोद्दारुणं तपः ।
सकल्प्य स्ववपुर्दाहं प्रायश्चित्तक्रियां व्यधात् ॥३१३॥

३१३. आर्य देशीय[1] जनो को संस्थापित कर, उसने दारुण तपस्या[2] की। शरीर दाह[3] का संकल्प करके प्रायश्चित्त कर्म किया।

मलयकेतु पर्वतीय राजकुमार है। उसके साथी कुलूत आदि राजा पर्वतीय है।

कल्हण का वर्णन स्पष्ट इस ओर सकेत करता है कि सीमा पर रहने वाले म्लेच्छादि काश्मीर मे प्रवेश कर पुराने आचार को नष्ट कर दिये थे। म्लेच्छ एव काश्मीरियो का सम्पर्क इससे प्रकट होता है।

म्लेच्छ शब्द का अर्थ शुक्रनीति के समय और रूप ले लिया था। आचार भ्रष्ट निकृष्ट तथा हेय व्यक्तियो तथा वर्ग के लिये म्लेच्छ शब्द प्रयुक्त होने लगा था। समय के साथ शब्द के अर्थ तथा भाव में परिवर्तन होता है। म्लेच्छ शब्द इसका एक उदाहरण है।

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो मोदिता गुणकर्मभि ॥१.३८॥

जन्मना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ नही होते किन्तु गुण एव कर्म के भेद के अनुसार होते है।

राजा को भी म्लेच्छ कहा गया है यदि वह अपने कर्तव्य का पालन नही करता—

असत्यवादिन गूढचार न वैश्च शास्ति य ।
स यो म्लेच्छ इत्युक्त प्रजाप्राणधनापह ॥ १ १३६॥

असत्यवादी, गूढचारी का जो राजा शासन नही करता वह प्रजा के प्राण एव धन का अपहर्ता म्लेच्छ है।

म्लेच्छ की एक और परिभाषा शुक्रनीति करती है—

व्यक्तस्वधर्माचरणा निर्घृणा परपीडका ।
चण्डाश्च हिंसका नित्य म्लेच्छास्ते ह्यस्यविवेकिन.।

धर्माचरण त्यागी, निर्दय, परपीडक, चण्ड, नित्य हिंसक तथा अविवेकी व्यक्ति म्लेच्छ है।

'मृच्छकटिकम्' नाटक में म्लेच्छो को अशुद्ध भाषा भाषी कहा गया है। उनका उच्चारण ठीक नही होता था। (अक ६)

पाठभेद.

श्लोक सख्या ३१३ मे 'देश्यान्' का पाठभेद 'देशान्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३१३ (१) आर्य देशीय : आर्यदेशीय ब्राह्मणो के कश्मीर मे बसाने का उल्लेख मिलता है। परन्तु 'आर्यदेशीय जनो' का यहाँ उल्लेख किया गया है। मिहिरकुल, प्रतीत होता है, आर्यदेश अर्थात् कश्मीर के बाहर पजाब आदि भारतीय भागो से सभी श्रेणी तथा वर्गों के जनो को लाकर कश्मीर मे आबाद किया था।

(२) दारुण तपस्या : प्रतीत होता है, मिहिरकुल योगी था। उसने दारुण तपस्या की थी। उसकी तपस्या इतनी उग्र थी कि उसने स्वेच्छया आग मे प्रवेश किया।

राजा सिद्ध के प्रसंग में लिखा जा चुका है। कि वह भी योगी था। उसने भी तपस्या की। तत्पश्चात् सपत्नीक प्राण विसर्जन किया।

यहाँ प्राण विसर्जन की प्रक्रिया अत्यन्त क्रूर तथा रोमांचित करने वाली है। मिहिरकुल का यह चरित्र वर्णन उसे योगियो की श्रेणी में रख देता है। उसे सासारिक माया व्याप्त नही थी। श्लोक सख्या ३१५ के वर्णन से प्रकट होता है। उसने छूरी,

अत एवाऽग्रहाराणां सहस्रं प्रत्यपादयत् ।
गान्धारदेशजातेभ्यो द्विजेन्यो विजयेश्वरे ॥३१४॥

३१४. अतएव विजयेश्वर मे उसने एक सहस्र अग्रहार गान्धार देशीय द्विजो[1] को दिया ।

क्षुरखड्गासिधेन्वादिपूर्णे यः फलके तदा ।
वह्निप्रदीप्ते सहसा पर्यन्ते स्वां तनुं जहौ ॥३१५॥

३१५. तत्पश्चात् उसने सहसा क्षुर, खड्ग, असिधेनु आदि से पूर्ण वह्नि प्रदीप्त फलक पर अपने शरीर[3] को डाल दिया ।

कृपाण, असि आदि जडित तपे तख्त पर अपना शरीर डाल दिया था ।

उसका शरीर गर्म तीक्ष्ण धार वाले वस्तुओ से छिद गया । गर्म लोहा घावो मे घुस गया । उसे दारुण कष्ट दिया । इस प्रकार वह फलक पर जलता, घावो से छिदता, प्राण विसर्जन किया । यह कार्य साधारण नही है । उसके इस कार्य से प्रकट होता है । वह नृशंस होते भी कितना व्यक्तित्व सम्पन्न, प्रतिभाशाली, उग्र तेजस्वी पुरुष था ।

पादटिप्पणी :

३१४ (१) गान्धारदेशीय द्विज : काश्मीर के ब्राह्मणो से, प्रतीत होता है, मिहिरकुल अप्रसन्न था । अपनी इस अप्रसन्नता के प्रतीक स्वरूप, उसने द्विजाधम गान्धार ब्राह्मणोको, जो कि आचारहीन महाभारत काल से ही कहे जाते थे, प्रश्रय दिया । उन्हे दान देकर उनकी मर्यादा ऊपर उठाने का प्रयास किया । विजयेश्वर के उल्लेख से मालूम होता है । उन दिनो वह स्थान ब्राह्मणो तथा पुण्यकर्मियो का केन्द्र हो गया था ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ३१५ में 'धेन्वा' का 'धन्वादि' तथा 'क्षुर' का 'खर' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३१५ (१) श्लोक ३१२-३१६ · एक मत है कि श्लोक ३१२ से ३१६ तक 'कुलकम्' है । श्री स्तीन ने ३१२ से ३१६ तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने ३१२ से ३१७ तक इन्हें 'कुलकम्' मानकर उनका एक साथ अनुवाद किया है । मैंने यहाँ श्लोको के प्रत्येक पदो को भिन्न मानकर अनुवाद किया है । यदि सबका एक साथ 'कुलकम्' समझकर अनुवाद किया जाय तो अनुवाद सरल तथा साहित्यिक दृष्टि से अच्छा और भाव प्रधान होगा । परन्तु प्रत्येक श्लोक के शाब्दिक अर्थो का तात्पर्य समझने में कठिनाई होगी ।

(२) असिधेनु . यहाँ पर छुरी के अर्थ मे प्रयोग किया गया है । छोटी छुरी आदि को असिधेनु कहते है ।

(३) शरीर : कल्हण ने वहाँ तीसरे उदाहरण से योग, साधन एवं मनोवल के कारण स्वत शरीर त्यागने का वर्णन किया है । इसके पूर्व जलौक ने सपत्नीक तपस्या द्वारा तथा सिद्ध ने अपनी सिद्धता द्वारा शरीर त्याग किया था । मिहिरकुल ने अपने अद्भुत मनोबल के द्वारा शरीर त्याग किया । कल्हण ने यह तीसरा प्रकार स्वेच्छया शरीर त्याग का उपस्थित किया है ।

स्वतः आत्मदाह से प्राण विसर्जन करना प्राचीन काल से प्रचलित था । परन्तु यह आत्महत्या सनातनी विचार के अनुसार माना जायगा । बौद्ध देशो मे आज-कल भी प्रचलित है । वीतनाम के

युद्ध के समय अनेक बौद्धभिक्षु तथा भिक्षुणियो ने तत्कालीन राजव्यवस्था के अन्याय के विरोध मे आत्मदाह किया था। उनकी सहानुभूति मे बरमा, श्री लका तथा जापान तक में बौद्ध भिक्षु किंवा भिक्षुणियो ने किसी अन्याय के प्रतिकार अथवा अन्याय के प्रतिकार निमित्त आत्मदाह करनेवालो की सहानुभूति मे आत्मदाह किया है।

विदेशी पर्यटको ने अनेक घटनाओ का उल्लेख किया है जहाँ योगी, अवधूत अथवा कापालिक प्रसन्नता पूर्वक अग्नि में कूदकर प्राण दे दिया करते थे। दक्षिण मे एक प्रथा थी कि किसी निश्चित समय तक राज्य करने के पश्चात् राजा पर्वत से कूदकर प्राण दे देते थे।

भगवान् रामचन्द्र ने स्वय सरयू में स्वत. जल समाधि लेकर स्वर्गारोहण किया था। स्वामी रामतीर्थ ने भी स्वत. जलसमाधि ले ली थी। त्रिपिटक मे भगवान् बुद्ध के जीवन काल में ही राजगढ की शिला से कूदकर अग्रश्रावक ने आत्म-विसर्जन किया था।

मुद्राराक्षस नाटक के अक ६ में पुरुष इस आत्मदाह प्रथा को ओर सकेत करता है—'साम्प्रत स दीनजनदत्तविभवो ज्वलन प्रवेष्टुकामो नगरान्निष्क्रान्त'।

'मृच्छकटिक' नाटक में ही राजा शूद्रक के ११० दिन राज्य करने के पश्चात् अग्नि प्रवेश कर आत्मदाह का उल्लेख मिलता है।

राजान वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्टा।
लब्ध्वा चायु: शताब्द दशदिनसहित शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥ १ . ४ ॥

'दशकुमारचरितम्' में कवि दण्डी अग्निदाह द्वारा प्राण विसर्जन की प्रथा का उल्लेख करता है (५ : २५)

जलौक तथा मिहिरकुल दोनो को स्वतः विन स्नान किंवा अग्नि द्वारा स्वत शरीर विसर्जन की बात करता है। परन्तु दोनो ने किस सस्कार द्वारा अग्नि प्रवेश किया इसका उल्लेख नही करता।

'वेणीसहार नाटक' में कविवर श्रीभट्ट नारायण ने युधिष्ठिर के मुख से इस सस्कार तथा प्रक्रिया पर प्रकाश डलवाया है। राक्षस द्वारा भीमसेन का शोक समाचार सुनकर द्रौपदी तथा युधिष्ठिर पति पत्नी दोनो स्वत. जलौक राजा की तरह अग्नि प्रवेश का निश्चय करते हैं।

युधिष्ठिर कहते हैं—मैं स्वय काष्ठ एकत्रित करूगा। चिता बनाऊगा। उसमें स्वय आग लगाऊंगा। मैं अपने को उसमें ईंधन के समान डाल दूँगा—हमलोग दोनो एक साथ ही अभ्युदय का उपयोग करें।'

युधिष्ठिर जल से पाद प्रक्षालन करते है। आचमन करते है। तत्पश्चात् वह सलिलाजलि सर्वप्रथम गागेय पितामह भीष्म को देते हैं। दूसरी सलिलाजलि पितामह विचित्रवीर्य के लिये देते है। तीसरी सलिलाजलि पिता पाण्डु को देते है—वे कहते हैं—

अद्य प्रभृति वां दत्तमस्मत्तो दुर्लभं पुन ।
तात त्वयाऽम्बया सार्धं मया दत्तं निपीयताम् ॥६॥

एतज्जल जलजनीलविलोचनाय,
भीमाय भोस्तव ममाप्यविभक्तमस्तु।
एक क्षण विरम वत्स पिपासितोऽपि,
पातु त्वया सह जवादयमागतोऽस्मि ॥

अविभक्त जलाजलि नील नेत्रशाली भीमसेन तथा स्वय अपने लिये देते है। अनन्तर द्रौपदी से जलाजलि देने के लिये कहते है।

'तस्मै देहि जल कृष्णे सहसा गच्छते दिवम्।'

इत्येतस्मिञ्जनाम्नाये केचिदव्यभिचारिणि ।
प्राहु: पुरुषसिंहस्य क्रौर्यं तस्याविगर्हितम् ॥३१६॥

३१६. इस अविच्छिन्न जन परम्परा मे कतिपय लोग, उस पुरुषसिंह की क्रूरता[१] को अनन्दित कहे हैं।

ये नागेन रुषा प्लुष्टे नगरे प्राभवन्खशाः ।
तेषां नाशाय वृत्तान्तं पूर्वोक्तं जगदुः परे ॥३१७॥

३१७. रुष्ट नाग द्वारा नगर (किन्नर) के दग्ध होने पर वहाँ जिन खशों[१] का बाहुल्य हो गया था, उनके नाश निमित्त पूर्वोक्त वृत्तान्त उसने किया—ऐसा दूसरों ने कहा है।

पाठभेद :

इस श्लोक के पश्चात् 'कुलकम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१६ (१) क्रूरता : कल्हण यहाँ पर, मिहिरकुल की क्रूरता, क्यो अनिन्दित की, इसका कारण आनेवाले श्लोको में उपस्थित करता है। वह स्वय उसे क्रूर न कहकर, जनपरम्परा का आश्रय लेकर उसकी क्रूरता को Depend करता है। उसे जनपरम्परा से अनिन्दित करवाता है। राजा राष्ट्रदोष, राष्ट्र के चरित्र दोष आदि निवारण निमित्त क्रूर हो सकता है। दण्ड का आश्रय ले सकता है। कल्हण की दृष्टि में यदि वह राष्ट्रोपयोगी, चरित्रोपयोगी क्रूरता का आश्रय लेता है तो वह क्रूरता निस्सन्देह अनिन्दित कही जायगी। कल्हण का यह सिद्धान्त राजनीतिक दार्शनिक मेकियावेलीसे मिलता है। शुक्र भी इसी का प्रतिपादन करते हैं।

कालस्य कारण राजा सदसत्कर्मणस्त्वतः ।
स्वक्रौर्योद्यतदण्डाभ्यां स्वधर्मे स्थापयेत्प्रजाः ॥ १:६०

काल का कारण राजा होता है। अपने सत् तथा असत् कर्म अपने क्रूर ण्ड के अभ्यास से प्रजा में स्वधर्म स्थापना करें।

३१७ (१) खश : आजकल की खश जाति ही कल्हण वर्णित खश जाति है। इस का अपभ्रंश खखस जातिवाचक शब्द है। यह जाति पीर पंजाल या पंतशल पर्वतमाला के दक्षिण और पश्चिम रहती थी। वे सीमित दायरे में पीर पंजाल उपत्यका के दक्षिण-पश्चिम मे, वितस्ता की मध्य धारा और काष्टवाट (किश्तवार) के पूर्व पर्वत के एक भाग में, अपने को आज भी मुस्लिम राजपूत कहते हैं। हिन्दू खस जाति हिमालय के अन्य भागो में रहती है। कमायूँ की पहाड़ियो मे बहुत लोग अपने को खस कहते हैं। वे राजपूत होने का दावा करते है। राजपुरी का खश सरदार राजपूतों में विवाह-शादी करता था। लोहर के खश सरदार सिंहराज ने काबुल के शाही राजाओ से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था (रा० त० ६ : १७५, १७७)। सिंहराज की कन्या दिद्दा राणी थी। उसने काश्मीर पर राज्य किया था।

नीलमत पुराण खश जाति का उल्लेख निम्न स्थानो पर करता है :

(दनायुस्वा प्रतस्तु)
गन्धर्व्यां वजिना पुत्र मद्राश्च सुरभेः सुताः ।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव खसायास्तनयाः स्मृताः ॥४८·७२

\+ \+ \+

कद्रुः क्रोधा इरा प्रवा विनता सुरभिः खशा ।
कृषाश्वाश्च तथा पूज्या सुप्रभा च तथा जया ॥
583 : ७०३ ७०४

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डरशकान् खसान् ।
तंगणान् पाण्डवान् मद्रान्नन्तर्गिरिबहिर्गिरीन् ॥
80 : १२२

दार्वाभिसारगांधारजालंधरशका. खसा· ।
तगणा माण्डवाश्चैव ग्रान्तर्गिरिवहिर्गिरिः१३९ = १८२

नीलमत मे 'खशा' तथा 'खश' एक ही शब्द किंवा समानार्थक समझना चाहिए ।

कल्हण ने खशो का बहुत वर्णन किया है। उन्हे इस समय खक्खा भी कहते हैं। खक्ख मुसलमान भी है। उन्हें राजपूत मुसलमान भी कहा जाता है।

राजतरंगिणी में अनेक स्थानो पर राजौरी अर्थात् राजपुरी का शासक खशो के राजा नाम से सम्बोधित किया गया है। उसकी सेना को खशा कहा गया है (रा० त० ७ ९७९, १२७१, १२७६, ८ ८८७, १४६६, १८६८, १८९५)। राजपुरी से पूर्व की ओर चलने पर आन्स नदी की ऊपरी उपत्यका मिलती है। इस नदी को अब पजगव्वर कहते हैं। श्रीवरने जोन राजतरंगणी में इसका उल्लेख किया है।

पञ्चगह्वरजा केचित् सिन्धुपत्यन्वयोदिता. ।
खशा म्लेच्छास्तथान्येऽपि रुरुधु सर्वतो दिश. ॥

उसने इस नदी को पचगह्वर लिखा है। उसे खशो का निवास स्थान कहा है। उससे पूर्व वाणशाल अर्थात् आधुनिक वानहाल है। इसी के नीचे वनिहाल पास है। यही पर भिक्षाचर ने खश राजा भागिक के दुर्ग में शरण ली थी (रा० त० ८ १६६५)। राजतरंगिणी (८ १७७ तथा १०७४) के वर्णन से प्रतीत होता है कि वह सब उपत्यका जो वनिहाल से चन्द्रभागा तक जाती है, जिसे अब 'विचलारी' कहते है, और जिसे पुरावृत्तिकार 'विशालटा' कहते है, खशो से आवाद थी।

राजौरी के पूर्व अचल की भी सज्ञा अनेक स्थानो पर पंचगह्वर नाम से दी गयी है।

खशालय का भी वर्णन कल्हण ने (रा० त० ४ · ५६, ५८, २८४, २९०, २९९) किया है। यहाँ भी खश जाति रहती थी। खशालय ही खैशल की उपत्यका है। इसे कशेर भी कहते हैं। वह दक्षिण-पूर्व मे मारवल पास से काश्मीर के एक कोने से होती किश्तवार तक चली जाती है। खशालय का पुराना नाम खशाली श्रीवर के अनुसार मालूम होता है (रा० त० ७ ३९९)

राज्य नश्यति हृप्यति बाह्या खशालीनका ।
लोक. क्लिश्यति लुण्ठिदाहकरणैश्चौर. स्वक पश्यति
॥ ४ ४५२ ॥

मुद्राराक्षस नाटक मे 'खश' को एक सैनिक जाति के रूप में चित्रित किया गया है। मलयकेतु ने चन्द्रसेन पर आक्रमण करने की जो योजना बनायी थी उनमे खस सेना को अग्रिम पक्ति में रखा था।

प्रस्थातव्य पुरस्तात् खसमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्ये
गान्धारैर्मध्यमाने सयवनपतिभि सविधेयप्रपन्न ।
(मुद्राराक्षस नाटक अक ५)

यहाँ महत्त्वपूर्ण वात मुद्राराक्षस मे पाच पर्वतीय राजाओ में काश्मीर राजा का उल्लेख है। पाँचो पर्वतीय राजा मलयकेतु के पक्ष मे थे। यहाँ यह विचारणीय है कि काश्मीरी सेना का नाम न देकर खस का उल्लेख किया गया है। खस काश्मीर में आवाद थे। वे वली थे। सेना मे थे। युद्ध मे भाग लेते थे। खस को अग्रभाग में, यवन, गान्धार, को मध्य, तथा पृष्ठ भाग मे चेदि हूण एव शक सेना रखी गयी थी। इससे प्रकट होता है। 'खस' वीर सैनिक थे। निपुण योद्धा थे। अन्यथा उन्हे अग्रिम पक्ति में रखने का कोई अर्थ नही था।

खस के सम्बन्ध मे 'मृच्छकटिकम्' नाटक छठें अक में चन्दनक के मुख से मिथ्या वात छिपाने के कारण अशुद्ध तथा स्फुट शब्द निकल जाने पर वह पकडा जाने लगा तो उसका स्पष्टीकरण करता कहता है—'अरे को अप्पच्चओ तुह ? वय दक्खिणत्ता अव्वत्तभा भामिणो खस—खत्ति खडो विलग्र· · · · ·· अणेअदेस भासाभिण्णा जहेट्ठ मत्त, आम 'दट्ठो दिट्ठा वा, अज्जो अज्जेआ वा।'

खस, खत्ति आदि देश भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण मनमाना 'देखा गया' देखी गयी' 'आर्य या आर्या' आदि वोला करते हैं।

राजपुरी से पश्चिम घूमने पर पर्णोत्स अथवा रा० त० ६ : ३१२ में वर्णित प्रान्त में एक व्यक्ति तुंग खस मिलता है। वह चरवाहा था। रानी दिद्दा के समय अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्री बन गया। (रा० त० ७ : ७७३) प्रतीत होता है। तुंग के वंशज रानी दिद्दा के पश्चात् काश्मीर के राजा हुए थे। उन्हें निम्न समझा जाता था।

खस लोगों की भाषा परिष्कृत नहीं थी। वे अशुद्ध बोलते थे। इससे प्रतीत होता है वे विशेष सुसंस्कृत नहीं थे। वे पर्वतीय थे। नगर निवासियों के समान व्याकरण शुद्ध भाषा बोलने के आदी नहीं थे।

खशालय काश्मीर उपत्यका के पूर्व दक्षिण वर्तमान उदिल क्षेत्र है। वह क्षेत्र त्रिग तथा शाहाबाद अचल के पूर्व दक्षिण ओर पड़ेगा। बकरी बल तथा मरवल पास इसके पश्चिम में पड़ेंगे। इसका वर्णन शुक चौथी राजतरंगिणी में करता है।

खशालयस्थं चक्रेशं विसृष्टस्तैर्महात्मभिः।
लेखहारस्तमाह स्म मार्गेश मुखवाचिकम्॥
शुक० रा० : २ : २ : ३५

वितस्ता उपत्यका के अधोभाग में बारहमूला के आगे खस रहते थे। वीराका को खशों का एक केन्द्र कहा गया है। (रा० त० ८ . ४०९) यह स्थान प्राचीन इरावती के समीप था। रावती को इस समय द्रावेडी कहते हैं। वितस्ता उपत्यका का यह भाग कथाई तथा मुजफ्फराबाद के मध्य है।

आधुनिक खक्ख जाति और खस एक ही है। काश्मीर में वितस्ता उपत्यका के अधोभागीय प्राय. सरदार इसी जाति के हैं। खक्ख शब्द खश का अपभ्रंश है।

वितस्ता उपत्यका के खखा सरदार सिख राज आगमन के पूर्व अर्ध स्वतंत्र हैसियत रखते थे। अपने पड़ोसी बोम्ब कबोले के साथ खख लोग काश्मीर के लिए एक समस्या हो गये थे। उनका भयंकर क्रूर कर्म जो शेख इमामुद्दीन के समय में (१८४६) किया गया था, अभी तक लोगों को याद है।

काश्मीर के मर्दुमशुमारी सन् १८९१ ई० के रिपोर्ट पृष्ठ १४१ पर खखों की आबादी ४१४६ दी गई है। उनको जाति मुस्लिम पर्वतीय राजपूतों की एक उपजाति लिखी गयी है। (पृष्ठ २०१)

खश जाति का मार्कण्डेय पुराण में पर्वताश्रिता जाति कहा गया है। अर्थात् यह जाति पर्वत में रहती थी।

अतो देशान् प्रपश्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहाराः हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्मणाः खशाः॥

\+ \+ \+

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलापग्रामकाश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान्॥
॥ ५७ : ५६ ॥

महाभारत सभा पर्व में भी खस जाति का उल्लेख आता है। उन्हें शकों तथा दरद जातियों तुल्य अर्ध सभ्य जाति में शामिल किया गया है। महाभारत सभा पर्व : (५१६ : १८५९) तथा (द्रोण पर्व ११ . ७९९ : १२१, ७)। सभा पर्व में पुनः एक स्थान पर उल्लेख आता है। वे मरु तथा मन्दर पर्वत के मध्य शैलदा नदी की उपत्यका में रहते थे। (सभा पर्व ५१ : १८५८, ५१ · १८५९)। शैलदा नदी पश्चिमी पर्वत के वरुण पर्वत से निकलती है और पश्चिम सागर में गिरती है। (मत्स्य पुराण : १२० . ३३)। मनु ने उन्हें क्षत्री माना है। परन्तु ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा न होने के कारण वे पतित हो गये। (मनुस्मृति १० · ४३ ४)। उन्हें काशगर से कुछ विद्वान् सम्बन्धित करते हैं। मार्कण्डेय पुराण (३४६ : ३५०) के अनुसार उन्हें शाल्य, नीप, शक और शूरसेन आदि जातियों के साथ रखा गया है। सेन तथा पालवंश के शिलालेखों में इनका उल्लेख आता है।

बृहद् सहिता में—कुलूत, तगणा, खश, काश्मीरा उल्लेख किया गया है। (१० १२)। ऋग्वेद सहिता (१ : ३१७) में खस जाति का उल्लेख मिलता है।

खसा : प्राचीनतम दक्ष प्रजापति तथा असिक्नी की कन्या थी। कश्यप प्रजापति को दी गयी थी। उससे यक्ष राक्षसादि हुए। मार्कण्डेय पुराण मे 'कुरवो गुर्गणा खसा,' 'वायु पुराण में 'क्षुपणास्तङ्गण खसा.' 'कुणपास्तगणा खसा.,' 'क्षुपणास्तङ्गणास्त्रसा' 'क्षुपणास्तङ्गणा स्वसा'। ब्रह्माण्ड पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खसाः,' मत्स्यपुराण में 'कुपथा अपथास्तथा' वामन पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खसा' कुपथ किंवा अपथ हिमालय में कोई स्थान था।

खस देश का उल्लेख द्रोण पर्व में किया गया है। मत्स्य पुराण में बर्बर तथा यवनो के साथ खसो का उल्लेख किया गया है। 'वर्वरान् यवनान् खसान्'। वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदान, सीगनान्खसान्' 'पारदास्ताङ्गणा खसान्', 'किम्पुरुषान् खसान्' का उल्लेख पारद तङ्गण तथा किम्पुरुष के साथ आया है। द्रोण पर्व महाभारत मे खस जाति का उल्लेख दरद आदि के साथ किया गया है।

तत. पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टी समन्तत·।
अयोहस्ता शूलहस्ता दरदास्तङ्गणा· खसा.॥
(१२१ । ४२)

खाशीर जनपद का उल्लेख भीष्म पर्व में पूर्वोत्तर भारत के एक जनपद के लिए किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में खश जाति का नाम मगध तथा लौहित्य के साथ पूर्व दिशा मे रखा गया है। परन्तु यह काश्मीर साहित्य में वर्णित जाति खस नही है। अपितु आसाय खासी पर्वत मे रहने वाली खासी जाति हो सकती है। अथवा खस जाति जिसका उल्लेख बगाल के पाल राजाओ के शिलालेखों में हैं वे थे जिनका आवागमन बगाल, आसाम तक होता रहा है, अथवा कही वही आबाद रहे होंगे।

शूद्राभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभि· सह ॥६७॥
खाशीराश्चान्तचाराश्च पह्लवा गिरिगह्वरा·।
आत्रेया सभरद्वाजास्तथैव स्तनपोषिका ॥
(भीष्मपर्व ९ . ६८)

दरद और काश्मीर के साथ ही खस का उल्लेख किया गया है। खाशीर, खसा, खश एव खस शब्द एक ही जाति के लिए प्रयुक्त किये गये है। (भीष्म पर्व ९ : ६८)।

भागवत पुराण (२ ४ १३) के अनुसार खस जाति पतित हो गयी थी परन्तु भागवत भक्ति के कारण शुद्ध हो गयी। ब्रह्माण्ड पुराण (२ २६ १४५ तथा ३ : ६९ १२०) मे उल्लेख आता है। विन्ध्य पर्वत मे निवास करने वाली एक निम्न कोटि की क्षत्री जाति थी। उसे निषाद भी कहते थे। हरिवश पुराण के अनुसार सगर ने उन्हें जीता था। उन्हें निम्न श्रेणी में रख दिया। और वे म्लेच्छ माने गये। हरिवश पुराण (१४ ७८४) ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण ने उन्हे पूर्व का एक जनपद माना है। जिसमें होकर चक्षु नदी बहती है। (ब्रह्माण्ड पुराण २ १६ ४६ तथा मत्स्य पुराण १२१ . ४३, १४४ ५७)

वायु पुराण मे एक पर्वतीय जनपद कहा गया है। वहाँ खस के स्थान पर खश शब्द का प्रयोग किया गया है। वायुपुराण (४५ ३१५ तथा ४७ : ४७,) में दरद जाति को खस जाति का पडोसी माना गया है। बगाल के पाल राजाओ के शिलालेख में हूण तथा खस जाति का उल्लेख मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खस लोग बगाल तक आते जाते थे।

हरिवश पुराण (१३ २३-३४) में उल्लेख आता है। रघुवशी राजा बाहु को हैहय तथा तालजंघ वशीय राजाओ ने शक, यवन, काम्बोज, पारद

अवतारयतस्तस्य चन्द्रकुल्याभिधां नदीम् ।
अशक्योन्मूलना मध्ये शिलाऽभूद्विघ्नकारिणी ॥ ३१८ ॥

३१८. जबकि चन्द्रकुल्या[1] नाम्नी नदी को राजा अवतारित[2] कर रहा था, बीच मे न हटनेवाली शिला विघ्नकारक हो गयी ।

ततः कृततपाः स्वप्ने देवैरुक्तः स भूपतिः ।
यक्षः शिलायां बलवान्ब्रह्मचार्यत्र तिष्ठति ॥ ३१९ ॥

३१९. तदनन्तर उस राजा ने तपस्या की। स्वप्न मे देवताओं ने उससे कहा—'बलवान एवं ब्रह्मचारी यक्ष शिला पर आसीन है ।'

साध्वीं स्पृशति चेदेनां निरोद्धुं न स शक्नुयात् ।
ततोऽपरेद्युः स्वप्नोक्तं शिलायां तेन कारितम् ॥ ३२० ॥

३२० 'यदि साध्वी स्त्री इस शिला का स्पर्श करे, तो वह यक्ष कार्य निरोध मे असमर्थ होगा ।' दूसरे दिन उसने स्वप्नोक्त क्रिया शिला पर करायी ।

तथा पह्लव की सहायता से बाहु तथा उसके राज्य को नष्ट कर दिया। (१४ : ४) यवन, पारद, काम्बोज, पह्लव तथा खस पाचगणो ने हैहय राजाओ के विजय निमित्त पराक्रम किया था। यहाँ स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि खसो की राज्य-व्यवस्था गणतन्त्रीय थी। खसो ने बाहु राजा तथा उसके राज्य को नष्ट करने में सम्भवत प्रत्यक्ष भाग नही लिया था क्योकि (१३ ३०) खस का उल्लेख नही आता। हैहय तथा तालजघ राजो के साथ शको का उल्लेख है। उसने बाहु के राज्य को छीन लिया था। वही पर (१४ . ४) केवल यह उल्लेख आता है कि पाचगण राज्य जिनमें खस भी एक गणराज्य था, हैहयो के लिए पराक्रम किया था। खस लोग शको की तरह बाहु के राज्य को लेते हुए दिखाई नही देते।

पादटिप्पणियाँ :

३१८ (१) **चन्द्रकुल्या** मुहम्मद आजिम कहता है कि राजा मिहिरकुल ने चन्द्रकुल्या नहर बनवायी थी। उसके समय तक वह नहर वर्तमान थी।

(२) **अवतारित** श्री स्तीन तथा सीताराम पण्डित ने यहाँ जल प्रवाह को डाइवर्ट अर्थात् जल प्रवाह को मोडने का अर्थ किया है। अन्य अनुवादको ने भी विभिन्न अर्थ किये है। अतएव मैने यहाँ मूल 'अवतारित' शब्द दे दिया है। 'गंगावतरण' शब्द अत्यन्त प्रचलित है। भगीरथ ने गगा का अवतरण किया था।

कल्हण के मस्तिष्क मे 'गंगावतरण' की बात रही होगी। भगीरथ की 'गगा' के समान 'चन्द्र-कुल्या' को राजा मिहिरकुल अवतारित करा रहा था। यही भाव यहाँ प्रदर्शित किया है। कुल्या शब्द का अर्थ नहर, नाला एव नाली होता है। कुल्या का मार्गावरोध शिला के कारण (रा० त० १ : ३२० ३२१) हो गया था। जलावतरण नही हो रहा था। इससे प्रकट होता है कि चन्द्रकुल्याका राजा निर्माण करा रहा था।

कुल्या शब्द का प्रयोग कल्हण ने (रा० त० १ . ९७) सुवर्णमयी कुल्या के संदर्भ में किया है। कुल्या शब्द पर विशेष पृष्ठ १३० द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१९ मे 'यक्षः' का पाठभेद 'यक्षा' तथा 'यक्षाः' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३२० मे 'चेदेना' का 'चेदेनं' तथा 'न स' का पाठभेद 'न च' मिलता है।

तासु तासु कुलस्त्रीषु व्यर्थयत्नास्वथाचलत् ।
चन्द्रवत्याख्यया स्पृष्टा कुलाल्या सा महाशिला ।। ३२१ ।।

३२१ उन उन कुलीन स्त्रियो के यत्न व्यर्थ हो जाने पर, चन्द्रावती नाम्नी स्त्री के स्पर्श से वह महा शिला सचल हो गयी,[१] ।

कोटित्रयं नरपतिः क्रुद्धस्तेनागसा ततः ।
सपतिभ्रातृपुत्राणामवधीत्कुलयोषिताम् ।। ३२२ ।।

३२२. इस अपराध के कारण क्रुद्ध नरपति ने तीन करोड[१] पति, भ्राता पुत्र सहित कुल योषिताओ का वध कर दिया ।

इय चान्यमते ख्यातिः प्रथते तथ्यतः पुनः ।
अभव्या सनिमित्ताऽपि प्राणिहिंसा गरीयसी ।। ३२३ ।।

३२३ अन्य लोगो के मत मे यह ख्याति उपयुक्त है, किन्तु तथ्यतः सकारण भी इतनी बडी संख्या मे प्राण हिसा शोभनीय नही है ।

श्लोकसख्या ३२१ मे 'सा महा' का पाठभेद 'स महा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३२१ (१) आइने अकबरी में शिला उठाने की कहानी का निम्नलिखित वर्णन किया गया है—"काश्मीर की एक नदी में एक बडा पत्थर उभड आया था । उससे नदी की धारा का अवरोध हो गया था । दिन में पत्थर जितना काटा जाता था, रात में उतना ही बढ जाता था । इसी समय आकाशवाणी सुनाई दी—यदि कोई सती स्त्री पत्थर का स्पर्श करे, तो शिला का लोप हो जायेगा । स्त्रियो को शिला स्पर्श करने के लिए, आदेश प्रचारित किया गया । राज्य कर्मचारियो ने बहुत स्त्रियो को शिला स्पर्श कराया । परन्तु शिला टस से मस न हुई । राजा मिहिरकुल बिगडा । उसने असती स्त्री तथा उनके पति को असती स्त्री रखने के अपराध मे मृत्यु दण्ड दे दिया । उनके सतानो को वर्णसकर घोषित कर दिया । इस प्रकार तीस लाख लोग मार डाले गये । एक कुम्भकार की स्त्री ने शिला स्पर्श किया । आश्चर्यजनक घटना घटी । पत्थर हट गया । राजा बीमार पडा । उसने स्वयं अग्नि प्रवेश कर प्राणोत्सर्ग किया ।'

राजा मिहिरकुल की मृत्यु सन् ५३० ई० में हुई ।

३२२ (१) त्रिकोटि हन मिहिरकुल का नाम (रा० त० १ ३१०) त्रिकोटिहन दिया गया है । उसने ३ करोड मानव का सहार किया था । कल्हण के कथनानुसार मिहिरकुल का नाम तीन कोटि लोगो के बध करने के कारण त्रिकोटिहन पड गया था ।

यूनानी इतिहासकार हिरोडटस ने भी फरोहा के सम्बन्ध में इसी प्रकार की एक कहानी का वर्णन किया है ।

ह्वेन्साग कहता है—'तब ९ सौ हजार उच्च कुल के लोगो को राजा मिहिरकुल ने शिन्त नदी के तट पर वध करवा दिया था । मध्यम श्रेणी के लोगो को नदी में डुबवा दिया था '(१ : १७२ सूयूकी) ।

एवं क्षुद्रोऽपि यद्राजा संभूय न हतो जनैः ।
तत्कर्म कारयद्भिस्तद्दैवतैरेव रक्षितः ॥ ३२४ ॥

३२४. क्षुद्र होते हुए भी उस राजा की प्रजा ने विप्लव द्वारा हत्या नही की क्योकि वह उन्ही देवताओ[1] द्वारा रक्षित था, जिनकी प्रेरणा से उसने उन कर्मो को किया था ।

प्रजापुण्योदयैस्तीव्रैश्चिरात्तस्मिन्क्षयं गते ।
वकस्तत्प्रभवः पौरैः सदाचारोऽभ्यषिच्यत ॥ ३२५ ॥

बक:

३२५. प्रजा के तीव्र पुण्योदय के कारण उसके मरने पर, उसके पुत्र सदाचारी वक का पौर जनों ने अभिषेक किया ।

---

३२४ (१) देवता : कल्हण यहाँ दैव सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। भाग्यवादी दैव में विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है। सब कुछ दैवी प्रेरणा से होता है। मनुष्य केवल निमित्त मात्र है। साधन है। उसकी गतिविधियाँ पूर्व से ही सुनिश्चित रहती है। फलित ज्योतिष सिद्धान्त इसका सबसे बडा समर्थक है। यदि बातें पूर्व से ही सुनिश्चित न होती तो पचासो वर्ष पूर्व जन्म-कुण्डली मे लिखी अथवा वर्षफल, जन्मफल की कही फलगणना और भविष्य की घटनायें किस प्रकार सत्य उतरती ?

भाग्य एवं कर्म का ववाद बहुत पुराना है। आगे न बढकर यहाँ इतना ही लिखना अलम होगा कि कल्हण ने मिहिरकुल के क्रूर कर्मो का प्रेरक दैव को ही माना है। जिसकी प्रेरणा से उसने क्रूर कर्मों को किया था उन्हीकी प्रेरणा से उसकी रक्षा भी हुई। जनता उसकी नृशसताओ तथा उत्पीडन से ग्रस्त होने पर भी राजविद्रोह नही कर सकी। वह अछूता बच गया। उसकी हत्या करने का किसी ने प्रयास नही किया। कारण एकमात्र कल्हण यही देता है। जो प्रेरक शक्ति उसकी नृशसताओ के लिए उत्तरदायी थी, उसी ने उसकी रक्षा की। जनता मे विद्रोह, विप्लव को भावना एवं विचार उत्पन्न नही होने दिया। कवि दण्डी ने राजाओ के सम्बन्ध मे दैवी शक्ति के विषय मे 'दशकुमारचरितम्' मे कहा है—"मदीयैर्विश्वास्यतमै. पुरुषैः प्रभूता।" (उपसंहार १)

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२४ मे 'वकस्त' का पाठभेद 'एकस्त' मिलता है। 'ए' तथा 'ब' का भ्रम शारदा लिपि के प्रयोग के कारण हो गया है।

पादटिप्पणियाँ :

३२५ (१) आइनेअकबरी ने नाम बेक तथा उसका राज्यकाल ६३ वर्ष १३ दिन दिया है। श्री स्तीन के अनुसार लौकिक वर्ष २४४२ के चौथे मास मे उसने राज्यारोहण किया था। श्री एस० वी० पण्डित ने यह समय ईशा पूर्व ६३७ वर्ष रखा है।

हसन कहता है—'राजा वकने बाप के मरने के बाद क० २४०९ मे हुकूमत की। दुलहिन अदब व इन्साफ के जेवर से ज़ेव व जीनत देनेवाला बना। बकाशुर के मुकाम पर अपने नाम पर एक स्वामी का मन्दिर निहायत उमदगी से तामीर किया। इसी तरह एक नहर अपने नाम खर्च कसीर से खुदवायी। शहर पूंछ उसीका आबाद किया हुआ है। चारो तरफ इसके इर्दगिर्द ऊँचे-ऊँचे पहाड है। इसके जमाने में एक जोगी औरत वटका नाम की पैदा हो गयी। उसके हुस्न व जमाल को देखकर राजा का दिल वेकाबू हो गया। वह जादूगरनी एक दिन राजा को कुरबानी की रस्म

तत्रापि पूर्वसंस्कारादुक्तत्रासं दधे जनः ।
श्मशानविहिते लीलावेश्मनीव नृपास्पदे ॥ ३२६ ॥

३२६. श्मशान मे बने लीलावेश्म सदृश पूर्व संस्कार के कारण उसके सिंहासन के सम्मुख भी लोग उक्त त्रास की आशका से भय भ्रांत रहते थे ।

अतिसंतापदाज्जातं स जनाह्लादकोऽभवत् ।
जलौघा जलदश्यामात्तपात्ययदिनादिव ॥ ३२७ ॥

३२७. अति संतापदायी से उत्पन्न[1] वह जन आल्हादक, उसी प्रकार हुआ, जैसे जलद द्वारा श्याम ग्रीष्मान्त दिन से उत्पन्न वृष्टि ।

पर इसके आशनाओ और करीबी रिश्तेदारो समेत ज़याफत पर ले गयी थी । इस औरत ने जादू के जोरसे उन तमाम को मार डाला । सिर्फ एक लडका खितो नन्द नाम का जिन्दा रहा । मुद्दत हुकूमत बासठ बरस ९ महीने ।' (पृष्ठ ४९) ।

(२) पौरो द्वारा राज्याभिषेक कल्हण इस स्थानपर नागरिको द्वारा राजा चुनने की बात करता है । मालूम होता है कि मिहिरकुल के पुत्रो से किसी सदाचारी पुत्र को लोगो ने राजा बनाने का निश्चय कर उसे राजा बनाया । अन्यथा कल्हण यहाँ पर केवल यही लिखता कि मिहिरकुल का पुत्र उसके पश्चात् राजा हुआ ।

काश्मीर में प्रायः राजा का निर्वाचन प्राचीन काल में होता रहा है । राजतरगिणी में वर्णन आता है कि यशष्कर ब्राह्मण को काश्मीर की परिषद् ने राजा चुना था । (रा० त० ५ ४६९, ४७७) ।

पाठभेद

श्लोकसख्या ३२६ में 'दुरुन्त्रास' का 'मुक्तत्रास' 'दुक्ता त्रास' 'मुक्ता सन्द', मुक्त तास', 'दुत्त्रासि स' तथा दुक्नात्त्रास' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३२६ (१) नृपास्पद यहाँ कल्हण ने सिंहासन नही 'नृपास्पद' शब्द का प्रयोग किया है । श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित आदि ने सिंहासन ही 'नृपास्पद' का अर्थ लगाया है । नृप + आस्पद मिलकर नृपास्पद शब्द बना है । नृप का अर्थ राजा और आस्पद का अर्थ स्थान, अधिष्ठान, इत्यादि होता है । यहाँ राजस्थान तथा राजा के बैठने की जगह अर्थात् अधिष्ठान भी हो सकता है । यहाँ पर सिंहासन की अपेक्षा राजा के स्थान करना अथवा उनके बैठको के आसपास अर्थ अधिक कल्हण के समीप होगा । नृपास्पद शब्द का भावार्थ सिंहासन मे आ जाता है । किन्तु यह शाब्दिक अर्थ के अधिक समीप नही है ।

पाठभेद .

श्लोकसख्या ३२७ मे 'अति' का 'अपि', 'जातः' का 'जाता ', 'जनाह्लादको' का 'जना ह्लादको' तथा 'मात्तपा' का 'मोत्तापा', 'मातापा' और 'मात्तापा' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३२७ (१) सतापदायी : कल्हण यहाँ पर दूसरा उदाहरण सतापदायी राजा से उत्पन्न उत्तम तथा जन आह्लादक पुत्र का देता है । पहला उदाहरण उसने नृशस नर के पुत्र सिद्ध का दिया है । यहाँ दूसरा का उदाहरण भूलोकभैरव मिहिरकुल के पुत्र वक का देता है ।

लोकान्तरादिवायातं मेने धर्मं तदा जनः ।
अभयं च परावृत्तं प्रवासाद्गहनादिव ॥ ३२८ ॥

३२८. उस समय लोग धर्म[1] को लोकान्तर से आया तथा अभय[2] को चिर प्रवास से परावृत्त मानते थे ।

स वकेशं वकश्वभ्रे वकवत्यापगां तथा ।
कृत्वा पुरं परार्ध्यश्रीर्लवणोत्साभिधं व्यधात् ॥ ३२९ ॥

३२९. उस अतुल श्री सम्पन्न राजा ने वकश्वभ्र में वकेश[1] तथा वकावती आपगा[2] का निर्माण करके लवणोत्स[3] नगर बनवाया ।

तत्र त्रिषष्टिर्वर्षाणां सत्रयोदशवासरा ।
अत्यवह्यत भूपेन तेन पृथ्वीं प्रशासता ॥३३० ॥

३३०. उस राजा ने वहाँ पृथ्वी का शासन करते' तिरसठ वर्ष तेरह दिन व्यतीत किया ।[1]

---

३२८ (१) धर्म का अर्थ यहाँ राज्य के विधि से है। जिसका आज कल प्रचलित शब्द कानून है।

(२) अभय : शासन का फल अभय है । अभय उस समय जनता मे होता है, जब शासन सुव्यवस्थित होता है। राज्यदण्ड का भय अवाच्छनीय तत्वो को नियन्त्रण में रखता है। जनता मे आन्तरिक तथा बाह्य दोनो प्रकार के भय का अभाव हो जाता है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३२९ मे 'वकेशं' का 'वकेशे' तथा 'कवश्वभ्रे' का पाठभेद 'वक' श्वभ्रे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२९ (१) वकेश तथा वकश्वभ्र : इन दोनो स्थानो का पता अभी तक नही चला है। कुछ स्थान मुझे बताये गये किन्तु वे भ्रामक है ।

३२९ (२) वकावती आपगा : कल्हण न आपगा शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। जिसका अर्थ नदी, सरित्, तरगिणो, शैवालिनो, तटिनी, किंवा सरिता होता है। आपगेय का अर्थ नदी से उत्पन्न नहरादि होता है। यहाँ आपगा का अर्थ नहर माना जा सकता है ।

(३) लवणोत्स : श्रीनगर से भारत आने वाले मार्ग पर यह स्थान स्थित है। (रा० त० ६:४६, ५७; ७ ७६२, ७:१५३७, १६५८) । श्रीनगर से पूर्व काल मे एक ही पडाव में लवणोत्स पहुँचा जा सकता था । पामपुर या पद्मपुर मार्ग मे पडता था। विजयेश्वर के घेरा के सन्दर्भ में (रा० त० ७ १५६७ तथा १६५८) लवणोत्स का वर्णन कल्हण ने किया है। उससे प्रतीत होता है। विजयेश्वर तथा लवणोत्स में अधिक फासला नही था । श्रीनगर में बाहर से आने वाली एक सडक पर लवणोत्स के होने का उल्लेख है। (रा० त० ५६,५७) । लवणोत्स वास्तव मे किस स्थान पर था, अभी तक निश्चय नही हो सका है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३० मे 'वासरा' का 'वासरान्' 'अत्यवाह्यत' का 'अभ्यवाह्यत' तथा 'अन्यत्राह्यत' और 'प्रशासता' का पाठभेद 'प्रशासता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३० (१) राज्यकाल : राजतरगिणी राज्य काल ६३ वर्ष तेरह दिन स्पष्ट देती है। श्री रणजीत

अथ योगेश्वरी काचिद्भट्टाख्या रजनीमुखे ।
कृत्वा कान्ताकृति काम्यामुपतस्थे विशां पतिम् ।। ३३१।।

३३१ किसी समय रजनी मुख[1] काल मे कोई भट्टा नाम्नी योगेश्वरी[2] कमनीय कान्त आकृति धारण कर विशांपति (राजा)[3] के समीप पहुँची ।

तया मनोहरैस्तैस्तैर्वचनैर्ग्लपितस्मृतिः ।
स यागोत्सव माहात्म्य द्रष्टुं हृष्टो न्यमन्त्र्यत ।। ३३२ ।।

३३२ अपने मनोहर तत्-तत् वचनो द्वारा नष्ट स्मृति एव प्रसन्न राजा को यागोत्सव माहात्म्प देखने के लिये, उसने निमन्त्रित किया ।

पुत्रपौत्रशतोपेतः प्रातस्तत्र ततो गतः ।
चक्रवर्ती तया निन्ये देवीचक्रोपहारताम् ।। ३३३ ।।

३३३ तदुपरान्त, अपने शत पुत्र-पौत्रो सहित प्रात. काल वहाँ गये, चक्रवर्ती को उसने देवी चक्र[1] पर उपहार चढ़ा दिया ।

सीताराम पण्डित अनुवाद में ६३ वर्ष १३ दिन देते है। किन्तु श्री एस. पी. पण्डित के लेख को श्रीरणजीत ने परिशिष्ट 'ए' पृष्ठ ५८१ पर उद्धृत किया है। उसके अनुसार राज्य काल केवल ६३ वर्ष आता है। तेरह दिन कम दिया है। कल्हण के पाठ का अनुवाद ही मैंने यहाँ दिया है।

पाठभेद

श्लोकसख्या ३३१ में 'द्भट्टा' का पाठभेद 'द्दट्टा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३३१ (१) **रजनीमुख**—यहाँ पर रजनीमुख शब्द का प्रयोग कल्हण ने सायकाल अर्थात् रात्रि के प्रारम्भ काल के लिये किया है।

(२) **योगेश्वरी** · इसका शाब्दिक अर्थ दुर्गा होता है। योग विद्या मे प्रवीण महा के विशेषण रूप में योगीश्वरी शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है। साधारण योग सम्पन्न स्त्रियो को योगिनी कहते है उनमे श्रेष्ठ के लिये विशेषण योगेश्वरी लगाया जाता है—आठ विशेष देवियाँ योगिनी कही गयी है—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, नारायणी, वाराही, इन्द्राणी, चामुडा तथा महालक्ष्मी ।

(३) **विशांपति** काश्मीर के राज्य सघटन का प्रकार समय समय पर बदलता रहा है। प्रथम इकाई देश थी। उसके पश्चात्, राज्य तत्पश्चात् विश्व का सबसे छोटा इकाई ग्राम था।

राजा को यहाँ विशापति कहा गया है। उसके नीच कर्मों के कारण कल्हण ने उसे राजा किंवा नृपति न कहकर विश्व का स्वामी कहा है। वह उससे बडा स्थान उसे नही देना चाहता है।

विश्व तथा विषय का पदलालित्य के कारण यहाँ पर कल्हण ने अनुप्रास स्वरूप प्रयोग किया है। राजा को विषयपति न कहकर विश्वपति कहा है। दोनो क्रमशः मूर्धन्य ष तथा तालव्य श हैं उनके उच्चारण में भेद है। यदि शीघ्रता से कहा जाय तो उनका भेद समझना कठिन हो जाता है।

विषय काश्मीर में परगना को कहते है। विश राज्य का एक प्रकार है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३३२ में 'ग्लपति' का 'ग्लपित' तथा 'न्यमन्त्र्यत का' न्यमन्त्रत' तथा 'न्यसत्यत' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३३ (१) **देवीचक्र** मातृ चक्र का उल्लेख टिप्पणी १ · १२२ पृष्ठ पर किया गया है। यहाँ पर

कर्मणा तेन सिद्धाया व्योमाक्रमणसूचकम् ।
जानुमुद्राद्वयं तस्या दृषद्यद्यापि दृश्यते ॥ ३३४ ॥

३३४. उस कर्म द्वारा सिद्ध उस योगीश्वरी के व्योम गमन सूचक, दोनो जानुओं की मुद्रा, शिला पर आज भी देखी जाती है।

देवः शतकपालेशो मातृचक्रं शिला च सा ।
खेरीमठेषु तद्वार्तास्मृतिमद्यापि यच्छति ॥ ३३५ ॥

३३५. देव, शतकपालेश, मातृचक्र तथा वह शिला खेरी[1] के मठो[2] मे आज भी उस वार्ता की स्मृति दिलाती है।

कल्हण देवीचक्र का उल्लेख करता है न कि मातृचक्र का। अतएव 'देवी' तथा 'मातृचक्र' मे निश्चय उस समय अन्तर रहा होगा।

अनुवादकर्ताओ ने इसका अनुवाद किया हैं कि देवोचक्रपर राजा को वलिदान कर दिया गया था। यहा पर वलि शब्द का प्रयोग न कर 'उपहार' शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। 'बलि' तथा 'उपहार' मे अन्तर है। बंगाल मे वलि चढे पशु के मास को महाप्रसाद कहते है। शाक्त लोग 'प्रसाद' ही ग्रहण करते हैं। अन्य मास उनके लिये वर्जित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३४ मे 'दृषद्यद्यापि का 'दृशअद्यापि' तथा 'दृषत्यद्यापि' पाठभेद मिलता है।

श्लोक सख्या ३३५ में 'खेरीमठेषु' का 'खीरमठेषु' तथा 'खेरेमठेषु' और 'यच्छति' का पाठभेद 'गच्छति' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३५ (१) खेरी : राजतरंगिणी के तरग ८ : १२६८ श्रीवर ३ : १८७ तथा ४ : ४४८ से यह स्पष्ट हो गया है कि खेरी एक जिला का नाम था। इसे परगना खुरनार वाब कहते है। यह गुलाबगढ तथा पीर पन्तसल के मुह दर्रा की ढालुआ उपत्यका से विसाऊ नदी तक फैला है। गाँव खुर सर्वेक्षण मानचित्र मे कूरी दिखाया गया है।

खुर तथा खेरी को समान उच्चारण के कारण एक नही कहा गया है। कल्हण (रा० त० ८ : १२६०) तथा श्रीवर (४ : ४४८) ने खेरी का उल्लेख परगना देबसरसा (दिवशर) और अर्धवान (अदविन) के सन्दर्भ मे किया है। दोनो परगना विसाऊ नदी के उत्तर खुर नारवाव में मिलते है। इसका प्रशासन विशेष रूप से किया जाता था। यह कल्हण के 'खेरी कार्य' शब्द प्रयोग से प्रकट होता है। (रा० त० ८ ९६०, १११८, १४८२, १६२४)। सिख तथा डोगरा राजकाल मे खुर नरवाव जागीर पुरानी प्रथा के अनुसार राजवशियो को दी गयी थी।

(२) मठ : कल्हण ने किस स्थान के लिए खेरी मठ शब्द का व्यवहार किया है कहना कठिन है। यहाँ से दरो तक पहुँचने के लिए चलता रास्ता है। सम्भव है। खेरो मठ इस भाग पर स्थित किसी धर्मशाला के लिए व्यवहृत किया गया है। श्रीवर कश्मीर के सुलतान हसन शाह के समय खेरी मे धर्मशाला स्थापित करने को बात कहता है (३ : १९०)।

श्रीवर के समय तक खेरी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वह स्पष्ट प्रकट हो जाता है।

शाहाभिधास्य भार्यापि मठं सुकृतकर्मठम् ।
खेरीविषयमार्गान्तर्निर्ममे सप्रतिग्रहम् ॥ ३:१८७

\+ \+ \+

खेरी चार्धवनं राष्ट्रं आष्ट्रमग्निशिखेव सा ।
अतापयन्महोष्माढ्या प्रविष्टा कटकद्वयी ॥

देव्या कुलतरोः कन्दः क्षितिनन्दोऽवशेषितः ।
ततस्तस्य सुतस्त्रिंशद्वत्सरानन्वशान्महीम् ॥ ३३६ ॥

क्षितिनन्द—

३३६ देवी की कृपा से वंश वृक्ष का मूल क्षितिनन्द बच गया था। उस के पुत्र ने तीस वर्ष तक भूमि का शासन किया।

द्वापञ्चाशतमब्दान्क्ष्मां द्वौ च मासौ तदात्मज ।
अपासीद्वसुनन्दाख्यः प्रख्यातस्मरशास्त्रकृत् ॥ ३३७ ॥

वसुनन्द—

३३७. प्रसिद्ध कामशास्त्र[२] प्रणेता उसके पुत्र वसुनन्द ने बावन वर्ष दो मास[३] धरती की रक्षा की।

---

३३६ (१) आइने अकबरी में 'कुलनुन्द' नाम तथा उसका राज्यकाल ३० वर्ष दिया गया है। हसन लिखता है—'राजा खितीनन्द क० २४८२ मे अराकीन हकूमत मुतफक मशविरा से तख्त पर बैठा और तीस साल हकूमत किया।'

(२) क्षितिनन्द श्री स्तीन के अनुसार लौकिक सवन् २५०५ वर्ष ४ माह १३ वें दिन राज्य सिंहासन पर बैठा था। श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व ५७४ वर्ष दिया है। वक का पुत्र नही था। सम्भव है राजा वक का सम्बन्धी रहा हो। क्योकि राजा के पुत्र तथा पौत्र सभी भट्टा द्वारा बलि चढा दिये गये थे।

३३७ (१) आइने अकबरी में 'विश्शनुन्द' नाम तथा उसका राज्यकाल ५२ वर्ष दो मास दिया गया है।

श्रीस्तीन के अनुसार लौकिक २५३५ वर्ष ४ मास १३ वें दिन राजा ने राज्या रोहण किया था। श्री एस० पी० पण्डित ने वह समय ईसा पूर्व ५४४ वर्ष दिया है।

हसन—राजा वसनन्द क० २५०२ मे बाप के कायम मुकाम रौनक बख्श तख्त बादशाही हुआ। इन्तहाई राजा था। अक्लमन्द और बाहोश आदमी था। अक्लमन्द और आलिमो की कदर व मन्जिलत हद से ज्यादा करता था। किताबो से उस राजा का इश्क था। बावन बरस हुक्मरान रहकर आलम से हमेशा के लिये रुखसत हो गया। पृष्ठ ४०।

(२) काम किंवा स्मरशास्त्र वसुनन्द के इस प्रख्यात ग्रन्थ का अभी तक पता नही चला है। उसका उल्लेख अन्य ग्रन्थो में अवश्य मिलता है।

स्मर का अर्थ, स्मृति, स्मरण, प्रेम, प्रणय तथा कामदेव होता है। स्मर एक राग भी है। स्मरशास्त्र का अर्थ कामशास्त्र होता है। मरीचि तथा उर्णा के पुत्रो मे से वह एक था। किन्तु यहाँ पर अर्थ कामशास्त्र ही है। 'दशकुमार चरितम्' मे दण्डी ने कामशास्त्र के लिये 'अनग' विद्या का प्रयोग किया है। २ ६

(३) राज्यकाल श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अपने राजतरगिणी के अनुवाद के पृष्ठ ५८१ पर श्री एस०पी० पण्डित के लेख को उद्धृत किया है। उनके अनुसार राज्यकाल केवल बावन वर्ष दिया गया है। दो मास और अधिक नही जोया गया है। परन्तु श्री स्तीन तथा सीताराम पण्डित दोनो ने अनुवाद में ५२ वर्ष २ मास राज्यकाल का अनुवाद किया है। अतएव यहाँ भी मूल का अनुवाद जो ५२ वर्ष दो मास आता है दिया गया है।

नरः षष्टि तस्य सूनुस्तावतोऽक्षश्च तत्सुतः ।
वर्षानभूद्विग्रग्रामं योऽक्षवालमकारयत् ॥ ३३८॥

नर, अक्ष—

३३८. उसके पुत्र नर अक्ष[२] ने साठ वर्ष शासन किया। उतने ही वर्ष (साठ वर्ष) उसके पुत्र अक्ष ने शासन किया। जिसने अक्षवाल[३] ग्राम निर्माण कराया था।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३३८ मे 'ग्रमि' का पाठभेद 'ग्रमो' तथा ,श्राम' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३८ (१) आइने अकबरी मे नाम 'नर' तथा उसका राज्य काल ६० वर्प दिया गया है।

श्री स्तीन के अनुसार राजा का अभिपेक लौकिक सवत् ३५८७ वर्प छठवा मास तेरहवें दिन हुआ था। श्री एस. पी. पण्डित ने यह काल ईसा पूर्व ४९१ वर्ष माना है।

हसन लिखता है—'राजा नर बाप की वफात के बाद क० २५४४ मे ताजशाही सर पर रखा। कुल साठ बरस हकूमत में बसर करके दुनिया से रवाना हुग्रा।'

(२) ग्राइने अकबरी मे अक्ष का नाम 'उज' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष दिया गया है। श्री स्तीन के अनुसार लौकिक सवत् २६४७ वर्ष छठवाँ महीना तेरहवें दिन राज्यसिहासन पर बैठा था। श्री एस. पी. पण्डित वह काल ईसा पूर्व ४३१ वर्प मानते है।

हसन लिखता है—राजा अच्छ राजा नर का बेटा था। साठ साल तक हकूमत किया। दुलहिन बगल मे रखो और दुनिया से रुखसत हो गया। अछवल इसी राजा की यादगारो मे से है।

उसका राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २६४७ मे हुआ था। यहाँ कुछ गणना में त्रुटियाँ मालूम होती हैं। उसके पिता ने ६० वर्ष राज्य किया। उसने भी साठ वर्ष राज्य किया। पिता-पुत्र को मिलाकर १२० वर्ष हो जाता है।

(३) अक्षवल अक्ष का ग्रर्थ, आँख, पासा, गाडी, धुरा, रुद्राक्ष, सर्प तथा आत्मा होता है। कल्हण के वर्णन से ज्ञात होता है कि राजा ग्रक्ष के समय मे प्रथम बार ग्राम रूप में यह स्थान बसाया गया था। इसका वर्तमान रूप हजारो वर्षो के विकास का फल है। यह नगर वर्तमान ग्रचवल है। अनन्त नाग से दक्षिण-पूर्व ६ मील पर स्थित है। कुथर परगना मे है। सुन्दर जलस्रोतो के लिए प्रसिद्ध है।

वर्नियर ने अपनी यात्रा (पृष्ठ ४१३) मे तथा वाइन (१:३४७) ने भी इसका वर्णन किया है। नीलमत पुराण मे इस जलस्रोत का नाम अक्षिपाल नाग दिया गया है।

तथा च नागो ध्यसरो नागो नीलसरो विहा।
अशुलाक्षोऽक्षिपालश्च च प्रहलादो यमकस्तथा ॥

मै यहाँ १९५५ तथा १९५९ मे ग्रा चुका हूँ। अन्तिम बार १४-९-६३ मे आया था। ग्रचवल का झरना सुन्दर, शीतल तथा वेगशील है। सन् १६२० ई० मे नूरजहा ने जलस्रोत को नियन्त्रित कर मुगल शैली का बाग निर्माण कराया है।

गाथा है कि त्रिधी नदी की धारा जो वानी दिवल गाय त्रिग परगना मे लोप हो गयी है। वही अचवल मे पुन प्रकट हुई है। यदि वानोदिवल ग्राम मे कोई टुकडा धारा में छोड दिया जाय तो वही पुन ग्रचवल मे निकल ग्राता है। ग्रतएव अचवल जलस्रोत को त्रिधी की लुप्त धारा का पुन यहाँ प्रकट होना मानते है।

ग्रचवल के पर्वत मूल मे जहाँ जल निकलता है यदि उसे देखा जाय तो मालूम पडता है जैसे जल स्तर पर ग्रक्ष अर्थात् नेत्र बनते और बिगड़ते रहते

हैं। इसके कारण भी सम्भव है पूर्व काल में इसका नाम 'अच्च' रूप जल के कारण 'अच्च' रख दिया गया था। कालान्तर में राजा अच्च ने अपने नाम का स्थान होने के कारण वहाँ का और विकास किया अथवा 'अच्च' नाम रखकर अपने स्मारक तथा स्रोत के नामकरण दोनो की कल्पना की।

जलस्रोत के पृष्ठ में हरित देवदारु पादप पूर्ण पवत हैं। पर्वत ऊँचा है। वह बाग के लिए सुन्दर पृष्ठभूमि उपस्थित करता है। सितम्बर मास मे मैं इस बाग में कुछ दिन रह चुका हूँ। बाग में फूल खूब हैं। धारा को नियन्त्रित कर एक स्रोत दक्षिण पश्चिम दिशा तथा मुख्य स्रोत के बाग के नहरो में लाया गया है। चिनार के वृक्ष पुराने अत्यधिक और काफी सख्या मे लगाये गये हैं। बाग सडक के किनारे पर है। डाक बगला बाग से सटा बना है। बाग के दक्षिण पार्श्व में एक सरोवर तथा वाम बाग में राजकीय मत्स्य विभाग है। मछली यहाँ अत्यधिक मिलती है।

नूरजहा ने अक्षवल किंवा अचवल का नाम बेगमाबाद रखा था। इसे साहिबाबाद भी कहते है यह बाग ४६७ फीट लम्बा है। बाग पत्थर की दीवारो से घिरा है। यहाँ मुगलकालीन समय का ध्वन्सावशेष मिलेगा। मध्यवर्ती नहर १६ फीट तथा उसके दोनो तरफो की नहरें ८ फीट चौडो है। मध्यवर्ती नहर क्रमश तीन चौकोर कुण्डो को भरती चलती है। आयताकार प्रत्येक सरोवर मे फुहारे लगे है। दो सरोवरो के प्रत्येक मध्यवर्ती नहर मे ५ फुहारे हैं। अन्तिम भाग में ६ फुहारे हैं।

वर्नियर ने सन् १६६३ ई० मे इस स्थान पर एक रात्रि विश्राम किया था। वह स्पष्ट कहता है "यह बाग तथा स्थान कश्मीर के प्राचीन राजाओ का था। बाग इस समय मुगलो के पास है। यहाँ फलदार वृक्ष खूब लगे हैं। सरोवर मे मछलियाँ बहुत मिलती है।

इस स्थान की सुन्दरता वेग पूर्वक भूमि से निकलते जलस्रोतो के कारण बढ जाती है। उसे फुहारा कहने के स्थान पर स्रोतस्विनी उद्गम कहना अच्छा होगा। जल इतने वेग से निकलता है कि मालूम होता है—किसी कूप के अन्दर मे पम्प करके ऊपर निकाला जा रहा है। रम्य उद्यान के नहरो में यह पानी फैला दिया है। इसका जल निर्मल एव हिम सदृश शीतल है। उद्यान बहुत सुन्दर है। उसमे सेब, खुबानी, नासपाती, आलूचा तथा शाहदाना अर्थात् चेरो के फलदार वृक्ष लगे हैं। यहाँ ऊँची जल की झालर गिरती है। वह तीस या चालीस फीट चौडो होगी। पानी की चादर की तरह दिखाई पडती है। रात्रि के समय चादर के पीछे दिवाल मे बने झरोखो में जब अनेकों दीप जला दिये जाते हैं तो वे प्रभावोत्पादक बडा सुन्दर काल्पनिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, (पृष्ठ ४१८) बादशाह जहाँगीर यहाँ पर आ चुका है। उसने अपने पन्द्रहवें जलूसी वर्ष में वहाँ का वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है।

'मगल को अछवल के जलाशय के समीप शिविर पडा। पहले की अपेक्षा इसमे जल अधिक है। इसमे एक सुन्दर जलप्रपात है। इसके चारो ओर ऊँचे मीनार और सफेदा के वृक्षो के समूह ऊपर जाकर ऐसो मिल गये है कि इनके नीचे बैठने के लिये जैसे कुंज बन गया है। जहातक देखा जा सकता है वहा तक जाफरी फूलो का खिला हुआ उद्यान सुन्दर दिखायी देता है। जैसे वह स्वर्ग का एक दुपट्टा है।' (पृष्ठ ६८२)

जहाँगीर ने अपने जलूसी वर्ष १७ मे ७ शव्वाल को पुनः कश्मीर की यात्रा की थी। वह अचवल पहुँचा। उसने एकम शहरियर को अचवल की यात्रा प्रथम यात्रा के दो वर्ष बाद की थी। इस अवसर पर उसने केवल इतना ही लिखा है—'अचवल के जलाशय के समीप ठहरे। और गुरुवार को महोत्सव वही मनाया गया।' (पृष्ठ ७५१)

जुगोप गोपादित्योऽथ क्ष्मां सद्वीपां तदात्मजः ।
वर्णाश्रमप्रत्यवेक्षादर्शितादियुगोदयः ॥३३९॥

गोपादित्य—

उनके आत्मज गोपादित्य ने सद्वीप पृथ्वी की रक्षा की, जिसने वर्णाश्रम परिपालन द्वारा आदि युग का उदय दिखा दिया था ।

अचवल का विकास आधुनिक ढग पर हुआ है । नगर का यथेष्ट विकास हो गया है । नगर मे मस्जिदें काफी हैं । बाग के सम्मुख वाम भाग में एक शिव मन्दिर है । आधुनिक मन्दिर है । मै मन्दिर मे पूजा करने गया था । एक महिला 'जय जगदीश हरे' मधुर लय से गा रही थी । एक प्रौढ ब्राह्मण सागोपाग पूजन कर रहे थे । मन्दिर तथा पूजा देखकर काशी की याद आती थी । पूजा मे कोई भेद नही था । मन्दिर के बाहर भी एक लिंग था उसकी भी पूजा की जाती हैं ।

मै प्रात' काल घूमने निकला । सड़क पर पहुँचा । चौराहे पर मुझे एक मृत्तिका पात्र कसोरा मे आटा, दाल, लाल मिर्चा रखा मिला । मै खडा हो गया । उत्तर भारत में इसे 'उतारा पुतारा' कहते है । यह प्रथा किसी न किसी रूप मे समस्त भारत मे प्रचलित मिलेगी । भारत मे प्राय. चौराहो पर प्रेत बाधा, महामारी तथा कष्ट निवारणार्थ श्वेत कूष्माण्ड काटकर फूल अक्षत के साथ रखा जाता है । धार अर्थात् जल में कुछ पदार्थ मिलाकर स्त्रिया रात्रि किंवा ब्राह्म मुहूर्त्त मे चौराहा पर जल गिरा कर हाथ जोडती है । इस प्रकार का सस्कार प्राय समस्त भारत मे मिलेगा । यह एक ही जन जीवन एव संस्कृति का परिचायक है ।

यहाँ से कुछ दूर पर उमा देवी का मन्दिर है । अचवल से लगभग १ मील दूर एक स्वामी जी का आश्रम है । स्वामी जी बगाली हैं । आश्रम का नाम रामकृष्ण सम्मेलन आश्रम है । स्वामी जी ने अपने हाथो सब कुछ बनाया है । उनकी कुटी के ऊपर एक सुन्दर मन्दिर बना है । उसमे श्री रामकृष्ण परमहंस देव को तस्वीर गर्भगृह में पूजा निमित्त रखी है । अचवल मे हिन्दू धर्म की एक छाया तथा आश्रम यही देखने को मिला । प्रसन्नता हुई । यहाँ कभी वेद की ऋचाओ का उद्घोष होता था । यज्ञ की वेदियो से पवित्र धूम ज्योति उद्भूत होती गगन को ओरबढती, मानव में आध्यात्मिकता का संचार करती थी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३९ मे "प्रत्यवेक्षा" का पाठभेद 'प्रत्यवीक्षा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३३९ (१) : आइने अकबरी में नाम 'कुवोत' तथा उसका राज्यकाल ६० वर्ष ६ दिन दिया है । राजा ने बुद्धिमानीपूर्वक न्याय पूर्ण राज्य किया था । उसने विजय भी बहुत को थी । उसके राज्य मे जीवहत्या वर्जित थी । राज्यादेश के अनुसार मास भक्षण निषेध था । सुलेमान (शंकराचार्य) पर्वत पर जो मन्दिर खडा है, वह इसी राजा के वजीर का निर्माण कराया है ।

श्री स्तीन राजा गोपादित्य का राज्याभिषेक लौकिक सवत् २७०७ वर्ष छठवा मास तेरहवें दिन देते हैं । श्री एस० पी० पण्डित वह समय ईसा पूर्व ३७१ वर्ष मानते हैं ।

हसन : 'राजा गोपादित्य बाप की वफात के बाद क० २६७४ में मुल्क हाकिम होकर कश्मीर को तमाम सरहदें अपने कब्जा एकदार मे ले आया । रैयत परवरी और इन्साफ से काम लेने मे लाशानी था । मौजा खुली नार व उद मे खाग वेरह मे हाय गाम करधन में इस्कूरह पुर बागल और शागिस में

सखोलखागिकाहाडिग्रामस्कन्दपुराभिधान् ।
शमाङ्गासमुखांश्चाग्रहारान् यः प्रत्यपादयत् ॥ ३४० ॥

जिसने खोल[1] सहित, खागिका[2], हाडा ग्राम[3], स्कन्दपुर[4], शमागसादि[5] मुख्य अग्रहारो को दिया था ।

इसकी यादगारो मे से है । बेशुमार ग्राम बरहमनो ओर फकीरो को बख्श दिये ओर कई मन्दिर भी आवाद किये । जेष्ठेश्वर का मन्दिर जो 'काह सुलेमान' पर वाका है उसकी अजसरेनव तामीर व मरम्मत कराई । मौजा गोपकार और वछवारा बतौर लगर इस 'बुतखाना' के लिये वक्फ कर दिये । अपनी कलमरो किसी को भी जानकर मारने की इजाजत नही देता था । साठ बरस ६ माह हुक्मरानी करके मर गया ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३४० मे 'खोल' का 'खिला', 'हाडिग्राम' का हाडिग्रामे' और 'शमाङ्गास का 'शमाङ्गादि,' 'शमाजासा' तथा 'शमाजास' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३४० (१) खोल : वर्तमान ग्राम खुली है। उलर परगना में है। खोल का अर्थ विकलाग तथा शिरस्त्राण होता है। खोलक का अर्थ ग्राम अथवा पुरवा होता है।

(२) खागिका : वर्तमान खागी अर्थात् खाग ग्राम है। उल्लेख पृ० १२५ पर किया गया है। खागि, खागिक, खाग एक ही नामवाचक शब्द है। नीलमत मे एक खाग नाग का उल्लेख आया है।

स्वर्ग शिशिरवासी च आवासा श्रीधर खग ।
लाङ्गली बलभद्रश्च स्वरूप पञ्चहस्तक· ॥
905 १०७१, १०७१

(३) हाडा ग्राम वर्तमान आडग्राम है। आजकल इस आरगोम गाव कहते है। नागाम परगना मे है। इसका उल्लेख (रा०त० ८ ६७२, १५८६ तथा २१९६) कल्हण ने किया है। प० काशीराम को सन् १८९१ में यहाँ कुछ मन्दिरो के भग्नावशेष मिले थे । इस समय यहाँ दो चार पत्थरो के और कुछ विशेष सामग्री मुझे नही मिल सकी । यह शब्द लौकिक तथा स्थानीय प्रचलित नाम मालूम होता है ।

(४) स्कन्दपुर : वर्तमान गाँव खोन्दर है। यह एक बडा गाव कुथर परगना मे है। तेलवान तथा नौगाम के बीच मे पडता है ।

नीलमत पुराण मे स्कन्दायतन, स्कन्देश्वर तथा स्कन्द तीर्थ का उल्लेख आया है। श्री स्तीन ने यहाँ की यात्रा सन् १८९१ ई० मे की थी। इसके विषय मे उन्होने कुछ लिखा नही है। मुझे इस स्थान पर कुछ विशेष सामग्री उल्लेखनीय नही मिली। इस समय अच्छा ग्राम है ।

कश्यप नील समागम तीर्थ वर्णन के प्रसग मे स्कन्द के निवास स्थान का उल्लेख मिलता है ।

सुवर्णविन्दुस्तत्रैव हरस्यायतन शुभम् ।
स्कन्दस्यायतन तत्र सर्वपापनिषूदनम् ॥
112 १५५ ॥

नीलमत मे वितस्ता माहात्म्य के सम्बन्ध में स्कन्द तीर्थ का उल्लेख किया गया है ।

स्नात्वा तु मदतीर्थे च स्कन्दतीर्थे च मानव· ।
तथा सुरेश्वरीतीर्थे स्वर्गलोके महीयते ॥
1388 १५३२ ॥

नीलमत मे देवायतन कीर्तन के प्रसग मे स्कन्देश्वर का वर्णन मिलता है। उनका स्थान मालि वन में माना गया है।

ज्येष्ठेश्वर प्रतिष्ठाप्य गोपाद्रावार्यदेशजाः ।
गोपाग्रहारान्कृतिना येन स्वीकारिता द्विजः ।। ३४१ ।।

३४१. गोपाद्रि पर ज्येष्ठेश्वर[1] की प्रतिष्ठा कर, कृती जिस राजा ने आर्यदेशीय द्विजों से गोप अग्रहारों[3] को स्वीकृत कराया ।

माल्ये वने गौतदेशं विश्वामित्रेश्वरं तथा
सौनासिक वसिष्ठेशं माखरेशं सुरेश्वरम् ।।
966 ११६७

स्कन्देश्वर वशिाखेशं पौलस्त्यमपरं तथा ।
दृष्ट्वा कुमारमेकैकं फलं गोदानजं लभेत् ।।
997 : ११६८ ।।

(५) शमांगांस : वर्तमान साँगस है । यहाँ पर पडहस्त कार्तिकेय अर्थात् स्कन्द को मूर्ति पाँचवी शताब्दी की मिली है । एक और मूर्ति अर्धनारीश्वर के साथ अवन्तीपुर के ध्वन्सावशेष से प्राप्त हुई है ।

कार्तिकेय की पूजा चैत्र में होती थी । यह पूजा कश्मीर के शिशुओ एव कुमारो के कल्याण हेतु की जाती थी ।

३४१ (१) ज्येष्ठेश्वर और गोपाद्रि गोपा पर्वत शकराचार्य पर्वत है । गोपा अर्थात् गुपकर ग्राम इस पर्वत तथा डल लेक के मध्य इस समय भी मौजूद है ।

मुसलमान लोग शंकराचार्य पर्वत को 'तख्त-ए-सुलेमान' कहते हैं । इसी प्रकार साइरेस (कुरु) महान, जिसने मीडिया जीता था तथा जिसकी मृत्यु सन् ५६९ ई० पू० हुई थी, उसकी राजधानी की अधित्यका को भो 'तख्त ए-सुलेमान' कहते है । साइरेश का सस्कृत नाम 'कुरु' कहा जाता है ।

इस महान् सम्राट् की समाधि को मुसलमान लोग 'हजरत सुलेमान' की माता की मसजिद कहते है । हजरत सुलेमान मुसलमान नहो वल्कि यहूदी थे । मुस्लिम धर्म के उत्पन्न होने के हजारो वर्प पूर्व हुए थे । यहाँ पर वन्ध्या स्त्रियाँ, पुत्र तथा सन्तान निमित्त मन्नतें मानती हैं । फर्गहान के एक बौद्ध स्मारक को भी 'तख्त-ए-सुलेमान' कहा जाता है ।

शकराचार्य के वर्तमान मन्दिर का कई बार जीर्णोद्धार किया जा चुका है । अकबर, जहाँगीर और औरगजेब के समय में यह भग्नावस्था मे पडा था । इसका अरबी आलेख जिस समय कश्मीर के लोग प्राय मुसलमान हो चुके थे, उस समय लिखा गया था । वरनियर ने अपने यात्रा वृत्तान्त मे लिखा है । यहा एक छोटी मस्जिद थी । औरंगजेब के समय पुनः मन्दिरो के तोडने की हवा बह चली थी । उस समय रिवाज हो गया था । जहाँ हिन्दुओ का तीर्थ स्थान या बडा मन्दिर होता था, वहा मस्जिद तथा जियारतें बना दी जाती थी ।

गोपा पर्वत से डल लेक का मनोमुग्धकारी दृश्य दिखाई देता है । मुसलमान इतिहासकार बौहउद्दीन कहता है 'तख्त-ए-सुलेमान' पर एक मन्दिर अथवा स्तूप बनाया गया था । उसमे प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार प्रभु 'ईसामसीह' की अस्थियाँ रखी गयी थी । रफीउद्दीन कहता है 'सिकन्दर बुत शिकन ने इसको नष्ट करवा दिया था ।'

श्री नारायण कौल के समय मन्दिर मौजूद था । वरनियर ने इसका उल्लेख किया है । फोस्टर इसका उल्लेख नहो करता । कहता है—'इस पर्वत के दूसरी तरफ एक दूसरा पहाड है । वहाँ एक छोटी मस्जिद है । उसमे बगीचा भी है । एक बहुत पुरानी इमारत है । वह एक मूर्ति का मन्दिर प्रतीत होता है ।

गोपाद्रि गिर, गोपकार, तख्त-ए-सुलेमान, शकराचार्य पर्वत, ज्येष्ठेश्वर आदि सब एक ही पर्वत के नाम हैं। गुपकर गाव उत्तर-पूर्व पर्वत के मूल में और डल के तट पर है। (रा० त० ८.११०४, १०)। पर्वत श्रीनगर के पूर्व दिशा मे है। राजतरगिणी (१.१२४) से मालूम होता है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ज्येष्ठेश्वर शिव की पूजा यहाँ होती रही है। इस समय जेकर में देवस्थान है। वहाँ पूजा होती है। वह इस पर्वत के समीप है।

ज्येष्ठेश्वर का जो वर्णन राजा गोपादित्य के सन्दर्भ मे किया गया है, वह निस्सन्देह इसी पवित्र स्थान से सम्बन्ध रखता है। यह वही स्थान है, जहाँ इस समय शकराचार्य पर्वत पर, शंकर का मन्दिर स्थित है। मन्दिर में इस समय विशाल शिव लिंग स्थापित है। मैं इस स्थान की कई बार यात्रा कर चुका हूँ। श्री फरगुसन ने ठीक ही कहा है 'वर्तमान मन्दिर बहुत बाद का निर्माण है।' (पृष्ठ २८२।)

मन्दिर का ऊचा अधिष्ठान तथा सीढियाँ, निस्सदेह कल्हण द्वारा देखी हुई गोपादित्य के मन्दिर की निर्माण है। इस पर्वत पर इस मन्दिर के अतिरिक्त और कोई प्राचीन निर्माण अथवा किसी प्रकार का ध्वन्सावशेष नही रह गया है। मेरी जानकारी मे यहाँ अभी तक कोई प्राचीन वस्तु नही मिली है। एक बडे निर्माण के लिए इस पर्वत पर यही एक उपयुक्त स्थान है। जहा बडे पैमाने पर कुछ बनाया जा सकता था।

ज्येष्ठ का अर्थ सबसे बडा होता है। यह परमेश्वर के लिये भी प्रयुक्त किया गया है। यह सामगान का एक प्रकार भी है। मलमास, अधिकमास तथा ज्येष्ठमास तीन वर्ष के पश्चात् पडने वाले अधिक चन्द्रमास के लिये प्रयोग किया जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त पूर्णमासी अर्थात् ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के लिये भी ज्येष्ठ शब्द का प्रयोग किया जाता है।

गोपाचल ग्वालियर के समीप भी एक पर्वत है। ग्वालियर का एक नाम गोपा है। गोप का प्राचीन अर्थ रक्षक किंवा रक्षा करने वाला होता है।

शकराचार्य मन्दिर का सबसे पुराना फोटो कर्नल कोल की पुस्तक मे (पृष्ठ १-८८) छपा है। उस समय (सन् १८८९ ई०) मन्दिर पर पेड तथा घास जम गये थे। मन्दिर की मरम्मत नही हुई थी। मन्दिर का बाह्य आकार जैसा उस समय था वैसा ही इस समय भी है।

मन्दिर श्रीनगर के भूमितल से १००० फुट ऊँची पहाडी पर स्थित है। कोल का कहना है कि परम्परागत गाथा के अनुसार यह मन्दिर राजा जालुक ने ईसापूर्व २२०' मे निर्माण कराया होगा। मार्शल का मत है कि कश्मीर के अन्य हिन्दू मन्दिरो का जो काल है, वही इस मन्दिर का है। मन्दिरो पर लोग अपना नाम तथा निर्माण काल खुदवा दिया करते हैं। श्री फरगुसन को प्रारम्भ मे भ्रम हो गया था। उसने मन्दिर पर हिजरी १०६९ लिखा देखा था। अतएव उन्होने धारणा बना ली—मन्दिर जहागीर के काल में बनाया गया था। यह भ्रम है। इसी प्रकार मन्दिर के अन्दर दक्षिण पश्चिम स्तम्भ पर लिखा है। एक साहुकार 'हाजो हुस्ती ने सवत् ५४ में शिव का निर्माण किया'। उस समय इस्लाम धर्म का उदय नहीं हुआ था। उसी स्तम्भ के नीचे एक जगह लिखा है 'ख्वाजा रुकन वल्द पीर जान ने मन्दिर बनवाया।' इसमे सवत् अथवा हिजरी सन् नही दिया गया है। कल्हण के अनुसार गोपादित्य ने मन्दिर का निर्माण ईसा पूर्व ३६८-३०८ वर्ष मे किया था। किसी विशेष प्रमाण के अभाव मे मूलमन्दिर का निर्माण काल यह मान लिया जा सकता है।

राजा अभिनव गुप्त (सन् ९९३-१०१५ ई०) के समय की किंवदती प्रचलित है। शकराचार्य के एक शिष्य का यहां आगमन हुआ था। वह वेदान्ती थे। शक्ति में उसका विश्वास नही था। एक दिन

उसको बहुत भूख लगी। मार्ग मे एक स्त्री को दूध लिये जाते देखा। दूध माँगा। स्त्री ने कहा। पर्वत से नीचे उतरिए। दूध दूँगी। उत्तर मिला। शक्ति नही है जो पर्वत से उतर सकू। स्त्री ने उत्तर दिया। शक्ति कैसे होगी। तुम शक्ति में विश्वास नही करते। वेदान्ती को बात लग गयी। शक्ति में विश्वास करने लगे। 'सौन्दर्य लहरी' जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना शक्ति की प्रशंसा एवं स्तुति मे की।

मन्दिर पतला है। इसका अधिष्ठान २० फुट ऊँचा है। यह १३ परत शिलाखण्डो का बना है। चारो कोणो पर तीन कोणाकार अधिष्ठान बना है। बौद्ध शैली के आधार पर बौद्ध लोग इसे अपना पवित्र मन्दिर मानते हैं। यहाँ मन्दिर का वाह्य रूप है। कोणाकार रूप के कारण जो बौद्ध स्तूपो में पाया जाता है, कुछ लोगो का मत है यह बौद्ध मन्दिर था।

मन्दिर का बाहरी चौतरा ३½ फुट चौड़ा है। उसपर मुडेरा तुल्य बनावट मन्दिर के अष्टभुजीय रूप को प्रकट करता है। मन्दिर के चबूतरे पर पहुँचने के लिए तीन वर्गों मे पत्थर सीढियाँ की बनी है। पहला ६, दूसरा ७ तथा तीसरा १८ सीढियो का बना है। अट्ठारह सीढियो वाली चढान दोनो ओर से दिवालो द्वारा बन्द है। इसके पश्चात् १० सीढियो से चढने पर मन्दिर के द्वार तक पहुँचा जा सकता है। मन्दिर का गर्भगृह गोलाकार है।

अर्घा मे एक बडा लिंग है। मन्दिर का शिखर २५ फुट ऊँचा है। यह चबूतरे मे ५ फीट ऊँचाई पर है। चबूतरे का परिवेश १०० फुट होगा। मन्दिर का व्यास १४ फिट है। छत ११ फुट ऊँचाई से आरम्भ होती है। छत के आधार तुल्य चारो कोनो पर चार अठपहले स्तम्भ है। दिवाल ७½ फुट मोटी है। सम्पूर्ण मन्दिर शिलाखण्डो अर्थात् पत्थर का बना है।

मन्दिर की शिल्पकला का नाम कश्मीरी हिन्दू कला दिया जा सकता है। यह मन्दिर बंगाल के मन्दिरो के शिल्पकला के आकार तथा रूप से कुछ मिलता है।

कर्नल कोल ने मन्दिर का प्लान पृष्ठ १-८८ पर दिया है। शिव लिंग के चारो तरफ लपटे हुए सर्प की बात कही गयी है। मुझे सर्प तुल्य कोई वस्तु लिंग से लिपटी हुई नही दिखाई पडी। सम्भव है। प्राचीन शिवलिंग के स्थान पर नवीन शिव लिंग की स्थापना मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय की गयी है। कैप्टन श्री नाइट लिखता है : (सन् १८६१ ई०) यह भूमि से एक हजार फुट ऊँचा है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र जलौक ने इसका निर्माण कराया था—इस मन्दिर का प्लान अठपहला अर्थात् अष्टकोणीय है। प्रत्येक पहल १५ फिट लम्बा है। मन्दिर मे १५ सीढियां चढकर पहुचा जाता है। प्रत्येक सीढी आठ फिट चौडी है। उसके दोनो तरफ ढालुआ दीवालें है। मन्दिर की दीवाल आठ फुट चौड़ी है। यह एक सब से बड़ा प्रमाण है कि वह मन्दिर बहुत पुराना था। (एपिग्रिडक्स ए. पृष्ठ ३५४ (१८६१)

वह मन्दिर के विषय मे लिखता है—मन्दिर इस समय दो हिन्दू साधुओ की संरक्षता मे है। यहा मैने दो बडे गन्दे फकीरो अथवा धार्मिक साधुओ को देखा। उनमें एक सो रहा था। उसका पैर धूल तथा भस्म मे पडा था, दूसरा अविचल बैठा था। उसकी एक भी मास-पेशियाँ तक हिल नही रही थी। वह प्रातःकालीन सूर्य में धूप खा रहा था। दोनो प्रायः नंगे थे। उनके शरीर पर तथा मुख पर राख पुती हुई थी। उनके बाल लम्बे और जटा का रूप ले लिये थे। वे दोनो जगत् से जैसे सम्बन्ध तोड चुके थे। मैं वहाँ पर था। परन्तु उनमे से किसी ने मेरी तरफ न तो देखा और न ध्यान दिया। उन्हें मेरी उपस्थिति का जैसे ज्ञान भी नही था। यद्यपि मैने उनमें से एक का स्केच किया। दोनो की तरफ बहुत देर तक इस प्रकार ध्यान पूर्वक देखता रहा जैसे किसी चिड़ियाघर में कोई नया जानवर आया हो परन्तु उन्हें जैसे इन सबका कोई ज्ञान ही नही था।

श्री वाइन अपने ट्रेवेल पृष्ठ ९०.९१ में लिखते है। तख्त-सुलेमान एक पुराना हिन्दू मन्दिर है। वह तेजस्वी सुलेमान का तख्त कहा जाता है। वह प्राफेट शक्तिशाली इन्द्रजालिक, जिन्हें प्रत्येक पवित्र मुसलमान विश्वास करता है कि वह आकाश से उस सिंहासनपर आये थे जो देविस तथा एरिट लेकर आए थे। जिन्हे भगवान् ने सुलेमान का सेवक बना दिया था।

श्री डवलू. वेकफील्ड लिखते है—'मै नही जानता कि तख्त सुलेमान नाम क्यो पडा। निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि बाइबिल का सर्वविख्यात व्यक्ति (सुलेमान) क्या यहाँ आकर पर्वत पर अपना तख्त बनाया था। किसी भी प्रमाण से सिद्ध नही होता। यह विचित्र बात है कि पूर्व में अपने पवित्र इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियो का नाम जिनसे हम परिचित है यहाँ की स्थानीय गाथाओ, साहित्य तथा यथार्थ सच्चाई मे मिलते है जैसे कि हजरत नूह तथा उसके पुत्र की मज़ारें फैजाबाद के समीप अयोध्या मे है। एशिया के इस भाग मे दो नामो की प्रसिद्धि इन सज्ञाओ के कारण हुई है। क्यो और किस प्रकार तख्त ए सुलेमान इस ऊँचे पर्वत का सुलेमान के नाम पर नाम पडा कहना कठिन है। यहाँ की स्थानीय जन कथाओ में कोई ऐसी कथा नही मिली। जिससे मालूम होता कि हज़रत सुलेमान ने यहाँ आसपास आश्चर्यजनक काम किया था। यहाँ के अच्छे मुसलमान कहते है कि यहाँपर हज़रत सुलेमान ने ठहर कर कश्मीर उपत्यका का जल जिन्नो को आज्ञा देकर निकलवाया था। जिन्हें सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने सुलेमान के आधीन कर दिया था।

'हिन्दू लोग इसे सिर-ई-शुर-अर्थात् शिवका शिर कहते है ·· अष्टकोणीय चबूतरा पर जो १२ फिट ऊँचा है उसपर ३० फिट ऊँचा कोणीय मन्दिर बना है। इसमे चूने के पत्थर की सीढ़ियाँ पूर्व दिशा मे हैं जो भूमिस्तर से मन्दिर के गर्भ-गृहमें पहुचाती है। चूने के पत्थर पर खूब पालिश की गयी है। यही पत्थर सम्पूर्ण मन्दिर की रचना मे लगाया गया है। मन्दिर का गर्भगृह वृत्ताकार अर्थात् गोला है। उसका व्यास १४ फिट है। छत समथर है। वह चार खम्बो पर आधारित है। मध्यमें एक चौखूंटा अधिष्ठान है। उसपर काले पत्थर का शिव लिंग है। उससे प्रकट होता है कि इस दिवाल के अन्दर विभिन्न समयो मे कितने विभिन्न धर्मो का अनुकरण किया गया होगा। मूलत. यह बौद्ध मन्दिर था। कालान्तर में मुसलिम काल मे मसजिद बना दिया गया। तत्पश्चात् हिन्दूओं द्वारा शिव मन्दिर का रूप ग्रहण किया। पृष्ठ-६०-६१

महाराज मैसूर ने मन्दिर के शिखर पर बिजली लगवायी है। यह बिजली अब तक जलती है। उसका प्रकाश कश्मीर उपत्यका के किसी भी भाग से दिखाई देता है। राजा ने बिजली के खर्च के लिए रुपया जमा कर दिया है। उसी से बिजली का खर्च किया जाता है। रात्रि मे मन्दिर पर तथा शिखर पर प्रखर ज्योति जलती है। कश्मीर उपत्यका में वह जैसे भगवान् का स्मरण दिलाती है। भगवान् कश्मीर की उपत्यका की रक्षा किंवा सरक्षण कर रहे हैं। उस रोशनी को देखकर मन को एक प्रकार का आध्यात्मिक सतोष तथा शान्ति मिलती है।

मन्दिर के उत्तर-पूर्व एक चबूतरा है। जहाँ सम्भवत. पहले कोई इमारत बनी रही होगी। मन्दिर के उत्तर पार्श्व के समीप एक अलकृत कमरा चूने के पत्थर का बना है। कमरा ११ फुट वर्गाकार तथा ६½ फुट ऊचा है। मन्दिर के दक्षिण तरफ ४० फुट दूर पर एक हौज है। वह अलकृत पत्थर का बना है। यह ११ फुट वर्गाकार और ९ फुट गहरा है। शिखर पर जल की कठिनाई है। पर्वत मूल से आदमी जल लेकर ऊपर आता है। इस हौज में बर्फ तथा वर्षा का जो जल एकत्रित होता है। इसमे मन्दिर की पूजा तथा अर्चना होती है।

भूक्षीरवाटिकायां यो निर्वास्य लशुनाशिनः ।
खासटायां व्यधाद्विप्रान् निजाचारविवर्जितान ।। ३४२ ।।

३४२. उसने लहसुनभोजी[1] विप्रों को भूक्षीर वाटिका[2] तथा निज आचारहीन ब्राह्मणों को खासटा से[3] निर्वासित कर दिया ।

राजतरगिणो के अनुसार राजा गोपादित्य ने (ईसा पूर्व ३६८-३०८) मे इस मन्दिर का निर्माण कराया था । राजा ललितादित्य सन् ७०१-७३७ ई० ने मन्दिर का जीर्णोद्धोर, मन्दिर निर्माण के लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् कराया था। कश्मीर के बडशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२०-१४७० ई०) ने मन्दिर की छत की मरम्मत करवायी थी । छत भूकम्प के कारण प्राय: नष्ट हो गयी थी । सिख राज्यपाल शेखगुलाम मोहिउद्दीन ने शिखर की ईंटो से मरम्मत करवायी थी । डोगरा राजाओ ने ईंटो के स्थान पर पत्थर का शिखर, जैसा पूर्व मन्दिर का था, बनवा दिया है ।

पूर्वकाल मे झेलम नदी के सुधाश्थार घाट से मन्दिर तक सीढिया बनी थी । वे अब नष्ट हो गयी है । सुना जाता है । मन्दिर की इन सीढियो के पत्थरो से नूरजहाँ ने श्रीनगर मे पत्थर मस्जिद का निर्माण कराया है । पत्थर मस्जिद वितस्ता के वाम तट पर स्थित है । यह मुगल स्थापत्य शैली पर बनी है । मस्जिद में कोई नमाज् नही पढता । मस्जिद का इसलिए त्याग कर दिया गया कि नूरजहा की जूतों का कीमत मात्र मस्जिद निर्माण की कीमत आँकी गयी थी । अतएव वह अपवित्र मानकर त्याग दी गयी । मैंने इस मस्जिद को देखा है । मस्जिद मे एक बडा अहाता है । सूना पडा है । इसमें बच्चे खेलते हैं ।

शकराचार्य पर्वत का नाम तख्त सुलेमान 'वाण भट्ट' का रखा हुआ है ।

(२) आर्य देशीय . श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुसार कल्हण ने यहा गंगा और यमुना के भूखण्ड को माना है । किन्तु उत्तरी भारतवर्ष को यदि आर्यावर्त मान लेते है तो यह शब्द आर्यदेश के अर्थके अधिक समीचीन होगा ।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है गोप या गुपकर मे आर्यदेशीय ब्राह्मणो के निवास निमित्त राजा ने अग्रहार दिया था । डललेक के तट पर ब्राह्मणो के आबाद करने का यह प्रथम उदाहरण मिलता है ।

उक्त विवरण से स्पष्ट प्रकट होता है । कश्मीर के ब्राह्मणो की मान्यता खान-पान की परम्परा न पालन करने कारण समाप्त हो गयी थी । उनके स्थान पूर्ति निमित्त आचारवान ब्राह्मणो को बाहर से लाकर आचार रक्षा निमित्त बसाया गया था ।

(३) गोपा अग्रहार · गोपा अग्रहार गुपकर ग्राम में स्थित फलवाले बगीचो आदि का स्थान रहा होगा । श्रीनगर मे जिस तेजी के साथ आबादी बढ रही है, उससे यह बाग भी नष्ट होकर, आबादी तथा मकानो के समूह का रूप ले लेगा ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ३४२ में 'व्यधाद्वि' का 'व्यथानिव' 'व्ययार्वि', 'वृथान्वि' तथा 'व्यधान्वि' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ·

३४२. (१) लहसुनभोजी : मनुस्मृति लहसुन का प्रयोग द्विजो के लिए वर्जित करती है ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ।५५।

लहसुन तथा प्याज का भोजन ब्राह्मणो एवं द्विजो के लिये वर्जित माना गया है । उच्च वर्ण के लोग उनका व्यवहार कुछ दिन पूर्व नही करते थे । मेरे घरमे अबतक लहसुन प्याज का प्रवेश नही हो सका

अन्यांश्चानीय देशेभ्यः पुण्येभ्यो वश्चिकादिषु।
पावनानग्रहारेषु ब्राह्मणान्स न्यरोपयत् ॥ ३४३ ॥

३४३. उसने पुण्यदेशो[1] से अन्य पवित्र ब्राह्मणो[2] को लाकर वश्चिक[3] आदि अग्रहारो मे बसाया।

उत्तमो लोकपालोऽयमिति लक्ष्म प्रशस्तिषु।
यः प्राप्तवान्विना यज्ञं चक्षमे न पशुक्षयम् ॥३४४॥

३४४. जिसने प्रशस्तियों[1] मे यह 'उत्तम लोकपाल है', उपाधि प्राप्त की थी। यज्ञ के अतिरिक्त पशु क्षय[2] वह सहन नही कर सकता था।

है। मैं स्वय नही खाता। सनातनी ब्राह्मण गण आज भी लहसुन प्याज का भक्षण नही करते। उन्हे अभक्ष्य माना गया है। वैष्णव तथा वैश्य वर्ग मे एक बहुत बडा समाज लहसुन तथा प्याज से परहेज करता है। मारवाडी वासा मे अवतक प्याज एव लहसुन का प्रयोग नही किया जाता।

(२) भूक्षीर वाटिका : वर्तमान वूछो बोर प्राचीन भूक्षीर वाटिका स्थान है। यह पतला भूखण्ड है। शकराचार्य पर्वत के मूल मे उत्तर-पश्चिम स्थान से डल के एक भाग गगरी वल तक फैला है। 'बोर' शब्द सस्कृत वाटिका का अपभ्रश है। भूका अर्थ भूमि, क्षीर का अर्थ दूध, तथा वाटिका का अर्थ छोटा उद्यान होता है। शुद्ध सस्कृत नाम। सम्भव है वहाँ पर ऐसे वृक्ष हैं जिनके पत्ते या डठल तोडने पर गूलर, वटादि की तरह दूध निकलता रहा हो।

(३) खासटा : इस स्थान को सुदर बल के समीप होना चाहिए। निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि वास्तव मे यह स्थान कहाँ पर था। पृष्ठ १९० सुदर बल टिप्पणी द्रष्टव्य है।

३४३ (१) पुण्यदेश . यहाँ पर पुण्यदेश का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। राजा सम्भवत कश्मीर को पुण्यदेश इसलिये नही समझता था कि वहाँ के ब्राह्मणादि आचारभ्रष्ट हो गये थे। कई बार वहाके ब्राह्मणो के सुधार की चेष्टा की गयी। कितनी ही बार ब्राह्मण वाहर से लाकर कश्मीर में वसाये गये परन्तु प्रतीत होता है कालान्तर मे आने वाले ब्राह्मण भी स्थानीय ब्राह्मणो से मिलकर आचार का त्याग कर देते थे। अतएव राजा कश्मीर के वाहर 'पुण्यदेश' उत्तरी भारत के तीर्थस्थानो आदि से लाकर ब्राह्मण कश्मीर में वसाये।

(२) पवित्र ब्राह्मण : कश्मीर की तुलना मे पुण्यदेश के ब्राह्मणो को पवित्र कहा गया है। पवित्र ब्राह्मण का यहाँ अर्थ—विद्वान्, आचार-नियम स्वाध्यायप्रिय, पठन-पाठन-यज्ञादि कर्मकाण्ड मे पारगत ब्राह्मणो से है।

(३) वश्चिक : यह वर्तमान गात्र उची है। रामव्यार नदी की पूर्व दिशा में अधोभाग में है। सन् १८९१ में प० काशोराम को यहाँ कुछ खण्डित मूर्तियाँ मिली थी। उनके अनुसार स्थान विशेष प्राचीन महत्व नही रखता था। मात्र एक देवस्थान रूप में स्थित था। इसके पूर्व में नदी कुछ दूर पर पडेगी। उत्तर मे रामव्यार नदी है। पश्चिम में दुरवाग तथा सपनगर है। दक्षिण में अखनी है। यह विजयेश्वर के पश्चिम पडता है।

३४४. (१) प्रशस्ति सिसन्देह गोपादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति था। उसके नाम से सम्बन्धित गोपाद्रि पर्वत, गोपकुर (गोपा अग्रहार) तथा अनेक स्थान हैं। शकराचार्य पर्वत पर स्थित मन्दिर इस राजा का निर्माण था। यहाँ पर,

सषड्दिनां वर्षषष्टिं पालयित्वा स मेदिनीम् ।
भोक्तुं पुण्यपरीपाकं लोकान्सुकृतिनामगात् ॥ ३४५ ॥

३४५. उसने साठ वर्ष छह दिन[1] मेदिनी का पालन करके, पुण्य परिपाक भोग हेतु, सुकृतियों के लोक में प्रस्थान किया।

गोकर्णस्तत्सुतः क्षोणीं गोकर्णेश्वरकृद्दधे ।
अष्टपञ्चाशतं वर्षांस्त्रिंशत्याऽह्नां विवर्जितान् ॥ ३४६ ॥

गोकर्णः[1]

३४६. गोकर्णेश्वर[2] का निर्माता उसके पुत्र गोकर्ण ने तीस दिन कम अट्ठावन वर्ष[3] पृथ्वी पर शासन किया।

प्रतीत होता है, कल्हण ने गोपादित्य सम्बन्धी प्रशस्तियो से अपनी लेखन सामग्री ली थी।

प्रशस्ति के लिये टिप्पणी पृ० १३ 'प्रशस्ति पट्ट' द्रष्टव्य है।

(२) पशुक्षय—यज्ञ मे पशुहत्या विहित थी। अतएव राजा ने पशुहत्या यज्ञ के अतिरिक्त सब स्थानो पर बन्द करवा दी। कश्मीर शीत प्रधान देश है। तथापि उसने धर्म भावना से प्रेरित होकर पशुहत्या वर्जित कर दी। प्रतीत होता है। राजा धर्मभीरु था। सुधारक था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४५ मे 'संषड्दिना' का 'सषण्मासा' तथा 'परीपाकं' का पाठभेद 'परिपाकं' तथा 'परोपाकं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४५. (१) छह दिन : कुछ विद्वानो का मत है कि 'छह दिन' के स्थान पर 'छह मास' होना चाहिए। श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित दोनो ने ही ६ दिन ही पाठ ठीक माना है। पाठ दोनो ही मिलते है। अतएव मैने प्रचलित पाठ के अनुसार '६ दिन' ही दिया है। किसी गणना पर इसका निश्चय करना कठिन है। श्री स्तीन ने ठीक लिखा है कि राजा युधिष्ठिर का राज्य काल नही दिया गया है। अतएव गणना करना कठिन है। श्री एस पी. पण्डित ने भी ६० वर्ष ६ दिन राज्यकाल माना है

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४६ मे 'क्षोणी' का 'क्षौर्णी', दधे'' का 'दृदे'; 'त्याऽ ा' का 'त्यह्ना' तथा 'विवर्जितान्' का 'विवर्जनात्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३४६ (१) गोकर्ण : आइने अकबरी मे राजा गोकर्ण को 'कुरेन' तथा उसका राज्यकाल ५७ वर्ष ११ दिन दिया गया है। हसन लिखता है—क. २७३४ मे उसके (गोपादित्यके) बेटे राजा गोकर्न ने इकबालमन्दी का ताज सर पर रखकर अठावन बरस सल्तनत किया।

श्री स्तीन राज्याभिषेक का समय कल्हण की गणनानुसार लौकिक संवत् २७६७ वर्ष छठवाँ मास तथा उन्नीसवाँ दिन देते है। श्री एस० पी० पण्डित ने यह काल ईसा पूर्व ३११ वर्ष माना है। श्री जनरल कनिंघम के अनुसार राजा गोकर्ण का नाम किदार शैली की मुद्रा पर टंकित मिला है। परन्तु बादमें उस मुद्रा के प्रति सन्देह प्रकट दिया गया है कि वास्तव मे वह गोकर्ण की थी। श्री देवसेन श्री कनिंघम के मत का खण्डन करते है।

(२) गोकर्णेश्वर : गोकर्णेश्वर महादेव का कहाँ स्थान था अभी तक पता नही चला है। गोकर्ण क्षेत्र

सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य खिङ्खिलान्याभिधोऽभवत् ।
भूतेश्वरप्रतिष्ठानामक्षयिण्याश्च कारकः ॥ ३४७ ॥

नरेन्द्रादित्य (खिंखिल)[१]

३४७. उसका पुत्र नरेन्द्रादित्य उपनाम खिंखिल[२] हुआ। वह भूतेश्वर[३] प्रतिष्ठानो और अक्षयिणी[४] का संस्थापक था।

दक्षिण भारत मे पश्चिमी समुद्रतट पर है। गोकर्ण को 'दक्षिण काशी' भी कहते है। श्रीक्षेत्र-गोकर्ण त्रिस्थलो मे से एक क्षेत्र है। भास्कर क्षेत्रो में इसकी गणना की जाती है।

पौराणिक गाथा है कि महादेव गाय के कर्ण से उत्पन्न हुए थे। जिस स्थान पर गाय के कान से रुद्र प्रकट हुए थे उस स्थान का नाम 'गोकर्ण' किंवा 'रुद्रयोनि' पड गया था। महाप्रलय काल मे पृथ्वी जलमग्न हो जायगी तो 'गोकर्णक्षेत्र' का स्थान आवर्त तुल्य दिखाई पड़ता रहेगा। अतएव उसको सज्ञा 'वर्णावर्त' उस समय दी जायगी। गोकर्ण के चारो ओर योजन पर्यन्त भूमि को 'गोकर्णमण्डल' कहा जाता है।

'रुद्रभूमि' गोकर्ण को कहते हैं। यहाँ मरने पर मुक्ति होती है। दिवगत को शिव का सानिध्य प्राप्त होता है। मैने गोकर्ण क्षेत्र की यात्रा १२ अगस्त सन् १९६५ को की थी। स्थान समुद्र तटपर है। मन्दिर प्राचीन नही मालूम होता। समुद्र की लहरो के कारण तट कट गया है।

गोकर्ण में जगत्-पूजित आत्मलिंग वैवस्वत मन्वन्तर के २३वें, त्रेतायुग में शरत् काल कार्तिक शुक्ल प्रतिपद व्यतिपात योग, तुला मास, विशाखा नक्षत्र, दिन रविवार, लग्न मीन, के मगल मुहूर्त मे स्थापित हुआ था। रावण आत्मलिंग को उखाडना चाहता था। किन्तु असफल रहा। यहा महाबलेश्वर, महागणपति श्रीकलकलेश्वर, श्री ताम्रगौरी, श्री वेंकटरमण, श्री भद्रकाली, कालीह्रद, श्री खड्गतीर्थ, श्री दुर्गाकुण्ड, श्री शतभृ ग, श्री कोटितीर्थ, श्री पितृस्थली, श्री विधूतपापस्थली, श्री रुद्रपाद, श्री शकर नारायण, श्री पट्टविनायक, श्री उमामहेश्वर, श्री ब्रह्मेश्वर, श्रीकेतकी, श्रीभैरव, श्री क्षेत्रपाल, श्रीनरसिंह, श्रीकृष्ण, श्रीकेतकी विनायक, श्री सिद्धेश्वर, श्रीमणिभद्र, श्री चक्रतीर्थ, श्री नागेश्वर, श्री मणिनाग, श्रीरामतीर्थ, श्रीकपिलतीर्थ, श्री वैतरणी, श्री सरस्वती, श्री सोमतीर्थ, आदि अनेक स्थान कश्मीर के देवस्थानो के समान यहाँ बने मिलेंगे।

स्थान गन्दा है। बहुत गरीबी है। गोकर्ण का लिंग ऊपर निकला नही है। एक छोटा कुण्ड है। जलसे भरा रहता है। उसमें हाथ डालने पर एक छोटे लिंग का स्पर्श होता है। कथा है कि दूसरे लिंग के नीचे अन्य लिंग है। पार्श्वमें महाबलेश्वर की मूर्ति एक उठे स्तम्भ पर है।

गोकर्ण के मुख्य मन्दिर की परिक्रमा में आदिगोकर्ण की मूर्ति भूमिस्तर से नीचे जल में मुझे दिखाई दी। मन्दिर के पृष्ठ भाग में ताम्र गगा है। यह एक पक्का छोटा कुण्ड है। इसमें अस्थि प्रवाह किया जाता है। जल बँधा है। कुण्ड गन्दा लगा। पेड की पत्तियाँ गिर कर पडती रहती है। श्मशान से अस्थिचयन कर यही पर अस्थियाँ ढाल दी जाती हैं। बाहर से भी लोग अस्थि लाकर इसमें डालते है।

आश्चर्य की बात यह है अस्थियाँ कुछ ही दिनो मे गलकर जल में घुल जाती है। यहाँ के जल मे रासायनिक पदार्थ कुछ हैं। जिनके कारण अस्थियाँ गल जाती हैं। अन्यथा अस्थियाँ जलमें या भूमि में सैकडो वर्ष पडी रहती है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३४७ में 'कारकः' का 'कारस' पाठभेद मिलता है।

दिव्यानुग्रहभागुग्राभिधो यस्य गुरुर्व्यधात् ।
उग्रेशं मातृचक्रं च प्रभावोदग्रविग्रहः ॥ ३४८ ॥

३४८. देवी शक्ति प्राप्त, प्रभावोत्कृष्ट एवं विग्रह युक्त, उग्र[1] नामक उसके गुरु ने उग्रेश[2] एवं मातृ[3]चक्र स्थापित किया ।

पादटिप्पणियाँ :

३४७. (१) **नरेन्द्रादित्य** : आइने अकबरी ने 'तुरुद्र' नाम दिया है । उसका राज्यकाल ३६ वर्ष ३ मास १० दिन माना है ।

कल्हण की गणना के अनुसार स्तीन राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् २८२५ वर्ष पाँचवाँ मास उन्नीसवें दिन देते है । श्री एस पी. पण्डित समय ईसा पूर्व २५३ वर्ष रखते है ।

हसनके अनुसार अपने बापके मरने के बाद राजा नरेन्द्रादित्य रौनक बख्श सलतनत हुआ । राजा ३६ बरस हकूमत करके गुजर गया ।

(२) **खिखिल** : एक मुद्रा 'देव शाही 'खिगिल'—अकित प्राप्त हुई है । इसे नरेन्द्रादित्य प्रथम की मुद्रा कहा जाता है । इस मुद्रा की शैली इफथेलाइट शासको अर्थात् हूणो की शैली की है । वह मुद्रा राजा लखन (लक्ष्मण) (रा० त० ३ ३८३) के ढग की है । एक दूसरी मुद्रा मिलती है उस पर—'श्रीनरेन्द्र'—अकित है । यह मुद्रा 'किदार' शैली की है । सम्भव है कि यह मुद्रा इसी नाम के बाद में हुए किसी राजा की मुद्रा रही हो । यह मुद्रा सम्भवत ५वी ६ठवी शताब्दी की प्रतीत होती है । किन्तु कल्हण के अनुसार ई॰ पूर्व २५०-२१४ वर्ष की है ।

कल्हण के अनुसार खिखिल श्रीनन्द तृतीय के पश्चात् उन्नीसवाँ राजा हुआ था ।

खिखिल नाम भारतीय नही प्रतीत होता अतएव इसे हूण वशीय मानने की ओर विद्वानो का झुकाव है । 'किन्तु कल्हण के काल तथा मुद्रा काल मे ६ शताब्दियो का अन्तर समस्या उत्पन्न कर देता है ।

(३) **भूतेश्वर** : हरमुकुट पर्वत के समीप यह स्थान है । अशोक के वर्णन में इसका उल्लेख किया जा चुका है । पृष्ठ १४९ तथा टिप्पणी 'भूतेश' पृष्ठ २०१ द्रष्टव्य है ।

(४) **अक्षयिणी** : ब्राह्मणो के भोजन निमित्त अक्षयिणी क्षेत्र किंवा सदावर्त है । कश्मीर के पर्वतीय भागो मे इस प्रकार के दानो को 'अछिन्या' कहते हैं । श्रीवर ने (६ ४०८) जैनुल आबदीन बादशाह द्वारा दिये गये एक दान का वर्णन शूरपुर अर्थात् हूरपुर के पास पीर पंतशल मार्ग पर किया है । यहाँ यात्री बिना किसी भेदभाव के भोजन प्राप्त करते थे । उसने यहाँ 'अन्नसत्र अविच्छिन्ना' शब्द का प्रयोग किया है । अक्षयिणी का अर्थ होता है कि जहाँ सदावर्त अथवा दान निरन्तर किया जाता है । वह इतना होता है कि कभी कमी नही पडती । कोई हताश होकर लौटता नही । अक्षय भाण्डार तुल्य आवश्यकता पूर्ति करता है ।

अच्छिन्नेनान्नसत्रेण विजयेश्वरवासिनाम् ।
उदरे मेदुरे सिद्धः प्रणामो यत्नतो विभो' ॥ १:५:२१

नासिक की गुफा मे तथा अन्य स्थानो पर इस प्रकार के दान के लिए 'अक्षयनिधि' शब्द का प्रयोग किया गया है । जम्मू के रघुनाथ मन्दिर मे यह 'सदावर्त' नाम से प्रसिद्ध है । डोगरा राजाओ के काल मे बनिहाल पास तथा झेलम की सड़क बुनयार पर साधु तथा तीर्थ यात्रियो को इस प्रकार का दान दिया जाता था ।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अक्षयिणी को देवी माना है । उन्हो ने 'अक्षायिणी देवी के मन्दिर की स्थापना की' इस प्रकार अनुवाद किया है । मै इसे ठीक मानने में असमर्थ हूँ । (पृष्ठ : ५८३)

३४८ (१) **उग्र** : इनका उल्लेख कही और अभी

भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विभुर्भुव. ।
स दीर्वैरनघांल्लोकानासदत्सुकृतैः कृती ॥ ३४९ ॥

३४९. उस पुण्यात्मा ने छत्तीस वर्ष सौ दिन पृथ्वी का स्वामी रहकर अत्यधिक सुकृतो के कारण पुण्य लोक प्राप्त किया ।

युधिष्ठिराभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
यः सूक्ष्माक्षतया लोकैः कथितोऽन्धयुधिष्ठिरः ॥ ३५० ॥

युधिष्ठिर :

३५०. अनन्तर युधिष्ठिर नामक उसका पुत्र राजा हुआ, जिसे सूक्ष्माक्ष होने के कारण, लोग अन्ध युधिष्ठिर कहते थे[1] ।

तक नही मिल सका है। सम्भव है कल्हण के समय तक इनके विपय में कुछ साहित्य प्राप्त रहा हो। कल्हण ने स्वय इनका इतना संक्षिप्त वर्णन किया है कि कुछ अनुमान लगाना कठिन है।

(२) उग्रेश : ऋग्वेद में 'उग्रदेव' का उल्लेख मिलता है। (ऋ० १ ३६ १८; प०ब्रा. १४ ३ १७, २३ १६ ११७) इनका पैतृक नाम तैत्तिरीय आरण्यक में राजनि दिया गया है। (तै०- आ०, ५ ४-१२) यहाँ पर सरल अर्थ यही अभिहित है कि उग्र ने अपने नाम पर उग्रेश शिव की स्थापना की।

(३) मातृ चक्र : टिप्पणो मातृचक्र पृष्ट १८१ (१ २२) द्रष्टव्य है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ३४९ में 'शत' का 'शर्ति' पाठभेद मिलता है।

श्लोक सख्या ३५० में 'सूक्ष्माक्षतया' का पाठभेद 'सूक्ष्माक्षितया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

३५० (१) आइने अकवरी में 'जेवादिस्तर' लिखा है। राज्य काल ४८ वर्ष १० दिन दिया गया है। राजतरंगिणी में इस राजा का राज्य काल नही दिया गया है। आइने अकवरी मे युधिष्ठिर के शासन के विपय मे लिखा है—राजा युधिष्ठिर ने न्यायपूर्ण शासन आरम्भ किया। किन्तु कालान्तर मे वह कामी हो गया। वह इतना क्रूर हो गया था कि हिन्दुस्तान तथा तिब्बत के राजाओ ने उसके खिलाफ मिलकर आवाज उठायी। इससे उत्साहित होकर कश्मीर के सरदारो ने विद्रोह किया। राजा को वन्दी-गृह मे डाल दिया।

श्री स्तीन इस राजा का राज्याभिषेक लौकिक वर्ष २९६१ वर्ष आठवा मास उनतीसवाँ दिन मानते हैं। श्री एस. पी. पण्डित यह समय ईसा पूर्व २१७ वर्ष देते हैं।

हसन के अनुसार 'क. २८२८ में उसका (नरेन्द्रादित्य का)वेटा राजा अन्ध युधिष्ठिर वाप का जानशीन हुआ। उसकी आँखें वडी छोटी थी। यही वजह था कि यह बीनाई पूरी नही रखता था। इस विना पर इसे लोगो ने अन्ध यानी कोर का लकव दिया हुआ था। शुरू-शुरू में अदल व इन्साफ, सखावत व रैयत परवरी में मसरूफ रहा। लेकिन विल आखीर कमीनो और वदकारो की सुहवत मे पडकर जुल्म और सख्ती का पेशा अख्तियार कर लिया। हर किस्म के बुरे काम मसलन शरावनोशी और वदकारी अपना शआर वना लिया। लोगो की औरतें और वीवियाँ जवर्दस्ती ले जाने लगा। अकलमन्दो और सन रसीदा लोगो से नफरत अख्तियार करके कमीनो और आवारो को अपना मुसाहव वना लिया। वेरहमी और खूँनरेजी में कोई कसर वाकी न रखी। यह देखकर

तेन क्रमागतं राज्यं सावधानेन शासता ।
अनुजग्मे मितं कालं पूर्वभूपालपद्धतिः ॥३५१॥

३५१. उसने क्रमागण राज्य का सावधानी पूर्वक शासन करता हुआ कुछ दिन तक पूर्ववर्ती राजाओं की पद्धति[1] का अनुकरण किया ।

काले कियत्यपि ततो यात्यभाग्यवशादसौ ।
सिषेवे श्रीमदक्षीबो यत्किञ्चनविधायिताम् ॥३५२॥

३५२. कुछ समय पश्चात् अभाग्य वश श्रीमद से उन्मत्त वह यत्किंचनविधायी[1] हो गया ।

नान्वग्रहीदनुग्राह्यान्न संजग्राह धीमतः ।
न प्रवृत्तोपचाराणां प्रागिवासीत्प्रियकरः ॥३५३॥

३५३. वह अनुग्रह पात्रों पर अनुग्रह, धीमानो का संग्रह, तथा सेवारत सेवकों का पूर्ववत् प्रियकर्त्ता नहीं रह गया था ।

दुर्विद्यपर्षदा साकं निर्विशेषं सभाजितैः ।
परिजह्रे स दुर्जातो जाततेजोवधैर्बुधैः ॥३५४॥

३५४. दुर्विद्य गण के साथ, निर्विशेष रूप से सम्मानित तथा अपमानित विद्वानों ने उस दुर्जात राजा का त्याग कर दिया ।

सर्वत्र समदृष्टित्वं गुणोऽयं खलु योगिनः ।
अकीर्तिहेतुः स महान्दोषस्तु पृथिवीपतेः ॥३५५॥

३५५. सर्वत्र समदर्शिता योगियों के लिये गुण है किन्तु वह पृथ्वीपति की अकीर्ति का हेतु तथा महान् दोष है ।

उसकी फौज और रैयत उससे मुतनफर हो गयी । आसपास के हुक्काम जो दिल और जान से राजा के मतोअ और फरमाँबरदार थे, एक एक करके इसके बागी होने लगे । हकूमत के अहल हल व अकदीद ज़बान इसकी मजवली पर मुताफिक हो गये । अहल जमाना की यह बेमुरव्वती देखकर युधिष्ठिर दो-तीन रकीबो के हमराह हिन्दुस्तान की तरफ भाग गया । यहाँ एक राजा ने उसे पकडकर जान से मार डाला । इसकी मुद्दत हकूमत बावन बरस और आठ माह थी ।' पृष्ठ ५०

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५१ में 'अनुजग्मे' का 'अनुजज्ञे' तथा 'मितं' का पाठभेद 'सितं' मिलता है ।

पादटिप्पणीयाँ .

३५१ (१) पद्धति : यहाँ शासन पद्धति अर्थ लगाना चाहिए । पूर्ववर्ती राजाओ की शासन पद्धति का अनुकरण कुछ दिन तक राजा करता रहा ।

३५२ (१) यत्किंचनविधायी : राजा स्वेच्छाचारी, उद्दण्ड, अकर्मण्य, उच्छृंखल, निरंकुश तथा अविहित, अकरणीय कर्म करने वाला हो गया था । कल्हण का यही तात्पर्य यहाँ प्रकट होता है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ३५४ में 'परिजह्रे' का पाठभेद 'परिजिह्रे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३५५. (१)समदर्शी : योगियो तथा सज्जनो के

नयद्भिर्गुणतां दोषान्दोषतां च गुणान्विटैः ।
स लुप्तप्रतिभश्चक्रे शनकैः स्त्रीजितोपमः ।।३५६।।

३५६ दोषों को गुण एवं गुणो को दोष बताने वाले विटो[1] द्वारा प्रतिभाहीन, वह राजा शनैः शनैः स्त्रैण[2] तुल्य हो गया ।

लिये समदर्शी होना गुण कहा गया है । योगी तथा राजा मे अन्तर है । राजा के लिए समदर्शी होना उसी प्रकार गुण हैं, जिस प्रकार उग्रदण्ड दायक । राजा सभी गुणो का समन्वय है । दुष्टो को दण्ड, कण्टकशोधन, आततायियो का नाश, शत्रुओ का सहार, युद्ध में विजय, समय पर तेजस्वी, समय पर सरल, समय पर दानी, जनता के उपकार के लिये जब जिस समय जिन गुणो की अपेक्षा हो ग्रहणकारी होना चाहिए । युद्ध में शत्रु पर दया राजा के नाश एव पराजय का कारण होती है । आततायियो पर करुणा समाज में अशान्ति उत्पन्न करती है । अवाछनीय तत्त्वो के प्रति उपेक्षा देश को अराजकता की ओर ले जाती है । योगी एव पण्डित जो अपने ही में लीन रहते हैं, उनके लिये समदर्शिता गुण है । वे पशु पक्षी मे भी मैत्री भावना रख सकते हैं । किन्तु सर्वसाधारण में यह मैत्री भावना तथा समदर्शिता प्रचुरता से प्राप्त नही होती । योगी के साथ सर्प बैठता है । सिंह देखकर चला जाता है । परन्तु एक साधारण मनुष्य को विषधर क्रुद्ध सर्प काट सकता हैं, मनुष्यभक्षी सिंह उसकी हत्या कर सकता है । ऐसी स्थिति मे सर्प पर तथा सिंह पर दया करना मानवहत्या में सहायक होना होगा । उस समय सर्प किंवा सिंह को मार देना हिंसा नही अहिंसा होगी । एक के मरने से अनेको की रक्षा होगी । इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन शुक्रनीति में किया गया है । राजा को काल का कारण, दण्डस्वरूप एवं क्रूर आदि राजगुणो से युक्त होना कहा गया है । दुर्जनो की हिंसा का समर्थन किया गया है । दण्ड सम्पूर्ण धर्मों का शरण है ।

कालस्य कारण राजा सदसत्कर्मणस्त्वत. ।
स्वक्रौर्योद्यतदण्डाभ्यां स्वधर्मे स्थापयेत् प्रजा. ।।
।। १·६०।।
दमो दण्ड इति ख्यातस्तस्माद्दण्डो महीपति ।
तस्य नीतिर्दण्डनीतिर्नयनान्नीतिरुच्यते ।।१ १५६।।
राज्ञां स दण्डनीत्या हि सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
दण्ड एव हि धर्माणां शरण परम स्मृतम् ।।४ ४७।।
अहिंसकौ साधुहिंसा पशुवच्छ्रुतिचोदनात् ।
दण्ड्यस्यादण्डनान्नित्यमदण्डस्य च दण्डनात् ।।
।।४ ४९।।

भगवान् श्री रामचन्द्र ने भी राजा के लिये सामनीति को अनुचित कहा है ।

न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यश. ।
प्राप्तु लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि
—वा० रा० २१:१६

पाठभेद

श्लोक संख्या ३५६ में 'जितोपम.' का पाठभेद 'जितोपमाम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

३५६. (१) विट . इस शब्द का अर्थ कामुक, लपट, वेश्यागामी होता है । विषय भोग में विट अपनी समस्त सम्पति का नाश कर देता है । और अन्त में धूर्त बन जाता है ।

'कुट्टनीमतम्' में विट का विशद वर्णन किया गया है । वह तत्कालोन कश्मीर के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालता है । उसमे विट को सन्देशवाहक चित्रित किया गया है । वह वेश्या तथा सुन्दरी स्त्रियो से उनके प्रेमियो के मध्य सन्देश वाहक का कार्य करता है । प्रेमी तथा प्रेमिका को एक दूसरे के पास पहुँचाने की व्यवस्था करता है । अभिगमन के लिये प्रेरित करता है ।

विट के चार मुख्य लक्षण कहे गये हैं । वह वेश्योपचार में कुशल होता है । मधुरभाषी कविता-

वाक् मर्मच्छेदिनी दीर्घ नर्म शश्वत्कथा विटैः ।
अनीश्वरोचिता तस्य क्रीडाऽपि भयदाऽभवत् ॥३५७॥

३५७. राजा के लिये अनुचित उसकी मर्मभेदी वाणी, विटों के साथ लम्बी मनोरंजन वार्ता तथा क्रीडा भी भयदायक हो गयी थी।

पुरो मिथ्यागुणग्राही परोक्षं दोषदर्शकः ।
असुस्थिरादरो भूभृत्सोऽभूद् द्वेष्योऽनुजीविनाम् ॥३५८॥

३५८. प्रत्यक्ष मिथ्या गुणग्राही, परोक्ष मे दोष दर्शक, और असुस्थिर आदर प्रदर्शक, वह राजा अनुजीवियों के द्वेष का पात्र बन गया था।

मनागनवधानेन स्खलतस्तस्य भूपतेः ।
इत्थं राज्यस्थितिरगादचिरेण विस्रत्रताम् ॥३५९॥

३१९. नितान्त असावधानी के कारण स्खलित, उस राजा की राज्यस्थिति शीघ्र ही इस प्रकार विशृखंलित हो गयी।

गीत प्रिय और दक्ष होता है। समयानुसार पदो का उल्लेख करता है। कामुक रसमय गीतो से उत्तेजित करता है। वाक् प्रलोभन से चित्त को हरने की कोशिश करता है। उसका तीसरा गुण ऊहा-पोह में दक्ष होना है। चौथा गुण उसका वाग्मी होना है। वह शब्दजाल मे फँसा कर अपनी रुचि के अनुसार काम करवा लेता है। पवित्र-से-पवित्र व्यक्ति को वह अपवित्र करने मे सफल होता है। किसी को पतित करने मे उत्साहित होता है।

विट कामतन्त्र कला कोविद नायक एव नायिका का सन्देश वाहक होता है। विट का लक्षण साहित्य दर्पण मे दिया गया है।

वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिण. कविः ।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥
॥ २४ : १०४ ॥

(२) **स्त्रैण :** स्त्रियो की मन्त्रणा पर चलनेवाले व्यक्तियो के अर्थ मे यहाँ इस शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द राजा का विशेषण है। लौकिक भाषा मे इस शब्द का अर्थ मेहरा होता है। इसका अर्थ नारीसुलभ, स्त्री द्वारा शासित, स्त्रीत्व, नारीत्व स्त्रीस्वभाव तथा दौर्बल्य भी होता है। कल्हण का यहाँ तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि राजा रमणियो मे इतना रम गया था कि उसका पुरुषोचित व्यवहार एव आचरण जैसे लुप्त हो गया था।

स्त्रैण शब्द का शुक्र ने राजा के सन्दर्भ मे कल्हण के समान ही प्रयोग किया है।

जायते राष्ट्रह्रासश्च शत्रुवृद्धिर्धनक्षय. ।
सुराप्यपि वरो राजा न स्त्रैणो नातिकोपवान् ॥
॥ ४ : ५९ ॥
लोकांश्चण्डस्तापयति स्त्रैणो वर्णान्विलुम्पति ।
मद्यप्येकश्च भ्रष्टः स्याद् बुद्ध्या च व्यवहारतः ॥
॥ ४ : ६० ॥

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३५७ में 'दीर्घं नर्म शश्वत्कथा' का पाठभेद 'दीर्घनर्म चासत् तथा' मिलता है।

श्लोकसख्या ३५८ में 'असुस्थिरादरो' का पाठभेद 'अस्वस्थिरादरो' मिलता है।

श्लोकसंख्या ३६० मे 'उपेक्षितस्य' का 'उपेक्षितास्य' तथा 'द्रोहि' का 'निज', और 'द्रोणि' पाठभेद मिलता है

उपेक्षितस्य निर्द्रोहैरयतन्ताऽजितात्मनः ।
अथ लब्धबलास्तस्य नाशाय द्रोहिमन्त्रिणः ॥३६०॥

३६०. शुभचिन्तको द्वारा उपेक्षित एवं स्वच्छन्द इस राजा के नाशहेतु शक्तिशाली द्रोही मन्त्रियो ने यत्न किया ।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (१) राजतन्त्र प्राचीन भारत में राजतन्त्र, कही वशपरम्परागत उत्तराधिकार द्वारा ज्येष्ठ पुत्र अथवा प्रचलित हिन्दू उत्तराधिकार नियमानुसार सगोत्र सपिण्डादि को राज्य मिलता था। उनके अभाव में बन्धुओ को जाता था, अथवा उसका निर्वाचन जनता किंवा मन्त्री एवं परिषदादि करती थी। कल्हण ने निर्वाचित राजा का वर्णन राजतरगिणी (७:७०३) मे किया है। किस प्रकार परिषद् ने मिलकर कश्मीर के राजा का निर्वाचन किया था। कश्मीर राजा को कल्हण ने महाशाक्य की उपमा दी (त० १ १४१) है। श्री रणजीत सीताराम पण्डित राजतरगिणी के अनुवाद में इस पर टिप्पणी लिखते हुए कहते हैं—'इससे प्रकट होता है कि कश्मीर मे राजाओ का मूलस्वरूप निर्वाचनीय था। उत्तराधिकार निर्वाचिन पर निर्भर था।' सम्भवत बौद्धो के सघ प्रथा का प्रभाव था। सघ में निर्वाचन द्वारा कार्य सम्पन्न होता था। सघ में पद निर्वाचन द्वारा प्राप्त होते थे। प्राचीन भारत में जनता दुर्बल राजाओ की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थी। अतएव प्राचीन सस्कृत वाङ्मय में राजाओ के राज्यच्युत, निर्वासित करने की अनेक घटनाएं मिलती हैं। शतपथ ब्राह्मण मे उल्लेख मिलता है। श्रिजयराज को जनता ने राज्यच्युत कर दिया था। उसके वश ने दस पीढियो तक राज्य किया था। पचविंश ब्राह्मण में राजाओ के हटाने के दो उदाहरण मिलते हैं। वे दीर्घश्रव तथा सिन्धुचित थे। (१२.१२, ९ तथा १५ ३, २५)। विष्णुपुराण में राजा वेणु की कथा प्रसिद्ध है। वह राज्यच्युत कर मार डाला गया था। (विष्णु पुराण अश १ अध्याय १३)।

भारतीय राजनीति के सिद्धान्त का जहाँ तक मैं अध्ययन कर सका हूँ, वह जनता के विप्लव, एव विद्रोह के अधिकार को, दुराचारी, आततायी, क्रूर, एव प्रजाभक्षक, शोषक राजा के विरुद्ध स्वीकार करता है। यद्यपि यह सिद्धान्त भी स्वीकार करता है। राजा देवता का अश है। किन्तु यह भी साधिकार घोषणा करता है। देवता बुरे कर्मों से राक्षस हो जाता है। ऋषि पुलस्त्य का नाती रावण था। ऋषि कुल में जन्म लेने पर भी बुरे कार्यों द्वारा राक्षस हो गया था।

देवता उसी समय तक देवता है, जब तक उसमे देवत्व गुण वर्तमान रहता है। सद्गुण के कारण देवता होता है। देवत्व प्राप्त करता है। सद्गुण के अभाव मे, प्रजा रजन के अभाव में, न्याय प्रिय शासन के अभाव में, राष्ट्रसुरक्षा के अभाव में, राजा का सद्गुण और दैवी गुण लुप्त हो जाता है। परपीडा, परशोषण, दुराचार, एव दूषित विचारो का आश्रय ग्रहण करते ही, उसका देवस्वरूप तथा देवत्व तिरोहित हो जाता है। अतएव उसे राज्यच्युत करना, उसे हटा देना, उसका वध कर देना, देव विरोधी कार्य नही कहा जायेगा। उसे असुर विरोधी कार्य, धर्म एव शास्त्र सम्मत, कहकर पापहीन कहा गया है। जनता के कल्याण निमित्त इस प्रकार के राजा से पिण्ड छुडाना देशभक्ति की गणना में गिना जायेगा।

शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में स्वच्छन्द देशभक्ति किंवा स्वतन्त्र राजा के विषय में जो कहा है वही घटना इस राजा के सम्बन्ध मे घटी।

शु. स्वातन्त्र्यमापन्नो ह्यनर्थायैव कल्पते।
भिन्नराष्ट्रो भवेत्सद्यो भिन्नप्रकृतिरेव च ॥ २:४ ॥

प्रभोः संकोचिताज्ञैस्तैश्चरद्भिर्निरवग्रहम् ।
राज्यं जिहीर्षवो भूपाश्चक्रिरे भूम्यनन्तराः ।।३६१।।

३६१. प्रभु की आज्ञा संकुचित करने वाले तथा स्वच्छन्द, उन मन्त्रियों ने पार्श्ववर्ती भूपों को राज्य हरण हेतु उत्सुक कर दिया।

तदनुप्राणिताः सर्वे ते ते नानादिगाश्रयाः ।
आसन्राज्यामिषं प्राप्तुं श्येना इव ससंभ्रमाः ।।३६२।।

३६२ मन्त्रियों द्वारा प्रोत्साहित, नाना दिशाओं के वे सब नृप, बाज की भाँति राज्य रूप मांस की प्राप्ति हेतु समुद्यत हो गये थे।

अथोत्पन्नभयो राजा न शशाक निजस्थितिम् ।
व्यवस्थापयितुं यन्त्रच्युतां कारुः शिलामिव ।।३६३।।

३६३. भयभीत राजा अपनी स्थिति को यन्त्र[1] च्युत शिला को शिल्पी की तरह व्यवस्थित रखने मे असमर्थ हो गया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३६१ में 'संकोचिता' का पाठभेद 'संकुचिता' मिलता है।

श्लोकसख्या ३६२ में 'तदनुप्राणिता सर्वे ते ते' का पाठभेद 'तदनुप्राणिता वैरि नृपा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६३ (१) यन्त्र : कश्मीर के मन्दिरो मे लगे विशाल शिलाखण्डो को उठाने ने लिए किसी प्रकार के यन्त्र का प्रयोग होता था। अन्यथा बडे-बडे शिलाखण्डो को कैसे उठाकर एक दूसरे पर रखा गया होगा। यह बात मन्दिरो के ध्वन्सावेशषो के देखने से मालूम होती है। कल्हण इसी शिला उठाने वाले यन्त्र की उपमा यहाँ पर देता है। घिरारी किंवा चर्खी बडे शहतीर मे लगाकर शिला उठाने की क्रिया मन्दिरो के निर्माण निमित्त कश्मीर मे प्रचलित थी। यह यन्त्र, आधुनिक शब्दावली में क्रेन था।

श्री आर. एस. पण्डित इस यन्त्र का यहाँ अर्थ पानी उठाने वाले यन्त्र, अर्थात् ढेकली जिसके बाँस के एक छोर मे पत्थर दूसरे में बालटी की लम्बी रस्सी बंधी रहती है, और हाथ से पानी खीचते और सिचाई करते है, लगाया है। यह ढेकली प्रथा विहार, बंगाल, आसाम तथा कश्मीर में कुछ प्रचलित रही है। यहाँ पत्थर गिरने से सन्तुलन बिगड जायेगा इस ओर उक्त मत से संकेत किया गया है।

कल्हण ने यहाँ—'यन्त्रयुता कारुः शिलामिव' लिखा है। कारु का अर्थ कारीगर होता है। 'कारुः' का अर्थ शिल्पी होता है। (अमर कोश २ १०:५) शिल्पी के साथ कारु का प्रयोग स्पष्ट प्रकट करता है कि कारु का अर्थ कारीगर से है। यह यन्त्र पत्थर उठाने वाला यन्त्र है। न कि रणजीत सीताराम पण्डित के शब्दो मे ढेकली। ढेकली कृषक चलाता है। यदि यन्त्र का सम्बन्ध जल उठाने से होता है, तो कृषक अथवा कृषिसम्बन्धी शब्द का प्रयोग किया जाता। कारु शब्द के प्रयोग से मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। यह पत्थर उठाने का यन्त्र था। जिसके भार के सन्तुलन के लिए यन्त्र के चर्खी अथवा घिरारी के रस्सा या डोरी मे एक तरफ पत्थर लगा रहता था। इस प्रकार का यन्त्र स्टेशनो पर कोयला ऊँचाई पर ले जाकर रखने और वहाँ से इंजन में डालने के लिए मैंने पश्चिमी रेलवे में देखा है।

चिरक्षुण्णे क्षमाभर्तुस्तस्मिन्राज्ये विसंस्थुले ।
उपायोऽस्य स्थितेर्हेतुर्नैकः कश्चन पप्रथे ।।३६४।।

३६४ बहुत दिनो से उस राज्य के विश्रृंखलित होने पर, उसके स्थायित्व हेतु कोई उपाय उस राजा को नही सूझा ।

दृष्टदोषान्स्थितिं प्राप्तो हन्यादस्मानसशयम् ।
विचिन्त्येति न सामास्य जगृहुर्निजमन्त्रिणः ।।३६५।।

३६५ उसके अपने मन्त्रियो ने राजा की सन्धि को यह सोचकर स्वीकार नही किया कि; राजा ने उनके दोषो को देख लिया है, अतएव स्थिति सुदृढ़ होने पर, उन्हे निश्चय ही मरवा डालेगा ।

अथ निरुरुधुस्ते संनद्धा बलैर्नृपमन्दिरं
व्यवहितजनाक्रन्दं भेरीरवैरतिभैरवैः ।
मदकरिघटाकेतुच्छायानिरुद्धरविप्रभा
भवनवलभीः संतन्वन्तो दिवाऽपि तमोवृताः ।।३६६।।

३६६. उन सन्नद्ध मन्त्रियो ने सेनाओ से राजभवन घेर लिया । उस समय अति भयकर भेरी ध्वनि से जन-क्रन्दन दब गया । मदमत्त गजसमूह की पताकाओ की छाया से सूर्य-प्रकाश अवरुद्ध हो गया और अट्टालिकाये दिन मे भी तमोवृत हो गयी ।

कल्हण ने यन्त्र शब्द का प्रयोग क्रेन जैसे यन्त्र के लिये यहाँ किया है । वह शिला उठाने के काम मे आता है । आज कल भी इमारत बनाने में ऊँचे क्रेन का प्रयोग शिला, ईंटा आदि उठाने के लिये किया जाता है ।

इस प्रकार के यन्त्र भारत में कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण रामेश्वरम् तक सूदूर प्राचीन काल से प्रचलित थे । वाल्मीकीय रामायण में सेतु बाँधने के समय इस प्रकार के यन्त्रो का प्रयोग किया गया था ।

हस्तिमात्रान् महाकाया पाषाणाश्च महावला. ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रै. परिवहन्ति च ।।२२.६०।।

[महाकाय महावली वानर हाथी के समान वडी वडी शिलाओ और पर्वतो को उखाडकर यन्त्रो द्वारा समुद्र तट पर लाते थे ।]

श्लोक सख्या ३६४ मे 'चिर' का 'चिर' 'कश्चन' का 'कस्य न' तथा 'पप्रथे' का पाठभेद 'प्रपथे' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३६५ में 'प्राप्तो' का 'प्राप्तान्', 'प्राप्ते' तथा 'प्राप्ता' और 'स्मान' का पाठभेद 'स्माद' तथा 'स्मान्न' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३६७ में 'रजोङ्कराज' का 'रजोज्ञ राज', 'रजोङ्काराज', 'नाश्रु' का 'नासु', 'नासु', और 'राजाध्वना' का पाठभेद 'राजाधुना' मिलता है ।

तैर्गन्तुं स्वभुवो निवारितरणैर्दत्तेऽवकाशे तत-
स्त्यक्तश्रीर्नगरान्तरात्स नृपतिस्तात्पर्यतो निर्ययौ।
आजानेयरजोऽङ्कराजललनाप्रस्थानसंदर्शन-
क्षुभ्यत्पौरजनाश्रुलाजकणिकाकीर्णेन राजाध्वना ।।३६७।।

३६७. उन लोगों के, स्वभूमि से जाने हेतु युद्ध बन्द कर अवकाश प्रदान करने पर, वह राजा सम्पत्ति त्याग कर, राजमार्ग द्वारा नगर से निकल गया। उस समय उत्तम अश्व की धूल में राज ललनाओ का प्रस्थान देखकर, दुखित होते पुरजनों की अश्रु रूपी लाज[1] कणिका से वह राजमार्ग व्याप्त हो गया था।

राज्याच्च्युतस्य बहुशः परिवाररामा-
कोशादि तस्य रिपवो व्रजतोऽपजह्रुः।
उर्वीरुहो विगलितस्य नगेन्द्रशृङ्गा-
द्वल्लीफलादि रभसादिव गण्डशैलाः ।।३६८।।

३६८. राज्यच्युत एवं गमनशील उस राजा के बहुत से परिवार, कामिनियाँ और धनादि का शत्रुओं ने उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे गण्डशैल, पर्वत शिखर से पतित वृक्ष को उसके लताफलादि से वेगपूर्वक वंचित कर देता है।

रम्यैः शैलपथैर्व्रजञ्श्रमवशाच्छायां श्रितः शाखिना-
मासीनप्रचलायितेन सुमहद् दुःखं विसस्मार सः।
दूरात्पामरपूत्कृतैः श्रुतिपथप्राप्तैः प्रबुद्धस्त्वभूद्
दृष्टो निर्झरवारिभिः सह मनाक् श्वभ्रे निमज्जन्निव।।३६९।।

३६९. रम्य शैल पथ पर गमन करते हुए, क्लान्ति वश वृक्षों की छाया का आश्रय लेकर बैठने और पुनः चलने से, उसने महान् दुःख को विस्मृत कर दिया। दूर से सुने गये पामरों के कोलाहलो से, प्रबुद्ध राजा निर्झर वारि के साथ गर्त मे डूबता हुआ सा देखा गया।

पादटिप्पणियाँ :

३६७. (१) लाज : धान का भुना लावा तथा पुष्प का राजपथ तथा राजा की शोभा यात्रा के समय अथवा शुभ अवसरो पर वर्षा किया जाना पुरानी परंपरा है। प्राय समस्त भारतवर्ष मे यह प्रचलित है। बगाल मे मृतको की शव-यात्रा के समय लाज-वर्षा की जाती है। विवाह के समय भी लावा परछने की क्रिया हमारी तरफ प्रचलित है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३६८ में 'रामा' का रामा.', 'पजह्रु.' का 'विजह्रु.', 'विगलितस्य' का 'विच-लितस्य' पाठभेद मिलता है।

श्लोक सख्या ३६९ मे 'मासीनप्रचलायितेन' का 'मासीनः प्रचलायितेन' 'मासिन प्रचलायितेन' 'मासीन. प्रलयायितेन' 'मासीनप्रलयायितेन' 'मासीन

नानावीरुत्तृणपरिमलैरुग्रगन्धा वनोर्वी-
रम्भःक्षोभप्रतिहतशिलाः पिच्छिलाश्चाद्रिकुल्याः ।
क्रान्त्वा श्रान्तैर्बिसकिसलयच्छायमुग्धाङ्गलेखै-
रघ्युत्सङ्गं निहिततनुभिर्मूर्छितं तस्य दारैः ॥३७०॥

३७०. नाना प्रकार के वीरुत तृणो के परिमल से उग्र गन्धवती वनभूमि, जल के ठोकरो से प्रतिहत शिलाओ और फिसलनो से युक्त कुल्याओ को पार करके, मृणाल सदृश मुग्ध अंगलेखाओं गोद में निहित शरीरो वाली श्रान्त उसकी स्त्रियां मूर्छित हो गयी।

पर्यन्ताद्रितटाद्विलोक्य सुचिरं दूरीभवन्मण्डलं
द्रागामन्त्रयितुं क्षिपत्सु नृपतेर्दारेषु पुष्पाञ्जलीन् ।
क्षोणीपृष्ठविकीर्णपक्षति नमत्तुण्डं स्वनीडस्थितैः
सावेगं गिरिकन्दरासु पततां वृन्दैरपि क्रन्दितम् ॥३७१॥

३७१. सीमान्त पर्वत तट से दूर होते मण्डल को देर तक देखकर शीघ्र विदा लेने के लिये नृपस्त्रियो के पुष्पांजलियाँ गिराने पर, वेग के साथ नीचे उतरते हुए, गिरिकन्दराओ के, स्वनीड स्थित पक्षिवृन्दो ने भी पृथ्वी तल पर पंख फैला, नमित चंचु हो क्रन्दन[1] किया।

...वित,' 'मुग्धद्युम' का 'स्वमहद्युम' ...', 'पुन्टै.' का 'पुन्टै', 'फुन्टै', 'हुन्टै' तथा 'गाक् दाभ्रे' का पाठभेद 'गन स्वभ्रे' 'पुनः दाभ्रे' 'गना दाभ्रे' 'गना स्वभ्रे' 'गाना स्वभ्रे' 'गा भ्रे' '...' पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या ३७० में 'रघ्युत्सङ्गं' का पाठभेद 'र...' तथा '...' मिलता है।

श्लोक संख्या ३७१ में 'पर्यन्ताद्रि' का 'पर्य-न्ताद्रि' तथा 'क्षिपत्सु' का पाठभेद 'क्षिपत्स्व' और '...' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३७१ (१) नमित चंचु : कल्हण ने करुण रस वर्णन की यहाँ पराकाष्ठा कर दी है। मूल श्लोक पढ़ने और समझने पर ही पदलालित्य का रस ... जा सकता है।

विदाई का ... करुण दृश्य कल्हण ने ... किया है। उनकी जन्मभूमि जहाँ ... ... था। जहाँ दुखी हुई थीं। जहाँ न जाने कितनी मिलनयामिनियों में अपना सुखमय, रसमय, उल्लासमय समय व्यतीत किया था, उन सबको नमस्कार कर, उन्हें स्मृति के ... पटपर केवल लिखकर विदा हो रही थीं। उस कश्मीर मण्डल को उन्होने नमस्कार किया जहाँ वे एक दिन रानी थीं। आज रंक थीं। कल ओर-छोर अजान जगत् में अनजाने भटकनेवाली थीं उस पवित्र मातृभूमि का जिसे वे पुनः नहीं देख सकेंगी जो केवल उनकी स्मृति में शेष रह जायगी अन्तिम बार दर्शन किया। अन्तिम बार कश्मीर मण्डल को झाँकी ली। उन्होंने अश्रुधारा द्वारा मातृभूमि को श्रद्धांजलि दी, पुष्पों द्वारा उसकी अन्तिम बार पूजा की। उनके इस हृदयस्पर्शी दुःख का उत्तर देने वाला, सान्त्वना देने वाला, सन्तोष देने वाला, धीरज देने वाला वहाँ कोई मानव नहीं था। इस करुण दृश्य को देखकर पक्षियों का हृदय द्रवित हो गया। वे बैठे न रह सके। वे निरुद्ध हो गये। अपने घोसलों में निकलकर ... ... फैलाकर नमस्कार किया। ... विदाई

स्तनयुगतलनद्धस्रस्तमूर्धांशुकानां
त्रिकवलनविलोलं वीक्ष्य दूरात्स्वदेशम् ।
अवहत रुदतीनां मौलिविन्यस्तहस्तं
पथि नृपवनितानामश्रुभिर्निर्झरम्भः ॥३७२॥

३७२. पीछे मुड़कर दूर से स्वदेश को देखकर, शिर से गिरे वस्त्र को स्तन युगल पर सम्हालती, तथा मस्तक पर हाथ रख कर रुदन करती, नृपवनिताओं के अश्रुओं से, मार्ग में निर्झर जल बहने लगा ।

प्रातिस्थैर्यैरुचितवचनादिप्रया शोकशान्त्या
निर्व्याजाज्ञाग्रहणगुरुभिस्तैश्च तैश्चोपचारैः ।
तस्य स्नेहादुपगतवतो राज्यविभ्रंशदुःखं
मन्दीचक्रुः स्वभुवि सुजना भूपतेर्भूमिपालाः ॥३७३॥

३७३. स्थिर प्रीतियों से, उचित वचन प्रयोग से, शोक शान्ति से, अकारण आज्ञा ग्रहण करने की गम्भीरता से, स्नेह से तथा और भी उन-उन उपचारों द्वारा अपनी भूमि में आये इस भूपति के राज्य विभ्रंश के दुःख को सज्जन भूमपालों [1]ने मन्द कर दिया ।

दी और स्वयं नमित चचु होने लगे किन्तु दैव का हृदय उनके दुर्दिनको देखकर भी नही पसीजा। मानव हृदय उनके भाग्य विपर्यय पर इस बिदाई के समय उन्हें बिदाकर दो बूंद आँसू भी नही वहा सका। वह काम किया पक्षियो ने ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ३७२ ये 'तलनद्ध' का 'बलनद्ध'; 'विलोलं' की 'विलोमं'; 'नृपवनिताना' का 'अबलाना बल कृत' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ ·

३७२ (१) श्लोक संख्या ३६८ से ३७८ तक करुण रस से ओत प्रोत संस्कृत साहित्य एव काव्य मे उत्कृष्ट माने जायेगा। कल्हण करुण रस व्यक्त करने की प्रतिभा का स्वय एक उदाहरण उपस्थित करता है ।

इसी प्रकार का उदाहरण स्पेन के इतिहास में मिलता है । स्पेन का अन्तिम मूर राजा बोअबदिल को सन् १४९२ ई० में केस्टिलियन ने निर्वासित कर दिया। वह जब अपने राज परिवार के साथ पदुल पर्वत पर पहुँचा तो अन्तिम बार उसने करुण दृष्टि से ग्रनडा को देखा । जहाँ पर बोअबदिल ने पर्वत पर अन्तिम बार ग्रनडा को देखा था और स्पेन से बिदाई ली थी उसे आज भी 'एल डलटियो सीसपिरो-डेल-मोरो' अर्थात् 'मूर की अन्तिम आह' कहते हैं ।

राजा युधिष्ठिर किस दिशा मे गया था, किस मार्ग, संकट किंवा द्वार से कश्मीर का त्याग किया था, किस स्थान से रानियो ने अपनी मातृभूमि कश्मोर मण्डल का अन्तिम दर्शन कर उसे पुष्पाजलि अर्पित की थी। पता नही चलता । कल्हण इस घटना स्थल के विषय में शान्त है । उसको यह शान्ति इस बात को प्रकट करती है । उसने किसी प्रचलित श्रुति के आधार पर अथवा पूर्व इतिहासकारो के अत्यन्त सूक्ष्म सूत्र के आधार-पर उक्त वर्णन लिखा है ।

राजा युधिष्ठिर तथा उसके राज्य की परिस्थिति, विद्रोह, भ्रष्टशासन, मन्त्रियों के कुमन्त्र आदि घटनाओं का वर्णन 'दशकुमारचरित' में कवि

दण्डी ने अवन्तिवर्मा तथा अश्मकदेशाधिपति के सन्दर्भ में किया है। (८:५—३०)

पाठभेद .

श्लोक सख्या २७३ में 'शान्त्या' का 'कान्त्या' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३७३. (१) **भूमिपाल और अलकसुन्दर (सिकन्दर) :** हसन लिखता है कि अन्धयुधिष्ठिर बाहर जाने पर बाहरी राजाओ द्वारा मार डाला गया था। यह नितान्त कपोलकल्पना है। कल्हण इसका ठीक उलटा वर्णन करता है। बाहरी राजाओ के सुव्यवहार के कारण वह अपने राज्य त्याग का दुःख भूल गया था।

(२) **राज्यपाल** कल्हण ने राजतरंगिणी में इस राजा का राज्यकाल नही दिया है। किन्तु उसने प्रथम तरग के राजाओ के राज्यकाल का कुल योग गोनन्द (प्रथम) से युधिष्ठिर (प्रथम) तक २२६८ वर्ष दिया है। उसके अनुसार गणना करने पर युधिष्ठिर का राज्यकाल ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है। आईने अकवरी ने राज्यकाल ४८ वर्ष १० दिन दिया है। यह काल गलत गणना के कारण त्रुटिपूर्ण है। पाठभेद के आधार पर गणना की जाय तो ३३ वर्ष ९ मास तथा ७ दिन आता है।

गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर प्रथम तक २१ राजाओ का वर्णन कल्हण करता है। गोनन्द तृतीय का राज्याभिषेक लौकिक सवत् १८९४ में हुआ था। गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य अर्थात् २० राजाओ का राज काल ९६७ वर्ष ८ मास तथा २३ दिन होता है। श्लोक सख्या ३४५ में ६ मास के स्थान पर ६ दिन की गणना करने से अवश्य अन्तर पड जाता है। वह होता है। ९६८ वर्ष २ मास २३ दिन। गोनन्द प्रथम का राज्याभिषेक लौकिक सवत् ६२८ में हुआ था। गोनन्द से लेकर अभिमन्यु तक के राजाओ का राज्य काल १२६६वर्ष होता है। अर्थात् लौकिक सवत् ६२८ से १८९४ है।

श्लोक संख्या ४८ में कल्हण लिखता है—'गोनन्द प्रथम तथा उसके उत्तराधिकारियो ने २२६८ वर्ष कलियुग में शासन किये। यह गणना कुछ लेखको के मत से त्रुटिपूर्ण लगती है। उन्होने माना है कि भारत युद्ध द्वापर के अन्त में हुआ था।

श्लोक संख्या ५४ में कल्हण लुप्त ५२ राजाओ का राज्य काल १२६६ वर्ष देता है। इस प्रकार २२६८ में से यदि १२६६ वर्ष घटा दिया जाय तो केवल १००२ वर्ष बचता है। यह काल गोनन्द तृतीय से युधिष्ठिर तक का होता है। गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य का शासन काल ९६७ वर्ष ८ मास २३ दिन होता है। यदि इस काल को १००२ वर्ष में से घटा दिया जाय तो युधिष्ठिर प्रथम का राज्यकाल ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है।

श्री एस. पी. पण्डित ने गोनन्द वश के प्रथम तरग के राजाओ के राज्यकाल की गणना १०१४ वर्ष ९ मास ९ दिन दी है। इसमें राजा युधिष्ठिर का राज्य काल न ी दिया गया है केवल लिख दिया गया कोई समय नही दिया गया है।

गोनन्द तृतीय का राज्याभिषेक ईसापूर्व ११८४ वर्ष दिया गया है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक ईसा पूर्व २१७ वर्ष दिया है। युधिष्ठिर का राज्यकाल का समय न सम्मिलित करने पर इस गणना के अनुसार ९६७ वर्ष आता है। यदि प्रत्येक राजा का, शासन काल का समय गोनन्द तृतीय से नरेन्द्रादित्य अर्थात् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक दिन तक का समय जोडा जाय तो ९६६ वर्ष १६ दिन होता है। गोनन्द वंश के प्रथम तरग के राजाओ का जो जोड दिया गया है वह १०१४ वर्ष ९ माह ९ दिन दिया गया है। यदि १०१४ वर्ष ९ माह ९ दिन में से ९६६ वर्ष १६ दिन निकाल दिया जाय तो ४८ वर्ष ८ मास २३ दिन वचता है। किन्तु श्री स्तीन की कल्हण आधारित गणना मानी जाय तो वास्तव में ३४ वर्ष ३ मास १ दिन आता है।

श्री एस. पी. पण्डित के अनुसार ईसा पूर्व २१७ वर्ष में युधिष्ठिर सिंहासन पर वैठा था। श्री स्तीन के अनुसार यह दिन लौकिक संवत् २८६१ वर्ष ८ मास २९ दिन होना चाहिए।

हसन—'अन्ध युधिष्ठिर के राज्यकाल में सिकन्दर का आना हसन लिखता है। मै उसे यहा उद्धृत इसलिए करना चाहता हूँ कि कम से कम इस एक घटना के उल्लेख के कारण रत्नाकर पुराण, उसके मुतरजम तथा हसन तीनो को इतिहास के साक्षियो तथा प्रमाणो के सम्मुख कही खडे होने की जगह नही मिल सकेगी।

हसन—'मुतरजम रत्नाकर लिखता है कि अन्ध युधिष्ठिर के आखिर दौर हकूमत के सिकन्दर फील कोस जिसे मशरिके वाशिन्दे महायोन कहते थे, बडी भारी लश्कर के साथ हिन्दुस्तान की तसखीर के लिए आया। जब दरिया नीलाव से गुजरा तो हिन्दुस्तान के तमाम राजे-महाराजो मे जलजला पड गया। राजा युधिष्ठिर का भाई जिसका नाम अवीसतर और कश्मीर के बाहर वाले कोहिस्तानी इलाके का हुक्मराँ था सिकन्दर की खिदमत में तुहफे ले जाकर मुअजिज व मुकरम हुआ। सिकन्दर से अपने भाई के बर खिलाफ मदद माँगी। चुनाचः सिकन्दर ने एक भारी फौज उसकी इमदाद के लिए मुकर्रर कर दी। अन्ध युधिष्ठिर मुकाबला की नाव न लाकर हिन्दुस्तान की तरफ भाग खडा हुआ और उसकी जगह अवीक्षतर मुल्क कश्मीर का हाकिम करार पाया। दूसरी तरफ अन्ध युधिष्ठिर ने भी राजा पूरन से इमदाद मागी। चूंकि पूरन खुद सिकन्दर के साथ मसरूफ जंग था। इस बिना पर युधिष्ठिर की इमदाद से कासिर रहा। यह देकर अन्ध युधिष्ठिर पूरन की तरफ से सिकन्दर के साथ मसरूफ पैकार हुआ। और नतीजतन् दौरान जंग मारा गया। इस वाक़या के बाद ही सिकन्दर ने कश्मीर के जनूबी पहाड़ी इलाके से खुद कश्मीर मे नजूल किया और कुछ अरसा शैख-शिकार मे मसरूफ रहा। एक दिन खुदा के करने से मौका पर एक तीर सिकन्दर के बाँजू पर लगा। जब तीरन्दाज को गिरफ्तार कर लाये तो मालूम हुआ कि यह अबेस्तर का पढाया आदमी था। और सिकन्दर के मारने पर मुतअइन था। सिकदन्र पर जब यह हाल खुला तो उसकी आतिश गजब की कोई हद न रही। और उसने जुर्म की पादाश में अवीसतर को मय उसके रिश्तेदारो के कतल कर डाला। इसके बाद मुल्क की हकूमत राजा परताप को जो मालवा के राजो मे से था और राजा विक्रमाजीत अजदाद मे से है अता करके खुद अपने मुल्क को वापस चला गया। वाल्हा आलम।

सिकन्दर कश्मीर में नही आया था। (पृष्ठ ५० तथा ५१) इस विषय पर भारतीय इतिहासकारो की आलोचना करता हुआ हसन लिखता है :

हिन्दुस्तानी तारीखदाँ लिखते है कि सिकन्दर फिलकोश ईसा की पैदाइश से साढे तीन सौ साल कबल रूम के दारूल खलाफा से निकला और थोडे से मुद्दत मे इराक, रूम, अरब और फिदगिस्तान वगैरह मुमालिक फतह कर लिए। ईसा से ३३१ साल पेश्तर फारस पर फतह करने की गरज से हमला किया और तीसरे हमले में वहाँ के बादशाह दारासन, दाराव बिन बहमन को कतल करके ईरान और खुरासान की सलतनतें अपने क़ब्जा इकतदार में ले आया। और चूंकि हिन्दुस्तानी राजे-महराजे दाराव के अहद हकूमत मे सल्तनत ईरान के बाज गुज़ार थे इस खयाल के पेश नजर सिकन्दर ने फतह हिन्द भी लाजमी और जरूरी समझे। चुनाचे . ३२७ कवल मसीह मे एक भारी लश्कर के हमराह दरयाए नीलम अबूर करके हिन्दुस्तान हुक्मरान राजे-महाराजो में तहलक मचा दिया। अरसा चार साल से सिकन्दर की शाही फौजो ने बरफानी पहाडो मे सफर की सख्तियाँ बरदास्त की थीं। इसके साथ ही लडाइयों और मुसलसल जग व जदल के वाअश थककर, चूर हो गयी थीं, और गरमियों मे पंजाब मे रहने की वजह से उनमे से अकसर बुखार मे मुवतिला हो गये थे। इस वजह से उन्होने हिन्दुस्तान पर हमला करने में जल्दी न की।

इन दिनो हिन्दुस्तान मे तीन राजे मशहूर थे। अवीसतर कश्मीर और उसके आसपास के पहाडी

इलाके का फ़रमान रहा। दूसरा दोआब सिन्धु तौर झेलम का महाराजा टेकसिला। तीसरा हस्तिनापुर का राजा पोर। अबीसतर ने बेशुमार तुहफे व तहायक के जरिये सिकन्दर का इस्तकबाल किया। राजा टेकसिला ने सिर्फ वारयाबी हासिक करके सिकन्दर की अपने घर दावत की और पूरी शान व शौकत से दावत फराज बजा लाया। बादशाह ने अपनी थकी हुई फौजो को वहाँ छोडकर खुद दरयाए झेलम के किनारे डेरे डाल दिये। लेकिन उस तरफ से राजा पौर एक भारी फौज के साथ आया और दरया के उस किनारे मोरचा बना मिया। इन दिनो दरया झेलम शिद्दत बरसात के वाअश तफ पानी पर था। सिकन्दर के लिए दरया का अबूर करना बहुत मुश्किल हो गया। आखिरकार दस मील ऊपर की तरफ जाकर रात को दरया पार किया। राजा पौर एक जबरदस्त लडाई के बाद सिकन्दर के हाथ कैदो हुआ। लेकिन सिकन्दर ने इतहाई रहम से काम लेकर राजा पौर को उसका मुल्क मौरूशी वापस कर दिया। बाद अजोई वकौल मुसन्निफ वकाअ कश्मीर को शैर को रवाना हुआ। लेकिन हिन्दुस्तानी वकाअ निगार सिकन्दर के कश्मीर जाने के मुतल्लिक बिलकुल खामोश हैं। लेकिन वकाअ काश्मीर के मुसन्निफ का बयान हकीकत से ख़ाली नही है।

मुख्तसर यह कि सिकन्दर दोआब व चज का मुल्क राजा पौर को सौप दिया और खुद रावी और चिनाव को पार करके मुकाम सागला मे कौम तातार के १९ हजार आदमी मौत के घाट उतार दिये। यहा से मुल्क बिहार के फतह करने का इरादह उसके दिल में था लेकिन उसके सिपाही हिन्दुस्थान में मजीद आगे बढने से मुनकर हो गये। इसलिए लाचार सिकन्दर को हिन्दुस्तान के मुकम्मल तसखीर दूसरे मौका पर छोडनी पडी। और अपने मुल्क के वापस का इरादह कर लिया। दो हज़ार किश्तियाँ फिल अल फौरन बनवाई गईं। एक लाख वीस हाज़र पैदल सिपाही। दो सौ हाथी किश्तयो में वैठाकर दरियाए सिन्धके जरिये रवाना कर दिये। बाकी फौज दरया के दोनो किनारे खुश्की से चलती रही। पाच सौ कोस तै करने के बाद यह तमाम किश्तिया समुन्दर क दहाना पर पहुँच गयी। वहाँ से सिकन्दर जो खुश्की के रास्ते रवाना हुआ था और नपारकस ने जो उसके वाहरी बेडे का अफसर था दरया का सफर कुल सात महीने में तै किया। सिकन्दर ने ३२३ बरस कवल मसीह के वफात पायी। (पृष्ठ ५१-५२।)

हसन तथा वकाअ कश्मीर के लिखने का कुल तात्पर्य यह है कि कश्मीर के इतिहास पर एक खास रग चढाने के लिए सिकन्दर को 'कश्मीर के अन्दर दाखिल' करते हैं। हजरत नूह, हजरत सुलेमान तथा हजरत ईसा का नाम कश्मीर के इतिहास से जोडकर उस पर विदेशी रंग चढाने की कोशिश की गयी है। सिकन्दर को काश्मीर जैसे दुर्गम स्थान में आना, उसकी यात्रा तथा कश्मीर का वर्णन यूनानी इतिहासकारो का नही करना, जब कि उन्होंने छोटी-से-छोटी बातें लिखी हैं, आश्चर्यजनक तथा असम्भव कही जायेगी। हसन तथा वाकए कश्मीर के लेखकने कुछ नहीं बताया है कि उन्होंने सिकन्दर के कश्मीर में दाखिल करने की बात कहा से पाई है। यदि सिकन्दर कश्मीर में प्रवेश किया होता तो उसका समय अशोक के काल के पूर्व हसन की गणना तथा राजाओ की तालिका के अनुसार होना चाहिए।

राजा शचीनर का काल हसन के अनुसार क० संवत् १२३३ बैठता है। राजा स्वर्ण का समय क० सवत् ११६६ होता है। हसन राजा शचीनर का राज्यकाल नही देता। परन्तु तीनो का समय मिलाकर १०४ वर्ष अर्थात् कलयुग १२७३ होता है। हसन राजा शचीनर के पश्चात् राजा गलगन्दर जिसे शचीनर का भतोजा कहता है कलि सवत् १३४३ में राज्य करना बताता है। राजा अशोक का राज्यकाल क० सवत् १६५५ लिखता है यह भी लिखता है कि अशोक राजा शचीनर वल्द

इति श्रीकाश्मीरकमहामात्यचम्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां प्रथमस्तरङ्गः ॥

इस प्रकार श्री कश्मीर के महामात्य चम्पक प्रभु के पुत्र कल्हण कृत राजतरंगिणी में प्रथम तरंग समाप्त हुआ।

शकुनी के पोतो में से था। हसन ने इसी प्रकार अशोक के पूर्व राजा भगवन्त का कलि सवत् १६४१ मे होना बताया है।

इतिहास सिकन्दर का आक्रमण काल ३२७ वर्ष पूर्व ईसा देता है। यह समय अनेक साक्षियो से प्रमाणित हो चुका है। ईरान का काल उक्त सवतो के कारण उलझन मे पड जाता है। सिकन्दर का आना अशोक के पूर्व होता है।

हसन रत्नाकर पुराण के आधार पर उसका उल्लेख कर अशोक के पश्चात् ३५ राजाओ के वर्णन के पश्चात् सिकन्दर का कश्मीर मे आना लिखता है। अशोक का काल हसन ने १२५५ क० संवत् तथा राजा अन्ध युधिष्ठिर का समय कलि संवत् २८२८ देता है। बात यही नही समाप्त होती। उसने मिहिरकुल तथा सम्राट् कनिष्क के पश्चात् अन्ध युधिष्ठिर का समय रखता है। तथा उसी के समय सिकन्दर का आना लिखता है। कनिष्क के पूर्व वर्ष, मिहिरकुल के पूर्व वर्ष सिकन्दर का आना प्रमाणित हो चुका है। अतएव हसन का सवत्, उनका दिया काल, राजाओ की तालिका आदि भ्रामक अनुमान पर आधारित, इतिहास को एक विशेष जमाना देने की गरज से लिखा गया है।

हसन ने पुनः अपने पुराने सिद्धान्त की पुनरावृत्ति की है कि उसका आधार रत्नाकर पुराण का अनुवाद है। वह अनुवाद जैनुल आबदीन के समय में किया गया था। उसे अनुवाद मिला। वितस्ता में वह यात्रा कर रहा था। नाव डूब गयी। रत्नाकर पुराण भी डूब गया। मैं कह सकता हूँ कि या तो रत्नाकर पुराण मिथ्या है अथवा इतिहास को अपने रंग में रंगने के लिए रत्नाकर पुराण का सहारा लिया गया है। यदि कभी कोई रत्नाकर पुराण था भी तो वह तर्क के आधार पर मिथ्या प्रतीत होता है। प्रमाणो की कसौटी पर हसन तथा मतरजप रत्नाकर पुराण तथा पुराण तीनों ही सत्य नही उतरते। पुराणो का मैने अध्ययन किया है। पुराण गणना मे भूल नही करते। असंगत बात नही लिखते। प्रमाण के लिए किसी ऋषि आदि के वाक्यो का आश्रय लेते हैं। उनकी वर्णन शैली मौलिक और निराली होती है। रत्नाकर पुराण का वर्णन केवल कपोलकल्पना मात्र है।

पाठभेद :

इति पाठ में 'काश्मीरक' का 'काश्मीरिक' 'चम्पक' का 'श्री चापार्क' पाठभेद मिलता है।

इतिपाठ : पादटिप्पणी :

'इति' पाठ के पश्चात् पाण्डुलिपियो मे निम्नलिखित श्लोक लिखा मिलता है :

'चतुर्दशाधिकं वर्षं सहस्रं नव वासरा।
मासाश्च विगता ह्यस्मिन्नेकविंशतिराजसु ॥

पाठभेद :

उक्त श्लोक में 'चतुर्दशाधिकं' का 'चतुर्विंशाधिके' तथा 'न्नेकविंशति' का 'न्नष्टात्रिंशति' पाठभेद मिलता है।

इससे कल्हण के यह लिखने का समय स्थिर हो जाता है।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

द्वितीयस्तरङ्गः

द्वितीय तरंग के राजा

नाम राजा	राज्य काल वर्ष	लौकिक संवत् राज्याभिषेक	कलि संवत्
(१) प्रतापादित्य (प्रथम)	३२	२८९६	२९२१
(२) जलौकस	३२	२९२८	२९५३
(३) तुंजीन (प्रथम)	३६	२९६०	२९८५
(४) विजय	८	२९९६	२०२१
(५) जपेन्द्र	३७	३००४	३०२९
(६) सन्धिमति (आर्य राज)	४७	३०४१	३०६६
	१९२ वर्ष		

द्वितीय तरंग

विहितमजगोशृङ्गाग्राभ्यां धनुर्घटितं
नरकरटिनोर्देहार्घाभ्यां गणं प्रतिगृह्णतः ।
द्विविधघटनावाल्लभ्यानां निधेरुचिता विभो-
र्जयति लटभापुंभागाभ्यां शरीरविनिर्मितिः ॥१॥

अज एवं गो के शृङ्गाग्र द्वारा विनिर्मित धनुष[1] तथा मानव एवं मातंग के देहार्ध द्वारा निर्मित गणेश[2] को साथ में रखने वाले, द्विविध घटना प्रियता-निधि, भगवान् के नर एवं नारी[3] अंश से शरीर का निर्माण सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो रहा है।

पाठभेद

'ओ' तथा 'ओ श्रीगणेशायनमः' का भी पाठ प्रारम्भ में मिलता है।

श्लोक संख्या १ मे 'गोश्रृङ्गा' का 'अजश्रृङ्गा' 'गौ. श्रृङ्गा'; 'गणं' का 'गणे', 'गणैः'; 'प्रतिगृह्णतः' का 'प्रतिगृह्यतः', 'प्रतिगूह्यत'; 'द्विविध' का 'विविध'; 'उचिता' का 'अभ्यग्स्ता' और 'लटभा', का पाठभेद 'ललना' मिलता है।

शैली . कल्हण ने द्वितीय तरंग में नूतन उपमा, नवीन शब्दावली तथा सुगठित पदो की रचना की है। प्रथम तरंग मे कल्हण ने प्रचलित शब्दो, प्रचलित उपमाओ एव सरल भाषा का आश्रय लिया है। प्रथम तरग के ३७३ श्लोको की रचना के पश्चात् अभिव्यक्ति एव भाव व्यजना अधिक परिष्कृत तथा प्रौढ हो गयी है। उसके विचारो मे कल्पना के स्थान पर गम्भीरता एव प्रौढता के मुकुलित स्वरूप का दर्शन होता है।

प्रथम तरग मे घटनावली, काल गणना, तथा राजाओं के वर्णन के समय उसमे एक प्रकार की झिझक मालूम होती है। वह इतिहास लिख रहा था। परन्तु सामग्री पर्याप्त न होने पर वह विश्रृंखालत और टूटी कड़ियो को इधर उधर से लाकर जोड रहा था। किसी प्रकार ग्रन्थ को इतिहास का रूप दे रहा था। इस तरंग मे वह झिझक कम हो गयी है। उसकी भाषा संयत हो गयी है। वह किंचित् आत्मविश्वास के साथ वर्णन करता है जिसका अभाव प्रथम तरंग में स्पष्ट मिलता है।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुवाद में पृष्ठ ५८१ पर इस तरंग में वर्णित ६ राजाओ का वर्गीकरण विक्रमादित्य वंश दिया गया है। श्री स्तीन इस वर्ग का कोई नामकरण नही करते। इस वर्ग के राजा एक ही वश के नही थे। अतएव उनका वर्गीकरण किसी नाम से करना उचित नही होगा।

कल्हण प्रशसा द्वारा ही द्वितीय तरगका आरम्भ करता है। अर्ध नारीश्वर भगवान् शिव की वन्दना करता है।

वह श्लोक द्विविध घटनापूर्ण है। अर्ध नारीश्वर का शरीर पुरुष एवं स्त्री से बना है, और धनुष भी अज एवं गौ शृग से बना है। इस प्रकार कल्हण ने तीन द्विविध घटनाओ का वर्णन कर भगवान् का जय किया है।

१ (१) **धनुष**: शृंगधनुष का कल्हण ने उल्लेख किया है। चाणक्य चार प्रकार के धनुषो का वर्णन करता है। चौथे प्रकार का धनुषदण्ड हड्डी, सीग किंवा शृ ग का बनता था।

श्रीकृष्ण का धनुष सीग अर्थात् शृंग का था। बांस, सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, इस्पात तथा

अन्य धातुओ से भी धनुष वनाये जाते थे ।

धनुष का दण्ड बनाने में भैंस, गडा, शरभ की सीग तथा चन्दन, शाल, वेंत, ककुभ अथवा धवल की लकडी का भी प्रयोग होता था। अग्निपुराण में धनुष का विशद वर्णन किया गया है ।

धनुप की डोरी को प्रत्यचा कहते हैं । प्रत्यचा ताँत, बाँस या अन्य रेशेदार पदार्थों से वनायी जाती थी। चाणक्य ने मुर्वी, मुज, घास, अर्क, सन, गवेधु तथा स्नायु तन्तुओ से प्रत्यचा वनाने का वर्णन किया है ।

धनुष का दण्ड ६ फुट का उत्तम माना जाता है। उससे कम का निम्न श्रेणी का होता है। आर्ष काव्य कालीन धनुप का दण्ड ५॥ फुट तथा वाण ३ फिट का होता था। धनुष का दण्ड दो प्रकार का होता था। साधारण धनुप मे दण्ड के दोनो छोरो को प्रत्यचा से सम्वन्धित कर दिया जाता है। यह सुगमता से वन जाता है। दूसरा प्रकार दण्ड मे दोनों छोर अर्ध वृत्ताकार धनुप के दोनो ओर दण्ड अर्धचन्द्राकार से उठे रहते थे। उनके छोर पर प्रत्यचा लगा दी जाती थी। धनुष छोडते समय प्रत्यचा दोनो छोरो पर घूमे अर्धचन्द्राकार दण्ड पर शक्ति से चढायी जाती थी। इसे प्रत्यचा का चढाना कहते हैं। यह धनुष दण्ड बाँस का भी बनता था। उसे अग्नि से सिकाकर अर्धवृत्ताकार दोनो छोरो पर वना देते थे। किन्तु इस प्रकार का धनुष धातु का अधिक होता था। मध्ययुग मे इस प्रकार धातु निर्मित धनुप वहुत प्रचलित थे ।

धनुष के झुकाव अर्थात् चाप का भी वर्णन मिलता है। चाप के अनुसार प्रत्यचा भारी या हलकी होती थी। 'कोदण्ड मण्डन' में १८ प्रकार के धनुषो का उल्लेख मिलता है। चाप का विभिन्न भार भी दिया गया है। योगिन् के धनुष का भार २०० पल तथा दूर प्रहार वाले धनुष का भार ९५० या १००० पल दिया गया है। नीति प्रकाशिका में १४ प्रकार के चापो का वर्णन मिलता है ।

वैदिक आर्यों का मुख्य आयुध धनुप था। उसका इतना महत्त्व था कि मृतक के दाहिने हाथ में धनुप रख दिया जाता था। दाह क्रिया के पूर्व, उसके हाथ से धनुष ले लिया जाता था ताकि वह भस्म न हो जाय। उसे मृतक द्वारा प्रदत्त थातो समझते थे ।

धनुर्ज्या को कस देने पर धनुप के दोनो अग्र भागो को अर्त्नी कहते थे। अप्रयोगावस्था मे प्रत्यचा उतार देते थे। चलाने के समय कस दिया जाता था। (ऋ० १० १६६ ३) कान के समीप तक धनुर्ज्या को खीचकर छोडते थे। अतएव उसे कर्णयोनि कहा जाता था। ऋ० ६ ७५ २ तथा ऋ० २:२४ ८

ग्रीक अर्थात् यूनानो कवि होमर के वर्णन के अनुसार धनुप को वक्षस्थल तक खीचकर छोडते थे। अर्थात् भारतीय तथा पाश्चात्य धनुष चलाने में यह भेद था। (इलियड ४ १२५)

धनुष भारत से विश्व मे चारो ओर फैला था। भारत से ईरान होता पश्चिमी एशिया तथा वहाँ से यूनान, रोम, मिश्र तथा यूरोप में पहुँचा था। भारतीय सैन्य विज्ञान का नाम ही धनुर्वेद दे दिया था। यूनानियो के साथ पर्सिया का युद्ध प्राचीन काल में कई वार हुआ था। उसमें भारतीय धनुप विद्या विशारदो ने भाग लिया था। उन्हें सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर माना गया था। धनुप विद्या भारत में अत्यन्त विकसित थी ।

कल्हण यहाँ पर धनुष के अग्र भाग में अज तथा गाय के सीग अर्थात् शृंग लगने का उल्लेख करता है। प्राचीन काल मे धनुष के दोनो सिरो को दृढ और मजवूत बनाने के लिए, सीग तथा किसी धातु को जड कर, उसे अधिक टिकाऊ वना देते थे। डोरी अथवा प्रत्यचा को चढाने के लिये उसमें खाँचा वना रहता था। उसमे प्रत्यचा लगा दी जाती थी। कश्मीर में गाय तथा अज का सीग, भैंस, भैंसा, गैंडा तथा शरभ की अपेक्षा छोटा होता था। वह धनुष दण्ड बनाने के अयोग्य था। अतएव उसे दोनो छोरो पर लगाया जाता था ।

एक अनुवादकर्ता ने शिव के धनुष का नाम 'अजगव' दे दिया है। किन्तु शिव के धनुष अर्थ मे यहाँ यह शब्द बैठता नही। गणेश तथा धनुष दोनो शिव के पास थे। इसे हम एक रूपक भी इस प्रकार मान सकते है कि भगवान् शिव के पार्श्व मे बुद्धि के प्रतीक गणेश तथा शक्ति का प्रतीक धनुष दोनो उपस्थित है। वह शास्त्र एव शस्त्र दोनो से समन्वित है। शिव ने किरात रूप मे अर्जुन से युद्ध कर अपनी अपार शक्ति का परिचय दिया था। बुद्धि अर्थात् गणेश तो उनके पुत्र ही है।

गणेश · गणेश वैदिक शब्दो मे ब्रह्मणस्पति भी है। वह शंकर तथा पार्वती की सन्तान होने पर भी अयोनिज है। (ब्रह्म वै० पु० ८ तथा लिंग० १०२) पार्वती ने अपने शरीर के उबटन की मूर्ति बनाकर उसे सजीव किया था। (पद्म० सृ: ४३, स्कन्द० ७:१:३८, मत्स्य० १५३)।

प्रत्येक युगो मे गणेश के अवतार, उनका नामादि भिन्न माना गया है। कृत अर्थात् सतयुग मे गणेश कश्यप पुत्र विनायक थे। उनका वाहन सिह था। इस अवतार काल मे देवातक नरातक का दलन किया था। त्रेतायुग मे शिवपुत्र मयूरेश्वर तथा वाहन मयूर था। सिन्धू का सहार किया था। द्वापर युग मे शिवपुत्र गजानन हुए थे। सिदूर का विनाश किया था। वरेण्य राजा को गणेश गीता सुनाया था। कलियुग मे अश्वारूढ धूमकेतु नाम नाग मे अदिति के गर्भ से जन्म लेगे। महोत्कट रूप मे म्लेच्छो का सहार करेंगे। (गणेश. २:५-६)।

गणेश के एकदत होने का कारण दिया गया है। भगवान् परशुराम ने शकर-द्वारा प्रदत्त परशु गणेश पर फेंका। परशु शंकर का था। पिता का था अतएव उसका प्रतिकार नही किया जा सकता था। दाँत पर आक्रमण सह लिया। एक दाँत टूट गया। परशु हाथ मे ले लिया। उस समय से उनका एक आयुध हो गया। यही कारण है। गणेश के हाथो में परशु आयुध बना मिलता है। कश्मीर मे प्राप्त मूर्तियो मे परशु आयुध दिखाया गया है।

हाथी का मस्तक लगने की भी एक कथा है। भगवती पार्वती स्नान कर रही थी। गणेश द्वार पर बैठे थे। गणेश द्वारपाल किंवा रक्षक का कार्य कर रहे थे। शंकर का प्रवेश रोक दिया। शकर क्रुद्ध हो गये। पिता-पुत्र का संघर्ष होने लगा। शकर ने गणेश का मस्तक तोड दिया। पार्वती के आग्रह पर, शंकर ने मानव मस्तक के स्थान पर इन्द्र के गज का मस्तक लाकर, लगा दिया। उस समय से उनका नाम गजानन हो गया। (शिव० कु० १६) एक कथा और है। शनि के दृष्टिपात से गणपति का मस्तक भस्म हो गया। देवताओ ने उसके स्थान पर हाथी का मस्तक लगा दिया। (ब्रह्मवै० ३ : १८ भवि०, प्रति० ४ : १२)

गणपति को सिंदूर प्रिय है। हनुमान की मूर्ति के समान उनकी मूर्ति पर सिंदूर का लेपन किया जाता है। गणपति वध करेंगे, यह कल्पना उठते ही, सिन्दूरासुर ने गणपति को उठाकर नर्मदा मे डाल दिया। गणपति के रक्त से नर्मदा का जल रक्तिम हो गया। कालान्तर मे गणपति ने सिन्दूरासुर का वध किया। उसका लाल रक्त शरीर मे लेप किया। उनका समस्त शरीर सिन्दूर के रक्त से रक्त वर्ण हो गया। (गणेश० २ : १३७)

गणेश की सिद्धि तथा विद्धि दो पत्नियाँ है। (गणेश० : १ : १५) इनकी उपासना से कार्तवीर्य अव्यग हुआ था। (गणेश० २ : ७३-८३) गणेश चतुर्भुज है। उनका वाहन मूषक है।

गणपति का एक रूप निकुंभ है। वाराणसी स्थित निकुंभ की उपासना करने पर भी दिवोदास की पत्नी सुयशा को पुत्र प्राप्ति नही हुई। दिवोदास क्रोधित हो गया। निकुभ मन्दिर ध्वस्त करा दिया।

निकुभ ने वाराणसी नष्ट होने का शाप दिया। तालजघादि हैहयो ने वाराणसी नगर ध्वस्त किया। दिवोदास पलायन कर गया। अन्त में निकुभ की पुन स्थापना की गयी। वाराणसी समृद्धिशाली हो गयी। इस कथा में वर्णित निकुभ ही गणपति नाम से प्रख्यात हुए। (वायु० ९२ ३६-५१)

गणेश ओकार स्वरूप हैं। उनको उपासना का अर्थ ब्रह्म की उपासना मानी गयी है। (गणेश० १ . १३-१५) एतदर्थ सर्व विद्या एव कलाओ का उन्हे अधिपति माना जाता है। किमी भी देवता की उपासना के पूर्व सर्वप्रथम गणेश की पूजा की जाती हैं। (पद्म० सृ० ६३)

अ-ऊ-म् से ओकार बनता है। यह प्रणव है। तुरीय नाम चतुर्थ भाग भी ॐ कार में समाविष्ट है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय चारो अवस्थाओ का ॐ कार द्योतक है। साध्य तथा साधन दोनो रूपो से ॐ कार वर्णित है। अतएव वेदो का ॐ कार से प्रारम्भ करने को प्रथा प्रचलित हुई थी।

कालान्तर में गजमुख गणेश का स्वरूप ॐ कार से ही विकसित हुआ। ॐ कार तथा गणेश की प्रचलित एव प्राचीन मूर्तियो के रूपो में साम्य मिलता है। गणेश की गजमुख मूर्ति अबतक पाँचवी शताब्दी के पूर्व की नही प्राप्त हो सकी है।

सन्त ज्ञानेश्वर ने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका में गजमुख तथा ॐ कार की एकता स्पष्ट की है। इस एकता के कारण उपनिषद् प्रतिपादित ॐ कार वेद एव सार्वत्रिक, सर्व कार्यारम्भ मे आद्य स्थान प्राप्त कर लिया।

बाल गणपति, तरुण गणपति, भक्ति विघ्नेश्वर, शक्ति गणेश, उच्छिष्ट गणपति, नृत गणपति, हेरब गणपति, प्रसन्न गणपति आदि रूपो मे गणपति की मूर्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार विनायक के आठ रूपो की कल्पना की गयी है।

(३) **अर्धनारीश्वर :** एक कथा है। बाइबिल के आदम तथा हौवा की कथा से मिलती है। बाइबिल के अनुसार सर्व प्रथम आदम को भगवान् ने बनाया। तत्पश्चात् उसकी एक पसली से हौवा को बनाया। इस प्रकार नारी एक ही मनुष्य का अग है।

शिव पुराण में कथा मिलती है। ब्रह्मा ने प्रजा उत्पत्ति निमित्त तपस्या की। शिव उनकी तपस्या से प्रसन्न हो गये। उनके शरीर से अर्ध-नारी-नरेश्वर उत्पन्न हुए। (शिव० शत० ३)

स्कन्द पुराण में एक और कथा का वर्णन है। महिषासुरमर्दिनी ने महिषासुर का वध किया। शिव सन्तुष्ट हुए। प्रसन्न हुए। अरुणाचल पर पार्वती तपस्या कर रही थी। पार्वती को वामाग पर शिव ने ले लिया। शकर के इस प्रेम प्रदर्शन से प्रफुल्लित होकर, पार्वती भगवान् शंकर के वामाग में लीन हो गयी। शकर एव पार्वती एक ही शरीर के दक्षिण तथा वामाग हो गये। शिव का पुरुष दक्षिणाग शुभ्रवर्ण रह गया। पार्वती का शरीर वामाग ताम्रवर्ण युक्त हो गया। अर्धभाग में कचुकी तथा हार आदि आभूषण रह गये और यथावत् पुरुष स्वरूप रह गया। यह शिव पार्वती का अर्ध नारीश्वर किंवा अर्धनारी-नरेश्वर रूप हो गया। (स्कन्द० १ : २ ३—२१, मत्स्य० २६०) मनुस्मृति में भी इसी प्रकार की एक कथा दी गयी है। हिरण्यगर्भ को सृष्टि रचना की इच्छा हुई। उसने अपने शरीर को दो भाग किये। अर्ध भाग से स्त्री तथा दूसरे अर्ध भाग से पुरुष शरीर की रचना हुई। एक ही शरीर के दो अश थे। मिलने पर, अर्ध नारीश्वर रूप अर्थात् पुरुष तथा स्त्री एक मे हो गये। (मनु० : १ ३२)

देवी भागवत में और एक कथा इसी से मिलती-जुलती दी गयी है। ईश्वर अपनी स्वेच्छा से द्विविध रूप हो गये। दायाँ भाग पुरुष तथा वाम भाग स्त्री का हो गया। उसने यह कार्य सृष्टि रचना की दृष्टि एव इच्छा से किया। (दे० भा० २ : २७)

किष्किन्धा काण्ड वाल्मीकीय रामायण मे इस

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि स्त्री का मूल पुरुष से भिन्न नहीं है। (कि० ३४ ३८)

ऋग्वेद में यद्यपि अर्धनारीश्वर शब्द का उल्लेख नहीं मिलता, तथापि उसकी कल्पना मिलती है। पुरुष एवं प्रकृति इस सृष्टि प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु हैं। प्रतीकात्मक स्वरूप हैं। इसकी व्यजना स्पष्ट प्रतीत होती है। द्यावा-पृथ्वी लोक की मध्यवर्ती सृष्टि है। माता-पिता, योषा-वृषा प्राण हैं। अग्नि-सोम, पुरुष-स्त्री है। पति-पत्नी के द्वन्द्व द्वारा प्राणी जगत् का सृजन होता है।

पुरुष मे अग्नि तत्त्व तथा स्त्री में सोम तत्त्व प्रधान है। स्त्री के आभ्यतर में अर्धभाग पुरुष का विद्यमान रहता है। जहाँ अग्नि है। वही अर्धभाग सोम है। अतएव ऋग्वेद (१ १६४ : १६) कहता है—'स्त्रिय. सतीस्वा उ मे पुंस आहुः।' स्त्री का शोणित आग्नेय एवं पुरुष का शुक्र सौम्य भाव से युक्त रहता है। शुक्र एवं शोणित ही वैज्ञानिक भाषा में वृषा एवं योषा अर्थात् नर-नारी है। स्त्री तथा पुलिंग हैं।

सृष्टि के इस आदि भूत मातृत्व एवं पितृत्व को प्रतीक रूप में पुराणो मे पार्वती एवं परमेश्वर कहा गया है। शिव पार्वती ही रुद्र एव अम्बिका है। शतपथ ब्राह्मण (५ : ३ १ १०) मे उल्लेख है—'अग्निर्वे अग्नि'।' इसी को तैत्तिरिय ब्राह्मण दुहराता है—'एवं रुद्र' यदग्नि'।' (१:१:५ ८-६) ऋग्वेद कितनी वैज्ञानिक भाषा मे कहता है 'अग्निजगितितमर्यं सोम आह तवाहमस्मि सख्य न्योका।' (५ · ४४ . १५) अग्नि एव सोम जगत् के माता पिता है। अग्नि अन्नाद हैं। सोम उसका अन्नरूप द्वारा सभरण करता है।

सृष्टि रचना के लिये पुरुष एव स्त्री दोनो तत्त्व अनिवार्य है। वनस्पति से लेकर समस्त प्राणधारियो की उत्पत्ति इन दोनो तत्वो के मिलन का परिणाम है। पुरुप नारी मे बीज वपन करता है। नारी गर्भ मे पुरुष के अग्निकण को लेकर सम्वर्धन करती है। वह बीज विराट रूप धारण करता है। बीज की शक्ति के अनुसार, जो मात्रा का आधान करती है, वही माता है। वही पिता एवं माता शिव एव शक्ति के प्रतीक है।

शक्ति विहीन शिव रुद्र हैं। उनका स्वरूप घोर हो जाता है। शक्ति के साथ मिलने पर उनका स्वरूप शिव होता है। इसे दूसरी तरह से समझें तो अर्थ होगा। यदि अग्नि को सोम स्वरूप अन्न प्राप्त नही होता, तो वह जिसमें रहती है, उसी को भस्म करती है। यह रुद्र रूप है। यह संहार का स्वरूप है। किन्तु अग्नि मे सोम की आहुति याग है। इस यज्ञ का स्वस्ति भाव होता है। वह स्वस्ति भाव शिव-शक्ति किंवा अग्नि-सोम का समन्वित रूप है। यही अर्धनारीश्वर है।

वैदिक साहित्य में नैसर्गिक एव व्याधि-जनित उत्पात-सहारक देवता को रुद्र कहा गया है। किन्तु उन्ही उत्पातो का शमनकारी देवता शिव बन गया है। अतएव रुद्र एवं शिव एक ही देव के रौद्र एव शान्त स्वरूप है।

कालान्तर में रुद्र के नाम, रुद्र, भव, शर्व (शिव) पशुपति, भीम, ईशान, उग्र एवं महादेव पड गये। रुद्र की पत्नी सुवर्चला किंवा सती, पुत्र शनिश्चर तथा निवास स्थान सूर्य, भव की पत्नी उमा (उषा) पुत्र शुक्र निवास स्थान जल, शर्व (शिव) की पत्नी विकेशी, पुत्र मगल, निवास स्थान मही, पशुपति की पत्नी शिवा, पुत्र मनोजव, निवास स्थान वायु, भीम की पत्नी स्वाहा (स्वधा) पुत्र स्कन्द निवास स्थान अग्नि, ईशान की पत्नी दिशा, पुत्र स्वर्ग, निवास स्थान आकाश, उग्र की पत्नी दीक्षा, पुत्र सतान, निवास स्थान यज्ञीय ब्राह्मण तथा महादेव की पत्नी रोहिणी, पुत्र बुध और निवास स्थान चन्द्र कहा गया है। यही अष्ट रुद्र हैं। (विष्णु० १ : ८; मार्क० ४९, पद्म०, सू० ३; वायु, २७, स्कन्द ७ : १ ८७)

इस रूप मे प्रत्येक के साथ शक्ति स्वरूप पत्नी है। सभी पार्वती किवा आदि शक्ति की प्रतीक है।

भूयो राज्यार्जनोद्योगस्तेनात्यज्यत भूभुजा ।
जरसा शमिवाण्या च कर्णमूलमवाप्तया ॥२॥

२. अपनी जरावस्था तथा शमियो[१] की श्रुत वाणी के कारण उस राजा ने पुनः राज्य प्राप्ति का उद्योग त्याग दिया ।

अनयद्विनयोदात्तः समं स्वविषयेण तान् ।
विषयान्वशिनामग्र्यः स तान्पश्चाऽपि विस्मृतिम् ॥३॥

३. जितेन्द्रियों मे अग्र एवं विनयोदात्त उस राजा ने विषय[१] (स्वदेश) के साथ अपने पंचेन्द्रिय विषयों को भी विस्मृत कर दिया ।

शिव के साथ उनकी अर्धांगिनो हैं । वह अलग नही सचमुच एक ही शरीर, एक हो विश्व, एक ही ब्रह्माण्ड के पुरुष एव शक्ति, सृष्टि के मूल कारण नर-नारी है । मूलत प्रजापति एक थे । अकेले थे । उनमे सृष्टि रचना का सकल्प उदय हुआ । उन्होने अपने शरीर के दो खण्ड कर दिये । उसमे एक अर्धभाग स्त्री एव दूसरा भाग पुरुष हुआ । अर्धनारीश्वर सृजन स्रोत के प्रतीक है । वह मिलन के साकार स्वरूप हैं ।

अर्धनारीश्वर की अनेक मूर्तियाँ मिलती है । एक प्रभावशाली मूर्ति एलोरा के कैलास मन्दिर में है । अब तक उपलब्ध सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा सग्रहालय में प्रथम शती कुशान कालीन है ।

दक्षिण पूर्व एशिया का मैंने पर्याप्त पर्यटन किया है । यह आदि शक्ति है कम्बुज के एगकोर वाट मे दारु, पाषाण एव मृण्मयी अनेक मूर्तियाँ मैंने अर्धनारीश्वर की देखी है । श्याम अर्थात् थाईलैण्ड में अर्धनारीश्वर की मूर्ति तथा उसका पूजन किसी समय खूब प्रचलित था । (द्रष्टव्य है दक्षिण पूर्व एशिया)

पाठभेद

श्लोक सख्या २ में 'जरसा' का 'रजसा' और 'शमि' का 'शसि' पाठभेद मिलता है ।

२ (१) **शमी :** शमी का अर्थ शान्त, सयमी तथा जितेन्द्रिय होता है । स्वदोषो को शमन करने वालो की शमी कहते हैं ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ३ मे 'दात्त.' का पाठभेद 'दातु' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

— ३ (१) **विषय, विशः-विश्य :** वैदिक काल में एक समिति थी । समिति का अर्थ एक स्थान पर सबका एकत्रित होना था । एक समिति जन-साधारण को 'विश' थी । राष्ट्रीय सभा थी । वैदिक काल में हिन्दू समाज जनो अथवा वर्गों में विभक्त था । यथा—अनु, यदु, कुरु । साथ हो वे लोग यह भी समझते थे । हमलोग एक ही जाति के हैं । क्योकि वे सब लोग अपने आपको आर्य कहते थे । वर्गों के लोग 'विश' कहलाते थे । जिससे वैश्य शब्द निकला है ।

यूनानियो ने भारत पर आक्रमण किया । भारतीयो के सम्पर्क मे आये । परन्तु पजाब से आगे नही बढ सके । यूनानी लेखको ने राज्य एव विश. को एक ही माना है । वे प्रत्येक राज्य के नागरिको को विश को सज्ञा देते है । सिन्ध तथा पजाब के प्राय सभी राज्यो के विषय में उन्होने यही कहा है । किन्तु भारतीय लेखक उन्हें जनपद तथा देश कहते थे । (पाणिनि ४ १ १६८-१७७) कल्हण ने विषय शब्द का प्रयोग देश किंवा उसके राजा के सम्बन्ध में किया है । विषय, विश्य अथवा विशः निसन्देह देश एव राज्य

धावन्राज्येच्छया दुर्गागलिकायां स्वमन्त्रिभि: ।
कालेन स्थापितो बद्ध्वेत्यभ्यधायि तु कैरपि ॥४॥

४. राज्येच्छा से दौड़ते[1] हुए राजा को उसके मन्त्रियों[2] ने दुर्गागलिका[3] में बन्दी बना दिया। ऐसा कुछ लोगों ने कहा है।

से छोटा माना जाने लगा था। उसका अर्थ समय की गति से बदलता गया। मूल मे विषय शब्द के समानार्थक शब्द देश, विषय एवं उपवर्तन थे।

सुदूर प्राचीन काल से ही कश्मीर उपत्यका छोटे प्रशासकीय विभागो में विभाजित थी। उन्हे प्रचलित भाषा में परगना कहते है। उनका प्राचीन नाम विषय था। लोक प्रकाश में उल्लेख आना है कि २७ विषयो मे कश्मीर राज्य विभक्त था—

—'एषां सप्तविंशतिविषयाणां अन्तरालोपवेषणक:'—पृष्ठ ७७

'खोयाश्रमि, एकेन, क्रोधन, द्वाविंशति, चालन, समाला, देवसुची (र), भृंग, वितस्ता, सत्रव, खरवारि, नील, हारी, जलह्डीय, खड्वीय, फग्गा, लहर, औलडोय, नीलाश।'

उक्त १९ विषयो का नाम लोकप्रकाश मे मिलता है। उनका आधुनिक नाम निम्नलिखित रूप से हो गया है।

खोयाश्रमी = खुयाश्रम, खायाश्र (हा) मी, शमाला = समाला, औलिदिय = होलडा, लहरी = लहर; नीलाश = नीलाश्व, खड्वीय = खदुवी, एकेन = एकेनक, देवसुवी = देवसरस; क्रोवन = क्रुहिन परगना, देवाविसती = द्रुन्त परगना भृग = व्रिग परगना, फग्गा = फक, तया चालन, वि स्था, सतरव, स्वनवारी नील, हारी, जलहृदिय, क्या थे और है निश्चित पता नही चलता।

लोक प्रकाश से वह पता नही लगता कि ये विभाग कब बनाये गये तथा उनका वास्तविक रूप क्या था। वे किस समय तक अपने पूर्व एवं परिवर्तित रूप मे स्थित थे।

अबुल फजल के समय में ३८ परगना थे। उसके पूर्व काज़ी अली के अनुसार ४१ परगना थे।

सिखो के राज्य काल में कश्मीर में करीब ३६ परगना थे। मूर क्राफ्ट (स० १८२८ ई०) वैरन हुगेल (स० १८३५ ई०) तथा वाइन (स० १८४० ई०) ने परगनो की संख्या ३६ दी है। परन्तु उनके दिये नाम नही मिलते। परगनो की सीमा तथा नाम डोगरा राज काल तक बदलता रहा है। मेजर वेट्स (स० १८६५ ई०) ने परगनो की संख्या ४३ दी है। कालान्तर मे भारत के समान परगनो के स्थान पर तहसीलो मे कश्मीर बाँटा गया। डोगरा राज्य काल मे ११ तहसीले थी। आज कल जम्मू कश्मीर राज्य का राजनीतिक विभाजन पूर्णतया बदल गया है।

दूसरे विषय का अर्थ काम वासना यहाँ लगना चाहिए। विषय, रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श है। इन्ही को विषय गोचर इन्द्रियाँ भी कहा जाता है। विषय शब्द आश्रय के अर्थ मे भी प्रयुक्त होता है। इन्द्रियो का नाम विषयिन् कहा गया है। विषय इन्द्रियो के द्वाराहोते है। इन्द्रियो के वशीभूत जो हो जाता है, वही विषयी है। कल्हण के कहने का यहाँ तात्पर्य वही है कि राजा विषय युक्त अर्थात् विषयी हो गया था। वह इन्द्रियजयी नही इन्द्रियो के वशीभूत था।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ४ मे 'बद्ध्वे' का 'बद्धे' तथा 'वर्द्धे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४ (१) धावन : इस श्लोक का एक अर्थ यह भी हो सकता है—'राज्येच्छा से दुर्गागलिका मे

धावित उस राजा को उसके मन्त्रियो ने वन्दी वना लिया। ऐसा कुछ लोग कहते है।'

(२) **मन्त्री :** मन्त्री तथा मन्त्रि परिषद् पर टिप्पणी पाँचवें श्लोक की मन्त्रि तथा मन्त्री परिषद द्रष्टव्य है।

४ (३) **दुर्गागलिका :** यह श्रीनगर में द्रगजन स्थान है। शकराचार्य पर्वत के पश्चिम मूल से डल झील के फाटक के मध्य का स्थान दुर्गागलिका नाम से प्रसिद्ध था। द्रगजन मूल शब्द दुर्गागलिका का अपभ्रश है। श्रीनगर के कुछ लोगो को यह अभी तक याद है। कभी यहाँ कोई राजा वन्दी रखा गया था।

डल लेक के दक्षिणी पूर्वी एक भाग को गगरी वल कहते है। शकराचार्य पर्वत जिसका एक वाहू उत्तर की ओर निकलता है। डल लेक के समीप पहुँच जाता है। इसके तथा डल के मध्य का स्थान गगरी वल कहा जाता है। उसके उत्तर पूर्व के डल के अचल को गगरी वल कहते हैं। गगरी वल स्थान भी गगरी वल जल अचल से दक्षिण पश्चिम की ओर जल की चौडी नहर तुल्य जल प्रणाली चली गयी है। वितस्ता से एक नहर निकलकर उत्तर नवपुरा की ओर गयी है। और सेतु से पुन पश्चिम दक्षिण की ओर मुड जाती है। सर अर्थात् महा सरित पर जो पुल यहाँ वना था उसका नाम नवपुरासेतु कहा गया है। यहाँ से सेतु का वन्धा आरम्भ होता है। इस वन्धा के उत्तर दिशा में एक नहर डल लेक से आती है। उसे द्रारी नम्वल कहते है। इसके पूर्वीय छोर पर जहाँ यह श्री शकाराचार्य पर्वत के पथरीले मूल भाग को स्पर्श करती है वहाँ पर कम से कम एक शताब्दी पूर्व एक द्वार था। वहाँ से त्सुन्थ कुल का जल लेक से बाहर वहता था। वह जल द्वार उस समय वन्द कर दिया जाता था, जब वितस्ता का जलस्तर, डल के जल स्तर से ऊँचा हो जाता था। यह निर्माण शताब्दियो पुराना है। उस समय इसका निर्माण हुआ था जब सेतु अथवा वन्ध वनाया गया था। इसी के पास दुर्गागलिका की आवादी थी। यही पर अन्ध युधिष्ठिर वन्दी रखा गया था।

श्रीवर ने इस सेतु का उल्लेख जैनराज तरगिणी चतुर्थ तरग मे किया है। इससे स्पष्ट होता है कि यह सेतु अत्यन्त प्राचीन निर्माण था। क्योकि श्रीवर का काल ही (सन् १४५०-१४८६ ई०) होता है।

छिन्नेषु सेतुवन्धेषु तत्तन्नौपुरकादिषु।
पूर्दुर्गरचनेवाभूद् दुर्गमा तद्विरोधिनाम् ॥ ४.१२१॥

× × ×

अथ काश्मीरिका प्रोचुः सैदांस्तीरान्तिकस्थितान्।
नौसेतुवन्धरज्जुर्यद्दत्तश्छिन्ना भयेन न. ॥४.२४२॥

इस समय यहां घनी आवादी हो गयी है। स्थान का पहचानना कठिन हो गया है।

भ्रमण काल मे मुझे कुछ पण्डितो ने दुर्गागलिका का स्थान श्री शकराचार्य पर्वत से श्रीनगर-वनिहाल सडक पर वनिहाल की ओर जाते समय वाम ओर एक दुर्गा का मन्दिर दिखाया गया। यहाँ कुण्ड भी है। उनकी सख्या दो है। एक ऊपर है। दूसरा नीचे है। स्थान सुरम्य है। ब्राह्मणो के कुल यहाँ रहते है। धर्मशालायें वना है। यहाँ देवी का मन्दिर है। ऊपर शिव लिंग है।

मै यहाँ वहुत समय तक प्राचीन ध्वन्सावशेष खोजता रहा। कुछ लिखने योग्य यहाँ पर वस्तुएँ नही मिली। यहाँ भी एक नाग है।

प्रतीत होता है कि कल्हण स्वय निश्चित नही कर सका था कि राजा सचमुच वन्दी बनाया गया था या नही। अतएव उसने इस घटना का आधार कतिपय लोगो के कथन को माना है। उसे इस घटना की सत्यता का प्रमाण तत्कालीन किसी ग्रन्थ अथवा इतिहासके लेखको की रचना से नही मिल सका था।

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥५॥

५. उन मन्त्रियों[1] ने राजा विक्रमादित्य के वंशज प्रतापादित्य[2] को दिगन्तर से लाकर यहाँ अभिषिक्त किया ।

पादटिप्पणियाँ :

५ (१) मन्त्री एवं मन्त्रि परिषद् : मन्त्रियो ने राजा को बाहर से बुलाकर राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया था यह कश्मीर के मन्त्रियो किंवा मन्त्रिपरिषद् की शक्ति तथा अधिकार का एक ज्वलन्त उदाहरण है ।

राजा के निरंकुश होने पर मन्त्रियो का अधिकार था । वे उसे हटा सकते थे । अन्ध युधिष्ठिर के सम्बन्ध में मन्त्रियो ने यही किया था । राजा को जो बैठा सकता है, वह राज सिंहासन से उतार भी सकता है ; मन्त्रि परिषद् का यह अधिकार धर्म सम्मत माना गया है ।

भारतीय राजशास्त्र मन्त्रियो एवं मन्त्रिपरिषद् को यह अधिकार देता है, या नही कि, वह राजा को बन्दी बना ले, अथवा किसी दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर राजा चुन ले; इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है ।

कश्मीर में मन्त्रियो ने प्रायः राजाओ को सिंहासन च्युत किया है । अन्य व्यक्ति को राजसिंहासन पर बैठाया है । जनता ने भी राजा चुना है ।

कश्मीर में मन्त्रि परिषद् बडी शक्तिशाली थी । राजा को निरंकुश नही होने देती थी । इस विषय पर भारतीय राजनीतिशास्त्र के विभिन्न युगकालीन विद्वानो तथा कल्हण का क्या मत है । जानना उचित होगा ।

कल्हण ने मन्त्रियो द्वारा राजाओ को पद च्युत तथा प्रतिष्ठापित करने का बहुत उदाहरण उपस्थित किया है । राजा तथा मन्त्रियो के अधिकार सीमा तथा उनका परस्पर क्या सम्बन्ध था, इसका अध्ययन राजनीति विज्ञान की दृष्टि से उचित होगा ।

महाभारत (३८ : ३० : ३८ : १६,२१) ने मन्त्री, मन्त्रि परिषद् किंवा मन्त्रिमण्डल को राज्य की प्रकृति का महत्त्व पूर्ण अंग माना है ।

राजा मन्त्रिमण्डल पर उतना ही निर्भर था जितना पर्जन्य पर प्राणिमात्र निर्भर रहता है । जितना स्त्रियाँ पति पर निर्भर रहती है । अर्थशास्त्र राजा एव मन्त्री की तुलना रथ के दो चक्रो से करता है ।

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवाँस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ।
—अर्थ० . १ ३ : १ . ३

मनु ने मन्त्रियो को राज्य कार्य के लिये नितान्त आवश्यक माना है ।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्नु राज्यं महोदयम् ॥
—मनु० : ८ :५३

शुक्राचार्य मन्त्रियो की अनिवार्यता और स्पष्ट रूप से कहते है । उनके बिना राज्यपतन अवश्यंभावी हो जाता है ।

विना प्रकृतिसन्मंत्राद्राज्यनाशो भवेन्मम ।
निरोधनं भवेदेवं राज्ञस्ते स्युः सुमन्त्रिणः ॥
—शु० नी० २ : ८२

स्मृतियो तथा पुराणो ने मन्त्रियो के अधिकार गुण, कर्तव्यो की विशद व्याख्या की है । वेद भी मन्त्री की अनिवार्यता स्पष्ट करता है ।

ऋग् तथा अथर्ववेद में मन्त्री शब्द का उल्लेख नही मिलता । यजुर्वेद संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों

में 'रत्नी' शब्द का उल्लेख मिलता है। (पं०ब्रा० १९ : १ . ४) 'रत्नी' को 'वीर' की पदवी से सम्बोधित किया गया है। कालान्तर मे यही 'रत्नी' 'राजरत्न' 'नवरत्न' आदि की सर्व श्रेष्ठ उपाधि रूप से प्रयुक्त होने लगा।

वैदिक काल के 'रत्नि' परिषद् में—पुरोहित, पट्टरानी, युवराज, राजन्य, अक्षावाप, क्षत्ता, सेनानी, सूत, सग्रहीता, रथकार आदि प्रमुख राज्याधिकारी होते थे। 'रत्नियो' का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता था। वाजपेय यज्ञ काल मे राजा 'रत्नि बलि' प्रदान हेतु स्वयं 'रत्नियो' के निवास स्थान पर जाता था। वैदिक यज्ञो का प्रचार क्षीण होने के साथ ही साथ, रत्नी वर्ग का अन्त हो गया। वायु पुराण मे रत्नियो को दो वर्गो में विभक्त किया गया था। उन्हें सजीव तथा निर्जीव की संज्ञा दी गयी थी। सजीव वर्ग में पट्टरानी, पुरोहित, सेनानी, सूत, मन्त्री, आदि का समावेश होता था। निर्जीव वर्ग में मणि, कृपाण, धनुष, भाला, रत्न, पताका एव कोषादि थे। (वायु० ५७ : ६८-७१)

कालान्तर में 'रत्नी' का स्थान एक अत्यन्त प्रभावशाली सस्था ने ग्रहण कर लिया था उसे 'मन्त्रि परिपद्', 'अमात्य परिषद्' एव 'सचिव परिषद्' कहते थे। मगधराज अजातशत्रु, कोसलराज प्रसेनजित के समय मन्त्रियो का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जातक कथाओ मे भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है। (जातक स० ५२८ तथा ५५३)

मौर्य एवं शुग राजाओ की 'मन्त्रि परिषदें' थी, (अर्थ शास्त्र . १, अशोक के अभिलेख स० ३ तथा ६ एव मालविकाग्निमित्र नाटक अक ५) पश्चिम भारत में शक राजा मन्त्रिपरिपद् की मन्त्रणा से राज्य शासन करते थे। उसके 'मन्त्रि सचिव' तथा 'कर्म सचिव' सदस्य होते थे। (रुद्रदामा का जूनागढ शिलालेख) गुप्त राजाओ के अभिलेखो में भी मन्त्रियो का उल्लेख मिलता है।

मन्त्रियो का अधिकार असीमित होता गया है। शक्तिशाली राजा का मन्त्रिमण्डल उसका सलाहकार था। राजा उनकी मन्त्रणा की अवहेलना कर सकता था। दुर्वल राजा पर मन्त्रिपरिषद् हावी हो जाती थी। मौखरि वश के निस्सतान होने पर, मौखरिराज्य का सिंहासन मन्त्रियो द्वारा हर्षवर्धन को दिया गया था।

मन्त्रि परिषद् की सख्या निश्चित नही थी। मनु के मतानुसार मन्त्रियो की सख्या सात या आठ होनी चाहिए। (म० ७ . ५४) महाभारत का मत है कि मन्त्रियो की सख्या आठ होनी चाहिए।

'अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्र राजोपधारयेत्।'

अर्थशास्त्र मे उल्लेख आता है—मानव सम्प्रदाय १२, बार्हस्पत्य पथी १६, औशनस पथी २० मन्त्रियो की सख्या देते हैं। (अ १ : १५) शुक्राचार्य १० राज्य की प्रकृति में मन्त्रियो की गणना करते है। (शुक्र० २ : ६९ ७९) किन्तु मनु एव कौटिल्य इस प्रश्न पर एक मत हैं कि मन्त्रियो की सख्या देश के विस्तार एव समय की आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। शुक्राचार्य मन्त्रिमण्डल में पुरोहित का रखना आवश्यक नही मानते हैं। (शुक्र० २ ७२) किन्तु शुक्र का कथन है कि पुरोहित का भय प्रदर्शन हो राजा को सुपथ पर लाने के लिये पर्याप्त था। (शुक्र० २ . ९९)

अशोक के तृतीय तथा षष्ठ अभिलेखो से 'मन्त्रि परिषद्' की कार्य प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है। षष्ठ लेख से स्पष्ट पता चलता है कि अमात्यो के निर्णय पर, मन्त्रि परिषद् पुनर्विचार कर सकती था। सम्राट् के आदेशो मे भी परिषद् आवश्यकतानुसार सशोधन करती थी। परिषद् में मत वैभिन्न्य होने पर सम्राट् अशोक का निर्णय अन्तिम माना जाता था। एक स्थान पर अशोक के दान पर उसकी मन्त्रिपरिषद् ने सीमा लगा दी थी। युआन च्वाग ने पर्यटन सस्मरण में लिखा है कि श्रावस्ती का राजा

विक्रमादित्य ५ लाख मुद्रा दान देना चाहता था। परन्तु मन्त्रि परिषद् ने रोक दिया कि प्रजा का अपशब्द सुनना पडेगा। वादंजलि जातक मे कथा मिलती है कि मन्त्रियो ने वादंजलि को उसकी मूर्खता के कारण युवराज नही बनने दिया।

अशोक कश्मीर का राजा था। अतएव कश्मीर के शासन में वह मन्त्रि परिषद् जैसी सस्था को किसी न किसी रूप मे अवश्य रखा होगा। शक राजाओ के समय में भी मन्त्रि परिषद् थी। शक राजाओं ने कश्मीर पर शासन किया था। गुप्त काल के पश्चात् उत्तर भारत में मन्त्रि परिषद् का उल्लेख नही मिलता।

कल्हण के वर्णन से पता चलता है कि कश्मीर मे मन्त्रि परिषद् का कभी लोप नही हुआ। वह अत्यन्त शक्तिशाली सस्था थी। निस्सन्देह उत्तर भारत, उत्तर गुप्त काल मे, केवल कश्मीर ही अपवाद था। जहाँ मन्त्रि परिषद् सक्रिय थी।

शुग काल में भी राजाओ ने मन्त्रि परिषद् को कायम रखा था। दक्षिण भारत मे चोल राज्य मे दसवी शताब्दी तक कश्मीर के समान मन्त्रि परिषद् सक्रिय एवं शक्तिशाली थी।

मन्त्रि परिषद् को राजा नियुक्त करता था। नियुक्त मन्त्रियो के समवेत रूप का नाम मन्त्रि-परिषद् था। कश्मीर में राजा ही मन्त्री नियुक्त करते थे। सब मन्त्री मिलकर मन्त्रि परिषद् अर्थात् मन्त्रि मण्डल बनाते थे। मन्त्री राजा के प्रति और अप्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी था। मन्त्रियो की शक्ति एव प्रतिष्ठा उनके व्यक्तित्व पर निर्भर थी। धर्मशास्त्र ही उनका विधि ग्रन्थ था। नीति तथा स्मृतियो का उल्लंघन न तो मन्त्री कर सकता था और न राजा। दोनो ही अपने अधिकार की सीमा तत्कालीन प्रचलित नीति, स्मृति तथा धर्म शास्त्रो से निर्धारित करते थे।

राजा के शक्तिशाली होने पर 'राजायत्त तन्त्र' तथा मन्त्रियो के शक्तिशाली होने पर 'सचिवायत्त-तन्त्र' शासन कहा जाता था। सामान्य स्थिति का नामकरण 'उभयायत्त' शासन कहा जाता था। ('मुद्राराक्षस: अंक ३, कथासरित्सागर १ : ५८-५९)

कश्मीर में मन्त्रियो ने अनेक राजाओ को राज-सिंहासन पर बैठाया, अनेकों को सिंहासन से उतारा है उनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है।

मन्त्रियो ने राजा युधिष्ठिर को बन्दी गृह में रखा और इसी वंश के व्यक्ति को राज्यसिंहासन पर बैठाया। यह मन्त्रि परिषद् के अधिकार सीमा के अन्तर्गत था। जिसका प्रयोग समय समय पर कश्मीर मे होता रहा है। यह नीति, स्मृति व्यवहार एवं न्याय सम्मत था।

(२) प्रतापादित्य : श्री विलसन ने अभिषेक का समय ईसापूर्व १६८ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल ईसा पूर्व १० वर्ष तथा राज्य काल ३२ वर्ष माना है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक काल कल्हण के वर्ष गणनानुसार लौकिक सवत् २८९६ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ वर्ष रखा है। श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय ईसापूर्व १६९ वर्ष रखा है। श्री चन्द्रकान्त बाली ने अपनी ज्योतिषगणना के अनुसार प्रतापादित्य का सप्तर्षि सवत् ३७८५ तथा सन् १५ ई० दिया है।

आइने अकबरी मे पतापादित्य का नाम परतौपदत्त लिखा है। उसमे लिखा है कि वह विक्रमादित्य का वशज था। उसका राज्यकाल अबुल फजल २३ वर्ष देता है।

हसन प्रतापादित्य के सन्दर्भ में लिखता है—

राजा प्रतापादित्य २८८६ क० बहुक्म सिकन्दर और अहल कश्मीर के इत्तफाक से हुकूमत कश्मीर पर सरफराज हुआ। और अमलकत और फौज और रैय्यत की आशाइश मे जान दिल से कोशिश की। तीस साल हुकूमत मे गुजरे। (छ पृ५२-५३)

शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः ।
अन्यैरत्रान्यथाऽलेखि विसंवादकदर्थितम् ॥६॥

६. 'वह शकारि विक्रमादित्य[1] था'—इस प्रकार विसंवाद कदर्थित को भ्रान्त अन्य लोगों ने अन्यथा लिखा है ।

इदं स्वभेदविधुरं हर्षादीनां धराभुजाम् ।
चिरकालमभूद्भोज्यं ततः प्रभृति मण्डलम् ॥७॥

७. उस समय से पारस्परिक कलह ग्रस्त यह मण्डल[1] हर्षादि[2] राजाओं का चिर काल तक उपभोग्य बना रहा ।

श्री विदैउद्दीन तथा श्री नारायण कौल का मत है कि प्रतापादित्य मालवा के राजा विक्रमादित्य से सम्बन्धित था । अभी तक कोई ऐसा आधिकारिक प्रमाण प्राप्त नही हो सका है कि निष्कर्ष निकाला जाय कि वास्तव में प्रतापादित्य विक्रमादित्य का सम्बन्धी था । इस पर अभी अनुसन्धान की आवश्यकता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६ मे 'रति सभ्रम' का 'स इति भ्रम', 'इति सभ्रम' तथा 'विसंवादक' का पाठभेद 'विसंवादिक' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

६ (१) विक्रमादित्य : द्वितीय तरंग में वर्णित ६ राजाओ का सम्बन्ध गोनन्द वश से प्रतीत नही होता ।

शक सवत् का आरम्भ सन् ७८ ई० से होता है । किन्तु श्री स्तीन के नोट के अनुसार प्रतापादित्य का राज्यारोहण काल ईसापूर्व १८० वर्ष आता है । इस प्रकार दोनो समयो में २५८ वर्ष का अन्तर हो जाता है । विक्रम सवत् ईसा पूर्व ५७ वर्ष से आरम्भ होता है । यही कारण मालूम होता है जिससे कि इस विक्रमादित्य को शकारि विक्रमादित्य से भिन्न कल्हण मानता है ।

विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे अनेक भ्रान्तियाँ है । विक्रम सवत् चलाने वाले विक्रमादित्य कौन ऐतिहासिक व्यक्ति थे, इसका निर्णय इतिहास के विद्वानो ने एक मत से अभी तक नही किया है । अनेकवाद तथा सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है ।

७ (१) मण्डल : मण्डल शब्द का प्रयोग कल्हण ने राज्य के लिये किया है । शुक्र ने (शुक्र नीति १ १८२-१८६) सामन्त, माण्डलिक, राजन्, महाराज, स्वराज, सम्राज, विराज, सार्वभौम के आधीन राज्य का वर्गीकरण किया है । मण्डल के अधिपति को माण्डलिक कहते थे । सामन्त की आय १ लाख से ३ लाख, मण्डल की आय ४ से ५०, स्वराज की ५१-१००, सम्राज की १ करोड से १०, विराज की ११ से ५० तथा सार्वभौम राज की ५१ करोड से ऊपर प्रतिवर्ष रजत कर्ष आय रखा है। हर्ष को यहाँ मण्डलेश नही मानना चाहिये । कल्हण प्राय कश्मीर राज्य के लिये मण्डल शब्द का प्रयोग कर देता है । लोक प्रकाश में कश्मीर मण्डल के सम्बन्ध में एक श्लोक आता है जिसमें उसके ग्रामो की सख्या दी गयी है ।

षष्टिग्रामसहस्राणि षष्टिग्रामशतानि च ।
षष्टिर्ग्रामास्त्रयो ग्रामा ह्येतत्कश्मीरमण्डलम् ॥

—पृष्ठ ७८ श्लोक ४

असपूर्वाऽपि तेनोर्वी सपूर्वेव महीभुजा ।
लालिता हृदयज्ञेन पत्या नववधूरिव ॥८॥

८. इस राजा ने परम्परा प्राप्त सदृश अपरम्परा प्राप्त इस पृथ्वी को भी, हृदयज्ञ पति के नववधू तुल्य लालित[1] किया।

भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान्भुव तस्मिन्दिवं गते ।
जलौकास्तत्सुतो भूमेर्भूषणं समपद्यत ॥९॥

जलौकास्[1]

९. बत्तीस[1] वर्ष पृथ्वी को भोग कर उसके दिवंगत होने पर उसका पुत्र जलौकास्[2] भूमि भूषण हुआ।

---

(२) हर्ष : भारतीय इतिहास मे कई हर्षो का उल्लेख मिलता है। उज्जैन के एक राजा विक्रमादित्य को भी हर्ष कहा गया है। उसका उल्लेख कल्हण ने तृतीय तरंग के श्लोक १२५ मे किया है। वह कश्मीर राजा मातृगुप्त के समय में हुआ था। कल्हण की काल गणना के अनुसार उसका समय २६८ वर्ष पश्चात् पडता है।

यदि इस हर्ष को कन्नौज का राजा हर्षवर्धन मान लिया जाय, जिसका उल्लेख ह्युयेन साग करता है, तो उसका समय प्राप्त लेखो के अनुसार सन् ६०६-६५० ई० आयेगा। इस प्रकार कल्हण की काल गणना में, जिस प्रकार मिहिरकुल को गणना में अन्तर पडता है, उसी प्रकार इस काल में भी पड जाता है। कन्नौज के हर्ष का काल प्रतापादित्य का समय नही हो सकता।

अल्बेरुनी लिखता है—कश्मीर की समय सारणी के अनुसार श्रीहर्ष ६६४ वर्ष विक्रमादित्य के पश्चात् हुए थे। उस समय देश मे श्रीहर्ष, विक्रमादित्य, शक, वल्लभ, तथा गुप्त पाँच प्रकार के संवतो का प्रचलन था। विक्रम संवत् मानने वाले दक्षिण, तथा पश्चिमी भारत भूखण्ड मे निवास करते थे। (अलबेरुनी· साचू . २ · ६-९)

८ (१) लालित : लालन-पालन शब्द प्रायः एक साथ आता है। कल्हण ने यहाँपर नववधू और पृथ्वी की तुलना की है। जिस प्रकार अपनी प्रियतमा नववधू के प्रति पति हार्दिक प्रेम करता उसका दुलार करता है उसी प्रकार पृथ्वीपति राजा प्रतापादित्य ने पृथ्वी का प्रेम तथा स्नेह से अपने से अभिन्न समझते हुए लालन किया। मनुष्य किसी से प्रेम न करते हुए भी, उसका पालन करता है। राजा प्रजा से अत्यन्त स्नेह न करते हुए भी, प्रजा पालक हो सकता है। परन्तु प्रजा के साथ स्नेह करना, उसे अभिन्न समझना, उसका दुलार करना सर्वथा भिन्न बात है। लालन मे पालन शब्द भी समन्वित हो जाता है। परन्तु पालन में लालन का अर्थ समाविष्ट नही होता। कल्हण ने यहाँ उपमा बहुत ही सुन्दर दी है। उसकी यह नयी सूझ है।

९ (१) श्री विल्सन ने अभिषेक का समय ईसा पूर्व १३६ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल सन् २२ ई० और राज्यकाल ३२ वर्ष दिया है। श्री स्तीन राज्याभिषेक काल कल्हण के गणनानुसार लौकिक संवत् २९२८ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ वर्ष दिया है।

श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व १३७ वर्ष तथा राज्यकाल ३२ दिया है।

श्री वाली ने सप्तर्षि संवत् ३८१७ तथा सन् ४७ वर्ष यह समय दिया है।

आइने अकबरी मे जलौक को 'जुगूक' लिखा गया है। राज्यकाल ३० वर्ष दिया गया है।

पितुरेव समं कालं वृद्धिहेतोः स दिद्युते ।
विषुवत्पूर्णशीतांशुरिव शीतेतरार्चिषः ॥१०॥

१०. सूर्य के समकाल[1] तक शरद्कालीन पूर्ण शशि तुल्य वह वृद्धि हेतु, पिता के ही बराबर समय तक प्रकाशित रहा ।

अथ वाक्पुष्टया सार्धं देव्या दिव्यप्रभावया ।
भुवं तत्प्रभवो भुञ्जंस्तुञ्जीनोऽरञ्जयत्प्रजाः ॥११॥

तुंजीन

११. तदुपरान्त इसका पुत्र तुंजीन दिव्य प्रभाव युक्त देवी वाक्पुष्टा के साथ पृथ्वी का भोग करता हुआ प्रजारंजन किया ।

हसन लिखता है—बाद अजई (प्रतापादित्य) राजा जलौक शानी ने बादशाहत की पोशाक जैवतन करके ३२ साल हकूमत में गुजारे ।

(१) जलौक, जलौकस्, जलौकास्ः प्रसिद्ध अनुवादकारो ने नाम को भिन्न प्रकार से लिखा है । श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अपने अनुवाद में जलौक तथा जलौकस दिया है । श्री स्तीन ने भूमिका के पृष्ठ १२५ पर 'जलौकस्' दिया है । अनुवाद मे पृष्ठ ५७ पर पुन 'जलौकस्' दिया है । श्री पण्डित ने अनुवाद के पृष्ठ प्रान्त ४२ पर 'जलौकस्' तथा अनुवाद में 'जलौक' और पुन पृष्ठ ५८१ पर 'जलौकस्' दिया है । कल्हण ने मूल श्लोक मे 'जलौकास्तत्सुतो' दिया है । क्रिया के अनुसार 'जलौकास्' शुद्ध प्रतीत होता है । इसके पूर्व (त० १ १०८) कल्हण ने 'भूभृज्जलौको' का प्रयोग कर अशोक के पुत्र 'जलौक' का वर्णन किया है । प्रतीत होता है कि अशोकपुत्र 'जलौक' तथा प्रतापादित्य-पुत्र में भेद जाहिर करने के लिए 'जलौकस्' किंवा 'जलौकास्' नाम दिया है ।

१० (१) समकाल-ज्योतिष ज्ञान : कल्हण को ज्योतिष का ज्ञान था इस श्लोक से प्रकट होता है । दिन एव रात्रि वर्ष में २३ सितम्बर तथा २२ मार्च को बराबर होते हैं । इस समय सूर्य निरक्ष पर जाता है । भारतीय मास की गणना से कार्तिक एव चैत्र विषुव २२ या २३ सितम्बर तथा महा विषुव या हरिदद २० मार्च को होना है ।

चन्द्रमा की वृद्धि तथा ह्रास का कारण विज्ञान के अनुसार सूर्य है । यहाँ पर भी वृद्धि हेतु सूर्य को कहा है । पिता भी पुत्र के लिये वृद्धि का हेतु है । यहाँ पर पिता को सूर्य तथा पुत्र को चन्द्रमा की उपमा दी गयी है । चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य का ही प्रतिबिम्ब है और पिता का प्रकाश या प्रतिबिम्ब पुत्र । कल्हण ने यहाँ काव्य एवं ज्योतिष का संक्षेप मे समन्वय किया है ।

११(१) श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईसा पूर्व १०४ वर्ष ९ मास तथा समीकृत का सन् ५४ ईस्वी तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है ।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् २९६० वर्ष तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है

श्री एस पी. पण्डित ने यह समय ईसा पूर्व १०५ वर्ष तथा राज्य काल ३६ वर्ष रखा है ।

श्री वाली ने सप्तर्षि स० ३८५३ तथा सन् ८३ ई. यह काल दिया है ।

आइने अकबरी में तुजीन राजा को 'बुनजिर' नाम से सम्बोधित तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया गया है ।

हसन लिखता है—राजा तुजीन २९५० क० में बाप की जगह तख्तनशीन हुआ । उसकी रानी वागपुस्ता नाम एक निहायत ही अकलमन्द और दाना औरत थी, उसी की रहनुमाई में फौज और रैयत के खुश करने में मसरूफ रहता । उनके साथ

दम्पतिभ्यामियं ताभ्यामभूष्यत वसुन्धरा ।
गङ्गामृगाङ्कखण्डाभ्यां जटाभूरिव धूर्जटेः ॥१२॥

१२. यह वसुन्धरा उस दम्पति द्वारा, गंगा एवं मृगाङ्क खण्ड से शिव-जटा तुल्य शोभित हुई।

मण्डलं साध्वधत्तां तौ नानावर्णमनोरमम् ।
शतह्रदापयोवाहौ माहेन्द्रमिव कार्मुकम् ॥१३॥

१३. उन दोनों ने नाना वर्णो[१] से मनोरम मण्डल को समुचित रूप से उसी प्रकार धारण किया जैसे विद्युत एवं मेघ नाना वर्ण से मनोरम इन्द्रधनुप को धारण करता है।

अदल और इन्साफ से पेश आता। तुगेश्वर और बैंजवारह के पास हरदास का मन्दिर तामीर कराया और एक निहायत ही आलीशान इमारतो वाला शहर कंग बनवाया। शहर के इर्द गिर्द अमाश्री का मन्दिर बनवाया। इसके शिखर पर एक लाख अशरफियो का सोना बतौर मुलम्मा के चढवाया। (पृष्ठ ५३)

'कहते है कि मराज की हद्दूद में बहुत से पौदे लगवाए जिसमे कि राजा की हुस्न नीयत की बदौलत लगाते ही फल निकल आये। माह भादो में इस कदर बर्फबारी हुई कि फसलें सारी की सारी तबाह व बरबाद हो गयी। सख्त कहत पडा। राजा ने अपने खजाने के मुँह खोल दिये। और उनमें जिस कदर भी हीरे जवाहिरात और सोना चाँदी थे गरीबों और मसकीनो की नज़र कर दी लेकिन इस के वावजूद भी कहत दूर न हुआ।

'नेकखसलत राजा यह देखकर सख्त लाचार हुआ और अपने आप को कतल करने पर आमादह हो गया। उसकी रानी इस मकसद से आगाह हो गयी और उसने उसे ऐसा करने से रोका। रात के वक्त दोनो मिया बीवी वारगाह रब आला हज़रत में आजिज़ी और इन्कसारी में मसरूफ हुए। उनकी दुआ की कबूलियत के निशान मे दो कबूतर हर सुवह आसमान से हरेक आदमी के घर पहुँचते। यहाँ तक कि क़हत की मुसीबत रफा दफा हो गयी।

'वागपुश्ता ने रामू और केमूह के दिहात आबाद करके वरहमनो को जागीर के तौर पर बख्श दिये। यह औरत अपने पेट से कोई औलाद नही रखती थी राजा के अन्त काल के वक्त उसकी लाश पर सती हो गयी। राजा तुंजीन की मुद्दत हकूमत ३६ बरस थी।' (पृष्ठ ५३)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३ में 'धत्ता' का 'दत्ता', 'द्त्ता' तथा 'नाना वर्ण' का 'नानार्णव' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३ (१) वर्ण : यहाँ 'वर्ण' शब्द श्लिष्ट है। कल्हण वर्ण का अर्थ अनेक जातियो से पूर्ण कश्मीर मण्डल तथा अनेक रंगो अर्थात् वर्णो से युक्त इन्द्रधनुष किया है।

(२) शतह्रद—इस शब्द को विलसन ने नदी समझा है तथा पादटिप्पणी में 'शतह्रद' को शतलज नदी माना है। यह अर्थ गलत है। (पृष्ठ २९)

(३) पयोवहा—इसको भी विलसन ने नदी माना है। पादटिप्पणी मे पयोवहा को व्यास नदी समझाने का प्रयास किया है। वह अर्थ भी गलत है। (पृष्ठ २९) वह अर्थ स्वरसाम्यता के कारण लगाने का प्रयास किया गया है।

चक्राते च महाभागौ विभ्रमाभरणं भुवः ।
तुङ्गेश्वरं हरावासं कतिकाख्यं च पत्तनम् ॥१४॥

१४. उन दोनों महाभागों में भूमि विलास आभरण हर का आवास तुङ्गेश्वर[1] तथा कतिका[2] नामक पत्तन[3] का निर्माण कराया ।

---

१४ (१) तुंगेश्वर : वह मन्दिर कश्मीर में कहाँ पर है अभी तक पता नही चल सका है। तुगेश्वर मन्दिर का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। उसका वर्णन विष्णु, वाराह, तथा वारह मूला के सन्दर्भ में किया गया है।

देवं नारायणस्थाने पश्चिमे तु वरप्रदम् ।
गजेन्द्रमोक्षणं देव वराहस्य समीपगम् ॥
1158 . १३६९.७०

वराहं नरसिंह च वहुरूप वरप्रदम् ।
सप्तर्षीणा तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा ॥
1159 : १३७०-१३७१ ॥

तुङ्गवास च वरद च वरदं च स्त्रयभुवम् ।
गुहावाश च योगीशं अनन्त कपिल मुनिम् ॥
1160 १३७१ ७२

कल्हण ने तुंगेश का पुन वर्णन तरग ६ में 'तुंगेश्वरापणोपान्तादुज्जगाम' किया है। (रा० ६ १९०)

तुगक्षेत्र का भी उल्लेख नीलमत पुराण में आया है। यथा—

बिन्दुनादेश्वरं तीर्थं सोमतीर्थं पृथूदकम् ।
तुंगेशतीर्थक्षेत्र तु उतंकस्वामिनं तथा ॥ 1351 · १५६६

'तुङ्ग' शब्द का अर्थ उन्नत, पर्वत, प्रलम्ब, मुख्य आदि होता है। तुगेश शब्द चन्द्रमा, सूर्य, शिव, कृष्ण के लिये भी प्रयुक्त होता है।

तुंगनाथ हिमालय पर स्थित एक शिवलिंग हैं। उसके कारण वह स्थान तीर्थस्थान माना गया है। इसे भृगुतुंग भी कहते है। श्राद्ध तथा पितृ कार्य के लिये पवित्र माना गया है। राजा ययाति ने यहाँ पर तप किया था।

तुगशेखर एक पर्वत है। वनपर्व महाभारत में इसे महागिरि कहा गया है। भृगु महर्षि ने यहाँ तपस्या की थी। तुगकारण्य का उल्लेख वनपर्व (८५ ४६) तथा तुग वेणु एक भारतीय नदी का भीष्म पर्व (७ २९) में उल्लेख मिलता है। वाराह पुराण तुगकूट तीर्थ का वर्णन करता है। कोकामुख तीर्थ के सन्दर्भ में इसका उल्लेख किया गया है। वनपर्व (८४ १५८) में वर्णन मिलता है। तुग-तीर्थ में स्नान करने पर पूर्व जन्म की स्मृति जागृत होती है। विष्णु के तीन प्रसिद्ध तीर्थ स्थान कहे गये है—कोकामुख वद्री नारायण तथा लोहार्गल। कोकामुख क्षेत्र को वाराह क्षेत्र कहते हैं, वह नेपाल में सुवर्ण कौसिकी अर्थात् सुनकोसी नदी के वाम तट पर, 'वराह छत्र' नगर अर्थात् वाराह क्षेत्र है। काठमाडू से १२४ मील दक्षिण है। यह धौलागिरि है।

(२) कतिका-कतिक—यह वर्तमान ग्राम कई है। ऊलर परगना में है। वितस्ता के दक्षिण तट पर है। नदी से बहुत दूर नही है। चचपोर ग्राम के समीप है।

(३) पत्तन—लोक प्रकाश पत्तन की परिभाषा देता है

ग्रामायुतसहस्राणां पत्तन ज्ञायते बुधैः ।
तत्रापि सार नगरं तत्पौराः पुरवासिनः ॥
पृष्ठ ५९ श्लोक नं० ४

[दस सहस्र ग्राम वाले स्थान को पत्तन कहते हैं उसमें भी मूल (सार) को नगर कहते हैं। वहाँ के रहने वाले को पौर (पुरवासी) कहते हैं]

क्वचिन्मडवराज्यान्तःस्थाने चण्डातपोज्ज्वले ।
तत्प्रभावेन फलितं वृक्षैस्तत्क्षणरोपितैः ॥१५॥

१५. मडव[1] राज्यान्तर्गत किसी चण्डातपोज्ज्वल स्थान में उनके प्रभाव द्वारा तत्क्षण-रोपित वृक्ष फल युक्त हुए थे।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५ में 'मडवराज्या' का 'मरुवरण्य', मारवराज्या'; 'तपोज्ज्वले' का 'तपोल्वणे' तथा 'वेन' का 'प्रभावेण' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५ (१) **मडव राज्य :** काश्मीर अत्यन्त प्राचीन काल से दो अंचलो मे विभक्त है। उनका आजकल का नाम मराज तथ कमराज है। कामराज्य का अपभ्रंश कमराज तथा मडवराज्य का अपभ्रंश मराज है। श्रीनगर से वितस्ता के अधोभागवर्ती परगने कमराज तथा श्रीनगर से ऊपर वितस्ता के दोनो तटवर्ती परगने मडवराज के काश्मीर उपत्यका के उत्तरी पश्चिमी ७ परगने खुयहोम, जैनगिर, लोलौ, उत्तर, मच्छपुर, हमल तथा क्रुहिन है। आईने अकबरी मे अबुल फजल ने दोनो भागो की सीमा दोनो विभागो का मध्यवर्ती केन्द्र वर्तमान शेर-गढ़ी राज्य भवन का स्थान माना है। मराज कश्मीर उपत्यको का पूर्वीय भाग था। कमराज पश्चिमी भाग था। (आईने अकबरी २: ३६८) अबुल फजल ३८ परगनो मे कश्मीर को विभाजित करता है। श्रीनगर मराज में था। उसके ऊपर के सभी परगने भी मराज मे थे। हिन्दूराज्य काल में दोनों का प्रशासकीय विभाजन किस प्रकार था। निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है।

लोक प्रकाश ने मराज की सीमा दी है :

मध्यं मराजमित्युक्तं ग्रामपञ्चसहस्रकम् ।
श्रीवन्तकादथारभ्य मनुवान्तं स्मृतं बुधैः ॥ ३ ॥
मनुवाराजमित्यूचुः पूतनात्कथ्यते किल ।
सतीसरसि ग्रामाणां यत्प्रमाणमुदीरितम् ॥ ४ ॥
—पृष्ठ ७८

— मध्यस्थित ५ सहस्र ग्रामो की 'मराज' और श्रीवन्तक से लेकर मनुवान्त को पवित्र होने के कारण मनुवाराज कहते हैं। सतीसर (कश्मीर) में ग्रामो का जो प्रमाण कहा गया है वह निम्न है। इसी प्रकार कमराज की भी परिभाषा दी गयी है।

खोयाश्रमिकादारभ्य कामराजं स्मृतं बुधैः ।
बातूललहरान्तं च नगरैः परिवारितः ॥ १ ॥
—पृष्ठ ७७

इस श्लोक मे 'वातूल' का पाठभेद 'चामूल' भी प्राप्त है। यह पाठ समुचित प्रतीत होता है।

खोयाश्रमिक से लेकर लहर के अन्त तक नगरों से परिवृत क्षेत्र को विद्वानो ने कामराज कहा है।

इस समय राज्य तीन प्रदेशो मे विभक्त है— कश्मीर, जम्मू और लद्दाख। स्वाधीनता पूर्व के कश्मीर राज्य का तृतीयाश भूखण्ड इस समय पाकिस्तान के पास अनधिकृत रूप से है। कश्मीर उपत्यका बनिहाल मूल से आरम्भ होकर एक दिशा में लोलाव तथा दूसरी दिशा में बारहमूला तक विस्तृत है। लम्बाई चौरासी मिल तथा चौडाई चौबीस मिल है। अनन्त नाग के समीप केवल दस या बीस मील चौडी है। यह कश्मीर का हृदय है। डोंगरा राज्य काल में जम्मू, कश्मीर तथा सर-हदी इलाको के सूबो में विभक्त था। जम्मू प्रदेश में, जम्मू, ऊधमपुर, मीरपुर, कठुआ, पूछ तथा चनेनी जिले थे। कश्मीर प्रदेश में अनन्त नाग, बारह मूला, मुजफ्फराबाद जिले थे। सरहदी इलाका में लद्दाख, गिलगित, तथा गिलगित आखेसी के जिले थे।

पाकिस्तान के पास अनधिकृत रूप से मीरपुर जिला की तहसील भीमवर, तथा चार गाँव, छम, देवा, चकला, तथा मनावर के अतिरिक्त शेष जिला है। पूछ जिला में, जागीर पूछ के बाग की पूरी तहसील, तथा हवेली की आधी तहसील पाकिस्तान

नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः।
द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्दकोऽभवत् ॥१६॥

१६. उसी के समय जिसने सर्व जन प्रेक्ष्य नाट्य का निर्माण किया, वह द्वैपायन[1] मुनि का अंशभूत महाकवि चन्दक[2] था।

के पास है। मुजफ्फराबाद जिला में मुजफ्फराबाद, उरी की आधी तहसील, और तीन चौथाई करनाट पाकिस्तान के पास है। गिलगित का दूसरा इलाका पहले का रिढ़सीक्षेत्र, लद्दाख सूवा में स्करया की तहसील, मासवा का थोडा भाग तथा करगिल की एक चौथाई तहसील पाकिस्तान के पास है।

डोगरा राज्य काल के पश्चात अक्टूबर सन् १९४७ से जनवरी सन् १९४९ तक पाकिस्तान से संघर्ष था। जम्मू कश्मीर राज्य इस समय निम्नलिखित विभागो में विभक्त है—जम्मू प्रदेश मे जम्मू, कठुआ उधमपुर, डोडा, नव शहर के जिले है। कश्मीर प्रदेश में श्रीनगर, अनन्त नाग और बारह मूला है। सरहदी इलाकाजात में लद्दाख का जिला है उसमें करगिल सम्मिलित है। पहली जनवरी सन् १९४९ को युद्ध विराम रेखा के आधार पर विभाग किया गया है। यह युद्ध विराम रेखा मुनावर तहसील भीमवर से आरम्भ हो कर, देवह, और बटाला के बीच होकर नौशेरा और राजौरी के करीब से जाती है। पूछ का शहर बायी ओर छोडकर उडी के दरमियान से झेलम के उस पार से होती हुई काजी नाग तक गयी है। काजी नाग से आगे बढकर टिफवल के करीब से हो कर थरक्यां गली के साथ केरन में जाती है। यहाँ से पूरव तरफ गुरेज से हो कर, करगिल कसबा के बीच से होकर, तहसील इस्करदू की काटती तहसील लद्दाख तक चली जाती है।

सन् १९४१ के बाद कश्मीर मे जनगणना नही हुई। उस समय की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर राज्य की आबादी ४०,२४,९८० थी। कश्मीर प्रदेश की आबादी १७,२८,६००, जम्मू प्रदेश की १५,६१, ५८०, सरहदी इलाके अर्थात् लद्दाख करगिल में ३,११,३००, जागीर पूछ में ५, २१, ७०० और चनेनी मे ११,८०० लोग आबाद थे। उसमें मुसलमान ३०, ७३, ५४०, सवर्ण हिन्दू, ५, ८६, ६२१, हरिजन १, १३, ४६४, सिख ६५, ९०३, बौद्ध ईसाई जैन आदि ८८,०८८ थे। पूरा क्षेत्रफल लगभग ८४ हजार वर्ग मिल था। प्रति मिल में औसतन ४७ व्यक्ति निवास करते थे। सरहदी क्षेत्र में प्रति मिल ९ व्यक्ति निवास करते थे। भारतीय क्षेत्र अधिक उपजाऊ तथा कम पहाडी है। पाकिस्तानी भाग पहाडी और वन धन से भरा है।

युद्ध बन्दी के पश्चात् भारतीय कश्मीर की आबादी में ६० प्रतिशत मुसलमान तथा ४० प्रतिशत हिन्दू हैं। पाकिस्तान मे अनधिकृत कश्मीर में १३ लाख मुसलमानो की आबादी थी। भारतीय क्षेत्र में १८ लाख मुसलमान हैं। उसमें १६ लाख केवल कश्मीर उपत्यका मे हैं। केवल २ लाख सूबा जम्मू में है। गैर मुसलिम जम्मू में १० लाख और कश्मीर सूबा में २ लाख हैं। इस प्रकार १८ लाख मुसलमान तथा १२ लाख गैरमुसलिम इस समय आबाद हैं। पाकिस्तान में १२ लाख सबके सब मुसलमान है। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार जम्मू कश्मीर की भारतीय भाग की आबादी ३५,८३,००० और क्षेत्रफल २२२८०२ वर्ग किलोमीटर है। सन् १९४१ की गणना अनुसार इस क्षेत्र की आबादी ३०,००,००० थी।

कश्मीर राज्ज का विभाजन तथा पुनर्गठन अनेक बार हुआ है। प्राचीन भूगोल तथा विभाग से आज का विभाजन सर्वथा भिन्न है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६ में 'यश्चक्रे' का 'यश्चक्रे'; 'कविः' का 'कवे.' 'पायन' का 'पायनं' तथा 'चन्दको'

का पाठभेद 'चन्द्रको' और 'चर्मको' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१६(१) **द्वैपायन :** व्यास पाराशर्य का नाम द्वैपायन है। इनका जन्म यमुनाद्वीप में हुआ था। अतएव नाम 'द्वैपायन' पडा था। (म० आ० ५४:२) इनकी माता का नाम काली था। अस्तु नाम 'कृष्ण द्वैपायन' भी रखा गया था। भागवत पुराण मे उल्लेख आता है। वह स्वयं कृष्ण वर्ण थे। वर्ण के कारण नाम कृष्ण द्वैपायन पड गया था। वैशाख पूर्णिमा इनका जन्म दिन है। आषाढ पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा मनायी जाती है।

व्यास ने वेदो की पुनर्रचना की थी। इसलिए उन्हें वेदव्यास कहा जाता है।

'विव्यास वेदान् यस्मात्स तस्माद् व्यास इति स्मृतः।'
(म० आ० ५७ : ७३।)

वायु पुराण मे इन्हे 'पुराण प्रवक्ता' कहा गया है (वायु ६० : ११–२१; विष्णु धर्म . १।७४) अत्यन्त कठोर तपस्या करने के कारण अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त किये थे। इन्होने दूरश्रवण, दूर दर्शन अनेक विद्याओ में प्रवीणता प्राप्त की थी।
(म० आ० : ३७·१६।)

कौरव पाण्डवो के पितामह थे। उनके महान् हितचिन्तक रूप मे उनका चरित्र चित्रण किया गया है। जनमेजय के यज्ञ मण्डप मे सर्प यज्ञ के समय उपस्थित थे। वैशम्पायन ने अपने शिष्य को स्वरचित महाभारत सुनाने का आदेश दिया था। (म० आ० ५४) पाण्डवो के वनवास काल में युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति विद्या' का उपदेश दिया था। (म० व० ३७:२७–३०) संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। संजय महाभारत युद्ध का आँखो देखा वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते थे। (म० भी० २·९) संजय की दिव्य दृष्टि युद्ध के पश्चात् नष्ट हो गयी थी। (म० सौ० : ९:५८) घृताची अप्सरा से इनको शुक्र नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। (म. आ. ५७:७४) किन्तु स्कन्द पुराण मे शुक्र को जाबालि ऋषि की कन्या वटिका से उत्पन्न कहा गया है। (स्कन्द : ६८ : १४७–१४८)

द्वैपायन चिरंजीवी हैं। वेदरक्षणार्थ उसका विभाजन किये थे। पौराणिक साहित्य तथा महाभारत का निर्माण किया था। (वायु० ६०:१-१६) वेद की चार स्वतंत्र सहिताओं को बनाया था।

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदमकल्पयत्।
(वायु० ६०:१९ ब्रह्माण्ड० ३:३४:१९)

व्यास की वैदिक शिष्य परम्परा है। ऋग्वेद की शिष्य परम्परा में, पैल, वाष्कल (इन्द्रप्रमति) बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर, माण्डुकेय, सत्यश्रवस्, सत्यहित, सत्यश्री, शाकल्य, वाष्कलि, शाकपूर्ण, पन्नगारि, शैशिरेय, वत्स, तथा शत बलाक हैं। ऋग् वेद की २१ शाखाएँ है। उनमे केवल शाकल, वाष्कल एव साख्यायन की संहिताएँ उपलब्ध हैं। शेष दो जिनका निर्देश प्राप्त है आश्वलायन एवं मण्डूकायन है। आश्वलायन एवं साख्यायन शाखाओ के प्रवर्तक कौन आचार्य थे कहना कठिन है।

व्यास को यजुर्वेद की वैदिक शिष्य परम्परा में, वैशपायन, याज्ञवल्क्य, ब्रह्मणति, तित्तिरी, माध्यंदिन, काण्व, श्यामाययाति, आसुरि एवं अलिम्प है। कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओ मे तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एव कापिष्ठल की सहिताएँ प्राप्त हैं। शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाएँ है। उनमे केवल काण्व एवं माध्यदिन उपलब्ध हैं।

सामवेद की वैदिक शिष्य परम्परा मे, जैमिनि, सुमन्तु—जैमिनि, सुत्वन—जैमिनि, सुकर्मन्—जैमिनि, पौष्पिण्ड्य, लौगाक्षि, कुथुमि, कुशितिन्, लागलि, राणायनीय, तण्डिपुत्र, पराशर, भागवित्ति, लोमगायनी, पाराशर्य, प्राचीन योग, आसुरायण, तथा पतंजलि है। सामवेद की १०० शाखाएँ है। उनमें केवल कौथुम तथा राणायनीय सहिताएँ प्राप्त हैं।

अथर्व वेद की शिष्य परम्परा मे सुमन्त, कबंध, पथ्य, देवादर्श, पिप्पलाद, जाजलि—शौनक, सैन्ध-

तयोः प्रभावमाहात्म्यजिज्ञासार्थमिवोद्यता ।

भयंकर अकाल[1] प्रजासु दुस्सहा जातु व्यापद्दैवी व्यजृम्भत ॥१७॥

१७. कदाचित् उन दोनों का प्रभाव माहात्म्य जानने के लिये ही मानो प्रजाओं में दुस्सह दैवी आपत्ति भयकर रूप से प्रकट हुई ।

वायन, बभ्रु, और मंजुकेश हैं। अथर्ववेद की २ शाखाएँ हैं। उनमें दोनो पिप्पलाद तथा शौनक प्राप्त हैं।

समस्त पुराणो को श्लोक सख्या ४,२५,००० है। उनमें १० पुराण अपूर्ण हैं। केवल ८ पूर्ण हैं। नृसिह, भागवत, वायु एव शिव पुराण को महापुराण नहीं माना जाता। इन पुराणो में अग्नि पुराण के देवता अग्नि हैं। गुण तामस है। स्थल नैमिषारण्य है। ब्रह्मवैर्वत पुराण के देवता सूर्य हैं। गुण राजस है। स्थान नैमिषारण्य है। पद्मपुराण के देवता ब्रह्मन हैं। गुण सात्विक है। स्थान नैमिषारण्य है। पाच पुराणो के देवता विष्णु है। गुण सात्विक है। उनमें गरुड एव नारद का स्थान नैमिषारण्य, नृसिह का स्थान प्रयाग, भागवत का स्थान सहस्र वार्षिक सत्र, और विष्णु का स्थान दृषद्वतीतीर दीर्घसत्र है। शेष पुराणो के देवता शिव हैं। उनमे वराह और कूर्म सात्विक हैं। मार्कण्डेय, लिंग, ब्रह्माण्ड, भविष्य, तथा वामन राजसिक हैं। स्कन्द, मत्स्य, तथा शिव तामसिक हैं। वायु पुराण का क्या प्रधान गुण है। निश्चित नही किया जा सकता। कूर्म, लिंग, स्कन्द, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य का स्थान नैमिषारण्य है। भविष्य का शतानीक नृप सभा, वराह का पृथ्वी और शिव का स्थान प्रयाग है। मारकण्डेय, वायु का स्थान निश्चित नहीं हैं।

व्यास का जीवन सदेश था। चतुर्विध पुरुषार्थो में केवल धर्माचरण द्वारा ही अर्थ कामादि पुरुषार्थ साध्य हो सकते है। केवल धर्म ही शाश्वत है। चिरतन है। नित्य है। शेष सुखोपभोग एव पुरुषार्थ अनित्य हैं। वे कितना मार्मिक वचन कहते हैं :—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम् ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थ न सेव्यते ॥
(म० स्व० २२४९)

'मैं हाथ उठाकर समस्त विश्व से कहता आ रहा हूँ कि अर्थ एव काम से भी अधिक धर्म महत्व पूर्ण है। किन्तु कोई भी मनुष्य मेरे इस कथन की ओर ध्यान नहीं देता है।'

द्रष्टव्य है पृष्ठ १८३ पादटिप्पणी-व्यास ।

(२) चन्दक: सुभाषितावली में चन्दक चन्द्रगोपी नाम से सम्बोधित किया गया है। पाश्चात्य लेखक साइलवियन लेवी का मत है कि चीनी पर्यटक इत्सिग द्वारा उल्लिखित चन्द ही चन्दक कवि है। तिब्बती भाषा में एक नाटक मिला है। उसमें चन्द्रगोपिन का वर्णन है। महाकवि कल्हण ने उसकी तुलना महाभारतकार से की है। सुभाषितावली में उसके पद प्राप्त होते है।

प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुद सन्त्यज रुषम्
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः ।
निधान सौख्याना क्षणमभिमुख स्थापय मुख
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गत कालहरिण ॥
॥ १६२९ ॥

एषा हि मे रणगतस्य दृढा प्रतिज्ञा
द्रक्ष्यन्ति यन्न रिपवो जघन हयानाम् ।
युद्धेपु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैव यदिच्छति जयं च पराजय च ॥२२७५॥

पाठभेद

श्लोक सख्या १७ मे 'दैवी' का पाठभेद 'दैवी' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) अकाल . कल्हण ने कश्मीर के अनेक अकालो का वर्णन किया है। सम्राट् अकबर के समय में भी भीषण अकाल पड़ा था। कल्हण ने अपने काल के समीप पड़ने वाले अकालो का वर्ष भी दिया है। अकबर के समय-कश्मीर में पर्यटन करने

पाकोन्मुखशरच्छालिच्छन्नकेदारमण्डले ।
मासि भाद्रपदेऽकस्मात्पपात तुहिनं महत् ॥१८॥

महा अकाल :

१८. भाद्रपद[1] मास में पकते हुए शरद कालीन शालियुक्त क्षेत्र मण्डल में अकस्मात् महान् तुहिन पात हुआ।

वाले ईसाई पर्यटको ने उनका वर्णन किया है। उनके पढने से रोगटा खडा हो जाता है।

श्री विनोइस्ट डी गोइस जो सम्राट् अकबर के निवेदन पर कश्मीर गये थे, वर्णन करते हैं : कश्मीर मे इस अकाल के काल मे हमने देखा कि बहुत सी माताएँ वे घर बार की हो गयी थी। अपने बच्चो को कुछ खिलाने मे असमर्थ हो कर उन्हे खुले ग्राम बाजारो में वेचने लगी थी। वहुत से बालको को पादरियो ने खरीद कर उनका बपतिस्मा कर उन्हें ईसाई बना लिया। एक मुसलमान अपना एक बच्चा वेचने के लिये लाया। पादरी ने बच्चे की माँ को कुछ धन देकर बच्चा इसलिए वापस कर दिया कि वह बड़े होने पर कश्मीर मे ईसाई होकर नही रह सकता था। दूसरे दिन लडके की माँ पुनः पादरी के यहाँ आई। उससे बोली कि बच्चा मरने ही वाला है। उसके घर चलकर उसका बपतिस्मा कर दिया जाय। पादरी कुछ पुर्तगालियों के साथ बच्चे के घर गया। उसके पिता की अनुमति लेकर उसका बपतिस्मा किया। मरने पर लडके का पिता बच्चे का खतना करना चाहता था परन्तु पादरी ने खतना नही करने दिया और ईसाई धर्मानुसार उसे गाड दिया। इसी प्रकार कुछ द्रव्य लेकर एक दूसरी स्त्री अपने बच्चे का बपतिस्मा कराने के लिए ले आई। बच्चे का बपतिस्मा ज्यो ही समाप्त हुआ बच्चा मर गया। (अकबर एण्ड जिसूइस्टा पृष्ठ ७८)

आइने अकबरी—इस राजा के समय सूर्य जब सिंह राशि में था उस समय इतना हिमपात हुआ कि पूरी फसल नष्ट हो गई। उससे देश में भयंकर अकाल फैल गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८ मे 'च्छन्न' का 'छन्ने' तथा 'छत्रे' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१८ (१) भाद्रपद अकाल : काश्मीर का मुख्य अन्न शाली है। भारत में वर्षाकालीन फसल है। धान कई प्रकार के होते है। कोई साठ दिन मे होता है और कोई भाद्र कार्तिक और अगहन मास तक तैयार होता है। शरद कालीन धान को भारत में अगहनिया धान कहते हैं। कश्मीर में भाद्रपद मे शाली पुष्ट होने लगती है। वह पकने लगती है। कार्तिक शुक्ल पक्ष में शाली काटने को अच्छा माना जाता है। सितम्बर अक्टूबर मे वह काट ली जाती है।

काश्मीर के ग्रामीण क्षेत्रो मे जाने का यह सबसे अच्छा समय है। फल भी हो जाते है। सेब, बबूगोशा अखरोट से वृक्ष लद जाते है। खेतो में सुवर्ण वर्ण शाली अत्यन्त सुहावनी लगती है।

काश्मीर उपत्यका की मुख्य उपज शाली है। उष्ण तापमान ९४ डिगरी से ऊपर नही जाता। वर्ष में लगभग २६ इंच वर्षा होती है। उत्तर पूर्व का भाग उत्तर पश्चिम की अपेक्षा कम ऊँचा है। दश ईंच से कम जहाँ वर्षा होती है, उसे इस समय खुश्क, दश से २५ ईंच तक वर्षा वाले को खुश्कवार तथा २५ ईंच से अधिक जहाँ वर्षा होती है उसे मरतूब कहते हैं। कश्मीर उपत्यका की जल वायु खुश्कवार प्रचलित कश्मीरी भाषा मे कही जायगी। उसे मातदिल भी कह सकते हैं। सूर्य की रश्मि

शीतल वायु के कारण तपती नही। ग्रीष्म ऋतु आने पर फारस की खाडी तथा भूमध्य सागर से आती वायु के कारण साइक्लोन, अन्धड आता है। वर्षा होती है। फरवरी मार्च तथा आधे अप्रैल तक पानी बरस जाता है। पहाडियो पर वर्षा औसतन २६ इच होती है। शीत काल में कश्मीर उपत्यका मे १६ इच वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में ८ इच पानी बरसता है। अप्रैल से अक्टूबर तक तापमान ५४ से ९६ डिग्री तक रहता है। अतएव ग्रीष्म काल में हवा मातदिल और खुश्कवार होती है।

कश्मीर उपत्यका में केला, बरगद, पीपल, आम, अमरूदादि के वृक्ष नही उगते। अखरोट, चिनार, सफेदा, देवदार, वेद तथा चीड के वृक्ष खूब दिखाई देते हैं। सेब, नासपाती, खुबानी, चेरी, सफ़ालू, अखरोट, आलूचा, बादाम तथा शाक भाजी होती है। अन्नो में शाली होती है।

शाली मुख्य उपज है। इसके लिये गरम और मरतूब हवा पानी की आवश्यकता होती है। जमीन समतल तथा पानी का उसमें रुकावट होना चाहिए। पहाडो पर सीढीनुमा धान की खेती होती है। उपत्यका के मैदान में खेतो में शाली बोयी जाती है। काश्मीर उपत्यका में ही शाली की फसल सबसे अधिक होती है। उपत्यका की भूमि समतल तथा उपजाऊ है।

उपत्यका के लोगो का शाली अर्थात् चावल सर्वप्रिय भोजन है। कश्मीर राज्य में अब भी चावलभोजी लोगो की आबादी अधिक है। दक्षिणी भाग में में भूमि समतल है। सिंचाई का सुपास है। यहाँ पर प्राचीन काल से अत्यधिक शाली पैदा होती है। अनेकानेक नागो, सरोवरो, वितस्ता तथा कुओ से सिंचाई होती है।

कश्मीर उपत्यका में धान बोने का समय चैत्र अर्थात् १३ अप्रैल से आरम्भ होता है। सितम्बर १३ से धान काटने का समय आरम्भ हो जाता है। हिन्दी मास से कार्तिक शुक्ल पक्ष में शाली काटने का मुहूर्त माना जाता है।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि उस समय भी खेती का यही प्रकार था। मौसम में भी परिवर्तन नही हुआ है। शरद् ऋतु कुआर और कार्तिक का महीना होता है। भाद्रपद भादो का महीना होता है। धान कट कर शरद् अर्थात् कुआर कार्तिक में तैयार हो जाता है। भारत में धान की बोआई जुलाई अर्थात् आषाढ मास में होती है। विभिन्न प्रकार के धान विभिन्न समयो पर काटे जाते हैं।

मुख्य फसल धान की होती है। जुलाई में बोकर अगहन या कार्तिक के अन्त में काटते है। कश्मीर में यह समय अप्रैल मई में बोआई तथा सितम्बर अक्टूबर में कटाई का होता है। इस समय कश्मीर राज्य में १९० हजार हेक्टर क्षेत्रफल में शाली बोयी जाती है। इस समय शाली २१० मेट्रिक टन होती है। गेहूँ केवल ६९ हजार, तथा चना ७ हजार मेट्रिक टन होता है। अतएव शाली मुख्य खाद्य पदार्थ है। शाली के बाद मक्का १७० हजार हेक्टर टन १८० हजार मीटर क्षेत्र में बोया जाता है।

शरद् कालीन वायु उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूरब बहती है। यह हवा झझावात, साइक्लोन, उपल वृष्टि तथा शीत के साथ प्राय. उग्र होने पर आती है। कश्मीर तथा हिमाचल में तुषारपात एव शीतलहरी आनेपर उसका तुरन्त प्रभाव दिल्ली, पजाब तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश पर पडता है।

दक्षिण पूरब से चलने वाली हवा नम तथा गर्म होती है। वह मानसून होती है। उससे वर्षा होती है। कश्मीर में भाद्रपद मास मे वायु उत्तर पश्चिम से चलने लगती है। उत्तर से आने वाली वायु हिमाच्छादित तथा शीत कटिबन्ध से आने के कारण शीतल होती है। वह तापमान घटा देती है। अतएव असमय ही कश्मीर में तुषारपात हो जाता है।

कल्हण ने सत्य ही इस भौगोलिक दशा, प्राकृतिक जलवायु तथा उसके प्रभाव की ओर सकेत किया है। भाद्रपद मे प्राय शाली अधपकी हो जाती है। तुषारपात से शाली लोट जाती

तस्मिन्विश्वक्षयोद्भुक्तकालाट्टहसितोपमे ।
न्यमज्जन् शालयः साकं प्रजानां जीविताशया ॥१९॥

१९. काल के अट्टहास सदृश, विश्व विनाश हेतु, उत्पन्न उसमें (तुहिनपात में) प्रजाओं की जीवित आशाओं के साथ, शालियाँ निमज्जित हो गयीं ।

अथाऽऽसीत्क्षुत्परिक्षामजनप्रेतकुलाकुलः ।
प्रकारो निरयस्येव घोरो दुर्भिक्षविप्लवः ॥२०॥

२०. क्षुधा से क्षीण जन-प्रेत-समूह-संकुल वह घोर दुर्भिक्ष विप्लव नरक[1] के प्रकार[2] तुल्य लगता था ।

है । तुषार के आघात से बालें टूट जाती है । शीत के कारण अधपकी शाली का पकना बंद हो जाता है । वह नष्टप्राय हो जाती हैं । केवल पुवाल तथा जीवनहीन शाली का दर्शन होता है ।

कश्मीर में उन दिनो कृषी तथा ऊनी वस्त्र के अतिरिक्त और कोई उद्योग-धन्धा नही था । शाली, मक्का, तथा फल एकमात्र जीवन यापन के साधन थे । कश्मीर उपत्यका मे बाहर से आने वाला मार्ग पंजाब तथा बाहरी क्षेत्रो से दुर्गम है । अन्न यदि बाहर से उन दिनो घोडो, बैलो पर लाया भी जाता था, तो बहुत महँगा पडता था । गरीबो के साधन के बाहर उनका खरीदना हो जाता था । अन्न सरलतापूर्वक अधिक मूल्य देने पर भी नही मिल पाता था ।

कल्हण इसी ओर इस श्लोक मे सकेत करता है । आजकल के विकसित सडको, हवाई जहाजो, ट्रको तथा रेलवे से उस समय की परिस्थिति पर विचार करना ठीक नही होगा । इन साधनो से, वह समय साधनहीन एक प्रकार से हिमालय की कुक्षि में था । जहाँ सभी कुछ कठिनता से प्राप्त हो सकता था ।

कल्हण ने शाली नष्ट होने पर, जीवन के सहारा न प्राप्त होने पर कश्मीर मण्डल की क्या अवस्था हुई थी उसी पर अगले श्लोको में अकाल का हृदयस्पर्शी अत्यन्त करुणोत्पादक वर्णन किया है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २० मे 'कुलाकुलः' का 'समाकुलः' तथा 'प्रकारो' का 'प्राकारो' एवं 'प्रकरो' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०. (१) नरक : *निरय शब्द का प्रयोग* यहाँ कल्हण ने किया है । उसका अर्थ नरक होता है । स्वर्ग एव नरक की कल्पना प्रायः सभी धर्मों मे प्राप्त होती है । स्वर्ग का विलोमार्थक नाम नरक है । प्राचीन मान्यता के अनुसार मरणोत्तर अधोलोक स्थान में या अवस्था में देव इत्यादि द्वारा पापियो को उनके पाप तथा अपराधो का दण्ड दिया जाता है । शीत प्रधान देशो में नरक को कल्पना प्रायः हिमाच्छादित तथा उष्ण देशो मे अग्नितप्त लोको मे की गयी है । भारतीय मान्यता के अनुसार नरक दक्षिण दिशा अर्थात् यम की दिशा में, पाताल के निम्नतम भाग मे माना गया है । लगभग २८ नरको की कल्पना की गयी है । यमराज पाप पुण्य का निर्णय कर पापियो को विभिन्न नरको में भेजते है ।

ऋग्वेद में नरक का उल्लेख नही मिलता । ब्राह्मण काल मे नरक की कल्पना मिलती है । अथर्व वेद में (२ : १४ : ३; ५ : १९ : ३) नरक स्वर्ग के विपरीत यम के क्षेत्र रूप में अभीष्ट है । वहाँ राक्षसियो तथा व्यभिचारिणियो का

आवास रहता है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में (४ : २६ : १) नरक का उल्लेख मिलता है 'मनो नरको वाङ्नरक. प्राणो नरकश्चक्षुर्नरक. श्रोत्र नरकस्त्वङ्नरको हस्तौ नरको गुद नरक' शिश्न नरक' पादौ नरक.' पुन. इसी ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है (४ : २५ : ६) 'दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि तान्येन स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति नरक गतानि, नरक गमयन्ति'।

विष्णु तथा भागवत पुराण में नरको का विशद वर्णन मिलता है। भागवत पुराण (५ : २६ : ५) नरक त्रिलोक में है। दक्षिण दिशा तथा पृथ्वी के नीचे किन्तु जल के ऊपर स्थित है। विष्णु पुराण नरको की स्थिति जल एव स्थल दोनो के नीचे मानता है। (२ : ६ : १) नरको की सख्या निश्चित नही है। विष्णु पुराण ७ नरको की कल्पना करता है। किन्तु भागवत में यह संख्या २८ तक पहुँच गयी है।

प्रायश्चित्त स्वरूप यातनाओ के भोगने के स्थान नरक के २८ नाम हैं (१) तामिस्र (२) अध तामिस्र (३) रौरव (४) महारौरव (५) कुभीपाक (६) कालसूत्र (७) असिपत्रवन (८) सूकरमुख (९) अंध कूप (१०) कृमि भोजन (११) सदश (१२) तप्त सूर्मि (१३) वज्रकटक शाल्मली (१४) वैतरणी (१५) पूयोद (१६) प्राणरोध (१७) विशसन (१८) लालाभक्ष (१९) सारमेयादन (२०) अवीचि (२१) अयःपान (२२) क्षारकर्दम (२३) रक्षोगणभोजन (२४) शूलप्रोत (२५) ददशूक (२६) अवटनिरोधन (२७) पर्यावर्तन तथा (२८) सूचीमुख।

सूर्यपुत्र यमराज नरक का शासन सूत्र चलाते हैं। मरणासन्न प्राणी को यम के दूत सयमनी पुरी में ले जाते हैं। चित्रगुप्त उनके पाप पुण्य का लेखा जोखा उपस्थित करते हैं। पुण्यात्माओ को उनके पुण्य फल भोगने के लिये स्वर्ग तथा पापियो को नरक में भेजते हैं।

अपने कर्मों के अनुसार जिन्हें मुक्ति नही मिलती वे पुण्य का फल स्वर्ग तथा पाप का फल नरक में भोगकर पुन पुण्य-पाप रूप कर्मों के साथ इस लोक में जन्म लेते है।

यहूदी लोगो के नरक की कल्पना पुरातन बाइबिल मे है। उसे 'शिउल' कहते है। वह मृतात्माओ का आवास है। ईसाई मान्यता के अनुसार मनुष्यो की रचना से पूर्व भगवान् ने स्वर्गदूतो की सृष्टि की थी। उन स्वर्गदूतो के एक वर्ग ने ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वे विद्रोही नरकगामी हुए। उनका नेता शैतान बन गया। इस नरक अर्थात् हेल में पापी मनुष्य भी पहुँच जाते हैं। मुसलमान लोग नरक को दोजख कहते है। यह शब्द जहन्नुम अरबी शब्द का पर्याय है। यह वह स्थान है जहाँ अग्नि धधकती रहती है। अल्लाह पर विश्वास न लाने वाले तथा उसके आदेश को न मानने वाले, दूसरे देवता की पूजा करने वाले दोजख में जाते हैं। दोजख में दण्ड भोगने के पश्चात् वे एराक में भेज दिये जाते हैं। पारसी धर्म के नरक की कल्पना के अनुसार वह उत्तर दिशा में अत्यन्त शीतल स्थान है। उसे 'द्रजो देमन' (द्रुजोत्मन) कहते हैं। वह अत्यन्त दुर्गंध पूर्ण अन्धकारमय असह्य शीतल क्रन्दनपूर्ण है।

(२) प्रकार : यहाँ कल्हण ने 'प्रकार' किंवा 'प्रकारो' शब्द का प्रयोग नरक के विशेषणरूप में किया है। 'प्रकार' का पाठभेद 'प्राकारो' भी मिलता है। श्री स्तीन ने इसका अनुवाद नरक के एक प्रकार किंवा भेद के अर्थ में किया है। श्री पण्डित ने प्रकार शब्द का अनुवाद 'स्ट्रोंग होल्ड अर्थात् दुर्ग' किया है। प्राकार का अर्थ नगर की रक्षा के लिये निर्मित परकोटा, चहार दिवारी अथवा शहर पनाह होता है। अनेक अनुवादको ने इस का विभिन्न अर्थ किया है। मैंने मूल शब्द प्रकार ही रख दिया है। प्रकार शब्द हिन्दी में प्रचलित और बोधगम्य है।

पत्नीप्रीतिं सुतस्नेहं पितृदाक्षिण्यमातुरः ।
कुक्षिम्भरिः क्षुदुत्तप्तो विसस्माराखिलो जनः ॥२१॥

२१. कुक्षिम्भरि[1] एवं क्षुधातप्त निखिल आतुर जनों ने पत्नी-प्रेम, सुत-स्नेह तथा पितृ समादर को विस्मृत कर दिया था।

क्षुत्तापाद् व्यस्मरल्लज्जामभिमानं कुलोन्नतिम् ।
अशनाहंक्रियाग्रातो लोकोऽलक्ष्मीकटाक्षितः ॥२२॥

२२. दारिद्र्य दृष्टि ग्रस्त एवं अशन हेतु ही क्रिया प्रवृत्त लोक, क्षुधा ताप से लज्जा, स्वाभिमान, एवं कुल गौरव को विस्मृत कर दिया था।

क्षामं कण्ठगतप्राणं याचमानं सुतं पिता ।
पुत्रो वा पितरं त्यक्त्वा चकार स्वस्य पोषणम् ॥२३॥

२३. क्षाम[1] तथा कण्ठगत प्राण वाले याचना करते पुत्र को पिता ने, क्षामादियुक्त पिता को पुत्र ने त्याग कर, अपना ही पोषण किया।

स्नाय्वस्थिशेषे बीभत्से स्वदेहेऽहङ्क्रियावताम् ।
अभूद्भोज्यार्थिनां युद्धं प्रेतानामिव देहिनाम् ॥२४॥

२४. स्नायु एवं अस्थि मात्रावशिष्ट बीभत्स स्वदेह निमित्त क्रिया करने वाले भोज्यार्थी प्राणियों का प्रेतों तुल्य युद्ध होता था।

रूक्षाभिभाषी क्षुत्क्षामो घोरो दिक्ष्वक्षिणी क्षिपन् ।
एक एको जगज्जीवैरियेष स्वात्मपोषणम् ॥२५॥

२५. कटुभाषी, क्षुधा-क्षाम एव भयकर दिशाओं में दृष्टिपात करने वाला एक-एक व्यक्ति जगत् जीवों से आत्म पोषण की इच्छा करता था।

तस्मिन्महाभये घोरे प्राणिनामतिदुस्सहे ।
ददृशे लोकनाथस्य तस्यैव करुणार्द्रता ॥२६॥

२६. प्राणियों के उस अति दुस्सह एवं घोर महाभय में केवल उसी लोकनाथ (राजा) की करुणार्द्रता देखी गयी।

पादटिप्पणियाँ :

२१ (१) कुक्षिम्भरि : उदर पूर्ति की चिन्ता मात्र जिनको रहती है, उनको कुक्षिम्भरि अर्थात् कुक्षि भरने वाला कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'स्मरत्' का 'व्यस्मरत्. तथा 'लोकोऽलक्ष्मी' का पाठभेद 'लोको लक्ष्मी' मिलता है।

श्लोक संख्या २३ में 'पुत्रो' का पाठभेद 'सुतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२३ (१) क्षाम : अत्यन्त दुर्बल, भूख से कृश हुए, कंकाल मात्र प्राणियों के लिये क्षाम शब्द का प्रयोग किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६ में 'मतिदु:सहे' का पाठभेद 'मितिदु:सहे' मिलता है।

निवारितप्रतीहारः स रत्नौपधिशोभिना ।
दर्शनेनैव दीनानामलक्ष्मीक्लममच्छिनत् ॥२७॥

२७. प्रतिहार[1] रहित उस राजा ने रत्नौपधि[2] के सदृश शोभायमान दर्शन मात्र से ही दीनों के दारिद्रय कष्ट को दूर किया ।

सपत्नीको निजैः कोशैः सञ्चयैर्मन्त्रिणामपि ।
क्रीतान्नः स दिवारात्रं प्राणिनः समजीवयत् ॥२८॥

२८. अपने तथा मन्त्रियों के भी सचित कोपों द्वारा अन्न खरीदने वाले सपत्नीक उस राजा ने रात-दिन प्राणियों को जीवित किया ।

अटवीषु श्मशानेषु रथ्यास्वावसथेषु च ।
क्षुत्क्षामः क्ष्माभुजा तेन नहि कश्चिदुपेक्ष्यत ॥२९॥

२९. अटवी में, स्मशान मे, रथ्या में, गृह में, किसी भी क्षुत्क्षाम[1] की उस राजा ने उपेक्षा नहीं की ।

श्लोक संख्या २७ में 'शोभिना' का पाठभेद 'शोभिन' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

२७ (१) प्रतिहार : इस शब्द का अर्थ द्वार-पाल, दरबान तथा साथ चलने वाला भृत्य होता है । यहाँ पर राजा की सज्जनता, सरलता, सहृदयता और वह प्रजा पीडा से कितना दु.खी हो गया था, इसका उल्लेख कल्हण ने किया है । राजा विना किसी के साथ लिये, अकेला अपनी प्रजा के पास जाता था । उनके दुःख में दु खी होता था । दारिद्रय पीडित प्रजा, उसके दर्शन मात्र से सन्तोष प्राप्त करती थी ।

यह स्मरण कराता है, महात्मा गान्धी की नोआखाली तथा पूर्वीय बगाल सन् १९४७ ई० की यात्रा का । महात्मा गान्धो एकाकी नाव पर, पैदल, विपद ग्रस्त ताडित जनता मे विचरण करते थे । उस महान् विभूति को देखकर अनायास विपन्न पूर्व वंगाल के हिन्दुओ में आत्मविश्वास तथा सन्तोष उत्पन्न हो जाता था ।

(२) रत्नौषधि : अनुवादको को रत्नौषधि के सम्बन्ध में भ्रम हुआ है । रत्नरूपी औपधि, रत्न और औपधि, रत्न की औपधि आदि अनुवाद किया गया है । यह भ्रामक है ।

रत्नौपधि आयुर्वेद के अनुसार पार्थिव औषधि है । रत्न स्वत औपधि होता है । ज्योतिप में ग्रहो की दशा ठीक करने के लिये विभिन्न प्रकार के रत्नो को धारण करने की व्यवस्था की गयी है । इसी प्रकार आयुर्वेद के अनुसार विभिन्न बीमारियो से नीरोग होने के लिये रत्न पहनने का विधान किया गया है । मेरे एक मित्र को पथरी की बीमारी थी । उन्हें दहाने फिरग पहनने को कहा गया । उससे उन्हे अभूतपूर्व लाभ हुआ ।

रत्नौपधि का कर्मकाण्ड में भी विधान है । मकान की नीव तथा कूप के तल में, घट मे रत्नो को रखते है, उस पर मकान तथा कूप रचना करते है । इस रत्न की सज्ञा ही रत्नौषधि दी गयो है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २९ में 'दुपेक्ष्यत' का पाठभेद 'दुपेक्ष्यते', 'दुपेक्ष्यत' तथा 'दुपेक्ष्यते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२९ (१) क्षुत्क्षाम : क्षुधा से दुर्बल, क्षुधा से कृशकाय अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।

ततो निश्शोषितधनः क्षीणान्नां वीक्ष्य मेदिनीम् ।
क्षपायामेकदा देवीमेवमूचे स दुःखितः ॥३०॥

३०. तदनन्तर धनहीन दुःखी उस राजा ने अन्न विहीन पृथ्वी को देखकर एक समय रात्रि में देवी[1] (पत्नी) से इस प्रकार कहा—

देव्यस्मदपचारेण ध्रुवं केनाऽपि दुस्तरा ।
जाता निरपराधानां जनानां व्यापदीदृशी ॥३१॥

३१. देवि ! निश्चय ही हमारे किसी दुस्तर दुष्कर्म के कारण निरपराध लोगों पर ऐसी विपत्ति आयी है ।

धिङ्मामधन्यं यस्याग्रे लोकोऽयं शोकपीडितः ।
पश्यन्नशरणामुर्वीमनुग्राह्यो विपद्यते ॥३२॥

३२. मुझ अधन्य को धिक्कार है कि जिसके सम्मुख, शरण रहित, पृथ्वी को देखते हुए, अनुग्राह्य एवं शोक पीड़ित यह लोक विपत्ति ग्रस्त हो रहा है ।

प्रजा निश्शरणा एता अन्योन्य बान्धवोज्झिताः ।
अरक्षतो भयेऽमुष्मिन् किं कार्यं जीवितेन मे ॥३३॥

३३. परस्पर में बान्धवों को त्यागने वाली यह प्रजा शरण रहित हो रही है। इस महा-भय में रक्षा न करने वाले मेरे इस जीवन से क्या प्रयोजन ?

यथाकथञ्चिल्लोकोऽयं दिनान्येतानि यत्नतः ।
मयाऽतिवाहितः सर्वो न च कोऽपि व्यपद्यत ॥३४॥

३४. यथा कथञ्चित् इतने दिनों तक यत्न पूर्वक मैंने इस सर्वलोक की रक्षा की और कोई भी मृत नहीं हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३० मे 'ततो' का 'अतो' तथा 'दुःखित.' का पाठभेद 'सुदुःखितः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३० (१) देवी : राजा ने रानी को आदर सूचक देवी शब्द का प्रयोग किया है। प्रकट होता है। उसकी रानी उत्तम चरित्र वाली विदुषी, तथा पति के कार्यों की सहायक थी । उचित सलाह देती थी । आपत्तिकाल मे धैर्य दिलाती थी । आदर्श अर्धांगिनी थी । देवी का शब्दार्थ देवपत्नी, दुर्गा, सरस्वती, अग्रमहिषी, पटरानी, पूज्य एवं प्रतिष्ठित महिला होता है ।

पाठभेदः

श्लोक सख्या ३१ मे 'देव्यस्म' का पाठभेद 'देव्यस्स' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३२ मे 'लोकोऽयं' का पाठभेद 'लोकेय' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३३ में 'अरक्षतो' का पाठभेद 'अरक्षितो' तथा 'अरक्षिता' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३४ में 'वाहितः सर्वो' का पाठभेद 'वाहिता' सर्वे' तथा 'वारिताः सर्वे' मिलता है ।

अतिक्रान्तप्रभावेयं कालदौरात्म्यपीडिता ।
निष्किञ्चनाऽद्य सजाता पृथिवी गतगौरवा ॥३५॥

३५. काल दौरात्म्य से पीड़ित तथा विगत प्रभाव वाली गौरव रहित यह पृथ्वी आज निष्किञ्चन हो गयी है ।

तदिमाः सर्वतो मग्ना दारुणे व्यसनार्णवे ।
उपायः कतमस्तावत्समुद्धर्तुं क्षमः प्रजाः ॥३६॥

३६. अतएव चारों ओर से दारुण दुःख सागर में मग्न इस प्रजा का उद्धार करने में कौन सा यत्न समर्थ है ?

निरालोको हि लोकोऽयं दुर्दिनग्रस्तभास्करः ।
कालरात्रिकुलैर्विष्वक्परीत इव वर्तते ॥३७॥

३७. सूर्य के दुर्दिन ग्रस्त होने के कारण प्रकाश रहित यह लोक, कालरात्रि कुलों से सर्वतः मानो घिरा हुआ है ।

हिमसंघातदुर्लङ्घ्यक्षितिभृद्रुद्धनिर्गमाः ।
बद्धद्वारकुलायस्थखगवद्विवशा जनाः ॥३८॥

३८. हिम संघात के कारण दुर्लङ्घ्य पर्वत से रुद्ध मार्ग वाले लोग अवरुद्ध द्वार युक्त नीड में स्थित पक्षियों के सदृश विवश हो गये है ।

शूराश्च मतिमन्तश्च विद्यावन्तश्च जन्तवः ।
कालदौरात्म्यतः पश्य जाता निहतयोग्यताः ॥३९॥

३९. 'देखो' शूर, मतिमान् एवं विद्यायुक्त प्राणी काल कौटिल्य के कारण लुप्त योग्यता वाले हो गये हैं ।

आशाः काञ्चनपुष्पकुड्मलकुलच्छन्ना न काः क्ष्मातले
सौजन्यामृतवर्षिभिस्तिलकितं सेव्यैर्न किं मण्डलम् ।
पन्थानः सुचिरोपचाररुचिरैर्व्याप्ता न कैः सस्तुतै-
स्तेषामत्र न सन्ति निह्नुतगुणाः कालेन ये मोहिताः ॥४०॥

४०. इस पृथ्वी तलपर ऐसी कौन सी दिशाए है जो स्वर्ण पुष्प कुड्मल समूह संकुल नहीं हैं ? सौजन्यरूपी अमृत की वृष्टि करने वाले स्वामियों से कौन सा मण्डल शोभित नहीं है ? चिर काल तक सेवा से शोभायमान एवं प्रशसित किन लोगों से मार्ग पूर्ण नहीं है ? जो छिपे हुए गुण वाले एव काम से मोहित है, उन लोगो का ही गुण अब यहां नहीं है ?

श्लोक सख्या ३५ में 'सजाता' का पाठभेद 'सम्पन्ना' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३७ में 'विष्वक्' का पाठभेद 'विश्वक्' तथा 'विवष्का' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३८ में 'हिमसघातदुर्लङ्घ्य' का 'हिमसपातदुर्लभ' तथा 'जनाः' का पाठभेद 'जनः' मिलता है ।

श्लोक सख्या ४० में 'का.' का 'क.'; 'सुचिरो-

तदेष गलितोपायो जहोमि ज्वलने तनुम् ।
न तु द्रष्टुं समर्थोऽस्मि प्रजानां नाशमीदृशम् ।।४१।।

४१. अतएव साधन रहित मैं, शरीर की आहुति देता हूं। क्यों कि प्रजा का इस प्रकार नाश देखने में समर्थ नहीं हूं।

धन्यास्ते पृथिवीपालाः सुख ये निशि शेरते ।
पौरान्पुत्रानिव पुर सर्वतो वीक्ष्य निर्वृतान ।।४२।।

४२. वे पृथ्वीपाल धन्य हैं जो सर्व प्रकार से सुखी पुरजनों को पुत्रवत् सम्मुख देखकर सुख की नींद लेते हैं। सुख पूर्वक शयन करते है।

इत्युक्त्वा करुणाविष्टो मुखमाच्छाद्य वाससा ।
निपत्य तल्पे निश्शब्द रुरोद पृथिवीपतिः ।।४३।।

४३. ऐसा कहकर, करुणाविष्ट, पृथ्वीपति वस्त्र से मुख ढककर, तल्पपर गिर, निःशब्द रोने लगा।

निवातस्तिमितैर्दीपैरुद्ग्रीवैः कौतुकादिव।
वीक्ष्यमाणाऽथ तं देवी जगाद जगतीभुजम् ।।४४।।

४४. उत्थित ग्रीवा वाले निश्चल दीपों से मानों कौतुक वश देखी जाती हुई देवी, (रानी) तब उस पृथ्वीपति से बोली—

पचार' का 'प्रचुरोपचार', 'स्तेषामत्र' का 'रेषामत्र' 'सन्ति' का 'वसन्ति' और 'ये' का पाठभेद 'ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४० (१) अनुवादको ने अन्य प्रतियोको आधार मानकर अनुवाद किया है अतएव अन्तिमपद का अनुवाद पाठभेद के कारण इस प्रकार होगा—

'जिनका गुण छिपा है तथा जो काल से मोहित है, वही यहाँ निवास करते है।'

कल्हण ने इस श्लोक मे शिक्षित, विद्वानो सुसस्कृत एवं कलाविद् कश्मीरियो पर अकाल का क्या प्रभाव पड़ा था, वर्णन करता है। त्रस्त काश्मीरी अपना निवास स्थान छोड़कर उत्तरी भारत में आ जाते थे। वही वे अपनी शक्ति, पौरुष एवं बुद्धि का परिचय देते थे। निवास करते थे। इस प्रकार का उल्लेख पुन कल्हण ने तरंग ८ २२२७ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१ मे 'गलितोपायो' का पाठभेद 'गलितापायो' मिलता है।

श्लोक संख्या ४३ में 'निश्शब्दं' का पाठभेद 'निश्शंङ्क' मिलता है।

श्लोक सख्या ४४में 'निवात' का 'निर्वात' तथा 'भुजम्' का 'पतिम्' पाठभेद मिलता है।

राजन्प्रजानां कुकृतैः कोऽय मतिविपर्ययः ।
येनेतर इव स्वैरमधीरोचितमीहसे ॥४५॥

४५. "हे राजन्! प्रजाओं की कुकृतियों से यह कौन सा मतविपर्यय हो गया है? जिससे इतर जन की तरह अधीरोचित स्वेच्छा-वृत्ति की कामना कर रहे है?

यद्यसाध्यानि दुःखानि छेतुं न प्रभविष्णुता ।
तन्महीपाल महतां महत्त्वस्य किमङ्कनम् ॥४६॥

४६. हे महीपाल! असाध्य दुःखों को दूर करने के लिये, यदि असमर्थता है, तो बड़े लोगों के महत्त्व का चिह्न ही क्या?

कः शक्रः कतमः स्रष्टा वराकः कतमो यमः ।
सत्यव्रतानां भूपानां कर्तुं शासनलङ्घनम् ॥४७॥

४७. 'इन्द्र'[1] कौन है? स्रष्टा[2] कौन—? बेचारा यम[3] कौन—? जो कि सत्यव्रती नृपों के शासन का उल्लंघन कर सके?

श्लोक सख्या ४५ में 'कुकृतै' का पाठभेद 'कुकृत्यै' मिलता है।

श्लोक सख्या ४७ में 'भूपाना' का 'भूताना' तथा 'शासनलङ्घनम्' का पाठभेद 'शासनलङ्घनाम्' तथा 'न प्रभविष्णुता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ·

४७ (१) **इन्द्र :** इन्द्र का सर्वाधिक वर्णन वेद मे मिलता है। वैदिक आर्यों के ओजपूर्ण देवता इन्द्र है। इन्द्र ने मेघो को विदीर्ण किया था। इनके लिये त्वष्टा ने वज्र बनाया था। इन्द्र ने स्रष्टा, सूर्य, द्यु तथा उषस को उत्पन्न किया है। वृत्रासुर का वध किया है। जल एवं नदिया प्रवाहित किया है। गायो तथा सोम को जीता है। दशद्यु का सरक्षण किया है। ऋग्वेद (१ ३३ : १४-१५)। साम गानसे इन्द्र को स्फूर्ति प्राप्त होती है। आगिरस तथा इन्द्र एक साथ रहते हैं। (ऋ० १ ११) अहि को मार कर सप्त सिन्धु को मुक्त किया था। (ऋ० : २ . १२) इन्द्र की उपासना न करने वालो को अनिन्द्र कहा जाता है। उनकी निन्दा की गयो है। (ऋ०७·१२: १६)।

प्रत्येक मन्वन्तरो में इन्द्र की कल्पना की गयी है। इन्द्र भूः, भुव· एव स्व तीनो लोको का अधिपति है। एक सौ यज्ञ करने पर इन्द्रत्व की प्राप्ति होती है। सप्तर्षि इनके मन्त्रणा दायक हैं। इन्द्र की पौराणिक कल्पनायें परस्पर भिन्न हैं। इनका उल्लेख गरुड, वृत्र वध, त्रिपुर, सुकर्माख्यान, यज्ञहविर्भाग मरुताख्यान, सागर मथन, वृत्रउत्पत्ति, ब्रह्म-हत्या, मुक्ति, पुरजय वाहन, जयापजय, यज्ञ, हवनादि, के सन्दर्भ में आता है। इन्द्र के सम्बन्ध मे भारतीय साहित्य में इतनी गाथायें है कि उनका संकलन स्वत एक विशाल ग्रन्थ का रूप ले लेगा।

(२) **स्रष्टाः**—सृष्टि के रचयिता, सर्जन एव निर्माण करने के अर्थ मे स्रष्टा शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द ब्रह्मा के लिये प्रयुक्त किया गया है। परन्तु अनेक स्थलो पर ब्रह्मा विष्णु तथा शिव के लिये एक साथ प्रयुक्त किया गया है।

महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से देवता, ऋषि, नाग एव असुरोंका निर्माण हुआ था। उन चारो

प्राणियो को ब्रह्मा ने 'ॐ' का उपदेश दिया था। (म० आश्व० २६:८) पद्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा के हृदय से बकरी, उदर से गाय, भैसादि ग्राम्य पशु समूह, तथा पद से अश्व, गवा, ऊँट आदि वन्य पशु उत्पन्न हुए थे। मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा के दक्षिण अंगूठा से दक्ष, हृदय से मदन, अधर से लोभ, अहंभाव से मद, नेत्र से मृत्यु, स्तनाग्र से धर्म, भ्रूमध्य से क्रोध, वुद्धि से मोह, कंठ से प्रमोद, हथेलो से भरत, एवं शरीर से सतरूपा नामक पत्नी उत्पन्न हुई थी। मत्स्य पुराण एवं महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के शरीर से मृत्यु नामक नारी उत्पन्न हुई थी। (म० द्रो०:१.८:१५०)

पुराणो के अनुसार ब्रह्मा के चार मुखो से वेदो तथा समस्त वैदिक साहित्य एवं ग्रन्थो का निर्माण हुआ था। ब्रह्मा के, पुराणो के अनुसार, चतुर्मुख है। (१) पूर्व मुख से गायत्री छद, ऋग्वेद, त्रिवृत रथन्तर एवं अग्निष्टोम, (२) दक्षिण मुख से—यजुर्वेद, पंचदश ऋक् समूह, वृहत्साम, एवं उक्थ यज्ञ, (३) पश्चिम मुख से—सामवेद, सप्तदश ऋक्समूह, वैरूप साम, एवं अतिरात्र यज्ञ, एवं (४) उत्तर मुख से—अथर्ववेद, एकविंश ऋक् समूह, आप्तोयम अनुष्टुप् छन्द एव वैराज साम उत्पन्न हुए थे।

ब्रह्मा के मानस पुत्र, मरीचि, अग्नि, अगिरस, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, दक्ष, भृगु एव वसिष्ठ थे। (ब्रह्म० ब्रह्माण्ड.२:९)

महाभारत मे सृष्टि निर्माण का क्रम दिया गया है। शंकर ने यज्ञ किया। ब्रह्मा ने अपने वीर्य की आहुति दी। उस यज्ञ से प्रजापतियो का जन्म हुआ। (म० अनु० ८५:९९—१२०) पद्म पुराण और प्रकार उपस्थित करता है। सर्व प्रथम तमोगुणी प्रजा उत्पन्न हुई। वह पाँच प्रकार यथा—तम,मोह, महामोह, तामिस्र एवं अन्धतामिस्र थी। तत्पश्चात् आठ सृष्टियो का निर्माण किया उनमें उत्पन्न प्राणी–तिर्यक् स्रोतस् (पशु), ऊर्ध्वस्रोतस् (देव) अर्वाक्, स्रोतस् (मानव)अनुग्रह, भूत, प्राकृत, वैकृत, एवं कौमार थे। देव राक्षस किन्नर मनुष्य यक्ष एवं पिशाच गणो की उत्पत्ति ब्रह्मा ने मनःसामर्थ्य से की थी। ब्रह्मा का प्रथम शरीर तमोगुणी था। उसके जघन से असुरो का निर्माण हुआ। तमोगुण का त्याग कर ब्रह्मा ने सतोगुणी शरीर धारण किया। परित्याग किये तमोगुणी शरीर से रात्रि का निर्माण हुआ। सतोगुणी शरीर से देवो का निर्माण हुआ। इस शरीर का भी ब्रह्मा ने त्याग किया। इससे दिन की उत्पत्ति हुई। इसके तृतीय शरीर से पितर उत्पन्न हुए। उसके त्यक्त भाग से सन्ध्या काल का जन्म हुआ। ब्रह्मा के चतुर्थ शरीर से मानवों की उत्पत्ति हुई। उसके त्यक्त भाग से उपा काल का निर्माण हुआ। इसके पाँचवें शरीर से यक्ष एवं राक्षस उत्पन्न हुए।

(३) यमः—यम के पिता वैवस्वत तथा माता सरण्यू की यम यमी दोनो युगल सन्तान थे (ऋ० १० १४.१७:१०.१४:१) उन्हे यमी मिथुनौ, कहा जाता है। जुडवा के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यम यमी एक साथ जुडवा पैदा हुए थे। [ऋ० १.६६:४:१:२६४ ·१५:२.३९:२] यम वैदिक काल से मृत्यु के देवता माने गये हैं [१:१६५.४] वे पहले प्राणी हैं। जिनकी मृत्यु हुई थी [अ० १८:३.१३] ऋग्वेद में यम यमी का सवाद प्रसिद्ध है। उसमे भाई एव बहन के विवाह का निपेध किया गया है। मृतको को विश्राम स्थान प्रदान करता है। (ऋ० १०:१४ :१८ तथा १०:१६) वह प्रथम मनुष्य था (अ० ८:३ १३) यमको दक्षिण दिशा का राजा कहा गया है (श. ब्रा० २.२:४·२) यम के दूत दो श्वान हैं। उनके चार नेत्र हैं। उनकी नासिका चौडी है। उनका नाम उलूक तथा कपोत है। [ऋ० १०:१६५ :४) उन्हे शवल एवं उदुंवल भी कहा गया है। (ऋ० १०:१३:४)

वेदो के पश्चाद् यम का रूप वदलता गया है। उसे विवस्वत् तथा संध्यापुत्र कहा गया है (ह-वं १:९:४ मार ७४:७भा० ६:३:४०)यमके अश्वो

पत्यौ भक्तिर्व्रतं स्त्रीणामद्रोहो मन्त्रिणां व्रतम् ।
प्रजानुपालनेऽनन्यकर्मता भूभृतां व्रतम् ॥४८॥

४८. "स्त्रियों की पति में भक्ति, मन्त्रियों का अद्रोह, नृपों का प्रजापालन में अनन्य कर्मता ही, व्रत है ।

उत्तिष्ठ व्रतिनामग्र्य क्व विपर्येति मद्वचः ।
प्रजापाल प्रजानां ते नास्त्येव क्षुत्कृतं भयम् ॥४९॥

४९. "हे व्रतियो में अग्रणी ! प्रजापाल !! मेरी वाणी कहीं विपरीत होती है ? तुम्हारी प्रजाओं को क्षुधाकृत भय नहीं है ।"

इति संरम्भतः प्रोक्ते तयाऽनुध्याय देवताः ।
प्रतिगेहं गतप्राणः कपोतनिवहोऽपतत् ॥५०॥

५०. देवता का ध्यान करके, इस प्रकार उसके सोत्साह कहने पर प्रत्येक गृह में गतप्राण कपोत समूह गिरे ।

प्रातस्तन्नृपतिर्वीक्ष्य व्यरसीन्मरणोद्यमात् ।
प्रजाश्च प्रत्यह प्राप्तैः कपोतैर्जीवितं दधु ॥५१॥

५१. प्रातः इसे देखकर राजा मरणोद्यम से विरत हो गये । और प्रजा प्रति दिन प्राप्त कपोतों से जीवन धारण करने लगी ।

का खुर लौह तथा नेत्र स्वर्ण वर्ण हैं । उपनिषदो में यम को देवता माना गया है । पितरो के यम प्रमुख है । कठोपनिषद् में यम 'नचिकेता का सवाद प्रसिद्ध है । यम गीता में यम तथा यमदूतो का सवाद है । वह विष्णु पुराण [३ ७] नृसिह पुराण (८)अग्नि-पुराण (३८२) एव स्कन्द पुराणो मे ग्रथित की गयी है । यम मुज पर्वत पर शिव की उपासना करते हैं । उनकी स्त्री का नाम धूमोर्णा है । (म० अनु० १६५ :११) (म० आश्व०८:१,६) यम की नगरी का नाम भविष्यपुराण के अनुसार मानुषोत्तर पर्वत स्थित सयमिनी नगरी है । यम को उसकी वहन यमी ने कार्तिक शुक्ल द्वितीया को भोजन कराया था । अतएव यम ने वहन को वर दिया था । इस दिन वहन के हाथ का बना भोजन जो ग्रहण करेंगे वे सदैव सौख्य प्राप्त करते रहेंगे । (स्कन्द० ५ ४ ११) यम नाम से तीन ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—यम संहिता, यम स्मृति तथा यम गीता । धर्मशास्त्र-कारो की सूची में याज्ञवल्क ने यम का नाम दिया है । (१-५) अपरार्क ने शख स्मृति में यम के श्लोको का उदाहरण दिया है । उसमे कुछ पंक्तियो में मास भोजन विहित किया गया है । जीवानन्द सग्रह में इसके अठहत्तर श्लोको को सख्या दी गयी है । स्मृति समुच्चय में निन्नानवे श्लोको को स्मृति प्राप्त है ।

यम ने ही यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि विवाह के पश्चात् स्त्री का गोत्र बदल जाता है । उसका और उसके पति का गोत्र एक हो जाता है । (याज्ञ० स्मृति १.२५४) 'वृद्ध यम स्मृति' नामक भी एक ग्रन्थ प्राप्त है । उसमें पाच अध्याय तथा १८२ श्लोक हैं । उसमें शुद्धि का विवेचन किया गया है । यम ने स्त्रियो को सन्यास वर्जित किया है । यमके अन्य ग्रन्थ 'लघु यम' तथा 'स्वल्प यम' का भी उद्धरण हरदत्त, अपरार्क तथा स्मृति रत्नाकर में मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ५० में 'प्रोक्ते' का 'प्रोक्ततथा' 'तया' का 'देव्या' पाठभेद मिलता है ।

वस्त्वन्तरं किमपि तत्साध्वी नूनं ससर्ज सा ।
जनताजीविताबाप्त्यै न कपोतास्तु तेऽभवन् ।।५२।।

५२. जनता के जीवन रक्षा हेतु निश्चय ही, उस साध्वी ने कोई वस्तु विशेष की सृष्टि की थी। क्योंकि कपोत नहीं थे।

तादृशां नहि निर्व्याजप्राणिकारुण्यशालिनाम् ।
हिंसया धर्मचर्यायाः शक्यं क्वाऽपि कलङ्कनम् ।।५३।।

५३ बिना व्याज के प्राणियों पर करुणा करने वाले की धर्म चर्या को हिंसा से कहीं भी कलंकित नही किया जा सकता।

अभवन्निर्मलं व्योम देवीकृत्यैः सह क्रमात् ।
साकं भूपालशोकेन दुर्भिक्षं च शमं ययौ ।।५४।।

५४. देवी के कृत्यों के साथ क्रमशः आकाश निर्मल हो गया। और भूपाल के शोक के साथ दुर्भिक्ष भी शान्त हो गया।

सा भूतिविभवोदग्रमग्रहारं द्विजन्मनाम् ।
सती कतीमुषं चक्रे रामुषं चाऽपकल्मषा ।। ५५ ।।

५५. निष्पाप उस सती ने ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति से पूर्ण कतीमुष[1] तथा रामुष[2], ब्राह्मणों को अग्रहार किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ मे 'भवन्' का पाठ भेद 'पतन्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

५२ (१) कपोत और मन्ना : पुरातन बाइबिल (ओल्ड टैस्टामेण्ट) मे एक कथा महात्मन् मूसाकी आती है। उन्होने मिश्रकी दासतासे यहूदियो को मुक्त किया। लाखो की संख्या में उनके साथ सिनाई मरुस्थल मे यहूदी पहुँचे। वहाँ भोजन का अभाव हो गया। महात्मन् मूसा ने भगवान् से प्रार्थना की। दूसरे दिन आकाश से मन्ना (एक प्रकार की किंचित् मधुर) वस्तु गिरने लगी। उसके अवलम्ब पर कितने ही दिनो तक लगभग ४० लाख व्यक्तियो का समूह जो अपनी स्वाधीनता निमित्त मिश्र त्यागकर फिलस्तीन आ रहा था जीवन यापन किया। ईसाइयो ने इसे अनेक प्रकार से सत्य प्रमाणित करने का प्रयास किया है। निस्सन्देह यदि मन्ना की घटना सत्य हो सकती है तो कपोत की भी बात ठीक माननी पडेगी। भारत मे योगियो तथा भगवद् भक्तो द्वारा चमत्कारिक बातें देखने और सुनने की बात पूर्व काल से चली आती है। (बाइबिल १९ १३–१७)

(२) कपोत तुल्य : कल्हण ने यहाँ कपोत न खाने की बात इसलिए उठाकर सफाई दी है कि काश्मीर मे कपोत अथवा कबूतर खाना निषिद्ध था।

कपोत यम के एक श्वान का नाम भी है। इस दृष्टि से भी कपोत की हत्या काश्मीर मे ग्राह्य न मानी गयी होगी।

पाठभेद .

श्लोकसंख्या मे ५३ 'तादृशा' का 'तादृश' तथा 'क्वापि' का पाठभेद 'चापि' मिलता है।

श्लोकसंख्या ५५ मे 'कतीमुषं' का 'कतीमुषा' तथा 'रामुष' का पाठभेद 'रामुषा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५५ (१) कतीमुष : इस ग्राम का वर्तमान

वर्षैः षट्त्रिंशता शान्ते पत्यौ विरहजो ज्वरः ।
तत्यजे ज्वलनज्वालानलिनप्रच्छदे तया ॥ ५६ ॥

छत्तीस वर्षो के साथ पति के गत हो जाने पर, उसने विरह ज्वर को अग्नि की ज्वाला रूपी नलिन[२] प्रच्छद पर त्याग दिया।

नाम कैमुह है। यह आदविन परगना मे एक बडा गाँव है। विशोका नदी के वाम पश्चिम तट पर स्थित है। ग्राम की सबसे बडी मुसलिम जियारत के समीप सितम्बर सन् १८९५ ई० मे श्रीस्तीन को मन्दिर के भग्नावशेष के बडे पत्थर दिखाई पडे थे।

विजयेश्वर से दक्षिण दिशा में लगभग ७ मील दूर स्थित है। इसके पूर्व विशोका नदी, पश्चिम में तरीगाम, वचरू, उत्तर में ब्रजलू और दक्षिण मे छोटा नाला है।

(२) रामुप : वर्तमान ग्राम सुपियान और श्रीनगर की मुख्य सडक पर मध्य मार्ग में रामुह नाम से स्थित है। कुछ समय पहले दर ब्राह्मणो की यह जागीर थी। यह श्रीनगर का प्रसिद्ध ब्राह्मण वश था। अक्तूबर सन् १८९१ ई० मे श्रीस्तीन को ग्राम के नाग के समीप बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ मिली थी। कल्हण ने राजतरगिणी में इस ग्राम का पुन वर्णन तरग ८ श्लोक २८१३ में किया है।

यह स्थान छोटी नदी रामखू के पश्चिम अर्थात् वाम तट पर है। यह नदी उत्पलपुर के समीप वितस्ता मे मिल जाती है। दक्षिण मे मीरगुन्ड उत्तर में पोरसपुर, पश्चिम में चरार पडता है। पूर्व में नदी पर मित्तरगम, तथा जेगम अर्थात् जेगाव है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ५६ में 'ज्वलन' का पाठ भेद 'दलन' मिलता है।

५६ (१) अग्नि ज्वाला : रानी का राजा के साथ अथवा पत्नी का पति के साथ सती होने का यह सर्व प्रथम उदाहरण राजतरगिणी में प्राप्त होता है। कश्मीर के इतिहास में जहाँ तक अध्ययन कर सका हूँ यह सप्रामाणिक प्रथम उदाहरण है। इसके पूर्व राजाओ के साथ रानियो तथा किसी और दूसरी महिला के सती होने का उल्लेख नहीं मिलता। कश्मीर मे सती प्रथा का आरम्भ एक प्रकार से यही से होता है। यह समस्त हिन्दू, मुसलिम तथा लार्ड विलियम वेंटिग के शासन के समय तक भारत में चलता रहा।

सम्राट् अकवर ने सती प्रथा को गैर कानूनी ठहराया था। राजाज्ञा से बन्द कर दिया था।

राजा जलौक ने स्वेच्छया सपत्नीक स्वर्गारोहण किया था। अतएव उसे सती प्रथा का कश्मीर मे आरम्भ काल कहना उचित नही है।

वैदिक काल में सती प्रथा का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। वेद सती प्रथा को मान्यता देता है या नही। मैंने अपनी पुस्तक 'वेद कथा' लिखते समय ऋग्वेद का पूरा अध्ययन किया परन्तु मुझे कही सती प्रथा का स्पष्ट उदाहरण नही मिला।

एक प्रथा निस्सन्देह वैदिक काल में प्रचलित थी। दिवगत पति के साथ विधवा चिता के समीप जाती थी। कही-कही उदाहरण मिलता है। शव के साथ सो जाती थी। तत्पश्चात् मृत व्यक्ति का भाई अथवा अन्य सम्बन्धी उसे उठाता था। साथ लौटा लाता था। विवाह कर लेता था। आज भी पजाब के जाटो मे यह प्रथा प्रचलित है। छोटा भाई बडे भाई की विधवा स्त्री को स्त्रीवत् रख लेता है। अनेक जातियो मे यह प्रथा अभी तक प्रचलित है।

देवी पार्वती सती रूप से दक्ष यज्ञ में प्राण दे दी थी। सती होने के पश्चात् वह उमा हो गयी। इससे सती नाम तथा सती होने की महत्ता बढ़ गयी।

सती उस समय से पवित्र समझी जाने लगी। यह प्रथा आदिम जातियो से आरम्भ हुई है। मृत के साथ स्त्री भी स्वर्ग जाए ताकि उनका वहाँ मिलन होता रहे अथवा वह पति की स्वर्ग मे इस लोक की तरह सेवा करती रहे, उनका साथ न छूटे, इसलिये मुख्यतः राजा के कब्र मे उनकी रानियाँ, राजा के पार्षद, अस्त्र-शस्त्र, अश्व, भोज्य तथा अन्य दैनिक जीवनोपयोगी सामग्रियाँ गाड दी जाती थी। इसलिये उन्हे गाड दिया जाता था कि परलोक में दिवगत के साथ रहकर उसे सुख पहुँचाती रहे। चीन में यह प्रथा बहुत समय तक प्रचलित थी। यहाँ की समाधियो मे दिवंगत के शव के साथ इस प्रकार की गडी स्त्रियाँ आदि मिली है।

यूरोप में भी यह प्रथा प्रचलित थी। दियोदोरम सिकुलस, स्टार्वो तथा सन्त जेरामो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में इस प्रथा के प्रचलित रहने का उल्लेख करते है।

कालान्तर मे सती की पूजा होने लगी। मेवाड मे गाँव गाँव में सतियो का चौरा दिखायी पडेगा। काशी में श्मशान तथा अन्य स्थानो पर सती का चौरा बना दिखायी पडता है। सती के चौरा की पूजा होती रहेगी इस मानवीय गर्व मिश्रित दुर्बलता के कारण स्त्रियाँ स्वत सती हो जाती थी। यह पुण्य कार्य माना जाने लगा। पति भक्ति की यह चरम सीमा आँकी गयी। मान्यता मिलती थी कि सती होने वाली स्वर्ग जाती है। स्वर्ग प्राप्ति की कामना इस प्रथा को मजबूत बनाने मे सहायक हुई थी। यह यहाँ तक बढ गयी थी कि यदि पति कही दूर मर जाता था ता पत्नी अकेली स्वत सती हो जाती थी।

बौद्धो ने सती प्रथा को प्रोत्साहित नही किया था। जैन धर्म में सती होने की प्रथा नही है।

राजपूतो मे यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। राजपूत वीर शत्रु सेना की प्रबल शक्ति देखकर जौहर करते थे। घर मे स्त्रिया अपने बच्चो को गोद मे लिये सती हो जाती थी। चित्तौर में सहस्त्रो की सख्या मे सामूहिक रूप से महिलाये मुसलिम आक्रामको से अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिये अनेक बार सती हो गयी है। जगत् मे सबसे अधिक महिलाएँ मेवाड मे सती हुई है। यहाँ सती के स्मारक बिखरे पडे है। मुख्यत प्रवेश द्वारो पर जहां उनके पति शत्रुओ से लडते वीर गति को प्राप्त हुए थे। चितौर दुर्ग मे रानी पद्मिनी सहस्रो महिलाओ के साथ अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय जिस भूस्थान पर सती हुई थी वहाँ मैंने अपनी आँखो से देखा है कि पत्थर अग्नि ज्वाला में फट गये है तथा धूयें के काले चिह्न वर्तमान है।

ब्रिटिशराज भारत मे स्थापित होने के पश्चात् लार्ड विलियम बेंटिक ने चार दिसम्बर सन् १८२० ई० को सती तथा सती होने के सहायक होने वालो को दण्डनीय घोषित कर सती प्रथा को अवैधानिक कार्य करार दिया था। उस समय से यह प्रथा बंद हो गयी है। तथापि कभी न कभी किसी महिला के सती होने का समाचार प्राप्त होता रहता है।

तथापि सन् १८३९ ई० मे पंजाब के सिख राजा रणजीत सिंह के साथ उनकी ३६ विधवाएँ सती हो गयी थी। केवल रानी जिन्दा अपने छोटे बच्चे के लालन पालन करने के व्याज से सती न हो सकी थी।

सन् १८२३ ई० मे जिस वर्ष सती सम्बन्धी कानून बना ५७५ विधवायें बंगाल और केवल कलकत्ता की सीमा मे ३१०, स्त्रियाँ सती हो गयी थी। उनमे १०१ साठ वर्ष, २२६ चालीस से साठ वर्ष; २०८ बीस से चालीस वर्ष तथा ३२ महिलायें बीस वर्ष उम्र तक की थी।

सन् १७७७ ई० में राणा जंगबहादुर की चिता के साथ नैपाल मे उनकी अनेक रानियाँ सती हो गयी थी। नैपाल मे यह प्रथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक दिखायी पडती है।

निस्सन्देह विश्व की अनेक जातियो के इतिहास इस प्रथा के साक्षी है। महान् व्यक्तियो की चिता

सा यत्र शुचिचारित्रा विपन्नं पतिमन्वगात् ।
स्थानं जनैस्तद् वाक्पुष्टाटवीत्यद्यापि गद्यते ।। ५७ ।।

५७ पवित्रचरित्रा उसने जहा दिवंगत पति का अनुगमन किया था, उस स्थान को लोग आज भी वाक्पुष्टाटवी[1] नाम से कहते हैं ।

के साथ, पत्नियाँ, दास, पशु, स्नेही, अस्त्र-शस्त्र, अश्वादि जला दिये जाते थे अथवा मारकर अथवा जीते जी कब्र के साथ गाड दिये जाते थे ।

ब्रह्मपुराण, व्यास स्मृति तथा अथर्ववेद का समर्थन सती प्रथा के पक्ष में लिया जाता है। किन्तु वह अत्यन्त क्षीण समर्थन स्रोत प्रमाणित हुआ है। भगवान् मनु ने सती होने के लिए कही नही लिखा है ।

आधुनिक युग में सती शुद्ध रूप से नही परन्तु प्रेमिकायें जो प्रेमी को पति स्वरूप मानती थी उनके साथ प्राण त्याग दी हैं। जर्मनी के अधिनायक हिटलर की आत्महत्या के समय उसकी प्रेमिका इवा ब्रौ ने भी एक साथ एक मुहूर्त मे आत्म हत्या की थी। दोनो का शव एक साथ एक ही स्थान पर फूंका गया था ।

इसी प्रकार इटली के अधिनायक वेनितो मुसोलिनी की प्रेमिका जो उनके साथ थी। उनके साथ ही गोली से मार दी गयी थी। उसने मुसोलिनी के साथ ही मरना पसन्द किया था। भावना सती प्रथा तथा अन्य दोनो उदाहरणो से एक ही प्रकार की है ।

५६ (३) **नलिन :** कल्हण ने चिता की ज्वाला की उपमा नलिन से दी है। कश्मीर में नलिन अर्थात् कुमुदिनी का रेशा शीतलता लाने के लिए प्रयोग किया जाता है। अधिकतया उसका लेप करते है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में इस प्रकार के प्रयोग का वर्णन किया है ।

कल्हण ने अग्नि ज्वाला को नलिन जैसा शीतलप्रद बताया है। रानी के विरह ज्वर की उष्णता नलिन प्रच्छद पर जाने से शीतल हो गयी थी ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ५७ में 'शुचिचारित्रा' का पाठभेद 'शुचिचारित्र्या' तथा 'शुचिदारिद्रा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

५७ (१) **वाक्पुष्टाटवी :** वाक्पुष्टा अटवी कहाँ है। इसका पता नही चलता। जोनराज ने वाक्पुष्टा अटवी का उल्लेख अलाउद्दीन (अल्लेश्वर) के सम्बन्ध मे किया है। इसके समीप एक गिरिगह्वर में एक डायन के होने का वर्णन किया है। जिससे अलाउद्दीन का सामना हुआ था। अतएव यह स्थान किसी पर्वत के समीप रहा होगा। जोनराज ने वाक्पुष्टाटवी का उल्लेख किया है। (जोन राज श्लोक ३४३) उससे प्रकट होता है कि उसके समय तक उस स्थान का महत्त्व था तथा लोगो मे धुंधली स्मृति उस घटना की शेष रह गयी थी ।

राजपुत्र स वाक्पुष्टाटवी लीलारसादटन् ।
योगिनीचक्रमद्राक्षीत् कदाचिद्गिरिगह्वरे ॥३४६॥

प० गोविन्द कौल के अनुसार यह स्थान खु नर वाव परगना मे बुट्टू ग्राम होना चाहिए। इस स्थान पर गुलाब गढ दर्रा के पर्वत बाहुमूल से होकर पहुँचते है। श्री स्तीन ने इस स्थान की यात्रा सितम्बर सन् १८९१ में की थी। किन्तु वहाँ पर उन्हे स्थानीय लोगो से उक्त कथा के विषय में कुछ जानकारी नही मिल सकी ।

पाठभेद

श्लोकसख्या ५८ मे 'नानापथागता' का पाठभेद 'नानागतपथागता' मिलता है ।

चारुचारित्रया तत्र तया सत्रेऽवतारिते ।
नानापथागतानाथसार्थैरद्यापि भुज्यते ॥ ५८ ॥

५८. सच्चरित्रा उस देवी द्वारा वहाँ स्थापित सत्र[1] में नाना पथों से आये अनाथ आज भी भोजन करते है ।

आभ्यामभ्यधिकं कर्तुं शक्तिः कस्येति निश्चितम् ।
विचिन्त्यारोचकी धाता नापत्यं निर्ममे तयोः ॥ ५९ ॥

५९. इन दोनों से अधिक करने की निश्चय ही किस की शक्ति है ? वह सोचकर अरोचकी विधाता ने उन दोनों के लिये सन्तति का विधान नहीं किया ।

वेधाः परां धुरमुपैति परीक्षकाणा-
मिक्षोः फलप्रजनने न कृतश्रमो यः ।
विस्मारितोद्धुरसुधारसयोग्यतात् तत्
तस्मादुदेत्य किमिवाभ्यधिकं विदध्यात् ॥ ६० ॥

६०. विधाता परीक्षकों की पराकाष्टा को प्राप्त होता है, जिस ने इक्षु[1] के फल देने में परिश्रम नहीं किया । सुस्वाद सुधा रस को भी विस्मरित कर देने की योग्यता वाले, उससे बढकर और वह क्या कर सकता था ।

पादटिप्पणियाँ

५८ (१) : सोम यज्ञ का समय जो १३ से १०० दिनो के अन्दर पूर्ण होता है उसके लिये प्राचीन समय मे यह शब्द प्रयुक्त किया जाता था । इसका अर्थ आश्रय स्थान, शरण स्थान तथा वह स्थान है, जहाँ गरीबो को भोजन दिया जाता हैं । अक्षियणी तथा सत्र मे सूक्ष्म भेद है । सत्र प्राय. उसी दान के लिए प्रयुक्त होता है जहाँ गरीबो को बना भोजन दिया जाता है जैसे लगर अथवा क्षेत्र । काशी मे क्षेत्र विद्यार्थी तथा सन्यासियो का मुफ्त भोजन स्थान है । सत्र और क्षेत्र समानार्थक है । कहावत है—क्षेत्रे भोजं मठे निद्रा ।

पादटिप्पणियाँ

राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ४२वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ६० मे 'सुधारस' का 'मुदारम्', 'मुदारस', 'मुधारम्', 'योग्यतात्तत्' का 'योग्यतात्तु', 'योग्यता तु', 'योग्यता तत्', 'योग्यता तत्' 'योग्यतात्तान्' तथा 'दुदेत्य' का पाठभेद 'उत्पादयित्वा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

राजतरगिणी सूक्तिसग्रह का यह ४३ वाँ श्लोक है ।

६०. (१) इक्षु : इसे ईख और पूर्वी उत्तर-प्रदेश तथा बिहार मे ऊख कहते है । दोनो ही शब्द इक्षु के अपभ्रंश है । इक्षु शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद (१ · ३४ : ७) मे प्राप्त होता है । तत्पश्चात् सहिताओ मे भी उल्लेख मिलता है । (मै स. ३ ७ : ९; ४ २ . ९, वा. स. २५ . १ : तै. स ३ १६ · १, तथा कठक अश्वमेध ३ : ८) वैदिक साहित्य से यह पता नही चलता कि इसकी खेती होती थी अथवा यह वन मे उत्पन्न होता था ।

कश्मीर की उपत्यका किंवा वादी मे ईख प्राय. नही होती है । इसकी पैदावार इस समय जम्मू काश्मीर राज्य के जम्मू प्रदेश मे तहसील रनवीर सिंह पूरा मे खूब होती है । इस समय यहाँ ६ हजार एकड मे ईख की खेती होती है । जम्मू के

दीर्घदुर्दिननष्टार्कं राष्ट्रमात्मापचारतः ।
ज्ञात्वा राज्ञ्यग्निसाद्देहं सा चकारेति केचन ॥ ६१ ॥

६१ अपने दुष्कृत्य के कारण बहुत दिनों तक रवि रहित राष्ट्र को जानकर उस रानी ने देह को अग्निसात् कर दिया । ऐसा कुछ लोगों का विचार है ।

ततोऽन्यकुलजो राजा विजयोऽष्टावभूत्समाः ।
पत्तनेन परीतं यश्चकार विजयेश्वरम् ॥ ६२ ॥

६२. तदुपरान्त अन्य कुलोत्पन्न राजा विजय आठ वर्ष रहा, जिसने विजयेश[1] को नगर से घिरवाया ।

नहरी क्षेत्र में भी ईख की उपज होने लगी है । इस राज मे कुल ईख १ ६ हजार हैक्टर में बोया जाता है । उत्पादन ११ २३ हजार मेट्रिक टन का होता है । मैंने सन् १९६३ मे जम्मू प्रदेश की यात्रा मे यह खेती देखी है । ईख अच्छी होती है ।

शर्करा अर्थात् चीनी का उत्पादन सर्वप्रथम भारत मे ही आरम्भ हुआ था । यूनानी भारत मे आये । उन्हे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि डण्ठल से शहद निकलती है । जो महत्त्व भारत में शर्करा का प्राचीन काल में था वही पश्चिम तथा यूरोप मे मधु का था ।

कश्मीर उपत्यका में ईख का अभाव था । वहाँ उसका माधुर्य दुर्लभ पदार्थों मे समझा जाता था । आम भारत में साधारण चीज है । किन्तु वही श्रीनगर मे दुर्लभ पदार्थ है ।

इक्षु यद्यपि मधुर था परन्तु विधाता ने उसे फल नही दिया है । यदि उसमें फल होता तो सम्भवत गन्ने के माधुर्य से भी अधिक माधुर्य होता । ईख के रस को सुधारस से भी ऊँचा स्थान कल्हण देता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ६१ में 'नष्टार्कम्' का पाठभेद 'नष्टार्क' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

६२ (१) श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईसापूर्व ६६ वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल सन् ९० ई० और राज्य काल ८ वर्ष दिया है ।

श्री स्तीन ने कल्हण के आधार पर गणना कर राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् २९९६ तथा राज्य काल आठ वर्ष दिया है । श्री एस० पी० पण्डित ने ईसा पूर्व ६९ वर्ष तथा राज्य काल ८ वर्ष दिया है । श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि सवत् ३८६१ तथा सन् ९१ ई० दिया है ।

१ आइने अकबरी मे राजा विजय को 'वेजीरी' लिखा है । राज्य काल ८ वर्ष दिया गया है ।

हसन लिखता है—राजा विजय २९९८ क० में अराकीन सल्तनत के इत्तफाक और मशविरह से सरब्राहाय सल्तनत हुआ । शहर के बडे लोगो में से था । वेजबारह का शहर तामीर करके अपना पायतख्त बनाया । विजय शूर का मन्दिर इन्तहाई रफअत और सगीनी के साथ बुलन्द किया । मुद्दत हकूमत आठ बरस ।

(२) विजयेश : टिप्पणी विजयेश्वर ८४ तथा १०५ द्रष्टव्य है ।

श्री विलसन ने (पृष्ठ ३०) लिखा है कि विजयेश का मन्दिर राजा विजय ने राजधानी के अन्दर बनवाया । यह बात प्रमाणित नही होती । विजय ने विजयेश का मन्दिर बिजबोर अर्थात् विजय क्षेत्र में बनाया । यही परम्परा, जनश्रुति तथा अन्य उपलब्ध प्रमाणो से प्रमाणित होता है । विलसन को इस विषय में भ्रम हो गया है ।

सुतो महीमहेन्द्रस्य जयेन्द्रस्तस्य भूपतेः ।
क्ष्मामाजानुभुजो राजा बुभोजाथ पृथुप्रथः ॥ ६३ ॥

६३. उस मही महेन्द्र भूपति का पुत्र आजानुबाहु, इन्द्र तुल्य राजा जयेन्द्र ने पृथ्वी का भोग किया।

पादटिप्पणियाँ :

६३ (१) जयेन्द्र : श्री विलसन ने अभिषेक काल ईसापूर्व ६० वर्ष ९ मास तथा समीकृत काल स० ९८ई० और राज्य काल ३७ वर्ष माना है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय कल्हण के आधार पर गणनाकर लौकिक संवत् ३००४ वर्ष तथा राज्यकाल ३७ वर्ष रखा है।

एस. पी. पण्डित ने यह समय ईसापूर्व ६१ वर्ष तथा राज्यकाल ३७ वर्ष माना है। श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि सवत् ३८९८ तथा सन् १२८ ई० दिया है।

आइने अकबरी मे जयेन्द्र को 'चुन्दर' लिखा है। राज्यकाल ३७ वर्ष दिया गया है।

आइने अकबरी मे सन्धिमति के विषय मे सबसे अधिक लिखा है। अबुफजल कहता है—राजा जयेन्द्र इस दृष्टि में लौकिक सवत् ३००४ में राजा हुआ। वह भूमि पर महेन्द्र अर्थात् इन्द्र तुल्य था। वह आजानबाहु था। राजा पृथु तुल्य प्रतापी था।

सन्धिमति : उसका मन्त्री महा मेधावी सन्धिमान था। वह शिवभक्त था। महात्मन् ईशान का शिष्य था। उसकी कीर्ति कश्मीर मण्डल मे व्याप्त हो गई थी। राजा एवं राजन्य वर्ग कान के कच्चे होते हैं।

राजदरबारियो ने मन्त्री की मेधा उसकी कीर्ति तथा प्रिय होने का दूसरा अर्थ लगाना आरम्भ किया। राजा के सम्मुख उसके गुण दोष रूप में बढा-चढाकर किये जाने लगे। उसकी बढती ख्याति तथा शक्ति राजा के लिए घातक सिद्ध होगी यह बात राजा के मन मे बैठा दी गयी। राजा मन्त्री से शकित रहने लगा। उसके प्रति द्वेष भावना उत्पन्न हो गई। चपल कर्ण राजा ने उसका राज दरबार में आना बन्द कर दिया। उससे क्रोधित होकर उसकी सब सम्पत्ति छीन कर उसे दरिद्र बना दिया।

हसन लिखता है—राजा जयेन्द्र सन्दमत वजीर के इमदाद व इनायत से २९९४ क० में बापके कायम मुकाम तख्त नशीन हुआ। कुछ मुद्दत अदल व इन्साफ मे गुजारी। बिल आखीर अपने वजीर से नाराज होगया। और अरसा दस साल तक उसे कैद व बन्द मे मबतिला रखा। और जिस कदर भी उसके पास असबाब था लूट लिया। लेकिन अवाम वजीर की नेक नियती से खुश थे और अपनी जगह परचमी गोरपा करते कि किसी न किसी दिन वजीर ही बादशाह होगा। वह चीज भी राजा के कान मे पहुँच गयी। हुकम दिया कि वजीर को सूली दे दें। चुनाचे शाही हुकम के बमूजिब वजीर को सूली पर चढा दिया गया। और गरीब जानसे रुखसत हुआ। लेकिन इसके बाद ही राजा पर बहशत व दीवानगी सवार हो गयी और चन्द दिनो बाद खुद भी दुनिया से रुखसत हो गया। मुद्दत हकूमत ३७ साल।

चूँकि राजा जयेन्द्र बे औलाद था। इसलिए उसकी वफात के चन्द दिनो तक सल्तनत कश्मीर बादशाह के बगैर रही। ईशानदेव नामक एक आबिद वजाहिद इन्शान को जो वजीर सन्दमत का मुखी था और अरसा दराज से मुकाम इशः बरारी मे गोश नशीन था। जब वजीर मजकूर की सूली की खबर सुनी तो उसके लाश को जलाने की नीयत से दार के नीचे आया। वजीर के जिस्म को सूली से उतार कर गुसल देने के लिये तैयार हुआ। कैफियत (कफ] ईशानदेव ने जब उसके माथे पर नजर डाली तो देखा कि उसपर यह तीन फिकरह लिखे हुए है—

अलोलकीर्तिकल्लोलदुकूलवलनोज्ज्वलाम् ।
बभार यद्भुजस्तम्भो जयश्रीसालभञ्जिकाम् ॥ ६४ ॥

६४ जिसके भुजस्तम्भ ने, निश्चल कीर्तिकल्लोलरूपी दुकूल के वलन से शोभायमान जयश्री शालभंजिका[1] को धारण किया था।

१—जब तक यह शख्स जिन्दा रहेगा मुफलिस रहेगा।

२—दस साल तक कैद में रहकर दार पर मरेगा।

३—उसके बाद राज लेगा।

ईशान देव ने दिल में सोचा कि इन तीन फिकरो मे से दो का मजमून व अमल आ गया है। और तीसरे फिकरह का मजमून भी यकीनन् अमल में आयेगा। लिहाजा उसकी लाश वही छोडकर एक पोशोदह जगह तलाश की। वहाँ उसे रखकर खुदा की कुदरत का मुन्तजिर रहने लगा।

एक रात देखा कि मैदान नूरानी हो गया है। और चन्द जोगनी आई हैं। उन्होने वजीर की लाश को सूली से उतार लिया है। और उससे बातचीत मे मशगूल हैं। ईशानदेव तमाम रात काँपता रहा और हैरान था कि वह कौन है। सुबह के वक्त जब जोगिनी जाने लगीं और उन्होने लाश मजकूर को बदस्तूर दार पर लटकाना चाहा तो ईशानदेव ने तलवार हाथ में लेकर जोगनियो को डराया और बाद में जोर जोर से शोर व गोगा मचाया यह देख कर औरतें गायब हो गयी उनमें से एक ने कहा—"ईशान देव इस शख्स को खुदा ने हमारी वजह से जिन्दा किया है। हम पर तू क्यो तलवार उठाता है। वह राजा सन्दोमान है। और एक दिन बहुत बडा राजा होगा। जब वजीर जिन्दा हो गया तो अपने पीर के पाँवो में पडा। उस वक्त लोग हरतरफ से जमा हुए और वजीर को जिंदह देखकर निहायत हैरान हुए। लोग उसे पहले से जानते थे। उसे देखते ही पहचान गये। अदाकीन में शहर उसके अखलाक करीमाना को देखकर उसे मुल्क कश्मीर की हकूमत कबूल करने को कहा। पहले तो उसने इन्कार किया। बिलाखिर अपने पीर के कहने से सल्तनत कबूल करने पर राजी हो गया।

(पृष्ठ ५४—५५)

पाठभेद

श्लोक संख्या ६४ मे 'अलोल' का 'आलोल' 'दुकूल' का 'दुगूल' 'श्री' का 'स्री' तथा 'साल-भञ्जिकाम्' का पाठभेद 'शालभञ्जिकाम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

६४ (१) शालभंजिकाः—अर्थ पुतली होता है। इसका अर्थ वेश्या भी होता है। साँची स्तूपो के घेरे पर शालभजिका मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती हैं। मेरे एक मित्र ने शालभजिका का अर्थ पर्वो तथा पवित्र उत्सवो अथवा यात्रा के समय लाज वर्षा करने वाली कमनीय बालाओ से किया है। किन्तु इसका वर्णन मुझे कही नही मिल सका।

वृक्ष को पकड कर स्त्रियाँ खडी होती थी। उसके तले उत्सव मनाती थी। इस प्रकार वृक्षो को पकडने वाली स्त्रियो को शालभजिका कहा गया है। कालान्तर में इसी प्रकार की मूर्ति काष्ठ तथा पाषाण पर बनायी जाने लगी। उसे शालभजिका की सज्ञा दे दी गयी।

निस्ससन्देह यहाँ इसका तात्पर्य निर्जीव पुतलो से है। पुतली चालक के सकेत पर ही कार्य करती है। इसी प्रकार जयश्री इस राजा के अभिप्राया-नुसार कार्य करती है। अर्थात् उसे विजय प्राप्त होता ही है।

शालभंजिका का एक अर्थ और मिलता है। यह काष्ठ की स्त्री प्रतिमा घटसहित बनायी जाती थी। उत्सवो तथा शुभ कार्य काल में द्वार पर सजा

तस्याभूदद्भुतोदन्तो भवभक्तिविभूषितः ।
राज्ञः संधिमतिर्नाम मन्त्री मतिमतां वरः ॥ ६५ ॥

६५. उस राजा का अद्भुत वृत्तान्त युक्त, शिवभक्ति विभूषित, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सन्धिमति नामक मन्त्री हुआ।

नास्त्युपायः स संसारे कोऽपि योऽपोहितुं क्षमः ।
भूपालमत्तकरिणामेषां चपलकर्णताम् ॥ ६६ ॥

६६. संसार में कोई भी ऐसा उपाय नहीं है, जो इन भूपाल रूपी मत्त गजों की चपल कर्णता[1] को दूर करने में समर्थ हो।

अत्यद्भुतमतिः शङ्क्यः सोऽयमुक्त्वेति यद्विटैः ।
तस्मिन्धीसचिवे द्वेषस्तेनाग्राह्यत भूभुजा ॥ ६७ ॥

६७. "अत्यन्त[1] अद्भुत मतिमान् भी यह आशंकनीय है", यह कहकर, विटों ने, राजा को उस धीमान् मन्त्री के प्रति द्वेषयुक्त कर दिया।

कर रख देते थे। यह पुतली किंवा प्रतिमा शाल वृक्ष की बनती थी अतएव उसे शालभंजिका कहा जाता था।

एक मत और है। शालभंजिका एक उत्सव प्रति वर्ष मनाया जाता था। यदि शालभंजिका का अर्थ वेश्या किंवा गणिका से लिया जाय तो काशी में गणिकाओ का लोलार्क छठ के दिन बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक तक मेला लगता था। काशी की सभी गणिका कीनाराम के अस्तल पर तथा मार्गों में गाती थी। उनका स्वागत सत्कार होता था। आज से पचास वर्ष पूर्व तक यह उत्सव धूमधाम से होता था। अब यह बन्द हो गया है। सुधारवादी प्रवाह में तिरोहित हो गया है। केवल स्मृति मात्र शेष रह गयी है। वृत्त शालभंजिका संस्कृत का एक प्रसिद्ध नाटक है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ६५ में 'दन्तो' का 'दात्तो', 'राज्ञ.' का 'राज्ञा' तथा 'सधिमति' का पाठभेद 'संधिगति' मिलता है।

श्लोक संख्या ६६ में 'योऽपोहितुं' का पाठ-भेद 'यो पिहितुं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

राजतरगिणी सूक्ति सग्रहका यह ४४वा श्लोक है।

६६(१) चपलकर्णता—कल्हण ने यहाँ चपल शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। चाटुकार तथा दरबारियो की बातें सुनकर राजाओ की वृत्ति का चचल हो जाना अर्थात् राजा का चपलकर्ण हो जाना स्वाभाविक है। हाथी का चचल कर्ण उसका स्वभाव है। मत्त हाथी का कान सर्वदा चचल रहता है। यहा 'चपलकर्ण' श्लिष्ट है।

पाठभेद .

श्लोक संख्या ६७ में 'शङ्क्यः' का पाठभेद 'शक्यः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६७(१) श्री स्तीन ने श्लोक संख्या ६६ एव ६७ का एक ही मे अनुवाद किया है। रणजीत सीताराम पण्डित ने अलग अलग अनुवाद

निवारितप्रवेशोऽथ सकोपस्तमहेतुकम् ।
निनाय हृतसर्वस्वं यावदायुर्दरिद्रताम् ॥ ६८ ॥

६८. उस कुपित राजा ने मन्त्री का प्रवेश निषिद्ध कर दिया[1]। और निष्कारण सर्वस्व हरण कर उसे यावज्जीवन के लिये दरिद्र बना दिया।

तस्य भूपतिविद्वेषग्रीष्मोष्मपरिशोषिणः ।
आप्यायं राजपुरुषा वार्तयाऽपि न चक्रिरे ॥ ६९ ॥

६९. भूपति के विद्वेष रूपी ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से परिशोषित उसे, राजपुरुषों ने वार्ता से भी सन्तुष्ट नहीं किया।

गिरं गभीरो गृह्णाति क्ष्माभृद्यावत्तदग्रगाः ।
उक्तानुवादिनस्तावव्यक्तं प्रतिरवा इव ॥ ७० ॥

७० जब[1] गम्भीर राजा कुछ कहता है तो, उसी समय उक्ति की पुनरुक्ति करने वाले उसके अग्रगामी (राजा के साथ आगे चलने वाले चाटुकार) प्रतिध्वनि सदृश शब्द करते हैं।

स तु राजविरुद्धत्वदारिद्र्याभ्यां न विव्यथे ।
गतप्रत्यूहया प्रीतः प्राप्तया हरसेवया ॥ ७१ ॥

७१. समुपलब्ध निर्विघ्न हर सेवा से प्रसन्न वह (सन्धिमति) राजा की विरुद्धता एवं दारिद्र्य से दुःखी नहीं हुआ।

किया है। मैंने भी दोनो श्लोको का अनुवाद अलग ही किया है। इसमें अर्थ समझने में कठिनाई नही होती।

पाठभेद .

श्लोक संख्या ६८ में 'सकोपस्त' का पाठभेद 'स कोपात्त' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

६८ (१) प्रवेश निषिद्ध—देशी राज्यो में यह प्रथा भारतीय राज्यो के विलय पूर्व (१९४७-४८) तक जारी थी। इसे 'ड्योढी बन्द' करना कहते थे। राजप्रासाद के ड्योढी [देहली] के भीतर प्रवेश नहीं किया जा सकता था। राजस्थान में यह प्रथा दूसरे प्रकार से प्रचलित थी। यदि राजा अप्रसन्न होता था तो आज्ञा दे देता था 'घर बैठो'। घर में राज्य कर्मचारी रहता था। वेतन पाता था। किन्तु काम नही कर सकता था। राजा की अकृपा का यह प्रतीक था।

राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ४५वा श्लोक है।

७० (१) इसका द्वितीय अर्थ यह होता है—'जब गम्भीर पर्वत ध्वनि प्राप्त करता है तो उसके पार्श्ववती प्रतिध्वनि के रूप में स्पष्ट दुहरा देते है।"

अग्रगा का अर्थ पर्वत के सम्मुख स्थित पहाड से भी होता है। पर्वत से उठती ध्वनि को सम्मुख स्थित पहाडी दुहरा देती है अर्थात् ध्वनि को प्रतिध्वनित करती है। अग्रग का अर्थ मार्गदर्शक भी होता है।

क्ष्माभृत् का अर्थ पर्वत तथा राजा दोनो होता है।

पाठभेद

श्लोक संख्या ७१ में 'दारिद्रयाभ्या' का 'दारि-

अथ भाव्यर्थमाहात्म्यात्पप्रथे प्रतिमन्दिरम् ।
राज्यं संधिमतेर्भावीत्यश्रुताऽपि सरस्वती ॥ ७२ ॥

७२. भावी घटना के माहात्म्य से प्रत्येक घर में अश्रुत[1] भी वह वाणी फैल गयी—"राज सन्धिमति का होने वाला है।"

नाचोदिता वाक्चरतीत्याप्तेभ्यः श्रुतवान्नृपः ।
ततः संभूतसंत्रासः कारावेश्मनि तं न्यधात् ॥ ७३ ॥

७३. "बिना कही बात नहीं फैलती है।" इस प्रकार विश्वस्तों से राजा ने सुना और संत्रस्त होकर, उसे कारागार[1] में रख दिया।

तत्र तस्योग्रनिगडैः पीडिताङ्घ्रेर्विशुष्यतः ।
पूर्णोऽभूद्दशमो वर्षो भूपतेश्चायुषोऽवधिः ॥ ७४ ॥

७४. वहां उग्र निगड बन्धन से पीड़ित चरणयुक्त शुष्क उस मंत्री का दसवा वर्ष तथा राजा के आयु की अवधि पूर्ण हो गयी।

निष्पुत्रः स महीपालो मुमूर्षुर्दाहमादधे ।
रोगोत्थया पीडया च चिन्तया च तदीयया ॥ ७५ ॥

७५. निष्पुत्र एवं मुमूर्षु वह महीपाल रोगोत्पन्न पीड़ा और उस चिन्ता से दग्ध होने लगा।

द्राम्या' और 'हरसेवया' का पाठभेद 'हरिसेवया' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७१ (१) हर एकादश रुद्रो में से एक है। यहाँ पर शिव के अर्थ में प्रयोग किया गया है। कम्बुज कम्बोडिया में हरि-हर की पूजा व्यापक रूप से प्रचलित थी। अर्धनारीश्वर के समान एक ही मूर्ति मे दक्षिण ओर हरि तथा वाम अर्धांग मे हर अर्थात् शिव की आकृति सवेशभूषा रहती थी। कम्बोडिया के एग कोरवाट मे इस प्रकार की अनेक मूर्तियाँ मैंने अपने पर्यटन काल सन् १९५७ में देखी थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७२ में 'प्रतिम' का पाठ भेद 'नवम' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

७२ (१) अश्रुत सरस्वती—इसका शाब्दिक अर्थ दो है। वह वाणी जो, सुनायी नही पडती। किंवदन्ती या अफवाह के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ७३ में 'सभूत' का 'सद्भूत' तथा 'न्यधात्' का पाठभेद 'व्यधात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

७३(१) कारावेश्म—कारागार को उस समय कारावेश्म कहते थे।

प्राचीन भारत में कारागार व्यवस्था बहुत विकसित हो चुकी थी। चाणक्य ने अर्थशास्त्र मे कारागार का जो रूप प्रस्तुत किया है वह बहुत ही विकसित कहा जायगा। उसमें बन्दियो के भोजन, वस्त्र, बेडी, मुलाकात, जेल का शासन, जेल रक्षकों अर्थात् वार्डरो का भ्रष्टाचार आदि पर आजकल के पटु कारागार विशेषज्ञ की तरह प्रकाश डाला गया है।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ७५ में 'मादधे' का पाठभेद

ऊष्मायमाणो विद्वेषवह्निना ज्वलताऽनिशम् ।
न विना तद्वधं मेने भवितव्यप्रतिक्रियाम् ॥ ७६ ॥

७६. विद्वेषाग्नि से रात्रि-दिन जलते रहने के कारण निनरां पीड़ित होते हुए उस राजा ने उसके (सन्धिमति) वध के विना, भवितव्यता की प्रतिक्रिया असम्भव समझा ।

भाव्यर्थस्याऽबुधाः कुर्युरुपायं स्थगनाय यम् ।
स एवाऽपावृतं द्वारं ज्ञेयं दैवेन कल्पितम् ॥ ७७ ॥

७७. मूर्ख जन भवितव्यता को अन्यथा करने हेतु, जिस उपाय को करते है, वही भाग्य निर्मित अनावृत द्वार है ।[१]

दग्धाङ्गारकदम्बके विलुठतः स्तोकोन्मिषत्तेजसो
वेधा वह्निकणस्य शक्तिमतुलामाधातुकामो हठात् ।
तन्निर्वापणमिच्छतः प्रतनुते पुंसः समीपस्थिते
संतापद्रुतभूरिसर्पिषि घटे पानीयकुम्भभ्रमम् ॥ ७८ ॥

७८. जब विधाता दग्ध अंगार समूह मे चिनाते हुए स्वल्प तेज वाले वह्निकण को हठात् अतुल शक्ति सम्पन्न करने की इच्छा करता है, तब उस अग्नि को बुझाने के इच्छुक पुरुष में उसके निकटस्थ ताप-तरल प्रचुर घृत घट मे जल कुम्भ का भ्रम कर देता है ।[१]

अथ राजाज्ञया क्रूरैर्वधकर्माधिकारिभिः ।
निशि संधिमतिः शूले समारोप्य विपादितः ॥ ७९ ॥

७९. राजा की आज्ञा से क्रूर वध कर्माधिकारियों ने रात्रि मे सन्धिमति को शूलपर[१] चढाकर हत्या कर दी ।

'माददे' मिलता है ।

राजतरंगिणी सूक्तिसग्रहका यह ४६वा श्लोक है ।

श्लोक सख्या ७७ में 'स्याऽबुधा' का पाठभेद 'य वुधा.' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

७७(१) कल्हण पुरानी बातो को नवीन शैली से कहता है । वही शैली उसने भाग्य वर्णन में अपनायी है । कल्हण की कवि रूप में वह सबसे बडी विशेषता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ७८ मे 'स्थितें' का पाठभेद 'स्थिते.' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

७८(१) इस श्लोक का अर्थ कई प्रकार से अनुवादको ने किया है । श्री रणजीत सीताराम पण्डित के मत से इस श्लोक का शाब्दिक अर्थ कुछ अस्पष्ट होता है परन्तु तात्पर्य समझ मे आ जाता है ।

७९ (१) शूलः—शूली की प्रथा प्राचीन भारत मे प्रचलित थी । स्थानभेद के कारण शूल अर्थात् शूल देने के प्रक्रिया में भी अन्तर था । शूलीपर चढाने के लिए कल्हण ने समारोप शब्द का प्रयोग किया है ।

श्री विलफोर्ड का मत है कि जिस शूली पर मरना सन्धिमति का कहा जाता है वह वास्तव में 'क्रास' था । (एशियाटिक रिसर्च भाग १०) किन्तु यह वात गलत है । शूली की प्रथा भारत में वहुत प्राचीन है । महाभारत मे माण्डव्य ऋषि को शूलीपर चढाने का वर्णन मिलता है । 'क्रास' के

प्रोतशूले श्रुते तस्मिन् शोकशङ्कुर्महीपतेः ।
निरगाद्रोगभग्नस्य पूर्वं पश्चात्तु जीवितम् ॥ ८० ॥

८०. उसे शूल विद्ध हुआ सुनने पर रोग से भग्न महीपाल का शोक शंकु (शूल) पहले और बाद में प्राण निकल गया।

सप्तत्रिंशतिवर्षेषु यातेष्वस्मिन्निरन्वये ।
प्रशान्तभूमिपालाऽभूत्कतिचिद्दिवसानि भूः ॥ ८१ ॥

८१. वंश हीन उस राजा के सैतीस वर्ष बीत जानेपर कुछ दिनों तक यह पृथ्वी भूमिपाल रहित हो गयी थी।

अथ संधिमतिं बुद्ध्वा तथा व्यापादितं गुरोः ।
ईशानाख्यस्य हृदयं विवशं वशिनोऽप्यभूत् ॥ ८२ ॥

८२. सन्धिमति को उस प्रकार व्यापादित (मारा गया) जानकर, जितेन्द्रिय भी गुरु ईशान का हृदय विवश हो गया।

शिरीष इव संसारे सुखोच्छेद्ये मनीषिणाम् ।
हन्ताऽऽनृशंस्यं तद्वृन्तमिवैकमवशिष्यते ॥ ८३ ॥

८३. शिरीष पुष्प सदृश सरलता पूर्वक नष्ट होने वाले, इस संसार में खेद है। मनिषियो की क्रूरता ही उसके (शिरीष पुष्प के) वृन्त की तरह अवशिष्ट रह जाती है।

स श्मशानभुवं प्रायादनाथस्येव शुष्यतः ।
कर्तुं विनयिनस्तस्य स्वोचितामन्तसत्क्रियाम् ॥ ८४ ॥

८४. अनाथ के समान सूखते हुए उस विनयी की, अपने करने योग्य अन्तिम संस्कार करने के लिये वे (गुरु) श्मशान भूमिपर गये।

कारण भ्रम फैला है। सन्धिमति को ईशा मसीह रूप में जोडने का वृथा प्रयास किया गया है।

श्री विलसन ने [पृष्ठ ३१] पर लिखा है कि जिस रात्रि मे राजा का निधन हुआ और उसका शरीर जलाया गया उसी रात्रि सन्धिमति को बधिकोने शूली पर चढाया।

कल्हण ने उक्त श्लोक मे स्पष्ट वर्णन किया है कि राजा का प्राण सन्धिमति के शूली लगने के पश्चात् छूटा था।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८३ मे 'तद्वृन्तमि' का 'तद्वृत्तमि' तथा 'तद्वृत्यमि' पाठभेद मिलता है।

८३ [१] शिरीष—उत्तरी भारत के वगीचो तथा सडको पर शिरीष का वृक्ष बहुत मिलता है। इसका वृक्ष सुन्दर तथा रात्रि में अति सुगन्धदायक होता है।

तं चाऽस्थिशेषमद्राक्षीत्कृष्यमाणं बलाद् वृकैः ।
शूलमूलावबद्धास्थिखण्डावष्टम्भनिश्चलम् ॥ ८५ ॥

८५. शृगालों द्वारा बलात् नोचे जाते हुए तथा शूल मूल ये बँधे, अस्थि खण्ड के सहारे निश्चल, अस्थि मात्र अवशिष्ट उसे (गुरु ने) देखा।

समीरणसमीकीर्णमुण्डरन्ध्राग्रनिर्गतैः ।
ध्वनितैरनुशोचन्तमिवाऽवस्थां तथाविधाम् ॥ ८६ ॥

८६ वहां समीरण समाकीर्ण मुख रन्ध्र द्वारा निर्गत ध्वनियों से मानो वह अपनी उस प्रकार की अवस्था को सोच रहा था।

हा वत्स द्रष्टुमीदृक्के जीवाम्यद्येति वादिना ।
तस्याऽऽकृष्यत मूलान्तःप्रोतं तेनाऽथ कीकसम् ॥ ८७ ॥

८७. 'हा! वत्स!! आज मैं तुम्हें इस प्रकार देखने के लिये जीवित हूँ ?' इस प्रकार कहते हुए उसने (ईशान) शूल विद्ध अस्थि को खींचा।

वेष्टिताङ्घ्रिः शिरश्शीर्णैस्तत्कचैर्धूलिधूसरैः ।
अनैषीत्तं स कङ्कालं वारयन्भषतो वृकान् ॥ ८८ ॥

८८. शिरसे गिरे धूल धूसरित उसके केशों से लिप्त चरण वह (ईशान) गुर्राते हुए वृकों को हटाता हुआ उस के कंकाल को ले गया।

उचितां सत्क्रियां कर्तुं ततस्तस्य समुद्यतः ।
भाले विधातृलिखितं श्लोकमेतमवाचयत् ॥ ८९ ॥

८९. तदनन्तर उचित सत्क्रिया करने के लिये समुद्यत उसने भाल[1] पर विधातृ लिखित इस श्लोक[2] को बाँचा।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या ८६ मे 'समाकीर्ण' का पाठभेद 'समाकीर्ख' तथा 'समापूर्ण' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

श्री स्तीन ने ८५ एव ८६ श्लोको का अनुवाद एक साथ किया है। हिन्दी अनुवाद मे भी एक साथ ही अनुवाद किया गया है। किन्तु श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने उनका अनुवाद अलग अलग किया है। यहाँ भी अनुवाद अलग ही किया गया है। उससे अर्थ में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नही होती है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८८ में 'वेष्टिताङ्घ्र' का 'वेष्टिताघ्र' 'सकङ्काल' का 'स्वक काल' तथा 'भषतो' का पाठभेद 'भाषतो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

८९ [१]भालरेखाः—प्राचीन काल में रेखा विज्ञान सामुद्रिक विद्या बहुत विकसित थी। हस्त-रेखा, पादरेखा, ललाटरेखा, आदि देखकर जन्म पत्र तैयार कर दिया जाता था। आज भी अत्यन्त मेधावी अनुभवी सामुद्रिक हस्तरेखा देखकर जन्म तिथि निकाल लेते हैं।

'यावज्जीवं दरिद्रत्वं दश वर्षाणि बन्धनम् ।
शूलस्य पृष्ठे मरणं पुना राज्यं भविष्यति' ॥ ६० ॥

९०. "यावज्जीवन दारिद्रता, दश वर्षों तक बन्धन, शूल पृष्ठपर मरण. पुनःराज्य होगा।"

खोपडी पर रेखाएँ होती हैं। भगवान् बुद्ध के समय वगीस खोपडी देखकर भविष्य तथा भूत दोनो कालो को कह देते थे। यह उनका पेशा हो गया था। उसने इस प्रकार बहुत धन अर्जन किया था। भगवान् बुद्ध ने उसके सम्मुख पाँच खोपडियाँ रख दी। उसने चार का सच्चा हाल बता दिया परन्तु पाँचवें का भविष्य नही बता सका क्योकि वह एक निर्वाण प्राप्त व्यक्ति की खोपडी थी। [सुत्तनिपात वगीस सुत्त सयुक्त निकाय ८.१-१२पर गाथा२६४]

भारत मे एक प्रचलित आख्यान है। एक ज्योतिषी थे। उन्हे एक खोपडी मिल गयी। उसपर लिखा था 'ताहू पर कछु और' अभी कुछ और होना बाकी है। पण्डित को महान् आश्चर्य हुआ। मर जाने पर अब इसका क्या होगा। परीक्षा के लिये उसे लाकर घर में रख दिया।

खोपडी घर मे रखने पर लोगो को आश्चर्य हुआ। पण्डित की स्त्री को लोगो ने बहका दिया। इस खोपडी के कारण उस पर विपत्ति आने वाली थी। पण्डितानी ने क्रोधावेश में खोपडी उखल में डालकर कूट डाला। पण्डितजी लौट कर आये। उन्हें बात मालूम हुई। उन्हे पण्डितानी की दुर्बल बुद्धि पर तो दया आयी। तथापि अपने शास्त्र पर उन्हे और विश्वास हो गया। कपाल रेखा की वाणी सत्य उतरी।

२. श्लोक—श्लोक मे चार पाद एव आठ मात्रायें होती हैं। रामायण तथा महाभारत श्लोकों में लिखे गये हैं। संस्कृत का कोई भी पद जो अनुष्टप् छन्द में होता है, उसे श्लोक कहते है। यह गायत्री की स्तुति में कहा गया था।

कल्हण ने अनुष्टुप् छन्द में ही राजतरंगिणी का निबन्धन किया है। किन्तु आदि एवं अन्त में उसने छन्द परिवर्तित कर दिया है।

महाकाव्य का यह एक लक्षण है कि सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित कर दी जाती है। कालिदास की भी यही शैली है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९० में 'पुना राज्यं' का पाठभेद 'पुन राज्य' तथा 'पुनः राज्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

९०(१) सन्धिमति और महात्मा ईशामसीह

यदि सन्धिमति का नाम संयोग से ईशान होता तो उसे ईशा मानने में सन्देह का अवसर नही मिलता।

कुछ यह बात प्रचलित हो गई है कि महात्मा ईशा मशीह कश्मीर आए थे। वहाँ दश वर्ष निवास किया था। वह किसी बौद्ध बिहार मे निवास करते थे। कश्मीर मे ही उन्होने ज्ञानार्जन किया था।

ईशा के जीवन में १० वर्ष का काल अज्ञात है। वे १० वर्ष कहा थे ? क्या किये, ? कुछ पता नही चलता। जीवन चरित्र की मूल धटनाओ में साम्य है।

कुछ मुसलिम लेखको का मत है कि प्रभु ईशा-मसीह की कब्र कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में है। उसे हजरत यूज़ आसफ कहते हैं। यह मज़ार श्री-नगर मे खानयार मे है। यह भी कहा जाता है कि यूज आसफ महात्मन् मूसा के वंशज थे। मिश्र के बादशाह ने कश्मीर में उन्हे अपना राजदूत बना कर कश्मीर के राजा के दरबार मे भेजा था। अरबी में यदि यूज़ आसफ लिखा जाय तो वह बोधि-सत्त्व तुल्य लगेगा। सम्भव है कि उक्त मज़ार मिश्री राजदूत यूज़ आसफ की रही होगी अथवा वहाँ कोई स्तूप था। जिसका सम्बन्ध बोधि-सत्त्व से था। उसे ही यूज आसफ इसलामीकरण निमित्त कर दिया गया।

पादत्रयस्य दृष्टार्थः श्लोकस्याऽऽसीत्स योगवित् ।
द्रष्टव्ये तुर्यपादार्थप्रत्यये कौतुकान्वितः ।। ९१ ।।

९१ श्लोक[1] के पाद त्रय का अर्थ देखकर, द्रष्टव्य चतुर्थ पादस्थ अर्थ के विश्वास मे वह योगवेत्ता कौतुकान्वित हो गया था ।

अचिन्तयच्च संभ्रान्तः कथमेतद्भविष्यति ।
उवाच च विधेः शक्तिमचिन्त्यां कलयंश्चिरम् ।। ९२ ।।

९२ सम्भ्रान्त होते हुए उसने सोचा—'यह कैसे होगा ?' और देर तक विचार करते हुए विधाता की शक्ति को (मन ही मन) अचिन्त्य कहा ।

कश्मीर मे हिन्दूराज के अन्त तथा इसलाम के प्रचार के साथ हिन्दूपरम्परा हिन्दू इतिहास आदि को इसलामीकरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। आदम, मूसा, सुलेमान, ईशा आदि नवियो के नाम से कश्मीर के पुराने स्थान तथा गाथाओं का नामकरण किया जाने लगा । यहाँ तक कि हिन्दू राजाओ का नाम भी बदल कर उन्हे मुसलमानो जामा पहना दिया गया। यह इसलिये किया गया कि नवीन बने मुसलमान तथा भावी सन्तानें हिन्दू इतिहास सस्कृत, सभ्यता को पूर्णतया भूलकर यही समझें कि कश्मीर में सनातन काल से इसलाम परम्परा कायम थी और उन्होने हिन्दूधर्म त्याग कर मुसलमान बनकर कुछ बुरा नही किया है। वल्कि पुराने मूल मजहव में पुन: लौट आए हैं। जिसे कभी त्याग दिया था ।

सन्धिमति का राज प्राप्ति के पश्चात् राज त्याग कर चले जाने का उल्लेख है। सन्धिमति का राजत्याग के पश्चात् सन्त होकर चले जाने का भी उल्लेख है। परन्तु उनका हुआ क्या ? वे कहाँ गये, कहाँ रहे तथा कहाँ मरे इतिहास के गर्भ मे है। ईशामसीह का पता सूली पर चढने के पश्चात् नही लगता। हाँ यह कहा जाता है कि उन्होने यहूदियो के राजा होने की वात कही जिसके कारण तत्कालीन सत्ता तथा कानून के अनुसार उन्हें सूली पर चढाया गया। सन्धिमति भी कश्मीर राज के कल्पित विद्रोहके नाम पर ही सूली का आलिगन किया था ।

वाइविल के समालोचको मे एक-मत ईशामसीह को ऐतिहासिक व्यक्ति जैसा वर्णन किया गया है नही मानता। रूसी वैज्ञानिको ने 'डेडसी स्क्रोल' जिसमें वाइविल लिखी है उसका अन्वेषण कर वताया है कि स्क्रोल का काल ईशा के कथित जन्म काल से पूर्व का है। ईशा तथा सन्धिमति के जीवनकाल तथा चरित्र में इतना साम्य है कि अभी गवेषणा की आवश्यकता है ।

सन्धिमति के गुरु का नाम ईशान था। यह शब्द 'ईशा' से मिलता है। इस विषय पर बिना कुछ विशेष अध्ययन के कहना साधिकारिक ढग से ठीक न होगा। यदि ईशान को हो कुछ लेखको ने ईशा नाम साम्य के कारण दिया होता तो बात कुछ दूसरी हो जाती ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९१ में 'दृष्टार्थ:' का 'दृष्टार्थं'; 'तुर्य' का 'चतुर्थं' तथा 'पादार्थ' का पाठभेद पदार्थं' मिलता है ।

श्लोक सख्या ९२ मे 'कथमे' का पाठभेद 'कार्यों में' मिलता है ।

तत्तत्कर्मव्यतिकरकृतः पारतन्त्र्यानुरोधा-
त्सज्जाः सर्वे व्यवसितहठोन्मूलनाय प्रयत्नात् ।
चित्रं तत्राऽप्युदयति विधेः शक्तिरत्यद्भुतेयं
यन्माहात्म्याद्द्विविधघटनासिद्धयो निर्निरोधाः ।। ९३ ।।

९३. "तत् तत् कर्म संसर्ग में संलग्न, सब लोग पारतन्त्र्य के अनुरोध से, सुनिश्चित (नियति) का प्रयत्न पूर्वक हठात् उन्मूलन हेतु समुद्यत होते हैं, किन्तु आश्चर्य है, वहां भी विधाता की यह अद्भुत शक्ति उदित हो जाती है । जिसके प्रभाव से, द्विविध घटना सिद्धियाँ निरोध रहित हो जाती है ।"

मणिपूरपुरे पार्थं निहतं समजीवयत् ।
फणिकन्याप्रभावेन सर्वाश्चर्यनिधिर्विधिः ।। ९४ ।।

९४. सभी आश्चर्यों के निधि विधि ने मणिपूर[1] में निहत पार्थ को नागकन्या[2] के प्रभाव से जीवित किया था ।

पादटिप्पणियाँ :

९३. राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह '५०वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ९४ में 'वेन' का पाठभेद 'वेण' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ:

९४ (१) **मणिपूर :** इस समय केन्द्रीय शासित प्रदेश है । इसका क्षेत्रफल २२३४६ वर्ग कीलो मीटर है । भागवत पुराण (९:२२·३२) के अनुसार यहाँ की राजकन्या के गर्भ से अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन हुआ था ।

(२) **नागकन्या :** मणिपूर के राजा चित्रवाहन थे । उनकी कन्या का नाम चित्रांगदा था । विवाह अर्जुन के साथ हुआ था । उनका पुत्र बभ्रुवाहन था । पुत्र को अर्जुन ने चित्रवाहन को दे दिया । विवाह के समय चित्रवाहन ने शर्त रखी थी । चित्रांगदा से उत्पन्न पुत्र, उसका राजवंश चलायेगा । चित्रवाहन नाना होते भी बभ्रुवाहन का धर्मपिता था । वह मणिपूर का कालान्तर में राजा हुआ । (म० आ० २०६:२४–२६; २०७:२१–२३)

महाभारत युद्ध के पश्चात्, महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया । यज्ञीय अश्व के साथ अर्जुन मणिपूर पहुँचे । बभ्रुवाहन ने अश्व पकड लिया । जब उसे मालूम हुआ कि उसके पिता का अश्व है तो द्रव्यादि भेंट के साथ वापस कर दिया ।

अर्जुन को पुत्र का यह कार्य कायरता पूर्ण प्रतीत हुआ । उसने धनादि लौटा दिया ।

अर्जुन का व्यंग बभ्रुवाहन समझ गया । उसने अपने मन्त्री सुबुद्धि से परामर्श कर अश्व पकड़ लिया । सेनापति सुमति के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया । अर्जुन, ससैन्य केवल पराजित ही नही हुआ, उसे अपने प्राण भी गवाना पडा । अर्जुन की ओर से कर्ण पुत्र वृषकेतु भी इस युद्ध में मारा गया था ।

गर्वोन्मत्त बभ्रुवाहन ने पिता के परास्त तथा हत्या की बात माता चित्रांगदा से आकर कही । चित्रांगदा पति की मृत्यु का समाचार सुनकर, विलाप करने लगी । अर्जुन के शव के साथ सती होने का निश्चय किया । बभ्रुवाहन को पितृ-हत्या के दोष का अपराध मालूम पड़ा । वह भी आत्महत्या करने पर तत्पर हो गया ।

द्रोणपुत्रास्त्रनिर्दग्धं मातुर्गर्भे परिक्षितम् ।
जीवयन्कृष्णमाहात्म्याद्धाता धुर्योऽधिकारिणाम् ॥ ९५ ॥

९५ द्रोण-पुत्रास्त्र[1] से माता के गर्भ में दग्ध परिक्षित[2] को कृष्ण के माहात्म्य से जीवित[3] करता हुआ विधाता अधिकारियों में अग्रणी हुआ।"

उलूपी नागकन्या थी। उसका पिता कौरव्य नाग था। वह बालविधवा थी। अर्जुन ने उससे गन्धर्व विवाह किया था। पति की मृत्यु का समाचार सुनी। दुःखी आयी। चित्रागदा को सान्त्वना दी। बभ्रुवाहन ने पिता तथा माता की जीवन रक्षा का उपाय विमाता से पूछा। उलूपी ने बताया। यदि शेष नाग से मृत सजीवन मणि लायी जाय तो अर्जुन जीवित हो सकता है।

बभ्रुवाहन शेषनाग के पास गया। मणि मागा। अन्य नागो की मन्त्रणा पर शेष नाग ने मणि देना अस्वीकार कर दिया। बभ्रुवाहन का शेषनाग से युद्ध हुआ। शेषनाग युद्ध में पराजित हो गया। बभ्रुवाहन मणि लेकर शव के समीप आया।

अर्जुन का शव मस्तक हीन उसने देखा। हताश हो गया। परन्तु कृष्ण अपने पुण्य प्रभाव से मस्तक पुनः लाये। उसका शव से सन्धि कर दिया गया। अर्जुन जीवित होगये। (जै० अ० ३७.२१–४०, म० आश्व० ७९–९०)

महाभारत में यह कथा दूसरो तरह से दी गयी है। वहाँ यह वणन मिलता है। बभ्रुवाहन ने अपनी विमाता उलूपी के अस्त्रो-शस्त्रो द्वारा अर्जुन को युद्ध में मूर्छित किया था। वह घटना सुनकर चित्रागदा ने सपत्नी उलूपी की निर्भत्सना को। उलूपी को अपनो भूल का ज्ञान हुआ। उसने बभ्रुवाहन को मृत सजीवक मणि दी। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के वक्ष स्थल पर मणि रखकर पिता को जीवित किया। (म० आश्व० ८१.९–१०, ९० १)

९५ (१) द्रोणपुत्र अश्वत्थामा से यहाँ तात्पर्य है। अश्वत्थामा चिरजीवितो में एक हैं।

(२) परिक्षित उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न अभिमन्यु का पुत्र था। महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् ३६ वर्ष राज्य किया। राज्य-सिहासन पर बैठने के समय परिक्षित की आयु ३६ वर्ष थी। इसकी पत्नी का नाम भद्रवती किंवा माद्रवती था। उनके चार पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा, भीमसेन थे। कृपाचार्य को ऋत्विज बनाकर भागीरथी के तटपर इसने ३ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसका देहावसान ९६ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इसने ६० वर्ष राज्य किया था। (दे० भा० २.८)

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् कलि ने पृथ्वी में प्रवेश किया। शूद्र रूप धारण कर वह पशु आदि की हत्या करने लगा। कलि को समाप्त करने के लिए परिक्षित उद्यत हो गया। कलि राजा परिक्षित की शरण में आया। निवास के लिये स्थान पूछने पर जूआ, मद्य, व्यभिचार, हिंसा तथा स्वर्ण पाच स्थानो में रहने के लिये राजा ने आदेश दिया। धर्म तथा पृथ्वी को सतोष हुआ। (आ० १ १६:१७)

मृगया निमित्त एक समय परिक्षित वन में गये। उन्हें प्यास लगी। जल ढूँढने लगे। ऋचीक मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ध्यानस्थ थे। वह राजा का आना जान न सके। जल की याचना सुन न सके। राजा को क्रोध आया। उसने पास ही पडे, एक मृत सर्प को मुनि के गले में डाल दिया। वापस चला गया। (म० आ० ३६ १७–२१)

शमीक के पुत्र शृंगी ऋषि को यह बात ज्ञात हुई। उसने शाप दिया। गले में साँप डालने वाले की मृत्यु सात दिन पश्चात् सर्प दंश से हो जायगी। शमीक के पुत्र का नाम कहीं-कही 'गविजात' भी दिया गया है।

शमीक को शाप की बात ज्ञात हुई। मुनि को दु.ख हुआ। पुत्र की भर्त्सना की। अपने शिष्य

गौरमुख से शाप की बात परिक्षित को बताने के लिये भेजा। (म० आ० ३८·१३–२८)

तक्षक नाग यथा समय परिक्षित को दंश करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में कश्यप मान्त्रिक मिला। वह नाग का विष उतारने परिक्षित के पास जा रहा था। तक्षक ने उसे यथेष्ट धन देकर, वापस कर दिया। निश्चित समय पर तक्षक द्वारा सर्पदंस के कारण परिक्षित की मृत्यु हो गयी। (म० आ० ३६–४०, ४५–४७ दे० भा० २:८–१०)

भागवत पुराण के अनुसार तक्षक ने ब्राह्मण रूप धर कर परिक्षित के राजभवन में प्रवेश किया था। तक्षक परिक्षित के समीप पहुँचते ही, तत्काल नागस्वरूप धारण कर, उसकी हत्या का कारण हुआ। (भा० १२ ६)

महाभारत में यह कथा दूसरी प्रकार से दी गयी है। तक्षक ने कतिपय नागो को फल, पुष्प देकर परिक्षित के पास भेजा। एक फल मे सूक्ष्म रूप कीड़ा बनकर बैठ गया। तपस्वी वेशधारी नाग परिक्षित के द्वार पर फल पुष्प भेंट करने की अनुमति माँगने लगे। परिक्षित ने उनके फल को स्वीकार किया। एक बडा फल स्वयं ले लिया। शेष अपने मित्रो को दे दिया।

परीक्षित ने फल फोडा। उसमें से एक लाल कीडा निकला। उसे देखकर परिक्षित ने व्यंगपूर्वक कहा—'सूर्य अस्ताचल जा रहा है। सातवाँ दिन पूरा हो रहा है। कही यही न तक्षकराज बन जाय ?' परिक्षित उस कीडे को अपनी गर्दन पर लेकर जैसे खेलने लगा। परन्तु तत्काल वह कीड़ा तक्षक नाग बन गया। उसके शरीर से लिपट गया। परिक्षित सर्पदंस से तत्काल मर गया।

पुराणो के अनुसार परिक्षित जन्म से मगध देश के राजा महापद्म का समय १५०० वर्षो का होता है। (मत्स्य० २७३.३६) विष्णु पुराण मे 'ज्ञेय' का 'शत' पाठ मानकर यह अवधि एक हजार एकसौ पन्द्रह वर्षो की निश्चित की गयी है। (विष्णु० : ४:२४:३२)

(३) जीवित करना—परिक्षित उत्तरा के गर्भ में था। महाभारत में दुर्योधन कौरवो से पराजित हो गया था। केवल अश्वत्थामा शेष रह गया था। वह पाण्डवद्रोही था। रात्रि में द्रोपदी के पाँचो पुत्रों की हत्या कर दी थी। उसने इसी प्रकार सूत, सोम, धृष्टद्युम्न, शिखंडी आदि अनेक वीरो का नाश किया। प्रसन्न अश्वत्थामा दुर्योधन के समीप गया। दुर्योधन घायल था। तड़प रहा था। भारतीय युद्ध की सम्पूर्ण सेना में केवल पाँच पाण्डव, श्री कृष्ण पाण्डव पक्ष के तथा कौरव पक्ष के केवल तीन अश्वत्थामा, कृपाचार्य एवं कृतवर्मा जीवित बच गये थे। द्रौपदी के पुत्रो आदि की हत्या सुनकर दुर्योधन बडा प्रसन्न हुआ। सुखपूर्वक प्राण विसर्जन किया।

द्रौपदी अत्यन्त दुःखी हुई। उसने प्रतिज्ञा की। अश्वत्थामा के मस्तक की मणि निकालकर यदि युधिष्ठिर के मस्तक पर वह न देखेगी तो प्राण त्याग देगी। भीम ने मणि प्राप्त हेतु अश्वत्थामा पर आक्रमण कर दिया। (म. सौ. ८,९ ११)

अश्वत्थामा चिरंजीवी था। भीमसेन का उसे हराना कठिन था। अतएव श्री कृष्ण, अर्जुन के साथ भीम की सहायता के लिए गये। पाण्डवो के नाश हेतु अश्वत्थामा ने ब्रह्मशीर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रतिकार निमित्त अर्जुन ने भी वही अस्त्र छोड़ा। पृथ्वी जलने लगी।

व्यासादि मुनियो ने अश्वत्थामा को पाण्डवो के शरण जाने के लिये कहा। उसने अपने अस्त्र को लौटाना स्वीकार नही किया। किन्तु मणि देने पर उद्यत हो गया।

उत्तरा के गर्भस्थ परिक्षित पर उसने अस्त्र छोडा। अस्त्र के कारण गर्भस्थ शिशु जलने लगा। उत्तरा ने भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने शिशु की रक्षा की। विष्णु का नाम इसलिये "विष्णु-रात" पड गया। यहाँ भारत के अनुसार कुरु वंश के परिक्षीण होने पर इसने जन्म लिया था। अतएव परिक्षित नाम पड़ा था। (म० अश्व० ७० : १०)

कचं भस्मीकृत दैत्यैर्नागांस्ताक्ष्येंण भक्षितान् ।
पुनर्जीवयितुं को वा दैवादन्यः प्रगल्भते ॥९६॥

९६. दैत्यों द्वारा भस्मी कृत कच[1] एवं तार्क्ष्य[2] भक्षित नागों को पुनः जीवित करने के लिये दैव के अतिरिक्त और कौन समर्थ हुआ ?

एक मत है कि परिक्षित जन्म लेते ही अपने रक्षक भगवान् को खोजने लगा। अस्तु 'परि+इक्ष' नाम प्राप्त किया। (भा० १ . १२ ३०) इस सन्धि के अनुसार नाम 'परीक्षित' होना चाहिए। परन्तु महाभारत में सर्वत्र नाम परिक्षित ही व्यवहृत हुआ है। कल्हण ने भी नाम 'परिक्षित' ही दिया है। मैंने भी यही नाम दिया है।

भागवत पुराण में यह कथा और तरह से हो गयी है। अश्वत्थामा ने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये द्रौपदी के पाँचो पुत्रो की हत्या कर दी। अर्जुन ने अश्वत्थामा को बन्दी बना लिया। उसे द्रौपदी के सम्मुख उपस्थित किया। द्रौपदी ने अश्वत्थामा को ब्राह्मण पुत्र के कारण उसे छोड देने के लिये अर्जुन से कहा। उसने अश्वत्थामा के चूडामणि को ले लेना पर्याप्त प्रतिशोध माना।

(भाग० १०.७१,४५,४६,४७)

९६ (१) **कच** : कच देवगुरु बृहस्पति के पुत्र थे। उनकी माता का नाम नही पता चलता। कच देवयानी कथा प्रसिद्ध है।

कच असुर गुरु शुक्राचार्य के पास सजीवनी विद्या सीखने के लिये सुरो द्वारा भेजे गये थे। कच ने इसे रहस्यमय ढग से गोपनीय रखा।

दैत्यों ने समझ लिया कि कच सजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिये आया था। कच को मार डालने का निश्चय दैत्यो ने किया।

एक दिन कच गुरु की गाय चरा रहा था। राक्षसो ने कच का टुकडे-टुकडे कर डाला। शृगालो को खिला दिया। शुक्राचार्य ने सजीवनी विद्या का प्रयोग किया। तत्काल कच शृगालो के शरीर से सजीव निकल आये।

दूसरी बार वह एक अरण्य में गया था। असुरो ने कच के टुकडे टुकडे काटकर समुद्र में फेक दिये किन्तु शुक्राचार्य से देवयानी ने पुनः जीवित करने का निवेदन किया। सजीवनी प्रयोग से पुन कच का शरीर जीवित हो गया।

तीसरी बार असुरो ने कच को मारकर उसका चूर्ण बना डाला। उस चूर्ण को सुरा मे मिलाकर शुक्राचार्य को पिला दिया। ज्ञात होने पर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या के प्रभाव से उसे पुकारा। उसने गुरु के उदर से ही उत्तर दिया—'वह उदर में है।' शुक्राचार्य ने कहा—'बाहर आओ।' वह बाहर आने के लिये तैयार न हुआ। उत्तर दिया 'मैं गुरु हत्या का दोषी कैसे हो सकता हूँ।'

देवयानी कच से अत्यन्त प्रेम करती थी। उसने पिता से कच की रक्षा के लिये आग्रह किया। शुक्राचार्य ने कहा—'कच के प्राप्त होने पर मेरी मृत्यु हो जायगी।' देवयानी ने दोनो में से किसी का मरना स्वीकार नही किया। विवश होकर शुक्राचार्य ने उदर स्थित कच को सजीवनी विद्या सिखायी। उसे समझा दिया। वह पहले जी जायगा। तत्पश्चात् बाहर आकर मरे हुए उसे सजीवनी विद्या के प्रयोग से जिला दे। कच ने यही किया।

किन्तु गुरु कन्या होने के कारण कच ने देवयानी को बहन तुल्य माना। उससे विवाह करना अस्वीकार कर दिया। देवयानी ने उसे शाप दिया। सजीवनी विद्या उसे फलप्रद नही होगी। कच ने गुरु कन्या और बहन समझकर उसे प्रतिशाप नही दिया। परन्तु कहा—मैं यह विद्या दूसरे को सिखा दूँगा। वह प्रयोग करेगा। मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा।

इत्युक्त्वा भाविनोऽर्थस्य द्रष्टुं सिद्धिं समुद्यतः ।
तत्रैव बद्धवसतिः कङ्कालं स ररक्ष तम् ॥९७॥

९७. इस प्रकार कह कर भावी अर्थ की सिद्धि देखने को समुद्यत उसने वही पर निवास करते हुए उस कंकाल को रक्षित किया।

अथार्धरात्रे निर्निद्रस्तयैवाद्भुतचिन्तया ।
धूपाधिवासमीशानो घ्रातवान्दिव्यमेकदा ॥ ९८ ॥

९८. एक समय उसी अद्भुत चिन्ता में निद्रारहित ईशान ने अर्धरात्रि में दिव्य धूपगन्ध का अनुभव किया।

उच्चण्डलाडनादण्डोद्घृष्टघण्टौघटांकृतैः ।
चण्डैर्डमरुनिर्घोषैर्घर्घरं श्रुतवान्ध्वनिम् ॥ ९९ ॥

९९. दीर्घ ताडन दण्ड ताडित घण्टों के नादों एवं भयंकर डमरु निर्घोषों से घर्घर ध्वनि सुना।

---

(२) तार्क्ष्य . जीमूतवाहन द्वारा नागो के जीवित करने का उल्लेख कथासरित्सागर मे सरल शैली मे कश्मीरी कवि सोमदेव (ग्यारहवी शताब्दी) ने वर्णन किया है। सोमदेव कवि क्षेमेन्द्र का समकालीन था।

तार्क्ष्य नाम के अनेक व्यक्ति हुए है। ऋग्वेद मे तार्क्ष्य एक अश्व का नाम है। (ऋ०: १:८९:६; १० १७८) त्रसदस्यु का यह वश माना गया है। (ऋ० ८:२२:७) तार्क्ष्य को एक पक्षी या वायस कहा गया है। उसे वैपश्चित नामक पक्षियो का राजा कहा गया है। अरिष्टनेमि का एक पैतृक नाम तार्क्ष्य है। तार्क्ष्य एक आचार्य भी थे (ए. अ. ३.१ ६, सा. ग्रा. ७ १९) कश्यप प्रजापति का नामान्तर तार्क्ष्य है। दक्ष ने इसे अपनी कन्याएँ दी थी। सरस्वती से इनका सम्भाषण हुआ था। (म. व. १८४: तथा १८६)

यह कश्यप तथा विनता का पुत्र तथा गरुड का भाई था। (म० आ० ६५:४०) भगवान् शिव का भी एक नाम तार्क्ष्य कहा गया है। (अनु० १७ ९८) तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड, अरुण, अरुणी तथा वरुणी विनता के पुत्र है। कद्रू के पुत्र शेष, अनन्त आदि नाग है। विनता एवं कद्रू सपत्नियाँ हैं। उनमें वैमनस्य तथा शत्रुता स्वाभाविक है। उनकी लडाई प्रसिद्ध है। इसी प्रकार उनकी सन्तानें भी परस्पर एक दूसरे से शत्रुता रखती थी।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ९८ में 'मेकदा' का पाठभेद 'मेकत मिलता है।

श्लोक संख्या ९९ मे 'उच्च' का 'उश्च' 'लाडना' का 'वादना' 'लाद्रना', 'वदना' तथा 'डमरु-निर्घोषै' का पाठभेद 'डमरुघोष्यैश्च' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

९९ (१) **लाडन दण्ड** . ताडन का अर्थ आघात करना होता है। ताडन दण्ड घण्टा बजाने की मुगरी अथवा लकडी का बना दण्ड अर्थात् दण्ड समान वस्तु थी। जापानी घंटा में डण्डा रस्सी मे बँधा रहता है। वह गोल घंटा पर आघात करता है। भारतीय मन्दिरो तथा चर्च मे घण्टो में लोलक भीतर लगे रहते हैं। एक घण्टा साधारण मोटे चद्दर अष्ट धातु का होता है। उसे मुगरी या लकडी से ठोक कर बजाते है।

उद्घाटिततमोरिः स ततः पितृवनावनो ।
ददर्श योगिनीस्तेजःपरिवेषान्तरस्थिताः ॥ १०० ॥

१००. तदुपरान्त उसने गवाक्ष खोलकर स्मशान भूमि पर तेज के परिवेश में स्थित योगिनियों को देखा ।

तासां संभ्रममालक्ष्य कङ्कालं चापवाहितम् ।
ईशानस्तां श्मशानोर्वी धृतासिश्चकितो ययौ ॥ १०१ ॥

१०१. उनके सम्भ्रम एवं अपहृत कंकाल को देखकर तलवार लिये चकित ईशान उस स्मशान पर गया ।

अथाऽपश्यत्तरुच्छन्नः शायितं मण्डलान्तरे ।
सन्धीयमानसर्वाङ्गं कङ्कालं योगिनीगणैः ॥ १०२ ॥

१०२. तत्पश्चात् वृक्ष के ओट से उसने देखा कि योगिनियाँ मध्य में ककाल को सुलाकर सब अंगो को जोड़ रही थीं ।

उल्लसद्वरसंभोगवाञ्छा मद्यपदेवताः ।
वीरालाभात्समन्विष्य कङ्कालं तमपाहरन् ॥ १०३ ॥

१०३. वर सम्भोग की उत्कट कामना बस उन मद्यप योगिनियों ने किसी वीर (पुरुष) के अभाव में खोजकर उस कंकाल का अपहरण कर लिया ।

एकमेकं स्वमङ्गं च विनिधाय क्षणादथ ।
कुतोऽप्यानीय पुंलक्ष्म पूर्णाङ्ग तं प्रचक्रिरे ॥ ०४ ॥

१०४. अपने एक-एक अंग को रखकर और कहीं से पुंलक्ष्म (शिश्न) लाकर, उसे सर्वांग पूर्ण कर दिया ।

जोनराज ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है ।

अचलल्लाडनादण्डघण्टानाद्भचण्डटांकृतम् ।

मनांसि न पुनस्तेषां वीराणा साहसस्पृशाम् ॥

पाठभेद :

श्लोक सख्या १०० मे 'ददर्श' का 'दर्शयन्' तथा 'स्थिता.' का पाठभेद 'स्थित ' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

श्लोक सख्या ९९ और १०० का अनुवाद श्री स्तीन, श्री पण्डित तथा अन्य अनुवादको ने एक साथ ही किया है । यहाँ पर दोनो श्लोको का अनुवाद अलग-अलग कर दिया गया है । इससे अर्थ में विप्रतिपत्ति नही होती है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १०१ मे 'मालक्ष्य' का पाठभेद 'माकर्ण्य' मिलता है ।

श्लोक सख्या १०३ मे 'सम्भोग का 'सयोग' 'मद्यप-देवता' का 'मध्यमदेवता' 'मुद्यमदेवता तथा 'तमपाहरन्' का पाठभेद 'तमुपाहरन्' मिलता है ।

श्लोक संख्या १०४ में 'कुतो' का 'ततो' तथा 'पुलक्ष्म' का पाठभेद 'पुलिङ्ग' मिलता है ।

अथ पुर्यष्टकभ्राम्यदनाक्रान्तान्यविग्रहम् ।
योगेनाकृष्य योगिन्यस्तत्र संधिमतेर्न्यधुः ॥ १०५ ॥

१०५. सन्धिमति के पुर्यष्टक को आकृष्ट कर योगिनियों ने उस (शरीर) में रख दिया ।

ततः सुप्तोत्थित इव प्रत्तदिव्यविलेपनः ।
समभुज्यत ताभिः स यथेच्छं चक्रनायकः ॥ १०६ ॥

१०६. तत्पश्चात् सुप्तोत्थित सदृश दिव्य लेपन लिप्त उस चक्र नायक[1] ने उनसे समुपभोग किया ।

ईशानस्तस्य देवीनां वितीर्णाङ्गहृतिं पुनः ।
क्षपायां क्षीयमाणायां चकितः पर्यशङ्कत ॥ १०७ ॥

१०७. रात्रि के क्षीयमाग होने पर, चकित ईशान ने देवियों द्वारा उसके (सन्धिमति के) सम्पृक्त अंगों के हरण की आशंका की ।

नदंस्तद्रक्षया धीरः स च तत्स्थानमाययौ ।
तच्च योगेश्वरीचक्रं क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १०८ ॥

१०८. वह धीर उसकी रक्षा हेतु, नाद करता हुआ उस स्थान पर आ गया और वह योगिनी समूह तत्क्षण अन्तर्हित हो गया ।

श्लोक संख्या १०५ में 'पुर्यष्टक' का 'पुर्यष्टकं' 'भ्राम्यद' का 'भ्राम्यन्म' तथा 'योगिन्य' का 'योगेश्य', 'योगेस्य' 'योगेभ्यः' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१०५ (१) पुर्यष्टक—पुर्यष्टक का विशद वर्णन रूप, कार्यकलापादि का 'योगवासिष्ठ रामायण' में मुख्यतः लीला उपाख्यान में किया गया है । द्रष्टव्य है—योगवासिष्ठ कथा'

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०६ में 'सुप्तो' का 'स्वप्तो' तथा 'प्रत्तदि' का पाठभेद 'प्रमुदि' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१०६ (१) चक्रनायक : जोनराजने चक्रनायक के स्थान पर योगिनी नायक शब्द का प्रयोग किया है ।

योगिनीनायको दूरात् परिज्ञाय नृपात्मजम् ।
योगिनीनिकटं प्रापुर्विकटप्रकटौजसः ॥३४८॥

चक्रनायक एक आयुर्वेदिक औषधि होती है । भैरवी चक्र मे उसके नेता के रूप मे चक्रनायक एवं चक्रेश दोनो शब्द मिलता है । वह तान्त्रिक चक्र का अधिष्ठाता माना जाता है । चक्रनायक का भी अर्थ व्याघ्रगन्ध नामक गंध द्रव्य होता है ।

योग तथा तन्त्र साहित्य में चक्रो का वर्णन मिलता है । मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाषट्चक्र व्यक्ति के रीढ प्रदेश पर शरीर के अति निम्नभाग से मूर्धा तक जाता है । मूर्धा पर सहस्रधारा होती है । शुभाशुभ के निर्णय हेतु स्वर तथा सर्वतोभद्रादि ८४ चक्रो का उल्लेख मिलता है ।

पाठभेद .

श्लोकसख्या १०७में 'ईशानस्तस्य'का 'ईशानतस्य' तथा 'र्णाङ्गहृतिं' का पाठभेद 'र्णाङ्गाहृति' मिलता है ।

अथाऽश्रूयत वाक्तासां मा भूदीशान भीस्तव ।
नास्त्यङ्गहानिरस्माकं वृते चास्मिन्न वञ्चना ॥ १०९

१०९. अनन्तर उनकी वाणी सुनायी पड़ी-हे ईशान ! तुम्हें भय न हो। हम लोगों के चुने इसमें (शरीर में) अंग हानि एवं वंचना नहीं है ।'

अस्मद्वराद्दिव्यवपुः संधितः संधिमानसौ ।
आर्यत्वादार्यराजश्च ख्यातो भुवि भविष्यति ॥ ११० ॥

११०. "हम लोगों के वर से संयुक्त दिव्य शरीर यह सन्धिमान[1] आर्य[2] होने के कारण पृथ्वी पर प्रसिद्ध 'आर्य राज'[3] होगा ।"

ततो दिव्याम्बरः स्रग्वी दिव्यभूषणभूषितः ।
ववन्दे संधिमान्प्रह्वः प्राप्तपूर्वस्मृतिर्गुरुम् ॥ १११ ॥

१११. तदुपरान्त दिव्याम्बर एव माला धारी, दिव्य भूषण—भूषित, विनत सन्धिमान ने पूर्व स्मृति प्राप्त कर, गुरु की वन्दना की ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ११० में 'राजश्च' का 'राजाख्य.' 'राजाख्य' तथा 'भुवि' का पाठभेद 'राजा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

११० (१) सन्धिमान : अगो को योगिनियो द्वारा सन्धि करने पर योगिनियो ने उसे सन्धिमान नाम से सम्बोधित किया । इसी प्रकार जरासन्ध के शरीर से दोनो भागो को जरा ने एक में जोडा तो जोडने वाले के नाम के साथ उसका नाम जरासन्ध पड गया था ।

कल्हण ने इसके पश्चात् सन्धिमति के स्थान पर 'सन्धिमान' नाम का ही प्रयोग किया है । सन्धिमति नाम का पुन. उल्लेख नही मिलता ।

(२) आर्य . स्त्रियाँ आर्य शब्द पति के लिये आदर प्रदर्शन हेतु प्रयोग करती है । योगिनियाँ भी स्त्री थी । उन्होंने सन्धिमति के साथ पतिवत् व्यवहार किया था अतएव उन्होने आदर सूचक श्रेष्ठ शब्द 'आर्य' से सन्धिमत का सम्बोधन किया है । अपने को स्त्री स्वरूप स्वीकार कर लिया था । [illegible] नाम नही लिया । प्रतीत होता है । कल्हण काल में भी पत्नी अपने पति का नाम नही लेती थी । यह प्रथा अब भी प्रचलित है । कल्हण ने बडी चातुरी के साथ योगिनियो के मुख से 'सन्धिमति' मूल नाम के स्थान पर 'सन्धिमान' तथा 'आर्य' कहलवाकर इस प्रथा का निर्वाह किया है ।

(३) आर्य राज : योगिनियो ने अपने पति स्वरूप सन्धिमति को 'आर्य' शब्द से सम्बोधन किया था । अतएव उसका नाम 'सन्धिमति', 'सन्धिमान' के स्थानपर 'आर्यराज' रख दिया । उनका पति काश्मीर का राजा होगा । इससे यह भाव प्रकट होता है ।

आर्यराज का अर्थ होता है आर्यों का राजा । प्राचीन काल में कुल के कर्ता के लिये आर्य सम्बोधन प्रयुक्त किया जाता था । कुल की पत्नियाँ अपने पति को 'आर्य पुत्र' शब्द से सम्बोधित करती थी । कल्हण ने इसका प्रयोग पुनः तरग ८ में किया है । (रा० त० ८ : ३२४७) प्राकृत में आर्य शब्द 'अज्ज' हो गया था । आधुनिक 'जी' शब्द अज्ज का अपभ्रंश है । जी नाम के अन्त में लगाना आदर सूचक माना जाता है ।

ईशानोऽपि तमालिंग्य स्वप्नेष्वपि सुदुर्लभम् ।
भूमिकामाललम्बे कामिति को वक्तुमर्हति ॥ ११२ ॥

११२. ईशान ने स्वप्न में भी सुदुर्लभ उसे आलिंगन कर, किस आनन्द की प्राप्ति की, यह कहने में कौन समर्थ है ?

असारं च विचित्रं च संसारं ध्यायतोर्मिथः ।
विवेकविशदा तत्र प्रावर्तत तयोः कथः ॥ ११३ ॥

११३. वहां पर परस्पर असार एवं विचित्र संसार का चिन्तन करते हुए, उन दोनों की विवेक-विशद कथा चली ।

अथ वार्ता विदित्वेमां कुतोऽपि नगरौकसः ।
सबालवृद्धाः सामात्यास्तमेवोद्देशमाययुः ॥ ११४ ॥

११४. किसी प्रकार इस बात को जानकर सबाल-वृद्ध, नगर निवासी, अमात्य सहित उस स्थान पर आ गये ।

पूर्वाकृतिविसंवादाद् भ्रमो नाऽयं स इत्यथ ।
तेनाच्छिद्यत संवादि निखिलान्पृच्छता वचः ॥ ११५ ॥

११५. पूर्वाकृति से भिन्न होने के कारण यह, वह (मन्त्री) नहीं है, उस भ्रम को संवादी निखिल लोगों से बातें पूछते हुए उसने दूर कर दिया ।

अर्थनां शासितुं राष्ट्रं पौराणामपराजकम् ।
सोऽन्वमन्यत कृच्छ्रेण निस्स्पृहः शासनाद्गुरोः ॥ ११६ ॥

सन्धिमान आर्यराजा

११६. नृप हीन राष्ट्र के शासन हेतु, पुरवासियों की प्रार्थना करने पर, गुरु के आदेश से निस्पृह उसने कष्ट पूर्वक अनुमति दे दी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११२ मे 'ललम्बे' का पाठभेद 'ललम्भे' मिलता है ।

श्लोक संख्या ११५ में 'संवादि' का पाठभेद 'संवासि' मिलता है ।

श्लोक संख्या ११६ में 'अर्थनां' का पाठभेद 'अर्थाना' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१. आइने अकबरी में सन्धिमति का नाम 'अरिराज' और राज्य काल ४७ वर्ष दिया गया है ।

२. हसन सन्धिमान के विषय मे लिखता है—'राजा सन्दीमान अलमारुफ व आर्य राज ३०३१ क० में बातफ़ाक अराकीन शहर कश्मीर पर मुतमकुन हुआ । इन्तज़ाम सल्तनत और फौज और रैयत के साथ अदल व इन्साफ़ से पेश आने में बदिल व जान कोशिश करता । जिस मुकाम पर उसे सूली दी गयी थी वहाँ उसने सन्दशूर का मन्दिर बनवाया । ईशा बरारी मे अपने मुरशिद की ताज़ीम व तकरीम के पेश नज़र ईशेश्वर का मन्दिर बनवाया । मुक़ाम थेद मे थेदा देवी का मन्दिर और मौज़ा बमरू में भीमा देवी की यादगार क़ायम की । परगना फाग की आबादी और सर सब्ज़ी के लिये दरयाए सन्दलार से एक नहर जारी की । जिसका नाम आरी कुल रखा । परगना लार में आरी नाम

का गाँव आबाद करके नहर आर्य कुल के अखराजात के लिये वकफ कर दिया।

'आखिरकार गद्दार दुनिया मे एतबार न रखकर अकसर औकात इबादत और मन्दिरो के बुतो की पूजापाठ में सर्फ किया करता था। रोजाना हर शुबह एक हजार शिव लिंग बनवाकर उनकी पूजा करता। वह चीज ममालह मुल्की और अमूर सल्तनत को कमाहक देख-भाल से माना हुई। लोग इस बात से बहुत तग हुए। आर्यराज न भी अपने दिल में इस अम्र का अहसास कर लिया। मुल्क से सर करद लोगो को अपने रूबरू बुलाया। और कहा "अब तक मै तुम्हारे कहने सुनने से अमूर सल्तनत सरजाम देता था। अब मुनासिब होगा कि किसी और शख्स को इस काम के लिए तैयार कर लो और मुझे माजदर समझो।

'बाज अजी हिरन की खाल पहन ली और बोमजू को गार में चला गया। और कुछ अरसा बाद लोगो की नजरो से गायब हो गया। तब से लोग इस गार को गार आर्य राय कहने लगे। ४७ बरस हकूमत मे गुजारे आर्य राय को हकूमत के तेरह बरस बाद सन् विक्रमी शुरू हुआ। सन् कलयुग ३०४४ बरस गुजरे। तबालत के खौफ मे इन्हें तर्क किया गया।

'राज सन्दीमान के आखिरी अहद हकूमत मे लोगो में मशहूर हो गया कि राजा अन्ध युधिष्ठिर का पोता गोपादित्त नाम राजा कन्दहार के जेर साया औकात बसर करता है। उसका एक बेटा है। मेघवाहन नाम जो इन्तहाई दरजा का लायक व फायक है। इन्ही दिनो परयाग के राजा जोतिश ने अपनी बेटी अमरितपरभा के स्वयवर का इश्तहार दिया हुआ था। इस चीज के पैशनजर मेघवाहन बाप की इजाजत से जशन स्वयवर मे हाजिर हुआ। अमरित परभा ने उसे देखते ही इन्तहाई पसन्द किया। और फूलो की माला उसकी गरदन में डाल दी। मेघवाहन साज वो सामान और पसन्दीद दुलहिन के साथ कन्दहार में रहने लगा। कश्मीर के अवाम सन्दीमान की कमजोरी के बायस पहले ही से दिलगीर थे। जब उन्होने राजा मेघवाहन का नाम सुना तो उसके खिदमत मे कश्मीर के करने का पैगाम भेजा। इन ६ राजाओ की हुकूमत एक सौ बयानवे बरस शुमार होता है।"

हजरत सुलेमान और सन्दिमान-हसन एक अजीब कहानी उपस्थित कर सुलेमान को सन्धिमान प्रमाणित करने का प्रयास करता है।

'मुला अहमद रतनागर के तरजुमा में हुकम तराज है कि दामोदर के मसरब होने के बाद उसका बेटा नरेन्दर हुक्मरानी के तकिया पर बैठा। इसके थोडे दिनो के बाद एक शख्स सन्दिमान नामी जो मुल्क मगरिब के आबिदो और जाहिदो में से था। सर जमीन कश्मीर में वारिद हुआ। इस शख्स ने रयाजत के जोर से ऐसा रुतबा पाया था कि उसका विमान यानी उडन खटोला हवा पर जाता था। जिन्द और परिन्दे उसके अहकाम के फरमा बरदार थे और उसके साथ साथ जाते। जब उसके तख्त में शहबाज की तरह कश्मीर की तमाम हदूद की सैर कर ली तो बिल आखीर कोह लारिक जेह यानी कोह सुलेमान को चोटी पर ठहर गया। इस हाल को देख कर आम और खास लोग वहा जमा हो गये। और उसकी शान व शौकत और आब व दाब को देखकर दग रह गये।

'राजा नरेन्द्र इस खबर के सुनते ही फौरन् हाजिर खिदमत हुआ। राजा सन्दिमान को शोशूनदी और रजामन्दो हासिल की। इसके अलावा जिस शख्स ने भी उसके सामने अपनी कोई मुराद रखी वह उसमें कामयाब व बामुराद हुआ। चूँकि शहर सन्दमत नगर के गर्क हो जाने से कश्मीर की सतह हदूद बँजबारह तक हमेशा सैलाबी रहती थी इस वजह से लोग गलात की तगी और कहत के बायस हमेशा आजिज रहते थे। इसलिए उन्होंने सन्दिमान के रूबरू इलतजा की कि यह पानी कश्मीर से

प्राप्योपवनोपान्तं तं दिव्याकृतिशोभिनम् ।
सतूर्यं स्नापयामासुरभिषेकाम्बुभिर्द्विजाः ॥ ११७ ॥

११७. उपवन के समीप ले जाकर, ब्राह्मणों ने दिव्याकृति शोभित उसे तूर्य नाद पूर्वक अभिषेक जल से स्नान कराया।

निकाल दिया जाये। सन्दिमान ने जिन्नो की एक जमाअत को उन पत्थरो के उठाने पर जो जलजला की वजह से खादन पार के मुकाम पर दरया मे लुढक गये थे। हुक्म दिया। हुक्म पाते ही जिन्नो ने दरया को गहराई से पत्थरो को निकाल लिया। जिससे रुका हुआ पानी फिर से जारी हो गया। और थोडे ही अरसा मे कश्मीर की अन्दरूनी सतह जाहिर हो गयी।

'राजा नरेन्दर ने आजनाव की दोस्ती और रफाकत को अपने ऊपर पसन्द किया। और मुल्क कश्मीर की हुकूमत से दस्तबरदारी अख्तियार कर लो। सन्दिमान को भो उसकी यह ख्वाहिश पसन्द आई और हमेशा अपने साथ रहने और पास बैठने की इजाजत से उसे सर्फराज किया।

'कहते हैं तुरकिस्तान के शाहजादो मे से तीन आदमी हुश्क, कनिष्क और जुश्क राजा सन्दिमान के इस तख्त पर हमराह थे। इस बिना पर अपनी पैदाइश खसलता के बमूजिब इन तीनो शहजादो को मुल्क कश्मीर बतौर जागीर बख्शा। इस मुल्क के बहुत से लोगो को अपना गरवीदा बना लिया। एक हफ्ता तक कश्मोर के सैर व सयाहत करके वापसी अख्तियार किया।

'मतरजुमा यानी मुल्ला अहमद कहता है कि इससे साफ मालूम होता है कि सन्दिमान हजरत सुलेमान होगे। क्योंकि मशरिक के लोग उसे सन्दिमान यानी रयाजत कीश इन्सान कहते है और तमाम दुनिया में सबको मालूम है कि हजरत सुलेमान का तख्त ही हवा पर उडता था। उसके तावे में जिन और परी थे। और तफीर लफ्जी के बिना पर कश्मीर के लोग हजरत सुलेमान को सन्दीमान कहते हैं। उस वक्त से लेकर इस वक्त तक कोह लारक जेर को कोह सुलेमान या कोह सन्दोमान कहा जाता है। नीज खत्ता कश्मीर का दूसरा नाम 'बाग सुलेमान' भी है।''

मै प्रथम तरग पर इस विषय में लिख चुका हूँ कि सुलेमान का काल ९७०-९३३ वर्ष ईसा पूर्व था और कनिष्क का काल सन् ७८—१०७ है। इस प्रकार दोनो के समयो मे १०४८ वर्ष का अन्तर पडता है। सन्धिमान का काल हसन ने क० ३०३१ सवत् तथा कनिष्क का क० १७९८ संवत् बतलाया है। सन्धिमान १२३३ वर्प पूर्व कनिष्क का होना स्वीकार करता है। दोनो के कालो मे १२३३ वर्षो का अन्तर है। सुलेमान ९७० वर्ष ईशा पूर्व हुए थे अतएव सन्धिमान तथा सुलेमान के समयो मे २२८१ वर्षों का अन्तर पड जाता है। हसन इन अन्तरो का किसी प्रकार भी स्पष्टीकरण करने में असमर्थ होता है। अतएव सुलेमान और सन्धिमान एक ही व्यक्ति है यह धारणा सर्वथा भ्रामक एव मिथ्या है।

(३) राजा का निर्वाचन : राजा के निर्वाचन का उल्लेख पूर्व वैदिक काल में मिलता है। ऋग्वेद मे उल्लेख आता है।

'ता ईं विशो न राजानं वृणाना वीभत्सवो अप वृत्रादतिष्ठन्।' (१०·१२४ ८)

विश द्वारा राजा का निर्वाचन किया गया था। अथर्ववेद में भी विशो द्वारा राजा के निर्वाचन की कामना को गयी है।

'त्वा विशो वृणता राज्याय।' (३:४ २)

पादटिप्पणियाँ

११७ श्री विलसन ने अभिषेक का काल ईशा पूर्व २३ वर्ष ९ मास और समोकृत काल सन् १३५ ई. तथा राज्य काल ४७ वर्ष दिया है।

नवराजोचिताचारे न स शिक्षामपैक्षत ।
दृष्टकर्मा समस्तास्तु निस्तुषाः प्रक्रिया व्यधात् ॥ ११८ ॥

११८ अनुभवी उसने नये नृप के उचित आचार हेतु शिक्षा की अपेक्षा नही की, उसने समस्त प्रक्रियाओं को सरल कर दिया ।

स राजोचितनेपथ्यः पौराशीर्घोषशोभिनीम् ।
सौधोन्मिषल्लाजवर्षां ससैन्यः प्राविशत्पुरीम् ॥ ११९ ॥

११९. राज्योचित परिधानयुक्त उसने सेना के साथ, पुरवासियों के आशीर्घोष से रम्य एवं सौधों से उन्मिषित लाजवृष्टि पूर्ण पुरी में प्रवेश किया ।

तस्मिन्विरजसि प्राज्यमाक्रामति नृपासनम् ।
आचक्राम प्रजा व्यापन्न दैवी न च मानुषी ॥ १२० ॥

१२०. महान् नृपासन पर रजोगुण रहित उसके आसीन होने के पश्चात् प्रजा पर दैवी एवं मानुषी आपत्ति नहीं आयी ।

अहरन्हृदयं तस्य शृङ्गारहितविभ्रमाः ।
नितम्बिन्यो वनभुवः शमिनो न तु योषितः॥ १२१ ॥

१२१. शमी उसके हृदय को शृङ्गार हित विभ्रम शालिनी एवं नितम्बिनी[1] वनभूमिओं ने अपहरण किया, न कि (एवंभूत) योषिताओं ने ।

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय ईशा पूर्व २४ वर्ष तथा राज्य काल ४७ वर्ष माना है ।

श्री स्तीन ने अभिषेक का समय लौकिक सवत् ३०४१ तथा राज्य काल ४७ वर्ष माना है ।

श्री वालो ने यह समय सप्तर्षि सवत् ३९४२ तथा सन् १७५ ई० दिया है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ११८ मे 'पैत्तत' का पाठभेद 'पेत्तत' मिलता है ।

श्लोक सख्या ११९ में 'सौधोन्मि' का 'सौधोमि' तथा 'ससैन्य' का पाठभेद 'ससैन्या' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१२१ इस श्लोक का एक अर्थ यह भी होता है— "शमो उसके हृदय को शृ गो से शोभायमान सुन्दर उपत्यका वाली वनभूमिओ में अपहृत किया न कि शृगार के लिये विलासवती नितम्बिनी योषिताओ ने ।"

(१) नितम्ब इस श्लोक में नितम्ब एव शृगारहित विभ्रम श्लिष्ट है ।

नितम्ब का अर्थ पर्वत का निम्न प्रदेश तथा रमणी का नितम्ब अर्थात् कटि प्रदेश का निम्न भाग होता है ।

शृगारहितविभ्रम का एक अर्थ शृ गो से शोभमान और अपर अर्थ शृगार के लिये विलासशालिनी रमणी होता है ।

शृंगार एव शान्त रस परस्पर विरोधी हैं । परन्तु यहाँ कल्हण ने दोनो के अपुष्ट रूप का एक साथ चित्रण किया है । इसी प्रकार भर्तृहरि ने निम्नलिखित श्लोक में इसको अभिव्यक्त किया है ।

"मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्य-
मार्याः समर्यादमिद वदन्तु ।
सेव्या नितम्बा किमु भूधराणमुत
स्मितस्मेरविलासिनीनाम् ॥"

वनप्रसूनसंपर्कपुण्यगन्धैस्तपस्विनाम् ।
कर्पूरधूपसुरभिः करैः स्पृष्टः स पिप्रये ॥ १२२ ॥

१२२. कर्पूर[1] एवं धूप[2] से सुरभित वह, तपस्वियों के वनपुष्प संपर्क से पुण्यगन्ध शाली करों का स्पर्श प्राप्तकर, प्रसन्न हुआ।

भूतेशवर्धमानेशविजयेशादपश्यतः ।
नियमो राजकार्येषु तस्याऽभूत्प्रतिवासरम् ॥ १२३ ॥

१२३. भूतेश[1], वर्धमानेश[2], तथा विजयेश[3] का जब दर्शन नही करता था, उस समय प्रति दिन राज्य कार्य ही उसका नियम हो गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२२ मे 'स्पृष्टः' का पाठभेद 'पृष्टः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२२ (१) कपूर—कपूर का शिव की पूजा मे बहुत महत्व है। कपूर से भगवान् के वर्ण की उपमा दी गयी है। कपूर से आरती करने की प्रथा सर्वत्र भारत में प्रचलित है। कपूर का गुण शीतलता है। वह सुगन्धित होता है। उसकी सुगन्धि सात्विक होती है। कुछ विचित्र गति है। कपूर शीतल होते हुए भी गुणकारी होते हुए भी अपने में अग्नि छिपाये बैठा रहता है। अग्निस्पर्श से वह ज्योतिर्मय हो जाता है। स्पर्श गुण से कितना अन्तर वस्तु परिस्थितियो में हो जाता है। कपूर उसका ज्वलन्त उदाहरण है। शीतल होते हुए भी दाहक हो जाता है।

इस समय कपूर के तीन वर्ग है। जापानी और चीन का बना भीमसेनी अथवा वरास द्वारा निर्मित और भारतीय अथवा पत्री कपूर। यह उडनशील वनस्पति से बना पदार्थ है। जापानी नाम से प्रसिद्ध कपूर का पौधा चीन, जापान, फारमूसा तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशो मे मिलते है। इसका पौधा देहरादून, सहारनपुर, नीलगिरि तथा मैसूर मे मिलता है। नैपाल मे भी इसके वृक्ष होते है। भारत मे यह कर्पूर की पत्तियो तथा जापानादि में पचास वर्ष के ऊपर के वृक्षो के काष्ठ के आसवन से निकाला जाता है। भीमसेनी कर्पूर सुमात्रा तथा वोर्नियो (वरुण द्वीप) मे होता है। इसको पहचान यह है कि जल मे डालने से यह डूब जाता है। आज कल कृत्रिम कपूर का व्योहार बढ गया है। कपूर का गुण वातनाशक होता है। कफघ्न भी होता है। विसूचिका तथा त्वचा रोग मे विशेष लाभकारी और कृमी नाशक होता है।

काश्मीर उपत्यका में कपूर का बाहर से ही आयात होता था।

(२) धूप-देव निमित्त सुगन्धि के लिये जलाये जाने वाले सभी पदार्थों का समावेश धूप शब्द मे हो जाता है। धूप गन्ध का प्रयोग प्रायः एक साथ मिलता है। धूप के पाँच भेद—निर्यास, चूर्ण, गन्ध, काष्ठ एव कृत्रिम होता है। काश्मीर में सूखे पर्वतीय पादपो की जड़ तथा देवदार काष्ठ वा चूर्ण आदि मिला कर बनाया जाता है। पर्वतीय एक पादप का नाम ही काश्मीर मे डूप या धूप है। धूपबत्ती, अगरबत्ती विभिन्न सुगन्धियाँ इसी वर्ग में आती है।

१२३ (१) भूतेश : टिप्पणी पृष्ठ १४९ द्रष्टव्य है।

(२) वर्धमानेश स्थानीय जनश्रुति के अनुसार यह स्थान वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर है। श्रीनगर का गनपतयार मुहल्ला या गणेश घाट है। वितस्ता माहात्म्य में इसका उल्लेख है। माहात्म्य के अनुसारवर्धमानेश्वर गणपति तीर्थ के समीप था। सन् १८८८ में पडोस के रहने वाले पुरोहितो ने मलयार

हरायतनसोपानक्षालनाम्भःकणाञ्चितैः ।
संस्पृष्टः पवनैः सोऽभूदानन्दास्पन्दविग्रहः ॥ १२४ ॥

१२४ हरायतन सोपानो के धोने वाले (समुत्थित) जल कण से व्याप्त पवन के संस्पर्श से उसका शरीर आनन्द के कारण स्पन्दित हो जाता था।

पूर्वपूजापनयने निराडम्बरसुन्दरः ।
तेनैव द्रष्टुमज्ञायि स्नपितो विजयेश्वरः ॥ १२५ ॥

१२५ उसने पूर्व पूजा सम्भार को हटने पर विना आडम्बर के सुन्दर स्नापित विजयेश्वर दर्शन को दर्शन माना।

लिङ्गपीठलुठत्स्नानकुम्भाम्भःक्षोभभूर्ध्वनिः ।
शयानस्याऽप्यभूत्तस्य वल्लभो वल्लकीद्विषः ॥ १२६ ॥

१२६. शयन करते हुए भी उस वीणा द्वेषी को लिङ्ग पीठ पर लुंठित होते स्नान कुंभ जल के क्षोभ[1] की प्रचुर ध्वनि प्रिय हुई।

घाटके निकट मन्दिर का निर्माण कराया। इस मन्दिर में स्थापित शिव लिंग प्राचीन मन्दिर का ही शिव लिंग है। वह एक मसजिद के शमादान अर्थात् दोवट के काम मे लाया जाता रहा। मसजिद की दीवार प्राचीन वर्धमानेश्वर मन्दिर के अलंकृत शिलाखण्डो तथा भग्नावशेषो से बनायी गयी है। पश्चिम बगाल वर्दमान का शुद्ध नाम वर्द्धमान है। यह रेलवे का बहुत वडा जकशन तथा आसनसोल कलकत्ता के बीच है।

(३) विजयेश टिप्पण पृष्ठ ४ विजयेश द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १२५ में 'निराडम्बर' का 'विराडम्बर,' 'निजडम्वर' तथा 'स्नपितो' का पाठभेद 'स्नापितो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

१२५ उक्त श्लोक का भावानुवाद श्री स्तीन तथा श्री पण्डित ने किया है। अन्य अनुवादको ने भी उक्त दोनो अनुवादको का ही अनुकरण किया है।

कश्मीर,मे यह प्रथा है कि पहले दिन के चढे हुए फूल पत्तो शृगारादि को दूसरे दिन अति प्रात काल में उतार लेते है।

आडम्बर शब्द का प्रयोग कल्हण ने पुनः तरग ८ २७२६ में किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १२६ मे 'वल्लभो' का पाठभेद 'वल्लभी' तथा 'वल्लभा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१२६ (१) क्षोभ कल्हण ने इस शब्द का तथा आर्य राज के इस पुण्य भावना का उल्लेख राजा जयसिंह के सन्दर्भ में किया है।

आसीद्यथार्यराजस्य शयानस्याप्यतिप्रियः ।
काम लिङ्गाभिषेकाम्भ संक्षोभप्रभवो ध्वनि.॥
८ २३९८ ॥

शिव लिंग को स्नान कराया जाता है तो दृश्य दिखायी पड सकता है। कल्हण की दृष्टि का यह एक उदाहरण है। काशी विश्वनाथ में तथा उदयपुर के एक लिंग की जब आरती एव शृगार के पूर्व स्नान कराया जाता है तो लिंग की मूर्धा से जल अरघा पर गिरता है। अरघा से पुन. जल लुडकता नीचे गिरता है। इस समय जल से एक प्रकार का कल-कल शब्द उद्भूत होता है। कल्हण ने उसी का आंखो देखा वर्णन किया है।

तापसैर्भस्मरुद्राक्षजटाजूटाङ्कितैर्बभौ ।
तस्य माहेश्वरो पर्षदिव भूमिपतेः सभा ।। १२७ ।।

१२७. भस्म, रुद्राक्ष एवं जटाजूट युक्त तपस्वियों में उस पृथ्वीपति की सभा शिव की सभा तुल्य शोभित हुई।

शिवलिङ्गसहस्रस्य प्रतिष्ठाकर्मणि प्रभोः ।
प्रतिज्ञा प्रत्यहं तस्य नाऽभूद्विघटिता क्वचित् ।। १२८ ।।

१२८. उसकी प्रति दिन सहस्रों[1] शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कर्म की प्रतिज्ञा कहीं भी विघटित (भंग) नहीं हुई।

प्रमादात्तदनिष्पत्तौ शिलामुत्कीर्य कल्पिता ।
सहस्रलिङ्गी तद्भृत्यैः सर्वतोऽद्याऽपि दृश्यते ।। १२९ ।।

१२९. प्रमाद से कभी उसके न होने पर भृत्यों द्वारा शिला पर[1] उत्कीर्ण सहस्र शिव लिंग चारों ओर आज भी दिखायी पड़ते है।

लिंग पूजा अत्यन्त प्राचीन है। मोहेन्दो जोरो मे मृत्तिका टेवलेट पर लिंग, शक्ति तथा पृथ्वी उत्कीर्ण प्राप्त हुए हैं। विश्व मे लिंग पूजा चार हजार वर्षों से भी प्राचीन है।

१२८ (१) सहस्र लिंग—कश्मीर मे सहस्र लिंग प्रतिष्ठा तथा पूजा का विशेष महत्व प्राचीन काल से ही रहा है। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। पूर्णिमादि पर एक सहस्र लिंग मृत्तिका के बनाये जाते हैं। और शकराचार्य पर्वत की मूल से प्राप्त मिट्टी से शिव लिंग प्रात. काल प्रतिष्ठित किये जाते है। साय काल वितस्ता किंवा समीपस्थ स्रोतस्विनियो अथवा सरोवरो में उनका विसर्जन कर दिया जाता है। शिवरात्रि के दिन काशी में कुछ लोग अब भी एक सहस्र शिव लिग गगा की मिट्टी से बनाते हैं। तथा पूजन पश्चात् उनका गंगा में विसर्जन किया जाता है।

यहाँ पर अर्थ पार्थिवपूजन ही लगाना चाहिए। सहस्र लिग की प्रति दिन राजा प्राण-प्रतिष्ठा करता था। पूजन करता था। वह दृढ निश्चयी था। कभी प्रतिज्ञा भग नही हुई।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२९ में 'प्रमादा' का पाठभेद 'प्रसादा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२९ (१) शिला—शिव लिंग = कश्मीर में शैव सम्प्रदाय प्रचलित था। शिव की पूजा का वहाँ के जीवन में प्रमुख स्थान था। आज भी कश्मीरी शिव भक्त हैं।

आधुनिक काल मे स्वर्गीय महाराज रणवीर सिंह कश्मीर नरेश ने ईशावर में एक सहस्र पाषाण शिव लिंग स्थापित करने तथा जम्मू में रण-वीरेश्वर मन्दिर मे कोटि लिंग विभिन्न रूपो के स्थापित करने का विचार किया था।

शिव लिंग गंगा की मिट्टी अथवा चीटी द्वारा चाली हुई मिट्टी अथवा शुद्ध मिट्टी से बनाते हैं। पार्थिव पूजा करने वाले पूजन के व्रत का आजन्म पालन करते है। पूजन के पूर्व अन्न ग्रहण अथवा किसी प्रकार का कार्य नही करते।

महेन्दो जोरो मे भी मिट्टी के वस्तु पर लिंग-शक्ति तथा पृथ्वी उत्तीर्ण मिले है। स्पष्ट है कि शिव लिंग पूजा अत्यन्त प्राचीन है।

तासु तासु स वापीषु लिङ्गव्याजादरोपयत् ।
स्वपुण्यपुण्डरीकाणां जन्मनेऽक्षपरम्पराम् ॥ १३० ॥

१३०. उसने अनेक वापियो में लिंग व्याज से स्वपुण्य पुण्डरोको की अक्ष[1] (वीज) परम्परा आरोपित की।

स्थाने स्थाने जलान्तश्च बहुसंख्यैर्निवेशितैः ।
अनयन्नर्मदाभङ्गि शिवलिङ्गैस्तरङ्गिणीः ॥ १३१ ॥

१३१. स्थान स्थान पर जल मध्य प्रचुर संख्या में सन्निवेशित शिव लिंगो से तरंगिणियों को उसने नर्वदा[1] सदृश बना दिया।

लिदर पर स्थित खोवर पुर परगना के शिलगाम मे एक शिला सहस्र लिंग कही जाती है। वह सहस्र शिव लिंग तुल्य प्रतीत होती है। वह सहस्र शिव लिंग शिला सन्धिमति की है अथवा दूसरे की निश्चय पूर्वक कहना कठिन है।

नीलमत पुराण शिव पूजा के महत्त्व तथा उसका कश्मीर के धार्मिक जीवन में क्या स्थान था इस पर प्रकाश डालता है।

पतिस्ते शकरस्त्वेको नापरोऽन्विषरितस्ततः।
सिन्धुसगममनेनाशु व्रजस्व स्वर्पितं शिवम् ॥३१६॥
भुक्ता रात्रौ तत. कार्यं नृत्यगीतैः प्रजागरम्।
श्रोतव्य· शिवचर्यश्च प्रादुर्भावश्च तत्कृत. ॥५॥

पाठभेद .

श्लोक सख्या १३० में 'स्वपुण्य' का 'स पुण्य' 'सुपुण्य' तथा 'काणा' का पाठभेद 'पुण्डरीकाक्ष' 'काना' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३० (१) अक्ष : कमल का बीज शिव लिंग तुल्य होता है। शिव लिंग स्वरूप कमल बीजो को जलाशयो में आरोपित कर करोडो शिव लिंग स्वरूप कमल बीज उत्पन्न करने की विराट कल्पना राजा ने की। कमल बीज की माला बनायी जाती है। होम में इसको हवि भी दी जाती है। कश्मीर म इसकी सुमिरनी बनायी जाती है।

१३१ (१) नर्वदा : शिव लिंग–नर्वदा में शिव लिंग सदृश शिलाखण्ड मिलते है। प्रायः भारतवर्ष मे सर्वत्र वही से लिंग स्थापनार्थ जाते है। नर्वदा में जिस प्रचुरता से शिव लिंग जल में पडे मिलते है उसी प्रकार सरिताओ में लिंग की प्रतिष्ठा कर सन्धिमान ने काश्मीर की सरिताओ को ही नर्वदा का रूप दे दिया था।

कश्मीर की यात्रा में प्रायः प्रत्येक पवित्र सरोवरो तथा नागो में मैंने जल के अन्दर शिवलिंग रखा देखा। यह प्रथा कश्मीर की विशेषता प्रतीत होती है। जल में लिंग कश्मीर में इस प्रकार मैंने रखे देखा कि वे ऊपर से दिखायी पडते है। उन पर पुष्पादि भी चढाया जाता है। श्रीनगर के घाटो पर भी इस प्रकार के जलस्थ लिंग दिखाई पड जाते है।

कल्हण इस प्रकार के लिंग का पुन उल्लेख (रा त ७ १८५) करता है

पत्युर्नान्याऽप्यग्रहारान् प्रददावमरेश्वरे।
त्रिशूलबाणलिङ्गादिप्रतिष्ठाश्च विनिर्ममे ॥

नर्वदा में शिव लिंग की अधिकता से मिलने का कारण है। नर्वदा मारवल रोकस से बहती आती है। मारवल के पत्थर लुढकते-लुढकते और जलप्रवाह के कारण लिंग स्वरूप हो जाते हैं। हरद्वार से ऊपर भी शिव लिंगाकार पत्थर दिखाई देते हैं। किन्तु वे सुन्दर नही होते।

शालिग्राम के रूप में विष्णु रूप से उनको पूजा की जाती है।

प्रतिलिङ्गं महाग्रामाः प्रत्यपाद्यन्त तेन ये ।
पर्षद्‌ग्रामद्य तद्भोगः कालेनान्तर्धिमागतः ॥ १३२ ॥

१३२. उसने पर्षदों[1] को प्रति लिंग पर जिन महाग्रामों को चढाया था काल बस उनका भोग आज नष्ट हो गया है ।

अकरोत्स महाहर्म्यैर्महालिंगैर्महावृषैः ।
महात्रिशूलैर्महतीं महामाहेश्वरो महीम् ॥ १३३ ॥

१३३. उस महा माहेश्वर ने इस पृथ्वी को महा भवनों, महा लिंगों, महा वृषों एवं महा त्रिशूलों से महान् बनाया ।[1]

---

१३२ (१) पर्षद्, परिषद् : परिषद् वैदिक शब्द है । इसका शाब्दिक अर्थ चारो ओर बैठना होता है । उपनिषदो में दार्शनिक विचारों के लिये होने वाली गोष्ठी को परिषद् कहा गया है । उपनिषद् का उपदेश नितरां निकटवर्ती लोगो को ही देते थे ।

उपनिषद् का एक अर्थ रहस्य होता है । इस रहस्य को अत्यन्त निकटवर्ती परिषद् किंवा पर्षद् में देते थे । उस चर्चा एवं ज्ञान का नाम ही उपनिषद् हो गया । (वृः उ. ६ : १ : १, जैं० ब्रा० २ : ११ : १३, १४ तथा गो. गृ. सू० ३ : २ : ४०, आचार्यों के साथ उनकी परिषद् का उल्लेख सर्वत्र मिलता है ।

पर्षद् शब्द का अर्थ सभा तथा धर्मोपदेशक पण्डितो का समाज होता है । हिन्दी में परिषद् तथा पर्षद् को समानार्थक मानते है । परन्तु उनके भाव तथा अर्थ में किंचित् भेद है । वहाँ पुरोहित किंवा ब्राह्मणो के समूह अथवा समाज के अर्थ मे ही कल्हण ने पर्षद् शब्द का प्रयोग किया है ।

पुरोहितो की परिषद् थी । कल्हण के अनुसार परिषद् के पुरोहितगण दान का स्वयं उपभोग करने लगे थे । परिषदो की उपयोगिता समाप्त हो गयी थी । आगे चलकर ब्राह्मणो तथा पुरोहितो की इन परिषदो ने प्रायोपवेशन द्वारा राजा तथा मन्त्रियो से कार्य निकालने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

मन्दिरो तथा तीर्थों के पुरोहितगण परिषद् बनाते थे । परिषद् के सदस्यों को पारिसद्य किंवा पारिषद कहा जाता था । इस प्रकार के पारिषद जहाँ एक ही मन्दिर से सम्बन्धित अनेक कुटुम्ब वंश के होते हैं वे अबतक अपना अस्तित्व रखती हैं । हरपर्वत पर शारिका देवी, खुव की ज्वालामुखी, अनन्तनाग, विजयेश्वर वीरनाग, तलार मूला, कोटि तीर्थ बारहमूला मे पुरोहितो के कुल रहते हैं । उन्हे कल्हण के शब्दो में स्थानपाला कहते थे । (रा०त० ८।८११)

पुरोहित दक्षिण यात्रियो से जो लेते हैं । वह एक साथ मिलाया जाता है । भवनो तथा मन्दिरो के प्रबन्ध के लिये खर्च काटकर वे परस्पर बाँट लिया करते है । उनके द्रव्य विभाजन का भाग निश्चित रहता है । इसी प्रकार अग्रहार द्वारा प्राप्त सम्पत्ति का भी प्रबन्ध तथा विभाजन परिषद् करती थी । उनका राजनीति पर विशेष प्रभाव था । कल्हण के वर्णन (रा० त० ५ : ४६५ तथा ८ : ९००) से प्रकट होता है ।

१३१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५१ वाँ श्लोक है ।

कृत्वा सन्धीश्वरं देहसधानपितृकानने ।
ईशानस्य गुरोर्नाम्ना व्यधादीशेश्वरं हरम् ॥ १३४ ॥

१३४. उस स्मशान भूमि मे, जहाँ उसके देह की सन्धि हुई थी, सन्धीश्वर[1] की स्थापना करके गुरु ईशान के नामपर ईशेश्वर[2] शिव की स्थापना का।

---

१३४ (१) सन्धीश्वर : इस शिवमन्दिर तथा स्थान का पता नही चलता।

(२) ईशानेश्वर . यह वर्तमान ग्राम इशावर है। यह ग्राम डललेक के उत्तरपूर्व तटपर स्थित है। निशात बाग से ½ मील उत्तर है। शालीमार बाग से १½ मील दक्षिण है। यह तोर्थस्थान गुप्तगगा जलस्रोत के कारण है। ग्राम के मध्य मे शिला परिवेष्टित प्राचीन कुण्ड है। उसी मे गुप्तगगा का जलस्रोत है। कुण्ड के ठीक पीछे ३० वर्गफिट में फैला तथा ८ फिट ऊँचा एक ढूहा था। यह अब केवल ३ फिट ऊँचा रह गया है। यहाँ के पत्थर आदि लोग उठा ले गये है। यह मन्दिर का ध्वन्सावशेष है।

स्थानीय पण्डितो का कहना है। सन्धिमति का बनवाया सन्धिमान का मन्दिर हैं। अबुल फजल इशवलारी के पत्थर मन्दिर का वर्णन करता हुआ कहता है कि वह पवित्र जलस्रोत के समीप है।

सडक पर ईशानेश्वर का स्थान है। एक छोटा गाँव है। कुछ दुकानें हैं। सडक काफी चलती है। शालीमार, नसीम बाग आदि स्थानोपर जाने वाले पर्यटक इस स्थान से गुजरते हैं। सडक से ही श्वेत पत्तरो से मढा हुआ भीतर एक मन्दिर दिखाई देता है।

एक चहार दीवारी के अन्दर चौखूँटा कुण्ड बना है। कुण्ड भूमि की सतह से काफी गहरा है। इस कुण्ड के वाम पार्श्व में एक ढका और कुण्ड है। इस कुण्ड का जल बाहरी कुण्ड में आता है। ढके हुए कुण्ड में कुछ मूर्तियाँ तथा शिवलिंगादि जल में रखे हैं। वही स्थान गुप्त गंगा कहा जाता है। स्थान सुन्दर है। चिनार वृक्षो की छाया से ढका है। इससे दक्षिण तथा सम्मुख आबादी हो गयी है। इस कुण्ड के समीप केवल दो चार मूर्तियाँ हैं और कुछ मुझे नही दिखाई दिया। कुण्ड का पानी बाहर निकलता रहता है।

कुण्ड के पृष्ठ भाग में कुछ हटकर एक दीवाल में द्वार है। उससे मै ऊपर चला गया। दाहिनी तरफ कथित मन्दिर है। एक धर्मशाला जैसी छोटी इमारत मन्दिर के पास बनी है। मन्दिर के द्वार के सम्मुख एक बरामदा है। मै जब पहुँचा तो वहाँ आसन लगा था। पुस्तक रखी थी। परन्तु कोई पढने वाला नही था।

मन्दिर का द्वार बन्द था परन्तु ताला नही लगा था। द्वार खोलकर भीतर गया। मन प्रसन्न हो गया। मन्दिर के गर्भगृह मे सफाई थी। वहाँ पर आसन बिछा था। मध्य में शिव लिंग था त्रिशूल दाहिनी तरफ गडा था। त्रिशूल जरमन सिलवर का अथवा पालिश किया था। वह श्वेत चमकता था। स्थान की पवित्रता तथा यहाँ पर किसी के रहकर योगाभ्यासादि करने के कारण एक प्रकार की जागृति का अनुभव हुआ। मन्दिर का भीतरी भाग उसकी भव्यता के कारण नही अपितु पवित्रता तथा यहाँ की नैसर्गिक मिलने वाली शान्ति के लिए मन आकर्षित करता है। जब काश्मीर आता हूँ तो इस मन्दिर मे दर्शनार्थ अवश्य जाता हूँ। स्थान जागृत है।

मन्दिर के बाहर कोई दिखाई नही दिया। पुष्पो का उजडा सा एक बगीचा है। सन्धिमान द्वारा निर्मित इस स्थान पर मन्दिर होने की बात

थेदां च भीमादेवीं च देशांश्चान्यान्पदे पदे ।
स मठप्रतिमालिङ्गैर्हर्म्यैर्निन्ये महार्घताम् ॥ १३५ ॥

१३५. उसने थेड़ा[1], भीमा देवी[2] एवं अन्य देशों (स्थानों) को पद-पद पर मठों, प्रतिमा-लिंगों एवं हर्म्यों में महार्घ बनाया।

कही जाती है। यहाँ पर प्राचीन मन्दिर का अवशेष केवल उक्त नाम मात्र के ढूहे के अतिरिक्त और कुछ नही मिलता।

श्रीनगर के समीप तथा मुख्य चलती सडक पर होने के कारण स्थान की उन्नति तथा विकास किया जा सकता है। मैंने पता लगाना आरम्भ किया यहाँ पर कौन पूजा वगैरह करता है। मुसलमान दुकानदार कुछ बता नही सके।

ईशावर के समीप है एक बाल ब्रह्मचारी श्री लक्ष्मण जी का स्थान। सडक के पार्श्व में है। उनका यहाँ पर आश्रम है। साधना करते है। सप्ताह मे रविवार के दिन प्रात ८ बजे से ११ बजे तक त्रिक तथा शैव दर्शन पर विचार विनिमय तथा सिद्धान्तो पर प्रकाश डालते हैं। मै उनके पास दो बार गया था। स्थान तथा आश्रम सुन्दर है।

ईशावर स्थान प्राचीन काल मे सुरेश्वरी के समान पवित्र माना जाता रहा है। वर्तमान ईशावर नाम पुराने नाम इशब्रोर का विगडा रूप है। ब्रोर शब्द देवी के अर्थ मे कश्मीर मे प्रयुक्त होता रहा है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १३५ मे 'थेदा' का 'श्वेदा' तथा 'महार्घ' का पाठभेद 'महार्क' का मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१३५ (१) **येदा-थेदा** . इसे थेडा देवी भी कहते है। वर्तमान थीड ग्राम डल के उत्तर तटपर जेथर से एक मील उत्तर है।

अबुल फजल लिखता है—'थिड गाँव बडा रमणीक ग्राम है। वहाँ सात स्रोत आकर मिलते है। उनके चारो ओर पत्थरो की इमारतें प्राचीन काल के गौरव का स्मरण दिलाती है।''

इस तीर्थ को सप्त पुष्पकरिणी तीर्थ कहा गया गया है। हरचरित चिन्तामणि (४:४०) मे उल्लेख है कि यहाँ पार्वती ने तपस्या की थी।

श्री स्तीन ने यहाँ की यात्रा उन्नीसवी शताब्दी मे की थी। परन्तु अबुल फजल वर्णित प्राचीन देवस्थान के टूटे शिलाखण्ड एव मन्दिर किंवा भवनो के आकार श्रीस्तोन को नही मिले। वहाँ सातो जल-स्रोत अभी भी चलते है। मैंने यहाँ जलस्रोतो को चलते देखा। क्योकि उन्हे समाप्त करना सम्भवत मानवीय शक्ति एवं विध्वंस के परे की बात थी।

यह स्थान श्रीनगर से जो सडक डल लेक के तट से होती शालीमार की तरफ जाती है उसी के समीप चश्मा शाही से थोडी दूर उत्तर-पश्चिम की तरफ पडता है।

(२) **भीमा देवी :** भीमा देवी का स्थान नर्तमान 'ब्रान' ग्राम माना गया है। डल के तट से १½ मील और उत्तर जाने पर मिलता है। नील-मत पुराण इस स्थान का पता बताता है।

इस समय बाबा गोलम दीन के जियारत के उत्तर पश्चिम है। भीमा देवी के उत्तर पश्चिम ईशेश्वर अर्थात् ईशावर पडता है। ईशेश्वर से उत्तर पूर्व श्रुतेश्वरी तथा भीमा देवी के मध्य प्राचीन श्री द्वार का क्षेत्र है।

भीमादेवीं तथा दृष्ट्वा श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।
तथा कापिंजलीं देवीं तथा देवीं सुरेश्वरीम् ॥११८५॥

हरचरित चिन्तामणि के अनुसार भीमा देवी में पार्वती ने तपस्या की थी। (४ ४७)

भीमा देवी का तीर्थ अब प्रायः लुप्त हो गया है। यह स्थान एक सुन्दर जलस्रोत जो दामपोर गांव के

स्वयंभूमिश्च तीर्थैश्च पूतं भक्तिविभूषितः ।
स एव भोक्तुमज्ञासीत्प्राज्ञः कश्मीरमण्डलम् ।। १३६ ।।

१३६. स्वयं भू[1] एवं तीर्थों से पवित्र कश्मीर मण्डल का उपभोग भक्ति विभूषित केवल वही जानता था।

स्नातस्य निर्झराम्भोभिः पुष्पलिङ्गार्चनोत्सवैः ।
राज्ञस्तस्य वनोर्वीषु मासः पुष्पाकरो ययौ ।। १३७ ।।

१३७. स्नात उस राजा का वसन्त[1] मास निर्झर जलों एवं पुष्प लिंगार्चनोत्सवों[2] द्वारा वनभूमि में व्यतीत होता था।

समीपस्थ पर्वत से निकलता है, उसके पास माना जा सकता है। यहाँ अब एक मुसलिम जियारत है।

दुर्गा सप्तशती में भीमा देवी के नाम की व्युत्पत्ति दी गयी है। देवी ने जब भीम रूप धारण कर मुनियो की रक्षा के लिए हिमालय पर रहने वाले राक्षसो का भक्षण किया, उस समय देवी का नाम भीमा पड गया।

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति :
पुनश्चाह यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।।११:५०।।
रक्षांसि भक्षयिश्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनय सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय.।।११:५१।।
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदा रुणाख्यस्त्रैलोक्ये महावाधां करिष्यति ।।११·५२।।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १३६ में 'विभूषित' का 'विशेषित' 'विशेषतः', 'एव' का 'एव,' 'प्राज्ञ' का 'प्राज्या' 'प्राएय' और 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३६ (१) स्वयंभू स्वयभू तथा तीर्थों में अन्तर है। अपने रूप एव विचित्रताओ के कारण पूजनीय माने जाते हैं। स्वयभू प्रकृति द्वारा बन गये लिंगाकार शिलाखण्डादि माने जाते हैं। वे जलस्रोत भी स्वयभू माने जाते है जिनमे कोई विशेषता एव विचित्रता होती है। उन्हें भी स्वयभू मानकर पूजा की जाती है। तीर्थस्थान मानव कृत होते हैं। कल्हण ने स्वयभू लिंग का पुन वर्णन रा० त० ८ २४३० में किया है।

१३७ (१) वसन्त : कल्हण इस श्लोक से षट् ऋतुओ में होती हुई राजा की दिन चर्या का वर्णन आरम्भ करता है। वसन्त ऋतु प्रारम्भ होता है। पादपो में पत्तियाँ लगने लगती हैं। हिम तथा तुषार गल जाता है। पृथ्वी श्वेत चादर के स्थान पर हरी चादर ओढने लगती है। निर्झर चलने लगते हैं। सूर्य किरण सुखदायी लगती है। अंधड तथा पश्चिमी वायु का वेग कम हो जाता है। कलियाँ लगने लगती हैं। वृक्ष निखर आते हैं। कल्हण यहाँ कश्मीर के वसन्त का सर्वांगीण वर्णन नही करता। वह इतिहास लिख रहा था। प्रसग के कारण उसने सन्धिमान आर्य राज की ऋतुचर्या का उल्लेख किया है।

(२) लिंगार्चनोत्सव : कल्हण सन्धिमान के समय वसत ऋतु में प्रचलित लिगार्चनोत्सव का उल्लेख करता है। माघ मास के उत्तरार्ध में माघ शुक्ल फाल्गुन कृष्ण को १३ को महाशिवरात्रि का व्रत एवं उत्सव होता है।

शिवरात्रि के समय उत्तरी भारत में आम मे मजरियाँ लग जाती हैं। नव चेतना का

स चातिरम्यः काश्मीरो ग्रीष्मस्त्रिदिवदुर्लभः ।
हिमलिङ्गार्चनैः प्रायाद्वनान्तेषु कृतार्थताम् ॥ १३८ ॥

१३८. त्रिलोक दुर्लभ अति रम्य कश्मीर की ग्रीष्म ऋतु को उसने वनान्तों[1] में हिम लिंग की अर्चनाओं द्वारा कृतार्थ किया ।

फुल्लाब्जषण्डरुद्धाशाः प्राप्य पुष्करिणीतटीः ।
लक्ष्मीसखः स खण्डेन्दुचूडध्यानपरोऽभवत् ॥ १३९ ॥

१३९. लक्ष्मी-सखा वह प्रफुल्लित कमल दल से रुद्ध दिशाओं वाली पुष्करिणी तट पर जाकर खण्डेन्दुचूड के ध्यान में मग्न हो जाता था ।[1]

अनुभव होता है । यद्यपि कल्हण स्पष्ट नहीं कहता कि किस तिथि को यह उत्सव होता था । मेरा अनुमान है कि यह उत्सव शिवरात्रि को मनाया जाता रहा है । शैव तथा शिव भक्तों का यह सबसे बडा पर्व होता है । शिवरात्रि के दिन स्नान तथा शिवलिंग पर जल एव पुष्प चढाने का बडा महत्व होता है । धर्मप्राण प्राणी इस दिन निराहार व्रत रखते हैं ।

वसन्त की चर्या सन्धिमान संगीत, नाटक, तथा वसन्त ऋतु के साथ काम का पुष्प बाण के साथ आगमन रूप मे वसन्तोत्सव नही मनाता था । उसने काम तथा उत्सव के भौतिक रूप को आध्यात्मिक रग मे रंग दिया था । वह वन मे जाता था । पुष्प उद्यानो मे जाता था । निर्झरो में स्नान करता था । किन्तु देवार्चन हेतु करता था । उसने मदनोत्सव को शिवोत्सव मे परिणत कर दिया था । मदन का नहीं अपितु मदन दाहक शिव की उपासना मे जनता को लगा दिया था ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १३८ मे 'काश्मीरो ग्रीष्मस्त्रिदिव' का पाठभेद 'काश्मीरोऽग्रीष्मस्त्रिदिव' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१३८ (१) वनान्त : वनान्त से अर्थ उपत्यका के सीमावर्ती वन प्रान्त है । राजा के समान सन्धिमति मृगया के लिये वनो में, वन प्रान्त में, वनान्त मे नहीं जाता था । अपितु वह हिमलिग की अर्चना हेतु भ्रमण करता था । शाब्दिक अर्थ वन का अन्त होता है ।

ग्रीष्म ऋतु कश्मीर की अत्यन्त सुहावनी होती है । पुष्प खूब खिल जाते हैं । भूमि सुरम्य हरियाली पूर्ण हो जाती है । सभी जलस्रोतो मे जल उछलने लगते हैं । इस समय उपत्यका के मैदान मे हिम लिंग मिलना कठिन हो जाता है । सन्धिमान वनान्त मे जाता था । जहाँ हिम मिलता था । ग्रीष्म ऋतु मे हिम दुर्लभ हो जाता है । उस दुर्लभ काल मे वह जहाँ हिम सुलभ होता था वहाँ जाता था । हिम का लिंग बनाकर पूजा करता था । अथवा जहाँ हिमस्वरूप शिवलिंग प्रकृति बना देती थी वहाँ पूजा करता था । यह स्थान लगभग १० हजार फिट की ऊँचाई पर होता था ।

कल्हण ने वनान्त का प्रयोग साभिप्राय किया है । ग्रीष्म ऋतु तक बरफ गल जाती है । मार्ग चारो ओर का खुल जाता है । कश्मीर दर्शन का यह सबसे अच्छा काल है । इसी काल मे सन्धिमान अपनी राजकीय यात्रा कश्मीर मण्डल के सुदूर स्थानों मे करता था । जनता का दुःख-सुख इस व्याज से जानता था । सैनिक स्थान जो वनो के अन्त में थे । वहाँ पहुँचता था । राज्य कार्य तथा राजधानी के बाहर तुषारपात हीन ऋतु शिविर लगाने के लिए उत्तम था । इसका उपयोग सन्धिमान ने आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनो कार्यों के लिये किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३९ मे 'फुल्लाब्ज' का 'पुल्लाब्वर' 'षण्ड' का पाठभेद 'खंड' मिलता है ।

नीलोत्पलवतीर्वापीरगस्त्योदयनिर्विषाः ।
अवगाह्य हरार्चाभिः शरदं निर्विवेश सः ॥ १४० ॥

१४०. उदय से निर्मल एवं नीलोत्पल पूर्ण वापियों में स्नान करके वह शिव अर्चनाओं द्वारा शरद[1] ऋतु व्यतीत करता था ।

पादटिप्पणियाँ :

१३९ (१) वर्षा ऋतु का नाम लेकर कल्हण वर्णन नही करता । वास्तव मे भारत के समान वर्षा ऋतु में कश्मीर में जल वृष्टि भारत तुल्य नही होती । इस काल में कश्मीर की सुषमा अपने पूर्ण यौवन पर पहुँच जाती है । फलो के वृक्षो मे फूलो के स्थानपर फल लगने लगता है । पुष्प गिरने लगता है । उसमे फल आ जाते हैं । यह कश्मीर के आषाढ एव श्रावण का मास होता है ।

इस ऋतु में कश्मोर के जल स्थानो में कमल खूब खिलते हैं । कमल इतने अधिक जम कर घने हो जाते है कि जल का दर्शन कमल दल मय पुष्करिणियो मे नही होता । मैंने जल मे कमल लगे स्थानो को देखा है । अनेक पुष्करिणियो का देखा है । कमल पत्र हरे-हरे खूब फैले जलपर छा जाते हैं । उनके मध्य नील, उज्ज्वल तथा रक्त कमल फूलते हैं तो उस दृश्य का वर्णन करना कठिन हो जाता है । उसे देखा हो जा सकता है ।

सन्धिमान कमल की यह शोभा निरखता पुष्करिणियो एव जलाशयो के तट पर बैठता था । प्रकृति की इस प्रफुल्लित शोभा में वह मग्न हो जाता था । उस मग्नावस्था में भी वह शिव के ध्यान में मग्न हो जाता था ।

१४० (१) **शरद** : शरद् ऋतु की दिन चर्या का कल्हण यहाँ वर्णन करता है । तुलसीदास ने शरद् ऋतु के सदर्भ में कल्हण के समान अगस्त्य नक्षत्र का उल्लेख किया है—

'उदित अगस्त पन्थ जल सोखा ।'

शरद ऋतु आती है । अगस्त्य नक्षत्र का उदय होता हैं । वर्षा से पंकिल भूमि सूख जाती है । सरोवरो, पुष्करिणियो एवं सरिताओ का मटमैला जल निर्मल हो जाता है ।

शरद् ऋतु कश्मीर का सबसे सुहावना समय है । शाली पक जाती है । उसका कटना आरम्भ हो जाता है । रमणियाँ गाती, प्रफुल्लित अपने श्रम के कष्ट को भूलती विहरती, प्रसन्न होती, शाली काटती हैं । उन्हें परिश्रम का फल मिलता है । इसी काल मे कश्मीर मण्डल फलो से भर जाता है । अखरोट, सेव आदि से बाजार पट जाता है । आकाश निर्मल रहता है । सूर्य की किरणें उष्णता के स्थान पर शीतलता का सृजन करने लगती हैं । वायु में शीत प्रवेश करती है । ग्रीष्म, एव वर्षा और शिशिर ऋतु के मध्य का काल शरद् ऋतु का सुहावना समय आता है । ऋतु परिवर्तन होता है । कृषक शीत ऋतु निर्वाह के लिये सूखी लकडी, शाली, ऊन आदि घर में सग्रह करते हैं । गर्म कपडा बनवाते हैं । पृथ्वी तुषार मण्डित होने की तैयारी करती है । और कश्मीरी कागडी तथा ऊनी वस्त्रो से आच्छादित होने का प्रयास आरम्भ करता है कल्हण ने पुन इस ऋतु का उल्लेख रा. त. ३ : ३२५ तथा ८ २३७ में किया है ।

माघकाल : कश्मीर का माघ अर्थात् शीतकाल अत्यन्त कष्ट-प्रद होता है । पौष मास से हिमपात आरम्भ हो जाता है । मार्ग शीर्ष के लिये भगवान् ने गीता में कहा है । वह मासो मे सर्वश्रेष्ठ है । यह बात कश्मीर के लिये कुछ अशो मे लागू होती है । मार्ग मास में उत्तम शिखरें जो हिम हीन दिखायी पडती थी । उन पर किंचित् तुषार पात आरम्भ हो जाता है । पर्वत माला की शिखरें हिम किरीट पहनने लगती है । बाद मे ठण्डक आ जाती है । पत्तियाँ वृक्षो की शाखा त्यागने लगती हैं । पौष मास

साधं तपोधनैस्तैस्तैर्भजतो जागरोत्सवान् ।
तस्याऽभूवन्भुवो भर्तुरमोघा माघरात्रयः ॥ १४१ ॥

१४१. उन उन तपोनिधियों के सङ्ग में जागरणोत्सव मनाते उस पृथ्वीपति की माघ रात्रियाँ निष्फल नहीं हुईं ।

अत्यद्भुतं राज्यलाभमित्थं सफलयन्कृती ।
पञ्चाशतं त्रिवर्षोनामत्यक्रामत्स वत्सरान् ॥ १४२ ॥

१४२. कृती वह (नृप) अत्यद्भुत राज्य लाभ को इस प्रकार सफल करता हुआ तीन कम पचास (४७) वर्ष व्यतीत किया ।

शमव्यसनिनस्तस्य राज्यकार्याण्यपश्यतः ।
तस्मिन्काले प्रकृतयो विरागं प्रतिपेदिरे ॥ १४३ ॥

१४३. उस समय राज्य कार्य न देखने के कारण उस शान्ति प्रेमी से प्रजा विरक्त हो गया ।

अन्वैष्यत नृपस्ताभिः कश्चिद्राज्याय शुश्रुवे ।
राजपुत्रो जिगीषुश्च श्रीमान्यौधिष्ठिरे कुले ॥ १४४ ॥

१४४. उन लोगों ने राज्य के लिये किसी नृपका अन्वेषण किया, तब सुना कि युधिष्ठिर के कुल में एक विजयेच्छुक श्रीमान् पुत्र है ।

आते ही भूमि पर तुषार पात होने लगता है । पौष और माघ मासो में सम्पूर्ण पर्वतमाला तुषार मण्डित हो जाती है । वृक्ष ठूठे दिखायी पडते हैं । पुष्करिणियाँ, डल और उलर झीलें जम जाती हैं । कश्मीर मण्डल की भूमि कश्मीरियो के गौर वर्ण से स्पर्धा करने लगती है । पादपो की शाखायें श्वेत तुषार मण्डित हो जाती हैं । एक भी पत्ती दिखाई नही पडती । आकाश पक्षी शून्य, वन पशुशून्य और भूमि जनशून्य दिखायी पडती है ।

कश्मीर का यह काल दु खप्रद होता है । साधारण जनता अपने घरो मे बन्दी बन जाती है । यदि अधिक तुषार पात हो गया तो द्वार खुलना कठिन हो जाता है । इस समय केवल कागडी एकमात्र सहायक होती है । रात दिन घर मे रहने के कारण जैसे दोनो मे कोई अन्तर नही रह जाता । यह अवस्था फाल्गुन मास तक चलती है ।

कल्हण ने पाँच ऋतुओ का वर्णन किया है । शिशिर तथा शीत ऋतु के चार मास का एक ऋतु रूप दिया है । एतदर्थ उन्होने शिशिर तथा शीत ऋतु का नाम लेकर उल्लेख नही किया है । यह चार मास कश्मीर के जीवन का अत्यन्त कष्ट साध्य मास है । ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु जितनी सुहावनी होती है वैसा ही कष्टप्रद शीत के चार मास होते है ।

इस कष्ट काल मे जब बाहर निकलना कठिन हो जाता है । रात दिन तुहिन वर्षा होती रहती है । सन्धिमान बाहर निकलने मे असमर्थ होकर अपने भवन मे भगवान् के ध्यान मे ही मग्न बिता देता था । उसको रात्रियाँ निष्फल नही हुई । जब कि शेष जनता तुहिनपात से पीडित तुषार के मध्य में पशु तुल्य बै वसन्त के आगमन की कामना करती है ।

पाठभेद .

श्लोक संख्या १४३ में 'शम' का पाठभेद 'सम' मिलता है ।

जुगोप गोपादित्याख्यं कश्मीरेन्द्रजिगीषया ।
युधिष्ठिरप्रपौत्रं हि गान्धाराधिपतिस्तदा ॥ १४५ ॥

१४५ उस समय गान्धाराधिपति ने कश्मीरेन्द्र को जीतने की इच्छा से ही युधिष्ठिर के प्रपौत्र गोपादित्य को अपने यहाँ संरक्षित किया।

वसन्नप्राप्तसाम्राज्यः स तत्र तनयं क्रमात् ।
अवाप लक्षणैर्दिव्यैरमोघं मेघवाहनम् ॥ १४६ ॥

१४६. बिना साम्राज्य प्राप्त किये, वहाँ निवास करते समय, उसने दिव्य लक्षण युक्त, अमोघ मेघवाहन नामक पुत्र प्राप्त किया।

स युवा पितुरादेशाद्वैष्णवान्वयजन्मनः ।
राष्ट्रं प्राग्ज्योतिषेन्द्रस्य ययो कन्यास्वयंवरे ॥ १४७ ॥

१४७. वह युवक पिता के आदेश पर, वैष्णव[1] कुलोत्पन्न, प्राग्ज्योतिषेन्द्र[2] के राष्ट्र में उसकी कन्या के स्वयंवर में गया।

पाठभेद

श्लोक सख्या १४५ में 'दित्याख्य' का 'दित्याख्य.' और 'कश्मीरेन्द्र' का 'काश्मीरेन्द्र' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४५ (१) गान्धारः परिशिष्ट द्रष्टव्य है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १४६ में 'प्राप्त' का पाठभेद 'पास्त' मिलता है।

श्लोक सख्या १४७ में 'युवा' का पाठभेद 'तत्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

१४७(१) **वैष्णव :** वैष्णव प्रभाव मणिपुर आसाम में था और आज भी है। कल्हण के समय मे भी भारत के इस धुर पूर्वीय अचल मे वैष्णव सम्प्रदाय प्रबल था। आज भी वहाँ प्रबल है। यद्यपि ईसाई मिशनरियो के कारण नागा, नेफा, आदि क्षेत्रो में ईसाई धर्म का प्राबल्य हो गया है। गरीब पर्वतीय जाति को ईसाई धर्म को दीक्षित करने मे विदेशी मिशनरी सफल हुई है। मणिपुर, त्रिपुरा तथा आसाम के हिन्दू बहुल क्षेत्रो में वैष्णव प्रभाव आज भी दिखायी पडता है।

कल्हण को तत्कालीन भारतीय स्थिति का ज्ञान था। उसके इस वर्णन से स्पष्ट होता है।

(२) **प्राग्ज्योतिष :** एक प्राच्य जनपद था। यह अति प्राचीन जनपद था। महाभारत में कुछ स्थानो पर इसको म्लेच्छ स्थान कहा गया है।

वामन पुराण के अनुसार वह पूर्व का एक जनपद है। (वा. पु. १३·४५)

वहाँ का राजा भगदत्त था। उसकी प्रशंसा की गयी है। इसे दानवराज नरकासुर का देश कहा गया है। नरकासुर का नाम भौम भी था। उसका पुत्र भगदत्त था। नरक राजा का उल्लेख कल्हण ने (रा. त २ १५० में) उल्लेख किया है। विष्णु पुराण के अनुसार यह राजधानी थी।

(वायु ४५ : १२२, मार्कण्डेय ५७ ४४, मत्स्य ११४ : ४४ भाग० १० : ५९ रा २, ३१, वामन ८·१२, ४३·५९)

महाभारत में प्राग्ज्योतिष का उल्लेख मिलता है। उसे एक अति प्राचीन नगर कहा गया है। भौमासुर की राजधानी था। (म. स ३८) भौमासुर के पश्चात् उसका पुत्र भगदत्त वहाँ का राजा हुआ था। यहाँ पर नरकासुर निवास करता था।

तत्र तं वारुणं छत्रं छायया राजसंनिधौ।
भेजे वरस्रजा राजकन्यका चाऽमृतप्रभा ॥ १४८ ॥

१४८. वहाँ राजा की संनिधि में उसे वरुण छत्र[1] ने छाया से और राजकन्या अमृतप्रभा[2] ने वरमाला से सम्मानित किया।

(म० उद्योग ४८.८०) भगदत्त के पश्चात् यहाँ का राजा वज्रदत्त हुए थे। (म. आश्व:७५:१)

(३) **कन्यास्वयंवर** : भारतीय एकता भारत की भिन्नता में अभिन्नता का बडा ही उत्तम उदाहरण मेघवाहन का स्वयंवर उपस्थित करता है।

मेघवाहन गान्धार अर्थात् सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश जो काबुल उपत्यका तक फैला था वहाँ से भारत के धुर पूर्वीय प्रदेश प्राग्ज्योतिष पहुँचता है। स्वयवर मे भारतीय राजा आमन्त्रित किये जाते थे। भारत को एक ईकाई के रूप में भारतीय देखते थे।

स्मरणीय बात है। स्वयंवर में केवल हिन्दू ही भाग लेते थे। भारत की सीमा पर स्थित यवन म्लेच्छ राजा भाग नही लेते थे। हिन्दुओं एव भारत की एकता का यह सजीव उदाहरण है। भारत के किसी कोने मे रहनेवाला भारतीय अपने को एक ही कुल की सन्तान समभता था। एक दूसरे को भाई मानता था।

मेघवाहन २ हजार मील की यात्रा कर प्राग्ज्योतिष पहुँचा था। गान्धार की भाषा एवं आसाम की भ.षा में जमीन आसमान का अन्तर था। एक दूसरे की भाषा नही समझते थे। एक दूसरे का रंग नही मिलता था। अग विन्यास नही मिलता था, खानपान नही मिलता था। रहन सहन नही मिलता था। जल-वायु नही मिलती थी। तथापि जैसे उनमें भिन्नता नही थी। सब एक परिवार के प्राणी थे। वह परिवार विशाल भारत था। वह परिवार रक्त से नही अपितु धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता से जुटा था। घुल मिल गया था। सुदूर पूर्व के मनीषियो की यह कल्पना थी। जो साकार थी। गान्धार के होते भी वह आसाम में अपरिचित समझा गया। राजकन्या ने दो हजार मील दूर रहने वाले को चुनने में किंचित् मात्र संकोच नही किया। उसके पिता ने संकोच नही किया कि मेघवाहन एक राज्यच्युत वंश का वंशज मात्र था। वह राजा किंवा राज्य का उत्तराधिकारी नही था। राजा ने उसे राजकन्या देने में किंचित् मात्र सकोच नही किया। वह दूर जाने वाली थी। उसका पुन: दर्शन दुर्लभ हो सकता था।

कन्या अमृतप्रभा ने भी निस्संकोच मेघवाहन का वरण किया। वह था आदर्श। यह थी भारतीय संस्कृति की अमोघ शक्ति जिसने भारत को अनेक आघातो, ताडनाओ के होते भी एक में बाँध रखी थी। कल्हण भारत की इस सास्कृतिक एकता की अविच्छिन्न धारा से परिचित था। और उसने बडी सुन्दरता से उसे वहाँ उदाहरण स्वरूप उपस्थित कर दिया है।

१४८ (१) **वरुण छत्र** : वरुण छत्र किस प्रकार प्राग्ज्योतिष के राजा के पास आया इसका उल्लेख कल्हण ने स्वयं तरंग ३ के श्लोक ५३ से ७० तक मे किया है। उस वर्णन से प्रतीत होता है कि मेघवाहन ने अमृतप्रभा तथा वरुण का छत्र दोनो प्राप्त किया था। मेघवाहन ने यह छत्र वरुण के माँगने पर पुन लौटा दिया था।

वैदिक साहित्य में वरुण सृष्टि के नैतिक एवं भौतिक प्रतिपालक रूप में चित्रित किये गये हैं। वैदिकोत्तर साहित्य में वरुण का श्रेष्ठत्व क्रमशः क्षीण होता गया है। उसका प्रभुत्व केवल जल ही पर शेष माना जाने लगा है। वह सहस्र नेत्रो से मानव जाति का अवलोकन करते हैं। (ऋ. ७:२४:८८)

अतएव वरुण को 'सूर्यनेत्री' की संज्ञा दी गयी है। (ऋ. ७ ६६) यह सुपाणि है। स्वर्णद्रापि एव द्युतिमत् वस्त्र धारण करते हैं। (ऋ. १० २५) इनका रथ सूर्य के समान द्युतिमान है। उसमें स्तम्भो के स्थान पर नाभियाँ लगी है। (ऋ. १ १२२)

ब्राह्मण ग्रन्थ रचना काल में इसके रूप की कल्पना श्वेत वर्ण, गंजा, पीत नेत्र, बृहद पुरुष रूप में की गयी है। वरुण का भवन स्वर्ण निर्मित है। द्युलोक में है। गृह में सहस्र द्वार हैं। वह भवन में बैठकर समस्त सृष्टि का अवलोकन करता है। (५ ६७—६८, १·२५) सर्वदर्शी सूर्य अपने गृह से उदित होकर मानवो के कृत्यो की सूचना वरुण को देता है। (ऋ. ७ ६०) ऋग्वेद में इसे सम्राट् कहा गया है। यह उपाधि इन्द्र को दी गयी है परन्तु इन्द्र से भी अधिक वरुण को प्रदान की गयी है। इसके सार्वभौम सत्ता किंवा छत्र का एव शासक के नाते निर्देश किया गया है। (ऋ० १ १ १३२, ५ . ८५) वरुण प्रकृति के नियमो का महान् अधिपति है। उसके कारण द्युलोक एव पृथ्वी अलग अलग हुई। (ऋ० : ६ . ७०, ८ ४२) इसने अग्नि की जल में, सूर्य की आकाश में, एव सोम की पर्वतो में स्थापना की है। (ऋ. ५ ८५) वायु मण्डल में भ्रमणशील वायु वरुण का श्वास है। (ऋ० ७ ८) ऋग्वेद मे कितनी ही बार वरुण को असुर किंवा रहस्यमय व्यक्ति कहा गया है। (ऋ० १ . ३५ ७ , २ ७ १० , ७ ६५ २ , ८ : ४२ · १) यह अपनी आसुरी माया के कारण मनुष्यो का सम्राट् बन गया था। उसे यक्षिन् भी कहा गया है। (ऋ० ७ ८८ ६)

अथर्व वेद काल में वरुण की वह सत्ता नही मानी गयी है जो ऋग्वेद काल मे थी। उसे केवल जल का नियत्रक माना गया है। (अ. वे ३ ३) ब्राह्मण ग्रथो में उसे जल देवता-रूप में चित्रित किया गया है। (तै. स. २ १ २ :१ , श. ब्रा. ४ : ४ ५ . ११, ऐ. ब्रा ७ · १५)

वरुण शब्द की व्युत्पत्ति की गयी है। उसके अनुसार पापियो को परिवेष्ठित करने वाला कहा गया है। (१ ८९) पापियो को अन्धकार की भाँति आच्छादित करनेवाला भी कहा गया है। (तै० स० २ १ ७)

महाभारत काल में वरुण के रूप में और परिवर्तन होता दिखायी पडता है। उसे अदिति का पुत्र तथा चौथा लोकपाल कहा गया है। जल निवासी देवता उसे बना दिया गया है। (म० आ० ५९ १५) इसको पश्चिम दिशा, जल एव नागलोक का अधिपति कहा गया है। (म. स. ९ ७, म. उ. · ८६ : २०) देवताओ ने जलेश्वर रूप में इसका अभिषेक किया था। वरुण का पुत्र श्रुतायुध था। उसे गदा प्रदान किया था। (म द्रो. ६७ ४९) इसकी ज्येष्ठ पत्नी का नाम ज्येष्ठा था। वह शुक्राचार्य की कन्या थी। उससे बल, अधर्म एवं पुष्कर नामक तीन पुत्र तथा सुरा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई थी। (म आ. ६०:५१–५२; म. उ. ९६.१२) इसकी एक और पत्नी थी। उसका नाम वारुणी था। उसे गौरी भी कहते हैं। उसे गौ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। (म. स. ९:१०८) इसकी तृतीय पत्नी का नाम शीत-तोया था। जनक सभा का सुविख्यात ऋषि वन्दिन् भी इसका पुत्र था। (म. व. १३४ २४) रुद्र के यज्ञ से उत्पन्न हुए भृगु, अगिरस एव कवि नामक तीन पुत्रो में से इसने भृगु को अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया था। वह भृगु वारुणी नाम से प्रसिद्ध हुआ। (म० अनु० : १३२ । ३६)

वरुण की पूजा का कश्मीर के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नीलमत पुराण (श्लोक 809-810) में वरुण का उल्लेख विष्णु, शक्र, सविता, ब्रह्मा एव रुद्र के साथ किया गया है। वरुण का नीलमत पुराण में आदित्य, मरुत् तथा जलाधिपति के रूप में वर्णन किया गया

तेन तस्य निमित्तेन वृद्धिमागामिनीं जनाः ।
अजानन्नम्बुवाहस्य पाश्चात्येनेव वायुना ॥ १४६ ॥

१४९. इन लक्षणों से जनता ने उसके उन्नत भविष्य को पश्चिमी वायु[1] चलने पर जलद आने के समान जान लिया।

राज्ञा हि नरकेणैतद्वरुणादुष्णवारणम् ।
आनीतमकरोच्छायां न विना चक्रवर्तिनम् ॥ १५० ॥

१५०. राजा नरक[1] द्वारा वरुण से लाया गया वह छत्र चक्रवर्ती के अतिरिक्त और किसी पर छाया नहीं किया था।

है। वे नरक देवता रूप में भी चित्रित किये गये हैं। (श्लोक 619, 607, 384, 1381 तथा 1004-1006)। कार्तिक मे वरुण पूजा का विधान भी नीलमत पुराण करता है। वरुण पंचमी पूजा का मुख्य दिन रखा गया है (श्लोक 755) नीलमत वरुण लोक का भी उल्लेख करता है। (868, 282-284, 1262,676,1001,1232,1221, 1286, 1299)

(२) अमृतप्रभा—विर्दैउद्दीन मेघवाहन की प्राग्ज्योतिष की राजकन्या का नाम 'खोता' देता है। पुनः कहता है कि वह खोट के राजा की कन्या थी। लेखक का आधार केवल परसियन अनुवाद राजतरंगिणी का है। मेघवाहन की दूसरी रानी खादना को ही शायद खोता लिखा है। कल्हण ने किसी खोता रानी का वर्णन नही किया है यद्यपि उसने मेघवाहन की पाँच रानियो का नाम दिया है। वे अमृतप्रभा, पूक देवी, इन्द्र देवी, खादना तथा सम्मा है। (रा. त. ३:१०)

१४९ राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५२ वा श्लोक है।

(१) पश्चिमी वायु: पश्चिमी यहाँ दो अर्थ उपस्थित करता है। कश्मीर मे पश्चिमी वायु चलने पर वर्षा होती है। उत्तर भारत मे भी पुरवा हवा अर्थात् पूर्वीय वायु चलने के पश्चात् जब पछुवा अर्थात् पश्चिमी वायु चलने लगती है, तो ग्रामीण समझ जाते है कि वर्षा होगी। उत्तर भारत में आसाम से लेकर हिमाचल तक वर्षा ऋतु मे मानसून से वर्षा होने का यही लक्षण माना जाता है। बगाल की खाडी से मानसून उठता है। वह पश्चिम उत्तर की ओर चलता है। वहाँ हिमालय उसे तिब्बत में तथा और आगे बढने से रोक देता है। वह वायु टक्कर खाकर लौटती है। उसकी गति पश्चिम से, पूर्व उत्तर से पूर्व और दक्षिण की ओर हो जाती है। इसी से वृद्धि होती है।

आसाम के लोगो ने मेघवाहन को पश्चिम से आया जानकर उसकी उपमा पश्चिमी वायु जनता के लिये वर्षा सहित उज्ज्वल भविष्य उपस्थित करती है। उसी प्रकार पश्चिम का मेघवाहन अपने उज्ज्वल भविष्य के साथ पूर्व आसाम मे आया था। उसका लक्षण देखकर लोगों ने उसका भविष्य आँका था।

१५० (१) नरक: राजा नरक प्राग्ज्योतिष का राजा था। पृथ्वी का पुत्र होने के कारण इसकी संज्ञा भौम भी थी। इसकी माता भू देवी नें तपस्या की थी। विष्णु ने प्रसन्न होकर उसे वैष्णवास्त्र दिया था। उस अस्त्र के कारण यह अजेय हो गया था। इस अस्त्र को उसने अपने पुत्र भगदत्त को दे दिया था। (म० द्रो० २८)

नरक का राज नील समुद्र के तट पर था।

तमन्तिकं पितुः प्राप्तं पत्न्या लक्ष्म्या च संश्रितम् ।
भुवा निमन्त्रयामासुर्मन्त्रिणो वंशयोग्यया ॥ १५१ ॥

१५१. पत्नी एवं लक्ष्मी से युक्त वह जब पिता के पास पहुँचा तब उसे मन्त्रियों ने वंशानुरूप भूमि द्वारा आमन्त्रित किया।

उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिष थी। इसका नाम मूर्ति लिंग भी आया है। इसके पाँच राज्यपाल 'हयग्रीव, निशभु, पंचजन, विरूपाक्ष एव मुर थे। यह इतना प्रबल हो गया था कि इन्द्र से उच्चैश्रवा अश्व एव ऐरावत हाथी छीन लाया था। देवमाता आदि के कुण्डलो का भी हरण कर लिया था। (म. स. ३८)

माता अदिति के कुण्डल को प्राप्ति का देवताओ ने प्रयास किया। किन्तु विफल हो गये। प्राग्ज्योतिष में असुरो का एक सुदृढ दुर्ग था। अजेय था। नरकासुर यहाँ निवास करता था। निर्मोचन नगर में नरक तथा श्री कृष्ण का युद्ध हुआ। नरक पराजित हो गया। (म. उ. ४८·८०—८४) कृष्ण ने उसके पुत्र को राज्यसिंहासन पर बैठाया (भा० १० ५९)

नरक ने पृथ्वी का अपहरण किया था। उसने सम्पत्ति तथा अपहृत नारियो को मणिपर्वत पर औदका नामक स्थान में रखा था।

श्री कृष्ण तथा नरक की कथा हरिवश पुराण में दूसरे ढग से दी गयी है। युद्ध प्रारम्भ पूर्व श्री कृष्ण ने पाचजन्य शंख घोष किया। शख घोष सुनते ही नरक क्रुद्ध हो गया। क्रोध पूर्वक सवेग युद्धार्थ रथारूढ हो निकला। नरक का रथ अत्यत विस्तृत मूल्यवान तथा अजय था। नरक का मस्तक चक्र से भगवान् ने काट दिया। अदिति का कुण्डल तथा प्राग्ज्योतिष का राज्य दोनो मुक्त हुए। (ह० व० २:६३, भा०१०:५९) श्री कृष्ण ने बन्दी रखी नारियो को मुक्त किया (पद्म · उ० २८८) पद्म पुराण में भी यह कथा दी गयी है। उसमें 'नरक चतुर्दशी' का विशेष वर्णन किया गया है। यह दिन कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को पड़ता है। उसने कृष्ण से वर माँगा था। उसकी मृत्यु के दिन अर्थात् नरक चतुर्दशी को सूर्योदय के पूर्व जो मंगल स्नान करे उन्हें नरक की यातना न दी जाय।

नीलमत पुराण में यह कथा अत्यन्त सक्षेप मे दी गयी है। वरुण की सभा मे नरकासुर को अत्यत सम्माननीय स्थान प्राप्त था। उसे वहाँ पर पृथ्वीपति कहा गया है। (म. स. ९ १२) नरक को यही पर छत्र प्राप्त हुआ था। उसी वरुण के छत्र का उल्लेख कल्हण यहाँ करता है। प्राग्ज्योतिष में वह छत्र आया था। प्राग्ज्योतिष का राजा उसका वशज था। अतएव उसके कुल में वह छत्र था।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १५१ में 'वश' का 'वंश्य' तथा 'योग्यया' का 'योग्य वा' और 'योग्यवान' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

१५१ (१) **मन्त्री-शक्ति**—कल्हण यहाँ एक और उदाहरण कश्मीर की शक्तिशाली मन्त्री परिषद् किंवा मन्त्री मण्डल का देता है।

सन्धिमान राजा था। उसके राजा रहते हुए कश्मीर के मन्त्रियो ने मेघवाहन को कश्मीर की भूमि देने का निश्चय किया। उसे कार्यान्वित भी किया। औपचारिक रूप से मन्त्रियो ने उसे उसके पूर्वजो के राज्य ग्रहण करने का निवेदन किया। मन्त्रिपरिषद् की शक्ति कश्मीर में कितनी शक्तिशाली थी यह इसी से प्रकट होता है। उन्हें किंचित् मात्र सकोच नही हुआ कि सन्धिमान के मन्त्री होते भी वे उसे राज्यच्युत करने का प्रयास कर रहे थे। मन्त्रियो के सम्मुख जनता हित तथा राज्य

अथाऽऽर्यराजो विज्ञाय स्वराज्यं भेदजर्जरम् ।
प्रतिचक्रे न शक्तोऽपि तस्थौ तु त्यक्तुमुत्सुकः ॥ १५२ ॥

१५२. भेद से जर्जरित[१] अपने राज्य को जानकर, उसे त्यागने के लिये उत्सुक वह आर्य राज समर्थ होते हुए भी प्रतिरोध न कर, स्थिर हो गया।

की व्यवस्था का प्रश्न था। सन्धिमान इतना अधिक धर्म की ओर झुक गया था कि वह राज कार्य की ओर उतना ध्यान नही दे सका। जितनी की अपेक्षा हो सकती थी।

उसे परलोक की चिन्ता हो गयी थी। मन्त्री लोक के थे। उन्हे लोक की चिन्ता थी। परलोक की चिन्ता सन्तो, साधुओ, महात्माओ तथा ब्राह्मणो को हो सकती थी। सन्धिमान ४७ वर्ष राज्य कर चुका था। उसके पूर्व वह मन्त्री रह चुका था। दश वर्ष जेल में था। जो कारावास तथा राज्य काल का समय जोड़ा जाय तो वही ५७ वर्ष का हो जाता है। यदि मान लिया जाय कि वह पचीस या तीस वर्ष की आयु में मन्त्री हुआ था तो राज्य त्याग के के समय उसकी आयु ८२ या ८७ वर्ष होनी चाहिए।

वृद्धावस्था के कारण उसका झुकाव परलोक की ओर हो जाना स्वाभाविक था। वह ९६ वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुआ था। इस प्रकार राज्य त्याग के पश्चात् ९ या १४ वर्ष तक जीवित रहा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५२ मे 'तु' का पाठ भेद 'तत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५२ (१) **भेद जर्जरित :** राज्य कार्य की व्यवस्था ठीक से देखने के कारण मन्त्रियो तथा भृत्यो का प्रबल होना स्वाभाविक था। राजा जब शक्ति हीन होता है तो उसके पार्षद, मन्त्री तथा भृत्यो की शक्ति वृद्धि होती जाती है। मन्त्री, पार्षद, भृत्य एवं अन्य लोग परस्पर स्पर्धा शक्ति प्राप्ति के लिये करते हैं। इस स्पर्धा के कारण परस्पर अविश्वास तथा भेद उत्पन्न होता है। राजा के कुछ निर्णायिक निश्चय न लेने पर वह और बढता जाता है। यही अवस्था सन्धिमान के राज्य यन्त्र की हुई थी। दुर्बल राजा के कारण राज यन्त्र शिथिल हो गया था। यन्त्र ढीले हो गये थे। उन्हें कसने के अभाव मे राज्य शरीर जर्जरित हो गया था। वह जर्जरता पारस्परिक भेदो में प्रकट होती है। एतदर्थ कल्हण यहाँ ठीक ही कहता है कि राजा भेद जर्जरित हो गया था।

कल्हण सन्धिमान का चरित्र और महान् बना देता है। राजा अपनी स्थिति सम्हाल सकता था। उसके विरुद्ध आचरण दोष भ्रष्टाचार का दोष नही आरोपित किया जा सकता था। जनता मे उसके अलौकिक शक्ति की धाक थी। प्रतिरोध करना चाहता तो वह कर सकता था।

किन्तु यह दार्शनिक, आध्यात्मिक, निस्पृह राजा था। उसने राज्य की याचना नही की थी। राज्य जाने लगा उस समय भी चिन्ता नही की। वह अनायास मिला था। अनायास जा रहा था!

राज्य के प्रति उसे इस लिये भी मोह नही रह गया था कि उसे कोई सन्तान नही थी। कल्हण के वर्णन से प्रकट नही होता कि उसे स्त्री था। रक्तज उत्तराधिकारी के अभाव में उसे यह कामना नही रह गयी थी कि राज्य उसके सन्तान किंवा वंशज को मिले। वह जनता का राज्य था। जनता से मिला था। जनता चाहे उसे ले ले। सन्धिमान ने वह दृष्टिकोण अपनाया था। सन्धिमान निस्सन्देह साधु राजा था। उसके समान विश्व इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण मिल सके।

अचिन्तयच्च सत्यं मे संप्रीतो भूतभावनः ।
सिद्धिविघ्नानमून्दीर्घानपाकर्तुं समुद्यतः ॥ १५३ ॥

१५३ उसने विचार किया – 'वास्तव में इन महान् सिद्धि-विघ्नो को दूर करने के लिये समुद्यत भूतभावन मुझ पर प्रसन्न हो गये है ।'

कृत्ये बहुनि निष्पाद्ये श्रमात्कौसीद्यमाश्रयन् ।
प्रावृषीवाध्वगो दिष्ट्या मोहितोऽस्मि न निद्रया ॥ १५४ ॥

१५४. "सौभाग्य से, अनेक निष्पाद्य कृत्यों के रहते, श्रम से आलस्य का आश्रय लेते हुए, वर्षा कालीन पथिक सदृश, मै निद्रा द्वारा मोहित नही हुआ ।"

स्वकाले त्यजता लक्ष्मीं विरक्तां बन्धकीमिव ।
हठनिर्वासनव्रीडा दिष्ट्या नासादिता मया ॥ १५५ ॥

१५५. "सोभाग्य से, अपने काल में स्वैरिणी सदृश विरक्त, लक्ष्मी को त्यागते हुए, मैंने बलात् निर्वासन व्रीडा को नहीं प्राप्त किया ।"

शैलूषस्येव मे राजरंगेऽस्मिन् वल्गतश्चिरम् ।
निर्व्यूढावपि वैरस्यं दिष्ट्या न प्रेक्षका गताः ॥ १५६ ॥

१५६. "इस राज्य रूपी रंगमंच पर शैलूप (नट) सदृश, चिरकाल तक मैंने नृत्य किया । सौभाग्य से उनकी समाप्ति पर भी दर्शक विरस नहीं हुए ।"

दिष्ट्या सदैव वैमुख्यमुच्चैरुद्घोपयञ्श्रियः ।
त्यागक्षणे न भीतोऽस्मि विकत्थन इवाऽऽहवे ॥ १५७ ॥

१५७. सौभाग्य से, मैंने लक्ष्मी के प्रति विमुखता का सदैव उद्घोप किया, अतएव इसके त्याग काल मे, युद्ध के मध्य डींग हाँकने वाले की तरह, भयभीत नहीं हुआ ।"

पाठभेद ·

श्लोक सख्या १५४ मे 'श्रयन्' का 'श्रयम्' और 'कौसीद्य' का पाठभेद 'कौमीद्य' मिलता है ।

श्लोक सख्या १५५ में 'स्वकाले' का 'सुकाले' 'स्वकुले' तथा 'विरक्ता' का पाठभेद 'सरक्ता' मिलता है।

श्लोक सख्या १५६ में 'शैलूषस्येव' का 'शैलूपस्यैव' 'विर्व्यूढावपि' का 'निर्व्यूढाम्' 'निर्व्यूढमपि' तथा 'वैरस्य' का पाठभेद 'वैराज्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियां

१५६ (१) निर्व्यूढ निर्व्यूढ शब्द एक पारिभाषिक शब्द है । जिसका अर्थ होता है किसी कथावस्तु का विश्लेषण करना । इसका अर्थ सस्कृत शब्द वस्तु समान होता है । राजतर० ३ १८६, ७ ६०६ और ७.२७०७ द्रष्टव्य है ।

इति संचिन्तयन्नन्तः सर्वत्यागोन्मुखो नृपः ।
मनोराज्यानि कुर्वाणो दरिद्र इव पिप्रिये ॥ १५८ ॥

१५८. सर्व त्यागोन्मुख नृप यह अन्तश्चिन्तन करते हुए; मनो राज्य करते, दरिद्र तुल्य नितरां प्रसन्न हुआ ।

अन्येद्युः प्रकृतीः सर्वाः संनिपत्य सभान्तरे ।
ताभ्यः प्रत्य(त्या)र्पयन्न्यासमिव राज्यं सुरक्षितम् ॥ १५९ ॥

१५९. दूसरे दिन सभा में सब लोगों को बुलाकर. न्यास तुल्य सुरक्षित राज्य, उन्हें अर्पित कर दिया ।

उज्झितं स्वेच्छया तच्च प्रयत्नेनापि नाऽशकत् ।
तं स्वीकारयितुं कश्चित्फणीन्द्रमिव कञ्चुकम् ॥ १६० ॥

१६०. स्वेच्छया, त्यक्त राज्य को फणीन्द्र के कंचुक तुल्य प्रयत्न पूर्वक भी कोई, उसे ग्रहण कराने में समर्थ नही हुआ ।

अर्चालिङ्गमुपादाय सोऽथ प्रायादुदङ्मुखः ।
धौतवासा निरुष्णीषः पद्भ्यामेव प्रजेश्वरः ॥ १६१ ॥

१६१. धौत[1] वस्त्र धारण किये, बिना उष्णीष के, उत्तर मुखी प्रजेश्वर पैदल ही अर्चा (पूजन) लिंग[2] लेकर गया ।

तस्य पादार्पितदृशो व्रजतो मौनिनः प्रभोः ।
पन्थानं जगृहुः पौरा निश्शब्दस्रवदश्रवः ॥ १६२ ॥

१६२. नत मस्तक हो गमन करते मौनी उस प्रभु के मार्ग को निःशब्द अश्रुपात करते पुरवासियों ने ग्रहण किया ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १५९ मे 'सनिपत्य' का 'संनिपात्य' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक सख्या १६० मे 'तच्च' का पाठभेद 'त च' तथा 'ते च' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

१६१ (१) धौतवस्त्र : श्री विलसन ने यहाँ पर धोती शब्द का प्रयोग किया है । (पृष्ठ ३२) कल्हण ने धोती नही धौत अर्थात् उज्ज्वल वस्त्र का उल्लेख किया है । नीलमत मे वस्त्र के अन्तर्गत प्रायः वस्त्र, अम्बर, वासा, वसन, सवित, चीनांशुक आदि आ जाते है । (श्लोक ५६२, ७८६, ८११, ४७५, १२०४, ३३५, ४३२, ४४२, ६२, ५७६)

(२) अर्चालिंग—लिंगायत लोग शिवलिंग सर्वदा अपने पास रखते हैं । चाँदी की मन्दिराकार डिबिया मे दोनो ओर कोढे लगे रहते है । उनमे यज्ञोपवीत की दोनो छोर दोनो ओर से बाँध देते है । यज्ञोपवीत तुल्य उसे पहनते है । डिबिया को प्रतिदिन खोलकर उसमे स्थित शिवलिंग की पूजा करते है ।

इस लिंग की लिंगायत प्रति दिन अर्चा अर्थात् पूजा करते हैं । यह सम्प्रदाय ग्यारहवी शताब्दी में दक्षिण में प्रचलित हुआ और बढता गया । उत्तर भारत मे निस्सन्देह यह अति प्राचीन काल से प्रचलित था ।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या १६२ में 'मौनिन.' का पाठभेद 'मानिनः' मिलता है ।

स विलङ्घितगव्यूतिरुपविश्य तरोरधः ।
जनमेकैकमुद्बाष्पं न्यवर्तयत सान्त्वयन् ॥ १६३ ॥

१६३. एक गव्यूति[1] गमनानन्तर तरु तले बैठ कर के उसने अश्रु पूर्ण प्रत्येक जन को सान्त्वना देते हुए परावृत किया ।

पथि शिखरिणां मूले मूले विलम्ब्य जहज्जनान्-
मितपरिकरो गच्छन्नूर्ध्वं क्रमात्समदृश्यत ।
गहनवसुधाः संपूर्योच्चैर्व्रजन्स निजात्पदा-
न्नद इव विनिर्यातः स्तोकैः कृतानुगमो जलैः ॥ १६४ ॥

१६४. मार्ग में शिवरागियों के मूल मूल में रुक कर, लोगों को परावृत करते मित परिकर वह, क्रम से ऊपर जाते हुए, गहरी भूमि को पर्ण कर पुनः अपने स्थान से कोई जल के साथ सवेग गमनशील नद सदृश दिखाई पड़ा ।

निश्शेषं निकटात्स लोकमटवीमध्ये निरुन्धन्पदं
शोकावेशसबाष्पगद्गदपदं संमान्य चोत्सार्य च ।
भूर्जत्वक्परिरोधमर्मरमरुन्निद्राणसिद्धाध्वग-
श्रेणीमौलिमणिप्रभोज्ज्वलगुहागेहं जगाहे वनम् ॥ १६५ ॥

१६५. अटवी मध्य रुक कर, शोकावेश के कारण अश्रु पूर्ण एवं रुद्ध वाणी से युक्त, समस्त लोगों को अपने निकट से परावृत कर, संमान्य उसने वन में प्रवेश किया, जहां कि भूर्जपत्रों[1] के परिरोध के कारण मर्मर ध्वनि पूर्ण मरुत् से शयन करते, सिद्ध पथिक गण के मस्तक स्थित मणि की कान्ति से गुहा गृह[2] समुज्ज्वल हो रहे थे ।

पादटिप्पणियाँ :

१६३ (१) गव्यूति : यह नाप का एक पारिभाषिक शब्द है । एक गव्यूति की दूरी एक क्रोश होती है । यह केल्टिक शब्द लीग तथा फ्रान्सीसी नाप से २ मील तथा ७४३ गज होता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या १६४ में 'मित' का 'सित' तथा 'कृतानुगमो' का पाठभेद 'स्तोकानुगमो' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१६४ (१) साहित्य दर्पण शमें खरिणी शब्द का उल्लेख पर्वत के लिये किया गया है ।

शिखरिणी क्व नु नाम कियच्चिर,
किमभिधानमसावकरोत्तप ।
सुमुखि येन तवाधरपाटल
दिशति बिम्बफलं शुकशावकः ॥

नदी का जल अत्यधिक बढकर तटों पर फैल जाता है तब भी जल की गति नदी के अधोभाग की ही ओर होती है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या १६५ में 'निरुन्धन्' का निरुन्धत्' निरुत्पत्' 'निरुन्धत्' 'निरुद्धयन्' 'भूर्ज त्वक्' का 'भूर्यत्वत्प' 'मर्मर, का 'मन्दर' 'मर्दर' 'मर्जर' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

१६५ (१) भूर्ज : भूर्ज संस्कृत शब्द का

अर्थ भोजपत्र है। कश्मीर मे यह बहुत होता है। जोजिला पास के समीप इसके वृक्ष खूब मिलते है। प्राचीन काल में यह कागज के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता था। परन्तु गृह त्यागी सन्यासी अथवा सन्त गण इसका वस्त्र बनाकर भी पहनते थे। हवन के काम मे भी इसका प्रयोग किया जाता है। यह पवित्र माना गया है। भोजपत्र के बने पहनने के साधनो को वल्कल कहा जाता था। भोजपत्र पर चन्दन तथा केसर से तान्त्रिक यन्त्र और कवच लिख कर तावीज के ढग पर पहनने को प्रथा थी, और है।

ऊर्ध्व काबुल उपत्यका में स्तूपो से भोजपत्र पर लिखे गये अभिलेख प्राप्त हुए है। सन् १८९२ ई० मे फ्रेंच अन्वेषक श्री दुत्ररिपुल डी रहिन को खोतान से बहुत दूर पर खरोष्ट्री भाषा मे लिखे गये भोज पत्र पर अभिलेख मिले थे। वह पाण्डुलिपि धम्म पद की थी। प्राकृत भाषा में थी। मध्य एशिया मे सस्कृत पाली, प्रकृति और कुशान भाषा मे ये जर्मन रूसी तथा फ्रेंच विद्वानो को भोजपत्र पर लिखे लेखादि प्राप्त हुए थे।

भोजपत्र कश्मीर से मध्य एशिया मे भेजा जाता था। भूर्जपत्र के वृक्ष लगभग १४००० फिट ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इसका भी नर एव मादा प्रकार होता है। नर शरद तथा मादा वसन्त ऋतु मे प्रकट होता है। भोजपत्र अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें कानू पीत, रक्त, कृष्ण, धूसर वर्ण के मुख्य होते है। कानू भूर्ज पत्र को श्वेत भूर्ज भी कहा जाता है। इसकी छाल श्वेत होती है। यह पतली होती है। लिखने के लिये उत्तम मानी गयी है। इस छाल से आभूपण, टोकरियाँ, प्यालो, तश्तरी आदि बनाया जाता है। इसका लूगदी से जूते के साँचे तथा फरमे भी बनाये जाते है। हिमालय के अतिरिक्त उत्तरी अमेरिका, कनाडा तथा उत्तरी यूरोप में मिलता है।

पोत भूर्ज पत्र को रजत भूर्ज पत्र भी कहते है वृक्ष के वयस्क होने पर इसकी छाल धुँधले-धूसर वर्ण की हो जाती है। यह लकडी का फर्नीचर, खेती के औजार तथा गृहस्थी के कार्यों के लिये अच्छा होता है। रक्त भूर्ज पत्र जलाशयो के समीप मिलता है। इसे नदी भूर्ज पत्र भी कहते है। दल-दली भूमि, सरोवरो, नदो के तटो पर वृक्ष उगते है। इसके छाल का वर्ण पहले गुलाबी होता हैं। तत्पश्चात् काला हो जाता है। इसके वृक्ष ५० से ६० फिट ऊँचे होते हैं। दक्षिण अमेरिका मे विशेषतया प्राप्त होता है।

कृष्णभूर्ज पत्र का वृक्ष ६० से ८० फिट ऊँचा होता है। इसका शीर्ष शोभनीय होता है। शाखायें पतली तथा टहनियाँ कोमल होती है। इसकी लकडी कृष्ण वर्ण तथा कठोर होती है। फर्नीचर आदि तथा गृहो के सजाने के लिये इसकी लकडी अच्छी होती है। धूसर भूर्ज पत्र का वृक्ष ४० फिट से अधिक ऊंचा नही होता। अमेरिका के अनेक राज्यो मे इसके वृक्ष मिलते है। छाल कडी और परतें एक दूसरे के साथ मजबूती से चिपकी रहती हैं। यह जलाने के काम मे आता है। इसके साँचे बनाये जाते हैं।

गुहागेह से इस स्थान पर बुमजू की गुफाओ की ओर सकेत होता है। स्तीन ने बुमजू की गुफाओ को इन गुहा गेहो को मानने मे सन्देह किया है। यह ठीक है। किन्तु हसन ने बुमजू ही की गुफा माना है।

मेरा मत है कि यह स्थान भ्रुज होम अथवा व्रजहोम है। इस स्थान पर खनन कार्य भारतीय पुरातत्त्व विभाग की तरफ से हो रहा है। श्री त्रिलोक नाथ खजान्ची कार्य कर रहे है। व्रुज होम एक छोटी सी पहाडी है। उसके प्रायः तीन तरफ पर्वत माला है। श्रीनगर उत्तर दिशा मे पडता है।

राजा सन्विमति उत्तर दिशा की ओर चलता हुआ भ्रुज पत्तो के मर-मर से पूर्ण गुहागेह में रहने वाले सिद्ध जनो के स्थान पर पहुँचता है। वहाँ से वह पुनः नन्दि क्षेत्र की तरफ जाता है। नन्दि-क्षेत्र हर मुकुट पर्वत पर है। हरिमुकुट की यात्रा वे गन्ध अर्थात् सिन्ध वैली होते पुनः हरमुकुट गगा का मार्ग पकडते हुए नारायण बल होते, गंगाबल पहुँचते है। इस समय यहाँ की यात्रा कर श्रीनगर आदि होते, नारायण बल की तरफ से लौटते हैं। मैंने ब्रुजहोम की गुफाएँ देखी हैं। आजकल भी भारतवर्ष के कितने ही स्थानो पर साधु इस प्रकार की गुफाओ में रहते है। मै समझता हूँ ब्रुजहोम का नाम भूर्ज वृक्ष के आधार पर पडा है। इन गुफाओ में कौन रहते थे। उनमे मानव ककाल ६॥ फुट लम्बे तक के मिले हैं। गाडने की प्रथा हिन्दुओ में नही थी। केवल साधु सन्यासी अथवा सिद्ध गण समाधि लेते थे। तत्कालीन समय में यहाँ केवल हिन्दू रहते थे। अतएव सन्धिमान सिद्धजनो के स्थान में पहुँचता नन्दि पर्वत गया था। यह स्थान नन्दि पर्वत यात्रा के मार्ग में है। अतएव यही स्थान गुहागेह निवासियो का है।

१ गव्यूती · हरकन में टाइल्स मिली है जिनमें लोगो के उँकडू बैठे हुए दिखाया गया है। यही आसन समाधि में मिले दो चार ककालो का मैंने देखा है। वे लम्बे सुला कर नही गाडे गए थे। उँकडू अधिक मिले है। समाधि देने की प्रथा है कि पद्मासन लगाकर समाधि में रख देते थे, एक प्रकार और था। खडी शव समाधि मे खडाकर ऊपर से मिट्टी डाल देते थे। यहाँ खड शव पद्मासन रूप में रखा गया होगा। कालान्तर में एक पैर खुल गया और पृष्ठ भाग गढे में पीछे लग गया। यही रूप खडे शव का है।

यहाँ पर ईंटें भी मिली हैं। इन ईंटो का आकार नारायण नाग में मिली ईंटो से मिलता है। स्ताइन सन्धिमति का काल ३०४४१ वर्ष देता है। चाहे यह समय बिलकुल ठीक भी न हो परन्तु सन्धिमति का समय २ हजार वर्ष पूर्व ही ठहरता है। यदि वैज्ञानिक शोधन से यह शव दो हजार वर्ष पूर्व का ठहरता है तो मेरा अनुभव ठीक है।

यहा मैंने एक शव और देखा। जिसके मस्तक की हड्डियाँ टूटी थी। एक प्रथा थी शव समाधि मे रखने पर मूर्धापर नारियल अथवा ऐसी चीज से मारते थे कि मूर्धा भग्न होजाय। यही कार्य कपाल क्रिया के रूप में स्मशान में की जाती है। मस्तक तोड दिया जाता है।

पत्थर के सामान यहाँ मिलते है। साधुओ को धातु स्पर्श निषेध किया गया है। आज कल भी सन्यासी लोग पत्थर के बर्तनो में भोजन करते हैं। सभी गृहस्थो के यहाँ चटनी आदि खाने तथा खट्टा और दही आदि चीज रखने के लिए पथरी रखी जाती है। इसका अर्थ यह नही है कि हम पत्थर युग में है। हड्डियों की सुइयो के विषय में यही कहना अलम है कि धातु की सुई बनाना वर्जित था। पर मूर्तियाँ जो निकली है वे हिन्दू काल की हैं उन्हें लौह छेनी से गढा गया है। वे हड्डियो तथा पत्थरो के औजारो से नही बन सकती थी अतएव उस समय लोहा का आविष्कार हो चुका था। जब लोहा प्राप्त था तो हड्डियो की सुई क्यो बनाई गयी। इसका एक मात्र कारण यही है कि धातु का स्पर्श वर्जित था। मेरा उक्त मत केवल अनुमान पर आधारित है।

गुहागेह का शब्दार्थ इस बात की ओर लक्ष करता है कि गुफा प्रकार के घरो में लोग निवास करते हैं। अफगानिस्तान के वामियान स्थान में पर्वत में सैकडो से भी अधिक गुफा मैंने स्वय देखी है वहाँ भिक्षु तथा वहाँ रहने वाले उन गुफाओ मे रहते थे। इस समय अनेक गुहागृह ध्वस्त हो गये है। परन्तु अत्यधिक अपना रूप कायम किये हैं। यह पहाड पत्थर के नही सख्त मिट्टी के हैं। इस लिये गुफायें बहुत नष्ट हो गयी है अथवा गिर गयी हैं।

अथ वनसरसीतटद्रुमाधः
पुटकघटोदरसंभृताम्बुपूराम् ।
वसतिमकृत वासरावसाने
शुचितरुपल्लवकल्पितोच्चतल्पाम् ॥ १६६ ॥

१६६. दिवस के अवसान में वन सरसी (सरोवर) तटपर तरु तले जल पूर्ण पुटक[1] घट के साथ पवित्र तरु पल्लवों से तल्प निर्मित कर निवास किया ।

शृङ्गासक्तमितातपाः शबलितच्छायाभुवः शाद्वलै-
रुत्फुल्लामलमल्लिकातलमिलत्सुप्तव्रजस्त्रीजनाः ।
सध्वाना वनपालवेणुरणितोन्मिश्रैः प्रपाताम्बुभिः
श्रान्तं दृक्पथमागतास्तमनयन्निद्रामदूराद्रयः ॥ १६७ ॥

१६७. दृष्टिगोचर निकटवर्ती उस पर्वत ने श्रान्त उसको निद्रित कर दिया, जिसकी शिखरों पर मित आतप पड़ रहा था, जहाँ हरी-हरी घासों में छाया भू चित्रित तथा उत्फुल्ल अमल मल्लिका तले, व्रजस्त्री जन प्रसुप्त थी और जो वनपालों के वेणु ध्वनि से पूर्ण निर्झर जल द्वारा निनादित हो रहा था ।

वनकरिरसितैः पदे पदे स
प्रतिभटतां पटहध्वनेर्दधानैः ।
अमनुत रटितैश्च कर्करेटोः
परिगलितां गमनोन्मुखस्त्रियामाम् ॥ १६८ ॥

१६८. गमनोन्मुख उसने पद पद पर, पटह ध्वनि, सदृश वन गज गर्जनों एवं काक ध्वनियों से रात्रि को परिगलित समझा ।[1]

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६६ में 'तल्पाम्' का पाठभेद 'तल्पम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

कल्हण ने पुटक का उल्लेख तरग १·२१३ श्लोक में भी किया है । यहा उसने पुन. उसको दोहराया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६७ में 'मितातपा.' का 'सितातपाः' 'रुत्फुल्ला' का 'ल्लासा' तथा 'पालवेणु' का पाठभेद 'पालरेणु' मिलता है ।

श्लोक संख्या १६८ मे 'वनकरि' का 'वनहरि' तथा 'ध्वनेर्द' का पाठभेद 'ध्वनैर्द' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१६८ (१) **वनवर्णनः** वन गमन वर्णन कल्हण ने यहाँ पुरा. कवियो की शैली पर किया है ।

अन्येद्युर्विधिवदुपास्य पूर्वसंध्या-
मासन्ने नलिनसरस्यपास्तनिद्रः ।
क्ष्मापालः परिचितसोदराम्बुतीर्थं
नन्दीशाध्युषितमवाप भूतभर्तुः ॥ १६९ ॥

१६९. दूसरे दिन पार्श्ववर्ती नलिन सरसी में अपनी निद्रा तिरोहित कर (स्नानकर) राजा ने पूर्व सन्ध्योपासन किया अनन्तर नन्दीश समीपस्थ भूभर्ता[1] (भूतेश्वर) परिचित सोदर[2] तीर्थ मे पहुँचा ।

नन्दिक्षेत्रे त्रिभुवनगुरोः सोऽग्रतस्तत्र याव-
त्तस्थौ तावत्स्वयमभिमतावाप्तये जायते स्म ।
भस्मस्मेरः सुघटितजटाजूटबन्धोऽक्षसूत्री
रुद्राक्षाङ्को जरठमुनिभिः सस्पृहं वीक्ष्यमाणः ॥ १७० ॥

१७०. भस्म स्मेर सुघटित, जटाजूट बन्ध से युक्त, अक्ष सूत्री, रुद्राक्ष अंकित एवं वृद्ध मुनियों से सस्पृह वीक्ष्यमाण वह नन्दिक्षेत्र[1] मे त्रिभुवन गुरु के सम्मुख जब तक स्थित रहा तब तक उसके अभिलपित की प्राप्ति हुई ।

भ्राम्यञ्श्रीकण्ठदत्तव्रतजनितमहासत्क्रियो भैक्षहेतो-
र्भिक्षादानोद्यतासु प्रतिमुनिनिलयं संभ्रमात्तापसीषु ।
वृक्षैर्भिक्षाकपाले शुचिफलकुसुमश्रेणिभिः पूर्यमाणे
मान्यो वैराग्ययोगेऽप्यनुपनतपरप्रार्थनालाघवोऽभूत् ॥ १७१ ॥

१७१. श्रीकण्ठव्रत के कारण अत्यधिक संस्कृत वह जब भिक्षा हेतु प्रत्येक मुनि गृह मे जाता तो तपस्विनियाँ सोत्साह स्पर्धा पूर्वक भिक्षा देने के लिये उद्यत रहती थीं । किन्तु वृक्षों द्वारा पवित्र पुष्प फल से कपाल (भिक्षापात्र) के पूर्ण हो जाने से, मान्य उसने वैराग्य योग मे भी याचना लाघव को नहीं प्राप्त किया

---

१६९ (१) भूतेश्वर पृष्ठ १४९ द्रष्टव्य है। राजा के भूतेश्वर दर्शन का उल्लेख कल्हण ने पूर्व श्लोक संख्या २.१२३ में किया है । नीलमत पुराण श्लोक 1047, 1118, 1242, 1335, द्रष्टव्य हैं ।

(२) सोदर पृष्ठ १८० द्रष्टव्य है । नीलमत पुराण श्लोक, 1330, 486, 1113, 1115, 1325, 1330 भी द्रष्टव्य है ।

१७० (१) नन्दिप्रवेग क्षेत्रः पृष्ठ ७६ द्रष्टव्य है। भस्म को उज्ज्वल वर्ण की उपमा कल्हण ने स्मित दन्त पंक्ति के उज्ज्वल वर्ण से दिया है ।

पाठभेद

श्लोक संख्या १७१ मे 'भ्राम्यञ्श्री' का 'भ्राम्यञ्छ्री', 'योगे' का 'योग्यो' तथा 'नुपतत' का पाठभेद 'नुपतन' 'नुपतन' 'नपतन मिलता है ।

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचण्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां द्वितीयस्तरङ्गः ॥

इस प्रकार काश्मीर के महामात्य चण्पक प्रभु के पुत्र कल्हण विरचित राजतरंगिणी में, द्वितीय तरंग समाप्त हुआ।

इति पाठ में 'चण्पक' का पाठभेद 'चम्पक' तथा 'चण्यक' मिलता है।

एशियाटिक सोसायटी बंगाल से प्रकाशित सन् १८३५ ई० की प्रति मे इति पाठ के पश्चात् निम्नलिखित पाठ और दिया गया है। पृष्ठ ३१ किन्तु इसका अनुवाद श्री स्तीन तथा श्री पण्डित ने नही दिया है। अन्य अनुवादको ने इसका अनुवाद दिया है मै यहाँ मूल तथा अनुवाद दोनो देता हू।

शतद्वये वत्सराणामष्टाभिः परिवर्जिते।
अस्मिन्द्वितीये व्याख्यातः षट् प्रख्यातगुणा नृपाः ॥

एक सौ बानबे वर्ष में इस द्वितीय तरंग कथित प्रख्यात गुण वाले ६ नृप हुए। श्री स्तीन ने प्रथम भाग परिशिष्ट एक के पृष्ठ १३५ पर द्वितीय तरंग की काल गणना इसी श्लोक के आधार पर दी है। उनका वर्णित १९२ इस श्लोक मे यथावत् है।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

तृतीयस्तरङ्गः

तृतीय तरग के राजा

गोनन्द वश पुनरस्थापित

नाम राजा	राज्यकाल वर्ष	लौकिक संवत
(१) मेघव हन	३४	३०८८
(२) श्रेष्ठसेन-प्रवरसेन (तुज़ीन द्वितीय)	३०	३१२२
(३) हिरण्य तोरमाण	३०-२-०	३१५२
(४) मातृ गुप्त	४-९-१	३१८२-२-०
(५) प्रवरसेन द्वितीय	६०	३१८६-११-१
(६) युधिष्ठिर द्वितीय	३९-३-०	३२४६-११-१
(७) लखन नरेन्द्रादित्य	१३	३२८६-२-१
(८) रणादित्य (तुजीन तृतीय)	३००	३२९९-२-१
(९) विक्रमादित्य	४२	३३९९-२-१
(१०) वालादित्य	३६-८-०	३६४१-२-१
	५८९-१०-१	

अथ

तृतीयस्तरङ्गः

मुञ्चेभाजिनमस्य कुम्भकुहरे मुक्ताः कुचाग्रोचिताः
किं भालज्वलनेन कज्जलमतः स्वीकार्यमक्ष्णोः कृते ।
संधाने वपुरर्धयोः प्रतिवदन्नेवं निषेधेऽप्यहेः
कर्तव्ये प्रिययोत्तरानुसरणोद्युक्तो हरः पातु वः ॥ १ ॥

१. 'गज चर्म त्याग दें' इसके कुम्भ कुहर में (तुम्हारे) कुचाग्रोचित मुक्ता होते हैं।' 'भालस्थ' ज्वलन (अग्नि) से क्या लाभ ?'' 'इससे नेत्रों के लिये कज्जल प्राप्त होते हैं।' अर्धाङ्ग विषयक प्रश्न का उत्तर देकर, इसी प्रकार प्रिया के अहि का निषेध करने पर, उत्तर अन्वेषण में उद्यत, शिव आप लोगों की रक्षा करें।[1]

अथोल्लसत्पृथुश्लाघमानिन्युर्मेघवाहनम् ।
गान्धारविषयं गत्वा सचिवाधिष्ठिताः प्रजाः ॥ २ ॥

मेघवाहन[1]

२. मन्त्रियों के नियन्त्रण में प्रजा गान्धार देश[2] जाकर, मेघवाहन को ले आयी, जिसकी प्रचुर प्रशस्ति फैल रही थी।

पाठभेद :

'श्री गणेशाय नम ' से भी तरंग का आरम्भ होता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) राजतंरगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५३ वाँ श्लोक है। उक्त पद का भावार्थ निम्नलिखित होगा। देहार्ध द्वय मिलन समय पार्वती ने जिज्ञासा की 'गजाजिन परित्याग कर दीजिये।' महादेव ने उत्तर दिया—'इसके कुम्भ के मध्य मे तुम्हारे पयोधर भूषण के उपयुक्त मुक्ता राशि निहित हैं। पार्वती ने पुर्नजिज्ञासा की—ललाट स्थित अनल का प्रयोजन क्या है ? महादेव ने उत्तर दिया—'वहाँ से तुम्हारा लोचन भूषण कज्जल प्राप्त होगा।' इस प्रकार प्रत्युत्तर देकर प्रियतमा के सर्प निषेध सूचक प्रश्न के चिन्तन अनुसरण उद्यत हर आप लोगों की रक्षा करें।

(१) २ श्री विलसन मेघवाहन का अभिषेक काल सन् २३ ई० ३ मास तथा राज्य काल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री एस पी. पण्डित यह समय सन् २४ ई० तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्रोस्तीन अभिषेक काल लौकिक सवत् ३०८८ तथा राज्यकाल ३४ वर्ष देते हैं।

श्री बाली ने यह काल सप्तर्षि संवत् ३९७९ तथा सन् २०६ ई० देते हैं।

अबुल फजल आइने अकबरी मे मेघवाहन का नाम मगदहन देता है।

ट्रायर यह समय सन् २४ ईस्वी तथा ९ मास देते हैं। कनिंघम यह समय सन् ३८३ ई. मानते हैं।

हसन लिखता है—'राजा मेघवाहन राजा अरीराय (सन्धिमत) के इस्तीफा देने के बाद संवत् ३४ मे तुरन्त सल्तनत पर जलवागर

हुआ। और इन्तहाई ओरल और इन्साफ के साथ कश्मीर के चमन को तर व ताजगी बख्श दी। आस पास के मुमालिक को अपने कब्जा इक्तदार मे ले आया। परिन्दो हैवानो के गोश्त के खाने वालो को नाहक खून बहाने की कत्ताईपन मुमानियत कर दी। शिकारियो और कसाबो को गुजर औकात के लिये जागीरें दी। उसकी हकूमत में किसी जानवर को तकलीफ नही पहुँची। बल्कि उसकी हुस्ननीयत के पेश नजर इशरात—भी आपस में एक दूसरे को एज़ार सानी पर कादिर न हुए। रात को भेष बदलकर शहर की गश्त किया करता था। फकीरो और बे वसीला लोगो को चोरी छिपे घर पर माल व दौलत भेजा करता। मगावन, मनीया गाय और मेघमठ के दिहात आबाद किये। इसी असना में खबर सुनी कि हिन्दुस्तान मे जानदारो को एजाज पहुँचाते है। चुनाचे ऐसा करने से रोकने के लिये एक बडी भारी फौज इस तरफ रवाना की। हिन्दुस्तान के बहुत से राजो को अपना मनीय व फरमा बरदार बना लिया। जिसके नतीजा में उन्होने जानदारो के इज़ाद तकलीफ की दस्तबरदारी अख्तियार कर ली। जिसने उसके हुक्म की तालीम से सरताबी की उसकी हकू.मत तबाह व बरबाद हो गयी। आहिस्ता आहिस्ता यह राजा फतह करते करते दरियाये शोर पर पहुँच गया।

एक दिन अपने अराकीन सल्तनत साथ दरराए शोर के अहर करने पर मशविरा कर रहा था कि एकाएक दूर से यह आवाज़ सुनायी दी कि राजा मेघवाहन की अमलदारी में लोग मुझे मार रहे हैं। राजा इस फरयाद को सुनते ही गैब व गजब से भर गया। इस सदा की तलाश में दूर तक दौड कर गया। क्या देखता है कि एक आदमी है जिसे पाँच छ आदमी जोर से जकडा हुआ ले जा रहे है। राजा ने हकीकत हाल पूछा। उनमें से एक बोला कि हमारा एक प्यारा बेटा है। बीमारी के बायस करीबुल मर्ग है। इसके साथ हमारे पडोस में एक मन्दिर है। जहाँ से लोग गैब की बातें सुनते हैं। वहाँ हमने अपनी बीमारी के मुतल्लिक सुना है कि इसके खातिर जब तक इन्शानी कुरबानी न दी जायगी तब तक वह अच्छा न होगा। अब यह अजल रशीदह हमारे पास पहुँचा है। इसकी जान हम अपने लडके के लिये कुरबान करेंगे।

राजा ने कहा मेरे अहद हकूमत में जब हैवानो का कतल ममनू है। तो तुम्हारी क्या ताकत है कि तुम बेगुनाह आदमी को कतल करो। उन आदमिओ ने जवाब दिया कि उस लडके के वफात से लोग बे जान होजायगे। जब आपको एक आदमी का मरना पसन्द नही है तो इतने आदमियो का मरना आपको किस तरह पसन्द होगा। और फिर खुदा को आप क्या जवाब देंगे। राजा बोला कि यह मुसाफिर है। वे गुनाह है। इसको छोड दो। इसके बदले मेरी जान अपने बेटे पर कुरबान कर दो।

लोगो ने इसे मजाक समझा। लेकिन राजा ने अमलन तलवार निकाल कर अपने मार डालने का एकराम किया। उसी वक्त राजा पर फूल आसमान से बरसने लगे। अचानक गैब से एक सहानी इन्शान नमूदार हुआ। और राजा का हाथ पकड कर उसे खुदकशी से रोका। उस वक्त तमाम लोग राजा की नजरो से गायब हो गये। राजा हैरत के भँवर में फँस गया। और उस फिरिस्ता से इस जमायत की कैफियत दरियाफ्त की। वह बोला कि यह जमायत गैब से तेरी आजमाइश के लिये आयी थी। मैं समुद्रो और लहरो का मोकल हूँ। तेरा खल्क खुदा पर तेरी शुजाअत और शफक़त देखकर मैं तेरा मतई व फरमा बरदार होता हूँ। और अब अपना मतलब मुझमे कह। राजा ने कहा। मैं मुझसे जजीरा सिंहल द्वीप और जजीरा लका की फतह में मदद माँगना चाहता हूँ। उस शख्स ने जवाब दिया कि मैं खुदा की बारगाह से तेरी म आज-मत के लिये मुकर्रर किया गया हूँ। इसके बाद नेक खशलत बादशाह एक अजीमुशान फौज के हमराह

रक्तप्रजस्य भूभर्तुः पश्चाल्लोकानुरञ्जनम् ।
तस्याज्ञायि जनैर्धौतक्षौमक्षालनसंनिभम् ॥ ३ ॥

३. प्रजानुरक्त उस राजा के लोकानुरंजन को स्वच्छ क्षौम वस्त्र के क्षालन सदृश तत्पश्चात् (प्रजा ने) जाना।[१]

स पुनर्बोधिसत्त्वानामपि सत्त्वानुकम्पिनाम् ।
चर्यामुदात्तचरितैरत्यशेत महाशयः ॥ ४ ॥

४. उस महाशय ने अपने उदात्त चरितों से प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले बोधिसत्त्वों[१] की चर्या का भी अतिक्रमण कर दिया।

जिसमें बहुत से घोडे और हाथी भो थे गै.बो मोकल को इजाजन ममुन्दर को पार कर गया और बहुत जल्द ही जजोरा सिंहल द्वीप को फतह कर लिया। वहाँ के राजा विभोषण ने फरमा बरदारी का तौक गले मे डाल लिया। और हैवानो को न कतल करने का हुक्म अपनी तमाम कलमरो मे दे दिया। और अपने मुल्क के बहुत से तुहफे, तहायफ़ के साथ राजा मेघवाहन को रुखसत किया। राजा मज्कूर कमाल शान व शौकत से अपने वतन कश्मीर फ़रमा हुआ।"

२ (२) गान्धार देश . पृष्ठ १०६ टिप्पणी गान्धार, ३०७ १.६८, ३०७, ३१४, २ १४४ द्रष्टव्य है।

(१) ३ राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ५४ वाँ श्लोक है।

इसका भावार्थ यह भो हो सकता है। 'जिस प्रकार स्वच्छ क्षौम वस्त्र के धुल जाने पर उसका स्वच्छ रूप प्रकट होता है, उसी प्रकार प्रजानुरक्त उस राजा के लोकानुरंजन को प्रजा ने उसके कार्यों से बाद में जाना।'

इसका एक और भावार्थ निम्नलिखित हो सकता है.

'जिस प्रकार विशुद्ध क्षौम का वर्ण धोने पर जाना जा सकता है, उसी प्रकार जनगण प्रजानुरक्त नृपति का लोकानुराग तत्पश्चात् लोगो ने जाना।'

४(१) बोधिसत्त्व : बडशाह जैनुल आबदीन (सन् १४२० ई.) के समय तक भगवान् बुद्ध तथा उनका उल्लेख तत्कालीन साहित्य में श्रद्धापूर्वक किया गया है। श्रीवर ने जैन राजतरंगिणी १:२६ में भगवान् बुद्ध का उल्लेख किया है। इससे प्रकट होता है। बौद्ध धर्म तथा बुद्ध को शेष भारत मे प्रायः लोग भूल गये थे। उस समय भी किसी न किसी रूप में उनका कश्मीर में अस्तित्व था। विशेष रा. त. १:१३४, १३५, १३७, १३८, पृष्ठ १९४-१९५ द्रष्टव्य है।

बोधिसत्व की धर्मता के विषय मे मिलिन्द प्रश्न में कहा गया है—बोधिसत्त्वो के माता पिता, किस वृक्ष के नीचे तपस्या करेंगे-स्थान, प्रधान शिष्य, पुत्र, भिक्षु सेवक पूर्व से ही निश्चित रहते हैं। तुषित लोक में निवास करते समय आठ बातो को देख लेते है, (१) जन्म का उचित काल (२) जन्मस्थान द्वीप (३) जन्मस्थान (४) कुल (५) माता (६) गर्भ रहने का समय (७) जन्म का मास तथा (८) महाभिनिष्क्रमण काल। (मिलिन्द प्रश्न : ४:४:३५) बोधिसत्त्व चार बातो मे एक दूसरे से भिन्न होते हैं—(१) कुल (२) स्थान, समय (३) आयु तथा ४ ऊँचाई मे। किन्तु सभी बोधिसत्त्व रूप, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति

तस्याभिषेक एवाज्ञां धारयन्तोऽधिकारिणः ।
सर्वतोऽमारमर्यादापटहानुदघोषयन् ।। ५ ।।

५ उसके अभिषेक काल मे ही, आज्ञाकारी अधिकारियों ने अहिंसा मर्यादा का पटह[1] घोष करवा दिया ।

विमुक्ति ज्ञान का साक्षात्कार, चार वैशारद्य, दस बुद्ध बल, छ असाधारण ज्ञान, चौदह बुद्ध ज्ञान, अट्ठारह बुद्ध, धर्म, तथा बुद्ध को दूसरी बातो में समान होते हैं । सभी बुद्ध, बुद्ध के गुणो में बराबर होते हैं । (मिलिन्द प्रश्न ४ ८ ७३)

भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में अशोक से ललितादित्य तक प्राय एक विचारधारा थी । ललितादित्य के समय मे भगवान् बुद्ध के सम्बन्व में जो श्रद्धा भक्ति तथा उनके विचारो के प्रति आदर था वह क्रमश. भविष्य में कम होता गया । भगवान् बुद्ध का तत्कालीन विचार हिन्दू धर्म विरोधी नही माना जाता था । क्षेमेन्द्र, वरदराज, जयरथ और कल्हण का बुद्ध के प्रति वह भाव प्रकट नही होता जो नीलमत पुराण में प्रतिपादित है । शकराचार्य के पश्चात् तो पूर्व विचारो में आमूल परिवर्तन हो गया । इस परिप्रेक्ष्य में कश्मीर मे बुद्ध प्रभाव का विश्लेषण करना चाहिए । भगवान् बुद्ध की उशकर आदि की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनका काल चौथी तथा पाचवी शताब्दी है । उनमें एक आसनस्थ, दूसरी दो खडी है । इसी प्रकार पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान मे बोधिसत्त्व, अवलोकितेश्वर, भगवान् बुद्ध के जन्म का दृश्य आदि उपस्थित करती मिली है । जिनका काल छठी शताब्दी पूर्व कहा जाता है ।

स्कन्द पुराण काशी खण्ड मे भगवान् बुद्ध का रूप खीचा गया है उसमें जटा-जूट एव गैरिक परिधान धारी वह दिखाये गये है । स्कन्द पुराण का वर्णन भगवान् बुद्ध के परम्परा गत बनती मूर्तियो से नही मिलता । कश्मीर मे अब तक जटाजूट, एव गैरिक वस्त्र धारी मूर्तियाँ नही मिली है ।

नीलमत पुराण बुद्ध को विष्णु का अवतार मानता है तथा उनके जन्म दिवस पर उत्सव की विधि उपस्थित करता है । बुद्ध जन्म एक पर्व की तरह मनाया जाता था । यह दिवस वैशाख मास की पूर्णिमा को मनाया जाता था । आज भी विश्व मे बुद्ध पूर्णिमा इसी दिन को कहते हैं । इस दिन भगवान् बुद्ध की मूर्ति को स्नान, आभूषण आदि से अलकृत, शाक्यो के स्थान, और, चैत्यो के दीवालो, की सफेदी कर उन्हें चित्रित करना चाहिये । बौद्धो को पुस्तक, वस्त्र, खाद्य पदार्थों का दान और नर्तकियो तथा वादको से समन्वित उत्सव मनाना चाहिये । भगवान् बुद्ध की पूजा नैवेद्य, वस्त्र, दरिद्रो को दान देकर तीन दिन तक करना चाहिये । (नी. 684—692)

पाठभेद

श्लोक सख्या ५ में 'मार' का पाठभेद 'सार' तथा 'मान' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५ (१) **पटह :** इस शब्द का अर्थ नगाड़ा, डका, ढोल, डुग्गी होता है । जैसे, प्राचीन पटह घोष अर्थात् डुग्गी पीटने के अर्थ में प्रयोग किया गया है । डुग्गी पीटने वाले को पटह घोषक कहते थे । शहनाई के साथ भी कश्मीर मे इसे बजाते हुए हमने देखा है ।

वेद तथा जातक कथाओ मे पटह का उल्लेख नही मिलता । महाभारत मे कही-कही इसका उल्लेख बहुत कम मिलता है । रामायण (५.१०.अ) में निसन्देह इसका बहुत उल्लेख किया गया है । वीणा वादन के प्रसग में नीलमत पुराण ने इसका उल्लेख किया है । यथा 'वीणापटहनादितम्' । (नी० २२) तथा 'वीणापटह शब्दैश्च' (नी० 413)

कल्याणिना प्राणिवधे तेन राष्ट्रान्निवारिते ।
निष्पापां प्रापिता वृत्तिं स्वकोशात्सौनिकादयः ॥ ६ ॥

६. राष्ट्र में प्राणी वध बन्द हो जाने पर, उस कल्याणी नृप ने स्व कोश से सौनिक (कसाई) आदि को निष्पाप वृत्ति प्रदान की ।

तस्य राज्ये जिनस्येव मारविद्वेषिणः प्रभोः ।
क्रतौ घृतपशुः पिष्टपशुर्भूतबलावभूत् ॥ ७ ॥

७. जिन (बुद्ध) तुल्य मार[1] (हिंसा) विद्वेषी उस प्रभु के राज्य में घृत पशु एवं पिष्ट पशु की बलि[2] यज्ञ में होती थी ।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ६ मे 'निष्पापा'का; निष्पाया' 'निष्पापा' 'निष्पापं' 'प्रापिता' का 'प्रापिता' तथा 'शात्सौ' का पाठभेद'शात्शौ' 'षात्शौ' तथा 'शात्सो' मिलता है ।

श्लोक सख्या ७ में 'राज्ये' का पाठभेद 'राज्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

७ (१) मार : मार तीन प्रकार के होते है—(१) क्लेश मार (२) मृत्यु मार (३) देव पुत्र मार । क्लेश दश हैं—(१) लोभ (२) द्वेष (३) मोह (४) मान (५) दृष्टि (६) विचिकित्सा (७) स्यान (८) औद्धत्य (९) अहनी (१०) अन्—अपत्रपा अर्थात् असंकोच । इनको क्लेश मार कहा जाता है ।

जिस समय तथा जिस हेतु से प्राणियो की मृत्यु होती है उसे मरण मार कहते है । देवपुत्र मार कामावचर के छठे दैवलोक पर निर्मित वशवर्ती मे रहता है । द्रोही राजकुमार की भाँति यहाँ एक प्रादेशिक शासक होता है । उससे सब भयभीत रहते है । क्योकि यह कुशल कर्मो का विरोधी है । अधिकाश मार देवपुत्र च्युत होकर नरक मे पडते है । दूषी आदि मारो की दुर्गति यहाँ द्रष्टव्य है ।

(२) बलि . कल्हण ने यहाँ 'क्रतौ' शब्द का प्रयोग किया है । क्रतु का अर्थ यज्ञ होता है । वेद में उल्लेख मिलता है —आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः । अहिंसा के प्रचार के पश्चात् पुराण तथा स्मृति वर्णित विहित पशु बलि के स्थान पर घृतादि या पिष्ट पशु बनाकर उनकी बलि की जाने लगी थी । पंच यज्ञ का पुराणो तथा स्मृतियो मे प्रचुर उल्लेख मिलता है । भूत बलि दिवंगत के लिये दी जाती है । कश्मीरी शैव मतानुयायी आज भी आटा अन्न तथा घृतादि की पशु आकृति बनाकर बलि देते हैं । यह है पुरानी प्रथा की स्मृति, बलि प्रथा को अहिंसक रूप दिया गया है ।

बलि एवं उपहार : कल्हण ने बलि एव उपहार दोनो शब्दो का प्रयोग किया है । दोनो मे अन्तर है । बलि का अर्थ आत्मसमर्पण होता है । बलि कर्त्ता स्वयं अपना बलि न कर, अपने प्रतिनिधि स्वरूप मनुष्य, पशु, पक्षी, फल आदि की बलि चढाता है । परन्तु उपहार में प्रतिनिधित्व का प्रश्न नही उत्पन्न होता । किसी भी वस्तु को उपहार, भेंट, पूजा स्वरूप इष्ट देव को चढाया जाता है । वह नैवेद्य स्वरूप प्रसाद हो जाता है । दोनो की प्रक्रियाओ में अन्तर है ।

स मेघवननामानमग्रहारं विनिर्ममे ।
मयुष्टग्रामकृत्पुण्यज्येष्ठं मेघमठ तथा ॥ ८ ॥

८. मयुष्ट ग्राम निर्माता, उसने मेघवन नामक अग्रहार एवं पुण्य में अग्रणी मेघमठ[1] का निर्माण किया (कराया)।

भोगाय देश्यभिक्षूणां वल्लभाऽस्याऽमृतप्रभा ।
विहारमुच्चैरमृतभवनाख्यमकारयत् ॥ ९ ॥

९. उसकी प्रियतमा अमृतप्रभा ने देशीय[1] भिक्षुओं के भोग हेतु अमृत भवन[2] नामक उच्च विहार बनवाया।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८ मे 'मयुष्ट' का 'सयुष्ट' 'ज्येष्ठ का 'ज्येष्ठो' और 'तथा' का पाठभेद 'तदा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

८ (१) **मयुष्ट, मेघवन, मेघमठ** · इन तीनो स्थानो का निश्चित पता नही चलता। उक्त तीनो स्थानो का उल्लेख पुनः नही मिलता।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ९ में 'देश्य' का पाठभेद 'चैष्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

९ (१) **देशीय :** राजतरगिणी में कश्मीर मण्डल के बाहर के रहने वालो के लिये देश्य, दैशिक, दैशिका, शब्दो का व्यवहार किया गया है।

दैशिक : देशीय भिक्षु भी इसी अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। कश्मीरी भिक्षुओ के लिये देशीय शब्द का प्रयोग नही किया गया है। यह गैर कश्मीरी भिक्षुओ के लिये व्यवहृत किया गया है। जोन राज ने श्रीकण्ठ चरित का मख के भाष्य में (१५:१०२) उल्लेख किया है।

(२) **अमृत भवन :** इसका पाली एव प्राकृत नाम अपभ्रंश होकर वर्तमान बिगडा नाम अमित भवन या आमित भवन हो गया था। इसका वर्तमान विगडा अन्त ववन अत्त ववन अथवा वन्तववन है। यह श्रीनगर से तीन मील दूर उत्तर दिशा में विचार नाग के समीप है।

श्री स्तीन ने इस स्थान की यात्रा जून सन् १८९५ ई० में की थी। वहाँ पर उन्हे एक खुले मैदान और लक्षम कुल (लक्ष्मी कुल्या) के मध्य एक ध्वन्सावशेष स्थान मिला था। यह अमृत भवन विहार का अवशेष था। एक ठोस गोलाकार टोला लगभग २० फिट ऊँचा था। उसकी बनावट स्तूप से मिलती थी। एक आयताकार शिलाखण्ड से टूटा घिरा स्थान भी वहाँ था। यहाँ से ३० गज के अन्तर पर पूर्व तरफ सरोवर जैसा छिछला कुण्ड प्राचीन शिलाखण्डीय प्राकार से घिरा है। वहाँ के स्थानी निवासी कहते हैं कि महाराज के राज्य काल में मन्दिर तथा भवन बनवाने के लिये यहाँ के शिलाखण्ड उठवा लिये गये थे। ग्राम के अनेक मकानों में यहाँ के अलकृत पत्थरो का उपयोग किया गया है।

चीनी पर्यटक ओ कुग ने इस विहार का वर्णन "न्योमितियो वान" विहार नाम से किया है। विचार नाग तथा श्रीनगर के मध्य मन्दिरो तथा विहारो की शृखला थी। उन्हे जियारत तथा इमारतो में परिणत कर लिया गया है।

देश्यैकदेशाल्लोनाम्नः प्राप्तस्तस्याः पितुर्गुरुः ।
स्तुन्पा तद्भाषया प्रोक्तो लोस्तोन्पास्तूपकार्यभूत् ॥ १० ॥

१०. देश के एकदेश (भाग) जिसका नाम लोह[1] था, उसके पितृ गुरु, जिन्हें उनकी भाषा में स्तुन्पा[2] कहते थे, आये और स्तूप लोस्तोन्पा बनवाया।

चक्रे नडवने राज्ञो यूकदेव्यभिधा वधूः ।
विहारमद्भुताकारं सपत्नोस्पर्धयोद्यता ॥ ११ ॥

११. राजा की यूक देवी नाम्नी वधू ने सपत्नी की स्पर्धा से नडवन[1] में अद्भुत आकार वाला भवन निर्माण कराया।

पाठभेद ·

श्लोक सख्या १० में 'देश्यैक' का 'देशैक', 'स्तुन्पा' का 'स्तुत्या' 'स्तुम्पा' 'स्तन्या' का 'लोस्तोन्पा' का 'लोस्तोन्या' 'लोस्तुन्प' और 'र्यभूत्' का पाठभेद 'र्यकृत्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१० (१) **लोह् :** वर्तमान लेह अचल है। महाभारत में उत्तर दिशा के विजय में अर्जुन ने इसे जीता था।

(२) **स्तोन्पा :** यह शब्द तिब्बती स्तोन-पा है। उसका मूल संस्कृत शास्ता किंवा उपदेष्टा है। तिब्बत में इसका शाब्दिक अर्थ उपदेशक अथवा शिक्षक होता है। यह शब्द बुद्ध के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

लद्दाख मे इसका उच्चारण तोनपा किया जाता है। तिब्बत के नगर लासा मे तोम वा कहते है।

दक्षिणी तिब्बत को अब भी लोह कहते हैं। अमृतप्रभा प्राग्ज्योतिष के राजा की कन्या थी। उसके गुरु अल्लोर थे। वह तिब्बत के थे। इससे दो बातें प्रकट होती है। प्रथम तिब्बत तथा आसाम का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट होता है। दूसरी बात यह प्रकट होती है कि बुद्ध धर्म का प्रचार उस समय तक आसाम मे हो गया था।

रानी अमृतप्रभा का गुरु बौद्ध था। पिता तथा कन्या दोनो का बुद्ध तथा बोद्ध धर्म की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था।

राजा मेघवाहन पर रानी अमृतप्रभा के कारण बौद्ध धर्म का प्रभाव पडा होगा। राजा की प्रवृत्ति अहिंसक हो गयी।

लोह, लोहर, लोह कोट, तीनो स्थान भिन्न-भिन्न हैं। उनका यथा स्थान वर्णन किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११ में 'यूक' का पाठभेद 'यूव' दिया गया है।

पादटिप्पणियाँ :

११ (१) **नडवन :** यह वर्तमान नरवोर स्थान है। श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम संगीन दरवाजा तथा ईदगाह के बीच स्थित है। इसका एक पुरातन नाम नादवाट था। वाट शब्द महत्वपूर्ण है। थाईलैण्ड, कम्बोडिया आदि स्थानो में वाट का अर्थ बौद्ध विहार होता है। वाट का अर्थ बाग भी होता है। वाटिका शब्द उपवन के लिये आज भी प्रचलित है। वोर शब्द इसी वाट एव वाटिका का अपभ्रंश है। कश्मीर के स्थानीय नामो के अन्त में 'वोर' शब्द प्रायः मिलता है। भू क्षीर वाटिका, (रा. त.१:३४२) राजन वाटिका (रा. त. ८: ७५६) तथा रंग वाटिका (रा. त. ७:१६५३) प्रचलित शब्द थे।

अर्धे यद्भिक्षवः शिक्षाचारास्तत्राऽर्पितास्तया ।
अर्धे गार्हस्थ्यगर्ह्याश्च सस्त्रीपुत्रपशुश्रियः ॥ १२ ॥

१२ वहाँ अर्ध भाग में शिक्षाचार[1] रत भिक्षुओं[2] तथा अर्ध (अपरार्ध) भाग में स्त्री पुत्र पशु धन वाले गर्ह्य गृहस्थों के लिये व्यवस्था की।

नरबोर के कबरिस्तान तथा जियारते कश्मीर के अन्य कबरिस्तानो के और जियारतो के समान प्राचीन भवनो के ध्वन्सावशेषो से पूर्ण है। भूमि के अन्दर कितने अलकृत शिला खण्ड एव मूर्तियाँ होगी कौन जाने भूमि को सतह से प्राप्त शिलाओ आदि के देखने से वास्तविक अनुमान लगाना कठिन है।

पाठभेद

श्लोक संख्या १२ में 'पद्भि' का 'यद्भि' तथा 'श्रिय' का 'स्त्रिय' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१२ (१) **शिक्षाचार** बौद्ध धर्मावलम्बियो में एक प्रव्रज्या लेने वाले चोवरधारी भिक्षु होते हैं। दूसरे गृहस्थ उपासक होते हैं। भिक्षु गृह त्यागी होता है। गृहस्थ सकुटुम्ब भगवान् का उपासक मात्र होता है। वह घर त्यागता नही।

कल्हण दोनो प्रकार के बुद्ध धर्मावलम्बियो की व्यवस्था का उल्लेख करता है। गृहस्थ भी कुछ समय के लिये भिक्षु होकर विहार में निवास कर सकता है। बौद्ध देशो मे प्रत्येक व्यक्ति को एक बार विहार में भिक्षु रहना पडता है।

थाईलैण्ड के राजा भी कम से कम तीन दिन के लिये भिक्षु जीवन व्यतीत करते है। वर्मा के प्रधान मन्त्री श्री यू नू. कई बार चीवर धारण कर त्याग चुके थे। मैंने बौद्ध देशो में देखा है कि गृहस्थ जब सीमित समय के लिये भिक्षु बनकर विहार में रहता है तो वह शुद्ध आचार का निर्वाह करता है। वह एक विश्वास एव कर्तव्य की दृष्टि से यह करता है।

नेपाल मे विवाहित भिक्षु जन साधारण की तरह कार्य करते हैं। व्यापार करते है। खेती करते हैं। प्राय. दृढ धर्म के कठोर शासन का व्यवहार नहीं करते।

प्रतीत होता है। उस समय कश्मीर में इस प्रकार के भिक्षुओ की परम्परा तथा वर्ग रहा होगा। अतएव रानी ने दोनो प्रकार के भिक्षुओं के लिये व्यवस्था की थी।

(२) **भिक्षु** . इस शब्द का शाब्दिक अर्थ भिक्षुक भिखारी होता है। यह शब्द बौद्ध भिक्षुओ के लिए रूढ हो गया है। अतएव इसका अर्थ बौद्ध सन्यासी होता है। भिक्षु चर्या अर्थात् भिक्षा वृत्ति ही भिक्षुओ को जीवन-यापन का एक मात्र साधन है। भिक्षुओ के वस्त्र को सघाटी तथा चीवर कहते है। विशेष द्रष्टव्य है रा. त. १ १८४, १८६ पृष्ठ २५२—२५३,

प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भिक्षु श्रामणेर कहा जाता है। उसे एक उपाध्याय किंवा आचार्य के निश्रय में रहना होता है। उसके शील मे १० विरतियाँ वर्जनायें हैं—प्राण घात, चोरी, अब्रह्मचर्य, मिथ्याभाषण, मद एव नशा विकाल भोजन, नृत्य-गान-वाद्य, तमाशा माला-गन्ध-विलेपन-अलकरण, ऊँची बहुमूल्य शय्या सुवर्ण रजत ग्रहण।

भिक्षुओ का चार निश्रय-पिण्डपात, चीवर, शयनाशन, ग्लान प्रत्यय, भेषज है भिक्षु उपसोथ के लिये प्रति पक्ष एकत्र होते थे। इस अवसर पर प्रतिमोक्ष का पाठ किया जाता था। प्रतिमोक्ष के आठ विभाग—पाराजिक, सघावशेष, अनियत, नैसर्गिक, पातयतिक, प्रातिदेशनीय, शौक्ष एव अधिकरण शमथ है। अपराधी भिक्षु अपने व्यतिक्रम

अथेन्द्रदेवीभवनापेन्द्रदेव्यभिधा व्यधात् ।
विहारं सचतुःशालं स्तूपं भूपप्रियाऽपरा ॥ १३ ॥

१३. राजा की अपरा (दूसरी) इन्द्र देवी नाम्नी प्रिया ने इन्द्रदेवी[१] भवन नामक चतु:शाल युक्त विहार तथा एक स्तूप बनवाया ।

अन्याभिः खादनासम्माप्रमुखाभिर्निजाख्यया ।
देवीभिस्तस्य महिता विहारा बहवः कृताः ॥ १४ ॥

१४. उसकी अन्य खादना[१], सम्मा आदि प्रमुख देवियों ने अपने अपने नामों से अनेकों दिव्य विहारों को बनवाया ।

की आदेशना करते थे, और उन पर उचित प्रायश्चित्त एवं दण्ड की व्यवस्था की जाती थी। वर्षा वास के नियम थे। उसके अनंतर प्रवारणा नामक पर्व होता था। एकत्रित भिक्षु संघ में एकमत, उद्वाहिका, शलाका ग्रहण, किंवा बहुमत से किसी निश्चय पर पहुँचा जाता था।

पादटिप्पणियाँ :

१३ (१) **इन्द्रदेवी भवन विहार :** इसका उल्लेख कल्हण ने पुनः भिक्षाचर के सघर्ष के सम्बन्ध में किया है। (रा. त. ८:११७२) यह स्थान श्रीनगर में होना चाहिए। कथूल अर्थात् काष्ठिला जिसका उल्लेख कल्हण ने (रा त. ८ ११६०) मे किया है उसके समीप इसको स्थिति प्रतीत होती है।

(२) **बहुपत्नी प्रथा** अब तक कश्मीर के राजा प्रतीत होता है एक पत्नी प्रथा का पालन करते थे। मेघवाहन पहला राजा है जिसकी ५ पत्नियो का उल्लेख कल्हण करता है।

मेघवाहन के पश्चात् होने वाले राजाओ की बहुपत्नियो का उल्लेख मिलने लगता है। बहु पत्नी प्रथा मै समझता हूँ मेघवाहन के समय कश्मीर मे प्रचलित हुई और जड जमाती चली गयी।

मैं समझता हूँ यह पश्चिम के शामी अर्थात् सेमेटिक जाति का प्रभाव था। मेघवाहन गान्धार तथा अफगानिस्तान मे रहा था। अफगानिस्तान से सीरिया अर्थात् भूमध्य सागर तक यहूदी और ईसाई रहते थे। उनके ग्रन्थो के पढने से पता चलता है कि दासी तथा बहु पत्नी रखने का उनमे आम रिवाज़ था। कुरान शरीफ के पढने से उस समय की सामाजिक स्थिति का जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे प्रकट होता है कि अनेक विवाह करना तथा छोडना साधारण बातें थी। दासी को पत्नीवत् रखना फैशन था। इस व्याप्त कुरीति को दूर करने के लिये पैगम्बर मुहम्मद साहब ने विवाहित स्त्री रखने की सीमा पार कर दी थी। हिन्दुओ में बहुपत्नी प्रथा वर्जित नही थी तथापि एक पत्नी से अधिक रखना अच्छा नही समझा जाता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४ मे 'सम्मा' का 'मम्मा', 'मस्मा' तथा 'महिता' का पाठभेद 'सहिता मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४ (१) **खादना तथा सम्मा :** इन दोनो विहारो के निश्चित स्थान का पता नही मिलता। खादन पार स्थान बारहमूला के ४ मिल वितस्ता के अधोभाग मे दक्षिण तट पर इस स्थान की सम्भावना की जाती है। वितस्ता माहात्म्य मे इस स्थान को 'खादना हार' कहा गया है।

किन्तु सम्मा विहार कहाँ था ? इस पर गवेषण की आवश्यकता है।

खादना तथा सम्मा शब्द अप्रचलित प्रतीत होते

अर्वाक्कालोद्भवस्यापि राज्यकालोऽस्य भूपतेः ।
न्यक्कृतादिनृपोदन्तैर्वृत्तान्तैरद्भुतोऽभवत्[1] ॥ १५ ॥

१५. अर्वाक् कालीन (परवर्ती) भी इस नृपति का राज्य काल आदि कालीन नृप कथाओं को तिरस्कृत करने वाले वृत्तान्तों के कारण अद्भुत हो गया था ।

स बहिर्विहरञ्जातु भूभृद्भीतैरुदीरितम् ।
चौरश्चौरोऽयमित्याराच्छृणोत्क्रन्दितध्वनिम् ॥ १६ ॥

१६. कदाचित् बाहर विहार करते हुए उस राजा ने समीप में "यह चोर है, यह चोर है" ऐसी भीतोक्त क्रन्दन ध्वनि सुनी ।

कः कोऽत्र बध्यतां चौर इत्युक्ते तेन सक्रुधा ।
शशामाक्रन्दितध्वानो न च चौरो व्यभाव्यत ॥ १७ ॥

१७ 'क कोऽत्र[1]–यहाँ कौन है ? चोर को बाँध लो' क्रोध पूर्वक राजा के कहने पर, आक्रन्दित ध्वनि शान्त हो गयी । किन्तु कोई चोर दिखायी नहीं दिया ।

है । खादन शब्द संस्कृत अवश्य है जिसका अर्थ खाना, भोजन करना, भोज्य पदार्थ तथा दाँत है । परन्तु यहाँ सम्मा के साथ प्रयुक्त होने पर ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे दोनों शब्द मेघवाहन की अभारतीय रानियों के लिये प्रयुक्त किये गये हैं । समा शब्द अरबी है । उसका अर्थ आकाश होता है । सम्म अरबी शब्द है उसका अर्थ विष है । शमा और समा शब्द के अर्थों में भेद है । शमाका अर्थ मोमबत्ती । अरबी-फारसी में शमा उसे भी कहते हैं जिसका मुखमण्डल शमा के समान-प्रकाशमान् होता है । शम्मा अरबी शब्द है । उसका अर्थ हलका सुगन्ध होता है । मेघवाहन अफगानिस्तान के एक अचल अर्थात् गान्धार में बाल्यावस्था व्यतीत किया था । वही से काश्मीर आया था । अतएव सभव है खादना तथा सम्मा उसकी रानियाँ अफगानिस्तान अथवा उसके पडोस ईरान, तुर्किस्तान या अफगानिस्तान मे ही निवास करने वाली किसी अरबी अथवा ईरानी जाति की कन्या हो । अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान में उस समय बौद्ध धर्म का प्राबल्य था । दोनो रानियो का बौद्ध बिहार बनवाना इस बात को प्रमाणित करता है कि वे बौद्ध धर्मानुरक्त थी । मैं समझता हूँ कि दोनो रानियाँ तुर्किस्तान, अफगानिस्तान किंवा ईरानी रक्त की थी ।

१५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ५५ वा श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १७ में 'सक्रुधा' का पाठभेद 'भूभुजा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) कः कोऽत्र : कोई है इस अर्थ में वह शब्द उस समय भी व्यवहृत होता था । अंग्रेजी में 'हू इज देय' इसी प्रकार का सम्बोधन है जो सेना तथा सशस्त्र पुलिस द्वारा किसी को जानने के लिये सम्बोधित किया जाता है ।

पुनर्द्वित्रैर्दिनैरस्य निर्गतस्याग्रतस्ततः ।
अभवन्नभयार्थिन्यो द्वित्रा दिव्यप्रभाः स्त्रियः ॥ १८ ॥

१८. पुनः दो या तीन दिन पश्चात् जब वह (राजा) बाहर जा रहा था, सम्मुख अभयार्थिनी एवं दिव्य प्रभामयी दो या तीन स्त्रियां उपस्थित हो गयीं ।

ताः संश्रुतेप्सितास्तेन रुद्धाश्वेन कृपालुना ।
अभ्यभाषन्त सीमन्तपुञ्जिताञ्जलयो वचः ॥ १९ ॥

१९. कृपालु उस (राजा) ने अश्व रोक कर, उन्हें अभय दान दिया । अभीप्सित को सुनकर, वे शिर पर बद्धांजलि करके बोली—

देव दिव्यप्रभावेन भुवने भवता धृते ।
अपरस्माद्भयं जातु कस्य स्यात्करुणानिधे ॥ २० ॥

२०. "देव ! करुणानिधे !! आपके दिव्य प्रभाव से भुवन को धारण करते, दूसरों से किसी को भय कैसे होगा ?"

तदानीं तोयदा भूत्वाच्छादयन्तो नभस्तलम् ।
अकाण्डकरकापातशङ्किभिः कार्षकैर्मृषा ॥ २१ ॥

२१. "उस समय नाग[1] मेघ होकर, नभस्थल को आच्छादित कर लिया, तब कृषकों को असमय में करकापात[2] की मिथ्या शंका हुई ।[3]

पाठभेद :

श्लोक संख्या २० में 'वेन' का पाठभेद 'वेण' मिलता है ।

श्लोक संख्या २१ मे 'भूत्वाच्छा' का 'भूत्वा छा' तथा 'कार्षकै' का पाठभेद 'कृषकै', और 'कार्षिकै' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२१ (१) नाग : पृष्ठ ४३ से ६३ तक द्रष्टव्य है । वृष्टि के सम्बन्ध में नाग का एक अर्थ मेघ होता है ।

नागो का नीलमत पुराण के अनुसार वर्षा पर नियन्त्रण एवं अधिकार था । उनका तूफानो तथा हिमपात पर भी अधिकार था । (नी० 351, 985-986) पुरातन भारतीय साहित्य में जल पर नागो का नियन्त्रण था इससे सम्बधित अनेक आख्यान तथा प्रसंग मिलते है । 'सर्पवलि' पर्व वर्षा ऋतु के प्रथम मास से आरम्भ होकर अन्तिम मास तक चलता है । महा० आदि० २१: ६; भविष्यत् पुराण २२;

(२) करका : उपल किंवा ओला वृष्टि को करकापात कहते है । तुहिन तथा करकापात में अन्तर है । तुहिनपात बर्फ गिरने को कहते हैं । तुहिनपात अत्यन्त शीत काल में होता है । करकापात किसी भी ऋतु मे हो सकता है । यह भारत के किसी भाग में वर्षा और अन्धड़ के साथ हो सकता है । परन्तु तुहिनपात केवल शीत कटिबन्ध और हिमालय में तापमान की न्यूनता जहाँ होती है वही होता है ।

(३) श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित तथा प्राय सभी अनुवादकर्ताओ ने चार श्लोको (२१-२४) का अनुवाद एक साथ ही किया है । कल्हण इन्हें कुलकम् मे नही रखा है किन्तु कुछ पाण्डुलिपि मे इसके लिये 'चक्कलक' शब्द का प्रयोग किया गया है । श्री स्तीन द्वारा बीना की राजकीय

पक्वशालिवनस्फीतिरक्षाक्षुभितमानसैः ।
नागास्त्वत्कोपसंरम्भभूमितां गमिताः प्रभो ॥ २२ ॥

२२. "पके शालियों से परिपूर्ण क्षेत्रों की रक्षा हेतु उनका मन क्षुभित था, अतएव प्रभो! (वे) नाग भूठे ही आपके क्रोधावेश के पात्र हो गये।

तेऽस्माकं पतयश्चौरश्चौर इत्यार्तभाषितम् ।
श्रुत्वा देवेन बध्यन्तामित्यवादि यदा क्रुधा ॥ २३ ॥

२३. "उन लोगो ने मेरे पतियों को जब 'चोर चोर" ऐसा आर्तनाद किया, तब (उसे) सुनकर, आप क्रोध से—'बाँध लो—बोले।

तदा त्वदाज्ञामात्रेण न्यपतन्पाशवेष्टिता ।
प्रसादः क्रियतां तेषामस्मत्करुणयाऽधुना ॥ २४ ॥

२४. "उस समय आपकी आज्ञा मात्र से पाश वेष्टित कर (वे) लाये गये। अधुना, हम लोगों पर करुणा कर, उन्हें प्रसन्न (मुक्त) करे।"[1]

तदाकर्ण्याऽवदद्राजा प्रसादविशदाननः ।
सर्वे ते बन्धनान्नागास्त्यज्यन्तामिति सस्मितः ॥ २५ ॥

२५. इसको सुनकर, सस्मित एवं प्रसादोज्ज्वल आनन राजा बोले—"वे सब नाग बन्धन मुक्त कर दिये जाँय।"

तथा तस्याज्ञया राज्ञो नागा विधुतबन्धनाः ।
प्रणम्य चरणौ तूर्णं प्रययुः सपरिग्रहाः ॥ २६ ॥

२६. राजा की आज्ञा से नाग बन्धन रहित हो गये। वे सपरिवार चरणों में प्रणाम कर, शीघ्रता पूर्वक चले गये।

अथ ग्राहयितुं भूपानाज्ञां हिंसानिवृत्तये ।
स दिग्जयाय निर्व्याजधर्मचर्यो विनिर्ययौ ॥ २७ ॥

दिग्विजय[1]

२७. निर्व्याज धर्माचारी वह (नृप) राजाओं की हिंसा निवृत्ति हेतु आज्ञा पालन कराने के लिये दिग्विजय निमित्त निकल पड़ा।[1]

पुस्तकालय में रखी गयी प्रति मे इसका उल्लेख मिलता है। मैने सबको भिन्न भिन्न मानते हुए प्रत्येक श्लोको का अनुवाद अलग अलग किया है। निस्सन्देह अलग अलग अनुवाद करने में कुछ कठिनाई का अनुभव अवश्य होता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २२ में 'स्फीति' का 'स्फाति' तथा 'भूमि ता' का पाठभेद 'भूमि ते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२४ (१) श्लोक मे 'चतुर्भि : कुलकम् चक्कलकम्' जोडने का सुझाव है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २७ में 'धर्म' का पाठभेद 'धर्म्मा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७ (१) दिग्विजय : पण्डित जवाहर ला

अभूदभीतजनतावेक्षणश्लाघ्यविक्रमः ।
स्पृहणीयो जिनस्यापि तदीयविजयोद्यमः ॥ २८ ॥

२८. उसका यह विजयोद्यम जिन[1] (बुद्ध) के लिये भी स्पृहणीय था, क्योंकि उसने अपने प्रशंसनीय विक्रम एवं निरीक्षण से जनता को निर्भय रखा।

प्रभावविजितान्कृत्वा सोऽहिंसादीक्षितान्नृपान् ।
अर्णसां पत्युरभ्यर्णमवापावर्णवर्जितः ॥ २९ ॥

२९. निष्कलंक उस राजा ने अपने प्रभाव से विजित नृपों को अहिंसा व्रत में दीक्षित कर, अर्णस्पति[1] (सागर) के समीप पहुँचा।

तत्र तालीवनच्छायासुखविश्रान्तसैनिकः ।
युक्तिं द्वीपान्तराक्रान्तौ क्षणमन्तर्व्यचिन्तयत् ॥ ३० ॥

३०. वहाँ पर उसके सैनिक ताल वन की छाया में सुखपूर्वक विश्राम कर रहे थे। द्वीपान्तर (अन्य द्वीप पर) आक्रमण करने के लिये क्षण भर (उसने) मनमें विचार किया।

अथ वेलावनोपान्तात्तेनार्तक्रन्दितध्वनिः ।
मेघवाहनराज्येऽपि हतोऽयमिति शुश्रुवे ॥ ३१ ॥

३१. अनन्तर उसने तटवर्ती वन की छोर से आर्त क्रन्दित ध्वनि सुनी—"मेघवाहन के राज्य में भी यह (मैं) मारा गया।"

नेहरू मेघवाहन के इस महाप्रयास के सम्बन्ध में श्रीरणजीत सीताराम पण्डित की भूमिका में लिखते हैं : अहिंसा द्वारा विचित्र प्रयास—'हम पढते है—मेघवाहन का विजय द्वारा अहिंसा का विचित्र प्रयास—।'

पाठभेद :

श्लोक सख्या २८ मे 'अभूद' का 'अभूत'; 'जिनस्यापि' का 'जनस्यापि' तथा 'तदीय' का पाठभेद 'त्वदीय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

(१) जिन : अनेक लेखको ने जिन और जैन शब्द को मिलाकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसका शाब्दिक अर्थ जीतने वाला होता है। बुद्ध ने स्व विजय किया था। अतएव उनका नाम जिन हो गया था। जैन भी अपने तीर्थंकरो को विजेता किंवा जीतने वाले कहते है। अलबेरूनी ने १:२४३ में इसी मत का प्रतिपादन किया है।

जिन शब्द का उल्लेख कल्हण ने रा० त० १.१०२ ३ ७,२८, ४:२००, २११, २६१, ८ २२३४ मे किया है। विशेष द्रष्टव्य पृष्ठ १३६ है।

२९ (१) अर्णस्पति का अर्थ यहाँ समुद्र है। नदियो का स्वामी समुद्र संस्कृत काव्य में कहा गया है। कल्हण उसी काव्य परम्परा का यहाँ पालन किया है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ३० मे 'सैनिक·' का 'सैनिकैः' तथा 'क्रान्तौ' का पाठभेद क्रान्त्यै' मिलता है।

श्लोक सख्या ३१ में 'पान्तात्ते' 'पान्ते ते' तथा 'हतोऽय' का पाठभेद 'हतोऽह' मिलता है।

तप्तायःशङ्कुनेवान्तर्व्रणितः स द्रुतं ततः ।
संचारिणाऽऽतपत्रेण सत्रा तां वसुधामगात् ॥ ३२ ॥

३२. तप्त लौह शंकु से अन्तर्विध सदृश (नृप) संचारी आतपत्र[1] (राज-छत्र) के साथ शीघ्र ही उस भूमि पर गया ।

अपश्यदथ केनापि चण्डिकायतनाग्रतः ।
नरं शबरसेनान्या हन्यमानमधोमुखम् ॥ ३३ ॥

३३. वहाँ देखा—चण्डिकायतन[1] के आगे कोई शबर[2] सेनानी अधोमुख नर को मार रहा है ।

श्लोक सख्या ३२ मे 'त·' का 'तस्य', 'द्रुत' का 'श्रुत', तथा 'मत्रा ता' का पाठभेद 'स तत्र', 'सत्राता' 'सद्राता' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३२ (१) आतपत्र=छत्र यहाँ तात्पर्य श्वेत वरुण छत्र से है। छत्र के सन्दर्भ मे एक पौराणिक कथा मिलती है । किस प्रकार छत्र की उत्पत्ति हुई थी । देवी रेणुका महर्षि जमदग्नि की धर्मपत्नी थी । सूर्य ताप से कदाचित् विकल हो गयी । महर्षि अपनी पत्नी की व्याकुलता देखकर क्रुद्ध हो गये । सूर्य के वध के हेतु धनुष वाण उठाया । सूर्य भगवान् भयभीत हो गये । प्रकट हुए । एक छत्र वनाकर महर्षि को दिया । सामान्य छत्र तथा राजछत्र मे भिन्नता होती है । छत्र, चामर, मुकुट आदि राजा के चिन्ह माने जाते है । सम्राट् के छत्र का चतुर्थांश युवराज का छत्र होता है । सम्राट् के छत्र के अग्रभाग मे भिन्नता प्रदर्शन हेतु आठ अगुल की एक पताका लगी रहती है । इस छत्र को दिग्विजयी छत्र कहते है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३३ में 'शवर' का पाठभेद 'शवर' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

(१) आयतन देवस्थान यज्ञ स्थान के अर्थ में यहा इस शब्द का प्रयोग किया गया है । आध्यात्मिक दृष्टि मे छ· आयतन वाहर तथा छ भीतर होते है । चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एव मन आन्तरिक आयतन है । बाह्यायतन रूप, शब्द, गध, रस, स्पर्श एव धर्म है । प्राणियो की तृष्णाओ के कारण उक्त बारह आयतन है । तृष्णाओ के घर हैं ।

भवन, गृह, निवेशन, आलय, वेश्म, आयतन, अट्टालक इन शब्दो का प्रयोग नीलमत पुराण में किया गया है । उनमें क्या भेद था इस पर प्रकाश नही डाला गया है । (नी० 187, 359, 362, 364, 369, 370, 400, 551, 558)

(२) शबर पुराणो के अनुसार यह एक विशेष म्लेच्छ जाति थी । ये दक्षिणापथ के निवासी थे । वायु पुराण में इन्हें 'दक्षिणापथवासिन' कहा गया है । इनका उल्लेख, आभीर, आटव्य, पुलिंद, वैदर्भ, दण्डक आदि के साथ प्राप्त होता है । (वायु ४५ १२६) ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार विश्वामित्र के ज्येष्ठ पचास पुत्र उन्ही के शाप से आध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिंद आदि हो गये थे (ऐ. ब्रा० ७ १८ २, सा. श्रौः १५ २६ ६) वह दक्षिण मे पेन्नार नदी के प्रदेश मे रहते थे । रामायण में प्राप्त शवरी की कथा इस ओर सकेत करती है । इनकी आवादी राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश आदि में थी ।

महाभारत के अनुसार शवर मूलतः क्षत्रिय थे परन्तु आचार त्याग देने के कारण म्लेच्छ हो गये थे । महाभारत में शवरो ने कौरवो के पक्ष से युद्ध

अनात्मज्ञ धिगेतत्ते कुकर्मेति महीभुजा ।
तर्जितः स भयादेवं शबरस्तं व्यजिज्ञपत् ॥ ३४ ॥

३४. 'ओ अनात्मज्ञ ! कुकर्मी !! तुम्हें धिक्कार है !"—राजा के इस प्रकार वर्जित करने पर, भय से उस शबर ने उन्हें बताया—

शिशुर्मुमूर्षुर्मे राजन्नयं रोगार्दितः सुतः ।
कर्मैतद्दैवतैरुक्तमस्य श्रेयोलवावहम् ॥ ३५॥

३५. "हे राजन् ! रोग-पीड़ित मेरा पुत्र यह शिशु मरणासन्न है । देवों-द्वारा कहा गया, यह कर्म (बलि) इसके लिये श्रेयस्कर है ।

उपहारनिरोधेन सद्य एष विपद्यते ।
बन्धुवर्गमशेषं च विद्धेयतज्जीवजीवितम् ॥ ३६ ॥

३६. 'इस उपहार के निरोध से यह सद्यः (तत्काल) मृत हो जायगा । समस्त बन्धु वर्ग को इसी के जीवन से, जीवित जानिये ।

अरण्यगहनाल्लब्धमनाथं देव रक्षसि ।
बहुलोकाश्रयं बालं कथमेतमुपेक्षसे ॥ ३७ ॥

३७. देव ! गहन वन में प्राप्त अनाथ को आप रक्षा करते है फिर अनेकों के आश्रय-भूत उस बालक की क्यों उपेक्षा कर रहे है ।

अथाभ्यधान्महात्मा स वचोभिः शबरस्य तैः ।
वध्यस्य दृष्टिपातैश्च विज्ञवैर्विवशीकृतः ॥ ३८ ॥

३८. उस महात्मा (नृप) ने शबर की बातों एवं वध्य के कातर दृष्टिपातों से विवश होकर कहा—

में भाग लिया था । सात्यकी ने इनका सहार किया था ।

३३ (२) आयतन . कल्हण का वर्णन पुराणो से मेल खाता है क्योंकि यह स्थान दक्षिण का समुद्र तट था जहाँ शबर से राजा की भेंट हुई थी । शबर शिव भक्त थे । एकमत है कि वर्तमान भील जाति के शबर ही पूर्व पुरुष थे ।

एक मत शबर जाति को पिशाच के एकादश उपजातियो में एक मानता है । "शाबरं द्राविडं चैव एकादश पिशाचकाः ।"

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३४ मे 'अनात्मज्ञ' का 'अनात्मज्ञा' और 'देव' का 'देव' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या ३६ में 'एष' का पाठभेद 'एव' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३८ मे 'स वचोभिः' का पाठभेद 'सुवचोभि ' मिलता है ।

किरात कातरो मा भूः स्वयं संरक्ष्यते मया।
बहुबन्धुस्तव सुतो वध्योऽप्ययमबान्धवः॥ ३९॥

३९. "ओः किरात[1]! कातर मत हो। मै स्वयं तुम्हारे पुत्र की जिसके बहुत बन्धु है, और बन्धु हीन उस वध्य की रक्षा करता हूँ।

श्लोक सख्या ३९ में 'वध्यो' का पाठभेद 'बाध्यो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

३९ (१) किरात विन्ध्य तथा राजस्थान मे रहने वाली एक आदिम जाति है। किरात शब्द अनार्यों के लिये बहुत प्रयुक्त किया गया है। राजस्थान तथा विन्ध्य के निवासी भीलो को किरात की सज्ञा हो जाती है। वशानुक्रम तथा जाति के विचार से किरात एव भील में अन्तर है।

इस जाति का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह पहाड़ी जाति है। महाभारत सभा पर्व (अ. २६) से प्रतीत होता है कि प्राग्ज्योतिष के समीप किरात प्रदेश था। हिमालय के पूर्व लौहित्य नदी के आगे किरात निवास करते थे। टालेमी ने किरात जाति का प्रदेश वर्मा का अराकान प्रदेश बताया है। पाँचवी तथा छठी शताब्दियो के प्राप्त वर्मी तथा कम्बुज शिलालेखो से पता चलता है कि वहाँ के मूल निवासी किरात थे। इन प्रमाणो से माना जा सकता है कि पूर्वी हिमालय अचल, भूटान, मणिपुर, वर्मा तथा कम्बुज (कम्बोडिया) तक किरात जाति फैली थी। प्राग्ज्योतिष के राजा भगदत्त ने किरात तथा चीन की सेना के साथ अर्जुन से युद्ध किया था।

महाकवि भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य से पता चलता है कि महाभारत काल में किरात सैनिक तथा गुप्तचरो का कार्य करते थे। महादेव ने किरात वेश मे अर्जुन से युद्ध किया था। नैपाल में प्राचीन किरात जाति आजकल किरान्ती नाम से प्रसिद्ध है। वे बल्ली, माझ तथा पल्ल किरान्त वर्गो में विभक्त है। वल्ली किरान्त तिम्बू, पख तथा तथा रयस श्रेणियो मे विभक्त है। लिम्बू किरात पत्नी खरीदते हैं। गरीब लिम्बू अपने ससुर के घर नौकरी कर पत्नी प्राप्त करता है। नैपाल की वंशावली से प्रतीत होता है कि अहिर वंश के पश्चात् किरात वश के २९ राजाओ ने नैपाल में शासन किया था। नैपाल के किरात बौद्ध तथा हिन्दू दोनो हैं। सिक्किम के पश्चिम मोरंग मे आज भी किरात जाति रहती है।

वराहमिहिर की बृहत् सहिता मे भारत के दक्षिण पश्चिम किरात जनपद होने का उल्लेख किया गया है। शक्ति सगम तत्र में 'तप्त कुण्ड' से 'राम क्षेत्रान्त' पर्यन्त किरात देश कहा गया है। यह विन्ध्य प्रदेश में स्थित है।

किरात एक शिवावतार भी हुआ है। भूक नामक दानव का इसने सूकर रूप मे वध किया है। ऋग्वेद मे किरात तथा आकुली दो असुरो का का उल्लेख मिलता है (ऋ० १० ५७.१, १०.६० १, बृहद् देवता ७ ९१ १६, प०ब्रा० १३:१२.५, श० ब्रा० २ १ ४ १४, जै. ब्रा. ३ १६७।

यह जाति सम्भवत. अनार्य थी। प्राचीन ग्रन्थो में प्रायः उनका सम्बन्ध पर्वतो तथा गुफाओ से जोडा गया है। उनकी मुख्य जीविका आखेट बतायी गयी है। अथर्ववेद (१०४ १४) में किरात का उल्लेख मिलता है। वाजसनेयी सहिता (३० १६) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में किरातो का सम्बन्ध गुहा से बताया गया है। अभिप्राय यह मालूम होता है कि वे गुहावासी थे।

उपहारीकरोम्येष चण्डिकायै स्वविग्रहम् ।
मयि प्रहर निश्शङ्कं जीवत्वेतज्जनद्वयम् ॥ ४० ॥

४०. "मैं अपने शरीर को चण्डिका के लिये उपहार[1] में दे रहा हूँ। तुम मुझ पर निःशंक होकर प्रहार करो। वे दोनों जन जीवित होवें।"

तदद्भुतमहासत्त्वचित्तोदात्तत्वविस्मितः ।
उन्मिषद्रोमहर्षस्तं ततः स शबरोऽभ्यधात् ॥ ४१ ॥

४१. तदनन्तर वह शबर उस महासत्त्व के चित्त की उदात्तता से विस्मित एवं रोमांचित हो गया और उनसे बोला—

अतिकारुण्यमिषतस्तत्रायं पृथिवीपते ।
कश्चिन्मतिविपर्यासप्रकारो हृदि रोहति ॥ ४२ ॥

४२. पृथ्वीपते! आपके हृदय में अति कारुण्य के कारण किसी प्रकार का मति विपर्यय (बुद्धि भ्रम) उत्पन्न हो गया है।

वाल्मीकि रामायण मे किरातो की नारियो के जूडा का वर्णन है। उनके वर्ण की सुवर्ण से उपमा दी गयी है। (किष्किन्धा काण्ड : ४०,२७)

महाभारत कर्ण पर्व (७३:१९-२०) मे उन्हे वर्वर अनार्य जाति तुषार, यवन, खस, आभ्रक, पुलिन्द, म्लेच्छो के साथ रखा गया है। उन्हे पर्वतीय जाति कहा गया है। द्रोण पर्व (४७) मे उन्हे हिमालय पर्वत मे निभृत कहा गया है। सभा पर्व (५२:६-१२) मे किरात लोग युधिष्ठिर को भेंट लेकर आते हुए देखे जाते हैं। उन्हे क्रूरकर्मी कहा गया है। फल-मूलभोजी, चर्मवस्त्रधारी तथा भयकर शस्त्र चलाने वाला कहा गया है। कालान्तर मे किरात लोग समस्त भारत में फैल गये थे।

खारवेल के अभिलेख मे चीन तथा किरात दोनो का एक साथ उल्लेख किया गया है। साची के एक स्तूप पर एक किरात भिक्षु के दान का उल्लेख अंकित है। नागार्जुनीय कोग के एक अभिलेख में किरातो का उल्लेख है।

६०

महाभारत के उपायन पर्व मे किरात के चन्दन लेकर भेंट में आने का उल्लेख है। अतएव किरात दक्षिण मे थे। ललितादित्य का उनसे समुद्रतट पर भेट होना वास्तविकता की ओर सकेत करता है।

मनु ने किरातों की गणना व्रात्य क्षत्रियो में की है। (मनु० १०:४३-४४)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४० मे 'स्ववि' का पाठभेद 'सुवि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४० (१) उपहार : कल्हण ने उपहार शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। बलि तथा उपहार मे स्पष्ट अन्तर कल्हण ने किया है। बलि किसी भी व्यक्ति अथवा पशु की उसकी इच्छा अथवा अनिच्छा होने पर भी जबर्दस्ती बलिकर्ता अपने प्रतिनिधि रूप मे कर देता था। परन्तु उपहार से यह ध्वनि नही निकलती। अपना उपहार नैवेद्य अथवा भोग लगाने की तरह देवता को चढाया जाता है।

त्रैलोक्यजीवितेनापि यो रक्ष्यो हेलयैव तम् ।
पृथिवीभोगसुभगं कथं कायमुपेक्षसे ॥ ४३ ॥

४३. "त्रैलोक्य के प्राण से भी जो रक्षणीय है, पृथ्वी के उपभोग करने योग्य उस काया की आप योंहीं क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ?

न मानं न यशो नार्थान्न दारान्न च बान्धवान् ।
न धर्मं न सुतान्भूपा रक्षन्ति प्राणतृष्णया[1] ॥ ४४ ॥

४४. "नृप गण प्राण रक्षा हेतु मान, यश, अर्थ, दारा, बन्धु, धर्म एवं पुत्र की भी रक्षा नहीं करते ।

तत्प्रसीद प्रजानाथ मा वध्येऽस्मिन्कृपां कृथाः ।
शिशुश्चैष प्रजाश्चैता जीवन्तु त्वयि जीवति ॥ ४५ ॥

४५. "प्रजानाथ ! प्रसन्न हों । उस वध्य पर कृपा न कीजिये । आपके जीवित रहने पर शिशु और प्रजा जीवित रहेगी ।"

उपाजिहीर्षुरात्मान दन्तद्योतार्घडम्बरैः ।
अर्चयन्निव चामुण्डामथोवाच स पार्थिवः ॥ ४६ ॥

४६ "स्वयं उपहार बनने के लिये उत्सुक नृप ने दन्त प्रभा रूपी अर्घ पुञ्ज से मानो चामुण्डा[1] की अर्चना करते हुए कहा—

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४३ में 'काय, का पाठभेद 'कार' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४४ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का ५६वाँ श्लोक है ।

४६ (१) चामुण्डा स्कन्द पुराण (५ १.३८) मे उल्लेख मिलता है । शुभ तथा निशुभ ने देवी का वध करने के लिये चण्ड एव मुण्ड नामक दो राक्षसो को भेजा था । देवी ने उनका वध किया । चण्ड एव मुण्ड के वध के पश्चात् देवी ने शुभ एव निशुंभ का वध किया । अतएव देवी का नाम चामुण्डा पडा ।

रक्तवीज एक असुर था । वह शुम्भ निशुम्भ के पक्ष का योद्धा था । रुद्र के वर प्रभाव से उसका एक बूँद रक्त पृथ्वी पर पडते रक्त बूँद के बीज स्वरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता था । चामुण्डा बूदो के गिरते ही रक्त चाट जाती थी । असुर उत्पन्न होने की नौबत ही नही आती थी । चामुण्डा ने रक्तवीज का नाश किया । (दे० भा० ५ २७–२९, मार्क० ८५, शिव० उमा ४७)

चामुण्डा के सम्मुख नर वलि का वर्णन भवभूति ने 'मालती माधव' नाटक मे किया है । नाटक के पचम अक में नायक ने नायिका की रक्षा करते समय अघोर घट पुरोहित का वध किया था ।

सदाचारसुधास्वादे के भवन्तो वनौकसः ।
जाह्नवीमज्जनप्रीतिं न जानन्ति मरुस्थिताः ॥ ४७ ॥

४७. 'सदाचार रूपी सुधा का स्वाद आप वनवासी कैसे जान सकते है ? मरुस्थल निवासी गंगा स्नान (मज्जन) के आनन्द को नहीं जानते ।

ध्रुवापायेन कायेन क्रीणतः कीर्तिमव्ययाम् ।
ममाभीष्टं प्रमार्ष्टुं ते मूढ रूढोऽयमाग्रहः ॥ ४८ ॥

४८. 'हे मूढ[1] अवश्यमेव नश्वर इस शरीर से अविनश्वर कीर्ति का क्रय करते, मेरे अभीष्ट के नाश हेतु, तुम्हारा यह दुराग्रह (क्यों ?) बढ गया है ।

मा वोचः किंचिदपरं प्रहर्तुं चेद्घृणा तव ।
न किं निजः कृपाणो मे शक्तः प्रक्रान्तसिद्धये ॥ ४९ ॥

४९. 'और कुछ मत कहो। यदि प्रहार करने में तुम्हें दया (आती) है, तो क्या मेरा कृपाण प्रस्तुत कार्य सिद्धि में समर्थ नहीं है ?'

इत्युक्त्वा स स्वयं देहमुपहर्तुं समुद्यतः ।
खण्डनाय स्वमुण्डस्य विकोशं शस्त्रमादधे ॥ ५० ॥

५०. ऐसा कहकर, देह को उपहार करने के लिये उद्यत वह स्वयं अपने मुण्ड के खण्डन हेतु कोश से शस्त्र निकालकर, धारण कर लिया ।

ततः प्रहर्तुकामस्य तस्य द्युकुसुमैः शिरः ।
करश्च दिव्यवपुषा रुद्धः केनाप्यजायत ॥ ५१ ॥

५१. प्रहारोत्सुक उनका शिर आकाश से गिरे पुष्पों से आच्छादित हो गया, और किसी दिव्य शरीरी ने हाथ को रुद्ध कर दिया ।[1]

अथापश्यत्तथाभूतः कश्चिद्दिव्याकृतिं पुरः ।
न चण्डिकां न तं वध्यं न किरातं न दारकम् ॥ ५२ ॥

५२. तथाभूत उसने सम्मुख कोई दिव्याकृति देखी । (किन्तु) चण्डिका, किरात, दारक (शिशु) एवं वह वध्य दिखायी नही दिया ।

पादटिप्पणियाँ :

४७(१) राजतरगिणी सूक्तिका ५७वाँ श्लोक है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ४८ मे 'भोण्ट' का 'भोण्टा' तथा 'रूढो' का पाठभेद 'मूढो' मिलता है ।

श्लोक सख्या ५० मे 'दधे' का पाठभेद 'ददे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५१ (१) हाथ रुद्ध करना : बाइबिल मे वर्णन आता है कि अब्राहम अपने पुत्र को बलि भगवान् पर चढा रहा था । उसने प्रहार के लिये हाथ उठाया था कि ईश्वरीय शक्ति ने उसका हाथ रोक लिया । इस प्रकार के चमत्कारो से विश्व का पूरा साहित्य भरा पडा है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ मे 'पुरः' का पाठभेद 'पुनः' मिलता है ।

स तं दिव्यस्तदाऽवादीन्मां त्वं सत्त्ववशीकृतम् ।
विद्धि मध्यमलोकेन्दो वरुणं करुणानिधे ॥ ५३ ॥

५३. उस समय उस दिव्य (व्यक्ति) ने उससे कहा—'हे मध्यमलोकेन्दु ! करुणानिधे ! ! तुम मुझे सत्त्व वशीकृत वरुण[1] जानो।

यदेतत्त्वामुपास्तेऽद्य छत्रं तन्मत्पुरात्पुरा ।
महाबलोऽहरद्भौमः पुराणश्वशुरस्तव ॥ ५४ ॥

५४. 'आज यह जो छत्र तुम्हारी सेवा में है, उसे पहले मेरे नगर से तुम्हारे पुराण श्वशुर महाबली भौम[1] ने अपहृत कर लिया था।

रसातलैकतिलकं माहात्म्यवदिदं विना ।
उपद्रवाः प्राणहराः पौराणां नः पदे पदे ॥ ५५ ॥

५५. 'रसातल[1] का एक मात्र तिलक माहात्म्यशाली इस (छत्र) के बिना मेरे पुरवासियों के पद-पद पर प्राणहारी उपद्रव होते हैं।

श्लोक संख्या ५३ में 'त्वं' का पाठभेद 'त्वा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

५३ (१) वरुण : पाद टिप्पणी 'वरुण' रा० त० १:१४८ द्रष्टव्य है। वरुण सूर्य के नव ग्रहों में एक ग्रह भी है। यह बहुत बड़ा पिण्ड है। इसका दूरस्थ होने के कारण दूरदर्शी के बिना नहीं देखा जा सकता था। सन् १८४६ में प्रथम बार दूरदर्शी द्वारा इसकी वास्तविक स्थिति ज्ञात हुई थी। किन्तु भारतीय बहुत पूर्व ही बिना दूरदर्शी के [illegible] था। भारतीयों को इसका ज्ञान बहुत पूर्व काल में था। वरुण का व्यास लगभग ३३,००० मील है। सूर्य से २७९ करोड़ मील पर स्थित है। यह साढ़े तीन मील प्रति सेकण्ड चलकर १६५ वर्षों में सूर्य की परिक्रमा करता है। संस्कृत शब्द है जिसे वरुण शब्द का प्रयोग किया गया है।

[illegible] में सूर्य को वरुण का [illegible] माना गया है। (२४।१०) नीलमत पुराण में वरुण को मरुत (619,), आदित्य (607) तथा, जलदेवता (384) के रूप में चित्रित किया गया है। उसका सम्बन्ध नरक से भी जोड़ा गया है। (1381) "जलाधिपेन ज्ञातव्य नरके पतन ध्रुव" इसी पुराण के अनुसार वरुण तीर्थ की बलि तथा प्रतिमा की स्थापना पुलस्त्य ने की थी। (1004—1006) कार्तिक पूर्णिमा को वरुण पूजा का भी उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है। (435—437) वरुण पंचमी की विशेष रूप से पूजा कश्मीर में होती थी। (755) वरुण यात्रा उत्सव का विधान भी नीलमत पुराण में अन्य यात्रोत्सवों के साथ रखा गया है। (801-865) नीलमत वरुणलोक का भी उल्लेख करता है।

५४ (१) भौम : इस दैत्य का दूसरा नाम 'नरक' है। उसे 'नरकासुर' भी कहते हैं।

५५ (१) रसातल : सप्त अधोलोकों में एक लोक है। पाताल के सात लोक यथा—[illegible] पाताल, बलि सद्मन, रसातल तथा नागसार है।

तदिदं प्राप्तुकामेन त्वदौदार्यं परीक्षितुम् ।
कारुण्यमय मायेयं निरमायि मयेदृशी ।। ५६ ।।

५६. 'हे करुणामय ![1] इसे (छत्र) प्राप्त करने की इच्छा से तुम्हारे औदार्य की परीक्षा हेतु, इस प्रकार की यह माया निर्मित की।

त्वदादिर्यो व्यधाज्जन्तून्व्यसूत्वसुकुलात्मजः ।
प्रायश्चित्तममारेण चरसीव तदेनसः ।। ५७ ।।

५७. 'तुम्हारे पूर्ववर्ती वसुकुलात्मज[1] जिसने प्राणियों का वध किया था, उसके पाप का इस अहिंसा द्वारा (अब) प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

भयस्पृहाजनकयोर्धरणीधारणोचिते ।
शेषदेहे विषोद्गारफणारत्नौघयोरिव ।। ५८ ।।

५८. 'धरणी धारण हेतु कोष शरीर में जैसे क्रमशः भय एवं अभिलाष (स्पृहा) उत्पन्न कारक विषोद्गार तथा फणरत्न समूह रहते हैं।

सुभाषित रत्नाकर मे इसका अर्थ पृथ्वी किया गया है। रसातल शब्द साधारणतया नरक के लिये प्रयुक्त होता है। प्राग्ज्योतिष तथा वरुण लोक रसातल नही है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५६ मे 'कारुण्यमय' का पाठभेद 'करुणामय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

५७ (१) वसुकुलात्मज : कल्हण मघवाहन को मिहिरकुल का वंशज यहाँ बताता है। द्रष्टव्य है रा. त. १:२८८-३२५ पृष्ठ २९२-३३३।

दक्ष कन्या एवं धर्म की पत्नी का नाम वसु था। उमसे आठ वसु है। उन्हे अष्ट वसु कहा जाता है। हरिवंश, स्कन्द एवं विष्णु पुराणो में इनका नाम—धर, ध्रुव, सोम, अप, अनल, अनिल प्रत्यूष तथा प्रभास है। नीलमत पुराण भी आठ वसुओ की तालिका देता है। उससे यह तालिका मिलती है। (603) नीलमत नव संवत्सर अर्थात् चैत्र शुक्ल एक को वसुपूजा का माहात्म्य उपस्थित करता है।

भागवत मे उनका नाम—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु तथा विभावसु दिया गया है। महाभारत मे 'अप्' के स्थान मे 'अह:' तथा शिव पुराण में 'अयज' नाम दिया गया है। अष्ट वसुओ के नायक अग्नि हैं।

ऋग्वेद मे वसु गण पृथ्वी निवासी देवता है। वसु नाम के अनेक वैदिक एवं पौराणिक देवताओ का उल्लेख मिलता है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ५८ मे 'धारणोचिते' का पाठ भेद 'धरणोचिते' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

४८ (१) चक्कलम् कतिपय अनुवादको ने श्लोक सख्या ४८-६१ श्लोको का अनुवाद एक साथ चार श्लोको को 'चक्कलम्' चारपद का मान कर किया है। यहाँ अनुवाद प्रत्येक श्लोक का अलग-अलग दिया गया है। निस्सन्देह कुछ प्रति मे चक्कलम होने का निर्देश किया गया है।

तमःप्रकाशावह्योस्तेजःक्रान्तदिगन्तरे ।
उषर्बुधे धूमजालज्वालापल्लवयोरिव ॥ ५९ ॥

५९. 'तेज से दिगन्तरव्यापी अग्नि में जैसे अन्धकार तथा प्रकाशप्रद धूम पुञ्ज एवं ज्वाला पल्लव रहते हैं ।

क्रमाप्यायक्रियाभाजो रुद्धतेजस्विमण्डले ।
प्रावृट्पयोदच्छन्नेऽह्नि संतापासारयोरिव ॥ ६० ॥

६०. आवृत रवि मण्डल एवं प्रावृट् पयोद से आच्छन्न दिन में जैसे क्रम (खेद और शान्तिदायी सन्ताप तथा वृष्टि होते हैं—

द्वयोरालोकितं चित्रं जन्मैकस्मिन्महाकुले ।
तस्य त्रिकोटिहन्तुश्च तवाऽहिंस्रस्य च प्रभोः ॥ ६१ ॥

६१ 'उसी तरह एक ही महाकुल मे त्रिकोटिहन्ता[1] (मिहिर कुल) उसका एवं अहिंसक प्रभु आप दोनों का विचित्र जन्म देखा ।'

नम्रः सम्राडथैवं स वदतो यादसां प्रभोः ।
चकार पूजां स्तोत्रेण छत्रेण च कृताञ्जलिः ॥ ६२ ॥

६२. यादस् पति (वरुण)[1] के इस प्रकार कहने पर, विनम्र उस सम्राट् ने अंजलिबद्ध होकर, स्तोत्र एवं छत्र से उनकी पूजा की ।

तं च स प्रतिगृह्णन्तं प्रणयादुष्णवारणम् ।
जगाद गुणिनामग्र्यो वरुणं धरणीधवः ॥ ६३ ॥

६३. सप्रणय छत्र ग्रहण करते वरुण से गुणियों में अग्रणी धरणीपति ने कहा—

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५९ में 'क्रान्त' का पाठभेद 'क्लान्त' मिलता है ।

श्लोक सख्या ६१ मे 'हन्तुश्च' का 'हर्तश्च' 'हर्तुश्च' तथा 'अहिंस्र' का पाठभेद 'अहिंस' मिलता है । श्लोक मे 'चतुर्भि 'कुलकम्' किंवा 'चक्कलम्' जोडने का सुझाव दिया गया है ।

पादटिप्पणियाँ ·

६१ (१) त्रिकोटिहन · कल्हण ने मिहिरकुल के लिये त्रिकोटिहन्ता एव त्रिकोटिहन शब्द का उल्लेख रा. त. १ ३१०, ३२२ तथा ८ ३४१५ में किया है ।

पाठभेद ·

श्लोक संख्या ६२ में 'धव' का पाठभेद 'धर' मिलता है ।

कल्पद्रुमाश्च सन्तश्च नार्हन्ति समशीर्षिकाम् ।
अर्थिनां प्रार्थिताः पूर्वे फलन्त्यन्ये स्वयं यतः[1] ॥ ६४ ॥

६४. "कल्पद्रुम एवं सन्त सम कोटि में होने योग्य नहीं। क्योंकि प्रथम (कल्पद्रुम) आकांक्षी के प्रार्थना करने पर तथा अन्य (सन्त) स्वतः फल देते है।

अत्रालम्बिष्यत छत्रं कथं नः पुण्यपण्यताम् ।
तत्प्रार्थयिष्यत न चेदार्तोपकृतये भवान् ॥ ६५ ॥

६५. "छत्र हमारे पुण्य पण्यता को कैसे प्राप्त करता, यदि आप आर्त के उपकार हेतु न प्रार्थित होते।"

वदान्यः संविभाग्येभ्यः पूर्णं कुर्यादनुग्रहम् ।
छायया ऽऽप्याययन्दद्यात्फलान्यपि महीरुहः[1] ॥ ६६ ॥

६६. वदान्य[2] संविभाग (दान) पूर्वक अनुग्रह पूर्ण करता है, क्योंकि महीरुह (वृक्ष) छाया द्वारा सन्तुष्ट करता हुआ, फल प्रदान करता है।

तदेवं विहितोदात्तसंविभागाभिचोदितः ।
जनोऽय भगवन्किंचिद्वरं प्रार्थयतेऽपरम् ॥ ६७ ॥

६७. 'भगवन् ! आपके इस प्रकार के उदात्त व्यवहार से प्रोत्साहित, यह जन एक अन्य वर की प्रार्थना करता है।

पादटिप्पणियाँ :

६४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ५८ वाँ श्लोक है।

मेघवाहन वरुण की प्रार्थना आरम्भ करता है। सम शीर्षिकाम् शब्द का यहाँ कल्हण ने प्रयोग किया है। सम का अर्थ समान तथा शीर्ष का ग्रर्थ शिर होता है। इसका शाब्दिक ग्रर्थ सन्तुलित मस्तिष्क लगाया जा सकता है। इस शब्द का उल्लेख पुनः कल्हण ने ३ १३५ मे किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६५ मे 'न' का पाठभेद 'न' मिलता है।

श्लोक संख्या ६६ में 'वदान्य' का 'वदन्य.' 'भाग्येभ्य' का 'भागेभ्यः' तथा 'दद्यात्' का पाठभेद 'दध्यात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

६६ (१) राज तरंगिणी सूक्ति सग्रह का ५९ वा श्लोक है।

(२) वदान्य : सबको दान देने के लिये जो कहता है, उसे वदान्य कहते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६७ में 'तदेव' का 'तदेव' और 'अपरम्' का पादभेद 'परम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

६७ (१) वर : वरुण के द्वारा छत्र स्वीकार कर लेने पर उत्साहित होकर, अपने उपकार का प्रत्युपकार पाने की अभिलाषा, से राजा वर की आकाक्षा करता है।

वशीकृतेयं पृथिवी कृत्स्ना भवदनुग्रहात् ।
जेतुं द्वीपान्कथ्यतां तु युक्तिः पाथोधिलङ्घने ॥ ६८ ॥

६८. 'आपकी कृपा से मैंने समस्त पृथ्वी को वशीकृत किया है। (अब) द्वीपों को जीतने के लिये, समुद्र लंघन हेतु कोई उपाय बतायें'।

इत्यर्थ्यमानोऽकथयद्भूमिपाल जलेश्वरः ।
तितीर्षौ भवति स्तम्भं नीयतेऽम्भो मयाऽम्बुधेः ॥ ६९ ॥

६९. इस प्रकार भूमिपाल के प्रार्थना करने पर जलेश्वर ने कहा,—"जब आप समुद्र पार करने की इच्छा करेंगे तो मैं जल स्तम्भित कर दूँगा।"

ततो महान्प्रसादोऽयमित्युक्ते पृथिवीभुजा ।
तिरोबभूव भगवान्वरुणः सोष्णवारणः ॥ ७० ॥

७०. तदुपरान्त राजा के 'आपका यह महान् प्रसाद' है'—यह कहने पर, भगवान् वरुण छत्र सहित तिरोहित हो गये।

अन्येद्युर्विस्मयस्मेरैर्बलैः सीमन्तयञ्जलम् ।
प्रभावस्तम्भितक्षोभं प्रोत्ततार स वारिधिम् ॥ ७१ ॥

७१. दूसरे दिन (वरुण के) प्रभाव से जल स्तम्भित हो गया। तब उसने जल को सीमन्तित[1] करते हुए, विस्मित तथा सस्मित सैनिकों के साथ समुद्र पार किया।

गुणरत्नाकरः शैलं स रत्नाकरशेखरम् ।
नानारत्नाकरं सैन्यैरारुरोहाऽथ रोहणम् ॥ ७२ ॥

लंका विजय—

७२. गुणरत्नाकर[1] उसने ससैन्य, नाना रत्नों की खान एवं रत्ननिधियों का शेखर रोहण पर्वत पर आरोहण किया।

पाठभेद

श्लोक सख्या ६९ में 'तितीर्षौ' का पाठभेद 'तितोर्षो' मिलता है।

श्लोक सख्या ७१ में 'क्षोभ' का पाठभेद 'जल' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

७१(१) सीमन्तित: कल्हण को उपमा वहाँ अनुपम है सीमन्त का अर्थ माँग होना है। शिर पर बाल काले होते हैं। भूरे होते है। माँग काढने पर बाल दोनो ओर घूमते हट जाते हैं। मध्य में सीधी पक्ति ललाट से उठती पीछे चली जाती है। सीमन्त अर्थात् माँग के मध्य का भाग त्वचा वर्ण के अनुसार उज्ज्वल किंवा भूरा लगता है। दोनो ओर जल हट जाने पर सीमन्त के समान दिखायी पडा होगा। जल उछल कर दोनो ओर हो जाएगा। सीमन्त तुल्य रेखा बन जाएगी। इसी प्रकार बाल मस्तक त्वचा से उठकर दोनो ओर गिर कर बालो से मिल जाता है। जल का तल नीला होता है। बाल का रंग काला उसके वर्ण के निकट होता है।

७२ (१) रत्नाकर शब्द पर यहाँ जोर दिया गया है। रत्नाकर समुद्र को कहा जाता है। कल्हण ने यहाँ राजा के लिये गुणरत्नाकर विशेषण का प्रयोग कर उसे रत्न के साथ गुणो से भी विभूषित किया है।

(२) रोहण: श्रीलका के पर्वत 'आदमस्

तत्र तालीतरुवनच्छायाध्यासितसैनिकम् ।
प्रीत्या लङ्काधिराजस्तमुपतस्थे विभीषणः ॥ ७३ ॥

७३. जब कि उसके सैनिक वहाँ ताल वृक्ष वनच्छाया में बैठे थे, लंकाधिपति [1]विभीषण प्रेम पूर्वक उसके पास आया।

समागमः स शुशुभे नरराक्षसराजयोः ।
बन्दिनादाश्रुतान्योन्यप्रथमालापसंभ्रमः ॥ ७४ ॥

७४. नर एवं राक्षसराज का यह समागम सुशोभित हुआ। किन्तु वन्दिगणों के नाद से उनका परस्पर उद्वेग पूर्ण (प्रथम) संलाप सुनायी नहीं पड़ा।

अथ रक्षःपतिर्लङ्कां नीत्वाऽलंकरणं क्षितेः ।
अमर्त्यसुलभाभिस्तं विभूतिभिरुपाचरत् ॥ ७५ ॥

७५. राक्षसपति पृथ्वीभूषण (मेघवाहन) को लेकर लंका गया। वहाँ अमर्त्य सुलभ विभूतियों से उसका उपचार किया।

यदासीत्पिशिताशा इत्यन्वर्थं नाम रक्षसाम् ।
तदा तदाज्ञाग्रहणे प्राप तद्रूढिशब्दताम् ॥ ७६ ॥

७६. राक्षसों का 'पिशिताश' (मांसभक्षी) नाम चरितार्थ था, परन्तु (उसकी) आज्ञा ग्रहण करने पर, वह शब्द रूढ हो गया।

कीट' अथवा श्रीपाद पर्वत का नाम है। द्रष्टव्य है पाद टिप्पणियाँ तरग १:२९४ तथा २९९ आदम पीक को ही रामायग वर्णित सुवेलाद्रि कुछ लोग मानते है।

आदम पीक को रहु अथवा रहुत्र मुसलमान लोग कहते है। रोहण का अर्थ ही चढना अथवा आरोहण करना होता है। रोपण अथवा आरोह सीढियो तथा आदम पर्वत की लौह शृखला को पकड कर किया जाता है। श्रीपाद पर्वत शिखर ७३६० फीट तथा पिदुरु तलागल शिखर ८२९६ फीट ऊँची है। पूर्व काल मे श्रीपाद पर्वत ही सबसे ऊँचा माना जाता था। परन्तु आधुनिक ऊँचाई माप साधन से श्रीपाद कम ऊँचा श्री लंका मे ठहरा है। उससे भी ऊँची चोटी किरिगिल पोत की है। वह ७८५७ फोट है इन्ही तीन शिखरो के कारण श्री तुलसीदास ने रामायण में लिखा है—'गिरि त्रिकूट पर बस जहँ लका।

७३ (१) विभीषण : लका मे विभीषण को भक्त रूप में चित्रित किया गया है न कि राक्षसेन्द्र रावण भ्राता रूप में राक्षस।

राम ने लंका का राज्य विभीषण को दिया था। विभीषण चिरंजीवी माना जाता है। एकमत उसे अब तक लका का राजा मानता है।

मै समझता हूँ। कालान्तर में 'विभीषण' शब्द लंका के राजा का पद वाचक हो गया था।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ७६ में 'प्राप' का पाठभेद 'प्रापि' मिलता है।

रक्षःशिरःप्रतिच्छन्दैः स्थिरप्रणतिसूचकैः ।
सनाथशिखरान्प्रादात्तस्मै रक्षःपतिर्ध्वजान् ॥ ७७ ॥

७७ राक्षसपति ने उसे स्थिर प्रणय सूचक राक्षस शिर की आकृतियों से युक्त शिखर वाले ध्वजाओं को दिया ।

पाराद्वारिनिधेः प्राप्ताः कश्मीरेष्वधुनापि ये ।
राज्ञां यात्रासु निर्यान्ति ख्याताः पारध्वजाः पुरः ॥ ७८ ॥

७८. वारिनिधि पार से प्राप्त वे ख्यात 'पारध्वज'[1] कश्मीर में आज भी राज-यात्राओं में निकाले जाते है ।

इत्थमाराक्षसकुलं प्राणिहिंसां निषिध्य सः ।
स्वमण्डलं प्रति कृती न्यवर्तत नराधिपः ॥ ७९ ॥

७९. इस प्रकार समस्त राक्षस कुल मे प्राण हिंसा निषिद्ध करके वह कृती राजा स्वमण्डल को लौटा ।

ततःप्रभृति तस्याज्ञा सार्वभौमस्य भूपतेः ।
हिंसाविरतिरूपा सा न कैश्चिदुदलङ्घ्यत ॥ ८० ॥

८०. तब से लेकर इस सार्वभौम राजा की उस हिंसा विरति आज्ञा का किसी ने उल्लंघन नही किया ।

क्षुद्रैरुद्रादिभिर्नाप्सु सिंहाद्यैर्गहने न च ।
न श्येनप्रमुखैर्व्योम्नि तद्राज्ये जन्तवो हताः ॥ ८१ ॥

८१. उसके राज्य में क्षुद्र जल मार्जारादि जल में, सिंहादि वन में, श्येनादि आकाश में, जीव हत्या नहीं करते थे ।

श्लोक सख्या ७८ में 'कश्मीरे' का पाठभेद काश्मीरे' मिलता है ।

ादटिप्पणियाँ ·

७८ (१) पारध्वज : विजय में प्राप्त शत्रुओ ं ध्वजो को विजय यात्रा किंवा उत्सवो पर जलूस ं निकाला जाता है । यह प्राय रोम सम्राट् के दर्शनो तथा यूरोप में भी प्रचलित रहा है । कश्मीर ं भी इस प्रकार की शोभा यात्रा प्रचलित रही ोगी । कल्हण के समय तक यह निकाले जाते थे ौर नका विजय की स्मृति हरी करते कश्मीर के सैनिको का मस्तक गौरव से ऊँचा करते थे । इस पारध्वज का पुनः कही उल्लेख नही मिलता ।

पाठभेद

श्लोक सख्या ८१ में 'रुद्रा' का पाठभेद 'रुध्रा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

८१ (१) उद्र : उद्र किस प्रकार का जलीय जन्तु था कहना कठिन है । अंग्रेजी अनुवादको ने उसका अनुवाद 'ओहर' अर्थात् उदविलाव किंवा जलमार्जार किया हैं ।

अतिक्रामति[1] कालेऽथ कोऽपि शोकाकुलो द्विजः ।
पुत्रं गदार्तमादाय द्वारि चक्रन्द भूपतेः ॥ ८२ ॥

ब्राह्मण बालक की कथा

८२ कुछ काल अतिक्रान्त[2] होने पर, कोई शोकाकुल द्विज रोग से पीड़ित पुत्र को लेकर, भूपति के द्वार पर क्रदन किया —

दुर्गया प्रार्थितं राजन् पश्वाहारं विनैष मे ।
अनन्यसंततेः सूनुर्ज्वरेणाद्य ।वपद्यते ॥ ८३ ॥

८३. हे राजन् ! दुर्गा[1] वांच्छित पशु आहार के बिना मेरा यह एक मात्र पुत्र आज ज्वर से मृत हो रहा है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ८२ मे 'गदार्त' का पाठभेद 'गतासु' 'गदात्त' तथा 'गदातु' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८२ (१) बाण के हर्षचरित मे इस प्रकार की शब्दावली मिलती है—'अतिक्रामति काले—'

(२) द्विज द्वार क्रन्दन : रामायण मे इसी प्रकार की कथा का वर्णन है । भगवान् राम के द्वार पर एक ब्राह्मण अपने अकालमृत्यु ग्रस्त ब्राह्मण बालक को लेकर आया । राजा राम से प्रश्न किया । पुत्र की अकाल मृत्यु क्यो हुई ? राजा उसके लिये उत्तरदायो है । राजा पुत्र को जीवित करे । वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड का सर्ग ७३ से ७६ सर्ग का संवाद राजनीति सिद्धान्त तथा प्रजा के प्रति राजा का कर्तव्य का अनुपम सिद्धान्त प्रतिपादित करता है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ८३ मे 'राजन्पश्वाहार' का पाठभेद 'राजन्नुपहार' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

८३ (१) दुर्गा का यहाँ पर अर्थ कालिका लगाया जाना उचित मालूम पडता है ।

दुर्गा का देवस्थान कहाँ था इसका अन्वेषण नही हुआ है । श्री स्तीन तथा अन्य किसो पुरातत्ववेत्ता ने इस पर प्रकाश नही डाला है । अनुमान मात्र लगाया जा सकता है । यह स्थान दुर्गा नाग तथा दुर्गा श्री के मन्दिर से सम्बन्धित किया जा सकता है ।

यह स्थान आज शाह हमदान नाम से मुसलिम जियारत है । यही पर दुर्गा नाग है । पादटिप्पणी तरग ३.३५२ द्रष्टव्य है ।

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत 'देवी माहात्म्य' मे देवी का निर्देश दुर्गा नाम से किया गया है । विश्व व्यापक आदि माया के लिये सामान्य नाम देवी प्रयुक्त किया है । मार्कण्डेयपुराण में देवी का माहात्म्य बताने के लिये 'सप्तशती' की रचना की गयी है । दुर्गा को काली, लक्ष्मी एव सरस्वती का अवतार माना गया है । दुर्ग नामक असुर का वध करने के कारण देवी का नाम दुर्गा पडा है ।

दुर्गा का महत्त्वपूर्ण स्थान देवी उपासना में था । काश्मीर मे निरजन पर्व पर दुर्गा पूजा के समय अस्त्र शस्त्रो की पूजा होती थी । वह पूजा दुर्गा मन्दिर के अन्दर होनी थी । (नी० 739, 740) आश्विन की कृष्ण पक्ष अष्टमी को दुर्गा मन्दिर में उपकरणो की पूजा होती थी । (नी० 786—89) दुर्गा मन्दिर मे पुस्तको की पूजा होती थी । (नी० 789) सरस्वती के मन्दिर मे पुस्तको की पूजा होना साधारणतया माना गया है । परन्तु वहाँ दुर्गा मन्दिर में पुस्तको की पूजा से कुछ कौतूहल उत्पन्न होता है । मै समझता हूँ । दुर्गा सप्तशती

यद्यहिंसाऽऽग्रहेणेमं क्षितिपाल न रक्षसि ।
एतद्विपत्तौ तत्कोऽन्यो निमित्तं प्रतिभाति मे ॥ ८४ ॥

८४. 'हे क्षितिपाल ! यदि अहिसा के आग्रह से इसकी रक्षा नहीं करते हो, तो इसकी विपत्ति मे दूसरा और कौन कारण है ।

निर्णयो वर्णगुरुणा त्वयैवैष प्रदीयताम् ।
ब्राह्मणस्य पशोर्वा स्यात्प्राणानां कियदन्तरम् ॥ ८५ ॥

८५. 'वर्ण गुरु[1]' आप ही इसका निर्णय दें कि, ब्राह्मण और पशु के प्राण मे कितना अन्तर है' ।

तपःस्थानपि ये जघ्नुर्ब्राह्मणप्राणलब्धये ।
हा मातस्तेऽधुना भूमे प्रजापालास्तिरोहिताः ॥ ८६ ॥

८६ "हा भूमि माता[1] ! तुम्हारे वे भूमिपाल (अब) तिरोहित हो गये, जिन्होंने ब्राह्मण प्राणोपलब्धि हेतु तपस्वियों[2] का भी वध किया ।"

आदि दुर्गा देवी सम्बन्धी ग्रन्थों से ही यहाँ तात्पर्य है। इरा मंजरी पूजा के दिन दुर्गा को इरा पुष्प अर्पित किया जाता था । (नी० 668—78)

पाठभेद

श्लोक संख्या ८५ में 'प्राणाना' का पाठभेद 'प्राणिना' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

८५ (१) **वर्णगुरुः** इस शब्द का यहाँ अर्थ राजा है । एक अनुवादक ने वर्ण गुरु का अर्थ चारो वर्ण का रक्षक किया है । यहा वर्ण गुरु शब्द भूपाल, पृथ्वीपति, क्षितिपाल आदि के समान राजा का विशेषण है जिसका अर्थ राजा होता है ।

पाठभेद

श्लोक संख्या ८६ मे 'तप स्था' का 'उपस्स्था' तथा 'भूमे' का 'भूमे' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

८६ (१) **भूमि माता :** कल्हण ने वैदिक सिद्धान्त का यहां प्रतिपादन किया है । वैदिक साहित्य में पृथ्वी को माता कहा है । ऋग्वेद मे पृथ्वी माता तथा देवी रूप उसे सम्बोधित किया गया है । पृथ्वी का अर्थ भूमि है । तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है—'इय वै माता' (३ ८ ९.१) 'तन्माता पृथ्वी तद् द्यौः' (तै० ब्रा० ७ ७ १६.३) 'धेनुरिव वा इय मनुष्येभ्यः सर्वान् कामान् दुहे माता धेनुर्मातेव वा इय मनुष्यान् बिभर्ति' (श० ब्रा० २.२ १ २१)

मोहन्दो जोरो तथा अनेक प्राचीन वैदिक किंवा अर्धवैदिक कालीन स्थानो के खनन मे पृथ्वी को माता के रूप में मृतिका टेबलेट आदि पर चित्रित किया गया है । (इण्डियन एण्ड इण्डोनीशियन आर्ट) कुमार स्वामी प्लेट ३० आकृति १०५ ।

पृथ्वी को माता कहने का भाव श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के आनन्द मठ मे निहित गान 'वन्देमातरम्' मे आ जाता है । रा० तर० ८.१२३६ श्लोक भी द्रष्टव्य है ।

(२) तपस्वी कल्हण का अभिप्राय यहाँ रामायण की प्रसिद्ध कथा शम्बूक से है । ब्राह्मण बालक की मृत्यु के कारण जानने पर तपस्वी होने पर भी शम्बूक की हत्या कर राम ने ब्राह्मण बालक को जीवित किया था । शम्बूक एक वृक्ष की

इति ब्रुवति साक्षेपं शोकरूक्षाक्षरं द्विजे।
आपन्नार्तिहरो राजा चिरमेवं व्यचिन्तयत् ॥ ८७ ॥

८७. इस प्रकार द्विज के आक्षेप पूर्वक शोक से कटु भाषण करने पर, दुःखियों के दुःख का हरण कर्ता (परार्तिहर) राजा चिरात् इस प्रकार सोचा—

न वध्याः प्राणिन इति प्राङ्मया समयः कृतः।
विप्रार्थमपि किं कुर्यां सप्रतिज्ञार्तविप्लवम् ॥ ८८ ॥

८८. "प्राणी वध्य नहीं है।" पूर्व में मैंने ऐसा प्रण किया है, अब क्या विप्र के लिये भी मैं प्रतिज्ञा भंग करूँ।

निमित्तीकृत्य मामद्य विपद्येत द्विजो यदि।
तत्राऽप्यत्यन्तपापीयानर्थः संकल्पविप्लवः ॥ ८९ ॥

८९. मुझे निमित्त बनाकर, यदि द्विज मृत हो गया, तो वहाँ भी अत्यन्त पापभय संकल्प विप्लव होगा।

नैति मे संशयभ्रान्तमेकपक्षावलम्बनम्।
संभेदावर्तपतितं प्रसूनमिव मानसम् ॥ ९० ॥

९०. 'संशय भ्रान्त मेरा मन उसी प्रकार किसी एक पक्ष का अवलम्बन नहीं कर पा रहा है, जैसे संगम के आवर्त में पतित कुसुम।

तत्स्वदेहोपहारेण दुर्गां तोषयता मया।
प्रतिज्ञया सम न्याय्यं रक्षितुं जीवितं द्वयोः ॥ ९१ ॥

९१. 'तो दुर्गा को अपने देह के उपहार से सन्तुष्ट करके, प्रतिज्ञा के साथ दोनों की प्राण रक्षा न्याय्य है।'

शाखा मे शिर नीचा और पैर ऊपर कर शाखा से लटकता तपस्या कर रहा था। (वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ७५ तथा ७६)

रामायण की इस कथा का उल्लेख भवभूति के प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित के प्रथम अंक में मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ मे 'प्राङ्मया समयः कृतः' का 'प्राग्योऽस्मि समकल्पयम्' तथा 'संप्रति' का पाठभेद 'स प्रति' मिलता है।

श्लोक संख्या ९१ मे 'जीवितं' का पाठभेद 'जीवितुं' मिलता है।

इति संचिन्त्य सुचिरं देहदानोद्यतो नृपः ।
श्वः प्रियं तव कर्ताऽस्मीत्युक्त्वा विप्रं व्यसर्जयत् ।। ९२ ।।

९२ देह दान के लिये उद्यत नृप ने चिरकाल तक इस प्रकार सोचा। "कल मैं तुम्हारा प्रिय (कार्य) करूँगा"—ऐसा कहकर विप्र को विसर्जित किया।

क्षपायां क्ष्मापतिमथ स्वमुपाहर्तुमुद्यतम् ।
निषिध्य दुर्गा व्यधित प्रकृतिस्थं द्विजन्मजम् ।। ९३ ।।

९३ रात्रि मे दुर्गा ने अपने को उपहार करने हेतु उद्यत नृपति को निषिद्ध कर, द्विज पुत्र को प्रकृतिस्थ (नीरोग) कर दिया।

इत्याद्यद्यतनस्यापि चरितं तस्य भूपतेः ।
पृथग्जनेष्वसंभाव्यं वर्णयन्तस्त्रपामहे ।। ९४ ।।

९४. अन्य लोगों में असम्भव, उस विगत भूपति के चरित का वर्णन करते, हम लज्जित हो रहे हैं।

अथवा रचनानिर्विशेषमार्षेण वर्त्मना ।
प्रस्थिता नानुरुन्धन्ति श्रोतृचित्तानुवर्तनम् ।। ९५ ।।

९५. अथवा आर्ष[1] मार्ग से प्रस्थित रचना में निर्विशेष श्रोता के चित्तानुवर्तन का अनुरोध नही करते हैं।

तस्मिन्नस्तं गते भुक्त्वा क्ष्मां चतुस्त्रिंशतं समाः ।
अनादित्यमिवाऽशेषं निरालोकमभूज्जगत् ।। ९६ ।।

९६. पृथ्वी का चोतीस वर्ष भोग करने के पश्चात्, राजा के अस्त हो जाने पर, सम्पूर्ण जगत् बिना सूर्य के प्रकाश रहित जैसा हो गया।

पादटिप्पणियाँ :

९५ (१) आर्ष श्री रणजीत सीताराम पण्डित श्लोक ९४ तथा ९५ पर टिप्पणी करते अपना मत प्रकट करते है कि कल्हण ने अपने समय के पाठकों के मनोभाव को परख लिया था। वे रहस्यमय तथा काव्यमय गाथा को विना उसका उपहास किये सुनने के लिये तैयार नही थे। अतएव कल्हण ने यहाँ स्वयं स्पष्टीकरण किया है। वह यही स्पष्टीकरण करता है कि उसमे प्राचीन काव्यपरम्परा का निर्वाह तथा अनुसरण किया है। कल्हण यहाँ पर आर्ष शब्द का प्रयोग कर ऋषिकृत, प्रयुक्त एवं वैदिक परम्परा किंवा मार्ग के अनुकरण करने की वात उठाकर अपने काव्य को पवित्र कहने का प्रयास करता है।

९६ (१) मूल्यांकन : मेघवाहन शान्त शासक था। वह तपस्वी था। योगी था। महान् आत्मा था। आध्यात्मिक प्राणी था। तथापि वह शक्तिशाली राजा था। चतुर शासक था। आदर्श राज्य की उसने कल्पना की। उसने राज्य का आधार शक्ति तथा दण्डनीति की अपेक्षा प्रेम एवं मन परिवर्तन पर महात्मा गान्धी की तरह विश्वास किया। उसने मनुष्य को कृतघ्न, क्रूर, आततायी, निर्भय प्राणी नही माना। उसने मनुष्य मे मानवता देखने का प्रयास किया और उसे पाया। उसने

अथ क्ष्माभृद्ररक्ष क्ष्मां श्रेष्ठसेनस्तदात्मजः ।
प्राहुः प्रवरसेनं यं तुञ्जीनं चाञ्जसा जनाः ॥ ९७ ॥

श्रेष्ठसेन (प्रवरसेन प्रथम तुञ्जीन द्वितीय)

९७. अथ (अनन्तर) उसके पुत्र राजा श्रेष्ठसेन ने पृथ्वी की रक्षा की जिसे लोग प्रवरसेन एवं तुंजीन कहते हैं[१] ।

अपने मे, प्रजा मे, तपस्वी मे तथा विरोधी प्रवृत्ति वालो के मध्य भेद पाटने का स्तुत्य प्रयास सर्वदा किया । और उसमें सफल रहा ।

अशोक ने भेरी घोष के स्थान पर धर्म घोष किया था । प्रजानुरक्त मेघवाहन ने अहिंसा को सार्वजनिक रूप देने के लिए, दिग्विजय की कल्पना की । दिग्विजय द्वारा उसने अहिंसा को व्यापक बनाने का प्रयास किया । उसकी दिग्विजय यात्रा मे उसके विचारो को जिसने स्वीकार किया उसे उसने उनके राज्य तथा शक्ति से च्युत नही किया । उसने व्यर्थ हिंसा का आश्रय नही लिया ।

उसका चरित्र निखर उठता है । कल्हण ने उसे इस प्रकार चित्रित किया है कि वह अपने पवित्र व्यक्तिगत व्यवहार, विचारो के कारण भारतवर्ष के नृपतियो की श्रेणी मे अशोक से भी ऊँचा स्थान पाने का पात्र है । किसी मत-मतान्तर का खण्डन किंवा मण्डन न कर उसने एक सरल, सीधा, मर्यादित पथ का अनुकरण किया । वह पथ निराला था । अनुपम था । शान्त था । उसका आशय प्रिय था । वह राज मद से दूर था । परन्तु वह जानता था । राज्य की शक्ति सेना भी है । उस सैनिक शक्ति को शिथिल होने नही दिया । उस शक्ति को मजबूत बना कर उसका प्रयोग अत्यन्त उत्तम उदात्त अहिंसा सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप देने का प्रयास किया । अहिंसा के कारण कसाइयो किंवा पशु हत्या पर जीवित रहने वालो की बेकारी का अनुभव कर उनको जीविका का भी प्रबन्ध किया । वह दूरदर्शी, व्यावहारिक एव प्रजाप्रिय राजा था । उसने भगवान् बुद्ध के उपदेशो को अपने व्यक्तिगत चरित्र, त्याग, तपस्या एवं राज्य की सैनिक शक्ति से भारत में प्रचारित किया । उपदेश एवं सिद्धान्त को मानसिक स्तर से उतार कर जीवन दर्शन में उतारा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९७ मे 'प्राहु.' का पाठभेद 'आहु' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

९७ (१) श्री विलसन अभिषेक काल सन् ५७ ई० ९ मास तथा राज्य काल सन् ३० वर्ष २ मास देते हैं ।

श्री एस. पी. पण्डित यह समय सन् ८८ ई० तथा राज्य काल ३० वर्ष देते हैं ।

श्री स्तीन अभिषेक काल लौकिक सवत् ३१३२ तथा राज्य काल ३० वर्ष देते है ।

श्री बाली यह समय सप्तर्षि सवत् ४००९ तथा सन् २३९ ई० देते है । कलि गताब्द ३१८३ वर्ष ४ मास आता है । ट्रायर वह समय सन् ५८ वर्ष ९ मास देते हैं । कनिंघम के मत से यह काल सन् ४०० ई० होना चाहिए । आइने अकबरी ने 'सरेशसेन' नाम दिया है ।

बिदैउद्दीन श्रेष्ठसेन की गाथा मे बहुत कुछ परिवर्धन करता है । उसका कहना है कि राजा ने खोट के खाली राजसिंहासन पर अपनी माता को बैठा दिया । उसने अपने साम्राज्य की सीमा खतई, चीन तथा मचीन तक फैला ली, बिदैउद्दीन कोई प्रमाण उपस्थित नही करता कि उसने इस घटना का वर्णन कहाँ से प्राप्त किया है । यह गलत है ।

हसन कहता है—संवत् विक्रमी ९८ मे राजा श्रेष्ठसेन बाप के इन्तकाल के बाद तख्त नशीन हुआ । मुल्क की रव्त जब्त और अदल व इन्साफ काम लेने में हद से ज्यादा कोशिश की । मातृ चक्र

दोःस्तम्भसंभृतासक्तौ कृपाणमणिदर्पणे[१] ।
संक्रान्तेवोन्मुखी यस्य भुवनश्रीर्व्यभाव्यत ॥ ९८ ॥

९८. जिसके बाहु स्तम्भ से लगे कृपाण मणि दर्पण में उत्सुक भुवन श्री प्रतिबिम्बित हो रही थी।

समातृचक्रं निर्माय यः पूर्वं प्रवरेश्वरम् ।
पुण्याः पुराणाधिष्ठाने प्रतिष्ठा विविधा व्यधात् ॥ ९९ ॥

९९. जिसने पुराणाधिष्ठान[१] में प्रथम मातृचक्र सहित प्रवरेश्वर का निर्माण करके विविध पुण्य प्रतिष्ठा की।

[१]गृहाङ्गनमिव क्षोणीं गणयन्वशवर्तिनीम् ।
त्रिगर्तोर्वीं ग्रामसंख्ये प्रवरेशाय यो ददौ ॥ १०० ॥

१०० जिसने वशवर्तिनी पृथ्वी को गृह आंगन तुल्य गिनते हुए, ग्रामों सहित त्रिगर्त[२] भूमि प्रवरेश्वर को दी।

वीर वीरेश्वर का मन्दिर अपनी यादगार में छोडा। इलाका कांगड, की पैदावार उसके इखराजात के लिए वकफ की। तीस बरस हकूमत करके दुनिया से रुखसत हुआ। दो बेटे हिरन और तोरमान नामी अपने पीछे छोडे।

९८ (१) बाण ने हर्ष चरित में इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है—'कृपाणदर्पणेषु'

९९ (१) पुराणाधिष्ठान : योगवासिष्ठ रामायण में अधिष्ठान नगर का उल्लेख मिलता है। कल्हण ने प्रतिष्ठान शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण के समय अधिष्ठान पुराने नगर के रूप में रह गया था। अतएव पुराणाधिष्ठान किंवा पुराधिष्ठान की सज्ञा दी गयी। यह स्थान पण्डरेथन है। महाराज यशस्कर के समय वह पुराणाधिष्ठान की सज्ञा नहीं प्राप्त कर सका था। मालूम होता है उस समय वहाँ यथेष्ट आबादी थी और नवीन नगर मे वह मिला था।

अधिष्ठान का अर्थ नगर होता है। पुराणाधिष्ठान का अर्थ पुराना नगर होगा।

श्लोक १ १०४ की टिप्पणी पृष्ठ १३८ तथा ५:२६७ द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०० में 'संख्ये' का 'मध्ये' तथा 'ददौ' का पाठभेद 'दधौ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०० (१) बाण ने इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है 'अगनवेदी वसुधा—।'

(२) त्रिगर्त : कांगडा क्षेत्र को त्रिगर्त कहते हैं। यह क्षेत्र चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में है। त्रिगर्त प्राचीन काल में जालन्धर राज्यान्तर्गत था। इन्द्रचन्द कटोच राजाओ में कांगडा के थे। जिनका उल्लेख तरंग ७ १५० में कल्हण ने किया है। इसका पुनः उल्लेख ८ १५३१ किया गया है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में त्रिगर्त का उल्लेख किया है। पाणिनि का काल मध्य छठवी शताब्दी बी. सी. कहा जाता है। कुछ सूत्रो मे स्पष्ट और कुछ सूत्रो में गौण रूप से 'प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्य' उल्लेख किया गया है। भर्गादि में, भर्ग, करुष, कश्मीर, शाल्व देश आते हैं। यौधेयादि में त्रिगर्त

तथा यौधेय सम्मिलित थे। यौधेय का अर्थ आयुध-जीवी संघ कहना उचित होगा। शस्त्रोपजीवी होने के कारण उन्हें क्षत्री माना जाता था। महाभारत में सभा पर्व (३७:७·१२; ५२:१४—१५) में त्रिगर्त पाण्डवो से पराजित हो गया था। सभा पर्व ८.२० मे उन्हे क्षत्री कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख आता है :

कर्णप्रावरणाश्चैव हूणा दार्वाः सहुण्डुका·।
त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥

मार्कण्डेय तथा वायुपुराण में 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव, पुन· मार्कण्डेय पुराण मे 'त्रिगर्ता मालवा श्चैव' ब्रह्माण्ड पुराण मे 'त्रिगर्ता मालवाश्चैव' वामन में 'त्रिगर्ताश्च किराताश्च तोमराः शशिखाद्रिकाः' उल्लेख मिलता है।

वामन पुराण पर्वताश्रयी देशो में चौदह आदि की तालिका मे त्रिगर्त को रखा गया है। वामन० १३:५६–५७

'कर्ण प्रावरण, हूण, दार्व, त्रिगर्त, मालव, किरातादि हिमालय की पर्वतीय जातियाँ हैं। मालव शब्द से भ्रम हो सकता है। वे कही वर्तमान मालवा के समीप तो नही थे। प्राचीन काल मे सप्त मालव का उल्लेख मिलता है। त्रिगर्त वर्तमान जालन्धर तथा कागडा अंचल कहा जाता है। यहाँ पर वर्णित मालव शब्द सतलज क्षेत्र के लिये आया है। किरात जाति आधुनिक किरात्ती है। इसी जाति ने कभी नेपाल के एक भाग पर शासन किया था।

स्कन्द पुराण मे देशो की तालिका मे त्रिगर्त का नाम नही है। परन्तु क्रम संख्या १४ पर जालन्धर का नाम दिया गया है। मालूम होता है। उस समय त्रिगर्त जालन्धर क्षेत्र मे मान लिया गया था। क्योंकि तोमर देश की क्रम सख्या ५४ स्कन्द पुराण में दी गयी है। निस्सन्देह जालन्धर का क्षेत्र बहुत विस्तृत था।

प्राचीन त्रिगर्त रावी तथा सतलज नदी के मध्य, जालन्धर का प्रदेश था। प्राचीन ग्रन्थो में कांगडा का नाम त्रिगर्त दिया गया है। मेरे अनेक कागड़ा निवासी मित्र जो भारतीय संसद् के सदस्य हैं, स्पष्ट कहते हैं—कागड़ा ही प्राचीन त्रिगर्त देश है। जनरल कनिंघम का मत है कि कांगड़ा ही त्रिगर्त देश है। चम्बा पर्वतमाला तथा व्यास नदी के ऊर्ध्व भाग में स्थित है। उनका यह भी मत है कि, त्रिगर्त क्षेत्र तीन नदियां अर्थात् रावी, व्यास एवं सतलज द्वारा सिंचित होता था। प्रोफेसर जानसन का मत है कि कटोच राज्य त्रिगर्त देश कहा जाता है।

मै स्वयं कागडा मे घूमा हूँ। स्थानीय राजाओ से भी भेंट की थी। यह जनश्रुति सुदूर प्राचीन काल से चली आती है कि त्रिगर्त कागडा है। इसी का वर्णन महाभारत तथा पुराणो में किया गया है। कल्हण ने त्रिगर्त का पुन. उल्लेख ३:१००, २८५, ५:१४४, ७:२२४, तथा ८·५३० में किया है।

दशकुमार चरित मे तीन धनाढ्य कुलो के त्रिगर्त जनपद में निवास करने का मित्रगुप्त के पर्यटन सन्दर्भ मे उल्लेख मिलता है। उस समय १२ वर्षों का भयंकर अवर्षण था। नदियाँ तक सूख गयी थी। हेमचन्द ने अभिधान चिन्तामणि में त्रिगर्त तथा जालन्धर का समानार्थक रूप मे प्रयोग किया है।

वर्तमान पंजाब का उत्तरी पूर्वीय भाग जो चम्बा से कागडा तक विस्तृत है और जो इस समय हिमालय प्रदेश मे है, त्रिगर्त कहा जाता था। सतलज, व्यास तथा रावी नदियो की तीन घाटियाँ अर्थात् गर्त किंवा द्रोणियों के कारण इसको त्रि तीन गर्त (घाटी) कहा जाता था।

इसका नाम जालन्धरायण भी था। रावी तथा व्यास के संकुचित मार्ग से देश में प्रवेश होता था। आज भी यह मार्ग चलता है। गुरुदासपर तथा पठानकोट के जिले त्रिगर्त राज्यान्तर्गत थे। यहाँ से औदुम्बुर गणराज्य की मुद्रायें प्राप्त हुई है।

ईशो नृपाणां निश्शेषक्ष्माकेदारकुटुम्बिनाम्[1] ।
स समास्त्रिशतं भूभृदनिस्त्रिशाशयोऽभवत् ॥ १०१ ॥

१०१. समस्त पृथ्वी क्षेत्र को कुटुम्बी[1] समझने वाले नृपों का अधीश्वर निष्क्रूर राजा ने तीस वर्ष शासन किया।

हिरण्यतोरमाणाख्यौ व्यधत्तामथ तत्सुतौ ।
साम्राज्ययुवराजत्वभाजने रञ्जनं क्षितेः ॥ १०२ ॥

१०२. साम्राज्य एवं युवराज पद के पात्र हिरण्य तथा तोरमाण[1] संज्ञक उसके दोनों पुत्रों ने क्षिति का रंजन किया।

त्रिगर्त के ६ सघ राज्यो का पाणिनि ने वर्णन किया है। उनके नाम—कौडोपरथ, दाडिक, क्रौष्टकी, जालमानि, ब्राह्मगुप्त और जानकि है।

महाभारत में त्रिगर्त तथा कुलूत अर्थात् उलूक पर्वतमालाओ में निर्वासित गणो और राजाओं का वर्णन किया गया है। (सभा-पर्व २७: ५–१६) कुलूत अर्थात् वर्तमान कुलू अचल की राजधानी नगर थी। कन्यादि गण (४ २:९) पाणिनि वर्णित नगर यही रहा होगा। कुलूत के दक्षिण मण्डो तथा सुकेत के राज्य थे। यवादि गण—अष्टाध्यायी (८.२ ९) में 'मडमती' का उल्लेख है। सुकेत सम्भवत सुकुट्ट है। इसका उल्लेख सभा पर्व में कुलिन्दो के सन्दर्भ में आया है। सतलज के दक्षिण टौस नदी का क्षेत्र कुलिंद प्राचीन काल मे कहा जाता था। कुलिंद, कुलूत तथा कुणिंद एक ही शब्द के विकृत रूप है। अष्टाध्यायी (४ १:१७८) में यौधेयो के साथ त्रिगर्त सघ का उल्लेख मिलता है। द्रष्टव्य है आदि पर्व १५५ २, सभा पर्व २७ १८, २३ ७,५२ १४—१६, वन पव २७-१५ २६, २७१.१२, उद्योग पर्व १६४ ८, १६६ ११, ५ १८, १६१.९, विराट पर्व अ० ३०, ३२, ३३, भीष्म पर्व ५७ ७, अ० ५६, ६१, ७२, १०२, द्रोण पर्व अ० ४, १८:१६, कर्ण पर्व अ० ८, १७,१९, ७०, १४१, १५७, शल्य पर्व अ० २७; आश्वमेधिक पर्व. अ. ७४

१०१ (१) कुटुम्ब. बाण के हर्ष चरित में इस प्रकार का पद मिलता है—'चतुरुदधि-केदारकुटुम्बो।

इस श्लोक का भाव निम्नलिखित श्लोक में और स्पष्ट हो जाता है

अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

१०२ (१) तोरमाण. श्री विलसन अभिषेक काल सन् ८७ ई. ३ मास तथा राज्य काल ३० वर्ष २ मास देते हैं।

श्री एस पी. पण्डित ने यह समय सन् ८८ ई. तथा राज्य काल ३० वर्ष २ मास रखा है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक काल लौकिक स० ३१६२ तथा राज्य काल ३० वर्ष रखा है।

श्री बाली यह समय सप्तर्षि सवत् ४०२९ तथा सन् २६९ ई० देते हैं।

कलि गताब्द ३२१३ वर्ष ६ मास आता है। टायर के अनुसार यह समय सन् ८८ ईस्वी ९ मास होना चाहिए। कनिंघम ने सन् ४१५ ई. समय रखा है।

आइने अकबरी 'हेरेन' नाम देती है। राज्य काल ३० वर्ष दिया गया है।

तूरमाण यह तुर्की नाम है। यह उन प्रारम्भिक तुर्कों में पाया जाता है जिन्होंने भारत विजय किया था

और पहले बौद्ध तथा कालान्तर में हिन्दू हो गये थे। दशवी शताब्दी में काबुल तथा सीमान्त पश्चिमोत्तर देश के रहने वाले उन्ही तुर्कों को शाही कहा गया। तरंग ५:२३३ द्रष्टव्य है।

भारतीय हूण राजा तोरमाण कश्मीर के राजा तोरमाण से भिन्न है। कुछ इतिहासकारो ने खीच-खाँचकर कश्मीरी तोरमाण को भारतीय तोरमाण का पौत्र होने का अनुमान लगाया है।

कश्मीरी तोरमाण ने भी भारतीय तोरमाण राजा तुल्य मुद्रा टकणित करवाया था। दोनों की मुद्राओ में समानता होने के कारण कुछ इतिहास-कार उन्हें एक मानते हैं। कल्हण के अनुसार हूण-राज नरेन्द्रादित्य का वंशज था। कश्मीरी तोरमाण युधिष्ठिर प्रथम का वंशज था।

कश्मीर मे तोरमाण नाम की ताम्र मुद्रायें बहु संख्या मे मिली है। मुद्रायें मध्य छठवी शताब्दी की टंकणित हैं। उनकी लिपि गुप्त कालीन है।

तोरमाण तुरकी नाम है। तुर्क एवं तुरुष्क एक ही जाति थी। मुसलिम काल के पूर्व तुर्किस्तान से आने वाले तुर्क बुद्ध धर्मावलम्बी थे। कालान्तर में हिन्दू बन गये। कुछ इतिहासकारो का मत है कि काबुल तथा सिन्ध के मध्य रहनेवालो के लिये शाही शब्द का प्रयोग होने लगा था।

हसन लिखता है—(३) सन् विक्रमी ९८ में हिरन वारिस तख्त होकर अपने भाई को तोरमान वोहद वजारत बखशा। कुछ अरसा खूब गुजरी। लेकिन आखिर मे तोरमान का मिजाज भाई की अताअत व फरमा बरदारी से मनहरफ हो गया। सिक्का अपने नाम जारी कर लिया। हिरन को उसकी यह हरकत सख्त नापसन्द आयी। और तूरमान को जेल भेज दिया। तूरमान की बीवी अंजना जो सूरज वशी राजाओ के चश्म व चिराग थी अपने शौहर के हादशा के वक्त फरार हो गयी। और मुकाम अन्दर कोट में एक कुम्हार के घर रहने सहने लगी। यह औरत अपने खाविन्द से हामिला थी। इसलिये वज हमल के वक्त इसके पेट से एक लडका पैदा हुआ। जिसका नाम इसने परवरसेन रखा। कुम्हार की बीवी इस लडके की अपनी औलाद की तरह परवरिश किया करती थी। सन् बलूगत तक लोग उसे कुलाल का बेटा ही खयाल करते रहे। बचपन से ही बुजुरगी के निशानात उसकी पेशानी से नमूदार थे। बच्चो के साथ खेल व कूद के दौरान में खुद एक ऊँची जगह पर बैठता और अपने आप को राजा के खिताब से पुकारता था। दूसरे लडको को वजारत गोरनरी और दीगर मुलाजमतो के ग्रहदसे बख्शे हुए थे। इसका शगल हमेशा तीरन्दाजी और निशाना बाजी था। हुसन इत्तफाक से अंजना का भाई **जयेन्द्र** अपनी बहन की तलाश में जगह जगह फिरता था। एक दिन वह अन्दर कोट में भी जहाँ परवरसेन बच्चो में खेल रहा था आ पहुँचा। क्या देखता है कि एक लडका बडी शान-शौकत से एक टीला पर बैठा हुआ है। और अपने मातहत बच्चो पर हुक्मरानी कर रहा है। जयेन्द्र के दिल मे तबअ मुहब्बत और शफकत ने जोश मारा लेकिन वहाँ कुछ न कह सका। रात को उस लड़के के पीछे कुम्हार के घर में आया। अपने बहन को जो मुद्दत से जुदा हो गयी थी। पहचान लिया। दोनो एक दूसरे के साथ गले मिलकर रोये।

परवरसेन ने इस रोने-धोने का सबब अपनी मा से पूछा। उसने जवाब दिया कि यह मेरा भाई है। तेरा बाप तूरमार अपने भाई के जुल्म से कैदी बना हुआ है। अब मै उसी के फिराक में होती हूँ। परवरसेन अपने बाप की हालत सुनकर गुस्सा से आगबबूला हो गया। इन्दर जै के घर रात दिन कुश्ती और पहलवानी में बसर करने लगा।

इस अशनाए में हिरन ने वाज मुतकदर हस्तियो के सफारिश के पेश नजर तूरमान की रिहाई के अहकाम जारी कर दिये। तूरमान कुछ मुद्दत बैठ के हमराह उल्फत और मुहब्बत से जिन्दगी गुजार

आताहतानां प्राचुर्यं विनिवार्यासमञ्जसम् ।
तोरमाणेन दीनाराः स्वाहताः संप्रवर्तिताः ॥ १०३ ॥

१०३. तोरमाण ने भातृ अंकित मुद्रा का असंगत प्राचुर्य निवारण कर स्वांकित दीनार प्रवर्तित किया ।

के नागहानी फौत हो गया । इस वाक़या के थोडे अरस बाद परवरसेन अपने खालू जी इन्दर की हमराही में हिन्दुस्तान के बडे बडे तीरथ और मन्दिर देखने के लिये गया । इन्ही दिनो तकदीर इलाही से हिरन की जिन्दगी के दिन भी पूरे हो गये और वह तीस सात हुकूमत करके इस जहान् से रुखसत हुआ । राजा हिरन बे औलाद था । इसलिए हुकूमत का चिराग बे रौनक रहा । यह देखकर अराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत में हाज़िर हुए जो हिन्दुस्तान का ताजदार था । उससे इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मोर अपने कब्ज इक्तदार में लाए ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या १०३ में 'आआह' का 'बालाह' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१०३ (१) दीनार : सस्कृत दीनार शब्द रोमन दिनारियस शब्द का अपभ्रश प्रतीत होता है । यह शब्द आज भी जेकोस्लोविका की मुद्रा के लिये प्रयोग किया गया है । कश्मीर में दीनार मुद्राओ के लिये प्रायः प्रयोग किया जाता था । यह स्वर्ण, रजत तथा ताम्र तीनो धातुओ मे टंकणित होता था । एक सौ कौडी का एक ताम्र दीनार होता था । कल्हण जब वर्णन करता है कि एक हजार दीनार मासिक वेतन अधिकारिओ को दिया जाता था । तो उसका अर्थ यह पैसा ही है । तरग ८:३८, ७:१४५, १६३; ४१८ तथा ८.१९१८ द्रष्टव्य है । मेरी बाल्यावस्था में सन् १९१४—१९१६ में काशी में एक ताम्बे के पैसा का ६० से ४० कौडी मिलती थी । कौडी का प्रचलन सन् १९२० के पश्चात् प्रायः नगरो में बन्द हो गया । उसका स्थान अधेला आधा पैसा तथा एक पैसा में मिलने वाली तीन पाई बृटिश राज्य काल में ले लिया था । बारह पाई का एक आना १६ आना का एक रुपया तथा एक पैसा में ३ पाई और २ अधेला मिलता था । चार पैसा या आठ अधेला का एक आना होता था । दो पैसे का एक सिक्का टका या टकहवा सन् १९२० तक खूब चलता था परन्तु उसका प्रचलन भी बृटिश अमलदारी में बन्द कर दिया गया था । इसके अतिरिक्त चाँदी को दुअन्नी चवन्नी तथा अठन्नी चलती थी । एक आना का सिक्का मिश्रित धातु का चलता था । इस समय एक सौ पैसा का एक रुपया चलने लगा है ।

दीनार ३२ रत्ती का सुवर्ण का सामान्यत होता था । सस्कृत भाषा में यह शब्द प्रचलित हो गया था । ईरान तथा सीरिया में अरबो के आक्रमण के पूर्व दीनार प्रचलित था । अरबो के यहाँ मुद्रा टंकणित नही होती थी । अरब विजय के पश्चात् अपने सल्तनत में 'दिरहेम' अरबो ने प्रचलित किया । यह दीनार शब्द का ही तद्भव रूप है ।

आइने अकबरी के अनुसार दीनार एक दिरहम का तीन बँटा सातवाँ वजन में होता था ।

फरिस्ता लिखता है कि दीनार दो रुपयों के बराबर होता था । रोमन लोगो का दिनेरियस रजत मुद्रा था जब कि हिन्द दीनार सुवर्ण का होता था । रोमन दिनेरियस सुवर्ण का भी होता था । पेरीप्लस का लेखक अद्रियन लिखता है कि 'दिनारी' स्वर्ण और रजत के यूरोप से 'वर्णगजा' अर्थात् भडौच भेजे जाते थे ।

मामवज्ञाय राज्ञेव कस्मादेतेन वल्गितम् ।
इति तं पूर्वजो राजा क्रोधनो बन्धने व्यधात् ।। १०४ ।।

१०४. राजा के समान इसने मेरी अवज्ञा कर किस हेतु औद्धत्य किया ? इस पूर्ववर्ती (ज्येष्ठभ्राता) क्रोधी राजा ने उसे बन्धन में कर दिया।

चिरं स्थितित्यक्तशुचस्तत्र तस्याऽञ्जनाभिधा ।
ऐक्ष्वाकस्याऽऽत्मजा राज्ञी वज्रेन्द्रस्याऽऽस्त गुर्विणी ।।१०५।।

१०५. वह चिरकाल तक वहां रहते, शोकरहित हो गया। उसकी अंजना नामक रानी गर्भवती हुई, जो ऐश्वाकु वज्रेन्द्र की आत्मजा थी।

आसन्नप्रसवा भर्त्रा सा त्रपार्तेन बोधिता ।
सुतं प्रविष्टा प्रासोष्ट कुलालनिलये क्वचित् ।। १०६ ।।

१०६. उसके आसन्नप्रसवा होने पर त्रपा पीड़ित पति ने उससे कहा—कहीं कुलाल निलय में जाकर प्रसव करो।

स कुम्भकारगेहिन्या काक्येव पिकशावकः ।
पुत्रीकृतो राजपुत्रः पर्याप्तं पर्यवर्धत ।। १०७ ।।

१०७. जिस प्रकार काकी[1] पिक शावक का वर्धन करती है, उसी प्रकार कुम्भकार की गृहिणी ने पुत्रीकृत उस राजपुत्र का पर्याप्त संवर्धन किया।

जनयित्र्याः कुलाल्याश्च रक्षित्र्या विदितोऽभवत् ।
रत्नसूतेर्भुजंग्याश्च प्रच्छन्न इव शेवधिः ।। १०८ ।।

१०८. उसे उसकी माता तथा रक्षिका कुलाली उसी तरह जानती थी, जैसे प्रच्छन्न मूल्यवान निधि को पृथ्वी तथा भुजंगिनी[1] जानती हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०४ में 'एतेन' का पाठभेद 'तोरमाणेन' मिलता है।

श्लोक संख्या १०६ में 'सा त्रपार्तेन' का पाठभेद 'सत्रपं तेन' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०७ (१) काकी : कोयल के बच्चे को कौआ अपना समझ कर पालता है। यह केवल गाथा नही है। वास्तविकता है। कवि की कल्पना नही है। कवि का सत्य दर्शन वर्णन है। कोयल अपना घोसला नही बनाती। वह अण्डा वहाँ देती है जहाँ कौआ अपना घोसला या नीड बनाता है। वह घोसले में जाकर अण्डा देती है। तत्पश्चात् अपने अण्डे का परित्याग कर उड़ जाती है। कालिदास ने दुष्यन्त के मुख से अभिज्ञान शकुन्तला नाटक में कहलवाया है—स्त्रियाँ सर्वदा धोखा देती है—उनकी उपमा 'प्राग् अन्तरिक्षगम्नात्' से देता है। तरंग ८:३१७५ तथा ३१७८ भी द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०८ में 'शेवधि.' का पाठभेद 'सेवधि' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१०८ (१) भुजंगिनी : पृथ्वी में गडे रत्न को पृथ्वी तथा भुजग जानता है। कंजूसो के लिये भारत में कोने कोने में सभी भाषाओ में कहावत प्रचलित है कि वे मरने पर सर्प बनकर पृथ्वी में गडे धन पर बैठते हैं। कल्हण उसी कहावत का यहाँ काव्य रूप में वर्णन करता है।

पौत्रः प्रवरसेनस्य गिरा मातुर्नृपात्मजः ।
पैतामहेन नाम्नैव कुलाल्या ख्यापितोऽभवत् ।। १०९ ।।

१०९. माता के कहने पर कुलाली ने प्रवरसेन के पौत्र नृपात्मज को पितामह के नाम से प्रख्यात किया।

वर्धमानः स संपर्कं न सेहे सहवासिनाम् ।
तेजस्विमैत्रीरसिकः शिशुः पद्म इवाऽम्भसाम् ।। ११० ।।

११० वर्धमान वह शिशु, तेजस्वियों के मैत्री का प्रेमी था। उसने सहवासियों का उसी प्रकार सम्पर्क नहीं किया, जैसे रवि मैत्री का प्रेमी पद्म, जल का सम्पर्क नहीं करता।

तं कुलीनैश्च शूरैश्च विद्याविद्भिश्च दारकैः ।
अन्वीतमेव ददृशुः क्रीडन्तं विस्मयाज्जनाः ।। १११ ।।

१११. कुलीन शूर विद्याविद् बालकों के साथ ही क्रीड़ा करते हुये, उसे लोग विस्मय पूर्वक देखते थे।

स्ववृन्दस्याऽत्युदारौजा राजा चक्रे स दारकैः ।
मृगेन्द्रशावः क्रीडद्भिर्वने बालमृगैरिव ।। ११२ ।।

११२. साथ में क्रीड़ा करते बालकों ने उस तेजस्वी को उसी प्रकार अपने दल का राजा बना लिया, जैसे वन में साथ क्रीड़ा करते बाल मृग सिंह शावक को।

संविभेजेऽनुजग्राह वशीचक्रे च सोऽर्भकान् ।
अराजोचितमाचारं नैव कंचिदसेवत ।। ११३ ।।

११३. उसने संविभाग एवं अनुग्रहण पूर्वक बालकों को वश में कर लिया और कभी अराजोचित आचार नही किया।

भाण्डादि कर्तुं मृत्पिण्डं कुम्भकारैः समर्पितम् ।
स्वीकृत्य चक्रिरे तेन शिवलिङ्गपरम्पराः ।। ११४ ।।

११४. कुम्भकारों के भाण्डादि निर्माण हेतु प्रदत्त त्पिण्ड को लेकर, वह शिव लिंग की परम्परा तैयार करता था।

तथा साश्चर्यचर्यः स क्रीडञ्जातु व्यलोक्यत ।
मातुलेन जयेन्द्रेण सादरं चाभ्यनन्द्यत ।। ११५ ।।

११५. उस प्रकार के आश्चर्य जनक कृत्यशाली क्रीड़ा करते, उस बालक को कदाचित् मातुल जयेन्द्र ने देखा और सादर अभिनन्दन किया।

आवेद्यमानं शिशुभिस्तं जयेन्द्रोऽयमित्यसौ ।
भूपालवत्सावहेलं पश्यन्नन्वग्रहीदिव ।।११६।।

११६. शिशुओं ने ज्ञात कराया 'यह जयेन्द्र है,' तो भूपाल सदृश उसने अवहेलना पूर्वक देखते हुए मानो अनुग्रह किया।

संभाव्य सत्त्वावष्टम्भात्तमसामान्यवंशजम् ।
सादृश्याद्भगिनीभर्तुर्भागिनेयमशङ्कत ।। ११७ ।।

११७. प्रबल साहस के कारण उसे असामान्य कुलोत्पन्न समझकर भगिनीपति के सादृश्य से भगिनी पुत्र की शङ्का (जयेन्द्र) ने की ।

सत्वरस्तत्त्वजिज्ञासारसेनानुससार तम् ।
प्राप्तस्तद्गृहमौत्सुक्यात्स्वसारं च व्यलोकयत् ।। ११८ ।।

११८. वस्तु स्थिति जानने की जिज्ञासा रससे उत्सुकता पूर्वक अनुसरण कर (जयेन्द्र) शीघ्र उसके घर गया और अपनी बहन को देखा ।

सा स चान्योन्यमुन्मन्यू पश्यन्तौ भ्रातरौ चिरात् ।
निश्वासद्विगुणोष्माणि मुहुरश्रूण्यमुञ्चताम् ।। ११९ ।।

११९. उन दोनों भाई बहन ने देर तक एक दूसरे को उत्कण्ठा पूर्वक देखा और पुनः निश्वास[1] के कारण अत्यधिक अश्रुपात किया ।

कुलाल्या दारको मातः कावेताविति पृष्टवान् ।
अकथ्यतेत्थं वत्सैषा माताऽयं मातुलश्च ते ।। १२० ।।

१२०. दारक (पुत्र) के यह पूछने पर 'माता ! ये दोनों कौन हैं' कुलाली ने इस प्रकार कहा—'वत्स, यह तुम्हारी माता एवं यह मातुल है ।'

पितुर्बन्धेन सक्रोधं तं कालापेक्षयाऽक्षमम् ।
शिक्षयित्वा जयेन्द्रोऽथ कार्यशेषाय निर्ययौ ।। १२१ ।।

१२१. पिता के बन्धन से क्रुद्ध एवं काल की अपेक्षा से असमर्थ उसको जयेन्द्र शिक्षा देकर अवशिष्ट कार्य हेतु चला गया ।

उत्पिञ्जोत्पादनासज्ये तस्मिन्भ्राता यदृच्छया ।
बन्धात्त्यक्तो नृतरणिस्तोरमाणोऽस्तमाययौ ।। १२२ ।।

१२२. वह जब विद्रोह हेतु तैयार हुआ । उसी समय स्वेच्छा से भाई (हिरण्य) ने मानव सूर्य (तोरमान) को बन्धन मुक्त कर दिया, जो अस्त हो (मर) गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११८ के 'स्तत्व' का पाठभेद 'स्तर्क' मिलता है ।

श्लोक संख्या ११९ में 'निश्श्वास' का पाठभेद 'निःश्वासात्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

११९ (१) निश्वास : कल्हण ने इसी प्रकार की उपमा राज० त० १:१५७ में दी है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १२२ में 'त्पादनासज्जे' का, 'त्पादनसज्जे' तथा 'वन्ध्यात्त्य' का पाठभेद 'बन्धान्मु' मिलता है ।

निवार्य मरणोद्योगं मातुर्निर्वेदखेदितः ।
ययौ प्रवरसेनोऽथ तीर्थौत्सुक्याद्दिगन्तरम् ॥ १२३ ॥

१२३. माता के मरणोद्योग[1] को रोक कर वेदना से खिन्न, प्रवरसेन तीर्थ करने की उत्सुकता से दिगन्तर गया।

रक्षित्वा दशमासोनाः क्ष्मामेकत्रिंशतिं समाः ।
तस्मिन्क्षणे हिरण्योऽपि शान्तिं निस्संततिर्ययौ ॥ १२४ ॥

१२४. उस समय सन्तान रहित हिरण्य भी दश मास कम इकतीस वर्ष पृथ्वी की रक्षा कर शान्ति (मृत्यु) प्राप्त किया।

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ १२५ ॥

१२५. उस समय उज्जैनी में एकछत्र चक्रवर्ती श्रीमान् विक्रमादित्य[1] हुआ जिसका अपर नाम हर्ष था।

पादटिप्पणियाँ :

१२३ (१) मरणोद्योग : तोरमाण के मरने पर रानी स्वयं सती होना चाहती थी। उसके इस प्रयास को प्रतीत होता है प्रवरसेन ने रोका और माता को सती होने से विरत किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२५ में 'हर्षापराभिध:' का पाठभेद 'हर्षाभिधा पुरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२५ (१) विक्रमादित्य : तरंग २७ में कल्हण ने हर्ष का उल्लेख किया है। श्लोक २:६ में कल्हण स्पष्ट कहता है कि वहाँ वर्णित हर्ष किंवा विक्रमादित्य शकारि विक्रमादित्य नही था। कल्हण के अनुसार शकारि विक्रमादित्य वही मालूम पड़ते है। शकों को पददलित करने के कारण शक सवत् ईसवी सन् ७८ में प्रचलित किया गया था। शक पराजय का उल्लेख कल्हण अगले १२८ वें श्लोक में पुनः करता है। उसने इस तरंग के श्लोक ३३० में पुन कहा है कि शीलादित्य प्रतापादित्य का पिता हर्ष विक्रमादित्य था। हुयेन साग ने शीलादित्य का उल्लेख अपने पर्यटन सस्मरण में किया है। (२'२६१) उसका शासन काल सन् ५८० ईसवी मालवा में था।

शक संवत् दक्षिण तथा कश्मीर में भी चलता है। गणतंत्र के पश्चात् भारत सरकार ने भी शक ही सवत् को स्वीकार कर मान्यता दी है। सरकारी कागजो में अब इसी का व्यवहार किया जाता है। इस समय विक्रम सवत् २०२५ शक सवत् १८९० तथा अंग्रेजी सन् १९६८ है।

मुसलिम इतिहासकारो ने विक्रमादित्य के सम्बन्ध में भ्रम पैदा कर दिया है। वे एक नाम विक्रमादित्य का ही दुहराते है। किसी भी विक्रमादित्य के सम्बन्ध में न कुछ आलोचना करते हैं और न उनका समय आदि देते हैं। उनसे इस सम्बन्ध में कुछ सहायता नही मिलती।

भूपमद्भुतसौभाग्यं श्रीर्व्द्वरभसाऽभजत् ।
विहाय हरिबाहूंश्च चतुरः सागरांश्च यम् ॥१२६॥

१२६. अद्भुत सौभाग्यशाली जिसके आश्रय में विष्णु के चारों बाहु और चारों समुद्र को छोड़कर, लक्ष्मी स्वतः सवेग आयी।

लक्ष्मीं कृत्वोपकरणं गुणे येन प्रवर्धिते ।
श्रीमत्सु गुणिनोऽद्यापि तिष्ठन्त्युद्धुरकंधराः ॥१२७॥

१२७. जिसने लक्ष्मी को उपकरण (बनाकर) गुण (ों) का वर्धन किया, जिसके कारण गुणी (जन) धनियों में उन्नत स्कन्ध बैठते हैं।

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः ।
शकान्विनाश्य येनाऽऽदौ कार्यभारो लघूकृतः ॥१२८॥

१२८. म्लेच्छों[1] के नाश हेतु पृथ्वी पर अवतरित होने वाले हरि के कार्य भार को आदि में ही जिसने शकों का विनाश कर लघु (हल्का) कर दिया।

नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् ।
तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत् ॥१२९॥

१२९. नाना दिगन्तरों से प्रख्यात एवं गुणवानों के लिये सुलभ, उस नृप के पास जो कि सार्वजनिक सभा भवन में स्थित था—कवि मातृगुप्त पहुँचा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२७ में 'गुणे' का 'गुणो', 'प्रवर्धिते' का 'प्रवर्धते' तथा 'न्त्युद्धुर' का पाठभेद 'न्त्युद्धत' मिलता है।

श्लोक सख्या १२८ मे 'लघू' का पाठभेद 'लघु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१२८ (१) म्लेच्छनाश : यहाँ पर कल्हण ने कल्कि अवतार की ओर संकेत किया है। भगवान् कल्कि अवतार लेकर म्लेच्छो का संहार करेंगे। गीत गोविन्द ने इसका उल्लेख किया है।

म्लेच्छनिविडनिधने करियसि करवालम्।
केशव धृतकल्किशरीर ॥

१२९ (१) मातृगुप्त : कुछ विद्वान् मातृगुप्त को कवि कालिदास मानते है। इन्ही विद्वानो ने यह भी माना है कि जिस विक्रमादित्य के सभा मे नव रत्नो का होना कहा जाता है वह छठी शताब्दी का विक्रमादित्य हर्ष था। डाक्टर भाउदा जी का तर्क है कि कालिदास और मातृगुप्त का शाब्दिक अर्थ एक ही है। काली का अर्थ माता होता है। दास का अर्थ गुप्त होता है। इस प्रकार कालिदास ही मातृगुप्त है।

कल्हण ने कालिदास का राजतरंगिणी में कही भी उल्लेख नही किया है। प्राकृत काव्य सेतु बन्ध जो प्रवरसेन के अनुरोध पर कालिदास ने लिखा था उसका भी उल्लेख नही मिलता। इसी प्रकार मिलाया गया है कि प्रवरसेन द्वितीय का उत्तराधिकारी मातृगुप्त दिखाया गया है।

क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में मातृगुप्त की कविताओं का उल्लेख किया है। श्री वल्लभदेव की सुभाषितावली में भी मातृगुप्त के पदो का उल्लेख

मिलता है। एक मातृगुप्त का उल्लेख अलकार एव नाट्य शास्त्र के प्रणेता के रूप मे मिलता है।

मातृगुप्त को कालिदास मानने में आधुनिक विद्वानो ने असहमति प्रकट की है। बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भाऊदा जी का मत है कि मातृगुप्त ही कालिदास हैं।

डाक्टर श्री हूयरन्ले का मत है कि पुरा कथा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कही जाती है वह राजा यशोवर्धन पर लगती है जो वास्तव में हूण विजेता था। प्रोफेसर पाठक भी इस मत का समर्थन करते हैं। कालिदास कृत रघुवश में रघु के विजय का वर्णन वस्तुत हूणो के सम्बन्ध मे है जो कश्मीर में रहते थे। क्यो कि कालिदास उसी सन्दर्भ में केसर का वर्णन करता है जो केवल भारत में कश्मीर में ही होता है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने मातृगुप्त का उल्लेख किया है।

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्।
कश्मीरराजोऽप्यभवत् सरस्वतीप्रसादत.॥

सम्राट् समुद्रगुप्त का निधन सन् ३६४ ई० में हुआ था। अतएव मातृगुप्त का उसके पूर्व होना निश्चित प्रतीत होता है।

आइने अकबरी के अनुसार मातृगुप्त एक कश्मीरी ब्राह्मण था। राजा विक्रमादित्य उसके गुणो तथा बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उसे कुछ द्रव्य देकर कश्मीर भेजा। उसने कश्मीर के मन्त्रियो तथा कुलीनो के नाम एक पत्र दिया। उसे आदेश दिया कि वह अकेला यात्रा करे। वह कश्मीर आया। आदेशानुसार पत्र दिया। पत्र में लिखा था—इसे कश्मीर का राज्य दे दिया जाय। कश्मीर के मन्त्रियो तथा कुलीनो ने पत्र पर विचार करने के लिये परिषद् बुलायी। अन्त में निश्चय किया गया कि राजा के आदेशो का पालन किया जाय।

हसन लिखता है—राजा हिरन बे औलाद था। इस लिये हकूमत का चिराग बे रौनक रहा। यह देखकर आराकीन सल्तनत महाराज विक्रमाजीत की खिदमत मे हाजिर हुए। जो हिन्दुस्तान का ताजदार था। उसने इल्तजा की कि वह सल्तनत कश्मीर अपने कब्जा अकदार में लाये। इसके पहले एक बहुत बडा इजाजत केश बरहमन मातृगुप्त जो कश्मीर का था महाराज मज़कूर को खिदमत में गया हुआ था। और बादशाह के खास लश्कर में इन्तहाई मुफलिसी की हालत में जिन्दगी औकात बसर कर रहा था।

एक दिन सरदियो के मौसम में राजा विक्रमाजीत नीद से जागा। शमा हवा के चलने से गुल हो गयी थी। दरबार के मुलाजिमो और चौकीदारो को आवाज दी। लेकिन वह गलबा नीद से होशियार न हो सके। मातृगुप्त महलखाना के बाहर बाग के सहन मे इन्तहाई परेशानी की हालत में बैठा हुआ था। इसने राजा की आवाज सुन ली और फौरन राजा की खिदमत में हाजिर हो गया। शमा जलाई और राजा के हजूर में कारयाबी पाली। राजा ने पूछा—'किस कदर रात बाकी है—?'

बरहमन ने कहा—'आध पहर।' राजा ने पूछा 'तुझे कैसे मालूम हुआ कि आध पहर रात बाक़ी है?' मातृगुप्त ने एक इन्तहाई फसीह व वलीग फिकरा नजम किया हुआ था। जो राजा के सामने पढ दिया।

"सरदी की शिद्दत से मेरा जिस्म सीझकर लोविया के दाना की तरह हो गया है। और मेरी आग इस तरस जईफ़ हो गयी हैं कि साँसो की कसरत से मेरे होट तडक गये हैं। और भूक की वजह से मेरा हलक और तालू खुश्क हो गया है। गम और रज के दरया में डूब गया हूँ। जिसके बाअस नीद मेरी आँखो से इस तरह जाती रही है जिस तरह कोई औरत को वेइज्जत करके निकाल दे। जिस तरह एक बडे आदमी को जागीर मे हो और वह जमीन उससे कम नही होती इस तरह यह स्याह रात मुझसे कम नही होती।"

स गम्भीरस्य भूभर्तुरनुभावं महाद्भुतम् ।
विविधास्थानसंवृद्धस्तस्याऽभ्यूह्य व्यचिन्तयत् ॥१३०॥

१३०. विविध राज्य सभाओं से सम्बन्धित, उस (कवि) ने उस गम्भीर भूपति के महाद्भुत प्रभाव की कल्पना कर सोचा—

सोऽयमासादितः पुण्यैः क्षोणिपालो गुणिप्रियः ।
परभागोपलम्भाय पूर्वेऽमुष्य महीभुजः ॥१३१॥

१३१. 'गुणी प्रिय इस भूपाल को (पूर्व) पुण्यों से प्राप्त किया है, उससे उत्कृष्ट नृप प्राप्ति हेतु पूर्व नृपों में देखना होगा ।

राजा फमीह व वलीग इश्लोक सुनकर बहुत महजूज हुआ और इस वरहमन की परीशान हालो पर सख्त हैरान हुआ इसके सलामें मुल्क कश्मीर उसे इनाम दिया । उसी वक्त उसने कश्मीर के लोगो के ख़त के जवाब मे मुन्दरजा जैल ख़त लिखा ।

'मातृगुप्त इस मुल्क की हकूमत पर मा वदौलत की तरफ़ से सरफ़राज किया गया है । उसकी अताअत और फरमाँ बरदारी अपने ऊपर वाजवी और लाजिम जाने ।'

दूसरे दिन वरहमन दरवार मे पहुँचा तो राजा ने उसके हाथ में लिफ फा देते हुए कहा कि फौरन कश्मीर जाओ और वहाँ के मतकदर लोग तुम्हे इस लिफाफा को देखकर शाहनशाह वना देंगे । वरहमन ने इन्तहाई मामूली की हालत मे राजा का रुक्का अपने हाथ में लिया और कश्मीर की तरफ रवाना हो गया । जिस वक्त हीरापुरा पहुँचा तो वहाँ के सरदारो के हाथ मे महाराजा विक्रमाजीत का फरमान दे दिया । खत पढते ही अमीरो में खुशी के शादयाने वजाये और मातृगुप्त को लिवास शाही पहना कर तख्त सल्तनत पर जलवा अफ़रोज किया ।

तनवीया—इस मुक़ाम पर महाराजा विक्रमाजीत के मुखतसर हालात तारीखी तफसील को मलहूज रखते हुए रदीया करिने किये जाते है ।

मातृगुप्त राजा विक्रमादित्य के हुक्म से संवत् १३० विक्रमी के हकूमत कश्मीर का तख्त सर पर रख कर सल्तनत के काम मे मशगूल हुआ । और हकूमत के सरकरद और अरकान को हस्व मदारज के शुमार सोना और जरकार खिलअते अता की । रिश्तादारो और मुतल्लकीन को वेइन्तहाई निआमत और मुनासिव और लायक दरजे वख्श कर सरबुलन्द किया । और कश्मीर की नफ़ीस चीजो में से वहुत से उमदः और लतीफ तुहफे मुहय्या करके राजा विक्रमाजीत की खिदमत मे भेजे । रिआया पर अदल व अहसान की तरफ़ मुतवजा होकर अपने मुल्क मे जानवरो का कतल वन्द कर दिया । मुल्क की आमदनी से जो कुछ दिन मे जमा होता था रात को फिकरा और मुसाकीन को बख्श कर खजाना खाली कर देता था । चार साल और नव माह की मुद्दत हकूमत का जाम पीकर राजा विक्रमाजीत के इन्तकाल की खवर सुनी । उसी वक्त सल्तनत तर्क करके इवादत कुबूलियत की । काशी के मुल्क को गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३० मे 'महा' का पाठभेद 'गुणा' मिलता है ।

श्लोक संख्या १३१ मे 'क्षोणि' का 'क्षीणि' तथा 'लम्भाय' का पाठभेद 'रंभाय' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१३१ (१) दूसरे पद का अर्थ वास्तव में यह प्रतीत होता है मातृगुप्त सोचता है—'अमुष्य पूर्व

यस्मिन्राजनि तत्त्वज्ञैः सूरिभिः सभृतश्रुतैः ।
नाञ्जलिर्दीयते जातु मानाय च गुणाय च ॥१३२॥

१३२. 'जिस राजा को तत्त्व वेत्ताओं, विद्वज्जनो एवं शास्त्राज्ञों को समादर तथा गुण हेतु कभी अञ्जलि नहीं देनी पड़ती ।

भङ्ग्याऽमुष्मिन्विदधती स्वाभिप्रायप्रकाशनम् ।
वैदग्ध्यवन्ध्यतां नैति बुद्धिः. कुलवधूरिव ॥१३३॥

१३३. 'इस राजा से भंगिमा विशेष द्वारा स्वाभिप्राय प्रकाशन में बुद्धि कुल वधू तुल्य वैदग्ध रहित नहीं होती ।

खिलीकृतखलालापे युक्तायुक्तविवेक्तरि ।
नायाति सेव्यमानेऽस्मिन्स्वगुणोऽनर्थकारिताम् ॥१३४॥

१३४. 'खलों के निस्सारता को जानने वाले युक्तायुक्त विवेकी, इस नृप की सेवा में स्वगुण अनर्थकारी नहीं होते ।

अनाप्नुवद्भिः सावद्यदुर्विद्यसमशीर्षिकाम् ।
जीवन्मरणमस्याग्रे गुणिभिर्नानुभूयते ॥१३५॥

१३५. 'इसके सम्मुख दुर्विद्य एवं निन्द्य मूर्ख जनों की तुल्य कोटि में विद्वान् नहीं आते थे । अतएव उन्हें जीवित मरण का अनुभव नहीं होता था ।

संभावनानुसारेण प्रवृत्तोऽस्माद्विवेकिनः ।
शोच्यते नाञ्चितोच्छ्वासं प्रीतिदायो महाशयैः ॥१३६॥

१३६. 'संभावना अनुसार प्रवृत्त प्रीतिदायी, उस विवेकी के कारण, महाशयों द्वारा उष्णोच्छ्वास पूर्वक शोचनीय नहीं होता था ।[1]

महीभुजा '—इसके पूर्व के नृप 'परभागोपलम्भाय' अर्थात् इस राजा की उत्कृष्टता सिद्धि हेतु हुए । मातृगुप्त प्रतीत होता है अनेक राजाओं के यहाँ गया था किन्तु उसे केवल विक्रमादित्य हर्ष ही उत्कृष्ट प्रतीत हुआ ।

पाठभेद .

श्लोकसख्या १३२ में 'यस्मिन्' का पाठभेद 'अस्मिन्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

१३६ (१) श्री रणजीत सीताराम पण्डित के अनुसार इस पद का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि विद्वान् निम्न गुणो के व्यक्तियो का आदर होते देखकर ईर्ष्या नही करते थे । इसका एक भावात्मक अर्थ हो सकता है—विवेकी भूपति योग्यता अनुसार परितोषिक प्रदान करना कह कर सदाशय जनगण के दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक शोक प्रकाश नही करने देता था ।

गृह्णन्यथागुणं स्वान्तमुचितप्रतिपत्तिभिः।
अन्तरज्ञः समस्तानामयमुत्साहवर्धनः ॥१३७॥

१३७. 'तारतम्यवेत्ता उत्साह वर्धक यह (नृप) उचित प्रमाण द्वारा गुणानुसार सबको अन्तःकरण में ग्रहण कर समादृत करता था।

सेवया दृष्टश्रष्टस्य दाक्षिण्योत्पादने श्रमः।
अस्य यो न स भृत्यानां हिमाद्रौ हिमविक्रयः ॥१३८॥

१३८. 'कष्ट विज्ञ इस राजा की सेवा हित, शिष्टाचार सम्पादन में हुआ, भृत्यों का श्रम, हिमाद्रि पर, हिम विक्रय[1] तुल्य व्यर्थ नहीं जाता था।

मिथ्याख्यातगुणो नाप्तो नामात्यः कलहप्रियः।
असत्यसंधः स्थेयो वा नास्थानेऽस्य महीपतेः ॥१३९॥

१३९. 'उस राजा की सभा में मिथ्या प्रशंसित आप्त पुरुष, कलह प्रिय अमात्य तथा असत्यसंध स्थेय नहीं थे।

अश्लीलालापिनोऽन्योन्यं नर्मोक्त्या मर्मभेदिनः।
अन्यप्रवेशासहनाः संहता[1] नास्य सेवकाः ॥१४०॥

१४०. 'अश्लील आलाप करने वाले, परस्पर नर्मोक्ति द्वारा मर्म भेदी अन्य का प्रवेश न सहने वाले, उसके सेवक नहीं थे।

छन्दानुवर्तिनामेष निजविज्ञानवन्दिनाम्।
सर्वज्ञंमन्यतान्धानां मुखप्रेक्षी न पार्थिवः ॥१४१॥

१४१. 'यह नृप छन्दानुवर्तियों, प्रशंसकों, एवं सर्वज्ञंमन्यता से अन्धों का मुख देखने वाला नहीं है।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या १३७ में 'स्वान्त' का 'शान्त' तथा 'स्वन्त' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१३८ (१) हिमाद्रि पर जहाँ चारो ओर हिमाच्छादित भूमि तथा शिखर हैं वहा हिम का विक्रय उसी प्रकार व्यर्थ होगा जैसा रानीगज तथा झरिया के कोयले की खानो मे कोयला का विक्रय हेतु ले जाना। वामन पुराण मे हिमाद्रि तथा हिमवत् शब्दो का प्रयोग हिमालय के लिये बहुत किया गया है। वामन ६:५५; २४:१०; २६ १५; २८.११; ३२:८५—८७, ३८:४९; ५०:१४, २५; तथा ५१:५७।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४० मे 'नर्मोक्त्या' का पाठभेद 'नर्मोक्ता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१४० (१) संहत : दलबन्दी अथवा परस्पर स्वार्थ हेतु टकराते हुए सेवको के अर्थ मे यह शब्द आया है।

अनेन सह सजातः संलापो विपुलोदयः ।
लभ्यते नान्तरा छेत्तुं दुर्जातैर्जातु दुर्जनैः ॥१४२॥

१४२ 'दुर्जात दुर्जनों के लिये दूसरे के साथ किये गये, विपुलोदय युक्त संलाप के बीच में काटने का अवसर नहीं है ।

सर्वदोषोज्झितं सेव्यं नृपमेवामिमं मम ।
समासादयतः पुण्यैरदूरे स्वार्थसिद्धयः ॥१४३॥

१४३ 'निर्दोष एवं सेव्य इस नृप को पुण्यों से प्राप्त करने वाले मेरी स्वार्थ-सिद्धियाँ निकट है ।

गम्भीरश्च गुणज्ञश्च स्थिरबुद्धिश्च पार्थिवः ।
एष क्लेशभयं त्यक्त्वा निषेव्यः प्रतिभाति मे ॥१४४॥

१४४. 'गम्भीर, गुणज्ञ, तथा स्थिर बुद्धि यह नृप क्लेश भय त्यागकर, मुझे सेवनीय प्रतीत होता है ।

न चास्माद्धनमादाय रञ्जितादन्यराजवत् ।
भ्राम्यतो भूतलेऽमुष्मिन्सेव्योऽन्यः प्रतिभाति मे ॥१४५॥

१४५. 'प्रसन्न इस नृप से अन्य राजाओं के समान धन लेकर, इस भूतल पर भ्रमण करते, मुझे अन्य (नृप) सेव्य प्रतीत नहीं होते ।'

इति संचिन्त्य सुदृढं स नवामिव तां सभाम् ।
नारञ्जयन्न चास्ते स्म गुणिगोष्ठीषु मध्यगः ॥१४६॥

१४६. इस प्रकार दृढता पूर्वक चिन्तन कर मध्यस्थित उसने उस सभा को नवीन तुल्य रंजित तथा गुणियों की गोष्ठी में हस्त क्षेप नहीं किया ।

मृदुपूर्वं गुणानेव दर्शयन्तं विशां पतिः ।
विशिष्टयोग्यताज्ञप्त्यै विवेदाराधनोन्मुखम् ॥१४७॥

१४७. विशांपति[1] ने विशिष्ट योग्यता ज्ञापन हेतु विनय पूर्वक गुणों को ही प्रदर्शित करते (उस मातृगुप्त को) आराधनोन्मुख जाना ।

पाठभेद

श्लोक सख्या १४४ में 'क्लेश' का पाठभेद श्लेष' मिलता है ।

श्लोक सख्या १४५ में 'न चास्मा' का 'न चास्य' 'न चास्म' तथा 'भ्राम्यतो' का पाठभेद 'भ्राम्यते' मिलता है ।

श्लोक सख्या १४६ में 'नारञ्जयन्न' का पाठ भेद 'नानुरञ्जन्न' तथा "नारञ्जन्न" मिलता है ।

श्लोक सख्या १४७ मे 'नेव' का 'नेवं' तथा 'पति' का पाठभेद 'पतिम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१४७ (१) विशांपति : यहाँ पर विशांपति शब्द राजा के अर्थ में कल्हण ने प्रयुक्त किया है ।

अचिन्तयच्च नाऽयं स्याद्गुणिमात्रं महाशयः।
उदात्तं सत्क्रियार्हत्वं वदत्यस्य गभीरता ॥१४८॥

१४८. महाशय (नृप) ने चिन्तन किया—'यह केवल गुणी ही नही है, क्योंकि इसकी गम्भीरता उदात्त सत्कार योग्यता को सूचित करती है।'

इति संचिन्त्य राज्ञाऽपि ज्ञातुं तस्यान्तरं मतेः।
नाक्रियन्त परीक्षार्थं यथावल्लाभसत्क्रियाः ॥१४९॥

१४९. ऐसा चिन्तनकर, राजा ने उसकी आन्तरिक मति जानने की इच्छा से, परीक्षा हेतु उसका यथावत् उचित लाभ सत्कार नहीं किया।

स तेनानुपचारेण तमुदात्ताशयं नृपम्।
स्वीकर्तारं विदन्धीमान्सिषेवे प्रीतिमाश्रितः ॥१५०॥

१५०. उस बुद्धिमान् ने उदात्ताशय नृप के उस अनौपचारिक व्यवहार से अपने को स्वीकृत समझ, प्रसन्न होकर, सेवा करने लगा।

क्रमोपचीयमानेन[१] सेवाभ्यासेन धीमतः।
तस्य नोद्वेगमगमत्स्वकाय इव पार्थिवः ॥ १५१ ॥

१५१. उस बुद्धिमान् के क्रम प्रवृद्ध सेवाभ्यास के कारण राजा को अपने शरीर के समान उद्वेग नहीं हुआ।

नातीव स्वल्पया स्थित्या नातीवाऽप्यथ दीर्घया।
शरन्निशाक्षणेनेव राजा निन्ये प्रसन्नताम् ॥ १५२ ॥

१५२. उसने राजा को अपनी नात्यन्त स्वल्प एवं नात्यन्त दीर्घ स्थिति से शारदीय निशा काल सदृश प्रसन्न किया।[१]

नर्मभिगर्भचेटानां द्वाःस्थानां विक्रियाक्रमैः।
मिथ्यास्तवैर्विटानां च न स क्षोभमनीयत ॥ १५३ ॥

१५३. अन्तः पुरस्थ भृत्यों की नर्मोक्तियों, द्वारपालों के विक्रिया क्रमों (कुत्सित व्यवहारों) एवं विटों की मिथ्या स्तुतियों द्वारा वह क्षुब्ध नहीं हुआ।

विशा शब्द एतरेय ब्राह्मण (८:२६) में—'राष्ट्राणि वै विश.' यजुर्वेद (२०:९) में—'विशि राजप्रतिष्ठित' अथर्ववेद (३·४.२) में 'त्वा विशो वृणता राज्याय' (४.८.४ मे) 'विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु' लोक, जनता किंवा प्रजा के लिये आया है विश का पति राजतन्त्र मे राजा होता और गणतन्त्र में राष्ट्रपति होता है।

१५१ (१) बाण ने हर्षचरित मे इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है–'क्रमोपचीयमान।

१५२ (१) इस पद का भावात्मक अर्थ यह भी प्रतीत होता है—'उसने अपनी सम स्थिति से नृप को वैसे ही प्रसन्न किया जिस प्रकार शरद् काल करता है।'

प्रसन्नालापसंप्राप्तौ छायाग्रह इवाचलः ।
प्रतिस्पर्धीव च क्रुध्यन्नावज्ञायामभूत्प्रभोः ॥ १५४ ॥

१५४. प्रभु के प्रसन्नता पूर्ण आलाप की संप्राप्ति में छाया ग्रह तुल्य अचल रहता और उनकी अवज्ञा से प्रतिस्पर्धी की तरह क्रुद्ध नहीं होता था।

वीक्षणं राजदासीनां राजद्विष्टैः सहासनम् ।
राजाऽग्रे च कथां नीचैः कालविन्नाचचार सः ॥ १५५ ॥

१५५. काल विज्ञ वह राजदासियों का अवलोकन, राजद्रोहियों के साथ आसन, एवं राजा के सम्मुख निम्नस्तरीय जनों से वार्तालाप नहीं करता था।

स्वभावाद्राजपुरुषैः सजनै राजनिन्दकैः ।
नास्मात्प्रभोरुपालम्भो लेभे पैशुन्यजीविभिः ॥ १५६ ॥

१५६. स्वभाव से नृप के विश्वस्त राजनिन्दक गुप्तचरों ने इसके द्वारा प्रभु का उपलम्भ (निन्दा) नहीं प्राप्त की (सुनी)।

वदद्भिरादरात्स्थैर्ये वैफल्याद्यन्वहं प्रभोः ।
निन्ये नोत्साहशैथिल्यं सेवोत्साहासहिष्णुभिः ॥ १५७ ॥

१५७. उसके सेवा उत्साह को न सहने वाले सेवको प्रति दिन आदर पूर्वक "प्रभु की सेवा विफल है" आदि कहकर भी (उसके) सेवा उत्साह को शिथिल नहीं कर सके।

अन्योत्कर्षानपि वदन्प्रसङ्गेन निराग्रहः ।
स्वविद्याद्योतकः सोऽभूत्सभ्यानां हृदयंगमः ॥ १५८ ॥

१५८. कथा प्रसंग में अन्योत्कर्ष को कहते हुए भी, आग्रह रहित एवं विद्या प्रकाशक उसे सभ्य[1] जनों ने हृदयंगम किया।

दूसरा भावार्थ यह भी हो सकता है—'शारदीय निशा तुल्य वह भूपति के समीप अत्यल्पकाल अथवा सुदीर्घ समय अवस्थान न कर राजा को प्रसन्न किया।

पाठभेद

श्लोक संख्या १५७ में 'नोत्साह' का पाठभेद 'सोत्साह' मिलता है।

श्लोक संख्या १५८ में 'सभ्यानां' का पाठभेद 'सत्यानां' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१५८ (१) सभ्य : सभा के सदस्य को सभ्य कहते थे। विक्रमादित्य की सभा में नवरत्नों का होना कहा जाता है। उनमें महाकवि कालिदास एक थे। कालान्तर में सभा शब्द का प्रयोग खुली सार्वजनिक सभा के लिये होने लगा। भिक्षाचर ने (त० ८९१२) श्रीनगर के नागरिकों की सभा बुलायी थी।

एवं स सेवमानस्तमुद्योगेन बलीयसा ।
अनिर्विण्णो मातृगुप्तः षड्ऋतूनत्यवाहयत् ॥ १५९ ॥

१५९. तत्परता पूर्वक अत्यधिक उसकी सेवा करने और विना खिन्न हुए, मातृगुप्त ने छः ऋतुओं को व्यतीत किया ।

अथ तं कृशसर्वाङ्गं धूसरं जीर्णवाससम् ।
बहिर्जातु विनिर्यातो राजा वीक्ष्य व्यचिन्तयत् ॥ १६० ॥

१६०. बाहर जाते हुए राजा ने कदाचित् सर्वांग कृश, धूलि धूसर, जीर्ण वस्त्र युक्त उसे देखकर, चिन्तन किया—

वैदेशिको निश्शरणो गुणवान्बान्धवोज्झितः ।
दार्ढ्यं जिज्ञासुना कष्टं सोऽयमायासितो मया ॥ १६१ ॥

१६१. 'इसकी दृढ़ता की जिज्ञासा में विदेशी निःशरण गुणवान बान्धव हीन इसे कष्ट पहुँचाया ।

कोऽस्याश्रयः किमशनं कानि प्रावरणानि वा ।
इत्यैश्वर्यविमूढेन मया हन्त न चिन्तितम् ॥ १६२ ॥

१६२. खेद है कि, (हन्त) ऐश्वर्य मूढ मैंने यह भी नहीं चिन्तन किया कि इसका कौन आश्रय है, क्या भोजन है और क्या वसन है ।

वसन्तेनेव न मया शोभयाऽद्यापि योजितः ।
शीतवातातपैः शुष्यन्सोऽयं पुरुषपादपः ॥ १६३ ॥

१६३. मैंने वसन्त के समान शीत, वात, एवं आतप से शुष्क कर इस पुरुष पादप को आज भी शोभा से युक्त नहीं किया ।

अस्य ग्लानस्य भैषज्यं निर्विण्णस्य विनोदनम् ।
श्रान्तस्य वा क्लमच्छेदं को विदध्यादसंपदः ॥ १६४ ॥

१६४. 'इस निर्धन ग्लान का भैषज्य, खिन्न का विनोदन एवं श्रान्त का क्लमच्छेद कौन करे ?

नास्मै चिन्तामणिं दद्यां नामृतं वा निषेवितः ।
मया यदयमेतावद्व्यामूढेन परीक्ष्यते ॥ १६५ ॥

१६५. सेवित होकर इसे चिन्तामणि अथवा अमृत तो नहीं दे दूँगा, जो कि मूढ मैं इसकी इतनी परीक्षा लेता हूँ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५९ मे 'अनिर्विणगो' का पाठभेद 'अनिर्विन्नो' मिलता है ।

श्लोक संख्या १६१ में 'यासितो' का पाठभेद 'वासितो' मिलता है ।

श्लोक संख्या १६५ मे का 'दद्या' पाठभेद 'दध्यां' मिलता है ।

तदमुष्य गुणित्वस्य तीव्रसेवाश्रमस्य च ।
प्रतिपत्त्या कतमया तावदानृण्यमाप्नुयाम् ॥ १६६ ॥

१६६ 'तीव्र सेवाश्रमी एवं गुणी इससे मैं किस समादर द्वारा उऋणता प्राप्त कर सकता हूँ ?''

इति चिन्तयस्तस्य राज्ञस्तं सेवकं प्रति ।
स्वप्रसादोचिता काचित्प्रत्यभान्नैव सत्क्रिया ॥ १६७ ॥

१६७. इस प्रकार चिन्ता करते उस नृपति को उस सेवक के प्रति स्वप्रसादोचित कोई सत्कार नहीं प्रतीत हुआ ।

ततः प्रावर्तत स्फारनीहारलववाहिभिः ।
दहन्निवाङ्गं प्रालेयपवमानैर्हिमागमः ॥ १६८ ॥

१६८. तदनन्तर प्रचुर नीहारकणवाही हिम वायु से युक्त हिमागम (शिशिर) अंग को दग्ध सा करता (हुआ) आया ।

संततध्वान्तमिषतस्तीव्रशीतवशीकृताः ।
आशाश्चकाशिरे नीलनिचोलाच्छादिता इव ॥ १६९ ॥

१६९. तीव्र शीत से विवश दिशायें निरन्तर (घने) अन्धकार के व्याज से नील निचोल से आच्छादित तुल्य शोभित हुई ।

शीतार्त्या द्युमणावौर्वदहनोष्माभिलाषतः ।
द्रुतं यातीव जलधिं दिनानि लघुतां ययुः ॥ १७० ॥

१७०. शीत त्रास के कारण मानो बड़वाग्नि ऊष्मा की अभिलाषा से, सूर्य के शीघ्र जलनिधि गमन करने पर, दिन छोटे होने लगे ।

अथ दीपोज्ज्वले धाम्नि लसद्दीप्तहसन्तिके ।
कदाचिन्नृपतिर्दैवादर्धरात्रे व्यबुध्यत ॥ १७१ ॥

१७१. किसी समय जब दीप से प्रकाशित गृह में प्रज्वलित अंगारधानी (हसन्ती) शोभित हो रही थी—राजा अकस्मात् (दैवात्) अर्धरात्रि में प्रबुद्ध हुआ ।

स हेमन्तानिलैर्भूरिझांकारपरुषैः पुरः ।
दीपान्प्रकम्पितानीषत्प्रविष्टैर्धाम्नि दृष्टवान् ॥ १७२ ॥

१७२. उसने गृह में प्रविष्ट प्रभूत झांकार[1] ध्वनि से परुष, हेमन्त कालीन वायु से प्रकम्पित दीप सामने देखा ।

पादटिप्पणियाँ :

श्लोक संख्या १६६ में 'प्नुयाम्' का पाठभेद 'प्नुयात्' मिलता है ।

श्लोक संख्या १७१ में हसन्तिका' का पाठभेद 'मग्नाग्निका' मिलता है ।

१७२ (१) झांकार : इस शब्द का उल्लेख कल्हण ने पुनः तरंग ८ ९५३ में किया है ।

तानुज्ज्वलयितु भृत्यानन्विष्यन्नभ्यधात्ततः ।
यामिकेषु बहिः सज्ञः को वर्तत इति स्फुटम् ॥ १७३ ॥

१७३. तदनन्तर उन्हें प्रज्वलित करने के लिये भृत्यों को खोजते हुए सुस्पष्ट कहा—"बाहर यामिक[1] में कौन उपस्थित है ?"

सुखसुप्तेषु सर्वेषु बाह्यकक्ष्यान्तरात्ततः ।
राजन्नयमहं मातृगुप्त इत्यशृणोद्वचः ॥ १७४ ॥

१७४. उस समय सभी लोग सुख पूर्वक सुप्त थे। बाह्य कक्ष में से—"राजन् ! मै मातृगुप्त हूँ" यह वाणी (राजा ने) सुनी।

प्रविशेति स्वयं राज्ञा दत्तानुज्ञस्ततो गृहम् ।
लक्ष्मीसांनिध्यरम्यं तददृष्टोऽन्यैर्विवेश सः ॥ १७५ ॥

१७५. राजा के स्वयं यह आज्ञा देने पर 'प्रवेश करो'—विना दूसरे के ज्ञात हुये, गृह में प्रवेश किया।

दीपानुज्ज्वलयेत्युक्तो निष्पाद्य चतुरैः पदैः ।
बहिर्यियासुरूचेऽथ क्षणं तिष्ठेति भूभुजा ॥ १७६ ॥

१७६. 'दीपों को जलाओं'—कहे जाने पर, निष्पादित करके (दीप जलाकर) चार पद बाहर जाने पर राजा ने उससे कहा,—'क्षण भर रुको'।

स भयद्विगुणीभूतशीतकम्पः प्रभोः पुरः ।
किंस्विद्वक्तीति विमृशन्नातिदूरेऽभ्युपाविशत् ॥ १७७ ॥

१७७. भय से उस (मातृगुप्त) का शीत कम्पन द्विगुणित हो गया। 'वह क्या कहेंगे।' विचार करते प्रभु के सम्मुख न अति दूर बैठ गया[1]।

अथ पप्रच्छ भूपालः कियत्यस्ति निशेति तम् ।
सोऽभ्यधादेव यामिन्या यामः मार्धोऽवशिष्यते ॥ १७८ ॥

१७८. राजा ने उससे पूछा—'कितनी रात्रि शेष है ?' उसने कहा—'यामिनी का डेढ याम (डेढ प्रहर) अवशिष्ट है।'

---

१७३ (१) **यामिक :** याम का अर्थ रात्रि तथा प्रहर दोनो होता है। रात्रि में पहरा देने वालो को यामिक कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७५ में 'दृष्टो' का पाठभेद 'पृष्टो' मिलता है।

श्लोकसख्या १७६ मे 'यियासुरूचेऽथ' का पाठभेद 'ययौ स ऊचेथ', तथा 'यियासुरूचे च' मिलता है।

श्लोक संख्या १७७ मे 'भय' का पाठभेद 'मय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७७ (१) **बैठ गया :** यहाँ पर कल्हण ने 'उपाविशत्' शब्द का प्रयोग किया है। इसका अर्थ बैठना होता है। अन्य अनुवादकर्ताओ ने 'वह खडा हो गया' अर्थ किया है।

ततो भूभृदुवाचैनं कथं सम्यङ्निशाक्षणः ।
त्वयाऽवधारितो निद्रा कथं नाभूच्च ते निशि ॥ १७९ ॥

१७९. तदुपरान्त राजा उससे बोले—'तुमने सम्यक् निशा क्षण कैसे जाना ? तुम्हें रात्रिमें निद्रा क्यों नहीं आयी ?

अथ कृत्वा क्षणाच्छ्लोकमेतं तं स व्यजिज्ञपत् ।
अवस्थावेदनादाशां दैन्यं वा त्यक्तुमुद्यतः ॥ १८० ॥

१८०. अवस्था प्रतिवेदन से आशा एवं दैन्य को त्यागने के लिये उद्यत उस (मातृगुप्त) ने क्षण में यह श्लोक बनाकर उस (नृप) को ज्ञात कराया—

शीतेनोद्धूषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे ।
निद्रा क्वाऽप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी[1] ॥ १८१ ॥

१८१. "माष फली तुल्य शीत से रोमांचित एवं चिन्ता सागर में निमज्जित, मेरी जिसके अग्नि को धौंकने से अधर फट गये हैं, क्षुधा से कण्ठ क्षीण हो गया है, निद्रा अपमानिता स्त्री तुल्य त्यागकर कहीं दूर चली गयी है, और रात्रि सत्पात्र मे दी गयी पृथ्वी के समान समाप्त नहीं होती है ।"

तदाकर्ण्य महीपालः साधुवादैः परिश्रमम् ।
अभिनन्द्य कवीन्द्रं तं पूर्वस्थानं व्यसर्जयत् ॥ १८२ ॥

१८२. महीपाल इसे सुनकर, साधुवादों द्वारा परिश्रमी उस कवीन्द्र को अभिनन्दित कर पूर्व स्थान पर विसर्जित कर दिया ।

अचिन्तयच्च धिङ्मां यः सगुणात्खिन्नचेतसः ।
दुःखोत्तप्तं वचः शृण्वन्नेवमेवाधुना स्थितः ॥ १८३ ॥

१८३. उस (राजा) ने चिन्तन किया—"मुझे धिक्कार है, जो कि गुण युक्त एवं खिन्नचेतस की दुःख उतप्त वाणी सुनते हुये, इस प्रकार अभी स्थित है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १८१ में 'माषशिमिव' का पाठ भेद 'मासमशिव' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१८१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६०वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या १८२ में 'पूर्वस्थान' का पाठभेद 'पूर्वस्थाने' मिलता है ।

निरर्थकान्साधुवादानन्यस्येव विदन्मम ।
अयमज्ञातहृदयो दुःखमास्ते ध्रुवं बहिः ॥ १८४ ॥

१८४. 'सामान्य लोगों के समान मेरे निरर्थक धन्यवादों को जानते हुये, अज्ञान हृदय यह निश्चय ही बाहर दुःखी होगा ।

चिरं चिन्तयतो यत्नात्सदृशीमस्य सत्क्रियाम् ।
देयं महार्हमद्यापि न किंचित्प्रतिभाति मे ॥ १८५ ॥

१८५. "इसके योग्य सत्कार चिर काल तक यत्न पूर्वक चिन्तन पर भी, मुझे बहुमूल्य कोई वस्तु आज भी इसे देय नहीं प्रतीत होती ।

अथवाऽस्यैव सूक्तेन स्मारितोऽस्म्यधुना यथा ।
वर्तते राजरहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम् ॥ १८६ ॥

१८६. अभी इसकी सूक्ति ने मुझे स्मरण कराया है कि, काम्य कश्मीर मण्डल, जैसे राजरहित है ।

पात्रायास्मै मही तस्मात्सा मया प्रतिपाद्यते ।
अवधीर्य महीपालान्महतोऽप्यर्थनापरान् ॥ १८७ ॥

१८७. अतएव इसे (कश्मीर) चाहने वाले बड़े महीपालों को तिरस्कृत करके भी वह भूमि, इस पात्र को दे रहा हूँ ।"

इति निश्चित्य चतुरं क्षपायामेव पार्थिवः ।
गूढं व्यसर्जयद्दूतान्काश्मीरीः प्रकृतीः प्रति ॥ १८८ ॥

१८८. ऐसा निश्चय कर राजा ने रात्रि में शीघ्र ही कश्मीरी जनों (प्रकृति) के पास गुप्तरूप से दूतों को भेजा ।

आदिदेश च तान्यो वो दर्शयेच्छासनं मम ।
मातृगुप्ताभिधो राज्ये निश्शङ्कं सोऽभिषिच्यताम् ॥ १८९ ॥

१८९. और उन्हें आदेश दिया कि "तुम्हें जो मेरा शासन (आज्ञा पत्र) दिखाये, उस मातृगुप्त को (वहां) निःशंक होकर, अभिषिक्त करो ।"

अथ दूतेषु यातेषु लेखयित्वा स्वशासनम् ।
क्ष्मापतिस्तं क्षपाशेषं कृतकृत्योऽत्यवाहयत् ॥ १९० ॥

१९०. दूतों के चले जाने पर, स्वशासन को लिखकर, कृतकृत्य क्ष्मापति ने शेष रात्रि व्यतीत किया ।

श्लोक संख्या १८६ में 'कश्मी' का पाठभेद 'काश्मी' मिलता है ।

श्लोक संख्या १८९ में 'वो' का पाठभेद 'वा' मिलता है ।

मातृगुप्तस्तु नृपतेः संलापमपि निष्फलम् ।
ध्यायन्गृहीतनैराश्यस्त्यक्तभार इवाभवत् ॥ १९१ ॥

१९१. मातृगुप्त नृपति के संलाप को भी निष्फल मानता हुआ, निराश होकर, भार रहित तुल्य हो गया।

अन्तर्दध्यौ च कर्तव्यं कृतं शान्तोऽद्य संशयः ।
आशापिशाचिकात्यक्तश्चरिष्याम्यधुना सुखम् ॥ १९२ ॥

१९२. अन्तःकरण मे (यह) धारण कर लिया—'कर्तव्य किया। आज संशय शान्त हो गया। अब आशा स्वरूप पिशाची से मुक्त हुआ, सुख पूर्वक विचरण करूँगा।

गतानुगतिकत्वेन कोऽयमासीन्मम भ्रमः ।
जनप्रवादात्सेव्यत्वं येनास्य ज्ञातवानहम् ॥ १९३ ॥

१९३. "गतानुगतिका के कारण मुझे यह कौन भ्रम हा गया था, जिसे जनप्रवाद बस इसे सेव्य मान लिया।

भुञ्जानाः पवनं सरीसृपगणाः प्रख्यापिता भोगिनो
गायद्भृङ्गनिवारका निगदिता विस्तीर्णकर्णा गजाः ।
यश्चाभ्यन्तरसंभृतोष्मविकृतिः प्रोक्तः शमी स द्रुमो
लोकेनेति निरर्गलं प्रलपता सर्वं विपर्यासितम्[1] ॥ १९४ ॥

१९४. "पवन के अशन करने वाले सर्पो को 'भोगी'[1] प्रख्यात किया, गान करते भृंगों के निवारक गजों को 'विस्तीर्णकर्ण' कहा, जो अभ्यन्तर मे अग्नि विकार धारण करता है, उस द्रुम को शमी कहा—इस प्रकार संसार ने सबको विपरीत कर दिया है

अथवा विद्यतेऽमुष्य न काऽप्यनभिगम्यता ।
लक्ष्मीप्रणयिनो येन कृताः प्रणयिनां गृहाः ॥ १९५ ॥

१९५. "इसके पास जाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जिसने अपने प्रणयी जनों को गृह लक्ष्मी सम्पन्न कर दिया है—

श्लोक सख्या १९४ में 'प्रख्यापिता' का पाठभेद 'प्रख्यायिता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

१९४ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का ६१वा श्लोक है।

(२) भोगी आदि कल्हण ने यहाँ भोगी शब्द की उपमा दो है। भोगी शब्द भुज अर्थात् भोगने से बना है। गज शब्द गै अर्थात् गाने से बना है। शमी शब्द शम अर्थात् आन्तरिक शान्त होना है। शमी वृक्ष से अग्नि तैय्यार की जाती है। उससे रगड कर अग्नि उत्पन्न की जाती है। प्राचीन गाथा है। शमी को शाखा में अग्नि छिपी रहती है। आकाशचारी सर्प भी होते हैं। वे उडते हैं। मैंने पेडो पर अत्यन्त पतला लम्बा साँप देखा है जो एक शाखा से दूसरी शाखा पर इस प्रकार जाता है कि उडता मालूम पडता है। पुरानी गाथा है कि नाग किंवा सर्प भी उडते हैं। मैंने अभी तक इस प्रकार का सर्प अपनी आँखो नही देखा है। सर्प, गज तथा शमी यहाँ श्लेष है।

त्यागिनो निष्कलङ्कस्य को दोषोऽस्य महीपतेः ।
ममापुण्यं तु तन्निन्द्यं यच्छ्रेयःप्रतिबन्धकम् ॥ १९६ ॥

१९६. "त्यागी एवं निष्कलङ्क इस नृपति का क्या दोष है ? मेरा अपुण्य ही निन्द्य है, जो कि श्रेय का प्रतिबन्धक है

रत्नोज्ज्वलाः प्रविकिरंल्लहरीः समीरै-
रब्धिः क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुख्यः ।
दोषोऽर्थिनः स खलु भाग्यविपर्ययाणां
दातुर्मनागपि न तस्य तु दातृतायाः[1] ॥ १९७ ॥

१९७. "रत्नों[2] के समुज्ज्वल लहरियों का विकिरण (प्रसार) करते हुए, समुद्र को यदि वायु तट से दूर कर दे—तो वह प्रार्थी के भाग्य विपर्यय का ही दोष है न कि उस दाता की दानशीलता का

उत्तानफललुब्धानां वरं राजोपजीविनः ।
न तु तत्स्वामिनस्तीव्रपरिक्लेशैः फलन्ति ये ॥ १९८ ॥

१९८. "उदात्त फलाभिलाषियों में नृपोपजीवी श्रेष्ठ होते हैं, न कि वे स्वामी जो कि तीव्र परिश्रम पर फल प्रदान करते हैं ।

तिष्ठन्ति ये पशुपतेः किल पादमूले
संप्राप्यते झटिति तैर्नहि भस्मनोऽन्यत् ।
ये तद्वृषस्य तु समुज्ज्वलजातरूप-
प्राप्त्या न कानि सुदिनानि सदैव तेषाम्[1] ॥ १९९ ॥

१९९. "जो पशुपति के पादमूल में बैठते है, वे तत्काल भस्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त करते, जो लोग उनके वृष का आश्रय लेते हैं, उनके लिये सदैव समुज्ज्वल स्वर्ण प्राप्ति के अतिरिक्त और कौन सुदिन हो सकता है ?

पाठभेद

श्लोक सख्या १९७ में 'प्रविकिरंल्ल' का 'प्रविकिरेल्ल', 'प्रविकरल्ल' तथा 'पर्ययाणा' का पाठभेद 'पर्ययेण' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

१९७ (१) राजतरगिणी सक्ति संग्रहका ६२वां श्लोक है ।

(२) रत्न : श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने इसका भावार्थ टिप्पणी में किया है कि रत्नो की खान समुद्र रत्नाकर है । वह दाता है । वह अपनी लहरो से रत्न-सहित तट की ओर याचक किंवा अभ्यर्थी को रत्न देने बढता है । किन्तु वायु उसको इस कार्य से विरत कर देती है ।

१९९ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६३ वा श्लोक है ।

श्री सीताराम पण्डित इस श्लोक के अनुवाद की टिप्पणी में लिखते है—'इस श्लोक से यह प्रतीत होता है कि कल्हण के समय में नन्दी के उपासको की कमी नही थी । जिन्हे वह शिव की अपेक्षा सरलता से मिल जाता था । नन्दी सुर एवं असुर के समुद्र मन्थन से रत्न रूप प्राप्त हुआ था ।

चिन्तयन्नपि पश्यामि न कंचिद्दोषमात्मनः ।
यातो विरक्तिं य ज्ञात्वा सेव्यमानोऽप्ययं नृपः ॥ २०० ॥

२००. "विचार करने पर भी अपना कोई दोष नहीं देखता हूँ जिसे जानकर सेव्यमान यह नृप विरक्त हो गया है ।

अथवाऽनादृतोऽन्येन संप्राप्तोऽन्तकमाप्नुयात् ।
कः फलेनाभिसंबन्धं गतानुगतिकात्प्रभोः ॥ २०१ ॥

२०१ अथवा—अन्य से अनादृत, किसने निकट जाकर, गतानुगतिक प्रभु द्वारा फल प्राप्त किया है ?

अन्तर्ये सतत लुठन्त्यगणितास्तानेव पाथोधरै-
रात्तानापततस्तरङ्गवलयैरालिङ्गय गृह्णन्नसौ ।
व्यक्तं मौक्तिकरत्नतां जलकणान्सप्रापयत्यम्बुधिः
प्रायोऽन्येन कृतादरो लघुरपि प्राप्तोऽर्च्यते स्वामिभिः[1] ॥ २०२ ॥

२०२ जो अभ्यन्तर में निरन्तर असंख्य जल कण उपेक्षित रहते लौटते हैं, उन्हें ही जलद, जब ग्रहण कर गिराता है, तब तरंग वलयों से आलिंगन कर, ग्रहण करते हुए, यह समुद्र सुस्पष्ट रूप से मौक्तिक[2] रत्न बना देता है । प्राय अन्य से समादृत लघु भी समीप पहुँचकर, स्वामियों से समादृत होता है ।

नन्दी की उपासना निस्सन्देह सबसे सरल है । नन्दी शिवाला के गर्भ गृह के बाहर बना रहता है । उसका मुख द्वार के बाहर शिव की ओर रहता है । मन्दिर का द्वार किंवा गर्भ गृह का द्वार बन्द करने पर शिव का दर्शन नहीं मिलता किन्तु नन्दी का किसी समय भी मिल जाता है । वह खुले में रहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २०० में 'क' का पाठभेद 'किं' मिलता है ।

श्लोक संख्या २०२ में 'रात्ता' का 'रार्ता', 'पतत' का 'पतिता' तथा 'चर्यते' की पाठभेद 'र्च्यते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२०२ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसग्रह का ६४वा श्लोक है । इस पद-का एक अर्थ यह भी हो सकता है . सागर मध्यस्थित जलकण समूह अनादृत होकर रहता है । किन्तु मेघमाला द्वारा गृहीत होकर पुनर्वार पतित होने पर समुद्र अपने तरग को विस्तार कर उन्हें ग्रहण करता है और मुक्ता में परिणत होता है । लघुव्यक्ति भी प्रथमत दूसरो द्वारा समादर पाने के पश्चात् राजा का सम्मान लाभ करते हैं ।

(२) मौक्तिक : यह सुन्दर पद है । राजाओ की प्रकृति का यह चित्रण करता है । राजा उनका आदर करते है जो किसी दूसरे राजा द्वारा समादृत हो चुके रहते हैं ।

मुक्ता के विषय में गाथा प्रचलित है कि स्वाती का वर्षा जल गिरता है । समुद्र में सीप उन जलो को ग्रहण करते हैं । वह जलबिन्दु सीप मे मुक्ता हो जाता है । भर्तृहरि ने कहा है :

'स्वात्यां सागरसूक्तिमध्यपतितम्
स. मुक्तिका जायते ।'

इदं संचिन्तयन्सोऽभूत्सेव्ये तस्मिन्निरादरः ।
खिन्नस्य हि विपर्येति तत्त्वज्ञस्यापि शेमुषी ॥ २०३ ॥

२०३. यह सोचते हुए, वह सेव्य इस (नृप) के प्रति आदर रहित हो गया। तत्त्वज्ञ खिन्न की बुद्धि निश्चय ही विपरीत हो जाती है।

प्रभातायां विभावर्यामथाऽऽस्थानस्थितो नृपः ।
आकार्यतां मातृगुप्त इति क्षत्तारमादिशत् ॥ २०४ ॥

२०४. जब विभावरी के प्रभात होने पर, सभास्थान पर पहुँचकर, राजा ने क्षत्ता को यह आदेश दिया,—'मातगुप्त को बुलाओ –

ततः प्रधावितानेकप्रतीहारप्रवेशितः ।
प्रविवेश महीभर्तुस्त्यक्ताश इव सोऽन्तिकम् ॥ २०५ ॥

२०५. तब अनेक प्रतिहारी दौड़कर, उसे ले आये और निराश सदृश वह, नृपति के समीप (सभाभवन में) प्रवेश किया।

तस्मै कृतप्रणामाय मुहूर्तादेव पार्थिवः ।
भ्रूसंज्ञितेन व्यतरल्लेखं लेखाधिकारिणा ॥ २०६ ॥

२०६. प्रणाम करने वाले, उसे तत्क्षण पार्थिव ने भ्रूसंकेतित[1] लेखाधिकारी द्वारा लख प्रदान किया।

स्वयं च तमुवाचाङ्ग कश्मीरान्वेत्ति किं भवान् ।
गत्वा तत्राधिकारिभ्य एतच्छासनमर्प्यताम् ॥ २०७ ॥

२०७. 'अंग[1]! क्या आप कश्मीर का जानते है? वहां जाकर, यह शासन[2] पत्र अधिकारियों को अर्पण कीजिए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०४ मे 'क्षत्तारं' का पाठभेद 'द्वारस्थ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२०६ (१) भ्रूसंकेतित : प्राचीन काल में पुराने विचार के राजा लोग स्वयं मुख से आज्ञा नही देते थे। केवल उनके संकेत से मन्त्री तथा सचिव आदेश का कार्य जान जाते थे। और राजाज्ञा प्रसारित करते थे।

मैंने काशिराज को इस प्रकार का सकेत तथा व्यवहार करते देखा है। अब भारत मे सभी देशी राज्यो का विलय हो गया है। वह अत्यन्त प्राचीन प्रथा केवल इतिहास एवं साहित्य की सामग्री रह गयी है।

२०७ (१) अंग : यह सम्बोधनवाचक अव्यय शब्द है। इसका अर्थ बहुत अच्छा होता है। श्रीमान् बहुत ठीक, 'अवश्य' 'सत्य है' 'अंगीकार है' होता है।

(२) शासन : शासन काअर्थ यहां आज्ञापत्र किवा फारसी का प्रचलित शब्द फरमान है। पाद-टिप्पणी १५ (१) पृष्ठ १२ तथा तरंग ४. २२१, ८ : २६२५, द्रष्टव्य है। शासन पत्र लिखने तथा उसके रखनेवालो को लेखाधिकारी कहा जाता था।

स शापितोऽस्मद्देहेन यो लेखं वाचयेत्पथि ।
संविदेषा प्रयत्नेन विस्मर्तव्या न जातुचित् ॥ २०८ ॥

२०८. पथ मे जो लेख पढ़े,—"उसे मेरे देह की शपथ है।" प्रतिज्ञा प्रयत्न पूर्वक कभी मत भूलना।

अविज्ञाताशयो राज्ञस्तामाज्ञां : क्लेशशङ्कितः ।
सोऽबुद्ध दहनज्वालां न तु रत्नाङ्कुरद्युतिम् ॥ २०९ ॥

२०९. (नृपति के) आशय को न जानकर क्लेश शङ्कित, उसने राजा के उस आज्ञा को अग्नि ज्वाला जाना, न कि रत्नाङ्कर कान्ति।

यथादेशस्तथेत्युक्त्वा मातृगुप्ते विनिर्गते ।
निगर्वः पूर्ववद्राजा तस्थावाप्तै सहालपन् ॥ २१० ॥

२१०. 'जैसी आज्ञा'—कहकर, मातृगुप्त के विनिर्गत हो जाने पर, गर्व रहित नृप पूर्ववत् आप्तजनों के साथ संलाप करता हुआ, स्थिर रहा।

अथाक्लेशोचितं क्षाममपाथेयमबान्धवम् ।
दृष्ट्वा यान्तं मातृगुप्तं निनिन्देति नृपं जनः ॥ २११ ॥

२११. अक्लेशोचित, क्षाम, सम्वल रहित, बन्धु, विहीन, मातृगुप्त को जाते हुए देख कर लोग नृप की निन्दा करने लगे।

अहो नरेश्वरस्येयं यत्किंचनविधायिता ।
पृथग्जनोचिते कर्मण्यर्हतो निदधाति यः ॥ २१२ ॥

२१२. अहो! 'नरेश्वर की यह यत्किञ्चन विधायिता ? जो कि सामान्य जनोचित काय में योग्यों को नियुक्त करता है।

दुराशया धृतक्लेशं सेवमानमहर्निशम् ।
ध्रुवं क्लेशार्हमेवैनं ज्ञातवानबुधो नृपः ॥ २१३ ॥

२१३. 'दुराशा से अहर्निश सेवा करते दुःखी इसे निश्चय ही विद्वान् नृप ने क्लेश सहिष्णु (ही) जाना।

शासन शब्द का प्रयोग नीलमत पुराण में भी किया है। वहाँ पर यह शब्द शिव शासन के रूप में व्यवहृत किया गया है। प्राचीन निबन्धो में बुद्ध शासन के समान शिव शासन सम्बन्धी निबन्धो के अर्थ में इसका उल्लेख किया गया है।

त्वमह चापि यस्यैव शासने स.ावस्थितौ य ।

नील० १२४७ परिशिष्ट

उपायं यं पुरस्कृत्य सेवते सेवकः प्रभुम् ।
अनन्तरज्ञस्तत्रैव योग्यं तं किल मन्यते[1] ॥ २१४ ॥

२१४. 'सेवक जिस उपाय को अग्रसर करके प्रभु की सेवा करता है, अन्तरज्ञ (नृप) उसे उसा (कार्य) योग्य मानता है ।

सुखार्थी नागारिप्रतिभयशमात्प्रत्युत सुखं
जहौ शेषस्तल्पीकृततनु निषेव्यासुररिपुम् ।
यतस्तेनामुष्मिन्नधिगतवता क्लेशसहतां
श्रमाधायि न्यस्तं निरवधि धराभारवहनम् ॥ २१५ ॥

२१५. 'नागरिपु (गरुड़) के भय शमन से सुखाकांक्षी शेष नाग शरीर की शय्या बना, (कर) विष्णु की सेवा करके, प्रत्युत सुख का त्याग (ही) कर दिया । क्योंकि (उन्होंने) क्लेश सहन करने में समर्थ मानकर , इनपर श्रम प्रद पृथ्वी का भार सदैव के लिये न्यस्त कर दिया ।

अयमेतद्गृहीतेषु गुणवत्सु गुणाधिकम् ।
आत्मानं गुणवान्पश्यन्नास्थयैनमशिश्रियत्[1] ॥ २१६ ॥

२१६. 'उन गृहीत गुणवानो में स्वयं को अधिक गुणवान देखते हुये, इसने आस्था पूर्वक उसका (नृप का) आश्रय लिया था ।

अनन्तरज्ञः कोऽन्योऽस्माद्गुणान्दर्शयतेऽधिकान् ।
अस्मै गुणवते पूजां यश्चकार किलेदृशीम् ॥ २१७ ॥

२१७. अन्तर को न जानने वाला अन्य कौन इससे अधिक गुणवान (गुणज्ञ) है । जिसने इस गुणवान् की इस प्रकार पूजा की ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१४ में 'उपायं यं' का पाठभेद 'उपायं त' तथा 'उपायनं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२१४ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६५वाँ श्लोक है ।

२१६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का यह ६६वाँ श्लोक है ।

योनानाद्युतिमत्पदार्थरसिकोऽसारेऽपि शक्रायुधे
सप्रेमा स विलोक्य वर्हमिह मे किं किं न कुर्यात्प्रियम् ।
इत्याविष्कृतवर्हराजि नटते यो वर्हिणेऽम्भोलवा-
न्नान्यन्मुञ्चति तं विहाय जलदं कोऽन्योऽस्ति शून्याशयः[1] ॥२१८॥

२१८ जो अनेकों कान्तिमय पदार्थों का रसिक है, निःसार भी इन्द्रधनुष मे प्रेम रखता है, वह यहाँ मेरे (सचित्र) पंख को देखकर (मेरे लिये) क्या-क्या प्रिय नही करेगा ? इस आशय से पिच्छ फैलाकर नृत्य करते मयूर[2] को जो जल कणों के अतिरिक्त कुछ नही देता उस जलद के अतिरिक्त और कौन शून्य हृदय है[3] ।

गच्छतो मातृगुप्तस्य निर्दैन्यस्यैव वर्त्मसु ।
नाभूद्भाव्यर्थमाहात्म्याद्विकल्पः कोऽपि चेतसि ॥ २१९ ॥

२१९. मार्ग में गमन करते दैन्य रहित मातृगुप्त के मन में भावी अर्थ (की सिद्धि) माहात्म्य से कोई विकल्प नहीं हुआ ।

अहंपूर्विकयोद्यद्भिर्निमित्तैः शुभशंसिभिः ।
स वितीर्णकरालम्ब इव न श्रममाददे ॥ २२० ॥

२२०. स्पर्धापूर्वक प्रकट होते शुभ[1] सूचक निमित्तों से हस्तावलम्ब प्राप्त करने तुल्य वह परिश्रान्त नहीं हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २१८ में 'वर्हिणे' का पाठभेद 'वर्हिणो' तथा 'विहाय जलदं' का पाठभेद 'विलोक्य जलदमित्यन्यादर्शे' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

२१८ (१) राजतरगिणी सूक्तिसग्रह का यह ६७वाँ श्लोक है ।

(२) मयूर : वर्षा ऋतु में मयूर मेघाच्छन्न आकाश मे मस्त होकर अपनी प्रेमिका मयूर के सम्मुख आत्मविभोर होकर नृत्य करता है ।

(३) शून्याशय शब्द का प्रयोग शून्य हृदय के लिये किया गया है । यहाँ इन्द्रधनुष के लिये शून्य हृदय प्रयुक्त किया गया है । इन्द्रधनुष बादल के कारण बनता है । परन्तु वह धनुष की तरह ठोस नही अपितु शून्य वृत्त होता है । उसका आकार मात्र दिखायी पडता है । अन्यथा वह किरणो एव जल वाष्प का छाया रूप मात्र है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २२० में 'लम्ब' का 'लम्भ' और 'माददे' का पाठभेद 'मादधे' मिलता है ।

२२० (१) शुभसूचक शकुन ज्ञान स्वत. एक शास्त्र है । शुभ-अशुभ शकुनो के विचार के लिये अनेक स्थानो पर लेख उपलब्ध मिलते हैं । प्रचलित शुभाशुभ का लक्षण स्वप्न, पल्लीपतन (छिपकली गिरना), प्रस्थान करते समय विभिन्न वस्तुओं के सम्मुख पडने से भावी शुभ एव अशुभ कार्यों का पता चल जाता है ।

स्वप्न : शुभ–जल में तैरना स्वप्न में देखने पर शुभ फलप्रद होता है । आकाश में उडना–व्यापार मे लाभ किंवा शुभ यात्रा, सुवर्ण अंगूठी धारण करना–वाञ्छित रमणी प्राप्ति, मेवा भक्षण–धन प्राप्ति, ऊँट देखना—सम्पत्ति प्राप्ति; सूर्य दर्शन–महान् व्यक्तियो से साक्षात्कार, ग्रह नक्षत्र दर्शन–शुभसन्देश प्राप्ति, मेघ दर्शन—उन्नति पथ जाना, हाथ में अग्नि लेना–

बिना परिश्रम धन प्राप्ति, अश्वारोहण—व्यापार मे उन्नति, उद्यान लगाना-शुभसमाचार प्राप्ति, कोठे पर चढना—शुभ समाचार, दर्पण देखना—प्रेमिका मिलन, बिस्तर बिछाना-धनप्राप्ति, पका बाल-दीर्घायु होना, अडा देखना—पुत्र उत्पत्ति, पर्वतारोहण—उन्नति, शरीर में विष्ठा पोतना-धनप्राप्ति; विष्ठा भक्षण—प्रचुर धन प्राप्ति, जल पीना-व्यापार मे लाभ; स्वादिष्ट भोजन एव ताम्बूल खाना-सुन्दर स्त्री प्राप्ति, जल मे डूबना-शुभ कर्म, कृपाण देखना-विजय प्राप्ति, हरीसाक तरकारी—शुभ समाचार, धनुष बाण चलाना-आशापूर्ति; सिंहासन पर चढना-प्रतिष्ठा वृद्धि; रोना—प्रसन्नता प्राप्ति, श्वेत वस्त्र धारण—शुभसवाद और क्रीडा देखने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

पल्ली पतन या गिरगिट का अवरोहण-शुभ : सोम, बुध, गुरु, शुक्रवारो तथा १, २, ५, ६, १०, ११ तथा १२ तिथियों में पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, उ०फा०, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिष, रेवती, नक्षत्रो मे पुरुष के दाहिने अग तथा स्त्रियो के बायें अग पर छिपकली का गिरना शुभ माना जाता है। सर पर गिरना—राज्य लाभ, ललाट पर—बन्धु दर्शन, भौंह पर—श्रेष्ठ पुरुषो से मित्रता; अधरोष्ठ पर-ऐश्वर्य प्राप्ति; दक्षिण कान पर—आयुवृद्धि, बायें कान—धन लाभ; आँख-धन लाभ; दक्षिणबाहु-नृप तुल्यता; कण्ठ—शत्रुनाश, उदर—भूषण लाभ, घुटने पर शुभागमन, जंघो-शुभ, हाथो-वस्त्र लाभ, कन्धा पर—विजय, नासिका छिद्र-अत्यन्त धन लाभ कटिभाग - अश्व, हस्ती किंवा सवारी का लाभ, हृदय—धनलाभ, तथा मुख पर गिरना मिष्ठान्न भोजन की प्राप्ति होती है।

छींक—शुभ : शयन, मल मूत्र त्याग, भोजन, स्नान दान, विद्याध्ययन, युद्धप्रस्थान, विवाद, बीज बोने के समय शुभ होती हैं। पीछे तथा बाये की छीकमे दोष नही होता।

छींक—अशुभ : साधारणतया किसी दिशा की छीक अच्छी नही कही गयी है। अपनी छीक स्वयं शुभप्रद नही होती। गाय-बैल की छीक अत्यन्त हानिकारक, सम्मुख छीक—कलहकारिणी, दाहिने की छीक—धननाशक, धीरे की छीक—भय दायक, कुमारी, वैश्या, मालिन, विधवा, धोबिन तथा रजस्वला की छीक—अशुभ, तथा यात्रा के समय की छीक अशुभ होती है।

स्वप्न—अशुभ : अर्धरात्रि के पूर्व का देखा स्वप्न शुभाशुभ फल नही देता। रात्रि के अन्त मे देखे स्वप्न का विचार करना चाहिए। उसके पश्चात् यदि निद्रा न आये तो शुभाशुभ का अवश्य फल होता है। आकाश से गिरना-शारीरिक एव मानसिक कष्ट, पक्का फल भोजन-निकट सम्बन्धी की मृत्यु, ऊँट पर चढना-अस्वस्थता; घोडे से गिरना-धन एव प्रतिष्ठा की हानि, नावपर चढकर डूबना—पदच्युति; आधी तूफान—यात्रा में कष्ट; पर्वत से गिरना—कष्ट, दाहिना बाहु का कटना—कोई भाई की मृत्यु; बाईं भुजा का कटना; छोटे भाई की मृत्यु; बारात मे जाना—मृत्यु; नवीन घर निर्माण—सम्बन्धी की मृत्यु; मूडासिर-मृत्यु कारक; तेल लगाना—स्वास्थ्यहानि; स्वय बीमार झझट; सूअर देखना—नाराजगी; भैस—आपत्ति आगमन; शेर—राज भय, राजा की मृत्यु-राष्ट्र पर विपत्ति; पिंजडा देखना—कारागार मिलता है।

पल्लीपतन—अशुभ : जन्म नक्षत्र, मृत्युयोग, दग्धयोग, भद्रा में, पापग्रह, पुण्यलग्न मे चन्द्रमा अष्टम हो, तो छिपकली गिरने का फल अशुभ होता है।

गिरगिट के अंग पर चढने का फल छिपकिली के सदृश ही होता है।

इसके अतिरिक्त, सर्प, जलहीन घट, बिल्ली आदि का यात्रा के समय सम्मुख पडना अशुभ तथा पूर्ण घट, शव, तिलकधारी ब्राह्मण, कोखमें बालक

अपश्यत्स फणाकोटौ खञ्जरीटमहेः पथि ।
स्वप्ने प्रासादमारुह्य स्वं चोल्लङ्घितसागरम् ।। २२१ ।।

२२१. पथ मे उसने देखा—सर्प के फण पर खंजरीट बैठा है, और स्वप्न मे स्वयं प्रासाद पर आरूढ तथा सागर पार किया।

अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो निमित्तैः शुभशंसिभिः ।
एतैर्भूभर्तुरादेशो ध्रुवं मे स्याच्छुभावहः ।। २२२ ।।

२२२. उन शुभसूचक निमित्तों से उस शास्त्रज्ञ ने सोचा,—'निश्चय ही राजा का आदेश मेरे लिये शुभावह (सुखप्रद) है।

फलं मम तनीयोऽपि कश्मीरेषु भवेद्यदि ।
अनर्घदेशमाहात्म्यात्किं किं नातिशयेत तत् ।। २२३ ।।

२२३. "कश्मीर में यदि मुझे स्वल्प फल भी प्राप्त हो तो वह अनर्घ्य देश के माहात्म्य से किस किस का अतिक्रमण नहीं करेगा।',

---

लिये सौभाग्यवती स्त्री, आदि का मिलना शुभ होता है। रात्रि मे यदि कुत्ता रोता है तो पास पडोस तथा कही से मृत्युसमाचार मिलता है या कोई मरता है।

राजनोति में अत्यन्त प्राचीन काल से शुभाशुभ का विवेचन होता रहा है। वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत में सेनाओ के प्रयाण अथवा किसी कार्य के प्रस्थान अथवा कार्य करने के समय शकुनो के आधार पर भविष्य की घटना की सूचना मिलतो मानी गयी है।

प्राचीन रोमन लोग भगवान् की इच्छा आकाश में पक्षियो के उडने से लगाते थे। वे उनकी गति से भगवान् की चेतावनी भी निकालते थे।

रोमन लोग कोई भो कार्य चाहे युद्ध अथवा शान्ति का ही क्यो न हो विना शकुन निकाले नही करते थे। अधिकारियो के चुनाव के समय विशेषत शकुन देखा जाता था। जिस समय सेनापति युद्ध यात्रा के लिये निकलते थे उस समय विशेष रूप से शकुनो का विचार किया जाता था।

भारत में शकुन, ज्योतिष आदि के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनमें उनका विशद वर्णन मिलता है। किन्तु कौटिल्य ने शकुनो को महत्व नही दिया है। उनकी निन्दा की है। वह कहते हैं—सम्पत्ति सरल व्यक्तियो के हाथो से कुटिल व्यक्तियो के हाथो मे चली जाती है। वे अत्यधिक नक्षत्रो एव ग्रहो का आश्रय लेते हैं। सम्पत्ति नक्षत्रो का नक्षत्र है। किस प्रकार तारे उनसे प्रभावित होगे ? कृत निश्चयी व्यक्ति सैकडो प्रकार के साधनो से सम्पत्ति प्राप्त करता है। सम्पत्ति से ही सम्पत्ति पर विजय प्राप्ति की जाती है जैसे हाथी द्वारा ही हाथी पाया जाता है। (अर्थशास्त्र ९.४ तथा त ३.२३० तथा ८.७४४, ७४६ द्रष्टव्य है।)

पाठभेद :

श्लोक सख्या २२१ में 'महे.' का पाठभेद 'महो' मिलता है।

श्लोक सख्या २२३ मे 'कश्मीर' का पाठभेद 'काश्मीर' मिलता है।

अकृच्छ्रलङ्घ्याः पन्थानो वल्लभातिथयो गृहाः ।
उपानमन्गच्छतोऽस्य सत्क्रियाश्च पदे पदे ।। २२४ ।।

२२४. गमन करते हुए इसे सुख पूर्वक लङ्घ्य मार्ग, अतिथि प्रेमी गृह एवं पग-पग पर सत्कार प्राप्त हुये ।

इत्थं विलङ्घिताध्वा स लोलानोकहशाद्वलम् ।
मङ्गल्यदधिपात्राभ ददर्शाग्रे हिमाचलम् ।। २२५ ।।

२२५. इस प्रकार मार्ग पार कर वह चंचल वृक्षों से हरे एवं मंगल दधि[1] पात्र तुल्य हिमाचल को देखा ।

सरलस्यन्दसुभगा गङ्गाशीकरवाहिनः ।
प्रत्युद्ययुस्तं मरुतः पाल्यायाः संस्तुता भुवः ।। २२६ ।।

२२६. देवदारु वृक्ष के राल से सुभग बालनीय, भूमि से संस्तुत एवं गंगा[1] शीकर वाही काश्मीरी समीरण इसका अभीनन्दन किया ।

श्लोक संख्या २२५ में 'ध्वा स' का 'काशं', 'श्वास'; तथा 'नोकह' का पाठभेद 'नौकह' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२२५ (१) दधि : जैसे ही वनिहाल पास तथा पुराना मुगल मार्ग समाप्त कर मैदान निवासी पर्यटक कश्मीर उपत्यका का दर्शन करता है तो उसे तुषार मण्डित पर्वत शिखर का अभिराम दर्शन मिलता है । उसका वह हिम दर्शन तथा हरीभरी उपत्यका उसमें अभूतपूर्व चेतना एवं भाव तरंगें उत्पन्न कर देती है ।

यहाँ तुषार की उपमा दधि से दी गयी है । उपत्यका के चारो ओर उत्तुग पर्वत शिखर से परावृत हैं । वे तुषारमण्डित रहतो हैं । उपत्यका हरीभरी रहती है । अतएव तुषार की उपमा कल्हण ने दधि से दी है । दूध जम जाने पर दही बन जाता है । जल जमने पर बर्फ हो जाता है ।

दधि पात्र मे दूर्वा मंगल कार्यों के समय मे रखा जाता है । कल्हण की यह उपमा अनोखो है । उसकी पैनी दृष्टि की यह द्योतक है । हिम परिवृत गोलाकार उपत्यका दधिपात्र से और उसके मध्य मे रखी हरी दूर्वा से हरीभरी कश्मीर उपत्यका की उपमा दी है ।

किन्तु यहाँ एक त्रुटि प्रतीत होती है । काव्य-शास्त्र के नियम के अनुसार उपमा उत्कृष्ट होनी चाहिये । उपमा मगळ दधि पात्र छोटा है । परन्तु उपमेय हिमालय विशाल है । बडा है । वह खटकता है ।

२२६ (१) गगा—काश्मीर की अनेकानेक स्रोतस्विनियाँ तथा नाग गंगा के रूप माने जाते है । कश्मीर की सिन्ध उपत्यका की सीचने और वितस्ता मे मिलने वाली सिन्ध नदी को भी गंगा कहा गया है । पादटिप्पणी 'गंगा' पृष्ठ १०० द्रष्टव्य है ।

नीलमत पुराण में निम्नलिखित गगा का उदाहरण मिलता है ।

जम्बुमार्गं तथा पुण्यं पुण्यां वाराणसी तथा ।
तथैव जाह्नवीं गंगां देवी गगनमेखलाम् ।।
90:१३१–१३२॥

× × ×

गंगासागरसन्धि च सिन्धुसागरसंगमम् ।
भृगुतुगं विशालां च कुब्जाम्रं रैवतं तथा ।।94.१३६॥

× × ×

शतद्रुं च ततस्तीर्वा ऋषिगगां च निम्नगाम् ।
अर्जुनाश्रममासाद्य देवसुन्दं तथैव च ॥132 १७५॥

× × ×

मकरेण ययौ गंगा कूर्मेण यमुना नदी ।
वृषारूढा शतद्रुश्च महिषेण सरस्वती ॥153.२०५॥

× × ×

कथं सती शची गगा अदितिर्यमुना दिति ।
सरित्त्वमिह सप्राप्ता या च देवी करीषिणी॥238 ३१५॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची गंगा च निम्नगा ।
एवमस्त्वित्यभापन्त नोमा न च करीषिणी॥241.३१९ ३२० ॥

× × ×

शक्ता हि पावने ब्रह्म त्रैलोक्यस्यापि सा भवेत् ।
अदितिश्च दितिश्चैव या च गंगा महानदी ॥
एव क्रमेण सा देवी गृह्णात्यथ सरिद्वरा ।
जगाम गगया सार्धं सयोगं सिन्धुना सह॥290 ३८८-३८९ ॥

× × ×

तपनस्य सुता देवी गगास्नेहेन मन्त्रिता ।
बहुमानान्मुनेर्मैत्र्या स्वेनांशेन व्यवर्धत॥294:३९३॥
वितस्तां तु सरिच्छ्रेष्ठां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।

× × ×

गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा ॥295:३९४ ॥

× × ×

स प्रयागसमो देशस्तयोर्यत्र तु सगम ।
गंगातोयसथाढाय गंगां तु यमुनाऽब्रवीत् ॥296.३९५ ३९६ ॥

× × ×

तामब्रवीत्ततो गंगा भूय एव मया तव ।
हर्तव्य नाम सुभगे यदाऽह सिन्धुमगिता॥298 ३९७-३९८ ॥

× × ×

तव भक्तस्य विप्रस्य नित्य कर्मानुतिष्ठतः ।
मोक्षद मुनय स्नानं गगायां स्वर्गदं विदु. ॥
॥ 311:४१२ ॥

× × ×

स्वैराजिकानां मध्येन मात्राणां चैव भागश ।
भोगप्रस्थमतिक्रम्य गंगया सह संगता ॥320·४२१॥

× × ×

अदितिश्च दितिश्चैव शची च मनुजेश्वर ।
तपनस्य सुता या च या च गंगा सरिद्वरा॥322:४२३॥

× × ×

सीता वंक्षुश्च सिन्धुश्च सप्तगंगाश्च मानद ।
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसा ह्रदा ॥
॥ 599.७२० ॥

× × ×

गगा सपूजन कार्यं तस्मिन्नहनि काश्यप ।
ब्रह्मलोकात्त्रिपथगा पृथिव्यामवतारयत् ॥681.८०६, ८०७ ॥

× × ×

नम. शशांककलेखांकजटाभार महेश्वर ।
गंगातरंगनिर्धूत जटाभार नमोऽस्तु ते॥1091:१२८९॥

× × ×

तत्र गगा सरिच्छ्रेष्ठा चन्द्रभ्रष्टा प्रतिष्ठिता ।
यस्यां स्नातस्य पूयन्ते सर्वपापान्यसशयम् ॥
॥ 1243:१४५६-१४५७

× × ×

राजसूयमवाप्नोति गगामानुषसगमे ।
देवतीर्थे नर· स्नात्वा भवत्यमरपूजित. ॥
॥1244.१४५७-१४५८॥

× × ×

गगोद्भेदे नर स्नात्वा भेडादेवीसमीपतः ।
गगास्नानफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥
॥ 1309 १५२२-१२२३ ॥

× × × × × ×

क्रमवर्ताभिधाने स प्रदेशे प्राप्तवांस्ततः ।
ढक्कं काम्बुवनामानं योऽद्य शूरपुरे स्थितः ॥ २२७ ॥

२२७. तदनन्तर वह क्रमवर्त नामक प्रदेश में काम्बुव[1] संज्ञक ढक्क[2] पहुँचा जो आज शूरपुर (सोपुर) में स्थित है ।

वितस्तातो महीनाथ न गंगा व्यतिरिच्यते ।
केवलं जाह्नवीतोये पुरुषस्यास्थिसंभवः ॥
॥ 1373:१५८७ ॥

× × ×

वितस्तातोऽधिको राजन् स्नानाद्यं तुल्यमेव च ।
भागीरथेन गंगेयं पुरा राज्ञाऽवतारिता॥1374:१५९०।

× × ×

गंगानदी शंभुजटाकलापे,
चंद्रेण देवेन तथा विभिन्ना ।
प्रोक्ता नृलोके नृप चन्द्रभागा,
आयाति पुण्य विततां वितस्ताम् ॥ 1391 ॥

पाठभेद :

श्लोक सख्या २२७ मे 'वर्ता' का पाठभेद 'वत्ता' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

२२७ (१) क्रमवर्त : वर्तमान कमेलन कोठ, पीत पंतसल मार्ग पर हैं ।

(२) काम्बुव . वह ढक्क का नाम है । पोर-पंतसल मार्ग पर हैं ।

ढक्क : इस शब्द का अर्थ रणजीत सीताराम पण्डित ने डमस्टेशन (नगाडा की चौकी) लगाया है । उसे निरीक्षण किंवा अवलोकन चौकी कहा है । स्तीन ने इसका अर्थ सैनिक चौकी किया है । ढक्क शब्द प्राचीन है । नीलमत पुराण में ढक्क शब्द मिलता है । वह एक नाग है । उस स्थान पर चुक्क के स्थान पर धुक्क का भी पाठभेद मिलता है ।

वीरभद्राशनौ नागौ नागौ सारसधुक्ककौ ।
रक्काकश्च तथा चक्को गोशो वंश नगस्तथा ॥
221 १०८७-१०८८

कश्मीर मे ढक्क सैनिक चौकी अथवा वाच स्टेशन को कहते हैं । कश्मीर के इतिहास में ढक्क के प्रबन्ध तथा रक्षा पर राजाओं ने बहुत जोर दिया है । ढक्क के कारण कश्मीर में अवाञ्छनीय तत्त्वों का प्रवेश नहीं हो सकता था । ढक्क प्रायः दर्रो, प्रवेश स्थान तथा सैनिक महत्त्व के स्थान पर सुरक्षा तथा नियन्त्रण की दृष्टि से बनाये गये थे ।

अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने क्रमवर्त स्थित ढक्क को शूरपुर में स्थापित किया था । शूरपुर वर्तमान हूरपुर किंवा होरपुर है । रामव्यार नदी की हरी भरी सुहावनी उपत्यका में स्थित है ।

ढक्क किंवा द्रंग पर्वतीय दर्रों के प्रवेश मुख पर सुरक्षा निमित्त निर्मित किये जाते थे । इसका काम बाहर से आने वाले सामान से चुंगी वसूल करना तथा देश की सुरक्षा दोनों से होता था । शूरपुर के चुंगी का यह स्थान उस जगह देखा जा सकता है जहाँ बादशाह जैनुल आबदीन ने अभिसार से आने वालो के लिये शिविर किंवा पडाव अथवा छावनी बनवाया था ।

द्रंग का अर्थ रक्षा स्थान होता है । श्रीवर ने उसे गुल्म भी कहा है । द्रंगिका, द्रागिका, द्रगिन आदि समानार्थक शब्द वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों में प्रयुक्त किया गया है । पुराने मुगल बादशाही मार्ग पर यात्री के लिए बाजार, निवास आदि की सुविधा प्राप्त होती थी । यह पर्वतीय व्यवधान पार करते ही किंचित् मैदान के पश्चात् मिलता है । कल्हण ने राजतरंगिणी में इसका कई बार उल्लेख किया है ।

मंख के कोश में द्रंग रक्षा स्थान का समानवाचक कहा गया है । द्रंग का कहीं-कहीं मार्गेश अर्थात्

नानाजनपदाकीर्णे स्थाने तत्राथ शुश्रुवान् ।
काश्मीरिकान्महामात्यान्स्थितान्केनापि हेतुना ॥ २२८ ॥

२२८. वहाँ उसने सुना कि नाना जनपदाकीर्ण स्थान पर किसी कारण से काश्मीरी महामात्य स्थित है।

ततोऽपनीतप्राग्वेषः प्रावृतो धवलांशुकैः ।
स जगामान्तिकं तेषां दातुं नृपतिशासनम् ॥ २२९ ॥

२२९. तदनन्तर पूर्ववस्त्र बदल धवल वस्त्र[1] धारण कर वह नृपति शासन देने के लिये उन लोगों के समीप गया।

तं प्रयान्तं समुद्यद्भिः शकुनैः सूचितोदयम् ।
पान्थाः केऽप्यन्वयुर्द्रष्टुं निमित्तानां फलोद्गमम् ॥ २३० ॥

२३० गमन करते इसका कुछ पथिकों ने निमित्तों का फलोद्भव देखने हेतु अनुगमन किया, जिसका प्रकट होते शकुनों से उदय (उत्थान) ज्ञात था।

मार्ग का अधिकारी के रूप मे प्रयोग किया गया है।

सम्राट् अकवर के काल में मार्गेश को मलिक कहते थे। कालान्तर में यह अधिकार मौरुसी अर्थात् आनुवशिक उत्तराधिकार के रूप मे हो गया था। उन्हें जागीर मिलती थी। कश्मीर में सिक्ख राज स्थापित होने पर जागीरें जप्त कर ली गयी थी। इस प्रकार के पूर्व जागीरदारो का पता सुपियान (हूरपुर के नीचे) शाहावाद आदि स्थानो में मिलता है।

क्रमवर्त के प्राचीन द्रग अथवा ढक्क स्थान का पता निश्चयात्मक रूप से मिल गया है। उसका नाम विगडकर कमेलन कोठ हो गया है। यह स्थान लगभग साढे पाँच मिल हूरपुर से दूर एक अलग पहाडी पर जहा पीर पंजाव की स्रोतस्विनियाँ तथा रूपरो दर्रा मिलता था। यहाँ पहाडी खडो लगभग दो सौ फिट ऊँची होगी। पहाडी पर २००×५० फिट को अधित्यका अर्थात् प्लेटो है। यहा पर दो अठपहले वुर्ज वने है जो सामरिक प्राकार से समन्वित है। इस समय गिर गये है। ढक्क को पुलिस चौकी मानने का कुछ लेखको ने प्रयास किया है। यह ठीक नही होगा। "क्रमवर्ता ना कोटा" का ही अपभ्रंश 'कमेलन कोठ' हो गया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २२८ में 'श्मीरि' का पाठभेद 'श्मीर' मिलता है।

श्लोक सख्या २२९ मे 'प्रावृतो' का पाठभेद 'प्रवृत्तो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२२९ (१) **धवल वस्त्र :** यह प्राचीन आचार एव परम्परा है कि देवस्थान, यात्रा एव राजसभा में धवल किंवा नवीन अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण कर लोग जाते थे। अन्यधर्मावलम्बियो में भी यही वात देखी जाती है। रविवार के दिन चर्च में ईसाई तथा शुक्रवार के दिन मुसलमान जुमा की नमाज में धुला किंवा स्वच्छ वस्त्र ऋतु के अनुसार धारण कर जाते है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३० मे 'फलोद्गमम्' का पाठभेद 'फलोद्गमे' मिलता है।

श्रुत्वाऽथ विक्रमादित्यदूतः प्राप्त इति द्रुतम् ।
द्वाःस्थाः काश्मीरमन्त्रिभ्यस्तमासन्नं न्यवेदयन् ।। २३१ ।।

२३१. 'विक्रमादित्य के दूत का आगमन सुनकर द्वारपालों ने उसकी उपस्थिति शीघ्र ही काश्मीरी मन्त्रियों से निवेदित की ।

[1]आगच्छत प्रविशतेत्युच्यमानोऽथ सर्वतः ।
स तान्समस्तसामन्तानाससादानिवारितः ।। २३२ ।।

२३२. 'आइये, प्रवेश कीजिये'—इस प्रकार सब ओर से लोगों ने कहा । बिना अवरोध वह उन समस्त सामन्तों के पास पहुंचा ।

यथाप्रधानं सचिवैर्विहितोचितसत्क्रियः ।
ततः पराध्यमध्यास्त तन्निदर्शितमासनम् ।। २३३ ।।

२३३. प्रधानतानुसार सचिवों के उचित सत्कार प्राप्त कर (वह) उन लोगों से निर्दिष्ट सर्व श्रेष्ठ आसनपर बैठा ।

कृतादरैरथामात्यैराज्ञां पृष्टो महीभुजः ।
शनैस्तच्छासन तेभ्यो लज्जमान इवार्पिपत् ।। २३४ ।।

२३४. सम्मानकारी अमात्यों के पूछने पर 'राजा की क्या आज्ञा है'—लज्जित तुल्य वह धीरे से शासन उन्हें अर्पित किया ।

तेऽभिवन्द्य प्रभोर्लेखमुपांशु मिलितास्ततः ।
उन्मुच्य वाचयित्वैतमवोचन्विनयानताः ।। २३५ ।।

२३५. उन्होंने प्रभु लेख उपांशु का अभिनन्दन किया । एकान्त में मिले । उसे खोला । और बाँचकर विनयावनत बोले—

मातृगुप्त इति श्लाध्यं भवतामेव नाम किम् ।
एवमेवैतदित्यूचे सोऽपि तान्विहितस्मितः ।। २३६ ।।

२३६. 'श्लाध्य मातृगुप्त' आपही है क्या ? सस्मित उनसे कहा—'एवमेव' (ऐसा ही)।

पादटिप्पणियाँ :

२३२ (१) बाण के हर्ष चरित मे इससे मिलता पद मिलता है—

'सविनयं अभाषत आगच्छत प्रविशत'—

पाठभेद :

श्लोक सख्या २३४ मे 'वार्पिप' का पाठभेद 'वार्पप' मिलता है ।

श्लोक संख्या २३५ में 'नातः' का पाठभेद 'न्विताः' मिलता है ।

कः कोऽत्र संनिधातॄणामित्यश्रूयत वाक्ततः ।
राज्याभिषेकसंभारो दृश्यते स्म च संभृतः ॥ २३७ ॥

२३७. यह वाणी सुनायी पड़ी, "सन्निधाताओं मे कौन है ?" तदनन्तर राज्याभिषेक संभार वहाँ पर दिखायी दिया ।

ततः कलकलोत्तालभूरिलोकसमाकुलः ।
प्रदेशः क्षणमात्रेण सोऽभूत्क्षुभ्यन्निवार्णवः ॥ २३८ ॥

२३८ क्षणमात्र में उत्ताल कोलाहल करते लोक समाकुल से व्याप्त वह स्थान क्षुब्ध समुद्र तुल्य हो गया ।

अथ प्राङ्मुखसौवर्णभद्रपीठप्रतिष्ठितः ।
संनिपत्य प्रकृतिभिर्मातृगुप्तोऽभ्यर्षिच्यत ॥ २३९ ॥

मातृगुप्त का अभिषेक[1] :

२३९. पूर्वाभिमुख[2] सुवर्णभद्र पीठ पर बैठे मातृगुप्त को समागत प्रकृतियों[3] ने अभिषिक्त किया ।

तस्य विन्ध्यतटव्यूढवक्षसः परिनिर्लुठत् ।
सशब्दमभिषेकाम्बु रेवास्रोत इवाबभौ ॥ २४० ॥

२४०. उसके विशाल वक्षस्थल पर लुठित होते सशब्दपूर्ण अभिषेक जल विन्ध्यातट[1] के ढालपर गिरती रेवा (नर्मदा) स्रोत तुल्य सुशोभित हुआ ।

श्लोक सख्या २३७ में 'स्म' का पाठभेद 'स' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२३९ (१) श्री विलसन ने राज्याभिषेककाल सन् ११७ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ४७१ ई० एव राज्यकाल ४ वर्ष ९ मास दिया है ।

श्री एस. पी. पण्डित ने वह समय सन् ११८ ई० तथा राज्य काल ४ वर्ष ९ मास १ दिन दिया है ।

श्री स्तीन ने अभिषेक काल लौकिक सवत् ३१८२ और २ मास तथा राज्य काल ४ वर्ष ९ मास १ दिन दिया है ।

श्री बाली सप्तर्षि सवत् ४०४४ तथा सन् २६९ ई० देते हैं । कलिगताब्द ३२१८ वर्ष ३ मास ट्रायर के मत से सन् ११७ वर्ष ११ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४३० ई० आता है । अबुलफजल नाम मेतर कुत्त देता है ।

(२) पूर्वाभिमुख : पूर्व मुख बैठकर प्रात कालीन सन्ध्या तथा पूजा आदि किया जाता है । यह शुभ माना गया है । सूर्योदय की दिशा पूर्व है अतएव पवित्र कार्यों एवं सब प्रकार के सस्कारो के लिये उत्तम माना गया है । पूर्व के अभाव मे उत्तर दिशा का स्थान माना गया है । पूर्व दिशा शक्ति प्रद, शुभ उत्थान तथा उदय का द्योतक है । सूर्य का उदय पूर्व मे होता हैं अतएव वह दिशा जागृत अवस्था की, उदय की उत्थान की, प्रतीक है ।

(३) प्रकृतियों यहाँ पर इसका राज प्रकृतियो तथा साधारण प्रकृति जनो दोनो हो सकता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २४० मे 'स्रोत' का पाठभेद 'स्रोता' मिलता है ।

अथ स्नातानुलिप्ताङ्गं सर्वाङ्गामुक्तभूषणम् ।
व्यजिज्ञपंस्तं राजानं क्रान्तराजासनं प्रजाः ॥ २४१ ॥

२४१. स्नान एवं अनुलेपन के पश्चात्, सर्वांग भूषण भूषित हो सिंहासनारूढ़ होने पर, प्रजा ने उस नृपति को ज्ञात कराया।

अर्थितेन स्वयं त्रातुं विक्रमादित्यभूभुजा ।
निर्दिष्टः स्वसमानस्त्वं शाधि नः पृथिवीमिमाम् ॥ २४२ ॥

२४२. 'रक्षा हेतु प्रार्थित स्वयं भूभुज विक्रमादित्य ने आपको स्व तुल्य निर्दिष्ट किया है। हम लोगों की पृथ्वी पर शासन करें[१]।

मण्डलानि विलभ्यन्ते येनानेन प्रतिक्षणम् ।
मा मंस्था मण्डलं राजन्विलब्धं तदिदं परैः ॥ २४३ ॥

२४३. 'हे राजन्! इस मण्डल को दूसरों से प्राप्त होना मत जानिये, क्योंकि इस राज्य के द्वारा प्रतिक्षण मण्डल प्राप्त होते रहते हैं।

कर्मभिः स्वैरवाप्तस्य जन्मनः पितरौ यथा ।
राज्ञां तथाऽन्ये राज्यस्य प्रवृत्तावेव कारणम् ॥ २४४ ॥

२४४. "जिस प्रकार स्वकर्मों से प्राप्त जन्म के प्रति माता-पिता कारण होते हैं, उसी तरह राजाओं के राज्य प्रवर्तन में अन्य लोग कारण होते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

२४० (१) विन्ध्या : नीलमत पुराण सात कुल पर्वतों में एक विन्ध्या की भी गणना करता है।
नी० ५९६—६००

२४२ (१) श्लोक संख्या २४२—२४५ तक स्वागत श्लोक है। कश्मीर मे राजा तथा अभ्यागतो के स्वागत की सुनिश्चित सुसंस्कृत एक शैली थी। औरंगजेब के कश्मीर आगमन काल मे भी कश्मीरियो ने इसी प्रकार का स्वागत किया था। उसका वर्णन श्री बर्नियर करते हैं। उनकी समानता हजारो वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मिलती है।

हम लोगो के कश्मीर पहुँचते ही भाटो से बादशाह औरंगजेब ने कश्मीर के इस प्रिय भूमि की स्तुति मे कविता पाठ किया। बादशाह ने कविता लेकर उन्हे मिहरबानी दिखाते इनाम दिया। जहाँ तक मुझे स्मरण है उनमे एक में परावृत मालाओ की अपेक्षाकृत अधिक ऊँचाई मे आकाश को आभुग्न रूप मे परावृत कर दिया था जिसे हम देखते हैं। प्रकृति ने अपनी पूरी शक्ति कश्मीर मण्डल को सजाने मे समाप्त कर दी थी। उसे शत्रु सैन्यो से आक्रमण हेतु दुर्भेद्य बना दिया था। पृथ्वी की राजधानियो मे रानी होने के कारण यह उचित ही था कि उसे पूर्ण शान्ति तथा सुरक्षा युक्त रखा जाय। इस प्रकार वह सार्वभौम राज सत्ता का उपयोग करती रहे बिना कभी किसी के पराधीन बनकर'।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४३ मे 'बिलभ्यन्ते' का 'विदीयन्ते'; 'येनानेन' का 'यैर्नतेन' तथा 'विलब्धं का पाठभेद 'विलक्ष' मिलता है।

श्लोक संख्या २४४ मे 'पितरौ' का 'पितरो' तथा 'राज्ञा' का पाठभेद 'राज्ञा' मिलता है।

इत्थं स्थिते परं कंचित्त्वदीयोऽस्मीति शसता ।
न नेया भवता राजन्वयमात्मा च लाघवम् ॥ २४५ ॥

२४५. 'ऐसी स्थिति में हे राजन्! किसी अन्य से 'तुम्हारा हूँ' यह कहकर आप स्वय तथा हम लोगों का गौरव लाघव न करें।'

इति तैस्तथ्यमुक्तोऽपि संस्मरन्स्वामिसत्क्रियाम् ।
मातृगुप्तो महीपालः क्षणमासीत्कृतस्मितः ॥ २४६ ॥

२४६. इस प्रकार उनके यथार्थ कहने पर भी महीपाल मातृगुप्त स्वामी के समादर को स्मरण करते हुए क्षण भर सस्मित रहा।

दानेन सुदिन कुर्वन्नवराज्योर्जितेन सः ।
तत्रैव मङ्गलोदग्रं तदहो निरवर्तयत् ॥ २४७ ॥

२४७. उसने नव राज्योचित प्रचुर दान द्वारा मंगलमय उस दिन को सुदिन करते हुए (उसे) वहीं व्यतीत किया।

पुरप्रवेशायान्येद्युरर्थ्यमानोऽथ मन्त्रिभिः ।
अद्भुतप्राभृतं दूतं राज्यदातुर्व्यसर्जयत् ॥ २४८ ॥

२४८. दूसरे दिन मन्त्रियो ने पुर प्रवेश हेतु प्रार्थना की। अद्भुत भेंट के साथ दूत को राज्यदाता (विक्रमादित्य) के पास भेजा।

देशौन्नत्यानुसारेण स्पर्धामिव च तां विदन् ।
स्वामिनो मनसि ह्रीतः सागसं स्वममन्यत ॥ २४९ ॥

२४९. देश की समृद्धि के अनुसार उसे स्वामी की स्पर्धा तुल्य जानते हुये, मन मे लज्जित हुआ और अपने को अपराधी समझा।

अथाहूयपरान्भृत्यान्वक्तु सेवास्मृतिं प्रभोः ।
अल्पार्घाण्यपि सात्म्यानि प्राहिणोत्प्राभृतानि सः ॥ २५० ॥

२५०. उसने प्रभु की सेवा स्मृति को कहने के लिये दूसरे भृत्यों को बुलाकर स्वल्प मूल्यों के भी (नृप के) तदनुरूप भेंट भेजा।

श्लोक सख्या २४५ में 'पर' का 'अपर', 'कचि' का 'कश्चि' 'किंचि' तथा 'राजन्' का पाठभेद 'राजा' मिलता है।

श्लोक सख्या २५० में 'अल्पार्घाण्य' का 'अल्पाघ्र्याण्य, 'अनर्घाण्य' तथा 'सात्म्यानि' का पाठभेद 'खाद्यानि' तथा 'स्वात्म्यानि' मिलता है।

असामान्यान्गुणांस्तस्य स्मरन्पर्यश्रुलोचनः ।
स्वयं लिखित्वा श्लोकं च स्वकमेकं व्यसर्जयत् ।। २५१ ।।

२५१. असामान्य उसके गुणों का स्मरण करते हुये उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। स्वयं लिखकर उसने अपना एक श्लोक भेजा।

नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुञ्चसि सत्फलानि ।
निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राज-
न्संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः ।। २५२ ।।

२५२. "हे राजन्! आप अपना आकार नहीं बदलते, आत्म श्लाघा नहीं करते, दान करने की इच्छा बिना प्रकट किये फल प्रदान करते है। जलद के निःशब्द वर्षण तुल्य फलित ही आपकी कृपा दिखायी पड़ती है।"

ततः प्रविश्य नगरं सैन्यैः पिहितदिक्तटैः ।
क्रमागतामिव महीं यथावत्पर्यपालयत् ।। २५३ ।।

२५३. तदनन्तर दिगूतट को आच्छादित करनेवाले सैनिकों के साथ नगर प्रवेश कर परम्परा प्राप्त तुल्य पृथ्वी का यथावत् परिपालन किया।

त्यागे वा पौरुषे वाऽपि तस्यौचित्योन्नतात्मनः ।
क्ष्माभुजस्तर्कुकस्येव नाभूत्परिमितेच्छता ।। २५४ ।।

२५४. त्याग या पौरुष में भी औचित्य से उन्नतात्मा वह, याचक (तर्कुक[1]) के तुल्य परिमित (इच्छा) आकाङ्क्षी नहीं हुआ।

यष्टु यज्ञान्धृतोद्योगस्त्यागी विततदक्षिणान् ।
पशुबन्धमनुध्याय करुणाकूणितोऽभवत् ।। २५५ ।।

२५५. (उस) त्यागी ने प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञ करने के लिये उद्योग किया किन्तु पशुवध का ध्यान कर करुणापूर्ण हो गया।

पादटिप्पणियाँ :

२५२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ६८ वां श्लोक है।

पाठभेद

श्लोक संख्या २५४ में 'चित्योन्नतात्मन :' का 'न्नत्योचितात्मन' तथा 'तर्कुकस्येव' का पाठभेद 'याचकस्येव' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२५४ (१) तर्कुक : कुछ अनुवादकों मे तर्कुक का अर्थ तकुवा लगाया है। परन्तु यह अर्थ यहाँ नही बैठता है। इसका पाठभेद 'याचकस्येव' भी मिलता है। वह यहां पर संगत है।

पाठभेद

श्लोक संख्या २५५ में 'कूणितो' का पाठभेद 'कुञ्चितो' तथा 'कूजितो' मिलता है।

अमारमादिदेशाथ यावद्राज्यं स्वमण्डले ।
चूर्णीकृत्य सुवर्णादि प्रददौ च करम्भकम् ॥ २५६ ॥

२५६. अपने सम्पूर्ण (मण्डल) राज्य में अहिंसा का आदेश दिया और स्वर्ण चूर्ण आदि करम्भक[1] प्रदान किया।

करम्भके कीर्यमाणे मातृगुप्तेन भूभुजा ।
वैतृण्यमुन्मिषत्तोषो न को नाम न्यषेवत ॥ २५७ ॥

२५७. भूभुज मातृगुप्त के करम्भक प्रदान करने पर सन्तुष्ट हुआ कौन असन्तोष (वितृष्णा) को प्राप्त किया।

गुणी च दृष्टकष्टश्च वदान्यश्च स पार्थिवः ।
विक्रमादित्यतोऽप्यासीदभिगम्यः शुभार्थिनाम् ॥ २५८ ॥

२५८. गुणी, कष्टदर्शी, वदान्य वह नृपति शुभार्थियों के लिये विक्रमादित्य से भी अधिक अभिगम्य था।

विवेचकतया तस्य श्लाघ्यया सुरभीकृताः ।
लक्ष्मीविलासाः क्ष्माभर्तुरशोभन्त मनीषिषु ॥ २५९ ॥

२५९. उस राजा की श्लाघ्य विवेकशीलता से सुरभित लक्ष्मी विलास मनीषियों से सुशोभित हुई।

हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्नवम् ।
आसमाप्ति ततो नापत्साध्वसाध्विति वा वचः ॥ २६० ॥

२६०. (जब) मेण्ठ उसके समक्ष नवीन हयग्रीववध[1] सुना (प्रदर्शित कर) रहा था समाप्ति पर्यन्त उससे "साधु या असाधु" वाणी नहीं सुनी।

पादटिप्पणियाँ :

२५६ (१) **करम्भक :** इसका अर्थ खिचडी होता है। कश्मीर में खिचडी ब्राह्मणो को देने का प्राचीन रिवाज था। काशी आदि स्थानो में खिचडी दरिद्र नारायण का भोजन माना जाता है। इसी प्रकार पुलाक जिसका अपभ्रंश वर्तमान पुलाव है प्राचीन भारत मे प्रिय भोजन था। पुलाव सामिष तथा निरामिष दोनो बनता था। निरामिष में मेवा तथा सब्जी डालकर बनाना जाता था। सामिष पुलाव में भोजनीय मास डाला जाता था। करम्भक का उल्लेख पुन रा० त० ५:१६ में श्री कल्हण में किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५७ में 'वैतृण्य' का पाठभेद 'वैतृष्य' मिलता है।

श्लोक सख्या २५८ में 'वदान्य' का पाठभेद 'वदन्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

२६० (१) **हयग्रीव वध :** हयग्रीव का उल्लेख कुछ स्थानो पर महाकाव्य तथा अनेक स्थानो पर नाटक रूप में किया गया है। वह अत्यन्त सुन्दर काव्य है। अबतक यह काव्य पूर्ण रूप में नही प्राप्त हुआ है। इसको उल्लेख कवि राजशेखर न

अथ ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।
लावण्यनिर्याणभिया तदधः स्वर्णभाजनम् ॥ २६१ ॥

२६१. जब वह पुस्तक समेट रहा था—तो उसके नीचे स्वर्णपात्र, लावण्य[1] परिगलन भय से राजा ने रख दिया।

अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसत्कृतिः ।
भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥ २६२ ॥

२६२. नृप की उस प्रकार की अन्तरज्ञता से सत्कृत होकर कवि भर्तृमेण्ठ ने लक्ष्मी का प्रदान पुनरुक्त (निःप्रयोजन) माना ।

किया है। उसने अपने पूर्वजन्मो मे वाल्मीकि भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति होना लिखा है।

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स राजते सम्प्रति राजशेखरः ।
(बालरामायण)

विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिरा
स सम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला ।

क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक तथा मख ने श्रीकंठचरित (२:५३) में मेण्ठ का उल्लेख किया है। मख ने उसे सुबन्धु, भारवि तथा बाण के समकक्ष रखा है। सुभाषितावली में मेण्ठ की कविताओ का उद्धरण दिया गया है। हेमचन्द्र ने अलंकारचूडामणि मे हयग्रीव वध को काव्य माना है। काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण में मेण्ठ तथा उसके काव्य का उल्लेख मिलता है। डाक्टर श्री भाऊदाजी ने राघव भट्ट के शकुन्तला भाष्य मे मेण्ठ के पदो को पाया है।

कश्मीरी कवियो में मेण्ठ अन्यतम कवि है। यह प्रबन्ध कवि हैं। राज्यसभा के कवि थे। हयग्रीव वध के श्लोक सूक्ति ग्रन्थो में उद्धृत हैं। राजशेखर ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार माना है।

अश्वशिरस् तथा हयग्रीव दोनो शब्दो का उल्लेख पुराणो में मिलता है। महाभारत में उल्लेख आता है कि और्व का क्रोध समुद्र मे निक्षेप हुआ तो उसमें हयशिरस् की उत्पत्ति हुई। पुनः उल्लेख मिलता है कि हयग्रीव नरक का सेनापति था। भागवत पुराण के अनुसार विष्णु ने हयग्रीव का वध किया था। (११:४.१७) विष्णु तथा मारकण्डेय पुराण में उल्लेख है कि भगवान् विष्णु भद्राश्व में हयशिरस् रूप से उत्पन्न हुए थे। (विष्णु० २ २:५० ; मारक० ५५) कालिका पुराण के अनुसार हयग्रीव ने ज्वरासुर को मारा था। (कालिका० ८१:९६) देवी भागवत मे विष्णु हयग्रीव ने असुर हयग्रीव का वध किया था (देवीभागवत १:४)।

असमी साहित्य में उल्लेख मिलता है कि ऋषि उर्व के कहने पर विष्णु ने हयासुर, जो मणिकूट पर निवास करता था, वध किया था। अन्तिम समय असुर ने प्रार्थना की कि भगवान् स्वयं हयसुर का रूप धारण कर मणिकूट पर निवास करें। नील मत मे हयग्रीव अवतार का उल्लेख है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६१ में 'ग्रथयितु' का पाठभेद 'ग्रन्थयितुं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

२६१ (१) लावण्य—लावण्य का लौकिक अर्थ पानी है। स्त्री पर पानी है। मोती पर पानी है। इसका अर्थ स्त्री पर लावण्य है किया जाना

स मातृगुप्तस्वाम्याख्यं निर्ममे मधुसूदनम् ।
कालेनादत्त यद्ग्रामान्मम्मः स्वसुरसद्मने ॥ २६३ ॥

२६३ उसने मातृगुप्त स्वामी[1] नामक मधुसूदन (मन्दिर) का निर्माण कराया, उनपर लगे ग्रामों को मम्म[2] ने कालान्तर में अपने देव मन्दिर हेतु ले लिया ।

इत्यासादितराज्यस्य शासतः क्ष्मां क्षमापतेः ।
त्रिमासोना ययुस्तस्य सैकाहाः पञ्च वत्सराः ॥ २६४ ॥

२६४ इस प्रकार राज्य प्राप्त कर पृथ्वी का शासन करते उस नृपति का तीन मास एक दिवस कम पाँच वर्ष व्यतीत हुआ ।

कृतार्थतां तीर्थतोयैराञ्जनेयो नयन्पितॄन् ।
जातं तादृशमश्रौषीत्स्वस्मिन्देशे पराक्रमम् ॥ २६५ ॥

२६५. आञ्जनेय (प्रवरसेन) ने जो कि, तीर्थों में जल से पित्रों[1] को कृत-कृत्य कर रहा था, इस प्रकार सुना—'स्वदेश पर आक्रमण[2] हुआ है ।'

उचित है । लावण्य सौन्दर्य के अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है । शब्दकल्पद्रुम में लावण्य की परिभाषा की गयी है

मुक्ताफलेपु छायायास्तरलत्वमिवातरा ।
प्रतिभाति यदगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥

काव्य का यह रस नीचे चू न जाय इसलिए स्वर्णपात्र रख दिया ।

पाठभेद .

श्लोकसख्या २६३ में 'मम्म' का, 'नम्भः' 'मस्म ', तथा 'स्वसुर' का पाठभेद 'श्वशुर,' तथा 'स्वदेव-गृहाय' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२६३ (१) मातृगुप्त स्वामी—इस मन्दिर का उल्लेख पुन कही नही मिलता । यह मन्दिर कहाँ था इसका पता भी नही चलता ।

(२) मम्म—मम्म ने मन्दिर कहाँ बनवाया था उल्लेख नही मिलता । मम्म का यह मन्दिर विष्णु मन्दिर था । यह श्लोक न० ४ ६९८ ने प्रगट होता है । वह स्पष्ट निर्देश है कि मम्म ने मम्म स्वामी का मन्दिर निर्माण कराया था । स्वामी एव ईश्वर शब्दो के साथ विष्णु तथा शिव मन्दिर समझना चाहिये । इसके लिये पृष्ठ १४७ की पाद टिप्पणी द्रष्टव्य है ।

पाठभेद

श्लोकसख्या २६५ मे 'नयन्' का 'अनयत्' तथा 'पराक्रमम्' का पाठभेद 'पराभवम्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

२६५ (१) पित्र : यहा पित्र तर्पण के अर्थ जो लगाना चाहिये सन्ध्या करते समय तथा श्राद्ध के समय किया जाता है ।

(२) आक्रमण कल्हण ने यहाँ पर पराक्रम शब्द का मूलत प्रयोग किया है । अनुवादको ने उसका अर्थ हरण अर्थात् राज्य का वलात् ले लेना किया है । मैंने यहाँ आक्रमण शब्द रखा है । धन, सम्पत्ति, राज्य सभी पर आक्रमण करने के भाव का समावेश हो जाता है ।

पितृशोकार्द्रता तस्य क्रोधेनान्तरधीयत ।
तरोरिवाऽर्कतापेन नैशाम्बुलवसिक्तता ॥ २६६ ॥

२६६. उसकी पितृशोकार्द्रता क्रोध से वैसे ही अन्तर्हित हो गयी—जैसे रवि ताप से तरु की रात्रि कालीन जलसिक्तता ।

श्रीपर्वते पाशुपतव्रतिवेषस्तमागतम् ।
आचख्यावश्वपादाख्यः सिद्धः कन्दाशन ददत् ॥ २६७ ॥

२६७. जब वह श्री[1] पर्वत पर आया तब उसे पाशुपत[2] व्रती वेश अश्वपाद नामक सिद्ध कन्द भोजन देते हुए कहा—

---

२६७ (१) श्रीपर्वत—श्रीपर्वत किंवा श्री शैल के लिये विष्णुपुराण २१४१ तथा ५'११८ द्रष्टव्य है ।

(२) पाशुपत · नाट्य शास्त्र के अनुसार इस पथ का अनुयायी नृत्य एव गान से अपना भक्ति भाव प्रकट करता है । कालान्तर मे तन्त्र शास्त्र के विकास के साथ शिव पुरुष रूप तथा पार्वती स्त्री शक्ति किंवा प्रकृति रूप में चित्रित गये है ।

श्री शकराचार्य ने पाशुपत सम्प्रदाय के पाँच सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है—(१) कार्य, (२) कारण, (३) योग (४) विधि तथा (५) दु.खान्त ।

कार्य तीन प्रकार के है—(१) विद्या (२) अविद्या तथा (३) पशु । विद्या दो प्रकार की है—बोध स्वभावा तथा (२) अबोधस्वभावा । बोध स्वभावा विद्या दो प्रकार का है--(१) व्यक्त तथा (२) अव्यक्त । पशु दो प्रकार का होता है—(१) मलयुक्त तथा (२) निर्मल ।

(२) कारण—समस्त वस्तुओ की सृष्टि, सहार तथा अनुग्रह करने वाले तत्त्व को कारण कहते है । गुण एव कार्य के भेदो के कारण इसके अनेक रूप हो जाते है ।

(३) योग—ईश्वर के साथ चित्त के सम्बन्ध को जोडने वाले साधन को योग कहते है । यह दो प्रकार का होता है—(१) क्रिया युक्त तथा (२) क्रियाहीन ।

(४) विधि—धर्म की सिद्धि करने वाले व्यापार किंवा क्रिया को विधि कहते है । विधि दो प्रकार की होती है । (१) प्रधान तथा (२) गौण । इसके भेद—(१) व्रत तथा (१) द्वार है ।' भस्म से स्नान, भस्म मे शयन, उपहार, जप एवं प्रदक्षिणा व्रत है । द्वारचर्या छह प्रकार की होती है (१) क्राथन (२) स्पन्दन (३) मन्दन (४) शृंगारण (५) अवित्करण तथा (६) अविनद् भाषण । चर्या की सहायक विधि गौण विधि कही जाती है ।

(५) दु खान्त—दो प्रकार का होता है—(१) अनात्मक तथा (२) सात्मक । अनात्मक दुःखो का पूर्ण क्षय है । सात्मक—जिसमें ज्ञान और कर्म की शक्ति से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । ज्ञान शक्ति पाँच प्रकार की होती है—(१) दर्शन (१) श्रवण (३) मनन (४) विज्ञान तथा (४) सर्वज्ञत्व । क्रिया शक्ति एक होने पर भी त्रिविध है—(१) मनोजवित्व (२) कामरूपित्व (३) विकरणधर्मित्व ।

शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत चार सम्प्रदाय (१) शैव (२) पाशुपत (३) कारुक सिद्धान्ती तथा (५) कापालिक नामधारी सिद्धान्त आते है । पाशुपत सिद्धान्त के प्रतिपादक स्वयं भगवान् पशुपति माने जाते थे । शिवपुराण की वायवीय सहिता (२,२४,१९९) द्रष्टव्य है । अन्य ग्रन्थ पंचाध्यायी है । उसका उल्लेख काश्मीर विद्वान् केशव भी करते है ।

जन्मान्तरे लब्धसिद्धिस्त्वामस्म्युपरिसाधकम् ।
वाञ्छामपृच्छं राज्यार्थमभिलाषस्तु तेऽभवत् ॥ २६८ ॥

२६८. 'जन्मान्तर में तुम मेरे उपरि साधक[1] (अनुचर) थे । उस समय सिद्धि प्राप्त होने पर मैंने तुम्हारी अभिलाषा पूछी । राज्य की अभिलाषा तुम्हें हुई ।

सयत्नं तव कर्तुं तन्मनोरथमनन्यथा ।
अथ मामित्थमादिक्षत्क्षपारमणशेखरः ॥ २६९ ॥

२६९. 'तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि हेतु जब मै प्रयत्नशील था उस समय क्षपा रमण शेखर (शिव) ने ऐसी दीक्षा दी—

गणेऽयं मामकः सिद्धो यस्तवोपरिसाधकः ।
जन्मान्तरेऽस्य राज्येच्छां कुर्यामहमनन्यथा ॥ २७० ॥

२७०. 'तुम्हारा उपरिसाधक मेरा सिद्ध गण है । जन्मान्तर में इसकी राज्य प्राप्त की इच्छा थी । मैं इसे पूर्ण करूंगा ।

भावं भवस्तद्भवतो भगवान्दत्तदर्शनः ।
साफल्यं नेष्यतीत्येवमभिधाय तिरोदधे ॥ २७१ ॥

२७१. 'भगवान् शिव दर्शन देकर तुम्हारा मनोरथ सफल करेंगे'—यह कहकर वह तिरोहित हो गया ।

साम्राज्येच्छोः समामेकां तत्र तस्य तपस्यतः ।
लब्धस्मृतिः सिद्धगिरा प्रददौ दर्शनं शिवः ॥ २७२ ॥

२७२. वहाँ एक वर्ष तपस्या करने पर साम्राज्याकांक्षी उसे (शिव ने) सिद्ध वाणी द्वारा स्मरण प्राप्त कर, दर्शन दिया ।

व्रतिवेषं तमादिष्टवाञ्छितार्थसमर्पणम् ।
स जगन्निर्जयोन्निद्रं नरेन्द्रत्वमयाचत ॥ २७३ ॥

२७३. वांछित अर्थ समर्पण के लिये कहने वाले उस व्रती वेशधारी (शिव) से जगत् जयसे जागरूक नरेन्द्रता को (प्रवरसेन ने) याचना की ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६८ मे 'साधकम्' का पाठभेद 'साधक' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२६९ (१) साधक : तन्त्र तथा माहात्म्य से अलौकिक शक्ति प्राप्ति के लिये जो साधन करता है उसे साधक कहते हैं ।

पाठभेद

श्लोक संख्या २७१ में 'भाव' का पाठभेद 'भावे' मिलता है ।

उपेक्ष्य मोक्षं किं क्ष्माभृद्भोगानिच्छसि भङ्गुरान् ।
इति जिज्ञासुना भावं शंभुना सोऽभ्यधीयत ॥ २७४ ॥

२७४. 'राजन्! मोक्ष को उपेक्षित कर क्षण भंगुर भोगों की क्यों इच्छा करते हो? इस प्रकार भाव जानने के जिज्ञासु शम्भु[1] ने उससे कहा—

स तं बभाषे शंभुं त्वां बुद्ध्वा व्याजतपोधनम् ।
अभ्यधामिदमद्धा त्वं न स देवो जगद्गुरुः ॥ २७५ ॥

२७५. उसने उनसे कहा—'तुम्हें तपस्वी वेशधारी शम्भु जानकर, यह याचना की थी किन्तु निश्चय ही, वह जगद्गुरु देव तुम नहीं हो।

महान्तो ह्यर्थिताः स्वल्पं फलन्त्यल्पेतरत्स्वयम् ।
उदन्यया वदान्योऽदाद्दुग्धाब्धिं स पयोऽर्थिने ॥ २७६ ॥

२७६ स्वल्प पार्थित, महान् जन स्वयं अधिक फल प्रदान करते है। उस वदान्य ने पयःप्रार्थी को क्षीरसागर दिया।

पादटिप्पणियाँ :

२७४ (१) शम्भु : कल्याण सम्पादित करने वाले देव का अर्थ शम्भु होता है। उग्रकर्मा रुद्र हैं। शिव कल्याण स्वरूप है। शम्भु रुद्र एव शिव यद्यपि एक ही शंकर के नाम है, रूप है परन्तु उनका अर्थ भिन्न है। नीलमत पुराण मे शम्भु को कालयज्ञोपवीती कहा है। (नी० १०९४, ९००, ९१३, ८८८)

पाठभेद

श्लोक संख्या २७६ में 'वदान्यो' का पाठभेद 'वदन्यो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२७६ (१) पय प्रार्थी : कल्हण ने यहाँ महाभारत वर्णित उपमन्यु की कथा की ओर सकेत किया है। उपमन्यु की कथा वायुपुराण अध्याय ५६ मे दी गयी है—वीतमन्यु नामक एक वेद वेदांग पारग गृहस्थ एव महाभाग्य शाली श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसकी धर्मशीला नामक पत्नी थी। उस पत्नी से उसे उपमन्यु नामक पुत्र प्राप्त हुआ। दूध के अभाव में माता चावल पीस कर उसे पिलाया करती थी। उसका रग दूध की तरह उज्ज्वल होता था। एक दिन अपने पिता के साथ किसी द्विज के यहाँ उसने सुस्वादु खीर खाया। माता ने दूसरे दिन दूध के व्याज से उसे पिसा चावल का पानी दिया तो उपमन्यु ने पीने से अस्वीकार कर दिया। बालक असली दूध के लिये रोने लगा। माता ने भी रोते हुए कहा बिना शिव की कृपा से दूध कैसे मिल सकता है? शिव की कृपा कैसे प्राप्त होगी इसका उत्तर माता ने दिया—'विरूपाक्ष त्रिशूलधारी महादेव की आराधना करो।' उपमन्यु के पूछने पर कि विरूपाक्ष कैसे है माता ने उत्तर दिया—प्राचीन काल मे श्रीदाम नाम प्रसिद्ध एक महान् असुरपति था। उसने लक्ष्मी को समस्त जगत् अतिक्रान्त कर वशवर्तिनी बना लिया था। उस असुर ने तत्पश्चात् वासुदेव से श्रीवत्स प्राप्त करने का प्रयास किया। भगवान् विष्णु असुर वध की कामना से शिव के पास गये। शिव उस समय हिमालय शिखर के चिकने भूतल पर बैठे थे। तदनन्तर विष्णु जी जगन्नाथ के समीप गये। और अपने द्वारा स्वयं अपनी आराधना की। वे एक सहस्र वर्ष पैर के अँगूठे पर खडे रह कर तपस्या करने लगे। महादेव ने प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु को सुदर्शन चक्र

अस्य वैकल्यकैवल्यलाभनिश्चलचेतसः ।
नो वेत्स्यभिजनस्याभिभूतिं मर्मव्यथावहाम् ।। २७७ ।।

२७७. 'कैवल्य प्राप्ति से भी अशान्त चित्त वाले इसके कुल के मर्म व्यथाकारी तिरस्कार को क्या आप नहीं जानते ?'

जगत्परिवृढः प्रौढप्रीतिस्त सफलार्थनम् ।
कृत्वा प्रादुष्कृतवपुस्ततो भूयोऽभ्यभाषत ।। २७८ ।।

२७८. उसे सफल मनोरथ करके अत्यन्त प्रसन्न जगन्नायक शरीर धारणकर पुनः बोले-

मज्जतो राज्यसौख्येषु सायुज्यावाप्तिदूतिकाम् ।
मदाज्ञयाऽश्वपादस्ते संज्ञां काले करिष्यति ।। २७९ ।।

२७९. 'अश्वपाद मेरी आज्ञा से समय पर राज सुखों में निमग्न तुम्हें सायुज्य[1] प्राप्ति का सन्देश वाहिका-संज्ञा प्रदान करेगा ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे स कृतव्रतपारणः ।
अगच्छदश्वपाद तमापृच्छ्याऽभिमतां भुवम् ।। २८० ।।

२८०. यह कह कर देव के अन्तर्हित हो जाने पर उसने व्रत का पारण किया और अश्वपाद से आज्ञा लेकर अभिमत भूमि की ओर गया ।

प्रदान किया । सुदर्शन चक्र द्वादश अरो, छह नाभियो, एव दो युगो से युक्त था । चक्र की अमोघ शक्ति जानने की जिज्ञासा पर शंकर ने विष्णु से अपने ही ऊपर चलाने के लिये कहा । शकर पर विष्णु ने चक्र चलाया । शकर के शरीर के तीन भाग हो गये । प्रथम भाग का नाम हिरण्याक्ष, दूसरे का सुवर्णाक्ष तथा तृतीय का विरूपाक्ष नाम पडा । विष्णु ने उस चक्र द्वारा दामा का वध किया । उस असुर के वध के पश्चात् विष्णु ने विरूपाक्ष शकर की उपासना की । तत्पश्चात् क्षीर सागर चले गये । यदि तुम दूध चाहते हो तो विरूपाक्ष शकर को उपासना करो । उपमन्यु ने शिव विरूपाक्ष की उपासना कर दुग्ध प्राप्त किया ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २७७ मे 'वैकल्य' का 'वैकल्प' तथा "कैवल्य" का पाठभेद "कैवल्या" मिलता ।

श्लोक सख्या २७८ में 'भ्यभाषत' का पाठभेद 'व्यभाषत' मिलता है ।

श्लोक सख्या २७९ मे 'मज्जतो' का 'सजनो' तथा 'सायुज्या' का पाठभेद 'सायुज्य।' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

२७९ (१) सायुज्य : पांच प्रकार को मुक्ति होती है । सायुज्य में आत्मा परमात्मा में लीन होकर एकाकार हो जाता है ।

पाठभेद

श्लोक सख्या २८० 'अगच्छ' का पाठभेद 'आगच्छ' मिलता है ।

ततो विदितवृत्तान्तो मातृगुप्ताभिषेणनात् ।
निषिध्य सविधायातानमात्यानब्रवीद्वचः ॥ २८१ ॥

२८१. तदुपरान्त (सब) वृत्तान्त जानकर पूजाहेतु उद्यत हो, आये हुये, अमात्यों को निवारित कर बोला—

विक्रमादित्यसुप्तिसक्तमुच्छेत्तुं यतते मनः ।
मातृगुप्तं प्रति न नो रोषेणारूषितं मनः ॥ २८२ ॥

२८२. 'मेरा मन गर्वीले विक्रमादित्य को उच्छेद के लिये प्रयत्नशील है, मातृगुप्त के प्रति क्रोध से मेरा मन रूक्ष नहीं है।

अप्रियैरपि निष्पिष्टैः किं स्यात्क्लेशासहिष्णुभिः ।
ये तदुन्मूलने शक्ता जिगीषा तेषु शोभते ॥ २८३ ॥

२८३. क्लेश न सह सकने वाले एवं निष्पिष्ट शत्रुओं में क्या रखा है ? जो अपने उन्मूलन में समर्थ है, उन्हीं में विजयेच्छा शोभित होती है ।

यान्यब्जान्युदयं द्विषन्ति शशिनः कोऽन्यस्ततोऽसंमत-
स्तन्निर्माथिकरीन्द्रदन्तदलनं यन्नाम कोऽयं नयः ।
सामर्थ्यप्रथनाय चित्रमसमैः स्पर्धां विधूयोन्नता
ये तेषु प्रभवन्ति तत्र जहति व्यक्तं प्ररूढा रुषः ॥ २८४ ॥

२८४. 'जो कमल[1] चन्द्रोदय द्वेषी है, उनसे बढकर असम्मत (शत्रु) दूसरा कौन है ? उनका निर्मथन कर्ता करीन्द्र (हाथी) के दन्त का दलन जो चन्द्र करता है, यह कौन आश्चर्य है। उन्नत जन सामर्थ्य प्रख्यात करने के लिये, असम जनों के साथ स्पर्धा त्यागकर, जो उनमें समर्थ है, वहाँ उग्र क्रोध का प्रदर्शन करते है।

श्लोक संख्या २८३ में 'क्लेशास' का पाठभेद 'क्लेशस' मिलता है।

श्लोक संख्या २८४ में 'विधूय' का पाठभेद 'विधाय' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२८४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७०वा श्लोक है।

(२) कमल : कमल सूर्योदय के साथ मुकुलित होता है और सूर्यास्त के साथ उसके पटल बन्द हो जाता है। कुमुदिनी रात्रि मे चन्द्रोदय के साथ मुकुलित होती है। चन्द्र किरणो के तिरोहित होने और सूर्योदय के साथ ही उसकी पंखडी बन्द हो जाती है। इस प्रकार शशि कमल का प्रवृत्तित शत्रु है। कल्हण यहाँ शशि की उज्ज्वलता को गजदन्त अर्थात् हाथी दाँत से तुलना करता दाँत की उज्ज्वलता को श्रेष्ठ बताता है। इस प्रकार शशी को गज विरोधी चित्रित किया गया है। हाथी दाँत शशि रश्मि से चिनक जाता है। गज कमल का शत्रु माना गया है। वह सरोवर में प्रवेश करता है और कमल दल को नष्ट कर देता है। तरग ७ १०९९ तथा ८ २८५६, २८६५ तथा ३१४२ द्रष्टव्य है।

त्रिगर्तानां भुवं जित्वा स व्रजन्नथ भूपतिः ।
विक्रमादित्यमश्रृणोत्कालधर्ममुपागतम् ॥ २८५ ॥

२८५ त्रिगर्त भूमि विजित कर जाते हुए उसने विक्रमादित्य को दिवंगत हुआ सुना।

तस्मिन्नहनि भूभर्त्रा शोकान्निश्श्वसताऽनिशम् ।
नास्नायि नाशि नास्वापि स्थितेनावनताननम् ॥ २८६ ॥

२८६. उस दिन अवनतानन (अधोवदन) स्थित राजा ने शोक से निःश्वास लेते हुये, स्नान, भोजन एवं शयन भी नहीं किया। स्थिर रहा।

अन्येद्युर्भुवमुत्सृज्य कश्मीरेभ्यो विनिर्गतम् ।
शुश्राव मातृगुप्तं स नातिदूरे कृतस्थितिम् ॥ २८७ ॥

२८७. दूसरे दिन उसने सुना—मातृगुप्त भूमि त्याग, कश्मीर से बहिर्गत हो कर, बहुत दूर पर स्थित कहीं (समीप) ही है।

कैश्चिन्निर्वासितो मा स्विन्मदीयैरिति शङ्कितः ।
ययौ प्रवरसेनोऽस्य पार्श्वं मितपरिच्छदः ॥ २८८ ॥

२८८. मेरे किसी पक्षपाती द्वारा निर्वासित कर दिया गया हो, इस शंका से प्रवरसेन परिमित जनों के साथ उसके पास गया।

मैं अपने अनुभव से बता सकता हूँ कि कमल, हाथी दाँत, शशि को उपमा कल्हण ने सत्यता के आधार पर दी है। मेरे पास हाथी था। उसका दाँत बडा था। हम प्राय बालपन में हाथी के पास जाते थे। उसे ईख खाने को दिया जाता था। ईख में ही रोटी मिला दी जाती थी। उन दिनो मेरी हाथी दस सेर आटा की रोटी प्रतिदिन खाता था। रामलीला के पश्चात् अगहन मास में वह जमीन्दारी पर भेज दिया जाता था। मैं भी एक बार गया था। संयोग से मेरे एक बडे सरोवर में खूब कमल खिला था। हाथी उस ओर जाने के लिये उत्सुक हो गया। मैं उसपर बैठा था। महावत के मना करने पर हमारी जिदपर वह सरोवर में लाया गया। सरोवर में पैठते ही वह कमलो को उखाडकर फेंकने लगा। बाहर निकला तो सूंड में कमल को उखाडता लाया। रात्रि में मैंने एक बार देखा कि महावत चाँदनी रात में दाँत पर कपडा लपेट देता था। पूछने पर कोई जवाब नही दे सका। केवल यही कहा कि बाप दादो के समय से यह होता आया है। वह भी करता है। कल्हण का वह श्लोक पढने पर मुझे स्मरण आया कि दाँत चिनक न जाय इसलिये उसपर चाँदनो में कपडा लपेट दिया जाता था। परन्तु मैंने देखा है कि हाथी दाँत चिनक जाते हैं। उनको लम्बी चिनक पंक्ति बन जाती है। इससे हाथी दाँत का मूल्य कम हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या २८६ में 'निश्श्वस' का 'निश्वस' तथा 'नास्नायि' का पाठभेद 'नाम्नापि' और 'माम्नापि' मिलता है।

कृतार्हणं सुखासीनं ततः पप्रच्छ तं शनैः ।
विनयावनतो राजा राज्यत्यागस्य कारणम् ॥२८९॥

मातृगुप्त का राज त्याग

२८९. इसके पश्चात् विनयावनत राजा ने नमस्कार कर, सुखपूर्वक बैठे, उससे धीरे से राज त्याग का कारण पूछा ।

बभाषे तं क्षणं स्थित्वा स निश्वस्य विहस्य च ।
गतः स सुकृती राजन् येन भूमिभुजो वयम् ॥२९०॥

२९०. वह कुछ क्षण स्थिर हो, निःश्वास लेकर, विहँसकर, बोला—'हे राजन्! जिसके द्वारा मै राजा था वह सुकृती गत हो गया ।

यावन्मूर्ध्नि रवेः पादास्तावद् द्योतयते दिशः ।
द्योतयेन्नान्यथा किं न ग्रावैव तपनोपलः ॥२९१॥

२९१. 'जब तक मूर्धा पर सूर्य की किरणें रहती है, तब तक सूर्यकान्त मणि दिशाओं का ज्योतिर्मय करती है, अन्यथा नहीं, तो क्या वह पत्थर मात्र नहीं है ।

अथ राजाऽभ्यधात्केन राजन्नपकृतं तव ।
यत्प्रत्यपचिकीर्षायै तमीशमनुशोचसि ॥२९२॥

२९२. राजा ने कहा—'हे राजन्! आपका किसने अपकार किया है? जिसके प्रतिकार करने की इच्छा से उस स्वामी के लिये आप शोक करते है?

मातृगुप्तस्ततोऽवादीत्कोपस्मितसिताधरः ।
अस्मानुत्सहते कश्चिन्नापकर्तुं बलाधिकः ॥२९३॥

२९३. तदनन्तर क्रोध पूर्ण स्मिति से सिताधर मातृगुप्त बोला—'कोई बलाधिक हमारा अपकार करने में समर्थ नहीं है ।

नयता गण्यतामस्मानन्तरज्ञेन तेन हि ।
न भस्मनि हुतं सर्पिर्नोप्तं वा सस्यमूषरे[1] ॥२९४॥

२९४. 'अन्तरज्ञ उस राजा[2] (विक्रमादित्य) ने मुझे अधिपति बनाकर निश्चय ही भस्म में घृत का हवन तथा ऊसर में बीज वपन नहीं किया है ।

पादटिप्पणियाँ :

२९१ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ७१वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या २९२ मे 'यत्प्रत्यप' का पाठभेद 'यत्प्रत्यय' और 'तत्प्रत्यय' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

२९४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७२वाँ श्लोक है ।

(२) राजा : श्लोक का भावार्थ यह

उपकारं स्मरन्तस्तु कृतज्ञत्ववशंवदाः ।
पदवीमुपकर्तॄणां यान्ति निश्चेतना अपि[1] ॥२९५॥

२९५. 'कृतज्ञता से वशंवद उपकार स्मरण करने वाले निश्चेतन भी उपकारियों का अनुसरण करते हैं।

निर्वाणमनु निर्वाति तपन तपनोपलः ।
इन्दुमिन्दुमणिः किंच शुष्यन्तमनु शुष्यति ॥२९६॥

२९६. 'सूर्यकान्त मणि सूर्य के निर्वाण (अस्त) के पश्चात् शान्त हो जाता है। और इन्दुमणि इन्दु के क्षीण होने पर शुष्क हो जाना है।

पुण्यां वाराणसीं गत्वा तस्माच्छमसुखोन्मुखः ।
इच्छामि सर्वसंन्यासं कर्तुं द्विजजनोचितम् ॥२९७॥

२९७. 'अतएव शान्ति सुख का इच्छुक मैं पुण्य वाराणसी जाकर द्विज जनोचित सर्व त्याग करना चाहता हूँ।

मणिदीपमिवेश तमन्तरेणान्धकारिताम् ।
बिभेमि द्रष्टुमप्युर्वी भोगयोगे कथैव का ॥२९८॥

२९८ 'मणि दीप[1] निभ उस स्वामी के बिना, अन्धकार पूर्ण पृथ्वी को देखने में भी भयभीत होता हूँ। भोग योग का कहना ही क्या ?

इत्यौचित्यनिधेस्तस्य वाणीमाकर्ण्य विस्मितः ।
धीरः प्रवरसेनोऽपि व्याजहारोचितं वचः ॥२९९॥

२९९ इस प्रकार औचित्य विधान की वाणी सुनकर विस्मित धीर प्रवरसेन भी उचित वचन बोला—

प्रतीत होता है कि मातृगुप्त को विक्रमादित्य ने जिस महत्त्वपूर्ण स्थान पर पहुँचा दिया था वह उसके महानता तथा दूरदर्शिता का परिणाम था।

पाठभेद :

श्लोकसख्या २९५ में 'वशवदाः' का पाठभेद 'वशीकृता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

२९५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७३वाँ श्लोक है।

२९६ (१) राजतरगिणी सूक्तिसग्रह का यह ७६वाँ श्लोक है।

(२) सूर्यकान्त मणि : कविपरम्परा के अनुसार चिन्तामणि सूर्य की रश्मियों से ज्योतिर्मय होती है। इन्दुमणि शर्वरी में पिघल जाती है।

पाठभेद

श्लोक सख्या २९८ में 'कथैव का' का पाठभेद 'तु का कथा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) मणिदीप · कल्हण ने पुन. उल्लेख तरग ४:१५ में 'मणिदीपिकान्' किया है। मणि दीप का यहाँ अर्थ रात्रिकालीन प्रकाश है।

२९९ (१) आइने अकबरी में अबुल फजल ने नाम पीवीरसेन दिया है। आइने अकबरी के

अनुसार प्रवरसेन हिन्दुस्तान का एक सामान्य व्यक्ति था। एक धार्मिक व्यक्ति ने भविष्यद् वाणी की थी। वह राजा होगा। इस पर वह नगरकोट गया। वहाँ का अधिकारी बन गया। मातृगुप्त ने प्रवरसेन के लिये राज्य त्याग दिया। वह बनारस चला गया और साधारण जीवन व्यतीत करने लगा।

प्रवरसेन एक श्रेष्ठ राजा था। उसने काश्मीर की श्रीनगरी बसायी थी। कहा जाता है कि उसमे ३० लाख ६० हजार मकान थे। उसने बहुत दान किया था। प्रवरसेन कश्मीर को ग्यारह वर्षो की मालगुजारी बराबर मातृगुप्त के पास काशी भेजता रहा। मातृगुप्त धन गरीबों मे बाँटता था।

श्री विलसन ने प्रवरसेन का राज्यारोहण मूल संवत् के अनुसार सन् १२२-२३ ईस्वी देता है।

श्री एस. पी. पण्डित ने प्रवरसेन का राज्यारोहण काल सन् १२३ ई० तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक संवत् ३१८६ मास ११ तथा दिन प्रथम तथा राज्यकाल ६० वर्ष दिया है।

श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि संवत् ४०५४ तथा सन् २८४ ई० दिया है।

कलिगताब्द ३२७८ वर्ष ३ मास ट्रायर के अनुसार सन् १२३ वर्ष ८ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४३२ ई० ६ मास आता है।

हसन लिखता है—. ६) परवरसेन। राजा परवरसेन सन् १३५ विक्रमी में मातृगुप्त के रुखसत करने के बाद कश्मीर में आकर हकूमत के जब्त रब्त और फौज और रैय्यत की आसाइश में मशगूल हुआ। अदल व इन्साफ और बखशिश और मिहरबानी में मसरूफ रहकर अपने हमअसरो से बढ गया। दो तीन साल कमाल आजादो के साथ इस जगह का इन्तज़ाम दरजा कमाल तक पहुँचाकर कश्मीर फौज के साथ हिन्दुस्तान का इरादा किया। इतराफ हिन्दुस्तान के बहुत से मुल्क दरयाए शोर के किनारे तक अपने कब्जा मे ले आया। विक्रमाजीत का बेटा शीलादित्य जो कि मुखालिफो के हाथ से डरकर परेशानी के जंगल मे हैरान था। प्रवरसेन ने उसके सारे मुखालिफो को जंग के जरिया मगलूब और शिकस्त देकर शीलादित्य को अपने बाप के मौरूशी मुल्क पर तसलत बख्श दिया। और सिंहासन का तख़्त जो कि विक्रमाजीत के कब्जा में पड़ा था शिलादित्य से लेकर कश्मीर की तरफ लौटा। कुछ अरसा के बाद शीलादित ने राजा की पैरवी से सरकशी करके बगावत का झण्डा बुलन्द कर दिया। राजा प्रवरसेन अपने लश्कर के साथ हमलावर हुआ। और उसे कैदी बनाया। बुलन्द हिम्मती से उसको खता अता से बख्श कर अपने मौरूशी मुल्क पर बदस्तूर कायम किया। कुछ अरसा के बाद स्याह बख्ती के बायस उसने फिर सरकशी की। राजा ने उसपर दूसरी दफा कहर करके फिर मुआफ कर दिया।

कहते है कि शिलादित ने छह मर्तबा बगावत अखतयार की। प्रवरसेन ने हर दफा इसकी सरकोबी करके फिर उन्हे अता की कशरत से बख्श दिया। सातवी मरतबा राजा ने कमाल कहर से उसकी हकूमत को जब्त करके उस बागी को महबूस कर दिया। कुछ अरसा के बाद कमाल हिम्मत और दरया दिली से उसके गुनाहों से दरगुजर कर बदस्तूर अपने मुल्क की हकूमत पर मुख्तार कर दिया। कहते हैं कि अलो हिम्मत की बिना पर हर शहर बिना जंग व जदल से फतह करता वहाँ की हकूमत पर वारिसान मुल्क को बदस्तूर रखता था और अपनी मौरूशी मुमलकत से किसी को भी माजदिल न करता था। (पृ.२)

बलाद व डमसार के रब्त व जब्त के बाद चाहा कि खित्तः कश्मीर में एक दिल वजीर शहर (पृष्ठ ६६) आबाद करके अपना नाम जमाना की बपा पर यादगार छोड़े। इस बिना पर रूहानियो में से एक की रहनुमाई से श्रीनगर का शहर जो इस वक्त आबाद और मशहूर है कोह मारां के इर्द गिर्द काफी इमारतो के साथ जिनकी तादाद मुवर्खों ने छत्तीस

सत्यं विश्वभरा देवी भूपते रत्नसूरियम् ।
उत्पत्त्या द्योतते धर्म्यैः कृतज्ञैर्या भवादृशैः[1] ॥३००॥

३००. हे भूपते ! सत्य ही यह विश्वम्भरा देवी रत्न प्रसूता है, जो कि आपके तुल्य कृतज्ञों एवं धार्मिकों की उत्पत्ति से समुज्ज्वल है ।

अन्तरज्ञतया श्लाघ्यः कोऽन्यस्तस्मान्महीभुजः ।
इत्थ जडे जगत्येकस्त्वां यथावद्विवेद यः[1] ॥३०१॥

३०१. 'उस महीभुज से (अधिक) अन्य कौन अन्तरज्ञता के कारण श्लाघ्य है ? जिसने जड़ ससार में उस प्रकार आपको जाना ।

चिर खलु खिलीभूताः कृतज्ञत्वस्य वीथयः ।
धीर त्वयैव न त्वाशु सचारो यदि दर्श्यते[1] ॥३०२॥

३०२. 'हे धीर ! कृतज्ञता की वीथियां पूर्व में ही निःसार (नष्ट) हो जातीं, यदि आप शीघ्र ही संचार न करते ।

पाकश्चेन्न शुभस्य मेऽद्य तदसौ प्रागेव नादात्किमु
स्वार्थश्चेन्न मयाऽस्य किं न भजते दीनान्स्वबन्धूनयम् ।
मत्तो रन्ध्रदृशोऽस्य भीर्यदि न तल्लुब्धः किमेष त्यजे-
दित्यन्तः पुरुषाधमः कलयति प्रायः कृतोपक्रियः[1] ॥३०३॥

३०३ (अन्य से) उपकृत अधम पुरुष प्रायः अन्तःकरण में इस प्रकार सोचता है— 'आज मेरे शुभ का परिपाक (भाग्योदय) हुआ है, अन्यथा पूर्व में ही इसने क्यों नहीं प्रदान किया, यदि मुझसे इसका स्वार्थ नहीं है, तो क्यों न यह अपने दीन बन्धुओं को उपकृत करता है । छिद्रद्रष्टा मेरे द्वारा यदि इसे भय न होता, तो क्या यह लोभी त्याग करना, प्रदान करता ?

लाख लिखी है । आबाद किया । उसकी हकीकत पहले हिस्सा में गुजर गयी । साठ बरस की मुद्दत हकूमत करके जिन्दगी का बिस्तर लपेट लिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०० में 'धर्म्यैः का पाठभेद 'धन्यै.' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

३०० (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७५वां श्लोक है ।

३०१ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७६वा श्लोक है ।

३०२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७७वा श्लोक है ।

पाठभेद ,

श्लोक सख्या ३०३ में 'पक्रिय.' का पाठभेद 'पत्क्रिय ' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३०३ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७८वा श्लोक है ।

अत्युदात्तगुणेष्वेषा कृतपुण्यैः प्ररोपिता ।
शतशाखीभवत्येव यावन्मात्राऽपि सत्क्रिया[1] ॥३०४॥

३०४. 'पुण्यशीलों द्वारा अत्युदात्त गुणवानों पर (प्ररोपित) की गयी, यावन्मात्र भी सत्क्रिया शत शाखाओं वाली हो ही जाती है ।

तत्त्व गुणवतामग्र्यस्तत्त्वज्ञैश्चाभिनन्दितः ।
परीक्षितो मणिरिव व्यक्तं बहुमतः सताम् ॥३०५॥

३०५. 'वास्तव में तत्त्वज्ञों द्वारा अभिनन्दित गुणवानों में अग्रणी एवं स्पष्ट ही सज्जनों द्वारा बहु मान्य (बहुमत) (आप) परीक्षित मणि तुल्य हैं ।

तस्मादनुगृहाणास्मान्मा स्म त्याक्षीर्नरेन्द्रताम् ।
ममापि ख्यातिमायातु गुणवत्पक्षपातिता ॥३०६॥

३०६. 'अतएव हमें अनुग्रहीत करें । नरेन्द्रता का त्याग न करें ताकि मेरी भी गुणवत्पक्षपातिता प्रख्यात हो ।

पूर्वं तेनाथ चरमं मयाऽपि प्रतिपादितम् ।
भवान् पाणिप्रणयिनीं विदधातु पुनर्भुवम् ॥३०७॥

३०७. 'पूर्व में उनसे एवं अन्त में मेरे द्वारा भी प्रतिपादित भूमि को पुनः आप हस्तगत करे ।'

अव्याजौदार्यचर्यस्य श्रुत्वेति नृपतेर्वचः ।
कृतस्मितो मातृगुप्तः शनैर्वचनमब्रवीत् ॥३०८॥

३०८. उदारचर्या निष्कारण उदारता पूर्ण आचरण वाले इस नृपति की बात सुनकर मुस्कराकर मातृगुप्त शनैः शनैः बोला—

---

३०४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ७९वा श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३०५ मे 'भिनन्दिता' का पाठभेद 'पि नन्दिताः' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३०६ (१) गुणवत्पक्षपातिता : यह शब्द सुन्दर है । भावपूर्ण है । अतएव मूलरूप में यहाँ रखा गया है । इसका अभिप्राय यह है कि मैं भी गुणवानो के प्रति पक्षपात करता हूं यह ख्याति हो ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०७ मे 'पाणि' का पाठभेद 'प्रति' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३०७ (१) पुनर्भुवम् : पुनर्भुवम् यहाँ श्लिष्ट है । इसका अर्थ यहाँ दो विभिन्न भुवन अर्थात् लोक अथवा 'पुनर्भू' पुनर्विवाहित विधवा हो सकती है ।

यान्यक्षराण्यन्तरेण वाच्यं वक्तुं न पार्यते ।
का गतिस्तदु दाने मर्यादोल्लङ्घनं विना ॥३०९॥

३०९. 'जिन अक्षरों को कहे बिना अभिप्राय व्यक्त नहीं होता, उसे प्रकट करने मे मर्यादा उल्लघन के अतिरिक्त और कौन गति है ?

अतः परुषमप्यद्य किंचिदेव मयोच्यते ।
अव्याजार्जवमप्येतदार्यत्वमवधीर्यते ॥३१०॥

३१० 'अतएव आज मै कुछ परुष (शब्द) कहता हूँ यद्यपि (इससे) निष्कारण सरलतामयी भद्रता[1] तिरष्कृत हो रही है।

सर्वः स्मरति सर्वस्य प्रागवस्थासु लाघवम् ।
आत्मैव वेत्ति माहात्म्य वर्तमाने क्षणे पुनः ॥३११॥

३११ 'पूर्व स्थितियों मे सब लोग सभी लोगों के लाघव का स्मरण करते हैं, किन्तु वर्तमान क्षण में माहात्म्य (गौरव) को आत्मा ही जानती है।

पूर्वावस्था मदीया ते त्वदीया या च मे हृदि ।
ताभ्यां विमोहितावावां न विद्वोऽन्योन्यमाशयम् ॥३१२॥

३१२. "मेरी पूर्वावस्था आपके एव आपकी मेरे हृदय में है। उनसे विमोहित हम दोनो एक दूसरे का आशय नही जानते है।

राजा भूत्वा कथ मादृक्प्रतिगृह्णातु संपदः ।
कथमेकपदे सर्वमौचित्य परिमार्जतु ॥३१३॥

३१३. "राजा[1] होकर मुझ सदृश जन सम्पत्तियाँ कैसे ग्रहण करे ? सब औचित्य एकाएक (सहसा) कैसे परिमार्जित (नष्ट) कर दे ?

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३०९ मे 'यान्यक्षरा' का पाठभेद 'धान्यक्षारा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३१० (१) भद्रता : कल्हण ने 'आर्यत्व' शब्द का प्रयोग यहाँ किया है। उसका अनुवाद 'भद्रत्व' उचित बैठता है। मैंने आर्य का अर्थ यहाँ भद्र ही करना उचित समझा है।

३११ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८०वा श्लोक है।

३१३ (१) राजा राजा किसी का अनुग्रह द्वारा प्रदत्त दान सहसा नही ग्रहण करता। राजा दान देता है। दान लेता नहीं है। यह पुरानी परम्परा है। इस श्लोक मे यही भाव निहित है।

असाधारणमौदार्यमाहात्म्यं तस्य भूपतेः ।
भोगमात्रकृते मादृक्किं साधारणतां नयेत् ॥ ३१४ ॥

३१४. 'उस नृपति के असाधारण औदार्य माहात्म्य को भोग मात्र के लिये, क्या साधारण कर दूँ ?

अपि च स्पृहयालुः स्यां भोगेभ्यो यदि भूपते ।
म्रियमाणेऽभिमाने मे केन ते विनिवारिताः ॥ ३१५ ॥

३१५. 'भूपते ! यदि मै भोगों[1] के लिए इच्छा करूं, तो मेरे स्वाभिमान के रहते, उन्हें (भोगों को) कौन रोक सकता है ?

यन्ममोपकृतं तेन तद्विना प्रत्युपक्रियाम् ।
जीर्णमेवाधुनाऽङ्गेषु प्रभवत्वेष निश्चयः ॥ ३१६ ॥

३१६. 'उसने मेरा जो उपकार किया है, वह बिना प्रत्युपकार के यह निश्चय है कि अब (मेरे) अंगों में जीर्ण हो जायगा ।

या गतिर्भूभुजोऽमुष्य मया तामनुगच्छता ।
पात्रापात्रविवेक्तृत्वख्यातिर्नेया प्रकाश्यताम् ॥ ३१७ ॥

३१७. "उस भूभुज का जो आचरण था उसका अनुसरण करने वाले मुझे पात्रापात्र विवेकशीलता की ख्याति प्रकाश में लानी चाहिये ।

एतावत्येव कर्तव्ये यातेऽस्मिन्कीर्तिशेषताम् ।
भोगमात्रपरित्यागाद्विदध्यां सत्यसंधताम् ॥ ३१८ ॥

३१८. 'इतना ही कर्तव्य कर इसके दिवंगत हो जाने पर (कीर्ति शेष) अब भोग मात्र के परित्याग से अपनी सत्यसंधता सिद्ध करूँगा ।"

इत्युक्त्वा विरते तस्मिञ्जगाद जगतीपतिः ।
त्वदीया न मया स्पृश्यास्त्वयि जीवति संपदः ॥ ३१९ ॥

३१९. ऐसा कहकर उसके विरक्त हो जाने पर जगतीपति (प्रवरसेन) ने कहा—'तुम्हारे जीवित रहते, मैं तुम्हारी सम्पत्तियों का स्पर्श नहीं करूंगा ।'

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३१५ मे 'मे' का पाठभेद 'ते' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३१५ (१) भोग मातृगुप्त के मुख से कल्हण ने कहलवाया है । यदि वह भोग की आकाक्षा करता, तो उनका भोग विना स्वाभिमान त्याग किये कर सकता था । जैसा कि वह प्रवरसेन से पुनः राज्य प्राप्त कर सकता था ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३१७ में 'श्यताम्' का पाठभेद 'शताम्' मिलता है ।

अथ वाराणसीं गत्वा कृतकाषायसंग्रहः ।
सर्वं संन्यस्य सुकृती मातृगुप्तोऽभवद्यतिः ॥ ३२० ॥

३२०. अनन्तर सुकृती मातृगुप्त वाराणसी जाकर, सर्व त्याग पूर्वक, काषाय वस्त्र सग्रह कर, यती हो गया ।

राजा प्रवरसेनोऽपि कश्मीरोत्पत्तिमञ्जसा ।
निखिलां मातृगुप्ताय प्राहिणोद् दृढनिश्चयः ॥ ३२१ ॥

३२१. दृढनिश्चयी राजा प्रवरसेन ने भी सम्पूर्ण कश्मीरोत्पत्ति (राजस्व-लाभ) मातृगुप्त को भेजा।

स हठापतितां लक्ष्मीं भिक्षाभुक् प्रतिपादयन् ।
सर्वार्थिभ्यः कृती वर्षान्दश प्राणानधारयत् ॥ ३२२ ॥

३२२. कृती वह भिक्षुभुक् हठपूर्वक आगत लक्ष्मी को सर्व प्राथियों को देते हुये, दश वर्ष प्राण धारण किया ।

अन्योन्यं साभिमानानामन्योन्यौचित्यशालिनाम् ।
त्रयाणामपि वृत्तान्त एष त्रिपथगापयः[1] ॥ ३२३ ॥

३२३. परस्पर स्वाभिमानी एवं औचित्यशाली इन तीनों (विक्रमादित्य, मातृगुप्त, प्रवरसेन) का यह वृत्तान्त त्रिपथगा[2] का जल है ।

पादटिप्पणियाँ :

३२० (१) यती शाब्दिक अर्थ संन्यासी, त्यागी, आदि होता है । यम शब्द से यती बना है। आत्मनियन्त्रण, स्वनियन्त्रण, अपने पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति को यति किंवा यती कहते है। जैनियो में जो लोग गृहस्थ जीवन त्याग देते है उन्हे यती कहा जाता है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ३२१ में 'काश्मीरो' का पाठभेद 'कश्मीरो' मिलता है ।

श्लोक सख्या ३२२ में 'हठा' का पाठभेद 'हारा मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

३२३ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८१वा श्लोक है :

(२) त्रिपथगा गगा नदी है। कल्हण ने यहाँ पर अपने कवित्व का परिचय देते हुए सुन्दर उपमा दी है । त्रिपथगा (पवित्र गगा) की तीन पथ अर्थात् लोक है। स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल लोक। स्वर्ग से गगा चलकर मर्त्य लोक में आयी। पाताल लोक मे पहुँच कर गगा ने राजा सगर के पुत्रो को तार कर भगीरथ की तपस्या सफल की थी। त्रिपथगा की विमल, धवल धारा तुल्य ही तीनो राजा विक्रमादित्य, मातृगृप्त एव प्रवरसेन थे। महाभारत एव भागवत पुराण अध्याय ९ में गगावतरण की कथा काव्यमय पदो में दी गयी है।

राजा प्रवरसेनोऽथ नमयन्नवनीधरान् ।
अकृच्छ्रलङ्घ्याः ककुभो वृद्धस्य यशसो व्यधात् ॥ ३२४ ॥

राजा प्रवरसेन द्वितीय का अभियान :

३२४. राजा प्रवरसेन ने अवनीधरों (भूपालों) को झुकाते हुये, प्रवृद्ध यश द्वारा दिशाओं को विना कष्ट के लंघनीय बना दिया।

पीताब्धिलङ्घितोर्वीभृत्कुम्भयोनिरिवाऽनयत् ।
तस्य प्रतापः प्रभवन्भुवनानि प्रसन्नताम् ॥ ३२५ ॥

३२५. जिस प्रकार समुद्र पान एवं पर्वत लंघन कर्ता (कुम्भयोनि) अगस्त्य[1] जल निर्मल करते हैं उसी प्रकार उदय होते उसके प्रताप ने भुवनों को प्रसन्न किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२४ में 'व्यधात्' का पाठभेद 'न्यधात्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२५ (१) अगस्त्य : ऋग्वेद के अनुसार अगस्त्य मित्रावरुणों के पुत्र हैं। (ऋ० ७ ३३ १३) उर्वशी को देखकर मित्रावरुणों का रेत कमल पर स्खलित हो गया। उससे वसिष्ठ एवं अगस्त्य उत्पन्न हुए थे। ऋग्वेद में अगस्त्य के प्रचुर संख्या में सूक्त उपलब्ध हैं। उनका पैतृक नाम मान्य एवं मान्दार्य भी वेदों में मिलता है। (ऋ० १:१६५; १४—१५, १६६; १५, १८५; १०) अगस्त्य की पत्नी का नाम लोपामुद्रा है। वह विदर्भराज निमिराज की कन्या थी। अगस्त्य लोपामुद्रा संवाद वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध है। (ऋ० १:१७८ ४;) पुराणों के अनुसार मित्रावरुणों के वीर्य से इन्द्र के शाप के कारण कुम्भ में उत्पन्न हुए थे। अतएव इन्हें कुम्भयोनि कहा गया (मत्स्य० ६१ : २०१; पद्म० सृ० : २२ · २२ म० व० ९६; म० यो० १२२, १८५; म० रा० ३४४)।

अग का अर्थ है पर्वत। पर्वत स्तम्भन करने के कारण अगस्त्य नाम पड़ा था। यही इस नाम की व्युत्पत्ति है। (वा० रा० अ० ११) अगस्त्य ऋषि विन्ध्य पर्वत के गुरु थे। अगस्त्य दक्षिण दिशा गमन कर रहे थे। उस समय विन्ध्य ने नमस्कार किया। अगस्त्य ने उसे आशीर्वाद दिया कि वह उसी प्रकार विनत उनके लौटने तक पड़ा रहे। इसी समय से उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ का आवागमन आरम्भ हुआ। इस आवागमन को आरम्भ करने के लिये अगस्त्य ने अपना निवास स्थान काशी त्याग दिया। दक्षिण रामेश्वर में स्थित हो गये। काशीपति शंकर स्वयं अपने दिये अभिवचन के अनुसार दक्षिण रामेश्वर में निवास करने लगे। (म० व० : १०२, दे० भा० २०:३ ७ : आ०रा० सार १० ; स्कन्द० ४:१:४)।

अगस्य को दक्षिण का स्वामी तथा विजेता कहा गया है। उनका उल्लेख सर्वदा दक्षिण तथा श्रीलंका के सन्दर्भ में आया है। अगस्त्य ने (१) वराह पुराण में पशुपालोपाख्यान में 'अगस्त्य गीता',(२) पचरात्र की 'अगस्त्य संहिता'(३) स्कन्द पुराण की 'अगस्त्य संहिता' (४) 'शिव संहिता' तथा (५) भास्कर संहिता के 'द्वैध निर्णयतन्त्र' की रचना की है। (ब्रह्म० वै० २:१६) अगस्त्य विदर्भ निमिराज तथा काशिराज अलर्क के समकालीन प्रतीत होते हैं।

अगस्त्य का उदय वर्षा ऋतु के अंत का प्रतीक है। इस समय जल निर्मल हो जाता है। भूमि जल सोख कर हरीभरी हो जाती है। रा० त० २:१४० द्रष्टव्य है।

शुष्यत्तमालपत्राणि शीर्णताडीदलानि च
तत्सेनाऽर्णवतीराणि चक्रेऽरिस्त्रीमुखानि च ॥ ३२६ ॥

३२६. इसकी सेना ने समुद्र तट को सूखते तमाल पत्रों तथा शीर्ण ताड पत्रों से युक्त, और शुष्क तिलक अरिपत्नियों के मुखों को शुष्क तिलक एवं गलित ताड़कवाला[1] बना दिया।

स गङ्गाऽऽलिङ्गताङ्गस्य पूर्ववारिनिधेव्यधात् ।
सैन्येभमदनिष्यन्दैः कालि-दीसंगमश्रियम् ॥ ३२७ ॥

३२७. उसने गगा आलिंगित पूर्व समुद्र को युद्ध गजों के मद स्राव द्वारा कालिन्दी संगम शाभा प्रदान किया।

राधस्यपरपाथोधेः कटकैः स्पृष्टदिक्तटैः ।
चकारोत्पाटय सौराष्ट्रानसौ राष्ट्रविपाटनम् ॥ ३२८ ॥

३२८. इसने दिगन्तव्यापी सेनाओं द्वारा परपाथोधि (समुद्र) तटवर्ती सौराष्ट्र[1]-वासियों को उत्पाटित कर राष्ट्र ध्वंस कर दिया।

यशोऽर्थिनः पार्थिवेषु द्वेषरागबहिष्कृतः ।
ववृधे धर्मविजयस्तस्य क्षितिशतक्रतोः ॥ ३२९ ॥

३२९. पृथ्वीन्द्र यशःकांक्षी एवं द्वेष राग रहित इस पृथ्वीन्द्र का राजाओं पर धर्म-विजय[1] बढा।

नील मत पुराण अगस्त्य दर्शन पर्व का उल्लेख करता है। यह पूजा उस समय की जाती है जब सूर्य का योग कन्या राशि से होता है। दन मे उपवास रात्रि में पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजा का विधान है। (*742–747*)।

३२६ (१) **तमाल** : यहाँ श्लिष्ट है। कल्हण ने यहाँ बहुत उत्तम उपमा दी है। इस श्लोक में श्लेष तुल्ययोगिता आदि अलकारो का समावेश किया गया है। अतएव इसे ससृष्टि या सकर कहेंगे (टाडी आज भी पजाब में एक प्रकार के कर्णफूल अर्थात इयररिग को कहते हैं।)

तमाल का अर्थ तमाल वृक्ष के साथ ही साथ ललाट भी होता है। ताडीदल का भी अर्थ ताडपत्र तथा कर्णफूल होता है।

पादटिप्पणियाँ :

३२७. (१) **गंगा** . गगा का जल उज्ज्वल तथा यमुना का कुछ हलका काला होता है। तरग ७ १४७७ से इस श्लोक की उपमा तुलनीय है।

इतिहासकार विदेउद्दीन प्रवरसेन को बगाल तक पहुँचा देता है। वह कहता है कि बगाल में उसने 'ढाक' अर्थात् 'ढाक्का' के राजा 'वेहरसिंह' को जीत कर राज्य 'पलास सिंह' को दे दिया। वह शीला-दित्य का पुत्र था। लेखक ने इसे किसी प्रमाण पर आधारित नही किया है। पलास और ढाक दोनो एक ही वृक्ष के नाम हैं।

३२८. (१) **सुराष्ट्र** · कल्हण यहाँ अपने भौगोलिक ज्ञान का उदाहरण उपस्थित करता है। कल्हण ने निस्सन्देह भारत भ्रमण किया था। उसने जो भी भौगोलिक स्थिति दी है वह ठीक उतरी है। सुराष्ट्र अर्थात् वतमान सोराष्ट्र को वह समुद्र तट तथा पश्चिम दिशा में बतलाता है जो सर्वथा ठीक है। सौराष्ट्र को काठियावाड भी कहते हैं।

३२९. (१) **धर्मविजय** कल्हण ने यहाँ

वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।
राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥ ३३० ॥

३३०. इसने शत्रुनिर्वासित विक्रमादित्यात्मज प्रतापशील अपर नाम शीलादित्य[1] को उसके पैतृक राज्य पर बैठाया ।

सिंहासनं स्ववंश्यानां तेनाहितहृत ततः ।
विक्रमादित्यवसतेरानीतं स्वपुरं पुनः ॥ ३३१ ॥

३३१. स्व वंशियों का सिंहासन[1] जो अपहृत था उसे विक्रमादित्य के नगर से वह पुनः अपने पुर में लाया ।

धर्मविजय की चर्चा की है । अशोक ने 'भेरी घोष' के स्थान पर 'धर्मघोष' किया था । प्रवरसेन ने सैनिक विजय के स्थान पर धर्मविजय की बात उठायी । भेरी घोष सैन्य शक्ति का परिचायक है । सैन्य शक्ति पाशविक शक्ति का परिचायक है । रक्तपात का का जनक है । प्रवरसेन ने उसके स्थान पर धर्म विजय का नारा बुलन्द किया ।

धर्मविजय क्षत्रियो का धर्म कहा है । धर्म की रक्षा के लिए जो सघर्ष किंवा युद्ध होता है वह रक्तपात नही अपितु धर्म की स्थापना निमित्त होता है । महाभारत युद्ध को धर्मयुद्ध कहा गया है । क्षत्रियो के लिए भी न्याय के, धर्म के आचारादि के स्थान पर शस्त्र का आश्रय लेना अनुचित कहा गया है । यही प्राचीन भारतीय युद्ध परम्परा थी ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३३० मे 'न्यधात्' का पाठभेद 'व्यधात्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३३०. (१) शीलादित्य प्रतापशील उपनाम शीलादित्य मालवा के राजा शीलादित्य थे । हुयान्त्साग कहता है कि उसके भारत आगमन के ६० वर्ष पूर्व वह हुआ था । परोक्षरूप से उसे विक्रमादित्य का उत्तराधिकारी बताता है । प्रोफेसर श्री एम. मुल्लर शीलादित्य का अनुमानित समय सन् ५५० से ६०० ई० लगाते हैं ।

३३१ (१) सिंहासन : विक्रमादित्य के सिंहासन के सन्दभ में यह श्लोक कहा गया है । यह मत सर्व श्री ट्रोयर तथा लास्सेन पाश्चात्य इतिहासविदो का है । वह विक्रमादित्य का वही सिंहासन है जिसके सम्बन्ध मे अनेक गाथायें प्रचलित है । 'सिंहासन बत्तीसी' भी इसी सिंहासन से सम्बन्धित की गई है ।

बत्तीस पुतलियो अर्थात् अप्सराओ पर निर्मित सिंहासन के सम्बन्ध मे अनेक गाथायें है । यह प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य के पश्चात् यह सिंहासन उज्जैन मे नही था । किन्तु यह कहा जाता है कि राजा भोज ने उसे पुनः प्राप्त किया था । किन्तु इसका ऐतिहासिक सप्रमाण पता नही लगता ।

कल्हण ने यहाँ एक विचित्र प्रश्न उपस्थित कर दिया है । उसके अनुसार कश्मीर निर्मित राजसिंहासन विक्रमादित्य के नगर उज्जैन चला गया था । वह किस प्रकार श्रीनगर से अवन्ती पहुँचा इस पर कल्हण ने कहो नही प्रकाश डाला है । विक्रमादित्य अथवा उज्जैन के किसी राजा ने कश्मीर विजय नही किया था । किसी राजा के सन्दर्भ मे यह भी नही कहा गया है कि उसने विक्रमादित्य की अधीनता स्वीकार कर ली थी । भेंट मे सिंहासन विक्रमादित्य अथवा उसके पूर्वजो को दिया था । मातृगुप्त ने भेंट अवश्य विक्रमादित्य को भेजा था परन्तु

हेतूनुदीर्य्य विविधानमन्वान पराजयम् ।
सप्त वारान्स तत्याज जित्वा मुम्मुनिभूभुजम् ॥ ३३२ ॥

३३२. विविध हेतुओं को कहकर पराजय न मानने वाले राजा मुम्मुनि[1] को सात बार विजित कर उसने छोड़ दिया।

उसमें सिंहासन जैसे महत्त्वपूर्ण वस्तुका उल्लेख नहीं मिलता।

नादिरशाह भारत का तख्तताऊस उठा ले गया था। वह ऐतिहासिक घटना है। वह ईरान में आज भी मौजूद है।

एक यह सम्भावना हो सकती है। कश्मीर लकडी की नक्कासी के काम के लिये प्रसिद्ध है। भारत में आज भी वहाँ से टेबुल, कुर्सी, मेज, दीपदान, तस्तरी, आदि लकडी के सामान भारत के बडे शहरो मे बिकते हैं। कश्मीर में भी विक्रमादित्य अथवा उसके पूवजो के लिये सिंहासन बनाया गया होगा। वह उज्जैन भेजा गया होगा। किसी देश का सिंहासन विदेश अथवा पर राजा के यहाँ भेजना उसकी पराजय स्वीकार करने के समान है।

प्रवरसेन ने सम्भवत यह बात सुनी होगी। उसे बुरा लगा होगा अतएव वह सिंहासन उठा लिया होगा।

कश्मीर लकडी की कला में प्रवीण समझा जाता था। आज भी उसको वही ख्याति है। अप्सरा की मूर्ति पत्थरो पर, दीवालो तथा छज्जो के नीचे पत्थरों को सहारा देने के लिये लगायी जाती हैं। कुर्सियो तथा मेजो के पाया के स्थानपर मछली, सिंह, हरिण, स्त्री की मूर्ति काष्ठ अथवा पत्थर मे बना दी जाती है। सिंहासन को दैवी महत्त्व देने के लिये अप्सराओं की काष्ठ मूर्तियाँ सिंहासन के पाया के स्थान पर चारो ओर लगा कर सिंहासन को अत्यन्त सुन्दर बना दिया गया होगा।

३३२ (१) मुम्मुनि : यह अभारतीय शब्द है। किसी वश, जाति, किंवा कुल का नाम प्रतीत होता है। ललितादित्य की विजय यात्रा के सन्दर्भ मे उनका स्थान तुषार और भौट्ट क्षेत्रो के मध्य कहा गया है।

तरग ४ : १६७ तथा ५१६ में मुम्मुनि का उल्लेख कल्हण ने पुन किया है। श्लोक ४ १६७ से प्रकट होता है। ललितादित्य ने मुम्मुनि को तीन बार परास्त किया था।

जयापीड के सन्दर्भ में मुम्मुनि का पुन. उल्लेख (त० ४ ५१६) में कल्हण ने किया है। रात्रि में वे चाण्डालो के साथ पहरा देते देखे जाते हैं।

तुषार किंवा तुखार प्रदेश वर्तमान बदखशा है। भौट्ट स्थान निस्सन्देह लद्दाख है। राजतरंगिणी मे भौट्ट शब्द सर्वदा लद्दाख तथा लेह के निवासियो के लिये प्रयुक्त किया गया है।

मुम्मुनि को दरद जातीय समझना भ्रामक होगा। उनका उल्लेख कल्हण ने सर्वदा अलग एक जाति तथा भू अचल के रूप में किया है। दरदो तथा मुम्मुनो में भेद किया गया है। उन दिनो हूणो के त्रास के कारण जो कतिपय मूल तुर्क वशीय लोग थे वे कश्मीर राज्य के उत्तरी सिन्धु उपत्यका में आ गये होंगे। इस प्रकार वे कश्मीर के प्रभाव व क्षेत्र में आ गये थे।

कल्हण ने तरग / १०९० तथा ८ २१७९ में मुम्मुनि शब्द का उल्लेख किया है। वहाँ मुम्मुनि सगत का भ्राता कहा गया है। वह पहले विदेशियो की तालिका में राजपुत्र रूप से रखा गया है। वह पर्वतीय राजा था। राजा सुस्सुल की सहायता किया था। यह मुम्मुनि हिन्दू थे। सम्भव है काबुल के शाही वंश के समान मुम्मुनि भी कश्मीर में आकर बस गये थे। समाज में वे शको के समान मिल गये—

धाष्टर्यादथाष्टमे वारे हेतुमाख्यातुमुद्यतम् ।
धिक्पशून्बध्यतां सोऽयमित्यूचे नृपतिः क्रुधा ॥ ३३३ ॥

३३३. आठवीं बार धृष्टता पूर्वक जब कोई कारण कहने को उद्यत हुआ तब राजा ने क्रोध पूर्वक कहा—'पशु को धिक्कार है इसे बाँधो।'

अवध्योऽहं पशुत्वेन वीरेत्युक्त्वा भयोत्सुकः ।
मध्येसभं ननर्तास्य सोऽनुकुर्वन्कलापिनम् ॥ ३३४ ॥

३३४. भयभीत वह 'ओ वीर! पशु होने के कारण अवध्य हूँ।' यह कहकर सभा मध्य मयूर सदृश नृत्य करने लगा।

नृत्तं केकां च शिखिनो दृष्ट्वाऽस्मै द्रविणं नृपः ।
अभयेन समं प्रादात्तालार्धचरणोचितम् ॥ ३३५ ॥

३३५. नृप ने मयूर[1] की केका वाणी (सुन) एवं नृत्य देखकर इसे अभय के साथ नर्त्तकोचित द्रव्य प्रदान किया।

वसतोऽस्य दिशो जित्वा नप्तुः पैतामहे पुरे ।
कर्तुं पुरं स्वनामाङ्कं प्रथते स्म मनोरथः ॥ ३३६ ॥

३३६. दिशाओं को विजय कर, पितामह[1] के नगर में निवास करते, इस नृप को स्वनामांकित पुर निर्माण करने की अभिलाषा हुई।

मुम्मुनि के लिये कुछ विद्वानो ने कहा है कि वे मोमिन थे। मोमिन मुसलमान थे वह शब्द खलीफा के समान अमीरुल मोमनीन था। वह तर्क असंगत है। परन्तु राजतरंगिणी में तीन राजाओं के सन्दर्भ में मुम्मियन का नाम आया है। वे प्रवरसेन (३१८६ लौ० सं०) ललितादित्य (लौ०३७७६स.) तथा जयापीड (लौ०३८२८स०) थे। उनके काल में शताब्दियों का अन्तर है। अतएव मुम्मुनि कोई एक व्यक्ति नही था।

एक मत है कि यह शाही तथा खाकान के समान कोई रहे हो। ललितादित्य ने उन्हें उत्तर में तोषार तथा भौट्ट के मध्य जीता था।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३३३ में 'पशूत्य' का पाठभेद 'पशुर्व' मिलता हैं।

श्लोकसंख्या ३३५ में 'त्तालार्धच' का पाठभेद 'त्तालावच' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३३५ (१) मयूर नृत्य : मुम्मुनि ने मयूर नृत्य किया। यह कुछ विचित्र मालूम होता है। सम्भव है मुम्मुनि वंश किंवा गोत्र अथवा जाति में मयूर नृत्य प्रचलित हो या उसके वंश की विशेषता रही हो। दक्षिण के लोगों में भरत नाट्यम् अत्यधिक प्रचलित है जबकि उत्तर भारत में कथक नृत्य। उल्लास काल में मानव अपने मौलिक अकृत्रिम रूप में आ जाता है। संस्कार जन्य कार्य करना, गान एवं नृत्य अनायास वह करने लगता है। यही भाव इस श्लोक का है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३६ में 'प्रथते स्म' का पाठभेद 'पप्रथे स' मिलता है।

रात्रौ क्षेत्रं च लग्नं च दिव्यं ज्ञातुमथैकदा ।
स वीरो वीरचर्यायां निर्ययौ पार्थिवार्यमा ॥ ३३७ ॥

३३७. पार्थिव सूर्य, वह वीर एक बार क्षेत्र एवं दिव्य लग्न ज्ञात करने के लिये रात्रि में वीर चर्या को निकला ।

गच्छतः क्ष्मापतेस्तस्य मौलिरत्नाग्रबिम्बितः ।
बभार ताराप्रकरो रक्षासर्षपविभ्रमम् ॥ ३३८ ॥

३३८. गमन करते उस नृपति के मुकुर रत्नों के अग्र भाग मे प्रतिबिम्बित तारा निकर रक्षा सर्षप[1] तुल्य शोभित हुआ ।

अथानन्तचितालोकस्पष्टभीमतटद्रुमाम् ।
श्मशानप्रान्ततटिनीं पर्यटन्नाससाद सः ॥ ३३९ ॥

३३९. पर्यटन करते हुए वह ऐसी सरिता तट पर पहुंचा जहाँ प्रान्त भाग में श्मशान[1] था और अनन्त चिताओं के प्रकाश से तटवर्ती द्रुम स्पष्ट (भयकर) बीभत्स लग रहे थे ।

पादटिप्पणियाँ

३३६ (१) पितामह-नगर—यहाँ पितामह के नगर से अर्थ पुराधिष्ठान हैं। पुराधिष्ठान के लिये पादटिप्पणी श्रीनगर पृ ठ १३९-१४६ तथा रा० त० १:१०४, १२९, ३०६, ३९९, ५:२६७ द्रष्टव्य है ।

पाठभद.

श्लोकसख्या ३३८ में 'रत्नाग्र' का पाठभेद 'रत्नाङ्ग' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३३८ (१) सर्षप: पीली सरसो भुत, प्रेतादि बाधा तथा सर्पो को दूर भगाने के लिये मन्त्र पढकर गृह में अथवा सर्पों के स्थान पर फेंका जाता है। ताकि बाध्य दूर हो जाय। और सर्पादि भाग जायँ। जहाँ पीली सरसो नही मिलती वहाँ साधारण सरसो का ही प्रयोग किया जाता है ।

कश्मीर में रिवाज है कि सरसो बालको को टोपी के कपड़ो के नीचे रखकर सी दिया जाता है। बच्चो को नजर के साथ ही साथ प्रेत बाधा आदि नही लगती। वह पुरानी मान्यता है ।

३३९ (१) स्मशान—कल्हण ने इस स्थान का स्पष्ट उल्लेख नही किया है कि स्मशान कहाँ पर है। स्मशान का स्थान श्रीनगर में बदलता रहा था। किन्तु इतना निश्चय प्रकट होता है कि वह स्थान सरितातट पर था। सरिता के उस पार भूत था। जिसे सरिता के इस पार से राजा स्मशान की चिता-ज्वाला-प्रकाश में देख सकता था।

कल्हण ने तरग ७ श्लोक ३३९ में राजा उच्चल के दग्ध स्थान का उल्लेख करता है। यह स्थान वितस्ता तथा महासरित के सगम पर एक द्वीप पर था। श्रीवर ने जैन राजतरगिणी तरग १ सर्ग ५ श्लोक ५४ तथा ५६ में मारी नदी तथा मारी वितस्ता सगम का उल्लेख किया है। मारी वितस्ता का जहाँ संगम था वही यह स्मशान वर्तमान प्रथम पुल के कुछ नीचे था। इस प्रकार प्राचीन स्मशान के स्थान का निश्चित पता श्रीवर के उल्लेख से मिल जाता है। महासरित वितस्ता सगम, प्रतीत होता है, कालान्तरमे मारी सगम के रूप में व्यवहृत होने लगा था। कुछ विद्वानो का विचार है कि मारी, मर, महासरित,

ततस्तस्य सरित्पारे मुक्तसंरावमग्रतः ।
ऊर्ध्वबाहु महद् भूतं प्रादुरासीन्महौजसः ॥ ३४० ॥

३४०. तदनन्तर उस महौजस के सम्मुख नदी के पार ऊर्ध्व बाहु चीत्कार करता हुआ महान् भूत प्रादुर्भूत हुआ।

नृपतिस्तस्य दृक्पातैर्ज्वलद्भिः कपिशीकृतः ।
उल्काज्योतिःकृताश्लेषः कुलाद्रिरिव दिद्युते ॥ ३४१ ॥

३४१. उसके प्रज्वलित दृष्टिपातों से कपिशीकृत नृपति उल्का ज्योतियों से अलकृंत कुलाद्रि तुल्य प्रदीप्त हुआ।

तमथ प्रतिशब्देन घोरेणापूरयन्दिशः ।
अत्रासं विहसन्नुच्चैरुवाच क्षणदाचरः ॥ ३४२ ॥

३४२. भयकर प्रतिध्वनि से दिशाओं को व्याप्त करते हुए क्षणदाचर[1] ने उच्चाहास कर निर्भय नृपति से कहा—

संत्यज्य विक्रमादित्यं सत्त्वोद्रिक्तं च शूद्रकम् ।
त्वां च भूपाल पर्याप्तं धैर्यमन्यत्र दुर्लभम् ॥ ३४३ ॥

३४३. 'भूपाल ! विक्रमादित्य, सत्त्वशाली शूद्रक[1] एवं आपके अतिरिक्त अन्यत्र पर्याप्त धैर्य दुर्लभ है।

वसुधाधिपते वाञ्छासिद्धिस्तव विधीयते ।
सेतुमेत समुत्तीर्य पार्श्वमागम्यतां मम ॥ ३४४ ॥

३४४. 'वसुधापते ! इस सेतु को पार कर मेरे पास आओ तुम्हारी वाञ्छा सिद्ध करता हूँ।

माहुरी एक ही नदी है। परन्तु श्रीस्तीन का मत है कि माहुरी नदी मच्छीपुर परगना की मवुर नदी है। माहुरी का उल्लेख नीलमत (१३२०) में किया गया है।

३४२. (१) क्षणदाचर : क्षणदा का अर्थ रात्रि किंवा निशा होता है। क्षणदाचर का अर्थ रात्रि किंवा निशा में चलने वाला होगा। क्षणदाचर का प्रचलित अर्थ निशाचर है। राक्षस, निशाचर, क्षणदाचरादि तम शक्ति के प्रतीक हैं।

३४३. (१) शूद्रक : विक्रमादित्य के समान शूद्रक भी लोक साहित्यिक नायक है। कथा सरित्सागर (७८:५) द्रष्टव्य है।

इत्युदीर्य निजं जानुं रक्षः पारात्प्रसारयत् ।
तन्महासरितो वारि सेतुसीमन्तितं व्यधात् ।। ३४५ ।।

३४५. ऐसा कहकर राक्षस ने (उस) पार से जानु प्रसारित कर उस महासरित का जल सेतु विभक्त कर दिया।

अङ्गेन रक्षःकायस्य ज्ञात्वा सेतुं प्रकल्पितम् ।
वीरः प्रवरसेनोऽथ विकोशां क्षुरिकां दधे ।। ३४६ ।।

३४६ सेतु को राक्षस शरीर से निर्मित जानकर, वीर प्रवरसेन ने नग्न छुरिका[1] धारण कर लिया।

स तयोत्कृत्त्य तन्मांसं कृतसोपानपद्धतिः ।
अतरद्यत्र तत्स्थानं क्षुरिकाबल उच्यते ।। ३४७ ।।

३४७. वह उसका मास उससे काटकर सोपान मार्ग निर्मित कर, जहाँ पार किया, वह स्थान क्षुरिका[1] बल कहा जाता है।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ३४५ मे 'यत्' का पाठभेद 'यन्' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

३४६ (१) छुरिका : इसका अर्थ छोटी तलवार तथा छुरी भी होता है। कल्हण ने छुरिका शब्द का बहुत प्रयोग किया है। भारत के क्षत्रिय गण अन्य मध्य कालीन देशो के सैनिक वर्ग के समान दो कृपाण रखते थे। उनमें एक बडी तथा दूसरी छोटी होती थी। जापान के वीरकालीन पुरुष भी भारत के क्षत्रियो के समान ही सैनिक सहिता का अनुसरण करते थे। निस्सन्देह जापान मे तेरहवी शताब्दी तक यह प्रथा प्रचलित थी। बडी और छोटी तलवार वीरगण धारण करते थे।

मुसलिम काल मे छोटी तलवार ने खजर का स्थान ले लिया था। बडी तलवार कमर से बाईं तरफ लटकाते थे और खजर नाभि के पास पेटी अथवा कमरबन्द में खोस लेते थे। यह प्रथा अब और परिवर्तित हो गयी है। उत्सवों तथा भोजन के समय सैनिक अधिकारी केवल एक छोटी तलवार अर्थात् छुरिका कमर में अपने वर्दी के ऊपर वामभाग में लटका लेते हैं। मुख्यतः नाविक अधिकारियो में यह प्रथा सम्पूर्ण विश्व मे प्रचलित है। वे अपनी पुरानी परम्परा के अनुसार तलवार साथ रखते हैं।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३४७ में 'बल' का पाठभेद 'बाल' 'भाल' तथा 'बार' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४७ (१)क्षुरिका बल : वर्तमान खुदबल स्थान है। महासरित के उत्तरी तट पर है। बल स्थान को कहते हैं। कश्मीर के नामो के अन्त में बल स्थान वाचक नामो के अन्त मे लगा दिया जाता है जैसे पारबल, मारबल, पोखरबल। मै समझता हूँ कि हजरत बल का अन्तिम नाम बल स्थानवाचक था परन्तु वहाँ बाल रखा था अतएव कालान्तर में उसका नाम हजरत का बाल रखने के स्थान रूप में हजरत बल एवं बाल रख दिया गया। साधारण लोग कश्मीर में हजरत बल ही कहते हैं न कि हजरत बाल।

पार्श्वस्थं तं लग्नमुक्त्वा प्रातर्मत्सूत्रपातनम् ।
दृष्ट्वा पुरं विधेहीति वदद् भूत तिरोदधे ॥ ३४८ ॥

३४८. पार्श्वस्थ लग्न कहकर—'प्रातः मेरा सूत्रपान[1] देख कर नगर[2] निर्माण करो ।' यह कहते हुए भूत तिरोहित हो गया।

देव्या शारिकयाऽट्टेन यक्षेणाधिष्ठिते च सः ।
ग्रामे शारीटकेऽपश्यत्सूत्रं वेतालपातितम् ॥ ३४९ ॥

३४९. उस (राजा) ने शारीटक ग्राम में वैताल पातित सूत्र[1] देखा जो देवी शारिका[2] एवं यक्ष अट्टा[3] से अधिष्ठित था।

पादटिप्पणियाँ :

३४८. (१) सूत्रपातन : इसे सूत लगाना, सूत बाँधना कहते हैं। इसका प्रयोग विश्व में सर्वत्र इमारतो तथा सडको की रचना में चिह्न लगाने के लिये होता है। कल्हण ने इसका पुन उल्लेख तरग ५:५६ में किया है।

(२) नगर : यह नगर प्रवरपुर अथवा प्रवरसेनपुर था। प्राचीन श्रीनगर को पुनः मालूम पडता है राजा ने और विस्तृत किया। पुराने श्रीनगर से मिला ही उसने अपने नाम पर नगर बनवाया।

प्रायः सभी मुसलिम इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रवरसेन वर्तमान श्रीनगर का सस्थापक था यद्यपि वे यह भी कहते है कि श्रीनगर की रचना में अनेक राजाओ द्वारा अनेक बार परिवर्तन किये गये है।

मुसलिम शासन काल में श्रीनगर या प्रवरपुर कश्मीर कहा जाता था। कश्मीर जाने का अर्थ श्रीनगर जाना समझा जाता था।

बेरुनी के अनुसार नगर चार फर्लांग में विस्तृत था। सन् १८१९ ई० मे सिखो ने कश्मीर जीता तो पुराना नाम श्रीनगर रख दिया गया।

मूल श्रीनगर की स्थापना अशोक न की थी। वर्तमान श्रीनगर का स्थान राजा प्रवरसेन ने चुना था। नाम प्रवरसेनपुर रखा गया था। कश्मीर उपत्यका के मध्य में स्थित है।

वितस्ता नदी का पाट ८० गज है वितस्ता के दक्षिण तटपर पुराना नगर अधिक आबाद था। समुद्र की सतह से ५२५० फिट ऊँचा है। यहाँ का तापमान जनवरी में ३५ डिग्री तथा जुलाई मे ८० डिग्री होता है। वर्षा प्रति वर्ष यहाँ २७ इच होती है। नगर के बाहर प्रायः कबरिस्तान है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३४९ में 'शारीटके' का पाठभेद 'हारट्ठ' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३४९ (१) सूत्र : जिस स्थान पर सूत्र-लगा था वही पर प्रवरपुर की स्थापना राजा प्रवरसेन ने की। वही वर्तमान श्रीनगर है। श्रीनगर टिप्पणी पृष्ठ १३८ पर द्रष्टव्य है।

(२) शारिका देवी के कारण हरिपर्वत का नाम शारिका पर्वत पड गया है। यह श्रीनगर में ही एक प्रकार से नगर बढने के कारण आ गया है।

शारिका पर्वत पर सम्राट् अकबर ने दुर्ग निर्माण कराया था। यह किला भी अच्छी अवस्था में स्थित है।

पवत की ढाल पर शारिका देवी का तीर्थ स्थान है। मैं जिस समय पहली बार यहाँ पहुचा उस समय शारिका देवी तक पहुँचने के लिए राज्य सरकार की तरफ से पत्थर की सीढियाँ बनवायी जा रही थी।

भक्त्या प्रतिष्ठां प्राक्तस्मिन्निनीर्षौ प्रवरेश्वरम् ।
जयस्वामी स्वयं पीठे भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ।। ३५० ।।

३५० उसके भक्ति पूर्वक प्रवरेश्वर[1] की प्रतिष्ठा करने के पूर्व जयस्वामी[2] स्वयं यन्त्र भेदन कर पीठ पर आसीन हो गये।

सन् १९६२ में जब मैं दूसरी बार आया त सीढियाँ बन चुकी थी।

शिखर पर स्थित शारिका देवी के समीप पहुँचने के लिये जहाँ से सीढियाँ प्रारम्भ होती हैं वहाँ एक आधुनिक मन्दिर बना है। मन्दिर के बाहर शिवलिंग है। भीतर देवी की मूर्ति है। मन्दर के नीचे सडक के समीप पाँच या सात ब्राह्मणो के मकान है। यहाँ एक ढका हुआ हौज बना है। यहाँ से जनता पीने का जल प्राप्त करती है।

शारिका मन्दिर बाहर से देखने पर हरिपवत दुर्ग के अन्दर एक दुर्ग अथवा किला मालूम पडता है। राजा गुलाब सिंह ने कश्मीर विजय के पश्चात् इसका निर्माण कराया था।

शारिका देवी की यहाँ कोई मूर्ति नही है। एक शिला खण्ड खडा है। उस पर श्रीचक्र अंकित है। वह सिन्दू लेपन से इतना ढक गया है कि रेखायें स्पष्ट प्रकट नही होती।

पुजारियो का कथन है कि श्रीचक्र की रेखायें कभी-कभी स्वत उभड आती है। दिखायी पडने लगती हैं। मैंने चक्र के कोणो को गिनना चाहा। परन्तु कुछ को छोडकर अन्य सिन्दूर के मोटे स्तर से ढक गये है।

दूर से देखने में शिलाखण्ड का रूप शारिका पक्षी के आकार तुल्य लगता है। उस पर श्रीचक्र अंकित कर देव स्थान तथा मूर्ति का नाम शारिका रख दिया है।

शारिका माहात्म्य में एक कथा कही गयी है। देवी दुर्गा न मैना का रूप धारण कर लिया था। सुमेरु पर्वत से पवत खण्ड देवी अपने चचु से उठाकर लायी। वह दैत्यो के द्वार को बन्द करना चाहती थी।

दैत्य लोग नरक में निवास करते थे। परन्तु इस स्थान पर नरक जाने का द्वार अर्थात् मार्ग था। उसी द्वार पर पर्वत खण्ड रख दिया। दैत्यो का इस द्वार से निकलना बन्द हो गया। द्वार का मुख भी बन्द हो गया। देवी स्वय इस पर्वत पर निवास करने लगी। पर्वत का नाम हर पर्वत हो गया।

कथासरित्सागर ७३ : १०९ में इसका उल्लेख है।

(३) अट्टा : इस शब्द का उल्लेख राजतरंगिणी मे पुन नही मिलता। नीलमत पुराण में भी मैं इस शब्द को नही पा सका। अट्टा का हिन्दी अर्थ मचान होता है। स्तीन ने एक सुझाव दिया है कि अट्टा कवि भाषा में ऊँचे किंवा शृंग, शिखर के लिये यहाँ प्रयोग किया गया है। अट्टालिका ऊंचे कई मंजिले मकान को कहते हैं। अट्टमेलक एक मन्त्री का उल्लेख रा० ८.५७७ में कल्हण ने किया है।

३५० (१) प्रवरेश्वर : हरिपर्वत के मूल तथा जामा मसजिद, जो अब ज़ियारत बहाउद्दीन साहब के नाम से सुप्रसिद्ध, के मध्य होना चाहिये। यह स्थान सम्भवत श्रीनगर के मध्य में होगा। जियारत बहाउद्दीन साहब के समीप को घेरा जो पुराना कबरिस्तान है उस में मन्दिरो तथा देवस्थानो के अनेक अलकृत शिलाखण्ड आज भी लगे दिखायी देते हैं। उस के दीवाल तथा कबरो में वे लगे हैं।

कबरिस्तान के नैर्ऋत्य कोण में एक पुराना फाटक खडा है। वह बहुत ऊंचा है। चौडा भी काफी है। वह बडे शिलाखण्ड से बनाया गया है।

वेतालावेदितं लग्नं जानतो जगतीभुजा ।
स्थपतेः स जयाख्यस्य नाम्ना प्रख्यापितोऽभवत् ॥ ३५१ ॥

३५१. नृपति ने वेताल कथित लग्नवेत्ता स्थापित 'जय' के नाम से उसे प्रख्यात किया।

नगराप्रातिलोम्याय भक्त्या तस्य विनायकः ।
प्रत्यङ्मुखः प्राङ्मुखतां भीमस्वामी स्वयं ययौ ॥ ३५२ ॥

३५२. उसकी भक्ति के कारण नगराभिमुख हेतु पश्चिमाभिमुख विनायक भीमस्वामी[1] स्वयं पूर्वाभिमुख हो गये।

उसकी छत सम्भवत बहुत दिन पहले गिर चुकी है। ब्राह्मणो के मतानुसार यह फाटक किंवा तोरण द्वार प्रवरसेन मन्दिर का द्वार था। यही से प्रवरसेन राजा स्वर्ग गये थे। यह वही द्वार है जिसका उल्लेख त० ३ ७८ तथा विल्हण ने विक्रमाक-देवचरित्र ८ १०९ मे किया है। जहाँ कि प्रवरसेन के रग पथ का उल्लेख किया गया है। यह मन्दिर अथवा इसके पूर्व प्रवरसेन निर्मित मन्दिर का त० ३:९९ मे उल्लेख किया गया है।

(२) जयस्वामी : यहाँ पर प्रतिष्ठा की जो कथा कही गयी है वह तरग ३ ४५१ श्लोक की कथा से और स्पष्ट हो जाती है। वहाँ रणेश्वर तथा रण स्वामी की प्रतिष्ठा का घटना वर्णन की गयी है।

प्रवरसेन प्रारम्भ मे शिव का उपासक था। वह शिवलिंग मूर्ति स्थापित करना चाहता था। उसने प्रथम शिव प्रवरेश्वर की प्रतिष्ठा की थी। (त० ३: ३६४,३७०) अलौकिक घटना के कारण जहा शिव स्थापना की बात थी वही पर विष्णु भगवान् जयस्वामी की मूर्ति अवतरित हो गयी। प्रतिष्ठा स्थापना के नियमो के अनुसार प्रत्येक देवता की स्थापना पर यन्त्र भी भिन्न होता है। यह यन्त्र भूमिपर बनाया जाता है। इस प्रकार विष्णु की प्रतिष्ठा शिवपीठ पर नहीं हो सकती जबतक कि वह यन्त्र न हटा दिया जाय। (विष्णु धर्मोत्तरपुराण . ३) जयस्वामी नाम प्रवरसेन के शिल्पी जय के नामपर रखा गया था। वह लग्नवेत्ता थे जिसे वैताल ने बताया था।

जयस्वामी देवस्थान का उल्लेख केवल एक बार और त० ५.४४८ मे जयस्वामी विरोचन रूप से किया गया है। देवस्थान कहाँ था पता नही चलता। कल्हण ने इसके सम्भाव्य स्थान के विषय में भी कोई सकेत नही किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३५१ मे 'वेताला' का 'वेताल' तथा 'जयाख्यस्य' का पाठभेद 'जयास्यख्य' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५२ (१) भीमस्वामी : विनायक की पूजा अभी तक हर पर्वत अर्थात शारिका पर्वत के दक्षिण मूल के सीमावर्ती चट्टान पर भीमस्वामी गणेश नाम से होती है। यह सम्राट् अकबर के हरिपर्वत पर निर्मित किला के बच्छ दरवाजा के समीप है। कश्मीर के तीर्थों मे गणेश स्वामी का उल्लेख मिलता है।

बडशाह जैनुल आबदीन ने भीमस्वामी गणेश का नवीन देवस्थान श्रीवर के अनुसार निर्माण कराया था। यह जियारत मकदूम शाह के समीप है। (श्रीवर . ३ ३०७) पण्डित साहेबराम ने अपने तीर्थों में बडशाह के गणेश स्थान को मकदूम शाह के जियारत के समीप बताया है।

भीमस्वामी का दर्शन मैंने किया है। यह फाटक वे ठीक वाम पार्श्व में है। यहाँ तक सडक चली आती है।

मन्दिर के अन्दर एक भीमकाय चट्टान सिन्दूर से लिप्त मिलेगी। उसे देखकर मालूम होता है जैसे बडा सा सिन्दूर का ढोका रखा है। गर्मी में यह पिघलता सा लगता है। गणेश के आकार का मूर्ति नही दिखायी पडती। सिन्दूर के अन्दर छिप गयी है।

वह इतनी अधिक सिन्दूर मण्डित है कि यह कहना कठिन है कि मूर्ति का मुख दक्षिण है अथवा पश्चिम।

मुझे प्रतीत होता है कि यहाँ मूर्ति नही रही होगी। मुसलमान किसी गढी या बनी मूर्ति को बुत कहते हैं। पुरातन बाइबिल में भी पत्थर, लकडी आदि में किसी आकृति को बनाने का नाम ही मूर्ति है। मुस्लिम काल मे निश्चय ही प्राचीन मूर्ति खण्डित कर दी गयी होगी। उसके स्थान पर पर्वतीय शिलाखण्ड को गणेश नाम से सिन्दूर पोतकर पूजा होने लगी।

राजस्थान मे मैंने अनेक अनगढ पत्थरो तथा बडे टुकडो पर सिन्दूर लगा देखा है। भैरव आदि की मूर्ति न रखकर एक शिलाखण्ड रखकर उसपर सिन्दूर लगा देते हैं। राजस्थान भी मुस्लिम आक्रमणो का निरन्तर स्थान रहा है अतएव वहाँ भी यह प्रथा अपना ली गयी होगी।

मक्दूम शाह की जियारत हरिपर्वत पर सबसे भव्य इमारत है। राज्य सरकार की तरफ से आजादी मिलने के पश्चात् ऊपर तक जाने के लिये पत्थर की पक्की सीढियाँ बना दी गयी है। मैंने इस स्थान को ध्यानपूर्वक देखा। आस्तीन के समय से बहुत परिवर्तन हो गया है। मन्दिरो के ध्वन्सावशेष या तो हटा दिये गये है अथवा तोडकर उनका गिट्टी अथवा ढोका बनाकर इमारत या फर्म मे लगा दिये गये है।

इस जियारत के साथ खनखाह हैं। मैं जब पहुँचा था तो इमारत की बायी तरफ निर्माण कार्य हो रहा था। कोई इमारत या धार्मिक स्थान बनाया जा रहा था। वह जियारत निस्सन्देह हिन्दू मन्दिर के स्थानपर बनायी गयी है। खनखाह के पीछे मुझे बडी गोमुखीय प्रणाली मिली जिससे मन्दिर के अभिषेक का जल बाहर निकलता था और दर्शक उससे गिरता चरणामृत लेते थे।

मकदूम शाह के जियारत के दो तरफ एक मंजिला बरामदा बना है। वहाँ से श्रीनगर का दृश्य अच्छा दिखायी देता है। बरामदा के फर्सपर मन्दिर कलश का विशाल आमलक पडा दिखाया दिया। वही कलश का महापद्म देखा। दोनों के मध्य में आरपार छेद था। कलश ऊँचा मूल मे मोटा तथा ऊर्ध्व में पतला होता चला जाता है। इसलिये ऊपर से नीचे तक पत्थरों के क्रमो को संघटित रखने के लिये मध्य मे लोटा अथवा ताम्बा का मोटा छड डाला जाता है और यही क्रम पहले भी था।

सप्तर्षि :

गणेश के उक्त स्थान के वाम भाग से एक मार्ग हरपर्वत पर जाता है। यह सडक इस समय (शक १९६८) में कच्ची है। उसे कश्मीर राज्य की ओर से पक्की किया जा रहा है।

शारिका देवी के मार्ग में सप्तर्षि का स्थान पडता है। यहाँ भी चट्टान पर सिन्दूर लगा है। कथा है। इस स्थानपर सप्तर्षि का आगमन तथा निवास हुआ था।

नीलमत पुराणमें सप्तर्षि का स्थान सुमुख के समीप कहा गया है।

वराह च नृसिंह च बहुरूप वरप्रदम्।
सप्तर्षीणा तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा ॥

1159 = १२७० १२७१

❀ ❀ ❀

चित्रकूटमथारुह्य स्वर्गलोके महीयते।
तीर्थं सप्तऋषं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥

1263 = १२७६

सद्भावश्र्यादिका देव्यस्तेन श्रीशब्दलाञ्छिताः ।
पञ्च पञ्चजनेन्द्रेण पुरे तस्मिन्निवेशिताः ॥ ३५३ ॥

३५३. उस पंचजनेन्द्र[1] ने श्री शब्द लाञ्छित सद्भावश्री आदि पंच[2] देवियों को उस नगर में स्थापित किया ।

अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ।
गत्वा शतसहस्रस्य श्रेयान् सप्तर्षयः करः ।
1264 = १४७७

❀ ❀ ❀

श्राद्धं दानं तथा जप्यं स्नानं होमस्तथार्चनम् ।
सर्वमक्षयतां याति यत्कृतं तत्र पार्थिव ॥
1265 = १४७७ १४७८

* * *

विगाह्य पुष्करं तीर्थमतिरात्रफलं लभेत् ।
तीर्थं सप्तऋषीणां च वह्निष्टोमफलं लभेत् ॥
1343 = १५५८

पादटिप्पणियाँ :

३५३ (१.) पचजन : कल्हण ने राजा को यहाँ पचजनो का इन्द्र कहा है । पचजन शब्द जातियो का भी वाचक है । (क) ब्रह्मसूत्र शारीरक भाष्य के अनुसार चार वर्ण तथा पाँचवाँ बर्बर जाति को मिलाकर पचजन की सज्ञा दी गयी है । (ख) पाच वर्ग, यथा,—देव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग एव पित्र को मिलाकर पचजन कहा जाता है । (ग) एक मत है कि पंचजन शब्द पचायत के लिये प्रयुक्त किया गया है । पंचायत के सभासदो को पंच कहा जाता है । उनके सामूहिक वर्ग को सूचित करने के लिये पचजन को संज्ञा दी गयी है ।

(२) श्रीपंचदेवी मन्दिर श्री स्तीन ने इन मन्दिरो का पता लगाया था परन्तु उन्हें प्रामाणिक ढंग पर कुछ मिल नही सका । श्री पण्डित आनन्द कौल ने अपने 'आर्कियोलोजी रिमेन्स इन कश्मीर' के पृष्ठ २२ पर इस विषयपर प्रकाश डाला है ।

१ महाश्री : यह मन्दिर वितस्ता के चौथे पुल के अधोभागमें दक्षिण तटपर ईंटो की पाँच गुम्बदो की बनी एक इमारत है । बडशाह जैनुल आबदीन की माता की इसमे कब्र है । वह पूर्व कालीन महाश्री का मन्दिर प्रवरसेन द्वितीय का बनवाया है ।

मै अपने एक कश्मीरी ब्राह्मण मित्र के साथ इस स्थान पर आया । प्रवेश करते ही अहाता के द्वार को दोनो ओर ऊँचाई पर दीवाल मे बनी मूर्तियाँ खण्डित लगी थी । द्वार प्राचीन मन्दिर का बिरदावली कह रहा था । भीतर कबरिस्तान है । जैनुल आबदीन की कब्र एक चौकोर प्राकार के अन्दर है । इसी प्राकार के बाहर उक्त मन्दिर है । पुरातत्त्व विभाग की तरफ से इसकी मरम्मत की गयी है । मन्दिर में एक सिकडी अभी तक लटक रही है । मेरे मित्र ने कहा कि पूर्व मन्दिर का घण्टा इसमें लटकता था । जहाँ जैनुल आबदीन की मा की कब्र है वहीपर देवी का पीठस्थान रहा होगा । अथवा शिवलिंग रहा होगा । लटकती सिकडी से घण्टा या जलधारा का पात्र लगाया गया रहा होगा ।

उक्त अहाता किंवा मैदान का घेरा तीन ओर से मन्दिरो के भग्नावशेष पत्थरों से निर्माण किया गया है । इस समय वह बृहद् कबरिस्तान का रूप ले लिया है ।

उक्त मन्दिर के गर्भ गृह मे केवल एक ही कब्र सिकन्दर बुत शिकन की स्त्री अथवा बादशाह जैनुल आबदीन की मा की है । इस मन्दिर की प्रणाली आजतक यथावत् कायम है । उससे गर्भ गृह का जल चरणामृतस्वरूप बाहर निकलता था आज सात शताब्दियाँ बीत गयी इस प्रणाली ने जल-बिन्दुओ का स्पर्श न किया होगा ।

२. काली श्री : तीसरे तथा चौथे पुल वितस्ता के मध्य एक भव्य इमारत शाह हमदान की है। इस स्थान पर काली का पवित्र जलस्रोत है। प्रवरसेन द्वितीय ने इस स्रोतस्थान पर मन्दिर निर्माण कराया था। मन्दिर का नाम कालीश्री था।

इस समय इस महाल का नाम कलाशपुर है। यह शब्द कालीश्रीपुर अथवा कैलाशपुर का अपभ्रंश प्रतीत होता है। निस्सन्देह कैलाश अथवा काली का सम्बन्ध शिव से होता है।

यह मन्दिर सुलतान कुतुबुद्दीन (सन् १३७३—९४ ई०) ने नष्ट किया था। इस मन्दिर के ध्वंसावशेष से उसने खानख्वाह का शाह हमदान में निर्माण कराया था। यह दो बार अग्नि मे जल चुका है। पुन बनाया गया है।

स्थान अपनी प्राचीन गरिमा मे भव्य रहा होगा। लकडी की बहुत बडी इमारत बनी है। शाह हमदान के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रागण बडा है। प्रागण में पुराने शिलाखण्ड बिखरे तथा कही न कही लगे आज भी मैंने अपनी आँखो से देखा था।

यह स्थान हिन्दू मुसलमान दोनो द्वारा पूजित है। वितस्ता की तरफ कथा है कि हमदान खानखाह के पृष्ठ भाग से एक नाग अथवा जलस्रोत निकलता था।

जहाँ जलस्रोत का स्थान है वह घेरकर खानखाह का अंग बना दिया गया है। उसके द्वार पर आज भी कपडा पडा रहता है। ताकि कोई हिन्दू उसे देख न सके। यहाँ पर एक पीर किंवा मुन्तज़िम बैठा रहता है। इस लकडी की इमारत तथा वितस्ता के मध्य में चौतरा है। तत्पश्चात् वितस्ता जल तक जाने के लिए सीढियाँ बनी है।

नदी के तट पर शाह हमदान की इमारत के पुश्तापर एक बडा सिन्दूर का टीका लगा है। यही प्राचीन कालीश्री की स्मृति में हिन्दू पुष्प चढाकर पूजा करते हैं। नदी की धारा तक पत्थर की सीढियाँ बनी हैं। पुश्ता के नीचे काफी बडा स्थान चौतरानुमा बना है। उस पर आज भी हिन्दू खडे होकर पूजा तथा स्नान करते हैं। मैंने वहा स्वय पुष्प चढ़ाया है। दो एक हिन्दुओ को पूजा करते देखा था।

सिखो ने सन् १८१९ ई० में कश्मीर विजय की। सिख राज्यपाल सरदार हरी सिंह ने शाह हमदान को नष्ट करने की आज्ञा दी। हरी सिंह ने आदेश दिया। मन्दिर के स्थानपर मुसलिम जियारत आदि बनी है अतएव उसे मुसलमान वापस कर दें। उन्होने श्री फूल सिंह सैनिक अधिकारी को आज्ञा दी कि मसजिद उडा दी जाय। वितस्ता के पार पत्थर मसजिद घाट पर तोप लगा दी गयी।

मुसलमान शाह हमदान को नष्ट होते देखकर श्री बीरबल धर के मकान पर गये। उन्ही के बुलाने पर सिख सेना कश्मीर में आयी थी। श्री बीरबल के निवेदन पर यह ध्वन्स कार्य रोक दिया गया। पुश्ता की दीवाल पर हिन्दुओ ने सिन्दूर लगा दिया। उसी की पूजा उस समय से काली श्री के नाम से होती है।

३. सद्भावश्री कादी कदल के समीप जामा मसजिद के पश्चिम सद्भावश्री का मन्दिर था। उसे पीर हाजा मुहम्मद सुलतान कुतुबुद्दीन साहब की जियारत में बदल दिया गया है। यहा वे दफन किये गये थे।

४. लौकी श्री : श्रीनगर मे वितस्ता तटपर लोकीश्री का मन्दिर था। इस मन्दिर का घाट अब भी लोहागे पार कहा जाता है। यह शब्द लोकीश्रीपार का अपभ्रंश है।

५. पाचवा मन्दिर किस स्थान पर था पता नही चलता। उक्त मन्दिरो की शृंखला देखते यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे भी वितस्ता के दक्षिण तटपर होना चाहिये।

वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।
ख्याता ततः प्रभृत्येव तादृङ्नौसेतुकल्पना ।। ३५४ ।।

३५४. उस भूपाल ने वितस्ता (नदी) पर बृहत् सेतु[1] का निर्माण कराया उस समय से उस प्रकार का नौका द्वारा सेतु निर्माण ख्यात (प्रचलित) हुआ।

श्रीजयेन्द्रविहारस्य बृहद्बुद्धस्य च व्यधात् ।
मातुलः स नरेन्द्रस्य जयेन्द्रो विनिवेशनम् ।। ३५५ ।।

३५५. नरेन्द्र के मातुल जयेन्द्र ने जयेन्द्र विहार[1] का निर्माण कराया, और बृहद्[2] बुद्ध की स्थापना की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'तत.' का पाठभेद 'तदा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५४ (१) बृहत् सेतु—शाब्दिक अर्थ बडा पुल होता है। कल्हण ने इस का पुन उल्लेख त. ८ : ११७१ में किया है। इस सेतु के स्थान का निश्चयात्मक पता कल्हण नही देता। किन्तु पढने से प्रतीत होता है कि मक्षिका स्वामी (मायसुम) के पास इसे होना चाहिये था।

कल्हण राजा हर्ष के समय (रा० त० ७ : १५४८) तथा श्रीवर (१ ३ . ९६) में एक नाव के पुल का वितस्ता पर उल्लेख करता है।

वितस्ता पर आजादी (सन् १९४७ ई०) के पूर्व केवल लकडो के पुल विचित्र शैली के, बने थे। कश्मोर का पर्यटक उनसे अत्यन्त प्रभावित होता था। जैन कदल वितस्ता पर बने श्रीनगर पुल का जैनुल आबदोन बादशाह के समय में होना मिलता है। श्रीवर ने इसका उल्लेख तृतीय रा० त० १:३ १८, १९) में किया है। यह पुल पन्द्रहवी शताब्दी में वर्तमान था।

प्रतीत होता है कि इसके पूर्व श्रीनगर में नौका पाट कर पुल नही बनाया गया था। इसके निर्माण के पश्चात् नाव पाटकर स्थाय पुल बनाने की परम्परा प्रचलित हो गयी। अतएव ऐतिहासिक दृष्टि से इस पद का महत्त्व है।

३५५ (१) जयेन्द्र विहार : ह्वेनसाग चनी पयटक ने इस विहार में दो वर्षो तक (सन् ६३१-६३३ ई०) निवास किया था। उसे 'चे मे इन ता लो' के नाम से लिखा है। यह जयेन्द्र बिहार हो है। यहाँ उसने अनेक शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी।

यह बिहार श्रीनगर की जामा मसजिद के समीप था। सर वाल्टर लारेन्स का कहना है कि उसके समय में भी श्रीनगर मे लद्दाख से आने वाले बौद्ध लद्दाखी इस मसजिद के स्थान का पुराना नाम 'स्ते-त्सु लवक-कग' कहते थे। वे यहाँ की यात्रा प्राचीन बिहार होने के कारण करते थे। यहाँ पूजा करते थे।

(२) बृहद् बुद्ध—सम्भवत. बृहद् बुद्ध का विशाल प्रतिमा ठोस थी, जैसा कि ललितादित्य ने काम्य ताम्र अथवा अष्ट धातु को परिहासपुर में निर्माण कराकर प्रतिष्ठित किया था। (त.४:२०३)

तरंग ४ : १७१ से प्रकट होता है कि जयेन्द्र विहार भस्म हो गया था। बुद्ध की प्रतिमा राजा क्षेमगुप्त ने गलाकर सिक्का ढलवाया था। उसने पीतल की प्रतिमा से ढले सिक्को का आमदनी से क्षेम गौरीश्वर का मन्दिर निर्माण कराया था। श्रीनगर की अन्य बुद्ध प्रतिमाओ का उल्लेख राजा हर्ष (त. ७ . १०९७) तथा राजा सुस्सल के काल मे मिलता है। बृहद बुद्ध का उल्लेख चौदहवी

बुभोज सिंहलादीन्यो द्वीपान्स सचिवाऽकरात् ।
मोराकनामा मोराकभवनं भुवनाद्भुतम् ॥ ३५६ ॥

३५६ मोराक नामक वह सचिव भुवन में अद्भुत 'मोराक भवन'[1] बनवाया जिसने सिंहलादि द्वीपों का भोग किया था।

षट्त्रिंशद्गृहलक्षाणि पुरं तत्पप्रथे परा ।
यस्यास्तां वर्धनस्वामी विश्वकर्मा च सीमयोः ॥ ३५७ ॥

३५७. पूर्व काल में यह ख्याति थी—'इस नगर में छत्तीस लाख गृह हैं।' जिसकी सीमा पर वर्धन स्वामी[1] और विश्वकर्मा[2] है।

दक्षिणस्मिन्नेव पारे वितस्तायाः पुरा किल ।
निर्मितं तेन नगरं विभक्तैर्युक्तमापणैः ॥ ३५८ ॥

३५८. वितस्ता के दक्षिण तटपर उसने सुविख्यात बाजारों से युक्त नगर निर्मित कराया।

ते तत्राभ्रंलिहाः सौधा यानध्यारुह्य दृश्यते ।
वृष्टिस्निग्धं निदाघान्ते चैत्रे चोत्कुसुमं जगत् ॥ ३५९ ॥

३५९. वहाँ वे गगनचुम्बी राजप्रासाद थे जिनपर आरूढ होकर निदाघ (ग्रीष्म) के अन्त मे वृष्टि स्निग्ध एवं चैत्र[1] मास मे विकसित कुसुम पूर्ण जगत् देखा जाता था।

शताब्दी तक मिलता है। जोनराज के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है। (जौन राज० ४३०)

३५५ (१) मोराक भवन : इस स्थान का पता नही चलता। इस पर भी कही से प्रकाश नही पडता कि मन्त्री मोराक का आधिपत्य सिंहल मे किस प्रकार हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३५७ में 'षट्त्रिंशदगृह' का 'षट्त्रिंशगृह' तथा 'सीमयोः' का पाठभेद 'सोमयो' तथा 'स मय.' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

३५७ (१) वर्धन स्वामी . वर्धन स्वामी तथा विश्वकर्मा के मन्दिरो का पता नही चलता। वर्धन स्वामी का पुनः उल्लेख कल्हण ने त० ६ · १९१ में किया है।

(२) विश्वकर्मा : यह मन्दिर भी सूत्रपात की सीमा पर वर्धन स्वामी के समान होना चाहिये। इस मन्दिर का पुन उल्लेख नही मिलता। श्रीस्तीन का मत है कि त० ८ २४३८ श्लोक से इस मन्दिर की ध्वनि निकलती है।

कश्मीर में विश्वकर्मा को सर्व शिल्प प्रवतक माना गया है। उनकी पूजा का विधान भी किया गया है।

विश्वकर्मा तथा पूज्य सर्वशिल्पप्रवर्तक. ।
नील० 623 ॥

पाठभेद .

श्लोक सख्या ३५८ में 'दक्षिण' का पाठभेद 'दक्षिणे' मिलता है।

श्लोक सख्या ३५९ में 'चोत्कु' का पाठभेद 'वोत्कु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३५९. (१) चैत्र . यह चान्द्रमास का एक महीना किंवा मास है। इस मास में चित्रा नक्षत्र पर पूर्णचन्द्र स्थित होता है। यह मास मार्च एव अप्रैल

तद्विना नगरं कुत्र पवित्राः सुलभा भुवि ।
सुभगाः सिन्धुसंभेदाः क्रीडावसथवीथिषु ॥ ३६० ॥

३६०. पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहाँ क्रीड़ागृह[1], पथों के तट तथा पवित्र एवं सुन्दर नहरें सुलभ हो सकती हैं ?

मास में पडता है। क्योकि चान्द्रवर्ष गणना के अनुसार प्रति तीसरे वर्ष मल मास अर्थात् एक मास और वर्ष में जुट जाता है अतएव सौर वर्ष के अनुसार इसका समय अस्थिर रहता है।

चैत्रमास का कश्मीर मे बडा महत्त्व है। प्रथम दिन चैत्र से संवत् का आरम्भ होता है। प्रथम दिन चैत्र शुक्लपक्ष को ब्राह्मणो को वस्त्र, अलंकार, मुद्रा, तथा रत्न दान करने का पर्व माना जाता है। चैत्र में श्री पंचमी के दिन लक्ष्मी पूजन का माहात्म्य है।
(नी० 644—646)

कश्मीर मण्डल की देवी कश्मीरा को प्रतिमा को स्नान पूजा आदि करने का विधान किया गया है। चैत्र शुक्ल षष्ठी को चैत्र षष्ठी का पर्व मनाया जाता है। इस दिन स्कन्द की पूजा होती है। यह दिन बालको के स्वास्थ्य के साथ सम्बन्धित किया गया है। चैत्र नवमी को भद्रकाली की पूजा पुष्प, गन्ध एवं नैवेद्य से की जाती है। चैत्र शुक्ल एकादशी को वास्तु देव की पूजा की जाती है। चैत्र द्वादशी को वासुदेव की पूजा का दिन है। चैत्र त्रयोदशी को मदनयात्रा उत्सव मनाया जाता है। कामदेव का छवि वस्त्र बनाया जाता है। इस दिन पति अपनी पत्नी को स्नान कराता है। चैत्र सुदी पन्द्रह को पिशाच प्रयाण का उत्सव मनाया जाता है। निकुम्भ ने इस दिन वालुकार्णव में अभियान करता पिशाचो के निवास स्थान पर आक्रमण किया था। पिशाच की मृत्तिका प्रतिमा बनायी जाती थी। उसकी पूजा प्रत्येक गृह मे मध्याह्न तथा चन्द्रोदय काल मे की जाती थी। नीलमत पुराण ने इस प्रकार सम्पूर्ण चैत्र मास मे प्राय प्रत्येक दिन को पूजा तथा उत्सव का दिन निश्चित कर दिया है। (नी० 644-667)

•१

पाठभेद

श्लोक सख्या ३६० में 'सुभगा.' का पाठभेद 'सुलभाः' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३६० (१) क्रीड़ा गृह एवं नहरें : कल्हण का यहाँ तात्पर्य डल लेक अर्थात् श्रुवेश्वरी सर तथा अंचर लेक मे निकलने वाली अनेक नहरो से है जो श्रीनगर मे फैली है। वे श्रीनगर के केन्द्र तक चली गयी है। इन नहरो पर बाजार तथा मकान आदि अब भी बने है। हाउस बोट नहरो में लगी रहती हैं। जहाँ बिजली का प्लग तटवर्ती बिजली के खम्बो से लगाकर पूरा हाउस बोट विद्युत्मय कर दिया जाता है। यह नहरें बेनिस की नहरो के समान यातायात तथा परिवहन का काम करती है। शाकसब्जी तथा अन्य सामान बेचने वाले नावो पर सामान बेचते हैं। थाईलैण्ड के बैंकाक नगर में भी नहरो में घूमती नावो पर बाजार लगा दिखायी देता है। मुझे दोनो स्थानो की साम्यता देखकर आश्चर्य हुआ।

कल्हण ने यहाँ 'पवित्र' शब्द का प्रयोग किया है। ये नहरें अब पवित्र नही कही जा सकती। आबादी बढ जाने के कारण, तथा हाउस बोटो की संख्या अत्यधिक होने और पर्यटको की सख्या लाखो से ऊपर प्रति वर्ष पहुँचने के कारण नहरें गन्दी रहती हैं। मल मूत्र तथा गन्दगी सब नावो हाउस बोटो तथा तटवर्ती मकानो से निकलकर नहरो में जाती है। अतएव उन्हें आज पवित्र कहना पवित्रता का उपहास करना होगा।

कल्हण के समय नहरें साफ रही होगी। पवित्र शब्द श्रीस्तीन के मतानुसार काव्यमय पद बनाने के लिये कल्हण ने प्रयोग किया है। परन्तु मै समझता

दृष्टः क्रीडानगोऽन्यत्र न मध्येनगरं क्वचित् ।
यतः सर्वौकसां लक्ष्मीः संलक्ष्या खपथादिव ॥ ३६१ ॥

३६१. कहीं नगर मध्य क्रीड़ा पर्वत[1] नहीं देखा गया, जहाँ से आकाश तुल्य-सब गृहों की शोभा लक्ष्य हो ।

है कि कुछ नगरें अपने तटों पर स्थित देव मन्दिर विहारों, सत्रों, मठों, एवं शालाओं, घाटों तथा साधु सन्तों के शिविरों के कारण अवश्य पवित्र मानी जाती रही होंगी । पवित्र स्थानों के सामीप्य के कारण उनके साथ पवित्र विशेषण जोड देना अस्वाभाविक नहीं मालूम होता ।

३६१ (१) पर्वत : यहाँ पर्वत का अर्थ हरि पर्वत किंवा शारिका पर्वत लगाना चाहिये । इस के शिखर से श्रीनगर तथा काश्मीर उपत्यका का विहंगम दृश्य मिलता है । कल्हण निश्चय ही यह दृश्य अनेक बार देखकर, मुग्ध हो गया होगा । उसका कवि-हृदय रह-रह कर इस दृश्य का मनोहर वर्णन करना चाहता है ।

शारिका पर्वत एक प्रकार से कश्मीर उपत्यका के मध्य में शिवलिंग स्वरूप स्थित है । कश्मीर उपत्यका को यदि अर्घा मान लें तो यह पर्वत शिवलिंग तुल्य लगेगा । अर्घा के चंचल जल ही डल, अचर, उलर लेक तथा अनेक सरोवर हैं । अर्घा से बहना जल वितस्ता, सिन्धु तथा अनेक स्रोतस्विनियों की धाराएँ हैं । हरपर्वत के ऐतिहासिक महत्व के स्थान से मुझे वह दृश्य अच्छा लगा ।

इस तरंग के ३३९–३४९ श्लोक इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं । जहाँगीर हरि पर्वत के सन्दर्भ में लिखता है ।

'इस्लाम धर्म के प्रकट होने के पूर्व काल के ऊँचे मन्दिर अभी तक वर्तमान हैं जो सब पत्थर के हैं । और सब मे छत तक चालीस चालीस मन के पत्थर काट कर एक दूसरे पर रखकर बनाये गये हैं ।

नगर के पास एक पर्वत है । जिसे कोई मारान और कोई हरिपर्वत कहते हैं । पर्वत के पूर्व तरफ झील है जिसका घेरा ६॥ कोश है ।

हमारे पिता (अकबर) ने आज्ञा दी थी कि एक दृढ दुर्ग पत्थर चूने का बनाया जाय । वह इस प्रार्थी के राजकाल में प्राय पूरा हो गया । जिससे छोटा पर्वत दुर्ग के अन्दर आ गया है । और इसके चारों ओर चहार दीवारी खींची गयी है । भीतर दुर्ग के पास ही महल व एक छोटा उद्यान है । जिसमें एक छोटी इमारत है । जहाँ हमारे श्रद्धेय पिता बैठा करते थे । इस समय वह स्थान बहुत बुरी हालत में है गिरता दिखायी पडा । वह हमारे किबला तथा दृश्य देवता का स्थान है । जहाँ वह बैठा करते थे । और इस प्रार्थी के लिये वास्तव में सिजदा करने का स्थान है । इसलिये इस प्रकार इसकी जीर्णता हमें अनुचित ज्ञात हुई । इस लिये मैंने मोतमिद खाँ का जो हमारी प्रकृति को समझने वाला है आज्ञा दी कि इस छोटे बाग को ठीक करने का तथा इमारतों की मरम्मत कराने का पूरा प्रयत्न करे । थोडे ही समय में उसके विशेष प्रयत्नों से इन सब में नई सुन्दरता आ गयी । उद्यान में ३२ गज चौकोर चबूतरे पर तीन खण्ड का एक ऊँचा सफ. बनवाया गया । और इमारत को मरम्मत कराकर उसमें उस्तादों के बनाये चित्र लगाये, जिससे वह चीन की चित्रशाला की ईर्ष्या वस्तु हो गयी । हमने इस उद्यान का नाम नूरे अफज़ा रखा ।

वैतस्तं वारि वास्तव्यैर्वहत्तुहिनशर्करम् ।
ग्रीष्मोग्रेऽह्नि स्ववेश्माग्रात्क ततोऽन्यत्र लभ्यते ॥ ३६२ ॥

३६२. वहाँ के निवासी ग्रीष्म के उग्र दिन में अपने गृह के सामने से प्रवाहित तुहिन खण्ड मय वितस्ता वारि प्राप्त करते थे । वहां के अतिरिक्त और कहां प्राप्त हो सकता है ?

प्रतिदेवगृहं कोशस्ते तस्मिन्नर्पिता नृपैः ।
सहस्रशः शक्यते यैः क्रेतुं भूः सागराम्बरा ॥ ३६३ ॥

३६३. उस नगर में राजाओं ने प्रति मन्दिर उतना कोश प्रदान किया, जिनसे सहस्र बार सागराम्बरा धरा खरीदी जा सकती थी ।

पुरे निवसतस्तस्मिंस्तस्य राजप्रजासृजः ।
शनैः साम्राज्यलाभस्य षष्टिः संवत्सरा ययुः ॥ ३६४ ॥

३६४. उस नगर में निवास करते प्रजासृज राजा के साम्राज्य लाभ के साठ वर्ष व्यतीत हो गये ।

ललाटे शूलमुद्राङ्के जराशुक्लाः शिरोरुहाः ।
तस्य शम्भुभ्रमासङ्गिगङ्गाम्भोविभ्रमं दधुः ॥ ३६५ ॥

३६५. उसके शूल मुद्रांकित ललाट पर जरा के कारण श्वेत केश शिव के भ्रम से आलिङ्गित गंगा जल की शोभा धारण कर रहे थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६२ मे 'वहत्तु' का 'वृहत्तु' 'ग्रीष्मोग्रे' का 'ग्रोष्मोष्णो' 'ग्रोष्मोग्रे' तथा 'स्वत ततो' का पाठभेद 'स्कुतो' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

३६२ (१) वारि : कल्हण यहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में कश्मीरियों के शीतल वारि अर्थात् जल ग्रहण-प्रियता का उल्लेख करता है । ग्रीष्म का पुन उल्लेख त० ८ १८६३ में किया है ।

पादटिप्पणियाँ

३६५ (१) शूल मुद्रांकित : शिव उपासक ललाट पर त्रिपुण्ड लगाते हैं । दोनों भ्रू के मध्य ललाट पर तिलक के स्थान पर शैव लोग त्रिशूलाकार तिलक चन्दन अथवा भस्म का लगाते हैं । यही यहाँ पर अभीष्ट है ।

(२) गंगाजल : इस पद में निदर्शन अलंकार है । गंगा जल की पवित्र धारा उज्ज्वल होती है । श्वेत केश उज्ज्वल होते हैं । गंगा हर के मूर्धा से ललाट पर गिरती है । यहाँ राजा का उज्ज्वल केश भी उसको मूर्धा से ललाट पर गिरता है । दोनों की तुलना कल्हण ने देकर अपनी काव्य व्यंजना का उत्तम उदाहरण उपस्थित किया है ।

गंगा का जल उज्ज्वल एवं यमुना का नीला होता है । गंगा जल का सर्वत्र वर्णन उज्ज्वल, धवल आदि विशेषणों से किया गया है । गंगा की उज्ज्वलता एवं यमुना की नील नीलिमा का भव्य दर्शन प्रयाग पर होता है । वहाँ स्पष्ट दिखायी देता है । दोनों जलों के रंगों में कितना अन्तर है । इन दोनों धाराओं के मध्य एक मलिन उज्ज्वल जल पंक्ति उज्ज्वल तथा नील जल मिल जाने के कारण बनती है । यही त्रिवेणी है ।

अथाश्वपादेनेशाननिदेशात्तत्क्षणागतः ।
काश्मीरिको जयन्ताख्यो द्विजन्माऽयोजि पार्श्वगः ॥ ३६६ ॥

३६६. अश्वपाद ने ईशान निर्देश पर तत्क्षण आये काश्मीरी जयन्त नामक विप्र को जो कि समीप में था नियुक्त किया।

श्रान्तोऽस्यध्वन्य नान्यस्माद्देशात्तेऽभिमत भवेत् ।
राज्ञे प्र[illegible]स्य लेख एष प्रदर्श्यताम् ॥ ३६७ ॥

३६७. 'पथिक' तुम [illegible] देश (स्थान) से तुम्हारा अभिमत (वाञ्छित) [illegible] लेख राजा प्रवरसेन [illegible] को दिखाओ।

इत्युक्त्वाऽर्पितलेखोऽसावसमथः पथः [illegible] पृथून् ।
गन्तु प्रस्थानखिन्नोऽस्मि सद्यस्तेनेत्यग[illegible]त ॥ ३६८ ॥

३६८ यह कहकर उसे लेख अर्पित करने पर उस (जयन्त) ने इस प्रकार कहा— "यात्रा से श्रान्त मैं सद्य. अधिक मार्ग चलने में असमर्थ हूँ।"

स्नाह्यत्र तावत्त्वं स्पृष्टो द्विजः कापालिना मया ।
उक्त्वेति तेन क्षिप्तोऽसावासन्ने दीर्घिकाजले ॥ ३६९ ॥

३६९. 'तुम द्विज, मुझ कापाली द्वारा स्पृष्ट हो, अतएव 'आज अत्र स्नान करो'— यह कहकर अश्वपाद ने समीपवर्ती दीर्घिका में इसे फेंक दिया।

उन्मीलितेक्षणोऽद्राक्षीत्स्वं स्वदेशादथोत्थितम् ।
तस्थुषश्चार्चने राज्ञा भृत्यान्व्यग्राञ्जलाहृतौ ॥ ३७० ॥

३७०. आँख खुली तो उस (जयन्त) ने अपने को स्वदेश (कश्मीर) में खड़ा (उत्थित) एवं अर्चनारत राजा के भृत्यों को जल लाने में व्यग्र देखा।

स्वमावेदयितु नद्या नीयमाने नृपान्तिकम् ।
अव्याक्षिप्तोऽक्षिपल्लेखं स स्नानकलशे ततः ॥ ३७१ ॥

३७१. तदनन्तर स्व को विदित करने के लिये, नृप के निकट नदी से ले जाते हुए स्नान कलश में लेख अविलम्ब डाल दिया।

प्रवरेश स्नापयता स्रस्तं तत्कलशात्पुनः ।
राज्ञा लेखं वाचयित्वा जयन्तः प्रापितोऽन्तिकम् ॥ ३७२ ॥

३७२. प्रवरेश (लिंग) का स्नान कराते हुए, राजा ने कलश निपतित, लेख को वाच कर, जयंत को समीप बुलाया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६६ में 'निदे' का 'निद' तथा 'श्मीरिको' का पाठभेद 'श्मीरको' मिलता है।

श्लोक संख्या ३६७ में 'ध्वन्य' का पाठभेद 'ध्वनि' तथा 'शात्ते' का पाठभेद 'शतो' मिलता है।

कृतं कृत्य महद्दत्त भोगा भुक्ता वयो गतम् ।
किमन्यत्करणीयं न एहि गच्छ शिवालयम् ॥ ३७३ ॥

३७३. "कृत किये, महान् दान किया, भोगों का सभोग किया, आयु गत हो गयी, तुम्हें और क्या करणीय है[१] आओ ! शिवालय (शिवलोक) चलो ।"[२]

ततस्तं वृत्तसंकेतः संतोष्याभिमतार्पणात् ।
भित्त्वा तमश्मप्रासाद जगाहे विमलं नभः ॥ ३७४ ॥

३७४. तद् उपरान्त संकेत को जानकर अभिमत (वाञ्छित धन) प्रदान द्वारा उसे (जयन्त को) सन्तुष्ट कर उस पाषाण प्रासाद का भेदन कर, विमल आकाश में प्रवेश किया।

जनैः स ददृशे गच्छन् कैलासतिलकां दिशम् ।
विशदे घटयन् व्योम्नि द्वितीयतपनोदयम् ॥ ३७५ ॥

३७५. कैलास तिलकित[१] (विभूषित) दिशा में जाते एव निर्मल व्योम में द्वितीय सूर्योदय सम्पादित करते हुए देखा ।

जयन्तेनाद्भुतोदन्तहेतुनाऽवाप्य संपदः ।
स्वनामाङ्काग्रहारादिकर्मभिर्निर्मलाः कृताः ॥ ३७६ ॥

३७६. जयन्त ने इस अद्भुत घटना द्वारा प्राप्त सम्पत्तियों का स्वनामांकित अग्रहारादि में सदुपयोग किया ।

एव स भुवनैश्वर्यं भुक्त्वा भूमिभृतां वर ।
अनेनैव शरीरेण भेजे भूतपतेः सभाम् ॥ ३७७ ॥

३७७. नृपति श्रेष्ठ उसने इस प्रकार भुवन भोग कर इसी शरीर से भूतपति की सभा को प्राप्त किया ।

पादटिप्पणियाँ :

३७३ (१) पत्र का लेख क्या था यह इस पद से स्पष्ट होता है।

३७४ (१) श्री विलसन राजा का स्वर्गारोहण मूल काल सन् १८६ ई० तथा समीकृत काल सन् ४७६ ई० देता है।

श्री एस० पी० पण्डित प्रवरसेन द्वितीय का स्वर्गगमन सन् १८६ ई० देते हैं।

३७५ (१) तिलकित : कैलास पर्वत गोल है। तिलक गोल होता है। कल्हण प्रतीत होता है कैलास यात्रा किया था। कैलास पर्वत सचमुच भूमि पर ललाट पर लगे गोल तिलक तुल्य लगता है। मैंने कैलास यात्रा की है। कल्हण का यह श्लोक पढते ही, जिन्होने भी कैलास यात्रा की है, उन्हें कैलास का अभिराम दृश्य स्मरण हो जायेगा। कैलास उत्तर दिशा में है। कैलास का शिखर हिमाच्छादित रहता है। पर्वत मूल मटमैले पत्थरो जैसे है। प्राय हिमविहीन रहता है। ललाटपर भ्रूमध्य कस्तूरी तिलक के ऊपर यदि श्वेत चन्दन का तिलक लगा दिया जाय तो कैलास की उपमा ठीक बैठ जाती है। रक्त चन्दन किंवा केसर तिलक पर श्वेत चन्दन तिलक लगाने की प्रथा आज भी प्रचलित है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३७७ में 'भुक्त्वा' का पाठभेद 'त्यक्त्वा' मिलता है।

प्रासादे प्रवरेशस्य सिद्धिक्षेत्रे क्षमापतेः ।
स्वर्गद्वारप्रतिभटं द्वारमद्यापि लक्ष्यते ॥ ३७८ ॥

३७८. नृपति के सिद्धि क्षेत्र (स्थान) पर प्रवरेश प्रासाद में स्वर्ग द्वार सदृश आज भी द्वार[1] देखा जाता है।

श्लोक संख्या ३७८ में 'द्वार' का पाठभेद 'छिद्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३७८ (१) द्वार : प्रवरसेन इस द्वार से सदेह स्वर्ग गया था यह जनश्रुति कवि बिल्हण के समय तक प्रसिद्ध थी। स्वर्गारोहण द्वार भी अपनी प्राचीन गरिमा में स्थित था। सिद्धिक्षेत्र का पुनः उल्लेख कल्हण त० ८.२४४४ में करता है।

कल्हण ने यह वर्णन बिल्हण के उल्लेख के आधार पर दिया है। दोनों में समता है।

बिल्हण विक्रमांकदेवचरित्र (१८.२८) में यह लिखता है—स्वर्गद्वारप्रतिमं उपरिच्छिद्रम्' द्वार से प्रवरसेन आकाश गमन किया था। द्वार की छत उसके स्वर्गारोहण के कारण फट गयी थी। उसका शरीर ऊपर जाने के लिये उसमें छेद हो गया था।

इस स्थान पर अब बहाउद्दीन साहब की जियारत उस मन्दिर तथा द्वार के तोड़े शिला खण्डों से बनायी गयी है। उसमें एक विशाल द्वार है। इस कब्रिस्तान में कश्मीर के कुछ प्रसिद्ध मुसलमानों की कब्रें हैं। उन पर संस्कृत तथा अरबी दोनों में लेख लिखे मिलते हैं।

मुझे इस जियारत के समीप एक मसजिद दिखायी गयी। वहाँ के वृद्ध एक मुसलमान सज्जन ने मन्दिर के गुम्बद में मनुष्याकार छेद दिखाते हुये कहा—यहीं से राजा स्वर्ग गया था। वह छिद्र वास्तव में मनुष्याकृति तुल्य था। एक मनुष्य का पूरा शरीर उस छिद्र से भूमि से उड़ कर आकाश में जा सकता था। मैं वहाँ का पुरातन इतिहास जानता था। मुसलिम सज्जन को बख्शिश देकर अपना पिण्ड छुड़ाया।

बिल्हण ने द्वारम शब्द का प्रयोग किया है। कल्हण ने छिद्रम् के स्थान पर 'द्वारम्' शब्द का प्रयोग इसलिये किया है कि 'प्रासाद' के साधारण मानवीय द्वार से प्रवरसेन स्वर्ग नहीं गया। वह 'दैवनिर्मित द्वार' से गया जो वास्तव 'छिद्र' तुल्य था। बिल्हण तथा कल्हण दोनों ही अपने स्थानों पर ठीक हैं। 'छिद्र' शब्द से 'द्वार' का प्रयोग समीचीन लगता है।

इसमें महम्मद शाह की भी एक कब्र है। वह कश्मीर का कठपुतली बादशाह था। वह इतना निर्बल तथा दुर्बल प्रकृति का था कि चार बार कश्मीर के तख्त पर बैठाया और उतारा गया।

हरिपर्वत पर जियारत मकदूम शाह के नीचे अखनूमुल्ला की एक मसजिद है। वह मुगल शैली की है। मसजिद चौखूटी है। मध्य में प्रांगण है। प्रांगण के पश्चात् नमाज पढ़ने का तीनखण्डीय बरामदा है। मध्यवर्ती खण्ड के बड़े चौखूटे गुम्बज में मनुष्य के आकार का छिद्र है। मालूम होता है कि मनुष्य का शरीर उससे उड़कर ऊपर चला गया है। मुझसे एक मुसलमान सज्जन ने प्रवरसेन जैसी आख्यायिका कही।

अखनूमुल्ला की मसजिद मध्ययुगीय शैली की है। वहाँ पर मुझे कुछ ध्वंसावशेष नहीं मिले। सम्भव है पहले रहा हो। इस समय मसजिद वीरान पड़ी है। यद्यपि उसकी परिकल्पना तथा जिस प्रकार पुश्ता बाँधकर बनाई गयी है वह निर्माण कर्ता के उत्साह तथा शाहखर्ची का उदाहरण है। उस मसजिद के सम्मुखाय प्रांगण के नीचे समतल भूमि में एक

तस्य रत्नप्रभादेव्यां जातो राजा युधिष्ठिरः ।
अपासीन्नवमासानाः क्ष्मां चत्वारिंशति समाः ॥ ३७९ ॥

३७९. उसकी रानी रत्नप्रभा से उत्पन्न राजा युधिष्ठिर ने नव मास कम चालीस वर्ष पृथ्वी पर व्यतीत किया ।

सरोवर है । सरोवर के चारो तरफ बाग लगा था । एक इमारत बनी है । मसजिद के सम्मुखीय प्रांगण के नीचे समतल भूमि में एक सराव है । सरोवर के चारों तरफ बाग लगा था । एक इमारत बनी है । मसजिद के सम्मुखीय प्रांगण में भी एक छोटा सरोवर बना था । वह पट गया है । उसमें जल नहीं है । यह स्थान स्वर्ग द्वार तथा प्रवरसेन द्वारा निर्मित स्थान नहीं है । सम्भव है यहाँ कभी कोई मन्दिर अथवा देवस्थान रहा हो । परन्तु इस समय उसका चिन्ह अथवा आकार नहीं दिखायी पड़ता । किसी प्रवाहित जलस्रोत के बिना यह स्थान कुछ सूखा पड़ा है । कश्मीर में मन्दिर तथा देवस्थान प्रायः जलाशय के समीप ही निर्माण करने की प्रथा थी । सम्भव है यहाँ कभी कोई जलाशय रहा हो परन्तु इस समय उसे बन्द ही समझना चाहिए । बहाउद्दीन साहब की जियारत पर जो पत्थर लगा है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि वह ८४२ हिजरी की बनी है ।

प्रवरेश्वर मन्दिर के चारो तरफ की दीवाल मेखला तक अभी स्थायी है । मन्दिर की कुर्सी काफी ऊँची है । मैं समझता हूँ कि मानफुट भूमि की सतह से ऊँचाई पर होगी । कुर्सी में लगे पत्थर इतने विशाल हैं कि बिना किसी प्रकार के क्रेन के उनका उठाना कठिन है । यह मन्दिर का स्थान प्रवरसेनपुर नगर के प्रायः मध्य में था ।

प्रवरसेन के स्वर्गद्वार का जो वर्णन पढ़ा था, उसके भव्यता की जो छाप दिमाग पर जमी थी वह यहाँ आनेपर उतर गयी । प्रवरसेन मन्दिर का तोरण द्वार सत्य है परन्तु उसकी छत शेष नहीं रह गयी है । प्राचीन द्वार खड़ा है । उसपर लकड़ी की इमारत फाटकनुमा बना दी गयी है जिसमें बोध होता है कि वह परिस्तान में जाने का फाटक है । कल्हण तथा बिल्हण के वर्णन से फाटक का पूर्वरूप नहीं मिलता । केवल फाटक का भग्न द्वार तथा अधिष्ठान मात्र शेष रह गया है ।

मन्दिर के विशाल भूखण्ड के दक्षिण पूर्व कोण पर मन्दिर की दीवाल से लगकर बहाउद्दीन साहब की जियारत है । तथा ठीक दूसरी तरफ उत्तर पूर्व कोण पर एक दूसरी मुसलमानों जियारत है । दोनों जियारतों के मध्य पूर्वीय दीवाल है । दीवाल के पश्चात् गली है जो लगभग ७ फिट नीचे होगी ।

मन्दिर के मध्य में मन्दिर था । उसके दो तरफ आमने सामने द्वार थे । मन्दिर द्वार के नीव के कुछ पत्थर पड़े हैं । उनसे मन्दिर का आभास मात्र मिलता है ।

गर्भ गृह के स्थान में कबरें बनी हैं । चारो चहार दीवालियों के अन्दर केवल कब्र ही कब्र दिखाई पड़ेंगी । यह मन्दिर मार्तण्ड मन्दिर तुल्य विशाल रहा होगा । हरिपर्वत के समीप कब्रिस्तान बहुत है । अतएव यह स्पष्ट है कि इस स्थान का पवित्रता की दृष्टि से बहुत महत्त्व रहा होगा । किसी मन्दिर तथा देवस्थान को जियारत, मसजिद तथा शेषभूमि को कब्रिस्तान में परिणत कर देना तत्कालीन मुसलिम प्रथा हो गयी था ।

स्वर्गद्वार के पूर्वीय पार्श्व में सटी हुई एक छतहीन कोठरी अथवा मन्दिर था । उस के बाहरी दीवाल तथा द्वार पर अलंकृत शिलाखण्ड तथा खण्डित मूर्तियों के चिन्ह अवशेष हैं । यहाँ पर कोई हिन्दू आबादी आसपास नहीं है । केवल भीमस्वामी के समीप दो एक घर ब्राह्मण रहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ३७९ में 'चत्वारिंश' का पाठभेद

सर्वरत्नजयस्कन्दगुप्तशब्दाङ्किताभिधाः।
आसन् विहारचैत्यादिकृत्यैस्तत्सचिवा वराः॥ ३८०॥

३८०. सर्वरत्न, जय[1] एव स्कन्द[2]गुप्त नामक उसके मन्त्रिप्रवरों ने विहार चैत्य आदि कृत्य किये।

'च द्वाविंश' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

३७९ (१) श्री विलसन ने युधिष्ठिर द्वितीय का राज्याभिषेक काल सन् १८५ ईस्वी २-मास और समाकृत काल सं० ४८९ ई० दिया है। तथा राज्यकाल ३९ वर्ष २ मास देता है।

श्री एस० पी० पण्डित ने यह समय सन् २०४ ई० तथा राज्य काल २१ वर्ष ३ मास दिया है। श्रीस्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् ३२४६ वर्ष ११ मास १ दिन तथा राज्यकाल ३८ वर्ष ३ मास दिया है।

श्री बाली ने यह समय सवत् ४०९३ तथा सन् ३२३ ई० दिया है। ट्रायर के मत से यह काल सन् १८३ ई० ८ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४६४ ई० आता है।

पादटिप्पणियाँ:

३८० (१) जयेन्द्रविहार—चीनी पर्यटक ओकुग ने अपने पर्यटन में जे-जे विहार का उल्लेख किया है। वह सम्भवतः जय का ही निर्माण कराया होगा।

(२) स्कन्द—स्कन्द द्वारा निर्मित विहार तरंग ६ १३७ में वर्णित स्कन्द भवन विहार है। वह श्रीनगर में वर्तमान खण्डवन स्थान में था।

यह विहार श्रीनगर के वितस्ता झेलम नदी के दक्षिण तटपर नौ कदल अर्थात् छठें पुल और नगर की सीमावर्ती ईदगाह के मध्य स्थित था। कल्हण ने इसका वर्णन त० ८ १४४२ में किया है। वहाँ उसने स्कन्द भवन ही नाम दिया है।

यहाँ राजा सुस्सल की रानी भस्म हुई थी। यह स्थान मक्षिका स्वामी की स्मशान मूर्ति नाम से प्रसिद्ध हो गया था। इसे मायसुम अर्थात् अरक्षित स्थान भी कहते थे।

कालान्तर में यह स्थान कब्रिस्तान के काम में आने लगा था। मुहम्मद शाह (सन् १४८४–८६) के समय में यह सेना का शिविर (छावनी) के काम में लाया गया था। खण्डवन मुहल्ला के दक्षिण तरफ विहार स्थान रहा होगा। यह स्थान सम्भवत नव कदल मे १५० गज पर रहा होगा।

यहाँ पर अब मुल्ला मुहम्मद बासूर की जियारत है। जियारत में यहाँ पर स्थित प्राचीन मन्दिर तथा विहार के टूटे अलंकृत शिलाखण्ड लगे हैं। हिन्दू मन्दिर का शैली पर जियारत का निर्माण किया गया था।

स्कन्द का दूसरा नाम कार्तिकेय है। कुमार कार्तिकेय का एक बार उल्लेख नीलमतपुराण मे आया है। कार्तिकेय की पूजा कृत्तिका के साथ करने का निर्देश किया गया है। नीलमत में उसे महान् सेनानी अथवा सेनापति के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। (नील० 435, 642, 649)

श्री स्तीन ने इस जियारत को सन् १८९१ ई० में देखा था। उन्हें एक स्थान कच्ची दीवाल से घिरा मिला था। इसके केन्द्र में २२ फिट ऊँचा एक ढूहा चौकोर पत्थर की दीवाल से वेष्ठित मिला था। वह ३८ फिट वर्गाकार था। उसके दक्षिण पूर्व की ओर एक गड्ढा १० फिट का था। यह सम्भवत प्राचीन जल कुण्ड अथवा जल स्थान था। उसके कुछ फासले पर लगभग सन् १८८१ ई० में जियारत के मुल्ला ने एक गोल कुँआ खोद लिया था।

स्थानीय ब्राह्मण कहते हैं कि इस स्थान पर कुमार किंवा स्कन्द का मन्दिर था। उसके समीप

भवच्छेदाभिधं ग्रामं स्तुत्यं चैत्यादिसिद्धिभिः ।
यो व्यधात् सोऽस्य वज्रेन्द्रोऽप्यासीन्मन्त्री जयेन्द्रजः ।। ३८१ ।।

३८१. जिसने चैत्य आदि सिद्धियों (निर्माण) से भवच्छेद[1] नामक ग्राम स्तुत्य बनाया वह जयेन्द्र का पुत्र व्रजेन्द्र भी इसका मंत्री था।

ही एक जलस्रोत था। यह स्रोत मार नहर में तारबल के समीप जाकर मिलता था। किसी ने इस जलस्रोत को चलते हुए नहीं देखा था।

श्री स्तीन को श्री साहिबराम के पुत्र पं० रामचन्द्र ऋषी से जिनकी अवस्था ६० वर्ष की थी मालूम हुआ कि उनकी बाल्यावस्था मे उनके एक अति वृद्ध सम्बन्धी गोवर्धनदास याजिद यहाँ नित्य पूजा करने आते थे।

यहाँ पर शहतूत का एक पेड लगा था। यहाँ के गवर्नर शेख मुहीउद्दीन की आज्ञा से सन् १८४२–१८४५ के बीच काट डाला गया था। वृक्ष के कटने पर वृक्ष के तना से रक्त की धारा निकली थी। श्री गोवर्धन दास वहाँ पर प्रवण के दिन दीपक जलाने आते थे। जियारत के मुल्ला के अनुरोध पर गवर्नर ने वृक्ष कटवाया था क्योंकि हिन्दू यहाँ पूजा करने आते थे।

नीलमत पुराण में स्कन्दतीर्थ, स्कन्दस्यायतन तथा स्कन्देश्वर का उल्लेख मिलता है।

स्कन्दपूजा :

रुद्रं चद्रमुसां स्कन्द नासत्यौ नन्दिनं तथा ।
पूजयित्वार्घमाल्यादिनैवेद्यैश्च पृथक् पृथक् ।।

381 : ४८८

× × ×

शाखो विशाख स्कन्दश्च नैगमेषस्तथैव च ।
मरुतश्च ग्रहश्चैव रोगाणामधिपो ज्वर ।। 604 ७२६

× × ×

स्कन्दस्य तत्र कर्तव्या पूजा माल्यैः सुगन्धिभि. ।

647 : ७६९

शच्या समीपे पौलस्त्य दृष्टा स्कन्दं नराधिप ।
पात्रकुण्डे नर स्नात्वा कौमारं लोकमाप्नुयात् ।।

995 : ११६६

× × ×

स्कन्देश्वर

स्कन्देश्वर विशाखेशं पौलात्यमपरं तथा ।
दृष्ट्वा कुमारमेकैक फलं गोदानज लभेत् ।।

991 · ११६८

× × ×

स्कन्दतीर्थ

स्नात्वा तु मद्‌तीर्थे च स्कन्दतीर्थे च मानवः ।
तथा सुरेश्वरी तीर्थे स्वर्गलोके महीयते ।। 318
१५३२ ।।

× × ×

स्कन्दस्यायतनम् :

सुवर्णबिन्दुस्तत्रैव हरस्यायतन शुभम् ।
स्कन्दस्यायतन तत्र सर्वपापनिषूदनम् ।।112 :
१५४-१५५

पाठभेद :

श्लोकसख्या ३८१ मे 'भवच्छेदा' का पाठभेद 'भौछो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

३८१ (१) भवच्छेद : यह ग्राम ऊलर परगना में है। यह वर्तमान बुत ग्राम है। इसे 'ओस्सो' भी कहते है। मीर संगम से एक मील दक्षिण स्थित है। नीलमत में भवच्छेद वर्णन नही मिलता। भव, भवोत्स, भवेश का उल्लेख मिलता है। भवच्छेद ग्राम का भव से कोई सम्बन्ध है या नही गवेषणा का विषय है। भव कश्मीर के मुख्य नागो में से हैं.

दिक्कामिनीमुखोत्कीर्णकीर्तिचन्दनचित्रकाः ।
आसन् कुमारसेनाद्याः तस्यान्येऽप्यग्रयमन्त्रिणः ॥ ३८२ ॥

३८२. दिशा रूपी कामिनियों के मुख को कीर्ति रूपी चन्दन[1] से चित्रित[2] करने वाले कुमारसेन आदि अन्य भी उसके अग्र्य मन्त्री थे ।

दिवश्चक्रधर. श्वभ्रो भवो देहारको गुड. ।
अन्धः पङ्गुस्तथा कुष्टी काणो बधिरवण्ठकौ 900
१०६९-१०७०

× × ×

तैत्तिरीयेश्वरं देव दण्डकस्वामिनं तथा ।
भवस्य च तथा पार्श्वे रामस्वामिजनार्दनम् ॥1157·
१३६८-१३६९ ॥

× × ×

भवेश

राजेश्वर नृसिंहेश भवेशं भनदेश्वरम् ।
सदा सन्निहितो राजन् देवो भूतेश्वरो हर ॥1026.
११९८-११९९ ॥

× × ×

भवोत्स ·

स्नात्वा नारायणस्थाने विष्णुलोके महीयते ।
रामतीर्थे भवोत्से च फलमेतत् प्रकीर्तितम् ॥1312.
१५२६ ॥

× × ×

पाठभेद

श्लोकसख्या ३८२ में 'चित्र' का पाठभेद 'चन्द्र' तथा 'चन्द्रि' मिलता है।

३८२ (१) चन्दन : मुखपर चन्दन लगाने को तत्कालीन प्रथा का कल्हण यहाँ उल्लेख करता है। दक्षिण में महिलायें मुखपर हलदी तथा नेपाल में श्वेतचूर्ण लगाती हैं। चन्दन तोन प्रकार यथा रक्त शोत एव कालेयक होता है। चन्दन लगाने की प्रथा कश्मीर में अत्यन्त प्राचीन है। नीलमत इसका उल्लेख करता है। (नी० 417, 423, 787)

(२) चित्रित : मुखमण्डलपर चन्दन, रोरी, केसर आदि से चित्र बनाना यह अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। प्रायः सस्कृत के सभी काव्य एवं शृगार ग्रन्थो में इसका उल्लेख मिलता है।

विवाह के समय बगाल की स्त्रियो का मुख चन्दन आदि की बिन्दियो से आज भी चित्रित किया जाता है।

मैं सन् १९४६ में कमीशन का सदस्य होकर वृटिश सरकार की तरफ से सविधान सम्बन्धी सलाह देने के लिये नेपाल गया था। उस समय यातायात इतना सुगम नही था।

भीम फेडी से काठमाण्डू तक डाँडी से या पैदल जाना पडता था। इस लम्बे मार्ग में मैंने नेपाली स्त्रियो का चित्रित मुखमण्डल देखा। उज्ज्वल एव लाल रंग से मुख तथा अधर रगती थीं। आँखें तथा भौंहें काजल या काले रग से रगती थी। कुछ तो इस प्रकार के चित्रण के कारण अत्यन्त फूहर लगने लगती थी। उनका नैसर्गिक सौन्दर्य निखरने के स्थान पर दब जाता था। इस दो दिन वाले प्राकृतिक दृश्यो से मनोहर मार्ग में मानव शरीर पर यह कृत्रिमता देखकर जगत् की विषमता पर अनायास ध्यान चला जाता था। अकृत्रिमता में कृत्रिमता को पराकाष्ठा मिलती थी।

पद का तात्पर्य यह है कि कुमारसेन तथा अन्य मन्त्रियो ने राजा का यश दिगंत में फैलाया। यहाँ कल्हण ने मन्त्रियो को नारियो के चित्रित करनेवाले कलाकार के रूप में प्रस्तुत किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ३८३ में 'ल.क्षणा' का पाठभेद 'लक्षणा', 'ल क्षणा', 'लल्क्षणा' तथा 'लॅ क्षणा' मिलता है।

पद्मावत्यां सुतस्तस्य नरेन्द्रादित्य इत्यभूत् ।
लःखणापरनामा यो नरेन्द्रस्वामिन व्यधात् ।। ३८३ ।।

लखन—नरेन्द्रादित्य[1]:

३८३. पद्मावती से उत्पन्न उसका पुत्र नरेन्द्रादित्य अपर नाम लखण[2] था जिसने नरेन्द्रस्वामी[3] की स्थापना की ।

वज्रेन्द्रतनयौ वज्रकनकौ यस्य मन्त्रिणौ ।
अभूतां सुकृतोदन्तौ राज्ञी च विमलप्रभा ।। ३८४ ।।

३८४. सुकृति प्रख्यात वज्रेन्द्रतनय वज्र तथा कनक जिसके मन्त्री हुए और रानी विमलप्रभा थी ।

पादटिप्पणियाँ .

३८३ (१) श्री विलसन ने राज्याभिषेक काल सन् २२४ ई० ५ मास तथा समीकृतकाल सन् ५४४ ई० और राज्य काल १३ वर्ष दिया है

श्री एस. पी. पण्डित ने यह समय सन् २०४ ई० तथा राज्यकाल १३ वर्ष दिया है ।

श्री स्तीन राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् ३२८६, मास २ दिन प्रथम तथा राज्यकाल १३ वर्ष देते हैं ।

श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि सवत् ४१०६ तथा सन् ३३६ ई० दिया है ।

कलिगताब्द ३३१७ वर्ष ११ मास १३ दिन ट्रायर के अनुसार सन् २०४ ई० ११ मास तथा कनिंघम के मत से सन् ४८३ ई० आता है ।

हसन—राजा नरेन्द्रादित्य संवत् २३४ विक्रमी में बाप की जगह पर सर पर ताज रखकर मुहकमा असनाय अपनी तरफ से जारी किया और तेरह साल हकूमत में मशगूल रहा ।

(२) **लखण** : जनरल कनिंघम ने एक मुद्रा का उल्लेख किया है । जिसपर (रा) जा राखण उदयादित्य टंकित है । उसे कश्मीर की मुद्रा कहा है । (लेटर इण्डोसीथियन पृष्ठ १११, और प्लेट ७ तथा १२) यह 'देव शाही' शिवगेल शेली की मुद्रा से मिलता है । (प्लेट ७ : ११) यह मुद्रा राजतरगिणी में वर्णित (१ , ३४७) खिखिल किंवा नरेन्द्रादित्य से मिलता है ।

इन दोनों मुद्राओ तथा अन्य मुद्रा मिहिर कुल तथा हिरण्यकुल मे अत्यन्त साम्य है । नरेन्द्रादित्य का अपर नाम खिखिल कल्हण ने क्यो लिखा वह विचारणीय है ।

(३) **नरेन्द्रस्वामी** : जनरल कनिंघम ने 'पयार' के मन्दिर को नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर माना है । किन्तु यह बात ठीक नही मालूम पडती । पयार शिव मन्दिर है ।

मगलपुर से यह स्थान २ मिल और दूर है । इसमे भैरव; ताण्डवशील शिव तथा पार्वती की मूर्तियाँ बनी हैं । अतएव यह शैव मन्दिर है । यह वैष्णव मन्दिर नही हो सकता । स्वामी शब्द इस बात का प्रमाण है कि नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर विष्णु मन्दिर था ।

इस मन्दिर के सम्बन्ध मे एक और मत है । श्री पण्डित आनन्द कौल का मत है कि वितस्ता के द्वितीय तथा तृतीय पुल के मध्य तथा वितस्ता के दक्षिण तट से १०० गज दूर श्रीनगर में नरेन्द्रस्वामी का मन्दिर था । इस समय यह मन्दिर ज़ियारत मे परिणत हो गया है । इसका नाम नरपरिस्तान रख दिया गया है (आर्कियोलोजिकल दि रमेन्स इन कश्मीर : २८) ।

मैं इस स्थान को खोजता पहुँचा । इस समय

स विधायाधिकरणं लिखितस्थितये निजम् ।
द्यां त्रयोदशभिर्वर्षैरारुरोह महाभुजः ॥ ३८५ ॥

३८५. उस महाभुज ने स्व लेख[1] की सुरक्षा अधिकरण स्थापित कर तेरह वर्ष अनन्तर स्वर्गारोहण किया।

तस्याऽनुजो धरणिभृत् रणादित्यस्ततोऽभवत् ।
तुञ्जीनापरनामानं यं जनाः प्राहुरञ्जसा ॥ ३८६ ॥

रणादित्य—तुंजीन

३८६ तदनन्तर उसका अनुज रणादित्य भूपति हुआ। जिसे अपर नाम से लोग तुंजीन कहते थे।[1]

यह अत्यन्त घनी आबादी के बीच में है। सड़क के किनारे कुछ वृक्ष समूहों का एक छोटा चहार दीवारी से घिरा स्थान है। सड़क की तरफ ईंटों की जालियाँ लगी है। एक द्वार भी है। द्वार बन्द था। हिन्दूलोग सड़क की तरफ लगी एक खुली खिड़की से फूल तथा पूजन सामग्री भीतर डाल देते हैं। मैंने इस खिड़की से झांक कर देखा। भीतर ईंटों तथा पत्थरों का समूह ऊबड़-खाबड़ पड़ा था। कुछ सूखे फूल तथा बुझे दीपक पड़े थे।

३८५ (१) लेख कश्मीर में इस समय से राजकीय तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कागजों के रखने की सुव्यवस्थित व्यवस्था आरम्भ होती है। आज कल जैसे प्रचलित 'रिकर्ड' रूम तथा पुरातत्त्वलेखसंग्रहालय स्थापित करने की ध्वनि इस श्लोक से निकलती है। राजा लखन नरेन्द्रादित्य ने, प्रतीत होता है, आन्तरिक राज व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने पर विशेष जोर दिया था।

३८६ (१) आइने आकबरी में इसका नाम 'जेवदुत' तथा राज्य काल ३०० वर्ष दिया गया है। श्री विलसन ने राज्याभिषेक काल सन् २३७ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ५४५ दिया है। राज्यकाल ३०० वर्ष दिया है, श्री एस. पी. पण्डित ने सन् २१५ ई० दिया है। राज्यकाल ३०० देते हैं। श्री स्तीन ने राज्याभिषेक का समय लौकिक सवत् ३२९९ मास २ तथा दिन प्रथम दिया है तथा राज्यकाल ३०० वर्ष दिया है। श्री बाली ने यह समय सप्तर्षि सवत् ४१४६ तथा सन् ३७६ ई० दिया है। कलि गताब्द ३६१७ वर्ष ११ मास १३ दिन, ट्रायर के मत से सन् २१७ ई० ११ मास तथा कनिंघम के अनुसार सन् ४९० ई० आता है।

हसन लिखता है—राजा तुंजीन पिसर दोयम राजा जदिस्तर ने ५४८ विक्रमी में राजगद्दी का ताज सरपर रखकर शरदूल पिसर नरेन्द्र को वजीर बनाया। कुछ अरसा के बाद उनके गावैन निकाफ की आग मुस्तअल हो गयी। और सरदूल मारा गया। उसका बेटा सरवसेन सात साला था। वह राजा के खौफ से अपनी मा के हमराह नगरकोट में भाग गया। राजा नगरकोट ने उसे दामादी मे कबूल करके निकाह रखा। जब सिन तमीज को पहुँचा तो एक भारी लश्कर जमा करके और राजा जम्मू से इमदाद लेकर कश्मीर पर हमलावर हुआ। तुजीन उसके मुकाबिला मे निकला। कोहिस्तान बनिहाल में जग व जदल की आग रोशन की। तुजीन मारा गया। उसकी हकूमत तैंतीस साल थी।

यह श्लोक कल्हण के इसी तरंग मे वर्णित ९७ श्लोक से मिलता है जिसे उसने श्रेष्ठसेन के सम्बन्ध में लिखा है।

जगद्विलक्षणं यस्य शङ्खमुद्राङ्कितं शिरः ।
अपूर्वशर्वरीशान्तर्लीनभानुश्रियं दधे ॥ ३८७ ॥

३८७. जिसका जगद्विलक्षण शङ्ख[1] मुद्रांकित शिर (भाल) चन्द्रान्तर्लीन सूर्य की अभूत पूर्व शोभा धारण करता था।

रिपुकण्ठाटवीष्वासीत् यस्य धाराधरः पतन् ।
तद्वधूनेत्रकुण्डैस्तु जलाधिक्यमधार्यत ॥ ३८८ ॥

३८८. जिसका खड्ग शत्रु कण्ठ रूपी अटवी पर पतित होता था और उनकी ललनाओं के नेत्रकुण्ड जल बाहुल्य धारण[1] करते थे (अश्रुपूर्ण होते थे।)

अपूर्वो यत्प्रतापाग्निः प्रविश्योर्वीं द्विषां न्यधात् ।
नारीनेत्रेषु नीरोर्मीन् मन्दिरेषु तृणाङ्कुरान् ॥ ३८९ ॥

३८९. जिसकी अपूर्व प्रतापाग्नि शत्रु भूमि में प्रवेश कर नारी नेत्रों में जलतरंगें एवं गृहों पर तृणाङ्कुर स्थिर कर देते थे।

यस्य पाणिप्रणयितां कृपाणे समुपागते ।
कबन्धेभ्यः परो नृत्तं न व्यधत्त द्विषद्बले ॥ ३९० ॥

३९०. जिसके पाणि में कृपाण आ जाने पर शत्रु सेना में कबन्धों[1] के अतिरिक्त अन्य नृत्य नहीं करता था।

---

३८७ (१) शख की खोल तुल्य मस्तक की उपमा यहाँ सुन्दरता के विचार से दी गयी है। शशि तथा शंख की उपमा उज्जलता के लिये दी गयी है। राजा का दैवी चिन्ह शख समझा जाता है। प्रत्येक राजा तथा शूर के पास अपना शख होता था। गीता का प्रथम अध्याय ही विभिन्न प्रकार के शंख घोषो के वर्णन से आरम्भ होता है। विष्णु भगवान् के चार हाथो में से एक हाथ में शख दिखा कर उसे दैवी विभूतियो तथा गुणो से युक्त किया गया है।

शख की गणना सुषिर वाद्य में की गयी है। वाद्यो का वर्गीकरण—घन, वितत, तत, सुषिर में किया गया है। नीलमत पुराण में वाद्य, वादित्र तथा वाद्य भाण्ड शब्दो का प्रयोग वाद्ययन्त्रो के लिये किया गया है। कामसूत्र उन्हे आनद्ध तथा तन्त्री वाद्यो में वर्गीकरण करता है। तन्त्री वाद्य नीलमत के तत तथा आनद्ध वाद्य वितत के वर्गीकरण में आ जाता हैं।

शख का उल्लेख ऋग्वेद में नही मिलता। रामायण, महाभारत तथा पुराणो मे यह रणवाद्य रूप घोष हेतु प्रयुक्त किया गया है। नीलमत में इसका दो बार उल्लेख कौमुदी महोत्सव तथा राज्याभिषेक के प्रसग में किया गया है।

(नी० 386, 816)

३८८ (१) धारण—यह शब्द यहा श्लिष्ट हैं। इसका अर्थ कृपाण तथा मेघ दोनो होता है।

३९० (१) कबन्ध—दण्डकारण्य का एक राक्षस था। इसका मस्तक इसके वक्षस्थल में था। शिरविरहित होने के कारण इसका नाम कबंध पड़ा था। महाभारत वनपर्व अ० २६३ तथा वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड ५९–६७ में इसकी कथा का

तस्याण्यपोह्यमाहात्म्य देवी दिव्याकृतेः प्रिया ।
विष्णुशक्तिः क्षितिं प्राप्ता रणारम्भाभिधाऽभवत् ॥ ३९१ ॥

३९१. उस दिव्याकृति की प्रिया अनश्वर माहात्म्य वाली देवी रणारम्भा नाम्नी हुई थी, जो पृथ्वी पर उत्पन्न विष्णु शक्ति[1] थी।

स हि जन्मान्तरे पूर्वं द्यूतकारोऽभवत्किल ।
कदाऽपि प्राप निर्वेदं सर्वस्वं कितवैर्जितः ॥ ३९२ ॥

३९२. वह पहले जन्मान्तर में द्यूतकार (जुआड़ी) था। किसी समय कितव (धूर्त जुआडी) के सर्वस्व विजित करने पर वह निर्वेद (विरक्ति) प्राप्त किया।

देहत्यागोद्यतोऽप्यासीत् प्राप्य किंचिद्विचिन्तयन् ।
न पर्यन्तेऽप्युपेक्षन्ते कितवाः स्वार्थसाधनम् ॥ ३९३ ॥

३९३. देह त्याग हेतु उद्यत भी प्राप्य (लाभ) का चिन्तन कर रहा था। कितव जन[1] अन्त काल में भी स्वार्थ साधन की उपेक्षा नहीं करते।

अवन्ध्यदर्शनां विन्ध्ये देवीं भ्रमरवासिनीम् ।
द्रष्टुमैच्छद्वराकाङ्क्षी निर्व्यपेक्षः स्वजीविते ॥ ३९४ ॥

३९४. उसने प्राण से निरपेक्ष होकर वर की आकाक्षा से विन्ध्य में अवन्ध्य (सफल) दर्शना देवी भ्रमरवासिनी[1] के दर्शन की इच्छा की।

उल्लेख हैं। देवी सीता के अन्वेषण मे जटायु वध के पश्चात् राम लक्ष्मण वन में घूम रहे थे। क्रौंच वन के पूर्व ओर तीन कोस पर स्थित मातग मुनि का आश्रम था। वहा उन्होंने भयकर ध्वनि सुनी। वह ध्वनि कवध की थी। उसने एक कोस दूर से ही राम लक्ष्मण को देखा। कवन्ध उन्हें भक्षण करने के लिये बढा। रामने बायाँ तथा लक्ष्मण ने दाहिना हाथ कवध का पकडकर तोड दिया। गतप्राण होकर वह गिर पडा। उसके शरीर से देदीप्यमान पुरुष निकला। वह आकाश में स्थित हो गया। राम के प्रश्नपर उत्तर दिया, 'मैं विश्वावसु नामक गन्धर्व हूँ। शाप के कारण राक्षस योनि प्राप्त हुई थी।'

३९१ (१) विष्णु शक्ति—विष्णु की क्रियात्मक शक्ति से यहाँ तात्पर्य है। यह शक्ति स्वय लक्ष्मी है।

३९३ (१) कितव जनः यह सूक्ति है। कल्हण ने यहाँ जुआडियो के विषय में उक्त सूक्ति कही है। मरते दम तक जुआडी अपने दाव तथा लाभ की चिन्ता करते रहते हैं।

३९४ (१) भ्रमर वासिनी—यह दुर्गा का ही एक रूप है। इनको विन्ध्यवासिनी भी एक मत मानता है।

कवि वाक्पति ने अपनी प्राकृत कविता मे इस भ्रमरवासिनी देवी से मिलता जुलता वर्णन किया है।

दुर्गासप्तशती में भ्रामरी देवी का वर्णन मिलता है। कल्हण ने निस्सन्देह भ्रमरवासिनी देवी का यहाँ उल्लेख उसी के सन्दर्भ में किया है। दुर्गा ने स्वय तीनो लोको के हित के लिये ६ पदो वाले

भ्रमरैः शङ्कुपुच्छाद्यैः खण्डयमानस्य देहिनः ।
तदास्पदं हि विशतो दुर्लङ्घ्या पञ्चयोजनी ॥ ३९५ ॥

३९५. भ्रमरों एवं शपङ्कुच्छ आदि से दंशित होते देहधारियों के लिये जो उस स्थान में प्रवेश कर रहे हों—पाँच योजन मार्ग (नितान्त) दुर्लङ्घ्य था।

स वज्रशङ्कुपुच्छानां धीमांस्तेषां प्रतिक्रियाम् ।
देहेऽवश्यपरित्याज्ये मन्वानोऽभूददुष्कराम् ॥ ३९६ ॥

३९६. उस बुद्धिमान् ने अवश्यमेव त्याज्य देह के लिये, उन वज्र तुल्य शंङ्कु, पुच्छ - धारियों की प्रतिक्रिया को दुष्कर नहीं माना।

प्रागयोवर्मणा देहं ततो महिषचर्मणा ।
तेन छादयता दत्तो मृल्लेपोऽथ सगोमयः ॥ ३९७ ॥

३९७. सर्व प्रथम उसने लौह वर्म से, तदनन्तर महिष चर्म से, देह को आच्छादित कर गोमय[1] मिश्रित मृत्तिका लेप किया।

अथ भानुकरोच्छुष्कमृल्लेपाम्रेडिताङ्गकः ।
स लोष्ट इव सचारी प्रतस्थे क्रूरनिश्चयः ॥ ३९८ ॥

३९८. अंग पर बारंबार किये मृत्तिका लेपको सूर्य किरणो में सुखाकर संचरणशील लोष्टवत् उस क्रूर निश्चयी ने प्रस्थान किया।

सरलां सरणिं त्यक्त्वा जीवितस्पृहया समम् ।
गुहा तेन ततः सान्द्रतमोभीमा व्यगाह्यत ॥ ३९९ ॥

३९९. तदनन्तर जीवन की आकांक्षा के साथ-साथ सरल सरणि (मार्ग) को त्यागकर उसने घने अन्धकार से भयंकर गुहा में प्रवेश किया।

असस्य भौंरो का रूप धारण कर महादैत्य का वध किया था।

तदाहं भ्रामर रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥
(११ : ५३)

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥
(११ : ५४)

तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ॐ॥
(११ - ५५)

दुर्गा सप्तशती के पंचम अध्याय का विनियोग भ्रामरी का उल्लेख करता है।

ॐ अस्य श्री उत्तमचरितस्य रुद्र ऋषि. महासरस्वती देवता अनुष्टुप् छन्दः भीमा शक्ति. भ्रामरी बीजम् सूर्यस्तत्त्वं सामवेद. स्वरूपं महासरस्वती-प्रीत्यर्थे उत्तमचरित्र पाठे विनियोगः।

३९७ (१) गोमय—आज भी ग्रामो में भौरा काटने के स्थान पर गोबर लगा दिया जाता है। उससे दर्द तथा जलन कम हो जाती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९८ में 'म्रेडिताङ्गक' का पाठभेद 'प्रेडिताङ्गकः' तथा 'पीडिताङ्गकः' मिलता है।

अथोदतिष्ठन गर्तेभ्यो घोरा भ्रमरमण्डलाः ।
पक्षशब्दैः श्रुतिं घ्नन्तो मृत्युतूर्यरवैरिव ॥ ४०० ॥

४००. मृत्यु के तूर्य ध्वनि तुल्य पक्ष शब्दों से कान को फाड़ते हुए भयंकर भ्रमर मण्डल गर्तों से निकले।

ते तमुच्छुष्कमृल्लेपरेणुव्रणितलोचनाः ।
सहसा नाक्रमन्ते स्म प्रहरन्तोऽपि बाधितुम् ॥ ४०१ ॥

४०१. सूखे मृत्तिका लेप कणों से व्रणित लोचन (घायल नेत्र) वे भ्रमर सहसा आक्रमण न किये और प्रहार करने पर भी उसे पीड़ित न कर सके।

रेणुभिर्येऽन्धितदृशः ते न्यवर्तन्त षट्पदाः ।
तेऽखण्डयंस्तु मृल्लेपं न्यपतन् ये नवा नवाः ॥ ४०२ ॥

४०२. रेणुओं से अंधित नेत्र भ्रमर निवर्तित हो गये और जो नवीन-नवीन भ्रमर आये, वे मृत्तिका लेप खण्डित किये।

तैः खण्डयमान मुच्चण्डैः व्रजतो योजनत्रयीम् ।
क्रमान्मृत्कवचं तस्य पथि संक्षयमाययौ ॥ ४०३ ॥

४०३. तीन योजन मार्ग तय करते हुए उसका मृत्तिका-कवच प्रचण्ड उन भ्रमरों द्वारा क्रम से खण्डित होकर पथ में ही नष्ट हो गया।

ततो मुहुः प्रहरतां तेषां महिषचर्मणि ।
घोरश्चटचटाघोषः प्रादुरासीद्भयंकरः ॥४०४॥

४०४. तदनन्तर पुनः महिष चर्म पर उनके प्रहार करने पर भयंकर चट चट का घोष प्रादुर्भूत हुआ।

चतुर्थयोजनस्यार्धमतिक्रम्य विवेद सः ।
रणत्कारैर्द्विरेफांस्तान् अयोवर्मणि पातिनः ॥४०५॥

४०५ चौथे योजन का अर्धांश पार करने पर लौह वर्म पर गिरते उन भ्रमरों को झकारों से जाना।

धावंस्ततोऽतिवेगेन खण्ड्यमानेन षट्पदैः ।
स शस्त्रवर्मणामोचि चित्तं धैर्येण नो पुनः ॥४०६॥

४०६. तदनन्तर वह अति वेग से दौड़ने लगा। भ्रमरों से खण्ड्यमान शस्त्र वर्म ने उसे त्याग दिया, परंतु धैर्य ने चित्त को नहीं त्यागा।

श्लोक सख्या ४०२ में 'येन्धित' का पाठभेद 'र्वाधित' मिलता है।

श्लोक सख्या ४०६ में 'चित्तं' का पाठभेद 'चित्रं' तथा 'पुनः' का 'पुर' मिलता है।

गव्यूतिमात्रमासन्ने देवीधामनि धैर्यवान् ।
धुन्वन् कराभ्यां मधुपान् धावति स्म स धीरधीः ॥४०७॥

४०७ देवी मन्दिर के गव्यूति मात्र शेष रह जाने पर धीरधी एवं धैर्यशाली वह हाथों से मधुपों (भ्रमरों) को हटाते हुए दौड़ने लगा।

अथ स्नाय्वस्थिशेषाङ्गो लूनमांसः षडङ्घ्रिभिः ।
कराभ्यामक्षिणी रक्षन् देव्यायतनमासदत् ॥४०८॥

४०८. अनन्तर स्नायु एवं अस्थि मात्र शेष षट्चरणों (भ्रमरों) से खण्डित मांस वाला हाथों से आँखों की रक्षा करते हुए देवी आयतन में पहुँचा।

प्रशान्ते भृङ्गसंपाते प्रकाशमवलोकयत् ।
स देव्याः पादयोरग्रे पपातोद्भ्रान्तजीवितः ॥४०९॥

४०९. भृंग (भ्रमर) संपात (गिरना—आक्रमण) शान्त होने पर उद्भ्रान्त जीवित (प्राण शंकित) प्रकाश देखते हुए वह देवी के चरणों के गिर पड़ा।

स्तोकावशेषप्राणं तं देव्याश्वासयितुं ततः ।
अभिरामं वपुः कृत्वा प्रस्पर्शाङ्गेषु पाणिना ॥४१०॥

४१०. तदनन्तर देवी ने स्वल्प अवशिष्ट प्राण वाले उसे अभिराम शरीर प्रदान कर आश्वासन हेतु, अंगों पर पाणि-स्पर्श किया।

दिव्येन पाणिस्पर्शेन तेन पीयूषवर्षिणा ।
स क्षिप्रासादितस्वास्थ्यो दिक्षु चिक्षेप चक्षुषी ॥४११॥

४११. उस पीयूषवर्षी दिव्य पाणि स्पर्श से वह शीघ्र ही स्वास्थ्य प्राप्त कर दिशाओं में उसने दृष्टिपात किया।

प्रविष्टमात्रः प्रैक्षिष्ट सिंहविष्टरसीम्नि याम् ।
घोराकारां स तां देवीं तदाऽद्राक्षीन्न तां पुनः ॥४१२॥

४१२. उस समय प्रवेश करते ही उसने सिंह विष्टरासीन घोराकृति जिस देवी को देखा, उसे पुनः नहीं देखा।

ददर्श पुनरुद्यानलतावासे विलासिनीम् ।
स्थितां पुष्करिणीतीरे श्यामां पुष्करलोचनाम् ॥४१३॥

४१३. (उसने) पुष्करिणी तट पर उद्यान लता गृह में विलासिनी, पुष्करलोचनी श्यामा स्त्री (षोडश वर्षीया) को स्थित देखा।

गृहीतहारमुक्तार्घां बद्ध्वा पीनस्तनाञ्जलिम् ।
महार्हैः कान्तिकुसुमैः यौवनेनार्चिताङ्गकाम् ॥ ४१४ ॥

४१४ यौवन मुक्ता[1]हार रूपी अर्घ्य से एवं पीन स्तन रूपी कुसुमों से (जिसके) अंगों ो पूजित (अर्चित) कर रहा था ।

यावकाहारिणौ पादौ दधतीं कृच्छ्रचारिणौ ।
स्तनच्छन्नमुखं द्रष्टुं तपस्यन्ताविवाऽन्वहम् ॥ ४१५ ॥

४१५ दुष्कर आचरणशील[1] उसके चरण जो कि यव के आहारी अथवा यावक[2] (महावर—अलक्तक—अलता) से सुन्दर थे, स्तन की ओट मे स्थित मुख को देखने के लिये मानों प्रतिदिन तपस्या कर रहे थे ।

श्लोकसंख्या ४१४ में 'गृहीत' का 'गृहीत्वा', 'क्तार्घां' का 'क्तार्घान्', 'बद्ध्वा' का 'बद्धा', एवं 'बद्ध' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४१४ (१) यौवन : कल्हण ने अपनी उपमा का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है । यौवन को उसने मुक्ताहार बनाया है, दोनो स्तनो को अंजलि के दोनो हाथ तथा दोनो स्तन के मध्य गहरे स्थान को बद्ध अंजलि का गहरा स्थान एवं कान्ति को पुष्प बनाकर उसने अंजलि में रखकर दुर्गा को अद्भुत पूजा का रूपक खीचा है । दुर्गा की पूजा तण्डुल की अपेक्षा मुक्ता से करना उत्तम माना जाता है । दोनो का वर्ण उज्ज्वल है ।

४१५ (१) एक तपस्वी का चित्र चित्रित किया गया है । यव का आहार कर किसी इष्ट की प्राप्ति हेतु आचरण पूर्ण तपस्या करता है । उसी प्रकार उस कामिनी के मुख दर्शन हेतु उसके चरण तपस्या कर रहे थे । यह कवि के उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण है ।

इसका एक भाव यह भी है कि उत्तुंग पयोधर के बीच में पड जाने के कारण मुख के दर्शनाभिलाषी चरण मुख का दर्शन नही कर पाते थे ।

इसका एक भाव यह भी है—उसके अलता से रंगे सुन्दर चरण जो मालूम पडते थे कि कठिनता से चल पाते थे और इस कामना से तपस्या कर रहे थे कि उसका मुख जो उसके स्तनो से छिपाया देखा जा सके ।

(२) यावक यह शब्द श्लिष्ट है । इसका दोनो अर्थ होता है । यव का आहार तथा महावर होता है । यव का आहार कुछ व्रतो पर करने की प्रथा कश्मीर में थी ।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने अर्थ किया है—

Pink like new barley were her two feet which suffered distress and were practising austerities for the sight of her face hidden by breasts' (Page 90)

श्रीस्तीन निम्नलिखित अनुवाद किया है :

She had feet which were most charmingly (coloured) with red lac (यावकाहारिणौ), which seemed to move with difficulty and which appeared daily to perform austerities in their desire to see her face hidden by her breasts

(Page 109)

भास्वद्बिम्बाधरां कृष्णकेशीं सितकराननाम् ।
हरिमध्यां शिवाकारां सर्वदेवमयीमिव[1] ॥ ४१६ ॥

४१६. रविबिम्ब अधर, कृष्ण रूप केश, शशि रूप आनन, हरि रूप मध्य, शिव रूप आकृति से मानो वह सर्वदेव मयी थी[2] ।

तां विभाव्यानवद्याङ्गीं निर्जने यौवनोर्जिताम् ।
निन्ये ऽवारितवामेन स कामेन विधेयताम् ॥ ४१७ ॥

४१७. निर्जन में यौवन पूर्ण उस सर्वांग सुन्दरी को देखकर वह अवारित (प्रतिरोध रहित) कुटिल काम के वशीभूत हो गया।

दधती रूपमाधुर्यपूरच्छन्नामधृष्यताम् ।
अप्सराः प्रत्यभात्तस्य सा हि चित्ते न देवता ॥ ४१८ ॥

४१८. रूप की अत्यधिक माधुरी से पूर्ण एव असंयत वह, उसके चित्त में (उसे) अप्सरा प्रतीत हुई न कि देवता ।

कृपामृदुरवादीत्त व्यथितोऽसि चिरं पथि ।
मुहुः सौम्य समाश्वस्य प्रार्थ्यतामुचितो वरः ॥ ४१९ ॥

४१९. (देवी ने) उससे कृपापूर्ण मृदुवचन कहा—'सौम्य ! मार्ग मे चिरकाल कष्ट प्राप्त किये आश्वस्त होकर उचित वर की प्रार्थना करो ।'

स तां बभाषे शान्तो मे भवत्या दर्शनाच्छ्रमः ।
अदेवी किं तु भवती वर दातुं कथं क्षमा ॥४२०॥

४२०. वह उस (देवी) से बोला—'आपने दर्शन द्वारा मेरा श्रम शान्त कर दिया । किन्तु आप देवी नहीं हैं । अतएव वर प्रदान में कैसे समर्थ होंगी ।'

---

४१६ (१) इस पद के तुल्य बाण के हर्ष चरित में पद मिलता है—

'भास्वद् बिम्बाधारेण प्रसन्नावलोकितेन चन्द्र-मुखेन कृष्णवकेशेन, वपुषा सर्वदेवावतारइव ।'

४१६ (२) इसका अर्थ सभी अनुवादको ने भिन्न भिन्न किया है । उनमें केवल भावार्थ मिलता है । कल्हण कवि के श्लोक से शरीर मात्र का दर्शन होता है । आत्मा का नही । उक्त अनुवाद मूल के अत्यन्त निकट है । इसमे कवि ने अद्भुत काव्य व्यञ्जना प्रकट की है । यहाँ कवि ने सूर्य, कृष्ण, राम, हरि तथा शिव सबसे निर्मित शरीर का उल्लेख किया है । उक्त श्लोक का निम्नलिखित अर्थ भी होता है ।

"भास्वद्बिम्बाधरा, कृष्णकेशी, शितकरानना हरिमध्या, शिवाकारा वह मानो सर्वदेवमयी (सर्व देवनिर्मित) थी ।"

श्लोक का भावार्थ निम्न प्रकार से होगा

उसके अधर बिम्बतुल्य रक्तवर्ण, केश काले; आनन शशीतुल्य सुन्दर, सुन्दर कर एव आनन, मध्य (कटि, सिंह सदृश कृश एवं आकार सुन्दर था ।"

इसी प्रकार का वर्णण भवभूति के मालतीमाधव नाटक के प्रथम अंक तथा कालिदास के मेघदूत में मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१९ में 'सौम्य' का पाठभेद 'सोम्य' मिलता है ।

देवी जगाद तं भद्र कोऽयं ते मनसि भ्रमः ।
देवी वा स्यामदेवी वा वरीतुं त्वां तु शक्नुयाम् ॥४२१॥

४२१. देवी ने उससे कहा—"भद्र ! तुम्हारे मन में यह कैसा भ्रम हो गया है ? मैं देवी हू अथवा अदेवी, तुम्हें वर प्रदान में समर्थ हूं।"

इति सोऽभीष्टसंप्राप्तौ कारयित्वा प्रतिश्रवम् ।
दूरमुत्क्रान्तमर्यादः संगमं तामयाचत ॥ २२॥

४२२. इस प्रकार अभीष्ट सम्प्राप्ति की प्रतिज्ञा कराकर, मर्यादा हीन हो, उस देवी से संगम की याचना की।

तमभ्यधात्सा दुर्बुद्धे कोऽयं तेऽनुचितो विधिः ।
प्रार्थयस्वेतरद्यस्मात् साऽहं भ्रमरवासिनी ॥४२३॥

४२३. उस देवी ने उससे कहा—'दुर्बुद्धे ! तुम्हारा यह कैसा अनुचित आचरण (विधि) है ? अपना इतर वर माँगो। क्योंकि मै ही भ्रमरवासिनी देवी हूँ।'

देवीं तां जानतोऽप्यस्य नाभूदवहितं मनः ।
निरुद्धा वासनाः केन जन्मान्तरनिबन्धनाः ॥४२४॥

४२४. उसे देवी जानकर भी उसका मन विचलित नहीं हुआ। जन्मान्तरीय वासनाओं[1] को कौन दूर कर सकता है।

स तामुवाच सत्यां चेद्देवि स्वां गिरमिच्छसि ।
प्रमाणीकुरु मद्वाणीमहमन्यन्न कामये ॥४२५॥

४२५. उसने उस देवी से कहा—'देवि ! यदि अपनी वाणी सत्य करना चाहती हो तो मेरी वाणी (याचना) पूरी करो। मैं दूसरी कामना नहीं करता हूँ।'

पूर्वमेव हि जन्तूनां योऽधिवासो निलीयते ।
तिलानामिव तेषां स पर्यन्तेऽपि न शीर्यते[1] ॥४२६॥

४२६. प्राणियों मे जो सस्कार पूर्व मे स्थित हो जाते हैं, वे उनके (शारीरिक) तिलों[2] के सदृश मृत्यु पर्यन्त नष्ट नहीं होते।

पादटिप्पणियाँ :

४२४ (१) वासना इस पद मे अधिवासा शब्द पद ४२४ में वासना शब्द को समुद्दिश् करता है।

४२६ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८२ वां श्लोक है।

(२) तिल : शरीर पर कुछ तिल जन्म-जात होते हैं और कुछ तिल कालान्तर में बन जाते हैं। यह तिल त्वचा पर मृत्यु काल पर्यत रहते है। वे नष्ट नही होते। इसी प्रकार प्राणियो का पूर्व सस्कार उनके साथ जैसे तिल शरीर के साथ मिलकर नष्ट नही होता उसी प्रकार सस्कार नष्ट नही होते।

देवी वा भव कान्ता वा भीमा वा शोभनाऽपि वा।
यादृशीं पूर्वमद्राक्षं तादृश्येवाऽवभासि मे ॥४२७॥

४२७. 'आप देवी हों अथवा कान्ता, भयंकर हों अथवा सुन्दर, जिस प्रकार पहले देखा था, उसी प्रकार अब भी मुझे लग रही हो।'

तमित्थं कथयन्तं सा ज्ञात्वा निश्चलनिश्चयम्।
एवं जन्मान्तरे भावीत्यभ्यधादनुरोधतः ॥४२८॥

४२८. इस प्रकार सानुरोध करते हुए, उसे दृढ़निश्चयी जानकर उस (देवी) ने कहा—'ऐसा जन्मान्तर में होगा।'

उत्सहन्ते हि संस्प्रष्टुं न दिव्या मर्त्यधर्मिणः।
तद्गच्छ क्रूरसंकल्पेत्युक्त्वा साऽन्तर्दधे ततः ॥४२९॥

४२९. 'दिव्य (शरीरी) मरणशील प्राणियों का स्पर्श नहीं करते है। अतएव हे क्रूर संकल्प! तुम जाओ।' कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गयी।

अशून्यजन्मा भूयासं तया देव्येति चिन्तयन्।
प्रयागवटशाखाग्रादहसीत्स वपुस्ततः ॥४३०॥

४३०. तदनन्तर 'उस देवी के साथ दिव्य जन्म की प्राप्ति होगी' ऐसा सोचते हुए उसने प्रयाग के वट[1] के शाखाग्र से शरीर त्याग कर दिया।

सोऽजायत रणादित्यो रणारम्भा च सा भुवि।
मर्त्यभावेऽपि या नैव जहौ जन्मान्तरस्मृतिम् ॥४३१॥

४३१. वह पृथ्वी पर रणादित्य हुआ। वह (देवी) रणारम्भा हुई जिसने मानव योनि में भी जन्मान्तर की स्मृति नहीं त्यागी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२९ मे 'सस्प्रष्टु' का पाठभेद 'सस्त्रष्टु' 'दिव्या' का 'देव्यो' तथा 'धर्मिण' का पाठभेद 'धर्मिणाम्' मिलता है।

श्लोक सख्या ४३० मे 'स' का पाठभेद 'स्व' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४३० (१) **वट** : 'अक्षय वट' प्रयाग में गंगा-यमुना संगम पर किला मे है। स्वर्ग मे सुख की प्राप्ति से स्वतः शरीर विसर्जन का उल्लेख हुएन्त्साग ने किया है। (रा०त० १ २३२) दक्षिण तथा पश्चिम भारत में इस वृक्ष को बड तथा उत्तर भारत में बरगद कहते हैं।

पुराणो मे वर्णन मिलता है। प्रलय काल में जब सब कुछ जलमय हो जाता है उस समय वट का एक वृक्ष बच जाता है। उसके एक पत्ता पर भगवान् बाल रूप धारण कर रहते हैं। वहा से सृष्टि के अनादि रहस्य का अवलोकन करते हैं। यह वट प्रयाग संगम पर है। कालिदास ने रघुवंश में इसका उल्लेख किया है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४३१ में 'नैव' का पाठभेद 'यन्नैव' मिलता है।

रतिसेनाभिधश्चोलराजः सज्जोऽब्धिपूजने ।
तां तरङ्गान्तराल्लेभे रत्नराजिमिवोज्ज्वलाम् ॥४३२॥

४३२. समुद्र पूजन में लग्न चोलराज[1] रतिसेन ने तरंगमध्य से उज्ज्वल रत्नराशि तुल्य उसे प्राप्त किया था।

आ बाल्याद्व्यक्तदिव्योक्ति तामलङ्कृतयौवनाम् ।
दिव्यार्हां पृथिवीशेभ्यो नार्थिभ्योऽपि ददौ नृपः ॥४३३॥

४३३. बाल्यपन से ही दिव्य लक्षणों से युक्त एवं यौवन से अलंकृत करते उस दिव्यार्हा (दिव्य पुरुष के योग्य) को नृपति ने प्रार्थी पृथिवीशों (राजाओं) को भी नहीं प्रदान किया।

रणादित्यनृपामात्ये दूत्यायाते तथैव तम् ।
प्रत्याख्यानेच्छुमाचख्यौ सैव तद्वरणं वरम् ॥४३४॥

४३४. राजा रणादित्य के दूतरूप में आये अमात्य को भी पूर्ववत्-प्रत्याख्यान के लिए इच्छुक (पिता से) उसने (कन्या ने) ही उसी का वरण श्रेष्ठ कहा।

तदर्थमेव कथितस्वोत्पत्ति तां ततः पिता ।
द्रुतं कुलूतभूभर्तुः सुहृदः प्राहिणोद् गृहान् ॥४३५॥

४३५. उसी के निमित्त अपनी उत्पत्ति कहने पर पिता ने उस (कन्या) को[1] शीघ्र ही सुहृद् कुलूत पति[2] के गृह प्रेषित कर दिया।

प्रहृष्टोऽविप्रकृष्टं तं देशं गत्वा व्यधत्त ताम् ।
परिणीय रणादित्यः शुद्धान्तस्याधिदेवताम् ॥४३६॥

४३६. दूरस्थ उस देश में विना गये ही प्रसन्न रणादित्य ने उसे परिणीत कर अन्तःपुर में (अधिदेवता) प्रधान रानी बना दिया।

पादटिप्पणियाँ

४३२ (१) चोल पाद टिप्पणी त० १ ३०० पृष्ठ द्रष्टव्य है।

पादटिप्पणियाँ

४३५ (१) कन्या दक्षिण में एक आख्यायिका प्रचलित है। चोलराज तथा कश्मीरराज में वैवाहिक सम्बन्ध था। शशि शेखर तथा राजाधिराज चोल का विवाह कश्मीर की राजकन्याओं से हुआ था।

(२) कुलूत : यह हिमाचल प्रदेश कुल्लू प्रदेश के लिये आया है जो व्यास किंवा विपासा नदी का ऊर्ध्वभाग स्थित भूखण्ड है। बृहद् संहिता से भी यही बात स्पष्ट होती है।

मर्त्यसंस्पर्शभीरुः सा महादेवीभवन्त्यपि ।
तं मायया मोहयन्ती न पस्पर्श कदाचन ॥४३७॥

४३७. मनुष्य स्पर्श से भीरु वह राजपत्नी होती हुई भी, उसे माया मोहित कर, उसका कभी स्पर्श नहीं किया।

व्यधान्मायामयीं राज्ञस्तल्पे स्वसदृशीं स्त्रियम् ।
स्वयं सा भ्रमरीरूपा निर्जगाम बहिर्निशि ॥४३८॥

४३८. राजा के तल्प पर अपनी तरह मायामयी स्त्री बना देती थी और भ्रमर रूपा वह स्वयं रात्रि में बाहर चला जाती थी।

स नाम्ना स्वस्य देव्याश्च कृत्वा सुरगृहद्वयम् ।
माहेश्वरः शैललिङ्गे कारयामास कारुभिः ॥४३९॥

४३९. उसने अपने और देवी (रानी) के नाम से दो देव मन्दिर निर्मित करा, शिल्पियों द्वारा शैल लिंग[1] पर माहेश्वर[2] (शिव) बनवाया।

श्वः प्रतिष्ठाप्रसङ्गेऽथ सज्जे तल्लिङ्गयोर्द्वयम् ।
देशान्तरागतः कश्चित् दूषयामास दैववित् ॥४४०॥

४४०. दूसरे दिन प्रतिष्ठा अवसर पर देशान्तर से आये किसी दैवविद् से (ज्योतिषी) ने उन दोनों लिंगों को दोष पूर्ण कहा—

स दृष्टप्रत्ययः शश्वत् तयोर्घटियलिङ्गयोः ।
अश्मखण्डैः समण्डूकैः बभाषे गर्भमावृतम् ॥४४१॥

४४१. शश्वत् दृष्ट प्रत्यय उसने कहा—'निर्मित उन दोनों लिंगों का गर्भ मण्डूक सहित अश्म खण्डों से आवृत है।

पाठभेद .

श्लोक संख्या ४३९ मे 'स' का 'स्व', 'सुर' का 'स्वर', 'पर' एवं 'माहेश्वर ' का पाठभेद 'माहेश्वरे' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

४३९ (१) शैल लिंग : इसका अर्थ होता है कि विशाल पाषाण खण्ड पर शिव लिंग का निर्माण कराया।

(२) माहेश्वर वायुपुराण (अ० २३) तथा लिंग पुराण (अ० २४) मे एक कथा वर्णित है। उसके अनुसार माहेश्वर ने ब्रह्म देव से कहा था कि युगों के अठाईसवें प्रत्यावर्तन में कृष्ण द्वैपायन के समय जब वासुदेव जन्म लेंगे तब वे श्मशान में पडे हुए एक मृत शरीर में प्रविष्ट होकर 'लकुलिन्' नामक ब्रह्मचारी के रूप मे अवतार लेंगे। यह घटना कामावतार किंवा कायारोहण में घटित होगी। उनके चार शिष्य (१) कुशिक (२) गर्भ (३) मित्र और (४) कौरूष्य होंगे। अन्त में पाशुपत शरीर में भस्म लगाकर माहेश्वर योग करते रुद्र लोक में जायेंगे। माहेश्वर नाम अति प्राचीन है। विम कदफिसस और वलभी वश के राजा स्वयं को महेश्वर कहते थे। ह्वेनत्साग ने माहेश्वर मन्दिरो का उल्लेख किया है। उनमें पाशुपत पूजा करते थे। मध्य भारत में माहेश्वर तीर्थ है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४१ में 'अश्म' का पाठभेद

किंकर्तव्यतया मूढं प्रतिष्ठाविघ्नविह्वलम् ।
दिव्यदृष्टिः स्वयं देवी ततो राजानमब्रवीत् ॥४४२॥

४४२. किंकर्तव्य विमूढ एवं प्रतिष्ठा के विघ्न [1]से विह्वल राजा से दिव्य दृष्टि स्वयं देवी ने कहा—

राजन्गिरिसुतोद्वाहे पौरोहित्यं पुरा भजन् ।
स्वमर्चादेवमादत्त पूजाभाण्डात्प्रजापतिः ॥४४३॥

४४३. 'राजन्[1] प्राचीन काल में गिरिसुता परिणय में पौरोहित्य कर्म करते प्रजापति ने पूजा पात्र से अपने अर्चा देव को लिया।

तां विष्णोः प्रतिमां वीक्ष्य पूजितां तेन धूर्जटिः ।
शून्यामिव तदा मेने शक्तिरूपां विना शिवम् ॥४४४॥

४४४. 'उन (ब्रह्मा) से पूजित शक्ति रूपा उस विष्णु[1] प्रतिमा को शिव रहित देख कर धूर्जटी (शिव) ने शून्य (अनुपयोगी) माना।

निमन्त्रितैर्ढौकितानि रत्नान्यथ सुरासुरैः ।
पिण्डीकृत्य स्वयं चक्रे लिङ्गं भुवनवन्दितम् ॥४४५॥

४४५. 'नियन्त्रित सुरों एवं असुरों द्वारा प्रदत्त रत्नों को एक में (पिण्डी कृत) करके स्वयं भुवन वन्दित लिंग निर्मित किया।

'अश्व' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४४२ (१) विघ्न : किसी प्रकार शुभ, पवित्र, तथा यात्रादि में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न करना, उसमें अडगा लगाना, उसके नष्ट करने की चेष्टा करना विघ्न कहा जाता है। धार्मिक कृत्यो में यदि विघ्न पडता है तो समझा जाता है कि क्रिया करने वाले का अनिष्ट होगा।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४४३ में 'स्वमर्चादेवमादत्त' का 'समर्चाद्देवमादिव' तथा 'दत्त' का पाठभेद 'षत्त' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४४३ (१) गिरिसुता : हिमालय तथा मेना की कन्या पार्वती थी। नारद के सुझाव पर हिमालय ने पार्वती का विवाह शिव के साथ कर दिया था।

पूर्वकाल में पार्वती कृष्ण वर्ण की थी। अनरकेश्वर तीर्थ मे स्नान कर इन्हो ने शिव को दीप दान किया था। उसके पश्चात् वह गौर वर्ण हो गयी थी।

पर्वत की कन्या होने के कारण नाम पार्वती पडा था। पर्वतो की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण भी नाम पार्वती पडा था। यह नृत्यो में लास्य नृत्य की प्रवर्तिका मानी जाती है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४४४ में 'शून्यामिव' का पाठभेद 'शून्यामेव' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ,

४४४ (१) शक्तिरूपा विष्णु वायुपुराण २५ २३ तथा कूर्म पुराण २ ४ के अनुसार विष्णु भगवान् शिव शक्ति की मूर्ति माने जाते हैं।

तां विष्णुप्रतिमां तच्च लिङ्गमीशानपूजितम् ।
स्वयं प्रजासृजः पूज्यं कालेनादत्त रावणः ॥४४६॥

४४६. 'स्वयं प्रजापति का पूज्य (एवं) ईशान पूजित उस लिंग तथा उस विष्णु प्रतिमा को समय से रावण नेप्राप्त किया।

तेनाप्यभ्यर्च्यमानं तत् लङ्कायामभवच्चिरम् ।
देवद्वयं रावणान्ते नीतमासीच्च वानरैः ॥४४७॥

४४७. 'लंका में वह (लिंग) चिरकाल तक उससे पूजित हुआ। रावण के पश्चात् वानरों ने देव-द्वय (दोनों लिगों,' को ले लिया।

तिर्यक्तया ते कपयो मुग्धा हिमनगौकसः ।
शान्तौत्सुक्या शनैः देवौ न्यधुरुत्तरमानसे ॥४४८॥

४४८. 'हिमालय निवासी उन मुग्ध कपियों ने (तिर्यक) पशु स्वभाव के कारण उत्सुकता समाप्त हो जाने पर दोनों देवों को उत्तर मानस[१] में रख दिया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४४८ मे 'हिमनगौकस.' का 'हिमानसौकसः' तथा 'देवौ' का पाठभेद 'देव्यो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ ·

४४८ (१) उत्तरमानस : कश्मीर मे उत्तर मानस गंग बल को कहते है। हरमुख पर्वत की पूर्वीय हिमानी के अधोभाग मे वह सरोवर स्थित है। हरमुकुट माहात्म्य तथा हरचरित चिन्तामणि (४:८७) से भी वह बात प्रमाणित होती है। नीलमत पुराण (श्लोक ९१०, ९९०, तथा १२६३) में भी इसका उल्लेख है। पृष्ठ १०० भी द्रष्टव्य है।

उत्तर मानस से नीचे एक दूसरा सर है उसमें भी जल हिमानी अर्थात् ग्लेसियर से आता है। इसे नुन्द कोल कहते हैं। प्राचीन नाम कालोदक है। नन्दिसर भी कहा जाता है। हरचरित चिन्तामणि तथा नीलमत पुराण में इसका उल्लेख मिलता है :

नारायणो निरुद्धश्च वासुदेवो जलान्धसः ।
पात्रश्च मानसश्चैव तथैवोत्तरमानस ॥
890 = १०६०

सर्वपापविनिर्मुक्तो वारुणं लोकमश्नुते ।
मानसस्योत्तरे कूले महापद्मजलाशये ॥
1005 = ११७६

* * *

तत्र सस्नापयन्तिस्म ज्येष्ठेशं ते सदैव तु ।
ब्रह्मन् दिव्येन तोयेन शुभेनोत्तरमानसम् ॥1112
= १३१२-१३१३

* * *

तेषां तपःप्रभावेण भक्त्या च मम पार्षद ।
सोदरस्य च नागस्य स्नानं कृत्वा विधानतः ॥
1113 = १३१३-१३१४

* * *

मृत्यु विसर्जयामास सान्त्वयित्वा सुरारिहा ।
नन्दिनं च समादाय दृष्ट्वा चोत्तरमानसम् ॥
1117 = १३२०

× × ×

उत्तरे मानसे स्नात्वा गोसहस्रफल लभेत् ।
पितरस्तर्पितास्तत्र कामान्यच्छन्त्यभीप्सितान् ॥
1241 = १४५४ १४५५

महाभारत अनुशासनपर्व में कालोदक, नन्दिकुण्ड, नन्दीश्वर तीर्थों का इतना सुन्दर वर्णन मिलता है

प्रागेव सरसस्तस्मात्कुशलैः शिल्पिभिर्मया ।
तावुद्धृतौ प्रातरत्र प्राप्तौ द्रक्ष्यस्यसंशयम् ॥४४९॥

४४९. 'मैंने पहले ही उस सरोवर से कुशल शिल्पियों द्वारा उन दोनों को निकलवा लिया है। निश्चय ही प्रातः यहाँ देखोगे।

तयोः प्रतिष्ठा क्रियतामित्युक्त्वा पृथिवीभुजम् ।
देवी प्रयाता शुद्धान्तं सिद्धान्सस्मार खेचरान् ॥४५०॥

४५०. उन दोनों की प्रतिष्ठा करे।' इस प्रकार पृथ्वीपति से कह कर देवी शुद्धान्त (अन्तःपुर) मे गयी और सिद्ध खेचरों' (आकाशचारी) का स्मरण किया।

ते ध्यातमात्राः संप्राप्ता देव्यादेशेन पाथसः ।
उद्धृत्य नृपतेर्धाम्नि देवौ हरिहरौ न्यधुः ॥४५१॥

४५१. ध्यान करते ही, वे उपस्थित हो गये और देवी के आदेश से जल से निकालकर, हरि-हर दे को नृप धाम में लाये।

दिव्यैः प्रसूनैः संवीतौ हरनारायणौ जनः ।
प्रातर्नृपगृहे दृष्ट्वा परं विस्मयमाययौ ॥४५२॥

४५२. दिव्य प्रसूनों से संवीत (आच्छादित) हर तथा रि को प्रातः राजगृह में देखकर लोग अत्यन्त विस्मित हुए।

सज्जे प्रतिष्ठालग्नेऽथ माहेश्वरतया नृपः ।
रणेश्वरप्रतिष्ठायां पूर्वं यावत्समुद्यतः ॥४५३॥

४५३. माहेश्वर होने के कारण नृप प्रतिष्ठा सज्ज (उपस्थित) होने पर पहले रणेश्वर[1] की प्रतिष्ठा हेतु जबतक उद्यत हो रहा था —

कि प्रतीत होता है कि महाभारतकार ने स्वय कश्मीर जाकर अपनी आँखो से इन तीर्थों को देखा था।

कालोदक नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम् ।
अभ्येत योजनशताद् भ्रूणहा विप्रमुच्यते ॥२५.६०

× × ×

नन्दीश्वरस्य मूर्ति तु दृष्ट्वा मुच्येत किल्विषै ।
स्वर्गमार्गे नर स्नात्वा ब्रह्मलोक स गच्छति ॥२५.६०

सौ योजन दूरसे आकर कालोदक, नन्दि कुण्ड तथा उत्तरमानस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य यदि भ्रूण हत्या भी किया हो तो वह पाप मुक्त हो जाते हैं।

वहाँ नन्दीश्वर की मूर्ति का दर्शन करके मनुष्य पापो से मुक्त हो जाता है। स्वर्गमार्ग में स्नान करने पर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४४९ में 'द्धृतौ' का पाठभेद 'घृतौ' मिलता है।

श्लोक सख्या ४५१ में 'न्यधुः' का पाठभेद यधु.' मिलता है।

श्लोक संख्या ४५३ में 'लग्ने' का पाठभेद 'लिङ्गे' मिलते हैं।

पादटिप्पणियाँ :

श्री स्तीन तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित एव अन्य अनुवादको ने श्लोक सख्या ४५३ तथा

रणारम्भानुभावेन तावदेवाद्भुतावहः ।
स्वयं पीठे रणस्वामी भित्त्वा यन्त्रमुपाविशत् ॥४५४॥

४५४. तब तक रणारम्भा के प्रभाव से विस्मय करने वाले स्वयं रण स्वामी[1] यन्त्र भेदन कर पीठ पर बैठ गये ।

---

४५४ का अनुवाद एक ही साथ किया है । परन्तु दोनो श्लोको को युग्मक श्री कल्हण ने नही लिखा है अतएव उसी का अनुकरण कर यहाँ दोनो का अनुवाद अलग अलग दिया गया है ।

४५३ (१) रणेश्वर . यह देवस्थान श्रीनगर मे अथवा उसके समीप था । रणस्वामी से दूर नही था वे एक दूसरे के समोप थे । रणेश किंवा रणेश्वर का पुनः उल्लेख कल्हण ने नही किया है । यह मन्दिर कहाँ था इसका निश्चयात्मक पता नही चलता ।

श्री आनन्द कौल इस मन्दिर के सम्बन्ध मे श्री स्तीन के मत का उल्लेख करते है । वह रणेश्वर के मन्दिर के विषय में इतना कहते हैं कि विचार नाग से दो मिल दक्षिण रणेश्वर का मन्दिर रणादित्य ने निर्माण कराया था । उनके मत से इस मन्दिर के लिये मदनी साहब की ज़ियारत की गवेषणा करनी चाहिए ।

४५४ (१) रणस्वामी यह मन्दिर श्रीनगर मे अथवा उसके और रणेश्वर के समीप स्थित था । रणस्वामी का देवस्थान अधिक प्रसिद्ध मालूम होता है । इस स्थान का पता अन्य उल्लेखो से लगाया जा सकता है । तरंग ५ ३९४ मे इसका पुन उल्लेख चक्रवर्मा की रानी का माघ मास मे यहा आनेका मिलता है । यह समय कश्मीर उपत्यका मे भयकर तुषारपात होता है । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस देवस्थान का मार्ग अत्यधिक तुषार पात के समय भी सुगम तथा सरल रहा होगा ।

मंख ने श्रीकठचरित (३:६८) में वर्णन किया है कि उसके पिता इस मन्दिर मे पूजा करने के लिये जाया करते थे । श्री जोनराज ने भी इस के सम्वन्ध में लिखा है—'श्री प्रवरपुर प्रधान देवता' श्रीप्रवरपुर का अर्थ श्रीनगर है । श्रीनगर के प्रधान देवता का श्रीनगर मे होना स्वाभाविक प्रतीत होता है ।

जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है (श्लोक ८७२) कि बड़शाह जैनुल आबदीन ने 'जैन गंगा' नहर को अपने नवीन नगर जैन नगरी में रण स्वामी तक बनवाकर ले आया था ।

जोनराज के वर्णन (८७०) से प्रतीत होता है कि जैन नगरी प्रद्युम्न नगरी (हर पर्वत) तथा अमरेशपुर (अम्बुरहर तरग १:२८७) उसकी अन्तिम सीमा थी । इससे प्रतीत होता है कि जैन गगा ही वर्तमान नहर लच्छम कुल अर्थात् लक्ष्मण कुल्या है । यह नहर सिन्धु नदी से जल अम्बरहर से होती नौशहर तथा संगीन दरवाजा तक पानी लाती है । हरपर्वत के पश्चिम तरफ संगीन दरवाजा है । यह नहर दक्षिण दिशा की ओर चलती जामा मसजिद तक जाती है मार नहर मे कादो कदल पुल के पास मिल जाती है ।

जोनराज ने अपनी तरंगिणो सन् १४४६—१४५९ ई० मे लिखी थी । जैनुल आबदीन के समय लछमकुल यह वही है जिसे जोनराज ने देखा था । श्री स्तीन का मत है कि रणस्वामी का मन्दिर मार तथा लच्छम कुल नहर के कोने पर टूटा पडा मन्दिर है । यह अब तक इसलिये वर्तमान है कि मुसलमानो ने इस मन्दिर को जियारत पीर हाजी मुहम्मद साहेब मे परिवर्तित कर लिया है ।

कर्तुं प्रभावजिज्ञासां राज्या दत्तधनस्ततः ।
स स्वयंभूः स्वय भक्तैः तांस्तान्ग्रामानदापयत् ॥४५५॥

४५५. प्रभाव के जिज्ञासा हेतु उन्हें धन अर्पित किया। तदनन्तर स्वयं उन स्वयंभू[1] ने भक्तों को तत्तत् ग्राम प्रदात कराया।

कुम्भदासतया छन्नः सिद्धो ब्रह्माभिधो वसन् ।
परिज्ञाय तयोर्देव्या प्रतिष्ठाकर्म कारितः ॥४५६॥

४५६. कुम्भदास[1] (जल लाने वाला) के रूप में छिपकर रहते हुए ब्रह्म नामक सिद्ध को जान कर रानी ने उसके द्वारा दोनों (मूर्तियों) का प्रतिष्ठा कर्म कराया।

स वृत्तप्रत्यभिज्ञः सन्प्रतिष्ठाप्य रणेश्वरम् ।
व्योम्ना व्रजन् रणस्वामिप्रतिष्ठां गूढमादधे ॥४५७॥

४५७. रणेश्वर की प्रतिष्ठा करके परिचय ज्ञात हो जाने पर आकाश से जाते हुए रण स्वामी की प्रतिष्ठा गुप्त रूप से की।

दीवालो के अतिरिक्त जो अष्टकोणीय कक्षा पर बनी है तथा दो सीढ़ियाँ जो इसके दोनो द्वारो पर गयी हैं। मन्दिर के प्रांगण के प्राकार की दीवालें भी आज तक खडी हैं। किसी का ध्यान इस ओर नही गया है। कश्मीर के पुरातत्त्व के कागजो में भी इसका उल्लेख नही किया गया है। श्री स्तीन ने एक दूसरा विकल्प भी दिया है। वे कहते हैं— लछम कुल प्राचीन समय में यदि और उत्तर दिशा में उस शाखा में मिली होती जो डल लेक में जाकर वूट कदल के पास जाकर मिल जाती है तो रणस्वामी के मन्दिर का ध्वन्सावशेष सगीन दरवाजा के उत्तरीद भाग में मादिन साहब की मसजिद में बिखरे प्राचीन मन्दिरो के ध्वन्सावशेष में खोजना होगा।

श्री पण्डित साहेबराम ने अपने तीर्थों में केवल इतना ही लिखा है। रणस्वामी का मन्दिर हर पर्वत के पश्चिम में था। उन्होने कोई निश्चित स्थान नही बताया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५५ में 'भक्तै' का पाठभेद 'भक्ता' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ.

४५५ (१) स्वयंभू यह मानव निर्मित प्रतिमा तथा स्थान नही होता था अपितु स्वय प्रजापति का कर्तृत्व समझा जाता था। रा. त. १ : ३४, पृष्ठ ७३ द्रष्टव्य है।

श्री स्तीन, श्री रणजीत सीताराम पण्डित एव अन्य अनुवादकों ने श्लोक संख्या ४५६—४५८ का एक ही साथ अनुवाद 'तिलकम्' के रूप में किया है। किन्तु श्री कल्हण ने उन्हें 'तिलकम्' नही लिखा है। अतएव उनका अनुवाद अलग अलग किया गया है।

४५६ (१) कुम्भदास : कुम्भकार का अर्थ कुम्हार होता है। अर्थात् घडा बनाने वाले का नाम कुम्भकार होता है। कुम्भ दास का अर्थ होगा कुम्भ—घडा का दास। यह शब्द यहाँ पर कर्म का बोधक है। कुम्भ की सेवा का तात्पर्य कुम्भ से जल ले जाना ही हो सकता है। वाटर पाइप लगने के पूर्व कश्मीरी हिन्दू ब्राह्मणो के घर में क्षत्रिय तथा उनकी स्त्रियाँ घडो अर्थात् कुम्भ से जल भरती थी। वे मासिक पारिश्रामिक पाती थी। पुरुष जल भरने वाले को कुम्भदास तथा जल भरने वाली स्त्री को कुम्भदासी कहा जाता था। कल्हण ने कुम्भदासी का पुन उल्लेख त० ८ : १७२६ में किया है।

जनास्त्वलक्षयन् यत्स स्वयं पीठमवातरत् ।
इति केषामपि हृदि प्रवादोऽद्यापि वर्तते ॥४५८॥

४५८. लोगों ने देखा कि वे स्वयं पीठ पर अवतरित हुए—यह प्रवाद आज भी किसी-किसी के हृदय में (स्थित) है।

सा ब्रह्मप्रतिमं सिद्धं देवी ब्रह्मविदां वरम् ।
अकारयत्तमुद्दिश्य परार्ध्यं ब्रह्ममण्डपम् ॥४५९॥

४५९. ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्मप्रतिम उस सिद्ध को उद्देश्य कर उस देवी ने बहुमूल्य ब्रह्म मण्डप निर्मित कराया।

रणारम्भास्वामिदेवौ दंपतिभ्यां व्यधीयत ।
मठः पाशुपतानां च ताभ्यां प्रद्युम्नमूर्धनि ॥४६०॥

४६०. रणारम्भा स्वामी एवं रणारम्भादेव को दम्पति ने बनवाया। प्रद्युम्न मूर्धा[1] (शिखर) पर पाशुपतों के लिये मठ निर्मित कराया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५८ में 'प्रबादो' का पाठभेद 'प्रवचो' मिलता है।

श्लोकसख्या ४५९ में 'परार्ध्य' का 'परार्द्धं' तथा 'मण्डपम्' का पाठभेद 'सत्तमम्' मिलता है।

श्लोकसख्या ४६० में 'दैवो' का 'देवो' 'दम्पतिभ्या' का 'दम्पतीभ्या' तथा 'प्रद्युनमूर्धनि' का पाठभेद 'शारिकागिरो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६० (१) प्रद्युम्न मूर्धाः प्रद्युम्न मूर्धा किंवा शिखर हर अथवा शारिका पर्वत के लिये प्रयुक्त किया गया है। इसे हर पर्वत भी कहते हैं।

इसका उल्लेख प्रद्युम्न पीठ, प्रद्युम्न गिरि, तथा प्रद्युम्नशिखर नाम से किया गया है (त. ७:१६-१६ ; विक्रमांक देव चरित, विल्हण ; १८।१५ ; जोनराज ; ५८७, ८७० ; श्रीवर १ ६३१, २·८८, तथा महादेव माहात्म्य २:७)।

सोमदेव ने कथासरित्सागर (७३ १०९) में इस पर्वत को उषा और अनिरुद्ध की प्रेम कथा से जोडा है। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध थे।

इस पर्वत के पूर्वीय ढाल पर बहुत पैमाने में फैली मुसलिम जियारतें मुकद्दम साहिब तथा आखूनमुल्ला शाह की है। यह सब प्राचीन मन्दिर मठो तथा विहारों के स्थानो पर बनी है। यद्यपि रणस्वामी एव रणेश्वर के मन्दिरो की तरह यह भी समीप ही स्थित हैं परन्तु निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि वे रणस्वामी एवं रणेश्वर के ही स्थान थे। पता नही जब मैंने इस स्थानो को देखा तो भावुकतावश यह धारणा हो गयी कि रणस्वामी तथा रणेश्वर के ध्वन्सावशेष यही थे। परन्तु वह मेरे मन का भ्रम ही हो सकता है। इसका कोई प्रमाण नही प्रतीत होता। किन्तु न जाने वहाँ आनेपर मुझे क्यो हार्दिक सन्ताप जैसा हुआ। मन रोने लगा। आखो के सम्मुख जैसे मूर्तिया आने लगी। मुझे अच्छी तरह स्मरण है मूर्तियो के मुख से करुणा जैसे झलक रही थी। वे कह रही थी—क्या था ? क्या होगया ? मैं उस समय के अने भाव को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ पाता हूँ।

आरोग्यशाला निरघाऽप्युल्लाघत्वाय रोगिणाम् ।
तेन सेनामुखोदेवीभयशान्त्यै च कारिता ॥४६१॥

४६१. उसने रोगियो के आरोग्य एवं सेनामुखी देवी के भय शान्ति हेतु सुन्दर आरोग्यशाला[1] स्थापित किया।

नीलमत पुराण में प्रद्युम्न नाग का उल्लेख मिलता है।

सूदनौ द्वौ सुपार्श्वश्च सुनास पञ्चहस्तक. ।
प्रद्युम्नश्चान्धकः शम्भु साल्वो मूलेश्वरो धृष ॥
888 = १०५८

योग वासिष्ठ रामायण में हरपर्वत शिखर किंवा शारिका पर्वत शिखर को प्रद्युम्न शिखर कहा गया है। (स्थिति प्रकरण सर्ग: ३२ श्लोक: १२)

पुराणो में तोन प्रद्युम्न नामक व्यक्तियो का वर्णन मिलता है। भागवत पुराण (४: १३ १६) के अनुसार प्रद्युम्न एक राजा था। वह चक्षुर्मनु के बारह पुत्रो में से एक था। इसकी माता का नाम नड्वला था। सुद्युम्न भी इसा एक नामान्तर है।

वायुपुराण के अनुसार प्रद्युम्न एक राजा था। वह भानुमत् राजा का पुत्र था।

महाभारत अनुशासन पर्व के अनुसार प्रद्युम्न श्रीकृष्ण का पुत्र था। उसकी माता का नाम रुक्मिणो था। सनत्कुमार का अश था। यह पूर्व जन्म में मदन था। शबरासुरका वध करने के लिये अवतार लिया था। शबरासुर की स्त्री मायावती पूर्व जन्म मे प्रद्युम्न की पत्नी रति थी। पूर्व जन्म मे मदन की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री रति को शम्बरासुर हर ले गया था। शम्बरासुर से बदला लेने के लिये प्रद्युम्न का अवतार लिया था। शम्बरासुर तथा प्रद्युम्न की कथा विष्णु, भागवत, हरिवश तथा व्रह्मवैवर्त पुराणो में भिन्न भिन्न रूप से दी गयी है। प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध का भागवत १०.९० .३३ तथा महाभारत वनपर्व १६:३०–३२, १७ २२; १८ ३, १५, १६., २०: ; १०, ७६; १३ में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

यादव वश संहार के समय भोजो के समय प्रद्युम्न मृत हुआ। (म० मौ० ४: ३३, भा ११ ३० १६, गणेश. १ ४९) मृत्युके अनन्तर वह सनत्कुमार के स्वरूप में प्रविष्ट हो गया।

प्रद्युम्न की मायावती पत्नी के अतिरिक्त रुक्मिन की कन्या रुक्मावती अथवा शुभागी से इसने विवाह किया था। (भा० १०: ६१: १८; ८०: १६,) शुभागी से इसको अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ था।

४६१ (१) आरोग्यशाला: अस्पताल का अर्थ आरोग्यशाला है। कल्हण प्राचीन काल में सार्वजनिक आरोग्यशाला होने का उल्लेख करता है।

कल्हण के इस वर्णन ने इतिहास की एक टूटी शृखंला की कडी को जोडा है। आयुर्वेद एव आयुर्विज्ञान भारत में अत्यन्त विकसित था। तक्षशिला तथा काशी इस विद्या के केन्द्र थे। बौद्ध काल में समस्त भारतवर्ष तथा विदेश से विद्यार्थी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सीखने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये तक्षशिला जाते थे। भगवान् बुद्ध का प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक राजगृह से तक्षशिला में आकर शिक्षा प्राप्त किया था।

उस समय आजकल के समान सार्वजनिक अस्पताल भी होते थे यह बात कल्हण के उक्त उल्लेख से स्पष्ट होती है। राजतरगिणी मे आरोग्यशाला स्थापित करने का यह प्रथम उल्लेख मिलता है।

ख्यातिं रणपुरस्वामिसंज्ञया सर्वतो गतम् ।
स सिंहरोत्सिकाग्रामे मार्तण्डं प्रत्यपादयत् ॥४६२॥

४६२. उसने सिंहरोत्सिका ग्राम में रणपुरस्वामी नाम से प्रख्यात मार्तण्ड मन्दिर का निर्माण कराया।

अमृतप्रभया तस्य राज्ञः पत्न्याऽन्यया कृतः ।
दक्षिणेऽस्मिन् रणेशस्य पार्श्वे देवोऽमृतेश्वरः ॥४६३॥

४६३. उस नृप की अपर पत्नी अमृतप्रभा ने रणेश्वर के दक्षिण पार्श्व में अमृतेश्वर देव की स्थापना की।

मेघवाहनभूभर्तृपत्न्या भिन्नाऽऽख्यया कृते ।
विहारेऽपि तया बुद्धबिम्बं साधु निवेशितम् ॥४६४॥

४६४. मेघवाहन नृप पत्नी भिन्ना[1] द्वारा निर्मित विहार में भी उसने सुन्दर बुद्ध प्रतिमा निविष्ट किया।

राज्ञे देव्यनुरक्ताय सानुक्रोशाय सैकदा ।
पातालसिद्धिदं मन्त्रं प्रददौ हाटकेश्वरम् ॥४६५॥

४६५. एक बार उस (रणारम्भा स्वयं) ने देवी में अनुरक्त ए सहानुभूति पूर्ण नृपति को पाताल[1] (विजय) सिद्धिप्रद हाटकेश्वर मन्त्र प्रदान किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६२ में 'मार्तण्डं' का पाठभेद 'मार्त्तण्डं' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६२ (१) सिंहरोत्सिका : इस स्थान का पता नही चलता। कल्हण ने पुन. कही नही वर्णन किया है कि विष्णु का मन्दिर सूर्य किंवा मार्तण्ड रूप में कहीं स्थापित किया था। श्री जनरल कनिंघम का यह मत कि मार्तण्ड का मध्यवर्ती मन्दिर ही यह मन्दिर था और ललितादित्य ने केवल चारो ओर का स्तम्भावलीमय प्राकार का निर्माण कराया था। विद्वानो ने, मुख्यतः श्री फरगुसन और श्री स्तीन ने, अमान्य किया है। यदि मार्तण्ड मन्दिर रणादित्य का निर्माण कराया होता तो यह बात कल्हण के काल में लोगो की स्मृति में अवश्य होती। कल्हण ने कही भी इस प्रकार का गौण रूप से सकेत भी नही किया है।

४६४ (१) अमृतेश्वर : इस मन्दिर के स्थान तथा रूप का पता नही चलता।

(१) भिन्ना बिहार : इसका भी पता नही चलता।

दोनो का पुनः उल्लेख नही आया है जिससे इनके स्थान का पता लगाया जा सके। यह अनुसन्धान का विषय है।

४६५ (१) पाताल : यूनानी लोग पाताल को 'हेड्स' कहते हैं। वह नागों तथा आशिक देवी प्राणियो का स्थान माना जाता है। धारणा है कि पाताल लोक नीचे था।

मा भून्मोघाऽस्य मत्प्राप्तिरिति मत्वा तयाऽर्पितम् ।
असाधयत्स तं प्राप्य वशान्तं वत्सरान् बहून् ॥४६६॥

४६६ 'मेरी प्राप्ति इसके लिये निष्फल न हो' यह समझ कर उसके अर्पित उस वशीमन्त्र को प्राप्त (राजा ने) उसे बहुत वर्षों तक सिद्ध किया।

कृत्वेष्टिकापथे कष्टं तपो नन्दिशिलां गतः ।
भूरिभिर्वत्सरैर्मन्त्रसिद्धेः प्रणयितां ययौ ॥४६७॥

४६७. इष्टिका पथ[1] मे कष्ट साध्य तपस्या कर नन्द शिला[2] गया और बहुत वर्षों के बा मन्त्र सिद्धि प्राप्त की।

पाठभेद

श्लोक सख्या ४६६ 'वशान्त' का पाठभेद 'वसन्तं', 'वसन्तु, और 'वशान्त' मिलता है।

श्लोक संख्या ४६७ में 'कृत्वेष्टि' का 'कृत्वष्टि' तथा 'तपो' का पाठभेद 'ततो' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६७ (१) इष्टिका पथ · पवित्र हरमुकुट पर्वत की दिशा में इष्टिका पथ का नाम आता है। यह वह स्थान है जिसका वर्णन नीलमत पुराण (१०८१) में 'पथेश्वर इष्टा ' रूप में किया गया है। यह लार परगना में रामरादन स्थान है। यही से हरमुकुट यात्रा की चढान आरम्भ होती है।

नीलमत पुराण में उल्लेख मिलता है .

गुह्येश्वर. शतमुखा यष्टिकापथ एव च।
कदम्बशस्तथा पुण्यं क्षेत्रे चैव समन्तत ॥

118 = १६०-१६१

(२) नन्दशिला : कल्हण से स्पष्ट नही होता कि उसका नन्दशिला से क्या तात्पर्य है। श्री स्तीन का मत है कि सम्भवत. नन्द शिला नन्दी की गाथा से सम्बन्धित नन्दिक्षेत्र में हरमुकुट पर्वत पर होना चाहिये। नन्दी की उत्पत्ति शिलाद अर्थात् शिलाचूर्ण से हुई थी। उसने तपस्या नन्दिसर में मूर्धापर शिला रखकर किया था।

हमाल परगना में नदहेल ग्राम का पुराना नाम नन्दिशिला था। (वितस्ता माहात्म्य . २४। ३३) किन्तु स्थान को पुण्य किंवा पवित्र रूप में वर्णन नही किया गया है। नीलमत में उल्लेख मिलता है।

तस्य मूलमथासाद्य देव्यै वचनमब्रवीत्।
इहैव तिष्ठ तावत्त्वमह यास्याम्यतः परम् ॥

1057 = १२४१

× × ×

वृषेण सहितो देवीपर्वतेऽस्मिन् हि य पथा।
करोत्यारोहणं तस्य महत्पुण्यफलं स्मृतम् ॥

1058 = ११४२

× × ×

यथा त्वं न समर्थाऽसि सुकुमाराऽसि देवि यत्।
आरोढु तेन यास्येऽहमेक एवाद्य सत्वरः ॥

1069 = १२४३

× × ×

तस्माद्देशात् प्रवृत्तस्तु गन्तुं देववर. पथा।
पाथीश्वराख्यस्तत्रेष्टो देवस्यायतनोऽभवत् ॥

1060 = १२४४-१२४५

× ×

आरुरोह यथा शैलं यदा देवो महेश्वर.।
तदा वृद्धिमगाच्छैलो महतीं भूरिदक्षिण ॥

1061 = १२४५-१२४६

स्वप्नैश्च सिद्धिलिङ्गैश्च जाताभङ्गुरनिश्चयः ।
चन्द्रभागाजलं भित्त्वा नमुचेः प्राविशद्विलम् ॥४६८॥

४६८. स्वप्नों एवं सिद्धि सूचक चिह्नों से दृढ़ निश्चय हो (वह) चन्द्रभागा[1] जल का भेदन कर नमुचि[2] के बिल में प्रवेश किया।

---

४६८ (१) चन्द्रभागा : काश्मीर तथा पंजाब में प्रवाहित चिनाव नदी। चनाव नदी का संस्कृत नाम चन्द्रभागा है। चन्द्रभागा का ही अपभ्रंश चिनाव तथा चनाव है।

राजतंरगिणी तरंग ४:६३८ मे वर्णित चन्द्रभागा स्रोतस्विनी इससे भिन्न है। चन्द्रभागा का वर्णन नीलमत पुराण में ११६, ११७, १२०, १२१, १५४, तथा १०५५ में आता है। कल्हण ने चन्द्रभागा का वर्णन त० ८ ५५४ तथा ६७६ में किया है।

नीलमत पुराण में चन्द्रभागा का निम्नलिखित उल्लेख मिलता है।

आपगा च नदी पुण्या तौषी तोषितभास्करा ।
चन्द्रांशुशीतलजला चन्द्रभागा सरिद्वरा ॥
116 = १५८-१५६

❀ ❀ ❀

पुण्यं च चन्द्रभागायास्तीर्थं वै वट्टिलामुखम् ।
शंखमर्दलनामा च तथा पापनिषूदन. ॥
117 = १५९-१६०

❀ * ❀

सर्वत्रैव सदा पुण्या चन्द्रभागा महानदी ।
माघशुक्लत्रयोदश्यां पुण्ययोगे विशेषतः ॥
120 = १६२-१६३

❀ ❀ ❀

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यासमुद्रसरांसि च ।
चन्द्रभागां गमिष्यन्ति माघशुक्लत्रयोदशीम् ॥
121 = १६३ १६४

* * ❀

अश्वारूढ़ा विपाशा च गजारूढ़ा इरावती ।
सिंहेन चन्द्रभागा च सिन्धुर्व्याघ्रेण पार्थिव ॥
154 = २०६

शतद्रुं च विपाशां च पुण्यतोयामिरावतीम् ।
देविकां चन्द्रभागां च तथा विष्णुपदं सरः ॥
1155 = १२३९

वितस्ता से सम्बन्धित कुछ नदियों का नाम नीलमत पुराण में आया है। वितस्ता नदी यदि उमा की अवतार अर्थात् उमास्वरूप है तो दैत्य माता दिति कश्यप की पत्नी ने कश्मीर की चन्द्रावती नदी का रूप धारण कर लिया है।

दितिश्चन्द्रवती जाता क्ष्यपेर्वचनानुकारिणी ।

इस नदी का अभीतक पता नहीं लग सका है। नीलमत पुराण में इसका वर्णन त्रिकोटि तथा हर्ष पथा के साथ आता है। निर्विवाद है कि यह नदी वितस्ता की सहायक नदी थी। द्रष्टव्य नी० २८९ ४८५, १२९७, १३८९, १३००

अनन्त नाग के समीप चार और स्रोतस्विनियाँ आकर वितस्ता मे मिल जाती है। उनके नाम है; सन्द्रन, ब्रिग, अरिपथ तथा लिदर। सन्द्रन नदी दक्षिण मे वहती है और शाहिबाबाद क्षेत्र अर्थात् प्राचीन वेर परगना का पानी लेकर वितस्ता मे मिलती है। वह अनेक पवित्र स्रोतस्विनियो का जल भी लाती है। इस नदी का प्राचीन नाम क्या था कहना कठिन है।

ब्रिग नदी ब्रिग परगना का जल लाती है। वितस्ता माहात्म्य मे इसका नाम भृगी दिया गया है। यह सन्देहात्मक है। इस नदी में प्रसिद्ध त्रिसन्ध्या तथा अर्धनारीश्वर अर्थात् नारू स्रोतस्विनियों का जल आता है। इन्द्र की पत्नी शची देवी ने स्वयं हर्ष-पथा नदी का रूप धारण किया है। दक्षिण पूर्व से आकर वितस्ता मे मिलती है। हर्षपथा नाम से

बिलेऽपावृततां याते दिवसान्येकविंशतिम् ।
प्रवेश्य पौरान्प्राङ्निन्ये दैत्यस्त्रीभोगभागिताम् ॥४६९॥

४६९. इक्कीस दिनों तक बिल के अनावृत रहने पर पुरवासियों को प्रविष्ट करके दैत्य स्त्रियों के भोग का पात्र बनाया ।

नीलमत पुराण में इसका वर्णन मिलता है। वर्तमान नाम अरिपथ है। यह कोथर परगना के जल को लाती है। कोथर शब्द कपटेश्वर सर का अपभ्रंश है। कपटेश्वर के पश्चिमी शैलबाहु पर यह तीर्थ स्थित है। यहाँ से अक्षवाल अर्थात् अचवल का भव्य जल-स्रोत निकलता है। जल स्रोतस्विनी का रूप धारण कर हर्षपथा में प्रवाहित हो जाता है। (नी० २३२, २८९, ९९५)

खनवल ग्राम से कुछ अधोभाग जहाँ उक्त तीनो स्रोतस्विनियाँ मिलती हैं वहाँ उत्तर से लिदर (प्राचीन) लेदरी नदी अपने जल के साथ आकर मिलती है। उसमें सिन्ध उपत्यका के बहुत हिमानियो के जल आकर मिलते हैं। दाचुनपुर तथा खेबुरपुर परगनो के पानी को लाती है। प्राचीन काल लेदरी नदी से एक नहर द्वारा पानी मार्तण्ड अर्थात् मटन पहुँचाया गया था जहाँ कृषा होती थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६९ में 'दिवसान्येक' का 'दिवसानेक' तथा 'भागिताम्' का पाठभेद 'भोगिताम्' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४६९ (१) दैत्य : असुरो में एक दैत्य हैं। उनकी माता दिति थी। पिता कश्यप थे। गुरु शुक्राचार्य हैं। उनके देवता वरुण तथा वायु हैं। हिरण्यकश्यप को दैत्यपति कहा गया है। दैत्यो का युग देव मान से १२ हजार वर्षों का होता है। दक्ष प्रजापति की कन्या दैत्यसेना थी। उसका पति केशी दैत्य था। दैत्य का पर्यायवाची नाम असुर—दैत्य, दैतेय, दनुज, इन्द्रारि, दानव, शुक्रशिष्य, दितिसुत, पूर्वदेव, एव सुरद्विष हैं।

नीलमत पुराण में दैत्यो का उल्लेख निम्नलिखित रूप से किया गया है। -

ससुता पार्थिवश्रेष्ठ तासां नामानि मे शृणु ।
अदितेस्तनया देवा दितेर्दैत्यास्तथैव च ॥
47 = ७०-७१

*　*　*

लब्धमायस्तु दैत्येन्द्रो भक्षयामास मानवान् ।
समीपे सरसस्तस्य नानादेशेष्ववस्थितान् ॥
70 = १२०-१२१

*　*　०

भगवन्विदित सर्वं यथा पूर्वं मया शिशु ।
पालित सम्रहसुतो दैत्यो नाम्ना जलोद्भवः ॥
136 = १७९

*　*　*

देवानुयात्रानिनद श्रुत्वा दैत्योऽपि दुर्मति. ।
जले त्ववध्यमात्मान विदित्वा न विनिर्गत. ॥
162 = २१४

*　*　*

ततस्त्वनन्तो गिरिसंनिकाश.
समग्रचन्द्रस्य समानकान्तिः ।
व्यवर्धतावृत्य महीं दिवं च
सन्त्रासयन्दैत्यगणान्समन्तात् ॥
169 = २१९

*　*　*

ध्वस्तेऽन्धकारे हरिरप्रमेयो
योगेन गत्वा त्वपर शरीरम् ।
दैत्येन युद्धं स चकार सार्धं
देहेन चान्येन च युद्धमैक्षत् ॥
172 = २२४-२२५

स एवं भूपतिर्भुक्त्वा भुवं वर्षशतत्रयम् ।
निर्वाणश्लाघ्यनिर्व्यूढि पातालैश्वर्यमासदत् ॥४७०॥

४७०. इस प्रकार उस नृपति ने तीन सौ वर्षों तक पृथ्वी का भोगकर निर्वाण श्लाघ्य अन्तिम स्थिति (सर्वोच्च पद) प्राप्त किया[1] ।

सानुगे नृपतौ याते दैतेयदयितान्तिकम् ।
देवी सा वैष्णवी शक्तिः श्वेतद्वीपमगाहत ॥४७१॥

४७१. अनुचर सहित नृपति के पाताल प्रचारोपरान्त वह देवी वैष्णवी शक्ति श्वेत द्वीप[1] चली गयी ।

विष्णोश्च दैत्येन बभूव युद्धं
घोरं द्रुमैः पर्वतमस्तकैश्च ।
युद्धं च ते देवगणाः समस्ताः
प्रहृष्टचित्ता ददृशुः समन्तात् ॥
172 = २२५ २२६

ततो हरिः क्रोधविवृत्तनेत्रः
चक्रेण देवप्रवरः समान्ते ।
चिच्छेद दैत्यस्य शिरः प्रसह्य
ब्रह्मा ततस्तोषमुपाजगाम ।
174 = २२६-२२७

* * *

चक्रमर्पय मे देव दैत्यसंघविनाशनम् ।
प्रहसन्तमुवाचाथ हरिं हास्येन शंकरः ।
= 190 = २४६-२४८

* * *

तत्र सन्ति पिशाचा ये दैत्यपक्षाः सुदारुणाः ।
तेषां तु निग्रहार्थाय पिशाचाधिपतिर्बली ॥
204 = २७७-२८८

* * *

ततः शची शक्रपत्नी नाम्ना शक्रपथा नदी ।
ततश्चन्द्रवती नाम दितिर्दैत्यारणिर्नृपः ॥
289 = ३८७-३८८

* *

त्वया विनिहता दैत्या देवब्राह्मणकण्टकाः ।
परदारं परेभ्यश्च सुराश्चिरहता विभो ॥ 354 = ४५७

* * *

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचा राक्षसैः सह ।
वर्जयन्ति तदा मांसं मांसादा दिनपञ्चकम् ॥
447 = ५५८

* * *

कुवेरो धर्मलटको दैत्यराजः षडङ्गुलः ।
गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च कुसुमः कुहरः कुडः ॥
903 = १०६९ १०७०

* * *

त्रिपुरारे नमस्तेऽस्तु नमस्त्वन्धकघातिने ।
शूलाग्रभिन्नदैत्यांशरुधिरार्द्र नमोऽस्तु ते ॥
1092 = १२९०

* * *

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४७० में 'स एवं' का 'एवं स', 'निर्व्यूढि' का 'विर्व्यूढ' तथा 'लैश्वर्य' का पाठभेद 'लेश्वरं' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४७० (१) आइने अकबरी में उल्लेख है—राजा न्यायप्रिय था । विजय भी किया । चनाव नदी पर कुस्तवार के समीप वह अपने अनेक सम्बन्धियों तथा पार्षदों के साथ एक गुहा में चला गया । उनके विषय में पुनः नहीं सुना गया कि उनका क्या हुआ । उसके वीरतापूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं ।

४७१ (१) श्वेतद्वीप : शाब्दिक अर्थ उज्ज्वल किंवा श्वेतद्वीप होता है । प्राचीन परम्परा के अनु-

राजवशेष्वनेकेषु राज्ञोर्वंशद्वये परम् ।
द्वयोरेवात्र निर्व्यूढं प्रजावात्सल्यमागतम् ॥४७२॥

४७२. अनेक राजवंशों में दो राजवंश के दो नृपति उत्कृष्ट हुए। दोनों का ही प्रजा वात्सल्य पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ[1]।

रणादित्यस्य गोनन्दवंशे रामस्य राघवे ।
लोकान्तरसुखस्यापि ययोरंशभुजः प्रजाः ॥४७३॥

४७३. गोनन्द वंश मे रणादित्य एं रघु वंश में राम[1] (उत्कृष्ट) हुए जिनकी प्रजा लोकान्तर सुख की भागी हुई।

विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृत्सुतः ।
तस्यासीत् विक्रमादित्यः त्रिविक्रमपराक्रमः ॥४७४॥

४७४ त्रिविक्रम[1] तुल्य पराक्रमी विक्रमादित्य[2] उसका पुत्र था। जिसने अपने पराक्रम से विश्वविजय एवं विक्रमेश्वर[3] का निर्माण किया।

सार द्वीप पार्थिव जगत् का विभाजन है। इस विभाजन की गणना में साम्य नही है। इसे चार, सात, नव तथा तेरह भी कहा गया है। नैषध चरित में १८ विभाजन किये गये हैं। पर सब द्वीप मेरु के चारो ओर स्थित कहे गये है। मेरु को सुवर्ण पर्वत प्रफुल्लित कमल तुल्य कहा गया है। उसके केन्द्र में जम्बू द्वीप है। इस जम्बूद्वीप में ही भारतवर्ष है। द्वीप का शाब्दिक अर्थ जल से आवृत भूमि होता है। कुछ लेखको के मतसे प्राचीन कालमें श्वेत द्वीप से यूरोप का अर्थ लगाया गया है।

४७२ (१) श्री स्तीन ने श्लोक ४७२ तथा ४७३ का एक साथ अनुवाद किया है। वह श्लोक 'युग्मक्रम' नहीं है अतएव मैंने दोनो का अलग अलग अनुवाद किया है

४७३ (१) राम : वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड १०१–११० में रामचन्द्र के अयोध्या में सरयू नदी में शरीर विसर्जन की कथा हृदयस्पर्शी शब्दो में दी गयी है। वहाँ उल्लेख किया गया है कि भगवान् राम की अनुगामिनी उनकी प्रजा हुई थी।

४७४ (१) त्रिविक्रम : यहाँ पर विष्णु किंवा वामन हैं। तीन पग से वामन अवतार में भगवान् ने जगत् को नाप लिया था अतएव उन्हें त्रिविक्रम कहा गया है।

(२) विक्रमादित्य : कतिपय लेखकों ने विक्रमादित्य किसका पुत्र था सन्देह प्रकट किया हैं। तरग के श्लोक ३४२१ से स्पष्ट प्रकट होता है कि यह वास्तव में रणादित्य का ही पुत्र था।

श्री विलसन से विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का समय सन् ५२७ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ५६८ ई॰ और राज्यकाल ४२ वर्ष दिया है।

श्री एस. सी. पण्डित वह समय सन् ५१७ ई. देते है। तथा राज्यकाल ४२ वर्ष देते हैं।

स्तीन यह समय लौकिक सवत् ३५९९ मास २ तथा एक दिन तथा राज्यकाल ४२ वर्ष देते हैं।

कलि गताब्द ३६५९ वर्ष ११ मास १३ दिन तथा ट्रायर के मत से सन् ५१७ ई० ११ मास और कनिंघम के अनुसार वह समय सन ५५६ ई॰ ५ मास आता है।

राजा ब्रह्मगलूनाभ्यां सचिवाभ्यां समं महीम् ।
सोऽपासीद्वासवसमो द्वाचत्वारिंशतिं समाः ॥४७५॥

४७५. वासव (इन्द्र) समान उस राजा ने ब्रह्मा एवं गलून सचिवों के साथ बयालीस वर्ष पृथ्वी पर व्यतीत किया।

चक्रे ब्रह्ममठं ब्रह्मा गलूनो लूनदुष्कृतः ।
रत्नावल्याख्यया वध्वा विहारं निरमापयत् ॥४७६॥

४७६. ब्रह्मा ने ब्रह्ममठ एवं दुष्कृतच्छेत्ता गलून नें रत्नावली नाम्नी स्त्री के नाम से विहार निर्मित कराया।

राज्ञोऽनन्तरजस्तस्य राजाऽभूत्तदनन्तरम् ।
तापितारातिभूपालो बालादित्यो बलोर्जितः ॥४७७॥

बालादित्य :

४७७. अनन्तर राजा का लघुभ्राता बलशाली बालादित्य राजा हुआ। जिसने शत्रु भूपालों को संतप्त किया।

श्री स्तीन ने श्लोक ३४७५ में 'द्वाचत्वारिंशति' का अर्थ ४२ वर्ष किया है परन्तु श्रीरणजीत सीताराम पण्डित ने ४० वर्ष किया है। पं० रामतेज शास्त्री ने भी ४२ वर्ष अनुवाद किया है। श्री गोपीकृष्ण शास्त्री ने ४० वर्ष अर्थ लगाया है। श्री चन्द्रकान्त काली ने ४२ वर्ष गणना की है। परिशेष में श्री स्तीन ने पुनः ४३ वर्ष दिया है। विक्रमादित्य के पश्चात् बालादित्य के राज्यारोहण काल से गणना करने पर भी ४२ वर्ष ही आता है। अतएव मैंने ४२ वर्ष ही रखा है।

श्री विदैउद्दीन ने एक विचित्र कपोलकल्पना इतिहास को अपने रंग में रगने के लिये दी है। वह कहता है। राजा की आयु १६५ वर्ष की हुई थी। उसने ४० वर्ष से अधिक राज्य किया था।

उसका राज्यकाल प्रथम हिजरी का समकालीन है। उसने पैगम्बर मुहम्मद साहब के पास राजदूत भेजा था। किन्तु कोई प्रमाण उपस्थित नही करता।

आईने अकबरी में अबुल फजल ने नाम वल्दुत दिया है।

(३) विक्रमेश्वर : दिद्दा मठ के २ मिल उत्तर विचार नाग के समीप श्री आनन्द कौल के अनुसार विक्रमेश्वर का मन्दिर था। सिकन्दर बुत शिकन ने इसे ध्वस्त किया था। उसने मन्दिर के ध्वन्सावशेष से मसजिद तथा खंन्खाह निर्माण कराया था। (पृष्ठ २६)

पाठभेद :

श्लोकसख्या ४७५ में 'गलूना' का पाठभेद 'गलूरा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४७७ (१) श्री विलसन के राज्याभिषेक का समय सन् ५७९ ई० ५ मास तथा समीकृत काल सन् ५९२ ई० तथा राज्य काल ३६ वर्ष दिया है।

श्री एस. पी. पण्डित ने समय सन् ५५९ ई. तथा राज्य काल ३७ वर्ष ४ मास दिया है।

श्री स्तीन ने यह समय लौकिक संवत् ३६३१ मास २ तथा दिन प्रथम तथा राज्य काल का समय ३६ वर्ष ८ मास दिया है।

लवणार्णवपानेन तर्षोत्कर्षमिवोद्वहन् ।
यत्प्रतापो रिपुस्त्रीणां सनेत्राम्भोऽभजन्मुखम् ॥४७८॥

४७८. जिसका प्रताप लवणसमुद्र जल का पान करने से मानों तृषाधिक्य को धारण करता हुआ, शत्रु स्त्रियों के साश्रु मुख का सेवन करता था।

आसन् येऽरिमनोऽगाधबोधदण्डा इवाहृताः ।
यस्याद्यापि जयस्तम्भाः सन्ति ते पूर्ववारिधौ ॥४७९॥

४७९. पूर्व सागर पर शत्रुमन के अगाध बोध के मापदण्ड स्वरूप लाये गये जो उसके जयस्तम्भ[1] थे, वे आज भी हैं।

प्रभावाङ्केन वङ्कालान् जित्वा येन व्यधीयत ।
काश्मीरिकनिवासाय कालम्बाख्यो जनाश्रयः ॥४८०॥

४८०. जिसने प्रभाव से वकालों को विजित कर काश्मीरियों के निवास हेतु कालम्ब[1] नामक जनाश्रय[2] बनवाया।

श्री बाली यह समय सप्तर्षि संवत् ४२२४ तथा सन् ४५४ ई. देते हैं। कलि गताब्द ३६९६ वर्ष ११ मास १३ दिन, ट्रायर के मत से यह समय सन् ५५६ ई. ११ मास और कनिंघम के अनुसार सन ५७६ ई. ६ मास आता है।

श्री विदैउद्दीन राजा बालादित्य को शाह यज्दे जिर्द का समकालीन बना देता है। उसमें उसने उत्तरी पूर्वीय क्षेत्र जीतकर कश्मीर के राज्य में मिला लिया था।

४७९ (१) **जयस्तम्भ** जयस्तम्भो की समानता सेसक के स्तम्भो तथा यूनानी तथा रोमनो के जय स्मारक किंवा जय चिन्हो से की जा सकती हैं। जयस्तम्भ भारत में अनेक स्थानो पर मिलते हैं। कुतुब मीनार अर्थात् विष्णु पर्वत पर विष्णु मन्दिर का अष्टधातु का जयस्तम्भ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। उस पर चन्द्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त की कीर्ति तथा विजय का वर्णन उल्लिखित है। इसी प्रकार का स्तम्भ प्रयाग आदि स्थानो का है। यह जयस्तम्भ यूनानियो के काष्ठ जयस्तम्भ के समान निर्मित भी किये गये होंगे। वे कालान्तर में ऋतुओ की विषम मार से नष्ट हो गये हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८० में 'वङ्कालान्' का पाठभेद 'वकालो' और 'वङ्काला' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८० (१) **वंकाल :** वकालो का स्थान तथा वे किस प्रकार के लोग थे अभी तक कुछ प्रकाश इतिहास नही डाल सका है। अनुमान बहुत लगाये गये हैं। इस पर अनुसंधान की आवश्यकता है।

पूर्वीय समुद्र जयस्तम्भ के पश्चात् ही वंकाल का वर्णन मिलता है। यह 'वंग' किंवा 'वंगाल' शब्द का मूल रूप किंवा अपभ्रंश प्रतीत होता है। कतिपय अनुवादको ने इसका अर्थ 'बंगाल' ही लगाया है। 'वंकाल' शब्द 'संस्कृत' अथवा कश्मीरी नही प्रतीत होता। बंगाल की संज्ञा सर्वदा गौड तथा वंग या बंगाल से दी गयी है।

(२) **कालम्ब :** इस स्थान का अभी तक पता नही चला है।

(३) **जनाश्रय :** इसका अर्थ सार्वजनिक धर्मशाला अथवा सराय से है।

सराय शब्द आश्रय का अपभ्रंश प्रतीत होता है। दोनो का अर्थ एक ही है।

कश्मीरेषु घनोदग्रमग्रहारं द्विजन्मनाम् ।
राजा मडवराज्ये यो भेडराख्यमकारयत् ॥४८१॥

४८१. जिस राजा ने कश्मीर में मडव[1] राज्य गत प्रभूत धन (पूर्ण) भेडर[2] (ग्राम) ब्राह्मणों को अग्रहार में प्रदान किया।

विशां विपाटितारिष्टमरिष्टोत्सादने व्यधात् ।
वल्लभा यस्य बिम्बोष्ठी बिम्बा विश्वेश्वरं हरम् ॥४८२॥

४८२. जिसकी बिम्बोष्ठी 'बिम्बा' नाम्नी प्रिया ने अरिष्टोत्सादन में मनुष्यों के अनिष्ट नष्ट कर्ता विश्वेश्वर शिव (हर) को स्थापित किया।

भ्रातरो मन्त्रिणस्तस्य त्रयो मठसुरौकसोः ।
सेतोश्च कारका आसन् खङ्खशत्रुघ्नमालवाः ॥४८३॥

४८३. खङ्ख, शत्रुघ्न एवं मालव नामक उसके तीन मन्त्रिबन्धुओं ने मठ, देवालय एवं सेतु निर्माण कराया।

विलसन का मत है कि राजा ने विहार मन्दिर आदि का अपनी विदेशी प्रजा के कश्मीर में आकर ठहरने के लिए निर्माण कराया था।

बिदैउद्दीन इस राजा को ईरान के राजा एज्दर्जिर्द का समकालीन कहता है। उसने उत्तरीय पूर्वीय ईरान के जिलो को जीत लिया था। किन्तु यहाँ पर उसने बालादित्य को भ्रम से प्रतापादित्य समझ लिया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८१ में 'भेडरा' का पाठभेद 'भेरडा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८१ (१) मडवराज्य : तरंग २ : १५ पाद टिप्पणी द्रष्टव्य है।

(२) भेडर . यह वर्तमान बिडर ग्राम है। ब्रिग परगना में है। सन् १८९१ में श्री स्तीन ने इस ग्राम की यात्रा की थी। ग्राम के मध्य में एक ढूहा है। यह मन्दिर का ध्वन्सावशेष है। उसमें से अलंकृत शिला खण्ड निकाल लिये गये हैं। समीपस्थ ब्राह्मणो का ग्राम हागल गुण्ड है। वहा दुर्गा की पूजा 'बिदा देवी' नाम से होती है। बिदा शब्द भेड का अपभ्रंश है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८२ में 'विपाटि' का पाठभेद 'विपटि' और 'विपति' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८२ (१) अरिष्टोत्सादन : मच्छहोम परगना में यह वर्तमान ग्राम रतसुन है। श्री स्तीन के सुझाव पर पण्डित काशीराम इस ग्राम में सन् १८९१ में गये थे परन्तु उन्हें यहा कुछ प्राप्त नही हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८३ में 'रौकसो:' का पाठभेद 'रौकस·' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

४८३ (१) सेतु : यहाँ सेतु का अर्थ कोई बाँध अथवा सेतु अर्थात् पुल लगाया जा सकता है। सेतु का प्रचलित अर्थ पुल ही है। परन्तु बाँध के अर्थ में भी इसका प्रयोग किया गया है

बभूव तस्य भूभर्तुः भुवनाद्भुतविभ्रमा ।
तनयाऽनङ्गलेखाख्या शृङ्गारोदधिकौमुदी ॥४८४॥

४८४. उस नृपति को भुवनाद्भुत विलासवती शृङ्गार रूपी समुद्र के लिये कौमुदी (कार्तिक एवं आश्विन पूर्णिमा) अनंगलेखा नाम्नी कन्या हुई ।

तां वीक्ष्य लक्षणोपेतां मृगाक्षीं पितुरन्तिके ।
अमोघप्रत्ययो व्यक्तं व्याजहारेति दैववित् ॥ ४८५ ॥

४८५. पितृ पार्श्व में लक्षण सम्पन्न उस मृगाक्षी को देखकर अमोघप्रत्ययी ज्योतिषी ने इस प्रकार सुस्पष्ट कहा—

भविता तव जामाता जगतीभोगभाजनम् ।
त्वदन्तमेव साम्राज्यं गोनन्दान्वयजन्मनाम् ॥ ४८६ ॥

४८६. '[1]गोनन्दवंशियों का साम्राज्य तुम्हारे ही तक है—[2]और तुम्हारा जामाता जगत् पृथ्वी का भोग भाजन होगा ।'

सुतासतानसाम्राज्यमनिच्छन्नथ पार्थिवः ।
दैवं पुरुषकारेण जेतुमासीत्कृतोद्यमः ॥ ४८७ ॥

४८७. सुता संतान के साम्राज्य को न चाहते हुए, नृपति ने दैव को पुरुषार्थ पूर्वक विजित करने का प्रयत्न किया ।

अराजान्वयिने दत्ता नेयं साम्राज्यहारिणी ।
मत्वेति प्रददौ कन्यां न कस्मैचन भूभुजे ॥ ४८८ ॥

४८८. 'अराजवंशीय[1] को प्रदत्त यह कन्या राज्यहारिणी नहीं होगी' ऐसा मानकर उसे किसी राजा को नहीं दिया ।

हेतुं सरूपतामात्रं कृत्वा जामातरं नृपः ।
अथाश्वघासकायस्थं चक्रे दुर्लभवर्धनम् ॥ ४८९ ॥

४८९. राजा ने सुन्दरता मात्र को हेतु मानकर अश्वघास कायस्थ दुर्लभ वर्धन को जामाता बनाया ।

पाठभेद

श्लोक संख्या ४८४ में 'विभ्रमा' का पाठभेद 'विक्रमा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४८८ (१) अराजवंशीय : राजा की इच्छा यह नही थी की गोनन्द वंश से साम्राज्य दूसरे वंश में चला जाय । अतएव वह निस्सन्देह चिन्तित हुआ था। कल्हण प्रथम तरंग में गोनन्दवंश के गोनन्द प्रथम दामोदर यशोवती, तथा गोनन्द तृतीय का वर्णन कर ३५ राज्यो का विवरण लुप्त मानता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८९ में 'सरूप' का पाठभेद

मातुः कार्कोटनागेन सुस्नातायाः समीयुषा ।
राज्यायैव हि संजातो राज्ञा नाज्ञायि तेन सः ।। ४९० ।।

४९०. उस राजा ने यह नहीं जाना कि सुस्नात (इसकी) माता और कर्कोट नाग[1] के सम्भोग से राज्य के लिये ही वह उत्पन्न हुआ है ।

'स्वभूप' तथा 'स रूप' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

(१) **अश्वघास कायस्थ :** श्रीनगर मे घोडो के लिये घास समीपवर्ती स्थानो, सरोवरो, घासवाली भूमि, से नावो द्वारा लाई जाती थी । नावें मुख्य यातायात को साधन थी ।

घास व्यर्थ न जाय और वह अश्व जिनका सम्बन्ध उन दिनो अश्वारोही सेना तथा देश की सुरक्षा से था राज्य सम्पत्ति समझा जाता था । उसपर राज्य कर लगता था । डोगरा काल तक यह कर चलता रहा है ।

कायस्थ यहाँ पर जातिवाचक न हो कर कर्मवाचक है । कश्मीर में कर्मणा कायस्थ होते थे । राज्य कर्मचारो को कायस्थ कहते थे । अश्वघास कायस्थ का यहा तात्पर्य घोडो के लिये घास लाने वालो का अधिकारी राज्य कर्मचारी है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ४९० में 'कार्को' का 'कर्को', 'समीयुषा' का 'समेयुषा', 'सजातो' का 'सजाता' तथा 'सः' का पाठभेद 'सा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४९० (१) **कार्कोट नाग .** कर्कोट नाग के नाम पर कश्मीर का कर्कोट राजवश चला था । कल्हण ने इस राजवश के राजाओ का वर्णन समस्त चतुर्थ तरग मे किया है । उसमें १७ राजा हुए थे । उनका शासन काल लौकिक सवत् ३६७७ से ३९२९ तक रहा है । इस वश ने कश्मीर पर २५४ वर्ष ५ मास २७ दिन तक शासन किया था ।

नीलमत पुराण में कार्कोट नाग का वर्णन मिलता है । कश्मोर के नागाओ की तालिका मे प्रारम्भ में ही उसका नाम नील, वासुकी, तथा तक्षक नाग के साथ आता है । प्रतीत होता है । कार्कोट नाग की पूजा विभिन्न स्थानो में होती थी ।

करकोट द्रग का नाम कार्कोट नाम पर पडा था । (त० ८ १५९६) अनुमान किया जाता है कि वह तोप मैदान पास के समोपस्थ किसी एक सरोवर मे निवास करता था । उसका उल्लेख चौथी राजतरंगिणी के श्लोक ११४ तथा तीर्थों में किया गया है । वेगिल परगना मे काकोदर पर्वत बाहुभूल का नाम कार्कोट का ही अपभ्रश है । तीर्थों मे एक और कार्कोट नाग का उल्लेख मिलता है । कुथर परगना मे यह गाव उतरुस है । हरचरित चिंतामणि १० में वर्णित स्रोत सम्भवतः यही है ।

नीलमत में कार्कोट नाग का उल्लेख आता है ।

कम्बलाश्वतरा नागौ कार्कोटकधनजयौ ॥ 881

१०५० ॥

कद्रू का पुत्र कर्कोटक नाग वरुण की सभा मे उपस्थित रहता है । (म० स० ९ : ९) नागो की भोगवती नामक नगरी मे इसका निवास कहा गया है (म० उ० १०१ ९) नारद की दावाग्नि में जब यह फँस गया था तो नल ने इसका उद्धार किया था । (म० व० ६३) कार्कोट नामक भारतवर्ष के विभाग के कार्कोटक लोगो को महाभारत मे विधर्मी कहा गया है । उनका वर्णन महाभारत कर्ण पर्व (४४ : ४३) मे मिलता है । जयपुर राज्य के पूर्व अंचल मे कार्कोट नगर नामक स्थान है । वहाँ मालवो के आरम्भिक काल की मुद्रायें

मिलती हैं। शिव के रथ में रस्सी के रूप में इनका प्रयोग किया गया था। (म० कर्ण ४ २९) यह भगवान् बलराम के स्वधाम गमन के समय उपस्थित था। (म० मौ० ४ : १७)

अथर्व वेद में कार्कोट नाग का उल्लेख विषधर के रूप में किया गया है। प्रमुख नागो के वर्णन में नागराज कर्कोट का गौरवपूर्ण स्थान है।

यह राजवश का सरक्षक माना जाता है। नैपाल में आज भी कार्कोट नाग की पूजा कही-कहीं की जाती है। नैपाली गाथाओ में उसे लोक प्रिय स्थान प्राप्त है।

नैपाल के नागाओ में यह एक प्रमुख नाग माना जाता है। बगाल के कायस्थो की एक शाखा अपने को नागवशीय कहती है। अपने नाम के साथ नाग अल्ल धारण करते हैं।

मध्य प्रदेश के गोंड लोग अपने को नागवशीय मानते हैं। आसाम की सूरमाघाटी मे नाग जाति की आबादी हैं। उन्ही के नाम पर भारत के एक प्रदेश का नाम 'नागालैण्ड' पडा है।

नागवश सम्बन्धी अनेक गाथायें चीन, दक्षिण पूर्व एशिया, जापान में प्रचलित है। बौद्ध तथा हिन्दू गाथाओ में नाग गाथाओ का तथा उनसे सम्बन्धित अनेक प्रसगो का वर्णन मिलता है। अजन्ता की भित्तिचित्र पर उनका अस्तित्व मिलता है।

तक्षक नाग मुख्य नाग रहा है। उसी के नाम पर तक्षशिला नाम पडा था। अफगानिस्तान के प्राचीन गान्धार देश में नाग जाति का अस्तित्व था। अफगानिस्तान का एक बहुत बडा समाज अपने को पूर्व कालीन नाग वशीय मानता है।

नाग तथा नागा प्राय शिव तथा शैवमत से सम्बन्धित किये गये हैं। शिव का आभूषण ही नाग हैं। दक्षिण भारत का शैवमत उत्तर भारत में पहुँचा। उनकी स्मृति नागा तथा नेपाल की नायर जाति में अभी तक अक्षुण्ण है। अनेक नगर नाग के नामपर बसे है—जैसे नागपुर।

उत्तर भारत में नाग पंचमी का पर्व बडे धूमधाम से मनाया जाता है। कथा है कि नागपचमी ब्राह्मणो का; विजय दशमी क्षत्रियो का, दीपावली वैश्यो का और होली शूद्र का पर्व है।

नाग पचमी के दिन नाग पूजा होती है। तक्षो तथा सर्पों के रहने की जहाँ सम्भावना होती है वहाँ दूध में धान का लावा डालकर दोना अथवा मिट्टी की दीया मे रख दिया जाता है। मैं अपनी बाल्यावस्था में अपने सोनियास्थित बाराणसी शहर के बगीचा, तालाब, भीत तथा कूँओ पर रखता रहा। मेरे घर मे अब भी नागपचमी के दिन काशी मे कोठरियो तथा पीपल के वृक्ष के मूल में धान का लावा तथा दूध रखा जाता है। काशी मे बालक नाग पचमी के दिन कागज पर छपे नाग के चित्र को बेचते कहते हैं— बडे गुरू' का 'छोटे गुरू' का नाग लो।

गुरु शब्द महत्त्वपूर्ण है। काशी में नाग कूआँ एक मुहल्ला है। वहा हजारो वर्ष पुरानी विशाल बावली है। काशी के ब्राह्मण लोग वहाँ पर एकत्रित होते है। शास्त्रार्थ होता है। गुरु तथा शिष्य सभी शास्त्रार्थ मे सम्मिलित होते है। यह स्थान अब मुसलमानी मुहल्ले में पड गया है। समय परिवर्तन के कारण अब न तो यहा पहले जैसा मेला लगता है और न तो शास्त्रार्थ के लिये उत्साह पूर्वक गुरु शिष्य आते हैं। दो चार ब्राह्मण आ जाते हैं। पुरानी बातें दुहरायी जाती है।

महाभारत के अनुसार शेष नाग सर्व प्रथम उत्पन्न हुए थे। तत्पश्चात् वासुकी, ऐरावत, तक्षक कार्कोटक तथा धनजयादि नाग उत्पन्न हुए थे। काकोर्टक नाग के अर्जुन के जन्म दिवसपर जाने का उल्लेख मिलता है। (म० आ० १२९ ७१)

शेषस्तु प्रथमो जातो वासुकिस्तदनन्तरम्।
ऐरावतस्तक्षकश्च कार्कोटकधनजयौ ॥

—म० आ० ३५:५

निश्चिन्वते हि ज्ञंमन्या यमेवायोग्यमाग्रहात् ।
जिगीषयेव तत्रैव निदधाति विधिः शुभम्[1] ॥ ४९१ ॥

४९१. अपने को विज्ञ मानने वाले जिसे हठात् अयोग्य सिद्ध करते हैं, उसी में विजय की इच्छा में विधि शुभ रख देता है।

मात्सर्येण जहद् ग्रहान्निसदृशे धूमध्वजे योग्यतां
ज्ञात्वा स्वां निदधत् त्विषं दिनपतिर्हास्य. प्रशान्त्युन्मुखः ।
देवं वेत्ति न यः शिखी स परतो नामास्तु तत्संभवाः
स्युर्दीपा अपि यद्वशेन जगतस्तिग्मांशुविस्मारकाः[1] ॥ ४९२ ॥

४९२. मात्सर्य से नक्षत्रों को तिरस्कृत करते एवं अपने को समर्थ जानकर अतुलनीय अग्नि में अपनी कान्ति रखते हुए, अस्तोन्मुख सूर्य[2], उपहास पात्र होता है। जो अग्नि देव को नहीं जानता है, वह तो दूर रहे, उससे उत्पन्न जगत् के दीपक भी जिसके प्रभाव से सूर्य के विस्मारक होते हैं।

धिया भाग्यानुगामिन्या चेष्टमानो नयोचितम् ।
अभूत्सर्वस्य चक्षुष्यः स तु दुर्लभवर्धनः ॥ ४९३ ॥

४९३. और वह दुर्लभवर्धन भाग्यानुगामिनी बुद्धि द्वारा नयोचित चेष्टा करता हुआ सर्वजनप्रिय हो गया।

प्रज्ञया द्योतमानं त प्रज्ञादित्य इति प्रथाम् ।
कौबेरभाग्यसाम्यं च शनकैः श्वशुरोऽनयत् ॥ ४९४ ॥

४९४. शनैः शनैः श्वशुर ने प्रज्ञा से द्योतमान उसे प्रज्ञादित्य नाम से ख्यात कर कुबेरतुल्य भाग्यशाली बना दिया।

कश्मीर के भ्रमण काल में मैं किस्तवार गया था। भद्रवा पहुँचा। स्थान अत्यन्त सुरम्य है। मुझे वहाँ 'वासुकी पुराण' की बात कही गयी। यह भी नीलमत पुराण की तरह एक उप-पुराण है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ४९१ मे 'निश्चिन्वते' का 'निश्चिन्वाते' तथा 'समन्या' का पाठभेद 'सामन्या', 'समन्या' तथा 'समव्या' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ .

४९१ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसग्रह का यह ८३वाँ श्लोक है।

४९२ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का वह ८४वाँ श्लोक है।

(२) सूर्य सूर्य जब अस्त होता है तो कहा जाता है कि वह अपनी ज्योति अग्नि मे सग्रहीत कर देता है जिससे अग्नि प्रज्वलित. रहती है।

कहावत है कि चन्द्रमा के समान दीप भी अपना प्रकाश सूर्य से ग्रहण करता है।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ४९४ में 'कौबेर' का 'कौबीर' तथा 'साम्य' का पाठभेद 'स्वम्य' मिलता है।

पित्रोः प्रेयस्तयोद्वृत्ता तारुण्यादिमदेन च ।
राजपुत्री यथावत्तु गणयामास नैव तम् ॥ ४९५ ॥

४९५ माता पिता की प्रियता, तारुण्य आदि के मद के कारण प्रमत्त राजपुत्री ने उसे (पति को) यथोचित सम्मान नहीं दिया ।

स्वैरिणीसंगमो भोगा युवानोऽग्रे पितुर्गृहम् ।
पत्युर्मृदुत्वमित्यस्याः किं नाभूच्छीलविघ्नकृत्[1] ॥ ४९६ ॥

४९६ स्वैरिणी-संगम, भोग, युवापुरुष-सहवास, पितृगृह, पति की मृदुता इसे प्राप्त थे । इसमे कौन इसे शीलच्युत करने वाला नहीं थी ?

सा नित्यदर्शनाभ्यासाच्छनकैर्विशता मनः ।
अनङ्गलेखा खङ्खेन संप्रायुज्यत मन्त्रिणा ॥ ४९७ ॥

४९७. नित्यदर्शन अभ्यास से धीरे धारे (उसके) मनमें प्रविष्ट मन्त्री खङ्ख पर अनंगलेखा आसक्त हो गयी ।

छन्नप्रेमसुखाभ्यासनष्टह्रीभीतिसंभ्रमा ।
धार्ष्ट्यं दिनाद्दिनं यान्ती ततस्तन्मयतां ययौ[1] ॥ ४९८ ॥

४९८. प्रच्छन्न प्रेम, सुख के अभ्यास से लज्जा, भय, सम्भ्रम रहित, वह दिन प्रति दिन धृष्ट होती हुई, तन्मय हो गयी ।

स मन्त्री दानमानाभ्यां वशीकृतपरिच्छदः ।
अन्तःपुरे यथाकामं विजहार तया सह ॥ ४९९ ॥

४९९. उस मन्त्री ने दान-मान, द्वारा परिजनों को स्वाधीन करके अन्तःपुर में उसके साथ स्वेच्छापूर्वक विहार किया ।

उपलेभे च शनकैस्तस्यास्तं शीलविप्लवम् ।
विरागलिङ्गैरुद्यद्भिः धीमान् दुर्लभवर्धनः ॥ ५०० ॥

५००. बुद्धिमान दुर्लभवर्धन ने धीरे-धीरे (स्त्रीके) प्रकट होते विराग आदि चिन्हों से उसके उस शील विप्लव को जान लिया ।

पादटिप्पणियाँ

४९६ (१) राजतरंगिणी सूक्तिसंग्रह का वह ८५ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ४९७ में 'सप्रायु' का पाठभेद 'सप्रयु' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

४९८ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ८६ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद

श्लोकसंख्या ४९९ में 'सह' का पाठभेद 'समम्' मिलता है ।

सखीमध्ये रहः स्मेरा विवर्णा भर्तृदर्शने ।
अकाण्ड एव प्रोत्थाय पश्यन्ती सस्मितं पथः ॥ ५०१ ॥

५०१. एकान्त में सखी मध्य सस्मिता वह भर्ता दर्शन से विबर्ण हो जाती थी और अकाण्ड ही उठकर सस्मित पथ को देखती थी[1] ।

पत्युः कोपे कृतावज्ञा भ्रूनेत्रचिबुकाञ्चनैः ।
तदप्रियं भाषमाणे सस्मितं न्यस्तलोचना ॥ ५०२ ॥

५०२. उसके प्रति अप्रियभाषण करने पर पति प्रकोप की भ्रू, नेत्र, चिबुकों के संकोच पूर्वक वह न्यस्त लोचन सस्मित अवज्ञा कर देती थी ।

तत्तुल्यगुणनिर्विण्णा तद्विपक्षस्तुतौ रता ।
रिरंसां तस्य संलक्ष्य सखीभिर्बद्धसंकथा ॥ ५०३ ॥

५०३. तदनुरूप गुणों के प्रति निर्विण्ण और उसके प्रतिकूल पक्ष की स्तुति में रत वह पति की रिरंसा को संलक्षित कर सखियों के साथ वार्ता में लग जाती थी ।

तच्चुम्बने भुग्नकण्ठी तदाश्लेषासहाङ्गका ।
तत्संभोगे त्यक्तहर्षा तत्तल्पे व्याजनिद्रिता ॥ ५०४ ॥

५०४. उसके चुम्बन में तिर्यक् कण्ठ हो जाती, उसके आलिंगन को असह्य अनुभव करती, उसके सम्भोग मे सव्याज निद्रित हो जाती ।

भवेद्धि प्रायशो योषित् प्रेमविक्रीतचेतना ।
निवेदयन्ती दौःशील्यपिशाचावेशवैकृतम्[1] ॥ ५०५ ॥

५०५. प्रेम विक्रीत चेतना योषित् प्रायशः दुःशीलता बस पिशाचावेशवत् वैकृत प्रकट करती है ।

श्लोक सख्या ५०१ में 'प्रोत्थाय' का पाठभेद 'प्रोक्ताय' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ

५०१ (१) श्लोक सख्या ५०१ से ५०५ तक का अनुवाद श्रोस्तोन, श्री पण्डित आदि प्रायः सभी अनुवादको ने एक साथ किया है । श्री कल्हण पण्डित ने उन्हें एक साथ युग्मम्, तिलकम्, कुलकम् के समान एक नही रखा है । एक प्रति मे 'कुलकम्' भी लिखा मिला है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५०२ में 'ञ्चनैः' का पाठभेद 'ञ्चलैः' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५०३ मे 'तत्तुल्य' का पाठभेद 'तत्तुत्य' मिलता है ।

श्लोक संख्या ५०४ में 'श्लेषास' का पाठभेद 'श्लेषे स' तथा 'निद्रिता' का 'निद्रता' मिलता है ।

श्लोक सख्या ५०५ के पश्चात् 'कुलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

५०५ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८७ वा श्लोक है । यह पद सुभाषित है ।

निगूढदारदौरात्म्यचिन्ताकृशवपुस्ततः ।
शुद्धान्तमविशज्जातु निशि दुर्लभवर्धनः ॥५०६॥

५०६. पत्नी के निगूढ दौरात्म्य की चिन्ता वश कृश शरीर दुर्लभवर्धन कदाचित् रात्रि काल में शुद्धान्त पुर में प्रवेश किया।

सोऽपश्यत्सुरतक्लान्तिसुलभस्वापनिस्सहाम् ।
दुर्जारभर्तुरङ्गेषु प्रत्युप्तामिव वल्लभाम् ॥ ५०७ ॥

५०७ उसने देखा—सुरति क्रान्ति सुलभ स्वाप (शयन) युक्त (उसकी) वल्लभा दुर्जार भर्ता के अंग से लिपटी है।

श्वासैरगलितावेगैः कम्पयद्भिः कुचाङ्कुरौ ।
निवेदयन्तीं तत्कालमेव निर्वहणं रतेः ॥ ५०८ ॥

५०८. कुचाङ्कुरों को कम्पित करते श्वास प्रश्वासों से तत्काल ही रति समाप्ति का बोध करा रही थी।

अन्यस्यापि क्रोधहेतुं पुनरप्यक्षमावहाम् ।
तां तथाऽवस्थितां वीक्ष्य स प्रजज्वाल मन्युना ॥ ५०९ ॥

५०९. दूसरों के लिये भी क्रोध निमित्त एवं अक्षम्य उसे, उस अवस्था में देखकर, वह क्रोध से प्रज्वलित हो उठा।

प्रजिहीर्षुः स रोषेण विमर्शेन निवारितः ।
प्रहृत्येव प्रहृत्येव निवृत्तं स्वममन्यत ॥ ५१० ॥

५१० क्रोध से प्रहारेच्छुक, वह विमर्श के कारण निर्वारित हो, अपने को प्रहार करने से बचा लिया।

पाठभेद :

श्लोकसंख्या ५०६ में 'जातु' का पाठभेद 'ज्ञातु' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५०६ (१) शुद्धान्त : इसका शाब्दिक अर्थ शुद्ध अन्तरीय होता है। यह रनिवास किंवा अन्तःपुर के अर्थ में यहाँ प्रयुक्त किया गया है।

पाठभेद

श्लोक संख्या ५०७ में 'सोऽपश्यत्' का 'योऽपश्यत्' तथा 'दुर्जार' का पाठभेद 'दुर्जात' मिलता है।

श्लोक संख्या ५०८ मे 'दयन्तीं' का पाठभेद 'दयन्तो' तथा 'दयन्ती' मिलता है।

श्लोक संख्या ५०९ मे 'क्रोध' का पाठभेद 'क्रुधो' तथा सुझाव है कि 'पुनः' का पाठभेद 'मुने' होना चाहिये।

श्लोक संख्या ५१० में 'स' का पाठभेद 'स्म' मिलता है।

ततस्तथाविधः क्षुभ्यन् प्रकोपावेशसागरः।
विचारवेलया तस्य बलाच्छममनीयत ॥ ५११ ॥

५११. तथाविध उस क्षुब्ध होते प्रकोपावेश सागर का उसकी विचार (वेला तट) ने बलात् शान्त कर दिया।

नमस्तस्मै ततः कोऽन्यो गण्यते वशिनां धुरि।
जीर्यन्ते येन पर्याप्ता ईर्ष्याविषविषूचिकाः[१] ॥ ५१२ ॥

५१२. उसे नमस्कार है—उसके अतिरिक्त अन्य कौन जितेन्द्रियों में अग्रणी है जो पर्याप्त ईर्ष्याविष विसूचिका को नष्ट कर देता है।

सोऽचिन्तयदहो कष्टाश्चेष्टा रागानुगा इमाः।
विचारवन्ध्याः क्षिप्यन्ते क्षिप्रं याभिरधो नराः ॥ ५१३ ॥

५१३. उसने चिन्तन किया—'अहो! रागानुगामी ये चेष्टाए कष्टकर है, जिनके द्वारा विचार शून्य नर क्षण मात्र में नीचे फेंक दिये जाते है—

स्त्रीति नामेन्द्रियार्थोऽयमिन्द्रियार्था यथा परे।
तथैव सर्वसामान्या वशिनामत्र काः क्रुधः[१] ॥ ५१४ ॥

५१४. 'स्त्रीनाम की वस्तु इन्द्रियार्थ[२] है, जैसे अन्य वस्तुएँ इन्द्रिय योग्य होती है, उसी प्रकार वे सर्व सामान्य है, अतः वहां जितेन्द्रियों के लिये क्रोध का कौन अवसर है ?

निसर्गतरला नारीः को नियन्त्रयितु क्षमः।
नियन्त्रणेन किं वा स्याद्वत्सतां स्मरणोचितम्[१] ॥ ५१५ ॥

५१५. 'निसर्ग तरल नारी को नियन्त्रित करने में कौन समर्थ है? अथवा नियन्त्रण से क्या होगा जो कि सज्जनों के लिये स्मरणीय हो।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५११ में 'क्षुम्यन्प्र' का पाठभेद 'क्षुम्यत्प्र' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५१२ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८८ वा श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५१३ मे 'कष्टा श्रेष्ठा' का पाठभेद 'कष्टा.' श्रेष्ठा' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ

५१४ (१) राजतरंगिणी सूक्ति सग्रह का यह ८९ वा श्लोक है। यह पद सुभाषित है।

(२) इन्द्रियार्थ : यहाँ पर विषयो के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। न्याय शास्त्र के अनुसार रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श है। 'स्त्री' यहा पर मालूम होता है छठे विषय के रूप में कल्हण ने प्रयोग किया है।

५१५ (१) राज तरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ९० वा श्लोक है। यह पद सुभाषित है।

यः शुनोरिव संघर्ष एकार्थाभिनिविष्टयोः ।
रागिणोर्यदि मानः स कोऽवमानस्ततः परः[१] ॥ ५१६ ॥

५१६. 'किसी एक वस्तु पर अभिनिवेश रखने वाले दो श्वानतुल्य दो रागियों का जो संघर्ष है, वह यदि मान है, तो उससे बढ़कर अपमान क्या हो सकता है ?

ममकारो मृगाक्षीषु क इवायं सचेतसाम् ।
स्वदेहेऽनुपपन्नोऽपि यः सोऽन्यत्र कथं मत ॥ ५१७ ॥

५१७. 'बुद्धिमान् जनों का मृगाक्षियों मे अपनत्व कैसे ठीक हो सकता है, जो कि अपने देह में ही अनुपपन्न है, वह अन्यत्र कैसे संगत हो सकता है ?

उद्वेगोत्पादनादेषा वध्या चेत्प्रतिभाति मे ।
रागस्तद्विस्मृतः कस्मान्मूलमुद्वेगशाखिनः ॥ ५१८ ॥

५१८ 'उद्वेग उत्पन्न करने के कारण यह यदि मुझे वधयोग्य प्रतीत हो रही है तो, वह राग कैसे भूल जाऊँ जो उद्वेग वृक्ष का मूल है ।

सप्तपातालनिक्षिप्तमूलो रागमहीरुहः ।
भूमिभूतमनुत्पाट्य द्वेषमुन्मूल्यते कथम्[१] ॥ ५१९ ॥

५१९. "राग महीरुह का मूल सप्त पाताल यावत् निक्षिप्त है, अतएव भूमिभूत रागोत्पाटन के विना द्वेष का उन्मूलन कैसे सम्भव है ?

द्वेषो नामैष दुर्धर्षो जितो येन विवेकिना ।
क्षणार्धेनैव रागस्य तेन नामापि नाशितम् ॥ ५२० ॥

५२० 'जिस विवेकी ने इस दुर्धर्ष द्वेष को विजित कर लिया, उसने क्षणार्ध मे ही, राग का नाम मिटा दिया ।

वीक्ष्यैतद्दिव्यया दृष्ट्या रागिणां वाच्यमौषधम् ।
ईर्ष्या जेया ततो रागः स्वयमाशाः पलायते ॥ ५२१ ॥

५२१. 'दिव्य दृष्टि पूर्वक देखकर इसे रागियों का औषध कहना चाहिए, ईर्ष्या विजय करो, उससे राग स्वयं दिशाओं मे पलायित हो जाता है ।'

---

५१६ (१) राजतरगिणो सूक्ति सग्रह का यह ९१ वाँ श्लोक है ।

५१७ (१) राज तरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ९२ वा श्लोक है ।

पाठभेद .

श्लोक सख्या ५१९ मे 'नुत्पाट्य' का पाठभेद 'नुत्पाद्य' मिलता है ।

५१९ (१) राजतरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ९३ वा श्लोक है ।

५२० (१) राज तरगिणी सूक्ति सग्रह का यह ९४ वा श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सख्या ५२१ मे 'वाच्य' का पाठभेद 'शस्य' मिलता है ।

इति ध्यात्वाऽलिखद्वर्णान् खङ्खस्यांशुकपल्लवे।
'वध्योऽपि न हतो यत्त्वं स्मर्तव्यं तत्तवेत्यसौ' ।। ५२२ ।।

५२२. इस प्रकार ध्यान कर खंख के अंशुक पल्लव पर इन वर्णों को लिखा— 'वध्य भी, जो तुम नहीं वध हुए, यह स्मरण रखना।'

जनैरलक्ष्यमाणेऽथ याते दुर्लभवर्धने।
त्यक्तनिद्रः स मन्त्री तान् दृष्ट्वा वर्णानवाचयत् ।। ५२३ ।।

५२३. विना किसी के देखे दुर्लभवर्धन के चले जानेपर जागृत उस मंत्री (खंख) उन वर्णों को देखकर पढा।

दाक्षिण्यात्प्राणदस्यास्य खङ्खः स मनसा तदा।
विसस्मारानङ्ग-लेखां दध्यौ तु प्रत्युपक्रियाम् ।। ५२४ ।।

५२४. उस समय खंख अनंगलेखा को चित्त से विस्मृत कर दिया और दाक्षिण्य से प्राण प्रद उसके प्रति प्रत्युपकार भावना धारण किया।

तस्योपकर्तुरुचितं प्रतिकारमिच्छोः
चिन्ताऽविशन्न तु मनः स्मरबाणपङ्क्तिः।
दृग्गोचरे परिचयप्रणयं प्रपेदे
निर्निद्रता न तु कदाचन राजपुत्री ।। ५२५ ।।

५२५. उस प्रत्युपकारेच्छुक के मन में उपकर्त्ता के योग्य प्रत्युपकार करने की चिन्ता प्रवेश की, न कि स्मरबाण पंक्ति। उसकी दृष्टि में अनिद्रता ने परिचय प्रणय प्राप्त किया, न कि कभी उस राजपुत्री ने।

भूत्वा सप्तत्रिंशतिमब्दान्स चतुर्भि-
र्मासैर्वन्ध्यां मूर्धनि रत्नं नृपतीनाम्।
तस्मिन्काले लोकमवापोज्ज्वलकृत्यो
बालादित्यो बालशशाङ्काङ्कितमौलेः ।। ५२६ ।।

५२६. वह चार मास न्यून सैंतीस वर्ष राजाओं का शिरोरत्न होकर उज्ज्वल कृत्य शील बालादित्य, बाल शशांकित मौलि का लोक प्राप्त किया।

श्लोक सख्या ५२२ में 'तान्' का 'तद' पाठ भेद मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

५२५ (१) स्मर : काम के हाथो में पाच पुष्प बाण होते हैं। समझता हूँ कि पाचो कर्म एव ज्ञानेन्द्रियो के बाण सूचक है। क्योंकि किसी प्रकार का कर्म इन्हीं इन्द्रियो के द्वारा होता है। काम भावना की जागृति में इन्द्रियां ही सहायक होती है। इन्ही इन्द्रियो के माध्यम से काम आक्रमण करता है।

पूर्वं विपन्नतनयेऽभिजनस्य शेषे
गोनन्दसंततिरजायत तत्र शान्ते ।
प्राग्दन्तिभुग्ननलिनाऽथ हठप्रविष्ट-
तोयौघपाटितबिसा नलिनीव दीना ॥ ५२७ ॥

५२७ पूर्व ही पुत्र के मृत हो जाने से, अपने कुल के अवशिष्ट इस नृपति के शान्त हो जाने पर, गोनन्द सन्तति (वंश) उस नलिनी के तुल्य दयनीय दशा को प्राप्त हुई, जिसके कमल पहले गजों द्वारा तोड़ दिये गये हों, पश्चात् हठात् प्रविष्ट जल प्रवाह द्वारा जिसके मृणाल उन्पाटित कर दिये गये हों।

अथ शिथिलितमुख्यामात्यवैमत्यविघ्नः
कनकघटविमुक्तैः पावन तीर्थतोयैः ।
कथमपि स कृतज्ञो राजजामातुरुच्चै-
र्व्यधित विधिवदिष्टं मूर्ध्नि राज्याभिषेकम् ॥ ५२८ ॥

५२८. उस कृतज्ञ ने मुख्य अमात्यों के वैमत्य-विघ्न को शिथिल कर किसी प्रकार राज-जामाता के मूर्धा पर कनक घटों द्वारा विमुक्त तीर्थ जल से विधिवत् अभीष्ट एवं पावन राज्याभिषेक सम्पन्न किया।

कार्कोटप्रभवः प्रभुः स मुकुटप्रत्युप्तमुक्ताकण-
द्योतश्रेणिफणाङ्कुराङ्कितबृहद्बाहुर्महीमुद्वहन् ।
ज्ञातिप्रीतिसतोषशेषफणभृत्संफुल्लदृक्पल्लव-
न्यासावर्जकहाटकाब्जपटलस्रग्दामशोभोऽभवत् ॥ ५२९ ॥

६२९. मुकुट जटित मुक्ता कण की प्रकाश पंक्तियों से फणांकुरांकित तुल्य बृहद् बाहु कर्कोटकवंशीय वह प्रभु पृथ्वी धारण करते हुए, वंश प्रेम से सन्तुष्ट शेष नाग के सम्फुल्ल दृक्पल्लव न्यास को आकृष्ट करनेवाली स्वर्ण कमल समूह की माला धारण करने की शोभा प्राप्त कर रहा था।

पादटिप्पणियाँ .

५२७ (१) प्रस्तुत पद्य मे पूर्णोपमा अलकार द्वारा गोनन्द वश की समाप्ति का सुन्दर चित्र खीचा गया है। जिस प्रकार कमल यूथ मे अने ो कमल विकसित होते, अनेको मृणाल रूप में रहते हैं, ऐसी स्थिति में किसी गज द्वारा कमलो का विनाश, जल प्रवाह द्वारा मृणालो का विनाश कमल यूथ का पूर्ण विनाश है। ठीक यही स्थिति गोनन्द वश की हुई। गज यहाँ मृत्यु का प्रतीक है।

पाठभेद

श्लोक सख्या ५२९ में 'दृक्प' का 'हृत्य'; 'वर्जक' का 'वर्तक', 'स्रग्दाम' का 'स्रद्दाम' पाठभेद मिलता है।

५२९ (१) शेष=कथा है कि शेष नाग के फण पर यह विशाल पृथ्वी स्थित है।

कर्कोटप्रभ व राजा दुर्लभवधन मर्प फण के मणि तुल्य मुकुट मुक्ता किरणमाल भूषित महा भुज पृथ्वी का भार धारण करते हुए हेम मय पद्म निर्मित

अथ विगलिता गोनन्दोर्वीभुजोऽभिजनाच्छुचे-
रतिशुचिनी भूः कार्कोटाहेः कुले व्यधित स्थितिम् ।
चिरपरिचितात्स्वर्गाभोगाध्वनः पतनं श्रिता
त्रिभुवनगुरोः शंभोर्मौलाविवामरनिम्नगा ॥ ५३० ॥

५३०. पृथ्वी गोनन्द पृथ्वीपति के पवित्र वंश से विगलित होकर कर्कोट आदि के अति पवित्र कुल पर स्थित हुई, जैसे अमर निम्नगा (गंगा) चिर परिचित स्वर्ग भोग-मार्ग से निपतित हो, त्रिभुवन गुरु शंभुमौलिपर स्थित हुई थी[1] ।

इति श्रीकाश्मीरकमहामात्यचणपकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ
राजतरङ्गिण्यां तृतीयस्तरङ्गः ॥

इस प्रकार काश्मीर के महामात्य चम्पक प्रभु के पुत्र कल्हण विरचित
राजतरंगिण में, तीसरा तरंग समाप्त हुआ ।

हारयष्टि उसके सौन्दर्य का वर्धन किया । उसने शेष नाग के जाति ऐश्वर्य का प्रीति लाभ करके आनन्द से नेत्र राजि विकसित किया ।

पाठभेद :

श्लोकसख्या ५३० में 'कार्कोटा' का पाठभेद 'कर्कोटा' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ .

तीनो तरंगो की श्लोक सख्या किसी ने १०६९ तथा किसी ने १०७९ दीया है । परन्तु श्लोक सख्या १०७४ होती है । यथा तरग १—३७३, तरंग २, १७१ तथा तरंग तीन ५३० योग १०७४ होता है ।'

श्लोक सख्या ५३० के पश्चात् निम्नलिखित लेख भिन्न प्रतियो मे मिलता है–१०॥५३०॥ आदित. ५४,॥ १०७४ का पाठभेद १०॥५३६॥ आदितः ५३॥, ग्रं १०६९ ग्रं ५३६ आदित १०६९, राजान । १० आदित. ५३ ग्रन्था: ५२५ ; १०,५३६, आदितः ५३ ग्रं १०६६ , रा० १० ग्रं—५३६ आदितः रा० ५४ ग्रं १०६६ , राजानः १० आदितः ५४ ग्रन्थानि ५२५ आदितः १०७० , १०, ५३९ ॥आदित.॥ ॥५३॥ ग्रं १०६९.

इति पाठ में 'चणपक' का पाठभेद 'चम्पक' मिलता है ।

इति के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक कतिपय प्रतियो मे प्राप्त होता है ।

सैकोननवतिश्चात्र वर्षाणां शतपञ्चकः ।
दशमासाश्च सैकाहा गता दशसु राजसु ॥

[(इन) दश राजाओ में पाँच सौ नवासी वर्ष दश मास एक दिन गत हुए

—※—

परिशिष्ट 'क'

नीलमत पुराण

(तरंग : १ · १४ : पृष्ठ—१०)

कश्मीर के पुरा कालीन इतिहास पर प्रकाश नीलमत पुराण द्वारा पडता है। कल्हण ने राजतरंगिणी की बहुत कुछ सामग्री नीलमत पुराण से प्राप्त की है। कल्हण ने स्वयं इसे स्वीकार किया है।

नीलमत पुराण वास्तव में पुराणो की परिभाषा में पुराण है अथवा नही, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है या नही ? उसकी गणना पुराणो मे की जा सकती है या नही ? यह विद्वानो की चर्चा का विषय रहा है। कश्मीर में धार्मिक, ऐतिहासिक एवं काव्य ग्रन्थ लिखने की प्राचीन परम्परा रही है। 'योग वासिष्ठ' जैसा ग्रन्थ भी या तो कश्मीर में लिखा गया था अथवा उसका प्राप्य वर्तमान संस्करण कश्मीरी है। (योग वासिष्ठ कथा भूमिका) एक मत है कि विष्णुधर्मोत्तर पुराण वैष्णव पुराण है। कश्मीर में लिखा गया था (स्मृति तत्त्व · जीवानन्द विद्यासागर : २ . ४६७-४६८)। नीलमत पुराण की रचना कश्मीर उपत्यका में हुई थी। यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है। यह पुराण नही उपपुराण है। स्थानीय किंवा लौकिक उपपुराण वर्ग में आता है।

वायु पुराण (१ · १८१) में उल्लेख है 'इतिहासपुराणाभ्या वेदं समुपबृंहयेत् ।' वेद और पुराण साथ स्थित थे। दोनो में निकट सम्बन्ध था। अथर्व वेद के प्रात्य सूक्त में इतिहास पुराण का चारो वेदो के साथ उल्लेख किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार परम पितामह ब्रह्मा वेद और पुराण दोनो के स्रोत हैं। एक मत पुराण को वेद से प्राचीन मानता है। पुराणो को सरलतापूर्वक समझाने के लिए वेदो का अभ्युदय हुआ है। वेद केवल सृष्टि विद्या पर प्रकाश डालता है। पुराणों का क्षेत्र अधिक व्यापक है। उनकी आख्यान शैली वेदो के समान है। वे लगभग चार लाख श्लोको में लिपिबद्ध हैं। वेद एवं पुराण दोनो पुराकालीन आख्यानो पर आधारित हैं।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिस्सृताः॥

—मत्स्य पुराण ३ · ३–४

पुराण वेद के प्राधिकार का आदर करता है। वैदिक सिद्धान्तो की व्याख्या करता है। उसे प्रमाण मानता है।

'सर्ववेदार्थसाराणि पुराणार्थः ।'—नारदीय १ : ९ : १००

वेदा प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशय. ।।—नारदीय २ : २४ · १७ ; स्कन्द, रेवा, १।२२ पृ०
यो न वेद पुराणं हि न स वेदात्र किंचन ।—स्कन्द पुराण रेवा खण्ड
आत्मा पुराणं वेदानाम् ।—स्कन्द पुराण रेवाखण्ड १।२२ उ०

पुराणो के लिए निम्नलिखित पाँच लक्षणो का होना आवश्यक माना गया है। इन लक्षणो के आधार पर नीलमत पुराण को तौलना होगा।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरितं चैव पुराणं पच-लक्षणम् ॥

—मार्कण्डेय पुराण १३५ : १३

पुराण में सृष्टि (सर्ग), प्रलय (प्रतिसर्ग), वंश, मन्वन्तरो तथा वंशानुचरित किवा पुरातन चरित का वर्णन किया जाता है। कौटिल्य ने इतिहास वर्ग में इतिवृत्त तथा पुराण को माना है। (अर्थशास्त्र १ ३) इतिवृत्त में ऐतिहासिक घटनायें अधिक रहती है। परन्तु पुराण मे कथा, गाथा आदि का समावेश होता है।

सामाजिक जीवन को एक ओर प्रवृत्त करने के लिए, सर्वसाधारण को अनुप्राणित तथा उन्हें सुपथ पर लाने के लिए पुराण ने अनादि काल से मार्ग दर्शन किया है। पुराण वर्णाश्रम धर्म, सदाचार, व्रत, उपवास, तिथि-कल्प, दान, तीर्थ, श्राद्ध, राजधर्म, देवार्चन पूजा, विनय तथा शील का अद्‌भुत कोष है।

'नीलमत' पुराण, नील के मत का वर्णन करता है। इसमें भागवत, वायु, गरुड, ब्रह्म, मार्कण्डेय, स्कन्दादि पुराणो के समान विशाल ज्ञान-भण्डार, आख्यान तथा वस्तु सामग्री नही है। वह लघु ग्रन्थ है। उसका क्षेत्र व्यापक नही है। सीमित है। नीलमत पुराण को महापुराणो की श्रेणी में रखना उचित नही होगा। उसका महत्त्व लौकिक है। प्रादेशिक है। निस्सदेह उसमें अन्य विषयो का भी उल्लेख है। उसकी रचना शैली तथा वस्तु सामग्री उसे स्थानोय अथवा उपपुराणो के वर्ग मे रखने के लिए प्रेरित करती है।

नीलमत पुराणो की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर सकता है। वशचरित का वर्णन करता है। कल्हण ने उससे ऐतिहासिक सामग्री ली है। शैली पुराणो जैसी प्राचीन है। उसमें संवाद प्रतिसवाद रूप से घटनाओ तथा कथा वस्तु का वर्णन किया गया है। उसमें माहात्म्यो का वर्णन है। कपटेश्वर, आश्रम स्वामी, वितस्ता माहात्म्य का विस्तृत उल्लेख है। कुछ विद्वानो ने इसे माहात्म्य की श्रेणी मे रखने का प्रयास किया है। परन्तु कल्हण स्वय नीलमत को पुराण मानता है न कि माहात्म्य। (अ० १ १७८–१८३)

इस पुराण का शीर्पक महत्त्वपूर्ण है। 'मत' शब्द का प्रयोग किया गया है। नाम नीलमत' है। स्पष्ट करता है। पुराण नील मुनि के मत का संग्रह है। वायु, मार्कण्डेय, गरुड, ब्रह्म पुराण के समान इसे भी नील नाम से सम्बन्धित किया गया है।

मै सन् १९६१ ई० में कश्मीर के भद्रवा स्थान में गया था। जिस समय मै गया था मार्ग दुरूह था। सडकें वन रही थी। इस समय सडकें वन गई हैं। यातायात सुगम हो गया है। वस तथा मोटर वहाँ पहुँच सकती हैं।

भद्रवा में वासुकी नाग का एक मन्दिर है। मुझे मालूम हुआ कि वासुकी पुराण एक समय वहाँ प्रचलित था। अधिक अनुसन्धान पर निष्कर्ष निकला कि वह वासुकी नाम का कोई पुराण नही हैं। इसी प्रकार एक रत्नाकर पुराण का उल्लेख मिला है। रत्नाकर पुराण का यदि कभी अस्तित्व रहा होगा तो वह भी कश्मीर में सूचित उपपुराण ही था। भारतवर्ष में इस प्रकार के १०० या इससे अधिक पुराण एव उपपुराण प्रचलित थे। अनेको का उल्लेख मिलता है। अनेको के नाम लोप हो गये हैं। कश्मीर उपत्यका से भद्रवा क्षेत्र कम सुन्दर नही है। जिस समय मै वहाँ गया था शाली अर्थात् धान से खेत लहलहा रहे थे। कटाई निकट होने के कारण धान कुछ सूख चला था। हरियाली लोप हो रही थी। सुनहलापन आ गया था। मालूम होता था। सुनहले धान

की बालियाँ खेतो में खडी है। किंचित् मरुत् स्पर्श से विस्तृत धान क्षेत्र में सुनहली लहरें लहर लेने लगती थी। आधुनिक यन्त्रमय जगत् तथा प्रतिदिन के राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक वैषम्यों से दूर, हिमाद्रि की गोद में यह स्थान साधना तथा अध्यात्म चिन्तन के लिए अनुपम स्थान है।

नीलमत पुराण का नाम—नीलमत, नीलमत पुराण, नील पुराण तथा कही-कही कश्मीर माहात्म्य के रूप मे मिलता है। स्वर्गीय डा० भण्डारकर ने इस पुराण को 'कश्मीर माहात्म्य' की सज्ञा दी है। यह ठीक नही प्रतीत होता।

कल्हण ने राज तरंगिणी मे दो बार नीलमत, दो बार पुराण तथा एक बार नील पुराण नाम से नीलमत पुराण का उल्लेख किया है। [रा० त० १.१४,१६,१७१,१७८,१८३२]

नीलमत पुराण का ऐतिहासिक महत्त्व है। कुछ विद्वानो का मत है . 'नीलमत पुराण' सन् ६००-७०० ई० के मध्य लिखा गया है। पुराणो का रचना-काल विवादास्पद हैं। पुराणों के रचना, सकलन, संस्करणो का निश्चय नही हो सका है। कुछ विद्वानो का मत है। वायु पुराण ई० पूर्व ५००, ब्रह्माण्ड पुराण ई० पूर्व ४००, विष्णुपुराण ७००-४०० ई० पूर्व, मत्स्य पुराण ३०० ई० पूर्व तथा भागवत पुराण का रचना काल सन् ३१० ई० हैं। नीलमत पुराण के रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं। यह निर्विवाद है नीलमत की कथावस्तु अत्यन्त प्राचीन है। उसकी अनेक बातें पुराणो के विपरीत प्रतीत होती हैं। अनेक विषयो में उसका अपना मत है। अपनी मौलिकता है। सहस्रो वर्ष से कश्मीर मे प्रचलित जनश्रुतियो, कथाओ, परम्पराओ, स्थानो, वशावलियो का उल्लेख है। स्वीकार करना होगा। उसका रचना-काल चाहे प्राचीन न हो फिर भी उसमे पुरातन तथ्यो का समावेश है।

कल्हण के उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है। नीलमतपुराण प्राचीन ग्रन्थ था। उसका अस्तित्व बारहवी शताब्दी के पूर्व था। आभ्यन्तर साक्ष्य से नीलमत की प्राचीनता सिद्ध होती है। क्षेमेन्द्र, जयरथ तथा कल्हण ने बुद्ध भगवान् के सम्बन्ध के जो विचार प्रकट किये है वे नीलमत से सर्वथा भिन्न है—नीलमत के भगवान् बुद्ध को महत्त्वपूर्ण स्थान पूजा, उपासना आदि के प्रसंग में दिया गया है। उसमे बुद्धका प्रार्दुभाव कहा गया है। अवतार शब्द का न होना नीलमत की प्राचीनता प्रमाणित करता है। बुद्ध को अवतार माननेका समय बहुत बाद का है। बुद्ध धर्म नीलमत पुराण में हिन्दू-धर्म का विरोधी मत किंवा धर्म रूप में चित्रित नही किया गया है। नीलमत उस समय की कृति है जब कश्मीर में बुद्धधर्म प्रचलित था। आदर की दृष्टि से देखा जाता था। हिन्दूधर्म मे विस्तार से वर्णित कल्कि अवतार, कृष्ण राधा, तुलसी आदि का अभाव नीलमत मे खटकता है। इस बात की ओर सकेत करता है ग्रन्थ उस समय की रचना है जब कल्कि अवतार, राधा, तथा तुलसी दल की कल्पना नही की गयी थी। हरचरित चिन्तामणि से भी नीलमत पुराण प्राचीन है। उसके समकालीन इसे रखना उचित नही है। हरचरित चिन्तामणि में शिव को महत्त्वपूर्ण विशेष स्थान दिया गया है। इस बात का प्रमाण है। शैव दर्शन तथा सिद्धान्त का कश्मीर मे पर्याप्त विकास हो चुका था। यह काल नीलमत का पूर्ववर्ती काल है। कल्हण का बौद्धो की तुलना यक्षो से करना सावित करता है। कश्मीर में बौद्धधर्म उसके समय प्राय लोप हो चुका था। आदर खो चुका था। जब कि नीलमत में बुद्ध तथा बौद्धोका आदर किया गया है।

श्री लक्ष्मीधर ने कृत्य कल्पतरु (नियत काल काण्ड) जो बारहवी शताब्दी के पूर्व अर्धशती की रचना है, उसमें ब्रह्मपुराण के श्लोको का उद्धरण दिया है। प्राय: वे ही श्लोक नीलमत पुराण में भी हैं। इस प्रकार के कम से कम साठ पद है। किन्तु प्रकाशित ब्रह्मपुराण में वे पक्तियाँ नही मिलती। इससे

प्रतीत होता है, कोई एक और ब्रह्मपुराण का संस्करण उस समय उपलब्ध था अथवा ब्रह्मपुराण नामका कोई एक और ग्रन्थ था। प्राप्त ब्रह्म पुराण का उल्लेख हेमाद्रि, शूलपाणी, वाचस्पति मिश्र आदि में मिलता है। तथा दूसरे ब्रह्मपुराण का उल्लेख लक्ष्मीधर, जीमूतवाहन, अपरार्क, हरदत्त, अनिरुद्ध भट्ट आदि में मिलता है। निस्सन्देह मानना पडेगा। ब्रह्मपुराण में कश्मीर का जो उद्धरण दिया गया है वह कश्मीरी लेखको की ही रचना है। उसकी रचना कश्मीर में हुई थी। अधिक सम्भावना है। वह नीलमत पुराण से ली गयी है। नीलमत के सस्करण होते रहे हैं। नवी दशवी शताब्दी में कश्मीर के शैवदर्शन का नीलमत पुराण मे समावेश करने का प्रयास किया गया है। नीलमत पुराण मे विष्णुधर्मोत्तर पुराण के कुछ पद सशोधित किंवा परिवर्तित रूप में मिलते है। इस पुराण का काल चौथी से पाँचवी शताब्दी का मध्यकाल माना गया है। नीलमत में वैष्णव, शैव तथा बौद्धधर्म एक साथ विकसित और रहते दिखायी देते हैं। कनिष्क के समय में बौद्धधर्म का प्रावल्य कश्मीर में हो गया था। अतएव नीलमत का अस्तित्व कश्मीर में चौथी से छठी शताब्दी के पूर्व होना निर्विवाद प्रतीत होता है। ह्युयेन्साग (सातवी शताब्दी) नील के मत का उल्लेख करता है। अतएव ह्युएनसाग के पूर्व नील मत पुराण का कश्मीर में अस्तित्व था।

कल्हण ने राजतरंगिणी (त. १६) वर्णित प्रथम चार राजाओ गोनन्द, दामोदर, यशोवती तथा गोनन्द द्वितीय तथा श्लोक सख्या १ ५०-८२ नीलमत के श्लोको से मिलाया जाय तो यह प्रमाणित होता है कि कल्हण ने उन्हें नीलमत से लिया है। कल्हण ने लुप्त राजाओ का उद्धरण, ज्येष्ठेश की कथा, सोदर तीर्थ वर्णन, पिशाच कथा, तीर्थों तथा सतीसर, नोलजा अर्थात् वितस्ता का वर्णन नील मत पुराण के आधार पर किया है।

पुराणो के समय-समय पर अनेक लेखको तथा सम्पादको द्वारा सस्करण होते रहे हैं। कोई भी कागज अथवा भोजपत्र पर लिखी गयी पुस्तक एक सहस्र किंवा दो सहस्रो वर्षों से अधिक काल तक स्थायी नही रह सकती। अतएव उनका पुनर्लेखन अथवा सस्करण समय-समय पर होता रहा है। संस्करण किंवा पुनर्लेखन करने वाले के लिये अपने समय की घटना अथवा अपने मतके प्रतिपादन हेतु कुछ न कुछ पुस्तको में परिवर्धन, परिवर्तन किंवा सशोधन कर देना असभव नही है। पाठान्तर हो जाना स्वाभाविक है। नीलमत पुराण के पाठ के विषय में भी यही बात कही जा सकती है।

नीलमत पुराण का ऐतिहासिक महत्त्व निम्नलिखित कारणो से बढ जाता है :

(१) नीलमत पुराण तत्कालीन कश्मीर सस्कृति, तथा सभ्यता का जीता-जागता चित्र उपस्थित करता है।

(२) तत्कालीन धार्मिक कृत्यो, एव सस्कारो आदि को प्रभावित किया है।

(३) कश्मीर के स्थानो, सरोवरो, जलप्रपातो, सगमो, मन्दिरो, देव स्थानो तथा तीर्थों का तथ्य पूर्ण सच्चा भौगोलिक वर्णन, इन स्थानो से सम्बन्धित प्राचीन तथा तत्कालीन गाथाओ का उल्लेख सत्यता के साथ करता है। जिस प्रकार जरूसलम का वास्तविक भूगोल स्वय बाइबिल है, उसी प्रकार कश्मीर का भूगोल स्वय नीलमत पुराण है।

(४) कश्मीर की जनता का चरित्र चित्रण करता है।

(५) अनेक लुप्त राजाओ के चरित्र तथा उनके वशो का उल्लेख करता है।

(६) अनेक जातियो, गोत्रो, उनके कश्मीर में आने, निवास करने, तथा उनके पारस्परिक आन्तरिक एवं बाह्य सघर्षों तथा जीवन पर प्रकाश डालता है।

(७) कश्मीर के भौगोलिक चित्रण के साथ-साथ भूगर्भीय तथ्य का उल्लेख करता है। वे आधुनिक अनुसन्धानो से सत्य प्रमाणित हुए है।

(८) कश्मीर की जनता के लिए एक आचार सहिता उपस्थित करता है।

(९) प्राचीन सनातन धर्म को सक्षिप्त रूप से कश्मीरी जनता के सम्मुख रखता है।

नीलमत पुराण में अन्य पुराणो के श्लोको का किंचित् रूपान्तर के साथ उल्लेख मिलता है। नीलमत पुराण के रचनाकार को पुराणो, तत्कालीन प्रचलित ग्रन्थो तथा शास्त्रो का ज्ञान था। पुराणो के कुछ श्लोको का नीलमत पुराण मे उल्लेख मिलता है। (ब्रह्म० ४३४,१,२,२९)

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के विषय मे मत है कि लगभग ४४०-५५० ईस्वीमें लिखा गया था। इस पुराण के श्लोक नीलमत पुराण मे मिलते है। अनेक स्थानो, घटनाओ तथा प्रसंगो का उल्लेख नीलमत तथा इस पुराण मे एक जैसे लगते है।

राजा मिहिरकुल के लगभग १०० वर्ष पश्चात् तक कश्मीर में अन्तर्द्रोह चलता रहा है। आन्तरिक द्वेषो के कारण राजा लोग पीडित थे। कश्मीर का कोई विकास नही हो सका था। यही काल नीलमत पुराण के प्रस्तुत संस्करण का हो सकता है। नीलमत पुराण का किसी दूसरे रूप में पुरा काल मे अस्तित्व होना सम्भव है। किन्तु वर्तमान नीलमत पुराण सस्करण का यही काल है। नीलमत मे उल्लेख आया है। नीलमत इस ओर सकेत करता है—स्वर्भेदेनेह नश्यन्ति बद्धमूला नराधिपा (नी० 835)

कश्मीर भूमण्डल की किस प्रकार रचना हुई ? उसकी वर्तमान भौगोलिक स्थिति का क्या कारण है ? इन प्रश्नो का उत्तर नीलमत पुराण देता है। गाथा रूप में यह सब बातें नीलमत पुराण मे कही गयी है। कश्मीर के तीर्थो, देव स्थानो तथा देश की रचना आदि का विषय नीलमत पुराण के लगभग दो-तिहाई भागो में वर्णित है (रा० १ १४)

कल्हण ने राजतरगिणी में नीलमत के आधार पर सतीसर तथा जलोद्भव की गाथा का वर्णन किया है। (रा० १ २५-२८) यही गाथा किंचित् परिवर्तित रूपमें महावश, सर्वास्तिवादी, चीनी विनय सम्प्रदाय तथा हुयेन साग ने दी है। आधुनिक भूगर्भीय अनुसन्धानों से प्रमाणित हो गया है। नीलमत वर्णित गाथा तथ्यपूर्ण है। वह केवल कपोलकल्पना नही है।

नीलमत कश्मीर का भूगोल है। विश्वभूगोल का अन्य पुराणो के समान नीलमत वर्णन करता है। सप्त द्वीप, नव वर्ष, सात कुल पर्वत, आदि का उसमें उल्लेख है। उसमे तीर्थों का भी उल्लेख है। कश्मीर के पवित्र देव स्थानो, तीर्थ स्थानो का वर्णन नीलमत में यथावत् मिलेगा। उसमे नाग, शिव देवस्थान, विष्णु देवस्थान, तीर्थ, वितस्ता के उद्गम स्थान से बारहमूला तक के तीर्थो, देवस्थानो, उसकी सहायक नदियो का उल्लेख है। और कश्मीर के नामकरण पर भी नीलमत प्रकाश डालता है। नदियो तथा उनके स्थलो का विस्तृत उल्लेख करता है। कश्मीर बाहर भारतवर्ष के तीर्थो तथा देवस्थानो का उल्लेख करता है। उससे प्रतीत होता है। कश्मीर के भूगोल के साथ भारत के भूगोल का भी ज्ञान नीलमत रचनाकार को था।

नीलमत मे प्राचीन जातियो का वर्णन मिलता है। उनमे मुख्य नाग, पिशाच, दार्व, अभिसार, गान्धार, जुहुन्द्रा, शक, खस, तगण, माण्डव, मद्र, अन्तर्गिरि तथा वहिर्गिरि का उल्लेख है। नाग तथ पिशाच जातियाँ कश्मीर में निवास करती थी। शेष जातियाँ कश्मीर की सीमावर्ती है। यवन शब्द का नाम के लिये उल्लेख किया गया है।

काश्मीर के तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक सघटन एवं अवस्था पर नीलमत प्रकाश डालता है। वर्ण तथा आश्रम की उत्पत्ति तथा दर्शन पर नीलमत विचार नही करता। किन्तु उनकी मुख्य प्रक्रियाओ तथा अगो पर प्रकाश डालता है। चारो वर्णों के कर्तव्य का वर्णन करता है (नील० १४–१६ श्लोक)

कर्मकाण्ड, वेदाध्ययन, पुराण पाठ आदि, दान-दक्षिणा, राजनीति, तथा ब्राह्मणो के सम्बन्ध में समाज की साधारण स्थिति क्या थी प्रकाश डालता है। क्षत्रियो की समाज में क्या स्थिति थी क्या कर्तव्य था, ब्राह्मणो से क्या सम्बन्ध था आदि का वर्णन नीलमत में मिलता है। वैश्य तथा शूद्रो के कर्त्तव्य पर प्रकाश डालता है। शूद्रो की निम्नस्थिति उस समय नही थी। जैसी आज है और समझी जाती है। वे राजाओ के अभिषेक मे भाग लेते थे। वे अन्त्यज किंवा समाज मे निम्नस्तरीय वर्ग नही थे। नीलमत में विभिन्न जातियो का उल्लेख यथा औरभृक्ष, मल्ल, नट, एव नर्तक, है। वर्णसंकर का उल्लेख नही मिलता। सूत, मागध, वन्दी का उल्लेख मिलता है।

चारो आश्रमो के धर्म एव कर्तव्यो के विषय पर नीलमत प्रकाश नही डालता। ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग किया गया है। परन्तु उसका सम्बन्ध आचार से अधिक है, न कि विद्यार्थी जीवन से। नीलमत में बाल विवाह प्रथा का उल्लेख नही है। सन्यास तथा वानप्रस्थ आश्रमो का उल्लेख है। नीलमत गृहस्थाश्रम तथा तत्सम्बन्धी विधियो का विशेष वर्णन करता है।

तत्कालीन महिलाओ की स्थिति तथा समाज में इनका क्या स्थान था नीलमत वर्णन करता है। वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कश्मीर की स्त्रियाँ परदा नही करती थीं। विरक्तो के मतानुसार नरक का साधन नही थी। मनुष्यो के पतन का कारण नही थी। वे पुरुषो के समान समाज के सभी कार्यों में समान भाग लेती थी। वे घरो में वन्द नही थी। उनका स्थान, पर्वों, उत्सवो, धार्मिक कृत्यो में पुरुष के समान था। वे कौमुदी उत्सव में भाग लेती थी। वे सुयोग्य गृहिणी रूप में चित्रित की गयी है। वह खेतो के जोतने के उत्सव मे गाती थी, नाचती थी, बाजा वजाती थी, इरामजरी पूजा में वह वृक्ष देवता के पास पूजन हेतु जाती थी। कश्मीर मे प्रचुर मात्रा में सर्वत्र जल है। नाग, सरोवर, तडाग, ह्रद एव सरिताओ के तट पर सर्वदा कोई न कोई उत्सव होता रहता था। नर नारी जल क्रीडा साथ करते थे। नीलमत आदेश देता है। कुमारी विशेषत इन जल उत्सवो में अवश्य भाग लें। यह उत्सव श्रावणी के दिन होता था। महिलायें सुसज्जित होती थी। पुरुषो के साथ क्रीडा करती थी। इस उत्सव का नाम महिमान था। विभिन्न वर्ग की स्त्रियो की पूजा के लिये विभिन्न दिन निश्चित थे। माघ शुक्ल चतुर्थी, आश्वयुज, ज्येष्ठ की चौथ, मार्गशीर्ष पूर्णमासी को महिलाओ की विभिन्न रूपो एवं प्रकारो से पूजा की जाती थी। मदन त्रयोदशी के दिन पत्नी पति से पवित्र जल प्राप्तकर स्नान करती थी। दीप मालिका के दिन शय्या गृह सजाया जाता था। महिलायें अकेले भी चन्दोदेव की पूजा करती थी। नीलमत में देवताओ के साथ ही साथ उनकी देवियो का नाम है। उनकी पूजा का भी विधान किया गया है। कश्मीर की नदियाँ विभिन्न देवियो के रूप है। उनके पूजा का विधान तथा समय निश्चित किया गया है। अन्य पुराणों मे महिलाओ को वह स्थान नही दिया गया है, जो नीलमत पुराण में प्राप्त होता है। नीलमत देवदासी प्रथा को मानता है। परन्तु उनका काम मन्दिरो में नृत्य एवं गान करना भी भगवान की सेवा करना था। वह काम की साधन नही मानी जाती थी। अतिथियो की सेवा तथा उनके सुख के लिये कार्य करना पुण्य कर्म माना जाता था।

कश्मीर की आर्थिक समृद्धि केवल कृषि पर ही निर्भर नही थी। कश्मीर का व्यापार, तिब्बत, तुर्किस्तान, मध्यएशिया, अफगानिस्तान तथा पजाब से था। कुशान राजाओ के काल में वह व्यापार बहुत

समृद्धि कर गया था। हूण आक्रमणो के पश्चात् कश्मीर का बहिर्व्यापार मार्ग प्राय बन्द हो गया। और आर्थिक ढाँचा का आधार केवल कृषि तथा पंजाब और तिब्बत से व्यापार रह गया था। नीलमत के अनुसार व्यापारी तथा व्यवसायी गणो का समाज में समादर होता था।

नीलमत पुराण कश्मीर के सामाजिक जीवन के उल्लासमय, आह्लादमय, आनन्दमय जीवन का चित्रण करता है। प्रकृति की गोद मे काश्मीरी पर्वों, उत्सवो की शृखलाओ मे प्रसन्नता पूर्ण जीवन, खेल-कूद, पठन पाठन, आदि में व्यतीत करते थे। उनका समाज प्रगतिशील था। नीलमत सभी उत्सवो की पीठिका में धर्म को स्थित रखता है। संगीत का सम्बन्ध गन्धर्वो से जोडा गया है। प्रत्येक पर्व एव उत्सवो पर सगीत का कार्यक्रम होता था। शास्त्रीय सगीत प्रचलित था।

पेशेवर गायक, सूत, मागध, वन्दी एवं चारण थे। वाद्य, वादित्र एव वाद्य भाण्ड प्रचलित था। घन, वितत, तत, शुषिर, तन्तु तथा चर्म वाद्य उस समय भारत में प्रचलित थे। नीलमत आनद्धवाद्य तथा तन्त्रि-वाद्य का उल्लेख करता है। इसके अतिरिक्त वेणु, शंख, घण्टा का भी उल्लेख मिलता है।

वीणा का नीलमत पुराण तीन वार उल्लेख करता है। कश्मीर का सत्तूर वीणा का ही विकसित रूप है। वेणु का उल्लेख केवल एक बार नीलमत मे भगवान् विष्णु के जगाने के सम्बन्ध मे किया गया है। शंख का उल्लेख दो वार किया गया है। पटह का उल्लेख नीलमत में दो बार वीणा के प्रसंग में किया गया है। पटह नगाडा या डुग्गी की तरह बाजा है। इसका प्रचलन आज भी कश्मीर में है।

नृत्य सगीत के साथ होता था। नीलमत नृत्य के प्रकार का वर्णन नही करता परन्तु नृत्य धार्मिक उत्सवो, सामाजिक गोष्ठियो, ऋतुओ के आगमन, कृषि उत्सवो, फलो के पकने के समय होता था। हरवान के पुरातत्त्व खनन कार्य में एक टाइल मिला है। उसपर खरोष्ठी लिपि अकित है। मध्यवर्ती मूर्ति झाँझ बजा रही है। वामवर्ती वंशी बजा रही है। और दक्षिणवर्ती एक जोडा नगाडा अर्थात् दुक्कड बजा रहा है। एक में नृत्यशील स्त्री चित्रित की गयी है। एक महिला ढोल बजा रही है। कोटिसर मन्दिर से भी महिला नर्तकी की मूर्ति मिली है। धार्मिक कृत्यो के साथ नृत्य खूब प्रचलित था। कश्मीर के नृत्यो ने सीमावर्ती देशो तथा अंचलो की नृत्य कला को प्रभावित किया था। सावित्री विसर्जन पर्व आज भी काश्मीरी महिलायें मानती हैं। किसी नदी के तट पर सात बार मूर्धा पर हाथ रख कर जाती और आती हैं। वह प्राचीन नृत्य का प्रतीकात्मक रूप रह गया है। वसन्त आगमन काल मे इरा पुष्प की मालाओ से विभूषित काश्मीरी महिलायें नृत्य एवं गान करती थी। अशोकाष्टमी पर्व पर भी नृत्य तथा गान होता था।

खेलो का काश्मीरी जीवन मे बहुत महत्त्व था। श्रावणी पर्व पर कुमारियाँ जल क्रीडा करती थी। नीलमत मे मल्ल विद्या अर्थात् कुश्तोप्रियता का उल्लेख मिलता है। दीपावली पर जूआ खेलने की परिपाटी प्रचलित थी। शिकार खेलने की प्रथा थी। हरवान के टाइल्स पर शिकारी बाण चलाता दिखाया गया है। इसे नीलमत धनुर्घोष शब्द से व्यक्त करता है। नीलमत में स्कन्द पूजा के दिन खिलौना तथा पक्षियो के पैर में सूत बाँधकर उड़ाना प्रचलित था।

नीलमत मे भवन, गृह, आलय, वेश्म, आयतन, अट्टालक आदि शब्द विभिन्न शैलियो के मकानो के लिये प्रयुक्त हुए है। श्रमणो के निवास स्थान को शाक्यवास तथा पूजा स्थान को चैत्य कहा जाता था। हिन्दू मन्दिरो के बहुत नाम मिलते हैं। परन्तु उनकी रचना शैली पर नीलमत प्रकाश नही डालता। हरवान के भग्नावशेष देखने से पता चलता है। मण्डप तथा गर्भ गृह मन्दिरो में होता था। मकानो पर सफेदी की जाती थी। वे पुष्प, माला, फल, पत्ती तथा शाली से सजाये जाते थे। सडको तथा चतुष्पथ का उल्लेख मिलता है।

वितस्ता माहात्म्य में सेतु अर्थात् पुल का उल्लेख आता है। परन्तु पुल की शैली तथा प्रकार पर कोई प्रकाश नही पडता।

नीलमत प्रतिमा वनाने का उल्लेख करता है। मूर्तियाँ पाषाण, मृण, स्वर्ण, रजत, ताम्र, कास्य, दारु, वालुका, ग्रास तथा घृत की वनायी जाती थी। विष्णु की शयन मूर्ति का उल्लेख मिलता है। विष्णु की चतुरानन मूर्ति तथा आयुध पुरुष का वर्णन मिलता है।

चित्रकला का प्रचार था। बुद्ध जन्म के दिन चैत्य सुन्दर चित्रकारियो से सजाये जाते थे। चित्र वस्त्र, भूमि तथा भित्ति पर वनाये जाते थे। भूमिशोभा अर्थात् भूमि पर चित्र वनाना खूब प्रचलित था।

नीलमत में परिधान का उल्लेख—वस्त्र, अम्वर, वासा, वसन, सवित, चीनाशुक, कम्बल तथा प्रावरण रूप में मिलता है। चीनाशुक चीन से आयात किया रेशमी वस्त्र था। प्रावरण का महाभारत में भी उल्लेख मिलता है। पाणिनि तथा कौटिल्य को भी इसका ज्ञान था। कौटिल्य इसे प्रावरक कहता है। नये वस्त्र के लिये 'अहत' शव्द का प्रयोग किया गया है। श्रमणो के चोवर तथा बिस्तर के चादर का भी वर्णन नीलमत करता है। उद्वर्तन, उत्सादन तथा अनुलेपन का श्रृगार के प्रसग में वर्णन किया गया है।

भोजन मे सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों का वर्णन मिलता है। शाक में सभी सब्जियो तथा शस्य में सभी अन्न पदार्थों का समावेश हो जाता है। मास भोजन का भी उल्लेख मिलता है। विष्णु के पाँच दिन पूजा के अवसर पर मास भोजन निषेध किया गया है। एक स्थान पर विष्णु पूजा के प्रसंग में वलि का उल्लेख किया गया है। पिशाच, चन्दोदेव तथा भद्र काली को आमिष प्रसाद चढाया जाता था। सुरापान तथा असुरापान दोनो का उल्लेख मिलता है।

राज्य की सात प्रकृति मानी गयी है। नीलमत में स्वामी तथा राष्ट्र की प्रकृति पर ही प्रकाश डाला गया है। राजा के दैवी सिद्धान्त को नीलमत मानता है। उसे धर्म तथा राजशास्त्र के अनुसार व्यवहार करने का आदेश देता है। नीलमत मन्त्रियो का उल्लेख करता है। परन्तु उनके कर्तव्याकर्तव्य पर प्रकाश नही डालता।

नीलमतपुराण सेना तथा युद्ध के प्रकार तथा सघटन पर प्रकाश डालता है। चतुरग वल में, पदातिक, अश्वोराही, गज तथा रथ सेना थी। युद्ध नियम के सम्बन्ध में नीलमत विस्तृत वर्णन उपस्थित करता है। वालक राजा युद्ध मे भाग नही ले सकता था। युद्ध क्षेत्र में भयभीत तथा भागते हुए शत्रु पर प्रहार वर्जित था। पराजित राजा के राज्य का अपहरण नही किया जाता था। उसके उत्तराधिकारी को राज्य वापस कर दिया जाता था। सन्तानहीन गर्भवती रानी अपने पति के सिंहासन को ले सकती थी। कश्मीर मे राजतन्त्र था तथापि उसमे लोक तन्त्र का अश दिखायी देता है। राजाविहीन नगर के यात्रोत्तव मे प्रधान सव सस्कार तथा राजोचित कार्यो को करता था। राजा के वार्षिक अभिषेक के समय गणमुख्य, वारमुख्य, पौरमुख्य का उल्लेख आता है। गणमुख्य गणराज्य के मुखिया थे।

नीलमत पुराण कश्मीर के धार्मिक सम्प्रदाय तथा मतो का उल्लेख करता है। यह मत-मतान्तर वैदिक देवताओ को केन्द्र मानकर चलते थे। बौद्ध भी भिन्न धर्म के स्थान पर एक सम्प्रदाय माना जाता था। मुख्य सम्प्रदाय, विष्णु, तथा उसके अवतारों को लेकर चला था। नील मत में मत्स्य, कूर्म, हस, अश्वशिर अर्थात् हयग्रीव, नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण का वर्णन मिलता है। राम नवमी पर ब्राह्मण तथा बुद्ध जन्म पर शाक्यो की पूजा का विधान है किन्तु कृष्ण जन्म तथा तत्सम्बन्धी उत्सव का उल्लेख नीलमत मे नहीं है। प्रतीत होता है कि कृष्ण को अवतार प्रारम्भ में नही माना गया था। दूसरा सम्प्रदाय शैव था। नीलमत

पुराण शिव को त्रिमूर्ति मे एक मानता है। उमा को वह शिव से भी अधिक महत्त्व देता है। वितस्ता का रूप उमा कश्मीर मे धारण करती है। दुर्गा तथा शारदा की पूजा का भी विशेष महत्त्व था। शिवमत के साथ गणेश, स्कन्द, शाख, विशाख, नैगमेश, की पूजा का भी विधान किया गया है।

विष्णु तथा शिव मत के अतिरिक्त ब्रह्म, वरुण, अग्नि, रेवत, यम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, बलदेव, चन्दो देव, आदित्य, वसु, साध्य, विश्व देव, एवं मरुत की उपासना तथा पूजा देवता स्वरूप मान कर की गई है। लक्ष्मी, उमा के अतिरिक्त सरिता देवियाँ यथा वितस्ता, विशोका, त्रिकोटि, हर्षपथा, तथा चन्द्रावती क्रमश उमा, लक्ष्मी, अदिति, शची, एव दिति की रूप मानी गयी है।

नीलमत बुद्ध को विष्णु का अवतार मानता है। वैशाख मास में बुद्ध जन्मोत्सव मनाने का विधान करता है। बुद्ध जन्म के समय चैत्य तथा शाक्यो के स्थानो को चूना पोत कर सफाई कराकर दीवालो को चित्रकारी से सजाना चाहिए। गरीबो को दान, तथा भोज्य पदार्थों को चढाना चाहिये। उस दिन बुद्धप्रतिमा को पवित्र सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिए। अन्य पुराणो तथा नीलमत पुराण के बुद्ध आदि मे अन्तर है। अन्य पुराण बुद्ध को अवतार मानकर भी उनके मत से लोगो को विरत होने के लिये प्रेरित करते है। परन्तु नीलमत उनके मत का आदर कर उनकी उपासना की विधि प्रस्तुत करता है। कश्मीर मे भी कल्हण के काल तक विचारो मे अन्तर पड गया था। क्षेमेन्द्र, वरदराज, कल्हण एवं जयरथ के लेखो मे बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म के विरोधी रूप में चित्रित किया गया है।

नाग पूजा का विशेष स्थान कश्मीर के प्रारम्भिक काल में है। मिश्र, यूनान, रोम, चीन, जापान, कोनीशियन तथा अरबो में इस पूजा का विधान मिलता है। नीलमत शिव को व्याल यज्ञोपवीती कहा है। वैष्णव मत ने भी नाग को भगवान् विष्णु की शय्या बनाकर स्वीकार किया है। विष्णु पुराण मे विष्णु को नाग का स्वामी कहा गया है। नीलमत में नाग देवता का अधिकार वर्षा, तूफान, तुषारपात पर था। वे नाग, सरोवर तथा तडागो में निवास करते हैं। उनकी पूजा का विधान विस्तृत रूप से नीलमत पुराण देता है।

नीलमत पुराण तत्कालीन कश्मीर के व्रत, उत्सव आदि का विस्तृत वर्णन करता है। उनमें अश्वयुज, कौमुदी, सुखसुप्तिका, देवोत्थान, नव संवत्सर महोत्सव, सप्तमी, मार्गशीर्ष पूर्णमासी, नव हिमव्रतोत्सव, अष्टमी त्रय, पौष पूर्णमासी, उत्तरायण, तिल द्वादशी, तारा रात्रि, श्रावण अमावस्या, चतुर्थय , माघ पूर्णिमा, महिमान, श्रावण द्वादशी, शिवरात्रि, द्वितीय महिमान, फाल्गुणो, राजनीस्नापन, कृष्यारम्भ, चन्दो देव पूजा, पिशाच चतुर्दशी, चैत्रामा, नव सवत्सर, श्री पचमी, चैत्र षष्ठी, चैत्र नवमी, वास्तु पूजा, चैत्र द्वादशी, मदन त्रयोदशी, पिशाच प्रयाण, इरामंजरी पूजा, अक्षय तृतीया, बुद्ध जन्म, वैशाख पूर्णिमा, यवाग्रायण, विनायकाक्ष तप , स्वाति योग, प्रस्वापन, वैश्वदेव पूजा, दक्षिणायन, रोहिणी संयोग, श्रावणी, कृष्ण जन्म, मघामावसी, भाद्रपद शुक्लकृत्य, श्राद्ध पक्ष, महानवमी, अगस्त्य दर्शन, नवान्नविधान, वरुण पचमी, अशोकिकाष्टमी, वितस्तोत्सव, चतुर्थीत्रितय, अश्वदीक्षा, हस्तिदीक्षा, भद्रकाली पूजन, गृहदेव पूजा, श्यामा देवी पूजा यात्रोत्सव है।

नीलमत में दर्शन का प्रसंगवश वर्णन मिलता है। उसमें सर्ग, त्रिभुवन, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, ऋतु, पच तत्त्व, महाभूत, प्रकृति, अनेक देवता वाद, एकेश्वर वाद, नरपशु रूप देव, आत्मवाद, विश्वदेवैवर्य वाद, अद्वैत वाद, पूर्वजन्म, कर्मकाण्ड, भक्ति सम्प्रदाय, आचार, शैव पाचरात्र आदि पर प्रकाश पडता है।

नीलमत के १३९६ छन्दो में १३५७ अनुष्टुप् छन्द है।

नीलमत पुराण मे मुख्य नागो किंवा जलस्रोतो अथवा चश्मो का वर्णन मिलता है। कश्मीर मण्डल के चतुर्दिशाओ मे स्थित दृक्पाल नागो तथा सहस्रो नागो के होने का उल्लेख किया गया है (जो० ९००-९०५)

लगभग ६० नदियो का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है वे कश्मीर तथा मद्रदेश दोनों क्षेत्रो की हैं

ज्ञात अपगा (अयुक) चन्द्रभागा (चिनाव) गोदावरी (गोदर पर्वत के समीप) गोतमी (गोमती ? वाराह पर्वत के समीप) हर्षपथा (आरपथ) अनन्त नाग के समीप वितस्ता में मिलती है। हिरण्या (कनकवाहिनी) इरावती (रावी) कालोदक (नुन्द कोल गगा सर से उद्‌गमित स्रोतस्विनी) कनक वाहिनी (कनकनी) कया (अभया-गगोद्‌भेद समीपस्थ) कौण्डिन्य-कौलिन्य (नौवन्धन समीपस्थ कौण्डिन्य सर से उद्‌गमित स्रोत) कृष्ण (कृष्ण गंगा) क्षीर नदी (वरसकुल) दूसरी मधुवती वन्दपोर का नाला है कुलेस गाँव के समीप उत्तर से ऊलर लेक में मिलता है। श्वेत गगा (एकमत में चित्ती नदी) मधुमती (पद्‌मती अल्बेरूनी कथित) माहुरी (मवुर) शयाला (हगल) सन्ध्या (सुन्दवदार) सरस्वती (कनकतोरी) सिन्धु, तौसी (तोही ?) निलप्रस्था (गाहुरो) उद्द (उद्ध पाणिनि तथा उर्ध्व वि० धर्मोत्तर पुराण) वशोका (विसाऊ) वितस्ता (झेलम)।

अज्ञात अश्वदुधान, भूर्जला, चन्द्रावती, चतुर्वेदी, चित्रपथा, देवहृत, देवकुल्या, देविका (देघ ?) धन्याधरणी, गगा, (कश्मीर की अनेक नदियो को गगा कहते है) गोनन्दी, कुलार्णी, कुमुनारी, भद्वी, मालिनी, मन्दाकिनी, मृग-मृगनन्दा, पालासा, परोष्णि, राहुला, रामह्रद, ऋषिकुल्या, समूला, सरसा, शान्दिली, शतशिला, शिलामा, सुधा, सुगन्धा, सुखा (सुकंग ?) तैलाला, त्रिकोटि, वैतरनी (एकमत है। सुपियान के अधोभागीय रामच्यार नदी है।) विश्वमित्र।

महापद्‌म सर अर्थात् उलर लेक का वर्णन नीलमत पुराण में मिलता है। उलर लेक के स्थान पर पूर्व काल में चन्द्रपुर नगर था। उसके जल में लोप अर्थात् जल में डूव जाने के पश्चात् उस स्थान पर उलर लेक वन गया। सम्भव है कि पुरातन चन्द्रपुर का समस्त नगर भूचालादि के कारण भूमिस्थ हो गया हो। भूमि नीचे दव गयी हो। इस प्रकार उस स्थान पर पानी भर कर सर का रूप ले लिया होगा। कश्मीर में भूचाल आना साधारण वात है। दो हजार वर्षो में भौगोलिक परिस्थितियो में वहुत कुछ परिवर्तन हो जाना सम्भव है।

पुराण में शिव, शंकर किंवा महादेव से सम्वन्धित तीर्थों का वर्णन वहुत मिलता है। अन्य देवताओ से सम्बन्धित तीर्थों का पर्याप्त उल्लेख है। किन्तु कश्मीर में शैव धर्म, शैव तन्त्र एव दर्शन का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण अत्यधिक तीर्थ तथा देवस्थानो का सम्वन्ध शिव, उनके गण तथा शक्तियो से है।

भूतेश्वर माहात्म्य का उल्लेख नीलमत में आता है। इस माहात्म्य की गाथा में हरमुकुट पर्वत के अनेक सरोवरो, तीर्थों तथा पवित्र स्थानो का वर्णन है। यह पर्वत शिव तथा पार्वती के तीर्थो से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त पवित्र माना गया है। कश्मीर के धार्मिक जीवन में अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व इस पर्वत को दिया गया है।

नीलमत पुराण में कश्मीर के पर्वतो का वर्णन है। हिमालय के अतिरिक्त वहिर्गिरि, (चुल्ल हिमवन्त), अन्तर्गिरि (महा हिमवन्त) उपगिरि (सेवालिक तराई) उशीरक (द्वार देश समीपस्थ दक्षिण कश्मीर)। यह पर्वत विनय वर्णित उशीरध्वज, दिव्यावदान का उशीर गिरि, पाली साहित्य का उशीनर, कथासरित-

सागर का उशीनर गिरि, तथा नीलमत का उसीरका हैं। कनखल के उत्तर एक पहाड को उशीरगिरि कहते हैं। पंजाब के उत्तर पीरपंचाल पर्वत श्रेणी है। वह दक्षिणी तथा दक्षिणो पश्चिमी कश्मीर की सीमा हैं। क्षेमेन्द्र उसे पचाल धारा कहता है। नीलमत मे यह शब्द नही है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश शिखर का उल्लेख है। तीनो बनिहाल पास के पश्चिम हैं। उनमें नौ बन्धन सबसे ऊँचा शिखर हैं। यही मत्स्यावतार में विष्णु ने नाव बाँधा था।

हरमुकुट किंवा हरमुण्डपर्वत हरमुख शिखर उत्तरी कश्मीर का है। वह सत्तरह हजार फिट ऊँचा है। उत्तर मानस काश्मीरी गंगा का स्रोत है। इस पर्वत के उत्तर पूर्व पाद में हिमानी के समीपस्थ है। नन्दि क्षेत्र तथा भूतेश्वर के तीर्थ यही है। नन्दि पर्वत नुन्द लोक (कालोदक) को हिमानी से भरता है। भरत गिरि हरमुकुट के दक्षिण पूर्व है। अमरेश्वर हिमाच्छादित अमरनाथ है। महादेव गिर धुर पश्चिमी अत्यन्त उच्च शिखर है। वह सिन्धु उपत्यका तथा पूर्वीय पर्वत माला के मध्य है। इन्द्र कील तथा गौरी शिखर का नीलमत में वर्णन है। एक मत है। कश्मोर के पश्चिम किसी पर्वत का वह नाम है शारदी के समीप।

नीलमत पुराण तीर्थों तथा पवित्र स्थानो का वर्णन करता है। मुख्य उनमें निम्नलिखित है

ज्ञात

एल पत्र नाग (विचार नाग ग्राम समीपस्थ) अक्षपाल नाग (अचवल), अनन्त नाग, बहुरूप (वीरु ग्राम—पीरपंचाल पर्वत की दिशा में) भद्र काली (वदरकल ग्राम क्रमसर से चार मील दूरस्थ) भेडा देवी (बुदन्नार श्रीनगर से पश्चिम, गंगोद्भेद तीर्थ) भीमा देवी (फाक परगना में, डलतट पर ब्रान ग्राम) भूतेश्वर (हरमुकुट पर्वत बुतसर) चक्रधर तीर्थ (तस्कदर उद्र), चीर मोचन=चीर प्रमोचन (प्रंग ग्राम) देवसर (छोटा सर, दक्षिण पूर्व उत्तर परगना) गणेश (गनेश बल लिदर नदी दक्षिण तटस्थ) गौतम नाग (अनन्त नाग के उत्तर) हंसद्वार (मुन्द प्रस्थ गिर केसमीप। एक मत इसे हुंजा मानता है) हस्तिकर्ण नाग (गाँव बाग होम अर्थात् मरहोम के दक्षिण पूर्व दो मील पर) इष्टिका पथ (लार परगना में राम रादन गाँव) ज्येष्ठेश (हरमुकुट पर्वत मूल भूतेश्वर वशिष्ठाश्रम बंगथ समीपस्थ) कपटेश्वर, (कोथर ग्राम) कपिल तीर्थ (कपटेश्वर समीपस्थ ?) कालोदक (नुन्दकोल) कोटि तीर्थ (बारहमूला समीपस्थ कोटिसर) खण्ड पुच्छ नाग (अनन्त नाग समीपस्थ खनबल) लोकपुण्य, (व्रिग परगना में लरिकपुर समीपस्थ नाग) लोवार (लिवर ग्राम—व्रिजव्रोर से १० मिल उत्तर-पूर्व स्थित) महापद्म (उलर लेक) मानस (मनसा बल) नन्दन नाग। (नन्दन सर—दरहल पास समीपस्थ) नन्दिकुण्ड, नन्दि पर्वत, नन्दीश्वर (नन्दिक्षेत्र—हरमुकुट पर्वत पाद में) नारायण स्थान (नरस्तान ट्राल घाटी में) पचहस्त (पजथ ग्राम—दिवसर परगना में) पाण्डव तीर्थ (पाण्ड चक—श्रीनगर से दक्षिण-पूर्व पाच मील स्थित) पुष्कर (पोस्कर-फिरोकपुर तथा कग मध्य, पहाडी मूल की पूर्व दिशा में) राम तीर्थ (रामुह ग्राम) स्वयम्भू (मच्छीपुर परगना में सुयम ग्राम) सोदर नाग (सुदर बल) तक्षक नाग (जयवन स्रोत समीपस्थ जेवन स्थान) तारा सर (तर सर सिन्ध उपत्यका ?) त्रिपुरेश (त्रिफर गाँव डल से तीन मील दूरस्थ) बराहमूला (बारह मूला) वशिष्ठाश्रम (वंगथ) वासुकी नाग (एक नाग पंचहस्त उपत्यका के दक्षिण या भद्रव ?) (विजयेश्वर बिजन्नार)

अज्ञात :

चन्द्रसर (सम्भवत· सिन्ध नदी तथा कश्मीर के मध्य ऊँचे पर्वत पर है)

भारतवर्ष के निम्न लिखित तीर्थों का उल्लेख नीलमत में प्राप्य है :

गंगा द्वार, कुशावर्त, कुब्जाम्र, नील पर्वत (कनखल), नैमिसार, हयशिरष, प्रयाग, वाराणसी, गंगा सागर संगम, नदी वरुणा, असी, ब्राह्मणी, वैतरणी, महानदी, तमसा, शोण, सरयू, दक्षुमती, शतकुम्भा, वेदस्मृति, केदार, बदर, भृगुतुग, यह सब तीर्थ पूर्व, पूर्व दक्षिण, तथा उत्तर पूर्व वर्तमान कनखल के हैं। पचनद, कुरुक्षेत्र, पृथूदक, प्रभास, पुष्कर, रैवत, सिन्धु सागर संगम, कनकावल के पश्चिम दिशा में स्थित हैं।

शिप्रा, शाकम्भरी, विशाला, गोकर्ण, अगस्त्याश्रम, सुवर्ण, नर्मदा, रुद्रकोटि, सुगन्धा, गोदावरी, ताम्रवर्णी, उत्पलावती, तथा कावेरी कनखल के दक्षिण स्थित है।

शिवकी वाराणसी से हरमुकुट की यात्रा के प्रसग में नीलमत पुराण में, प्रयाग, अयोध्या नैमिष, गंगाद्वार, स्थानेश्वर, कुरुक्षेत्र, शतद्रु, विपाशा, तथा इरावती का उल्लेख मिलता है।

कपटेश्वर माहात्म्य के सम्बन्ध में कुछ सामग्री नीलमतपुराण से प्राप्त होती है। कपटेश्वर वर्तमान कोथर ग्राम है।

शिव तथा शैवमत से सम्बन्धित तीर्थों के पश्चात् विष्णु भगवान् से सम्बन्धित तीर्थों तथा देव-स्थानो का वर्णन मिलता है। काश्मीर में शिव माहात्म्य तथा शिव एव पार्वती के संदर्भ में जितनी अधिक सामग्री, साहित्य तथा लेख मिलते है, उसकी अपेक्षा भगवान् विष्णु के विषय में स्वल्प साहित्य, सामग्री तथा लेख प्राप्य हैं।

नीलमत पुराण के प्राप्य सस्करण के अनुसार प्रकट होता है। उसके रचना अथवा सस्करण के समय कश्मीर में शैव मत तथा शिव पूजा का विशेष प्रचार था। शिव तथा पार्वती सम्बन्धी अनेक व्रत, उपवास, उपासना तथा पूजा का प्रकार कश्मीर में प्रचलित था। विष्णु पूजा का महत्त्व जनता में शिव के पश्चात् था। प्रारम्भ से ही शिव भक्ति तथा उपासना कश्मीर में अधिक लोकप्रिय भी है। इससे प्रकट होता है। शिव उपासना तथा तत्सम्बन्धी गाथाओ का प्रमुख स्थान कश्मीरी जन जीवन में था। उनका जीवन शैव दर्शन तथा तन्त्र द्वारा प्रभावित था। (११६९-१२४८)

कश्मीर के तीर्थों का विस्तृत वर्णन नीलमत पुराण के श्लोक सख्या १२७१-१३७२ में किया गया है। इनका अध्ययन कश्मीर के तत्कालीन भौगोलिक ज्ञानवर्धन निमित्त विशेष महत्त्व रखता है। तीर्थों, उनके स्थानीय महत्त्वो और उनसे सम्बन्धित गाथाओ एवं जनश्रुतियो तथा उनके माहात्म्यो का विशद वर्णन सम्पूर्ण नीलमत पुराण में मिलता है।

नीलमत पुराण के वर्णनो तथा भौगोलिक स्थितियो के कारण तीर्थों तथा उल्लिखित स्थानो का पता निश्चयात्मक ढग से लगाया जा सकता है। नीलमत पुराण के भौगोलिक वर्णनो के आधार पर आधुनिक विद्वानो ने अनेक स्थानो का सफलतापूर्वक पता लगाया है। तीर्थों तथा देव-स्थानो के मूल नाम तथा उनकी भौगोलिक स्थिति के भूल जाने का कारण कश्मीर की ९० प्रतिशत जनता का हिन्दू धर्म त्याग कर मुस्लिम धर्मावलम्बी हो जाना है। उनकी दृष्टि में इन तीर्थों तथा देव-स्थानो का कोई धार्मिक महत्त्व नही रह गया था। इस समय शायद ही कोई प्राचीन देव-स्थान तथा तीर्थ होगा जो मुस्लिम जियारत, मसजिद या कब्रिस्तान में परिणत न कर दिया गया हो अथवा उसके पास जियारतें आदि न बना दी गयी हो। इसमें मुसलमानो को दोष नही दिया जा सकता। उन तीर्थों की कोई खबर लेने वाला नही था। उनकी पूजा, उपासना, मरम्मत आदि समाप्त हो गयी। वे काल के थपेड़ो में नष्ट होने लगे। उनका इतिहास लोग भूल

गये। उनसे सम्बन्धित गाथाओं का लोप हो गया। इनके स्थान पर नए धर्म के इतिहास, गाथा तथा कथानको का प्रचलन हो गया। खण्डित मूर्तियों, मन्दिरो, देवस्थानो, तीर्थों के उपेक्षित ध्वसावशेषो, उनके पत्थरों तथा ईंटो का महत्त्व उनके इतिहास के इतिवृत्त के साथ खण्डहरो के ईंट-पत्थरो से अधिक नही रह गया। इन्हें नवीन धर्म ग्रहण करने वाली जनता अपने नवीन जियारतो, मजारो, मस्जिदो तथा मकानो में लगाने लगी।

सिख तथा डोगरा काल में पुराने तीर्थों, देवस्थानो आदि को पुन: जानने की इच्छा हुई। इस दिशा में आधुनिक विद्वानों तथा अन्वेषको ने स्तुत्य प्रयास किया है। प्राचीन पुस्तकें पढी जाने लगी। उनके आधार पर तीर्थों तथा देवस्थानो की खोज होने लगी। ध्वंसावशेषो, खण्डित मूर्तियो, मन्दिरो के खण्डहरो को अन्वेषक विद्वान् खोजने लगे। इस विषय पर साहित्य का निर्माण होने लगा। लोकतन्त्र की स्थापना के पश्चात् तथा उसके पूर्व उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में खनन कार्य तथा वैज्ञानिक ढंग पर अध्ययन आरम्भ हुआ। इस समय केन्द्रीय तथा राज्य सरकार दोनों द्वारा सचालित पुरातत्त्व विभाग कार्य कर रहा है। कश्मीर के इतिहास पर नवीन प्रकाश पडा है। उनका यथास्थान वर्णन किया गया है।

नीलनाग के जल स्रोत अर्थात् (वीर नाग) के भौगोलिक चित्रण से आरम्भ होकर बारहमूला की गहरी घाटी में नीलमत पुराण का आख्यान समाप्त होता है।

नीलमत पुराण पर डाक्टर वेद कुमारी द्वारा काशी विश्व विद्यालय की थीसिस नीलमत पुराण द्रष्टव्य है। उसमें आलोचना के साथ अंग्रेजी मे अनुवाद भी दिया गया है। अनुवाद के अतिरिक्त थीसिस का शेष भाग पुस्तकाकार रूप में जम्बू तथा कश्मीर एकोडेमी आफ आर्ट कलचर एण्ड लैंगवेज श्रीनगर जम्मूसे सन् १९६८ में प्रकाशित हो चुका है।



परिशिष्ट ख

हिमालय

(तरग १ २५ पृष्ठ २४)

वैदिक साहित्य में हिमालय का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद—१० १२१ ४, अथर्ववेद—३ ९५:३, ४ ९ ९, ५ ५ २-८, ५ २५ ७, ६ २४ १, १२ १ १, १९ ३९ १, २४ ३०, २५ १२, ऐतरेय ब्राह्मण ८ १४ । तैतिरीय सहिता ५ ५ ११ १

प्राय सभी पुराणो में हिमालय का वर्णन प्राप्य है। मुख्यत. निम्नलिखित स्थल द्रष्टव्य है भागवत पुराण १:१३ २९, १ १३ ५०, मत्स्य पुराण १२० कूर्म पुराण, पूर्वभाग अध्याय १२, कालिका पुराण १४ तथा ५१, वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड ५३ तथा ५६ श्लोक १ ।

नीलमत पुराण में हिमालय, हिमाचल, हिमवान, हिमवन्त तथा हिमकूट शब्दो का उल्लेख कभी कभी समानार्थक और कभी भिन्न अर्थो में किया गया है। उनको यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा।

हिमालय ·

कुरुष्व लांगलेन त्वं विदार्याद्य हिमालयम् ।
इद सरोवर दिव्य निष्तोय शीघ्रमेव तु ॥ 165-166 = २१८ ।

× × ×

इति तथ्यं सती ज्ञात्वा हलमार्गात्तु सिन्धुगा ।
हिमालयान्न प्रययौ पतितात्मा परं नदी ॥ 299 = ३९८

समुद्ररूपस्य हरस्य भार्या हिमालयस्याद्रिपतेस्तनूजाम् ।
सुस्वादुतोयां ऋषिवर्यजुष्टा ता त्व पवित्रां प्रणमस्व राजन् ॥ 1388 = १६०६ ।

× × ×

हिमाचल .

नीलाम्बर काचनबद्धमौलि. सम्पूज्यमानस्त्रिदशै. समस्तैः ।
विदारयामास स लाङ्गलेन हिमाचल शैलवर पृथिव्याम् ॥ 168 = २२०

× × ×

—कुटिलैस्तरगै. । हिमाचलामैर्गगने स्पृशद्भिः
हिमायले तु षण्मासान् स सदा वसते सुखी ।
अद्य प्रभृति षण्मासान्तस्येह वसतिर्मया ॥ 210 = २८३

× × ×

तती वेगेन महता सीमन्तमिव कुर्वती ।
हिमाचलस्य प्रययौ तोयशैलोपमा नदी ।। 138 = ४१९

हिमवान् तथा हेमकूट :

एकार्णवं जगतत्सर्वं तदा भवति भूपते ।
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः ।। 35 = ५५-५६

× × ×

हिमवत् ·

तत्र मद्रेषु तीर्थानि सन्ति पुण्यानि मानद ।
तथा च पर्वतश्रेष्ठे हिमवत्यचलोत्तमे । 102 = १४५

× × ×

स्थावरत्वमनुप्राप्ताहिमवत्यचलोत्तमे ।
बहुधा सा विभक्तांगी निकुम्भे निर्गते बहि ।। 166 = ७९१

× × ×

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्तानुज्ञास्तत. स्वयम् ।
हरमुकुमितितिख्यातं शृङ्ग हिमवतः शुभम् ।।
जगाम सहसा नन्दी तपसे कृतनिश्चय ॥ 1047 = १२३०-१२३१-१२३२

× × ×

रम्ये हिमवत पृष्ठे एवमेतीति चाब्रवीत् ।
ऋषेर्नियोगं काशाप देव्या राज्ञया प्रचोदिता ॥ बृहद्देवता ४ . ७५,

हिमवान :

यस्मिंस्तु वासरे विप्र प्रचयं पतते हिमम् ।
तत्र पूज्यस्तु हिमवान् हेमन्तशिशिरावुभौ ॥ 461 = ५७९

हिमवान्-हेमकूट :

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः ।
श्वेतश्च शृगवान् मेरुमल्यिवान् गंधमादनः ॥ 516 = ७१७ ७१८

× × ×

महाभारत

सभा पर्व (२८ ६) में हिमालय, हिमवान, हेमकूट आदि शब्द हिमालय के लिए व्यवहृत किये गये है । हिमवान शब्द का वर्णन हिमालय पर्वत के अधिष्ठातृ-देवता के रूप मे किया गया है । हेमकूट उत्तर दिशा का एक पर्वत कहा गया है । इसको पार कर अर्जुन ने हरिवर्ष मे प्रवेश किया था ।

पाण्डवो के पिता पाण्डु कालकूट तथा हिमालय पर्वत का अतिक्रमण कर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे थे । भगवान् परशुराम द्वारा क्षत्रियो के संहार से रक्षा निमित्त भृगुवंशीय स्त्रियो ने हिमालय पर्वत में

आश्रय ग्रहण किया था। अर्जुन ने हिमवान को जीतकर धवला गिरि पर अपना शिविर स्थापित किया था। (सभा पर्व २७ २९)

कुलिन्द राज सुबाहु का राज्य हिमालय के समीप था। (७८ १४)।

कर्ण ने हिमालय पर्वत के समस्त राजाओ को पराजित किया था। (वन पर्व २५४ ४-६)। हिमालय छ वर्षपर्वतो में पूर्व से पश्चिम विस्तृत एक वर्ष पर्वत है। (भीष्म पर्व ६ ३-५)। हिमालय पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उपमन्यु के दिव्य आश्रम को देखा था। (अनुशासन पर्व १४ ४३-४५)। महाप्रस्थान काल में पाण्डवो को मार्ग में हिमालय मिला था। तत्पश्चात् आगे बढने पर उन्हें वालुकार्णव मिला था (महाप्रस्थानिक पर्व १-२)।

वहिर्गिरि तथा अन्तर्गिरि का उल्लेख आता है। वहिर्गिरि 'लेसर' हिमालय अर्थात् जहाँ से चढाई आरम्भ होती है, उसे कहते हैं। इसमें मसूरी, नैनीताल, धर्मशाला, श्रीनगर के भूखण्ड हैं। इसे चूल हिमवन्त भी कहा जाता हैं। वहिर्गिरि की सज्ञा एक पर्वतीय प्रदेश से भी दी गयी है। इस प्रदेश को उत्तर दिग्विजय काल में अर्जुन ने जीता था। सभा पर्व २७ ३ इन प्रदेशो की गणना भारतीय जनपदो में की गयी है। भीष्म पर्व ९ ५०

अन्तर्गिरि मध्यवर्ती हिमालय है। अग्रेजी में इसे ग्रेट सेन्ट्रल हिमालय कहते हैं। इसके अन्तर्गर किंचिनचगा, धवलागिरी, गौरीशकर, नन्दादेवी तथा नगा पर्वतादि तथा उनके विभिन्न शिखर है। इनका सम्बोधन महा हिमवन्त नाम से भी किया गया है।

उपगिरी हिमालय के तराई के क्षेत्र को कहते है। महाभारत तथा अष्टाध्यायी में हिमालय की पर्वतीय शाखा का नाम उपगिरि दिया गया है। वह सैवालिक पर्वतमाला है। (अष्टाध्यायी ४ २ ११२)

योगिनी तन्त्र (१ १, १ १२, १ · १६) में हिमालय का उल्लेख मिलता है। हिमालय तथा कैलास को मेरु पर्वत के दक्षिण कहा गया है। हिमालय तथा पारियात्र पर्वतो के मध्य के देश को 'मध्यदेश' की सज्ञा दी गयी है। वह मध्यदेश पूर्व में आसाम तथा मणिपुर तक चला गया है।

मार्कण्डेय पुराण हिमालय का वर्णन करता है। हिमालय धनुषाकार एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला है। पश्चिम में अरब सागर और सिन्धु तथा पूर्व में बगाल की खाडी तक फैली भारतीय सीमा पर स्थित अडिग पर्वतमाला को हिमालय कहना होगा। हिगुल, हिन्दुकुश, कराकोरम, शैवालिक आदि सभी पर्वतमालाएँ हिमालय के अन्तर्गत आ जाती है। इस पुराण के अनुसार कैलास की स्थिति हिमालय के उत्तर तथा उसके पूर्व-पश्चिमीय विस्तार के मध्य स्थान पर पडेगा। भारत के मानचित्र द्वारा यह सत्य मालूम होता है। पुराणकारो को भारतीय भूगोल का कितना सच्चा ज्ञान था इसका पता चलता है।

मत्स्य पुराण (१२० २) में कैलास को एक प्रकार से हिमालय में सम्मिलित किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार हिमालय का विस्तार ७५० कोस कहा गया है। कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मानदण्ड वताया है—

> अस्त्युत्तरस्या दिशि देवात्मा
> हिमालयो नाम नगाधिराजः।
> पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
> स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

कौटिल्य ने हिमालय को चक्रवर्ती क्षेत्र के अन्तर्गत माना है। हिमालय से समुद्र तक के देश पर शासन करने वाले को चक्रवर्ती राजा तथा उसका क्षेत्र कहा गया है (१९ १) राजशेखर ने काव्य मीमासा में हिमवत से समुद्र तक के देश पर शासन करने वाले को सम्राट् कहा है। हिमालय का वर्णन प्राचीन भारतीय सीमा का निर्धारण करना है।

कुमार सम्भव में कालिदास ने हिमालय को भारत की उत्तरीय सीमा पर रखा है। पूर्व तथा पश्चिम दिशाओ मे उसे समुद्र तक विस्तृत होना कहा गया है। भारतवर्ष तथा हरिवर्ष के मध्य हिमालय की स्थिति मानी गयी है। हेमकूट को हिमालय के दक्षिण में भी कहा गया है। एकाध लेखको ने किंपुरुष वर्ष को हेमकूट माना है।

बौद्ध ग्रन्थो मे हिमालय का वर्णन मिलता है। अगुत्तर निकाय, संयुक्त निकाय, हिमवंत सुत्त, मक्कट सुत्त, पठम-पव्वत्तुपमा सुत्त में हिमालय को पर्वतराज कहा गया है। मैनाक पर्वत कैलास के समीप हिमालय मे स्थित था। दद्दर, धम्यक, चण्डगिरी, कुलिन्द, विस्म पर्वत हिमालय के अन्तर्गत थे। कदम्व, कुक्कुट, कौशिक, गौतम, पद्म, भारिक, लम्बक, वस्सभ, सयग, शोभित, कैलास, केदार, हिमालय पर्वत के भाग कहे गये है।

अलबेरुनी मेरु तथा निषध पर्वतो को हिमालय के अन्तर्गत मानता है। बौद्ध ग्रन्थ अपदान म कदम्व, कुक्कुट अथवा कुकुट, भूतगण, कौशिक, गौतम, पदुम, भारक, लम्बक, वसभ, सयग, शोभित को हिमालय में रखा गया है।

हिमालय को तीन हजार योजन वर्ग मिलो मे विस्तृत तथा चौरासी हजार शिखरो से मण्डित कहा गया है।

हिमालय के अन्तर्गत महापद्म सर अर्थात् कश्मीर के उलर लेक का वर्णन बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय करता है। क्षुद्र हिमालय मे महापद्म ह्रद तथा महा हिमवन्त मे भी एक सर का होना मिलता है। उलर लेक साढे बारह वर्ग मील विस्तृत है। उलर का संस्कृत मूल शब्द उल्लोल है। उल्लोल का अपभ्रश उलर हो गया है। उल्लोल का अर्थ लहर होता है। उलर में लहरो का आरोह तथा अवरोह वायु स्पर्श द्वारा सुन्दर लगता है। विशेषत प्रात तथा सायकाल जब गगन में किंचित् अरुणाई सहित नीलिमा रहती है। उस समय किसी शैल बाहु पर बैठकर प्रकृति की इस अनुपम शोभा के नैसर्गिक सौन्दर्य को निरखने में विचित्र अनुभूति होती है।

हिमालय का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थो में निम्नलिखित स्थलो पर विशेष रूप से मिलेगा। पाली साहित्य में हिसवा एव हिमवन्त हिमालय का नाम दिया गया है।

परमत्थ जोतिका अध्याय १, २, समत्त पासादिका भाग १, विसुद्धि मग्ग ७, जातक भाग, ४, ६; कुणाल जातक ५ ५०१, ५०२ हि०, महा विस्सतर जातक ६ ३३६, ५३८ हि०, चेतिय जातक, धम्मपदट्ठ कथा भाग १, २, ३, ४, महावश १ १८ तथा ५ २४ हि०, मिलिन्द प्रश्न पृष्ठ ३४७-६४८ हिन्दी, पवज्जा सुत्त दीघा निकाय पृष्ठ ३६ हि०, अट्ठ सालिनी (देवनागरी) पृष्ठ १४, थेर गाथा २ ' ३८, जैन ग्रन्थो मे उत्तराध्ययन सूत्र ११ २७ पृष्ठ ४९, मनोरथ पुराण २ ७५९, द्रष्टव्य हैं।

हिमालय की दस मुख्य नदियाँ हैं। वे हैं—गंगा, यमुना, अचिरवती, सरयू, मही, सिन्धु, सरस्वती, वेत्रवती, वीतंसा (वितस्ता), चन्द्रभागा।

मिलिन्द प्रश्न के अनुसार ५०० नदियाँ हिमालय से और निकलती हैं। उनमें उक्त दस नदियाँ मुख्य हैं। पुराणो में कुछ और प्रसिद्ध नदियो का वर्णन है जो हिमालय से निकलती हैं। यथा—शतद्रु, इरावती, कुहु, गोमती, धूतपापा, वाहुदा, निशचीरा, गण्डकी, कौसकी (मार्कण्डेय पुराण ५७ १६१८)।

बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार हिमालय मे सात वडे सरोवरो का वर्णन मिलता है—अनतप्त दह (मानसरोवर), कण्ण मुण्ड, रथकार छद्दन्त, कुणाल मन्दाकिनी, तथा सीहप्प पातक। कहा गया है कि उक्त सरोवरो का जल कभी ग्रीष्म ऋतु में भी तप्त नही होता।

बौद्ध ग्रन्थो में मानसरोवर को कैलास तथा त्रिकूट पर्वतो से सम्वन्धित किया गया है। वौद्ध ग्रन्थो में हिमालय की विभिन्न श्रेणियो का उल्लेख मिलता है—अस्सकण्ण गिरि, इसिधर, उदक, रजत, कचन, करवीक, कालगिरि, चित्तकूट, मणिदस्स, युगन्धर, सुरियपस्स, सुदस्सन। सेत अर्थात् श्वेत पर्वत को हिमालय के शिखरो मे श्रेष्ठ कहा गया है। अपदान मे लम्वक, गोतम, वसभ, सीमित, कोसिक, कदम्व, भरिक आदि को हिमालय का पर्वत शृग कहा गया है। चित्तकूट पर्वत को चित्रकूट नही समझना चाहिए। चित्तकूट पर्वत हिमालय के अन्तर्गत है। चित्रकूट विन्ध्य पहाडी का एक क्रम है। महावश में हिमालय का उल्लेख भगवान् के धातु भरे पात्र के सन्दर्भ मे आया है। हैमवत वौद्धो का एक सम्प्रदाय है। हिमालय को गोद में कश्मीर शिशु की तरह स्थित है इस पर प्रकाश डाल चुका हूँ। आधुनिक अर्थात् वीसवी शती के कश्मीर तथा कल्हण काल के कश्मीर की भौगोलिक सीमा तथा स्थिति मे भिन्नता है। आधुनिक कश्मीर तथा हिमालय के साथ क्या सम्वन्ध है इस पर कुछ लिखना आवश्यक है। कालक्रम के अनुसार देशो की भोगोलिक स्थिति उनके राजनीतिक स्थितियो के साथ परिवर्तित होती रही है। हिमालय के पर्वतो मे कचन पर्वत, मणि पर्वत, हिगुल पर्वत, अजन पर्वत, सानु पर्वत, फलिक पर्वतो का उल्लेख मिलता है। (कुणाल जातक पृष्ठ ५०१)। हिगुल पर्वत वलूचिस्तान में समुद्र तट से २० मील दूर अघोर अथवा हिगुल नदी से आरम्भ होता है। इसे हिगुल तथा हिगुला कहते है।

शिखरो में मुख्य उल्लेख नगन पर्वत, तुमकुम, नन्ददेवी, त्रिशूल, नन्दकोट, दूणा गिरि, वद्रीनाथ, केदार नाथ, नील कठ, गगोत्तरी, श्रीकन्त प्रन्दर पच, गौरीशृग, काचन चिगा, नमच पखा, मिलता है। गौरीशृग किचिन चिगा तथा धवलागिर सबसे ऊँचे शिखर नेपाल में हैं।

परिशिष्ट 'ग'

वितस्ता

(तरग १:२८ पृष्ठ ५७)

वितस्ता नही को काश्मीरी भाषा मे व्यथ कहते है। वितस्ता शब्द का अपभ्रश व्यथ है। पुराकालीन पाश्चात्य लेखको ने वितस्ता का नाम 'वेदस्ता' भी दिया है। चीन के इतिवृत्त मे 'वितस्ता' नाम आता है। कश्मीर का एक नाम वितस्ता के आधार पर 'वैतस्तिका' है।

कहा जा चुका है कि ऋग्वेद में वितस्ता का उल्लेख है। प्राचीन यूनानी लेखको ने ईरानी लेखको के आधार पर वितस्ता का नाम 'हाइदसपेस' दिया है। पोलेमी ने 'बिदसपेस' नाम से वितस्ता का उल्लेख किया है।

पंजाब मे वितस्ता को झेलम कहते है। काश्मीरी पुरासाहित्य में यह नाम अज्ञात है। इसका मूल स्रोत मुसलिम लेखको के लेखो में मिलता है। अल्बेरुनी ने वितस्ता का नाम 'जेलम' दिया है। श्रीवर ने सुलतान शाह हैदर के पजाव के अभियान का वर्णन करते हुए झेलम शब्द को सस्कृत रूप देते हुए 'ज्यलमी' शब्द का प्रयोग किया है।

नीलमत पुराण मे श्लोक ३३५-३८१ तक वितस्ता की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण वितस्ता का अपर नाम वैतस्तिका देता है। (१.१६४)

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के सम्बन्ध में धारणा है कि वह कश्मीर में लिखा गया था।

महाभारत सभा पर्व में वितस्ता को कश्मीर तथा पजाब की नदी कहा गया है। वितस्ता वरुण की सभा में स्थित रहकर उनकी उपासना करती है। वरुण का स्थान उत्तर मे है। वितस्ता उत्तर की नदी है। (९ १९)

महाभारत वन पर्व में उल्लेख आता है। कश्मीर मण्डल में नागराज तक्षक का वितस्ता नामक प्रसिद्ध सुन्दर भवन है। इस नदी मे स्नान एवं पित्रो के हेतु तर्पण द्वारा मानव को वाजपेय यज्ञ का लाभ होता है। मनुष्य उत्तम गति प्राप्त करता है। (८२ ८९)

वितस्ता का जल सेवन भारत निवासी करते है। यहाँ संकेत है कि वितस्ता हिमालय से निकलकर भारत के प्रशस्त भूभाग मे प्रवेश करती है। भारतीय उसके जल से लाभ उठाते है। (महा० : भीष्म पर्व ९ १६)

कठिन उपवास, व्रत के पश्चात् तरंगमालिनी वितस्ता में सात दिन स्नान करने वाला मनुष्य मुनि तुल्य निर्मल हो जाता है। (महा० : अनुशासन २५ ७)

देवी पार्वती ने भगवान् शकर के प्रति स्त्री धर्म स्वीकार कर, जिनके विमर्श पर कार्य किया था, उनमे एक 'वितस्ता' भी थी। (महा० : अनुशासन . १४० · १८)

हरचरित चिन्तामणि के लेखक ने नीलमत पुराण की शब्दावली का प्रयोग किया है। वितस्ता को भगवती देवी पार्वती का रूप माना है। कथा है। पिशाचो के सम्पर्क द्वारा काश्मीरियो मे उत्पन्न पाप किंवा दोप के मोचनार्थ, भगवती पार्वती ने काश्मीर में वितस्ता का रूप धारण किया है। भगवान् शिव ने नील नाग के स्थान पर शूल द्वारा प्रहार किया। यह स्थान 'नील कुण्ड' है। उसे 'शूल घात' तथा 'वितस्तात्र' कहते हैं। प्रहार एक 'वितस्ति' अर्थात् एक बालिस्त लगभग १२ अगुल मिलकर जितना नाप होता था उतने परिमाण में था। अतएव 'वितस्ति' के आधार पर वितस्ता नामकरण किया गया। पाणिनि ने 'दिष्टि-वितस्त्योश्च' (६ ४ ८६) शब्द का प्रयोग किया है। वितस्ति तथा दिष्टि शब्द पर्यायवाचक हैं। वितस्ति भारत में तथा दिष्टि शब्द ईरान में प्रचलित था। मध्य एशिया के खरोष्ठी लेखो में दीटि शब्द आया है वह दिष्टि का अपभ्रश है। वितस्ति और दिष्टि दोनो का अर्थ एक बालिस्त होता है।

'वितस्ताख्य' कश्मीर मे तक्षक नाग का निवास-स्थान माना है। 'वितस्ताद्रि' एक पहाडी है। यह कहाँ है। कहना कठिन है। महाभारत (१११ ८२ ९०) में वितस्ता का मूल स्रोत तक्षक नाग का स्थान माना गया है। इस स्थान का पता अभी नही लगा है।

देवी पार्वती किंवा उमा वितस्ता रूप से जिस स्थान पर प्रकट हुई थी उसे नील कुण्ड तथा शूल-घात कहते है। नीलनाग वर्तमान वेरी या वीर नाग है। गाथा कहती है। पापी लोगो के स्पर्श द्वारा देवी अपवित्र हो जायेंगी अतएव वे लुप्त हो गयी। काश्यप की प्रार्थना पर भगवती द्वितीय बार पुन पचहस्त नाग स्वरूप प्रकट हुईं। यह स्थान दिवसर परगना में पाजथ ग्राम है। यहाँ एक पवित्र जलस्रोत है। समी-पस्थ निवासी इसे पवित्र मानते हैं। भगवती यहाँ भी लुप्त हो गयी। पुन तृतीय वार नरसिंहाश्रम में जाकर देवी 'वितस्ता' रूप में प्रकट हुईं। काश्यप ऋषि देवी पार्वती स्वरूप वितस्ता के सग के लिए लक्ष्मी को विशोका तथा सिन्धु को गगा रूप कश्मीर में लाये। अतएव देवी उमा वितस्ता, लक्ष्मी विशोका, अदिति त्रिकोटी, शची हर्षपथा, तथा दिति चन्द्रावती, नदियो का रूप धारण कर कश्मीर की पवित्र भूमि पर निवास करने लगी।

वितस्ता के द्वितीय बार प्रकट होने के सम्बन्ध में एक और गाथा है। कुछ कम प्राचीन है। इस गाथा के अनुसार वितस्ता द्वितीय बार वर्तमान विथवितुर ग्राम में जलस्रोत स्वरूप प्रकट हुई। यह ग्राम वीरनाग से उत्तर-पश्चिम एक मील दूर स्थित है। यह गाथा वितस्ता माहात्म्य में कही गयी है। इससे प्रकट होता है। स्थान का नाम 'वितस्ता वार्तिका' था। कल्हण ने 'वितस्तारा' का वर्णन किया है। यहाँ अशोक ने स्तूप निर्माण कराया था। कल्हण ने वितस्ता का मूलस्रोत 'नीलकुण्ड' बताया है। स्पष्ट है। कल्हण के समय में वेरीनाग वितस्ता का उद्‌गम माना जाता था। (वितस्ता माहात्म्य २ ३७ रा०त० १ १०२,१०३)

गाथा कहती है। उमा देवी हिमालय की कन्या है। वितस्ता का रूप लेकर कश्मीर में प्रकट हुई है। प्रथम उनका वर्ण नील था। वितस्ता का एक नाम नीलजा भी है। उसने पर्वत शिखर पर तपस्या की। उनका वर्ण गौर हो गया। इसलिये पर्वत का नाम गौरी शिखर पड गया। वितस्ता का जन्मदिन भाद्रपद शुक्लपक्ष त्रयोदशी माना जाता है। वितस्ता उत्सव नीलमत पुराण के अनुसार त्रयोदशी के तीन दिन पूर्व तथा तीन दिन पश्चात् तक मनाया जाता है। इस दिन वितस्ता में स्नान तथा विशेषतया सिन्धु वितस्ता सगम पर पूजा का विधान किया गया है। धूप, गन्ध, माला, नैवेद्य, नाटक खेलने के लिये दान, तथा नाटक पात्रो के पूजा का विधान किया गया है। वितस्ता उत्सव की द्वादशी को महाद्वादशी कहते हैं। यदि द्वादशी बुध पर पडे तो उस दिन भगवान् का जप, स्नान, दान, श्राद्ध किया जाय। उसका फल द्वादश गुना मिलता

है। यदि बुध श्रवण पर पड जाय तो उसे अत्यन्त महती द्वादशी कहते हैं। सन्निहति स्नान का फल प्राप्त होता है। यदि द्वादशी श्रवण को पड जाय तो उस दिन वितस्ता सिन्ध सगम प्राप्त मृत्तिका स्नान का फल उनके सगम स्नान फल के समान होता है। (नीलमत ७६७-७७५)

मार्तण्ड अधित्यका के धुर पश्चिम इसलामाबाद अर्थात् अनन्त नाग नगर है। इसका प्राचीन नाम अनन्त नाग है। अनन्त नाग के कारण नगर का नाम अनन्त नाग पडा है। अनन्त नाग जलस्रोत नगर के दक्षिण दिशा मे है। हरचरित चिन्तामणि तथा कुछ माहात्म्यो मे इसका उल्लेख मिलता है। अनन्त नाग का सरोवर चौखूटा काफी बडा है। पृष्ठ भाग से जल निकलता है। सरोवर सर्वदा पूर्ण रहता है। यहाँ लोग स्नान करते है। तैरते हैं। यहाँ का कोलाहल तथा बच्चो की जल क्रीडा मुझे आजन्म स्मरण रहेगी। नी० ८८२, ११६०, ११८० हरचरित चिन्तामणि १० २५।

नगर के उत्तर और ववन मार्तण्ड के मार्ग में गौतम नाग है। जिसका वर्णन मार्तण्ड माहात्म्य तथा नीलमत में दिया गया है। नी० १०५

अनन्त नाग के समीप वितस्ता को नदी का वास्तविक रूप प्राप्त होता है। यहाँ सान्द्रन, ब्रिग, आर-पथ तथा लिदर स्रोतस्विनियाँ का संगम वितस्ता मे होता है। खनवल के पश्चात् वितस्ता नदी नाव चलते योग्य हो जाती है। समस्त कश्मीर उपत्यका में इस स्थान के पश्चात् नावो द्वारा परिवहन बारहमूला तक होता है। मूलस्रोत अर्थात् नीलकुण्ड किंवा वेरी नाग से डल लेक के समीप तक नदी मे केवल २२० फीट का ढाल है। नदी की धारा मे विशेष परिवर्तन नही हुआ है। वह अपने मूल स्थान अथवा प्रवाह को पकडे प्रवाहित है। उसका प्रवाह कछारी अथवा जलोठ भूमि से होकर होता ह। शीत ऋतु मे नदी का जल स्तर नीचा हो जाता है। जल घट जाता है। तट नदी के निम्न जलस्तर से १५ फीट ऊँचा उठ जाता है। वसंत ऋतु में हिम के गलने पर नदी में बाढ आती है। कभी-कभी तट से उफनकर वितस्ता वहने लगती है। ग्रीष्म कालीन मूसलाधार वृष्टि से भी नदी मे बाढ आ जाती है। कृषि को बाढ से अपार क्षति उठानी पडती है। कल्हण ने इस प्रकार के बाढो का बहुत वर्णन किया है। रा० . ७.१११६, ७ १६१४, ८ २४४६, ८ २७८६, · १४१७, ८ १४२३, जोन ४०३।

जलप्लावन से कश्मीर उपत्यका को बचाने के लिए सेतुओ जिसका अपभ्रश 'सथ' है प्राचीन समय मे निर्माण कराया गया था। उनमे जल प्रवेश तथा नि सृत करने के लिए द्वार बने रहते थे। इन द्वारो को अब कुलावा कहते हैं। उनका विशद उल्लेख कल्हण, जोन तथा श्रीवर की राजतरगिणियो मे निम्नलिखित स्थानो पर मिलेगा—रा० १ १५९, ३ ४८३, ५ ९१, ५ १०३, १२०, ८ २३८०, रा० : जोन ४०४, ८८७ रा० श्रीवर ३ · १८९।

नीलमत के श्लोक ३००–३०१ से प्रकट होता है कि काश्यप ने वितस्ता से निवेदन किया था। 'सुभगे! वितस्ता! तुम हल मार्ग से गमन करो अन्यथा यह देश जलसे सर स्वरूप हो जायगा।' इससे प्रकट होता है कि वितस्ता का मार्ग कश्मीर उपत्यका का जल बहाने के लिये बनाया गया था। हल जोतते समय जिस प्रकार भूमि मे गहरी प्रणाली बन जाती है। उसी प्रकार गहरे पात्र को बनाने का सकेत वहाँ किया गया है।

प्राचीन काल मे सडकें बहुत कम थी। लगभग १०० वर्ष पूर्व सडको का अस्तित्व नगण्य था। व्यापार, परिवहन आदि का कार्य नदी द्वारा होता था। सन् १८९१ ई० की जनगणना के अनुसार लगभग ३४०० हाजी अर्थात् नाविक जल परिवहन कार्य में लगे थे। नावें परिवहन की प्रधान साधन थी। आज उनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। रा० ५ . ८४, ७ · १६२८।

वितस्ता के तट पर कश्मीर की राजधानियो को होने का गौरव प्राप्त है। श्रीनगर, पुराधिष्ठान, परिहासपुर आदि इसके तट पर हैं। प्राय प्राचीन तीर्थ स्थान तथा नगर इसके तट पर बसे थे। गाँवो की आवादी नदी के कछार में थी। और आज भी है। नावो द्वारा ग्रामो तथा नगरो का सामान और उद्योग-धन्धो की वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाती है। कल्हण के नरपुर के वर्णन द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है कि काश्मीरी जनता में नौपरिवहन का कितना महत्त्व था। (रा० १ २०१)

खनवल स्थान अनन्तनाग नगर का बन्दरगाह या पत्तन था। नीलमत पुराण में खनवल को 'खण्ड पुच्छ नाग' कहते हैं। ना० (नी० १३०, हरचरित चिन्तामणि १५१)

खनवल के पश्चात् वितस्ता विजयेश्वर तीर्थ अर्थात् विजय वेहरा में प्रवेश करती है। यह वर्तमान नगर विजब्रोर है। नदी के लगभग एक मील अधोभाग में ऊँची कछार अधित्यका अर्थात् करेवा पडता है। वाम तट पर कश्मीर उपत्यका का अत्यन्त प्राचीन स्थान चक्रधर पडता है। उसे आजकल 'तस्कदर उद्र' कहते है।

चक्रधर से ३ मील और उतराव की ओर जाने के पश्चात् 'माधवाश्रम' अर्थात् 'मरहोम' पडता है। वितस्ता में यहाँ त्रिशोका अर्थात् 'विशौ' तथा 'रमण्यावती' अर्थात् 'रामव्यार' नदियाँ मिलती हैं। माहात्म्य में इस सगम का नाम गम्भीरा सगम दिया गया है। यहाँ की तीर्थ-यात्रा अभी तक लोग करते है। रामव्यार अर्थात् रमण्यावती तथा वेशौ नदी का जहाँ सगम है उसे 'गम्भीरा' कहते हैं। कल्हण ने गम्भीरा का वर्णन अनेक स्थानो पर किया है। एक मत है कि विशोका की धारा जो ध्वनोधरा के समीप वहती थी पूर्व काल में ध्वान धारिणी कही जाती थी कालान्तर मे इसका नाम गम्भीरा पड गया। (नील० १२१४–१२९५ तथा १३०५–१३०८)

गम्भीरा का ऐतिहासिक महत्त्व है। विजयेश्वर से श्रीनगर के मार्ग में पडने के कारण सैनिक महत्त्व का स्थान है। राजा सुस्सल की सेना सन् ११२२ ई० में यहाँ पीछे हटती हुई पूर्णतया पराजित हो गयी थी। लगभग ६ वर्ष के पश्चात् उसके पुत्र के सेनापति ने विद्रोही सेना पर विजय प्राप्त किया था। (रा० ८ १०६२ ८ १४६७)

गम्भीरा सगम के पश्चात् वितस्ता में दक्षिण तट से प्राचीन 'होलदा' तथा वर्तमान 'उलर' जिला का जल लेकर एक स्रोतस्विनी मिलती है। तत्पश्चात् नदी 'वैश्रवन' अर्थात् 'वस्तर' वन के शिलावाहु अवन्तिपुर के प्राचीन नगर से होती हुई प्रवाहित होती है। यहाँ से श्रीनगर तक इसमें कोई नदी नही मिलती। एक 'रामुस' नदी मिलती है परन्तु वह नाममात्र की स्रोतस्वनी है।

श्रीनगर के पूर्वीय भाग का जल डल (डल लेक) मे गिरता है। यहाँ डल का पानी एक छोटी कुल्या अर्थात् नहर से वितस्ता मे गिरता है। इस कुल्या को 'त्सुन्थ कुल' कहते है। प्राचीन काल में इसको 'महासरित' कहते थे। इस सरित पर सेतु अर्थात् बाँध बँधा है। उसके कारण डल लेक तथा श्रीनगर दोनों की रक्षा होती है। नदी का जल बाँध के कारण डल लेक में नही जा सकता। महासरित में 'दुर्गगलिका' पर जल द्वार लगाया गया था।

डल लेक का जल महासरित मे जाता है। डल लेक अपनी अनुपमेय शोभा के लिए प्रसिद्ध है। यह सर ४ मील लम्बा तथा ढाई मील चौडा है। इसका जल करीब ३० फिट से अधिक गहरा नही है। इसमें उपह्रद तथा तैरते खेत हैं। जल स्वच्छ तथा ताजा रहता है।

सम्बल के समीप वितस्ता नदी अहतुंग पहाडी के मूल से गुजरती है। पहाडी एक हजार फिट ऊँची होगी। इस पर्वत के छाया में मनसावल अर्थात् मानस सर सुन्दर झील है। इसका वर्णन नीलमत तथा जोनराज ने किया है। यह सरोवर मीलो लम्बा है। कश्मीर के सब झीलो से अधिक गहरा है। भूगोल के वर्णन के समय इसका वर्णन किया गया है। वितस्ता का सम्बन्ध मनसावल से एक छोटे नहर द्वारा होता है। (रा० जोन ८६४, नील० 890, 1244, 1247, 1334)

वितस्ता के वाम तट पर 'उच्छकुण्डल' तथा 'मरकुण्डल' दो ग्राम हैं। प्राचीन प्रमाणो से प्रतीत होता है कि कभी उलर लेक इन ग्रामो के समीप तक फैला था। कल्हण से मालूम होता है कि उक्त ग्राम रिक्लेम कर बनाए गए थे। जोनराज उन्हें ऊलर लेक के तट पर रखता है। श्रीवर ने इन ग्रामो का उल्लेख करते हुए उन्हें समुद्रकोट (सुन्दर कोट) से द्वारिका के समीप अन्दर कोट तक उलर के तट पर बताता है। इसी प्रकार 'सुय्य कुण्डल' का उल्लेख मिलता है। (रा० ५ १२० रा० जोन १२३०)

सोपोर के पास वितस्ता की वडी अन्तिम सहायक नदी कश्मीर में मिलती है। इसका नाम 'पोहुर' है। वह सोपुर के अधोभाग में चार मील पर है। वितस्ता में मिलने के पूर्व उत्तर-पश्चिम कश्मीर उपत्यका का जल लाती है। कल्हण ने काश्मीर के इस क्षेत्र का बहुत कम वर्णन किया है। राजतरगिणी मे पोहुर अथवा और किसी नदी के सगम का वर्णन नही मिलता। इस नदी का प्राचीन नाम क्या था निश्चयात्मक रूप से नही कहा जाता। जोनराज ने इस नदी को 'पहर' कहा है। माहात्म्यो में प्रहर तथा प्रहार दोनो पाठ मिलते हैं। (रा० जोन ११५०, ११५३, वितस्ता माहात्म्य २७–२, नील० 1322)

हमल स्रोतस्विनी हमल परगना में बहती आती है। हमल ही 'समाला' नदी (रा० ७ . १५९)

महापद्मसर अर्थात् उलर से लगभग चौदह मील और आगे चलकर बारहमूला के गर्त में वितस्ता गिरती है। बारहमूला के पश्चात् वितस्ता मे नावें नही चल सकती। उसका प्रवाह उत्तरोत्तर वेगमय हो जाता है। जल धारा को भयकर जल वेग ध्वनि द्वारा घाटी निरन्तर गूँजती रहती है।

वितस्ता ·

वायु का ब्रह्माण्ड, कूर्म और मत्स्य पुराणो में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेय पुराण वितस्ता का स्थान गगा, सिन्धु तथा सरस्वती के साथ रखता है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, कूर्म तथा वाम पुराणो के अनुसार —'हिमवत्पादानि सृता' रूप से वितस्ता का उल्लेख किया गया है। अलबेरूनी ने हिमालय से निकलने वाली नदियो में 'वियत्त' अर्थात् वितस्ता का उल्लेख किया है।

भागवत पुराण (५ . १० १७) ने वितस्ता की गणना विश्व की महानदियो मे की है।

शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्निनी, विश्वेति महानद्य ।

निम्नलिखित मुख्य नदियो का वर्णन राजतरगिणी तथा नीलमत पुराण में मिलता है। उनका प्राचीन तथा आधुनिक नाम दे देना ठीक होगा

इरावती	रावी
वितस्ता	झेलम
विपासा	व्यास

देविका रावी की एक सहायक नदी है। उमा का रूप है। रावी और चनाव के मध्य बहती है

कुहु कुभा अर्थात् काबुल नदी

गोमती गोमेल (ऋग्वेदीय गोमती) नीलमत मे गौतमी है। कही कही गोमती छप गया है।

शतद्रु शतलज

चन्द्रभागा चिनाव

सरस्वती सरस्वती

सिन्धु महानद तथा दूसरी इसी नाम की छोटी नदी कश्मीर में है जो बान्दीपुर के पास वितस्ता में मिलती है। दोनो नदियाँ कश्मीर मण्डल मे बहती है। सिन्धु नदी लद्दाख, लेह, गिलगिट, चिलास होती पाकिस्तान मे निकल जाती है। छोटी सिन्धु सोनमर्ग के पर्वत के किनारे-किनारे बहती वितस्ता मे मिलती है। कश्मीर मण्डल की जो नदियाँ सिन्धु मे मिलती है उनमे तथा सिन्धु मे स्नान करने पर मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्गगामी होता है। इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

उत्तरकुरु को ऐतरेय ब्राह्मण (९ : १४) मे परेण हिमवन्त कहा गया है। एक अन्य स्थान पर (८ · २३) में वसिष्ठ सातहव्य ने उत्तरकुरु को देवक्षेत्र कहा है।

सातवी शताब्दी में चीनी लेखको के अनुसार कश्मीर सिन्धु नदी से चेनाव नदी और दक्षिण माल्दरेज तक था। हुएनसाग के अनुसार उरसा कश्मीर के पश्चिम, तक्षशिला तथा सिहपुर दक्षिण-पश्चिम पूछ और राजैरी दक्षिण था। उरसा भूखण्ड कश्मीर तथा तक्षशिला के मध्य मे था, (कनिंघम) पूर्व तथा पूर्व-दक्षिण की सीमा कहाँ तक विस्तृत थी पता नही चलता। परन्तु रावी नदी तक यह सीमा विस्तृत थी यह बात मानी जाने लगी है। उत्तर मे सिन्धु नदी की उपत्यका मे हिमालय पर्वत माला मे स्थित भूखण्ड था। उस समय जालन्धर हर्षवर्धन के राज्य मे था। आठवी शताब्दी का नक्शा ठीक नही मिलता परन्तु शंकर वर्मा ने कागडा उपत्यका विजय किया था। इस प्रकार कश्मीर सिन्धु नदी से लेकर सतलज तक पर्वतीय प्रदेश मे था। हुएनसाग के मत से ११६६ मील है।

परिशिष्ट 'घ'

नाग

(तरग · १ २ · ९ पृष्ठ—६३)

नाग शव्द तथा नाग जाति पर विवेचन की आवश्यकता है। लगभग १३ जातियो का उल्लेख नीलमत पुराण में आया है। नाग जाति का नाम भी है, १ नाग, २ पिशाच, ३ दर्व, ४ अभिसार, ५ गान्धार, ६ जुहुन्दर, ७ शक, ८. खश, ९ तगण, १० मण्डव, ११ मद्र, १२ अन्तर्गिरि तथा १३ वहि-र्गिरि। द्रविड भाषा मे नाग को याम्बू अथवा याऊ कहते हैं।

नाग शव्द पवन अर्थात् वायु के लिए प्रयोग किया जाता है। अर्थ वायु किंवा पवन प्रिय के लिए भी किया गया है। प्रजापति कश्यप की पत्नी कद्रू थी। कद्रू प्रजापति दक्ष की कन्या थी। देव, दैत्य, दानव, खस, भद्र तथा गरुड प्रजापति कश्यप के पुत्र थे।

अमर कोष (१ ८ ४) में नाग के दो नाम 'नागा काद्रवेया' 'नाग' और 'काद्रवेय' दिया गया है।

स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुगवर्षभकुञ्जरा.।
सिंहशार्दूलनागाद्या पुसि श्रेष्ठार्थगोचरा.॥

—अमरकोष ३ १ ५९

नीलमत पुराण मे ६०३ नागो का उल्लेख किया गया है। (द्रष्टव्य श्लोक 965 = 967, 881—946, 223, 226,)

वेदो मे नाग जाति का उल्लेख नही मिलता। शतपथ ब्राह्मण (११ २ ७ १२) में महानाग का वर्णन किया गया है। उसका शाब्दिक अर्थ विशाल हाथी अथवा सर्प होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् (१ ३ २४) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (८ २२) के उद्धरणो में नाग शव्द का प्रयोग हाथी के लिए किया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (२ ४ १) मे देव शास्त्रीय नाग का उल्लेख है।

पुराणो में नाग वश का वर्णन मिलता है। उनके दो मुख्य राज्य मथुरा तथा चम्पावती में थे। नव नागो ने चम्पावती मे राज्य किया तथा सात नागो ने मथुरा मे। वायु पुराण मे नव नागो के स्थान पर नव 'नाका' का पाठ मिलता है। (वायु पुराण ९८ ४५३ तथा ९९ ३८२, ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७४, १९४-१९५, २६७)

वृत्र का वर्णन अवश्य वेद में मिलता है, शतपथ ब्राह्मण मे उसे दानव कहा गया है। वह दानवो का राजा कहा गया है। उसका नाम कालेय रखा गया है। सुरो के शत्रु रूप मे चित्रित किया गया है। इन्द्र तथा वृत्र का सघर्ष प्रख्यात है। इस प्रकार के आख्यान सुमेर वाइवोलीनिया में 'वेल मददुक' का नियमन के साथ; मिश्रमें रे का सघर्ष 'एपोप' के साथ, यूनान मे, अपोलो' का 'फाइकोन' के साथ, और 'पोइ-

रेस' का 'गौरगौन मेदूसा' तथा ईरान मे 'फरदियम' का 'अजीदहक' के साथ सघर्ष के दिखाये गये हैं।

अथर्व वेद, तैत्तिरीय सहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्, गृह्य सूत्र मे नाग पूजा को उल्लेख मिलता है। वे एक जाति रूप में चित्रित किये गये है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण अन्य जातियो के साथ नाग जाति का उल्लेख करता है। (१ : ६ . ६) मत्स्य पुराण 'वहुतरनागजातय' अर्थात् नागो की बहुत जातियाँ थी, वर्णन करता है (१५४ .४६२) पद्म पुराण तथा हरिवश पुराणो मे उल्लेख आता है। पृथु के पूर्व नाग पृथ्वी का दोहन करते थे। (पद्मपुराण भूमिखण्ड २८ ४५ तथा हरिवश १ ७ . २६-२७)।

वृत्र शब्द का प्रयोग वेदो में किया गया है। शाब्दिक अर्थ है—'ध्वान्तारिदानवा वृत्रा'—अर्थात् वृत्रासुर, अन्धकार, शत्रु। वृत्रासुर इन्द्र सग्राम की कथा प्रसिद्ध है। इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। अपनी रक्षा के लिये वृत्र ने अहि का रूप धारण कर लिया था।

शतपथ ब्राह्मण मे वृत्र को सर्प तथा दानव कहा गया है। कश्यप के दनुनाम्नी पत्नी द्वारा उत्पन्न पुत्रो का नाम दानव है। शतपथ ब्राह्मण में वृत्र का नाम सर्प दिया गया है।

मुझे नेपाल यात्रा मे सर्प जाति के लोगो से सम्पर्क हुआ था। पहले नाम सुना तो कुछ आश्चर्य हुआ। सर्प जाति के लोग अच्छे, सुन्दर मनुष्य जैसे थे। उनकी जाति का सर्प क्यो पड गया, मैने पूछा वे स्वय नही बता सके। किन्तु उनके पास रहने से मैंने अनुभव किया सर्प किंवा नाग का उनके मन मे उच्च भाव है। मै समझता हूँ किसी समय सर्प की उपासना करने के कारण, उन्हें सर्प पूजक कहा गया था। किंवा सर्प विद्या मे वह जाति निपुण होगी। अतएव उनका नाम सर्प मे दिया गया। सम्भव है वह नाम कालान्तर मे कर्मवाचक से जातिवाचक हो गया। नाग शब्द, साप, सर्प, कीरा के सामान्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है। एक और सम्भावना हो सकती है। किसी पर्वतीय जाति का प्रतीक किंवा चिन्ह सर्प अथवा नाग रहा था। उस प्रतीक किंवा चिन्ह के कारण नाग शब्द जातिवाचक हो गया। नाग प्राणी है। वे मनुष्य है। और रेंगने वाले जीव भी है ?

फर्गुसन ने नाग जाति को तुरानी अर्थात् तुरान देशीय किंवा तुरान वशीय कहा है। तुरानी तथा आर्यों की एक ही परम्परा थी। यह तथा द्रविड जाति मूलत नाग अर्थात् सर्प पूजक नही थे। वे उत्तरी भारत निवासी थे। आर्यों ने उन्हे जीता था। ('ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप' पृष्ठ ६०, ६१)।

कनिंघम ने नाग जाति को ड्रेगन अर्थात् नाग पूजक माना है। उनकी गणना 'शक', 'मीदिया' तथा 'जोहक' की श्रेणी में की है। तीन अत्यन्त प्राचीन मुद्राओ पर सर्प टंकित मिलता है। उस पर पुरानी ब्राह्मी लिपि मे 'काटस' अकित है। उन्हे पश्चिमी पंजाब मे पाया गया था। वह प्रारम्भिक 'तक्खस' थे। नाग जाति का तक्षक राजा माना जाता है। उन्ही के उत्तराधिकारी थे। उन्हें 'काद्रवेय, किंवा 'कुद्रव' कहा जाता था। (वे कद्रू की सन्तान थे। कनिंघम ए० एस० आर० भाग २ पृष्ठ १०)

कर्नल टाड के अनुसार नाग जाति शेषनाग देश से आई थी। यह देश सम्भवत. स्काईथिक अर्थात् स्टार्बो वर्णित तोखरी है। तोखरी शब्द-संज्ञा तुर्कों के लिए व्यवहृत की गयी है। वे शकद्वीप मे राज्य करते थे। चीनी उन्हे 'तक ई उक्स' कहते थे। वर्तमान ताजिन के ताजिक थे। (एनाल्स एण्ड एण्टी क्विटीज आफ राजस्थान पृ० ४५) श्रीपार्जिटर ने उन्हे मानव, सौद्युम तथा एल (चन्द्रवंश) से भिन्न नही माना है। उन्हें क्षत्रियो की परम्परा में विरोधी तथा पर जाति कहा है। दैत्य, दानव, नाग एव राक्षस सर्वथा मानव से विरुद्ध थे नही माना है। (पार्जिटर ए० आई० एच० टी० पृ० २९०)

काररल्लेयले (CORLLTALE) का मत है कि असुर तथा नाग जातिया सस्कृति तथा सभ्यता की दृष्टि से अन्यन्त प्राचीन जाति थी । वे आर्यवशीय थे । (कारलेयले ए एस आर भाग ६ पृष्ठ ४, ५) नाग भारत में असुर जाति की रीढ तथा शक्ति थे । नागो के पतन के पश्चात् भारत मे सघटित असुर जाति का पतन हो गया । (बैनजी-शास्त्री असुर इण्डिया पृष्ठ ६६) श्री ए० वी० बैनर्जी ने असुरो की एक शाखा को नाग जाति माना है । डाक्टर ग्रियर्सन का मत है कि नाग जाति अनार्य थी । हुजा नगर के निवासी थे । हुजा गिलगिट क्षेत्र कश्मीर में है । यह एक रियासत थी । इस समय पाकिस्तान में है । उनकी मूल भाषा का पता नही चल सका है । भारत में विभिन्न नागा किंवा नाग जाति कही जाने वालो की भाषाएँ एक नही है । उनमें भिन्नता है । उनकी भाषा कुरुशस्की थी । यह भाषा किस वर्ग मे आती है । अभी निश्चय नही किया जा सका है । (ग्रियर्सन पैशाची, पिशाच एण्ड माडर्न पिशाच इन जेड डी एम जी भाग ६६ पृष्ठ ७२)

श्री सी० एफ० ओल्धिम का मत है । नाग जाति सूर्य पूजक थी । उनकी भाषा सस्कृत थी । उनकी जाति का चिन्ह किंवा प्रतीक नाग का फण था । इसी प्रतीक अथवा चिन्ह के कारण इस जाति की सज्ञा नाग जाति हो गयी थी । (ओल्धम सरपेण्ट वरशिप इन इण्डिया इन एच आर. ए एस० १८९१ पृष्ठ ३९१)

श्री सी० एस० वेक का मत है । नागा आदिम वासी नाग पूजक थे । (श्री सी० एस० वेक सरपेण्ट वरशिप एण्ड अदर एसेज पृष्ठ ९१)

प्रोफेसर हापकिन्स का मत है । गरुड और ताक्ष्र्य पश्चिमी घाट के मानव सरदार थे ।
(होपकिन्स इपिक मैथोलौजी पृष्ठ २३)

श्री एल वी. केनी ने 'नापाज इन मगध' के लेख में मत प्रकट किया है । वे द्रविड वशीय जाति के मानव थे । आर्यों के भारत आगमन के पूर्व उत्तरीय भारत मे रहते थे । (जे वी ओ आए एस भाग २८ पृष्ठ १६३)

श्री ए सी दास का मत है । नाग जाति आर्यों की ही एक शाखा है । (ए सी दास ऋग्वेदिक कलचर पृष्ठ १६७) श्री एन जे शिन्दे का विचार है । नाग आर्य जाति के नही थे । क्योकि वे प्राय आर्यों के विरोधी प्रतीत होते है । अथर्ववेद में सर्पों का उल्लेख जिस प्रकार किया गया है उससे कोई वात सन्तोषप्रद रूप से स्पष्ट नही होती । नागो का नाम अधिकतया अनार्य प्रतीत होता है (श्री एन जे शिन्दे, पूना दि फाउण्डेशन आफ अथर्ववैदिक रिलीजन पृष्ठ ९ २००)

पाश्चात्य विद्वानो के विवेचनात्मक ऐतिहासिक मतो के पश्चात् भारतीय पुरातन साहित्य में नाग जाति का रूप क्या था इस विषय पर प्रकाश डालना उचित होगा । अनेक मतो के बीच नागा जाति स्वय एक समस्या वन गयी है । उल्लेख कर चुका हूँ । नाग जाति तथा शब्द का प्रयोग वेद में नही किया गया है । नाग के स्थान पर दानव वृत्र का उल्लेख मिलता है

त्व ताँ इन्द्रो भयां अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणा नृतम ।।

शतपथ ब्राह्मण में दानव तथा सर्प की सज्ञा वृत्र से दी गयी है । (१६ ३ ९ ।)

'तस्माद् वृत्रोऽथ मद यातस मभन्त स्यादहिस्त दनेश्चु दनायूश्च मातेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहु ।'

महाभारत मे दानव राज कलिय का वर्णन मिलता है। कलिय की संज्ञा कालिय नाग से दी गयी है। (महा० : वनपर्व· १०१:७)

कलिय इति विख्यातो गण : ।
तैश्च वृत्रं समाश्रित्य जगत्सर्वं ॥ मय ३ १०१ ७

अथर्व वेद ५ १३, ५:५, ४ ५६ तथा १५ १३ मे वृत्र काउल्लेख आता है। तैत्तिरीय सहिता काण्ड ४ प्रपाठक २ अनुवाक २ मे उल्लेख है। छान्दोग्योपनिषद् ८ १'४ में असुर विरोचन का वर्णन आत्मा के प्रसंग में आता है।

सुर एवं असुर के सिद्धान्तो मे मूल भेद यह था कि असुर शरीर को आत्मा मानते थे। सुर अर्थात् देवता लोग आत्मा को शरीर से भिन्न समझते थे। सुर-असुर एक ही आर्य जाति की सन्तान थे। सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक मतभेदो के कारण दो वर्ग कालान्तर मे हो गये थे।

आश्वलाअय गृह्यसूत्र ३ कण्डिका १३ तथा पारस्कर गृह्य सूत्र काण्ड २ कण्डिका १४ मे इसका उल्लेख मिलता है।

रामायण मे नाग जाति का उल्लेख मिलता है। भोगवती नगरी नाग राजाओ की राजधानी थी। उसपर रावण ने विजय प्राप्त किया था।

सर्वदिव्यास्त्रयोक्ता यज्ञविघ्नकर सदा।
पुरी भोगवती गत्वा पराजित्य च वासुकिम् ॥
—वा० रा० कि० सर्ग ३२ : १३

सुमहन्नो बलं कस्माद् विषाद भजते भवान्।
त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिता पन्नगा युधि ॥
—वा० रा० युद्धकाण्ड सर्ग ७ ८

स तु भोगवतीं गत्वा पुरीं वासुकिपालिताम्।
कृत्वा नागान् वशे हृष्टो ययौ मणिमयीं पुरीम् ॥—वा० रा० उ० सर्ग २३ : ५

नागो के रहने का स्थान, पाताल, रसातल तथा समुद्र कहा गया है। समुद्र में रहने का अर्थ यह नही है कि जल के भीतर रहते थे बल्कि समुद्र तटवर्ती किंवा समुद्र आवृत प्रदेश द्वीप अथवा भूखण्ड में निवास करते थे।

तं कालमेघप्रतिमं महोरगनिषेवितम्।
अभिगम्य महानाद तीर्थेनैव महोदधिम् ॥—वा० रा कि० सर्ग ४० : ३८ ॥

रावण ने नाग जाति पर विजय किया था। वह जाति सुसभ्य तथा नगरो में भी रहने वाली थी। यदि वे शक्तिशाली नही होते, उनका तत्कालीन राजनीतिक जीवन में प्रमुख स्थान न होता तो रावण उन पर विजय पाकर गौरवान्वित किस प्रकार होता। निस्सन्देह नाग एक मानव जाति थी। (रामा० सुन्दर : १२ : २१-२२)

महाभारत मे नाग यज्ञ, नाग द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु एव खाण्डव वनदाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत के अनुसार नाग एक मानव जाति थी। तक्षक नाग इस जाति का राजा था। तक्षक के मित्र इन्द्र ने खाण्डव दाह रोकने का प्रयास किया था किन्तु सफल नही हुए। नाग राज

तक्षक उस समय कुरुक्षेत्र गया था अतएव उसकी प्राण रक्षा हो गयी थी। उसका पुत्र अश्वसेन भी दाह काण्ड से बच गया था। अब असुर अपनी रक्षा होता न देखकर अर्जुन की शरण गया था। (महा० आदि० १ १२५७ १ २१८ ४, ५, १ २१८ ९, १ २२० ३७)

परीक्षित की हत्या पर तक्षक नाग अपनी रजधानी तक्षशिला भाग गया था। इससे प्रकट होता है। षड्यन्त्र का आश्रय लेकर प्रतिहिंसा के कारण किसी प्रकार परीक्षित के राजभवन में प्रवेश कर उनकी हत्या का कारण हुआ था। परीक्षित पुत्र राजा जनमेजय ने तक्षशिला पर तक्षक नाग को दण्ड देने के लिये आक्रमण किया था। नाग जाति का संहार राजा जनमेजय ने किया था। इसी को पौराणिक भाषा में नाग यज्ञ कहते हैं। किन्तु आस्तीक मुनि के अनुरोध पर यह सहार बन्द कर दिया गया। (महा० आदि० ४२ २२, ३ १८, १२.५२, १३ ३९)।

आर्य तथा नाग जाति में परस्पर विवाह सम्बन्ध होता था। राजा जनमेजय के पुरोहित सोमश्रव तथा ब्राह्मण ऋषि आस्तीक की माताएँ नाग कन्याएँ थी। चित्रागद तथा नागराज चित्रवाहन की कन्या का विवाह इसी प्रकार हुआ था। वासुदेव के प्रपितामह आर्यक नाग राजा थे। महा० आदि ३ १४; २२७ ६३,)

महाभारत सभा पर्व मे नाग जाति को वरुण के सभासद के रूप मे उपस्थित देखा जाता है। वरुण का स्थान सुमेरु किंवा मेरु पर्वत है। अतएव नाग जाति यदि कश्मीर के हुजा नगर के समीप मे रहती थी तो वहाँ उसका वरुण की राजसभा में उपस्थित रहना स्वाभाविक प्रतीत होता है। (महा० सभा तथा रा० अरण्य० ३ १३१४)।

भागवत मे नाग जाति का वर्णन आता है। कश्यप तथा कद्रू की सन्तान वे कहे गये है। उनका निवास-स्थान मेरु पर्वत के निकट बताया गया है। मेरु पर्वत के दक्षिण हुँजा नगर है अतएव डाक्टर ग्रियर्सन ने इसी प्रमाण पर सम्भवत नागो का स्थान हुँजा माना होगा। (महा० ५ ६-२६)।

कश्यप के द्वारा प्रमुख नागो—अनत, वासुकी, तक्षक, कर्कोट, पद्म, महापद्म, शख तथा कुलिक की उत्पत्ति हुई थी। पद्मपुराण सृष्टिखण्ड मे उनका वर्णन आता है। पद्म पुराण सृष्टि० ३१ भविष्य पुराण के ब्राह्म पर्व में उनकी जाति आदि पर विशेष प्रकाश डाला गया है। (भविष्य ब्राह्म पर्व ३३-३६)

प्रमुख नागो की तालिका निम्नलिखित बनती है

नाम	वर्ण	रग	दृष्टि	दिशा	चिन्ह
अनत	ब्राह्मण	शुक्ल	सम्मुख	पूर्व	पद्म
वासुकी	क्षत्रिय	आरक्त	बायी ओर	आग्नेय	उत्पल
तक्षक	वैश्य	पीत	दायी ओर	दक्षिण	स्वस्तिक
कर्कोटक	शूद्र	कृष्ण	पीछे	नैर्ऋत्य	कमल
पद्म (नाभ)	शूद्र	कृष्ण	चचल	पश्चिम	पद्म
महापद्म	वैश्य	पीत	नीचे	वायव्य	शूल
शखपाल	क्षत्रिय	अरुण	निश्चेष्टित	उत्तर	छत्र
कुलिक (कम्बल)	ब्राह्मण	शुक्ल	सर्वत्र (कपिल)	ईशान	अर्धचन्द्र

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि नाग एक जाति थी। उसमे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र वर्ण होते थे। उनका चिन्ह भी दिया गया है। यह चिन्ह उनके जाति तथा वर्ण विशेष का प्रतीक था। विशेष द्रष्टव्य है (भवि० ब्राह्म० ३३-३६)।

वीरो, महापुरुपो, महात्माओ, श्रेष्ठराजाओ की पूजा तथा उनकी स्मृति में श्राद्धादि करने की प्रथा सनातन काल से चली आई है। नागो की पूजा से सम्बन्धित अनेक व्रतो की कथा मिलती है। नाग जाति के महान् नेताओ तथा राजाओ की स्मृति किंवा सम्मान में मनाया जाता रहा होगा। श्रेष्ठ नागो की स्मृति मे स्मारक भी बने होगे। प्रत्येक जाति मे यह प्रथा प्रचलित थी। इस प्रकार के स्मृति, स्मारक तथा वीर पूजादि कालान्तर मे रूढ हो गये। नाग शब्द का मूल अर्थ लोग भूल गये। अनेक जातियो के सम्पर्क, सम्बन्ध तथा विचारो के आदान-प्रदान के कारण नाग जाति में वर्ण सकरता आ गयी होगी। मूल नागस्थान में जातियो के इन पारस्परिक मिलनो के कारण पिशाच, आर्यादि जाति निवास करने लगे। नाग जाति के पूजा-स्थान, स्मारक तथा पर्व निरन्तर चलते रहे। इनका स्थानीय लोगो तथा स्थानो से सम्बन्ध रहता था। सभी लोग नाग पूजा, नाग मेला, नाग पर्व, नाग व्रत तथा नागो के उत्सव मे भाग लेते रहे। नाग जाति स्वय अन्य जातियो के रस्म-रीति रवाज से प्रभावित हुई होगी। उसने नवीन जाति के सम्पर्क में नवीन धार्मिक सिद्धान्तो, पर्वो, पूजाओ एव व्रतो को मान्यता देकर अपना लिया होगा। वह स्वयं दूसरी जातियो मे मिलकर नवीन सस्कार तथा परम्पराओ मे अपनी पुरानी बातो के साथ ढाल लिया होगा। नाग जाति के चले जाने अथवा लुप्त हो जाने पर भी वे पूजादि चलते रहे। वे एक परम्परा बन गये होगे। उनका सस्कार पड गया होगा। उन सनातन रूढियो को स्थानीय लोग तोडना उचित नही समझे होगे। अतएव नाग जाति की अनुपस्थिति में भी यह क्रम जारी रहा। कालान्तर में लोग नाग पुरुपो आदि को मानव न मानकर सर्प समझ बैठे। वे ही नाग पूजा के रूप मे प्रचलित हो गये। वे आज तक चलते आ रहे हैं। एक जाति है। चम्बा नाग के भाई गरुड है। गरुड भी पर्वतीय में ब्रह्मचोर स्थान मे गरुड वंश के लोग है। उन्हे इस समय शिगर्ती वश कहा जाता है।

नाग पूजा कश्मीर में खूब प्रचलित थी। कश्मीर मे सर्व प्रथम नाग जाति के निवास का पता चलता है। तत्पश्चात् पिशाच जाति का कश्मीर मण्डल मे प्रवेश हुआ। उसके पश्चात् आर्य जाति का आगमन कश्मीर मे हुआ। नागो के देश मे आकर पिशाच तथा आर्य दोनो ने परस्पर आदान-प्रदान, रक्त मिश्रण तथा वैवाहिक सम्बन्धो के कारण नाग जाति के धार्मिक सस्कारो तथा रीति-रिवाजो को किसी रूप मे मान लिया होगा। उनके द्वारा पूजित उनके नेता, महापुरुप तथा राजाओ की पूजा, स्मृति, पर्व, व्रत, त्यौहार को मानना आरम्भ कर दिया होगा।

आर्यो की आदत थी। वे जिस देश मे जाते थे वहाँ वालो से मिल जाते थे। अपनी नैसर्गिक सहिष्णुता के कारण नवीन स्थान तथा देश की परम्परा तथा सस्कार को किसी सीमा तक अपना लेते थे। इस प्रकार आर्यो ने सभी देशो में प्रवेश कर शान्तमय जीवन आरम्भ किया था। वे सैद्धान्तिक विपयो मे सघर्ष मोल लेना पसन्द नही करते थे। उनमें उदारता होती थी। खुद जीना और दूसरो को जीवित रहने देना चाहते थे। इन व्यवहारो तथा पारम्परिक मिलन के कारण विरोध के स्थान पर जातियो का खूब मिश्रण हुआ।

मिश्रण मे धर्म, परम्परा, सस्कार, पूजा-पाठ आदि का भी मिश्रण होना स्वाभाविक था। एक साथ रहने वाली जातियो ने एक दूसरे के पर्व-पूजा, रीति-रिवाजो को मान लिया। अथवा पुराने तथा नवीन मिश्रणो के कारण एक नवीन वातावरण नवीन स्थिति उत्पन्न हुई होगी। उनका मूलाधार पारस्परिक-सहयोग तथा। आदान-प्रदान था परिणाम यह हुआ कि नाग जाति के सत्ताहीन होने पर भी वे चलते रहे। शताब्दियो तक यह पूजा आर्यों तथा अन्य जातियो ने जारी रक्खी। इन पूजाओ तथा पर्वो का मूल स्वरूप लोग भूल गये। उसे अपना ही मानने लगे। नाग शब्द स्मरण रहा। नाग का अर्थ सर्प समझा जाने लगा।

नाग जाति के सत्ताहीन होने पर लोगो ने उन उपासनाओ, पूजाओ, कथाओ को नाग जाति सम्बन्धी पूर्व पुरुषो तथा देवताओ से न सम्बन्धित मानकर उन्हें अपने पूजित देवो के समान वृषभ तथा गौ-पूजा, की तरह पशु पूजा तथा अश्वत्थ कदम्ब की तरह वृक्ष पूजा का रूप दे दिया। पशु पूजा के प्रतीक पशुपति महादेव थे अतएव सर्पादि नाग पूजाओ का भी प्रतीक शकर को बना दिया गया। उनके रूप की जो नवीन कल्पना की गयी उसमें नाग उनका आभूषण बना दिया गया। मूल पूजा, उपासना तथा गाथा का विकृत रूप मात्र रह गया। शकर की मूर्ति में नाग आभूषण रूप बना था अतएव शकर के साथ नाग की पूजा अनायास होने लगी।

नीलमत पुराण नाग पूजा का विस्तृत उल्लेख करता है। नागराज तथा पिशाच राज निकुम्भ की मित्रता कश्मीर मण्डल में हो गयी थी। इस गाथा में दोनो जातियाँ का एक साथ किसी रूप मे कश्मीर में मिलकर रहने की ओर सकेत मिलता है। कश्मीर के मूल निवासी नागाओ ने पिशाचो के साथ सघर्ष नही कर उनसे सन्धि किंवा मित्रता कर ली।

नाग जाति पिशाच जाति की अपेक्षा आर्य जाति को अधिक प्राथमिकता देती थी। पिशाचो की अपेक्षा आर्यो की तरफ अधिक नाग जाति आकर्षित थी। नाग जाति के साथ प्रारम्भ में रहने के कारण पिशाच जाति ने नागो के पर्व, तीर्थ, पूजा तथा स्मारको के उपलक्ष्य में होने वाले उत्सवो में सक्रिय भाग लेकर उन्हें अपना लिया। इस प्रकार नाग तथा पिशाच जाति द्वारा एक सकर जाति कश्मीर में उत्पन्न हो गयी। दोनो जातियाँ मिलकर कश्मीर में रहने लगी।

कश्मीर मे आर्य आये। उनके पूर्व पिशाच तथा नाग तथा उनके मिश्रण से उत्पन्न वर्ण संकर जातियाँ वहाँ रहती थी। आर्यों ने पिशाच तथा नाग जाति की परम्परा साथ-साथ रहने के कारण कालान्तर में अपनाकर नाग-पूजा को किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लिया। अतएव कश्मीर में नाग पूजा का लोप नही हुआ। वह प्रचलित रही। नीलमत पुराण नाग-पूजा को मान्यता देता है। (नी० २२६, २२७)

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नागजाति का द्रविड, कम्बोज, अम्बष्ट तथा शक के साथ वर्णन किया गया है। (१ . ९ ६)

नीलमत पुराण में नील नाग का उपदेश है। लगभग दोतिहाई नीलमत पुराण नील नाग के मुख द्वारा उच्चरित किया गया है। उनके वश के विषय मे कहा गया है कि वे कश्यप पिता तथा कद्रू माता की सन्तान थे। कद्रू दक्ष की कन्या थी। देव, दैत्य, दानव, खश, भद्र, गरुड आदि सभी कश्यप की सन्तान थे। उनकी गरुड से शत्रुता थी। उनके राजा वासुकी के निवेदन पर भगवान् विष्णु ने सतीसर में उनकी रक्षा का प्रवन्ध किया। उनका राजा नील नाग बना। जलोद्भव असुर का विनाश तथा सतीसर सूख कर भूमि होने पर नील कश्मीर मे मानवो को लाना चाहा परन्तु नागो ने विरोध किया। इससे क्रुद्ध होकर कश्यप ने शाप दिया कि वे छ मास पिशाच तथा छ मास मनुष्यो के साथ निवास किया करेंगे। पर चार Seans शाप के पश्चात्, उन्हें सर्वदा के लिये मानवो के साथ कश्मीर में रहने के लिये आदेश दिया।

नाग षडङ्गुल मनुष्यो की दाराओ को हर ले जाता था। नागराज नील ने उसके इस अपराध के कारण कश्मीर से निर्वासित कर दिया था। उसे दार्व देश में उशीरक पर्वत पर रहने का आदेश दिया। विष्णु ने उसे नील की प्रार्थना से उस स्थान पर रहने के लिये सुरक्षा का विश्वास दिलाया (नीलमत १६५-६७, ६१) राजा विश्वगाश्व से महापद्म नाग ने चन्द्रपुर नगर चतुराई से दान में प्राप्त किया था। (नील० १७३-४७) नीलमत में लगभग ६०३ नागाओ का उल्लेख मिलता है। नाग पूजा का भी वर्णन किया गया है।

नीलमत पुराण से निम्नलिखित बातें मालूम होती हैं :

(१) कश्यप नाग, पिशाच, दैत्य, दानव एवं गरुड के पूर्व पुरुष थे।

(२) गरुड तथा नाग में शत्रुता थी। गरुड नागो का विनाश कर देता परन्तु विष्णु के हस्तक्षेप के कारण नागो की रक्षा हुई। गरुड विष्णु का वाहन बना और शेष नाग भगवान् की शय्या हुए।

(३) कश्मीर के मूल निवासी नाग थे। उनसे पिशाचो से मेल नही था। परन्तु मानव एवं पिशाचो में जब चुनना पडा तो वे मानव के साथ रहने के लिये तत्पर हो गये।

(४) प्रारम्भ में नाग तथा पिशाच में शत्रुता थी। कालान्तर में नाग तथा पिशाचो मे मेल हो गया था। नागराज नील के यहाँ चन्द्रदेव जब गये थे तो पिशाचराज निकुम्भ ने उनका आदर सत्कार किया था। नील ने निकुम्भ तथा पिशाच पूजा का विधान किया था।

(५) नागराज नील ने काश्मीर उपत्यका में मानवो का स्वागत किया था।

(६) नीलमत के नाग वर्णन मे फण के अतिरिक्त और कोई विशेष बात मानवो से नागो मे नही थी। उनके विष आदि का कही वर्णन नही किया गया है।

(७) नागाओ का नाम पुराकालीन वीरो के सदृश मिलता है।

(८) नाग पूजा कश्मीर की धर्मप्रथा का मुख्य अग था।

मत्स्य पुराण मे नाग वर्ग में अनेक जातियो का उल्लेख मिलता है .

प्रयुजते गिरिशयशोविसारिण
प्रकीर्णकं बहुतरनागजातय ॥ ४ : ६४२

बौद्ध साहित्य मे मुचलिंद नाग का उल्लेख आता है। मुख्यत जातको, यथा शखपाल तथा मणिकत्थ जातक में नाग जातिका उल्लेख मिलता है। संखपाल नाग भविष्य पुराण के अनुसार क्षत्रिय था। उसका जाति चिन्ह छत्र था। उल्लेख मिलता है कि शाक्य मुनि ने नागो को दार्शनिक तथा धार्मिक अधिक उपदेश दिया था। उन्होने भगवान् बुद्ध के उपदेशो को ग्रहण किया था। (शखपाल जातक मणि कठ जातक)

एक तिब्बती वर्णन के आधार पर यह प्रकट होता है कि पर्वतीय स्थानो में निवसित नागा जाति को भगवान् बुद्ध ने उपदेश देने के लिये बुलाया था। उसीसे यह भी प्रकट होता है कि गरीब नाग अमीर हो गये थे। उन्होने भूसम्पत्ति लिया था। पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत मे भगवान् बुद्ध के अनेक नागराज वंश थे। (श्री आर. एन. मेहता) (प्री बुद्धिस्ट इण्डिया)

भगवान् बुद्ध के जीवन से भी नाग वंशी राजाओ का निकट सम्पर्क महावश के द्वारा प्रकट होता है। भगवान् बुद्धत्व प्राप्ति के पाँचवें वर्ष जेतबन में बिहार करते थे। उस समय महोदर तथा चूणोदर दो मामा भानजा नागो को मणिमय सिंहासन प्राप्ति हेतु सग्राम में सदल उपस्थित देखा। उस समय उन पर अनुकम्पा करने के लिये भगवान् ने नाग द्वीप में प्रवेश किया। उस समय नागराज महोदर समुद्र के नाग भवन मे निवास करता था। उसकी कनिष्ठ भगिनी कर्णवर्धमान पर्वत के नागराज से व्याही गयी थी। चूणोदर उसका पुत्र था। उसका नाना मणिमय सिंहासन देकर मर गया। यह पर्वत निवासी नाग महाऋद्धिमान थे। (महावश १ ४५—५१) नागे मनुष्य थे। मानव थे। उनका राज्य था। यह बात महावश स्पष्ट करता है। वह देवता पूर्व जन्म में इसी नाग द्वीप में मनुष्य था। (महावश : १ . ५४—५६) एक मत है कि यह नाग द्वीप श्री लंका का उत्तर पश्चिमीय अंचल था।

महावश में नाग जाति के कश्मीर मे रहने का उल्लेख मिलता है—'उस समय कश्मीर–गान्धार देश में वडी दिव्य शक्ति वाला अरवाल नाम का एक क्रूर राजा रहता था। वह समस्त पकी फसल ओला और वर्षा कर समुद्र मे डाल देता था। उस समय मुज्झन्तिक स्थविर आकाश मार्ग से वहाँ आये—उन्होने धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् नागराज ने और हिमालय प्रदेश के चौरासी हजार नागो, बहुत गन्धर्वों, यक्षो तथा कूष्माण्डो ने शरण तथा शील धारण किया। कश्मीर और गन्धार के निवासी मनुष्य नागराजा को पूजने के लिये आये—उस समय से लेकर अब भी कश्मीर और गान्धार देश काषाय से प्रकाशित और त्रिरत्न परायण है। (महावश १२ ९ २८) जिस स्थान पर भगवान् का नागद्वीप में लका के उतरना कहा जाता है उस स्थान पर जम्बूकोल विहार तथा तिष्य महाविहार निर्माण किये गये थे। नग्न द्वीप तथा नाग द्वीप विभिन्न द्वीप थे। कही कही भ्रम से लेखको ने उन्हें एक समझ लिया है। उक्त उद्धरण से दो बातें प्रकट होती हैं। नागराज की कथा जलोद्भव असुर से मिलती है तथा नाग जाति तथा काश्मीर के मनुष्यो किंवा आर्य वश वालो से मेल हो गया था।

निष्कर्ष निकलता है। वैदिक आर्यों के पूर्व नाग जाति कश्मीर तथा उत्तर भारत के पर्वतीय भूभाग में निवास करती थी। उनका निवास-स्थान हिमालय पर्वतीय खण्ड किंवा प्रखण्ड थे। यदि वे मैदानो में कभी रहते भी थे तो आर्यो के आने पर वे पर्वतीय क्षेत्रो मे चले जाते थे। वह कोई नयी बात नही है। मुस्लिम आक्रमण के समय नैपाल में राणा, हिमालय मे आबाद महाराष्ट्र तथा राजपूत लोग मुसलमानो के आगमन तथा उनके आक्रमणो से त्रस्त होकर हिमालय के पर्वतीय भागो मे सुरक्षा निमित्त चले गये। नाग जाति को आर्यों के आगमन पर एक नवीन बली जाति के धर्म, सस्कृति, सभ्यता तथा विचारो का सामना करना पडा। अतएव रक्षा निमित्त वे हिमालय के पर्वतीय भागो में चले गये। हिमालयीय क्षेत्र में नाग जाति के रहने का एक और कारण हो सकता है। असम किंवा नागालैड में नाग जाति पर्वतीय क्षेत्र में रहती है। शक जाति कश्यप गोत्रीय थी। कास्पियन सागर अर्थात् कश्यप सागर के आस-पास इनका निवास स्थान था। अतएव पुराणो में शक के साथ नाग जाति को रखा गया है। कश्यप की पत्नी कद्रू की जिन सन्तानो का उल्लेख ऊपर किया गया है वे दानव, खस, मुद्रादि थे। वे जातियाँ पर्वतीय क्षेत्र में निवास करती थी। इस समय भी वे पर्वतीय हैं। मैदान में आकर रहती है परन्तु वे अपवाद कही जायँगी।

तक्षक नाग की राजधानी तक्षशिला थी। वह पर्वतीय अचल में पडता है। खाण्डव वन दाह का एक सरल अर्थ है। वह इन्द्रप्रस्थ के समीप रहने वाली नाग जाति को उद्वासित कर उसे आर्य स्थान सुरक्षा की दृष्टि से परिणत करना था। महाभारत काल मे पाण्डव अपनी राजधानी के समीपस्थ अचलो में इसी जाति को रखना चाहते थे जो उनके अनुकूल थी।

राजा जनमेजय के नाग यज्ञ का एक और अर्थ है। तक्षक राज के कारण जनमेजय के पिता परीक्षित की मृत्यु हुई थी। प्रतिहिंसा की इस भावना से प्रेरित होकर जनमेजय ने नाग यज्ञ किया था। उन्हे यह भी भय था कि नाग जाति पुन सर उठाकर राज्य के लिए खतरा उत्पन्न कर सकती थी। एतदर्थ नाग यज्ञ अर्थात् नाग जाति के सहार का निश्चय जनमेजय ने किया था। अतएव नाग मानव थे। मानव प्राणी थे। उनमें और आर्यो में विवाह सम्बन्ध था। उन्हें विषधर सर्प मान लेना मूढता होगी।

नाग कश्मीर के मूल निवासी थे। नाग लोगो ने पिशाच तथा आर्य जातियो के प्रवेश का कश्मीर में स्वागत नही किया। प्रश्न उपस्थित होता है। कश्मीर में आर्यों अथवा पिशाचो इन में किसका रहना नागा जाति पसन्द करती थी। नाग जाति पिशाचो को नापसन्द करती थी। पिशाच उनके पडोसी

थे। पिशाच उत्तरी पंजाब एवं त्रिगर्त के पर्वतीय क्षेत्रो मे रहते थे। अतएव नागो से किसी बात पर पिशाचो का वैमनस्य होना स्वाभाविक था। आर्य अधिक सहिष्णु तथा उदार थे। कश्मीर के लिए नवीन थे। अतएव उन्होने पिशाचो की अपेक्षा आर्यों के साथ रहना अधिक पसन्द किया। आर्य कश्मीर मे आने लगे तो नागो ने उन्हें कश्मीर में बसने की स्वीकृति दे। उनके साथ अपने पडोसी पिशाचो की अपेक्षा अधिक हिल-मिल गये। मानवोंके उपनिवेशो का स्वागत किया। यहा मानव का अर्थ मनुवंशजो किंवा आर्यों से लेना चाहिए। कश्मीर में मूल निवासी नाग थे। कालान्तर मे पिशाचो ने कश्मीर में प्रवेश किया। अन्त में मानव लोगो का कश्मीर मे प्रवेश हुआ। वे आज भी कश्मीर में आबाद है। कश्मीरियो के वेशभूषा, रंग-रूप तथा मानवाकृति मे क्षेत्र की भिन्नता के अनुसार भिन्नता मिलने का यही कारण है।

नाग जाति भारत तथा अफगानिस्तान आदि पश्चिमोत्तर क्षेत्रो के निवासी थे। श्री ग्रियर्सन का सुझाव कि वे हुँजा के निवासी थे कहना कठिन है। हुजा प्राचीन हस द्वार है इस पर भी अभी विद्वानो मे मतभेद है।

महाभारत में नाग तीर्थ का उल्लेख दो स्थलो पर आया है। दोनों का उल्लेख वन पर्व मे है। प्रथम नाग तीर्थ कुरुक्षेत्र की सीमा पर स्थित था। द्वितीय गगद्वार तथा कनखल के समीप नागराज कपिल का स्थान था। इस तीर्थ में स्नान करने पर सहस्र कपिला गोदान का पुण्य प्राप्त होता है। (वन पर्व ८३·१४, ८४,३३) वर्णन मिलता है।

तृतीय शताब्दी तक शक पूर्वोत्तर प्रदेश तक फैल गये थे। वे गंगा के दक्षिण तट से लेकर सरयू की घाटी तक विस्तृत थे। जैन ग्रन्थो से प्रतीत होता है कि पाटलीपुत्र के मुरुण्डो के अधीन था। सिहासन भिक्षा जैन ग्रन्थ से मालूम होता है कि कान्यकुब्ज मुरुण्डो के अधीन था। मुरुण्ड कौन थे यह प्रश्न उठता है। प्रयाग के समुद्र गुप्त के शिला लेख मे मुरुण्ड का उल्लेख मिलता है। मुरुण्डो का स्थान लम्पक किंवा लछमान था। प्रयाग के स्तम्भ से प्रकट होता है। समुद्र गुप्त के प्रभुत्व को शक स्वीकार करते थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शक क्षत्रपो का राज्य समाप्त किया था। मथुरा मे शक राजाओ के काल में जैन तथा बौद्ध धर्म विकसित हुआ था। कनखेरा अभिलेख से पता चलता है कि शक जाति कुशानों के समान महासेन अर्थात् कार्तिकेय की पूजा करती थी। कार्तिकेय को स्कन्द भी कहते हैं। समुद्रगुप्त के नाम के साथ दैव पुत्र शाही शाहानुशाहीकी उपाधि अभिलेखो में प्रयुक्त की गयी है। इस उपाधि का मूल शक परम्परा है।

नाग पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। नाग पूजक शिवभक्त होते हैं। शिव का आभूषण नाग है। इस रूपक का यह अर्थ निकलता है कि, शिव के नाग भक्त थे। शैव थे। शिव उपासक थे। पुरातन शैवधर्म किंवा मत का भूषण नाग जाति थी। शिव मत की अनुयायी थी। नाग, भूत, प्रेत, पिशाच आदि जातिया शिव उपासक थी। उन्हे शिव के अनुचरो के रूप मे प्रकट किया गया है। कालान्तर मे नाग, पिशाच आदि जातियो के मूलरूप को लोग भूल गये होगे। किसी अतीत गाथा अथवा रूप के आधार पर उन्हे अनुचर मान लिया गया।

इस रूपक को सत्य मानकर शिव की मूर्ति की कल्पना उसी आधार पर की गयी होगी। शिव का मानव आकार किंवा मूर्ति नागादि से मण्डित कर दी गयी। नागेश्वर नाम से शंकर के अवतार की कल्पना की गयी। दारुक राक्षस को शकर ने मारा था। शिव को नागनाथ कहा जाने लगा। (शिव शतक रुद्र-सहिता ४२।) नागनाथ का उपलिंग भूतेश्वर रूप में पूजा जाने लगा। (शिव कोटि रुद्र सहिता ४ : १)।

नागेश्वर नागनाथ आदि नाम भगवान् शकर के रखे गये। उनका शाब्दिक अर्थ होना है नागो के ईश्वर अर्थात् राजा। इसी प्रकार नागनाथ का अर्थ होता है नाग जाति के स्वामी। प्रकट होता है कि राक्षस तथा नाग जाति में सघर्ष हुआ था। उस सघर्ष में नागेश्वर अर्थात् नागा के राजा जिन्हें सम्भवत कालान्तर मे शकर का अवतार मान लिया गया होगा। दक्षिण में बहुत लोग शिवाजी महाराज को शिव का अवतार मानते नही हिचकते। कुछ इसी प्रकार की बात पुराकाल मे हुई होगी। राक्षस पिशाच तथा नाग तीनो जातियाँ हिमालय की पर्वतीय जातिया थी। उनमे युद्ध हुआ होगा। राक्षस तथा नागजाति के युद्ध मे नागजाति विजयी हुई थी। उसके नेता नागेश्वर थे। नागेश्वर को उनकी वीरता किंवा अपने जाति के नेता किंवा उद्धारक होने के कारण अनेक गाथाएँ तथा आख्यायिकाएँ उनके सम्बन्ध में बन गयी होगी। कुछ शताब्दियो पश्चात् विशिष्ट गुणो के कारण नागा जाति ने अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए उन्हें अवतार मान लिया।

नाग देवो की मूर्तिया बनायी जाती थी। नाग मूर्तियो किंवा प्रतिमाओ की विशेषता यह होती थी कि कटि से अधोभाग नाग की पूछ का रूप होता था। अर्थात् कटि से नीचे का हिस्सा सर्प तुल्य तथा कटि से ऊपर अर्थात् ऊर्ध्व भाग मनुष्य का होता था। यदि नागिन हुई तो उसमे स्त्री आकार नारी का होता था उसे ककण, भुजाबन्ध, माला आदि स्त्रीजनोचित आभूषण द्वारा आभूपित किया जाता था। यदि नाग किंवा पुरुष देवता हुए तो यज्ञोपवीत, मुकुट, कण्ठहार आदि से अलकृत किया जाता था। छत्र के स्थान पर फैला फण होता है। इस प्रकार की पूर्वकालीन पाषाण मूर्तियाँ प्राय खण्डित बहुत मिलती हैं। मुसलिम काल मे मन्दिरो तथा मूर्तियो के नष्ट करने के उत्साह में उन्हें खण्डित कर फेंक दिया गया। आधुनिक काल की मूर्तियो में केवल नाग किंवा सर्प का रूप बना मिलता है। कालिय नाग की मूर्तियाँ निस्सदेह मध्य तथा वर्तमान युग में अधोभाग नाग तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य रूप में मिलती हैं।

यही पर एक दूसरी मूर्ति शयनावस्था में है। मूर्ति का अधोभाग नाग तथा कटि से ऊपर का पुरुष का है। मस्तक के पृष्ठभाग के ७ फण उठे शिरोभाग की रक्षा कर रहे हैं। कानोमें कुण्डल हैं, स्कन्ध प्रदेश पर यज्ञोपवीत है। मस्तक पर मुकुट तथा कण्ठ में मुक्तामाला है। कोनार्क मन्दिर भुवनेश्वर (उडीसा) में नाग की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ खुदी लगी हैं। किन्तु सब का कटि से नीचे अधोभाग नाग की पूँछ तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य का है।

महाबलीपुरम मे चट्टान पर किरातार्जुन की गाथा मूर्तियो में उत्कीर्ण है। उनमें तपस्वी, यक्ष, गन्धर्व के साथ अनेक देवी देवता दिखाये गये हैं। वहाँ चट्टानो की बीच मे एक गहरा स्थान ऊपर से नीचे तक गया है। वह दोनो चट्टानो को एक प्रकार से अलग करता है। उसी धसे हुए अथवा गलियारे जैसे स्थान में नाग मूर्ति ऊपरसे नीचे तक खोदी गयी है। उसका कटि प्रदेश अधोभाग सर्प तथा ऊपरी मनुष्याकृति है। मस्तक पर फण की छाया है। वह मूर्ति सन् ६४८–६७'१ की कृति है। इससे स्पष्ट होता है कि नाग पूजा समस्त भारतवर्ष में कश्मीर से लेकर धुर दक्षिण तक प्रचलित थी।

अफगानिस्तान में एक बहुत बडा वर्ग है वह अपने को पुरातन नाग वशीय मानता है। इस प्रकार भारत के पश्चिम अफगानिस्तान अर्थात् आर्याना से लेकर पूर्व नाग प्रदेश तक नाग पूजा का महत्त्व था। एक बहुत बडा वर्ग नाग जाति किंवा वेष से अपनी वश परम्परा जोडता था।

एक काल था जब मनुष्येतर प्राणियो में मनुष्यो की कल्पना की गयी थी। मत्स्य अवतार की कथा तथा भगवान् का मत्स्य रूप इसी प्रकार दिखाया गया है। अधोभाग मत्स्य तथा ऊर्ध्वभाग मनुष्य का है। नरसिंह अवतार में यह कल्पना उलट दी गयी। अधोभाग मनुष्य तथा ऊर्ध्वभाग सिंह का दिखाया गया है।

मत्स्य तथा नरसिंह दोनों अवतार माने गये है। उन्हे मान्यता दी गयी है। नाग भगवान् का रूप नही हो सकता। उसे भगवान् की शय्या अर्थात् शेषशय्या कहा गया है। नाग को आर्य देवता विष्णु से निम्न स्थान अर्थात् उनकी शय्या के रूप में चित्रित किया गया है। कालान्तर मे इस विषय पर विवाद चला होगा। अतएव मध्य का मार्ग निकालकर नाग तथा मनुष्य दोनो के मिश्रित रूप की कल्पना नरसिंह तथा मत्स्यावतारो की तरह की गयी। अनन्त नाग को मनुष्य तथा नाग का मिश्रित आकार देकर उन्हें भगवान् का रूप दे दिया गया। उनका अधोभाग नाग और ऊर्ध्वभाग मनुष्य का बनाया गया।

सिन्धु सभ्यता काल मे नाग पूजा प्रचलित थी। मोहेंजोदारो की सील से प्रगट होता है कि फणधर नाग के पृष्ठ भाग में दो उपासक खडे है। उनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सिन्धु-सभ्यता काल मे नागो का तथा उनकी पूजा का महत्त्व था। हरप्पा मे प्राप्य सग्रह मे नाग के सम्मुख बैठ कर पूजा करते लोगो की आकृतियाँ मिली है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशो मे नाग पूजा अत्यन्त प्रचलित थी। ईरान, एशिया माइनर, मिश्र, अबोसीनिया, यूनान, इटली, उत्तरी पश्चिमी यूरोप, मेक्सिको, पेरू, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन, जापान तथा श्री लका में नाग पूजा प्रचलित थी। अत्यन्त प्राचीन लुप्त जाति कोनीशिया तथा मिश्र का नाग दैवी प्रतीक था।

पेरू तथा मेक्सिको के प्राचीन मन्दिरो पर नाग मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। उत्तरी अमेरिका के आदम कन्ट्री तथा ओटियो में १००० लम्बी मिट्टी की बनी नाग मूर्ति मिली है। केल्ट जाति मे नाग सम्बन्धित अनेक गाथायें प्रचलित हैं। चीन मे नाग पूजा के लिए मन्दिरो का निर्माण किया गया है। जापान में नाग का रूप भगवान् की आतमा का द्योतक माना जाता रहा है।

बाइबिल वर्णित सिनाई इपिदौरस तथा जरमेशिया लोगो के कुटियो मे नाग स्वास्थ्य तथा सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था।

अरब, यूनान, रोम, यहूदी, अमेरिका, रेड इण्डियन, चोगा तथा एन्प्रेिस जाति मे सर्पदंश के स्थान पर नाग को मार कर उसकी मज्जा तथा मास लगाया जाता था। उसका मास भी खिलाया जाता था। विश्वास था कि सर्पदश से व्यथित व्यक्ति इस प्रकार आरोग्य प्राप्त करता था।

सीरिया (अमरदेश) तथा मिश्र में नाग Wisdom गुण का देवता माना जाता था। फरोहा के शरीर पर नाग तथा गरुड दोनो की देवतुल्य मूर्तियाँ मिलती है। हेओ अथवा चाइल्डियन जाति की गाथाओ में नाग के सम्बन्ध की अनेक गाथाएँ मिलती है। नाग को सूर्य का वशज मानते थे। उसके फण को अपने गोत्र का चिह्न मानते थे।

कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी के विषय मे कथा है कि उनमे नाग रक्त का अंश था। महाभारत की कथा के अनुसार वासुकी नाग ने अपने बहिन का विवाह जरत्कारू ऋषि से किया था। विरूपाक्ष गण नाग कहे गये हैं। नहुष देवता के शाप से नाग हो गये थे। अर्थात् उन्हे जाति च्युत कर दिया गया था।

बात यही तक नही समाप्त होती। मैं लिख चुका हूँ कि मथुरा अर्थात् व्रज मण्डल के समीप नाग जाति का प्रभुत्व था। इस जाति की आबादी थी। भगवान् श्री कृष्ण को भी भारतीय विद्वानो का एक प्रबल मत नाग वशीय कहता है। कालिय नाग के मारने की गाथा इससे सम्बन्धित की जा सकती है। कालिय नाग जो वास्तव में नागवंशीय जाति का शक्तिशाली व्यक्ति था। कृष्ण की स्पर्धा करता था। कृष्ण ने उसे मारकर यमुना उपत्यका को कालिय नाग के अत्याचार से मुक्त किया था। यह कथा पुराणो मे तोड़-

मडोर कर लिखी गयी है। कृष्ण के समय जबसे कश्मीर का इतिहास प्रारम्भ होता है नाग जाति का प्रभाव राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में पाया जाता है।

पुराणों से ज्ञात होता है। नाग वशी नरेश विदिशा, पद्मावती, मथुरा एव कातिपुर मे राज्य करते थे। गुप्त वश के उत्थान के पूर्व एव कुशाण राज्य के अन्तिम चरण में विभिन्न राजवशो का शासन उत्तर एव मध्य भारत में था। दूसरी तथा चौथी शताब्दी के अन्तर्गत नागो का उत्तर भारत में राज्य समृद्धि पर था। वाकाटक एव गुप्त वशी अभिलेखो एव मथुरा के समीपवर्ती भूखण्ड से प्राप्त मुद्राओ के अध्ययन से नाग वश के राजाओ तथा उनके विभिन्न स्थानो पर प्रकाश पडता है। उनमे प्रकट होता है। ईशा पूर्व प्रथम शती से चौथी शताब्दी तक उत्तर भारत मे नाग वश राज्य करता था। वाकाटक के अभिलेखो में नाग के लिये भारशिव शब्द प्रयुक्त किया गया है। पूना ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि भारत सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय नागवश से सम्बन्ध था। चपक ताम्र पत्र से ज्ञात होता है कि वाकाटक राजा भारशिव महाराज भव नाग का दौहित्र था। उस लेख से ज्ञात है कि नागराजा भवनाग शिवलिंग को मूर्धा पर रखता था। शिव का भार वहन करने के कारण 'भारशिव' नामकरण हो गया था।

नागवश विदिशा से लेकर कातिपुर, उत्तरप्रदेश तक शासन करता था। वायु पुराण से प्रकट होता है कि पद्मावती में नव नाग शासन करते थे। मुद्राओ के अभिलेखो से दश नाग राजाओ के काल पर प्रकाश पडता है। उनमें विभु नाग, भीम नाग, देव नाग, व्याघ्र नाग आदि का नाम मुद्राओ से ज्ञात होता है। गणपति तथा नागसेन का नाम प्रयाग के स्तम्भ पर अकित है। हर्षचरित में भी नागसेन का उल्लेख मिलता है। नागसेन को समुद्रगुप्त ने पराजित किया था। पद्मावती नाग शाखा का वह अतिम राजा था। पद्मावती के नाग राजाओ में भव नाग का विस्तृत इतिहास ज्ञात है। उसका राज्य काल सन् ३०५–३४० के मध्य था। उसकी कन्या का विवाह वाकाटक युवराज गौतमीपुत्र से हुआ था।

मथुरा मे नाग मुद्रायें दो वर्गों की मिली है। राजाओ के नामात में 'मित्र' शब्द है जैसे गोमित्र, सूर्य्यमित्र, विष्णुमित्रादि। वे मुद्रायें ईशा पूर्व प्रथम शती की है। द्वितीय प्रकार की मुद्राओ पर राजाओ का नामान्त 'दत्त' शब्द से यथा—पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त आदि से होता है। वे मथुरा के शक राजाओ के समकालीन थे। द्वितीय शताब्दी में नाग वश राजाओ की स्वतन्त्र स्थिति ज्ञात होती है। उनका राज्य बुदेलखण्ड तथा वाराणसी तक विस्तृत दिखाई देता है। कुषाण राजाओ की अवनति के साथ नाग राजाओ की उन्नति होने लगी थी। प्रथम नाग सम्राट् वीरसेन अन्तिम कुषाण तथा क्षत्री राजाओ को पराजित किया था। उसकी मुद्रायें उत्तर प्रदेश तथा पजाव में प्राप्त होती हैं।

मध्य चौथी शताब्दी में गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत में नाग राज गणपति नाग तथा नागसेन को पराजित किया था। नागो से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के लिये समुद्रगुप्त ने द्वितीय चन्द्रगुप्त का विवाह नागकन्या कुवेरनाग से किया था। उससे उत्पन्न राजकुमारी प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन से हुआ था।

पाँचवी शताव्दी के एक लेख से पता लगता है कि शर्व्व नाग सम्राट् स्कन्दगुप्त के काल में अतर्वेद के किसी अचल का शासक था। मेरे निवासस्थान दशाश्वमेध-घाट वाराणसी का नामकरण वाकाटक अभिलेख से पता चलता है कि नाग भारशिव ने कुषाणो को नष्टकर वहाँ दश अश्वमेध यज्ञ कराया था।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नागपूजा का वर्णन मिलता है :

ये दो रोचने दिवो ये वासूर्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सद कृते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥

काण्ड ४ : प्रपाठक २ अनुवाद ८

महाभारत मे नागपूजा के विषय मे विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है । (वन . ८२ . १११३; ८३ . १४ द्रोण . २०२ . ७३ , कर्ण . ५७ . ७०)

नीलमत पुराण मे नाग पूजा के सम्बन्ध मे निम्नलिखित उल्लेख के अतिरिक्त और भी श्लोक संख्या 16, 182, 400, 670, 845, 849, मे मिलते है ।

फणावलीरत्नसहस्रचित्रे शेषस्य भोगे विमले विशेषे ।
लोकस्य सर्वस्य तु चिन्तयानः शुभाशुभं रक्ष ममाद्यदेव ॥ 64 = १०२, १०३

× × ×

भक्ष्यमाणेषु नागेषु गरुडेन महात्मना ।
वासुकिः शरणं प्रायाद् देवदेवं जनार्दनम् । 59 = ९७

× ×

सतीदेशे च ये नागा वसिष्यन्ति महाबला ।
तेषां राज्ये महाभाग त्वं नीलमभिषेचय ॥ 69 = १०९

× × ×

भक्तानुकम्पी भक्तश्च देवदेवे जनार्दने ।
तस्यातिदयितश्चासि यथा नाग स वासुकिः = 355 = ४५८

× × ×

नागस्य यस्य ये स्थाने निवसिष्यन्ति मानवा. ।
ते तं संपूजयिष्यन्ति पुष्पधूपानुलेपनैः ॥ = 216 = २८९

× × ×

मम पूजा च कर्तव्या स्नानं नागस्य चाप्यथ ।
फलपत्रे प्रदातव्ये नगे मेरूद्भवे तथा ॥ 462 = ५८१
इरावते तु य पूजां करोति मम काश्यप ॥
इरापुष्पैर्भृशं तेन तुष्टिर्मेऽपि प्रजायते ॥ 678 = ८०२, ८०३

× × ×

पञ्चमी द्वादशी चैव पूर्णमासी तथैव च ।
सर्वेषामेव नागानां यात्राकर्मणि पूजिता ॥ 845 = १०१६, १०१७

× × ×

चतुर्थेऽहनि कर्तव्यं पिशाचानां च पूजनम् ।
पञ्चमेऽहनि कर्तव्य स्थाननागस्य पूजनम् ।। 849 = १०२०, १०२१

भारत-वर्मा की सीमा पर नागवासुकी मठ था। उस मठमें नाग वासुकी की मूर्ति थी। उसका शरीर मनुष्य किन्तु मुख फणाकार भयकर सर्प का था। उसके सम्मुख नारी की वलि दी जाती थी।

दक्षिण पूर्व एशिया के इतिहास में नाग जाति का मुख्य स्थान है। कश्मीर के समान आर्यों के प्रवेश के पूर्व वहाँ नाग जाति रहती थी। कम्वुज अर्थात् कम्वोडिया के विषय में चीनी गाथा है—लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व कम्वुज निवासी नगे रहते थे। शरीर पर गुदना गुदवाते थे। नौकरो तथा सम्बन्धियो को मार कर मृतक शव के साथ कब्रमें गाड देते थे। स्त्री एव पुरुषो में लज्जा का अभाव था। उन का जीवन अरण्यवासी था। वहाँ धर्म एव मानवीय विचार उत्पन्न नही हुए थे।

कौण्डिन्य भारतवासी थे। सोम वशी ब्राह्मण थे। वे जहाज द्वारा कम्बुज तटपर आये। वहाँ की रानी का नाम सोमा था। वह नाग कन्या थी। चम्वा चम्पा अर्थात् वीतनाम के आलेखो में उसका नाम नागिन दिया गया है।

कौण्डिन्य का जहाज लूटने सोमा आयी। संघर्ष में सोमा ने आत्म समर्पण कर दिया। कौण्डिन्य की विजय हुई। राजकन्या सोमा के साथ कौण्डिन्य ने विवाह कर लिया। उन्होने राज्य स्थापित किया। भारतीय सस्कृति तथा सभ्यता फैलायी। उनके नाम पर देश का नाम कम्बुज पडा। भवपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। जनता को वस्त्र पहनना सिखाया। अक्षर ज्ञान कराया। उसके वंशजो ने २ शताब्दी तक राज्य किया। उस वश का अन्तिम राजा वनपण था।

एक दूसरी गाथा है। इन्द्रप्रस्थ के राजा आदित्य थे। अपने एक पुत्र से अप्रसन्न हो गये। उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। वह कम्बुज आया। कम्बुज मे उस समय चम्पा का एक राजा राज्य करता था। राजा को उसने मार भगाया। एक दिन समुद्र तट पर 'नागी' अर्थात् एक नाग कन्या से भेंट हुई। दोनो में अनुराग हो गया। नागी का पिता नाग राजा था। उसका नागी से विवाह हो गया। उसने अपने राज्य की राजधानी इन्द्रप्रस्थपुर अर्थात् वर्तमान एगकोर वनाया।

तामिल काव्य में एक नगर नागपुरम् का वर्णन मिलता है। वह जावा में था। वहाँ के राजा इन्द्रवशीय भूमिचन्द्र तथा पुष्पराज थे।

नागी गाथा काची के पल्लवो में प्रचलित है। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने नागी कन्या से विवाह किया था। उनकी सन्तानें स्कन्दशिष्य नाम से विख्यात हुई। वे पल्लवो के पूर्वज थे। नवी शताब्दी के शिलालेख से प्रकट होता हैं। उत्तरी आरकट से इसका शिलालेख मिला है। उसके अनुसार विरूपाक्ष ने एक नागी से विवाह किया था। उसमें उसे राजचिन्ह मिला। तत्पश्चात् स्कन्द शिव आए।

नाग जाति के सम्वन्ध में एक कथा प्रचलित है। विश्व के आदि काल में केंग काग (शेषनाग) थे। एक पुरुप तथा स्त्री भी थे। भारतीय गाथा के अनुसार महाप्रलय के पश्चात् शेषशायी विष्णु तथा लक्ष्मी शेप रह जाती है।

उक्त पुरुप अम्वर का व्यापार करने के लिए पर्यटन आरम्भ किया। उसकी स्त्री का नाम 'री' था। कन्या का नाम 'एल' था। एकदिन 'री' जगल में लकडी काटने गयी। उसकी कुल्हाडी अकस्मात् नाग पर

पड़ी। नाग ने कुल्हाड़ी ले ली। स्त्री ने अनुनय विनय किया। नाग इस शर्त पर कुल्हाड़ी वापस करने के लिए तैयार हुआ कि स्त्री उसके साथ विहार करेगी। स्त्री ने शर्त मान ली। उनकी सन्तान नाग जाति कहलाई।

बस्तर में विवाह के समय वर तथा कन्या को राजा तथा नागिन का अभिनय करना पड़ता है। चारों ओर बान्धव बैठते हैं। एक तश्तरी में जलती मोमबत्ती आती है। बैठे लोग एक दूसरे को गाली पास करते हैं। नागिन देवी का गीत गान होता है।

दक्षिण तथा मध्य भारत में नाग वंश, नागजाति तथा उनके सबल राज्यों का उल्लेख चौदहवीं शताब्दी तक मिलता है। सेन्द्रक वंश का राज्य बम्बई से मैसूर तक मिले भूखण्ड पर पाँचवीं शताब्दी से ७ वीं शताब्दी तक फैला था। प्रथम वे कदम्ब तत्पश्चात् पश्चिमी चालुक्य वातापी के नियन्त्रण में थे। वे अपने को भुजगेन्द्र घोषित करते थे।

दक्षिण में सिन्द का राज्य १० वीं से १२ वीं शताब्दी तक कायम रहा। उनकी तीन शाखाएँ सगल-कोट के सिन्द बेलगवती के सिन्द तथा एलपुरम के सिन्द हो गयी थी। मध्यप्रदेश स्थित बस्तर के राजा कश्यप गोत्रीय छिन्दक वंश के नाग जातीय राजा थे। उनकी राजधानी बारसुर अर्थात् वर्तमान बस्तर स्थान है। इस राज्य का सन् १३२४ ई० तक ऐतिहासिक अस्तित्व मिलता है। इसी प्रकार बेल्लारी का नाग वंश तथा जाति प्रसिद्ध है।



परिशिष्ट 'च'

भेदा देवी

(तरग १ ' ३५ पृष्ठ ७४)

स्तीन भेदा देवी के स्थान पर सन् १८९५ ई० सितम्बर मास में आये थे । उन्हे भ्रम हुआ था वही मुझे भी हुआ । लोग भेदा देवी का नाम भूल गये है । अपने मित्र श्री त्रिलोकनाथ खजाची पुरातत्त्व विभाग निरीक्षक कश्मीर से यहाँ का मार्ग पूछा । वे अपनी माता के साथ बाल्यावस्था मे जब उनकी ५ वर्ष की आयु थी यात्रा किये थे । उन्होने मुझे वही मार्ग बताया जिसे स्तीन ने सर्व प्रथम पकडा था । हाल्मोगलपुर, सुकरू जिला में एक दूसरी भेदा देवी की स्थापना की गयी है । अतएव मूल भेदा देवी की यात्रा करना लोग भूल गये ।

मै श्रीनगर सुपयान सडक से चला । पुलवाया आया । पुलवाया से राजपुर पहुँचा । यह स्थान श्रीनगर से २० मील पर है । वहाँ पुरानी मुगल सडक पर धामेल से आगे बढ गया । श्री खजाची जी के बताये स्थान पर पहुँचा । वहाँ पर कुछ ब्राह्मण मिले । उन्होने नवीन भेदा देवी का मार्ग तथा स्थान बताया । उन्हे मेरी बातें कुछ आश्चर्यजनक लगी । उन्होने कौतूहल प्रकट किया । उनकी समझ मे हमारी बातें नही आ रही थी । कुछ समय पश्चात् वृद्ध पण्डित जी वहाँ आ गये । खीझ गया था । उनसे मैने अपना प्रयोजन समझाया । उन्होंने सुगम मार्ग तथा भेद गिर का पता बताया ।

वहाँ उपस्थित एक सज्जन से किसीको मार्ग दिग्दर्शन निमित्त साथ चलने की प्रार्थना की परन्तु वृद्ध पण्डित जी तथा कोई दूसरे उपस्थित सज्जन तत्पर नही हुए । लोगो को मूल भेदा देवी का सुना सुनाया ज्ञान था । अतएव राजपुर पुन लौट आये । यहाँ चौराहा है । चौराहा से एक सडक कोहल होती हुई अवन्तीपुर जाती है । दूसरी एक कच्ची राजपुर से सडक ९ मील लम्बी केलर माशपुर तक जाती है । सडक अच्छी नही थी । राज्य सरकार इसे उत्तम सडक मे परिवर्तित करना चाहती है । सडक इतनी खराब थी कि ९ मील का मार्ग मोटरकार से २½ घण्टा में समाप्त किया ।

केलरमाशपुर मे एक डाकखाना है । यह डाकखाना हाजीकबीरजू के मकान में है । उनके लडके पोस्ट मास्टर है । हमारी कार इसी स्थान पर आकर रुक गयी । यहाँ से चढाई का रास्ता आरम्भ होता है । एक मार्ग गाव में तथा दूसरा ब्रिजबरारी जाता है । इस तिरमुहानी से जिप दो मील और आगे जा सकती है । हम परेशानी मे थे । हमारी कार आगे बढ नही सकती थी । लोगो ने कहा । पैदल जाने से रात हो जायेगी । वहाँ कही ठहने का स्थान नही था । कोई अच्छा गाँव नही पडता । उपत्यका मे यत्र-तत्र पर्वतीय गूजरो के बिना दरवाजे के मकान लकडी के कन्दो से बने मिलते हैं । इसी समय एक लकडी ढोने वाला अपने चार खच्चरो के साथ हमारे भाग्य से तिरमुहानी पर आ गया । वह लकडी लेने ब्रिजबरारी जा रहा था । मैं खच्चरो का उपयोग करना चाहता था । मुह मागा दाम देने के लिए तैयार था । वह किसी तरह हम लोगो को ले जाने

के लिए तैयार नही हो रहा था। मुझे धोती चट्टी नंगे सर देखकर कौतूहल के कारण ग्रामीण वहा एकत्र हो गये थे। हाजी साहब तथा गाँव वाले उसे समझाने लगे।

मार्ग मे एक घुडसवार गुलाम मुहम्मद शाह साकिन मशवादा मिले। हम कुछ दूर तक चले थे। वे कभी रुकते और कभी पीछे रुक जाते थे। कभी आगे निकल जाते थे। हमारी कार उनके टट्टू से भी मन्द गति से चल रही थी। वे मेवे के व्यापारी थे।

एक जगह उन्हें हमने रुका देखा। मध्याह्न काल था। व्यवहार पटु थे। तुरन्त अपने लडको से नाक मंगाया। वे इतने मीठे तथा रसदार थे कि हाथो से नाक काटते ही रस चूने लगा। निकटवर्ती एक वृक्ष से उनका लडका नाक तोड रहा था। उन्होने बडे मुहब्बत तथा आत्मीयता के साथ हमें अपना मेहमान बना लिया। हमे भूख और प्यास दोनो लगी थी। इस समय नाक अमृत फल प्रतीत हुआ। उनकी बहुत शुक्रिया अदा किया। हमारा उद्देश्य जानकर उन्होंने अपने पुत्र अली मुहम्मद शाह को साथ कर दिया। वह ब्रिजबरारी तथा भेदा देवी' का स्थान जानता था। वह सहर्ष तैयार हो गया। उसमे युवक जन्य उत्साह था। उसमे मानवीय समवेदना थी। सडक बहुत खराब थी। पत्थर के टुकडे सडक मे पडे थे। पत्थरो को हटाकर बार-बार चढना-उतरना पडता था। अली मुहम्मद पत्थरो को उठाकर रास्ता बनाते पैदल चलने लगा। उसे इस काम मे जैसे अद्‌भुत रस मिलता था।

केलरमागपुर मे हाजी साहब तथा अली मुहम्मद के प्रयास से काफी किराया देने पर खच्चर ठीक हो गया। शर्त ठहरी। वापसी मे केवल एक मील खच्चर हमे पहुँचाकर लौट जायेगा। शेष मार्ग पैदल वापस आना होगा। कोई दूसरा उपाय नही था। विवश होकर तैयार होना पडा। जगली सडक भेदगिर अर्थात् गगोद्‌भेद तीर्थ तक जाती है। जिप गाडी वहाँ अभी नही पहुँच पाती। मार्ग मे मीलो दूर पीछे रह जाती है।

विरानो नदी की उपत्यका से चलना पडता है। कुछ दूर चलने पर गाँव नही मिलते। केवल गूजरो के लकडो के बने मकान यत्र-तत्र मिलते है। गूजर गाय, भेड तथा बकरी पालते है। बडे परिश्रमी होते है। उनका जीवन सकट तथा तूफानो के बीच गुजरता है।

गूजरो के मकान नही होते। जंगली लकडियो की शहतीर काट लेते है। उन्हे चारो ओर खडाकर द्वार विहीन चौखूटा, तीन तरफ से बन्द स्थान कोठरीनुमा बना लेते हैं। छत लट्ठे से पाटकर उस पर मिट्टी रख देते है। मिट्टी पर घास जम जाती है। मिट्टी और घास के कारण वर्षा काल मे जल कोठरी में चूता नही। इस प्रकार वर्षा से रक्षा कर लेते है। एक ही कोठरी मे पशु, घास तथा स्वय रहने की व्यवस्था करते है। मक्का की रोटी और दूध अथवा मक्का की रोटी मिर्च लगाकर खाते है।

उपत्यका देवदार के वृक्षो से भरी है। सरिता जल कल-कल करता चिर गीत गाता, प्रवाहित रहता है। आदि काल से उपत्यका वह गीत सुनती आई है। प्रलय काल तक सुनती रहेगी। इस गीत को सुनते न तो उपत्यका थकी है और न गाने वाला प्रवाह कभी गतिहीन हुआ है। उपत्यका की हरियाली, शान्त निस्तब्ध वातावरण, उत्तु ग मन्दिराकार देवदार तरुओ का चुपचाप प्रकृतिकी सुन्दरता निरखते-निरखते शताब्दियो तक खडे रहना। फिर गिर जाना। फिर अपने आप उगना। यह क्रम विश्व के इस कोने मे जारी है। जारी रहेगा। मनुष्य इन निरीह वृक्षो का अपने लिए नाश कर उनकी ज्योति में अपना घर उजाला करने का प्रयास करेंगे। अनेक विचार आते-जाते हृदय पर विचित्र प्रभाव डालते थे।

उपत्यका के दोनो पार्श्वो मे ऊँचे पहाड है। उनकी ढालों पर कही-कही गूजरो के आवास है। उपत्यका मे जहाँ कही खुली समतलभूमि मिल गयी थी उन्हीमे कुछ खेती कर ली गयी थी। मेरी यात्रा के समय गूजरो

के प्राय निवास-स्थान खाली पडे थे। अक्तूबर मास के पश्चात् शीत एव तुषार पात आरम्भ हो जाता है। उससे वचने और ढोरों की रक्षा करने के हेतु पूरी गृहस्थी खच्चरो पर लादकर ढोरो के साथ गरम स्थान अर्थात् श्रीनगर की तरफ चल देते हैं। वहाँ से जम्मू प्रदेश की तरफ जहाँ बरफ नही गिरती शरण लेते हैं।

मुझे इस नीरव स्थान में, प्रकृति की इस गम्भीर अभिरामता में, भयकरता का बोध हो रहा था। कुछ आगे वढने पर ढोल वजने की आवाज सुनाई पडने लगी। मन एक बार कबीले वालो का स्मरण कर काँप उठा। कवीलो के सम्बन्ध में अनेक क्रूर गाथाएँ सुन रखा था। उनसे सम्बन्धित अमानुषी कहानियाँ पढ चुका था। मैं हिन्दू था। शताब्दियो पूर्व गूजरो की जाति हिन्दू थी। किन्तु आज बात उल्टी थी। सभ्यता की किरण यहाँ तक नही पहुँच सकी थी। साहस केवल इसलिए था कि हमारे अली मुहम्मद तथा खच्चर वाले दोनो मुसलमान थे। उन पर अविश्वास करने का मुझे कारण नही दिखाई पडा। तथापि काशी से सहस्रो मील दूर, इस एकाकी स्थान में, यदि कोई मुझे मार दे, मेरा सामान, रुपया-पैसा छीन ले तो मैं ऐसी अवस्था मे क्या कर सकूँगा ? विचार आते ही सिहर गया। बहुत दुनिया घूम चुका था। प्राय अकेला हो घूमा था। अपने जीवन में कुछ और करना वाकी नही था। मैंने खच्चर को चाबुक लगाया। आगे बढता चला गया।

कुछ दूर चलने पर देखता हूँ कि दो व्यक्ति ढोल बजा रहे थे। और लगभग पचास गूजर एक साथ पक्तिवद्ध घास काट रहे थे। उनके हाथो में चमकती हसिया थी। वे इतनी धारदार थी कि दूर से ही चमक रही थी। वे काटते आगे वढते जाते थे। ढोल वाला व्यक्ति पक्ति के एक भाग में एक छोर से ढोल बजाता हुआ दूसरे छोर तक आता और पुन बजाते हुए पहले छोर तक लौट जाता था। वह पक्ति के पृष्ठ भाग में आता और जाता था। वे हमें देखकर और उत्साह से ढोल बजाने लगे। उपत्यका ढोलो की गम्भीर ध्वनि एव उसकी प्रतिध्वनि से मुझे भयावनी लगने लगी। किन्तु घास काटने वालो पर उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती थी। उनमे उत्साह उत्पन्न होता था। एक ही काम करते रहने वाली नीरसता दूर होती थी। हाथ तेजी से चलते थे। वे घास काटते पीठ के पीछे जमीन पर शाली की तरह जुट्टो में रखते, खिसकते आगे वढते थे।

जैसे जैसे भेदा देवी का स्थान समीप आता गया जगल गम्भीर होता गया। देवदार तथा चीड के वृक्षो की आवलिया घनी होने लगी। भूमि पर वृक्षो की सघनता के कारण सूर्य की किरणें पडना कठिन हो रहा था।

कुछ दूर और आगे वढने पर पुन घास का एक छोटा मैदान मिला। यहा भी गूजर ढोल वजाकर घास काट रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि जिन गूजरो की जीविका उपत्यका में उपजे मक्का की फसल पर निर्भर थी, वे अपने ढोरो सहित शीत ऋतु में भी खेतो पर रह जाते हैं।

तुषार किंवा हिमपात के समय घास नही रह जाती। वृक्षो में हरी पत्ती नहीं दिखाई देती। पतझड जैसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। गूजर तथा स्थानीय कृषक घासो का वण्डल अपने आवास में रख लेते हैं। एक ही कोठरी मे घास, पशु तथा अपने कुटुम्ब के साथ रहते हैं। यह जीवन वडा कठिन है। उनके शरीर पर पडे वस्त्रो से दुर्गन्धि निकलती है। वे मैले रहते है। दाढी तथा वाल वडे हो जाते हैं। इस समय भी मैंने जितने गूजरो को देखा सवकी दाढी लम्वी, वाल लम्बे तथा सर पर कुल्हड के ऊपर पगडी थी। वे काबुली पठान जैसे लगते थे। केवल रग कुछ पठानो से झावरा था। ढोरो के साथ रात-दिन रहते रहते उनके आचार-विचार पर पशु जीवन का प्रभाव दिखाई पडता था।

सरिता की धारा के दोनो पार्श्व मे पगडण्डी है। वाम तटीय मार्ग से चलना अच्छा होगा। मार्ग में

बहुत घना जंगल है। यहा के वन की लकडियाँ किंवा वनो के घन का उपयोग अभी तक नही हो रहा है। कल्हण ने मार्ग को भेदा वनपथ कहा है। यह विरानी उपत्यका कही जाती है। मालूम होता है कि यहा आने का मार्ग उस समय सुगम नही था। श्रीवर ने जैनराज तरगिणी (४ . ४९२) मे भी भेडा वनपथ का उल्लेख किया है।

महाभारत वनपर्व (८४ ६५) में गगोद्भेद तीर्थ का उल्लेख है। इस तीर्थ में तीन रात्रि उपवास करने वाले व्यक्तियो को वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वह सदा सर्वदा के लिए ब्रह्मीभूत हो जाता है।

मार्ग में बडे-बडे मोटे देवदार के वृक्ष टूटकर गिरे थे। सरिता की धारा के मध्य वृक्ष धराशायी थे। जल, धूप, वायु, वर्षा, ऋतुओ का थपेडा खाते शताब्दियो से वे अपनी काया बिखेरते पडे थे। इतना घना जंगल आस्ट्रेलिया के पश्चात् मैंने यही देखा था। वृक्ष स्वत गिरते है। स्वत उगते हैं। सहस्रो वर्षो से निरन्तर यह क्रम अबाधगति से चला आ रहा है।

इन गिरे वृक्षो मे कही-कही गूजर लोग अग्नि लगा देते है। जंगल मे जहा सलाई नही मिलती वहा अग्नि जीवित रखने का यह बडा अच्छा तरीका है। एक बार आग बुझ जाने पर पाच-सात मील चलकर दूसरे गाव से अग्नि लानी पडती है। अग्नि धराशायी वृक्ष के मूल मे खोखला बनाकर रख देते है। वृक्ष की यह आग वर्षो सुलगती रहती है। अग्नि के लिए वृक्ष का अग्निवाला भाग नोचे कर देते है। बुन्दें उनमें पड़ती नही। इस प्रकार वर्षा से अग्नि की रक्षा हो जाती है। शीत से बचने तथा अग्नि के उपयोग का अच्छा तरीका ढूंढ निकाला गया था।

चलते हुए हम अचानक एक पहाडी के मूल मे पहुँच गये। पृष्ठ भाग मे उत्तुंग हिमाच्छादित शिखर था। तीन तरफ हरित पर्वतमाला थी और सम्मुख विरानी अर्थात् उपत्यका थी।

यहा के गूजर अपनी कोठरी शीत ऋतु प्रारम्भ होने के कारण छोडकर चले गये थे। दो एक गूजर जलौनी लकडी काट रहे थे। वे मक्का की फसल काटकर जाना चाहते थे। इस उपत्यका मे शाली की कृषि का अभाव था।

यह उपत्यका कश्मीर की अन्य उपत्यकाओ से सौन्दर्य में कम नही है। गुलमर्ग जैसा विशाल मैदान नही मिलता। किन्तु मार्ग में छोटे मैदान कई स्थानो पर मिले। उपत्यका की सबसे बडी विशेषता यह है कि यहा के पर्वत सूखे नही हैं। हरे भरे वृक्षो से लदे एव भरे है। चारो ओर हरियाली दिखाई देती है। देवदार के वृक्षो का घना वन मीलो छाया करता चला जाता है। सूर्य के दर्शन कठिनता से मिलते है।

भेदगिरी पहाडी के मूल में पहुँचा। खच्चरवाले ने कहा। हम पहुँच गये। अब लौटना चाहिए। मैंने कहा। यह स्थान वह नही है जहा हम आना चाहते थे। उसने सरिता में मिलता एक नाग अर्थात् सोता दिखाकर कहा था। यही नाग था। मै उस नाग के पास गया जल में गन्धक की गन्ध थी। टट्टू वाला हुज्जत करने लगा। उसने कहा। इसी गन्धक पानी के लिए लोग यहा आते थे। वह क्या जाने। मै देवस्थान देखने आया था। जिसे लोग भूल चुके थे। स्तीन ने इसका वर्णन किया था। उसे मैने पढा था। अतएव मै स्वीकार करने के लिए तैयार नही था कि यह वही स्थान था।

मैंने उसे और आगे चलने के लिए कहा। पहाडी पर एक गूजर की कोठरी थी। हमलोग ऊपर चढ गये। खच्चरवाला उस कोठरी मे पहुँचा। हम भी पीछे-पीछे गये। दूध पीने के लिए वहा के गूजर ने कहा। गूजरो की गन्दगी देखकर दूध पीने का साहस नही हुआ।

उम गूजर से मालूम हुआ। पहाडी पर एक और नाग है। उसका नाम क्या है। कैसा है। वह बता नही मका। हम लोग खच्चर को छोडकर पहाडी पर चढे। यह पहाडी आसपास की भूमि तल से ७५ फिट से कुछ ऊपर ऊँची है। इमके तीन ओर सरिता की धारा बहती है। एक तरफ ढालुआ भूमि है। उसी ढाल से चढकर भेदा देवी किंवा गगोद्भेद तीर्थ पर पहुँचे।

कल्हण ने स्थान की सज्ञा भेंडगिर नाम से दी है। तीर्थ का नाम गगोद्भेद कहा है। भेंडगिरी, भेदगिर, भेद, ब्राडु, एक ही शब्द के विभिन्न अपभ्रश हैं। स्तीन इस स्थान पर सन् १८९५ मे आये थे। उस समय कश्मीर का ब्राह्मण वर्ग तथा अन्य हिन्दू इस तीर्थ को भूल गये थे। यह तीर्थ लुप्त हो गया था। स्तीन ने इसे पुन शारदा तीर्थ तुल्य खोज निकाला है।

दूसरी भेदा देवी की स्थापना तथा मार्ग दुर्गम होने के कारण यहा की यात्रा वन्द हो गयी है। मार्ग कष्टमाध्य तथा खतरे मे खाली न होने के कारण लोग आना पसन्द नही करते।

यहा के रहने वाले गूजरो से मैंने पूछा। कभी कोई व्यक्ति या पर्यटक उनकी जानकारी मे यहा आया था? उन्होने उत्तर दिया। उनकी जानकारी में कोई नही आया था। उन्हें लगभग ४० या ५० वर्षों की वातें अच्छी तरह याद थी। हमने शका की। शायद कोई आया हो। उन्होने विश्वास के साथ कहा। ऐसा हो नही सकता। हम लोग स्थान छोडकर कभी हटे नही। स्तीन को अपनी यात्रा के समय इसी प्रकार का अनुभव हुआ था। वुदव्रार मे उन्हें खैरा नामक ७५ वर्षीय गूजर से मुलाकात हुई थी। वह यहा पर ४० वर्षों से रहता था। उसने स्तीन को वताया था कि उसकी युवावस्था में कभी-कभी ब्राह्मण यहा पर आते थे। स्नान करने के पश्चात् श्राद्ध करते थे। कालान्तर में ब्राह्मणो का आना दुर्लभ हो गया।

पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के वीच कश्मीरी सघर्ष के समय सैनिको द्वारा विभिन्न पथो, जगलो तथा दर्रों की खोज हुई। यहाँ भी कुछ लोग आये थे। कुछ दिन पहले मार्ग साफ करते एक जिप आई थी। शायद सडको की पैमाइश की वात थी। उसे भी हुए तीन वर्ष वीत चुके थे। सम्भव है राज्य सरकार यहाँ तक शीघ्र ही सडक वनवाये।

मैंने यहाँ के गुजरो से पूछा। उन्होने आश्चर्य प्रकट किया। कहा कि यहा कोई तीर्थ-स्थान नही है। उन्होने कभी सुना भी नही। इसका नाम गगोद्भेद तीर्थ है। मैंने यहा की कथा वताई। वे मेरा मुँह देखने लगे। उन्हें स्मरण नही आया कि निकट भविष्य में यहाँ कोई आया था।

स्थानीय मुसलमानो मे जनश्रुति प्रचलित है गन्धक स्रोत के जल पीने से व्याधियो से छुट्टी मिलती है। अतएव कुछ मुसलमान यहाँ कभी-कभी आ जाया करते है। मैं स्तीन के आने के ६८ वर्ष पश्चात् आया था। स्तीन द्वारा यहाँ का वर्णन पढ चुका था। सोचता था कि सभी ध्वसावशेष तथा उनके द्वारा वर्णित चीजें यथास्थान होगी। परन्तु यहाँ सरोवर के अतिरिक्त अव कुछ शेष नही है।

गगोद्भेद माहात्म्य इस स्थान के विषय में प्रकाश डालता है। उसके अनुसार 'सतीसर' में तपस्या रत ऋषि पुलस्त्य ने अपने यज्ञ निमित्त हिमवत पर्वत से गगा की धारा निकाली। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् जलधारा ऋषि वन्द करना चाहते थे। देवी सरस्वती की आकाश वाणी हुई।

देवी सरस्वती ने इस स्थान की सज्ञा गगोद्भेद तीर्थ मे दिया। उन्होने कहा। पहाडी के शिखर पर भूमि समतल है। दस धनुष प्रमाणो का एक वडा शुद्ध जलपूर्ण सरोवर विना किसी प्रकार की वाधा के वन जायेगा। यह जलाशय नीचे वहते हुए जल प्रवाह से दूर होगा। इसके पूर्वीय पादमूल मे सर्व पाप-

मोचनी एक सरिता जिसका नाम 'अभया' होगा निकलेगी। वह अनवरत प्रवाहित रहेगी। वह पहाडी के ढाल से उछलती नीचे नही बहेगी।

मैंने इसे सत्य देखा। सरोवर से कुछ नीचे जल निकलता दिखायी पडता है। वहाँ चरणामृत लिया जाता है। उसी स्थान पर जल पुन पहाडी में समाविष्ट हो जाता है। उसका पता नही चलता। नीचे जहाँ जल प्रवाह है वहाँ उपरोक्त गन्धक का स्रोत मिलता है। इस स्रोतस्थान को जल शुद्ध रखने के लिए गूजरो ने शिलाखण्डो से ढक दिया था।

देवी सरस्वती ने यह भी भविष्यत्वाणी की थी कि प्रत्येक मास के तृतीयाश मे ही जलधारा प्रवाहित रहेगी। शेष समय मे गगा स्वर्ग मे बहती रहेगी। देवी ने ऋषि से वर माँगने के लिए कहा। ऋषि ने वर माँगा। जल सदा सर्वदा एक रूप प्रवाहित होता रहे। देवी ने वर स्वीकार किया। पुलस्त्य के पास जल निरन्तर बहता रहा। गगोद्भेद तीर्थ प्रकाश मे आया।

देवी के दर्शन निमित्त ऋषि पुलस्त्य ने पुन. एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की। देवी सरस्वती ने राजहसो के रूप मे ऋषि को दर्शन दिया। ऋषि ने देवी की पूजा चैत्र शुक्ल अष्टमी तथा नवमी को की। देवी ने ६ प्रकृतियो का वर्णन ऋषि से किया। छओ प्रकृतियो के भेदो का वर्णन करने के कारण देवी का नाम ऋषि ने भेद रखा। देवी की पूजा हस वागेश्वरी भेदा रूप से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णमासी को होने लगी। गगोद्भेद माहात्म्य भेदा देवी का उल्लेख करते हुए गोवर्धन धर विष्णु का वर्णन करता है। वह एक आश्चर्यजनक प्राकृतिक अलौकिक वात का वर्णन करता है। गोवर्धनधर के १२५ हस्त दूरी तक कभी तुषारपात नही होता (श्लोक० ७५, ८७, ८९, ९९, १०३९)।

उसी स्थान मे ऋषि निमित्त औजस यम की मूर्ति स्थापित हुई। यम की पूजा माघ कृष्ण अर्थात् आश्वयुज १४ होने का विधान निर्धारित किया गया।

माहात्म्य यहाँ रामाश्रम, रामुष, सप्त ऋषि आश्रम, वैतरणी नदी आदि तीर्थों का उल्लेख करता है। उनकी यात्रा गगोद्भेद तीर्थ यात्रा के समय करनी चाहिए।

नीलमत पुराण गगोद्भेद तीर्थ के सदर्भ में भेदा देवी का उल्लेख करता है। नीलमत पुराण अमावस्या के दिन, आश्वयुज, नारायण अर्थात् गोवर्धनधर से देवस्थान, रामतीर्थ अर्थात् रामाश्रम, सप्तऋषि तथा वैतरणी का उल्लेख करता है। (नील० 1312-1319)

उक्त स्थानो में रामुप स्थान जिसका वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी मे किया है। श्रीनगर सुपियान सडक पर रामुह ग्राम है (रा० त० २ . ५५; ८ . २८१३)।

आइने अकबरी मे अबुलफजल वर्णन करता है कि शुकरोह के पास एक नीची पहाडी है। उसके शिखर पर एक जल-स्रोत है। वह पूरे वर्ष भर चलता रहता है। इस पर्वत के वाहु मूल पर तुषारपात नही होता। शुकरोह अर्थात् वर्तमान शुकरू रामुह से दक्षिण दिशा में मिलता है। वह नाम भेदा गिरि के लिए आइने अकवरी में आया है। (आइने अकबरी : २ ३६२)

भेदगिरि पहुँचने पर परिश्रम सार्थक समझा। मार्ग की थकान दूर हो गयी। वहाँ चुपचाप बैठने मे एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस अनुभव का वर्णन करना कठिन है। उसका सम्बन्ध केवल कायिक किंवा इन्द्रियगम्य सुख से नही अपितु आत्मा से जैसे था।

भेदगिरि शिखर चारो तरफ के स्थानो से ऊँचा है। स्तीन की गणना के अनुसार उत्तर-पूर्व उसे

दक्षिण-पश्चिम ५५ गज लम्बा तथा उतना ही चौडा उत्तर-पश्चिम तथा दक्षिण-पूर्व है। अर्थात् अधित्यका वर्गाकार है। मेरे पास नापने का कोई साधन नही था। अतएव स्तीन के माप को ठीक मानता हूँ। उनके माप तथा वाकयाती उल्लेख सर्वदा सत्य उतरते रहे हैं। मुझे कभी-कभी अनुभव होने लगा है कि व्यर्थ परिश्रम कर रहा हूँ। स्तीन सभी कुछ लिख गये हैं, जो लिखना सम्भव था। फिर भी जिज्ञासा तथा स्थान देखने का लोभ मुझे घेरे रहता था।

छोटी-सी इस अधित्यका पर प्रसिद्ध गगोद्भेद तीर्थ है। इस समय जो लोग स्तीन, कल्हण तथा गगोद्भेद माहात्म्य का सुन्दर आकर्षक वर्णन पढकर आयेंगे उन्हें यहाँ निराशा होगी। अधित्यका पर एक छोटा सरोवर ५५ फिट वर्गाकार है। माहात्म्य में जलाशय का माप १० धनुष का प्रमाण मिलता है। दस धनुष ४० हस्त होगा। हस्त ४० का माप ६० फिट होगा। इस समय जलाशय का बना चौकोर वर्गाकार सरोवर प्रत्येक दिशा में ५५ फिट लम्बा है। अतएव यह जलाशय अत्यन्त प्राचीन काल से अब तक अपने पूर्व किन्तु अधोगति रूप में स्थित है।

इस सरोवर के चारो तटो पर सीढियाँ बनी हैं। सीढियाँ अत्यन्त जीर्ण हो गयी है। वे कितने ही स्थानो पर मरम्मत न होने के कारण टूट गयी है। यदि पत्थर सीढियो पर बैठाए न गये होते तो यहाँ के अन्य शिलाखण्डो की तरह वे भी किसी गूजर के मकान अथवा पशुशाला की फर्स की शोभा बढाते।

सरोवर ४ फीट गहरा है। सरोवर की उत्तरीय दिशा से जल निकलने का आभास मिलता है। एक बडा देवदार का वृक्ष जो स्तीन के समय निश्चित ही खडा रहा होगा वह सरोवर के पार आरपार तिर्छा बीचोबीच गिरा था। वृक्ष के छाल वर्षा, जल तथा धूपादि से जीर्ण-शीर्ण होकर समाप्त हो चुके थे। लकडी सूखी थी। सम्भव है यह वृक्ष आँधी के थपेडो की मार खाकर गिर गया था। बीस या पचीस वर्षों से वह इसी अवस्था में यहाँ पडा अपने ककाल की जीवन श्री खो रहा था। अधित्यका पर देवदार के वृक्ष लगे है। उनसे स्थान पर छाया है।

सरोवर के चारो तरफ ६ फीट के अन्तर पर पत्थर की दीवाल का चिन्ह स्तीन को मिला था। इस समय वहाँ पत्थर का चिन्ह प्राय नही सा मिला। किन्तु भूमि कुछ मामूली सतह से ऊँची रहने के कारण अन्दाजा लगाया जा सकता है। वहाँ पर कभी प्राकार अथवा दीवाल थी। स्तीन के समय उत्तर-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्व दीवाल का चिन्ह वर्तमान था। उत्तर-पूर्व की दीवाल में एक द्वार का चिन्ह था। वहाँ पर द्वार के दो अलकृत पत्थर सीढियो के बीच लगे थे। उसमें किवाडो को घुमाने के लिए छिद्र बने थे। इस द्वार के ठीक नीचे एक जलस्रोत है। सरोवर के जल का उत्प्रवाह मात्र है। मुझे स्तीन द्वारा कथित आकार तथा अलकृत सुराख वाले पत्थर यहाँ नही मिले।

जिस स्थान पर द्वार था वहा कुछ नीचा स्थान हो गया है। वहा से सरोवर का उत्प्रवाह रहता है। माहात्म्य में वर्णन मिलता है। सरोवर के पूर्वीय पादमूल में एक द्वार था। जहा से निर्झर सर्वदा झरता रहता है। कभी सूखता नही। यह वर्णन स्तीन के देखे वर्णन से मिलता है। यद्यपि इस समय वहा द्वार नही है। उसका पत्थर लोग उठा ले गये थे। प्ररन्तु मैंने द्वार का आकार देखा। जहा जल ऊपर बहकर भूमि में समा जाता था और फिर नही निकलता। वह पहाडी में समा जाता है। इस स्थान पर जल कलश अथवा पात्र मे जल भरा जाता है। गूजर यहा से अपने पात्रों में जल भरते हैं। अतएव माहात्म्य के वर्णन से द्वार तथा स्थानीय स्थिति पूर्णतया मिलती है और यही निर्झर अभय सरिता है।

शिखर से कुछ नीचे दो गूजरों का आवास है। उनमें एक तो अपने पशुओ को लेकर चला गया था।

दूसरा अभी तक यहा था। खच्चर वाला वही जाकर ठहरा था। गूजर लोग द्वार के अधोभाग से निस्तरित जल के पानी का उपयोग करते है। कारण यह है। यह अधित्यका किंवा पहाडी नदी के जलतल से लगभग ७४ फीट ऊँचाई पर है। नदी ने इस पहाडी को तीन तरफ से परिवेष्टित कर रखा है। दक्षिण, उत्तर, पूरब नदी निरन्तर प्रवाहित रहती है। पश्चिम की तरफ ढालुआ भूमि है। वह ढालू होती पश्चिम-दक्षिण वाले पर्वत से मिलती है। यहा से राजौरी के लिए मार्ग जाता है।

स्तीन के उल्लिखित द्वार के समीप एक बडा पत्थर का ढोका मिला था। वह वास्तव मे भद्र पीठ का है। उसके समतल भद्रपीठ पर दो लिंग उद्भूत थे। उन लिंगो की ऊँचाई भद्रपीठ स्तर से ९ इच मात्र ऊँची थी। दोनो लिंगो के मध्य तथा दक्षिण पार्श्व मे दक्षिण की तरफ एक उपासिका की मूर्ति थी। उसके उठे हाथो मे जल कलश था। संकेत था कि उपासिका शिव पर जल चढा रही थी। यह लगभग १ फुट ऊँची थी। दोनो लिंग तथा उपासिका मूर्तिया प्राचीन काश्मीर की उत्कृष्ट मूर्तिकला को परिचायक थी। वे एक गवाक्ष मे रखी थी। इसके पास एक पुरुष की मूर्ति दूसरे शिलाखण्ड पर उद्भूत थी। सरोवर के उत्तर की तरफ एक अलंकृत स्तम्भ का निम्नतल अर्थात् पावा पडा था।

मैंने इन चीजो को देखने का बहुत प्रयास किया। कुछ दूर तक इधर उधर गया। उन्हें ढूँढा परन्तु कुछ मिला नही। द्वार गायब था। दीवाल गायब थी। मूर्त्तियाँ गायब थी। शिव लिंग का कही पता नही था। अडसठ वर्षो में बहुत परिवर्तन हो गया था। केवल स्तीन का आखो देखा वर्णन ही यहा के पुराने ध्वंसावशेषो तथा यहा की क्या स्थिति अपनी गरिमा मे थी, अनुमान लगाने के एक मात्र साधन रह गये है।

सरोवर के पृष्ठभाग अर्थात् दक्षिण-पश्चिम एक छोटा ढूहा मिला। इस ढूहा पर ईंटें टूटी मिली। स्तीन ने यहा बहुत ईंटो को देखा था। मुझे खोजने पर एक ईंट खण्डित मिली। यह ईंट मेरे हाथो के नाप से एक बालिस्त लम्बी तथा तीन उंगलियो इतनी मोटी थी। लम्बी कितनी थी कहना कठिन है। ईंट कच्ची मिट्टी से बनाकर चटाई पर सूखने के लिए रखी गयी थी। अतएव पकी लाल ईंट के पृष्ठभाग मे चटाई के बेंतो अथवा सरकण्डो किंवा फराठियो के निशान लम्बे-लम्बे थे। उनके निशान से अनुमान लगाया जा सकता है कि ईंट बनाने की उस समय क्या शैली थी। आजकल कच्ची ईंटें पाथकर समतल भूमि पर सूखने के लिए रखी जाती है। ईंटो को पवित्र कामो मे उपयोग करने के विचार से उन्हें भूमि मे सूखने के लिए न रखकर चटाइयो पर रखा गया था। इससे प्रकट होता है कि कश्मीरी जनता मे उन दिनो धर्म के प्रति कितना अनुराग था। कितनी ऊँची धर्मनिष्ठा थी। पवित्रता का कितना ध्यान था। देवकार्य मे ईंटें लगेगी। अतएव प्रारम्भ से लेकर अन्त तक शुद्ध रहे, यह इस तीर्थ के प्रति लोगो की उदात्त भावना का द्योतक था।

व्यावहारिक दृष्टि से इसका एक और स्पष्टीकरण किया जा सकता है। कश्मीर की भूमि ठण्डी होती है। ईंट यदि जमीन पर रखी जायेंगी तो उनके सूखने मे विलम्ब होगा। अतएव उन्हे चटाई पर रखा जाता था कि भूमि तल की ठण्डक का प्रभाव न पडे। ईंटें धूप से यथाशीघ्र सूख जाँय। ईंटें सभी पक्की लाल थी। सूखने पर उनका आँवा लगाया जाता था। आजकल की तरह आँवें में पत्थर के कोयले का उपयोग नही होता था। वे मुख्यत: देवदार की लकडियो से पकाये जाते थे।

इस प्रकार की ईंटें हरवान तथा ब्रजहोम में भी मिली है। जिन पर चटाइयो के निशान है। कश्मीर

मे धार्मिक स्थानो में लगी ईंटो पर चटाइयो का निशान मिलता है। इस स्थान पर ईंट तथा पत्थर दोनो का प्रयोग किया गया था। पकाई हुई ईंटें सुसस्कृत समाज की द्योतक है। इन ईंटो से एक बात का और पता चलता है। पवित्रता की दृष्टि से उन्हें भूमि पर जहा लोगो का पैर आदि पडता था नही रखकर चटाई पर रखना उस समय के लोगो की सूझबूझ, रहन-सहन तथा कलात्मक मनोवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

इस सरोवर से सम्बन्धित आश्चर्यजनक घटनाओ का वर्णन कुछ गाथाओ को मिलाकर किया जाता रहा है। कल्हण तथा माहात्म्य दोनो से प्रकट होता है। जलाशय कभी तुषारपात के समय जब समस्त उपत्यका तथा पर्वतमालाएँ श्वेत हिम वस्त्र में आवृत होकर सो जाती हैं, उस समय भी इसका जल नही जमता। पानी गरम नही है। मैंने जल का आचमन किया। जल ठण्डा था। अतएव यह नही कहा जा सकता कि जल की उष्णता के कारण जल नही जमता।

आइने अकबरी में अबुल फजल ने जल न जमने का उल्लेख कर आश्चर्य प्रकट किया है। चारो ओर जल हिम का रूप ले लेता है। चारो ओर की पर्वतमालाएँ तुषार मण्डित हो जाती हैं। वृक्षो की डालियो पर तुषार रूई की तरह जमने लगता है। उस समय यहा का जल एक तरफ निरन्तर तरल जल रूप चलता रहता है। निस्सदेह साधारण लोगो के लिए आश्चर्यजनक बात है। इसका भौगोलिक स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। परन्तु उन दिनो के सरल तथा साधारण प्राणियो के लिए यह प्रकृति वैचित्र्य अवश्य आश्चर्यजनक एव देवी प्रसाद किंवा भगवान् का चमत्कार माना जाता रहा होगा। प्रकृति का एक विचित्र चमत्कार आज भी माना जा सकता है।

यह स्थान समुद्र की सतह से ७८०० फुट ऊचा है। यहा हिमपात होना तथा पानी का जमना साधारण बात है। डल लेक तथा झेलम जो समुद्र सतह से लगभग ६ हजार फीट ऊचे हैं, जम जाते हैं।

स्तीन ने इस आश्चर्यजनक घटना के विषय में वृद्ध खैरा गूजर से पूछा था। खैरा ने स्तीन को साधिकार विश्वासपूर्वक बताया था। उसने अपने जीवन में इस जलाशय का जल न तो कभी जमता हुआ देखा और न जल का स्तर कभी कम या अधिक होता देखा था।

मैंने यहा के गूजरो से पूछा। उन्होने बताया। जलाशय निरन्तर एक रूप से बहता रहता है। नदी मे बाढ आती है, पर्वतो पर मूसलाधार वृष्टि होती है। उस समय जब सब कुछ जलमग्न हो जाता है। सरोवर का जल एक रूप रहता है। उससे न तो ज्यादा पानी निकलता है और न कम। यह खुदा की शान है। गूजर बेचारे क्या जानें कि यह स्थान हिन्दुओ का तीर्थ है।

स्तीन ने एक स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया है। उनका कहना है। शरद ऋतु में जल मध्यदिवसकालीन वायु प्रवाह मे उष्ण रहता है। श्री स्तीन थर्मामीटर नही लाये थे। अतएव जल की उष्णता नही नाप सके। उनके कहने का तात्पर्य है। जल स्वभावत उष्ण है। अतएव वह नही जमता। मैंने स्वय आचमन निमित्त जल का स्पर्श तथा पान किया। मुझे जल बाहर को चलती ठण्डी हवा से कुछ गरम ही लगा। यह स्वाभाविक है। शीत काल मे कूप, सरोवर सबका जल बाह्य जल वायु की अपेक्षा स्वभावत गर्म रहता है।

जल का स्वाद मुझे अच्छा लगा। जल हलका था। मधुर था। यद्यपि सरोवर मे पत्तियाँ तथा पत्थरो के टुकडे पडकर उसका गन्दा रूप उपस्थित करते थे। फिर भी पानी निकलते रहने के कारण सरो-

वर का जल निरन्तर ताजा तथा स्वच्छ बना रहता है। शुद्धता बनी रहती है। यदि सरोवर साफ कर दिया जाय तो जल मे और शुद्धता आ जायेगी। मै समझता हूँ कि सरोवर का जीर्णोद्धार लगभग छह सौ वर्षों से नही हुआ होगा। सम्भव है कभी किसी धर्मप्राण व्यक्ति ने सरोवर को साफ करा दिया हो।

सबसे आश्चर्यजनक बात जल के न जमने तथा तुषार के न होने का वर्णन, कल्हण तथा नीलमत पुराण ने नही किया है। मालूम होता है। यह बात उस समय लोगो मे इतनी प्रचलित तथा साधारण थी कि इसके वर्णन की आवश्यकता का अनुभव नही किया गया होगा।

यहाँ पर कोई विशाल भग्नावशेष अथवा कोई विशेष चामत्कारिक बात नही देखकर मेरे काश्मीरी मित्रो ने मुझसे पूछा। इस स्थान का इतना महत्त्व क्यो दिया गया ? यहाँ आते समय मै श्री स्तीन का वर्णन ध्यानपूर्वक पढकर नही आया था। स्तीन द्वारा लिखित सब बातो का मुझे ज्ञान नही था। आधुनिक जगत् के लोग सर्वत्र कुछ आकर्षक, कुछ भव्य, कुछ तुरन्त प्रभावकर, वस्तुओ से प्रभावित होते हैं। मैने तुरन्त उत्तर दिया। यहाँ की सबसे बडी विशेषता यह है। यह पहाडी इस उपत्यका मे तीनो तरफ के भूमि तल से ७० फीट ऊँची है। दक्षिण-पश्चिम की तरफ ढालू जमीन होती कम से कम ५० फीट तक नीची पहुँच गयी है। इसके तीन दिशाओ में सरिता का प्रबल प्रवाह है। सरिता का वेगशाली प्रवाह निरन्तर एक रूप बहता चला जा रहा है। फिर भी जल नदी के जल स्तर से ७० फीट ऊँचाई पर कैसे पहुँचकर निर्झर हो गया, यह वास्तव मे प्रकृति की एक विचित्र लीला है। शिखर पर जहाँ सरोवर है, वह स्थान उपत्यका में सबसे ऊँचा है। उससे ऊँचा और कोई स्थान वहाँ पर नही है। इसके दक्षिण तथा वाम पार्श्व मे ऊँचे पर्वत है। वाम पार्श्व का उत्तुंग पर्वत सरिता पार है, तो दूसरी ओर ढालू भूमि के छोर के पश्चात् पुन ऊँचा पर्वत खडा है। इस प्रकार जल का इस शिखर पर पहुँचना उसी प्रकार हो रहा है, जैसे किसी नगर के पानी कल (वाटर वर्क्स) के लिए इंजन तथा पाइप द्वारा जल संग्रह हेतु ऊपर पहुँचाया जाता है।

जहाँ भी शिखरो पर जल मिलता है, वहाँ या तो एकत्रित किया हुआ वर्षा जल रहता है, अथवा किसी उत्तुङ्ग शिखर से जलप्रपात का जल आता संग्रहीत हो जाता है। यहाँ दोनो बातें नही है। यह जल तो भेदगिर पर्वत के शिखर के मध्य स्थान मे केवल ६० फीट वर्गाकार समतल भूमि में निकल रहा है। जैसे किसी शिखर पर किसी नगर के जल पूर्ति निमित्त टैक का निर्माण कर उसमें जल भरा जा रहा था।

जल सरोवर द्वार देश के नीचे से अभी तक प्रवाहित होता है। वह कुछ ही गजो के पश्चात् उसी पहाडी मे लोप हो जाता है। पहाडी के नीचे जहाँ पुन. निर्भर निकलता है उसके जल मे गन्धक की महक होती है। इस जल में गन्धक की गन्ध नही है। अतएव माहात्म्य तथा प्राचीन पुस्तको में वर्णित जल के लुप्त होने की घटना यहाँ सच दिखायी पडती है।

इस तीर्थ की यात्रा चैत्र शुक्ल मे करने का माहात्म्य है। स्थान दुर्गम होने के कारण, समस्त जनता के मुसलमान हो जाने के कारण, वहा का महत्त्व कम हो गया है। यहाँ के महत्त्व में अधिक कमीका कारण हालमोगलपुर मे नवीन भेदा देवी की स्थापना है। वहाँ दर्शन करने का माहात्म्य मूल भेदादेवी के माहात्म्य

तुल्य समझा जाने लगा है। सोलहवी शताब्दी तक इस तीर्थ का अवश्य महत्त्व रहा होगा। अन्यथा अबुल फजल इसका वर्णन नही करता।

भेदा तीर्थ के अन्य स्थानो के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। भेदागिरि की पहाडी की अग्नि दिशा मे कुछ दूर पर एक पहाडी १०० फीट ऊँची है। यहाँ गूजर रहते हैं। इस समय वहाँ कोई नही था। इस स्थान के मध्य में एक ऊँचा ढूहा था। वहा पकाई ईंटें तथा बेडौल इमारत बनाने के पत्थर बिखरे स्तीन को मिले थे। यहा एक दीवाल का भग्नावशेष ईशान दिशा से नैर्ऋत्य दिशा तक ८० फीट तक फैला है। इस स्थान का स्तीन के मत से धर्मशाला अथवा यहाँ के रहने वाले पुरोहितो के आवास निमित्त निर्माण किया गया था। मुझे यहाँ केवल दीवाल का सूक्ष्म आभास मात्र मिला। पत्थर ईंटा उठाकर लोग अपने निवास स्थानो मे लगा लिये हैं। गोवर्धनधर तथा यम औजस देवस्थानो का पता स्तीन को लगा था। मेरे पास स्तीन जैसे साधन प्राप्त नही थे। यदि चाहता तो सरकारी मदद से साधन एकत्रित हो जाते, परन्तु अपनी न भागने वाली दुर्वलता का सर्वदा शिकार होता रहा हूँ। कष्ट उठा लेना मैंने पसन्द किया है। परन्तु मुख किसी के आगे किसी वस्तु के लिए न खुले यही इच्छा तथा कामना रही है। इससे काम में कठिनाई होती है। परन्तु आत्मा सुखी रहती है। जो मेरे लिए सबसे बडा सुख है। मै भी उनका पता लगाना भूल गया। कारण यह था कि सन्ध्या के पूर्व वहाँ से लौट जाना आवश्यक था। अन्यथा खतरा था। कही ठहरने का स्थान नही था। भोजन का महत्त्व मेरे जीवन में कभी नहीं था परन्तु अपने साथियो का ख्याल रखना आवश्यक था।

इस स्थान से मै एक मील तक खच्चर से आया। वहाँ से पैदल चलकर केल्लरमाशपुर पहुँचा। वहा पर मोटर और मोटर ड्राइवर छोडकर आया था। जब गगोद्‌भेद तीर्थ को लोग भूल गये थे तो छोटे-छोटे स्थानो तथा तीर्थो को स्मरण रखना कठिन था। हमें आशा है। इस दिशा मे कुछ प्रयास भविष्य में इतिहास लेखकगण करेंगे।

नारायण नाग से भी मुझे यह स्थान अच्छा लगा। नारायण नाग में किंचित् भय का बोध पर्वत शृंखलाओ के अत्यन्त विशाल तथा ऊँचेपन और ककनी नदी के धाराप्रवाह के गर्जन से होता है। भेदा देवी का स्थान शान्त है। सुरम्य है। भय का बोध नही होता। प्रकृति की सुषमा में, गम्भीरता नही मनोहरता है। मन में हलकेपन का बोध होता है। शरीर हल्का मालूम पडता है। दिमाग का बोझिल पन समाप्त हो जाता है।

सरोवर के पास यदि मनुष्य बैठ जाय, तो पृष्ठभाग की ओर उसे नदी उछलती चौडी उपत्यका से आती दिखाई देगी। गगोद्‌भेद पहाडी की जैसे परिक्रमा करती हुई चली जाती है। शिखर एक दीप-सा प्रतीत होता है। चारो ओर से पर्वतो का ढाल आता इस पहाडीके मूल में मानो समा जाता है। चारो ओर की पर्वतमालाएँ और नदी की उज्ज्वल जल धाराएँ बहती भेदागिरि की सीमा बना देती हैं।

भेदादेवी गिरि के पृष्ठभाग में देवदार पूर्ण पर्वत और उसके ऊपर कुछ पीछे उठे दीपक तुल्य तुषार मण्डित शिखर हैं। वह जैसे दीपदान की थाली लिए चिरकाल से भेदादेवी की वन्दना कर रहे है। शिखर के सम्मुख लम्बी उपत्यका देवदार तथा चीड के हरे वृक्षो से भरी है। उनके मध्य नदी की धारा चुपचाप बहती चली जा रही है। इस धारा के दोनो ओर चलने की पगडडिया हैं। मै धारा के वाम तट से आया था। उसके दक्षिण तट से लौट चला। दक्षिण तट का मार्ग वाम तट से सुगम है।

इस शिखर के वाम पार्श्व से मार्ग राजौरी जाता है। द्रवगाम को पीर पन्तसाल पास से जोडता है। सामरिक दृष्टि से महत्त्व का स्थान है। रामपयार नदी की उपत्यका को यह मार्ग सम्बन्धित करता है। वहाँ चलता मार्ग पीरपन्तसल पास के मुख्य मार्ग से दुवजी के पास मिलता है।

यदि गंगोद्‌भेद तीर्थ के विरानी उपत्यका का विकास किया जाय तो कश्मीर के सर्वश्रेठ पर्वतीय दृश्यो में से वह एक होगा। यहा का वन मार्ग शोभनीय है। यहाँ आने पर एक प्रकार की शान्ति तथा मन में आध्यात्मिक भावना का उदय होता है। यह देखकर मन गौरव से पुलकित हो जाता है कि हमारे पूर्वज कितने प्रकृति प्रेमी थे। मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए किस प्रकार सुरम्य स्थानो का प्रकृति के गोद में चयन किया था।



परिशिष्ट 'छ'

कुरु

(तरग १५१ पृष्ठ ९५)

ऋग्वेद में कुरुओ का उल्लेख एक जाति के रूप मे नही किया गया है। कुरुश्रवण नामक एक राजा (१० ३३ ४) और राजा पाकस्थामन् कौरयाण का उल्लेख (८ ३ २१) में किया गया है। अथर्ववेद (२०.१२७) एव अग्रिम खिल (५ १०) मे कुरुओ के राजा परीक्षित का उल्लेख किया गया है। जिनके पुत्र जनमेजय शतपथ ब्राह्मण (१३ ५ ४, ११ ५ १ ४) में अश्वमेध सम्पन्न करने वाले एक महान् राजा के रूप मे वर्णित हैं। कुरुश्रवण जो कि नाम से कुरुओ से सबद्ध प्रतीत होता है त्रासदस्यव अर्थात् त्रसदस्यु का वशज माना गया हैं। पुरुओ में प्रसिद्धराजा। था ब्राह्मण साहित्य में कुरु जाति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कुरु पचाल का नाम प्राय एक साथ मिलता है (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३ ७ ६, ८:७, ४ ७ २, कौषतिकीय उपनिषद् ४ १, काठक सहिता १०-६, वाजसनेमी सहिता ११ ३ ३)। शतपथ ब्राह्मण (१ ७ - २ ८) में कुरुपचाली यज्ञ प्रणाली सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार (३ २ ३१५) कुरु-पचाल वाणी का निवास स्थान था। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१ ८'४ १-२) से प्रकट होता है कि उनके राजा हिम काल मे आक्रमण करते थे। ग्रीष्म काल आते ही लौट जाते थे। उपनिषदो में कुरुपचाल के ब्राह्मणो की अत्यन्त प्रशसा की गयी है। (जैमिनीय ब्राह्मण २'७८, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३ ३० ६, ४ ६ २)। ब्राह्मण एव उपनिषद् काल में कुरु-पाचाल प्रसिद्ध थे। इसी क्षेत्र में भारतीय पुरा कालीन ग्रन्थोकी रचनायें विशेष रूप से हुई थी। कुरुजनपद के विशद इतिहास का वर्णन पुराणो एव महाभारत में मिलता है। उनका प्रारम्भिक इतिहास कौरवो के इतिहास का अग है। कालान्तर में वे कौरवो के नाम से प्रसिद्ध हुए।

रामायण में अयोध्या काण्ड (९१ १९) मे कुरु का सर्वप्रथम उल्लेख आया है। भरद्वाज ने भरत के सत्कार निमित्त जिन वस्तुओ का आयोजन किया था, उसमें उत्तर कुरु के विषय में कहते हैं—उत्तर कुरु वर्ष में दिव्य चैत्ररथ वन है। वहाँ दिव्य वस्त्र एव आभूषण वृक्षो के पत्र-पुष्प हैं। दिव्य नारियाँ उन वृक्षो के फलहैं। कुवेर का वह शाश्वत वन यहाँ आ जाए।'

रामचन्द्र सीता से चित्रकूट की प्राकृतिक शोभा की तुलना करते हुए कहते हैं—उत्तर कुरु की शोभा भी चित्रकूट के आगे तुच्छ है। (अयोध्या काण्ड ९४ २६) कवन्ध ने सीता के अन्वेषण निमित्त पश्चिम दिशा के वर्णन के समय उत्तर कुरु के वनो की उपमा दी है। (अरण्यकाण्ड ७३ ७)

रामायण किष्किन्धा काण्ड (सर्ग ४३ ११, ५९) में कुरु का दो बार उल्लेख आया है। यहाँ पर श्लोक ११ में केवल कुरु शब्द तथा ५९ में उत्तर कुरु का उल्लेख है। स्पष्ट है रामायणकाल में दो कुरु प्रदेश थे। कुरु, जिसे कालान्तर मे कुरुक्षेत्र कहा गया, तथा उत्तर कुरु हिमालय के पास था। उत्तर दिशा में सोम-गिरि के समीप था। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग, विद्याधर, आदि देशो के पश्चात् उत्तर कुरु से आगे जाने का

उल्लेख है। अर्थात् सौभागो का मार्ग उत्तर कुरु से होकर जाता था। कुरु शब्द का उल्लेख ११ मे श्लोक मे किया गया है। वहा कुरु का उल्लेख शूरसेन, प्रस्मल, कुरु, भरत, मद्र, काम्बोज, यवन, शक, आदि के मध्य आया है। भरत जाति कालान्तर में कुरु मे मिल गयी और कुरुक्षेत्र बना। इसका उल्लेख यथास्थान किया गया है।

कुरुओ का निवास-स्थान कुरुक्षेत्र प्रदेश है। उनका निवास देश, कुरुक्षेत्र, कुरुजंगल तथा कुरु में विभाजित था। (आदि पर्व १०९ १) शतपथ ब्राह्मण (१३ ५ ४ ११) मे भरत जाति का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वह देवताओ की यज्ञ भूमि थी। जाबालोपनिषद् मे भी इसे देवयज्ञ भूमि माना गया है। महाभारत मे इसका एक नाम समत पचक दिया गया है। समत पचक उत्तर वेदी नाम से भी अभिहित किया गया है। ऋग्वेद (३.२३ ४) मे उन्हे दृषद्वती, आपया तथा सरस्वती के तटो पर रहना बताया गया है। कालान्तर मे यही क्षेत्र कुरुजाति का निवास स्थान हो गया था। प्रतीत होता है। भरत जाति कुरु जाति मे आत्मसात् हो गयी।

वाजसनेयी संहिता (११ ३:३) मे एक स्थान पर भरत और कुरुपचालो के सम्मिलित रूप में उत्तर कुरु का उल्लेख आया है। उत्तर कुरु शतपथ ब्राह्मण (३ २.··१५) के अनुसार कुरुपंचाल के समान तथा शुद्ध वर्णित किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उत्तर कुरु हिमालय पार के निवासी थे। कुरु एवं पचालो मे संघर्ष होता रहता था। कुरुओ ने उत्तर पाचाल विजयकर द्रोणाचार्य को दिया था। प्राय. दोनो देशो मे वैवाहिक सम्बन्ध भी होता था। पाचाल नरेश केशिन दाल्भ्य कुरुराज उच्चैश्रवस की भगिनी के पुत्र थे। द्रौपदी पाचाल नरेश द्रुपद की कन्या थी।

ऐतरेय ब्राह्मण (८ १४) में महाभिषेक के अध्याय मे उत्तर कुरु का उल्लेख इन्द्र के महाभिषेक के सन्दर्भ मे किया गया है। उन्हे परेण हिमवन्त अर्थात् हिमालय के परे किंवा पार रहने वाला माना गया है। वे ऐतिहासिक जाति थे। सत्यहव्य ने उत्तर कुरु को देवक्षेत्र कहा है। एक मत है कि उत्तर कुरु के लोग कश्मीर से आकर आबाद हुए थे। वहाँ से पुन. बढते हुए कुरु क्षेत्र मे आकर बस गये। उत्तर बौद्ध साहित्य में उत्तर कुरु का प्राय उल्लेख गाथा कालीन लोगो के रूप मे किया गया है। किन्तु यह गाथा ऐतिहासिक उत्तर कुरुओ पर आधारित है।

दीप वंश मे कुरु द्वीप तथा शासन वश मे उत्तर द्वीप के निवासियो को कुरु रट्ठ (कुरुराष्ट्र) कहा गया है। ब्राह्मण साहित्य मे दक्षिण किंवा मध्य देश के कुरु लोगो को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। एक प्रकार से तत्कालीन साहित्य का केन्द्र कुरुपंचाल माना जाता रहा है। कुरुपंचाल नामो के एक साथ उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है। वे पर्वतीय राष्ट्र थे। मालूम होता है। उपनिषद् तथा ब्राह्मण रचना काल मे पूर्वोदय मे कुरु तथा पचालो का विशेष महत्त्व एक राष्ट्र के रूप मे था। कुरुपचाल के ब्राह्मण शास्त्रीय कर्म काण्ड कराने में प्रसिद्ध थे। कुरुक्षेत्र को भगवान् ने गीता में धर्मक्षेत्र कहा है।

मनु ने कुरु, मत्स्य, पचाल तथा सूरसेन प्रदेश को ब्राह्मणो को स्थान बताया है। वहाँ ऋषि मुनि निवास करते थे। प्रशंसा करते हुए कहा गया है। इनको युद्ध क्षेत्र मे सेना के पृष्ठ भाग मे रखना चाहिए। (मनु स्मृति २ १७–१९, ७ १९३) मनु ने इसे ब्रह्मर्षियो का देश कहा है।

इस क्षेत्र का नाम महाभारत के अनुसार पहले समन्तपचक क्षेत्र था। राजा कुरु के समय इसका नाम कुरुक्षेत्र पडा। महाभारत मे कुरु तथा कुरुक्षेत्र के सम्बन्ध में एक गाथा दी गयी है। ययाति की पत्नी

शर्मिष्ठा थी। उनका पुत्र पुरु था। वह नहुष का पौत्र था। पुरुरवा स्वायभुव मनु की पुत्री इला का पुत्र था। उसका पिता बुध था। उसकी पाचवी पीढी में था। यह चन्द्रवशीय क्षत्रियो का आदि पुरुष था। ययाति के पुत्र पुरु के नाम पर पौरव वश का नामकरण हुआ था। इस वश मे दुष्यत के पुत्र भरत भारतवर्ष के चक्रवर्ती सम्राट् हुए थे।

पुरु के वशज पौरव कहलाए। पुरु के दसवी पीढी मे सवरण हुआ। पचाल ने उस पर आक्रमण किया। अपने कुटुम्ब के साथ सिन्धु नदी के तटवर्ती वन मे उसने आश्रय लिया। पुरोहित वशिष्ठ के कारण पुन राज्य प्राप्त किया। सूर्य कन्या तपती द्वारा उसे पुत्र कुरु उत्पन्न हुआ। उसके नाम पर उसके राज्य का नाम कुरुक्षेत्र पडा। कुरु की पत्नी वाहिनी से अश्ववान, अभिष्यन्त, जैत्ररथ, मुनि एव जनमेजय का जन्म हुआ। इन्ही के नाम पर कुरु जागल प्रदेश का नामकरण किया गया। (आदि पर्व ९४ ४८ तथा ९४ ४९–५०) इनकी द्वितीय कन्या शुभागी से विदुर का जन्म हुआ था (आदि पर्व ९२ . ३९७)। इनका और इन्द्र का सवाद कुरुक्षेत्र की भूमि जोतते समय हुआ था। (शल्य पर्व ५३ ६–१५) कुरुक्षेत्र में यज्ञ करते समय पवित्र सरस्वती नदी सुरेणु नाम से प्रकट हुई थी। इस नदी का नाम ओघवती भी कहा गया है। (शल्य पर्व ३८ २६–२८।) इसी वश में शातनु हुए थे। शान्तनु के पुत्र चित्रागद एव विचित्रवीर्य थे। विचित्रवीर्य की रानियो से दो नियोगज पुत्र हुए। उनका नाम धृतराष्ट्र एवं पाण्डु था। धृतराष्ट्र से गान्धारी के दुर्योधनादि एक शत पुत्र हुए। उनका नाम कौरव हुआ। पाण्डु के पुत्रो का वंश पिता के नाम पर पाण्डव वश कहलाया। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु था। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित था। परीक्षित का पुत्र जनमेजय था। जनमेजय की तीसरी पीढी मे अधिसीम कृष्ण राजा हुए। उसके समय मे सर्वप्रथम नैमिषारण्य में महाभारत एव पुराणो का पाठ हुआ। अधिसीम कृष्ण का पुत्र निचक्षु था। वह हस्तिनापुर का अन्तिम राजा था। गगा की प्रवल धारा के कारण हस्तिनापुर जलप्लावित हो गया। प्रजा तथा राजा वहाँ से वत्स क्षेत्र में जाकर शरण लिये। कुरुओ के कुरुक्षेत्र से निकलने का वृत्तान्त शाख्यायन श्रोतसूत्र में प्राप्त होता है। वृद्धद्युम्न से एक यज्ञ में भूल हो गयी थी। अतएव एक ब्राह्मण ने उसे शाप दिया कि उन्हें कुरुक्षेत्र त्यागना पडेगा।

ऐतिहासिक काल में कुरुक्षेत्र मगध के साम्राज्य के अन्तर्गत महाराज नंद के समय हो गया था। मौर्यों के राज्य मे मौर्य राजाओ के शासन मे था। मौर्यो के पश्चात् वह कुछ समय के लिये गुप्तो के साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया था। गुप्तो के पश्चात् थानेश्वर के पुण्यभूति वशीय राजाओ ने कुरुक्षेत्र पर शासन किया था। तत्पश्चात् गुर्जर प्रतिहारो तथा गाहडवालो के अन्तर्गत था। महमूद गजनी ने थानेश्वर पर आक्रमण किया। चक्रस्वामी विष्णु मूर्ति नष्ट किया था। अन्त में पृथ्वीराज चौहान ने इसे मुसलमानो से मुक्त किया।

महाभारत के अनुसार सरस्वती तथा दृपद्वती का मध्यवर्ती भाग कुरुक्षेत्र है। इसे ब्रह्मा की यज्ञ वेदी कहा गया है (वन पर्व ८३ . ४, २०४-२०८)। कुरुक्षेत्र के इक्षुमती नदी के तट पर तक्षक नाग रहता था। खाण्डव दाह के पूर्व यहा चला आया था (आदि पर्व ३ १३९-१४२, २२६ ४)। उसने अपनी तपस्या द्वारा कुरुक्षेत्र को पवित्र किया था (आदि पर्व ९४ ५०)। सुन्द-उपसुन्द दिशाओ को जीतकर यहा निवास करते थे। कुरुक्षेत्र सीमा में मान्धाता ने यज्ञ किया था (वन १२६-४५)। भीष्म तथा परशुराम का युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था (उद्योग पर्व १७८ ७२)। कौरव पाण्डव का युद्ध इसी क्षेत्र में हुआ था (भीष्म पर्व अध्याय २५-४२)। भीमसेन ने दुर्योधन से युद्ध तथा उसके बाद का युद्ध इसी क्षेत्र की सीमा मे हुआ था (शल्य पर्व ५५-५८ अध्याय)। भीष्म पितामह इस क्षेत्र में शरशैया पर थे (भीष्म पर्व ११९ ९२)। महाराज चित्रागद की मृत्यु गधर्वों के साथ युद्ध कर इसी क्षेत्र में हुई थी। महाभारत वन पर्व के अनुसार जमुना के पश्चिम तथा सरस्वती और दृषद्वती के मध्य का क्षेत्र कुरुक्षेत्र है। इसमें सरस्वती है। दूती तथा

आपगा नदी बहती है। उत्तर कुरु का उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है। पुरुरवा एल का पिता वाल्हीक देश से मध्यदेश आया था। पपंच सूदनी में कुरुओ को हिमालय पार से आने वाला बताया गया है। भारतीय कुरुओ को उनका उपनिविश कहा गया है। उत्तर कुरु महाभारत के अनुसार कैलास एवं बदरिका आश्रम के मध्य था। (म० भा० १ : १४५) मध्यदेश के बसने वाले कुरुओ को दक्षिण कुरु नाम से अभिहित किया गया है। दक्षिण कुरुओ के राज्य का प्रतिष्ठाता भरत को माना गया है।

दक्षिण कुरु लोगो का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थो मे किया गया है। पपंच सूदनी मे दक्षिण कुरुओ का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार जम्बू द्वीप के जनपदो मे कुरु एक महाजनपद था। ब्राह्मण तथा बौद्ध दोनो साहित्यो में प्रायः कुरु पंचाल का उल्लेख एक साथ किया गया है। शायद ही कही कुरु का नाम अकेले लिया गया है। पपचसूदनी से पता चलता है। कुरु प्रदेश की राजधानी मे बुद्ध के निवास निमित्त कोई विहार नही था। किन्तु कम्मासदम्य के बाहर एक वन था। उसमें भगवान् निवास करते थे। वही यह भी उल्लेख आता है। कुरु देश के लोगो का स्वास्थ्य वडा अच्छा था। उनका मस्तिष्क उर्वर था। वे धर्म्म की किसी बात को समझने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। सब ऋतुओ में वहा की जलवायु बहुत अच्छी रहती थी। खाद्य पदार्थ स्वादिष्ठ और पुष्टकर मिलते थे। भगवान् बुद्ध ने कुरुओ को धर्म ज्ञान सिखाया था।

बुद्ध धर्म की कथाओ में कुरुओ का प्रचुर वर्णन कथानक आदि के रूप मे आया है। वीर गाथा की रचना मे रट्ठपाल का हाथ था। वह कुरु के थुल्लकोठिका मे पैदा हुआ था। उसने कौरव्य राजा को बुद्ध धर्म में दीक्षित किया था। धम्मपद के भाष्य में अग्निदत्त की कथा आती है। बड़कोशल अर्थात् महाकोशल राजा का पुरोहित था। वह कुरु तथा अंग और मगध की सीमा पर निवास करता था। उसके संघ में १० हजार शिष्य थे। कुरु आदि जनता उनके भोजन का प्रबन्ध करती थी। कालान्तर में आगिदत्त तथा उसके शिष्यो ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

थेरगाथा मे उल्लेख है। थेरी नन्दुत्तरा का पुनर्जन्म एक ब्राह्मण कुटुम्ब में कम्मासदम्य अर्थात् कम्मासधम्म कुरुदेश में हुआ था। इस नगर का नामकरण कम्मास राजा के नाम पर हुआ था। जयदिस्स पाचाल राजा के पुत्र रूप में ग्रहण किया था। जयदिस्स जातक में इस सम्बन्ध में कथा वर्णित है। बोधिसत्त्व ने कम्मास पर नियन्त्रण किया था। राजा जयदिस्स का दूसरा पुत्र कम्मास था। एक पक्षिणी द्वारा उठा ले जाया गया था। पक्षिणी ने उसे नरमास भक्षी बना दिया था। बोधिसत्त्व ने उसका भी सुधार किया था। उसे कम्मास इसलिए कहते है कि उसके पाद पर काला चिह्न था। यह पौराणिक कथा कल्माषपाद से मिलती है। नन्दुत्तरा पहले जैन हुई। कालान्तर में महा कच्च्यान द्वारा बुद्ध धर्म में प्रव्रजित हुई। परमार्थ दीपनी में इसी प्रकार शेरनी का उल्लेख मिलता है।

पपंचसूदनी में कुरु के जन्म का विचित्र वर्णन किया गया है। महामान्धाता जम्बूद्वीप का चक्रवर्ती राजा था। उसने पूर्व्व विदेह, अपर गोपान, उत्तर कुरु तथा देवलोकदर पर विजय प्राप्त किया था। वह उत्तर कुरु से विजय कर लौट रहा था। एक बहुत बडा जन समुदाय उत्तर कुरु से जम्बू द्वीप में उसके साथ आया। वे जहा आबाद हुए, उसका नाम कुरु अर्थात् कुरुराष्ट्र पडा।

कुरु की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर गंगा तट पर थी। इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली बाद मे उनकी राजधानी हुई। गाथा है। धृतराष्ट्र हस्तिनापुर मे राज करते थे। इन्द्रप्रस्थ पाण्डवो को दे दिया था। दिल्ली में पाण्डवो का किला पुराना किला के नाम से प्रख्यात है। वर्तमान किला शेरशाह सूरी का बनवाया हुआ

है। सम्भव है उसी स्थान पर शेरशाह ने नवीन किला बनवाया होगा। यह किला इण्डिया गेट से दिखाई पडता है।

हस्तिनापुर कालान्तर में महत्त्वहीन हो गया। इन्द्रप्रस्थ आज भी भारत की राजधानी है। कुरु देश का दूसरा नगर उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार इशुकार, उशुपार किंवा इशुपार था। वह अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। उसकी तुलना स्वर्ग से की गयी है।

बौद्ध साहित्य में कुरु से सम्बन्धित अनेक कथाए मिलती है। कुरुधम्म जातक मे बोधिसत्त्व को कुरु राजा धनजय का पुत्र इन्द्रप्रस्थ मे होना लिखा है। कलिंग में एक बार अवर्षण हुआ। कारण बताया गया। कुरुधम्म का पालन नही किया जाता। अतएव अवर्षण हुआ है। कलिंग से ब्राह्मण कुरु देश में धर्म ज्ञान प्राप्ति निमित्त आये। तत्पश्चात् कलिंग में कुरुधर्म का पालन किया जाने लगा। वर्षा हुई। राजा धनजय कौरव्य का अनेक जातको में उल्लेख मिलता है। धनजय को युधिष्ठिर वंशीय कहा गया है। भगवान् बुद्ध उत्तरापथ में आकर शिक्षा दिये थे। कुरु देश में वे विशेष निवास किये थे। एक कथा में कुरु के राजा के मन्त्री का नाम राचरित्र दिया गया है। एक स्थान पर विधुर दिया गया है। कुरु का राज्य ९०० मील विस्तार में बताया गया है।

कुरु में राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। परन्तु कौटिल्य काल में वहाँ गणतन्त्र प्रणाली प्रचलित हो गयी थी। इनके लिए उपजीवी शब्द का व्यवहार किया गया है। अर्थात् सभी नागरिक राजा थे। उनका समाज में स्थान समान था। नवी शताब्दी, में पता चलता है, धर्मपाल ने चक्रायुध को कन्नौज के राज्य पर बैठाया था।

पुराणो में कुरु जाति का वर्णन बहुत मिलता है। वे प्राय एक जैसे है। कुरु क्षत्रिय थे। मगध सम्राट् जरासन्ध के पराजय के पश्चात् उत्तरापथ में कुरु अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। कुरु राजा शान्तनु के दो पुत्र चित्रागद तथा विचित्रवीर्य थे। दोनो पुत्रहीन मर गये। अतएव नियोगद्वारा विचित्रवीर्य की पत्नी से धृतराष्ट्र तथा पाण्डु हुए। धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र दुर्योधनादि हुए। उन्हें कौरव कहा गया। पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर आदि हुए। उन्हें पाण्डव कहा गया। धृतराष्ट्र अन्धा होने के कारण राजसिंहासन पर नही बैठ सके। अतएव कनिष्ठ भ्राता पाण्डु राजा हुए। पाण्डु की अकाल मृत्यु के कारण धृतराष्ट्र राजा तथा युधिष्ठिर उपराजा हुए। परन्तु धृतराष्ट्र के पुत्रो को यह बात पसन्द न आई। वे स्वय अपने पिता के पश्चात् उत्तराधिकारी होना चाहते थे। अतएव एक ही कुरुवश की दो शाखा कौरव तथा पाण्डवो में महा भयकर महाभारत युद्ध हुआ।

नीलमत पुराण में कौरव तथा कौरव्य शब्दो का उल्लेख मिलता है। यह कुरु वश के लिए प्रयुक्त किया गया है।

कौरव :

तत सा सुपुवे पुत्रं बालगोनन्द्रसंज्ञितम्।
बालभावात् पाण्डुसुतैर्नानीता कौरवेन वा ॥ १० = २९

कौरव्य

गन्धसोमस्तथा गर्ग्यः इतिटिर्मिनिटिस्तथा।
ऐरावत. स कौरव्यो माषाद' कुमुदप्रभ ॥ १/२ = १०७८

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है—

तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजांगलाः ।

कुरु पंचाल का एक साथ उल्लेख पुराणो में स्पष्ट दिखाई देता है। मत्स्य पुराण में 'तास्विमे कुरु पाञ्चाला' तथा विष्णु, कूर्म, वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराण में भी 'तास्विमे कुरुपाचाला' का प्रयोग किया गया है।

पुराणो के अनुसार वर्तमान मेरठ तथा दिल्ली क्षेत्र कुरु प्रदेश मे आता है। पाचाल देश मे अहिच्छत्र वर्तमान रामनगर, बरेली, बदायूँ जिला तथा कम्पिला- अर्थात काम्पिल्य (फरुखाबाद जिला उत्तर प्रदेश) का था। पूर्व में गोमती तथा दक्षिण पश्चिम चम्बल नदी तक क्षेत्र विस्तृत था। पश्चिम में पाचाल की सीमा शूरसेन थी। पाचाल भी उत्तरी तथा दक्षिणी भागो मे विभक्त था। संहितोपनिषद् ब्राह्मण में एक स्थलपर प्राच्य पाचाल का भी वर्णन है। इसके तीन नाग भी थे। यह अनुमान इसके लिये त्र्यनीक शब्द के उल्लेख से मिलता है। उत्तर पाचाल की राजधानी अहिच्छत्र तथा दक्षिण पाचाल की कापिल्य थी। अहिच्छत्र वर्तमान रामनगर जिला बरेली के खनन कार्य से इसकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। कुरुओ तथा पाचालो में उत्तर कुरु को अपने राज्य मे सम्मिलित रखने के लिये संघर्ष होते थे। कभी-कभी उत्तर पाचाल को कुरुरट्ठ (कुरुराष्ट्र) में सम्मिलित किया गया है। उसकी राजधानी हस्तिनापुर थी। कभी कपिल रट्ठ (कंपिल राष्ट्र) में सम्मिलित हो जाता था।

मार्कण्डेय पुराण में एक स्थान पर 'कुरवस्तगणा खसा' का उल्लेख आया है। यहाँ कुरु से उत्तर कुरु समझना चाहिए।

वायु, ब्रह्माण्ड पुराणो में 'कुरून् समस्तानपि' उल्लेख भी किया गया है। मत्स्य मे 'कुरून् वै भरतानपि' उल्लेख मिलता है। पुराणो से प्रतीत होता है कि कुरु तथा भरत एक ही जाति के थे।

स्कन्दपुराण के देशो की तालिका में कुरु का स्थान ६३ वी तथा ग्राम संख्या ४३ हजार दो गयी है। इससे प्रकट होता है। कुरु देश का क्षेत्रफल बहुत बडा नही था। शक्ति संगम तन्त्र (३ ७ २३) मे कुरु राष्ट्र कश्मीर आदि से छोटा था। कुरु देश हस्तिनापुर से आरम्भ होकर दक्षिण मे कुरुक्षेत्र तक और पांचाल पूर्व दिशा तक विस्तृत था।

इसके अनुसार सरस्वती तथा दृषद्वती नदियो के मध्य कुरुक्षेत्र था। अर्थात् दक्षिण मे सरस्वती उत्तर दृषद्वती नदियाँ थी। मनुस्मृति मे इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त कहा गया है। (मनु० २ १७)

दक्षिण कुरु प्रदेश की सीमा पूर्व में पांचाल, दक्षिण मे सरस्वती तथा उत्तर में दृषद्वती नदियाँ हो जाती है। वाहीक प्रदेश कुरुक्षेत्र के पश्चिम होना चाहिए। वाहीक अंचल के लिए महाभारत मे प्रायः भद्र, यार्तिक, अरट्ट तथा पंचनद शब्दो का प्रयोग किया गया है। वर्तमान सोनपत, अमीन, करनाल, पानीपत के जिले कुरुक्षेत्र मे माने जा सकते है। कुरुजागल कुरुक्षेत्र का जगलीय भाग मालूम होता है। वह उत्तर में काम्यक वन तक फैला था। दक्षिण में कुरुदेश खाण्डव वन तथा सरस्वती के तट तक फैला था। (महाभारत ३ ५ ३) यह क्षेत्र का पूर्वीय भाग था। यह गंगा तथा उत्तर पाचाल के मध्य विस्तृत था।

कुरुक्षेत्र के विषय मे महाभारत मे कहा गया है। यह क्षेत्र पवित्र है। वहाँ की रजस्पर्श से भी मनुष्य को स्वर्ग प्राप्ति होती है। कुरुक्षेत्र मे जो सरस्वती के दक्षिण तथा दृषद्वती के उत्तर निवास करते है, जैसे स्वर्ग में निवास करते है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी (४·१-१७२-१७६ तथा ४,२ १३०) में इसका वर्णन है। योगिनी तंत्र (२ १, २ ७-८) में इसका उल्लेख है।

हुएनसाग वर्णन करता है। थानेश्वर वश का राज्य था। जिसका दक्षिणी राजपूताना तथा कुछ भाग उत्तर प्रदेश का था। सन् ६४८ ई० में एक चीनी राजदूत हर्षवर्धन को राज्यसभा में भेजा गया था। उसके अनुसार सेनापति अर्जुन ने राज्य पर अधिकार कर लिया था। राजा के वश का लोप हो गया था। थानेश्वर का महत्त्व कायम रहा। परन्तु सन् १०१४ में महमूद गजनी ने इस पर अधिकार कर लिया था। परन्तु सन् १०४३ में दिल्ली के हिन्दू राज्य के अधीन पुन चला गया।

कुरुक्षेत्र का सामरिक महत्त्व है। इस क्षेत्र में महाभारत तथा तीनो पानीपत के युद्ध हुए थे। इन चारो युद्धो ने भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया था। चारो युद्धो के कारण भारत के केन्द्रीय राज्य शासन, वश तथा प्रणाणियो में आमूल परिवर्तन हुआ है।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर यहाँ के सरोवर में स्नान करने का महत्त्व है। मै कुरुक्षेत्र गया हूँ। सरोवर कमल से पूर्ण है। पानी की कमी नही है। मैदान है। पैदावार खूब है। प्राचीन काल में घोडा, हाथी, ऊँट के लिए चारा तथा पानी की आवश्यकता होती थी। उस समय इसके सुपास के कारण क्षेत्र का सामरिक महत्त्व था।

●

परिशिष्ट 'ज'

शक

(तरग : १ : ५२ : पृष्ठ ९६; २ · ६ पृष्ठ ३८० तथा ३ : १२८)

ऋग्वेद (११ · १३२ · ५) मे शकपूत शब्द एक राजा के लिए आया है। अथर्ववेद (३ . १४ : ४; २० · १३१ : १६) में गोमय के अर्थ मे शकपूत शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी (४ : १ · १७५) में शक देश का उल्लेख किया है। बृहद् सहिता मे (१४ २१) में शक-द्वीप को शक जाति का निवास स्थान कहा गया है। मनुस्मृति ने (११ ४३ ४४) शको का यवन के साथ उल्लेख कर उन्हें शूद्रो की श्रेणी में पतित क्षत्री कहकर रखा है। पाणिनि ने (४ १ १७५) कम्बोजादि गणो मे शको का उल्लेख किया है। मनु ने (१० ४) वर्वरो को शक, शवर, यवन आदि में गिना है।

वायु पुराण में उल्लेख आता है 'शका हृदा कुलिन्दाश्च', 'शका हृदा. कुणिन्दाश्च' तथा 'शका-द्रिहा ललिताश्च'। ब्रह्माण्ड पुराण मे 'शका हूणा कुलिन्दाश्च', मत्स्य पुराण मे 'शका द्रुहया पुलिन्दाश्च' उल्लेख मिलता है।

सिरीन्ध्रान् कुकुरांश्चीनान् वर्वरान् यवनान् शकान्।
रूषाणांश्च कुणिन्दाश्च अंगलोकवरांश्चवान्॥

वायु पुराण में 'वर्वरान्, यवनान् द्रुहान्', ब्रह्माण्ड पुराण मे 'वर्वरान् यवनान् द्रुहान्', मत्स्य पुराण में 'वर्वरान् यवनान् खसान्', वर्वरान् यवनान् खसान्', 'वर्वरान् यवनाच्छकान्', 'वर्वरान् यवनान् द्रुहान्।' उल्लेख मिलता है।

शको का मूल निवास स्थान सीर तथा आमू दरिया की उपत्यका माना जाता है।

एक और उल्लेख मिलता है।

अथ चीनयरूश्चैव तंगणान् सर्वशूलिकान्।
साध्रांस्तुषारान् लम्याकान् पल्हवान् पारदान् शकान्॥

वायु पुराण में—'पल्हवान् दरदान् शकान्', मत्स्य पुराण मे—'पल्हवान् पारदान् शकान्, ब्रह्माण्ड पुराण में—'पल्हवान् दरदान् शकान्।'' आदि का उल्लेख मिलता है। इसी पुराण (२ · १६ : ४८) में उसे उदीच्य का एक देश माना गया है।

वायु पुराण (९९ : ३१०-३२४ तथा ३६१) के अनुसार पच्चीस शक राजाओ को शिशुनाग, ऐक्ष्वाक, पाचाल, हैहय, कलिंग राजाओ का समकालीन कहा गया है। उनका राज्यकाल ३८० वर्ष कहा गया है। मत्स्य पुराण (२७२ : १८) अट्ठारह शक राजाओ का उल्लेख करता है। वहाँ पर उनका उल्लेख सात आन्ध्र, दस आमीर तथा ७ गर्दभिलो के पश्चात् किया गया है। विष्णु पुराण (४ : २४ . ५२) में

शकराजाओ की संख्या १६ दी गयी है। इनका उल्लेख (३ ६३ १२०–१२४ ; ३ ७३ १०८; ३ ७४ १३७, १७२–१७५) में आता है। स्कन्दपुराण (१ २ ४०) में वर्णन आता है कि कलियुगारम्भ होने पर एक लाख एक सौ वर्ष तक शकराजा होगे । सस्कृत साहित्य में चतुर्द्वीप, सप्त द्वीप, नव द्वीप, द्वादश द्वीप, त्रयोदश द्वीप, अष्टदश द्वीपो का उल्लेख मिलता है । पुराणो में सातो द्वीपो को समुद्रो से घिरा बताया गया है । वायु तथा अन्य पुराणो में क्रम, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शक तथा पुष्करादि द्वीपो की तालिका दी गयी है । मत्स्य पुराण में जम्बू, शक, कुश, क्रौंच, शाल्मली, गोमेय (प्लक्ष) और पुष्कर सात द्वीपो का उल्लेख किया गया है ।

क्षीरसागर को क्षीरोद भी कहते हैं । वर्तमान उत्तर अतलान्तिक महासागर के पश्चिमीय भाग तथा आर्कटिक समुद्र को कुछ विद्वान् क्षीर सागर कहते है । विद्वान् वडेर क्षीर सागर को कैस्पियन सागर तथा विल्फर्ड उसे जर्मन समुद्र कहते है । क्षीर अर्थात् दूध का रंग उज्ज्वल होता है । उत्तर आर्कटिक सागर तुषार पात के कारण श्वेत रूप धारण कर लेता है । काश्पियन सागर भी शिशिर ऋतु में जमकर श्वेत रूप हो जाता है । यह बात भारतीय महासागर तथा उससे सम्बन्धित सागर एव आखात के सम्बन्ध में लागू नही होती । उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्ध में होने के कारण वे कभी जमते नही । कैस्पियन सागर तथा आर्कटिक सागर दूध की तरह जमकर श्वेत रूप शिशिर ऋतु में धारण कर लेते है । मालूम होता है कि यहा क्षीर सागर नाम कैस्पियन सागर के लिए प्रयोग किया है ।

शक द्वीप को क्षीर सागर से घिरा हुआ कहा गया है । प्रत्येक द्वीप में ७ पर्वत, ७वर्ष तथा ७ नदियो का उल्लेख किया गया है । सप्त सिन्धु, सप्त वर्ष, सप्त पर्वत, सप्त ऋषि, सप्त द्वीप, सप्त नदी, सप्तगगा, सप्त पुरी, सप्त वासर, आदि सप्त सख्या देने की एक शैली किंवा परम्परा प्राचीन काल में चल गयी थी । सम्भव है कि सप्त के आधार पर सम्भवत लोकप्रिय वनाने तथा स्मृति में चिरस्थायी रखने के लिए एक उपाय निकाला गया होगा ।

पर्वतादि के वर्णन में द्विनाम देने की प्रथा थी । एक ही पर्वत के दो नाम होते थे । शक द्वीप के सप्त पर्वत है यथा—(१) मेरु-उदय (पामीर), (२) जलधारा–चन्द्र (वोलगा नदी का पठार) (३) दुर्ग-शैल–नारद (कैस्पियन द्वार), (४) श्याम–दुन्दुभी (उत्तरीय पर्वतमाला), (५) अस्तगिरि–सोमक (६) आम्बिकेय–सुमन, (७) विभ्राज–केशव (जगरास पर्वत) । वायु पुराण में केशव का रम्या तथा केशरी पर्वत नाम से उल्लेख किया गया है ।

शक द्वीप के सात वर्ष है । उक्त सातो पर्वतो के नाम पर दिये गये है अथवा उन पर्वतो के मूल तथा उपत्यका में थे । (१) उदय वर्ष (उदय पर्वत), (२) सुकुमार-शिशिर (जलधार पर्वत वोलगा नदी की उपत्यका) (३) कौभारः सुखुदय (दुर्ग शेल) (४) मणि चक्र-आनन्दक (श्याम पर्वत जरफसा नदी की उपत्यका) (५) कुसुमोत्कर-असित (सोमकपर्वत) यूनानी लेखको का कोमी दोहि प्रदेश) (६) मैनाक-क्षेमक (आम्निकेय पर्वत) (७) विभाज-ध्रुव (विभ्राज पर्वत) ।

शक द्वीप की सप्त नदियाँ है : (१) सुकुमारि = मुनितप्ता (२) कुमारी = तप सिद्धा (३) नन्दा पावनी (४) शिविका = द्विविधा (५) इक्षु = कुहु = वक्षु = आमू दरया (६) वेणुका = अमृता (७) सुकृता= गभस्ति । महाभारत में शक द्वीप की सात नदियां (१) सुकुमारी = (वोल्गा) (१) कुमारी (कुभा) (३) सोता (सीरदरया) (८) कावेरका (५) महानदी (डान नदी) (६) कौरव्य, (७) मणि जला (जरफसा नदी) दिया गया है । यूनानियो के सीथियन शक तथा चीनियो की यू-ये-चि० (ऋषिक) जाति पामीर (मेरु) से काश्पियन (कश्यप) सागर तक फैली थी ।

स्कन्द पुराण (१ २:४०) मे शको का उल्लेख आया है। कलियुग आरम्भ में उन्हे एक लाख एक वर्ष राज्य करना लिखा है। राजा सगर ने इन्हे जीता था। इसका उल्लेख भागवत पुराण (९:८.५) मे मिलता है। शक यवनो का वशिष्ठ के शरण जाने का उल्लेख पद्मपुराण (६० २०) में किया गया है। पतंजलि ने इनका निर्देश पातजलि सूत्र (२.४ १०) में किया है।

महाभारत में शक देश तथा शक जाति का निम्नलिखित स्थानो पर निम्नलिखित संदर्भ के साथ उल्लेख किया गया है।

'एक भारतीय जनपद और जाति। शक जाति के लोग वशिष्ठ की नन्दिनी गाय के मन से प्रकट हुए थे (आदि० १७४-३६)। भीमसेन ने पूर्व-दिग्विजय के समय शको को परास्त किया था (सभा० ३०:१४)। नकुल ने भी इन पर विजय पायी थी (सभा० ३२ १७)। शक देश और जाति के राजा राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के लिए भेंट लाए थे (सभा० ५१ ३०)। कलियुग में शक आदि जातियो के लोगो के राजा होने का उल्लेख मिलता है। (वन० १८८ · ३५)। शक देश के राजा के पास पाण्डवो की ओर से रण-निमन्त्रण भेजने का विचार किया गया था (उद्योग० ४ १५)। ये काम्बोज राज सुदक्षिण के साथ दुर्योधन की सेना में सम्मिलित हुए थे (उद्योग १९ २१)। शक एक भारतीय जनपद का नाम है (भी० म० ९ ५१)। भगवान् श्रीकृष्ण ने शक देश पर विजय पायी थी (द्रोण० ११:१८)। सात्यकि ने बहुत से शक सैनिको का सहार किया था (द्रोण० ११९ ४५ ११९ ४५, ५३)। कर्ण ने भी शक देश को जीता था (कर्ण० ८:१८)। शक पहले क्षत्रिय थे, परन्तु ब्राह्मणो के दर्शन से वंचित होने के कारण (अपने धर्म-कर्म से भ्रष्ट हो) शुद्ध भाव प्राप्त किये थे। (अनु० ३३:२१)। मनु सहिता में उन्हें वृषल क्षत्रिय कहा है।

प्राचीन शको का मूल स्थान इस समय रूस गणतन्त्र राज्य मे है। रूसी इतिहासकारो ने इस पर यथेष्ट अन्वेषण किया है। उन्होने शक जाति को दुनार अर्थात डैन्यूब नदी से त्वान्शान् अल्ताई के मध्य की भूमि को भारतीय शक द्वीप माना है। प्राचीन ईरानी भाषा में इसकी सज्ञा शकान वेइजा दिया गया है। इसको शकस्थान तथा शीस्तान कहते है। हूणो के कारण शक जाति तथा देश विघटित हो गया था। एक मत है ओक्सस तथा जक्सस रीज नदी की उपत्यका से पामीर के मूल तक उनका निवास क्षेत्र था। वह क्षेत्र वर्तमान सभी तुर्किस्तान चीनी तुर्किस्तान तथा मध्य एशिया है।

यूरोपीय लेखको ने शको को शकाई तथा चीनी लेखको ने 'शे' लिखा है। उनके मतानुसार मूल शब्द 'शेक' अथवा 'शोक' था। चीनी लेखक उन्हे पशुपालक जाति कहते हैं। उनका मत है कि वे काशगर के समीपवर्ती भूभाग मे विचरण करते थे। सन् १६४ ई० पू० ए-ची-जाति ने उन पर पूर्व दिशा से आक्रमण किया। वे उद्‌वासित हो गये। उनका एक भाग अफगानिस्तान के पश्चिमी खण्ड में बस गया। उस खण्ड को शीस्तान अथवा शकस्थान कहते है। उनका दूसरी शाखा पूर्वी ईरान मे जाकर आबाद हुई। शक जाति इस प्रकार दो शाखाओं मे विभाजित हो गयी थी। यह भी मत है कि एक शाखा ने तुर्किस्तान से कश्मीर मे प्रवेश किया। वे कश्मीर के दक्षिण में आवाद हो गये थे।

दूसरी शाखा जो पूर्वी ईरान में आबाद हो गयी थी उसका सम्बन्ध पल्हव जाति से हुआ। वह शाखा भारतवर्ष में कालान्तर में आयी। यह शाखा भारत मे खैबर पास से न आकर वोलन पास किंवा मुल्ला पास द्वारा भारत में प्रवेश की थी।

मलाया प्रायद्वीप के वनो में एक आदिम जाति रहती है। उसका नाम शकाई है। उसकी संज्ञा

शिनोर्ट भी दी गयी है। मुख्यत परेक क्षेत्र के दक्षिण पूर्व वे मिलते है। अव तक वह घुमन्तू जाति है। आधुनिक काल में ईख तथा धान की खेती करने लगे है।

एक मत और है। श्याम अर्थात् थाईलैण्ड की मीकाग (मातु गंगा) नदी के तट पर वसी हुई शक अथवा शुक जाति को शक जाति का मूलस्थान मानकर श्यामको शक द्वीप कुछ विद्वान् मानते है।

इसी प्रकार वरमा देश के थेक किंवा शक जाति को शक मानने का प्रयास किया गया है। यह धारणा विष्णु पुराण वर्णित शाक वृक्ष, शक स्थान आदि से होती है। विद्वानो ने विष्णु पुराण वर्णित शाक वृक्ष को मैशक अर्थात् सागवान वृक्ष माना है। वर्मा, श्याम, कम्वोडिया तथा इण्डोनीशिया में सागवान वृक्ष अधिक पाये जाते है। अतएव इस भूखण्ड को शकद्वीप मानने का एक प्रयास किया गया है।

शक द्वीप के साथ क्षीरोद सागर किंवा क्षीरार्णव का वर्णन मिलता है। श्याम कम्वोडिया के दक्षिण तथा मलय प्रायद्वीप के पूर्व जो समुद्रीय जल खण्ड चीन सागर को मिलाता है उसका प्राचीन नाम केदरेन्दज अथवा करन्देन्द्ज है। भाषाविद् विद्वान् केदेरेन्दज को क्षीरोद शब्द का अपभ्रंश मानते है। परन्तु यह मत भ्रामक है। भविष्य पुराण में क्षीरोद शब्द आया है उसी के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है।

लवणोदात्परे पारे क्षीरोदेन समावृत ।
जम्बूद्वीपात्परो यस्माच्छाकद्वीप इति स्मृत ॥

महाभारत (६ १२ ९) में क्षीरोद का उल्लेख किया गया है। इन्ही शब्दो के उल्लेख पर श्याम तथा कम्वोडिया को शक द्वीप प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

आर्य तथा शक जाति के रूप, आकारादि मे विभिन्नता नगण्य है। ई० पू० छठी तथा पाचवी शताब्दी में यूनानी इतिहासकारो ने पारसी सम्राट् 'दारियोस' अर्थात् 'दारियस' की सेना में शको का उल्लेख किया है। उन्होने वर्णन किया है कि शको के देश में लोहा तथा चादी नही होता। उन धातुओ का प्रयोग वे नही करते थे। किन्तु स्वर्ण तथा ताम्वा का प्रयोग वे करते दिखायी देते थे। उस समय शको में सुवर्ण तथा ताम्र दोनो धातुओ का प्रयोग देखा गया था। ई०पू० ५१३ वर्ष में दारयोस ने कृष्ण सागर के तटवर्तीय शको पर आक्रमण किया था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी मे उत्तर पश्चिम भारत में तथा उसके सीमान्त पर शासन करने वाले अनेक यूनानी शासको का शक नाम था।

ईसा पूर्व १२८ वर्ष मे एक चीनी सैनिक पर्यटक चाङ्च्वान शको के नगर वारन्तर में गया था। उसने उन्हे तम्बुओ मे निवास करते देखा था। उनका जीवन निर्वाह पशु-पालन पर निर्भर था।

शक परम्परा कहती है। उक्त आक्रमण के १००० वर्ष पूर्व शको में राजा हुए थे। उनके गणतन्त्र शासन प्रणाली प्रचलित थी। सरयात अथवा सर्वमान उनके गणतन्त्र का नाम था। शको के सामाजिक जीवन में स्त्रियो का प्रमुख स्थान होता था। युद्ध में पति के दिवगत होने पर वे विधवा होकर बैठती नही थी। स्वय सेना का सचालन करती थी।

शक जाति का मुख्य भोजन मास तथा दूध था। वे युद्ध भूमि में शत्रु का रक्त पीते थे। वे अपने शत्रु की खोपडी का कटोरा वनाते थे। कापालिक की तरह उसे पान तथा भिक्षा पात्र की तरह प्रयोग करते थे।

शको की स्त्रियो में वहुपति प्रथा प्रचलित थी। शको में वहु पत्नी प्रथा प्रचलित थी। इसका

उसका मत है कि भारत मे जहाँ शक निवास करते थे यह प्रथा प्रचलित की। शको के भारत मे आबाद होने पर शक तथा भारतीयो मे परस्पर विवाह होने लगा था। दक्षिण भारत मे भानजी के साथ विवाह करना शक प्रभाव ही प्रतीत होता है।

कनिंघम का मत है कि ओक्सस नदी से चलकर शक किपिन अर्थात् कपिशा मे आये। वहाँ से वे देश के अनेक भागो मे और सिन्ध में फैल गये। (कनिंघम = क्वाइन्स आफ इण्डोसीथियन ४ . २२९) इसका समर्थन हिरोडोट्स के लेखो से भी होता है। पाण्डवो की तरह अनेक भाइयो की एक पत्नी द्रौपदी तुल्य होती थी। यूथ विवाह अर्थात् स्त्री, पुरुषो के एक वृन्द किंवा समूह का विवाह दूसरे वृन्द किंवा समूह अथवा यूथ से हो जाता था। जाति के नेता अथवा राजा की मृत्यु होने पर, उसकी एक पत्नी उसके साथ कब्र में जीवित गाड दी जाती थी। भारत मे पति के साथ मरने की प्रथा दूसरे प्रकार की थी। राजा की अनेक रानियो मे ज्येष्ठा, उसके अभाव मे अन्य रानी पति के साथ सती होती थी। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठा रानी युधिष्ठिर की माता कुन्ती नही सती हुई। नकुल तथा सहदेव की माता माद्री अर्थात् कनिष्ठा रानी पति पाण्डु के साथ सती हुई थी। नेपाल मे राणाओ तथा राजाओ के साथ एक स्त्री के सती होने का उल्लेख उन्नीसवी तथा बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण तक मिलता है। उदयपुर मे दिवंगत राणाओ की छतरियाँ बनी हैं। सती प्रथा के काल तक रानियाँ सती होती थी। छतरियो मे एकलिंग के समान मूर्तियाँ स्थापित है। उसके समीप ही दूसरी प्रतिमा एक चौखूँटा लिंगाकार शिला की होती है। उसपर राणाओ के साथ जितनी रानियाँ सती होती थी उतनी स्त्री प्रतिमा उत्खनित कर दी गयी है। इससे पता चलता है। किस राणा के साथ कितनी रानियाँ सती हुई थी।

आर्यो में श्राद्ध प्रथा प्रचलित थी। महापात्र को दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा सुख के लिए एकादशाह के दिन दिवंगत द्वारा प्रयुक्त वस्तुएँ तथा प्रसाधन, धन, वाहन सभी कुछ दिया जाता था। मुझे स्मरण है कि हमारे पिता के नाना श्री हरनारायणसिंह काशी मे मरे। मैं छोटा था। वे अफीम खाते थे। महापात्र की विदाई के दिन उसे अफीम खिलाया गया था।

शको मे यह प्रथा कुछ दूसरे प्रकार से प्रचलित थी। कब्रो मे दिवगत आत्मा की प्रिय तथा उपयोग की सब सामग्री उसके शव के साथ गाड देते थे। शको की यह प्रथा मिश्र के फरोहा अर्थात् फरमून लोगो मे कुछ भिन्नता के साथ प्रचलित थी। फरोहा के पिरामिडो में उनके शव के साथ जीवनोपयोगी अथवा दिवंगत आत्मा की सभी प्रिय वस्तुओ को एकत्रित कर दिया जाता था। मिश्र के राजा आजीवन अपने कब्र में रखने योग्य सामानो का सचय करते रहते थे। इस प्रकार की कब्रें काकेशस के उत्तर मे प्राप्त हुई है। अनुमान किया जाता है। भारतीय उत्तर-पश्चिम सीमावर्ती पर्वतीय खश जाति शक जाति की एक शाखा से सम्बन्धित थी। उनकी कब्रे लद्दाख से कमायूँ जिलो तक पाई गयी है। उनमे जीवनोपयोगी अर्थात् खानपान तथा अन्य सामग्रियाँ गडी मिली है।

शको मे मृतको को समाधि देने अथवा गाड़ने के साथ ही साथ शव को वृक्षो पर टाग देने की भी प्रथा थी। पक्षियो के मासादि खा जाने पर जब केवल अस्थि पंजर शेष रह जाता था तो अस्थि चयन किया जाता था। अस्थियो को एकत्रित कर तत्कालीन सस्कार विधि के साथ उन्हे गाड देते थे। हिन्दुओ मे यह प्रथा भिन्न प्रकार से प्रचलित है। दाह करने के पश्चात् अस्थियो का चयन किया जाता है। यदि नदी समीप हुई तो उसका प्रवाह किया जाता है। अन्यथा उन्हे ताम्र अथवा मृत्तिका पात्र में प्रवाह के लिए रख देते है। प्रवाह न करने के अभाव मे उन्हें गाड दिया जाता है।

पारसी लोग शव का सस्कार इसी प्रकार करते है यद्यपि इसमें कुछ सुधार हो गया है। पारसी

शव को रख देते हैं। पक्षियाँ माँसादि खा जाती हैं। शेष अस्थि का चयन किया जाता है। उन्हें गाड अथवा कूप में डाल दिया जाता है। पारसी जाति ईरान निवासी थी। पल्हव गण तुर्किस्तान से ईरान तक फैले थे। शको की यह प्रथा पारसियो में उनके सम्पर्क से आयी थी अथवा शको ने ही पारसियो की प्रथा को स्वीकार किया था। पडोसी जाति होने के कारण एक दूसरे पर सामाजिक, धार्मिक आदि रीतियो का पडना स्वाभाविक था।

महाभारत में उल्लेख मिलता है। पाण्डवो ने अपना अस्त्र-शस्त्र एक वृक्ष पर रखा था। शस्त्र की रक्षा निमित्त उसी पर एक शव भी टाग दिया गया था। लोग अस्त्र-शस्त्र का पता न पा सकें। समझे कि, शव सस्कार निमित्त वृक्ष पर रखा गया था। यदि यह प्रथा किसी अश में किसी जाति मे प्रचलित न होती तो वृक्ष पर शव टाँगने मे कोई हेतु दिखाई नही पडता। इससे प्रकट होता है। यह प्रथा आर्यों, पारसियो तथा शको मे किसी न किसी रूप मे प्रचलित थी।

हिन्दू आर्यों के समान स्त्रियाँ पति के शव के साथ सती होती थी। यह प्रथा रूस मे रूसियो के ईसाई होने के पूर्व तक प्रचलित थी।

शक लोक दाहक्रिया भी करते थे। उनमें गाडने, जलाने तथा पक्षियो को खिलाने की तीनो प्रथाएँ प्रचलित थी। आर्यों मे प्रचलित चौथी प्रथा जल समाधि भी उनमे प्रचलित थी या नही कहना कठिन है।

शको की नाक लम्बी होती थी। उनके बाल भूरे होते थे। शक नारियाँ रूपवती होती थी। प्राचीन भारतीय शरीर वैज्ञानिको ने शक नारियो के सुन्दर होने का कारण उनका प्याज खाना लिखा है। वागभट्ट के 'अष्टाग हृदय' में उल्लेख मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शको के चित्राकन सम्बन्ध में कहा गया है कि उनका रग श्वेत चित्रित करना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि शक लोग मध्य एशिया के लोगो के समान उज्ज्वल वर्ण होते थे।

अल्ताई स्थित शको के सम्बन्ध में रूस पुरातत्ववेत्ताओ ने खोज तथा खनन कार्य किया है। पाजीरिक घाटी मे एक पुरुष तथा स्त्री का मसाला से सुरक्षित शव प्राप्त हुआ है। पुरुष की छाती तथा कन्धो पर गुदना गुदा है। पुरुष का रग श्याम तथा स्त्री का गौर वर्ण था। शक यदि आर्यों की शाखा थे तो उनके वर्ण तथा रूप में परिवर्तन किस प्रकार आ गया? शव के रूप वर्णन से यह शका उठ सकती है। कारण सरल है। वोधगम्य है। शको के निवास-स्थान के पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वीय दिशा में मगोल जाति रहती थी। उनसे उनका सम्पर्क होना सम्भव था। विवाहादि परस्पर होना असम्भव नही था अतएव आर्य रग रूप में सम मिश्रण के कारण अन्तर पड जाना स्वाभाविक है। भारत में सम मिश्रण के कारण रगरूप मे अन्तर अधिक हो गया है। आज कहना कठिन है। किसका मूल पुरुष कौन था। जाति क्या थी।

महाभारत में शकद्वीप के लोगो का वर्ण श्याम कहा गया है। यह वर्णन चीनी लेखको तथा प्राप्त शव के श्याम वर्ण से मिलता है। श्याम वर्ण का अर्थ सर्वथा काला रग से नही लगाना चाहिए। (महाभारत में उल्लेख मिलता है।)

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरि.।
यत श्यामत्वमापन्ना प्रजा जनपदेश्वर॥ ६ ११. १९

उत्तर के लोगो का वर्ण चीनी लेखको के अनुसार श्याम मालूम होता है। चीनियो ने उत्तर के रहने वाले शको के क्षेत्र का नाम एतदर्थ श्याम रख दिया था। आज भी श्याम 'वगलर' तथा श्याम 'उप्रि-

यन' का अर्थ उत्तरीय तथा उत्तरी 'उग्रियन' जाति के लिए प्रयुक्त होता है। महाभारत मे (६ ११ २६) में शक के लिए श्याम शब्द का प्रयोग किया गया है।

महाभारत मे शको के धर्म के विषय मे उल्लेख है। महाभारत (६ . १२ : २६) से प्रकट होता है कि शकर की पूजा शकद्वीप में होती थी। महाभारत में शकर शब्द भास्कर के लिए प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ सूर्य होता है। शको मे सूर्य पूजा प्रचलित थी। म्लेख जाति मे सूर्य महादेव माना जाता था। इसकी पूजा में लालरोटी मक्खन के साथ अर्थात् पूडी खाते थे। यही कारण है कि साम्ब को शक द्वीप से सूर्य पूजक लाने को कहा गया था।

सिकन्दर के अभियान काल मे यूनानी लेखको ने शको का चरित्र चित्रण किया है। तथा स्वरूप दिया है। वह शको के आचरण एव रूप से मिलता है। उनकी आँखें नीली होती थी। उनका बाल लाल होता था। वे खाल पहनते थे। कच्चा मास खाते थे। मनुष्य का रक्त पीते थे। खेमे मे निवास करते थे। अत्यन्त शक्तिशाली थे। सख्या में बहुत थे। भगवान की आपदा तुल्य थे।

शव समाधि स्थान में नमदा पर समृद्धि देवी का रंगीन चित्र बना है। उसके करकमलो में जीवन तरु है। उसके सम्मुख श्यामरग अश्व पर घुँघराले केशो वाला युवक अश्वारोही है। नमदा के समीप मखमल की एक कालीन मिली है। इस पर अश्वरोही, सिंह, हिरन, श्येन अर्थात् बाज पक्षी तथा अन्य विचित्र पशुओ के चित्र बने हैं। अश्वरोही का रूप प्राचीन ईरानी राजाओ के वेशभूषा तथा रूप से मिलता है। ईरानी राजाओ की मुद्राओ, चित्रो आदि पर अकित वेशभूषा के तुल्य है। यह काल ईसा पूर्व ४०० या ५०० वर्ष माना जाता है।

यही पर एक चीनी का बना दर्पण मिला है। शव समाधि स्थान के पार्श्व मे १४ अश्व अपनी पूर्ण रण सज्जा के साथ समाधिस्थ मिले है। अश्वो पर जीन है। जीन को लकडी पर नक्काशी की गयी है। उस पर सुवर्ण पत्तर लगे है। घोडो के लवादे तथा चीनी रेशम द्वारा निर्मित्त ओहार अर्थात् चादर भी मिला है। यह शव लेनिनग्राड के एमीताज सग्रहालय मे रखा है। इससे स्पट है। मिश्र तुल्य शक भी मृतक के साथ उसके उपयोग तथा काम की वस्तुएँ गाड देते थे।

मसगित (महाशक), सकरौका (शकथान), दाहै, खस, कुरून, पूची, शक जातियो की मुख्य आबादियो का उल्लेख रूसी विद्वानो ने किया है। खश को गिलगित त्रिताल मे कसकर, कश्मीर में खस, काशगर मे खशगिर तथा कश्मीर तथा नैपाल के मध्य खश कहते है।

हूणो द्वारा उद्वासित किये जाने पर शक दक्षिण की ओर चले। आमू अर्थात् वक्षु उपत्यका होते हुए, उन्होने पार्थिया (पल्हव) तथा वेक्टिया (वाल्हीक) पर आक्रमण किया। शक उन्हे पराजित कर आगे बढते गये। भारत की सीमा बोलन दर्रा तक पहुँच गये। किपिन अर्थात् पजाब तथा कश्मीर के भागो पर जिसे प्राचीन गान्धार कहा जा सकता हैं। शको ने अधिकार कर लिया। कालान्तर मे वे तक्षशिला तथा मथुरा में अपनी सत्ता स्थापित करने मे समर्थ हुए। एक मत है। भारत में शक ईसापूर्व पाँचवी शताब्दी मे आबाद हो गये थे। चाहे उनकी संख्या कम ही क्यो न रही हो। उनकी यह आबादी धुर उत्तर पश्चिम भारत अर्थात् अफगानिस्तान, सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पश्चिमी उत्तरी पश्चिम पाकिस्तानी पंजाब तथा दक्षिणी कश्मीर था। प्रोलेमी का उल्लेख है कि शक कश्मीर के बालतिस्तान तक फैले थे। एक मत है कि कश्मीर मार्ग से वे ईसा पूर्व ५७ वर्ष मे तथा पूर्वी ईरान से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व

भारत मे आये थे। शको का भारत में विस्तार यूनानियो को हटाकर हुआ था। जहा यूनानी थे वहाँ शको का प्रभुत्व हो गया। प्रारम्भिक शक यूनानी भाषा भी बोलते थे। वे वाह्लीक भाषा अधिक बोलते थे। वह ईरानी भाषा की एक शाखा थी। कालान्तर मे उन्होने सस्कृत भाषा को अपना लिया। उनकी वही एक प्रकार से राजभाषा हो गयी थी। भारतीय प्रभाव काशगर तक फैल गया था। शक मध्य एशिया को एक मत से कहते थे। विष्णु पुराण शको के भारतीयकरण के विषय मे प्रकाश डालता है (२ ४ ६९) निस्सन्देह शक विदेशी सभ्यता और सस्कृति भारत में लाये थे। भारतीय तथा शक दोनो सभ्यताएँ एव सस्कृतियो ने एक दूसरे को प्रभावित किया था।

शको की एक शाखा ने महाराष्ट्र, सौराष्ट्र तथा मालवा पर अधिकार कर लिया। शकजातीय राज्य-पालो को क्षत्रप नाम से सम्बोधित किया जाता था। उत्तरी तथा पश्चिमी दो प्रकार के क्षत्रपो का उल्लेख मिलता है। तक्षशिला तथा मथुरा के क्षत्रपो को उत्तरोय तथा महाराष्ट्र, उज्जैन, गुजरात, सिन्धादि के क्षत्रपो को पश्चिमीय क्षत्रप कहते थे।

तक्षशिला में अनेक शकराजाओ के शिलालेख प्राप्त हुए है। प्रथम शक राजा माउज अथवा कौनो था। वह पश्चिमी पजाब का राजा था। उनकी मुद्राएँ पूर्वीय ईरान तथा कावुल उपत्यका तक मिली हैं। उमकी राजधानी तक्षशिला थी। उसका राज्यकाल १३५-१४५ ई० पू० कहा जाता है। उसे राजाओ का राजा कहा गया है। कौनो का उत्तराधिकारी अजेस अथवा अजेज प्रथम था। वह शब्द पारसी शब्द अजीज का अपभ्र श हो सकता है। कुछ विद्वानो का मत है कि माउज के राज्य में कश्मीर राज्य का दक्षिणी अचल था।

सीस्तान अर्थात् शकस्थान का राजा स्पलिसेस था। दोनो राजाओ की सयुक्त मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। अजीज की मृत्यु के वाद उसका पुत्र अजिलिसेस राजा हुआ। उसके पश्चात् उसका पुत्र अजीज द्वितीय राजा हुआ। तक्षशिला के शक राजाओ में चार राजाओ का वृत्तान्त ज्ञात है। अनेक शक राजाओ का और पता चलता है। उनका पारम्परिक किंवा वशानुगत सम्बन्ध क्या था, कहना कठिन है।

मथुरा का प्रथम शक राजा राजुल था। उसकी उपाधि महा क्षत्रप थी। राजुल के पश्चात् उसका पुत्र सीदस राजा हुआ। मथुरा के शिलालेख में उसे महाक्षत्रप कहा गया है। सोदस के पश्चात् उसकी वहन का पुत्र खरास्त राजा हुआ। मथुरा के शको में एक राजा पतिक भी हुआ है। पतिक और राजुल का क्या सम्बन्ध था अनुसन्धान का विषय है। कतिपय विद्वान् उत्तरी क्षत्रपो को पर्थियन (पल्हव) मानते हैं। किन्तु अधिक झुकाव उन्हें शक मानने की तरफ है।

मथुरा के सिंहस्तम्भ पर शकस्तान किंवा शीस्तान शब्द अकित है। एक मत है कि सिंहस्तम्भ की कला पर ईरानियन कला का प्रभाव है। राजुल क्षत्रप तथा उसका पुत्र सौदास का समय लगभग ७२ तथा ७८ सन् ईस्वी कहा जाता है। एक मत है। स्तम्भ सौदास के अभिलेख से प्राचीन है। सौरसेनिक मथुरा क्षेत्र के निवासी थे। वत्सायन ने (तृतीय शताब्दी) उनकी निन्दा की है।

महाराष्ट्र के शातवाहन राजाओ को शकवशीय क्षत्रपो ने पराजित कर शक राज्य स्थापित किया। इस वश का प्रसिद्ध राजा नहपान था। उसका शासन काल ११९-१२४ ई० तक था। उषवदत्त उसका जामाता था। उषवदत्त को ऋषभदत्त कुछ विद्वान् मानते हैं। उषवदत्त के शिलालेखो से प्रमाणित होता है कि कहाराष्ट्र, उत्तरी कोकन, उज्जैन तथा अजमेर पर नहपान का राज्य था। नासिक अभिलेख इस पर

विशेष प्रकाश डालता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि इसी वंश ने शक संवत् ईस्वी सन् ७८ में चलाया था। सातवाहन वंशीय प्रसिद्ध राजा गौतमी पुत्र शातकर्णी ने नहपान को पराजित किया था। सातवाहन का वंश आन्ध्र चला गया। सातवाहन वश पुन आन्ध्र पर आधिपत्य स्थापित करने मे सफल हुआ था। पुराणो मे १८ शक राजाओ का उल्लेख मिलता है।

गौतमी पुत्र सातकर्णी का काल सन् ८२-१६० के मध्य माना जाता है। उसके पश्चात् सातवाहन राज्य पतनोन्मुख हो गया। शको मे पुन नवचेतना जागृत हुई। शको ने नवीन प्रेरणा के साथ कदम उठाया। शक जाति 'कर्द्दमक' वंश ने उज्जैन म राज्य स्थापित किया। इसी वंश के शक राजा को हराने के कारण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का नाम शकारि पडा था। कल्हण ने राजतरगिणी में इसी विक्रमादित्य का उल्लेख किया है। शकारि शब्द प्रथम बार चारुदत्त जो महाकवि भास का नाटक है उसमे प्रयोग किया गया है। मृच्छकटिक नाटक मे भी शकारि शब्द का उल्लेख मिलता है। नाटच शास्त्र मे म्लेच्छो के साथ शक का नाम लिया गया है।

प्रथम शक क्षत्रप उज्जैन का चश्तन था। सम्भवतः सन् ७ ई० में उसका उज्जैन के सिंहासन पर अभिषेक हुआ था। कुछ विद्वानो का मत है कि वह सन् १३० मे राज्य सिंहासन पर बैठा था। उसकी मुद्राएं खरोष्ट्री लिपि मे प्राप्त हुई है। चश्तन ने शक सवत् का प्रयोग अपनी मुद्राओ आदि पर किया है। शक राजाओ किंवा क्षत्रपो की मुद्रायें सन् १०० से सन् ३१० ई० तक की प्राप्त हुई है। चश्तन के वशज सन् २५५ ई० तक राज्य करते थे। शक की मुद्रायें अफगानिस्तान तथा उत्तर भारत मे मिली है।

रुद्रदमन (सन् १३०-१५० ई०) उज्जैन का महाक्षत्रप था। उसने मालवा, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध का अधोभाग, उत्तरी कोकन, मध्यभारत तथा मारवाड पर अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने सातवाहन राजा पुलुमयी को दो बार परास्त किया था। भरतपुर राज्यान्तर्गत यैधिय गणतन्त्र पर विजय प्राप्त किया था। सौराष्ट्र पर रुद्रदमन का एक पार्थियन प्रतिनिधि शासन करता था। रुद्रदमन ने सिन्धु और सौवीर विजय किया था। सिन्धु नदी के दोनो तटो से कारवा मार्ग जाता था। उस मार्ग पर रुद्रदमन का नियन्त्रण था। शको का सौराष्ट्र शक्तिशाली क्षेत्र था। सौराष्ट्र पर वे लगभग सन् ४०० ई० तक शासन करते रहे। वात्सायन (तृतीय शताब्दी १) ने सौरसेनिको की निन्दा की है। वे मथुरा क्षेत्र के निवासी थे। इसी प्रकार गार्गी सहिता मे मथुरा के शक राजाओ की निन्दा की गयी है। दमन शब्द महत्व पूर्ण है। दमन शब्द राजाओं के नाम के साथ प्रयुक्त किया गया है। जीव दमन, रुद्रदमन आदि शब्द क्षत्रपो किंवा राजाओ के नाम थे। अवस्ता एवं ईरानी भाषा मे दम शब्द सर्जक अर्थात् सृजन करने वाले ईश्वर के लिये आता है। कार्दम नदी जरफसा नदी कही जाती है। रामायण मे कर्दम शब्द वाल्हीक अर्थात् वलख के साथ ही प्रयुक्त किया गया है। कन्हेरी के अभिलेख में कर्दम जाति का उल्लेख है। रुद्रदमन की कन्या कर्दम वंश की कही गयी है। दम शब्द का प्रयोग नाम के साथ खूब होता रहा है। दामजद प्रथम हो जीवदमन अथवा रुद्रसिर था। रुद्रसेन शब्द का भी उल्लेख मिलता है। संघदमन, दमसेन, यशोदमन, विजयसेन, दमजद तृतीय तथा रुद्रसेन द्वितीय, विश्वसिर, भर्तृ दमन। नवीन शको में रुद्रसिंह द्वितीय, तथा यशोदमन द्वितीय है। इस प्रकार यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि दम किंवा दमन अथवा दामन शब्द शक वाचक राजाओ के शब्द है। इनका मूल शब्द अवेस्ता का 'दम' शब्द है। अवेस्ता तथा पल्हवी भाषा ही शको की एक प्राचीन भाषा थी। जिसका भारत में आने पर शको ने त्यागकर संस्कृत भापा स्वीकार की थी।

राजा ने सौराष्ट्र के सुदर्शन सर पर बांध निर्माण कराया था। रुद्रदमन को एक कन्या तथा दो पुत्र

थे। कन्या का विवाह सातवाहनवशीय राजा वशिष्ट पुत्र शातकर्णी (पुलयोमी—१ सन् १०७-१३१ ई०) के साथ हुआ था। शिलालेखो के आधार पर साधिकार कहा जा सकता है कि दूसरी शताब्दी से गुप्त साम्राज्य का उदयकाल आरभ होता है। इस समय उज्जैन पर शक वश का राज्य था। उनका विस्तृत विवरण तथा क्रमानुसार राजाओ का निश्चय करना कठिन है।

सन् ३४ ई० मं रुद्रसेन तृतीय के समय शको का उत्थान होने लगा था। परन्तु गुप्त साम्राज्य के उत्थान के कारण उनकी उन्नति आकस्मिक प्रमाणित हुई। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने मालवा तथा सौराष्ट्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उदयगिरि के शिलालेख तथा हर्ष चरित्र से यह घटना सत्य प्रमाणित होती है।

शक सवत् का व्यापक प्रचार था। मुख्य कारण था। दक्षिण मे शक राज्य स्थापित हो गया था। लगभग २०० वर्षों तक वहाँ शक सत्ता स्थापित रही। इस लम्बे काल में शक राजाओ ने शक सवत् का प्रयोग आरम्भ किया था।

प्राचीन तथा मध्ययुग में काशी तथा उज्जैन ज्योतिप के मुख्य केन्द्र थे। पचाग तथा पत्रा यही तैयार होता था। उनका प्रचार समस्त भारत में होता था। उत्तर भारत मे शक सवत् शक राज्य सत्ता के अभाव के कारण प्रचलित न हो सका। किन्तु दक्षिण तथा मध्यभारत में शकराज्य तथा उसका प्रभाव के कारण शक संवत् पूर्णतया प्रचलित था। प्राचीन विक्रमीय सवत् का प्रचलन कम हो गया था।

पुराणो के काल तथा उनकी मान्यता के विवाद में न केवल यह कहना अलम् होगा कि पुराणो में शक जाति, उनके आचरण, व्यवहार तथा व्यवस्था का विशद वर्णन मिलता है।

भविष्य पुराण मे शको को चार वर्णों में विभाजित किया गया है।

तत्र पुण्या जनपदाश्चतुर्वर्णसमन्विता।
मगाश्च मगगाश्चैव गानगा मन्दगास्तथा॥
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मगगा क्षत्रिया स्मृता।
वैश्यास्तु गानगा ज्ञेया. शूद्रास्तेषां तु मन्दगा.॥

भविष्य पुराण १ १३९

ब्रह्म पुराण में शकद्वीप निवासियो को चार वर्णों में विभाजित किया गया है.

मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा गमधा. क्षत्रियास्तु ते।
वैश्यास्तु मानसास्तेषा शूद्रा गेयास्तु मन्दगा॥
शाकद्वीपे स्थिते विष्णु सर्परूपधरो हरि।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक् कर्मभिर्नियधात्ममि॥

ब्रह्म पुराणा २० ७१-७३

शकद्वीप के ब्राह्मण – मग थे। क्षत्रिय – मगगा थे। वैश्य – मगा तथा शूद्र – मन्दगा थे।

मग शब्द ब्राह्मणो के लिए प्रयुक्त किया गया है। शकद्वीप के ब्राह्मण किसी समय बहुत उत्तम कहे गये थे। उत्तर प्रदेश तथा अन्य स्थानो पर शकद्वीपी ब्राह्मणो की काफी आबादी है। उन्हें शाकलदीपी ब्राह्मण कहते है।

भारत में शाकद्वीपी ब्राह्मण भगवान श्री कृष्ण के यशस्वी पुत्र श्री शाम्ब द्वारा सूर्य पूजा निमित्त बुलाए गये थे। इसका उल्लेख साम्ब पुराण में मिलता है। एक मत है कि मग शको के पुरोहित थे। ब्राह्मणो

में श्रेष्ठ थे। मग ब्राह्मण दक्षिण भारत तक पहुँच गये थे। कूर्म पुराण (४८.३६) तथा महाभारत (६ २) के अनुसार शकद्वीप के ब्राह्मण मग कहे जाते थे। सदुक्ति कर्णामृत (सन् १२०५ ई०) छह मग ब्राह्मण कवियो का उल्लेख किया गया है।

साम्ब. सूर्यप्रतिष्ठां च कारयायास तत्त्ववित्।
उदयाचले च संश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे ॥
मध्ये कालप्रिय देवं मध्याह्ने स्थाप्य चोत्तमम्।
मूलस्थान तत. पश्चाद् अस्तमानाचले रविम्॥
स्थाप्य त्रिमूर्ति साम्वस्तु प्रातर्मध्यापराह्णिकम्॥

—साम्ब पुराण २०:३०-३१

कथा है कि साम्ब ने चन्द्रभागा अर्थात् चेनाव के तट पर एक सूर्य मन्दिर स्थापित किया था। नदी के तट पर उनका आश्रम था। मन्दिर बनकर तैयार हो गया। साम्ब ने भगवान् नारद से मन्दिर के पुरोहित किंवा पुजारी के विषय में सलाह ली। किसे पूजा का भार सौपा जाय। नारद ने कहा। जम्बूद्वीप के ब्राह्मणो मे श्रेष्ठता पूर्व जैसी नही रह गयी है। शकद्वीप से पूजा निमित्त ब्राह्मण बुलाए जाँए।

गर्हित मानवं शास्त्रं प्रशंसन्ति ते द्विजा ।

साम्ब पुराण २६:२०

न योगं परिचर्यायां जम्बूद्वीपे यमानथ।
मम पूजाकर गत्वा शाकद्वीपादिहानय ॥

—भविष्य पुराण १.१३९

नीलमत पुराण में शक जाति का उल्लेख मिलता है। कश्मीर निवासी शक जाति से परिचित थे। यथा :

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डुरशकान् खसान्।
तङ्गणान् माण्डवान् मद्रान्नन्तर्गिरिबहिर्गिरीन्॥ ८० = २२२—२२१

× × ×

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डुरशकाः खसाः।
तङ्गणा माण्डवाश्चैव अन्तर्गिरिबहिर्गिरिः॥ १३९ – १८२

× × ×

इतिहासज्ञ तर्न का सुझाव है कि कुछ समय तक कश्मोर के दक्षिणी भाग पर देमिट्रियस राज्य करता था। (तर्न · ग्रीक्स इन वेक्ट्रिया एण्ड इण्डिया १५५) मिनान्दर अर्थात् मिलिन्द के विषय मे भी कतिपय विद्वानो ने उल्लेख किया है कि कश्मोर मिलिन्द के राज्य में था। मिलिन्द पञ्ह का संवाद राजा मिलिन्द तथा नागार्जुन में केवल कश्मीर से बोस योजन दूर पर हुआ था। कश्मीर के इतिहास के ग्रीक तथा मिलिन्द के कश्मोर भूमि के राज्य करने का कहो उल्लेख नही मिलता। प्रसिद्ध राजा तूरमाण शक था।

असुर देश अर्थात् असीरिया के सन् ८४३ वर्प ई० पू० के एक आलेख मे 'याद' जाति का उल्लेख मिलता है। उनका पार्श जाति के साथ उल्लेख किया गया है। मग ईरानी पुरोहित वाचक शब्द मगुस का अपभ्रंश है। आगे चलकर यह शब्द अपभ्रश होकर 'मोवज' रूप से प्रयुक्त होने लगा। मगपति अर्थात् प्रधान पुरोहित

के लिए 'मोवजन' 'मोवज' शब्द अभिहित हुआ। निष्कर्ष निकलता है। मग जाति पुराण वर्णित मग ब्राह्मण अर्थात् शाकद्वीपी ब्राह्मण है। 'मगग', जाति शाकद्वीपी क्षत्रिय हैं। उन्हें महाभारत में 'मेसक' कहा गया है। गानग जाति वैश्यो के निकटवर्ती जाति थी। गोग तथा मगग शब्द का पुरातन बाइविल मे प्रयोग किया गया है। बाइविल के गोग के देश को मगोग कहा गया है। (इजकील ३८ २-९) बाइविल में उन्हें आक्रामक जाति रूप से चित्रित किया गया है। उनके सर्वनाश की भविष्यवाणी की गयी है।

अलकसुन्दर अर्थात् सिकन्दर के अभियान काल के वर्णनो मे भी गोग तथा मगोग जातियो का उल्लेख मिलता है। उन्हें उत्तर-पूर्व के बारह राज्यो तथा एक दूसरे स्थान पर बाईस राज्यो मे से एक राज्य माना गया है।

'गोग' तथा 'मगोग' सम्भवत हिब्रू शब्द हैं। उसका अर्थ सीमान्त स्थित बर्बर जाति है। उन्हें मध्ययुग मे 'चित' 'मचिन' कहने लगे थे। उनका पूर्व एशिया मे आवाद होना माना गया है। शक को बाइ-बोलीन में गियरी कहते थे। इसका अर्थ घूमन्तू जाति होता है। उन्हें कालान्तर मे सीथियन अर्थात् शक कहा जाने लगा था।

पाणिनि काल अर्थात् पाँचवी अथवा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व चीन ईरान आदि देशो की ओर से शको पर आक्रमण होने लगे। आक्रमणो द्वारा त्रस्त होकर रक्षा निमित्त शक भारत की ओर बढे।

ईरान में शक जाति एचमोनियन साम्राज्य स्थापन के समय ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। यूनानी लेखको ने स्काइथ, शक किंवा शाह शब्द का प्रयोग इन घूमन्तू जातियों के लिए किया है। वे चीन की सीमान्त जातियाँ थी।

हिरोडोट्स (४८४-४३१ वर्ष ईसा पूर्व) ने शको की मुख्य शाखा को राजकीय शक कहा है। वे गिरोस के दूसरी तरफ पूर्व और अजोव सागर तथा क्रीमिया के दक्षिण बसे हुए थे। हिरोडोट्स के अनुसार राजकीय शब्द तीन मुख्य वर्गो मे विभक्त थे। उनके राजा स्कोपसिस इदन्थ्राइसस और तक्षासिस थे। हिरो-डोटस ने शको में चार वर्ण अथवा वर्ग का वर्णन किया है। मगग राजकीय शक थे। उनके अतिरिक्त और का उल्लेख किया है। गाणग उनमें कृषक थे। मण्डोस शूद्र अर्थात् दास थे। भारतीय पुराणो तथा महाभारत में वर्णित शको के चार वर्ण इस प्रकार हिरोडोटस के वर्णन से मिल जाते हैं। अर्थात् मग ब्राह्मण थे। राज-कीय शको में क्षत्रिय, कृपक, शिल्पी, वैश्य तथा शूद्र थे।

लगभग सन् १५० ईसा पूर्व सरमेटिन जाति ने शको को पराजित किया था। यह जाति ईरानी थी। शको से उनकी वेशभूषा तथा भाषा मिलती थी। इस जाति के लोग चतुर अश्वारोही थे। उनके अश्वो की जीन में धातु के पदाधान अर्थात् रकाब थे। अश्वारोही आक्रामक रण कौशल तथा चातुरी के कारण शको पर हावी हो गये थे। उनकी स्त्रियो का स्थान घर तथा कुटुम्ब के साथ ही साथ युद्धस्थल भी था। सेम-रियन जाति की कन्या का विवाह तब तक नही हो सकता था, जब तक कि वह अपने किसी शत्रु की हत्या नही करती थी। सम्भव है कि इसी जाति की स्त्रियो की शक्ति के कारण स्त्री राज्य अथवा अमजोन्स की कल्पना की गयी थी। कल्हण ने राजतरगिणी मे राजा ललितादित्य के दिग्विजय के प्रसग मे स्त्रीराज्य का वर्णन किया है।

क्षेमो-अवचल में इसी प्रकार के स्त्री सैनिक की एक समाधि मिली है। यह स्थान निफालेस से १० मील दूर होगा। जहाँ तक उनके शस्त्र तथा वेशभूषा का सम्बन्ध है कुशान जाति से मिलता है। उन्होने रणनीति में एक प्रकार से आमूल परिवर्तन किया था। धनुष के स्थान पर बर्छा, लम्बी कृपाण तथा चक्र

तुल्य आयुध बाण धारी थे। इस प्रकार के शस्त्र भारत में कनिष्क तथा विमकद फिसेस की मूर्तियो पर बने मिलते है। अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय कुशान, यू-ची, यू-शून-अलन तथा सरमेतीयास एक ही ईरानी जाति थी। कालान्तर में स्थान भेद के कारण उन्हें अन्य संज्ञाएँ दे दी गयी थी। यू ची शक जाति का एक नाम था। शक जाति प्रथम सहस्राब्दी ईसा पूर्व में कान्शस प्रदेश तथा कीमिया के मध्य मे घूमती रहती थी। शकों की राजकीय समाधि जिसे स्थानीय भाषा में कुरगन कहते हैं पजिरिक कतन्द, शैब, साइबेरिया के करतोल से लेकर मैकोप, कलरमिस, कुव ओब, सेमी व्रत्तनी प्रन्सकाकेशिया, दारतोम्लाहक मलशुनोव वोरोनेझ आदि रूस तक एक सूत्र में मिलती हैं।

प्टालेमी मध्य एशिया के सिनीरिया को सीथिया कहता है। उन्हें अश्वभोजी मानता है। (हयमेध-अश्वमेध)। शक जाति सरल स्वभाव की थी। उनके जीवनोपयोगी सामान हलके होते थे। वे चतुर अश्वारोही होते थे। उनका निशाना अचूक बैठता था। वे विलक्षण आक्रामक होते थे।

अलकसुन्दर (सिकन्दर) ने उत्तरी शको पर डैन्यूब नदी पार कर आक्रमण किया था। अपना सशस्त्र अभियान सीर दरिया पर एक दुर्ग बनाकर समाप्त किया था।

निश्चयपूर्वक कहा जा सकता हैं। गोग तथा मगाग जाति का आक्रमण रोकने के लिये उसने लोहे तथा पीतल का द्वार निर्माण कराया था। सिकन्दर की यह योजना उसी प्रकार विदेशी आक्रमण रोकने की थी जिस प्रकार चीन ने अपनी विशाल दीवाल का निर्माण विदेशी आक्रमण को रोकने के लिए किया था। भविष्य पुराण वर्णित गणग तथा गग शब्दो का इन्ही गोग तथा मगाग जातियो के लिए प्रयोग किया गया है।

शकद्वीप के तीन जातियो मग अथवा मक, मगग अर्थात् महाभारत के मशक, गणग अर्थात् भारतीय गणक का वर्णन किया जा चुका है। शको की चौथी जाति मंडग है। इसे ननदक, मदक, मनक कहते हैं। यह ईरानी जाति 'मद' हैं। बेवलोन के अतिरिक्त अन्य मध्य एशिया के साहित्य में इसे मड नाम की संज्ञा दी गयी है। हिताइत संहिता धारा ५४ में 'उमान मण्ड' शब्द का उल्लेख आया है। उरमियाह झील के दक्षिण-पूर्व के भूखण्ड को 'मन' कहते थे। इसी मूल शब्द से किंवा अपभ्रंश रूप यूनानी शब्द मानिपेनी किंवा मोर्त्तनी है।

'मद' अथवा 'मीड्स' जाति को सीरिया किंवा अपसीरिया (असुर) के लोगो ने महान् शक्तिशाली, पूर्वीय दूर देशीय जाति कहा है। कालान्तर में हयदान, निहवन्द, इश्फहान, राय तथा अजरवैजान भूखण्डो का नाम मीड्स देश और साम्राज्य का नाम मीडियन साम्राज्य पड़ गया।

भारतीय पुरा साहित्य में शकद्वीप के चार वर्णो का वर्णन किया गया है। यह ऐतिहासिक तथ्य है। उक्त उदाहरणो से प्रमाणित हुआ है। वे शक जाति की और उपजातिया थी।

मार्कोपोलो ने शीर वान (क्षीरवान) का उल्लेख किया है। आधुनिक अन्वेषणो से सिद्ध होता हैं कि शीरवान शब्द काश्पियन सी अर्थात् कश्यप सागर के लिए प्रयुक्त किया गया है। मुस्लिम भौगोलिक विद्वान् हुइद-अल-आतये ने कैश्पियन सागर के पश्चिमीय तटीय क्षेत्र का नाम शीरवान दिया है।

हमदुल्लाह कम विनी कहता हैं। कुरु से देखन्द का भूभाग शीरवान मे सम्मिलित था। इश्तखरी कहता है—वर्ध से सडक शीरवान तथा शमाखिया से देखन्द जाती हैं। कुर्दिस्तान की एक नदी का नाम शीरवान हैं। ईरान की एक नदी का नाम शीरीन है। वह बझरंग पहाड़ी से निकल कर फुझ रूक जिला

१०

में अर्टजन के दक्षिण-पूर्व वहती है। रूस में एक नदी का नाम मोलोच्य है। मोलोचो रूसी भाषा मे दूध को कहते हैं। पूर्व मुस्लिम काल मे यहा के राजाओ की उपाधि क्षीरवान शाह थी।

सोलहवी शताब्दी के पूर्व वक्षु अर्थात् आमू दरया कैस्पियन सागर मे मिलती थी। प्राकृतिक कारणो से धारा वदल गयी। इस समय वह अरल सागर मे गिरती है। कैस्पियन सागर तथा अरल सागर पूर्व काल मे मिले थे। इस समम दोनो सागरो के बीच विस्तृत भूखण्ड है। कैस्पियन सागर का वर्तमान रूप पूर्व रूप से भिन्न है। कैस्पियन सागर शताब्दियो पहले पूर्व दिशा मे बहुत दूर तक फैला था। आज वहा सूखा भूभाग है। उत्तर मे इसी प्रकार वहुत दूर तक चला गया था। अरल सागर कैस्पियन सागर का एक भाग है। कैस्पियन सागर तथा अरल सागर के मध्य का भूखण्ड कैश्पियन सागर में जलमग्न था। अतएव आमू (वक्षु) तथा सीर दरया दोनो कैश्पियन सागर मे मिलती थी।

अरसीद तथा सस्सनीड काल मे आर्यो तथा पारसियों का गाथाकालीन मूलस्थान आमू तथा सीर दरया के अन्तर्वेदी (दोआव) मे था। उसे स्वर्णयुग का देश कहते थे। कालान्तर में जैसा वेन्दीदद से प्रतीत होता है यम शीत तथा प्राकृतिक उपद्रवो से बचने और आवादी अधिक होने के कारण दक्षिण दिशा की ओर जनता को ले गया। यह स्थान आर्यों के पूर्व उस समय था। आर्यों का ज्ञातव्य जगत् कहा जाता था।

आर्यो के देश त्याग देने पर अनार्य जातिया वहा वस गयी। तूर्य शब्द अनार्य जातियो के लिए अभिहित किया गया है। अतएव पारसी ग्रन्थो में शको का उल्लेख होना अनिवार्य प्रतीत होता है। उसका कारण है। शको द्वारा आवाद भूभाग के साथ पारसी जाति के धर्म तथा इतिहास का निकट सम्बन्ध हो जाता है। पारसियो के ग्रन्थो में आर्य, तूर्य, क्षरिय, सैन तथा दाह जाति का उल्लेख मिलता है। पश्चिमीय विद्वानो का मत है तूर्य तथा सरीमा शब्द शको के लिए आया है। ईरानी गाथा पुस्तको में सरीया, तूर्य तथा आर्य थ्रीतोना के तीन पुत्र कहे गये है। कालान्तर में थ्रीतोना का रूप अचमीनियन काल में यह क्षेत्र शक तथा शकतिग्रखौदा जातियो द्वारा आवाद था। कुछ समय पश्चात् शको ने इस क्षेत्र को त्याग दिया। शीम्तान में चरभूमि तथा कालक्षेप की सुविधाओ के कारण आकर वस गये। एक मत है कि पामीर के गलचा तथा वालती जाति पूर्वकालीन शक वशज हैं। यह दोनो जातिया इस समय पाकिस्तान द्वारा अधिकृत कश्मीर में है। उनका नाम फरीदून शब्द में वदल गया है। उस समय आर्य, तूर्य, तुर्क तथा सरिय एक ही थे। फिरदौसी की गाथा में फरीदून के पुत्रो का नाम सम, जल, तथा रुदवाह मिलता है। कालान्तर में तूर्य सज्ञा शक जाति के लिए दी जाने लगी। तोखनि, कुशान, खिपोनाइत, सकरौसाह, तथा तुर्क जाति की मूल जाति तूर्य है।

ऋग्वेद में तुर्वसु का उल्लेख है। भागवत पुराण के अनुसार जनमेजय के पुरोहित तुर्कविशेय तुर्वसु जाति के वशज थे। म्लेच्छ तथा यवन तुर्वसु की सन्तान माने जाते है। (वायु पुराण ९९ ३, भागवत १० २२, २५, २७)

त्वर शब्द का अर्थ शीघ्रगामी अथवा जल्दी होता है। तुर्ग शब्द अश्व का भी वाचक है। तुर्य अथवा शक लोग अश्वारोही थे। शीघ्रगामी थे। तुर्य शब्द वैदिक शब्द तुर्यवसु अथवा त्वर का अपभ्रश हो सकता है।

फिरदौसी तूरान क्षेत्र को तूर, तुर्क तथा चीनियो का निवास स्थान मानता है। आमू दरया को

तूरान तथा ईरान की मध्यवर्ती सीमा लिखता है। पारसी लोग आमू दरया के पारवर्ती देश के निवासी थे। उसे मर्ज ए-तूरान कहते थे। अरब भौगोलिक तुर्कों का मूलस्थान सीर दरया के पूर्वीय क्षेत्र को मानते हैं।

बोलगा नदी को रूस मे एक समय नहर तूरान कहते थे। बोल्गा तक का क्षेत्र रूसियो की दृष्टि मे तुर्कों का निवास-स्थान था। तूरान, राजाओं की ग्रीष्मकालीन राजधानी अर्क-तव थी। इसे यूराल पर्वत कहा जाता है। तूरान देश को कैश्पियन सागर, ईरान अधित्यका, सीर दरया का उद्गम स्थान तथा उसकी पर्वतमाला, इरतिश एवं अकमोलिल्स को अधित्यका के मध्यवर्ती क्षेत्र को शकदेश मानते है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि ईरानी तूर अर्थात् जिसे शक कहते थे, वे कैश्पियन सागर के चारो तरफ सीर तथा आमू दरया से लेकर कैश्पियन सागर और बलगा तथा डान नदी तक फैले थे।

प्रश्न उपस्थित होता है। उक्त नदियो का वर्तमान नाम क्या है। उन्हे कैसे पहचाना जा सकता है। यदि उक्त नदिया शकद्वीप में मिल जाय तो शकद्वीप के मानचित्र का वास्तविक पता महाभारत के अनुसार प्राप्त हो सकता है। साथ ही महाभारत वर्णित शक देश की सत्यता सिद्ध हो जाती है। शकद्वीप स्थान क्षेत्र निर्विवाद हो जाता है।

सीता नदी चीनी सीतो नदी है। उसे इस समय सीर दरया कहते है। इश्क, कुलसर, थटनशाह के दक्षिणी अधित्यका से निकलती है। यह पश्चिम बहती है।

मणिजला नदी वर्तमान जरफसा नदी है। जरफशान का अर्थ होता है जर अर्थात् सोना फैलाने वाली। वह नदी जवल अलवुत्तम पर्वतमाला से निकलती है। पर्वतमाला की ढाल पर सोना, चादी, लोहा, ताम्बा, आदि की खानें हैं। यह नदी एक जप अथवा जनसर से निकलती है। पजीकंथ, समरकन्द, बोखारा बहती ह्वारिजम के समीप पश्चिमीय मरुभूमि के उथली दलदलीय सर मे गिरती है। यह महाभारत वर्णित नदी मणिजल है। क्योंकि इसके जल मे स्वर्ण, रजतादि के साथ मणि मिलते हैं। इसीलिए इसका नाम मणिजल रखना पडा है। इसके दक्षिण में वक्षु अथवा आमू दरया है। इस नदी की अनेक शाखा नदिया हैं। वकशाव इसकी एक शाखा नदी है। यह पामीर पर्वत से निकलती है। यह हजारो मील की यात्रा करती पूर्वकाल मे कैश्पियन सागर तथा इस समय अरल सागर में गिरती है। चीनी भाषा मे इसे पोत्सू तथा अलइदरीसी इसे वकशाव कहता है। वक्षु नदी के दक्षिण सघनियन जिला है। यह वर्तमान शर-एर-अशया है। सघनियन नदी के ऊर्ध्व भाग पर यह आबाद था। यह आमू की एक शाखा नदी है। इसे नहर जमील कहते है। कैश्पियन सागर मे पश्चिम तथा उत्तर से गिरने वाली नदियो मे बोल्गा है। प्टोलमी ने 'र' नदी कहा है। ईरानियन इने 'रन्हा' कहते हैं। यूनानी अरस्तू इसे 'अर्स' या 'अरस' कहते हैं। हिरोडोट्स ने इसके लिए 'अर्जेस' शब्द का प्रयोग किया है। मूल शक शब्दावली मे 'अरस' या 'अर्स' का अर्थ महान् होता हैं। अरब भौगोलिक विद्वानो ने बोल्गा को 'इत्तिल' कहा है। बलगर जाति इसके तट पर आबाद हो गयी। अतएव इसे बोल्गा कहा जाने लगा। पश्चिमी विद्वानो का मत है। बोल्गा का अर्थ आर्य स्लेवोनिक भाषा में महान् अथवा बडा होता है। एक और मत है। बोल्गा शब्द सस्कृत शब्द व्रकू का अपभ्रंश है। रूसी लोग इसे बोल्गा न कहकर वोल्का कहते है। 'व्रक' किंवा 'वृक' का अर्थ भेडिया होता है। इसकी मुख्य शाखा नदी 'कम' है। अनुमान लगाया गया है। कम तथा 'र' मिलाकर इसका नाम कुमारी रखा गया था। कुमारी नदी का सप्त नदियो मे उल्लेख है। शक भाषा के शब्द 'अर' का अर्थ कुमारी होता है। 'अर' का अपभ्रश किंवा समानार्थक शब्द 'अर्स' अथवा 'अरस' है। यह बोल्गा का प्राचीन नाम कहा जाता है।

कैश्पियन सागर में गिरने वाली कुम एक और नदी है। सम्भवत. यह नदी कुमारी है। महाभारत में सुकुमारी तथा कुमारी नाम आता है। सभी लोग वोलगा को क्रसवित सी कहते हैं, जिसका अर्थ सुकुमारी होता है। पश्चिम से काश्यप सागर में मिलने वाली नदी 'कुर' है।

महानदी वर्तमान नदी 'डान' है। इसका ईरानी नाम दन है। दन नाम ही डोन है। 'दन' तथा 'दोन' का अर्थ जल होता है। 'दन' का अर्थ नदी है। वह विशाल नदी है। अतएव उसे महानदीकी सज्ञा दी गयी है। 'अजोव' सागर में गिरती है। ईरानी घूमन्तू जातिया यथा सेमीरियन, सीथियन, सरमोनियन आदि प्राचीन काल में इस नदी की उपत्यका में रहती चली आई हैं। हिरोडोट्स डान नदी को शक द्वीप की पूर्वीय सीमा मानता है।

शकद्वीप में सात वर्प हैं। शकद्वीप के वर्णित सात वर्पो में सुकुमार तथा कुमार किंवा सुकुमारी तथा कुमारी अर्थात् वोलगा तथा कुम नदी की उपत्यकाएँ हैं। मणिकाचन, मणिजला नदी की उपत्यका हैं। मौदाकी ऐतिहासिक मीडिया का क्षेत्र है। कुमुदोत्तर, यूनानी लेखको का कोमीदोई प्रदेश है। यह प्रदेश आमूदरया तक विस्तृत है। 'महाकाश' किंवा 'महाकोप' 'अरवस' अर्थात् 'सीथिया' है। 'महापुरुष' शब्द लम्वे-चौडे डील-डौल वाले लोगो के लिए प्रयोग किया जाता है।

शकद्वीप का प्रारम्भिक भारतीय ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रन्थो में स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। इस काल में पृथ्वी चार भागो में विभाजित की गयी थी। मौर्य तथा कुशान काल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्प का वोध होने लगा। जम्बूद्वीप वृहत्तर भारतवर्प के लिए प्रयुक्त किया जाता था। जम्बूद्वीप में उत्तर कुरु अर्थात् तरिम उपत्यका तथा तुर्किस्तान सम्मिलित था। कालान्तर में पृथ्वी सात वर्पो में विभाजित की गयी।

कर्नल टाड का मत है कि शक जाति तक्षक थी। वे अखरमा अर्थात् शकद्वीप में शासन करते थे। (टाड एनाल्स एण्ड एण्डिक्वेरी आफ राजस्थान ४५) श्री वी० वी० आयर का मत है कि शक द्वीप आक्स नदी के मूल, जक्सरटीज तथा वक्षु जलीय सिंचित क्षेत्र, और सिन्धु नदी में पानी जिन क्षेत्रो से वहकर उत्तर-पश्चिम भारत में आता है वही शक देश है।

शक तथा कुश द्वीपो का अस्तित्व भिन्न है। कुशद्वीप का उल्लेख लेखो में मिलता है। कुश अथवा कुशिया शब्द परसियन के वहुत से लेखो में मिलता है। हमदान लेख में (सम्राट् दारयुह ईसापूर्व ५२२-४८६ वर्ष) राज्य का विस्तार दिया गया है।

वुखारा क्षेत्र वक्षु तथा सीर दरया के मध्य था। कुछ विद्वान् कुशद्वीप को मध्य मिश्र और कुछ अवीसीनिया मानते हैं। मुद्र नाम मिश्र का था। मुद्र तथा कुश परसियन सम्राटों के क्षत्रपोके क्षेत्र में वर्णित किये गये हैं। मिश्र कुशद्वीप नही हो सकता। कुशद्वीप का अफ्रीका के उत्तर-पश्चिम होना सम्भव प्रतीत होता है। मिश्र के परे और भारत के पश्चिमी समुद्र के ठीक पश्चिमीय छोर पर अवीसीनिया इस समय भी स्थित है। इसका कुशद्वीप होना सम्भव है।

शकद्वीप का शाब्दिक अर्थ समुद्र या नदियो से घिरा भूखण्ड है। सात द्वीपो से वसुमती अर्थात् पृथ्वी वनी है। सप्त द्वीपो में—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शक, तथा पुष्कर द्वीप हैं। शकद्वीप का नाम शाकद्वीप भी है। शक लोग शकद्वीप में रहते थे। यूनानियो ने इनका नाम सीथियन रखा है। पश्चिमी विद्वानो ने यही नाम शकों के लिए दिया है। प्राचीन पारसी लेखो में शको के तीन निवासस्थानो का उल्लेख मिलता है।

कुछ विद्वानो का कथन है कि शक लोग ईरान के पूर्वीय भाग हेलमण्ड अंचल में रहते थे। शकों का पुराना तथा नवीन सभी स्थान सीथिया नाम से सम्बोधित होता है। पूर्वी ईरान को शकस्तान कहते थे। वर्तमान नाम सीस्तान है। मध्यकालीन समय में इसे सिजिस्तान ईरानी तथा भारतीय शकद्वीप कहते थे।

भारतवर्ष की आजादी के पश्चात् भारतीय ऐतिहासिको के दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ है। नवीन अन्वेषणो अनुसन्धानों से भारतीय इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ रहा है। रूसी विद्वानो के मध्यएशिया की खोज करने, खनन कार्यों तथा प्राप्त अभिलेखो आदि के कारण भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियाँ जो अभी तक उलझी पडी है, उनके सुलझने की आशा हो गयी है। मध्यएशिया, अफगानिस्तान मे अभी बहुत *कुछ खोज तथा खनन कार्य करना बाकी पडा है। उनमें जितनी शीघ्रता से प्रगति होगी उतनी ही शीघ्रता* पूर्वक भारतीय इतिहास पर प्रकाश पडेगा। भारतीय सस्कृति के विकास तथा उसके इतिहास पर भी मध्य-एशिया मुख्यत शको के इतिहास का वास्तविक ज्ञान होने पर नवीन दृष्टि से विवेकात्मक नवीन इतिहास रचना की आशा अनेक विद्वानो को होने लगी है।



परिशिष्ट 'झ'

गान्धार

(तरग १ ६६)

गन्धार तथा गान्धार दोनो पाठ मिलता है। गान्धार शब्द का उल्लेख आदि पर्व महाभारत में एक देश के लिए किया है। सिन्धु तथा कुनर नदी से कावुल नदी पर्यन्त का क्षेत्र, मुलतान और पेशावर इस मण्डल में सम्मिलित थे। गान्धारी के पिता सुवल गान्धार देश के राजा थे। गान्धारराज सुवल की कन्या गान्धारी से कुरुराज धृतराष्ट्र का विवाह हुआ था। कुरुवश के मूल पुरुष राजा अजमीढ की एक रानी गान्धार राज की कन्या थी। उद्योग पर्व में वर्णन मिलता है। राजा ययाति ने अपने पुत्र यदु को गान्धार में निर्वासित किया था। महाभारत द्रोण पर्व से पता चलता है। कर्ण ने गान्धार को जीतकर राजा दुर्योधन के राज्य में सम्मिलित किया था। गान्धारराज शकुनी के पास गान्धारी सैनिको की शक्तिशाली सेना थी। महाभारत युद्ध में वह सेना दुर्योधन की रक्षा करती दिखाई पडती है। दुर्योधन का इन पर्वतीय सैनिकों पर विश्वास था। महाभारत युद्ध के पाँचवें दिन शकुनी के नेतृत्व में गान्धार सैनिको ने कम्बोज, मद्र आदि पश्चिमोत्तरीय सेना के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया था। शल्य पर्व में उन्हें वीरतापूर्वक युद्ध करते देखा जाता है। वे कुशल अश्वारोही थे। अश्व युद्ध में कुशलतापूर्वक युद्ध रत में दिखाई पडते हैं। कर्ण पर्व में कर्ण गान्धार लोगो के विचित्र रीति-रिवाज पर प्रकाश डालता है (९५ ७)। कहा गया है। सहस्रो गान्धार अश्वारोहियो से घिरा शकुनी रण-स्थल छोडकर चला गया था। अश्वमेध पर्व में उल्लेख आता है। अर्जुन को गान्धारराज शकुनी के पुत्र के साथ युद्ध करना पडा था। गान्धार सेना पराजित हो गयी थी। किन्तु शकुनी पुत्र को अर्जुन ने नही मारा।

महाभारत में गान्धार का नाम यवन, कम्बोज, किरात तथा वर्बर जातियो के साथ उल्लिखित है। पेशावर तथा रावलपिण्डी का जिला उत्तर पश्चिम पजाब का अचल गान्धार नाम से अभिहित होता था। जातक तथा मिलिन्दपञ्ह से प्रकट होता है। कश्मीर तथा गान्धार में निकट सम्वन्ध था। कनिष्क के शासन ने वह सम्वन्ध और घनिष्ठ वना दिया था। वह गान्धार तथा कश्मीर दोनो पर राज्य करता था। पाणिनि गान्धार क्षेत्र के निवासी थे। कश्मीर सीमा के समीप उनका निवासस्थान एक मत मानता है।

तक्षशिला का वर्णन मुस्लिम इतिहासकारो ने नही किया है। प्रतीत होता है। उस समय यह नगर नष्ट हो गया था।

कहा जाता है। कौटिल्य चाणक्य तक्षशिला विश्वविद्यालय का रत्न था। पाणिनि स्वय गान्धार देशवासी था। उसने तक्षशिला का उल्लेख किया है। (४ ३ ९३)

गान्धार के ब्राह्मणो की गणना अवमानित ब्राह्मण वर्ग में राजतरगिणी में की गयी थी। कालान्तर में यह विचार वदल गया था। गान्धार में उद्भट विद्वान् होने लगे थे।

छादोग्योपनिपद् में उद्दालक आरुणि ने सद्गुरुवाले शिष्य को अपने अंतिम लक्ष्य पर पहुँचने के उदाहरण के सम्बन्ध में गान्धार का उल्लेख किया है। शतपथ ब्राह्मण के (११ : ४ १) तथा अनुवर्ती वाक्यो में उद्दालक आरुणि का उदीच्यो किंवा उत्तरी देश गधार) के निवासियो से सम्बन्ध बताया गया है।

छान्दोग्य उपनिषद् (६ १४) में गान्धार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसका उल्लेख उपनिषद् तथा ब्राह्मण काल के पश्चात् सूत्र काल तक किया गया है। बौधायन श्रौत सूत्र मे गान्धार का उल्लेख मिलता है। (२१ . १३) आपस्तम्ब श्रौत सूत्र (२२ ६ १८) में तथा हिरण्यकेशी श्रौत सूत्र (१७ : ६) में गान्धार का स्पष्ट उल्लेख है।

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में गान्धार शब्द का उल्लेख एक जन के सम्बन्ध में किया गया है। वहाँ के निवासियो को गाधारी कहा गया है। (ऋ० १ १२६ १८) छान्दोग्योपनिपद् (६ . १४ : १२) तथा वैदिक साहित्य के अनुसार भारत के उत्तर-पश्चिम गान्धार एक जनपद था। राजा भाव्य अथवा भाव्य व्यत्य की स्त्री लोमसा ने गान्धार के वस्त्रो की बहुत प्रशंसा की है। भाव्य सिन्धु तटीय देश पर राज्य करता था। ऋग्वेद मे गान्धार के भेंडो के ऊन की प्रशंसा की गयी है। (ऋग्वेद १ १२६ १८) अथर्ववेद में अगो तथा मगधो के साथ मूजवन्त तक गन्धार लोगो का उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद का काल ऋग्वेद से बहुत पश्चात् का है। उस काल मे भी जगत् को गान्धारो का यथेष्ट ज्ञान था (अथर्ववेद ५ २२ १४)। अथर्ववेद में गधारियो किंवा गान्धारो का उल्लेख मूजवतो के साथ किया गया है। उनकी गणना अवमानित जातियो मे की गयी है। श्रौत सूत्रो मे गान्धार जनपद तथा वहाँ के निवासियो का वर्णन मिलता है। कुछ विद्वानो का मत है। गान्धार निवासी कुमा अर्थात् काबुल नदी के तट, सिन्धु कुमा संगम, तथा सिन्धु के पूर्वीय तट पर कुछ दूर तक आबाद थे। कालान्तर में वे पारसी राज्य के अंग हो गये थे। पारसी राज पर्कसीज ने गान्धारो की सेना के साथ यूनान पर आक्रमण किया था। गान्धारराज नग्नजित का नाम वैदिक साहित्य सोम के स्थान पर अन्य वस्तु के उपयोग का मत दिया था। (शतपथ ब्राह्मण ८ : १ · ४ · १०; ऐतरेय ब्राह्मण ७ ३४)।

शतपथ ब्राह्मण (११ ४ · १) मे उद्दालक आरुणि का उदीच्यो अथवा उत्तरी देश गधार के निवासियो के साथ सबन्ध बताया गया है।

पुराणो मे गान्धार का उल्लेख प्रचुर रूप से मिलता है। गान्धार का एक चन्द्र पौरववंशीय राजा था। उसके पिता का नाम आरद्वान किंवा अनुरुद्ध था। द्रुह्यु की चौथी पीढी में हुआ था। उसने उत्तर-पश्चिम मे गान्धार देश आबाद किया था। (वायु पुराण ९९ . ७ १० तथा विष्णु पुराण ४ · १७ . १)। गान्धार के नरेश को वायु तथा मत्स्य पुराणो ने द्रुह्युवंशी बताया है। (मत्स्य ४८ ६, वायु ९९ . ९७)

ब्रह्माण्ड पुराण के मत से गान्धार की चौथी पीढी मे प्रचेतस के एक शत पुत्र हुए थे। उन सबको म्लेच्छाधिप कहा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७४ ११)।

मत्स्य तथा ब्रह्माण्ड पुराणो मे गान्धार का उल्लेख यवन, सिन्धु, सौवीर के साथ किया गया है। मत्स्य, वायु तथा विष्णु पुराणो में वर्णन है। द्रुह्यु के वश में एक गान्धार उत्पन्न हुए थे। द्रुह्यु राजा ययाति के पुत्र थे। उन्ही के नाम पर गान्धार देश का नामकरण किया गया था। (मत्स्य पुराण ४८; वायु पुराण; विष्णु पुराण ४ १७) भागवत तथा ब्रह्म पुराण के अनुसार गान्धार द्रुह्यु की चौथी पीढी मे हुआ था। गान्धार के चार पुत्र धर्म, घृति, दुर्गम तथा प्रचेता थे। भागवत (९-२३-१५) ब्रह्म (१३) मत्स्य पुराण के अनुसार गान्धार को केवल धर्म, विदुश तथा प्रचेता तीन ही पुत्र थे। विष्णु पुराण तथा वाराह मिहिर के

वृहत् सहिता में भी गान्धार का उल्लेख आया है। मत्स्य पुराण (११३ ४१) तथा ब्रह्माण्ड पुराण (२. १६ ४७) में गान्धार का उल्लेख यवन, सिन्धु, सौवीर के साथ किया गया है। वक्षु नदी, दरद, जगुण्ड, गान्धार, कश्मीर आदि देशो में होकर प्रवाहित होती है। (मत्स्य पुराण १२० ४६ तथा ब्रह्माण्ड पुराण २ १ ४७)। म्लेच्छ तथा आर्य धर्म विरोधियो मे गान्धार की भी गणना की गयी है। (ब्रह्माण्ड पुराण २ ३१ : ८३)। ब्रह्माण्ड पुराण (३ ७३ १०८–१११) में वर्णन किया गया है कि कलि के अन्तिम चरण में विष्णु यशस द्वारा पारद, यवन, शक, तुषर, पुलिन्द, दरद आदि जातियो का सहार होगा।

भरत के पुत्र तक्ष तथा पुष्कर ने गान्धार में तक्षशिला तथा पुष्करावती नगरियो को अपने नामो पर स्थापित किया था। (वायु पुराण ८८ १८९-९०, ब्रह्माण्ड पुराण ३ ६३ १९०-१९१) पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में इसका उल्लेख किया है। पुराणो के अनुसार गन्धार नरेश द्रुह्यु के वशज वताये गये हैं। (मत्स्य ४६ ६, वायु ११ ९)

वाल्मीकि रामायण (उत्तर काण्ड १०१, १११,) में गधार विपय के अन्तर्गत गधर्व देश की भी स्थिति मानी गयी है। केकय जनपद गान्धार के पूर्व था। केकय नरेश युधाजित के सुझाव पर भरत ने गान्धार देश पर विजय प्राप्त किया था।

केकय जनपद गान्धार की पूर्व दिशा में था। केकय नरेश के कहने पर भरत ने गन्धर्व देश को जीता था। उन्होने वहाँ तक्षशिला तथा पुष्कलावती नगरियो को वसाया था।

महाभारत में धृतराष्ट्र की रानी गान्धारी गान्धारराज की कन्या थी। शकुनी रानी गान्धारी का भाई था।

गान्धार का यथेष्ट उल्लेख मिलता है। अगुत्तर निकाय के १६ महाजनपदो की तालिका में गान्धार को महाजनपद कहा गया है। जातको में कश्मीर तथा तक्षशिला दोनो को गान्धार के अन्तर्गत दिखाया गया है।

महावंश में (१२ ५) कश्मीर गान्धार का उल्लेख मिलता है। मोगली पुत्र तिस्स ने थेरा मझन्तिक को कश्मीर गान्धार में बौद्ध धर्म प्रचार निमित्त भेजा था। उस समय गान्धार पेशावर तथा रावलपिण्डी जिलो के क्षेत्र में था। उसकी राजधानी तक्षशिला थी।

कश्मीर गान्धार तथा मगध के बीच जैसा गान्धार जातक से प्रतीत होता है खूब व्यापार होता था। (जातक ३ ३६३-६९) पुक्कुसाती गान्धार का राजा बिम्वसार मगधराज का समसामयिक था। पुक्कुसाती ने राजदूत मगध राज विम्विसार के यहा भेजा था। उसने अवन्ती के प्रद्योत के साथ युद्ध किया था जिसमें उसकी पराजय हुई।

गन्धार के राजा के पुत्र के रूप में बोधिसत्व ने जन्म ग्रहण किया था। उस समय मध्यप्रदेश में विदेह नामक राजा राज्य करता था। गान्धार राज के पराजित होने की बात सुनकर मिथिला तथा विदेह एकत्रित हो गये। दोनो राजा अपरिचित थे। वे एक बार मिले। गान्धार राज की सेवा विदेह राज करता था।

जैन उत्तराध्ययन सूत्र में गन्धार के जैन नरेश नगगति किंवा नगजिता का उल्लेख है। सिकन्दर आक्रमण काल में गान्धार में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। उनमें मुख्य तक्षशिला और अभिसार थे।

तक्षशिला यूनानी काल में गान्धार की राजधानी था। सिकन्दर के आक्रमण काल में गान्धार की

राजधानी मुखरावती का राजा हस्ति था। सिकन्दर के आक्रमण के २० वर्ष पश्चात् अशोक ने नगर पर अधिकार कर लिया।

अशोक के समय मे गान्धार का यथेष्ट उल्लेख मिलता है। तत्कालीन गान्धार बौद्ध धर्म का केन्द्र बन गया था। अशोक के पचम शिलालेख से पता चलता है। अशोक ने गान्धार के लिए धर्म महामात्यो को नियुक्त किया था। हूणो ने गान्धार पर आधिपत्य किया था। फाहियान ने भारत पर्यटन काल में गान्धार का उल्लेख किया है। उसने लिखा है। गान्धार में अशोक के पुत्र धर्मविवर्धन ने शासन किया था। यहा बोधिसत्त्व ने अपने नेत्रो का दान किया था।

बौद्ध दर्शन की जनक एक तरह से गान्धार भूमि कही जा सकती है। बौद्धो के चार दर्शनो में योगाचार दर्शन का प्रवर्तक असग यही उत्पन्न हुआ था। वसुबन्धु महायानानुयायी था। वह अभिधर्म-कोष का रचयिता था। गान्धार की तत्कालीन राजधानी तक्षशिला के महान् विद्वान् धर्मपाल, वासवदत्त तथा अंगुलिमाल थे। गान्धार जातक, शासन वंश, दिव्यावदान में गान्धार के उल्लेख मिलते हैं।

तक्षशिला का उल्लेख बौद्ध जातको तथा जैन कथाओ मे मिलता है। इसका नाम जैन तीर्थंकर महावीर से सम्बन्धित किया गया है। दीप वश में वर्णन है। क्षत्रिय राजा दीपाकर तथा उसके पुत्र तथा पौत्रो ने तक्षशिला पर शासन किया था। डनिया पलाई जातक से पता चलता है। तक्षशिला के राजा ने वाराणसी पर आक्रमण किया था। उसे घेर लिया था किन्तु अन्त मे भयभीत होकर वह भाग गया, जातको से पता चलता है कि बनारस के राजा ने तक्षशिला पर आक्रमण किया था। तक्षशिला के मजबूत द्वार से ही इतना प्रभावित हो गया कि उसने नगर पर आक्रमण करने का साहस नही किया।

जातको के अनुसार तक्षशिला विश्वविद्यालय में केवल ब्राह्मण तथा क्षत्रिय ही प्रवेश पा सकते थे।

जातक मे कही-कहीपर तक्षशिला तथा कश्मीर को गान्धार के अन्तर्गत कहा गया है।

कुछ ऐतिहासिको का मत है कि ५५८ ५३० वर्ष ईसा पूर्व मे फारस अर्थात् ईरान के राजा कुरु के अन्तर्गत गान्धार देश था। ईसा पूर्व ३३१ वर्ष में परसियन साम्राज्य के नष्ट होने पर सिकन्दर ने इस पर आक्रमण किया था। दो सौ तीस से एक सौ पंचानवे वर्ष ईसा पूर्व यह यूनानी राजाओ के अन्तर्गत था। एक सौ पचहत्तर से एक सौ छप्पन वर्ष ईसा पूर्व १७५-१५६ में बलख के चतुर्थ राजा डेमेट्रिस के आधीन चला गया था।

मौर्य साम्राज्य काल में गाधार मौर्य्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। कुशान साम्राज्य का भी वह अंग था। कुशानो के समय में गान्धार की नवीन राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) स्थापित की गयी। गुप्तकाल मे संभवत गान्धार गुप्त साम्राज्य से बाहर था। वहा पर यवन शक आदि जातियो का प्राबल्य था, सातवी शताब्दी तक बौद्ध धर्म गान्धार मे खूब प्रचलित था। वहा का बलशाली धर्म था। आठवी तथा नवी शताब्दी मे मुसलिम सत्ता के उत्कर्ष के साथ मुसलिम प्रभाव क्षेत्र मे शनै. शनै आता गया। सन् ८७० ई० में अरब सेनापति याकूल एलेस ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर लिया। परन्तु वहा हिन्दू तथा बौद्ध निवास करते थे। सन् ९९० ई० में लम्पक (लमगान) का दुर्ग मुसलमानो के हाथो चला गया। तत्पश्चात् काफिरिस्तान के अतिरिक्त समस्त अफगानिस्तान मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया।

हुएनसाग ७वी शताब्दी मे गान्धार आया था। फाहियान तथा हुएनसाग के मध्यवर्ती पर्यटन काल में गान्धार की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। उसके पर्यटन काल मे गान्धार के विहार, स्तूप तथा

धर्म स्थान खण्डहर हो गये थे। उसके अनुसार उत्तर दिशा में गान्धार का विस्तार १००० ली पूर्व में सिन्धु नदी तक था। राजधानी पुरुषपुर अर्थात् पेशावर ४० ली के क्षेत्र में फैला था। गान्धार राजवश का लोप हो गया। कपिशा राज्य के अन्तर्गत उसका शासन होता था। नगर तथा ग्राम उजड गये थे। परन्तु देश धनधान्य पूर्ण था। उपज खूब होती थी। भूमि उर्वरा थी। अनेक प्रकार के अन्न, फल तथा फूल होते थे। लोग लज्जालु तथा कोमल हृदय थे। लोगो में साहित्य के प्रति रुचि थी। कुछ ही बौद्ध धर्मानुयायी बच गये थे। शेष मूर्तिपूजक तथा धर्म भ्रष्ट हो गये थे।

पाणिनि का गान्धार प्रदेश में जन्म हुआ था। गान्धार की राजधानी पुष्कलावती किंवा पुष्करावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व की ओर थी। गान्धार पहले सिन्धु के दोनो ओर फैला था किन्तु कालान्तर में सिन्धु नदी के पश्चिम ओर ही रह गया। पुष्करावती नगर की नीव भरत के पुत्र पुष्कर ने डाली थी। (विष्णु पुराण ४ ५)।

आठवी तथा नवी शताब्दी में मुसलमानो के उत्कर्ष के साथ ही साथ यह देश शनै शनै उनके राजनीतिक तथा सास्कृतिक प्रभाव में आ गया। सन् ८७० ई० में अश्व सरदार याकूब ने अफगानिस्तान पर आशिक विजय प्राप्त की थी। अलप्तगीन तथा सुबुक्तगीन के आक्रमणो का वहाँ के हिन्दू नरेशो ने सामना किया था। सन् ९९० में लम्पक (लमगान) का दुर्ग हिन्दुओ के हाथो से निकल गया। काफिरिस्तान के अतिरिक्त समस्त अफगानिस्तान को इसलाम स्वीकार करना पडा।

ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी में हिन्दु शाही वशजो के हाथ में गान्धार प्रदेश का शासन-सूत्र आ गया था। सन् १०२१ ई० में सुलतान महमूद गजनी ने गान्धारराज त्रिलोचन पाल पर आक्रमण किया। राजा तोसी तट पर पराजित हो गया। गान्धार के हिन्दू धर्म तथा स्वतत्रता दोनो का ही लोप हो गया। तत्पश्चात् केवल ५ वर्ष के लिए उसके पुत्र भीमपाल ने पुन स्वतत्रता प्राप्त की। परन्तु मुस्लिम शक्ति के सम्मुख गान्धार मुस्लिम धर्म तथा सस्कृति मे लोप हो गया। मुस्लिम इतिहासकारो ने गान्धार की राजधानी तक्षशिला का वर्णन नही किया है। तक्षशिला अपना पूर्व गौरव खो चुका था। खडहरो का ढेर मात्र रह गया था। मुस्लिम इतिहासकारो ने उसका उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण नही समझा।

इस वैदिक काल से अठारहवो शताब्दी तक गान्धार भारतीय राज्य का अग होता और निकलता रहा है। उसका इतिहास भारतीय इतिहास से गुथा है। उसे अलग रखना कठिन है। वहा भारतीय सस्कृति फली-फूली। वहाँ से वाहर गयी। ललित कलाएँ विकसित हुई। गान्धार का पुराना नाम, धर्मादि का लोप हो गया। उत्तर-पश्चिमीय सीमान्त प्रदेश के रूप में उसका अधिक क्षेत्र पाकिस्तान बनने के पूर्व भारत का अग था।

तक्षशिला का वर्णन करते हुए प्लिनी लिखता है कि नगर पर्वत मूल के उस स्थान पर आबाद था, जहाँ पर्वत भूमि मे मिल जाता था। नगर समतल भूमि में बसा था। वह नगर की बडी प्रशसा करता है कनिंघम ने तक्षशिला में ५५ स्तूप, २८ विहार तथा ९ मन्दिरो का ध्वन्सावशेष देखा था।

नागार्जनी कोण्डा के वीरपुरुप दत्त के अभिलेख में गान्धारका उल्लेख आया है। गान्धार में १००० से अधिक बौद्ध विहार थे। युवान्‌चांग के समय में उनकी बुरी अवस्था थी। अनेक स्तूपो के शिखर खडहर थे। लगभग १०० देव मन्दिर गान्धार में थे। पुष्करावती गान्धार की राजधानी थी। उसकी राजधानियाँ विभिन्न समयो मे बदलती रही हैं। पुष्करावती किंवा पुष्कलावती तथा कभी तक्षशिला हो

जाती थी। पुष्करावती सिन्धु के पश्चिम तथा तक्षशिला के पूर्व ओर आबाद थी। अभिधर्म कोष शास्त्र एवं सुमगल विलासिनी का रचयिता वसुबन्धु पुष्करावती का निवासी था।

गान्धार जातक में गान्धार कश्मीर का उल्लेख मिलता है। दरायुह के वेहिस्तुत अभिलेख (ईसा पूर्व पाँच सौ बाईस से चार सौ छियासी वर्ष) गान्धार का उल्लेख है। दरायुह (दारियस) के सूसा प्रासाद के भग्नावशेष के एक अभिलेख मे गान्धार का उल्लेख मिला है।

जम्बूद्वीप की सीमा वर्णन में उत्तर-पश्चिम गान्धार तथा कश्मीर का उल्लेख किया गया है। सोलह जनपदो में कम्बोज तथा गान्धार को उत्तरापथ में सम्मिलित किया गया है। खुद्दक निकाय के उत्तरखण्ड चुल्ह निद्देस में गान्धार जनपद के स्थान पर भोन अर्थात् भवन जनपद का उल्लेख किया गया है। मज्झिम निकाय की अट्ठ कथा तथा पपचसूदनी मे गान्धार राष्ट्र सीमान्त पर स्थित जनपद बताया गया है। यहाँ पर कश्मीर गान्धार का नाम साथ-साथ लिया गया है। (जातक भाग २ ३६५)। अनेक विद्वानो ने इसके आधार पर कश्मीर को गान्धार के अन्तर्गत बताया है। यह अप्रमाणित है। ठीक नही है।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य तथा वामन पुराणो में 'गान्धारा यवनाश्चैव' का उल्लेख मिलता है। गान्धार, यवन शब्द एक साथ प्रयुक्त किया गया। उनसे यवन देश तथा गान्धार का समीप होना प्रतीत होता है। सिन्धु अर्थात् आधुनिक सिन्ध प्रदेश सिन्धु नदी के पश्चिम तथा पूर्व में सिन्धु नदी के अधोभाग के पूर्व था। सौवीर क्षेत्र झेलम-चनाव संगम से ५० मील अधोभाग में था। भद्र देश वर्तमान सियालकोट तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र है।

कुणिन्द लोगो के विषय में ,कहा जाता है कि कुलू अंचल के आधुनिक कुलेत्स हैं। प्राचीन काल में यह अंचल सहारनपुर तथा अम्बाला जिले तक विस्तृत था। इस क्षेत्र से तत्कालीन मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। पारद लोग खुराशान क्षेत्र के निवासी थे। यवन अफगानिस्तान में थे। यूनानी जाति अफगानिस्तान में आबाद हो गयी थी। राज्य वही स्थापित कर लिया था। कुहून शब्द काबुल नदी जिसका प्राचीन नाम कुभा किंवा कुहू था उसकी उपत्यका के निवासियो के लिए आया है। 'गान्धारान् वरयान् हुन्दान्,' 'गान्धारान् औरसान् कुहून्, 'गान्धारान् रुरसान् (औरसान्) कुरून्' आदि उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मार्कण्डेय पुराणो में मिलते है। इससे निष्कर्ष निकलता है। गान्धार कुभा अर्थात् काबुल नदी की उपत्यका तक विस्तृत था। 'शिवपौरान् इन्द्रहासान्', 'शिवपौरान् इन्द्रभरून्' का उल्लेख वायु, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराणो मे मिलता है। शिव पौरान् से अर्थ शिव नगर के पौरागण से है। शिवपुर अर्थात् वर्तमान शोरकोट जिला पश्चिमी पाकिस्तान के लिए व्यवहृत किया गया है।

सम्मोह तन्त्र की तालिका (२ : ४) में गान्धार देश का उल्लेख किया गया है।'हूण कौरव गान्धार' अर्थात् हूणो के समीप देश की ओर सकेत किया गया है।

गान्धार का दूसरा नाम दिहन्दास दिया गया है। दोनो शब्द समानार्थक माने गये है। दिहन्दास वास्तव मे उदभाण्डपुर प्रतीत होता है। गान्धार को कन्धार से मिलाने का प्रयास किया गया है परन्तु यह खीचातानी तर्कसम्मत नही मालूम होती। गान्धार की जो स्थिति तथा सीमा बतायी गयी है उससे वर्तमान कन्धार का मेल नही खाता। सम्भव है। गान्धार के नाम पर अफगानिस्तान के दक्षिण मे गान्धार नगर बसाया गया होगा। हो सकता है गान्धार का अपभ्रश वर्तमान कन्धार हो गया। भारत मे काशी नाम के कितने ही स्थान है। परन्तु वाराणसी की ही काशी वास्तविक काशी राज्य रही। अन्यथा, दक्षिण काशी, उत्तर काशी अनेक स्थान काशी के नाम पर है।

पौराणिक परम्परा के अनुसार गान्धार में सिन्धु नदी के दोनो तटो पर दो नगर तक्षशिला तथा पुष्कलावती आवाद थे। तक्षशिला सराय कला रेल जक्शन से रावलपिण्डी के उत्तर-पश्चिम २० मील पर हरो नदी की उपत्यका में आवाद हैं। यहाँ ३ नगरो के ध्वन्सावशेष है। धुर दक्षिणी ध्वन्सावशेष का स्थान उठती अधित्यका मीर टीला पर है। पुष्कलावती किंवा पुष्करावती नगर स्वात प्रदेश मे परगना चरसद्दा मील ज़यारत अचल में १७ मील उत्तर-पूर्व पेशावर मे स्थित है। स्वात उपत्यका को प्राचीन काल में उड्यिान देश कहते थे। स्कन्द पुराण को तालिका में उसकी क्रम-सख्या १३ तथा ग्राम-सख्या ९ लाख दी गयी है।

सातवी शताब्दी में हुएनसाग जिस समय उत्तरापथ में प्रवेश किया उस समय उदभाण्डपुर कपिशा के राजा की द्वितीय राजधानी थी। उस राज्य में लम्पक (लगमान) नगर, नग्रहार (जलालाबाद), वर्ण (वलू) तथा जागद अर्थात् दक्षिणी अफगानिस्तान गजनी पडता था। गजनी का नाम स्कन्द पुराण में गाजनक आया है। उसके ग्रामो की सख्या ७२ हजार दी गयी है। देशो की तालिका मे उसकी क्रम-सख्या ७ है।

गान्धार देश के विषय में हुएनसाग लिखता है। गान्धार की राजधानी पुरुषपुर थी। राजवश लुप्त हो गया था। कपिशा राज्य के अन्तर्गत था। नगर तथा ग्राम उजड गये थे। बहुत थोडे लोग वहाँ निवास करते थे। श्री लक्ष्मीधर ग्यारह पिशाच देशो में गान्धार को भी मानते हैं। यहाँ अर्थ यह लगाना चाहिए कि वहाँ के लोग पैशाची भाषा मानते थे। (कम्परेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लेगुवेज पैरा-२७)

स्कन्द पुराण के देशो में तथा महावस्तु के जनपदो में गान्धार और कम्बोज जनपद का नाम नहीं है। किन्तु अगुत्तर निकाय में १६ जनपदो में गान्धार, कम्बोज का नाम दिया गया है। महावश में शिवि तथा दशार्ण दो अन्य जनपदो का उल्लेख किया गया है। महावस्तु में युद्ध ज्ञान प्रचारार्थ दिये गये नामो में शिवि देश सम्मिलित है। शिवि स्कन्द पुराण के देशो की तालिका में ४५वाँ नाम है। उसके ग्रामो की सख्या १० हजार दी गयी है। कम्बोज जनपद का भी उल्लेख है। स्कन्द पुराण की तालिका में क्रमसख्या ५९ तथा ग्रामो की सख्या १० लाख दी गयी है। गान्धार जनपद स्कन्द पुराण तथा महावश के रचना-काल मे अपना महत्त्व खो चुका था। उसका महत्त्व शिवि एव दशार्ण जनपदो को जो उसी क्षेत्र के थे मिल गया था। बौद्ध काल मे शिवि देश अपने सुन्दर दुशालो के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। चण्डप्रद्योत अवन्ती के राजा ने जीवक को पाण्डु रोग से मुक्त होने पर शिवि का बना दुशाला दिया था। जीवक तक्षशिला का स्नातक था। वहाँ उसने आयुर्वेद तथा चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। तक्षशिला मे उन दिनो भारतवर्ष के कोने-कोने से यथा लाट देश, कुरु देश तथा शिवि देश से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति निमित्त जाया करते थे। विनय पिटक में स्पष्ट उल्लेख है। जीवक ने इन दुशालो (सिवेपक दुस्स) को भगवान् बुद्ध को अर्पित किया था। शिवि जातक मे कोशल के राजा प्रसेनजित ने भगवान् बुद्ध को १ लाख मूल्य के शिवि राज्य म बने वस्त्र अर्थात् सिवोपक वत्थ दिया था। मालूम होता है कि गान्धार क्षेत्र उन दिनो शिवि तथा दशार्ण देशो मे मिल गया था।

स्याम (थाईलैण्ड) के उत्तर स्थित यून्नान प्रान्त का प्राचीन भारतीय नाम गान्धार था। ईसा से दो शती पूर्व यहाँ भारतीय आवाद हो गये थे। तेरहवी शताब्दी तक यून्नान का नाम गान्धार ही प्रचलित था।

भारतीय गान्धार पश्चिमी पाकिस्तान का पेशावर तथा रावलपिण्डी का जिला था।

परिशिष्ट 'ट'

गुह्यक

(तरंग १ : १५६ पृष्ठ : २१३)

गुह्यक दस देवयोनियो में यक्षो तुल्य एक योनि है। अमर कोश के अनुसार दस निम्नलिखित देवयोनियाँ है :

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय. ।। १:१:११

कुबेर को गुह्यकेश्वर तथा वैश्रवण भी कहा गया है। गुह्यक उस वर्ग के लिए प्रयुक्त किया गया है जो कुबेर के कोष की रक्षा करते थे। उनके स्वामी गुह्यकेश्वर थे।

कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वर. । १.२:७१
मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः ।
किन्नरेशो वैश्रवणः पौलस्त्यो नरवाहनः ।। १:२.७२

बौद्ध भास्कर्य किंवा मूर्तिकला में कुबेर तथा यक्षो का प्रमुख स्थान है। कुबेर की अलकापुरी का बडा सुन्दर वर्णन मेघदूत मे कालिदास ने किया है। यक्ष का स्वामी कुबेर है। बौद्ध मूर्तियो मे कुबेर तथा यक्ष भगवान् की पूजा करते दिखाये गये हैं।

गुह्यक शब्द का एक जाति के रूप में प्रयोग मिलता है। उन्हें देवयोनि के अन्तर्गत एक जाति महाभारत ने माना है। (आदि पर्व १८६ : ७) इस जाति के लोग द्रौपदी के स्वयंवर के समय उपस्थित थे। गुह्यकेश्वर अर्थात् कुबेर की सभा में गुह्यको का स्थान था। (सभा पर्व १० ३) गन्धमादन पर्वत पर उनका निवास कहा गया है। भीमसेन ने उन्हें वही गदा से प्रहार किया था। (शल्य पर्व ११ . ५५–५६) गुह्यक को यक्ष भी कहा गया है (सभा पर्व १० . १५)।

पुराणो मे कुबेर के अनुयायी तथा दानव गुह्यक कहे गये है। (भागवत पुराण १ : ९ ३, १०, ३४ . २८, २ : १० . ३७, ४ : ४ ३४) गुह्यक जाति हिमालय मे निवास करती थी। (भागवत ४ : ५ २६, ४ · १० ५) वे माया विद्या मे निपुण थे। (भागवत पुराण १० ५५ : २३) गुह्यको के देवता शिव थे। वे शिव के अनुयायी थे। (भागवत पुराण ६३ १०) गुह्यको ने पुण्यात्माओ के संसर्ग से स्वर्ग प्राप्त किया था। (भागवत पुराण ११ . १२ ३, ११-१४ : ५,) गुह्यको को यक्षो तथा राक्षसो की श्रेणी में रखा गया है। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ · ७ : १६७-१६८, ४ : २ : २६, मत्स्य पुराण १३ १७, १२१, २) गुह्यको के आचरण तथा कर्त्तव्यो का विशद वर्णन मत्स्य पुराण (१८० . ९०, २४६ . ५३,) तथा वायु पुराण (अध्याय ६९ · तथा १०१) मे मिलता है। गुह्यक वर्ग को वायु पुराण (अध्याय ३०) मे हिमालयवासी कहा गया है। वे 'शकर पार्वती के साथ विराजमान थे।' उस समय आदित्यगण, वसुगण, अश्विनीकुमार, गुह्यको को साथ लेकर वैश्रवण अर्थात् कुबेर, सनत्कुमार, अंगिरादि देवर्षि, विश्वावसु, गन्धर्व, नारद, कैलास निवासी यक्षराज महामुनि उशना तथा अप्सराएँ आदि उमा, शंकर की उपासना करने लगी।

हरिवंश पुराण में कैलास शिखर पर गुह्यको के साथ कुवेर के आगमन का वर्णन मिलता है। (८५ '०) यक्ष जाति की गुह्यक एक शाखा किंवा उपवर्ग थे। उनमें तथा यक्षो में यह भिन्नता थी। गुह्यक गणो की मम्पत्ति की रक्षा करते थे। उनका सैनिक कर्म था। वे प्रतिहारी थे। काम साधारणतया शस्त्रोपजीवी किंवा पहरा, चौकी, रक्षादि करना और शस्त्रादि चलाना था। उन्होने महाभारत युद्ध में भाग लिया था। यक्ष जाति के होते हुए भी उन्हें अलग गुह्यक सज्ञा उसी प्रकार दी गयी है जैसे हिन्दू होने पर भी क्षत्रियो की अपनी अलग जाति शस्त्राश्रयी होने के कारण हो गयी।

वायु पुराण (अध्याय १०१) से प्रकट होता है कि गुह्यक लोग सत्य अर्थात् ब्रह्म लोक में देवताओ के साथ रहते थे। सत्य लोक सातवा किंवा अन्तिम लोक है। उसमें समस्त देवगण गन्धवो, अप्सराओ, यक्षो तथा गुह्यको के साथ निवास करते है। वायु पुराण के (अध्याय ६९) में गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष तथा पिशाचो को असुरदेव की श्रेणी मे रखा गया है। यहा पर सर्प, भूत, पिशाच, नाग एव मनुष्यो को पृथ्वी लोक का निवासी वताया गया है।

गुह्यको की उत्पत्ति के विपय में वायु पुराण (अध्याय ९ ३५, ३४) में कथा है—'ब्रह्मा ने रजस्तम प्रधान दूमरा शरीर धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होने दूसरी प्रजा उत्पन्न की। वह प्रजा जल को भक्षण करने के लिए कटिबद्ध हो गयी। हम जल की रक्षा करते है। कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस हुए। जिन लोगो ने कहा कि हम जल को खा जायेंगे, नष्ट कर देंगे वें क्रूरकर्मा गुह्यक यक्ष कहलाये।

भागवत (१ ९ ३) मे श्रीकृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि के रथारूढ गमन करने की शोभा की तुलना गुह्यको सहित कुवेर से की गयी है। गुह्यको को कुवेर का साथी कहा गया है।

भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूपो का वर्णन करते हुए सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सराए, नाग, सर्प किंपुरुष, उरग, मातृकाए राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, मेंनाल, यातुधान के वर्ग मे गुह्यको को रखा गया है (स्कन्द० २ १० ६७ ११ १२ ३, तथा १४ ५)।

दक्ष यज्ञ मे सती के प्राण विसर्जन काल में गुह्यक तथा प्रमथ गण उपस्थित थे। शिव के पार-षद गुह्यक तथा प्रमथगण सती के साथ दक्ष यज्ञ में गये थे। सती के प्राण विसर्जन के साथ ही गुह्यको तथा प्रमथो ने क्रुद्ध होकर दक्ष यज्ञ मे विघ्न उपस्थित किया। अस्त्र-शस्त्रो से आक्रमण किया। उनके भयकर आक्रमण वेग को देखकर भृगु ने यज्ञ द्वारा सहस्रो ऋभु नामक देवो को उत्पन्न किया। उन्होने जलती लक-डियो द्वारा प्रमथगण तथा गुह्य॰ो पर आक्रमण किया। उन्हें भगाने में समर्थ हुए।

दक्ष यज्ञ के प्रसग में गुह्यकालय अर्थात् गुह्यको के निवास स्थान का उल्लेख किया गया है। सती के प्राणाहुति से क्रुद्ध होकर वीरभद्र ने दक्ष के मस्तक को यज्ञ की दक्षिणाग्नि मे डाल दिया। यज्ञ को विध्वस कर गुह्यक गण गुह्यकालय लौट गये। यहा पर गुह्यकालय हिमालय स्थित कैलास के समीपस्थ स्थान होना चाहिए। वायु पुराण ने हिमालय का यही अचल गुह्यको का निवास-स्थान वताया है।

उत्तम हिमालय मृगया निमित्त गया था। वहा उसकी हत्या कर दी गयी थी। ध्रुव अत्यन्त क्रुद्ध होकर रुद्रो के अनुचरो से सेवित उत्तर दिशा में हिमालय की द्रोणी अर्थात् घाटी मे गये। वहाँ नगर गुह्यको से जनाकीर्ण थे। (भागवत ४.१० ५) यहा पर भी निर्देश किया गया है। गुह्यक गण उत्तर दिशा में हिमा-लय की घाटी किंवा द्रोणी में रहते थे।

श्रीकृष्ण द्वारा गुह्यक शंखचूड के वध की कथा भागवत (१०:३४,२८) में दी गयी है। एक समय शखचूड गुह्यक गोपियो को लेकर उत्तर दिशा की ओर भाग गया। श्रीकृष्ण उस अधम गुह्यक के पास पहुँचे। गुह्यक गोपियो को छोडकर भाग गया। श्रीकृष्ण ने उसका पीछा किया। वध कर मणि लेकर वापस आये। इससे दो बातें स्पष्ट होती है। गुह्यक दस्यु आदि अनुचित कार्य करते थे। उनका निवास स्थान उत्तर दिशा मे था। मथुरा से उत्तर दिशा पजाब, कश्मीर, हिमाचल की ओर पडता है। उत्तर दिशा का अर्थ प्राय हिमालय का उत्तरीय पर्वतीय अंचल माना जाता रहा है।

प्रद्युम्न तथा शम्वरासुर वधके प्रसग मे गुह्यको का पुन. उल्लेख भागवत (१० ५५ २३) मे किया गया है। तदनन्तर शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसो की सैकडो माया का प्रयोग किया। गुह्यक मायावी थे। युद्ध में माया का प्रयोग करते थे। यह बात अन्य पुराणो मे भी कही गयी है। शम्बर ने गुह्यको की माया का प्रयोग किया। गुह्यको ने युद्ध मे भाग नही लिया था परन्तु उनकी युद्ध नीति का प्रयोग शम्बर ने प्रद्युम्न के विरुद्ध किया था।

भागवत (११ १२·३) मे पुन: दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक को एक ही वर्ग में रखा गया है। गुह्यको के पूर्वज ब्रह्मर्षि थे। देव योनि वर्ग मे थे। इसका उल्लेख भागवत (११-१४ ५) में किया गया है। इन ब्रह्मर्षियो की सतान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, राक्षस, और किम्पुरुष आदि थे।

रामायण में कैलास के समीप गुह्यको के रहने की बात कही गयी है। सुग्रीव ने उत्तर दिशा मे माता सीता को खोजने के लिए जिन देशो तथा जातियो का नाम लिया है उनमे गुह्यक थे। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३ श्लोक ३ मे उल्लेख आता है—'वहाँ यक्षो के स्वामी विश्रवाकुमार श्रीमान् राजा कुबेर, जो समस्त विश्व के लिए वन्दनीय हैं, धनदाता हैं, यक्षराज गुह्यकों के साथ निवास करते है।

गुह्यको का उल्लेख यक्षो के साथ नीलमत पुराण मे किया गया है .

> आश्रमानि तथा नद्यश्चक्रुस्तीर्थान्येनकश: ।
> गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः शैलेन्द्राश्च सगुह्यकाः ॥ 186 = २३९—२४०

× × ×

गुह्यकेश्वर का भी उल्लेख नीलमत में मिलता है :

> गुह्येश्वरः शतमुखा यष्टिकापथ एव च।
> कदम्बेशस्तथा पुण्यः क्षेत्रं चैव समन्ततः ॥ 118 = १६०-१६१
> यावच्छत मुखं तीर्थं पावत्तीर्थं गुह्येश्वरम्।
> तावत् क्षेत्रं समं पुण्यं वाराणस्याथवाधिकम् ॥ 119 = १६१-१६२

कल्हण के गुह्यक शब्द के व्यवहार से गुह्यक जाति की सत्यता तथा वास्तविकता पर विशेष प्रकाश पडता है। पुराणो में गुह्यको को यक्षो की एक उपजाति माना है। कल्हण के इस वाक्य से कि राजा ने गुह्यको से सहायता ली (रा० १:१५६) इसका अर्थ है पुल निर्माण का कार्य उनसे लिया। इससे मालूम होता है। उस समय गुह्यक नाम की जाति कश्मीर में रहती थी। वह जाति परिश्रमी तथा निपुण थी। पुल

बनाने का काम आज भी शिल्पिक कार्य समझा जाता है। किसी कश्मीरी कलाकार की सहायता न लेकर गुह्यको की सहायता पुल बनाने के लिए ली गयी। इसका अर्थ है कि यह जाति इस कला में निपुण थी। यक्ष नाम की भी एक जाति थी, जो कश्मीर में रहती थी। यक्षो को कालान्तर में मानव विशेष समझ लिया गया था। इसी प्रकार गुह्यको को भी मानव विशेष समझा गया। परन्तु कल्हण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है गुह्यक एक जाति थी। उस जाति के लोग कश्मीर में आबाद थे। निर्माण कला में निपुण थे। कल्हण ने (१ ५९,१८४,३ ३४९) से यक्ष का उल्लेख किया है। यक्षो के सन्दर्भ में कहा जाता है। उनका उपयोग सेतु अर्थात् पुल बनाने मे किया गया था। पुराण, महाभारत में यक्ष के अन्तर्गत गुह्यक जाति मानी गयी है। अतएव राजा दामोदर (ता० १ १५९) के काल तक यक्ष और गुह्यक दोनो जातियाँ कश्मीर में थी वे परिश्रमी थी। शिल्प उनका मुख्य कार्य था।



परिशिष्ट 'ठ'

यक्ष

(तरंग १ : १५९–पृष्ठ २१८)

कल्हण कश्मीर में प्रचलित किंवदन्ती की ओर संकेत करता है। प्राचीन विशाल इमारतो का निर्माण विशाल शिलाखण्डो से किया गया है। उन्हे यक्षो ने किया था। वे मानवीय शक्ति के परे की बात है। कल्हण ने जिन भव्य भवनो तथा निर्माणो का वर्णन किया है उनमें बहुतो के ध्वन्सावशेष वर्तमान है। कश्मीरी मुसलमान उक्त निर्माणो को जिन तथा परियो का बनाया मानते है। किसी ग्रामीण से पूछने पर उत्तर मिलता है। पाण्डवों ने बनाया था।

यक्ष शब्द ऋग् तथा अथर्ववेद में अनेक स्थलो पर आया है।

(ऋग्वेद १ १९० ४, ४·३ १३, ५.१० ४, ७ ५६ १६, १०.८८ १३, ७:६१ ५, अथर्ववेद ८ ९.२५ १०.२ ३२, १०:७:३८, १०:८:४३ ११.२:४)

वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड पुराणो मे यक्ष शब्द प्राय· गन्धर्व तथा किन्नर के साथ आया है। यह सब हिमालय प्रदेश की पर्वतीय जातियाँ थी। अलबेरुनी ने गन्धर्वों को गायक जाति मे गिना है। उनका संगीत तथा नृत्य पेशा माना है। (मत्स्य · ११४.८२; ब्रह्माण्ड . २:१८.३३)

गन्धर्वान किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्।
कलायग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान्॥

हरिवंश पुराण, भविष्य पर्व (३३:११) में महर्षि, वसु, अप्सरा, गन्धर्व के साथ यक्ष का उल्लेख किया गया है। उन्हे कुबेर के भवन में निवास करना दिखाया गया है। (वायु : ३९·५७) (नीलमत : 1007–8)

अग्नि पुराण (१९ . १८) में उन्हें 'कश्यपपत्नीखसाजाता .' अर्थात् कश्यप की पत्नी खसा से यक्षो की उत्पत्ति हुई थी।

यक्षो का वर्णन महाभारत में प्रचुर रूप से मिलता है। गुह्यको के सन्दर्भ में यक्षो का उल्लेख किया गया है। महाभारत मे उन्हें देव योनि मे रखा है। विराट अण्ड द्वारा ब्रह्मादि के उत्पन्न होने के पश्चात् यक्षो की उत्पत्ति बताई गयी है। महाभारत आदि पर्व (१ ३५) मे यक्षो को पुलस्त्य मुनि की सन्तान कहा गया है (आदि पर्व ६६ ७)। राक्षस रावण पुलस्त्य का नाती था। अतएव यक्षो का सम्बन्ध राक्षसो से माना गया है। यक्ष मानव थे। श्री शुकदेवजी ने यक्षो को महाभारत की कथा सुनायी थी। (आदि पर्व १ १०८)। यक्षो ने कुबेर का राजपद पर अभिषेक किया था। (वन पर्व १ : १०-११) पाण्डव भीम ने यक्षो तथा राक्षसो को पराजित किया था। (वन पर्व १६० . ५७-५८।) सुन्द उपसुन्द ने यक्षो को पराजित और पीडित किया था। (वन पर्व २०८ : ७)।

यम ने यक्ष का रूप धारण कर युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किया। यक्ष के प्रश्नो का उत्तर देकर धर्मराज युधिष्ठिर ने चारो भाइयो को यम से जीवित कराया था। (वन पर्व ३१४ : १७)।

प्राय देवताओ की मूर्तियो पर यक्षगण नभोपथ से उन्हें माला पहनाते, उनपर पुष्प वर्षा करते दिखाये जाते हैं। भगवान् बुद्ध की मूर्ति में भी शिरोभाग दोनो पार्श्वो में उडते यक्ष माला सहित उत्कीर्ण किये मिलते हैं।

ब्रह्माण्ड तथा वायु पुराणो के अनुसार वे राक्षस तथा खसा की सन्तान थे। वे अपनी माता को खा जाना चाहते थे। अतएव उनका नाम यक्ष पडा। उनके आकार का वर्णन किया है। उन्हें चार हाथ तथा चार पैर होते हैं। रात्रि में आहार निमित्त विचरण करते हैं। वसु रुचि का रूप धारण कर अप्सरा क्रथस्थला के साथ नन्दन में निवास किया था। उससे रजत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यक्ष अपने पुत्र के साथ हिमालय में निवास निमित्त आया।

ब्रह्माण्ड पुराण (२ १८ ३३२ ३ ७ ६०, १००-१७, २२ : १४, ४१ ३०, ७१ १ : १) तथा भागवत आदि पुराणो में यक्षो की उत्पत्ति की एक और कथा है। कश्यप पिता तथा विश्वा माता का पुत्र यक्ष था। (भागवत २ ६ १३, ६ : ८ २४, १० ६ २७, ६२ १९, ८५ ४१, ब्रह्माण्ड पुराण २ ३२ १-२, ३५ १९१, ३६ ११८।)

पुराणो में उन्हें रुद्र के अनुयायी रूप से चित्रित किया गया है। उनके स्वामी का नाम कुबेर है। (भागवत पुराण ११ १६ १६)। मत्स्य पुराण (८ ५) के अनुसार ब्रह्मा ने यक्षो का अधिनायकत्व शूलपाणि को दिया था। यक्षो ने कच्चे पात्र में वसुधा का दोहन किया था। मत्स्य पुराण (१० २२,) के अनुसार वृत्र की सहायता इन्द्र के विरोध में यक्षो ने की थी। दक्ष के यज्ञ में सती के साथ गये थे। यक्ष वृत्र के पक्ष से देवताओ से युद्ध कर रहे थे। (भागवत ६ १० २० ४ ४ : ४) उनके खेलो का वर्णन भागवत पुराण (१० ९० : ९) में किया गया है। हरि की भक्ति के के कारण यक्षो का मगल होता है। (भागवत ७ ७ ५०)। यक्ष देवो के साथ भगवान् कृष्ण को देखने आये थे। (भागवत ७ ८ ३८,) रावण ने यक्षो को परास्त किया था। (ब्रह्माण्ड पुराण ३ ७ २५५,) यक्ष पित्रो की पूजा करते थे। (भागवत पुराण ३ १० २८,)

मत्स्य पुराण (अध्याय २३) में वर्णन मिलता है। देवगुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण शकर तथा चन्द्रमा में युद्ध हुआ। उसमें यक्षो के स्वामी कुबेर ने वैताल, यक्ष, नाग तथा किन्नरो की सेना के साथ शकर की ओर से युद्ध में भाग लिया था।

मत्स्य पुराण (अ० १८०) में यक्षो के विषय में एक रोचक कथा दी गयी है। उससे यक्षो के व्यवहार, आचरण तथा धर्म पर प्रकाश पडता है। इसका सम्बन्ध हरिकेश यक्षसे है।

पूर्णभद्र यक्षो का राजा था। उसका पुत्र हरिकेश था। हरिकेश शिव का उपासक था। पूर्णभद्र ने अपनी पुरातन परम्परा पर पुत्र का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—रुद्र की उपासना उचित नही है। हमारा काम मानवो से भिन्न है। यक्ष स्वभाव से कूर होते हैं। कच्चा मास खाते है। कुत्सित जीवो का भक्षण करते हैं। हिसक होते हैं।

न हि यक्षकुलीनाना मूढ वृत्तं भवत्युत।
गुह्यका वत यूयं वै स्वभावात्क्रूरचेतस. ॥
क्रव्यादाश्चैव किंमक्षा हिसाशीलाश्च पुत्रक।
मैवं कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ॥

पिता की बात न मानकर, हरिकेश काशी आकर, तपस्या करने लगा। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने हरिकेश से वर मांगने के लिए कहा। हरिकेश ने शिव भक्ति का वर मागा। शिव ने प्रसन्न होकर यक्ष को वरदान दिया—'यक्ष, तुम पूज्यगणों के स्वामी तथा धनपति होगे। प्राणियो से अजेय होगे। अन्नदाता होगे। क्षेत्रपाल होगे। उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे सेवक होगे। तुम दण्डपाणि होगे।'

काशी तथा मथुरा दोनो स्थानो पर यक्ष लोग अपने पुरातन धार्मिक परम्परा के स्थान पर शिव उपासना करने लगे। यक्षो ने लौकिक किंवा जातीय धर्म तथा रीतियों के स्थान पर शैव मत स्वीकार कर लिया। उन्हें कालान्तर में शिव के गणो में सम्मिलित कर लिया गया। वे शिव के भक्त तथा अनुयायी हो गये।

भागवत (२ . ६ १३) में विराट पुरुष के वर्णन के प्रसंग में देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्ष, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस, भूत, प्रेत, विद्याधर सर्पादि को एक वर्ग में रखकर उन्हें विराट पुरुष माना है।

भागवत (६ : ८ २४) में नारायण कवच के वर्णन में—कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि को कौमोदकी गदा से नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है।

देवराज इन्द्र के विरुद्ध आते हुए यक्षो का वर्णन मिलता है। दैत्य, दानव, यक्ष, राक्षस सुवर्ण के साज सामान से सुसज्जित होकर देवराज इन्द्र की सेना की बाढ रोकने के लिए आ गये थे। (भा० : १० . २० ।)

नृसिंह अवतार के समय भगवान् के समीप जय-जयकार करने आने वालों मे—सिद्ध विद्याधर महा-नाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किंपुरुष, बैताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द तथा कुमुद आदि विष्णु के सभी पार्षद यहाँ आये। (भागवत ७ : ८ : ३८) यहाँ पर विष्णु के पार्षद रूप में यक्षो का वर्णन किया गया है।

रेवत ने कुशस्थली नामक नगर बसाया था। वहाँ से वे आनर्तादि देशो पर राज्य करते थे। उनके पुत्र ककुद्मी थे। शरपाणि के पुत्र अनर्त थे। अनर्त के पुत्र रेवत थे। रेवत के एक शत पुत्र थे। उनमें ककुद्मी ज्येष्ठ था। ककुद्मी की कन्या रेवती थी। रेवती का विवाह शेषावतार स्वरूप बलदेव के साथ किया गया था। वे ब्रह्मा से भेंट करने गये थे। लौटकर अपने नगर में आये। देखा कि उनके वंशजो ने यक्षो के भय से नगर त्याग कर दिया था। (भागवत पुराण ९ : ३ : ३५ ।)

भागवत (१० · ६ : २७) में यक्षो को भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस और विनायक के वर्ग मे रखा गया है। भागवत पुराण (१० : ३२ : १६) मे यक्षो को पुनः देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर तथा मनुष्य के साथ वर्णन किया गया है। भागवत पुराण (१० : ९० : ९) में भगवान् अपनी पत्नियो के साथ विहार करने की उपमा यक्षराज कुवेर का यक्षिणियो के साथ विहार करने से दी गयी है।

उद्धव के प्रश्नो का उत्तर देते हुए कृष्ण ने अपने विराट स्वरूप का वर्णन किया है। 'मैं दैत्यो में दैत्यराज प्रहलाद, नक्षत्रो में चन्द्रमा, औषधियो में सोमरस एवं यक्ष राक्षस में कुवेर हूँ।' (भागवत ११ : १६ · १६)

यक्षो को धनकृपण कहा गया है ? 'जो मनुष्य, देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति, भाई, कुटुम्बी और धन के भागीदारो को उनका भाग देकर सन्तुष्ट नही रखता और न स्वयं ही उपभोग करता है वह यक्ष के समान धन की रखवाली करने वाला कृपण है।' (भा० ११ : २३ : २४)।

रामायण में सुग्रीव ने बन्दरो को सीता के खोजने के लिए जिन देशो तथा जातियो का नाम लिया था उनमें यक्ष का भी नाम है। वह जाति कैलास के समीप उत्तर मे निवास करती थी। (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ४३ श्लोक २१–२३।)

मत्स्य पुराण (अध्याय १२१) में यक्षो के निवास स्थान के सम्बन्ध मे उल्लेख मिलता है—'कैलास पर्वत के पूर्व और उत्तर दिशा में दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला रत्नो की तरह जाज्वल्यमान चन्द्रप्रभ गिरि है। उसके समीप अच्छोद सरोवर है। उस सर से अच्छोद नदो निकली है। नदी के तट पर के चैत्र-रथ वन है। उसके समीपस्थ पर्वत पर मणिभद्र क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति गुह्यको से रक्षित निवास करता है।'

'कैलास के दक्षिण और पूर्व दिशा में हेमश्रृङ्ग किंवा लोहित नामक एक महान् पर्वत है। उसके तट पर विशोक वन है। वहाँ मणिधर यक्ष परम धार्मिक एव सौम्य गुह्यको द्वारा रक्षित निवास करता है।

ककुद्मी कैलास के पश्चिम ककुद्मान पर्वत पर रुद्र के वृष (नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई थी। त्रिककुद के सम्मुख त्रैककुद कज्जल तुल्य शैल है। वहाँ वैद्युत पर्वत है। उसके पाद में दिव्य मानस सरोवर है। उससे सरयू नदी निकली है। उसके तट पर नैभाज दिव्य वन है। वहा प्रहेति का पुत्र कुबेर का सेवक ब्रह्मघाती पौरुषशाली राक्षस निवास करता है।

वायु पुराण अध्याय ३९ में यक्षो का निवास स्थान दिया गया है। शतशृग पर्वत पर अत्यन्त बली यक्षो के सौ पुर है। वायु पुराण अध्याय ६९ में यक्षो के विषय में उल्लेख है—

'पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष, एव देवजन नामक यक्षादि गुह्यको के अन्तर्गत हैं। अगस्त्य, पौलस्त्य तथा विश्वामित्र के गोत्रो में उत्पन्न होने वाले राक्षस तथा यक्षो के राजा कुबेर हैं। अलका नगरी के कुबेर अधीश्वर है। यक्ष केवल आँखो से देखकर रक्त मास एव चर्बी पी जाते हैं। राक्षस शरीर के भीतर प्रवेश कर पी जाते हैं। पिशाच पीडित कर पीते हैं। सभी लक्षणो से सम्पन्न देवताओ के समान अधिकारी, तेजस्वी, बलवान, ऐश्वर्यशाली, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, शक्तिशाली, विक्रमी, लोको द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करने वाले, तेजस्वी, यक्षादि के योग्य वरदान देने वाले, यज्ञ परा-यण एव देवताओ के समान धर्मात्मा होते हैं, उन्हें असुर कहा जाता है।

गन्धर्वो का प्रभाव देवताओ की अपेक्षा तीन-चौथाई हीन होता है। अर्थात् गन्धर्वो में देवताओ का चतुर्थांश प्रभाव है। गुह्यक का प्रभाव गन्धर्वों के प्रभाव का चतुर्थांश होता है। अर्थात् गुह्यको में केवल सोलहवा भाग देवताओ का प्रभाव शेष रहता है। राक्षसो का प्रभाव गुह्यको अर्थात् यक्षो तुल्य होता है। पिशाचो का प्रभाव यक्षो से तीन गुना हीन होता है। रूप, आयु, बल, धर्म, ऐश्वर्य, बुद्धि, तपस्या, शास्त्र, बल एव पराक्रम में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच चार देवयोनियो में उत्पन्न होने वाले वर्ग सुर तथा असुरो की अपेक्षा हीन होते हैं।

उक्त उद्धरणो से यक्षो के सम्बन्ध में कुछ बातें स्पष्ट होती है। (१) यक्ष देवयोनि में थे। वे मानव थे। (२) उन्हें गन्धर्व, राक्षस तथा पिशाचो के वर्ग मे रखा गया है। (३) सुरो की अपेक्षा असुरो के वर्ग में उन्हें रखा गया है। (४) वे हिमालय निवासी थे। (५) उनका आवास कैलास के समीप था। (६) उनका आसुरी आचरण मासादि खाने तथा रक्तपात करने का था। (७) किन्तु कालान्तर में वे शिव के अनुयायी होकर शैवमतावलम्बी हो गये थे। (८) कुबेर उनका राजा था। (९) वे युद्ध में भाग लेते थे। (१०) क्रूरकर्मा थे। (११) मत परिवर्तन के कारण शिव के गण बन गये

थे। (१२) गुह्यक लोग यक्षों की एक शाखा थे। (१३) उनका सम्बन्ध भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा तथा पर्वतीय भागों में रहने के कारण असुरो से होना स्वाभाविक था। उनका आचार-विचार प्रारम्भ से ही असुरो से मिलता था। (१४) यक्ष कश्मीर के सीमान्त मेरु के दक्षिण तथा कैलास के पश्चिम अर्थात् कश्मीर की उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर रहते थे।

कल्हण ने यक्षो का विवेचन यहा शिल्पी के रूप मे किया है। वे सेतु निर्माण करने मे निपुण थे। पुराणो में यक्षो को वस्तुपरक माना गया है। कही-कही उन्हे इतर योनि भी माना गया है। उन्हे आखो मे पडनेवालो के रूप में भी चित्रित किया गया है। कल्हण ने इन सब कपोल कल्पनाओ को न मानते हुए वास्तविकता का परिचय दिया है। उसने यक्षो को एक जाति के रूप मे चित्रित किया है। जिनका मुख्य काम शिल्प था। राज्य मे जलाभाव को दूर करने के लिए राजा ने यक्षो द्वारा शासन स्थिर बनाने की योजना बनायी थी। उसका अर्थ बाध बनाना भी माना जाता है। यक्ष राजा दामोदर के समय गुह्यको के साथ कश्मीर में आबाद थे। गुह्यक और यक्ष दोनो शिल्पी थे। कल्हण ने गुह्यको का विवरण केवल सेतु निर्माण के सम्बन्ध में किया है और यक्षो का बाध बनाने के सम्बन्ध में किया है। अतएव गुह्यक यदि सेतु बनाने में प्रवीण थे तो यक्ष जलाभाव दूर करने के लिए बाध बनाने मे चतुर थे।

नीलमत पुराण में यक्षो का उल्लेख निम्न श्लोको मे मिलता है—

दनायुशाया वृत्रस्तु भद्रास्तु सुरभे सुताः।
यक्षश्च राक्षसाश्चैव खसायास्तनयाः स्मृताः ॥ 48 = ७१-७२

× × ×

देवपत्न्यस्तथा सर्वा देवानां याश्च मातरः।
विद्याधरगणा यक्षा. सागरा सरितस्तथा ॥ 152 = २०४

× × ×

आश्रयानि तथा नद्यश्चक्रस्तीर्थान्यनेकशः।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः शैलेन्द्राश्च सगुह्यका. ॥ 106 = २३९ २४०

× × ×

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचा राक्षसै. सह।
वर्जयन्ति च ते मांसं मांसादा दिनपञ्चकम् ॥ 447 = ५५८

× × ×

वेदोपवेदवेदाङ्गविद्यास्थानानि कृत्स्नशः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च तथैव गरुडारुणौ ॥ 586 = ७०७

× × ×

विद्याधरश्च यक्षश्च विरमः सस्यवर्धनः।
भद्राशो गजनेन्द्रश्च कणारः कुमुदस्तथा ॥ 922 = १०८८-१०८९

तीर्थैर्देवैश्च ऋषिभिर्गन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः ।
अभिगच्छेत मेधावी जन्मसाफल्यकारणात् ॥ 1380 = १५९८

वात्स्यायन कामसूत्र में यक्षरात्रि का उल्लेख करता है। यशोधर उस पर भाष्य करते यक्षरात्रि को सुख रात्रि कहता है। वर्ष क्रिया कौमुदी, कृत्य तत्त्व, तथा धर्म सिन्धु द्वीपमाला नाम सुखरात्रि देते हैं। हेमचन्द्र देशि नाममाला में जक्खरत्ति को दीपावली का समानार्थक मानता है। दीवाली ही दीपावली है। दीपमाला है। यह नीलमत में वर्णित यक्षरात्रि है। नीलमत दीपमाला अर्थात् दीपावली को यक्षरात्रि अभिहित कर उस दिन यक्षो की पूजा का विधान किया है। वाराणसी क्षेत्र में नगर से दस मील दूर जक्खिनी ग्राम है। मैंने उसपर पहले ध्यान नही दिया। कुछ चलने पर एक मन्दिर मिला। उसमें दक्खिनी देवी स्थापित थी। जक्खिनी शब्द यक्षिणी का अपभ्रंश है। कालान्तर में यक्ष लोगो के मूल स्वरूप को लोग भूलकर उन्हें गाथाकालीन देवता मानने लगे।

परिशिष्ट 'ड'

पिशाच

(तरंग १ : १८४ पृष्ठ १२५)

नालमतपुराण पिशाचो का कश्मीर में निवास बताता है। आज कल पिशाच का अर्थ भूत, प्रेत तथा राक्षस लगाया जाता है। पिशाच शब्द का यह अर्थ भ्रामक है।

नीलमत वालुकार्णव में पिशाचो के निवास का वर्णन करता है। उनके राजा का नाम निकुम्भ था।

× × × ×

निकुम्भो नाम धर्मात्मा कुबेरेण तु योजित:।
चैत्र्यां याति सदा योद्धुं पिशाचैर्बहुभि: सह॥ 205 = २७८

× × × ×

पञ्चकोटय: पिशाचानां निकुम्भस्यानुयायिनाम्।
गत्वा निकुम्भस्तै: सार्धं षण्मासान् योध्यते सदा॥ 207 = २७८

× × × ×

तत्रापि कोटय. पञ्चैव पिशाचानां दुरात्मनाम्॥ 207 = २८०

× × × ×

निकुम्भः पुनरायाति पञ्चकोटिवृतो बली।
शुक्लाश्वयुक्पञ्चदश्यां नित्यं देवप्रसादत.॥ 201 = २८२

× × × ×

दत्तेति सहितस्तेन ससैन्येनेह वत्स्यथ।
षण्मासान् मानवै सार्धं निकुम्भो निर्गते सदा॥211 = २८४

× × × ×

रज्जुबद्धेन तु यथा पक्षिणा नृपदारका:।
कल्पमाना: पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ॥ 327 = ४२७-४२८

× × × ×

एतस्मिन्नेव काले तु नीलो नागपतिर्विभु:।
सेव्यमानो निकुम्भेन पिशाचेन महात्मना॥ 330 = ४३१

× × × ×

अश्वयुज्या निकुम्भस्तु नित्यमायाति काश्यप।
हत्वा पिशाचान् संग्रामे बालुकार्णवगान् बहून्॥ 376 = ४८३ ४८४

× × × ×

तत पूजा निकुम्भस्य कर्तव्या कृशरेण तु।
आदित्यपुत्रो रेवन्त साश्वै. पूज्यश्च मानवैः॥ 382 = ४८९

× × × ×

तस्मिन्नहनि पूर्वाह्ने निकुम्भस्यानुयायिनः।
आविशन्ति नरान् सर्वान् पिशाचा घोरदर्शनाः॥ 392 = ४९९-५००

× × × ×

तस्यां विप्र चतुर्दश्यां निकुम्भ. शंकर सदा।
संपूजयति धर्मात्मा सानुयात्रो महाबलः॥ 553 = ६७५-६७६

× × × ×

पूजनीयो निकुम्भस्तु पिशाचाधिपतिर्वली।
पिशाचाना च दातव्या बलयश्च सुसस्कृता.॥ 355 = ६७७-६७८

× × × ×

चैत्रमासि सिते पक्षे पञ्चदश्या द्विजोत्तम।
योद्धं याति निकुम्भस्तु पिशाचान्वालुकार्णवे॥ 659 = ७८१

× × × ×

पिशाचं मृण्मय कृत्वा काक्षं च द्विजसत्तम ;
गन्धैर्माल्यैस्तथा वस्त्रैरलंकारैश्च पूजयेत्॥
भक्ष्यैश्च लोपिकापूपैर्मांसै पानैस्तथैव च॥ 66 = ७८३-७८४

× × × ×

निकुम्भे निर्गते ब्रह्मन् तथा चैवाप्यनागते।
षण्मासमध्ये कर्तव्या यात्रा देवगृहे नृपै॥ 840 = १०१२-१०१३

× × × ×

अक्षोटनागषट्कश्च श्येनो वहिलकाध्वरौ।
क्षीरकुम्भो निकुम्भश्च विकुम्भ समरप्रिय.॥ 953 = ११०१-११०२

वर्णन आता है कि वे ६ मास हिमालय तथा ६ मास शाद्वल अर्थात् हरित भूमि में रहते थे।

पिशाच का दैत्यो से सहयोग था। वे ६ योजन लम्बे बालुकार्णव के ओसिस में रहते थे। वर्णन किया गया है कि कुबेर ने पिशाचराज निकुम्भ को उक्त पिशाचो को नियन्त्रण में रखने के लिये आदेश दिया। निकुम्भ अपने पाँच कोटि पिशाचो के साथ उनसे युद्ध करता था। शेष समय वह हिमालय पर निवास करता था। कश्यप के शाप के कारण पिशाच ६ मास तक कश्मीर उपत्यका में निवास करते थे। चारो युगो के बीत जाने के पश्चात् वे कश्मीर उपत्यका से उत्पाटित हो गये और वहा नाग तथा मानव निवास करने लगे।

हिमाचले तु षण्मासान् स सदा वसते सुखी। नी० ११० = २८३
नानादेशसमुत्थैस्तु तत प्रभृति मानवै.।
षण्मासान् वसते देश. षण्मासान् पिशिताशनै। नी० २२७ = ३०२-३०३

राजतरगिणी (४ ७१०) में आश्वयु का उल्लेख कल्हण ने किया है। पूर्णमासी के दिन करता

है। नीलमत में इस दिन के सम्बन्ध मे एक प्रथा मिलती है। इस दिन लोग एक दूसरे पर कीचड़ फेंककर परिहास उत्सव मनाते थे कि पिशाच भय से भाग जाय। क्योकि पिशाच इस दिन मानव घर मे प्रवेश करना चाहता है। यह प्रथा लोग भूल गये है। लोप हो गयी है। कल्हण ने अश्वज गाली प्रथा का उल्लेख (७ : १५५१) में किया है। अलबेरुनी ने एक प्रथा का उल्लेख किया है। इसको 'पुहपी' कहते थे। उस दिन लोग परस्पर परिहास करते थे। पशुओ से खेलते थे। श्री स्तीन ने प्रकट किया है। 'पुहपी' शायद पिशाच का अपभ्रंश बन गया है। ऋग्वेद मे पिशाची शब्द का उल्लेख एक बार किया गया है। अथर्व वेद में पिशाच शब्द का उल्लेख प्रेत के अर्थ मे किया गया है। उसे मानव शत्रु रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया गया है। (२ · १८ : १–५; २ : १८ : ४, ४ २० : ६–९, ४ . ३६ : ४; ४ : ३७ : १०; ५ : २९: ४, ५, १४, ६ : ३२: २; ८ २ : १२, १२ : १ : ५०)

अथर्व वेद ('१ २५ ९) मे पिशाचो को मास भोजी बताया गया है। गोपाद ब्राह्मण (· १ १ · १०) में पिशाचो के सम्बन्ध मे पिशाच वेद तथा आश्वालायन श्रौत सूत्र (१० : ७ ६) मे पिशाच विद्या का उल्लेख है। उन्हें किमिदिन तथा यातुधान अथर्व वेद में कहा गया है।

तैत्तिरीय संहिता में वर्णन मिलता है। पिशाचो का उल्लेख असुरो तथा राक्षसो के साथ किया गया है। काठक संहिता (२७ . २४) में भी इसी प्रकार उल्लेख मिलता है। उन्हे देवो, मनुष्यो तथा पितरो का विरोधी बताया गया है।

देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्न सुर।
रक्षांसि पिशाचास्तेऽन्यतः।

—तैत्तिरीय संहिता काण्ड २ प्रपाठक ४ अनुवाक १

जैमिनी ब्राह्मण में पिशाच को स्पष्ट मानव रूप की संज्ञा दी गयी है। इक्ष्वाकु राजा त्र्यारुण की माता पिशाच कन्या थी।

पिशाची वा इयं त्र्यारुणस्य जाया।

यही बात पचविंश ब्राह्मण तथा शातायन ब्राह्मण मे मिलती है।

वृहद्देवता मे उन्हें मानव माना गया है। वे आर्यों के साथ विवाह सम्बन्ध करते थे :

अविदन्त पिशाची तां जाया तस्य च भूपते.। ५ : १०
पिशाचीमदहतां स यत्र चोपविवेश॥ ५ : २२

पुराणो मे पिशाच वर्णन मिलता है। उन्हे राक्षस गन्धर्व और नाग जाति के साथ रखा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण मे उनके रूप तथा चरित्र का वर्णन किया गया है :

कपिशायाञ्च कूष्माण्डाजज्ञिरे च पुनः पुनः।
मिथुनेन पिशाचांश्च वर्णेन कपिशेन तु॥
कपिशत्वात् पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशना।
युग्मानि षोडशाद्यानि वर्तमानस्तदन्यः॥ (ब्रह्माण्डपुराण : ३ . ७ . ३, ४५)

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराण मे नदियो के उल्लेख के समय एक 'पिशाचिका' नदी का भी उल्लेख आया है। यह नदी कहा थी अभी निश्चय नही हो सका है। राक्षस, गन्धर्व, दैत्य एवं

पिशाच एक वर्ग के माने जाते थे। उनमें तथा आर्य मानव मे मुख्य भेद उनके रहन-सहन तथा व्यवहार में था। पिशाच जाति घुमन्तू जाति थी। उसका कोई निश्चित स्थान नही था। वे पशुओ के खाल पहनते थे। उनके केश लम्बे होते थे। वे खानावदोश पर्वतीय जाति थे। उनके आचरण के विषय में ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लेख मिलता है।

हीना देवैस्त्रिभि पादैर्गन्धर्वाप्सरस स्मृताः।
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभि पादैर्हीना गुह्यकराक्षस ।
ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्य. पिशाचास्त्रिगुणं पुन ।
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च ॥ (३ : ७ : १६७-१६८)

पिशाचो ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था।

पिशाचा दरदाश्चैव पुण्ड्रा कुण्डीविषै सह।
मडका लडकाश्चैव तगणा परतंगणाः।
वाह्लिकास्तित्तिराश्चैव चोला. पाण्ड्याश्च भारत।
एते जनपदा राजन् दक्षिण पक्षमाश्रिता ॥ ६ ४६ : ४९-५०।

राजा दुर्योधन के पक्ष में पिशाच थे।

त्रीणि सादिसहस्त्राणि दुर्योधनपुरोगमा ।
शकाः कम्बोजवाल्हीका यवना पारदास्तथा।
कुणिन्दास्तगणाम्बष्ठा. पैशाचाश्च समन्दरा ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभा. पावक यथा।
युक्ताश्च पार्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम्।
शूरा पञ्चशत राजा शैनेय समुपाद्रवन् ॥ ८ ९७ : १३ . १५।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवो युधि।
आसुरानकरोद् व्यूहान् पैशाचानथ राक्षसान्॥ ६ . १०४-११८।

प्रश्न उत्पन्न होता है। पिशाचो का जन्म स्थान तथा उनका प्रदेश कहाँ था। उनके निवास स्थान और जन्म भूमि के विषय में यथेष्ट प्रमाण प्राप्त हैं। उनसे उनके देश किंवा प्रदेश का निश्चित रूप प्रकट हो जाता है।

वायु पुराण पिशाचो का स्थान मेरु पर्वत के दक्षिण पिशाचक निश्चित करता है उनका सम्बन्ध कुबेर से स्थापित किया गया है। दाशेरक, काश्मीरक औरसिक के साथ पिशाचो का उल्लेख इसे प्रमाणित करता है कि वे इन्ही क्षेत्रो के समीप के रहने वाले थे।

एकशृंगो महामूलो गजशैलपिशाचका ।
पञ्चशैलोऽथ कैलासे हिमवाश्चाचलोत्तम. ।
इत्येते देवचरिता ह्युत्कृष्टा. पर्वतोत्तमाः।
दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ता मेरोरमरवर्चस ॥ वायु पुराण ३६ २४ . २५
तस्माद् गता महाशैल ततश्चापि पिशाचकम्।
पिशाचकाच्छैलवरात् पञ्चकूटं गता पुन ॥ वायु० ४२ : ३१·३६।

पिशाचके गिरिवरे हर्म्यप्रासादमण्डितम् ।
यक्षगन्धर्वचरित कुबेरभवनं महत् ॥ वायु० ३९ : ५७

मत्स्य पुराण भी महाभारत के समान पिशाचो का स्थान हिमवत् अर्थात् हिमालय मानता है । महाभारत उन्हे पंजाब तथा उत्तरीय हिमालय का निवासी मानता है ।

रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतस्तु ते । ११४ : ८२

मत्स्य पुराण पिशाचो को कश्यप एव कद्रू की सन्तान मानता है । (मत्स्य १७१ : ६१)

पाणिनि सूत्र के परिशिष्ट गण पाठ में अन्य ग्यारह जातियो के साथ पिशाचो का उल्लेख किया गया है। एक मत है कि राक्षस लोग उत्तरी बलूचिस्तान के चगायी जिला के रहने वाले राक्षनीस है। मरुत जाति इसी प्रकार वन्नू जिले की तहसील मरावत के निवासी थे। अशनी तथा कर्षपाण जातियाँ शिनिवारी तथा करशबुन पूर्वीय हिन्दुकुश क्षेत्र की रहने वाली कही गयी हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण तथा वायु पुराण क्रोधा की कन्या कपिशा का उल्लेख करता है। उसका अपर नाम क्रोधवशा है। वह पुलह की पत्नी थी। उसी की सन्तान पिशाच हैं। पिशाचों का स्थान ब्रह्माण्ड पुराण भी हैमवत मानता है।

पिशाचो के सोलह गणो का वर्णन मिलता है। किन्तु उनका वर्णन काल्पनिक प्रतीत होता है। (ब्रह्माण्ड ३ ७ ३८१) उनके आकृति वर्णन से वे पर्वतीय प्रतीत होते है। (वायु ५९ : २९२-९६) पुराणो में राक्षस, दैत्य, गन्धर्व, नाग जातियो के साथ उनका उल्लेख किया गया है (मत्स्य १५२ : ८) वे राक्षसो से हीन श्रेणी के धन, सौन्दर्य, आदि में कहे गये है। (ब्रह्माण्ड ३ ७ १६७–१६८)

महाभारत उनके स्थान के विषय मे कहता है कि पिशाच लोग सरस्वती तट पर तपस्या निमित्त ठहर गये।

यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशापते।
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रश.।
तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्या शिवे पुण्ये वत्तियः।

महाभारत युद्ध मे पिशाच कौरव तथा पाण्डव दोनो के पक्षो से युद्ध किये थे। उनके एक युद्ध का नामकरण उन्ही के नामपर हुआ था। उनके विवाह प्रथा की महाभारत ने निन्दा की है। उनके धार्मिक कर्म काण्ड की भी निन्दा की गयी है जिसमें जीवित प्राणियो का वध किया जाता था। कुछ पिशाचो ने सरस्वती के तटवर तपस्या कर हिंसक प्रवृत्ति का त्याग किया था। महाभारत से प्रतीत होता है कि वे पजाब तथा उत्तरी हिमालय क्षेत्र मे रहते थे।

पिशाचो के साथ महाभारत में वर्णित सभी जातियो का ऐतिहासिक अस्तित्व ऐतिहासिको ने मान लिया है। कोई कारण नही प्रतीत होता कि पिशाचो को भी क्यो न ऐतिहासिक जाति माना जाय। पिशाचो के साथ दरद, पुण्ड्र, तगण, परतगण, वाह्लीक, चोल, पाण्डच, शक, कम्बोज, यवन, पारद, कुणिन्द, अम्बष्ठ आदि जातियो का उल्लेख मिलता है।

राजतरंगिणी (५ . ४६९) मे उल्लेख मिलता है कि उनके नाम पर पिशाचपुर स्थान था निस्सन्देह उक्त स्थान पर पिशाचो की प्रचुर आवादी रही होगी।

उक्त प्रमाणो से निश्चय होता है कि वे मेरु पर्वत के दक्षिण में रहते थे। उनका निवास स्थान हिमालय पर्वतीय खण्ड था। ब्रह्माण्ड पुराणसे पता चलता है कि पिशाचक पर्वत मेरु के दक्षिण मे है। मेरु वर्तमान पामीर

है। कश्मीर का पुराण इस दिशा का नीलमत है। अतएव उसमें वहा के रहने वाले पिशाचो का अत्यधिक मौलिक वर्णन होना स्वाभाविक है। इसलिये नीलमत के पिशाच मानव थे।' अन्य प्रमाणो ने उन्हें गाथा कालीन तथा काल्पनिक व्यक्ति अनभिज्ञता के कारण बना दिया है।

मेरु पर्वत के विषय में तीन पर्वतो का नाम लिया जाता है। वर्तमान पामीर पर्वत, अफगानिस्तान का मरव पहाडी प्रदेश तथा उत्तरी ध्रुव।

मरुत को मरवत कहते है। यह जिला वलू में मरवत तहसील है। हिन्दुकुश के पूर्वीय भाग में मरुत जाति का रहना कहा जाता है। मरवत तहसील की मरवत जाति प्राचीन ग्रन्थो में वर्णित मरुत जाति है।

राक्षसो का निवास स्थान घघ्फो जिला वलूचिस्तान की उत्तर दिशा में था। उत्तरी वलूचिस्तान में रक्षानी एक वडा कवीला हैं। प्राचीन राक्षस वश की सतानें हैं।

कपिशा पिशाचो की मातृ-भूमि कही जाती है। काफरिस्तान तथा उसके समीपवर्ती देश में उनके निवास का वर्णन मिलता है।

यशाई काफ़रिस्तान का एक कवीला है। यशाई शब्द पिशाच का अपभ्रश मालूम होता है।

पजाव के वाहोक पिशाचो के वशज माने जाते है।

मिलिन्द पञ्ह से भी प्रकट होता है कि पिशाचो का निवास स्थान गान्धार कश्मीर उत्तर-पश्चिम भारत था।

उनके निवास स्थान के विषय मे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्तर कुरु, हिमवन्त, काश्मीर, पजाव, काफिरिस्तान, पामीर पर्वत के दक्षिण तथा पूर्वीय हिन्दूकुश पर्वत माला मे रहते थे।

पिशाच मानव थे। सुर तथा असुर योनियो में पिशाच जाति को 'देवयोनय' अमर कोशकार ने माना है।

विद्याधराप्सरो - यक्ष – रक्षो – गन्धर्व – किन्नरा.।
पिशाचो गुह्यको सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय।

अमरकोश १ १ . ११

देवताओ की जाति के १० भेद माने गये हैं। वे है—(१) विद्याधर, (२) अप्सरस्, (३) यक्ष, (४) रक्षस्, (५) गन्धर्व, (६) किन्नर, (७) पिशाच, (८) गुह्यक, (९) सिद्ध, (१०) भूत। असुरो के १० भेद माने गये हैं

असुरा दैत्य-दैतेय-दनुजेन्द्रारि-दानवाः।
शुक्रशिष्या दितिसुता पूर्वदेवा सुरद्विष।

अमरकोश १·१ १२

(१) असुर, (२) दैत्य, (३) दैतेय, (४) दनुज, (५) इन्द्रारि, (६) दानव, (७) शुक्रशिष्य, (८) दितिसुत, पूर्व देव, (१०) सुरद्विष।

पिशाचो को असुर वर्ग में नही मानकर उन्हें देव वर्ग में रखा गया है। प्रश्न उपस्थित होता है। मानव से पिशाच लोग हीन क्यो माने जाने लगे।

(१) पिशाच लोगो की विवाह प्रथा तिरस्कृत मानी गयी है। उसे दूपित कहा गया है। आठ प्रकार के विवाह—ब्रह्म, देव, आर्य, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, तथा पिशाच—स्मृतियो ने माना

हैं। प्रथम चार प्रकार के विवाह विहित तथा शेष चार अविहित माने गये है। पिशाच विवाह अत्यन्त हीन तथा निकृष्ट कहा गया है। पति धोखा द्वारा कन्या को प्राप्त कर लेता है। कन्या को धोखा देकर विवाह करना सभी अवस्थाओ में अनुचित माना गया है। पिशाच विवाह की परिभाषा महाभारत आदि पर्व (७३.९-१२) मे दी गयी है। कन्या को चुरा कर विवाह कर लेना पिशाच विवाह कहा गया है।

स्कन्द पुराण के विवाह संस्कार अध्याय वलपूर्वक कन्या का अपहरण कर विवाह करना पिशाच विवाह माना गया है।

ब्रह्माण्ड पुराण कहता है.

हीना देवा स्त्रिभि पादै गन्धर्वाप्सरसः स्मृता.।
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिः पादैर्हीना गुह्यकराक्षसाः।
ऐश्वर्यहीना रक्षोभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः।
एवं धनेन रूपेण आयुषा च बलेन च॥

३.७.१६७-१६८

आधुनिक लमगान प्राचीन लम्पक के पडोसी पसाई काफिर रहते थे। पिशाच भूमि कफरिस्तान में कुछ समय पूर्व तक कन्या भगा ले जाकर विवाह करना प्रचलित था। वे विवाह मे अश्लील शब्दो का प्रयोग करते थे। तोरणो को तोड देते थे। उनके इन चरित्रो के कारण आर्य होते हुए भी शेष आर्यो ने उन्हें पिशाच की सज्ञा दी। मैंने पर्यटको द्वारा लिखित उन्नीसवी तथा बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक की सचित्र पुस्तकें देखी है। उनमे काफरिस्तान तथा चितराल के रहने वालो की तस्वीरे है। उनके रूप विचित्र हैं। लम्बे-लम्बे वाल है। वस्त्र मैला है। निस्सदेह यह लोग प्राचीन पिशाचो की सतान है। श्री एम. सी दास का कहना है कि तिब्बत में अनेक स्थानो पर लडकियो को पकडकर विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। (एम सी. दास जे एम एस बी ४२ ९ (२) पैशाची भाषा मे पुत्र वधू को 'हनेवे' कहते है। उसका शाब्दिक अर्थ होता है मारखाने वाली औरत। महाभारत उन्हे न करने योग्य कामो को करने वाला कहता है। विहित कर्म यज्ञ पिशाच नही करते थे।

पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन। १३:२४१२; १:२९९५

(३) पिशाचो को पितरो का विरोधी वताया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि वे पितरो का श्राद्धादि कर्म नही करते थे। अपितु श्राद्धो को नष्ट करते थे।

(४) पिशाच लोग युद्ध में शत्रुओ का रक्त पीते थे। उन्हे नरमास भक्षी कहा गया है। शत्रुओ के रक्त पीने की प्रथा तिब्बत में भी किसी समय प्रचलित थी। पिशाचो का देश तिब्बत की सीमा पर था अतएव यह प्रथा तिब्बत के प्रभाव के कारण पिशाचो अथवा पिशाचो के प्रभाव के कारण तिब्बत मे प्रचलित हो गयी थी। भारतीय आर्य इस प्रथा को अत्यन्त घृणित मानते थे। पिशाच कच्चा मास खाते थे। सीमान्त प्रदेश के दरदिस्तान तथा चितराल पिशाचो का स्थान थे। वे कच्चा मास खाते थे। डाक्टर लीतनर का कहना है। दो काफिरिस्तान के काफिरो ने स्वीकार किया था कि उनक वहा यह रिवाज था कि शत्रु को मारकर उनका वे रक्त पीते थे। (जी डब्लू लीतनर लैंगुवेज एण्ड रेसेस आफ दर्दिस्त।)

(५) उनका यौन सम्बन्ध अनुचित होता था।

(६) पिशाच भाषा आर्य भाषा थी। महाकवि गुणाढ्य ने पैशाची भाषा मे बृहत्कथा की रचना की थी। कश्मीरी महाकवि सोमदेव भट्ट ने उसे संस्कृत में कथासरित्सागर के नाम से लिखा है।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार ११ भाषाओ की मूल पैशाची भाषा थी ।

प्राकृत भापा के वैयाकरणो ने पैशाची को भूत भाषा कहा है । पैशाची भाषा की समता सस्कृत तथा पाली भापाओ से किया है । पड् भापा चन्द्रिका तथा शेषकृष्ण की प्राकृत चन्द्रिका में एकादश भेद वताये गये हैं । प्राकृत एव अपभ्रश भाषा तुल्य पैशाची भाषा की कवियो ने प्रशसा की है ।

राजशेखर ने सास्वतेय पुरुप का वर्णन काव्य मीमासा में किया है और शरीर की तुलना निम्न-लिखित रूपक के साथ किया है

शब्दार्थ—शरीर
सस्कृत—मुख
प्राकृत—वाहु
अपभ्रश—जघन
पैशाची—पाद

चातुर्वर्ण का वर्णन करते हुए उपमा दिया है कि व्राह्मण मुख, क्षत्री वाहु, वैश्य उदर तथा शूद्र पाद हैं उसी प्रकार राजशेखर ने सस्कृत की व्राह्मण, प्राकृत की क्षत्री, अपभ्रश की वैश्य तथा पैशाची की शूद्र से उपमा दी है । सस्कृत को सर्वश्रेष्ठ तथा पैशाची को निम्नकोटि की भाषा में रखा है । उक्त चारो भाषाओ को एक ही शरीर का विभिन्न अग माना है । इस शरीर की आत्मा मूल आर्य वैदिक भाषा है ।

अहो श्लाघनीयासि शब्दाथौ ते शरीर सस्कृत मुख ।
प्राकृत बाहू, जघन अपभ्रंश. पैशाच पादौ ।।

भाषा का प्रयोजन अन्तर भावना को अभिव्यक्ति करना है । भाषा विचार का पान मात्र है। भापा प्रयो-जन मानव विचार को समझना है । एक ही अर्थ विभिन्न भाषाओ में विभिन्न उच्चारणो द्वारा प्रकट किये जाते हैं। उनका कार्य मानसिक भावना, विचार तथा प्रयोजन को प्रकट करना है । शरीर की उपमा शब्दार्थ से इसीलिए दी गयी है । शब्द किसी भाषा किसी लिपि में लिखा जाकर अर्थ का द्योतक होता है । अतएव राजशेखर ने शब्दार्थ को शरीर माना है । पैशाची भाषा को सरल भाषा की कोटि में रखा है ।

'सुभव्योऽपभ्रश सरलरचन भूतवचनम् ।' इसी प्रकार गुणाढ्य कृत वृहत्कथा की भाषा के विषय में कहा गया है—भूतभापामयी प्राहुरद्भुता ता वृहत्कथाम् ।' मूलग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही है । इसकी निकटवर्ती पश्तो तथा दरद भापायें है ।

अपभ्रश कवि 'अब्दुररहमान' ने 'सदेह रासक' में पैशाची भाषा की कविता का आदर पूर्ण शब्दो में उल्लेख किया है ।

अवहट्टय सक्कय पाइअम्मि पेसाइ अम्मिभासाए लक्खणछन्दाहरणो सुकइत्त भूतिय जेहि –।

भूत शब्द राक्षस तथा पिशाच के साथ जोडा गया है। 'भूत वचन' 'भूतभाषित' 'भौतिकी' आदि शब्द पैशाची भापा के पर्याय स्वरूप वर्णन किये गये हैं ।

भोजदेव ने उत्तम पात्रो को पैशाची भाषा वोलने का निषेध किया है—'नात्युत्तमपात्रप्रयोज्या पैशाची ।

घनिक घनजय ने 'दशरूपक' में पैशाची को नीच पात्रो द्वारा वोली जाने वाली भाषा कहा है ।

पिशेल किंवा पिशाच भाषा को जनता द्वारा वोली जाने वाली भाषा कहा गया है । मालूम होता है । पठित तथा सुसस्कृत सभ्य समाज की भापा सस्कृत मानी जाती थी । पश्चिम उत्तर हिमालय पर्वताश्रयी

प्रदेशो में बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली ग्रामीण भाषा पैशाची थी। आजकल राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप वह नही है जो भोजपुरी, मगधी, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के ग्रामो मे बोली जाती है। देश के अनुसार भाषा स्थानीय रूप ले लेती है। यह अवस्था मूल वैदिक भाषा की कालान्तर में हो गयी। वह विभिन्न स्थानों में विविध रूप लेकर स्थानीय रंग के साथ रग पकडने लगी।

पैशाची भाषा को दरद भाषा भी कहा जाता है। यह उचित ही मालूम पडता है। नाग लोग कश्मीर के मूल निवासी थे। पिशाच कश्मीर के उत्तर-पश्चिम से आये थे। दरदिस्तान इस दिशा में पडता है। अतएव भापा का पैशाची से साम्य,होना स्वाभाविक है।

पैशाची रूप चूलिका पैशाची है। पाचाल पैशाची तथा शौरसेनी पैशाची है। वररुचि ने प्राकृत प्रकाश में 'प्रकृति. शौरसेनी' कहा है। शौरसेनी को पैशाची भाषा का आधार माना है। शौरसेनी भाषा व्रज मण्डल अर्थात् मथुरा के समीपस्थ प्रदेश मे बोली जाती थी। आधुनिक खडी बोली की एक प्रकार से जनक मानी जाती है। शौरसेन में प्रचलित प्राकृत भाषा संस्कृत की अपभ्रंश के अतिरिक्त और क्या हो सकती है।

पैशाची भाषा में संस्कृत शब्दो की बहुलता है। पुरुषोत्तम कहते हैं संस्कृत शौरसेन्यौ विकृति :—(१९ : ३)। संस्कृत और शौरसेनी भाषा का प्रकृत रूप पैशाची भाषा है।

पैशाची भाषा के अक्षरो के उच्चारण मे किंचित् अन्तर हो जाता है। पैशाची भाषा मे 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग करते है। गुण को गुन, गणना को गनना कहते है। शुद्ध संस्कृत से पैशाची प्रचलित हिन्दी के बहुत समीप आ जाती है। संस्कृत के 'इव' के स्थान पर 'यिव' हो जाता है। 'व' का 'य', 'क' का 'ग', 'च' का 'ज', 'ज्ञ' का 'ञ्ज', उच्चारण होने लगता है।

चण्ड ने प्राकृतिक लक्षण में 'ण' के स्थान पर 'न' तथा 'र' के स्थान पर 'ल' होने का प्रयोग किया है। 'अरे' का 'अले', 'र्म' के स्थान पर 'म्म' प्रयुक्त होता है। जैसे 'धर्म' के स्थान पर 'धम्म'। 'गत्वा' के स्थान पर 'गन्तू' पडित्व के स्थान पर 'पंडितून'। इसी प्रकार 'क्ष' के स्थान पर 'ख' हो जाता है। 'फल' का 'फर' हो जाता है।

पिशाचराज निकुम्भ का वर्णन नीलमत पुराण में आता है। उसे कश्मीर के राजनीतिक तथा सामाजिक जोवन मे हाथ बँटाते देखते है। पिशाचराज निकुम्भ से तथा चन्द्रदेव ब्राह्मण से सम्बन्ध अच्छा था।

मम वाक्यमनादृत्य यस्माद्दुष्टं प्रभाषथ।
तस्मात्पिशाचैः सहिता वत्स्यध्व नात्र संशयं ॥ 201 = २६७ २६८

× × ×

तत्र सन्ति पिशाचा ये दैत्यपक्षा. सदारुणा:।
तेषां तु निग्रहार्थाय पिशाचाधिपतिर्बली ॥ 204 = २७७ २७८

× × ×

तत्र कोटयश्च पञ्चैव पिशाचानां दुरात्मनाम्। 207 = २८०

× × ×

न पिशाचैस्तु वत्स्यामो दारुणैर्दारुणप्रियैः ।
एवं ब्रुवति नागेन्द्रे नील विष्णुरमाषत ॥ 213 = २८६

× × ×

अल्पवीर्या पिशाचाश्च भविष्यन्तीह सर्वदा ।
वीर्योपेता गमिष्यन्ति षण्मास बालुकार्णवम् ॥ 215 = २८८

× × ×

पिशाचैः सह संपर्कस्तत्र नित्यं यदा नृणाम् ।
तदा तेषां मतिः पापात्सततं नापसर्पति ॥ 244 = ३३१

× × ×

रज्जुबद्धेन तु यथा पक्षिणा नृपदारका ।
कल्यमानाः पिशाचैस्तु निर्वेदं परमं ययौ ॥ 327 = ४२८

× × ×

हिमेन शीतेन तथा पिशाचैः सपीड्यमानो द्विजवृद्धवर्यः ।
बभ्राम तत्रैव विमूढचेता भ्रमन्ययौ यत्र स नागराजः ॥ 328 = ४२९

× × ×

दैत्यदानवयक्षाश्च पिशाचाः राक्षसैः सह ।
वर्जनीय तदा मांसं प्रयत्नादपि काश्यप ॥ 447 = ५५८, ५५७

× × ×

वेदोपवेदवेदाङ्गविद्यास्थानानि कृत्स्नशः ।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च तथैव गुरुडासणौ ॥ 586 = ७०७

× × ×

पूज्याः पिशाचाश्च तथा बलिपूर्वेण कर्मणा ।
देशानुसार कर्तव्यो जनः कार्यः स्वधिष्ठितः ॥ 837 = १००९-१०१०

पुराणो में निकुम्भ को इक्ष्वाकुवंशीय हर्यश्व राजा का पुत्र माना गया है ।

विष्णु पुराण ४ : २ : १३; वायु पुराण ८८ · ६२; भागवतपुराण ६ ·९ .२४–२५; मत्स्य पुराण १२ : ३३; पद्म पुराण : ८ ।

महाभारत निकुम्भ को प्रहलाद का तृतीय पुत्र (आदि पर्व ६५ : १९) तथा एक विख्यात दानव (आदि पर्व ६५ : २८) और हिरण्यकश्यप के कुल में उत्पन्न सुन्द उपसुन्द के पिता रूप में चित्रित करता है । (आदि पर्व २०८ २–३), शल्य पर्व (४५ : ५६) के अनुसार यह स्कन्द का एक सैनिक था । रामायण में निकुम्भ एक राक्षस योद्धा था । इसका वध नील ने किया था । (वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड ७७) । निकुम्भ नाम के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख पुराणो में आया है । परन्तु इक्ष्वाकुवंशीय

निकुम्भ के स्थलों के अतिरिक्त सभी राक्षसादि वर्ग में रखे गये है। कश्मीर के नीलमत पुराण ने उसे पिशाचवंशीय माना है।

पिशाच आर्य जाति की एक शाखा है। पर्वतीय प्रदेशो मे निवास करती थी। हिन्दूकुश, कपिशा, कफरिस्तान, गान्धार, चितराल, कश्मीर के उत्तर तथा पामीर के दक्षिण बिखरे हुए थे। उनके रूप का वर्णन तथा उनका चित्र पर्यटको ने उक्त क्षेत्रो के लोगो का उन्नीसवी तथा बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे लिया है। उसे देखने से स्पष्ट होता है कि वे प्राचीनकालीन पिशाच जाति के वशज है। उनका लम्बा बाल रखना, धर्म के प्रति कम आस्था, स्नानादि से दूर रहना, अश्लील शब्दो का विवाह काल मे प्रयोग, कन्या को भगा ले जाकर विवाह कर लेना यह सब बातें कुछ दिन पूर्व तक प्रचलित थी। वे खाल के नमस्तीन आदि पहनते है। पोस्तीन अर्थात् भेंडो के कोमल बाल वाले खालो के वस्त्र तथा टोपी साधारणतया प्रयोग करते है। कच्चा मास पूर्वकाल मे खाते थे। घुमन्तू जाति थे। जानवरो को पालना मुख्य उद्यम् था।

मै अक्टूबर मास में कश्मीर दो बार इसका अध्ययन करने के लिए गया। मैने देखा कि नीलमत में वर्णित प्रथा अभी तक चली आती है। बकरियो, भेंडो, जानवरो और टट्टुओ पर समस्त गृहस्थी रखे वे शीत ऋतु मे पर्वतो से नीचे मैदान में उतरते है। उनके बाल लम्बे होते हैं। मुसलमान धर्म स्वीकार कर लेने के कारण उनके पूर्व जीवन में विशेष परिवर्तन हो गया है। परन्तु उनका रहन-सहन, उनका व्यवहार, उनकी भाषा पैशाची से मिलती है।

पिशाच जाति आर्यो की शाखा होने पर भी अपने कर्मों के कारण, सभ्य समाज से दूर होने के कारण, शेष भारत से कालान्तर मे सम्बन्ध न होने के कारण, दुर्गम शीत प्रधान उपत्यकाओ में रहने के कारण आर्य धर्म पालन में तथा युग के साथ चलने मे असमर्थ हो गयी। उनके कर्मों के कारण उनका नाम पिशाच रख दिया गया।

वायु पुराण (अ० ९७ ५५) के अनुसार—ब्रह्मा ने सर्व प्रथम देव, असुर, पित्र तथा प्रजा नामक चार प्रकार की सृष्टि की। स्थावर-चरादि अन्यान्य भूतो को उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, नर, किन्नर, अप्सरा, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थावर, जगम आदि समस्त पदार्थो को बनाया।

भगवान् शंकर देवी पार्वती के साथ कैलास पर थे। वहा विविध रूप धारण करने वाले नाना प्रकार के भूत, भयंकर मायावी पिशाच, अनेक प्रकार के अस्त्रो से सुसज्जित अग्नि तुल्य दीप्त भगवान् की सेवा कर रहे थे।

वायु पुराण (अ० ३१) मे देव वंश का वर्णन है। उसमे असुर, सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस, पित्र तथा नासत्य आठो को देव योनि माना गया है। वायु पुराण (३९ : ५७) में पिशाध नामक गिरि का वर्णन किया गया है। उस पर कुबेर का भवन है। उसने कोठे तथा छत थे। यक्ष तथा गन्धर्व विचरण करते थे। अध्याय ४२ : ३१ मे पिशाचक पर्वत का वर्णन पुन अलखनन्दा नदी के प्रसग मे किया गया है। अलखनन्दा समुद्र की ओर हिमालय से गिरती, बहती जाती है। नदी का रग इस यात्रा मे स्थान भेद से परिवर्तित हो जाता है। वह ताम्राभ से श्वेतोहर, सुमूल, बसुधा, हेमकूट, देवशृग, शैलश्रेष्ठ पिशाचक, पंचकूट, देव निवास, कैलास के शिखर कन्दरामय पार्श्व देश से बहती, अचलोत्तम हिमालय पर गिरती, शैलो, स्थलो को सीचती, वनो एवं कन्दराओ को आर्द्र करती, दक्षिण समुद्र मे गिरती है।

पिशाचो के रग रूप तथा आचरणो पर वायु पुराण (६९ २५७–२७९) प्रकाश डालता है—'पिशाचो का जन्म कपिशा कूष्माण्डी तथा कूष्माण्ड के सयोग से हुआ था। पिशाचो का रग कपिश अर्थात् भूरा था। कपिश वर्ण होने के कारण उन्हें पिशाच कहा गया। वे मासाहारी थे। अन्य सोलह पिशाच दम्पति हैं। उनके वश वर्तमान है। वे सब कूष्माण्ड के कुल के हैं। इन कुलो में उत्पन्न होने वाले पिशाच जाति के हैं।

'उनकी आकृति वीभत्स है। निंद्य कर्म करने वाले है। उनके शरीर पर बाल होता है। नेत्र गोल होते है। दात तथा नख कडे होते हैं। अग टेढे-मेढे होते है। मनुष्य का भक्षण करते है। उनका मुख झुका रहता है।

'कूष्माण्डिक जाति के पिशाच को केश नही होता। उनके शरीर पर रोमावलियाँ नही दिखाई पडती। चमडा, चर्बी आदि वस्त्र की जगह लपेटे रहते हैं। मास तथा तिल का आहार करते है।

वक्र जाति के पिशाचो के अग, हाथ, पैर टेढे होते है। चलते समय वह टेढीमेढी चाल चलते है। वक्रगामी है। इच्छानुसार रूप धारण करते हैं।

निजुन्दक जाति के पिशाचो की नासिका उठी रहती है। पेट लम्बा होता है। शरीर छोटा होता है। सर छोटा होता है। हाथ छोटा होता है। तिल भक्षण करते है। उनके कान सुन्दर होते हैं।

अनर्क पिशाच बौने होते है। बहुत बोलते है। उछल-उछलकर चलते हैं। वृक्षो पर निवास करते हैं। वृक्षो पर ही आहार करते है।

पाशु पिशाच ऊर्ध्व बाहुधारी होते है। रोम ऊपर उठे होते है। आवास ऊपर उठे होते हैं। अगो से धूल गिराते चलते हैं।

उपवीर पिशाच सूखे होते है। मूँछ-दाढी रखते है। चीर धारण करते है। श्मशानो में निवास करते है।

उलूखल पिशाचो की आँखें निश्चल होती है। उनकी जिह्वा लम्बी होती है। जीभ से ओठ चाटते रहते है। हाथी तथा ऊँट की तरह उनका सिर मोटा होता है। विरत तथा समूह बाधकर झुण्ड में चलते है।

कुम्भपात्र पिशाच बिना देखे अन्न का भोजन करते है। सूक्ष्म आकृति वाले होते हैं। शरीर पर रोमावली होती है। पीत वर्ण होते है।

निपुण पिशाचो के मुख कानो तक फैले होते है। भौंहे लम्बी होती है। नाक मोटी होती है।

पूरण पिशाच शून्य भवनो मे निवास करते है। शरीर मोटा होता है। हाथ-पैर बहुत छोटे होते है। आँखें पृथ्वी पर लगी रहती है। बालको का भक्षण करते है। सूतिका गृहो का सेवन करते है।

मासभक्षी पिशाचगण के हाथ-पैर पीछे की ओर झुके रहते है। कद छोटा होता है। वायु के समान वेगशाली होते है। युद्ध भूमि में रक्त का पान करते हैं।

स्कन्दी पिशाच नग्न रहते है। खानाबदोश होते हैं। उनके केश लम्बे होते हैं। पिण्डाकार प्रतीत होते है।

अन्य पिशाचगण उच्छेवणाशी होते है।

पिशाचो के रहन-सहन तथा जीविका का उल्लेख वायु पुराण (६९ २८० २८८) करता है—'विभिन्न आकृति एव गुण-दोष युक्त पिशाचगण अल्प बुद्धि तथा दीन थे। वे प्रात तथा सायकाल विचरण किया करते थे। गिरे पडे, खण्डहरो, जहाँ बहुत कम लोग रहते है, जहाँ दुष्ट निवास करते है, जो मकान लीपा पोता नही जाता, बेमरम्मत रहता है, वहाँ वे निवास करते है।

वायु पुराण (१०१–२८) मे सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यो को पृथ्वी लोक का निवासी बताया गया हैं।

राजमार्ग, वीथियों, गृह समीपस्थ उपवन, चौराहा, चबूतरा, द्वारदेश, निर्भय अट्टालक, एकान्त आवास, पथ, नदी, तीर्थ, देवी तथा देवताओ के कल्पित निवास, वृक्ष, महापथ अर्थात् स्मशान मार्ग आदि पिशाचों के निवास स्थान हैं। अधार्मिक, वर्णाश्रम, मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, वर्णसंकर, शिल्पी हैं। देवताओं ने इनके कर्मो की आजीविका पिशाचो के हेतु बनाया है। चोरी, विश्वासघात, कुत्सित साधनो द्वारा धनोपार्जनादि कर्म पिशाचो के कहे गये हैं। मधु, मास, दही, तिल, चूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हरिद्रा, खिचडी, तेल, मोथा, गुड, भात, काला वस्त्र, धूम तथा पुष्पो द्वारा पर्वो की सधियो के अवसर पर पिशाचो को बलि देना चाहिए अर्थात् उक्त खाद्य पदार्थ पिशाचो के प्रिय है।

पिशाचो का प्रलय काल मे किस प्रकार नाश होगा इसका वर्णन वायु पुराण (११ १५९) में किया गया है। प्रलय काल मे महान् संवर्तक की ज्वालाए सहस्रो, अरबो योजन ऊपर उठती है। गन्धर्वों, पिशाचो एवं राक्षसो के आश्रमो को सर्वांशतः भस्म करने के उपरान्त गोलोक को भी वह भस्म कर देती है।

ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार पिशाच राक्षसो से तीन स्थान निम्न थे अर्थात् राक्षस पिशाचो से तीन स्थान ऊँचे थे। राक्षसो में उतनी आचरण तथा आचारहीनता नही थी जितनी पिशाचो में थी। (३ : ७ · ३७६–४११, २ · ३२ · १–२; ३५ १९१)

पिशाच श्राद्ध तथा पितृ पूजन विरोधी थे। ब्रह्माण्ड पुराण (३ · ११ : ८१) मे वर्णन मिलता है कि वे श्राद्धो को नष्ट करते थे। इसी पुराण (३ : ७ : २ : ५६) में वर्णन है कि रावण ने पिशाचो को पराजित किया था।

पिशाचो के स्वामी शिव कहे गये है। ब्रह्माण्ड पुराण (२ : ३२ · १–२, ३५, १९१) मे इसका उल्लेख मिलता है। मत्स्य पुराण (८ ५) कहता है कि जगत् पितामह ब्रह्मा ने जिस समय सृष्टि की रचना समाप्त की तो पृथ्वी मण्डल राजा पृथु को दिया। उन्होंने किसी न किसी को सबका अधिनायक किंवा स्वामी बनाया। पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, बैताल तथा यक्षो का अधिनायक किंवा स्वामी शूलपाणि को बनाया।

भागवत पुराण (१ १५ ४३) मे चीर वस्त्र धारण, मौन, केश खोलकर बिखेर लेने की उपमा जड, उन्मत्त पिशाच से दी गयी है। भागवत मे विराट रूप का वर्णन (. ६ ४३) करते हुए प्रेत, पिशाच, भूत, कूष्माण्ड का उल्लेख एक साथ कर उन्हे एक वर्ग मे रखा गया है। कूष्माण्ड पिशाचो से अलग नही किन्तु वायु पुराण की तरह पिशाचो की एक शाखा है। (६ ८ . २५)। यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस को एक ही वर्ग में रखा गया है तथा उन्हे भयावना कहा गया है। (१० . ६ २७) डाकिनी, राक्षसी, कूष्माण्ड को बालग्रह कहा गया है। वायु पुराण में पिशाचो का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे शिशुओ के शत्रु होते है। उसी के लिये भागवत ने 'बालग्रह' शब्द का व्यवहार किया है। यहाँ भी भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक एक ही वर्ग में रखे गये है। भागवत पुराण (१० : ८५ . ४१) में दैत्यराज बलि ने कृष्ण को कहा है—'हम और हमारे समान अन्य दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथनायक आदि आपसे प्रेम करना दूर रहा सर्व दृढ वैर भाव रखते है।' यहाँ पर बलि ने स्पष्ट कहा है कि पिशाच कृष्ण किंवा विष्णु भक्त नही थे।

इस मत की पुष्टि भागवत पुराण (१० ६३ १०–११) से होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने धनुष के तीखे नोकवाले बाणो से शकर जी के अनुचरो—भूत, प्रेम, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड एव ब्रह्मराक्षसो को मार कर खदेड दिया था। पिशाच शकर के अनुचर थे। शकर की सेना में थे। श्रीकृष्ण तथा शकर के युद्ध में शकर के पक्ष से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था।

भागवत पुराण (१२ ३ ४०) में कलियुग काल की समानता पिशाचो से करते हुए कहा गया है—'कलियुग में प्रजा शरीर ढँकने के लिए वस्त्र, पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए रोटी, तृष्णा तृप्त करने के लिए जल, शयन निमित्त २ हाथ भूमि से भी वचित हो जाती है। उसे दाम्पत्य जीवन, स्नान, आभूषण, पहनने तक की सुविधा नही रहती। लोगो की आकृति प्रकृति तथा चेष्टाएँ पिशाचो के समान हो जाती है।'

स्कन्द पुराण काशी खण्ड के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग है। उत्तरार्द्ध मे पिशाच का वर्णन आता है। काशी में पिशाच मोचन तीर्थ है। इसमें पिशाच के सम्बन्ध में एक कथा दी गयी है। वह स्कन्द, कुम्भज तथा पिशाच के प्रश्नोत्तर रूप में है। कर्पटीश्वर में एक तपस्वी थे। वे हेमन्त ऋतु में एक समय कर्पटीश्वर लिंग के समीप पूजा कर रहे थे। उन्हें विमलोदक कर्पटीश्वर सरोवर के तट पर एक भयकर मूर्ति का दर्शन हुआ। भयंकर मूर्तिधारी पिशाच ने सानुनय तपस्वी से कहा—प्रतिष्ठान नामक एक देश है। मैं वहा का तीर्थ पुरोहित था। वृक्ष-जलहीन मरुस्थल में बहुत समय व्यतीत किया। तीर्थों में दान लेने के कारण पिशाच योनि में जन्म हुआ। मैने मरुभूमि में एक बालक को देखा। मैं उसके शौचहीन, सन्ध्या कर्मविहीन देह में भोगेच्छा के कारण प्रविष्ट हो गया। वही बालक कनकाक्षा से काशी आया। काशी मे पिशाच का प्रवेश नही हो सकता था। मुझे बालक का शरीर त्यागना पडा। मै उस बालक की प्रतीक्षा में काशी के बाहर बैठा था। मैंने एक कापायधारी सन्यासी देखा। इच्छा हुई। उसे मारकर अपनी क्षुधा शान्त करूँ। उसने शिव का नामोच्चारण किया। शिव का नाम कान में पडते ही मेरे पूर्व सचित पाप धुल गये। मै काशीपुरी में प्रवेश करने योग्य हो गया। सन्यासी के साथ अन्तर्गृही की सीमा में पहुँचा। सन्यासी ने भी भीतर प्रवेश किया। मै यहाँ रुका। तपस्वी ने पिशाच को कर्पटीश्वर तीर्थ में स्नान करने के लिए कहा। उत्तर दिशा जलाधिष्ठाता देव उसकी सर्वदा रक्षा करते थे। अतएव वह स्नान करने में असमर्थ हुआ। तपस्वी ने उसे भस्म लगाकर स्नान करने के लिए कहा। भस्म धारण कर पिशाच ने स्नान किया। वह दिव्य देहधारी हो गया।

'उस दिन से उस तीर्थ का नाम पिशाच मोचन तीर्थ हो गया। उसने कहा। यहा स्नान करने से पिशाच योनि छूट जायगी। यहा श्राद्ध करने से पितर उत्तम योनि को प्राप्त होगे। अगहन सुदी चतुर्दशी के दिन पिशाच मोचन में स्नान करने वाले कभी पिशाच योनि को प्राप्त नही होगे।

इस कथा से दो बातें सिद्ध होती है। पिशाच से दिव्य मनुष्य हुआ जा सकता है। उसके लिए शिव की आराधना तथा भक्ति आवश्यक है। भस्म धारण करना शैव धर्म का सबसे बडा चिह्न है। भस्म धारण करने के पश्चात् अर्थात् शैवमत ग्रहण करते ही पिशाच पापो से मुक्त हो जाता है। उसके लिए अपना आचरण बदलना आवश्यक होता है। यहा स्नान, नरमास भक्षण तथा पितृ श्राद्ध तीन बातो पर जोर दिया गया है। पिशाच अफ्रीका की अनेक मानव जातियो की तरह मास भक्षण करते थे। स्नान न करने के कारण गन्दे रहते थे। तथा पितृ श्राद्ध को नही मानते थे। इन तीनो कर्मों के त्याग पर पुन दिव्य मनुष्य योनि प्राप्त कर

सकते थे। उनका योनि सम्बन्ध भी दूषित था। वे विपरीत मिथुन करने के कारण भी पिशाच माने गये थे जिसका निषेध शास्त्र करता था। यही कारण है कि पिशाच काशी मे प्रवेश अपने आचरण के कारण नही कर सका।

अग्नि पुराण (५१ : १८) पिशाचो की प्रतिमा-लक्षण का वर्णन करता है। हरिवंश पुराण के भविष्य पर्व अध्याय ७९ तथा ८० में पिशाचो के आचार व्यवहार, भाषा तथा जाति का वर्णन है। हरिवंश पुराण में वर्णन मिलता है—

पिशाच विकृतानन थे। उनके रोम पिंगल वर्ण थे। जिह्वा दीर्घ थी। महा हनु थे। लम्बा केश थे। विरूपाक्ष थे। ही-ही-ही कहकर बात करते थे। मास पिटक खाते थे। बहुत रुधिर पीते थे। विशालकाय थे। कृशोदर थे। शूलो मे मुण्ड धारण किये हुए थे। अपने भुजाओ स यत्र-तत्र शव खीच लाते थे। वे प्राकृत बोलते थे। दात कटकटाते थे। कुत्तो का झुण्ड उनके साथ रहता था। प्राणियो की हत्या पर तुले रहते थे। (हरिवंश पुराण भविष्य पर्व ७८ . १-६ तथा १७-१९)

'भगवान् श्रीकृष्ण हिमालय स्थित बद्री नारायण के पुण्य क्षेत्र मे थे। उनके सम्मुख मासभक्षी दीपिकाधारी, महाघोर पिशाच आया। भगवान् ने उसका परिचय पूछा। घण्टाकर्ण ने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं घण्टाकर्ण नामक पिशाच हूँ। मै हिंसक हूँ। मै मासभक्षी हूँ। मै विकृताग हूँ। रुद्र के सखा कुबेर का अनुचर हूँ। मेरे साथ मेरा अनुज है। पिशाचो की सेना मेरी है। कुत्तो का समूह मेरा है। भूतसेवित कैलास है। मै यहाँ आया हूँ। मेरे कर्णों में घण्टा है। उससे ध्वनि होती रहती है। इसी कारण मेरा नाम घण्टाकर्ण पड गया है। मै शंकर की आराधना करता हूँ।'

(हरिवंश : भविष्य खण्ड ८० : १, २४-२७)

'कृष्ण के प्रश्नो का उत्तर देकर घोर रूप विकृतानन पिशाच ने बहुत रुधिर पीकर इच्छानुसार मासादि भोजन किया। अपने पार्श्व में अतडियो का विशाल माम रख लिया। कृष्ण आसन पर जल छिडकर शुद्ध किया। समीपवर्ती कुत्तापालक वह पिशाच वहा से कुत्तो को दूर हटाकर समाधि लगाने का प्रयास करने लगा।

(हरिवंश पुराण . भविष्य खण्ड ८० . ५४-५७)

सर्व श्री अल्डेन वर्ग, मेकडोनेल, कीथ, लकोटे, तथा स्टेन कोनौ पिशाच शब्द का अर्थ असुर, दैत्य तथा राक्षस लगाते है। मेकडोनेल तथा कीथ का मत है कि कालान्तर मे पिशाच शब्द विरोधी जाति के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा था। श्री ए० हिले ब्राट का मत है कि वह शत्रु जाति थी जो आगे चलकर परम्परागत भूत हो गयी थी। पारजिटर का मत है कि उनको असुर तथा पैशाची किंवा राक्षसी प्रकृति उनके वास्तविक रूप का विपर्यय है। श्री ग्रीयर्सन का मत है कि वे एक जाति थे जो उत्तर पश्चिम में निवास करते थे।

किन्नर

परिशिष्ट 'ढ'

(तरंग १ · १९९ · पृष्ठ २५९)

हिमाचल प्रदेश में किन्नर क्षेत्र है। कन्नौरी, गलचा, लाहौली, भाषा है। इन्हें देव एवं मनुष्यों के मध्यवर्ती का एक प्राणी बनाकर प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक जाति का रूप दे दिया गया है। पुराण तथा महाभारत में उनका वर्णन मिलता है। महाभारत में उन्हें गन्धर्व विशेष कहा गया है अतएव किन्नर जाति गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धादि वर्ग की है। 'किन्नर' शब्द के अर्थ से स्पष्ट होता है। उनकी योनि तथा आकृति पूर्णतया मनुष्य सदृश नहीं होती थी। उन्हें अश्वमुख तथा तुरगवदन कहा गया है।

कादम्बरी आदि में उनके चरित्र निवास, क्रिया कलाप का वर्णन मिलता है। मंगोल तथा आर्य रक्त मिश्रण के कारण कालान्तर में उनके रंग रूप में अन्तर पड़ता गया है। मंगोल जाति के मुखपर बाल प्रायः नहीं होते। तिब्बत के स्त्री तथा पुरुषों में आकृति से पहिचान लेना कि कौन पुरुष तथा स्त्री है कठिन हो जाता है। दलाई लामा के तिब्बत से चीन द्वारा निष्कासित किये जाने पर तिब्बती शरणार्थी भारत में आने लगे। उनके प्रबन्ध से मैं सम्बन्धित था। उनमें स्त्री पुरुष दोनों चोटी रखते थे। उनका पहनावा एक सा था। उन्हें पहिचानने में कठिनता होती थी। कौन पुरुष और कौन स्त्री है। लद्दाख प्रदेश की प्रथम यात्रा में सन् १९५३ में मुझे इसी प्रकार का अनुभव हुआ। वहाँ पर स्त्री पुरुष एक प्रकार का वस्त्र पहनते हैं। चोटी रखते हैं। अतएव पहचानना कठिन हो जाता है। परन्तु अपनी दूसरी सन् १९६३ की यात्रा में देखा कि आधुनिक जगत् की हवा लद्दाख क्षेत्र तक पहुँच गयी है। पुराने वस्त्रों के स्थान पर नवीन वस्त्र स्त्री तथा पुरुष पहनने लगे हैं। पुरुष प्रायः चोटी नहीं रखते। अतएव स्त्री पुरुष का भेद आसानी से अब किया जा सकता है।

पुराणों के आख्यान में सत्यता प्रकट होती है कि मनुकी पुत्री इला किम्पुरुष रूप में परिवर्तित हो गयी थी। इस पौराणिक गाथा को इस प्रकार स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इला का रूप किन्नरों जैसा था। वह दिन में पुरुषों की वेष भूषा में पुरुष तथा रात्रि में स्त्रियों की वेशभूषा में स्त्री लगने लगती थी। आज कल योनि परिवर्तन अर्थात् पुरुष को स्त्री तथा स्त्री पुरुष हो जाने के समाचार मिलते हैं। परन्तु इला के आख्यान में उसका रूप नित्य बदलता मिलता है। यह सम्भव नहीं मालूम होता।

किन्नरों की उत्पत्ति के विषय में दो मत हैं। एक मत है कि वे ब्रह्मा को छाया अथवा उनके पाद अंगुष्ठ से उत्पन्न हुए थे। दूसरा मत है वे ऋषि कश्यप तथा अरिष्टा की सन्तान थे।

अमरकोषकार उन्हें दशदेव योनियों में रखता है—

विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नरा ।
पिशाचो गुह्यक. सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

स्वर्ग वर्ग ३ · ११

अमरकोषकार इन्हें उत्तरीय भारत वर्णित पर्वतीय जातियों के साथ रखता है। वे हिमालय तथा हेमकूट में निवास करते थे।

उन्हे—'किन्नरा अश्वादिमुखा नराकृतय.' कहा गया है। यहाँ अश्व तथा नर शब्द का अर्थ लगाना चाहिए कि उनकी मुखाकृति अश्व के समान लम्बी तथा शरीर मनुष्याकृति था। उन्हे अलौकिक प्राणी मानना उचित नही है। वे मनुष्य जैसे प्राणी है। आर्यों की आकृति में तथा उनकी मुखाकृति मे उसी प्रकार अन्तर है जैसे मगोल तथा आर्यों मे होता है। तिब्बतियो तथा लद्दाखियो के मुख लम्बे होते हैं। परन्तु अब अत्यधिक रक्त रक्षण तथा मिश्रण के कारण इसमें भी अन्तर पडता जाता है।

(१) किन्नर (२) किम्पुरुष (३) तुरगवदन तथा (४) मयु चार नामो से किन्नरो का वर्ग किया है। वे कभी पर्यायवाची शब्द थे यथा ·

'स्यात् किन्नरः किम्पुरुषस्तुरंगवदनो मयु ।

अमरकोष. व्योम वर्ग .२:७४:

किम्पुरुष पुराणो के अनुसार एक वर्ष था। यह हिमालय प्रदेश के उत्तरी भाग मे था। तुरग वदन अर्थात् अश्वमुख का अर्थ बडा लम्बा मुख लगाना चाहिए। जिसकी मुख-आकृति अश्व तुल्य लम्बी थी। मयु नामक एक जाति आज भी भारत में मिलती है। वह अमरकोषकार की परिभाषानुसार किन्नर वर्ग की उपजाति थी।

किम्पुरुष वर्ष लद्दाख, हिमाचल के उत्तरीय आचल से तिब्बत तक का सीमावर्ती क्षेत्र था। तिब्बत का प्राचीन नाम किम्पुरुष वर्ष तथा कालान्तर मे त्रिविष्टक पड गया था। वर्षों, देशो तथा प्रदेशो की सीमाएं बनती और बिगडती रही है। परन्तु उनकी जो दिशा पुराणो महाभारत तथा रामायण मे दी गई है वह कुछ हेर-फेर के साथ मूलत ठीक मिलती है।

धवलागिरी से और आगे हिमालय की उत्तर दिशा मे यह वर्ष था। महाभारत सभा पर्व मे उल्लेख मिलता है। देश द्रुमपुत्र से सुरक्षित था। इसका विजय अर्जुन ने किया था। इससे वह स्थान तिब्बत प्रमाणित होता है। क्योकि तिब्बत हिमालय के उत्तर में है।

स श्वेतपर्वतं वीर समतिक्रम्य वीर्यवान्।
देशः किम्पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्॥ सभा पर्व २८:१-२

शान्ति पर्व में उल्लेख मिलता है। वह जम्बू द्वीप का एक खण्ड था। भारतवर्ष के समान जम्बू द्वीप का किम्पुरुष एक वर्ष था। इसे हैमवत भी कहते थे। हैमवत इस लिए कहा गया है कि यहाँ की नदी में पिपीलिका अर्थात् हेम (स्वर्ण) कण मिलते थे। आज भी मिलते है।

कुबेर लंकापुरी त्याग कर किम्पुरुषो के साथ आकर गन्धमादन पर्वत पर निवास करने लगे थे। गन्धमादन पुराणो मे वर्णित एक पर्वत है इसकी स्थिति इलावर्त तथा भद्राश्व खण्ड के मध्य कही गयी है। वर्णन मिलता है कि पर्वत पर सुगन्धित पादपो की अवलियाँ लगी थी। गन्धमादन का नाम सप्त पर्वतों में एक है।

हिमवान्निषधो विन्ध्यो माल्यवान्पारियात्रकः।
गन्धमादनमन्ये च हेमकूटादयो नगाः॥ ३ ३ अमरकोष, शैल वर्ग

(१) हिमालय (२) निषध, (३) विन्ध्य, (४) माल्यवान् (५) पारियात्र (६) गन्धमादन तथा (७) हेमकूट सप्त पर्वत कहे गये हैं। गन्धमादन को हेमकूट के साथ रखा गया है। गन्धमादन पर्वत के विषय मे एक मत है। बद्रीनाथ पर्वत के उत्तर पूर्व से यह पर्वत आरम्भ होता है। जबकि हेमकूट पर्वत

किन्नर के दक्षिण में स्थित है। इस प्रकार निश्चय पर पहुँच सकते हैं। तिब्बत की पश्चिमी सीमापर इसे होना चाहिए। यह स्थान लद्दाख का पर्वीय तथा हिमाचल प्रदेश का उत्तरीय अचल होता है। हिमालय में स्थान का होना निश्चय हो जाता है। बद्रीनाथ से लेकर लद्दाख और हिमाचल प्रदेश के मध्यवर्ती स्थान तक इस पर्वत का होना बैठता है। तिब्बत का उत्तरीय पश्चिमी सीमावर्तीय प्रदेश प्रतीत होता है

हित्वा सभगवाल्लकामाविशद् गन्धमादनम्।
गन्धर्वयक्षानुगतो रक्ष किम्पुरुषै सह ॥ वनपर्व २७५ ३३

महाभारत में और वर्णन मिलता है। कुबेर के क्रीडास्थल सरोवर की रक्षा में किम्पुरुष गण तत्पर रहते थे। यह सरोवर नि सन्देह तिब्बत प्रदेश में था। किम्पुरुष तथा किन्नर दो वर्ग थे। उनका स्पष्टीकरण महाभारत करता है।

सेवितामृषिभिर्दिव्यैर्यक्षै किम्पुरुषैस्तथा।
राक्षसै किन्नरैश्चापि गुप्तां वैश्रवणेन च ॥ वनपर्व :५३ ९

किम्पुरुषो का भारत आगमन तथा भ्रमण सिद्ध होता है। किम्पुरुषगण अगस्त्य ऋषि के समुद्रपान का दृश्य देखने के लिए उनका अनुसरण किये थे। वे उत्तर से दक्षिण गये थे।

मनुष्योरगगन्धर्वयक्षकिम्पुरुषास्तथा।
अनुजग्मुर्महात्मान द्रष्टुकामस्तदद्भुतम् ॥ वनपर्व : १०५.२१

किम्पुरुषो तथा तिब्बत का सम्बन्ध महाभारत काल मे घनिष्ठ था। महाराज युधिष्ठिर के राजयज्ञ में किम्पुरुष गण सम्मिलित हुए थे। महाभारत में किम्पुरुष तथा किन्नर दो शब्दो का प्रयोग सिद्ध करता है कि, एक जाति होने पर भी वे एक ही पूर्व जाति की दो उपजातियाँ हो गयी थी।

स किंपुरुषसंकीर्ण. किन्नरैश्चोपशोभितः।
सिद्धचित्रनिवासैश्च समन्तादभिसंवृत ॥ आश्वमेधिक पर्व ८८ · ३७९

पुराणो मे प्रकट होता है। वे श्रीकृष्ण का दर्शन करने द्वारका जी तक गये थे। उनके जाति के सम्बन्ध में कहा गया है। वे पुलह की सन्तान हैं। और दक्ष कन्या की सन्तति है। पुलह एक मनु है। ब्रह्मा ने उन्हें उत्पन्न किया था।

पुलहस्य सुता राजन्शरभाश्च प्रकीर्तिताः।
सिंहा किम्पुरुषा व्याघ्रा ऋक्षा ईहामृगास्तथा ॥ आदिपर्व ६६ ८
इतरान्तु व्यजायन्त गन्धर्वांस्तुरगान् द्विजान्।
गाश्च किंपुरुषा तन्यानुद्भिज्जाश्च वनस्पतीन् ॥ शान्तिपर्व : २०७ २०
दक्ष मरीचिमत्रि पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ट गौतम चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम् ॥ हरिवंश पुराण अ० १४

वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ३ में अश्वमुख स्त्रियो का उल्लेख है। सुग्रीव ने उत्तर दिशा में सीता जी को खोजने के लिए शतबलि नामक वीर वानर को नियुक्त किया। वहा भी भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया गया है। अश्वमुख स्त्रियो का उल्लेख करते हुए सुग्रीव ने कहा है मैनाक पर्वत की शिखरो, चौरस मैदानो, कन्दराओ से पूर्ण है, और जहा अश्वमुख स्त्रियाँ विचरण करती हैं। वहा सीता का खोजना।

मयस्य भवनं तत्र दानवस्य स्वयं कृतम् ।
मैनाकस्तु विचेतव्य: ससानुप्रस्थकन्दरः । ।।३०।।
स्त्रीणामश्वमुखीनां तु निकेतस्तत्र तत्र तु ।
त देशं समतिक्रम्य आश्रमं सिद्धसेवितम् ।।३१।।

'यहाँ से वैखानस सर के पश्चात् सूना आकाश दिखाई देगा। मेघो की घटा नही दिखाई देगी। तत्पश्चात् शीतोदा नामक नदी मिलेगी। शीतोदा के तटपर उत्तर कुरु प्रदेश है। यहा पर गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग और विद्याधर सर्वदा नारियो के साथ विहार करते है।

गन्धर्वाः किन्नराः सिद्धा नागा विद्याधरास्तथा।
रमन्ते सततं तत्र नारीभिर्भास्वरप्रभाः ।।५०।।

पुराणों के अनुसार किम्पुरुष वर्ष हिमालय के पश्चात् माना गया है। विष्णु पुराण (२ . १ : १७ १९) के अनुसार किंम्पुरुष एक राजा था। वह अग्नीध्र का पुत्र तथा प्रियव्रत का पौत्र था। उसके पिता ने १० : ५२ ' ११ के अनुसार किम्पुरुष को हेमकूट दिया था। भागवत मे किम्पुरुष देश के राजा द्युम्न का उल्लेख है। उसने कृष्ण के विरुद्ध जरासन्ध के पक्ष से युद्ध किया था। जिस समय जरासन्ध ने गोमन्त पर आक्रमण किया था उस समय वह पर्वत के पश्चिम दिशा मे अपनी सेना के साथ था। भागवत (१ ६ १२) के अनुसार राजा परीक्षित ने किम्पुरुष वर्ष को जीता था।

किन्नर जाति शंकर पूजक मानी गयी है। गुह्यक, यक्ष आदि पर्वतीय जातियाँ शिवपूजक थी। उनके विषय में कहा गया है कि वे शिव की सेवा करते थे। कैलास तथा उसका समीपस्थ क्षेत्र किन्नरो का मुख्य निवास स्थान था। यक्षो, गन्धर्वों के समान गायक तथा नृत्यशील जाति थी। विराट पुरुष, इन्द्र तथा हरि उनके मुख्य उपास्य देव थे। सप्तर्षियो से उन्हे धर्म ज्ञान प्राप्त हुआ था। महाभारत के अनुसार अमरकोष की दी गयी उनको परिभाषा सत्य प्रतीत होती है। किम्पुरुष तथा किन्नर एक ही जाति की दो उपजातिया अलग अलग थी।

किन्नर भाषा में सस्कृत तथा तिब्बती दोनो भाषाओ के शब्दो का मिश्रण है। कुछ उर्दू शब्दो का भी मिश्रण मिलता है। वह अत्यन्त स्वल्प है। भारत की स्वाधीनता के पश्चात् हिन्दी तथा संस्कृत शब्दो का प्रयोग बढ रहा है। तिब्बती शब्दों का प्रयोग घटने का मुख्य कारण है कि तिब्बत से आवागमन, यातायात तथा व्यापार समाप्त हो गया है। चीन मे तिब्बत के सम्मिलित हो जाने के कारण सम्बन्ध पूर्णतया विच्छिन्न हो गया है।

कुछ विद्वान् लेखक किन्नर जाति को गन्धर्व तथा किरात वर्ग की श्रेणी में रखते है। यह गलत है। किन्नर जाति का अपना मौलिक अस्तित्व रहा है। महाभारत, रामायण तथा पुराण इसके साक्षी है।

किन्नरो का एक निश्चित अंचल हिमालय प्रदेश में है। उनकी भाषा में शू–सू–देवता वाचक शब्द है। उसमें संस्कृत शब्द यहाँ लगाकर महासू बनाया गया है। इसी प्रकार ग्रामो के साथ भी शू या सू शब्द लगाते है।

परिशिष्ट 'त'
कर्णाट

(तरग १ : ३०० · पृष्ठ ३१२)

कर्णाट किंवा कर्णाटक का उल्लेख सुदूर प्राचीन काल से पुराकालीन ग्रन्थो मे उल्लिखित होता आया है। यह भारतवर्ष का एक सुनिश्चित भू-खण्ड था। यहाँ की भाषा अलग थी। आजकल के कन्नड भाषा-भाषी इस भूखण्ड के निवासी हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् कन्नड भाषा-भाषियो की एक इकाई मैसूर राज्य के रूप में बन गयी है।

महाभारत भीष्म पर्व (९ ५९) में कर्णाटक को एक जनपद की सज्ञा दी गई है। कर्णाटक का उल्लेख द्रविड, केरल, प्राच्य, मूषिक, वनवासिक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभ कानन, कौकुट्टक, चोलादि के साथ प्राय किया गया है।

भागवत पुराण (५ ६ ७) में कर्णाटक का उल्लेख किया गया है। वहाँ उसे धरा मण्डल कहा गया है। स्कन्द पुराण मे देशो की तालिका में कर्णाट का स्थान ४४ तथा ग्राम सख्या १२५०० दी गयी है। वृहद् सहिता में गोनर्द, केरल के साथ कर्णाट का उल्लेख किया गया है। उक्त उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है। कर्णाटक का नाम कल्हण ने ठीक कर्णाट दिया है। कर्नाटक किंवा कर्णाटक प्राचीन मूल नाम नही है। कन्नड भी प्राचीन मूल नाम नही है। यह सब कर्णाट के अपभ्रश किंवा उसके विगडे रूप हैं। कर्णाटक देश वासियो की भाषा कन्नड है। उसका साहित्य कन्नड साहित्य कहा जाता है। वर्तमान मैसूर राज्य कन्नड भाषियो का राज्य है। कन्नड शब्द नि सन्देह कर्णाट का अपभ्रश है।

सम्मोह तन्त्र की रचना सन् १४५० ई० के पूर्व हुई थी। उसमें सौराष्ट्र, द्रविड, तैलग, मलय विदर्भ तथा मालवा आदि के साथ की गयी है (४)। शक्ति सगम तन्त्र (३ ७ १) में महाराष्ट्र के साथ कर्णाटक का उल्लेख किया गया। आज भी कर्णाटक अर्थात् कन्नड भाषी मैसूर महाराष्ट्र की पूर्वी तथा दक्षिणी सीमा पर स्थित है।

इसी ग्रन्थ में कर्णाटक की सीमा दी गयी है। शक्ति सगम तन्त्र के पूर्व में वैरजनाथ, उत्तर मे अमरकटक और दक्षिण में काचीपुरम के मध्य मे कर्णाटक देश था। इसका विस्तार रामनाथ से आरम्भ होकर श्रीरग तक दिया गया है। (३ ८ १६)

उक्त तन्त्र ग्रन्थो के अनुसार प्राचीन कर्णाटक प्रदेश रामनाथ से श्रीरग तक विस्तृत था। श्रीरंग वर्तमान श्रीरगपत्तन के लिये व्यवहृत किया गया है। रामनाथ स्थान रामनाथपुरम् अर्थात् पूर्व रामनद जिला अथवा रामनाथ मठ मदुरा जिला अथवा तुंग और भद्रा नदियो के सगम पर रामेश्वर तीर्थ हो सकता है।

प्राचीनकाल मे यह राज्य पाण्ड्य तथा चोल राज्यो मे विभाजित था। पाण्ड्य राज्य मदुरा तथा तिन्नेवली अचल तक विस्तृत का। चोल राज्य कारोमण्डल तट पर पदुकोट्टायी तक विस्तृत था। चौथी शताब्दी मे यहाँ पल्लवो का राज्य स्थापित हुआ था। उनकी राजधानी काची थी। वह आठवी शताब्दी

तक स्थित थी । तत्पश्चात् वह चोलो तथा पाण्ड्यो के अधिकार सीमा में चला गया । पन्द्रहवी शताब्दी में विजय नगर साम्राज्य के अन्तर्गत कर्णाटक का भूखण्ड आ गया था ।

विजय नगर साम्राज्य के शक्तिहीन होने पर सत्तरहवी शताब्दी में यह प्रदेश तीन छोटे हिन्दू राज्यो में विभक्त हो गया था । उनकी राजधानी क्रम से मदुरा, तंजौर तथा काची थी । आरंगजेब की सेना ने सत्तरहवी शताब्दी के अन्त मे इस प्रदेश पर आक्रमण किया था । जुलफिकार अली कर्णाटक का नवाब बनाया गया । तत्पश्चात् यह प्रदेश मुसलमानो, मराठो, फ्रासीसियो तथा अग्रेजों के सघर्ष का क्षेत्र बन गया ।

कर्णाटक का ज्ञान काश्मीरी लेखको को था । प्राचीनकाल मे कर्णाटक एवं कश्मीर मे विचारो का आदान-प्रदान होता रहा है । कश्मीर निवासी ब्राह्मण कर्णाटक में आकर निवास करते थे । इसी प्रकार कर्णाट देशीय ब्राह्मण कश्मीर मे पहुँचते थे । दोनो का एक दूसरे स्थान पर सम्मान तथा आदर होता रहा ।

कल्हण ने राज तरगिणी में कर्णाटक का उल्लेख (१ · ३००, ४ : १५१, १५२; ७ . ६७५, ९३५, ९३६, १११९, ११२४ मे किया है । सर्वप्रथम कल्हण ने मिहिरकुल के प्रसग मे कर्णाटक का उल्लेख किया है । उसने श्री लका आक्रमण से लौटते समय चोल, कर्णाट एवं लाट के राजाओ को व्यदारित किया था । (त० १ : ३००) ।

'कल्हण कर्णाट निवासियों के वेश भूषा तथा केश रखने की प्रथा का उल्लेख राजा ललितादित्य के दक्षिण विजय के सन्दर्भ (४ . १५१) में करता है । इसी प्रसंग मे वह कर्णाटक की रानी देवी रट्टा का भी उल्लेख करता है । उस समय रट्टा नाम्नी चचललोचना कर्णाट कामिनी विशाल दक्षिणापथ पर राज्य करती थी । असीमित प्रभावशालिनी इस देवी ने दुर्गा के समान विन्ध्याद्रि मार्ग को पर्याप्त किंवा विस्तृत एवं निष्कटक बना दिया था । वह प्रणाम करते समय ललितादित्य के पाद कमल के नख दर्पण मण्डल में अपनी मूर्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । उसके ताल वृक्षतले नारिकेल के रसोर्मि पान कर कावेरी तटवर्ती समीर से श्रान्ति दूर कर दिया । उस मलयाचल पर उसके आक्रमण भय से सरकते हुए सर्पों के व्याज भय से चन्दन वृक्ष के बाहु मण्डल से निपतित असि तुल्य लग रहे थे । वह उत्तरण प्रस्तर तुल्य द्वीप पुंजो पर निर्विघ्न चरण पाद रखकर कुल्या सदृश समुद्र का शीघ्र ही अनायास गतागत करने लगा । विजेताग्रणी सागर तरंग के निर्घोषो से जयमंगल गान श्रवण कर वहाँ से पश्चिम दिशा प्रस्थान किया ।' (रा. त० : १५२–१५८)

कश्मीर राजा कलश (सन् १०६३–१०८१) के सन्दर्भ मे कल्हण पुन कर्णाट का उल्लेख कलश तथा हर्ष के संघर्ष के सन्दर्भ मे करता है । कर्णाटक निवासी केशी उस संघर्ष मे युद्ध करता राजविरोधी सैनिको द्वारा कश्मीर मे मारा गया था । (रा० ७ . ६७५) इस उद्धरण से यह प्रकट होता है कि कश्मीर की सेना मे अथवा राजा के प्रश्रय में कर्णाटक निवासी थे । उनका वहाँ उचित स्थान तथा सम्मान था ।

कवि विल्हण के प्रसंग में पुन· कल्हण कर्णाटक का उल्लेख करता है । कश्मीरी राजा हर्ष (सन् १०८९-११०१ ई०) के समय में विल्हण कर्णाटक चला आया था । कल्हण कहता है—विल्हण कवि राजा कलश के शासन काल में कश्मीर देश त्याग कर कर्णाटक देश के राजा परमार्डि के पास चला गया था । राजा परमार्डि ने कवि विल्हण को अपनी राज सभा में विद्यापति पदपर नियुक्त किया था । विल्हण हाथी पर आरूढ होकर कर्णाटक देश के पर्वतीय प्रदेशो मे भ्रमण करते समय समस्त कर्णाटक प्रदेश में केवल

विल्हण को ही यह पद गौरव प्राप्त था कि वह राजा के सम्मुख छत्र धारण करता था।' (रा० ७. ८३५–८३७)

विल्हण की प्रसिद्ध रचना विक्रमाक देव चरित्र तत्कालीन कर्णाटक के इतिहास तथा वहाँ के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। विल्हण, राजा अलूप का उल्लेख इसी सन्दर्भ में करता है। विल्हण कोकण के राजा जयकेशिन का भी उल्लेख नाटक में करता है। कवि विल्हण ने कुन्तल देश को कर्णाटक देश का समानवाची माना है। विक्रमादित्य षष्ठ को कुन्तलेश तथा कर्णाटेन्द्र कहा है। राजा हरिहर (सन १३०७ ई०) के एक शिलालेख से पता चलता है कि कुन्तल विषय कर्णाट देश में था।

कल्हण ने कर्णाटक का पुन उल्लेख राजा हर्ष के सन्दर्भ में किया है—'किसी समय वह राजा (हर्ष) कर्णाटक देश के राजा परमाडि की चन्दला नामक सर्वांग सुन्दरी पत्नी को चित्र मे देखकर उस पर मोहित हो गया। धूर्त विटगण विचार शून्य एव मन्दमति राजाओ को मजाक मजाक में कुत्तो के समान छू-छू करके प्रोत्साहित एव सघर्ष के लिये उत्तेजित कर देते हैं। उस निर्लज्ज राजा ने विटो के प्रोत्साहन से उत्तेजित होकर अपनी राजसभा में कर्णाटक सुन्दरी चन्दला की प्राप्ति हेतु परमाडि को पराजित करने की प्रतिज्ञा की। चन्दला न प्राप्ति काल तक कच्चे कपूर का सेवन न करने की प्रतिज्ञा की। ‥'कर्णाटक देश के राजा परमाडि का वध कर चन्दला की प्राप्ति द्वारा उसके आलिगन का सुख भोग करना, कल्याणपुर में प्रविष्ट होकर पिप्पला देवी का दर्शन करना, और उस राजा के उपवन में एकत्रित कर गुप्त रूप से रखी गयी अपरिमित सम्पत्ति को अपने आधीन करना इन सब कार्यों के पूर्ण होने तक परम प्रतापशाली महाराज हर्षदेव ने वीतास कपूर चर्वण त्याग दिया।' (रा० त० ७ १११९-११२४ तथा ११२५—११३३)

कल्हण काश्मीर राजा हर्ष के कर्णाटक के समान ही मुद्रा टकणित कर चलाने का उल्लेख करता है—'राजा हर्ष को दाक्षिणात्यो की पद्धति अधिक रुचिकर थी अतएव उसने कर्णाटक शैली पर मुद्रा टकणित करवायी। (रा० त० ७ ९२६)

यदि कर्णाटक के इतिहास पर विहगम दृष्टि डाली जाय तो कश्मीर का सम्बन्ध अति निकट का प्रकट होता है। केवल कश्मीर में ही कर्णाटकवासियो का आदर नही होता था। कर्णाटक के राजाओ ने भी कश्मीर के ब्राह्मणो का सम्मान, तथा दान द्वारा आदर प्रदर्शन किया था। पाण्ड्य महादेवी ने बारहवी शताब्दी में कश्मीर के प्रवरपुर (श्रीनगर) निवासी शारदा देवी के उपासको को भूमि दान की थी। (एनसिएण्ट कोकन भास्कर, आनन्द सलतोरे पृष्ठ १६१)

पन्द्रहवी शताब्दी में कर्णाटक विजयनगरम् राज्य के अन्तर्गत आ गया। विजय नगर राज्य विस्तार के साथ कर्णाटक प्रदेश की सीमा दक्षिण मे विस्तृत हो गयी थी। तल्ली कोट के युद्ध (सन् १६६५ ई०) के पश्चात् विजयनगर के राजा चन्द्रगिरी अर्थात् चित्तूर जिला तत्पश्चात् वेल्लोर जिला उत्तरीय अरकाट तक चले आये थे। उनकी राज्य सीमा सामित हो गयी थी। लघु राज्य होने पर भी उन्हें कर्णाटक का दाय कहा जाता था।

परिशिष्ट 'थ'

लाट

(तरग १:३००: पृष्ठ ३१३)

महाभारत अनुशासन पर्व (३५ १७-१२) मे वर्णन आता है। लाट क्षत्रिय जाति थी। परन्तु ब्राह्मणो के साथ ईर्ष्या करने के कारण नीच हो गयी थी।

संमोह तन्त्र मे (२ ३) देशों की तालिका में लाट देश का नाम चोल, कर्णाटक आदि के साथ दिया गया है। इसी प्रकार शक्ति संगम तन्त्र (३ ७ '५५) मे लाट देश की सीमा दी गई है। उससे निश्चय किया जा सकता है कि लाट देश प्राचीन काल मे कहा तक विस्तृत था।

लाट देश उक्त उद्धरण के आधार पर अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ (बरार) के उत्तर-पश्चिम ठहरता है। लाट देश माही तथा ताप्ती के मध्य मे पश्चिमी क्षेत्र में था। राजाओ की शक्ति एवं राज्य विस्तार के कारण यह सीमा कभी-कभी माही के और परे तक जाती थी। उसमे भृगुकच्छ (भडौच) तथा नवसारिका (नवसारी) के अंचल सम्मिलित हो जाते थे। वात्स्यायन कामसूत्र (६ ५·२६) तृतीय शताब्दी की रचना के अनुसार लाट देश की स्थिति मालवा के पश्चिम दिशा मे बतायी गयी है।

विनयचन्द्र की काव्य शिक्षा में लाट देश के ग्रामो की संख्या २१ हजार तथा गुर्जर देश की ७० हजार दी गयी है। स्कन्द पुराण मे देशो की तालिका मे लाड किंवा लाट देश की क्रमसंख्या ३८ तथा उसके ग्रामो की संख्या भी २१ हजार दी गयी है। उसमें कच्छ की ग्राम-सख्या १४ हजार, सौराष्ट्र की ५५ हजार तथा गुजरात की ग्रामसंख्या ७० हजार दी गयी है। इससे स्पष्ट है कि लाट देश का अस्तित्व प्राचीन काल में गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ से स्वतन्त्र तथा भिन्न था। लाट प्रदेश गुजरात तथा सौराष्ट्र से छोटा और कच्छ से बडा था।

लाट तथा लाटविश्य का उल्लेख प्रथम शताब्दी से सातवी तथा आठवी शताब्दी तक भारतीय वाड्मय में मिलता है। इस प्रदेश का नाम पुराण तथा महाभारत और रामायण में नही मिल सका है। प्लोत्मो ने इसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार लारिक भारतीय समुद्र तट पर था। वह मोफी (माही) नदी के मुहाने पर था। माही अन्तरीप का नर्वदा तथा माही के मध्य कही होना लिखता है। कालान्तर मे लाट देश का प्राकृत रूप लार देश हो गया था। इसमें गुजरात तथा उत्तरीय कोकन का अंचल आ जाता था। मुगल काल मे लार समुद्र भाषा और मसूदी लारों का उल्लेख मिलता है। लाट देश के अन्तर्गत वरयगजा (भडौच भरुकच्छ) तथा ओजेन (उज्जैन) नगर थे। नौसारिद भी उसमें सम्मिलित था। वह नौसारिका किंवा वर्तमान नौसारी है।

लाट प्रदेश को अक्षाश इक्कीस तथा बारस अर्थात् ताप्ती और माही नदियो के मध्य कतिपय विद्वानो ने माना है। वह सम्भावना प्रकट की गयी है कि आदित्य वर्धन के पुत्र प्रभाकर वर्धन के संघर्ष में देवगुप्त ने यथेष्ट सहायता राजा शंकरगण के अन्य अधीनस्थ राजाओ से ली थी जिनमें निरिहुल तथा गुर्जर थे। उनके मध्य उस समय लॉट देश विभाजित हो गया था। लाट देश के कुछ सैनिक मालवा के पक्ष

से युद्ध में भाग लिये थे। वह युद्ध सातवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुआ था। बाण ने प्रभाकर वर्धन को अराजक लाटजनो के लुटेरा रूप में चित्रित किया है। निस्सन्देह लाट जाति जब स्वतन्त्र अस्तित्व रखती थी तो वह भारत को एक प्रसिद्ध गौरवशालिनी जाति थी।

पुलिकेशिन द्वितीय की एओह प्रशस्ति (शक सवत् प्रसिद्ध ५५६ में लाट का उल्लेख किया गया है। उसमें उल्लेख है। उस शक्ति से लाट, मालव गुर्जर को उसने किस प्रकार अधीनस्थ राजा सदृश आचरण करने के लिये बाध्य किया। गुजरात राज नदोद तथा राष्ट्रकूट के दानपत्रो से प्रतीत होता है कि शासकीय विभाजन केवल सौराष्ट्र में ही नही अपितु आनर्त देश मे भी थे। वे लाट देश में भी पाये जाते थे। (एनसियण्ट हिस्टोरी आफ सौराष्ट्र डॉ० के० जे० काजी) श्री जे० घ फ्लीट का मत है कि लाट देश की सज्ञा पुरा काल में बडोदा तथा सूरत क्षेत्र से दी जाती थी।



परिशिष्ट 'द'

चोल

(तरंग १ : ३०० : पृष्ठ ३११)

कर्नल जेरिनी ने 'चोल' शब्द को संस्कृत शब्द 'काल' तथा 'कोल' से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है। उसे कृष्ण वर्ण आर्य समुदाय का सूचक माना है। सस्कृत शब्द चोर' तथा तामिल शब्द 'चोलम्' से भी सम्बद्ध किया जाता है। बात कुछ तथ्यहीन मालूम पडती है। चोल शब्द प्राचीन काल से चोल वश तथा भूखण्ड के लिए प्रयुक्त होता रहा है। एक मत है कि वे 'शिवि' वंशीय हैं। बारहवी शताब्दी के अनेक राजवंशों ने करिकाल से उद्भूत अपने को कश्यप गोत्रीय माना है। कात्यायन ने उन्हे चोड लिखा है। सगम युग काल मे चोलो ने दक्षिणी भारतीय इतिहास को सर्वप्रथम प्रभावित किया था। तत्पश्चात् उनका इतिहास लुप्त हो जाता है।

नवी शताब्दी मे चोलो का पुन पुनरुत्थान हुआ। इस वश का संस्थापक विजयपाल (स० ८५०–८७०–७१ ई०) पल्लव राजा के शासन मे उरैपुर प्रदेश का शासक था। उसकी वंश परम्परा में २० राजा हुए। जिन्होने लगभग ४०० वर्षो तक शासन किया था। इस वश का प्रतिभाशाली राजा राजराज का पुत्र राजेन्द्र प्रथम (सन् १०१२ से १०४४ ई०) था। उसने चेर पाडच तथा सिंहल विजय किया था। कलिंग जीतता हुआ वह दक्षिण बंगाल और दक्षिण कोशल तक पहुँचा था। वह गगाजल लाना चाहता था। उसने पराजित राजाओ से अपने लिए गंगाजल ढुलवाया।

चोल राज्य पूर्वीय सागर तट, पेन्नर नदी से बेल्लारू तथा पश्चिम मे कुर्ग तक विस्तृत था। यह भी मत है। बेल्लारू नदी के उत्तर-दक्षिण (एक ही नाम की दो नदिया हैं) पूर्व में समुद्र तथा पश्चिम में कोट्टार्डक्कराय तक चोल क्षेत्र फैला था। वर्तमान त्रिचनापल्ली, तजोर तथा पदुकोटाह का उसमें कुछ भाग सम्मिलित था। राजधानी उरगपुर किंवा उरैंपुर अर्थात् प्राचीन त्रिचनापल्ली थी। कवि दण्डी ने अपने काव्यादर्श में चोल देश का उल्लेख किया है। कावेरी पट्टन कावेरी नदी के उत्तर इस राज्य का बडा बन्दरगाह था। काची अर्थात् वर्तमान काजीवरम चोल प्रदेश का विशाल नगर था। नागपटम अर्थात् नागीपत्तनम भी इसका एक बन्दरगाह था। नागीपत्तनम बन्दरगाह आज भी चलता है। मै यहा दो बार आ चुका हूँ। समुद्र उथला होने के कारण जहाज २ मील दूर समुद्र मे ठहरते हैं।

तजोर, त्रिचनापल्ली, कुम्भकोनम पूर्वकालीन चोल राज्य के प्रसिद्ध नगर थे। और आज भी हैं। ग्यारहवी तथा बारहवी शताब्दी मे गगाई कोण्डा, चोलपुरम चोल राज की राजधानी थी। दक्षिण भारत के अभिलेखो में कावेरी नदी का नाम चोल दिया गया है। चोल शब्द देश तथा देशवासी दोनो के लिए प्रयुक्त किया है। (सभा पर्व ५२ . ३५)।

मार्कण्डेय (५७:५.४५), वायु (४५ ५ १२४) तथा मत्स्य पुराणो (११२:५:४६) मे चोल राज्य का नाम पाण्डच तथा केरल के साथ मिलता है। पद्म पुराण (३०, १०८, १०९); तथा स्कन्द पुराण (२.४.२६-२७) में भी उल्लेख मिलता है।

रामायण किष्किन्धा काण्ड (४१ १३) में चोल का उल्लेख आन्ध्र, पुण्ड, पाण्डच, केरल के साथ किया गया है। उसकी दिशा दक्षिण बतायी गयी है। कावेरी नदी का उल्लेख इसी स्थल पर किया गया है।

महाभारत सभा पर्व (२७ २१) में उल्लेख है। अर्जुन ने चोल सेना पर विजय प्राप्त किया था। भीष्म पर्व (९ ६० तथा ५० ५१) में उल्लेख मिलता है कि धृष्टद्युम्न द्वारा निर्मित क्रौंच व्यूह के दक्षिण पार्श्व में चोल सैनिक रक्षा निमित्त तत्पर थे। कर्ण पर्व (१२ १५) में उल्लेख आता है। पाण्डवो का पक्ष चोल ने महाभारत युद्ध में लिया था। द्रोण पर्व (११ १७) में वर्णन मिलता है। भगवान् कृष्ण ने इस देश को जीता था।

कात्यायन ने पाणिनि के वार्तिक में चोल तथा पाडच का उल्लेख किया है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी (४ १ १७५ ७) में काचीपुरम का उल्लेख किया है। अशोक ने द्वितीय और तेरहवें शिलालेख में चोल, पाण्डच, केलल पुत्तो (केरल) तथा सतियपुत्तो (सत्यपुत्र) का उल्लेख किया है।

तिब्बतीय बौद्ध ग्रन्थो से मालूम होता है। मौर्यों ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। इसका समर्थन आधुनिक अनुसन्धानो से मिलता है। महावश में चोल तथा कावेरी पत्तनम का उल्लेख है। जातक में कावेरी पत्तनम का उल्लेख मिलता है। चोल का इतिहास उतार-चढाव से भरा है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में चोल का उल्लेख किया है। (४ १ १७५) बौद्ध ग्रन्थो में समन्त पसादिका तथा जातक मे कोल जनपद का अर्थ चोलजनपद लगाना चाहिए। चीनियो ने चोल देश का नाम चुल्ली-ए रखा है। उसका क्षेत्र २४०० ली वताते हैं। यहा संघाराम तथा देव मन्दिरो की प्रचुरता थी।

परमार राज लक्ष्मणदेव की प्रशस्ति में चोल विजय का वर्णन है। यह कल्पना मात्र प्रतीत होती है। पोल ने चोल का उल्लेख 'सोर' शब्द से किया है। उस पर अरकाट का शासन होना वताता है।

मार्कण्डेय पुराण (५७ ४५), वायु पुराण (४५ १२४), मत्स्य पुराण (१२१ ४६) में चोल देश का उल्लेख है।

मार्कण्डेय पुराण में—'चोला कुल्यास्तथैव च'

वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में—चौल्याः कुल्यास्तथैव च'

शैलेन्द्र साम्राज्य के विरुद्ध राजेन्द्र चोल ने मलय, जावा, सुमात्रा पर जहाजी बेडे से आक्रमण कर, विजय प्राप्त किया था। भारत का यह अभूत पूर्व नाविक अभियान एव नौशक्ति प्रदर्शन भारतीय इतिहास के लिये गौरव की बात है। इस वश में राजाधिराज प्रथम, कुलोत्तुग तथा विक्रम चोल आदि शक्ति सम्पन्न और प्रतिभाशाली राजा हुए थे। चोल वश का अतिम राजा राजेन्द्र तृतीय था। तत्पश्चात् चोल राज्य पाण्डच के आधीन हो गया। सन् १३१० ई० में अलाउद्दीन खिलजी के समय मलिक काफूर ने आक्रमण कर चोल सत्ता उसी प्रकार नष्ट कर दी जिस प्रकार सन् १३३९ ई० में शाहमीर ने कोटारानी को राज्यच्युत कर दिया था।

चोलो के ग्राम लेखो से ज्ञात होता है। उनकी राज्य व्यवस्था सुसपादित थी। राज्य अनेक मण्डलो में विभाजित था। मण्डल को कोहम् किंवा वलनाडु कहते थे। तत्पश्चात् नाडु अर्थात् जिला और उसके पश्चात् कुर्रम तथा ग्राम थे। चोल राज्य में जन सभाओ द्वारा कार्य सचालन होता था। इन सभाओ का नाम 'उर' था। उन्हें सभा भी कहते थे। सभा की कार्यकारिणी अर्थात् आडुगणम् का निर्वाचन सभासद परस्पर मिलकर करते थे। मैसूर से प्राप्त लेख से ग्राम सभा के कार्यों पर प्रकाश पडता है। ग्राम शासन

पाँच उपसमितियो द्वारा होता था। कार्य काल एक वर्ष तथा सदस्यता अवैतनिक होती थी। उनके कायो मे राजा किंवा सम्राट् भी हस्तक्षेप नही कर सकते थे।

चोल राजा निर्माण प्रिय थे। उन्होने विशाल भवनो, मन्दिरो का निर्माण कराया है। तंजौर का राजेश्वर मन्दिर राजा राजराज ने निर्माण कराया था। उसको भित्तियो पर चित्र महत्त्वपूर्ण एव उल्लेखनीय है। राजेन्द्र प्रथम ने इसी प्रकार का मन्दिर त्रिचनापल्ली में निर्माण कराया था। तत्कालीन धातु एवं पाषाण मूर्ति कलापूर्ण एवं सजीव है।

कश्मीर के समान चोल राज्य मे भी साहित्य की विशेष प्रगति तथा उन्नति हुई थी। शक्तिशाली राजाओ के विजय प्रसग को लेकर अनेकानेक प्रशस्ति पूर्ण ग्रन्थो की रचना की गयी थी। कुलोत्तुग तृतीय के शासन काल मे कंबन कवि ने कम्बु रामायण की रचना की थी। व्याकरण, कोश, काव्यशास्त्र तथा छंद आदि विषयो की रचना का यह गौरवमय काल था।

सम्राट् किंवा राजा अपने जीवन काल में ही युवराज का चयन कर लेता था। सामंतो पर कठोर नियन्त्रण रखता था। उडनकुट्टम अधिकारी गण राजा को सर्वदा सलाह देते थे। उसके सम्पर्क में रहते थे। सम्राट् के निकट एक सघटित विभाग था। उसे औले कहते थे। अधिकारियो के निम्न शिरुदनम् तथा उच्च वेरुंदनम् वर्ग थे। केन्द्रीय तथा स्थानीय अधिकारियो से सम्पर्क एव नियन्त्रण रखने के लिये कणकगणी अधिकारी होते थे।

भूमि व्यवस्था सुचारु थी। समस्त भूमि नापी हुई थी। उनको करमुक्त तथा करयुक्त दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। कर के लिये समग्र ग्राम उत्तरदायी होता था। भूमिकर के अतिरिक्त चुंगी, व्यवसाय तथा भवनो पर भी कर लगते थे। स्थानीय सस्थाएँ सुसगठित थी। स्थानीय जीवन के विभिन्न अंगो के लिये विभिन्न सस्थायें थी।

सेना भी गठित थी। राज्यो के विभिन्न भागो में उसके शिविर या कडगम थे। न्याय, सामाजिक व्यवस्थाओ, लेखपत्र, साक्षी आदि प्रमाणो के आधार पर होता था। नगरम् उन स्थानो की संस्थायें थी जहाँ व्यापारी किंवा व्यवसायी वर्ग प्रमुख था। उर ग्रामीणो की सभा थी जिनके पास भूमि होती थी। ब्रह्मदेय ग्रामो मे ब्राह्मणो की सभा थी। सभायें कार्य के लिये स्वतन्त्र थी। किन्तु ग्रामो के आय व्यय का निरीक्षण राज्य के अधिकारी करते थे। कार्यो के संचालन के लिये समितिया थी। उन्हें वारियम् कहते थे। उनकी सभा द्वारा उनके विधान मे संशोधन, परिवर्तन एव परिवर्धन किया जाता था।

कश्मीर के समान चोल नरेशो ने सिंचाई तथा कृषि समृद्धि की सुनियोजित व्यवस्था की थी। वे बाँध बँधवाते थे। नदियो का प्रवाह रोका था। कूप तथा सरो की शृखलायें वनवायी थी। कावेरी जैसी वडी नदी पर बाँध बँधवाया था। गगैकोड-चोलपुरम् के समीप राजेन्द्र प्रथम ने एक सर खुदवाया था। उसपर सोलह मील लम्बा बाँध था। इसमे दो नदियो से जल लाया गया था। उससे पाषाण प्रणालियाँ तथा नहरें सिंचाई के लिये निकाली गयी थी। सरोवरो, वापियो तथा नदियो पर कश्मीर के वितस्तादि तट तुल्य घाट वने थे। प्रशस्त राजपथो से नगर शोभित था।

सामाजिक व्यवस्था कश्मीर के समान धर्मशास्त्र पर आधारित थी। नारियाँ कश्मीर के समान स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकती थी। उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था। वे सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती थी। वहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। सती का प्रचलन था। मन्दिरो मे देवदासियाँ होती थी।

आर्थिक ढाँचा कृषि पर आधारित था। तथापि गृह शिल्प, व्यवसाय तथा व्यापार खूब होता था। व्यापारियो की एक विशाल श्रेणी थी। उसे नाना देश-तिशैयायिस्तु-ऐजूर्सवर कहते थे। वह जावा, सुमात्रा तथा दक्षिण पूर्व एशिया से व्यापार करती थी। वह वलगै तथा इडगै वर्गो मे विभाजित था।

कश्मीर के समान चोल शिव उपासक थे। परन्तु बुद्ध, जैन तथा अन्य सम्प्रदायो के प्रति सहिष्णुता एव समानता का व्यवहार किया जाता था। पुराकालीन तामिल धार्मिक पद वेदो के समान आदर पाते थे। उनके रचयिता वेद ऋचाओ के ऋचाकार ऋषियो तुल्य पूजे जाने लगे। नेबि आडार नबि ने शैव ग्रन्थो का सकलन सर्व प्रथम किया था। इसी प्रकार नाथ मुनि ने वैष्णव ग्रन्थो का सकलन किया था। भक्ति मार्ग का दार्शनिक स्वरूप जगत् के सम्मुख रखा था। उनके पौत्र यामुनाचार्य किंवा आलवदार वैष्णव आचार्य थे। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया। मन्दिरो की विधि में परिवर्तन किया। वर्ष में एक दिन मन्दिरो मे हरिजन प्रवेश की व्यवस्था की।

पाशुपत, कापालिक, तथा कालामुख जैसे सम्प्रदाय थे। उनमें कुछ स्त्रीत्व की आराधना करते थे। देवी के उपासक अपना मस्तक भी काटकर देवी के चरणो मे अर्पित करते थे। कश्मीर राजा ललितादित्य का वृत्तान्त इस प्रथा की ओर सकेत करता है। मन्दिर सामाजिक जीवन के केन्द्र थे। कश्मीर के समान चोल राज्य था। प्रत्येक ग्राम मन्दिर शृखलाओ से पूर्ण था। मन्दिर शिक्षा के केन्द्र थे। वहाँ नृत्य, गान, नाटच, मनोरजन, आमोद प्रमोद के आयोजन होते थे। कश्मीर के अग्रहारो के समान चोल राज्य मे भी मन्दिरो पर भूमि चढायी जाती थी। मन्दिर भूसम्पति का स्वामी होता था। मन्दिर की सम्पति से बैंकिंग का कारवार चलता था।

चोल राज काल में कास्य मूर्तियो का प्रचलन बहुत हो गया था। नटराज की मूर्ति विश्वविख्यात है। तामिल साहित्य में चोल शासन काल स्वर्णिम युग कहा जाता है। प्रबन्ध साहित्य की प्रचुरता थी। चोल वंश के अभिलेखो से प्रकट होता है कि कश्मीर के समान चोल राजाओ ने सस्कृत, साहित्य एव भाषा अध्ययन के लिये ब्रह्मपुरी, घटिका तथा पाठशालाएँ स्थापित करायी थी। उनकी व्यवस्था हेतु समुचित दान दिया था। ऋग् वेद का भाष्य वैंकट माधव ने किया था। केशव स्वामिन् ने नानार्थार्णव सक्षेप कोश की रचना की थी।

जैन एवं बौद्ध साहित्य ने भी चोल राज मे प्रगति की थी। जैन कवि तिरुत्तक् कदेवर ने तामिल महाकाव्य जीवकचिंतामणि की रचना दशवी शताब्दी में की थी। जैन विद्वान् अमित सागर ने छदशास्त्र पर चप्प रूगलम नामक ग्रन्थ तथा उसके सक्षिप्त संस्करण करिगै की रचना की थी। व्याकरण ग्रन्थों की भी रचना की गयी थी। वैष्णव आचार्य नाथ मुनि, यामुनाचार्य एव रामानुजाचार्य ने सस्कृत मे ग्रन्थो की रचना की थी। कश्मीर के समान चोल राज्य मे सस्कृत खूब फलती और फूलती रही है।

मत्स्य पुराण मे 'चोला. कुल्यास्तथैव च।'

वामन पुराण में 'चौलकुल्याश्च राक्षस' का उल्लेख आया है।

शक्ति संगम तत्र (३ ७ २२) में उल्लेख किया गया है

द्राविड़तैलगयोर्मध्ये चोलदेश. प्रकीर्तितः।
लम्बकर्णाश्च ते प्रोक्ता भेदोऽस्यावान्तरो भवेत्॥ २२

इससे प्रकट होता है कि चोल देश द्रविड तथा तैलग देश के मध्य स्थित था।

परिशिष्ट 'ध'

दरद

(तरंग १ : ३१२ पृष्ठ १२८, ३२२)

पुराणो में उल्लेख आता है :

काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा ह्यङ्गलौकिकाः ।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुला बाह्यतोदरा. ।। (वामन० पु० १३.४०)

× × ×

दरदाश्च स काश्मीरान् गान्धारान् औरसान् कुहून् ।

मार्कण्डेय, वायु, ब्रह्माण्ड तथा वामन पुराणो मे 'काम्बोजा दरदाश्चैव' एक साथ प्रयुक्त किया गया है। कृष्णगगा के ऊर्ध्वभागीय उपत्यका के उत्तरीय कश्मीर मे दरदो का स्थान है। उसे आज भी दरदिस्तान कहते है। दरदापुर किंवा दरतपुरी वहाँ का नगर है। दरद क्षेत्र को दरस भी कहते हैं (वायु० : ४५ . ११९, मत्स्य १२१ ४६ विष्णुधर्मोत्तर १ १० . ९, मार्कण्डेय ५७ : ४०) वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'दरदाश्च सकाश्मीरान्', वायु पुराण में 'दरदाश्च सकाश्मीरान', 'मत्स्य पुराण मे', 'दरदोर्ज्जगुडाश्चैव' का उल्लेख मिलता है। स्पष्ट है कि दर्दिस्तान को कश्मीर के साथ रखा गया है। कुबेर का स्थान सुमेरु पर्वत है ! वर्तमान पामीर है। दरद देश पामीर के दक्षिण मे है। दर्दुर पर्वत का उल्लेख सभा पर्व (१० : ३२) में आया है। उसके अधिष्ठाता कौरवो की सभा मे रहते थे। प्राय दरद जाति का उल्लेख पिशाच, पुण्ड्र, तगण, परितगण, बाह्लिक आदि के साथ मिलता है। दारदिक तथा पैशाची भाषा को आर्य भाषा की एक शाखा माना गया है। एक मत है कि वह ईरानो तथा भारतोय भापा के मध्य की भाषा थी। (ग्रीयर्सन पैशाच आफ नार्थ वेस्ट द्रविड ३)

जातको में दद्दर पर्वत का उल्लेख मिलता है। इसे हिमालय के अन्तर्गत माना गया है। मार्कण्डेय पुराण मे वर्णित दुर्दर पर्वत यही दद्दर पर्वत है। यूनानी इतिहासकारो ने दरदाई जाति का वर्णन किया है। यह जाति दद्दर पर्वत माला मे निवास करतो थी। कश्मीर उपत्यका के उत्तर मे स्थित है। चेतिय जातक की गाथा है। दद्दरपुर के उपचर के पाँचो पुत्रो ने पाँच नगर हत्थिपुर (हस्तिनापुर) अस्सपुर (अंग में) सीहपुर (लालराष्ट्र उत्तरीय पंजाब) उत्तर पंचाल (सम्भवत अहिच्छत्र) तथा दद्दरपुर बसाया था। दद्दरपुर नाम रखने का कारण दिया गया है। वहाँ दो पर्वतो के मध्य रगड द्वारा दद्दर ध्वनियाँ उठती रहती थी। मनुस्मृति मे मनु ने (१० . ४४) दरद जाति का उल्लेख किया है।

हरिवंश पुराण में वर्णन है—कश्मीर राज गोनर्द के साथ दरद राज ने भी जरासंध का पक्ष लेकर कृष्ण के विरुद्ध मथुरा में युद्ध किया था।

अहं च दरदश्चैव चेदिराजश्च वीर्यवान् ।
दक्षिण शैलनिचयं दारयिष्यामि देशिताः ।।

हरिवंश विष्णु पर्व ४२ : ३७

दरद राज ने जरासन्ध के पक्ष में लडते हुए वीरगति प्राप्त की थी।

एवमुक्ते तु नृपतिर्दरदो नाम वीर्यवान्।
रामं हलाग्रोग्रभुजं प्रत्ययात् सैन्यमध्यगम्॥ ५५॥

× × ×

तद् युद्धमभवत् ताभ्यां रामस्य दरदस्य च।
मृधे लोकवरिष्ठाभ्यां कुञ्जराभ्यामिवौजसा॥ ५७॥
योजयित्वा तत स्कन्धे रामो दरदमाहवे।
हलेन बलिनां श्रेष्ठो मुसलेनावपोथयत्॥ ५८॥
स्वकायगतमूर्धा वै मुसलेनावपोथित.।
पपात दरदो भूमौ दारिताद्रं इवाकल॥ ५९॥
रामेण निहते तस्मिन् दरदे राजसत्तमे।
जरासंधस्य राज्ञस्तु रामेणासीत् समागम.॥ ६०॥

स्कन्द पुराण के देशो की तालिका में दरद का स्थान १० वा तथा ग्राम-सख्या ३ लाख ५० हजार दी गयी है।

महाभारत सभा पर्व (४४ ८) मे उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने उत्तर दिशा दिग्विजय काल में दरद देश पर विजय प्राप्त किया था। इसी (५२ १३) में उल्लेख है। वनवास काल मे सुबाहु की राजधानी जाते समय पाण्डव लोग दरद देश द्वारा गमन किये थे।

हिमालय पर्वतीय जातिया तथा प्रदेश भारतीय राजनीति तथा युद्धो में भाग लेती रही है। इस अचल के लोग वीर माने जाते रहे है। महाभारत उद्योग पर्व (४ १५) में उल्लेख मिलता है कि पाण्डवो ने अपने पक्ष से युद्ध करने के लिए दरद लोगो को आमन्त्रित किया था। इस देश की जो भौगोलिक स्थिति महाभारत में दी गयी है वह आज भी मिलती है। इसे पूर्वोत्तर दिशा का देश माना है। कश्मीर के पूर्वोत्तर इसका क्षेत्र इस समय कम विस्तृत है। परन्तु महाभारत काल में प्रतीत होता है कि इसका विस्तार आज की अपेक्षा पूर्व दिशा की ओर अधिक था। (भीष्म पर्व ९ . ६७)। दरद देश के योधा दुर्योधन की सेना में थे। उसकी ओर से युद्ध में भाग लिया था (भीष्म पर्व ५१ १६)।

कथा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस देश को जीता था (द्रोण पर्व ७० ११)। श्रीकृष्ण के विरुद्ध दरद लोगो ने जरासन्ध के पक्ष से युद्ध किया था। वहा का राजा उस युद्ध में मारा गया था। दरद देश के लोगो ने सात्यकि पर आक्रमण किया था। सात्यकि ने इन लोगो का सहार किया था। अनुशासन पर्व में इनके जाति के विषय में कहा गया है कि यह लोग क्षत्रिय थे परन्तु ब्राह्मणो के प्रति ईर्ष्या एव द्वेप रखने के कारण शूद्र हो गये थे।

दरद लोग उत्तरीय पश्चिमी भारत के अचल में रहते थे। उत्तर-पश्चिमीय भारतीय क्षेत्र द्वारा विदेशी लोग भारत में आते थे। विदेशी लोग भारतीय आर्य परम्परा से भिन्न होते थे। विदेशियो के ससर्ग के कारण उत्तर-पश्चिम सीमान्त स्थित हिन्दुओ की परम्परा पर प्रभाव पडता था। वह प्रभाव उनके जीवन तथा आचरण को प्रभावित करता था। शीतल जलवायु तथा परिश्रमी जीवन के कारण शरीर गठन पुष्ट एवं स्वस्थ होता था। वे सुन्दर होते थे।

प्रकृति के साथ दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए संघर्ष करते रहने के कारण उनका स्वभाव लडाकू हो जाता था। अच्छे सैनिक समझे जाते थे। परस्पर सघर्ष करते रहते है। गोत्रीय प्रवृत्ति विदेशी तथा अन्य जातियो के आक्रमण तथा उनके भय के कारण जागृत रहती थी। इस प्रकार वे अपनी स्थिति और व्यक्तित्व रखने मे सफल रहे। पुराकाल में यातायात तथा परिवहन सुगम नही था। कम सम्पर्क होने के कारण उत्तर-पश्चिम की जातियो के विपय में समय-समय पर विभिन्न धारणाएँ बनती और बिगडती रही है। उनकी भौगोलिक स्थिति के विषय मे भी परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते है। परन्तु एक बात मे सभी एक मत है। वे पर्वतीय जाति थे। उनका निवास भारत के उत्तर-पश्चिम सीमान्त पर था। दरदो के प्रदेश, सीमा तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में यदि कही अन्तर अथवा भिन्नता पुराकालीन ग्रन्थो में दिखाई पडती है तो उसका एकमात्र कारण ग्रन्थो का रचना-काल तथा तत्कालोन परिस्थितियो मे इन पर्वतीय जातियो के विभिन्न राजनीतिक, भौगोलिक स्थिति दी थी।

उत्साही, कर्मठ तथा वीर राजाओ अथवा नेताओ के काल में राज्य का विस्तार होता था। गौरव तथा महत्त्व बढता था। उसके अभाव म राज्य की सीमा संकुचित होती थी। प्रदेश पतनोन्मुख होता था। अतएव दरदो की राज्य-सीमा के विषय में विभिन्न उल्लेख मिलते है। एक बात मे सब एक मत है। वे कश्मीर के उत्तर पश्चिम सिन्धु घाटी में निवास करते थे। उनके राज्य की सीमा उन्नति काल में वर्तमान लेक साल्ट तक पहुँच जाती थी। अतएव उनके उत्तर-पूर्व में रहने का भी उल्लेख मिलता है। यह बात सर्वत्र मानी गयी है। इस समय जहा दर्दिस्तान अर्थात् कश्मीर का उत्तरीय पूर्वीय पर्वतीय भूभाग जो सिन्धु घाटी को छेंके है, वही उनका स्थान था।

महाभारत तथा पुराणो में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वे भगवान् श्री कृष्ण के विरुद्ध जरासन्ध का पक्ष ले करके युद्ध करते थे। मथुरा नगर के घेरे में सम्मिलित हुए थे। बलराम ने युद्ध में दरदराज को मारा था। कौरव की ओर से खस, शक, यवन, त्रिगर्त तथा मालव के साथ महाभारत युद्ध मे दरद भाग लिये थे। (द्रोण पर्व १० १८) मत्स्य पुराण मे उल्लेख आता है। उनका देश गान्धार, शिवपुर, उसमा आदि औरस लोगो की तरह सिन्धु उपत्यका का एक भाग था (२.१८४)। विष्णु पुराण उन्हे आमीर तथा कश्मीर से सम्बन्धित करता है (१११ ४५-५१) वे दरद किंवा दर्दुर पर्वत माला मे रहते थे। अतएव उनका नाम दरद पडा। उनके इस अचल मे रहने के कारण पर्वतमालाओ का नाम दरद पर्वत पड़ सकता है।

पाश्चात्य लेखक श्री स्टार्वो उन्हें दरदाई नाम से अभिहित करता है। श्री प्लेनी ने उन्हें दरदेई भी कहा है। श्री पिरोज उन्हे दरदाई नाम से सम्बोधित करता है। वह लम्पक (लगमान) तथा सेनि-रटेन (स्वात) उपत्यका तथा सिन्धु उपत्यका के अधो भाग में उनका स्थान बताते है। वह कहता है। दरद देश की पर्वतमालाएँ विचित्र रूप से ऊँची हैं। यह पर्वत वर्तमान जिला दरदो है। पाक-कश्मीर युद्ध की विराम रेखा के कारण अधिकाश भाग पाकिस्तान के अनधिकृत अधिकार मे है। राजतरंगिणी में दरदो का प्राय उल्लेख किया गया है। उन्होने कश्मीर के जीवन को प्रभावित किया था।

दरद शब्द कई अर्थो मे प्रयुक्त किया गया है। महाभारत आदिपर्व में वाल्हीक देश के एक राजा का वर्णन है। वह सूर्य नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था। (आदि पर्व ६७.५८)

इनके कारण पृथ्वी भार से दब-सी गयी। (सभा पर्व ४४.८)

दरद की सज्ञा महाभारत में एक देश से भी दी गयी है। उत्तर दिग्विजय काल में अर्जुन ने इसे जीता था। (सभा पर्व २७ २७)

राजा युधिष्ठिर को दरद देश निवासियो ने उपहार दिया था। (सभा पर्व ५२ १३)

वनवास काल में सुबाहु की राजधानी में जाते समय पाण्डव लोग दरद देश होकर गये थे। (वन पर्व १७७ १२)

दरदराजको पाण्डवो ने महाभारत युद्ध में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया था। (उद्योग पर्व ४ १५)

दुर्योधन के पक्ष मे महाभारत युद्ध में दरद देश के योद्धाओ ने भाग लिया था। (भीष्म पर्व ५१ १६)

भगवान् श्रीकृष्ण ने दरद देश पर आक्रमण किया था। (द्रोण पर्व ७० ११)

महाभारत में दरद को एक जाति माना गया है। पूर्वकाल मे क्षत्रिय थे कालान्तर में ब्राह्मणो के कोप के कारण शूद्र हो गये थे। (अनुशासन पर्व ३५ १७-१८)

एक भारतीय जनपद दरद का वर्णन शल्य पर्व में किया गया है। (शल्य पर्व ५०.५०)

परिशिष्ट 'न'

खस

(तरग : १ : ३१७ : पृष्ठ ३२०)

आजकल की खश जाति ही कल्हण वर्णित खश जाति है। खश का अपभ्रंश खश जातिवाचक शब्द हैं। यह जाति पीर पंचाल पर्वतमाला के दक्षिण और पश्चिम रहती थी। वे सीमित क्षेत्र मे रहते हैं। पीरपन्तशल उपत्यका के दक्षिण-पश्चिम मे वितस्ता की मध्य धारा और किश्तवार पूर्व के पर्वत के एक भाग में वे अपने को मुस्लिम राजपूत कहते हैं। हिन्दू खश जाति हिमालय के अन्य क्षेत्रो में रहती हैं। कमायू की पहाडियो मे बहुत लोग अपने को खश कहते है। राजपूत होने का दावा करते है। राजपुरी का खश सरदार राजपूतो में विवाह-शादी करता था। लोहर के खश सरदार सिंहराज ने काबुल के शाही राजाओ से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था (रा० त० ६ १७५, १७७)। सिंहराज की कन्या दिद्दा रानी थी। उसने काश्मीर पर राज्य किया था।

मनु ने (१० . २२) मे खशो को दूसरा नामकरण दिया है। उन्हे मनुस्मृति मे (१० ४ -४४) क्षत्रिय माना है। खश तथा खस दोनो पाठ मिलता है। नीलमत पुराण खश जाति का उल्लेख निम्न स्थानो पर करता है।

गन्धर्व्या वाजिन पुत्रा भद्राश्च सुरभेः सुता'।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव खशायास्तनया: स्मृता. ॥ 48 = ६२

× × ×

कद्रू. क्रोधा इरा स्रावा विनता सुरभि: खशा।
वृषाश्वाश्च तथा पूज्या: सुप्रभा च तथा जरा ॥ 583 = ७०३-७०४

× × ×

दार्वाभिसारगान्धारजुहुण्डरशकान् खशान्।
तंगणान् पाण्डवान् मद्रान्नन्तर्गिरिबहिर्गिरीन् ॥ 80 = १२२

× × ×

दार्वाभिसारगांधारजालन्धरशका: खसा:।
तगणा माण्डवाश्चैव आन्तगिरिबहिर्गिरि: ॥ 139 = १८२

नीलमत मे 'खशा' तथा 'खस' एक ही शब्द एवं अर्थवाचक है। कल्हण ने खशो का प्रचुर वर्णन किया है। इस समय उन्हे खक्खा कहते हैं। खक्ख मुसलमान भी हैं। वे राजपूत मुसलमान भी कहे जाते हैं।

नीलमत में वर्णन किया गया है कि ब्रह्मा से वर मिलने पर जलोद्भव असुर दार्वाभिसार, गान्धार, जुहुण्डुर, शक तथा खसो का नाश करने लगा। यह सब कश्मीर के सीमावर्ती जातिया एवं क्षेत्र हैं। एक मत है कि 'कस' शब्द से कश्मीर शब्द वना है यह ठीक नही है। 'कस' शब्द खश जाति के लिये व्यवहृत

किया गया है। खश तथा कश्मीर जाति जिसे 'कश्मीराह' कहा गया है सर्वथा भिन्न है। नीलमत खश जाति का अलग तथा स्वतन्त्र रूप से उल्लेख करता है (नी० ४०)

राजतरगिणी में अनेक स्थानो पर राजौरी अर्थात् राजपुरी के शासक रूप मे खशो को वर्णन किया गया है। उन्हें राजा नाम से सम्बोधित किया गया है। उसकी सेना खशा कही जाती थी। (रा० त० ७ ९७९, १२७१, १२७६, ८ ८८७, १४६६ ' ८६८, १८९५)। राजपुरी के पूर्व अचल के आन्स नदी की ऊर्ध्व उपत्यका मिलती है। इस नदी को आजकल पजगव्वर कहते हैं। श्रीवर ने इसका उल्लेख (४ २१३) किया है। उसने इस नदी को पचगह्वर लिखा है। उसे खशो का निवास-स्थान भी माना है। उससे पूर्व के अचल को वाणशाल कहते थे। यह वही आजकल का वनिहाल है। इसी के नीचे वनिहाल पास है। यही पर भिक्षाचर ने खश राजा भागिक के दुर्ग में शरण ली थी (रा० त० ८ १६६५)। राजतरगिणो (८ १७७ तथा १०७४) के वर्णन से प्रतीत होता है। वह उपत्यका जो वनिहाल और चन्द्रभागा नदी के मध्य है, उसे इस समय 'विचलारी' कहते हैं। पुरावृत्तकारो ने उसे विशालटा कहा है। यह क्षेत्र खशो से आवाद था।

खशालय का भी वर्णन कल्हण ने (रा० त० ४ ५६, ५८, २८४, २९०, २९९) किया है। यहा खश जाति रहती थी। खशालय ही खैशल उपत्यका है। इसे कशेर भी कहते हैं। वह दक्षिण-पूर्व मे मारवल पास से कश्मीर के एक कोने से होती किश्तवार तक चली जाती है। खशालय का पुराना नाम खशाली (रा० त० ७ ३०९ तथा श्रीवर ४ ४५६) प्रतीत होता है।

राजपुरी से पश्चिम घूमने पर पर्णोत्स अथवा राजतरगिणी (६ ३१२) में वर्णित प्रन्त है। उसमें एक व्यक्ति तुग खश था। वह चरवाहा था। रानी दिद्दा के समय अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्री बन गया था। (रा० त० ७ ७७३) तुग के वशज रानी दिद्दा के पश्चात् कश्मीर के राजा हुए थे। उन्हें निम्न खश समझा जाता था।

आधुनिक खक्ख जाति और खश एक ही है। काश्मीर में वितस्ता उपत्यका के अधोभागीय सरदार प्राय इसी जाति के थे। खक्ख शब्द खश का अपभ्रश है।

वितस्ता उपत्यका के खखा सरदार कश्मीर में सिख राज के पूर्व अर्ध स्वतत्र हैसियत रखदे थे। अपने पडोसी वोमब कबीले के साथ वे कश्मीर के लिए समस्या हो गये थे। उनका भयकर क्रूर कर्म जो शेख इमामुद्दीन के समय (१८४६) में उन्होने किया था अभी तक लोगो को याद है। खश लोगो ने मध्ययुग में लूटपाट में प्रसिद्धि प्राप्त की थो। (रा० त० ४ ३२६ और ८ १८९५, २३८९) से यह बात सिद्ध होती है। श्रीवर ने जैनराज तरगिणी ४ ४४३, ४५२, ४९४, ५६६, ६३३, ६४ में इसी बात की कुपुष्टि की है।

कश्मीर की मर्दुमशुमारी १८९१ के रिपोर्ट पृष्ठ १४१ पर खखो की आवादी ४१४६ लिखी है। उनकी जाति मुस्लिम पर्वतीय राजपूतो की एक उपजाति मानी गयी है। पृष्ठ २०१।

खश जाति को मार्कण्डेय पुराण में पर्वताश्रयी जाति कहा गया है। यह जाति पर्वत मे रहती थी।

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
नीहारा· हंसभार्गाश्च कुरवो गुमणाः खशाः ॥

× × ×

गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ।
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान् खसान् ॥ नी० ५७:५६

खसो की उत्पत्ति के विषय मे महाभारत में कथा मिलती है । नन्दिनी गऊ ने अपनी रक्षा निमित्त उन्हें अपने अंग से उत्पन्न किया था ।

मूत्रतश्चासृजत् कांश्चिच्छबरांश्चैव पार्श्वतः ।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान् ॥
आदिपर्व : १७४ : ३७

× × ×

असृजत् पल्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद् द्रविडान् शकान् ।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शबरान् बहून् ॥ ३५ ॥
मूत्रतश्चासृजत् कांश्चित् शबरांश्चैव पार्श्वतः ।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् बर्बरान् खसान् ॥ ३६ ॥
चिबुकाच्च पुलिंदांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान् ।
ससर्ज फेनतः सा गौ. म्लेच्छान् बहुविधानपि ॥ ३७ ॥
महाभारत आदिपर्व १७६ : ३६-३७

इस रूपक का यह अर्थ भी लगाया जा सकता है । खस गोरक्षक थे । क्षत्रियो का कार्य गो ब्राह्मण की रक्षा करना था । उन्हे युद्ध किंवा रक्षा हेतु नन्दिनी गाय ने उत्पन्न किया था । वे क्षत्री थे । उनके क्षत्री तथा क्षात्रधर्म व्रतो होने में सन्देह नही रह जाता ।

वितस्ता उपत्यका के अधोभाग में बारहमूला के आगे खश रहते थे । वीराका खशों का केन्द्र कहा गया है । राजतरंगिणी (रा० त० ८४०९) के वर्णन से मालूम होता है । यह स्थान प्राचीन द्वारावती के समीप था । द्वारावती को इस समय द्वारविडो कहते हैं । वह संस्कृत द्वारविद्या का अपभ्रंश है । वितस्ता उपत्यका का यह भाग कथाई तथा मुजफ्फराबाद के मध्य है । एक मत है । खश पीर पंतसाल के दक्षिण पश्चिम के निवासी हैं ।

महाभारत सभा पर्व में भी खश जाति का उल्लेख आता है । उन्हे शको तथा दरद जातियों तुल्य अर्ध सभ्य जाति में परिगणित किया गया है । (सभापर्व ५२ : २–४) सभा पर्व मे पुन: एक स्थान पर उल्लेख आता है कि वे मरु तथा मन्दर पर्वत के मध्य शैलोदा नदी की उपत्यका में रहते थे ।

मेरुमन्दरयोर्मध्ये शैलोदामभितो नदीम् ।
ये ते कीचकवेणूनां छाया रम्यामुपासते ॥ १ ॥
खसा एकासना ह्यर्हा प्रददा दीर्घवेणवः ।
पारदाश्च कुलिन्दाश्च तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ३ ॥
तद् वै पिपीलिकं नाम उद्धृतं यत् पिपीलिकैः ।
जातरूपं द्रोणमेयमहार्षुः पुञ्जशो नृपाः ॥ ४ ॥
महाभारत वन पर्व ५२:२-४

खसो की वीरता की प्रशसा के लिए दुर्योधन ने शकुनीपुत्र उलूक को अपना दूत बना कर पाण्डवो के के पास भेजा था। और खर्सो के सम्वन्ध में निम्नलिखित बात कहने का आदेश दिया था।

किं दर्दुरः कूपशयो यथेमां,
न बुध्यसे राजचमूं समेताम्।
दुराधर्षां देवचयप्रकाशां,
गुप्तां नरेन्द्रैस्त्रिदशैरिव द्याम्॥ १०२॥
प्राच्यै प्रतीच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च॥ १०३॥

महाभारत उद्योग पर्व. १६०:१०२-१०३

शैलदा नदी पश्चिमी पर्वत के वरुण पर्वत से निकलती है और पश्चिम सागर में गिरती है। (मत्स्य पुराण १२०. ३३)। मनु ने उन्हें क्षत्री माना है। ब्राह्मणो के प्रति श्रद्धा न होने के कारण वे पतित हो गये थे। (मनुस्मृति १० ४३ ४) मनु ने स्पष्ट कहा है कि खश जाति क्षत्रिय थी। परन्तु क्रिया भ्रष्ट एव ब्राह्मणों का दर्शन न पाने के कारण धीरे-धीरे स्थान च्युत हो गयी। निस्सन्देह खश जाति के क्षत्री होने में सन्देह नही किया जा सकता।

शनकैस्तु क्रियाकाललोपात् क्षत्रियजातयः।
वृषलत्व गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥

मनुस्मृति १०. ४३

× × ×

पौण्ड्रकाश्चौड्रविडा. कम्बोजा यवनाः शका.।
पारदाः पल्हवा. चीनाः किराता दरदा. खशा॥

मनुस्मृति १० ४४

उन्हें काशगर से कुछ विद्वान् सम्बन्धित करते हैं। खशगिरि का अपभ्रंश कारगर कहा जाता है। मार्कण्डेय पुराण (३४६ ३५०) मे उन्हें शाल्य, शक और शूरसेन आदि जातियो के साथ रखा गया है। सेन तथा पाल वश के शिलालेखो में इनका उल्लेख आता है।

वृहद् सहिता खशो का कुलूत (कुलू निवासी) तंगणा, तथा काश्मीरा के साथ वर्गीकरण करती हैं (१० १२)।

ऋग्वेद सहिता (१ ३१७) में खश जाति का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेदकाल में गिलगित से करली नदी तथा कालान्तर में नैपाल की पूर्वी सीमा तक खश जाति फैल गयी थी। खशा प्राचीनतम दक्ष प्रजापति तथा असिन्की की कन्या थी। कश्यप प्रजापति को दी गयी थी। उससे यक्ष राक्षसादि हुए। मार्कण्डेय पुराण में 'कुरवो गुर्गणा' खशा', 'वायु पुराण में 'क्षुपणास्तङ्गणाः खशा.', 'कुणपास्तंगणा खशा.', 'क्षुपणास्तङ्गणा खसा' 'क्षुपणास्तङ्गणा खासा'। ब्रह्माण्ड पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खशा', मत्स्य पुराण में 'कुपथा अपथास्तथा', वामन पुराण में 'कुपथास्तङ्गणा खशा', उल्लेख आता है। कुपथ किंवा अपथ हिमालय में कोई स्थान था। खश देश का उल्लेख द्रोण पर्व मे किया गया है। मत्स्य पुराण में बर्बर तथा

यवनों के साथ खशों का उल्लेख किया गया है। 'बर्वरान् यवनान् खशान्' वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण में 'पारदान्, खसान्' 'पारदास्तङ्गणखशान्', 'किम्पुरुषान् खशान्' का उल्लेख अर्थात् 'पारद, तङ्गण तथा किम्पुरुष' के साथ आया है।

महाभारत द्रोण पर्व में खश जाति का उल्लेख आया है कि उन्होने कुरु क्षेत्र के युद्ध मे अयोहस्ता तथा शूलहस्ता खश गणो ने सात्यकि पर अश्म वर्षा की थी।

तत. पुनर्व्यात्तमुखस्तेऽश्मवृष्टी. समन्तत: ।। उद्योग पर्व = १६० . १०३
अयोहस्ता शूलहस्ता दरदास्तङ्गणा खशा ।। द्रोणपर्व १२१ : ४२

खाशीर जनपद का उल्लेख भीष्म पर्व में पूर्वोत्तर भारत के एक जनपद के लिए किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में खश जाति स्थान मगध तथा लौहित्य के साथ पूर्व दिशा मे रखी गयी है। परन्तु यह कश्मीर साहित्य मे वर्णित जाति खस नही है। आसाम के खासी पर्वत मे रहने वाली खासी जाति हो सकती है।

खश एवं खस दोनो एक ही जाति के वाचक है। भागवत पुराण (२ ४ १८) के अनुसार खस जाति पतित हो गयी थी। भगवत भक्ति के कारण शुद्ध हो गयी। ब्रह्माण्ड पुराण (२.३६·१४५ तथा ३.६९ १२०) के अनुसार विन्ध्य पर्वत में निवास करने वाली खस एक निम्न कोटि की क्षत्री जाति थी। उसे निषाद भी कहते थे। हरिवंश पुराण के अनुसार सगर ने उन्हे जीता था। उन्हें निम्न श्रेणी मे रख दिया। वे म्लेच्छ माने गये। हरिवंश पुराण (१४ ७८४) ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण ने उन्हे पूर्व का एक जनपद माना है। जिसमे होकर चक्षु नदी वहती है। ब्रह्माण्ड पुराण तथा मत्स्य पुराण (१२० ४३, १४४.५७) वायु पुराण मे खश पर्वतीय खश जनपद कहा गया है। यहा खश के स्थान पर खस शब्द का प्रयोग किया गया है। वायु पुराण (४५ १३५ तथा ४७.४७) मे दरद जाति को खस जाति का पडोसी माना गया है। बंगाल के पाल राजाओ के शिलालेख मे हूण तथा खस जाति का उल्लेख मिलता है। निष्कर्ष निकाला जा सकता है। खस लोग बंगाल तक आते जाते थे। पूर्वीय भारत का उनको ज्ञान था। वहा वे किसी न किसी रूप में आबाद थे।

हरिवश पुराण (१३·२३-३४) मे उल्लेख आता है कि रघुवंशी राजा वाहु और उसके राज्य को हैहय तथा तालजंघ वंशीय राजाओ ने शक, यवन, कम्बोज, पारद तथा पल्हव की सहायता से नष्ट कर (१४·४) दिया था। यवन, पारद, काम्बोज, पल्हव तथा खस पाचगणो ने हैहय राजाओ के विजय निमित्त पराक्रम किया था। यहा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। खसो की राज्य-व्यवस्था गणतन्त्रीय थी। खसो ने वाहु राजा तथा उसके राज्य को नष्ट करने मे सम्भवत प्रत्यक्ष भाग नही लिया था क्योकि श्लोक (१३:३०) में खस का उल्लेख नहीं आता। हैहय तथा तालजंघ राजा के साथ शकों का उल्लेख है। उसने वाहु के राज्य को छीन लिया था। केवल यह उल्लेख आता है (१४ ४) कि पाँच गणराज्य जिनमे खस भी एक गण राज्य था, हैहयो के लिए पराक्रम किया था। खस लोग शकों की तरह वाहु के राज्य को लेते हुए दिखाई नही देते।

एक मत है कि 'केदारे खसमण्डले' की उक्ति के अनुसार केदार खण्ड खस मण्डल का पर्याय है। यह मत उचित नही मालूम होता। केदार खण्ड में ही नही हिमालय के दक्षिणवर्ती पर्वतमाला में खस जाति फैली थी। अतएव खस जाति केदार खण्ड में भी आबाद थी। परन्तु इसके कारण खसमण्डल का पर्याय केदार खण्ड मान लिया जाय यह युक्ति पूर्ण दलील नही मालूम होती।

कल्कि पुराण में भी खसो का उल्लेख मिलता है

खश काम्बोजकान् सर्वान् शवरान् वर्बरानपि ॥ ३२ ॥
मरु. खशैश्च काम्बोजै युयुधे भीमाविक्रमै. ।
देवापि. समरे चीनैर्ब्बर्वरैः तंतणैरपि ॥ ४१ ॥

कल्कि पुराण तृतीयाश, ६. ३२ तथा ४१

प्लीनी (सन् ७६ ई०) का मत है। सिन्धु तथा जमुना की मध्यवर्ती पर्वतीय जातिया खस अर्थात् केसी हैं। वे क्षत्री केट्रीवोनी कही जाती थी। अरण्यवासी थे। अटकिन्सन का मत है—प्लीनी के अनुसार उस समय खस कमायूँ तथा नैपाले के धुर पश्चिम में निवास करते थे। तालमी (८७–१६५ ई०) का उद्धरण देते हुए वह पुन लिखता है—दरद जाति सिन्धु उद्गम के समीप कस्पेरोई झेलम, रावी, चनाव के समीप रहते थे। उनके देश को कुलिन्द कहते थे। इस समय दरद अस्तोर तथा गिलगिट में रहते है। कस्पेरोई कश्मीर उपत्यका तथा सतलज के मध्य निवासी थे। कुलिन्द सतलज तथा गंगा के वीच में रहते थे।

गिलगित से लेकर जोजिला पास का कश्मीरी भूखण्ड जिसका अधिक भाग अनधिकृत रूप से के इस समय पाकिस्तान आधीन है, दरद जाति आज भी रहती है। उसे दरदिस्तान कहते हैं।

नेपाल से कश्मीर तथा पामीर तक खस जाति विखरी थी। एक समय था जब तिब्बतवासी कश्मीरियो को खद्दे कहते थे। इस समय तिब्बती खद्दे लोगो को मुसलमान कहते थे। कश्मीर के लोग मुसलमान हो गये तो खद्दे शब्द मुसलमानो के लिये तिब्बतियो द्वारा प्रयुक्त होने लगा। तिब्बत सीमा मुसलिम देश कश्मीर है। चित्राल कश्कर, पस्सन मस्तूज के इलाको के निवासी खो कहे जाते है। खशों में मुसलमान तथा बौद्ध हो गये और शेष हिन्दू धर्म के रीति रिवाजो को मानते हुए पूर्ववत् क्षत्री रह गये।

●

परिशिष्ट 'प'

३५ लुप्त राजा (रा० त० १ . ८३ · पृष्ठ ११७)

हसन ने ३५ लुप्त राजाओं की निम्नलिखित तालिका दी है। यह तालिका वह किस ऐतिहासिक आधार पर देता है, इस पर प्रकाश नही डालता। इस तालिका का ऐतिहासिक महत्त्व नगण्य है। रत्नाकर पुराण की बात प्रमाण तुला पर सत्य नही उतरती।

(१) हरण देव	३०३४-३००५ ईसा पूर्व			
(पुत्र राजा परीक्षित)				
(२) रामदेव	३००५-२९३६	(१३) चन्द्रदेव	२५०९-२४५७
(३) व्यासदेव	२९३६-२८८०	(१४) आनन्द	२४५७-२४२९
(४) द्रुण	२८८०-२८२२	(१५) द्रुपद देव	२४२९-२३७८
(५) सिंहदेव	२८२२-२७६८	(१६) हरनाम देव	२३७८-२३२९
(६) गोपालदेव	२७६८-२७५५	(१७) शुक्लन देव	२३२९-२३११
(७) विजयानन्द	२७५५-२७३०	(१८) सिनादित्य	२३११-२२९४
(८) सुखदेव	२७३०-२६८६	(१९) मंगलादित्य	२२९४-२२५५
(९) रामानन्द	२६८६-२६२९	(२०) क्षेमेन्द्र	२२५५-२१८९
(१०) सन्धिमान	२६२९-२५६४	(२१) भीमसेन	२१८९-२१२८
(११) (क) मरहणदेव	२५६४-२५०९	(२२) इन्द्रसेन	२१२८-२०८२
(१२) (ख) कामनदेव		(२३) सुन्दरसेन	२०८२-२०४१

दो मास काश्मीर मण्डल राजा विहीन था। शेष १२ राजा शचीनर के पश्चात् हुए थे। उनकी तालिका निम्नलिखित है—

(२४) जलगेन्द्र	१७५७-१७१२	(३०) प्रतापशील	१५८९-१५५३
(२५) बलदेव	१७१२-१६६९	(३१) संग्रामचन्द्र	१५५३-१५५२
(२६) नलसेन	१६६९-१६४४	(३२) लारिकचन्द्र	१५५२-१५२१
(२७) गोकर्ण	१६४४-१६०८	(३३) वीरमचन्द्र	१५२१-१४७६
(२८) प्रह्लाद	१६०८-१५९७	(३४) वभीखन	१४७६-१४५९
(२९) बम्बरू	१५९७-१५८९	(३५) भगवन्त	१४५९-१४५५

इतिहासकार वैउद्दीन कश्मीर का विचित्र इतिहास उपस्थित करता है :—

"महात्मन् आदम सरन द्वीप (सिंहल या लंका) से कश्मीर आये। सेथ के वंश मे कश्मीर का राज्य ११९० वर्ष तक रहा।

"महात्मन् सुलेमान ने कश्मीर को आबाद किया। अपने भतीजा इसौन को उसने कश्मीर का राजा बनाया। उसने कश्मीर पर २५ वर्ष तक शासन किया। तत्पश्चात् उसका पुत्र कस्सलघन इसलामाबाद में राजधानी बनाकर १९ वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र महेरकज राजा हुआ। उसने ३० वर्ष राज्य किया।

'वह सन्तानहीन था। उसने पण्डू खा अथवा वन्दू खा को गोद लिया। इस राजा का विचित्र जन्म हुआ था। उसकी एक माता एक सरोवर में स्नान कर रही थी। सहसा गर्भवती हो गयी। उसकी मृत्यु भी उस सरोवर में स्नान करते समय हो गयी। उसका शरीर पानी में घुल गया। उससे १५ हजार सन्तानें हुई। उन्ही के वशज भारतीय इतिहास वर्णित पाण्डव हैं। पण्डू खा का लडका लादी खा हुआ।'

इस इतिहासकार के अनुसार वशावली निम्नलिखित होती हैं। महात्मन् सुलेमान ने अपने भतीजा इसौन को राजा बनाया उसके पश्चात् निम्नलिखित कश्मीर के राजा क्रमानुसार हुए।

१ सुलेमान २ इसौन ३ कस्सलघन ४ महरकज ५. पेण्डू खा ६ लदो खा ७. लेदर खा ८ सुन्दर खा ९. कुन्दर खा १० सुन्दर खा (द्वितीय) ११ तुन्दू खा १२ वेदू खा १३ महन्द खा १४ दरविनश खा १५ देवसिर खा १६ तेहव खा १७ कलजू खा १८. सुरखव १९ शर्म वरम खा २० नौरग खा २१ वरिघ खा २२. गवशेहर खा २३ पण्डू खा (द्वितीय) २४ हरशिर खा २५ सजिल खा २६ अकबर खा २७ जवर खा २८ नौदर खा २९ शकर खा ३० वक्रराज।

वक्रराज के वशजो का नाम नही मालूम है। औगनन्द पहला राजा हुआ जिसके समय से इतिहास क्रमबद्ध चलता है।

बैउद्दीन के अनुसार राजाओ का सक्षिप्त विवरण

८ सुन्दर खा—इस राजा के समय कश्मीर के हिन्दुओ मे बुतपरस्ती अर्थात् मूर्ति पूजा आरम्भ हुई। बुतपरस्ती रोकने के कारण राजा मार डाला गया।

९ कुन्दर खा—३५ वर्षों तक राज्य किया।

१० सुन्दर खा—इस राजा के समय में बुतपरस्ती पुन जोर पकड गयो। इस राजा ने सदा शिव का मन्दिर निर्माण कराया।

१२ वेदू खा—११५ वर्ष शासन किया।

१६ तेहव खा—यह राजा अपने पडोसी तथा सम्बन्धी काबुल के राजा द्वारा मार डाला गया। काबुल का राजा कश्मीर की गद्दी पर कलजू खा के नाम से बैठा।

१७, कलजू खा—सात वर्ष राज्य कर लेने पर कलजू खा को पाण्डवो ने गद्दी से उतार दिया और स्वय राजा बन गये।

१८. सुरखव—१९१ वर्ष राज्य किया।

२० नौरग खा—महान् विजेता राजा था। इसका राज्य चीन की सीमा तक पहुँच गया था।

औगनन्द—[मैं समझता हूँ गोनन्द के लिए औगनन्द नाम का प्रयोग किया गया है।]

२३ पण्डू खा—उसने कश्मीर राज्य के उन सब स्थानो पर कब्जा कर लिया जो कभी कश्मीर राज्य के अन्तर्गत थे। उसने राज्य भारतीय समुद्र की सीमा तक पहुँचा दिया।

२४ हरशिर खा—२३ वर्ष राज्य किया।

२८ नौदर खा—काश्मीर में इन्होने आतिशपरस्ती अर्थात् अग्निपूजा का प्रचार किया। (यह जरदस्तु अर्थात् पारसियो का धर्म था।)

२९ शकर खा—वक्रराज ने इस पर आक्रमण कर मार डाला। वह एक पडोसी सरदार था। शकर खा का लडका कुछ घन्टो के लिए गद्दी पर बैठा।

३०. वक्रराज—वक्रराज राजा हुआ। उसने अपने वशजो को राज्य दिया।

श्री वैउद्दीन ने कश्मीर के इतिहास, वहाँ की परंपरा तथा धर्मादि को पुरातन बाइविल एवं कुरान शरीफ में वर्णित महात्मन् सुलेमान से जोडा हैं। कश्मीर को भारतीय परपरा, इतिहास एवं धर्म से सर्वथा अलग रखा हैं। उसने राजाओ की जो तालिका उपस्थित की हैं, वह कुछ विचित्र ध्वनि करती है। उसने संस्कृत नामो के आगे 'खा' पद जोड दिया है। यह 'खा' शब्द भारत मे मगोल मुसलिम आक्रमण के पश्चात् प्रचलित हुआ था। इसका सम्बन्ध मंगोल से फिलस्तीन की अपेक्षा अधिक है। सुन्दर खा के पहले कश्मीर में मूर्ति पूजा नही थी। उसके समय में आरम्भ हुई और वह अपने इस कार्य के लिए जनता द्वारा मारा गया था। किन्तु सुन्दर खा द्वितीय के समय सदा शिव की पूजा आरम्भ हो गयी। वैउद्दीन पारसी धर्म आतिशपरस्ती का कश्मीर में आना कहता है। कश्मीर का सम्बन्ध, फिलस्तीन, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान तथा इस समय के मुसलिम जन बाहुल्य देशो से जोडने का प्रयत्न करता है।



अनुक्रमणिका

[प]



आधार ग्रन्थ

(उल्लिखित)

वैदिक साहित्य

अथर्ववेद—सातवलेकर, —पारडी
ऋग्वेद—चौखम्बा स० काशी
यजुर्वेद— ,, ,,
सामवेद—श्रीराम शर्मा सस्कृत सस्थान, बरेली

संहिता :

काठक सहिता—श्रेडर, लेपजिग
जैमिनीय सहिता सामवेद—डा० रघुवीर स०
तैत्तिरीय सहिता—आनन्दाश्रम, पूना
मैत्रायणी संहिता—श्रेडर, लेपजिग
वाजसेनिय सहिता—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

उपनिषद्

कठोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर
छान्दोग्योपनिषद्— ,, ,,
नील रुद्रोपनिषद्—स० श्रीराम शर्मा सस्कृत सस्थान, बरेली
बृहदारण्यकोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर
श्वेताश्वरोपनिषद्—आनन्दाश्रम, पूना

ब्राह्मण

ऐतरेय ब्राह्मण—आनन्दाश्रम, पूना
गोपथ ब्राह्मण—
जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण—लाहौर
जैमिनीय ब्राह्मण—पजाब सस्कृत सीरीज
तैत्तिरीय ब्राह्मण—आनन्दाश्रम पूना
पचविंश ब्राह्मण—आनन्दाश्रम, पूना
शतपथ ब्राह्मण—वेबर सस्करण
साम विधान ब्राह्मण—स० सत्यव्रत भट्टाचार्य, कलकत्ता

आरण्यक :

तैत्तिरीय आरण्यक—आनन्दाश्रम, पूना

सूत्र :

आपस्तम्ब श्रौत सूत्र—ब्रिस्टल संस्करण
आश्वलायन गृह सूत्र—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
गोभिल गृह सूत्र—चन्द्रकान्त नर्सिंहकार, कलकत्ता
पारस्कर गृह सूत्र—काशी सस्कृत सीरीज
बौधायन श्रौत सूत्र—बिब्लिओथिका, कलकत्ता
शांखायन गृह सूत्र—ओल्डेन बर्ग
हिरण्य केशी श्रौत सूत्र

सूक्त :

नासदीय सूक्त

अन्य

निरुक्त—सस्कृत पुस्तकालय, दिल्ली
बृहद्देवता—स० रामकुमार राय, चौ०, काशी
सुभाषितावली—वल्लभदेव

सस्कृत

अग्निपुराण—आनन्दाश्रम, पूना
अर्थशास्त्र—कौटिल्य वाचस्पति शास्त्री गैरोला
अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास
अमरनाथ माहात्म्य
अष्टाध्यायी—पाणिनि
काव्यमाला—निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९३३
अमरकोश—मास्टर खेलाड़ीलाल प्रकाशक, काशी
अर्धनारीश्वर स्तोत्र—कल्हण
अलकार चूडामणि—हेमचन्द्र
अलकार सार सग्रह—उद्भट्
अवदान कल्पलता—क्षेमेन्द्र
आनन्द रामायण—पण्डित पुस्तकालय, काशी
ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृत्ति विमर्शिनी—अभिनव गुप्त
उत्तराध्ययन सूत्र (जैन)

औचित्य विचार चर्चा—क्षेमेन्द्र
कथा कौतक—श्रीवर (शिवदत्त काशी नाथ पान्डुरग पर्व)
कथा सरित्सागर—सोमदेव
कला विलास—क्षेमेन्द्र
कल्कि पुराण—कला प्रसन्न विद्यारत्न, कलकत्ता
कामसूत्र—वात्स्यायन सस्कृत सीरीज, काशी
कालिका पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
काव्य प्रकाश—मम्मट–चौखम्बा सं० सी०, काशी
काव्य मीमासा—राजशेखर–बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
काव्यादर्श—दंडी
काशिका वृत्ति—जयदेव वामन
किरातार्जुनीय—भारवि
कुट्टनीमतं—दामोदर गुप्त–अ० अत्रिदेव विद्यालंकार इन्डोलाजिकल बुक हाउस, काशी
कुमार सम्भव—कालिदास
कूर्म पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
कोदन्ड मंडन—ब्रह्म पुराण का एक भाग
कृत्य कल्पतरु—लक्ष्मीधर, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बडौदा
खंडनखंड खाद्य—ब्रह्म गुप्त (ज्योतिष ग्रन्थ)
गणेश पुराण—मोदवृत्त मुद्रणालय
गरुड पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
गीत गोविन्द—जयदेव
गीता—राजानक अभिनव गुप्त व्याख्या–संस्करण राजानक लक्ष्मण ब्रह्मचारी ईशावर, काश्मीर
गोदावरी माहात्म्य
गोभिल स्मृति
चतुर्वर्ग संग्रह—क्षेमेन्द्र
चरकसहिता
चक्रपूजा
चान्द्र व्याकरण—चन्द्रगोमिन
जद्विनोद
जैन राजतरंगिणी—श्रीवर, नीलकण्ठ कौल, होशियारपुर
जैमिनीय संहिता
तीर्थ सग्रह—साहिब राम
दशकुमार चरित—दण्डी
दशावतार चरित्र—क्षेमेन्द्र
दुर्गा सप्तशती—गीता प्रेस
देवी भागवत—पडित पुस्तकालय, काशी
देवी माहात्म्य—स० अविनाश चन्द्र मुखरोपाध्याय, कलकत्ता
देश-व्यवस्था
देशोपदेश—क्षेमेन्द्र
ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धनाचार्य। सामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास
नन्दि क्षेत्र माहात्म्य
नन्दि पुराण
नर्ममाली—क्षेमेन्द्र
नाटयशास्त्र—भरत–डा० रघुवश–मोतीलाल बनारसीदास तथा काशी सस्कृत सीरीज
नारद पुराण—श्री वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
नारायण कवच
निर्णय सिन्धु—कमलाकर भट्ट–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, काशी
नीति प्रकाशिका—वैशम्पायन
नीति सार—कामन्दक
नीलमत पुराण—रामलाल काजीलाल तथा जगधर जाद्, लाहौर
नीलमत पुराण—व्रिजे के० डी० लीडेन
नृपावली—क्षेमेन्द्र
नृसिह पुराण—गोपाल नारायण प्रेस
पद्म पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
पचतन्त्र—विष्णु शर्मा, पडित पुस्तकालय, काशी
पृथ्वीराज विजय-जयानक–टिप्पणी–जोनराज स० भाष्य श्रीगौरीशकर हीराचन्द ओझा तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अजमेर
वाराही तत्र
बाल रामायण

ब्रह्म पुराण—आनन्दाश्रम, पूना
ब्रह्माण्ड पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वृद्ध यम स्मृति
बृहद् कथा मजरी—क्षेमेन्द्र
बृहद् सहिता—वराहमिहिर
भर्तृहरि शतक—भर्तृहरि
भविष्य पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
भागवत पुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर
भारत मजरी—क्षेमेन्द्र (अप्राप्य)
भाव प्रकाश
मत्स्य पुराण—आनन्दाश्रम, पूना
मनुस्मृति—पडित पुस्तकालय, काशी
महानिर्वाण तन्त्र—हरिहरानन्द शास्त्री सस्कृत व्याख्या
महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर
महाभाष्य—पतजलि—कील हार्न सस्करण
मातृचक्र विवेक
मार्कण्डेय पुराण—जीवानन्द, कलकत्ता
मालती माधव—भवभूति
मालविकाग्निमित्र—कालिदास
मिताक्षरा—वितानेश्वर स्वय प्रकाशानन्द सरस्वती काशी सस्कृत सीरीज
मुद्राराक्षस—विशाखदत्त
मेघदूत—कालिदास
यमगीता
याज्ञवल्क्य स्मृति—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
योगवासिष्ठ रामायण—अच्युत ग्रन्थमाला, काशी
योगिनी तन्त्र
रघुवंश—कालिदास
राजतरंगिणी कल्हण स० विश्व बन्धु, होशियारपुर
राजतरगिणी (दि रीवर ऑफ किंग्स)—पडित रणजीत सीताराम (अ० अ) (१९३५,१९३८)
राज तरगिणी
(क्रानिकल्स ऑफ दी किंग्स आफ् काश्मीर—स्टीन० एम० ए० (अ० आ०) (१९००,१९६१)
राजतरगिणी—ट्रॉयर एम० ए० अ० फ्रेञ्च
राजतरगिणी राम तेज शास्त्री, काशी—
राजतरंगिणी—जोन राज, श्रीकंठ कौल, होशियारपुर
राजतरगिणी—श्रीवर, शुक ,, ,,
रामायण वाल्मीकि—गीता प्रेस, गोरखपुर
रामायण मजरी—क्षेमेन्द्र
लघु (स्वरूप) यम स्मृति
लोक प्रकाश—क्षेमेन्द्र—प० जगधर जाडू शास्त्री श्रीनगर, काश्मीर
लिंग पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वाक्यपदी भर्तृहरि—व्याख्या हेलाराज—प्र० वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय
वराह पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वामन पुराण—सर्व भारती काशिराज न्यास, काशी
वायु पुराण—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
विक्रमाकदेव चरित—विल्हण
विक्रमोर्वशीय—कालिदास-चौखम्बा सं० सीरीज, काशी
विजयेश्वर माहात्म्य
वितस्ता माहात्म्य
विष्णुपुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर
विष्णुधर्मोत्तर पुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वेणीसहार—चौखम्बा स० सी०, काशी
शक्ति सगमतन्त्र
शिवकोटि रुद्र सहिता
शिवपुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
शिशुपाल वध—माघ, काशी सस्कृत सीरीज
शुक्रनीति
शैव आगम
शंख स्मृति
श्रीकंठ चरित—मंख
समय मातृका—क्षेमेन्द्र
सन्दोह तन्त्र
साम्ब पुराण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
साहित्य दर्पण—विश्वनाथ चौखम्बा स० सीरीज काशी

सुवृत्त तिलक—क्षेमेन्द्र
सूक्ति संग्रह—राक्षस कविकृत
संकल्प सूर्योदय—वेंकटनाथ कृतम्
स्कन्दपुराण—मोर, कलकत्ता प्रथम पाँच खंड, वेकटेश्वर प्रेस बम्बई शेष दो खण्ड
स्तुति कुसुमाजलि—जगधर भट्ट
स्मृति तत्त्व—रघुनन्दन भट्टाचार्य
स्मृति रत्नाकर
हयग्रीव वध—भर्तृमेठ
हर चरित चिन्तामणि—राजानक जयद्रथ
हरिवश पुराण—चित्रशाला प्रेस पूना, काव्य-माला स० ६१, निर्णयसागर प्रेस बम्बई
हर्ष चरित—बाणभट्ट

बौद्ध साहित्य

अंगुत्तर निकाय—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
खुद्दक निकाय
खुद्दक पाठ—भिक्षु धर्मरत्न
गान्धार जातक
चुल्ल निद्देश—पी० टी० एस० सस्करण
चेतिय जातक— ,, ,,
जातक कथा—भदन्त आनन्द कौशल्यायन ६ भाग
दिव्यावदान—पी० टी० एस०
दीघ निकाय—राहुल साकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन
दीप वंश—ओल्डेन वर्ग एच० केम्ब्रिज
धम्म पद—भिक्षु धर्म रक्षित
धम्म पद अट्ठ कथा—पी० टी० एस० (पाली टेक्स्ट सोसाइटी, सीलोन)
प्रपंच सदनी—ओल्ड बिहार सीरीज, कोलम्बो
बुद्ध चरित—अश्वघोष
भूरिदत्त जातक
मक्कट सुत्त
बोधिसत्वावदान—कल्पलताक्षेमेन्द्र
महावंश—भदन्त आनन्द कौशल्यायन
माध्यमिक कारिका—नागार्जुन
मिलिन्द प्रश्न—जगदीश काश्यप, कलकत्ता
वंगीस सुत्त
विनय पिटक—राहुल साकृत्यायन
शासन वश—पी० टी० एस०
सुत्त निपात—भिक्षु धर्मरत्न
सुपारक जातक
सयुक्त निकाय—जगदीश काश्यप, भिक्षु धर्म रक्षित

अन्य भाषा .

अबू रेटा अल्वे सूनी—सखाऊ हे० सी० लंदन
आइने अकबरी—जरेट कर्नल : एच० एम०
कुरान मजीद—अ० मेहदी हसन
गुलजार काश्मीर
गौहरे आलम तोहफेन उस्र शाही—विदै उद्दीन
जहाँगीर नामा—अनु० ब्रजरत्नदास ना० प्र० सभा, काशी
तवक्कान—ए–अकबरी–वी० दे० तथा हिदायत हुसेन, कलकत्ता
तारीख काश्मीर—नारायण कौल
तारीख फिरिस्ता—मुहम्मद कासिम
तारीख रशीदी—अ० डेनिसन रोम्स डी०, लखनऊ
तारीख हसन—पीर गुलाम हसन खुरहमी।
वाकयाते काश्मीर—नवदीरुल अखबार–रफी उद्दीन मुहम्मद
नूर नामा—नुरुद्दीन वाली
बकाअ काश्मीर
बहसल असमर
वाकये काश्मीर—मुल्ला अहमद
वाकियत—ए–कश्मीर–ख्वाजा मुहम्मद आजम ददमरी

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत—कर्ण सुन्दरी–विल्हण
काश्मीर राजवंश—साहिबराम निपीजेमी ममट्टकृत:
काश्मीर सन्धान समुद्यम'
काश्मीर शब्दामृत–ईश्वर कौल

गड्ड वहो—वाक्पति
घटकर्परा—अभिनव गुप्त
चित्रभानुरासक
चौर पचाशिका—विल्हण
तीर्थ सग्रह—साहिव दाम
तन्त्रसार—अभिनव गुप्त–काशी सस्कृत सीरीज
देश-व्यवस्था पुस्तिका काश्मीर
पुराण विपयानुक्रमणी—राजवली
पचस्तवो—धर्माचार्य–श्रीराम शैव (त्रिक) आश्रमफतेह कदल, श्रीनगर
प्राकृत चन्द्रिका—शेष कृष्ण शास्त्री
वोध पच दर्शिका—परमार्थ चर्चा–अभिनव गुप्त
परमार्थसार—अभिनव गुप्त
प्रत्याभिज्ञ हृदय—क्षेमरा ज
देवीस्तोत्र—यशश्कर
महानय प्रकाश—राजानक शितिकठ
महार्थ
मातृ उपासना
मातृका विलास
मातृका भेद तन्त्र
मालिनी विजय वार्तिक—अभिनव गुप्त, काशी सस्कृत सीरीज
माहेश्वर तन्त्र
योग सूत्र—पतजलि–काशी सस्कृत सीरीज
युधिष्ठिर विजय काव्य—वासुदेव
योगिनी तन्त्र
राजतरगिणी सग्रह—साहिबराम
रामायण मजरी—क्षेमेन्द्र
लल्लेश्वरी वाक्यानि—राजानक भास्कर
लघु पचिका
वामकेश्वरी मत विवरण—जयरथ
विज्ञान भैरव—क्षेमराज–काशी सीरीज आफ् टेक्स्ट एण्ड स्टडीज़
शिवसूत्र विमर्शिनी—वसुगुप्त
शिव सूत्र वार्तिक—वरदराज
शिव स्तोत्रावली—उत्पल देवाचार्य
सुवृत तिलक—क्षेमेन्द्र स्तुति कुसुमाजलि—जगधर भट्ट
स्तव चिन्तामणि—नारायण भट्ट, काशी सस्कृत सीरीज
स्पन्द कारिका—वसुगुप्त राम, रामकठाचार्य कृत वृत्ति
स्पन्द निर्णय—क्षेमराज
स्पन्द वृत्ति—कल्लट
सन्दोह
हलायुध कोश—जयशकर जोशी सम्पादित

सहायक ग्रन्थ

सन्दर्भ ग्रन्थ

पालि ग्रन्थ—नालन्द देव नागरी पालि ग्रन्थ मालाप विहार राजकीय पालि प्रकाशन मडल विहार
अभिधर्म कोश—आचार्य नरेन्द्र देव
कथा वन्धु—पी० टी० एस०
गिलगिल बौद्ध ग्रन्थावली—डा० रघुवीर तथा लोकेशचन्द्र
गन्धवश—पी० टी० एस० जनरल सन् १८८६
थर गाथा—पी० टी० एस०
थेरी गाथायें—भरत सिंह उपाध्याय
वुद्ध वश—राहुल साकृत्यायन भदन्त आनन्द कौशल्यायन
मज्झिम निकाय—राहुल साकृत्यायन
विमान वत्थु—पेत वत्थु थेरगाथा–भिक्षु धर्म रत्न।
शासन वंश दीप—विमल शार थेरा–कोलम्बो
सारत्थप्प कासिनी
सुमंगल विलासिनी
सौन्दर नन्द—सूर्य नारायण चौधरी

हिन्दी

अकवरी दरवार—अ–रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
अपभ्रश कोश—अशोक के अभिलेख–राजपृथ्वी पाण्डेय, काशी

आचार्य क्षेमेन्द्र—मनोहरलाल गौड
इतिहास तिमिर नाशक—राजा शिव प्रसाद
काश्मीर कीर्ति कलश—रघुनाथ सिंह
किन्नौर—राहुल साकृत्यायन
गिलगित—मैनुस्क्रुण्ट–देवनागरी
जागृत नैपाल—रघुनाथ सिंह
दक्षिण पूर्व एशिया—रघुनाथ सिंह
पाणिनि कालीन भारतवर्ष—वासुदेव शरण अग्रवाल
पुराण विमर्श—बलदेव उपाध्याय
बुद्ध कथा—रघुनाथ सिंह
भारत का भाषा सर्वेक्षण—ग्रियर्सन अनु० डॉ० उदयगिरि तिवारी
मत्स्य पुराण—वासुदेव शरण अग्रवाल
मन्त्र और मातृकाओ का रहस्य—शिवशंकर अवस्थी
मुगल दरबार—अनु० ब्रजरत्नदास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
योगवासिष्ठ कथा—रघुनाथ सिंह
राजतरंगिणी कोश— रामकुमार राय
विक्रमादित्य—डॉ० राजबली पाण्डेय
विश्व के धर्मप्रवर्तक—रघुनाथ सिंह
वेद कथा—रघुनाथ सिंह
शैव मत—डॉ यदुवशी
संस्कृत काव्यकार—हरिदत्त शास्त्री
सस्कृत सा० का० इतिहास—बलदेव उपाध्याय

अंग्रेजी उल्लिखित ग्रन्थ—नामानुक्रमणिका :

अकबर एण्ड जेसुइस्ट—विनोइस्ट डी० गोइस
आर्कियोलोजिकल रिमेन्स इन काश्मीर—आनन्द कौल, लाहौर
एनाल्स आफ ऐन्टी क्विटी आफ राजस्थान—टाड कर्नल
ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट—कुमार स्वामी
एन्शेन्ट कोकन—भास्कर आनन्द सलतोरे
इ़न्डिया ऐज़ डिसक्राइब्ड
मेगस्थनीज—मेक्रिंडिल
एन्शेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया—कनिंघम ए इन्डोलाजिकल बुक हाउस, काशी
एन्शेन्ट विल्डिग—कोल एच० ए०
एन्शेन्ट हिस्ट्री आफ सौराष्ट्र—विर्जी, के० जी०
किंग्स ऑफ काश्मीर—दत्त, योगेशचन्द्र (१८७९)
कैटलाग ऑफ दि क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम
क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया—कनिंघम जनरल
कैटलाग एन्ड केटलोगम—थियोडोर ए० लिपजिग
ट्रेवेल इन मोगल इम्पायर—अनु० कान्स्टेवल–आर्थबाल
ट्रेवेल इन काश्मीर—वेकफील्ड डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर एंड पंजाब—कार्ल, ए० ए० हुगेन, लन्दन
ट्रेवेल्स—मूरक्राफ्ट डब्लू
ट्रेवेल्स इन काश्मीर लद्दाख एंड स्कर्डू—वाइन जी० टी०
डाइनिस्टिक हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया—राय एच० सी०
डायरी आफ ए पेडिस्ट्रियन इन काश्मीर एंड तिब्बत—नाइट ज्हॉन, लन्डन
नोट्स आन कल्हणाज़ राजतरंगिणी—आर० सी० दत्त, कलकत्ता रिव्यू भाग १
नीलमत पुराण—डा० वेद कुमारी
नोट्स आन ओ कुंग—स्तीन एम० ए०
नोट्स—ऑन पीर पंजाल—,, ,,
नोट्स ऑन सम आफ टेम्पुल्स आफ काश्मीर—कोवी डब्लू जी
पिक्चरस्कू कश्मीर—नीव डाक्टर आर्थर, लन्डन
प्रि हिस्टोरिक इडिया—पिगट स्टुअर्ट
फाहियान—अ-गाइल्स

बाइबिल :

वियोन्ड दी पीर पंजाल—नीव, इरनेस्ट, एफ
मार्को पोलो—यूल, हेनरी
मैन एंड टेकनीक—स्पेंगलर

राजतरंगिणी—ब्हूलर्स रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैन्सक्रुप्ट मेड इन काश्मीर राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इंडिया
वैली आफ काश्मीर—लारेंस वाल्टर
सी-यू-की—हृवेनसाग अनु० बील सेमुएल
सुगयुन
स्टडीज़ इन इंडियन यन्टीक्वेरी—राय चौधरी, एच० सी०
स्फिक्स स्पीक्स—डॉ० ज्वालाप्रसाद सिंहल, न्यू दिल्ली
हिन्दू हिस्ट्री आफ काश्मीर—विलसन होरेस हेमन, कलकत्ता
हिस्ट्री आफ इंडियन आर्किटेक्चर—फरगुसन
लाइफ आफ हुएनत्साग—बील सेमुएल
हैपी वैली दी—वेकफील्ड डब्लू
एंटीक्विटी—जोसीफस फ्लेवियस, लन्डन

हायक अंग्रेजी ग्रन्थ नामानुक्रमणिका :

अभिनव गुप्त पाण्डेय के० सी
अर्ली हिस्ट्री एण्ड कलचर आफ काश्मीर—राय सुनील चन्द्र
अर्ली हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया—चट्टोपाध्याय, एस
अशोक—मुकर्जी राधाकुमुद
अशोक एण्ड डिक्लाइन आफ दी मौर्याज़—थापर रोमिला, लन्डन
असुर इंडिया—बनर्जी शास्त्री ए०
आर्की टेक्चर आफ काश्मीर—क्रैप्से टी एस लन्डन
इंडिया एज डिस्क्राइब्ड बाई अर्ली ग्रीक राइटर्स—पुरी बी. एन
इन दी लैंड आफ लल्ला रुख—वाडिया ए० एस० एन०, लन्डन
इंडियन सरपेन्ट लोर—वोगेल एच
एंटीक्विटी आफ इंडिया एंड तिब्बत—फ्रेन्की एच एच
एंटीक्विटी आफ चम्बा स्टेट—वोगेल-एच
एशेन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया—कनिंघम ए० जनरल
एक्रोस दी रूफ्स आफ दी वर्ल्ड—एस०के० रेड, विल्फड
ए क्लासिकल डिक्शनरी आफ हिन्दू माइथोलोजी एण्ड रिलीजन-डोसोन, जान
एन इन्ट्रोडक्शन टू काश्मीर इट्स जियोलोजी एन्ड ज्योग्राफी—पिट्ठावाला एम० बी०
ए पर्सनल नरेटिव आफ ए विजिट टु गजनी काबुल इन अफगानिस्तान—वाइन जी० टी०
ए पीप थ्रू दी काश्मीर—मोरिसन
ए रेसियल हिस्ट्री आफ इंडिया—चक्रवर्ती
ए लोनली समर इन काश्मीर—मोरिसन, मार्गरेट कोल्टर
एंशेन्ट इंडिया—मजूमदार आर० सी०
एशेन्ट मानुमेंट इन काश्मीर—काक आर० सी०
कल्हण पोयेट हिस्टोरियन आफ काश्मीर—धर सोमनाथ
ओन एंश्येन्ट सेन्ट्रल एशियन ट्रेक्ट्स—स्तीन—एम० ए०
ओनयुवाग च्वागस ट्रेवेल्स इन इंडिया—वार्स टमस
कम्परेटिव ग्रामर आफ प्राकृत लैंगवेजेज—लक्ष्मीधर
कशीर—सूफी जी० डी० एम०
काफिर्स आफ हिन्दू कुश-रोबर्टसन जी० एस०
काश्मीर थ्रू दी एजेज—कौल जी० एल०
काश्मीर इन सन लाइट एंड शेड्स—विसकोई इ० टाइडेल
काश्मीर इन स्टोरीज़—धर सोमनाथ
काश्मीर इट्स कलचरल हेरिटेज—कौमुदी
काश्मीर एड काशगर—विल्यू एच० वालर १८७३
काश्मीर एटीक्विटीज़—काक रामचन्द्र
काश्मीर-सर यंग फ्रान्सिस हसबैंड
काश्मीर क्रोनिकल—वैंशम (लेख हि० इ० प० पृष्ठ ५५
काश्मीर पास्ट एड प्रेजेन्ट—ग्रसलाल कौल

काश्मीर शैविज्म—चैटर्जी जे० सी०
कैटलाग आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट रघुनाथ टेम्पुल—स्तीन एम० ए०
क्रानोलाजी आफ एन्शेन्ट इंडिया—अय्यर वी० जी०
क्वाइन्स आफ इन्डो सीथियन—कनिंघम ए० जनरल
क्वाइन्स आफ एन्शेन्ट इंडिया ,, ,,
क्वाइन्स आफ मीडीवल इंडिया ,, ,,
गजेटियर काश्मीर, किश्तवार, भद्रवा, जम्मू, नौशेरा, पूछ एंड वैली आफ कृष्ण गंगा—वेट्स सी० ई० कैप्टन
ग्रामर आफ काश्मीरी लैंग्वेजेज—वेड० टी० आर०
छविल्लाकर—साहनी एस० वी० जरनल विहार रिसर्च सोसाइटी
जोसफ (ईशामसीह) इन काश्मीर—हजरत मिरजा गुलाम अहमद, कादियान
ज्योग्राफिकल डिक्शनरी आफ एन्शेन्ट एड मीडिवल इंडिया, दे० एन० एल०
ज्योग्राफिकल डेटा इन दी रघुवंश एंड दी दश कुमार चरित—मार्क कालिन्स
ज्योग्राफी आफ जम्मू एण्ड काश्मीर आनन्द कौल
ज्योग्राफी आफ हिरो डोटस
ट्राइब्स इन एन्शेन्ट इंडिया—ला० बी० सी०
टुरिस्ट्स गाइड टू काश्मीर—नव आर्थर—लाहौर
ट्री एंड सरपेन्ट वर्शिप—फरगुसन जेम्स
ट्रेविल्स इन इंडिया एंड काश्मीर—स्कोन वर्ग वी० ई०, लन्डन
ट्रेविल्स इन हिमालयन प्रोविन्सेज—मूरक्रॉफ्ट डब्लू, लंदन
ट्रेविल्स इन बलूचिस्तान
टेम्पुल्स—कनिंघम ए० जनरल
ट्रेड एंड कामर्स इन एन्शेन्ट इंडिया : डा० श्रीवास्तव बलराम
डाइनेस्टिक क्रानालाजी आफ काश्मीर घोषाल यू० एन० इंडियन हिस्टारिकल क्वाटरली १८ तथा १९ भाग
डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया---राय० एच० सी०
डिक्शनरी आफ काश्मीरी प्रापर नेम्स—नोल्स जे० एच०, लन्डन
तिब्बत तारतारी एंड मंगोलिया—प्रिंसेज एच० टी०
तुर्किस्तान—वर्ट होल
थर्टी इयर्स इन काश्मीर—नीव ए०
दी इंडो ग्रीक्स—नारायण ए० के०
दी इन्वेजन आफ इंडिया—बाई अलेक्जेंडर मेक क्रिन्डल
दी काश्मीर पण्डित—आनन्द कौल
दी गार्डेन्स आफ ग्रेट मुगल्स—स्टुअर्ट, मिसेज विल्लीयर्स (लन्डन)
दी ग्रीक्स आफ बेक्ट्रिया एंड इंडिया—हार्न डब्लू, डब्लू
दी चोल्ज—शास्त्री के० एन० एन०
दी चार्म आफ काश्मीर—ओ कान्नार वी० सी० स्काट, लन्दन
दी जम्मू एंड काश्मीर टेरी टोरीज—ड्यू फेड्रिक
दी डिक्लाइन आफ बुद्धिज्म इन इंडिया—मित्र आर० सी०
दी मिस्ट्री आफ दि एजेज—मोनीर विलियम एम० सर
दि रोड टू काश्मीर—मिलने जेम्स, लन्दन
दी लैंगुएजेज एण्ड रेसेज आफ दर्दिस्तान—लीनर जी० डब्लू
दी वर्ड आफ लल्ला टेम्पुल आर० सर
नार्दर्न वैरियर आफ इंडिया ड्र्यु फ्रेडरिक
नरेटिव आफ ए मिशन टुबुखारा (१८४३–१८-४५) खेरेन्ड जोसेफ वाल्फ, लन्डन

नोट्स आन टूर इन दी फेरिस्ट आफ जम्मू एण्ड काश्मीर अर्डले—त्रिलमौट एस, कलकत्ता

पिशाच लैंगुएजेज आफ नार्थ वेस्टर्न इडिया—ग्रियर्सन जी० ए०

पोयम्स आफ काश्मीर ब्राउन परसी

फाक टेल्स आफ काश्मीर—नील्म जे० एच०, लन्दन

फेमिली एण्ड किनशिप–मदन त्रिलोक नाथ एशिया, बम्बई

फोर स्टडीज़—मिनोरस्की वी० एन्ड टी०

फलड लिजेन्ड इन सस्कृत लिटरेचर—सूर्यकान्त।

वर्थ प्लेस आफ कालिदास—कल्ला, लक्ष्मीधर

विटवीन दी ऑक्सस एड दी इड्स—स्कीम वर्ग आर० सी० एफ०

बुद्धिज्म इन काश्मीर एण्ड लद्दाख—गनहर जे० एन० एण्ड पी० एन०

बुद्धि रिकार्ड आफ दी ईस्टर्न वर्ल्ड—वील एस०

मार्को पोलो—हेनरी यू० ल०

युअन चाओ—पी० शी-अ० वी० क्वी सुन। अलीगढ।

रिलीजियन एड फॉक लोर आफ—नार्दर्न इडिया–क्रूक० डब्लू०

रेसेज आफ अफगानिस्तान० एच० डब्लू वेल्यूज सी० एस० आई

लल्ला वाक्यानि—ग्रियर्सन जी सर

लास्ट ट्राइब्स—ज्योर्ज मूर

लेटर इन्डोसीथियन—कनिंघम ए० जनरल

लेटर्स आन ए जरनी फ्राम वगाल टू सेन्ट पीटर्स वर्स ज्योर्ज फास्टर, लन्दन

लेटर्स फ्राम इडिया—जैक्यू मान्ट विक्टर, लन्डन

विद पेन एड राइफल इन काश्मीर—राथ फील ओट्टो

व्हुलर्स रिपोर्ट आफ ए टूर इन सर्च आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट मेड इन काश्मीर राज पूताना एड सेन्ट्रल इडिया (१८७७ ई०)

सोशल इंस्टीट्यूशन इन एन्शेन्ट इडिया—दफ्तरी के० एल०

सती कुमार स्वामी ए० आर

सती—टामसन० ई०

सन एंड सरपोस्ट—ऑल्धम

सम क्षत्रिय ट्राइब्स आफ एन्शेंट इडिया—ला० वी० सी०

सरपेन्ट वर्शिप एड अदर एसेज़—वेक० सी० एच०

सर्वे आफ मिनरल डिपोसिट्स इन जम्मू एंड काश्मीर मिडल—मिस्स सी० एस०

स्टडीज़ इन इडियन एटीक्वेरी—राय चौधरी एच० सी०

स्टडीज़ इन इपिक्स एड पुराण—पुसलकर ए० डी०

स्टडीज इन क्रानिकल आफ लद्दाख—पिटैच लुसियानो

स्टडीज इन ज्योग्राफी—सरकार डी० सी०

स्टडीज इन पुराणिक रिकार्ड्स् आफ हिन्दू राइ-ट्स एण्ड कस्टम्स—हाजरा आर० सी०

स्टडीज इन दी हिस्टॉरिकल एण्ड कलचरल ज्योग्राफी एड टापोग्राफी आफ गुजरात—साकलिया एच० डी०

स्पोर्ट एड फाकलोर इन हिमालय—हैं फटन एच एल लन्दन

हिन्दू मैथो लाजी—विल्किन्स डब्लू० जे०

हिन्दूहालीडेज एड सेरिमोनियल्स—गुप्त० बी० ए०

हिन्ट्स आन हिलट्रेवेलिंग इन काश्मीर—मेकडो-नेल्ड जे० सी०

हिस्ट्री आफ अफ़गानिस्तान—कर्नल जी मेल्ली सान सी० एस० आई०, लन्डन

हिस्ट्री आफ अफगानिस्तान—एल० पी० केरि-यर अ० डब्लू० एम० जेस्सी

हिस्टोरियन आफ इंडिया पाकिस्तान एड सीलोन (सं०) सी० एच० फिलिप

हिस्टारिकल ज्योग्राफी आफ एन्शेन्ट इंडिया—ला–वी० सी०

हिस्टारिकल वैल्यू आफ इंडियन वारडिक लिटरेचर

हिस्ट्री आफ काश्मीर—कौल पृथ्वीनाथ बमजापी

हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र—कर पी० बी०

हिस्ट्री आफ पंजाब हिल स्टेट्स—हचिसन जे० तथा वोगेल जे० एफ०

हिस्ट्री आफ मंगोल—हावर्थ एच० एच०

हिस्ट्री आफ वेस्टर्न तिब्बत—फ्रेन्की ए० एच.

हिस्ट्री आफ साउथ इंडिया—शास्त्री के० ए० एन०

हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर—कीथ ए० बी०

,, ,, ,, दास गुप्ता एंड एस० के० दे०

,, ,, ,, सी० वी० वैद्य

